

ऋग्वेद



यजुर्वेद

द्वै व त - सं हि ता

[चारों वेदोंका देवतानुसार मंत्रसंग्रह]

सम्पादक

म. म. ब्रह्मर्षि पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विद्या-मातण्ड, साहित्य-वाचस्पति, गीतालंकार

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल

*

स्वाध्याय - मण्डल, फारुजी

सामवेद

अथर्ववेद



द्वैत - संहिता

भूमिका

भारतीय संस्कृतिका मूल स्रोत-वेद

भारतीय संस्कृति विश्वके अन्य देशोंकी संस्कृतिमें सबसे प्राचीन एवं सर्वश्रेष्ठ है। त्रिम समय सारा संसार अज्ञानान्धकारसे आवृत था, उस समय भारतकी संस्कृतिका प्रभाव चारों ओर फैल रहा था। उस समयके भारतका चित्रण मनुजीने इस प्रकार किया है—

एतद्देशमस्मृतस्य सकाशाद्प्रजन्मनः ।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

‘पृथिवीके सब मानव इस भारतखण्डपर अपने अपने चरित्रकी शिक्षा लेनेके लिए आने थे।’

इस संस्कृतिमें महर्षियों द्वारा मानवजीवनकी हर तरहकी उन्नतिकी मार्ग प्रशस्त किया गया है। आज भी जहां अन्य देशोंकी संस्कृतिका पता तक नहीं चलता, हमारी भारतीय संस्कृति पूर्वके समान ही सर्वातिशायिनी बनी हुई है। इसका कारण यह है कि हम संस्कृतिका स्रोत ही वेद हैं। वेद नित्य हैं, अपरिवर्तनशील हैं तथा आन्ति आदियोंसे सर्वथा रहित हैं। वेद ही वास्तवमें वह गंगोत्तरी हैं, जहांसे भारतीय संस्कृतिकी गंगा प्रवाहित होती है। भारतीय संस्कृति और वैदिक संस्कृति दोनों एक ही हैं। इस संस्कृतिका मूल रूप वेदोंमें ही मिल सकता है।

वेद ईश्वरीय वाणी है, जो मृष्टिके प्रारंभमें मनुष्योंकी

आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक उन्नतिके लिए प्रकट हुई थी। इसमें मानवजीवनके हर पहलुपर विचार किया गया है, या यूँ कहना चाहिए कि मानवकी सर्वांगी उन्नतिकी मार्ग इसमें दिखाया है। वेद स्वयं इस बातकी घोषणा करता है—

यथेर्मा वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।

यजु. २६।२

‘मैं जनोंके हित करनेवाली इस वाणीको बोलता हूँ।’ वेदोंमें मनुष्यकी हर समस्याका समाधान प्रस्तुत है। मनुष्य जातिके कल्याणार्थ उसके अभ्युदय और निःश्रेयसकी प्राप्ति-का सत्य और सरल मार्ग इन वेदोंमें प्रकाशित किया है। ये वेद अखिल विद्या विज्ञानोंके मण्डार हैं। वैदिकोत्तर सभी माहित्यमें इनका महत्त्व बहुत बड़े पैमानेपर वर्णित है।

वैदिक संस्कृतिकी विशेषता

वैदिक संस्कृतिकी सर्वप्रथम विशेषता है—ममन्वयवाद। वह न विल्कुल अध्यामवादी है और न विल्कुल भौतिकवादी। उसमें दोनोंका ममन्वय है। मानवजीवनके लिए दोनों ही अत्यावश्यक हैं। आजको पाश्चात्य संस्कृति पूर्णगो है। वह केवल भौतिक उन्नतिपर ही ज्यादा जोर देती है, अतः इस संस्कृतिका उपात्मक भौतिकतामें तो बहुत उन्नति कर लेता है, पर आध्यात्मिकतामें पिछड़ा रह जाता है।

ॐ १ एवं अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्रयितम् ।

एतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वागिरसः ॥ श. ब्रा. १।१।।४।१०

२ मः प्रजापतिः श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममपूजन त्रयमेव विद्याम् ॥ श. ब्रा. ६।१।९।८

*

इहलौकिक और पारलौकिक उन्नतिपर समान जोर है। वैदिकोत्तर स्मृतियोंमें धर्मका लक्षण ही यह है कि अभ्युदय और नि श्रेयसकी उन्नति सिद्ध गला ही धर्म है। + वैदिक संस्कृतियोंमें वे सारे तत्त्व ज्ञानमें मौजूद हैं, जो मनुष्यको आदर्श बना सकते हैं। 5 संस्कृतियोंमें आत्मा और परमात्मामें दृढ़ विश्वास रखती यह विश्वास मनुष्यमें आध्यात्मिकता उत्पन्न करता वैदिक संस्कृति प्रकृति और उससे बने भौतिक शरीर (ताको स्वीकार करती है और इसीलिए शरीरकी एक आवश्यकताओंकी पूर्तिक लिए सब प्रकारकी प्राहु उन्नति करनेकी भी प्रेरणा देती है। वेदोंमें आदेश है मनुष्य इस संसारमें रहकर उत्तमोत्तम भोग भोगे। दका मनुष्य कहता है—

नह भुव घसुन पूर्व्यरूपाति

ग्रहं धनानि सजयामि शश्वत । ऋ १०।४८।१

म धनका सबसे प्रथम स्वामी हूँ, मैंने हमेशा धनोंको [है।]

और जगद् जगद् परमात्मासे भी प्रार्थना की गई है कि ' हे आत्मन् ! हमें उत्तम उत्तम धनाका स्वामी बनाइये । गाय, घोड़े और सुवर्ण आदि धन सहस्रोंकी सख्यामें । ' इस प्रकार वेदम भौतिक उन्नति करनेकी भी

प्रेरणा है। यह संसार हमारा घर है, हम इसके स्वामी हैं। हमें सुख देनेके लिए ही परमात्माने इस संसारका निर्माण किया है। महात्मा बुद्धन इसके विपरीत लोगोंको यह ज्ञान दिया कि ' संसार क्षणभंगुर है, यह अत्यन्त दुःखमय है, अतः हे मनुष्यो ! यह संसार हेय है। इसको छोड़ दो और सन्यासी या भिक्षुक होकर यहां रहो । ' पर वेद इसके विपरीत लोगोंको आदेश देता है कि—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शत समाः ।

यजु ४०।२

' हे मनुष्यो ! इस संसारमें तुम शुभ कर्म करते हुए सौ वर्ष तक आनन्दसे जीवो । वेदके पुरप-सूक्तमें तथा गीता-क ग्यारहवें अध्यायमें यह बात बड़े विस्तारसे समझाई है कि यह विश्व सच्चिदानन्द परमात्माका ही रूप है। आनन्द मय परमात्मा इसमें सर्वत्र व्याप्त है। उसका ध्यातस्वरूप पवित्र है—

पवित्र ते यितत ब्रह्मणस्पते

प्रभुर्गात्राणि पर्येपि विश्वत । ऋ १।८३।१

अतः जो विश्व आनन्दमय परमात्माका रूप है, वह दुःख मय कैसे हो सकता है ? यह जगत् पचभूतात्मक है। ये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश पचभूत भी हमें सुख ही देते हैं। पृथिवी हमें आधार देकर, जल हमारी

३ ' शास्त्रयोनिर्वात् ' वे सू १।१।३

महत ऋग्वेदादे शास्त्रस्य अनेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदापवत् सर्वाव्यावधोतिन सर्वज्ञकल्पस्य योनि कारण ब्रह्म । नदीदस्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादिः लक्षणस्य सर्वज्ञ गुणान्वितस्य सर्वज्ञान्यत संभवोऽस्ति । ऋग्वेदाद्या रूपस्य सर्वज्ञानकरस्य अग्रयतनैव लीलाग्यायेन पुरपति श्वासवत् यस्मान्महतो भूतात् योने सभव । (शाकर भाष्य)

४ न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुं पुरपस्यामावात्- सा सू ५।४६

वेद पौरुषय नहीं, क्योंकि उसका बनानेवाला कोई पुरप नहीं हो सकता ।

५ यस्य नि शसित वेदा घो वदम्योऽखिल जगत् ।

निर्मम तमहं वन्दे विघ्नार्थि मद्देश्वरम् ॥ सायण, ऋग्वेदभाष्य-प्रस्तावना ।

६ अनादिनिधना विद्या वागुरगृष्टा स्वयंभुवा ।

यद् दग्दम्य पृषादौ निमिमात स ईश्वर ॥ महाभारत शान्ति पव २३।२४-२६

७ तस्माद्यज्ञात्सर्वैद्भुत ऋच सामानि जसिरे ।

एन्द्रानि जपिर तस्माद्यज्ञस्तमाद्जायत ॥ ऋ १०।१०।१९

×

×

×

यस्मात्सो-गानक्षन् धर्म्यस्मात्पाकवन् ।

सामानि परय लोमाग्यपवीऽगिरसो मुखम् ॥ अथर्व १०।१०।२०

प्याम पुसाकर, अग्नि हमें उष्णता देकर, वायु हमें जीवन या प्राण देकर और आकाश हमें अवकाश देकर सब तरहसे सुख प्रदान करता है। जब ये पांचों मूल हमें सुख देनेवाले हैं, तो उनसे बना हुआ विश्व हमारे लिए दुःखदायी कैसे हो सकता है ?

अतः यह विश्व मनुष्यको सुख प्रदान करनेवाला है। पर जब मानव इच्छाओंको अन्तिम ध्येय समझकर इनमें सर्वथा लित हो जाता है और अध्यात्मकी उपेक्षा कर देता है, तब वह दुःखी होजाता है। इसीलिए वेद कहता है—

तेन लक्ष्णेन भुञ्जीथाः

मा गृध्रः कस्य स्थिञ्जन्म् । यजु. ४०११

“हे मनुष्यो! इन सांसारिक भोगोंका त्यागभावसे भोग करो। कभी लालच मत करो। यह सब समाजका धन है।” त्यागभावसे किया हुआ कर्म कर्तव्यके लिए कभी भी दुःखका कारण नहीं बनता।

इस प्रकार वेदने दूसरे पक्ष निःश्रेयसपर भी अन्यधिक बल दिया है। अथर्ववेदमें इसीको मानवजीवनका अन्तिम लक्ष्य बताया है—

आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं

ब्रह्मचर्यसं मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

अथर्व. १२७१११

“हे देव ! मुझे आयु, प्राण, प्रजा, पशु, यज्ञ, धन और ब्रह्मतेज ये सब देकर अन्तमें ब्रह्मलोक (मोक्ष) भी प्राप्त कराओ।”

संसार और जीवनका उद्देश्य हमारा उत्तरोत्तर विक्राम है। उत्तरोत्तर विकासका ही नाम अमृतत्व है +। यही निःश्रेयस है x।

वैदिक संस्कृतिको दूसरी विशेषता है “प्रगतिशीलता”। यह संस्कृति अपने अर्थोंमें कभी संकुचित नहीं रही। वेदमें कई ऐसे शब्द हैं, जो वैदिककालमें किसी एक निश्चित अर्थके धोतक थे पर आज उनका अर्थ बहुत विस्तृत हो गया है।

उदाहरणार्थ— ‘यज्ञ’ शब्दको ही ले सकते हैं। वैदिककालमें इसका प्रयोग देवताओंके लिए किये जानेवाले अग्नि-होत्रादि कर्मके लिए ही होता था, पर बादमें अनेक अर्थोंमें

इसका प्रयोग होने लगा। इसी परिवर्तित अर्थको लेकर गीतामें वैदिक यज्ञोंके साथ साथ ज्ञानयज्ञ, तपोयज्ञ आदि यज्ञोंका भी वर्णन है। महर्षि दयानन्दने तो इसको और विस्तृत अर्थमें लेकर अपने आर्षोद्देश्यरत्नमालामें लिखा है— “दिव्य-व्यवहार और पदार्थविज्ञान जो कि जगत्के उपकारके लिए किया जाता है, उसको (भी) यज्ञ कहते हैं।”

इसी प्रकार पहले वेद शब्द केवल ऋगु, यजु, साम और अथर्व इनको ही कहा जाता था। पर कालान्तरमें ब्राह्मण और उपनिषदोंको भी वेद नामसे पुकारा जाने लगा। (मंत्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्)

वैदिक संस्कृतिकी तीमरी विशेषता है “असाम्प्रदायिकता।” वेद किसी विशेष जाति, या सम्प्रदायका धन नहीं है। उसका प्रकाश परमेश्वरने सम्पूर्ण मानवजातिके हितके लिए किया था। वेदके मंत्रसे भी हमारे कथनकी पुष्टि होती है—

यथेमां याचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।

ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ।

यजु. २६१२

“मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, आर्य और सेवक सभी मनुष्योंके हितके लिए इस कल्याणी वाणीका-वेदका-उपदेश करता हूँ।”

अन्य सम्प्रदायोंकी तरह वैदिकधर्म कभी यह नहीं कहता कि तुम हमारे धर्ममें दीक्षित हो जाओ, तभी तुम मोक्षपदके अधिकारी हो सकोगे। उसका तो यही कथन है कि कोई भी मनुष्य चाहे वह किसी जाति, सम्प्रदाय या मतका हो, उत्तम कर्म करके मोक्षपदको प्राप्त कर सकता है। इसीको अथर्वमें इस प्रकार कहा है—

प्रजापतेरावृते ब्रह्मणा वर्मणाहं

कश्यपस्य ज्योतिषा धर्षसा च ।

जरदृष्टिः शतवीर्यो विहायाः

सहन्नायुः सुष्ठतश्चरेयम् ॥ अथर्व. १०११२०

“मैं प्रजापतिके ज्ञानरूपी कश्चसे ढका हुआ तथा सूर्यके तेज और वचसे युक्त होकर वृद्धावस्थापर्यन्त त्रियाशील रह कर अनन्तकालतक उत्तम कर्म करता रहूँ।”

+ जीवा ज्योतिरशीमहि । (ऋ. ७।३।२१६) ;

यप्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।...तत्र मामृते वृधि (ऋ. ९।११२।११)

x भारतीय संस्कृतिका विकास— वैदिकधारा— डॉ. मंगलदेव शास्त्री, पृ. १०

● गीता ४।२५-३०, ३२

“हम प्रकार चिरकालसे विचार सर्वगता और परस्पर सम्पर्की भावनासे परिपूर्ण सम्प्रदायवाद् तद्भिभूत दार्शनिक साहित्य और जातिपातिक भेदभावसे उत्पन्नित भारतीय जनतामें एक जातीयताके नवीन जीवनका मंचार करनेके लिए एकमात्र प्रगतिशील तथा असांभ्रदायिक वैदिक संस्कृतिके आदर्शका ही आश्रय लिया जा सकता है।” ×

वैदिक संस्कृतिकी चौथी विशेषता है “ममत्वकी भावना।” वैदिक संस्कृति तो वह गंगा है, जो अज्ञात स्थलसे निकल कर अनेक छोटे-मोटे विचाररूपी नदियोंको अपने अन्दर समेटती हुई लोगोंको शान्ति प्रदान करती है। वैदिक संस्कृतिका मुख्य ध्येय है, लोगोंमें ममत्वकी भावना उत्पन्न कर जगत्में शान्ति स्थापित करना।

ममत्व भावनासे समाजको सगठित करना ही वेदका एक मात्र लक्ष्य है। जबतक समाजका सघटन नहीं होता, तब तक व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्वका उत्कर्ष आकाशगुण्यक समान है। प्रत्येक व्यक्ति समाजका एक आवश्यक अङ्ग है। जिस प्रकार शरीरके अंगोंकी एकामता उत्कृष्ट स्वास्थ्यका लक्षण है, उसी प्रकार समाजके व्यक्तियोंका ऐक्य स्वस्थ समाजका निदर्शक है। ऋग्वेदका पूरा सगठन-सूक्त इस महत्त्वपूर्ण शिक्षाको लोगोंके सामने प्रस्तुत करता है—

सं गच्छध्व सं वदध्व सं वो मनांसि जानताम् ।

देवाः भाग यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥

समानी वः आकृति समाना हृदयानि व ।

समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति ॥

ऋ १०१११२,४

“तुम सगठित होकर चलो, सगठित होकर बोले और तुम्हारे मन भी परस्पर अनुकूल हो। तुम्हारे सकल्प समान हों, तुम्हारे हृदय समान हों, तुम्हारे मन एक हो।”

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ यजु. ५।३४

“मैं सब प्राणियोंको मित्रकी दृष्टिसे देखूँ और सब प्राणी मुझे मित्रकी दृष्टिसे देखें।”

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपपद्यति ।

मर्त्यभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति ॥

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानत ।

तत्र को मोहः फ शोकः पृथक्त्वमनुपपद्यतः ॥

यजु ४०।६४

“जो गरि प्राणियोंको अपनी भावनाके समान ही देखना है व उन्हे उनी प्रकार जानना भी है तथा गरि प्राणियोंमें स्वयंको देखता है, वह कभी किसीमें भेदभाव नहीं करता।”

इसी प्रकार अन्वयय मन्त्रोंमें भी ममत्व-भावनाका उच्चारण आता है।

इस ममत्व-भावनाके फलस्वरूप ही हम अपनी अपनी सर्वगता साम्प्रदायिक भावनाओंको पृथक् रूपसे भारतके सम्मिलित महान् धर्मियोंमें, चाहे वे किसी सम्प्रदाय या जातिके बड़े जाते हों, ममत्वका, समादरका, श्रद्धाका अनुभव करेंगे। हमारा कर्तव्य है कि हम उनको उम वैदिक निष्ठापर गुने असांभ्रदायिक वातावरणमें लावें, जिससे उनके उपदेशाभ्युत्थनका लाभ समस्त देशको ही भयो, गरि संसारको हो।

वैदिक संस्कृतिकी पाचवी विशेषता है “अधि भारतीय-भावना।” वैदिकोंका प्रकाश सर्वप्रथम इसी भारत भूपर हुआ। अतः यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वैदिक संस्कृतिका उद्गमस्थल भी यही है। वैदिकोंमें अपनी मातृभूमिके प्रति जो उदात्त भावनायें प्रकट की गई हैं, वैसे अल्पत्र दुर्लभ हैं। अथर्ववेदका पूरा “पृथिवी-सूक्त” (१२।१) मातृभूमिके गुणोंको गाता है। वैदिक ऋषियोंका सारा प्रेम इस भारत भूपर उमड़ पड़ा है। वे उच्चस्वरसे घोषणा करते हैं—

माता भूमिः पुनोअहं पृथिव्याः ।

× × ×

वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ।

‘हे मातृभूमे! तू मेरी माता है, मैं तेरा पुत्र हूँ। अतः मैं सब प्रकारसे तुझे अपनी बलि देनेके लिए तत्पर हूँ।’

देशकी रक्षा अपने हर पुत्रसे बलिदानकी कामना करती है। मातृभूमिकी दृष्टिमें अमीर-गरीब, उच्च-नीच, कष्ट-गोरे, आस्तिक-नास्तिक सब एक समान हैं। सब उसका पुत्र हैं, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय, जाति या वर्णका हो। यह भारतीय भावना वैदिक संस्कृति द्वारा वैदिक ऋषियोंने लोगोंमें भरनेका प्रयत्न किया। वैदिक संस्कृतिकी अखिल भारतीय भावनाका अभिप्राय यही है कि हम साम्प्रदायिक संघर्षकी समस्याका समाधान वैदिक संस्कृतिकी दृष्टिसे कर सकें। उनमें एकता स्थापित कर सकें।

इसी एकता-स्थापनकी दृष्टिसे हमारे पूर्वजोंने तीर्थयात्रा की कल्पना की थी। शकराचार्यजीने भारतके चारों कोनपर चार पीठ इसीलिए स्थापित किए थे कि उनसे शिष्य भार

तकी धारो फोनोमे सुरक्षा कर सके। प्राचीन माहिलोंमें तीर्थयात्रामें पैदल यात्राका बड़ा महत्व वर्णित है। वह भी इसीलिए कि सब भारतमें एकता स्थापित हो। रामेश्वरमें कैलास या जगन्नाथपुरीसे ट्रारिका जानेवाले पदवीर्थयात्रीको पूरा भारत पार करना पड़ता था। इस प्रकार वह अनेक प्रान्तोंके निवासियोंमें अपना मर्मकें साधकर चलाता था। और उनमें आपसमें प्रेम और स्नेह भाव बढ़ता था। इस प्रकार सहज ही एकता स्थापित हो जाती थी। इसको हमारे देशके प्राचीन नेताओंने अच्छी तरह अनुभव किया था। इसी लिए हमारे धार्मिक तीर्थस्थान देशके कोने-कोनेमें नियत किए गए थे। सम्प्रदायोंमें परस्पर समानता और सम्मानकी भावना स्थापित करनेसे, ऐसे जातीय पत्रों और महापुरुषोंकी जयन्तियोंकी स्थापनामें उनमें स्नेह मर्मकें स्थापित करनेमें ही एकता मित्र हो सकती है।

वैदिक संस्कृति-परम्परामें वेदकी प्रतिष्ठा

वैदिक संस्कृतिका उद्गम वेदसे ही हुआ है। वही सभसे परम प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। अन्य स्मृति आदिकी प्रामाणिकता वेदोंकी अनुकूलतापर ही निर्भर है। यदि वे वचन वेदवचनोंसे अनुकूल हैं, तो तो प्रामाणिक हैं अन्यथा नहीं। पर वेदवचनोंकी प्रामाणिकता परस्परनेके लिए स्वयं वेद ही प्रमाण हैं। भारतकी सारी परम्परा वेदको अपनी संस्कृतिके उद्गम स्थानके रूपमें देखती है। वेदोत्तर प्रयोगोंमें इन वेदोंका वर्णन बहुत बड़े पैमाने पर किया है। हम नियमित कविचय ग्रंथोंके वेद नियमक वचन उद्धृत करना अप्रामाणिक न होगा।

नक्षत्रप्राक्षणमें—

'ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद उम महान पुराण नि धारक समान हैं। -।'

'उम परमात्माने धम और तपः द्वारा प्रयी विद्याको प्रकट किया।'

नक्षत्रप्राक्षण अनुसार वेदोंमें सब विद्यायें मन्त्र हैं—
तद्यन्तस्यै प्रयी सा विद्या। न मा ११११११११
तैत्तिरीय प्राक्षणमें—
अयं वै सर्वा विद्या। तै मा ३११०१११११
सारी विद्यायें वेदमें हैं।

सब मन्त्र विद्यायें वेदोंमें निहित हैं।
ऋक्सामे वै स्वाग्म्यतानुन्तो। तै ३११११११

ऋग्वेद और सामवेद मरम्बनीके धरने हैं। 'विम प्रकार धरनेसे पानीकी धारायें निकलकर प्यायें और मन्त्रसंग्रह प्राणि योंकी प्याय सुपाकर उन्हें प्राणि प्रदान करती है, उसी प्रकार वेदमें ज्ञानकी धारायें निकलकर दुर्मी मनुष्योंको प्राणि प्रदान करती है। +।

वेद ही उम परमाण्वारी जाननेके साधन हैं। 'वेदोंकी न जाननेवाला उस महानको नहीं जान सकता' ×।

इसी प्रकार उपनिषदोंमें भी वेदोंका बड़ा महत्व बताया है। ईशोपनिषद् तो पञ्चवेदका ३० वा अध्याय है, जिसमें अध्यात्मज्ञानका उपदेश बड़े सुन्दर शब्दोंमें दिया है। मनुस्मृतिमें वेदोंके नियमों का बड़ा है—

येदोऽस्तिलो धर्ममूलम् (२१९)
मयं प्रानमयो हि मः (२१०)

चातुरण्ये प्रयो लोकाश्चान्यारव्याध्रमा- पृथक्।
भूते मय्ये भविष्य च मय्ये वेदाग्रमिष्यति ॥
(१०१९०)

वेदाभ्यामो हि विप्रम्य तपः परमिहोच्यते ॥
(१११९९)

योऽनर्थात्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते धमम्।
न जीवन्नेत्र शूद्रत्यमानु गच्छति स्वान्ययः ॥
(२११९८)

अथां वेद धर्मका मूल है और वह सब ज्ञानोंमें सुख है। चार पदों, तीन शोक, चार भाषण, भूत, वर्णमान,

ॐ निष्कर्षमिष्येन स्वयं प्रामाण्यम्- मां. सू. ५।५१- परमात्माकी निष्कर्षमिष्येन प्रकट होनेके कारण वेद मन्त्र प्रमाण हैं।

०। (१) एवं अरे अन्य महतो भूतस्य नि धर्मितम्।

एतद् यद्वेदो, यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदोऽथर्ववेदः ॥ न मा ११११११११

(२) न- धारण करनेवाले प्रकृत प्रथममार्गके प्रदीपके विद्यायें। न. मा ११११११११

+ वेदका राष्ट्रीय जीवन- नियमक वेदवाच्यवृत्ति। पृ ३

× ऋग्वेदविष्णुवेदके बृहस्पति। तै ३१११११११

भविष्य सब कुछ वेदसे ही सिद्ध होता है। वेदाध्ययन ब्राह्मणका सर्वोत्तम तप है। जो ब्राह्मण वेदोंको छोड़कर अन्य वेदोत्तर ग्रंथोंके अध्ययनमें श्रम करता है, वह शीघ्र कुल सहित शूद्र बन जाता है।

वेद शब्द 'विद् ज्ञाने' धातुसे सिद्ध हुआ है, जिसका अर्थ है ज्ञान। प्राचीनकालमें इसी अर्थमें वेद शब्दका प्रयोग होता था। पर कालान्तरमें जाकर उसका अर्थ संकुचित हो गया और आपस्तम्ब सूत्रके कालमें केवल मंत्र व ब्राह्मण भागका ही नाम वेद रह गया • और आगे चलकर केवल संहिता या मंत्र भागका ही नाम वेद रह गया। इस मतका पोषण महर्षि दयानन्दने अपने ग्रंथोंमें किया है।

चेकोस्लोवाकिया देशकी भाषामें आज भी विज्ञान या सायन्सको 'वेद' कहते हैं। +

अन्तिम मतके अनुसार ऋग्, यजु, साम और अथर्व ये चार ही संहिता या वेद हैं।

वेदत्रयी

मनुस्मृति, गीता आदि ग्रंथोंमें त्रयी विद्याका भी उल्लेख है X इसी आधार पर कई लोगोंका यह मत है कि प्रथम ऋग्, यजु और साम ये तीन ही वेद थे और अथर्व बादमें वेदोंमें शामिल किया गया। कतिपय विचारक उसे वेद ही नहीं मानते —। पर हमारा मत यह है कि जहाँ जहाँ चार वेदोंका उल्लेख है, वहाँ उसका अभिप्राय चार वेद ग्रंथोंसे है और जहाँ त्रयीका उल्लेख है वहाँ उसका अभिप्राय है ऋग्, यजु और साम। मीमांसा सूत्रोंमें इस समस्याका समाधान प्रस्तुत किया है—

ऋग् यजुर्वेदोऽथवा पाद्व्यवस्था
गीतियु सामाख्या

शेषे यजुः शब्दः (मीमांसा दर्शन २।१।३५-३७)
'अर्थके कारण पादबद्ध व्यवस्थावाले मंत्र ऋक् हैं। गायन किए जानेवाले मंत्र साम हैं। और बाकी बचा हुआ ऋग् भाग यजु है।' इस प्रकार अथर्ववेदके मंत्र पादबद्ध

होनेके कारण अथर्ववेदका अन्तर्भाव ऋग्वेदमें ही हो जाता है। अतः वेदोंके मंत्र चार होनेपर भी उनका समावेश (१) ऋग् (ऋग्वेद, अथर्ववेद), (२) यजु (यजुर्वेद) और (३) साम (सामवेद) इन तीनोंमें हो जाता है। इसलिए वेदत्रयी या वेद चतुष्टयमें मूलतः कोई भेद न होकर केवल ऋक् ही भेद है।

ऋग्वेदसंहिता

यह संहिता सबसे बड़ी और प्राचीन है। इससे अधिक प्राचीन ग्रंथ किसी भी पुस्तकालयमें नहीं मिलता। महाभाष्यके अनुसार इस वेदकी इक्कीस शाखायें थीं • पर आज उनमें केवल पांच शाखायें ही उपलब्ध हैं। आजकी प्रचलित ऋग्वेद संहिता शाकल शाखासे सम्बन्धित है।

इस संहितामें दस मण्डल हैं। एक मण्डलमें अनेक सूक्तोंका संग्रह है। इस संहिताके मण्डल, सूक्त और मंत्रोंकी तालिका इस प्रकार है—

मण्डल	सूक्तसंख्या	मंत्रसंख्या
प्रथम मण्डल	१९१	२००६
द्वितीय मण्डल	४३	४२९
तृतीय मण्डल	६२	६१७
चतुर्थ मण्डल	५८	५८९
पंचम मण्डल	८७	७२७
षष्ठ मण्डल	७५	७६५
सप्तम मण्डल	१०४	८४१
अष्टम मण्डल	९२	१६३६
नवम मण्डल	११४	११०८
दशम मण्डल	१९१	१७५४
	१०१७	१०४७२

जिससे स्तुतिकी जाए उसे ऋक् कहते हैं। • इस संहितामें प्रत्येक सूक्तके पहले ऋषि, देवता और छन्दका नामोल्लेख है। इनमें 'ऋषि' शब्दके नियमोंमें विद्वानोंका मतभेद है।

• मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् (आपस्तम्बयज्ञपरिभाषा सूत्र ३१)

+ भारतीय संस्कृतिका विकास— डॉ. मंगलदेव शास्त्री, पृ. ५६- फुटनोट २

X त्रयी वै विद्या ऋचो यजुषि सामानि- द. प्रा. ४।१।७।१

श्रयं ब्रह्म सनातनम् ... ऋग्यजुः सामलक्षणम्- मनु. १।२३

— न्यायमंजरी- प्रमाण प्रकरण ।

छ एकविंशतिधा बाह्यष्टयम्— महाभाष्य पस्पशाग्निहक ।

• ऋषिः ईसन्ति— निरुक्त १३।०

कुछका मत यह है कि ये ऋषि केवल मन्त्रद्रष्टा या उन उन मन्त्रोंका साक्षात्कार करनेवाले थे, (ऋषयो मन्त्रद्रष्टार) • तथा अन्योका मत है कि ये ऋषि उन उन सूक्तो या मन्त्रोंके रचयिता थे । • इस विषयमें मतभेद चाहे कुछ हो, पर यह निर्विवाद सत्य है कि हर सूक्तमें ऋषिका महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसी प्रकार जिस सूक्तमें जिसकी स्तुति की गई है, वह उस सूक्तका देवता है । और प्रत्येक मन्त्र छन्दोसे नियंत्रित है । इस प्रकार वेदोमें ऋषि, देवता और छन्द अत्यावश्यक तत्व हैं ।

यजुर्वेद

यह गद्यभाग है । इसमें ऋषि कुप सभी मन्त्रोंको गद्यकी तरहसे बोला जाता है । महाभाष्यमें इसकी १०१ शाखाओंका उल्लेख मिलता है • पर आज केवल इसकी पाच शाखायें ही उपलब्ध हैं ।

इसके शुक्ल और कृष्ण ये दो भेद हैं । माध्यन्दिन और काण्व ये दो शुक्लकी और तैत्तिरीय, मैत्रायणी और कठ ये तीन कृष्ण यजुर्वेदकी सहिताय हैं, इनमें कृष्णको प्राचीन और शुक्लको अर्वाचीन माना जाता है । लोगोंका मत है कि शुक्लमें मन्त्र भाग है और कृष्णमें मन्त्रोंके साथ-साथ ब्राह्मण भाग भी सम्मिलित होगए है । कृष्ण यजुर्वेदकी शाखाओंका विस्तार प्रायः दक्षिण भारतमें तथा शुक्ल यजुर्वेदका उत्तर भारतमें है । शुक्लमें भी काण्व-सहिताकी अपेक्षा माध्यन्दिन-सहिताका ज्यादा प्रचार है । प्रायः सारा उत्तर भारत माध्यन्दिन शाखाकी वाजसनेयी सहिताकी प्रामाणिकता प्रदान करता है ।

वाजसनेयी सहितामें ४० अध्याय और १९७५ मन्त्र या कण्डिकायें हैं ।

सामवेद

इसकी षण्क शाखाय हैं । चरणप्यूढमें कहा है—

१ तत्र सामवेदस्य शाखासहस्रमासीत् ।

* राणयणीया, सात्यमुट्या, कालाप, महाकालाप, कौथुमा, लागलिकाश्चेति ।

• ऋषिर्दशनात् । स्तोमान्दशैल्यौपमन्यव - निरुक्त २।१।१

• यस्य वाक्य स ऋषि — ऋक्सर्वानुक्रमणी १।२।४

• एकसतमध्वर्युंशाला — महाभाष्य, परपञ्चान्दिक

+ सहस्रवर्त्मा सामवेद — महाभाष्य, परपञ्चान्दिक

× नवधाथर्वणो वेद — महाभाष्य, परपञ्चान्दिक

कौथुमाना षड्भेदा. भवन्ति-सारायणीया, वातरायणीया, वैधृता, प्राचीना, तैजसा, आनिष्टकाश्चेति ।

महाभाष्यमें भी इसके शाखा सहस्रका उल्लेख है । + 'साम-तर्पण-विधि' में सामवेदकी तरह शाखायें बताई हैं । उनके नामोंकी गणना भी की है, जो इस प्रकार है—

१ राणायण, २ शाटमनुज्य, ३ व्यास, ४ भागुरी, ५ औलुण्डी, ६ गौलुलवी, ७ भानुमान-औपमन्यव, ८ कारादि, ९ मशक गार्ग्य, १० वार्पागन्य, ११ कुथुम, १२ शालिहोत्र और १३ जैमिनी । सामवेदकी इन शाखाओंमें आज केवल राणायणीय, कौथुमी और जैमिनी ये तीन ही उपलब्ध हैं ।

इस वेदके पूर्वाचिक और उत्तराचिक दो भाग हैं । और मन्त्र कुल मिलाकर १८७५ हैं ।

अथर्ववेद

महाभाष्यमें इसकी नौ शाखाओंका उल्लेख है × । पर अज शौनक और पैरलाद ये दो ही सहिताय मिलती हैं और उनमें भी शौनक सहिताका ही आज प्रचलन अधिक है ।

अथर्ववेदमें २० काण्ड, ७३० सूक्त और ६००० मन्त्र हैं । इनमें १९०० से अधिक मन्त्र स्पष्ट ऋग्वेदके ही हैं । इस वेदके २० वें काण्डके अधिकांश मन्त्र ऋग्वेदके ही हैं ।

संहिताओंका विषय व क्रम

ऋग् शब्द स्तुत्यर्थक 'ऋच' धातुसे बना है । अतः ऋच इच्छ सिद्ध करता है कि ऋग्वेदमें देवताओंकी स्तुतियाय हैं । ये देव पृथिवी, अग्निरिक्ष और द्यौ इन तीन स्थानोंमें रहते हैं । इसका मुख्य विषय ज्ञान है ।

यजुर्वेदका विषय है कर्म । इसके अध्यायोंका क्रम भी कर्मकाण्डकी क्रियाक अनुसार ही रखा गया है । प्रथम अध्यायसे द्वितीय अध्यायके २८ वें मन्त्रतक दशैर्षण्मास यज्ञका वर्णन है । इसी प्रकार ३८ वें अध्यायतक विभिन्न यज्ञोंके सम्बन्धमें मन्त्र विनियोगका उल्लेख है । ३९ वें अध्याय

यमें सबसे अन्तिम यज्ञ 'अंत्येष्टि' है। पर अन्तके ४० ईं अध्यायका सम्बन्ध यज्ञसे न होकर ज्ञानसे है।

सामवेदका विषय उपासना है। इसमें गायनोंसे देवताओंके अर्चन करनेकी विधि बताई है।

अथर्ववेदका विषय विज्ञान है। इसमें जल चिकित्सा, अग्नि चिकित्सा, आदि विषयोंका भरपूर वर्णन है।

ऋग्वेदके अध्ययनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ऋग्वेदके प्रथम, नवम और दशम मण्डलको छोड़कर बाकीके मण्डल ऋषिवाचक संभ्रूत हैं। एक एक मण्डल एक एक ऋषि पर है। जैसे सम्पूर्ण द्वितीय मण्डलका ऋषि 'शुक्लसंभ्रूत' है, तीसरेका 'गायी विश्वामित्र' है और चतुर्थका 'चामदेव गौतम' है। प्रथम और दशम मण्डलमें अनेक ऋषि हैं। केवल नवम मण्डल ऐसा है, जो देवता पर आधारित है। इस ११४ सूक्तवाले सम्पूर्ण मण्डलका देवता 'पवमान सोम' है। इसी प्रकार अथर्ववेदमें भी कई काण्ड ऋषिवाचक और कई देवतावाचक संभ्रूत हैं। सामवेदका पूर्वाधिक भाग देवतावाचक है। उसमें काण्डोंका नाम भी देवताओंके आधार पर है। जैसे आग्नेय काण्डमें केवल अग्नि देवताका वर्णन है। ऐन्द्र काण्डमें इन्द्र संबंधी स्तुतियाँ हैं। इसी प्रकार अन्य देवताओंका भी वर्णन है। इस प्रकार हमने देखा कि वेदोंका संग्रह दो प्रकारसे ही सकता है, (१) ऋषि अनुसार और (२) देवतानुसार।

इन वेदोंमें हमने यह भी देखा कि सभी देवताओंके मंत्र बिल्लेरे पड़े हैं। जैसे अग्निका १ सूक्त प्रथम मण्डलका प्रथम सूक्त है, फिर अग्निका दूसरा सूक्त इसी मण्डलका २६-वाँ सूक्त है। बाँचेके २४ सूक्तोंमें अन्यान्य देवताओंका वर्णन है। इसी प्रकार दूसरे देवताओंके सूक्त भी क्रमसे पड़े हैं। इसके बलवाला दूसरे वेदोंमें उन्हीं देवताओंके सूक्त आवे हैं, जिनके ऋग्वेदमें आए हैं। इससे होवा यह है कि किसी एक देवतापर अन्वेषण करनेवाले विद्वान्को चारों वेदोंको देखना पड़ता है और इसके लिये मंत्रानुक्रमणिका, पदानुक्रमणिका ऐसे अनेक ग्रंथोंकी आवश्यकता होती है, इसके साथ ही उसकी शक्ति और समयसा भी बड़ा व्यय होता है। इन सब कारणोंको ध्यानमें रखनेसे हमारे मनमें यह विचार आया कि यदि एक एक देवताके चारों वेदोंमें बिल्लेरे हुए सूक्तोंको एक स्थानपर के आया जाए, तो अध्ययनकर्ताकी बहुत सुविधा हो सकती है। इस प्रकार देवतावाचक मंत्र संग्रहोंका कल्पना हमारे मस्तिष्कमें उत्पन्न हुई और उस कल्पनाको कार्यरूपमें परिणत करने एवं देवताके अनुसार

मंत्र संग्रहोंके होनेके कारण उस ग्रंथका नाम 'द्वयत-संहिता' रखनेका हमने निश्चय किया।

द्वयतसंहिताकी आवश्यकता

जब मनुष्य जगत् पर अपनी दृष्टि डालता है, तो उसे सर्वप्रथम देवताओंके दर्शन होते हैं, जैसे पृथिवी, अग्नि, वायु, मेघ, नदिवाँ, समुद्र, पर्वत, अन्तरिक्ष, आकाश आदि। प्रत्येक मनुष्यको इन देवताओंका दर्शन होता है। ये देवता पृथिवी, अन्तरिक्ष और धी इन तीनों स्थानोंमें रहते हैं।

इनमें पृथिवी, जल, पर्वत, अग्नि आदि देवता प्रत्यक्ष हैं और वायु आदि कतिपय अदृश्य हैं। पर इन अदृश्य देवताओंके अस्तित्वको भी मनुष्य जान सकता है। इस प्रकार ये देवगण हर मनुष्यके अनुभवमें अन्तरेके कारण प्रत्यक्ष हैं, काल्पनिक नहीं।

इन देवताओंके बिना मानवजीवनका अस्तित्व ही असम्भव है। यदि वायु न हो, तो प्राणके अभावमें इस भूगोलसे प्राणियोंका अस्तित्व ही न रहे। सूर्य और चन्द्रके अभावमें सारी वनस्पतियाँ ही समाप्त हो जायें। पृथिवी सबको रहनेके लिये स्थान देती है, जल सबको प्यास बुझाता है, आकाश सबको आवागमनकी सुविधा देता है। इस प्रकार सभी देवगण हमारी सहायता करते हैं। जिससे कि हम जीवित रहते और अपना कार्य करते हैं। हमारे जीवनके आनन्दसय होनेका सारा श्रेय इन्हीं देवोंको है। इनका और हमारे जीवनका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानव जब इन देवोंसे विरोध करता है और इनके द्वारा बताये गए अनुकूल मार्गपर नहीं चलता, तो यह दुःखी होता है। अतः हमारे जीवनकी दुःप्रमय और सुखमय स्थिति इन्हीं देवताओंपर निर्भर करती है।

परमात्मा, जीवन्मा, प्रकृति, अग्नि, इन्द्र आदि अनेक देवता इस विश्वमें हैं, जो चारों ओर रहकर अपने तेजसे सबका कल्याण करते हैं। ये देवता जैसे निश्चल हैं, वैसे ही प्राणीके शरीरमें भी हैं। मनुष्यशरीरके प्रत्येक अंगमें किसी न किसी देवताका निवास अवश्य है। इस विषयमें अथर्ववेदका कथन इस प्रकार है—

यदा त्वथा व्यवृणत् पिता त्वष्टर्य उत्तरः ।

गृहं कृत्या मर्त्यं देवाः पुरुषमाविद्यात् ॥

(अथर्व. १११८)

'जब त्वष्टा ने इस शरीरका निर्माण किया तो देवोंने इस मर्त्य शरीरको अपना घर बनाया और इसमें आकर वे रहने लगे।' इसी प्रकार इस शरीरमें 'स्वप्न, निद्रा, सुषुप्ता,

सुरेकर्म, बल, ओज, ध्रुवा, तृष्णा, श्रद्धा, अश्रद्धा, विद्या, अनिद्या आदि सभीने प्रवेग किया। इस शरीरमें प्रविष्ट होकर देवोंने यहाँ यज्ञ करना आरंभ किया। उसमें इन्द्रियां समिधायें बनीं और वीर्य या रेतस् भी बना। इसी शरीरमें ब्रह्म भी प्रविष्ट हुआ। इसीलिए इस शरीरको विद्वान् 'ब्रह्म' भी कहते हैं। अन्तमें उपसंहार करते हुए अथर्ववेदके ऋषिने एक बड़ी सुन्दर उपमा दी है—

सर्वा ह्यस्मिन्देवता
गाथो गोष्ठ इवास्ते।

(अथर्व. ११।८।३२)

“ निम्न प्रकार गाथें बाढेंमें रहती हैं, उसी प्रकार सब देव इस शरीरमें स्थित हैं। गाथें बाढेंमें सुरक्षित रहती हैं और वहाँ उनका पोषण होता है। फिर जानकार गोपाल उनको दूधता है और दूधसे पुष्ट होता है। इसी प्रकार इस शरीरमें भी देवता सुरक्षित हैं और विद्वान् इन देवताओंको दूधकर उनसे ओज, तेज आदि प्राप्त कर पुष्ट होते हैं। इस शरीरमें स्थित जीवात्मा परमात्माका ही अंश है। गीतामें श्रीकृष्णने इसका प्रतिपादन किया है—

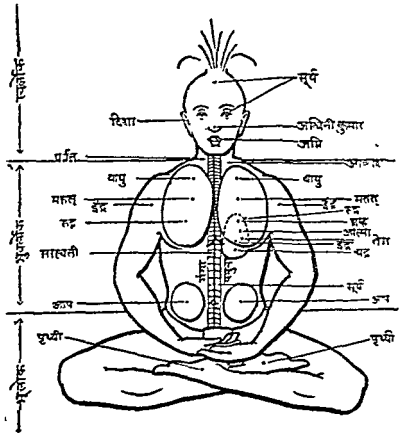
ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

“ मेरा (परमात्माका) ही अंश इस शरीरमें जीवके रूपमें स्थित है। परमात्मा और आत्माके हुन्नी सम्बन्धको दर्शनेमें अग्नि और चिन्मार्गीक दृष्टान्तसे स्पष्ट किया है। अग्नि और उसके स्फुलिंगमें परिमाणकी दृष्टिसे भेद होनेपर भी तत्त्वतः कोई भेद नहीं है। उसी प्रकार परमात्मा और आत्मामें भी तत्त्वतः कोई भेद नहीं है।

अध्यात्म, अधिभूत, और अधिदैवत क्षेत्रमें
देवताओंका स्थान

अध्यात्मका अर्थ उपनिषद्में शरीर किया है (अध्यात्ममें शरीरम्)। इस शरीरमें कौनसा देवता किस अंगमें रहता है, वह निम्न तालिकासे स्पष्ट हो सकता है—

शरीरमें	देवताका अंश
आँसुमें	सूर्यका अंश
नाकमें	वायुका अंश



इस चित्रमें यह दिव्याया है कि किस देवताका अंश शरीरके किस अंगमें रहता है।

मुखमें	अग्निका अंश
छातीमें	चन्द्रका अंश
मुजाओंमें	इन्द्रका अंश
पैरोंमें	पृथिवीका अंश

इस प्रकार सभी इन्द्रियोंमें देवताओंके अंश विद्यमान हैं। इसका और अधिक स्पष्टीकरण ऊपरके चित्रसे हो सकता है।

आधिमातृक क्षेत्रमें

अधिभूतका अर्थ है समाज। इस मानव समाजमें भी देव विभिन्न रूपोंमें स्थित हैं। समाजका भी एक शरीर है जो सर्वदा कार्यन्वय रहता है। कौनसा देवता समाजमें किस रूपमें है, यह निम्न कोष्टकसे स्पष्ट हो सकता है—

विश्वमें	समाजमें
अग्नि	वक्ता, ज्ञानी
इन्द्र	क्षत्रिय
ऋषु	कारिगर
पृथिवी	श्रम

इस प्रकार सभी देव समाजमें भी विभिन्न रूपोंमें विद्यमान हैं।

आधिदैविक क्षेत्रमें तो देव प्रत्यक्ष ही हैं। सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देव आधिदैविकक्षेत्रमें प्रत्यक्षतया कार्य कर ही रहे हैं। इस प्रकार तीनों क्षेत्रोंमें इन देवोंका कार्य चल रहा है। इन तीनों क्षेत्रोंमें कार्य करनेवाले देवोंका संकलन इस प्रकार किया जा सकता है—

अध्यात्ममें	अधिभूतमें	अधिदैवतमें
वाणी	वक्ता	अग्नि
शीर्ष	शूर	इन्द्र
युद्धेच्छा	सैनिक	मरुत्
प्राण	प्राणी	वायु
कारीगरी	कारीगर	त्वष्टा
ज्ञान	ज्ञानी	ब्रह्मणस्पति
पाँव	शूद्र	पृथिवी
नाभियाँ	नदियाँ	आपः, जलप्रवाह

इस प्रकार व्यक्तियोंमें गुण रूपसे, समाज और राष्ट्रमें गुणी रूपसे और विश्वमें देवताके रूपसे ये देव रहते हैं।

विश्व-एक विराट् शरीर

वेदोंमें विश्वका वर्णन एक शरीरके रूपमें है। वह एक विराट् शरीर है। स्पष्टिक-शरीरमें जिस प्रकार भारमाका स्थान प्रमुख है, उसी तरह इस विराट्-शरीरमें परमात्मा मुख्य है। उसके भी आँख, नाक आदि अंग हैं। अथर्ववेदमें इस विराट् शरीरका वर्णन इस प्रकार है—

यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम् ।

दिव्यं यश्चक्रे मूर्धानि तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

यस्य सूर्यश्चक्षुः चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।

अग्नि यश्चक्रे आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

यस्य घातः प्राणापानी चक्षुरंगिरसोऽभयन् ।

दिशो यश्चक्रेः प्रश्नानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

(अथर्व. १०।३२-३४)

“ भूमि तिस्रह पैर, अन्तरिक्ष पेट और घौं सिर है, उम महात् ब्रह्मको नमस्कार है। सूर्य और चन्द्र तिसकी आँखें हैं, अग्नि तिसका मुख है, उस ज्येष्ठ ब्रह्मको नमस्कार है। वायु तिसके प्राण और अघान हैं, अंगिरस् तिसकी नाँसे हैं तथा दिशाँयें तिसके कान हैं उस ज्येष्ठ ब्रह्मको नमस्कार है ” ।

इसी प्रकार इस विराट् शरीरके सहस्रों मस्तकका भी वेदोंमें वर्णन है—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

स भूमिं सवेतो वृत्वाऽत्यात्तिष्ठद्दशांगुलम् ॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।

उतामृतत्वस्येशानो यदत्रेनाति रोहति ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।

उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षुः सूर्यो अजायत ।

मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णां घौः समवर्तत ।

पद्भ्यां भूमिः दिशः श्रोत्रात्

तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥

(ऋ. १०।१०।१, २, १२, १४)

‘ हजारों सिर, हजारो आँख और हजारों पैरवाला एक विराट् पुरुष इस भूमिको चारों ओर व्याप्त किए हुए है। यहां जो कुछ हो चुका है, जो है और आगे जो भी होनेवाला है, वह सब पुरुष ही है। ब्राह्मण इस विराट् पुरुषके मुख, क्षत्रिय बाहू, वैश्य दोनो जाँचें और शूद्र पैर है। इस विराट् पुरुषके मनसे चन्द्रमा, आँखसे सूर्य, मुखसे इन्द्र और अग्नि और प्राणसे वायु प्रकट हुआ। नाभिसे अन्तरिक्ष, सिरसे घौं, पैरोंसे भूमि और कानसे दिशाँयें उत्पन्न हुईं ।’

गीताके ११ वें अध्यायमें इस विराट् पुरुषका बड़े विस्तारसे वर्णन है। श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुनको अपने विराट् स्वरूप दिखानेका जद्दाँ वर्णन है, वहाँ उसका अभिप्राय इस विश्वके विराट् शरीरसे है। पुराणोंमें भी इस विराट् पुरुषका वर्णन है।

यहां एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि जब वेदोंमें परमात्माका वर्णन ‘ अकार्यं, अघणं, अस्नाघिरं ’ (यज्ञ. ४०।६) शरीररहित, जस्म आदि शारीरिक व्याधियोंसे रहित, नसनादियोंके बंधनसे रहित, इस प्रकार आया है, तो उसीके शरीरका वर्णन करना क्या यह बात सिद्ध नहीं करता कि वेद त्रिदश्यादि दोषोंसे युक्त है। इस शंकाका समाधान इस तरह हो सकता है कि वास्तवमें परमात्मा अशरीरी ही है, इसलिए उसके विश्वशरीरका उपरोक्त वर्णन अलंकाररूप ही समझना चाहिए। जिस प्रकार निराकार जीवात्माको भी शरीरी अर्थात् शरीरसे युक्त कहा गया है, उसी प्रकार यहां परमात्माके विषयमें भी समझना चाहिए।

इस प्रकार इन देवताओंका जब हमने आधिदैविक अर्चन किया, तब हमारे सामने एक बड़ा रहस्य खुला, कि यह विश्व वस्तुतः एक महान् राज्य है, जिसमें विभिन्न खातों के मंत्रीगण अपना अपना विभाग सम्हाले हुए हैं। ये अपना कार्य बड़ी दक्षता एवं सावधानीके साथ करते हैं। कोई किसी विभागमें हस्तक्षेप नहीं करता। किसी प्रजातंत्र राज्यकी जो स्थिति होती है, ठीक वही स्थिति इस विश्व-राज्यमें है। हम राज्यमें भी विभिन्न देवताओंने विभिन्न विभाग सम्हाल रक्खे हैं। इस सूत्रके आधार पर जब हमने इन देवताओंका और इस विश्वराज्यका और गहरा अध्ययन किया, तो विश्वराज्यके मंत्रिमण्डलकी जो कल्पना साकार हुई, वह इस प्रकार थी—

- १ परब्रह्म— विश्वराज्यके राष्ट्रपति।
- २ परमात्मा— उपराष्ट्रपति।
- ३ अदितिः— (प्रकृति, देवमाता)— विश्वराज्यके मंत्री एवं उपमंत्रियोंको निर्माण करनेवाली एक आदिशक्ति।

ध्येय

- १ पुरुषः— विराट् पुरुष, समान पुरुष और भ्यक्ति पुरुष इन तीनोंमें शान्ति स्थापना ही मुख्य ध्येय है।

संसद ध्यक्ष

- १ सदस्यस्वपतिः— विधान सभाके अध्यक्ष।
- २ क्षेत्रपतिः— विधान सभाके उपाध्यक्ष और लघु समितिके अध्यक्ष।

मंत्रिमण्डल

१ शिक्षामंत्रालय

- १ जातयेदाः अग्निः— शिक्षा मंत्री।
- २ ब्रह्मणस्पतिः— उपशिक्षामंत्री।
- ३ गृहस्पतिः— उपशिक्षामंत्री या शिक्षा-मन्त्रिण।

रक्षा-मंत्रालय

- ४ इन्द्रः— रक्षामंत्री।
- ५ उपेन्द्रः— उपरक्षामंत्री।
- ६ रुद्रः— सेनाध्यक्ष।
- ७ मरुतः— मैरिक।

स्वास्थ्यमंत्रालय

- ८ अभियन्ता— स्वास्थ्यमंत्री (एक वाक्कर्म या शल्य चिकित्सामें प्रवीण और दूसरा औषधि चिकित्सामें प्रवीण)।

- ९ औषधिः— औषधियोंका व्यवस्थापक।
- १० सोमः— औषधियोंका राजा।
- ११ अन्नम्— उत्तम खानपानकी व्यवस्था करनेवाला।
- १२ गौः— राज्यमें उत्तम दूधकी व्यवस्था करनेवाला।

साधमंत्रालय

- १३ पूषा— साधमंत्री।
- १४ सूर्यः— शोधमंत्री।
- १५ सविता—
- १६ आदित्यः—

अर्थमंत्रालय

- १७ मगः— अर्थमंत्री।

उद्योगमंत्रालय

- १८ विश्वकर्मा— उद्योगमंत्री।
- १९ वास्तोष्पतिः— गृहनिर्माण-मंत्री।
- २० त्वष्टा— शस्त्रास्त्रनिर्माणमंत्री।
- २१ क्रभुः— कुटीरउद्योग-मंत्री।

जलयान-मंत्रालय

- २२ वरुणः— यानमंत्री।
- २३ चन्द्रमा— मानव-समाधानमंत्री।
- २४ पर्जन्यः— हृषिमंत्री।
- २५ आपः—
- २६ नद्यः—

जीवन-मंत्रालय

- २७ वायुः— जीवनमंत्री।

प्रकाश-मंत्रालय

- २८ विद्युत्— प्रकाशमंत्री।

स्त्री-मंत्रालय

- २९ उषा— बालिका संरक्षणमंत्रीणी।

बाल-मंत्रालय

- ३० वेनः— बाल संरक्षणमंत्री।

गुप्तचर-मंत्रालय

- ३१ कः— गुप्तचरमंत्री।

वाहन-मंत्रालय

- ३२ अश्वः— वाहन व मंचारमंत्री।

राष्ट्रगीत

- ३३ पृथिवी सूक्तः—

इस प्रकार सभ देवोंका विभाग है। यह विभाग हमने उन उन देवताओंके गुणोंके आधारपर किया है। दिग्दर्शन मात्रके लिए यहाँ कुछ प्रमाण देते हैं—

ज्येष्ठ ब्रह्म

यह विश्वराज्यका राष्ट्रपति है। जिस प्रकार किसी प्रजातंत्र राज्यमें राष्ट्रपतिके पास नाममात्रक अधिकार होते हैं, उसी प्रकार यह निर्विकार द्रष्टा है। पर इसका सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल पर अकुन रहता है। इसका वर्णन वेदोंमें इस प्रकार है—

यस्मिन्भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता ।
यनाग्निदचन्द्रमा सूर्यौ वातस्तिष्ठन्त्यार्षिताः
स्कंभं तं बृहि कतमः स्वियदेव सः ॥
यनादित्याश्च रद्राश्च वसुयश्च समाहिताः ।
भूतं च यत्र भव्यं च सर्वं लोकाः प्रतिष्ठिताः ।
स्कंभं तं बृहि कतमः स्वियदेव सः ।
यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्मज्येष्ठमुपासते ।
यो वे तान्विद्यात्प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् ॥
महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये
तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे ॥
तस्मिन्नुच्यन्ते य उ के च देवाः
वृक्षस्य स्कंधः परित इव शाखाः ॥

अथर्व १०।७।२, २२, २४, ३८

“जिसमें भूमि, अन्तरिक्ष और धौ स्थित हैं, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य और वायु भी जिसमें स्थित हैं, वही सबका आधारस्तेम है और वही आनन्दमय है।”

“जिसमें आदित्य, रद्र, वसु, भूत, वर्तमान, भविष्य और सभी लोक प्रतिष्ठित हैं, वही सबका आधार है और वही आनन्दमय है।”

“यहाँ ब्रह्मजानी और देव छेद ब्रह्मकी उपासना करते हैं, नो उनको प्रत्यक्ष जानता है, यह जाता ब्रह्म कहलापुगा।”

“भुवनके मध्यभागमें जो बड़ा पृथ्वीय तत्व है, वही ब्रह्म है। जलव पृष्ठभागपरकी उपाधिमें वह प्रकट होता है। जिसमें पृथ्वीमें शाश्वत चारों ओरसे आभित रहनी है उसी प्रकार इस ब्रह्ममें देवता आभित रहते हैं।”

परमात्मा

यह विश्वराज्यका उपराष्ट्रपति है और विश्वराज्यके संघान्तम परमब्रह्मकी सहायता करता है। वह प्रकृतिपर माय मिश्रकर शशिरचनाका कार्य करता है। परमब्रह्मका स्वरूप

निष्क्रिय है, जब कि परमात्माका स्वरूप सक्रिय है। उसका वर्णन इस प्रकार है—

अकामोऽधीरो अमृतः स्वयंभूः
रसेन हृतो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योः
आत्मानं धीरं अजरं युवानम् ॥ अथर्व १०।८।४४

“कामनारहित, बुद्धि देनेवाला, अमर, अपनी शक्तिसे रहनेवाला रस ग्रहणसे तृप्त होनेवाला, सर्वत्र व्याप्त, धैर्यवान्, जरारहित, सदा तखण आत्मा है। उसे जाननेवाला मृत्युसे नहीं डरता।”

अदिति

यह वह शक्ति है, जिससे देवताओंका निर्माण होता है। इसीको वेदान्तदर्शनमें मायाके नामसे कहा गया है। ‘द्युलोक, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र सब देव, पञ्चजन तथा जो कुछ होनेवाला है और हो चुका है, यह सब अदिति है।’ सभ देव अदितिके ही रूप हैं।

“ब्रह्म” अन्वक्ष है और “अदिति” प्रजा है। प्रजामेंसे प्रतिनिधि चुने जाते हैं और इन्हींकी सभा बनती है।

पुरुष

व्यक्ति, समान और विराट् इन तीनों स्थानोंमें जो पुरुष स्थित है, उन सबका एक उद्देश्य है कि इन तीनों जगहोंमें शान्ति स्थापित करना। “करोडो सिर, पैर व हाथवाला एक मानवसमाजरूपी पुरुष सर्वत्र है।” वह तीनों कालोंमें रहता है। समाजमें रहनेवाले ज्ञानी, शूर, वैश्य और कारीगर या शूद्र इस समान पुरुषके सिर, बाहु, पेट और पाव हैं। सभ मानवोंका मिलकर एक शरीर है, शत शरीरमें जिस प्रकार अज्ञोंमें सहकार होता है, उसी प्रकार इस मानवसमाजमें भी मानवोंका परस्पर सहकार होना चाहिये।

इसी प्रकार विराट्पुरुषकी भी एक देह है, जिसमें सूर्य, चन्द्र आदि देवगण अङ्ग बने हुए हैं। “इस विराट्पुरुषमें चन्द्रमा मन, सूर्य, आँख, इन्द्र और अग्नि सुंह, वायु प्राण, धु सिर, पृथिवी पांव और दिग्गाय कान हैं।”

इन विराट्पुरुष और व्यक्तिपुरुषमें सहकारकी बलाकर मनुष्यसमाजमें भी उसीकी शिक्षा देना वेदका ध्येय है।

सद्मसपति और क्षेत्रपति ये दोनों विश्वसंसदके प्रमण अन्वक्ष और उपाय्यक्ष हैं। ‘जो संयुक्त अन्वक्ष है, में उमते योग्य मलाह मार्गता है, वह मुझे योग्य सलाह देवे’। ‘सद्मः + पतिः’ सद्म भी इसी बातका द्योतक है।

‘सदसः’ पद ‘सदस्’ शब्दकं पृथी विभक्तिकं एकवचन-का रूप है। ‘सदस्’ का अर्थ होता है ‘सभा’। अतः ‘सदसः-पति’ का अर्थ है सभापति या सभाध्यक्ष। इसका महायक क्षेत्रपति है। इनमें सदसस्वपति राज्यपरिषद्का अध्यक्ष है और क्षेत्रपति संसद् या लोकसभाका।

इसके बाद विश्वराज्यके मंत्रिमण्डलका स्थान आता है। उसमें ‘विद्याधनं सर्वधनप्रधानं’ के न्यायसे अग्निका स्थान सर्वप्रथम है।

अग्नि

यह शिक्षामंत्री है। इसका कार्य ज्ञानका प्रसार करना व कराना है। वेदमंत्रोंमें आप्तु दुष्ट उमके विशेषणोंसे पता चलता है कि वह ज्ञानी है—

पावकः— ज्ञानसे लोगोंको पवित्र करनेवाला।

ऋषिरुत् (ऋ. १३११३६)— ऋषियोंका निर्माण करनेवाला।

कवितमः (३११११)— सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी।

जातवेदाः (११४४११)— जिससे ज्ञान प्रकट हुआ है।

मेधिरः (११३११२)— बुद्धिमान्।

विद्वान् (१११४५५)— ज्ञानी।

सु-वेदः (४१०१६)— उत्तम ज्ञानी।

सूरिः (२१६१४)— यदा विद्वान्।

प्रचेताः (साम. १५१४)— विशेष ज्ञानी।

आर्यस्य धर्धनः (१५१५)— आर्य या श्रेष्ठ पुत्रोंको यदानेवाला।

ऋषिः (१५१९)— ज्ञानी, मंत्रद्रष्टा।

ये समस्त विशेषण यह सिद्ध करते हैं कि अग्निका कार्य ज्ञानका प्रसार करके लोगोंको ज्ञानी बनाकर उन्हें पवित्र करना है।

‘ब्रह्मणस्पति’ और ‘वृहस्पति’ इसकी सहायता करते हैं। प्रकृता अर्थ ही ज्ञान है। पुराणोंमें बृहस्पतिकी देवोंका ज्ञानगुरु बनाया है।

इन्द्र

यह रक्षामंत्री है। यह सदा आर्योंकी रक्षामें उत्तर रहता है। हमेशा नक्षत्रोंसे मुमग्जित रहता है। यह लोहेका टोप पहनता है और उमपर जरीकी पगड़ी बांधता है, इमीलियु इसे वेदोंमें ‘शिर्षी’ कहा है। यह ‘अद्रि-यः’ अर्थात् पहाड़ोंमें रहता है। पहाड़ोंपर किये बनाकर उनमें रहता है। अथवा यह गुरिछा अर्थात् पर्वतीय युद्धमें भी बड़ा प्रवीण है।

हमेशा वज्रको हाथमें धारण किये रहनेके कारण यह ‘वज्र-हस्त’ कहलाता है। यह लोक कल्याण करता है। यह बरा वीर है, इसलिये (जनुषा अभ्रातृव्यः) जन्मसे ही शत्रु-रहित है। इसका एक कारण और भी है कि यह ‘अशत्रुः’ है अर्थात् न्यय भी किसीसे बिना कारण शत्रुता नहीं करता। इसके कतिपय विशेषण इस प्रकार हैं—

वावृधानः (साम. १४११)— अपनी शक्तिसे बढ़ने-वाला है।

वृषभः (१३६१)— बैलके समान मशक।

वज्रबाहुः (१४२६)— वज्रके समान कठोर मुभाओं-वाला।

वीर्यैः वृद्धः (१४८०)— पराक्रमसे महान्।

महिषः तुविशुम्भः (१४४६)— जैसेके समान पुष्ट और शक्तिमान्।

इस प्रकार वह बलवान् है और सवपर शासन करता है। पर वह स्वयंकी शक्तिमें ही महान् है, किसी दूसरेकी शक्तिकी सहायतासे वह शक्तिमान् या महान् नहीं है। यह ‘अयुध्य’ है, उसके साथ युद्ध करना कोई आसान काम नहीं। क्योंकि वह ‘दुदृच्ययन’ अर्थात् अपने स्थानसे एक कदम भी हिलनेवाला नहीं है। वह शत्रुओंके किये तोड़नेवाला, वज्रके समान कठोरवाला और युद्धमें विजयी होकर शत्रुओंको नष्ट करता है। इन्द्रके ये उपरोक्त वर्णन इस बातके प्रमाण हैं कि जिस देशका राज्य ऐसे बलशाली वीर रक्षकके हाथमें रहेगा, वह देश कभी भी दान या भव-नत नहीं हो सकता।

उपेन्द्र अर्थात् विष्णु, रद्र और मरु भी इसीके समान बलशाली हैं। रद्रका नाम भी ‘रद्र’ इमीलियु है कि यह शत्रुओंको ख्याता है। निरन्तरकार यास्केने ‘शश्रूणां रोद-यिता’ कहकर रद्रका निर्वचन किया है। मरु भी ‘मर + उत्’ है अर्थात् मरतेदम तक उठ उठकर लड़ने-वाले हैं। इस प्रकार विश्वराज्यका रक्षामंत्रालय श्रेष्ठ वीरोंके भाषीन है।

अश्विनौ

ये जुड़वें हैं। ये दोनों अपने चिकित्सा कर्ममें बहुत कुशल हैं। वेदोंमें इनकी कार्य कुशलताका अनेक जगह वर्णन है। इन्होंने शस्त्रक्रियाके अनेक अपूर्वकाम किए हैं। शैल राजाकी पुत्री विश्वलाकी टांग टूट जानेपर उनकी लोहेकी टांग लगाता, अन्धे कण्ठकी आंखें दीक करना, स्वयंको बुरेमें

जवान बनाना ये सब इनकी चिकित्साकी विलक्षणता बताते हैं। कायाकल्पका सिद्धान्त आज प्रायः सर्वमान्य हो गया है। कई प्राशाल्य डॉक्टरोंने कायाकल्पपर प्रयोग भी किए और उन्हें देखकर आश्चर्य हुआ कि उनकी उमर २०-२० वर्ष कम होगई। अधिनी भी कायाकल्प करते थे। इनकी औषधयोजना और शलक्रियाके सम्बन्धमें वेदोंमें निम्न वर्णन है—

गां पिन्वतं— गायको दुधार और पुष्ट बनाते हैं।

अर्थतः जिन्वतं— घोड़ोंको वेगवान् बनाते हैं।

वीरं वर्धयतं— पुत्र या सन्तानोंको शक्तिशाली बनाते हैं।

च्यवनं पुनः युवानं चक्रथुः— बड़े च्यवन ऋषिको फिर तरुण बनाया।

अपरित्साय कण्वाय चक्षुः प्रत्यधत्तम्— अन्धे कण्व को नई आँसू प्रदान कीं।

विदपलायै आयसीं जघां प्रत्यधत्तम्— विदपलाकी लोहेकी रांग लगाई और उसे चलने फिरने योग्य बनाया।

इस प्रकार अधिनी देवोंका वर्णन है। गौः, ओषधि, सोम अन्न देवता अधिनीको इस कार्यमें सहायता करते हैं और इस प्रकार विश्वराज्यका स्वास्थ्यमेंशाल्य सुचारुरूपसे चलता है।

पूषा, सूर्य, सविता

ये तीनों लोगोंका पोषण करते हैं। 'पुष्य-पोषणे' पोषण करना इस धातुसे पूषा शब्द बना है। सूर्यकी किरणोंसे पोषण प्राप्त होना स्पष्ट और सर्वमान्य सिद्धान्त है ही। 'सूर्य किरणोंमें स्नान करनेसे हृदयके रोग और पीलिया दूर होते हैं' (क्र. ११५०११)। सूर्यमें आरोग्यसंवर्धनके संपूर्ण साधन हैं। उन साधनोंसे वह सब रोग दूर करता है। जो इसकी शरणमें जाता है, वह कभी रोगके आधीन नहीं हो सकता।

भाग

यह अर्थमंत्री है। भगका अर्थ ही ऐश्वर्य है। अतः विश्व-राज्यका सारा ऐश्वर्य भागके अधिकारमें रहता है। यह सबको गाय, घोड़े, घन, ऐश्वर्य आदिसे युक्त करता है। उसका वेदने इस प्रकार वर्णन किया है—

भग प्रणेतभंग मत्स्यराधो भगोमां धियमुदवा द्दध्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरधैः

भग प्र नृभिर्घन्तः म्याम ॥ क्र. ७११३

" हे भग देव ! तू नेता है, हमारा सहायक है। घरे

पासका ऐश्वर्य प्राप्त है, हमेंना रहनेवाला है। तू हमें भी ऐश्वर्य देकर सुरक्षित कर। गाय, घोड़े भदान कर हमें भागवान बना। हम वीरपुत्रोंसे युक्त हों, ऐसी कृपा कर। "

उषा

उषाके रूपमें वेदोंने एक आदर्श स्त्रीका वर्णन किया है। यह एक उत्तम पुत्री, उत्तम पत्नी और उत्तम नेत्री है। यह सबसे पहले उठती है और सबको उठाती है। यह गृहिणीका कर्तव्य है कि वह सबेरे सर्वप्रथम उठे, फिर घरको स्वच्छ करके दूसरोंको भी उठाये। वह " चित्रा " है, हमेंना रंग-धिरंगे परिधानोंसे सजी रहती है। कोई भी स्त्री मलिन या दोन वेदाभूषा धारण न करे। वह दिव्यप्रतीका पालन करती है। उसे वेदमें " दिव्यः सुहिता " (पुलोक्की पुत्री) कहा है। वह लोगोंको सत्कर्ममें प्रवृत्त करती है। वह " भुवनस्य पत्नी " अर्थात् संसारका पालन करनेवाली होनेके कारण सबके कर्मोंका निरीक्षण करती रहती है। यह सूर्यकी पत्नी है। यह इतनी आदर्श है कि ऋषि भी इसकी स्तुति या प्रशंसा करते हैं। इसका कार्यक्षेत्र केवल घरतक ही सीमित नहीं है, अपितु यह रथमें बैठकर सर्वत्र संचार करती है। इसपर कोई कुदृष्टि नहीं डाल सकता, क्योंकि यह वीर है, रथनीतिमें कुशल है। " यह अपने साथ अन्य देवोंको लेकर शत्रुओंके किलोंपर आक्रमण करती है और उनका विध्वंस करती है। "

इस प्रकार वेदने उषाके रूपमें एक वीर, धीर, सबला, उत्तम पत्नी, पुत्रोका चरित्र-चित्रण किया है। इससे वैदिक-कालमें स्त्रियोंकी स्थितिका सही अन्दाजा लगाया जा सकता है।

इसी प्रकार अन्य मंत्रांगण भी अपना कार्य सुचारुरूपसे बिना किसी छलकपटके करते हैं।

उपसंहार

इस प्रकार संक्षेपमें हमने अपनी योजनाकी रूपरेखा प्रस्तुत की। जब हमने " द्वैत-संहिता " के ग्रन्थका निश्चय किया, तो हमें कई विद्वानोंने यह लिखा कि वेदोंका वर्तमान-रूप एक शाश्वतरूप है, अनादिकालसे वेद इसी रूपमें चले आए हैं, अतः उसके वर्तमानरूपको विह्वल करना उचित नहीं। हमने उनसे यही मन्त्र निवेदन किया कि जब ऋषियोंके अनुसार आप्त्य संहिता पहले बन चुकी है तो देवताओंके अनुसार " द्वैत संहिता " बनानेमें क्या आपत्ति है। हमने अंगके छन्दों, स्वरों या पदोंमें कोई परिवर्तन नहीं किया, न मंत्रोंमें हमने अपनी भाँसे कुछ मिलाया ही। हाँ, इधना

अवश्य किया कि जो चारों वेदोंमें पुनरुक्त मंत्र आए हैं, उनको हमने एक ही थार लिया है। हमारे पास कई ऐसे पत्र आए थे, जिनमें लेखकोंने हमें सुझाया कि चारों वेदोंकी एक पुस्तक बना दी जाए, तो अत्युत्तम होगा। इस सुझावका हमने स्वागत किया और देवताओंके अनुसार चारों वेदोंका एक ग्रंथमें संग्रह कर दिया। इस ग्रंथको प्रकाशित करते हुए हमने समय-समय पर विद्वानोंसे सलाह भी ली। हम उन विद्वानोंके आभारी हैं, जिन्होंने अपनी सलाह देकर हमारा मार्ग प्रदर्शन किया।

इस 'द्वैतसंहिता' की कुछ अपनी भी विशेषतायें हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) इन्द्र आदि देवोंके चारों वेदोंके मंत्र एक जगह आ जानेके कारण वेदानुसंधानकर्ताओंको बड़ी सुविधा हो गई है। उन्हें अब चारों वेद टटोलनेकी जरूरत नहीं।

(२) इस संहितामें विश्वराज्यकी जो कल्पना हमने प्रस्तुत की है, वह अपूर्व है।

(३) मंत्रोंके स्वरोंकी शुद्धता पर बहुत ध्यान दिया गया है। इसको प्रकाशित करते समय हमें उन विद्वानोंका सहयोग प्राप्त हुआ है, जिन्हें वेद कण्ठस्थ है। अतः स्वर-विषयक दोषोंकी संभावना कम या नहींकि बराबर ही है।

(४) वेदोंमें देवताओंके वर्णनके रूपमें सब प्रकारका ज्ञान दिया है। अतः उन देवताओंके गुणधर्मोंका परिचय हमें विशेष मिले, इसलिए हमने देवतावार मंत्रोंका वर्गीकरण किया है।

(५) हमने यथासंभव यही प्रयास किया है कि पुस्तकका कलेवर बड़ा न हो। इस दृष्टिसे हमने मंत्रोंका सुदृण दो कालमें किया है।

(६) द्वैत संहिताके अन्तमें परिशिष्टके रूपमें हमने अन्य संहिताओंके भी मंत्र दिए हैं। इससे संहिताओंके तुलनात्मक अध्ययनमें पर्याप्त आसानी होगी।

इस प्रकार द्वैतसंहिताका सुदृण हमने किया है। इसमें हमें जिन जिन विद्वानोंसे सलाह या अन्य प्रकारकी महायता मिली है, हम उनके आभारी हैं। इस "द्वैतसंहिता" के सुदृण-कार्यमें "श्री पं. मनोहरजी विद्यालंकार यावडीवाजार, दिल्ली" ने ३८०० रु. प्रदान देकर हमारी जो सहायता की है, उसके लिए हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं। पाठक इस हमारे प्रयत्नका हार्दिक अभिनन्दन करेंगे, ऐसी आशा है। इसके साथ ही वेद-विद्वानोंसे हमारा नम्र निवेदन है, कि इस ग्रंथमें जो दोष या न्यूनता उनकी दृष्टिमें आए, हमें सूचित करनेकी कृपा करें, ताकि आगामी संस्करणमें उस दोषका परिमार्जन कर सकें।

निवेदनकर्ता,

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष-स्वाध्याय-मण्डल





१ परब्रह्म ।

१ परब्रह्म ।

अथर्ववेद कांड ४, सूक्त १

(ऋषिः — वेनः । देवता — बृहस्पतिः, आदित्यः । छंदः — त्रिष्टुप् ; २, ५ पुरोऽनुष्टुप्)

ब्रह्मं जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्
वि सीमितः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्टाः
सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥ १ ॥
इयं पित्र्या राष्ट्रयेत्वग्ने
प्रथमार्यं जनुषे ध्वनेष्टाः ।
तसां एतं सुरुचं ह्यारमं ह्यं
धर्मं श्रीणन्तु प्रथमार्यं धास्यवे ॥ २ ॥
प्र यो जज्ञे विद्वानस्य धन्धु-
विश्वा देवानां जनिमा विवाक्ति ।
ब्रह्मं ब्रह्मण उज्जमार मध्या-
शीचिरुचैः स्वधा अभि प्र तस्यौ ॥ ३ ॥
स हि दिवः स पृथिव्या ऋतुस्था
मही क्षेमं रोदसी अस्कमायत् ।

महान्मही अस्कमायद्वि जातो
द्यां सन्न पार्थिवं च रजः ॥ ४ ॥
स बुध्न्यादाप्त्रं जनुषोऽम्पग्रं
बृहस्पतिर्देवता तस्यं सम्राट् ।
अह्यं च्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टा-
र्थं धूमन्तो वि वसन्तु विप्राः ॥ ५ ॥
नूनं तदस्य क्वाव्यो हिनोति
महो देवस्यं पूर्वस्य धामं ।
एष जज्ञे बहुमिः साकमित्या
पूर्वं अर्धे विपिते ससन्न ॥ ६ ॥
योऽर्धवर्षिणं पितरं देवर्षन्धुं
बृहस्पतिं नमसावं च गच्छात् ।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासं-
कविर्देवो न दमायत्स्वधावान् ॥ ७ ॥ (७)

३ ज्येष्ठ ब्रह्म ।

अथर्ववेद कांड १०, सूक्त ८ (ऋषिः — इत्सः । देवता — आत्मा)

यो भूतं च मर्त्यं च
 सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
 स्वर्ग्यस्य च केवलं
 तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥
 स्कम्भेनेमे विष्टभिते
 यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः ।
 स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद्
 यत्प्राणान्निमिपच्च यत् ॥ २ ॥
 तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन्
 न्यग्न्या अर्कममितोऽविशन्त ।
 बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो
 हरितो हरिणीरा विवेश ॥ ३ ॥
 द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं
 त्रीणि नभ्यानि क उ तर्धिकेत ।
 तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः
 पृष्टिश्च खीला अविचाचला ये ॥ ४ ॥
 इदं संवितर्वि जानीहि
 षडयमा एकं एकजः ।
 तस्मिन् हापित्वाभिच्छन्ते
 य एषामेकं एकजः ॥ ५ ॥
 आविः सन्निहितं गुहा
 जरन्नामं महत्पदम् ।
 तत्रेदं सर्वमार्षितम्
 एजत् प्राणत्प्रतिष्ठितम् ॥ ६ ॥
 एकचक्रं वर्तत् एकनेमि
 सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पृथा ।
 अर्धेन विश्वं भुवनं जजान्
 यदस्यार्धं कं १ तदभूव ॥ ७ ॥

पञ्चवाही वहत्यग्रमेपां
 प्रष्टयो युक्ता अनुसंभवन्ति ।
 अयातमस्य ददृशे न यातं
 परं नेद्रीयोऽवरं दवीयः ॥ ८ ॥
 तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्
 तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।
 तदासत् ऋषयः सप्त साकं
 ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥ ९ ॥
 या पुरस्ताद्युज्यते या च पश्चात्
 या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः ।
 यया यज्ञः प्राङ् तायते
 तां त्वां पृच्छामि कतमा सर्चाम् ॥ १० ॥
 यदेजति पतति यच्च तिष्ठति
 प्राणदप्राणान्निमिपच्च यद् भुवत् ।
 तदाधार श्यिवीं विश्वरूपं
 तत्संभूय भवत्येकमेव ॥ ११ ॥
 अनन्तं विततं पुरुत्रा-
 नन्तमन्तवच्चा समन्ते ।
 ते नाकपालश्चरति विचिन्वन्
 विद्वान्भूतमुत मर्त्यमस्य ॥ १२ ॥
 प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर
 अर्हश्यमानो बहुधा वि जायते ।
 अर्धेन विश्वं भुवनं जजान्
 यदस्यार्धं कतुमः स केतुः ॥ १३ ॥
 ऊर्ध्वं भरन्तश्चक्रुः
 कुम्भेनेवोदहार्यम् ।
 पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा
 न सर्वे मनसा विदुः ॥ १४ ॥

२ परब्रह्म ।

अथर्ववेद कांड ५, सूक्त ६

(ऋषिः - अथर्वा । देवताः - सोमार्हदो । १ ब्रह्म, २ कर्माणि, ३-४ रुद्रगणाः । ५-८ सोमार्हदो, ९ हेतिः, १०-१४ सर्वात्मा रदः ।)

ब्रह्मं जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्
 वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
 स बुध्यया उपमा अस्य विष्ठाः
 सतश्च योनिमसंतश्च वि वः ॥ १ ॥
 अनाम्ना ये वः प्रथमा
 यानि कर्माणि चक्रिरे ।
 वीरान् नो अत्र मा दंभन्
 तद् वं एतत्पुरो दंभे ॥ २ ॥
 सहस्रधार एव ते समस्वरन्
 द्विचो नाके मधुजिह्वा असश्वतः ।
 तस्य स्पशो न नि म्पिपन्ति भूर्णयः
 पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवे ॥ ३ ॥
 पर्यं पु प्र धन्वा वाजसातये
 परि वृत्राणि सस्रणिः ।
 द्विपस्तदघ्यणेवेनैयसे सनिस्त्रसो
 नामासि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः ॥४॥
 न्येतेनारत्सीरसौ स्वाहा ।
 तिग्मार्युधौ तिग्महेती सुशेवौ
 सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥ ५ ॥
 अथेतेनारत्सीरसौ स्वाहा ।
 तिग्मार्युधौ तिग्महेती सुशेवौ
 सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥ ६ ॥

अपेतेनारत्सीरसौ स्वाहा ।
 तिग्मार्युधौ तिग्महेती सुशेवौ
 सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥ ७ ॥
 मुमुक्तमस्मान्दुरितार्दवघाज्
 जुषेथां यज्जममृतमस्मासु घत्तम् ॥ ८ ॥
 चक्षुषो हेते मनसो हेते
 ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते ।
 मेन्या मेनिरस्यमेनयस्ते संन्तु
 येक्षुस्माँ अन्वघायन्ति ॥ ९ ॥
 योक्षुस्माँश्चक्षुषा मनसा चित्पाकृत्या
 च यो अघायुरभिदासात् ।
 त्वं तानग्रे मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा ॥१०॥
 इन्द्रस्य गृहोऽसि । तं त्वा प्र पद्ये
 तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुपः ।
 सर्वात्मा सर्वतनुः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥११॥
 इन्द्रस्य शर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये
 तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुपः
 सर्वात्मा सर्वतनुः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१२॥
 इन्द्रस्य वर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये
 तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुपः
 सर्वात्मा सर्वतनुः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१३॥
 इन्द्रस्य वरूथमासि । तं त्वा प्र पद्ये
 तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुपः
 सर्वात्मा सर्वतनुः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥१४॥

३ ज्येष्ठं ब्रह्म ।

अथर्ववेद कांड १०, सूक्त ८ (ऋषिः — कुत्सः । देवता — भारता)

यो मृतं च मर्त्यं च
 सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
 स्वर्गस्य च केवलं
 तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥
 स्कम्भेनेमे विष्टमिष्टे
 द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः ।
 स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद्
 यत्प्राणान्निमिपच्च यत् ॥ २ ॥
 तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन्
 न्यर्ण्या अर्कमभितोऽविशन्त ।
 बृहन् ह तस्यौ रजसो विमानो
 हरितो हरिणीरा विवेश ॥ ३ ॥
 द्वादश प्रघर्षश्चक्रमेकं
 त्रीणि नभ्यानि क उ तर्धिकेत ।
 तत्राहतास्त्रीणि श्रुतानि शृङ्खलः
 पृष्टिश्च खीला अविचाचला ये ॥ ४ ॥
 इदं संवितर्वि जानीहि
 षडथमा एकं एकजः ।
 तस्मिन् हापित्वामिच्छन्ते
 य एषामेकं एकजः ॥ ५ ॥
 आविः सन्निहितं गुहा
 ज्वरन्नाम महत्पदम् ।
 तत्रेदं सर्वमार्पितम्
 एजेत् प्राणत्प्रतिष्ठितम् ॥ ६ ॥
 एकचक्रं वर्तत एकनेमि
 सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पृथा ।
 अर्धेन विश्वं ध्रुवं न ज्ञान
 यदस्यार्धं कं १ तद्रभूव ॥ ७ ॥

पञ्चवाही बृहत्प्रेमेपां
 प्रष्टयो युक्ता अनुसंवेहन्ति ।
 अयातमस्य ददृशे न यातं
 परं नेद्रीयोऽवरं दवीयः ॥ ८ ॥
 तिर्यग्विलथमस ऊर्ध्वबुध्नस्
 तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।
 तदासत ऋषयः सप्त साकं
 ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥ ९ ॥
 या पुरस्ताद्युज्यते या च पृथात्
 या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः ।
 यया यज्ञः प्राङ् तायते
 तां त्वां पृच्छामि कतमा सर्चाम् ॥ १० ॥
 यदेर्जति पतति यच्च तिष्ठति
 प्राणदप्राणान्निमिपच्च यद् ध्रुवं ।
 तदाधार पृथिवी विश्वरूपं
 तत्संभूयं भवत्येकमेव ॥ ११ ॥
 अनन्तं विततं पुरुत्रा-
 नन्तमन्तवच्चा समन्ते ।
 ते नाकपालश्चरति विचिन्वन्
 विद्वान्भूतमुत भव्यमस्य ॥ १२ ॥
 प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर
 अर्हश्यमानो बहुधा वि जायते ।
 अर्धेन विश्वं ध्रुवं न ज्ञान
 यदस्यार्धं कंतुमः स केतुः ॥ १३ ॥
 ऊर्ध्वं भरन्तमुद्रकं
 कुम्भेनैवोदहार्यम् ।
 पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा
 न सर्वे मनसा विदुः ॥ १४ ॥

दूरे पूर्णेन वसति
 दूर ऊनेन हीयते ।
 महद्यक्ष भुवनस्य मध्ये
 तस्मै बलिं राष्ट्रभूतौ भरन्ति ॥ १५ ॥
 यतः सूर्य उदेति-
 अस्तं यत्र च गच्छति ।
 तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं
 तदु नात्येति किं च न ॥ १६ ॥
 ये अर्वाह्मण्य उत वा पुराणं
 वेदं विद्वांसमभितो वर्दन्ति ।
 आदित्यमेव ते परिं वदन्ति सर्वे
 अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् ॥ १७ ॥
 सहस्राह्वयं विर्यतावस्य पक्षौ
 हरैर्हंसस्य पर्वतः स्वर्गम् ।
 स देवान् सर्वानुरस्युपदधं
 संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥ १८ ॥
 सत्येनोर्ध्वस्तपति
 ब्रह्मणार्वाह् वि पश्यति ।
 प्राणेन तिर्यह् प्राणति
 यस्मिन् ज्येष्ठमधि श्रितम् ॥ १९ ॥
 यो वै ते विद्यादुरणी
 यास्यां निर्मथ्यते वसु ।
 स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत
 स विद्यात् ब्राह्मणं महत् ॥ २० ॥
 अपादग्रे समभवत्
 सो अग्रे स्वर्गरामरत् ।
 चर्तुष्पाद् भूत्वा भोग्यः
 सर्वमादत्त भोजनम् ॥ २१ ॥
 भोग्यो भवद्यो
 अश्रमदद्द्रु ।

यो देवमुत्तरारवन्तम्
 उपासति सनातनम् ॥ २२ ॥
 सनातनमेनमाहु-
 रुताद्य स्यात्पुनर्णवः ।
 अहोरात्रे प्र जयिते
 अन्यो अन्यस्य रूपयोः ॥ २३ ॥
 शतं सहस्रमयुतं न्यविदम्
 असंख्येयं स्वर्मास्मिन्निविष्टम्
 तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव
 तस्माद् देवो रौचत एष एतत् ॥ २४ ॥
 बालादेकमणीयस्कम्
 उतैकं नैवं दृश्यते ।
 ततः परिष्वजीयसी
 देवता सा मम प्रिया ॥ २५ ॥
 इयं कल्याण्यंजरा
 मर्त्यस्यामृतां गृहे ।
 यस्मै कृता शय्ये स
 यश्चकार जजार सः ॥ २६ ॥
 त्वं स्त्री त्वं पुमानसि
 त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
 त्वं जीर्णो दुण्डेन वस्त्रसि
 त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥ २७ ॥
 उतैषां पितोत वा पुत्र एषाम्
 उतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः ।
 एको ह देवो मनसि प्रविष्टः
 प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ॥ २८ ॥
 पूर्णात्पूर्णाष्टुर्दचति
 पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
 उतो तदद्य विद्याम्
 यतस्तत्परिचिच्यते ॥ २९ ॥

एपा सनन्ती सनमेव जाता
 एपा पुराणी परि सर्वे बभूव ।
 मही देव्युपसो विभाती
 सैकेनैकेन मिप्ता वि चेटे ॥ ३० ॥
 अविर्षे नाम देवता
 ऋतेनास्ते परीवृता ।
 तस्या रूपेणेमे वृक्षा
 हरिता हरितस्रजः ॥ ३१ ॥
 अन्ति सन्तं न जहाति
 अन्ति सन्तं न पश्यति ।
 देवस्यं पश्य काव्यं
 न भमार न जीर्यति ॥ ३२ ॥
 अपूर्वेणैषिता वाचस्
 ता वदन्ति यथायथम् ।
 चरन्तीर्यत्र गच्छन्ति
 तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ॥ ३३ ॥
 यत्र देवाश्च मनुष्याश्च
 आरा नामाविव श्रिताः ।
 अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि
 यत्र तन्मायया हितम् ॥ ३४ ॥
 येभिर्वीर्यं इषितः प्रवाति
 ये ददन्ते पञ्च दिशः सध्रीर्चीः ।
 य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा
 अपां नेतारः कृतमे त आसन् ॥ ३५ ॥
 इमामेषां पृथिवी वस्तु एको-
 ऽन्तरिक्षं पर्येको बभूव ।
 दिवमेषां ददते यो विधर्ता
 विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येकं ॥ ३६ ॥
 यो विद्यात्स्रवं विततं
 यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।

स्रवं स्रवस्य यो विद्यात्
 स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३७ ॥
 वेदाहं स्रवं विततं
 यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
 स्रवं स्रवस्याहं वेद
 अथो यद्ब्राह्मणं महत् ॥ ३८ ॥
 यदन्तरा घावापृथिवी
 अभिरैत्प्रदहन्निश्चद्राव्युः ।
 यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः पुरस्तात्
 केवासीन्मातरिश्वा तदानीम् ॥ ३९ ॥
 अप्स्वाप्सीन्मातरिश्वा प्रविष्टः
 प्रविष्टा देवाः संलिलान्यासन् ।
 वृहन्हं तस्थौ रजसो विमानः
 पर्वमानो हरित आ विवेश ॥ ४० ॥
 उत्तरेणेव गायत्रीम्
 अमृतेऽधि वि चक्रमे ।
 साम्ना ये सामं संविदुः
 अजस्तदहृदशे कृ ॥ ४१ ॥
 निवेशनः संगमनो वधनां
 देव इव सविता सत्यधर्मा ।
 इन्द्रो न तस्थौ
 समरे धनानाम् ॥ ४२ ॥
 पुण्डरीकं नवद्वारं
 त्रिभिर्गुणभिरावृतम् ।
 तस्मिन्मन्त्रधर्मात्मन्वत्
 तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ४३ ॥
 अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू
 रसेन तुप्तो न कुतश्चनोर्नः ।
 तमेव विद्वान् विभाय मृत्योः
 आत्मानं धीरमजरं युवानम् ॥ ४४ ॥ (६५)

४ उच्छिष्टं ब्रह्म ।

अथर्ववेद कांड ११, सूक्त ७ (ऋषिः — अथर्वा । देवता — अथर्वानं, उच्छिष्टः ।)

उच्छिष्टे नाम रूपं
 चोच्छिष्टे लोक आर्हितः ।
 उच्छिष्ट इन्द्रश्चापिश्च
 विश्वमन्तः समाहितम् ॥ १ ॥
 उच्छिष्टे घावापृथिवी
 विश्वं भूतं समाहितम् ।
 आपः समुद्र उच्छिष्टे
 चन्द्रमा वात आर्हितः ॥ २ ॥
 सन्नुच्छिष्टे असंशोभौ
 मृत्युर्वाजः प्रजापतिः ।
 लोक्या उच्छिष्टे आयत्ता
 ब्रह्म द्रथापि श्रीर्भयि ॥ ३ ॥
 इदो ईहस्थिरो न्यो
 ब्रह्म विश्वसृजो दश ।
 नामिभिव सर्वतश्चक्रम्
 उच्छिष्टे देवताः श्रिताः ॥ ४ ॥
 ऋक्साम यजुरुच्छिष्ट
 उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम् ।
 द्विङ्कार उच्छिष्टे स्वरः
 साम्नों मेडिश्च तन्मयि ॥ ५ ॥
 ऐन्द्राप्तं पांवमानं
 महानोम्नीर्महाव्रतम् ।
 उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गानि
 अन्तर्गर्भं इव मातरि ॥ ६ ॥
 राजसूयं वाजपेयम्
 अमिष्टोमस्तर्ध्वरः ।
 अर्काश्चमेघायुच्छिष्टे
 जीवर्षर्हिर्मदिन्तमः ॥ ७ ॥

अग्न्याधेयमयो द्वीक्षा
 कामप्रश्नन्दंसा सह ।
 उत्सना यज्ञाः सुत्राणि
 उच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥ ८ ॥
 अग्निहोत्रं च श्रद्धा च
 षपट्कारो वृतं तपः ।
 दक्षिणेष्टं पूर्वं चोच्छिष्टे-
 ऽधि समाहिताः ॥ ९ ॥
 एकरात्रो द्विरात्रः
 संघःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्युः ।
 ओतं निहितमुच्छिष्टे
 यज्ञस्याणानि विद्यर्या ॥ १० ॥
 चतुरात्रः पञ्चरात्रः
 षड्रात्रश्चोभयः सह ।
 षोडशी संतरात्राश्चोच्छिष्टा-
 ञ्जिरे सर्वे ये यज्ञा अमृतं हिताः ॥ ११ ॥
 प्रतीहारो निधनं
 विश्वजिच्चामिजिच्च यः ।
 साह्यातिरात्रावुच्छिष्टे
 द्वादशाहोऽपि तन्मयि ॥ १२ ॥
 सूनृता संनतिः क्षेमः
 स्वधोर्जामृतं सहैः ।
 उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः
 कामा कामेन वाटपुः ॥ १३ ॥
 नव भूर्मीः समुद्रा
 उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः ।
 आ सूर्यो भात्युच्छिष्टे-
 ऽहोरात्रे अपि तन्मयि ॥ १४ ॥

उपहृष्यं विपुवन्तं
 ये च यज्ञा गुहा हिताः ।
 विमर्ति मर्ता विश्वस्य
 उच्छिष्टो जनितुः पिता ॥ १५ ॥
 पिता जनितुरुच्छिष्टो-
 ऽसौः पौत्रः पितामहः ।
 स क्षियति विश्वस्येज्ञानो
 वृषा भूम्यामतिघ्न्यः ॥ १६ ॥
 ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं
 श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
 भूतं मविष्यदुच्छिष्टे
 वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बलं ॥ १७ ॥
 समृद्धिरोज आकूतिः
 खत्रं राष्ट्रं पदुर्व्यः ।
 संवत्सरोऽभ्युच्छिष्टे
 इडां प्रेषा ग्रहां हविः ॥ १८ ॥
 चतुर्होतार आश्रियः
 चातुर्मास्यानि नीविदः ।
 उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः
 पशुबन्धास्तादिष्टयः ॥ १९ ॥
 अर्धमासाश्च मासाश्च
 आर्तवा ऋतुभिः सह ।
 उच्छिष्टे घोषिणीरापः
 स्वनयित्नुः श्रुतिर्मही ॥ २० ॥
 शकंराः सिकता अश्मान
 ओषधयो वीरुघृस्तृणा ।

अत्राणि विद्युतो वर्षम्
 उच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥ २१ ॥
 राद्धिः प्राप्तिः संमाम्निः
 व्याप्तिर्मिह एघृतुः ।
 अत्यामिरुच्छिष्टे भूतिः
 चाहिता निर्हिता हिता ॥ २२ ॥
 यच्च प्राणति प्राणेन
 यच्च पश्यति चक्षुषा ।
 उच्छिष्टाज्जिरे सर्वे
 द्विवि देवा दिविश्रितः ॥ २३ ॥
 ऋचः सामानि च्छन्दांसि
 पुराणं यज्ञेषा सह ।
 उच्छिष्टाज्जिरे सर्वे
 द्विवि देवा दिविश्रितः ॥ २४ ॥
 प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्र-
 मक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
 उच्छिष्टाज्जिरे सर्वे
 द्विवि देवा दिविश्रितः ॥ २५ ॥
 आनन्दा मोदाः प्रसृदा-
 ऽमीमोदसृदश्च ये ।
 उच्छिष्टाज्जिरे सर्वे
 द्विवि देवा दिविश्रितः ॥ २६ ॥
 देवाः पितरो मनुष्या
 गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
 उच्छिष्टाज्जिरे सर्वे
 द्विवि देवा दिविश्रितः ॥ २७ ॥

५ पुरुषे ब्रह्म ।

॥ १ ॥ (भा० य० २३१, ११, १०-५२)

कः स्विदेकाकी चरति
 क उं स्विज्जायते पुनः ।
 कि० स्विद्धिमसं भेषजं
 कि० भ्रावर्षनं महत् ॥ ९ ॥
 का स्विदासीत् पूर्वचित्तिः
 कि० स्विदासीद्ब्रह्मद्वयः ।
 का स्विदासीत् पिलिप्पिला
 का स्विदासीत् पिशाङ्गिला ॥ ११ ॥
 कि० स्विद् सूर्यसमं ज्योतिः
 कि० समुद्रसमं सरः ।
 कि० स्विद् पृथिव्यै वर्षीयः
 कस्य मात्रा न विद्यते ॥ ४७ ॥
 ब्रह्म सूर्यसमं ज्योति-
 र्यौः समुद्रसमं सरः ।
 इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान्
 गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥ ४८ ॥

पृच्छामि त्वा चित्तये देवमग्न
 यदि त्वमग्न मनसा जगन्थ ।
 येषु विष्णुं छिपु पदेधेष्टः
 तेषु विश्वं भुवन्मा विवेश ॥ ४९ ॥
 अपि तेषु त्रिपु पदेध्वस्मि
 येषु विश्वं भुवन्मा विवेश ।
 सद्यः पर्येमि पृथिवीमुत् घाम्
 एकेनाङ्गेन दिवो अस्य पृष्ठम् ॥ ५० ॥
 केन्वन्तः पुरुष आ विवेश
 कान्यन्तः पुरुषे अपितानि ।
 एतद्ब्रह्मन्नुप ब्रह्मामसि त्वा
 कि० स्विन्नः प्रति बोचास्पत्र ॥ ५१ ॥
 पञ्चस्वन्तः पुरुष आ विवेश
 तान्यन्तः पुरुषे अपितानि ।
 एतत् त्वात्र प्रतिमन्वानो अस्मि
 न मायया भवस्युर्चरो मत् ॥ ५२ ॥ (१००)

६ ब्रह्मणि देवताः ।

(अथर्व० ५।२४।-१७)

(१-५२) अथर्वा । [ब्रह्मणम्] । ब्रह्मकर्मात्मा; १ सविता, २ अग्निः, ३ द्यावापृथिवी, ४ वरुणः, ५ मित्रावरुणौ,
 ६ महत, ७ सोम, ८ वायु, ९ सूर्य, १० चन्द्रमा, ११ इन्द्रः, १२ महता पिता, १३ मृत्यु, १४ यम,
 १५ पितरः, १६ तता, १७ ततामदा । अतिशक्ती; १-१०, १२-१४ चतुष्पदातिशक्ती;
 ११ शक्ती, १५-१६ त्रिपदा भुरिरजगती; १७ त्रिपदा विराट् शक्ती ।

सविता प्रसुवानामर्षिपतिः स मावतु ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां
 पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
 चिर्यामस्यामाकृत्यामस्या-
 साशिन्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा ॥ १ ॥

अग्निर्वनुस्पतीनामर्षिपतिः स मावतु ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ० ॥ २ ॥
 द्यावापृथिवी दातुणामर्षिपती ते मावताम् ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ० ॥ ३ ॥
 वरुणोऽपामर्षिपतिः स मावतु ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ० ॥ ४ ॥ (१०४)

मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ मां वताम् ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ० ॥ ५ ॥
 मरुतः पर्येतानामधिपतयस्ते मां वन्तु ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ० ॥ ६ ॥
 सोमो धीरुघामधिपतिः स मां वतु ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ० ॥ ७ ॥
 वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मां वतु ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ० ॥ ८ ॥
 सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मां वतु ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ० ॥ ९ ॥
 चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मां वतु ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ० ॥ १० ॥
 इन्द्रो दिवोऽधिपतिः स मां वतु ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ० ॥ ११ ॥

मरुतां पिता पशूनामधिपतिः स मां वतु ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ० ॥ १२ ॥
 मृत्युः प्रजानामधिपतिः स मां वतु ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ० ॥ १३ ॥
 यमः पितृणामधिपतिः स मां वतु ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ० ॥ १४ ॥
 पितरः परे ते मां वन्तु ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ० ॥ १५ ॥
 तृता अरिरे ते मां वन्तु ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ॥ १६ ॥
 ततस्त्रतामहास्ते मां वन्तु ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् ० ॥ १७ ॥ (११७)

७ परमं गुह्यं धाम ।

अथर्व. कांड २, सूक्त १ (ऋषिः - वेनः । देवता - ब्रह्म, आत्मा)

वेनस्तत्परं इत्यपरमं गुहा यद्
 यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।
 इदं पृथ्विरदुहजायमानाः
 स्वविदो अभ्यन्तपतु ब्राह्मणः ॥ १ ॥
 प्र तद्वोचिदुमृतस्य विद्वान्
 गन्धर्वो धामं परमं गुहा यत् ।
 त्रीणि पदानि निर्हिता गुहास्य
 यस्तानि वेद स पितृष्पितासत् ॥ २ ॥
 स नः पिता जनिता स उत चन्धुः
 धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।

यो देवानां नामध एक एव
 तं संप्रश्रं भुवना यन्ति सर्वा ॥ ३ ॥
 परि द्यावापृथिवी सद्य आयुम्
 उपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य ।
 वार्चामिव वृक्तरिं भुवनेष्टा
 घ्रास्युरेप नन्वेक्षेपो अग्निः ॥ ४ ॥
 परि विश्वा भुवनान्यायम्
 श्रुतस्य तन्तुं विततं दृष्टे कम् ।
 यत्र देवा अमृतमानशानाः
 सन्माने योनावध्वरैर्यन्त ॥ ५ ॥ (१००)

८ महद्ब्रह्म ।

अथर्व कांड १, सूक्त ३२ (ऋषि — ब्रह्मा । देवता — यावापृथिवी)

इदं जनासो विदथं
महद्ब्रह्मं वदिष्यति ।
न तत्पृथिव्यां नो द्विवि
येन प्राणान्ति वीरुधः ॥ १ ॥

अन्तरिक्ष आसां स्थाम्
श्रान्तसदामिव ।
आस्थानमस्य भूतस्य
विदुष्टद्वेषसो न वा ॥ २ ॥

यद्रोदसी रेजमाने
भूमिश्च निरतक्षतम् ।
आर्द्रं तदद्य सर्वदा
समुद्रस्यैव स्रोत्याः ॥ ३ ॥

विश्वमन्याममीवार
तदन्यस्यामधिश्चितम् ।
दिवे च विश्ववेदसे
पृथिव्यै चाकरं नमः ॥ ४ ॥

९ तुरीयं ब्रह्म ।

अथर्व. कांड ७, सूक्त १ (ऋषि — अथर्वा ' ब्रह्मवर्चसकाम ' । देवता — आरमा)

धीती वा ये अनयन्वाचो अग्रं
मनसा वा येऽवदभृतानि ।
तुरीयेन ब्रह्मणा वावृषानास्
तुरीयेणामन्वत् नाम धेनोः ॥ १ ॥

स वेद पुत्रः पितरं स मातरं
स सुतुर्भुवत्स भुवत्पुनर्मघः ।
स द्यामौर्णोदन्तरिक्षं स्वर्गः
स इदं विश्वमभवत्स आभवत् ॥ २ ॥

१० ब्रह्मप्रसिः ।

अथर्व. कांड ७, सूक्त ६६ (६८) (ऋषि. - ब्रह्मा । देवता= ब्रह्मा)

यद्यन्तरिक्षे यद्वि वात आस
यदि वृक्षेषु यद्वि चोर्लपेषु ।

यदश्रवन्पद्मव उद्यमानं
तद्ब्राह्मणं पुनस्मानुपैतु ॥ १ ॥ (१९९)

परि धावांपृथिवी सद्य इत्वा
 परि लोकान् परि दिशः परि स्वः ।
 श्रुतस्य तन्तुं धितं विचृत्य
 तदपश्यत् तदभवत् तदासीत् ॥ १२ ॥
 सदस्यस्यतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रंस्म काम्यम् ।
 सनि मेधामेयासिपथं स्वार्हा ॥ १३ ॥
 यां मेधां देवगणाः पितरंश्चोपासते ।
 तया मामद्य मेधयाऽप्रे मेधाविर्न कुरु स्वाहा ॥ १४ ॥
 मेधां मे वरुणो ददातु
 मेधामग्निः प्रजापतिः ।
 मेधामिन्द्रश्च वायुश्च
 मेधां घाता ददातु मे स्वार्हा ॥ १५ ॥
 इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं
 चोमे श्रियंमश्रुताम् ।
 मयि देवा दधतु श्रियम्
 उत्तमां तस्यै ते स्वार्हा ॥ १६ ॥
 ॥ १३ ॥ (वा० य० ४०१-१५)
 ईशा वास्यमिदं सर्वं
 यत् किं च जगत्यां जगत् ।
 तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा
 मा गृधः कस्य सिद्धनम् ॥ १ ॥
 कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतथं समाः ।
 एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरैः ॥ २ ॥
 असुर्या नाम ते लोका
 अन्धेन तमसावृताः ।
 तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति
 ये के चात्महनो जनाः ॥ ३ ॥
 अनेन देकं मनसो जवीयो
 नेनेनैवा आप्नुवन् पृथमर्थात् ।

तद्भावतोऽन्यानत्वेति विष्टुत्
 तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥
 तदेजति तत्रैजति तदूरे तद्वन्तिके ।
 तदुन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५ ॥
 यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
 सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिंकित्सति ॥ ६ ॥
 यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानुतः ।
 तत्र को मोहः कः शोकं एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥
 स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्
 अस्ताविरथं शुद्धमपापविद्धम् ।
 कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
 व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाम्यः ॥ ८ ॥
 अन्धं तमः प्र विशन्ति येऽसंभृतिमुपासते ।
 ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भृत्याथ रताः ॥ ९ ॥
 अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
 इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥
 संभृतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह ।
 विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभृत्यामृतमश्नुते ॥ ११ ॥
 अन्धं तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
 ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥ १२ ॥
 अन्यदेवाहुर्विद्यायां अन्यदाहुरविद्यायाः ।
 इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३ ॥
 विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।
 अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥ १४ ॥
 वायुरानिलमृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् ।
 ओ३म् कृतो स्मर । क्लिबे स्मर । कृतं स्मर ॥ १५ ॥

॥ १४ ॥ (अथर्व० २।७।१-५)

(७१-७५) मातृनामा । गन्धर्वाध्वरसः [भुवनस्वतिसुकम्] ।
त्रिष्टुप्, १ विराट्जगती, ४ त्रिपाद्विराणात्री गायत्री,
५ सुरिगवष्टुप् ।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिः

एक एव नमस्यो विक्ष्वीर्ध्वः ।

तं स्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव
नमस्ते अस्तु दिवि ते सुधस्थम् ॥ १ ॥

दिवि स्पृष्टो यजतः स्यैत्सक्-
अवयाता हरसो दैव्यस्य ।

मृडाद्रेन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिः

एक एव नमस्योः सुशेवाः ॥ २ ॥

अनवद्याभिः सप्त जग्म आभिः
अप्सरास्वपिं गन्धर्व आसीत् ।

समुद्र आसां सदनं म आहुः

यतः सुध आ च परां च यन्ति ॥ ३ ॥

अग्निये दिद्युन्नक्षत्रिये या

विश्वार्त्सुं गन्धर्वं सचध्वे ।

ताभ्यो वो देवीर्नम इत्कृणोमि ॥ ४ ॥

याः कृन्दास्तमिषीचयोऽक्षकामा मनोमूर्धः ।

ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः ॥ ५ ॥

॥ १७ ॥ (अथर्व० ७।१।१-७)

(८१-१४१) अथर्वो (ब्रह्मवर्चधामः) । त्रिष्टुप्,
२ विराट् जगती ।

धीती वा ये अनयन् वाचो

अग्रं मनसा वा येऽवदन्तुतानिं ।

तूतीयेण ब्रह्मणा वावृधानाम्

तुरीयेणामन्वतु नाम घेनोः ॥ १ ॥

स वेद पुत्रः पितरं स मातरं

स सुनुभुवत् स भुवत् पुनर्मघः ।

स घामौणोदन्तरिखं स्वशूः

स इदं विश्वममवत् स आऽमवत् ॥ २ ॥

॥ १८ ॥ (अथर्व० ७।२।१) त्रिष्टुप् ।

अथर्वाणं पितरं देववन्धुं

मातुर्गर्भं पितरसुं युवानम् ।

य इमं यज्ञं मनसा चिकेत

प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥ १ ॥

॥ १९ ॥ (अथर्व० ७।३।१)

अया विष्ठा जनयन् कर्वराणि

स हि घृणिंरुर्वराय गातुः ।

स प्रत्युदैद् घरुणं मध्वो अग्रं

स्वयां तुन्व्यं तुन्व्यं भैरयत् ॥ १ ॥

॥ २० ॥ (अथर्व० ७।५।१-५)

त्रिष्टुप्, ३ पंक्ति, ४ अत्रष्टुप् ।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवासु

तानि धर्मीणि प्रयमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्तु

यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः ॥ १ ॥

यज्ञो बभूव स आ बभूव

स प्र जज्ञे स उ वावृचे पुनः ।

स देवानामधिपतिर्बभूव

सो अस्मासु द्रविणमा दधातु ॥ २ ॥

यद्देवा देवान् हविषाऽयजन्त

अमर्त्यान् मनुसामर्त्येन ।

मर्देम तत्र परमे ष्योमिन्

पश्येम तदुदितौ स्यैस्य ॥ ३ ॥

यत् पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत ।

अस्ति तु तस्मादोर्जायो यद्विहव्येनेजिरे ॥ ४ ॥

मुग्धा देवा उत द्युनायजन्त

उत गोरक्षैः पुरुषाऽयजन्त ।

य इमं यज्ञं मनसा चिकेत

प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥ ५ ॥

॥ २३ ॥ (अथर्वं ७ २१।१)

(१८१-१९४) ब्रह्मा । आत्मा (एव विभुः) ।

शक्तो विराड्गर्मा जगती ।

सुमेतु विश्वे वचंसा पतिं दिव
एको विभूरतिथिर्नानाम् ।
स पूर्यो नूतनमाविवांसुत्
तं वर्तनिरतुं वावृत एकमित् पुरु ॥ १ ॥

॥ २४ ॥ (अथर्वं ७।६।३।१) पुरः परेष्णिगृहती ।

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा
द्रविणं ब्राह्मणं च । पुनरद्रयो धिष्ण्यां
यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ॥ १ ॥

॥ २५ ॥ (अथर्वं ७।१०३।१)

आत्मा (क्षत्रियः) । त्रिष्टुप् ।

को अस्या नो द्रुहोऽव्यवर्त्या
उन्नैप्यति क्षत्रियो वस्य इच्छन् ।
को यज्ञकामं क उ पूर्तिकामः
को देवेषु वतुते दीर्घमायुः ॥ १ ॥

॥ २६ ॥ (अथर्वं ७।१०४।१) आत्मा (गौः) त्रिष्टुप् ।

कः प्राश्ने घेनुं वरुणेन दुत्ताम्
अथर्वणे सुदुष्यां नित्यवत्साम् ।
बृहस्पतिना सरुयं जुषाणो
यथावशं तन्वुः कल्पयाति ॥ १ ॥

॥ २७ ॥ (अथर्वं ९।१०।१९, २४-२९)

गौः विराट्, अध्यात्मं (आत्मा) । त्रिष्टुप्,
२४ अनुपदा पुरस्त्रित्पुरित्प्रगती ।

क्रुचः पदं मात्रया कल्पयन्तो-
ऽर्धचैनं चाकल्पुर्विश्वमेजत् ।
त्रिषाद् ब्रह्मं पुरुषं वि तष्टे
तेन जीवन्ति प्रादिशुश्रतंसः ॥ १९ ॥

विराट् नाग्विराट् पृथिवी
विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः ।
विराण्पृत्युः साध्यानोमधिराजो बभूव
तस्य भूतं भव्यं वशे
स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु ॥ २४ ॥
शुक्रमयं धूममारादपश्यं
विपूवतां पुर एनावरेण ।

उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्
तानि घर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ २५ ॥

॥ २८ ॥ (अथर्वं १९।५।१-२)

(आत्मा) १ आत्मा, २ सविता च । १ एकपदा
ब्राह्मो अनुष्टुप्, २ त्रिषाद्यवमध्योष्णिक् ।

अयुतोऽहमयुतो म आत्मा-
ऽयुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रम्
अयुतो मे प्राणोऽयुतो मेऽपानो
अयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥ १ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोः
बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रवृत् आ रभे ॥ २ ॥
कांड २, सूक्त ११

(श्रुतिः — इ.क. । देवता - इत्यादृषणम्)

दृष्या दूर्षिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमर्तिं सुमं क्राम ॥ १ ॥
स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरंणोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमर्तिं सुमं क्राम ॥ २ ॥
प्रति तमभि चर योऽस्मान्देष्टि यं वयं द्विष्मः ।
आप्नुहि श्रेयांसमर्तिं सुमं क्राम ॥ ३ ॥
सूरिरसि वचोधा असि तनुपानोऽसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमर्तिं सुमं क्राम ॥ ४ ॥
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्विरसि ज्योतिरसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमर्तिं सुमं क्राम ॥ ५ ॥ (१२७)



३ अध्यात्मम् ।

अध्यात्मम् ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ११।८।१-३४) (१-३४) कौकयिः । अत्यारमं, मन्युः । अतुष्टुप्, ३३ पठ्यापक्तिः ।

यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि ।
क आसं जन्याः केवराः कर्तव्येष्टवरोऽभवत् १
तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णिवे ।
त आसं जन्यास्तेवरा ब्रह्म ज्येष्टवरोऽभवत् २
दशं साकर्मजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।
यो वै तान्विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद्भेदेत् ३
प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोद्दानौ वाङ्मनस्ते वा आकृतिमाऽवहन् ४
अजाता आसन्नृतवोऽथो घाता वृहस्पतिः ।
इन्द्रामी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्टमपासत ५
तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णिवे ।
तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत्ते ज्येष्टमपासत ६
येत आसीद्भूमिः पूर्वा यामद्वातय इद्दिदुः ।
यो वै तां विद्यान्नामया स मन्येत पुराणवित् ७
कृत इन्द्रः कृतः सोमः कृतो अमिरंजायत ।
कृतस्त्वष्टा समभवत् कृतो घाताऽजायत ८
इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो अमेरभिरंजायत ।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टृर्घातुर्घाताऽजायत ९

ये त आसन् दशं जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते १०
यदा केज्ञानस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाऽभरत् ।
शरीरं कृत्वा पार्दवत् कं लोकमनु प्राविशत् ११
कृतः केज्ञान् कृतः स्नाव कृतो अस्थीन्याऽभरत् ।
अङ्गापर्वीणि मज्जानं को मांसं कृत आऽभरत् १२
संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्तसमभरन् ।
सर्वे संमिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाऽविशन् १३
ऊरू पादावष्टीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम् ।
पृष्ठीर्वर्ज्ज्जे पाश्वे कस्तत् समदघादधिः १४
शिरो हस्तावथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीर्कमाः ।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् संघा समदघान्मही १५
यत् तच्छरीरमशयत् संभया सिंहं महत् ।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाऽभरत् १६
सर्वे देवा उपाशिक्षन् तर्दजानाद्भूः सती ।
ईशा वशस्य या जाया साऽस्मिन् वर्णमाऽभरत् १७
यदा त्वष्टा व्यर्तणत् पिता त्वष्टुर्घ्य उत्तरः ।
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाऽविशन् १८, १९

स्वप्नो वै तन्द्रीनिर्झतिः पाप्मानो नाम देवताः ।
 जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन् १९
 स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत् ।
 बलं च क्षत्रमोर्जश्च शरीरमनु प्राविशन् २०
 भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।
 क्षुब्धश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् २१
 निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।
 शरीरं श्रद्धा दक्षिणाऽश्रद्धा चानु प्राविशन् २२
 विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
 शरीरं ब्रह्म प्राविशद्दृचः सामाधो यजुः २३
 आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽमीमोदमुदश्च यं ।
 हसो नरिणां नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् २४
 आलापार्थं प्रलापार्थांभीलापलपश्च ये ।
 शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः २५
 प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षित्तिश्च क्षित्तिश्च याः ।
 व्यानोदानौ वाय्वानः शरीरेण त ईयन्ते २६
 आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः ।
 चिच्चानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् २७
 आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।
 गुह्योऽशुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् २८
 अस्मिं कृत्वा समिधं तदुष्टापो असादयन् ।
 रेतः कृत्वाऽऽज्यं देवाः पुरुषमाऽविशन् २९
 या आपो यार्थं देवता या विराह ब्रह्मणा सह ।
 शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ३०
 धर्यश्चक्षुर्वीर्यः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
 अयास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नप्रपे ३१
 तस्माद्दे विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
 सर्वा यस्मिन् देवता गायो गोष्ठ इवासते ३२

प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विश्वः वि गच्छति ।
 अद एकेन गच्छत्यद
 एकेन गच्छतीद्वेकेन नि पँवते ३३
 अप्सु स्तीमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।
 तस्मिच्छवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते ३४
 काँच १३, सूक्त १
 (श्रुतिः — ब्रह्मा । देवता — अध्यारमम् ।)
 उदेहि वाजिन्यो अप्सवन्तर
 इदं राष्ट्रं प्र विश्वं सूनृतावत् ।
 यो रोहितो विश्वमिदं जजान
 स त्वा राष्ट्राय सुभृतं विभर्तु ॥ १ ॥
 उद्वाज आ गन्यो अप्सवन्तर
 विश्व आ रोह त्वद्योनयो याः ।
 सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाः
 चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ॥ २ ॥
 यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातरः
 इन्द्रेण यज्ञा प्र मृणीत शत्रून् ।
 आ वो रोहितः शृणवत्सुदानवस्
 निपुतासो मरुतः स्वादुसंमुदः ॥ ३ ॥
 रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह
 गर्भो जनीनां जलुषामुपस्थम् ।
 ताम्भिः संरन्ध्रमन्वंविन्दुन्पदुर्वीर
 गातं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः ॥ ४ ॥
 आ तै राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्पाद्
 व्यास्थिन्मृधो अमयं ते अभूत् ।
 तस्मै ते धावापृथिवी रेवतीभिः
 कामं दुहायामिह शकरीभिः ॥ ५ ॥
 रोहितो धावापृथिवी जजान
 तन्न तन्तुं परमेष्ठी ततान ।
 तत्र शिश्रियेऽज एकपादः
 अदँद्व धावापृथिवी बलेन ॥ ६ ॥ (२६७)

रोहितो द्यावापृथिवी अंहहत्
 तेन स्वर्गस्तमितं तेन नाकः ।
 तेनान्तरिक्षं विमिता रजांसि
 तेन देवा अमृतमन्वविन्दन् ॥ ७ ॥
 वि रोहितो अमृशद्विश्वरुपं
 समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च ।
 दिवं रूढ्वा महता महिम्ना
 सं तै राष्ट्रमनक्त पर्यसा घृतेन ॥ ८ ॥
 यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो
 यामिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
 तासां ब्रह्मणा पर्यसा वाशृष्टानो
 विशि राष्ट्रे जाशृष्टि रोहितस्य ॥ ९ ॥
 यास्ते विश्वस्तपसाः संभभूवुः
 वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः ।
 तास्त्वा विश्वन्तु मनसा शिवेन
 संमाता वत्सो अम्येतु रोहितः ॥ १० ॥
 ऊर्ध्वो रोहितो अधि नाकं अस्याद्
 विश्वा रूपाणि जनयन्पुवा कृविः ।
 तिग्मेनाभिज्योतिषा वि माति
 तृतीयं चक्रे रजसि प्रियाणि ॥ ११ ॥
 सहस्रयुद्धो वृषभो जातवेदा
 घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः ।
 मा मा हासीन्नाथितो नेत्वा
 जहानि गोपोपं च मे वीरपोपं च धेहि ॥ १२ ॥
 रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च
 रोहिताय वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
 रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमानाः
 स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु ॥ १३ ॥

रोहितो यज्ञं व्यदिधाद्विश्वकर्मणे
 तस्मात्तेजांस्युप भेमान्यागुः ।
 वोचेयं ते नाभिं मुवनस्याधि मज्जनिं ॥ १४ ॥
 आ त्वां रुरोह वृहत्युद्धत पङ्क्तिर्
 आ ककुब्बर्चसा जातवेदः ।
 आ त्वां रुरोहोष्णिहाक्षरो वपट्कार
 आ त्वां रुरोह रोहितो रेतसा सह ॥ १५ ॥
 अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या
 दिवं वस्तेऽयमन्तरिक्षम् ।
 अयं ब्रह्मस्यं विष्टपि स्वर्लोकान्व्याजिने ॥ १६ ॥
 वाचस्पते पृथिवी नः स्योना
 स्योना योनिस्तत्पा नः सुशेवा ।
 इहैव प्राणः सुर्ये नो अस्तु
 तं त्वां परमेष्ठिनपर्यगिरायुषा वर्चसा दधातु ॥ १७ ॥
 वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नो
 वैश्वकर्मणाः परि ये संवभूवुः ।
 इहैव प्राणः सुर्ये नो अस्तु
 तं त्वां परमेष्ठिनपरि रोहित
 आयुषा वर्चसा दधातु ॥ १८ ॥
 वाचस्पते सौमनसं मन्थ
 गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः ।
 इहैव प्राणः सुर्ये नो अस्तु
 तं त्वां परमेष्ठिनपर्यहमायुषा वर्चसा दधामि ॥ १९ ॥
 परिं त्वा घात्सन्विता देवो अभिर्
 वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।
 सर्वा अरातीरवकामन्वेडीदं
 राष्ट्रमकरः सनृतावत् ॥ २० ॥
 यं त्वा पूर्पती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित ।
 शुभा यासि रिणन्नपः ॥ २१ ॥

अक्षुव्रता रोहिणी रोहितस्य
 सूरिः सुवर्णा वृहती सुवर्चाः ।
 तथा वाजांस्त्रिभ्रूरुपाञ्जयेम्
 तथा विश्वाः पृथना अभि प्याम ॥ २२ ॥
 इदं सद्यो रोहिणी रोहितस्य
 असौ पन्थाः पृथती येन याति ।
 तां गन्धर्वाः कृश्यपा उन्नयन्ति
 तां रक्षन्ति कृषयोऽप्रमादम् ॥ २३ ॥
 सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः
 सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम् ।
 घृतपात्रा रोहितो आर्जमानो
 दिवं देवः पृथतीमा विवेश ॥ २४ ॥
 यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः
 पर्यग्निं परि सूर्यं वृभूवं ।
 यो विष्टभ्रातिं पृथिवीं दिवं च
 तस्माद्दिवा अधि सृष्टीः सृजन्ते ॥ २५ ॥
 रोहितो दिवमाहेहन्महतः पर्यर्णवात् ।
 सर्वां रुरोह रोहितो रुहः ॥ २६ ॥
 वि मिमीष्व पर्यस्वती घृताचीं
 देवानां घृत्तुरनपस्पृगेपा ।
 इन्द्रः सोमं पिचतु क्षेमो अस्तु
 अग्निः प्र स्तौतु वि मृषो जुदस्व ॥ २७ ॥
 समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।
 अभीषाद् विंश्यापाडग्निः सपत्नान्हन्तु ये मम २८
 हन्वन्नाम्प्र देहत्वरिषो नः घृत्नपति ।
 क्रुष्यादाग्निना वयं सपत्नान्प्र देहामसि ॥ २९ ॥
 अथाचीनानथ जुहीन्द्र वज्रेण पाहुमान् ।
 अपां सपत्नान्माप्रकान्प्रस्तेजोभिरादिपि ॥ ३० ॥

अग्ने सपत्नानधरान्पादय
 असह्यथयो सजातमुत्पियानं वृहस्पते ।
 इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे
 पद्यन्तामप्रतिमन्युयमानाः ॥ ३१ ॥
 उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानथ मे जहि ।
 अवेनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥ ३२ ॥
 वत्सो विराजो वृषभो मतीनां
 आ रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम् ।
 घृतेनाकर्मभ्युचन्ति वत्सं
 ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥ ३३ ॥
 दिवं च रोहं पृथिवीं च रोह
 राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ।
 प्रजां च रोहामृतं च रोह
 रोहितेन तन्वंतु सं स्पृशस्व ॥ ३४ ॥
 ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम् ।
 तैष्टे रोहितः संविदानो
 राष्ट्रं देघातु सुमनस्यमानः ॥ ३५ ॥
 उक्त्वा यज्ञा ब्रह्मपृता वहन्ति
 अध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ।
 तिरः समुद्रमति रोचसेऽणुवम् ॥ ३६ ॥
 रोहिते घावांपृथिवी अधि श्रिते
 वंसुजितिं गोजितिं संघनाजितिं ।
 सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च
 वोचेयं ते नामिं सुवनेस्याधिं मुज्मनि ॥ ३७ ॥
 यथा यासि प्रदिशो दिशश्च
 यथाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।
 यथाः पृथिव्या अदित्या उपस्ये
 अहं भूयासं सवितेव चारुः ॥ ३८ ॥ (१९९)

अमृत्र सन्निह वेत्येतः संस्तानि पश्यसि ।
 इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥३९॥
 देवो देवान्मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे ।
 समानमग्निर्मन्धते तं विंदुः कवयः परं ॥ ४० ॥
 अवः परेण पर एनावरेण
 पदा वत्सं विभ्रंती गौरुदंस्यात् ।
 सा कद्रीची कं स्विदधं परागात्
 क्त्वा स्विच्छते नहि युथे अस्मिन् ॥ ४१ ॥
 एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी
 अष्टापदी नवपदी बभ्रुवुषी ।
 सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्
 तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥ ४२ ॥
 आरोहन्धाममृतः प्रावं मे वचः ।
 उच्चां यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्ति
 अध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ॥ ४३ ॥
 वेदु तत्तं अमर्त्यं यत्तं आक्रमणं दिवि ।
 यत्तं सधस्यं परमे ष्योमिन् ॥ ४४ ॥
 सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्यं आपोऽति पश्यति ।
 सूर्यो मृतस्यैकं चक्षुरा करोह दिवं महीम् ॥४५॥
 उर्वीरासनपरिधयो वेदिभूमिरकल्पत ।
 तत्रैतावृषी आर्षत् हिमं प्रंसं च रोहितः ॥४६॥
 हिमं प्रंसं चाधाय यूपान्कृत्वा पर्वतान् ।
 वर्षाज्यावृषी ईजाते रोहितस्य स्वविंदः ॥ ४७ ॥
 स्वविंदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते ।
 तसां हंसस्तसां द्विमस्तसां धञ्जोऽजायत ॥ ४८ ॥
 ब्रह्मणाग्नी वावृषानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ ।
 ब्रह्मेद्रावृषी ईजाते रोहितस्य स्वविंदः ॥ ४९ ॥
 सत्ये अन्यः समाहितोऽप्यन्यः समिध्यते ।
 ब्रह्मेद्रावृषी ईजाते रोहितस्य स्वविंदः ॥ ५० ॥

यं वातः परि शुम्भन्ति यं वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।
 ब्रह्मेद्रावृषी ईजाते रोहितस्य स्वविंदः ॥ ५१ ॥
 वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् ।
 प्रंसं तदग्निं कृत्वा चुकार विश्वं
 आत्मन्वद्वर्षेणाज्येन रोहितः ॥ ५२ ॥
 वर्षमाज्यं प्रंसो अग्निर्वेदिभूमिरकल्पत ।
 तत्रैतान्पर्वतानग्निर्गीर्भिर्हूर्ध्वं अकल्पत ॥ ५३ ॥
 गीर्भिरूर्ध्वान्कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत् ।
 त्वयीदं सर्वं जायतां यद्भूतं यच्च माव्यम् ॥५४॥
 स यज्ञः प्रथमो मृतो भव्यो अजायत ।
 तसां द्व जज्ञ इदं सर्वं यत्किं चेदं विरोचते
 रोहितेन ऋषिणाभृतम् ॥ ५५ ॥
 यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति ।
 तस्यं वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥५६॥
 यो माभिच्छायमत्येपि मां चाग्निं चान्तरा ।
 तस्यं वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥५७॥
 यो अद्य देव सूर्यं त्वां च मां चान्तरायति ।
 दुष्पण्यं तस्मिच्छमलं दुरितानि च मृज्महे ॥५८॥
 मा प्र गाम् पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
 मान्त स्युर्नो अरातयः ॥ ५९ ॥
 यो यज्ञस्यं प्रसाधनस्तन्तुदेवेष्वारतः ।
 तमाहुतमशीमहि ॥ ६० ॥
 कांड ११, सूक्त १
 (ऋषिः - ब्रह्मा । देवता - अध्यात्मं, रोहितादिलदेवत्वम् ।)
 उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भार्जन्त ईरते ।
 आदित्यस्यं नचक्षंसो महिं त्रतस्य मीढुषः ॥ १ ॥
 दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमचिपां
 सुपक्षमाशुं तपयन्तमर्णवे ।
 स्वर्गाम् सूर्यं भुवनस्य गोपां
 यो रश्मिभिर्दिक्षं आभाति सर्वाः ॥ २ ॥ (१३३)

यत्प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीमं
 नानारूपे अहनी कर्षि मायया ।
 तदादित्य महि तत्ते महि श्रुते
 यदेको विश्वं परि भूम जायसे ॥ ३ ॥
 विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं
 वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः ।
 सुताद्यमत्त्रिर्दिवमृन्निनाय
 तं त्वां पश्यन्ति परियान्तंमाजिम् ॥ ४ ॥
 मा त्वां दभन्परियान्तंमाजि
 स्वस्ति दुर्गा अति याहि शीमंम् ।
 दिवं च सूर्यं पृथिवीं च देवीम्
 अहोरात्रे विमिमानो यदेपि ॥ ५ ॥
 स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय
 येनोभावन्तौ परियासिं सुद्यः ।
 यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः
 शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥ ६ ॥
 सुखं सूर्यं रथमंशुमन्तं स्थोनं
 सुवाहिमधि तिष्ठ वाजिनम् ।
 यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः
 शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥ ७ ॥
 सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे
 हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त ।
 अमोचि शुक्रो रजसः पुरस्तात्
 विधूर्यं देवस्तमो दिवमारुहत् ॥ ८ ॥
 उत्केतुना बृहता देव आगन्
 अपावृक्तमोऽग्नि ज्योतिरश्रुत् ।
 दिव्यः सुपर्णः स बीरो व्यष्ट्युत्
 अर्दितः पुत्रो भुवंनाजि विश्वा ॥ ९ ॥

उद्यन्नमीना तनुपे विश्वा रूपाणि पुष्यसि ।
 उमा समुद्रौ क्रतुना वि मासि
 सर्वाँहोकाणपरिभूर्भ्राजमानः ॥ १० ॥
 पूर्वापरं चरतो माययैतौ
 विश्व क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
 विश्वान्वो भुवंना विचष्टे
 हिरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति ॥ ११ ॥
 द्विवि त्वात्त्रिरधायत्सूर्या मासाय कर्तवे ।
 स एपि सुधृतस्तपन्विश्वा भूतावचार्कशत् ॥ १२ ॥
 उभावन्तौ समर्षसि वत्सः संमानराविव ।
 नन्वेष्टतदितः पुरा ब्रह्मं देवा अमी विन्दुः ॥ १३ ॥
 यत्संमुद्रमनुं श्रितं तत्सिपासति सूर्यः ।
 अर्षास्य विततो महानपूर्वश्चापरश्च यः ॥ १४ ॥
 तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नार्प चिकित्सति ।
 तेनामृतस्य भक्षं देवानां नार्ष रुचते ॥ १५ ॥
 उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
 ह्ये विश्वाय सूर्यम् ॥ १६ ॥
 अप त्ये तायवो यया नक्षत्रा यन्त्युक्तभिः ।
 सूराय विश्वचक्षसे ॥ १७ ॥
 अट्भ्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अतु ।
 भ्राजन्तो अग्रयो यथा ॥ १८ ॥
 तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिःकृदसि सूर्य ।
 विश्वमा भासि रोचन ॥ १९ ॥
 प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्हुदैपि मानुषीः ।
 प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ २० ॥
 येनां पावक चर्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अतु ।
 त्वं वरुण पश्यसि ॥ २१ ॥
 वि धामेपि रजस्पृध्वहमिमानो अक्तभिः ।
 पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥ २२ ॥

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
 शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥ २३ ॥
 अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरौ रथस्य नृप्युः ।
 तार्भिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ २४ ॥
 रोहितो दिवमारुहचर्षसा तपस्वी ।
 स योनिमैति स उ जायते पुनः
 स देवानामधिपतिर्भूव ॥ २५ ॥
 यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखः
 यो विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृथः ।
 सं बाहुभ्यां भरति सं पतत्रैर्
 धावांपृथिवी जनयन्देव एकः ॥ २६ ॥
 एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे
 द्विपात्त्रिपादसुभ्येति पश्चात् ।
 द्विपाद् पदपदो भूयो वि चक्रमे
 त एकपदस्तन्वं शु समासते ॥ २७ ॥
 अतन्द्रो यास्यन्हरितो यदास्याद्
 द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
 केतुमानुघन्तसहमानो रजांसि
 विश्वा आदित्य प्रवतो वि मांसि ॥ २८ ॥
 वषमहाँ अंसि सूर्यं बहादित्य महाँ अंसि ।
 महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ अंसि ॥ २९ ॥
 रोचसे द्विवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग
 पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्सवृन्तः ।
 उमा संमुद्रौ रुच्या व्यापिथ
 देवो देवासि महिषः स्वजित् ॥ ३० ॥
 अर्वाह् पुरस्तात्प्रयतो व्युध्व
 आशुर्विपृथित्यतयन्पतङ्गः ।
 विष्णुर्विचिंतः शर्वसाधितिष्ठन्
 प्र केतुना सहते विश्वमेजद ॥ ३१ ॥

चित्रश्रिकित्त्वान्महिषः सुपर्णः
 आरोचयन्नेदंसी अन्तरिक्षम् ।
 अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने
 प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्षाणि ॥ ३२ ॥
 तिमो विभ्राजन्तन्वं शु शिशानः
 अरंग्मासः प्रवतो रराणः ।
 ज्योतिष्मान्पक्षी महिषो वयोधा
 विश्वा आस्यात्प्रदिशः कल्पमानः ॥ ३३ ॥
 चित्रं देवानां केतुरनीकं
 ज्योतिष्मान्प्रदिशः सूर्यं उद्यन् ।
 दिवाकरोऽति द्युमैस्तर्मांसि
 विश्वातारीहुरितानि शुक्रः ॥ ३४ ॥
 चित्रं देवानामुदगादनीकं
 चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
 आप्राद् धावांपृथिवी अन्तरिक्षं
 सूर्यं आत्मा जगत्स्तस्त्रुपर्षथ ॥ ३५ ॥
 उचा पतन्तमरुणं सुपर्णं
 मर्ष्यं दिवस्तराणि भ्राजमानम् ।
 पश्याम त्वा सवितारं यमाहूर्
 अजस्रं ज्योतिर्यदविन्दुदत्त्रिः ॥ ३६ ॥
 दिवस्पृष्टे धावमानं सुपर्णं
 अदित्याः पुत्रं नायकाम उपं यामि मीतः ।
 स नः सूर्यं प्र तिरं द्दीर्घं
 आयुर्मा रिपाम सुमर्तो तं स्याम ॥ ३७ ॥
 सहस्राह्यं विर्यतावस्य पृथी
 हरिंसस्य पततः स्वर्गम् ।
 स देवान्सर्वानुरास्युपदध
 संपश्यन्पाति स्रवनाति विश्वा ॥ ३८ ॥ (३९९)

रोहितः कालो अमवद्रोहितोऽग्रे प्रजापतिः ।
 रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितुः स्वराभरत् ॥३९॥
 रोहितो लोको अमवद्रोहितोऽत्यतपद्भिर्म् ।
 रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत् ॥४०॥
 सर्वा दिशः समचरद्रोहितोऽधिपतिर्दिवः ।
 दिवं समुद्रमाद्भूमिं सर्वं भूतं वि रक्षति ॥४१॥
 आरोहन्लुको बृहतीरतन्द्रो
 द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
 चित्रश्चिक्त्स्वान्महिषो वरतं
 आया यावतो लोकानभि यद्विभार्ति ॥ ४२ ॥
 अम्ययून्यदति पर्यन्यदस्यते
 अहोरात्राभ्यां महिषः कल्पमानः ।
 सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं
 गातुविदं हवामहे नाधमानाः ॥ ४३ ॥
 पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुर्
 अदब्धचक्षुः परि विश्वं वभूव ।
 विश्वं संपश्यन्सुविदत्रो यजत्र
 इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥ ४४ ॥
 पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं
 ज्योतिषा विभ्राजन्परि धामन्तरिक्षम् ।
 सर्वं संपश्यन्सुविदत्रो यजत्र
 इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥ ४५ ॥
 अबोधयग्निः समिधा जनानां
 प्रति धेनुमिवायतीमुपासम् ।
 यद्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः
 प्र भानवः सिसृते नाकुमच्छ ॥ ४६ ॥

कांड १३, सूक्त ३

(ऋषिः— ब्रह्मा । देवता— अग्न्यात्मम्, रोहितादित्यदेवत्वम् ।)

य इमे धावापृथिवी जज्ञान
 यो द्रापि कृत्वा भुवन्नानि वस्तं ।

यस्मिन्क्षियन्ति प्रदिशः पटुर्वार
 याः पतङ्गो अनु विचाकंशीति ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो
 य एवं विद्रांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
 उद्वेपय रोहितु प्र क्षिणीहि
 ब्रह्मज्यस्य प्रति मृञ्च पाशान् ॥ १ ॥
 यस्माद्वातां ऋतुथा पवन्ते
 यस्मात्समुद्रा अधि विश्वरन्ति ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो ॥ २ ॥
 यो मारयति प्राणयति यस्मात्
 प्राणान्ति भुवन्नानि विश्वा ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो ॥ ३ ॥
 यः प्राणेन धावापृथिवी तर्पयति
 अपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपति ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो ॥ ४ ॥
 यस्मिन्निवाद् परमेष्ठी प्रजापतिः
 अग्निर्वैश्वानरः सह पृङ्क्त्या श्रितः
 यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आदुदे ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो ॥ ५ ॥
 यस्मिन्पटुर्वीः पञ्च दिशो अधिश्रिताः
 चर्तन् आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः ।
 यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत् ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो ॥ ६ ॥
 यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः ।
 भूतो मविष्यद् भुवन्नस्य यस्पतिः ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो ॥ ७ ॥
 अहोरात्रैर्विमितं त्रिष्टदङ्गं
 त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो ॥ ८ ॥ (३७५)

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णाः
 अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
 त आर्षवृत्रन्तसदनाहतस्य ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ ९ ॥
 यत्तं चन्द्रं कश्यप रोचनावत्
 यत् संहितं पुंस्कलं चित्रमानु ।
 यस्मिन्त्सूर्या आपिताः सप्त साकम्
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १० ॥
 बृहदेनमनुं वस्ते पुरस्ताद्
 रथन्तरं प्रति गृह्णाति पश्चात् ।
 ज्योतिर्षसानि सदुमप्रमादम्
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ ११ ॥
 बृहदुन्यतः पृथ आसीद्रथन्तरं
 अन्यतः पर्वले मधीचीं ।
 यद्रोहितमजनपन्तु देवाः ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १२ ॥
 स वरुणः सायमग्निर्भवति
 स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् ।
 स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति
 स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवंम् ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १३ ॥
 सहस्राह्यं विपतावस्य पृथी
 हरैर्हिसस्य पततः स्रुर्गम् ।
 स देवान्सर्वाणुरस्युपदयं
 संपश्यन्पाति भुवनेनानि विश्वा ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १४ ॥
 अयं स देवो अप्सवृन्तः
 सहस्रमूलः पुरुबाको अर्तित्रः ।
 य इदं विश्वं भुवनेन जजान् ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १५ ॥

शुक्रं वहन्ति हरयो रघुप्यदः
 दुवं दिवि वर्षसा भ्राजमानम् ।
 यस्योर्ध्वा दिवं तन्वृस्तपन्ति
 अर्वाद् सुवर्णैः पटैरिव भाति ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १६ ॥
 येनादित्यान्हरितः संवहन्ति
 येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्तः ।
 यदेकं ज्योतिर्वहुषा विभार्ति ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १७ ॥
 सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रं
 एको अश्वो वहति सप्तनामा ।
 त्रिनाभिं चक्रमजरमनुवं
 यत्रेमा विश्वा भुवनाधिं तस्युः ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १८ ॥
 अष्टधा युक्तो वहति वहिर्गुरः
 पिता देवानां जनिता मतीनाम् ।
 श्रुतस्य तन्तुं मनसा मिमानः
 सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ १९ ॥
 सम्यञ्च तन्तुं श्रुदियोऽनु सर्वा
 अन्तर्गोयत्र्याममृतस्य गर्भं ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २० ॥
 निम्बुर्चस्त्रिस्रो स्युर्पो ह निम्बम्
 त्रीणि रजामि दिवो अङ्ग तिस्रः ।
 विद्या तै अग्ने त्रेधा जनित्रं
 त्रेधा देवानां जनिमानि विद्म ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २१ ॥
 वि य और्णोत्पृथिर्धो जार्यमान
 आ समुद्रमदधादुन्तरिक्षे ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २२ ॥ (३८९)

त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितः
 अर्द्धकः समिद्ध उदरोचथा दिवि ।
 किमभ्यार्चिन्मरुतः पृश्निमातरौ
 यद्रोहितमर्जनयन्त देवाः ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २३ ॥
 य आत्मदा बलदा यस्य विश्वं
 उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
 योऽस्येते द्विपदे यश्चतुष्पदः ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २४ ॥
 एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे
 द्विपात्त्रिपादमुभ्येति पश्चात् ।
 चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्यरे
 संपश्यन्पृच्छक्तिमुपतिष्ठमानः ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २५ ॥
 कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्यां वृत्सोऽजायत ।
 स ह धामर्षि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥ २६ ॥

कांड १३, सूक्त ४

(ऋषिः— ब्रह्मा । देवता— अश्वत्थामम्, राहितादित्यदेवत्वम् ।)

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्टेऽवचाकश्यत् ॥ १ ॥
 रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ २ ॥
 स घाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्लितम् ।
 रश्मिभिः० ॥ ३ ॥
 सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ।
 रश्मिभिः० ॥ ४ ॥
 सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः ।
 रश्मिभिः० ॥ ५ ॥
 तं घृत्मा उर्षं तिष्ठन्त्पेकशीर्षाणो युता दश ।
 रश्मिभिः० ॥ ६ ॥

पश्चात्प्राञ्च आ तन्वन्ति यद्गदेति वि भासति ।
 रश्मिभिः० ॥ ७ ॥
 तस्यैप मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः ॥ ८ ॥
 रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ९ ॥
 तस्येमे नव कोशी शिष्टम्भानवघा हितः ॥ १० ॥
 स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥ ११ ॥
 तमिदं निर्गतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥ १२ ॥
 एते असिन्देवा एकवृत्तो भवन्ति ॥ १३ ॥
 कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नमश्च
 ब्राह्मणवर्चसं चार्त्तं चान्नाद्यं च ॥ १४ ॥
 य एतं देवमेकवृत्तं वेदं ॥ १५ ॥
 न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।
 य एतं० ॥ १६ ॥
 न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।
 य एतं० ॥ १७ ॥
 नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।
 य एतं० ॥ १८ ॥
 स सर्वैस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।
 य एतं० ॥ १९ ॥
 तमिदं निर्गतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।
 य एतं० ॥ २० ॥
 सर्वे असिन्देवा एकवृत्तो भवन्ति । य एतं० ॥ २१ ॥
 ब्रह्मं च तपश्च कीर्तिश्च
 यशश्चाम्भश्च नमश्च ब्राह्मणवर्चसं
 चार्त्तं चान्नाद्यं च । य एतं० ॥ २२ ॥
 भूतं च भयं च श्रद्धा च
 रुचिश्च स्वर्गश्च स्वघा च ॥ २३ ॥
 य एतं देवमेकवृत्तं वेदं ॥ २४ ॥
 स एष मृत्युः सोऽष्टवृत्तं सोऽष्टवृत्तं स रक्षः ॥ २५ ॥

स रुद्रो बंसुवनिर्वसुदेयं
 नमोवाके वपट्कारोऽनु संहितः ॥ २६ ॥
 तस्येमे सर्वे यातव उपे प्रशिपमामते ॥ २७ ॥
 तस्याम् सर्वा नक्षत्रा वर्षे चन्द्रमसा सह ॥ २८ ॥
 स वा अहोऽजायत तस्मादहंरजायत ॥ २९ ॥
 स वै रात्र्या अजायत तस्माद्रात्रिरजायत ॥ ३० ॥
 स वा अन्तरिक्षादजायत
 तस्मादन्तरिक्षमजायत ॥ ३१ ॥
 स वै वायोरजायत तस्माद्वायुरजायत ॥ ३२ ॥
 स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्वजायत ॥ ३३ ॥
 स वै दिग्भ्योऽजायत तस्माद्दिशोऽजायन्त ३४
 स वै भूमरजायत तस्माद्भूमिरजायत ॥ ३५ ॥
 स वा अग्नेरजायत तस्माद्गमिरजायत ॥ ३६ ॥
 स वा अन्नोऽजायत तस्मादापोऽजायन्त ॥ ३७ ॥
 स वा ऋग्भ्योऽजायत तस्माद्दृचोऽजायन्त ३८
 स वै यज्ञादेजायत तस्माद्यज्ञोऽजायत ॥ ३९ ॥
 स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ॥ ४० ॥
 स स्तनयति स वि द्योतते
 स उ अहमानमस्यति ॥ ४१ ॥
 पापाय वा भद्राय वा पुरुंपायासुराय वा ॥ ४२ ॥
 यदा कृणोष्योपघोर्यद्वा वर्षसि
 भद्रया यदा जन्ममवीवृधः ॥ ४३ ॥
 तावांस्ते मघवन्महिमोपो ते तुन्वः श्रुतम् ॥ ४४ ॥
 उपो ते वष्वे यदानि यदि वासि न्युद्धुदम् ॥ ४५ ॥
 भूयानिन्द्रो नमुराद्भूयानिन्द्रासि मृत्युम्यः ॥ ४६ ॥
 भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि
 विभूः प्रभूरिति त्वोपासहे वयम् ॥ ४७ ॥
 नमस्ते अस्तु पश्यतु पश्य मा पश्यत ॥ ४८ ॥
 अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ४९ ॥

अम्मो अमो महः सह इति त्वोपासहे वयम् ।
 नमस्ते० । अन्ना० ॥ ५० ॥
 अम्मो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपासहे
 वयम् । नमस्ते० । अन्ना० ॥ ५१ ॥
 उरुः पृथुः सुभृभुव इति त्वोपासहे वयम् ।
 नमस्ते० । अन्ना० ॥ ५२ ॥
 प्रथो वरो व्यचौ लोक इति त्वोपासहे वयम् ।
 नमस्ते० । अन्ना० ॥ ५३ ॥
 भवेदसुरिददसुः संयदसुः
 आयदसुरिति त्वोपासहे वयम् ॥ ५४ ॥
 नमस्ते अस्तु पश्यतु पश्य मा पश्यत ॥ ५५ ॥
 अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५६ ॥

काण्ड १५, सूक्त १

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — अध्यात्म, मातृ ।)

(१)

ब्राह्म्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् १
 स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्पश्यत्तत्प्राजेनयत् ॥ २
 तदेकमभवत्तल्ललाममभवत्तन्महदभवत्
 तज्ज्येष्ठमभवत्तद्ब्रह्मामभवत्तत्तपः
 अमवत्तत्सत्यमभवत्तेन प्राजायत ॥ ३ ॥
 सोऽवर्धत स महानभवत्स महादेवोऽभवत् ॥ ४ ॥
 स देवानामीशां पर्येतस ईशानोऽभवत् ॥ ५ ॥
 स एकव्रात्योऽभवत्स धनुरादत्त
 तदुवेन्द्रधनुः ॥ ६ ॥
 नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ॥ ७ ॥
 नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोणीति
 लोहितेन द्विपन्तं विष्यतीति
 ब्रह्मणादिर्नो वदन्ति ॥ ८ ॥
 (२)
 स उदतिष्ठत्स प्राचीं दिशमनु व्यञ्जित् ॥ ११ ॥

त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितः
 अर्कः समिद्र उदरोचया द्विवि ।
 किमभ्यार्चिन्मरुतः पृश्निमातरौ
 यद्रोहितमर्जनयन्त देवाः ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २३ ॥
 य आत्मदा बलुदा यस्य विश्व
 उपासते प्रशिपं यस्य देवाः ।
 योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २४ ॥
 एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे
 द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
 चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्त्रे
 संपश्यन्पृष्टक्तिमुपतिष्ठमानः ।
 तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो० ॥ २५ ॥
 कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्यां वृत्सोऽजायत ।
 स ह धामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥ २६ ॥

काण्ड १३, सूक्त ४

(ऋषि- ऋषा । देवता- अध्यात्मम्, राहितादित्यदेवत्वम् ।)

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्टेऽनुचाकशत् ॥ १ ॥
 रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ २ ॥
 स घाता स विध्रता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् ।
 रश्मिमिः० ॥ ३ ॥
 सोऽर्ष्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ।
 रश्मिमिः० ॥ ४ ॥
 सो अग्निः म उ सूर्यः स उ एव महायमः ।
 रश्मिमिः० ॥ ५ ॥
 तं पत्मा उपं विष्टन्त्येकं ग्रीर्षाणो युता दश ।
 रश्मिमिः० ॥ ६ ॥

पश्चात्प्राञ्च आ तन्वन्ति यद्देति वि भासति ।
 रश्मिमिः० ॥ ७ ॥
 तस्यैव मारुतो गणः स एति शिष्याकृतः ॥ ८ ॥
 रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ९ ॥
 तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवघा हिताः ॥ १० ॥
 स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥ ११ ॥
 तमिदं निर्गतं सहः स एव एकं एकवृदेक एव ॥ १२ ॥
 एते असिन्देवा एकवृतो भवन्ति ॥ १३ ॥
 कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च
 ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ॥ १४ ॥
 य एतं देवमेकवृतं वेदं ॥ १५ ॥
 न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।
 य एतं ॥ १६ ॥
 न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।
 य एतं ॥ १७ ॥
 नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।
 य एतं ॥ १८ ॥
 स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।
 य एतं ॥ १९ ॥
 तमिदं निर्गतं सहः स एव एकं एकवृदेक एव ।
 य एतं ॥ २० ॥
 सर्वे असिन्देवा एकवृतो भवन्ति । य एतं ॥ २१ ॥
 ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च
 यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं
 चान्नं चान्नाद्यं च । य एतं ॥ २२ ॥
 भूतं च भव्यं च श्रद्धा च
 रुचिश्च स्वर्गर्थं स्वधा च ॥ २३ ॥
 य एतं देवमेकवृतं वेदं ॥ २४ ॥
 स एव मृत्युः सोऽमृतं सोऽश्वं स रक्षः ॥ २५ ॥

विद्युत्पृथ्वी स्तनयित्नुर्मागधो
 विज्ञानं वासोऽहंरुष्णीपं
 रात्रौ केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ २५ ॥
 श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दौ मनो विपद्यम् ॥ २६ ॥
 मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ
 वातः सारथी रेप्सा प्रतोदः ॥ २७ ॥
 कीर्तिश्च यशश्च पुरःसुरावेनं कीर्तिः
 गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥ २८ ॥

(३)

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत्तं देवा अत्रुवन्
 व्रात्य किं नु तिष्ठसीति ॥ १ ॥
 सोऽिन्द्रवीदासन्दी भे सं भरन्त्विति ॥ २ ॥
 तस्मै व्रात्यायासन्दी सममरन् ॥ ३ ॥
 तस्या ग्रीष्मश्च वमन्तश्च
 द्वौ पादावास्ता शरच्च वर्षाश्च द्वौ ॥ ४ ॥
 बृहच्च रथन्तरं चानूच्येद्दु आस्तां
 यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरश्च्ये ॥ ५ ॥
 ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यश्चः ॥ ६ ॥
 वेदं आस्तरणं ब्रह्मोपवर्हणम् ॥ ७ ॥
 सामासाद उद्गीथोऽपथ्रयः ॥ ८ ॥
 तामासन्दी व्रात्य आरोहत् ॥ ९ ॥
 तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्
 संकल्पाः प्रहाय्याई विश्वानि भूतान्युपसदः ॥ १० ॥
 विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो
 भवन्ति य एवं वेद ॥ ११ ॥

(४)

तस्मै प्राच्या दिशः ॥ १ ॥
 वासन्तौ मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्
 बृहच्च रथन्तरं चानुष्ठातारौ ॥ २ ॥

वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो
 बृहच्च रथन्तरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ३ ॥
 तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥ ४ ॥
 ग्रीष्मो मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्
 यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ॥ ५ ॥
 ग्रीष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो
 यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ६
 तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥ ७ ॥

वार्षिकौ मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्
 वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥ ८ ॥
 वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो
 वैरूपं च वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ९ ॥
 तस्मा उदीच्या दिशः ॥ १० ॥
 शरदौ मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्
 श्येतं च नौघसं चानुष्ठातारौ ॥ ११ ॥
 शरदावेनं मासाबुदीच्या दिशो गोपायतः
 श्येतं च नौघसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद १२
 तस्मै ध्रुवाया दिशः ॥ १३ ॥

हेमनौ मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्
 भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ ॥ १४ ॥
 हेमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो
 भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १५ ॥
 तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ॥ १६ ॥
 शैशिरौ मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्
 दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ॥ १७ ॥
 शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो
 दैव्यादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १८ ॥

तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च
 विश्वे च देवा अनूव्यचलन् ॥ २ ॥
 बृहते च वै स रथन्तराय च
 आदित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च
 देवेभ्य आ बृश्ते
 य एवं विद्वांसं ब्राह्मणमुपवदति ॥ ३ ॥
 बृहत्तश्च वै स रथन्तरस्य च
 आदित्यानां च विश्वेषां च
 देवानां प्रियं धाम भवति
 तस्य प्राच्यां दिशि ॥ ४ ॥
 श्रद्धा पुंश्चली पिश्रो मांगुघो
 विज्ञानं वासोऽहंरुष्णीपं
 रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ ५ ॥
 भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥ ६ ॥
 मातरिश्वां च परमानश्च विपथवाहौ
 वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ ७ ॥
 क्रीतिश्च यज्ञश्च पुरःसुरावैर्न
 क्रीतिर्मच्छत्या यज्ञो गच्छति य एवं वेद ॥ ८ ॥
 स उदतिष्ठत्स दक्षिणां दिशमनु व्यचलत् ॥ ९ ॥
 तं यज्ञायज्ञिर्यं च वामदुष्यं च
 युञ्जथ यजमानश्च पशुवशानुव्यचलन् ॥ १० ॥
 यज्ञायज्ञियां च वै स वामदुष्याय च
 युजाय च यजमानाय च
 पशुभ्यथा बृश्ते य एवं
 विद्वांसं ब्राह्मणमुपवदति ॥ ११ ॥
 यज्ञायज्ञिर्यं च वै स
 वामदुष्यं च युञ्जथ्यं च
 यजमानस्य च पशुनां च प्रियं धाम भवति
 तस्य दक्षिणायां दिशि ॥ १२ ॥

उषाः पुंश्चली मन्त्रो मांगुघो
 विज्ञानं वासोऽहंरुष्णीपं
 रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ १३ ॥
 अमावास्यां च पूर्णिमासी च
 परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।
 मातरिश्वां० । क्रीतिश्च० ॥ १४ ॥
 स उदतिष्ठत्स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत् १५
 तं वैरूपं च वैराजं चापश्च
 वरुणश्च राजानुव्यचलन् ॥ १६ ॥
 वैरूपाय च स वैराजाय च
 अश्वश्च वरुणाय च राज्ञः
 आ बृश्ते य एवं विद्वांसं ब्राह्मणमुपवदति ॥ १७ ॥
 वैरूपस्य च वै स वैराजस्य च
 आपां च वरुणस्य च राज्ञः
 प्रियं धाम भवति तस्य प्रतीच्यां दिशि ॥ १८ ॥
 इरा पुंश्चली हसो मांगुघो
 विज्ञानं वासोऽहंरुष्णीपं
 रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ १९ ॥
 अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।
 मातरिश्वां० । क्रीतिश्च० ॥ २० ॥
 स उदतिष्ठत्स उदीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ २१ ॥
 तं श्यैतं च नौघसं च सप्तर्ष्यश्च
 सोमश्च राजानुव्यचलन् ॥ २२ ॥
 श्यैतार्यं च वै स नौघसार्यं च
 सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय च राज्ञः
 आ बृश्ते य एवं विद्वांसं ब्राह्मणमुपवदति ॥ २३ ॥
 श्यैतस्य च वै स नौघसस्यं च
 सप्तर्षीणां च सोमस्य च
 राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि २४

विद्युत्पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागुधो
 विज्ञानं वासोऽहंरुष्णीपं
 रात्री केशा हरिर्तौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ २५ ॥
 श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दौ मनौ विपथम् ॥ २६ ॥
 मातरिश्वां च पर्वमानश्च विपथवाहौ
 चान्तः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ २७ ॥
 कीर्तिश्च यशश्च पुरःसुरावेनं कीर्तिः
 गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥ २८ ॥

(३)

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत्तं देवा अन्नवन्
 ब्राह्म्य किं नु तिष्ठसीति ॥ १ ॥
 सोऽन्नवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति ॥ २ ॥
 तस्मै ब्राह्म्यायासन्दीं सममरन् ॥ ३ ॥
 तस्यां शीष्मश्च वमन्तश्च
 द्वौ पादावास्तां शरच्चं युर्याश्च द्वौ ॥ ४ ॥
 बृहच्च रथन्तरं चानूच्येद्भे आस्तां
 यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरश्च्ये ॥ ५ ॥
 ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूषि तिर्यश्चः ॥ ६ ॥
 वेदं आस्तरणं ब्रह्मोपवर्हीणम् ॥ ७ ॥
 सामासाद उद्गीथोऽपथयः ॥ ८ ॥
 तामासन्दीं ब्राह्म्य आरोहत् ॥ ९ ॥
 तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्
 संकल्पाः प्रहाय्याश्च विश्वानि भूतान्युपसदः ॥ १० ॥
 विश्वान्येवास्यं भूतान्युपसदौ
 भवन्ति य एवं वेद ॥ ११ ॥

(४)

तस्मै प्राच्यां दिशः ॥ १ ॥
 चासन्तौ मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्
 बृहच्च रथन्तरं चानुष्ठातारौ ॥ २ ॥

वासन्तावेनं मासौ प्राच्यां दिशो गोपायतो
 बृहच्च रथन्तरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ३ ॥
 तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥ ४ ॥
 ग्रैष्मो मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्
 यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ॥ ५ ॥
 ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो
 यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ६ ॥
 तस्मै प्रतीच्यां दिशः ॥ ७ ॥
 वार्षिकौ मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्
 वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥ ८ ॥
 वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्यां दिशो गोपायतो
 वैरूपं च वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ९ ॥
 तस्मा उदीच्या दिशः ॥ १० ॥
 शारदौ मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्
 श्वेतं च नौघसं चानुष्ठातारौ ॥ ११ ॥
 शारदावेनं मासादुदीच्या दिशो गोपायतो
 श्वेतं च नौघसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १२ ॥
 तस्मै ध्रुवायां दिशः ॥ १३ ॥
 हैमनौ मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्
 भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ ॥ १४ ॥
 हैमनावेनं मासौ ध्रुवायां दिशो गोपायतो
 भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १५ ॥
 तस्मा ऊर्वायां दिशः ॥ १६ ॥
 शैशिरौ मासौ गोप्सारावर्कुर्वन्
 दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ॥ १७ ॥
 शैशिरावेनं मासावूर्वायां दिशो गोपायतो
 दैव्यादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १८ ॥

(५)

तस्मै प्राच्यां दिशो अन्तर्देशाद्
 भूमिंश्चासमनुष्ठातारंमकुर्वन् ॥ १ ॥
 भूव एनमिष्वासः प्राच्यां दिशो
 अन्तर्देशादनुष्ठातानुं विष्टति
 नैर्न शुर्वो न भवो नेशानुः ॥ २ ॥
 नास्यं पशून् संमानान्दिह नस्ति य एवं वेद ॥ ३ ॥
 तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशात्
 शुर्वमिष्वासमनुष्ठातारंमकुर्वन् ॥ ४ ॥
 शुर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो
 अन्तर्देशादनुष्ठातानुं विष्टति
 नैर्न शुर्वो न भवो नेशानुः । नास्यं पशून् ॥ ५ ॥
 तस्मै प्रतीच्यां दिशो अन्तर्देशात्
 पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारंमकुर्वन् ॥ ६ ॥
 पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्यां दिशो
 अन्तर्देशादनुष्ठातानुं विष्टति ० । नास्यं ॥ ७ ॥
 तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशात्
 उग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारंमकुर्वन् ॥ ८ ॥
 उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो
 अन्तर्देशादनुष्ठातानुं विष्टति ० । नास्यं ॥ ९ ॥
 तस्मै ध्रुवायां दिशो अन्तर्देशाद्
 रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारंमकुर्वन् ॥ १० ॥
 रुद्र एनामिष्वासो ध्रुवायां दिशो
 अन्तर्देशादनुष्ठातानुं विष्टति ० । नास्यं ॥ ११ ॥
 तस्मा ऊर्ध्वायां दिशो अन्तर्देशान्
 महादेवमिष्वासमनुष्ठातारंमकुर्वन् ॥ १२ ॥
 महादेव एनमिष्वास ऊर्ध्वायां दिशो
 अन्तर्देशादनुष्ठातानुं विष्टति ० । नास्यं ॥ १३ ॥
 तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्यु ईशानम्
 इष्वासमनुष्ठातारंमकुर्वन् ॥ १४ ॥

ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो
 अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठातानुं
 विष्टति नैर्न शुर्वो न भवो नेशानुः ॥ १५ ॥
 नास्यं पशून् संमानान्दिह नस्ति य एवं वेद ॥ १६ ॥

(६)

स ध्रुवां दिशमनु व्यचिचलत् ॥ १ ॥
 तं भूमिंश्चाग्निशौर्षधयश्च वनस्पतयश्च
 वानस्पत्याश्च वीरुधंशानुव्यचिचलन् ॥ २ ॥
 भूमेश्च वै सोऽग्नेशौर्षधानां च
 वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च
 वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥
 स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचिचलत् ॥ ४ ॥
 तमूतं च सृत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च
 नक्षत्राणि चानुव्यचिचलन् ॥ ५ ॥
 ऋतस्य च वै स सत्यस्य च
 सूर्यस्य च चन्द्रस्य च
 नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ६ ॥
 स उच्चमां दिशमनु व्यचिचलत् ॥ ७ ॥
 तमृचश्च सामानि च यजूषि च
 ब्रह्म चानुव्यचिचलन् ॥ ८ ॥
 ऋचां च वै स साग्नां च यजुषां च
 ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥
 स बृहतीं दिशमनुव्यचिचलत् ॥ १० ॥
 तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च
 नाराशंसीशानुव्यचिचलन् ॥ ११ ॥
 इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च
 गाथानां च नाराशंसीनां च
 प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥
 स परमां दिशमनु व्यचिचलत् ॥ १३ ॥ (५४१)

तर्माहवनीर्यश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च
यज्ञश्च यजमानश्च पशुवंशानुव्यचिलन् ॥ १४ ॥

आहवनीर्यस्य च वै स गार्हपत्यस्य च
दक्षिणाग्नेश्च यज्ञस्य च

यजमानस्य च पशूनां च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १५ ॥

सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचिलत् ॥ १६ ॥

तमुतवश्वार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च
मासांश्चाधमासाश्चाहोरात्रे चानुव्यचिलन् ॥ १७ ॥

ऋतूनां च वै स अर्तिवानां च
लोकानां च लौक्यानां च मासानां च

आधमासानां चाहोरात्रयोश्च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १८ ॥

सोऽनाष्टुक्तां दिशमनु व्यचिलत्
ततो नावत्स्यर्चमन्यत् ॥ १९ ॥

तं दितिश्चादितिश्चेडा च
इन्द्राणी चानुव्यचिलन् ॥ २० ॥

दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २१ ॥

स दिशोऽनु व्यचिलत्
तं विराडनु व्यचिलत्

सर्वे च देवाः सर्वाश्च देवताः ॥ २२ ॥
विराजश्च वै स सर्वेषां च

देवानां सर्वासां च देवतानां
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २३ ॥

स सर्वांनन्तर्देशाननु व्यचिलत् ॥ २४ ॥
तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च

पिता च पितामहश्चानुव्यचिलन् ॥ २५ ॥

प्रजापतिश्च वै स परमेष्ठिनश्च
पितृश्च पितामहस्यं च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २६ ॥

(७)

स महिमा सद्रुर्भूत्वान्तं पृथिव्या
अगच्छत्स समुद्रोऽभवत् ॥ ८ ॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च
पिता च पितामहश्चापश्च श्रद्धा च

वर्षं भूत्वानुव्यवर्तयन्त ॥ २ ॥
ऐनमापो गच्छत्यैनं श्रद्धा गच्छति

ऐनं वर्षं गच्छति य एवं वेद ॥ ३ ॥
तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं चान्नाद्यं च

भूत्वार्भिर्पर्यावर्तन्त ॥ ४ ॥
ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं यज्ञो गच्छति

ऐनं लोको गच्छत्यैनमन्नं गच्छति
ऐनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद ॥ ५ ॥

(८)

सोऽरज्यत् ततो राज्ञ्योऽजायत ॥ १ ॥
स विश्वः सर्वन्धूनन्नमन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत् ॥ २ ॥

विशां च वै स सर्वन्धूनां चान्नस्य चान्नाद्यस्य च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

(९)

स विशोऽनु व्यचिलत् ॥ १ ॥
तं सत्मा च समितिश्च सेनां च

सुरां चानुव्यचिलन् ॥ २ ॥
सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च

प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥
(१०)

तद्यस्यैवं विद्वान्ब्राह्मणो
राज्ञोऽतिथिर्गृहानामगच्छेत् ॥ १ ॥ (१६८)

श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत्
 तथा क्षत्राय ना वृश्चते तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥२॥
 अतो वै ब्रह्मं च क्षत्रं चोदतिष्ठतां
 ते अत्रूतां कं प्र विशावेति ॥ ३ ॥
 अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्रा विशत्
 इन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति ॥ ४ ॥
 अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् ५
 इयं वा उं पृथिवी बृहस्पतिर्द्यौरिवेन्द्रः ॥ ६ ॥
 अयं वा उं अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रम् ॥ ७ ॥
 ऐनं ब्रह्मं गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति ॥ ८ ॥
 यः पृथिवीं बृहस्पतिर्मग्निं ब्रह्म वेदं ॥ ९ ॥
 ऐनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान्भवति ॥ १० ॥
 य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेदं ॥ ११ ॥

(१२)

तद्यस्यैवं विद्वान्ब्राह्मणोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥१॥
 म्वयमेनमभ्युदेत्यं नृयाद्ब्रान्यं क्वाऽज्वात्सीर्
 ब्राह्मणोदकं ब्राह्मणं तर्पयन्तु
 ब्राह्मणं यथा ते प्रियं तथास्तु
 ब्राह्मणं यथा ते वशस्तथास्तु
 ब्राह्मणं यथा ते निक्रामस्तथास्त्विति ॥ २ ॥
 यदेनमाह ब्राह्मणं क्वाऽज्वात्सीरिति
 पय एव तेन देवपानानयं रुन्दे ॥ ३ ॥
 यदेनमाह ब्राह्मणोदकमित्यय एव तेनावं रुन्दे ॥४॥
 यदेनमाह ब्राह्मणं तर्पयन्त्विति
 प्राणमेव तेन वर्षापोसं कुरुते ॥ ५ ॥
 यदेनमाह ब्राह्मणं यथा ते प्रियं तथास्त्विति
 प्रियमेव तेनावं रुन्दे ॥ ६ ॥
 ऐनं प्रियं गच्छति
 प्रियः प्रियस्यं भवति य एवं वेदे ॥ ७ ॥

यदेनमाह ब्राह्मणं यथा ते वशस्तथास्त्विति
 वशमेव तेनावं रुन्दे ॥ ८ ॥
 ऐनं वशी गच्छति
 वशी वशिनां भवति य एवं वेदं ॥ ९ ॥
 यदेनमाह ब्राह्मणं यथा ते निक्रामस्तथास्त्विति
 निक्राममेव तेनावं रुन्दे ॥ १० ॥
 ऐनं निक्रामो गच्छति
 निक्रामे निक्रामस्यं भवति य एवं वेदं ॥ ११ ॥

(१२)

तद्यस्यैवं विद्वान्ब्राह्मण उद्धृतेष्वग्निपिपु
 अधिश्रितेऽग्निहोत्रेऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥
 स्वयमेनमभ्युदेत्यं नृयाद्
 ब्राह्मणं सृजं होष्यामीति ॥ २ ॥
 स चातिसृजेज्जुहुयान्न चातिसृजेन्न जुहुयान् ॥३॥
 स य एवं विदुषा ब्राह्मणेनार्तिसृष्टो जुहोति ॥४॥
 प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥५॥
 न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ॥ ६ ॥
 पर्यस्यासिल्लोक आयतनं शिष्यते
 य एवं विदुषा ब्राह्मणेनार्तिसृष्टो जुहोति ॥ ७ ॥
 अथ य एवं विदुषा
 ब्राह्मणेनार्तिसृष्टो जुहोति ॥ ८ ॥
 न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ॥९॥
 आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥ १० ॥
 नास्यासिल्लोक आयतनं शिष्यते
 य एवं विदुषा ब्राह्मणेनार्तिसृष्टो जुहोति ॥११॥

(१२)

तद्यस्यैवं विद्वान्ब्राह्मणः
 एकां रात्रिमतिथिर्गृहं वसति ॥ १ ॥
 ये पृथिव्यां पुण्यां लोकाः
 तानेव तेनायं रुन्दे ॥ २ ॥

तद्यस्यैवं विद्वान्ब्राह्मण्यः
द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ३ ॥
येऽन्तरिक्षे पुण्यां लोकास्तानेष तेनार्व रुन्दे ॥ ४ ॥
तद्यस्यैवं विद्वान्ब्राह्मण्यः
तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ५ ॥
ये दिवि पुण्यां लोकास्तानेष तेनार्व रुन्दे ॥ ६ ॥
तद्यस्यैवं विद्वान्ब्राह्मण्यः
चतुर्थी रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ७ ॥
ये पुण्यानां पुण्यां लोकास्तानेष तेनार्व रुन्दे ॥ ८ ॥
तद्यस्यैवं विद्वान्ब्राह्मण्यः
अपारिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति ॥ ९ ॥
य एवापारिमिताः पुण्यां लोकाः
तानेष तेनार्व रुन्दे ॥ १० ॥
अयु यस्यात्रात्यो ब्राह्मण्युवो नामविभ्रति
अतिथिर्गृहानामञ्छेत् ॥ ११ ॥
कर्षदेनं न कर्षेत् ॥ १२ ॥
अस्यै देवताया उदकं यांचामीमां देवतां वासय
इमापिमां देवतां परि वेवेष्मीति
एनं परि वेविष्यात् ॥ १३ ॥
तस्यामिवास्य तद्देवतायां
हुतं भवति य एवं वेदं ॥ १४ ॥
(१४)
स यत्प्राचीं दिशमनु व्यचलत्
मारुतं शर्षो मूत्वानुव्यचलत्
मनोऽन्नादं कृत्वा ॥ १ ॥
मनसाद्देनान्नमत्ति य एवं वेदं ॥ २ ॥
स बहर्क्षिणां दिशमनु व्यचलत्
इन्द्रो मूत्वानुव्यचलत्त्रैलमन्नादं कृत्वा ॥ ३ ॥
बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेदं ॥ ४ ॥
स यत्प्रीचीं दिशमनु व्यचलत्

वरुणो राजा मूत्वानुव्यचलत्
अपोऽन्नादीः कृत्वा ॥ ५ ॥
अद्भिरन्नादिभिरन्नमत्ति य एवं वेदं ॥ ६ ॥
स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत्
सोमो राजा मूत्वानुव्यचलत्
सप्तर्षिर्भिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा ॥ ७ ॥
आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेदं ॥ ८ ॥
स यद् भ्रुवां दिशमनु व्यचलत्
विष्णुर्मूत्वानुव्यचलत्द्विरार्जमन्नादीं कृत्वा ॥ ९ ॥
विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेदं ॥ १० ॥
स यत्पशुननु व्यचलत्
रुद्रो मूत्वानुव्यचलत्दोषधीरन्नादीः कृत्वा ॥ ११ ॥
ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेदं ॥ १२ ॥
स यत्पितृननु व्यचलत्
यमो राजा मूत्वानुव्यचलत्
स्वधाकारमन्नादं कृत्वा ॥ १३ ॥
स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेदं ॥ १४ ॥
स यन्मनुष्याडेननु व्यचलत्
अग्निर्मूत्वानुव्यचलत्स्वाहाकारमन्नादं कृत्वा ॥ १५ ॥
स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेदं ॥ १६ ॥
स यद्भ्रुवां दिशमनु व्यचलत्
वृहस्पतिर्मूत्वानुव्यचलत्पृक्कारमन्नादं कृत्वा ॥ १७ ॥
वृहस्पतिरेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेदं ॥ १८ ॥
स यद्देवाननु व्यचलत्
ईशानो मूत्वानुव्यचलत्मन्युर्मन्नादं कृत्वा ॥ १९ ॥
मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेदं ॥ २० ॥
स यत्प्रजा अनु व्यचलत्
प्रजापतिर्मूत्वानुव्यचलत्प्राणमन्नादं कृत्वा ॥ २१ ॥
प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेदं ॥ २२ ॥
स यत्सर्वानन्तर्देवाननु व्यचलत्
परमेष्ठी मूत्वानुव्यचलत्सर्वान्नादं कृत्वा ॥ २३ ॥

ब्रह्मणान्नादेनार्जमच्चि य एवं वेद ॥ २४ ॥
 (१५)
 तस्य व्रात्यस्य ॥ १ ॥
 सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥ २ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमः प्राणः
 ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः ॥ ३ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयः प्राणः
 प्रादो नामासौ स आदित्यः ॥ ४ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयः प्राणः
 अर्ध्भूदो नामासौ स चन्द्रमाः ॥ ५ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थः प्राणः
 विभूर्नामायं पर्वमानः ॥ ६ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमः प्राणः
 योनिर्नाम ता इमा आपः ॥ ७ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठः प्राणः
 प्रियो नाम त इमे पृथ्वः ॥ ८ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमः प्राणः
 अपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः ॥ ९ ॥
 (१६)
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमः
 अपानः सा पौर्णमासी ॥ १ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयः
 अपानः साष्टका ॥ २ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयः
 अपानः सामाशास्याः ॥ ३ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थः
 अपानः सा श्रद्धा ॥ ४ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमः
 अपानः सा दृष्टा ॥ ५ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठः
 अपानः स यज्ञः ॥ ६ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमः
 अपानस्ता इमा दक्षिणाः ॥ ७ ॥

(१७)

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमो व्यानः
 सेयं भूमिः ॥ १ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयो व्यानः
 तदुन्तरिक्षम् ॥ २ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयो व्यानः
 सा द्यौः ॥ ३ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानः
 तानि नक्षत्राणि ॥ ४ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमो व्यानः
 त श्रुतवः ॥ ५ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठो व्यानः
 त आर्तिषाः ॥ ६ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमो व्यानः
 स सैवत्सरः ॥ ७ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । समानमर्थं परि यन्ति देवाः
 सैवत्सरं वा एतद्वतवोऽनुपरियन्ति व्रात्यं च ॥ ८ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । यदादित्यमभिसंविशन्ति
 अमावास्यां चैव तत्पौर्णमासी च ॥ ९ ॥
 तस्य व्रात्यस्य । एकं तदैषाममृतत्वं
 इत्याहुतिरेव ॥ १० ॥
 (१८)
 तस्य व्रात्यस्य ॥ १ ॥
 यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यः
 यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः ॥ २ ॥
 योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्निः
 योऽस्य सव्यः कर्णोऽयं स पर्वमानः ॥ ३ ॥
 अहोरात्रे नासिके दित्तिधादित्तिष्व श्रीर्षकपाले
 मेषत्सरः शिरः ॥ ४ ॥
 अर्द्धा प्रत्यह् व्रात्यो
 रात्र्या प्राह् नमो व्रात्योय ॥ ५ ॥



४ परमेश्वरः ।

१ भुवनस्य पतिः ।

कांड १, सूक्त १

(श्राधिः — मातृनामा । देवता - गंधर्वाप्सरसः ।)

दिव्यो गन्धर्वो ध्रुवनस्य यस्पतिः
एक एव नमस्यो विश्वीडर्यः ।
तं त्वा योमि ब्रह्मणा दिव्य देव
नर्मस्ते अस्तु दिवि तै सधर्षम् ॥ १ ॥

दिवि स्पृष्टो यंततः धर्षत्वक्
अवयाता हरसो दैव्यस्य ।

मृडाद्गन्धर्वो ध्रुवनस्य यस्पतिः
एक एव नमस्योः सुशेवाः ॥ २ ॥

अनवघामिः समं जग्म आमिः
अप्सरास्वपिं गन्धर्व आसीत्
समुद्र आसां सदनं म आहुः

यतः सद्य आ च परां च यन्ति ॥ ३ ॥
अग्निं ये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचष्वे
ताभ्यो वो देवीर्नम इत्कृणोमि ॥ ४ ॥

याः क्लन्दास्तमिपीचयोऽक्षकामा मनोमुहः ।
ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः ॥ ५ ॥

२ अमृतदाता ।

कांड ६, सूक्त १

(श्राधिः— अथर्वा । देवता— पविता)

द्रोषो गाय बृहद्राय द्युमदेहि ।
आर्धवेण स्तुहि देवं संवितारम् ॥ १ ॥

तमुं पृहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः ।

सत्यस्य युवानमद्रोषवाचं सुशेवम् ॥ २ ॥
स घां नो देवः संविता साविषदुमृतानि भूरि ।
उभे सुष्टुती सुगार्तवे ॥ ३ ॥

३ सरस्वान् देवः ।

कांड ७, सूक्त ४० (४१)

(श्राधिः— प्रस्कण्वः । देवता— धरस्वान्)

यस्यं व्रतं पशवो यन्ति सर्वे
यस्यं व्रत उपतिष्ठन्तु आपः ।
यस्यं व्रते पुष्टपतिर्निर्विष्टः
तं सरस्वन्तुमवसे हवामहे ॥ १ ॥
आ प्रत्यर्चं द्वाशुपे द्वाश्वंसं
सरस्वन्तं पुष्टपतिं रथिष्ठाम् ।
रायस्पोषं श्रवस्युं वसनाः
इह हुवेम सदनं रथीणाम् ॥ २ ॥

४ महान् शासकः ।

कांड १, सूक्त १०

(श्राधि - अथर्वा । देवता— सोम, महतः ।)

अदारसृद् भवतु देव सोम
असिन्पुक्षे मरुतो मृडतां नः ।
मा नो विददमिभा मो अशस्तिः
मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥ १ ॥
यो अद्य सेन्यो वधोऽद्यायूनामुदीरते ।
युवं तं मित्रावरुणावसाद्योवयतं परि ॥ २ ॥

इतश्च यदमुतश्च यद्धं वैरुण यावय ।
 वि मद्ब्रह्मर्षि यच्छु वरीयो यावया वृधम् ॥३॥
 शास इत्था मह्यं अस्वमित्रसाहो अस्तुतः ।
 न यस्य हन्यते सत्ता न जीयते कदाचन ॥४॥

५ विश्वस्य एकएव सम्राट् ।

कांड ६, सूक्त ३ :

(ऋषि — अथर्व (स्वस्वयननाम) । देवता— आग्नि)

ऋतावानं वैश्वानरमुतस्य ज्योतिषस्पतिम् ।
 अजस्रं धर्ममीमहे ॥ १ ॥
 स विश्वा प्रति चाकल्प ऋतूरुत्सृजते वृषी ।
 यज्ञस्य वयं उत्तिरन् ॥ २ ॥
 अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भर्ग्यस्य ।
 सम्राडेको वि राजति ॥ ३ ॥

६ सत्यधर्मा प्रजापतिः ।

कांड, ७, सूक्त ५४

(ऋषि — अथर्व । देवता— इन्द्र, आग्नि, शक्ति ।)

यन्न इन्द्रो अखंघदग्निः
 विश्वं देवा मरुतो यत्स्वर्काः ।
 तदुस्मर्ग्यं सतिता सत्यधर्मा
 प्रजापतिरनुमतिनि यच्छात् ॥ १ ॥

७ व्यापकः श्रेष्ठो देवः ।

कांड ७, सूक्त २५ (२६)

(ऋषि — महातिथि । देवता— विष्णु, वरुण ।)

ययोरोजसा स्कभिता रजांसि
 यो वीर्यैर्विरतमा श्रुविष्ठा ।
 यो पत्येति अप्रतीतो सहोभिः
 विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहृतिः ॥ १ ॥
 यस्पृष्टं प्रदिशि यद्विरोचते
 प्र चानंति वि च्छु च्छे शचीभिः ।
 पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिः
 विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहृतिः ॥ २ ॥

८ विश्वशकटसंचालकः ।

कांड ४, सूक्त ११

(ऋषि - सुवामिरा । देवता - अनडुत्, ईश ।)

अनुड्वान्दाधार पृथिवीमुत धा
 अनड्वान्दाधारोर्ध्वान्तरिक्षम् ।
 अनुड्वान्दाधार प्रादिशुः पटुर्वीः
 अनड्वान्विश्वं भुवन्मा विवेश ॥ १ ॥
 अनुड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि च्छे
 त्रयां छुक्रो वि मिमीते अध्वनः ।
 भूतं भविष्यद्भुवना दुहानः
 सर्वा देवानां चरति वृत्तानि ॥ २ ॥
 इन्द्रो जातो मनुष्येष्वन्तर
 धर्मस्तुतश्चरति शोशुचानः ।
 सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्पत्
 यो नाश्रीषार्दनडुहो विजानन् ॥ ३ ॥
 अनुड्वान्दुहे सुकृतस्य लोके
 ऐने प्याययति पर्वमानः पुरस्तात् ।
 पर्जन्यो धारा मरुत ऊर्ध्वो अस्य
 यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥ ४ ॥
 यस्य नेशं यज्ञपतिर्नि यज्ञः
 नास्य द्रावेषे न प्रतिग्रहीता ।
 यो विश्वजिद्विश्वमृद्विश्वकर्म
 धर्म नो ब्रूत पतमश्चतुष्पात् ॥ ५ ॥
 येन देवाः स्वरारुरुहुर
 हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम् ।
 तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं
 धर्मस्य व्रतेन तपसा यज्ञस्यधः ॥ ६ ॥
 इन्द्रो रूपेणाभिर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् ।
 विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानुद्वहकमत ।
 सोऽदहयत् सोऽधारयत् ॥ ७ ॥ (६९६)

मर्ष्यमेतदनुदुहो यत्रैप वह आर्हितः ।
 एतावदस्य प्राचीनं यावान्प्रत्यह् सुमार्हितः ॥८
 यो वेदानुदुहो दोहान्तसप्तानुपदस्वतः ।
 प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तक्रुपयो विदुः९
 पद्भिः सेदिमवक्रामभिरां जहर्षाभिरुत्खिदन् ।
 श्रमेणानुद्वान्कीलालं कीनाशश्चाभि गच्छतः१०
 द्वादश वा एता रात्रीर्त्रत्या आहुः प्रजापतेः ।
 तत्रोप ब्रह्म यो वेदु तद्वा अनुदुहो व्रतम् ॥११॥
 दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मर्ष्यादिनं परिं ।
 दोहा ये अस्य संयन्ति तान्त्रिशासुपदस्वतः ॥१२॥

९ सर्व-साक्षी प्रभुः ।

कांड ४, सूक्त १६

(ऋषिः- ब्रह्मा । देवता- वरुणः, सत्यानृतान्बोक्षणम्)

बृहन्नैपामधिष्ठाता अन्तिकार्दिव पश्यति ।
 य स्तायन्मन्यते चरन्तसर्वं देवा इदं विदुः ॥१॥
 यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति
 यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
 द्वौ संनिपद्य यन्मन्त्रयेते
 राजा तद्वेदु वरुणस्तृतीयः ॥ २ ॥
 उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञः
 उतासौ द्यौर्विहृती दुरेअन्ता ।
 उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी
 उतास्मिन्नल्पं उदुके निलीनः ॥ ३ ॥
 उत यो घामतिसर्पात्परस्तात्
 न स मृच्यतै वरुणस्य राज्ञः ।
 दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य
 सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥ ४ ॥
 सर्वं तद्राजा वरुणो वि चष्टे
 यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात् ।

संख्याता अस्य निमिषो जनानां
 अक्षानिव श्वधी नि मिनोति तानि ॥ ५ ॥
 ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त
 भ्रेधा तिष्ठन्ति विपिता रुशन्तः ।
 छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं
 यः संत्यवाद्यति तं संजन्तु ॥ ६ ॥
 शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैन्
 मा ते मोच्यन्तुवाह नृचक्षः ।
 आस्तां जालम उदरं श्रंसयित्वा
 कोशं इवावन्धः परिकृत्यमानः ॥ ७ ॥
 यः समाभ्योऽं वरुणो यो व्याभ्यः
 यः संदुश्योऽं वरुणो यो विदुश्यः ।
 यो देवो वरुणो यश्च मानुषः ॥ ८ ॥
 तैस्त्वा सर्वैरभि ध्यामि पाशैर्
 असावामुष्यायणामुष्याः पुत्र ।
 तानु ते सर्वाननुसंदिशामि ॥ ९ ॥

१० भुवनेषु ज्येष्ठो देवः ।

कांड ५, सूक्त ०

(ऋषि - बृहदिवो भयर्वा । देवता- वरुणः)

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं
 यतो जज्ञ उग्रस्त्वेपनुम्णः ।
 सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रून्
 अनु यदैनं मर्दन्ति विश्व ऊमाः ॥ १ ॥
 वावृथानः शर्वसा भूर्पोजाः
 शत्रुर्दासाय मियसं दधाति ।
 अर्ष्यनश्च व्यनश्च सस्ति
 सं ते नवन्त प्रभृता मर्देषु ॥ २ ॥
 त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि
 द्विर्यदेते त्रिर्भुवन्त्युमाः ।

इतश्च यदमुतश्च यद्वधं वरुण यावय ।
 वि महच्छर्मं यच्छ वरीयो यावया वृधम् ॥३॥
 शास इत्या महां अंस्यमित्रसाहो अस्तुतः ।
 न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ॥४॥

५ विश्वस्य एकएव सम्राट् ।

कांड ६, सूक्त ३ः

(ऋषिः— अथर्व (सस्वयनवाम) । देवता— अग्निः)

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिपस्पातिम् ।
 अर्जसं धर्ममीमहे ॥ १ ॥
 स विश्वा प्रति चाकल्प ऋतुरुत्सृजते वृक्षी ।
 यज्ञस्य वयं उत्तिरन् ॥ २ ॥
 अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
 सम्राडेको वि राजति ॥ ३ ॥

६ सत्यधर्मा प्रजापतिः ।

कांड ७, सूक्त २४

(ऋषिः— अथर्व । देवता— इंद्र, अग्नि, शक्ति ।)

यन्न इन्द्रो अखन्धद्रुमिः
 विश्वं देवा मरुतो यस्त्वर्काः ।
 तदुस्मभ्यं सविता सत्यधर्मा
 प्रजापतिरनुमतिर्नि यच्छात ॥ १ ॥

७ व्यापकः श्रेष्ठो देवः ।

कांड ७, सूक्त २५ (२६)

(ऋषि — महात्तियः । देवता— विष्णुः, वरुणः ।)

यथोरोजसा स्कभिता रजांसि
 यो वीर्यैर्विरतमा शक्तिष्ठा ।
 यो पत्येते अप्रतीती सहोभिः
 विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहृतिः ॥ १ ॥
 यस्येदं प्रदिशि यद्विरोचते
 प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः ।
 पुरा देवस्य धर्मेणा सहोभिः
 विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहृतिः ॥ २ ॥

८ विश्वशकटसंचालकः ।

कांड ४, सूक्त ११

(ऋषि - सुवागिरिः । देवता— अनडुत, इंद्रः)

अनुह्वान्दाधार पृथिवीभूत या
 अनुह्वान्दाधारोर्ध्वे न्तरिक्षम् ।
 अनुह्वान्दाधार प्रदिशः पदुर्वीः
 अनुह्वान्विश्वं भुवंनमा विवेश ॥ १ ॥
 अनुह्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे
 त्रयां छक्रो वि मिमीते अध्वनः ।
 भूतं भविष्यद्भुवंना दुहानः
 सर्वां देवानां चरति वृथानि ॥ २ ॥
 इन्द्रो जातो मनुष्येष्वन्तर
 धर्मस्तत्पर्यरति शोशुचानः ।
 सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्पत्
 यो नाश्रीयादनडुहो विज्ञानन् ॥ ३ ॥
 अनुह्वान्दुहे सुकृतस्य लोके
 एनं प्याययति पवंमानः पुरस्तात् ।
 पर्जन्यो धारां मरुत ऊर्ध्वो अस्य
 यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥ ४ ॥
 यस्य नेत्रे यज्ञपतिर्न यज्ञः
 नास्यं द्रातेशे न प्रतिग्रहीता ।
 यो विश्वजिद्विश्वमुद्विश्वकामा
 धर्मं नो ब्रूत यत्तमश्चतुष्पात् ॥ ५ ॥
 येन देवाः स्वरांरुहुर
 ह्रित्वा शरीरममृतस्य नाभिम् ।
 तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं
 धर्मस्य व्रतेन तपसा यज्ञस्यवः ॥ ६ ॥
 इन्द्रो रूपेणामिर्वेदेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् ।
 विश्वानरे अकमत वैश्वानरे अकमतानुह्वकमत ।
 सोऽद्वहयत् सोऽधारयत् ॥ ७ ॥ (६९६)

स्तोत्रं मे विश्रमा योहि शचीभिर्
 अन्तर्विश्वांसु मानुषीषु दिक्षु ॥ ८ ॥
 आ तं स्तोत्राण्युद्यतानि यन्तु
 अन्तर्विश्वांसु मानुषीषु दिक्षु ।
 देहि नु मे यन्मे अदत्तो असि
 युज्यो मे सप्तपदः सखांसि ॥ ९ ॥
 सुमा नो बन्धुर्वरुण सुमा जा
 वेदाहं तद्यन्त्रात्रिषा सुमा जा ।
 ददामि तद्यत्ते अदत्तो अस्मि
 युज्यस्ते सप्तपदः सखांसि ॥ १० ॥
 देवो देवाय गणते वयोधा
 विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः ।
 अजीजिनो हि वरुण स्वधावन्
 अथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् ।
 तस्मा उ राधः कणुहि सुप्रशस्तं
 सखां नो असि परमं च बन्धुः ॥ ११ ॥

१२ प्रातःकाले ईश्वर-प्रार्थना ।

कांड ३, सूक्त १६

(ऋषिः- अथर्वा । देवता- बृहस्पति, बहुदेवत्वम् ।)

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे
 प्रातर्मिन्नावरुणा प्रातरश्विनो ।
 प्रातर्मर्गं पुषणं ब्रह्मणस्पतिं
 प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥ १ ॥
 प्रातर्जितं मर्गमुग्रं हवामहे
 वयं पुत्रमर्दितैर्यो विधृता ।
 आग्निश्च यं मन्यमानस्तुरश्विद्
 राजा चिद्यं मर्गं भक्षीत्याहं ॥ २ ॥
 मग प्रणैतर्मग सत्यराघः
 मग्मां धियमुदेवा ददन्नः ।

मग प्र णो जनय गोभिरश्वैः
 मग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥
 उतेदानीं भगवन्तः स्याम
 उत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
 उतोदितो मघवन्त्सर्वस्य वयं
 देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥
 मग एव मगवाँ अस्तु देवः
 तेना वयं भगवन्तः स्याम ।
 तं त्वा मग सर्व इज्जोहवीमि
 स नो मग पुरएता भवेह ॥ ५ ॥
 समध्वरायोपसो नमन्त दधिक्रावैव शुचये पदार्य ।
 अर्वाचीनं वंसुविदुं मर्गं मे
 रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥ ६ ॥
 अश्वावतीर्गोमतीर्न उपासः
 वीरवतीः सदमुच्छन्तु मद्राः ।
 घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीताः
 यूयं पांठ स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

१३ एकएव उपास्यः ।

कांड ८, सूक्त ९

(ऋषिः- अथर्वा, वृषपः, सर्वे ऋषयः । देवता- विराट् ।)

कुतस्तौ जातौ कंतमः सो अर्घ्यः
 कसाल्लोकारकंतमस्याः पृथिव्याः ।
 वत्सो विराजः सलिलादुदैतां
 तौ त्वा पृच्छामि कतुरेणं दुग्धा ॥ १ ॥
 यो अक्रन्दयत्सलिलं महित्वा
 योनिं कृत्वा त्रिसृजं शयानः ।
 वत्सः कामदुघो विराजः
 स गुहां चक्रे तन्वुः पराचैः ॥ २ ॥ (७१९)

स्वादोः स्वादीयः स्वादनां सुजा
 समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥ ३ ॥
 यदि चिन्नु त्वा घना जयन्तं
 रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ।
 ओर्जीयः शुष्मिन्स्थिरमा तनुष्व
 मा त्वा दमन्दुरेवासः कशोकाः ॥ ४ ॥
 त्वया वयं शाश्वद्ग्रे रणेपु
 प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरिं ।
 चोदयामि त आयुधा वचोभिः
 सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥ ५ ॥
 नि तर्हिपेऽर्वे परे च
 यस्मिन्नाविथावेसा दुराणे ।
 आ स्थापयत मातरं जिगन्तुं
 अत इन्वतु कर्वेराणि भूरिं ॥ ६ ॥
 स्तुष्व वध्मन्पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणं
 इनतममाप्तमाप्तयानाम् ।
 आ दर्शति शर्वसा भूयोज्ञाः
 प्र संक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥ ७ ॥
 इमा ब्रह्मं बृहद्देवः कृणवद्
 इन्द्राय शूपर्मप्रियः स्वर्पाः ।
 महो गोत्रस्य क्षयति स्वराज्ञा
 तुराद्विद्विष्वमर्णवत् तपस्वान् ॥ ८ ॥
 एवा महान्बृहद्देवो अथर्वा
 अर्वाचतस्वा तुन्वृभिन्द्रमेव ।
 स्वसारी मातरिभ्वरी अरिभे
 दिन्वन्ति चने शर्वसा वर्धयन्ति च ॥ ९ ॥

११ श्रेष्ठो देवः ।

वाङ् ५, सूक्तः ११

(ऋषिः- अथर्वी । देवता- वरुणः)

कथं महे अतुरायाभवीरिद
 कथं पित्रे हरये रवेपुनृम्णः ।

पृश्नि वरुण दक्षिणां ददुवान्
 पुनर्मघं त्वं मनसाचिकित्सीः ॥ १ ॥
 न कामेन पुनर्मघो भवामि
 सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे ।
 केन तु त्वमथर्वन्काव्येन
 केन जातेनांसि जातवेदाः ॥ २ ॥
 सत्यमहं गभीरः काव्येन
 सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः ।
 न मे दासो नार्यो महित्वा
 व्रतं मीमाय यद्दहं घरिष्ये ॥ ३ ॥
 न त्वदन्यः क्वितरो न मेघया
 घरितरो वरुण स्वधावन् ।
 त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ
 स चिन्नु त्वज्जनो मायी विमाय ॥ ४ ॥
 त्वं ह्यृङ्ग वरुण स्वधावन्
 विश्वा वेत्थ जनिमा सुप्रणीते ।
 किं रजस एना पुरो अन्यत्
 अस्त्येना किं परेणावरममुर ॥ ५ ॥
 एकं रजस एना पुरो अन्यदस्ति
 एना पर एकेन दुर्णये चिदुर्वाक् ।
 तसे विद्वान्वरुण प्र ब्रवीमि
 अधोवचसः पणयो भवन्तु ।
 नीचैर्द्रोता उर्प सपन्तु मूर्तिम् ॥ ६ ॥
 त्वं ह्यृङ्ग वरुण ब्रवीमि
 पुनर्मघेऽवृषानि भूरिं ।
 मो पु पूर्णोऽभ्येदेतावतो भूत्
 मा त्वा वोचक्षराघसं जनांसः ॥ ७ ॥ (७१९)
 मा मा वोचक्षराघसं जनांसः
 पुनस्ते पृश्नि जरितर्ददामि ।

स्तोत्रं मे विश्रमा योहि शुचीमिर्
 अन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ॥ ८ ॥
 आ तं स्तोत्राण्युद्यतानि यन्तु
 अन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ।
 देहि तु मे यन्मे अदत्तो असि
 युज्यो मे सप्तपदः सखासि ॥ ९ ॥
 समा नो बन्धुर्वरुण समा जा
 वेदाहं तद्यन्त्राविपा समा जा ।
 ददामि तद्यत्ते अदत्तो अस्मि
 युज्यस्ते सप्तपदः सखासि ॥ १० ॥
 देवो देवाय गृणते वयोषा
 विशो विप्राय स्तुवते सुमेधाः ।
 अर्जाजनो हि वरुण स्वधावन्
 अथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् ।
 तस्मा उ राधः कण्ठि सुप्रशस्तं
 सखां नो असि परमं च बन्धुः ॥ ११ ॥

१२ प्रातःकाले ईश्वर-प्रार्थना ।

कांड ३, सूक्त १६

(ऋषिः- अथर्वा । देवता- बृहस्पतिः, बहुदेवत्यम् ।)

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे
 प्रातर्मिथावरुणा प्रातरश्विना ।
 प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं
 प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥ १ ॥
 प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे
 वयं पुत्रमदितेयो विद्यता ।
 आश्रिक्षियं मन्यमानस्तुराश्विद्
 राजां चिद्यं भगं भूषीत्याहं ॥ २ ॥
 भग प्रणेतर्भग सत्यराधः
 भगेमां धियमुदवा ददन्तः ।

भग प्र णो जनय गोभिरश्वैः
 भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥
 उतेदानो भगवन्तः स्याम
 उत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
 उतोर्दितो मध्वन्तसूर्यस्य वयं
 देवानां सुमते स्याम ॥ ४ ॥
 भग एव भगवाँ अस्तु देवः
 तेना वयं भगवन्तः स्याम ।
 तं त्वां भग सर्व इज्जोहवीमि
 स नो भग पुरएता भवेह ॥ ५ ॥
 समध्वरायोपसो नमन्त दधिक्राविव शुचये पुदार्य ।
 अर्वाचीनं वंसुविदुं भगं मे
 रथमिवाश्वा वाजिन आ वंहन्तु ॥ ६ ॥
 अश्वावतीर्गोमतीर्न उपासः
 वीरवतीः सदेमुच्छन्तु भद्राः ।
 घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीताः
 यूपं पांत स्वस्तिभिः सदां नः ॥ ७ ॥

१३ एकएव उपास्यः ।

कांड ८, सूक्त ९

(ऋषिः- अथर्वा, वरुणः, सर्वे ऋषयः । देवता- विराट् ।)

कुतस्त्वां जातो कंतमः सो अर्घः
 कसाल्लोकात्कंतमस्याः पृथिव्याः ।
 वत्सो विराजः सलिलादुदतां
 तौ त्वां पृच्छामि कतरेणं दुग्धा ॥ १ ॥
 यो अक्रन्दयत्सलिलं महित्वा
 योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः ।
 वत्सः कामदुधो विराजः
 स गुहां चक्रे तन्वः पराचैः ॥ २ ॥ (५३९)

यानि त्रीणि बृहन्ति येषां
 चतुर्थं विद्युनक्ति वाचम् ।
 ब्रह्मैतद्विद्यात्तर्पसा विपश्चिद्
 यस्मिन्नेकं युज्यते यस्मिन्नेकम् ॥ ३ ॥
 बृहतः परि सामानि पृष्ठात्पञ्चाधि निर्मिता ।
 बृहद्बृहत्या निर्मितं कुतोऽधि बृहती मिता ॥ ४ ॥
 बृहती परि मात्राया मातृमात्राधि निर्मिता ।
 माया हं जज्ञे मायायां मायाया मातली परि ॥ ५ ॥
 वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौः
 यावद्रोदसी विषवाधे अग्निः ।
 तवः पृष्ठादाद्यतो यन्ति स्तोमाः
 उदितो यन्त्यमि पृष्ठमहः ॥ ६ ॥
 पट् त्वां पृच्छाम् ऋषेयः कश्यपेमे
 त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च ।
 विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां
 नो वि वैद्वि यतिषा सतिभ्यः ॥ ७ ॥
 यां प्रच्युतामनुं युज्ञाः प्रच्यवन्ते
 उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् ।
 यस्यां व्रते प्रसवे यक्षमेजति
 सा विराटुपयाः परमे व्योमन् ॥ ८ ॥
 अप्राणैति प्राणेन प्राणवीनां
 विराट् स्वराजंभ्येति पश्चात् ।
 विश्वं मुञ्चन्तीमभिरूपां विराजं
 पश्यन्ति त्वे न त्वं पश्यन्त्येनाम् ॥ ९ ॥
 को विराजो मिथुनत्वं प्र वैदु
 क ऋन्क उ कल्पमस्याः ।
 म्रमान्को अस्याः कतिषा विदुग्मान्
 को अस्या धामं कतिषा प्युष्टीः ॥ १० ॥

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छद्
 आस्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
 महान्तो अस्यां महिमानो अन्तः
 वृष्टीर्जिगाय नवगजनित्री ॥ ११ ॥
 छन्दःपक्षे उपसा पेषंशाने
 समानं योनिमनु सं चरेते ।
 सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती
 केतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥ १२ ॥
 ऋतस्य पन्थामनुं तिस्र आगुः
 त्रयो घर्मा अनु रते आगुः ।
 प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका
 राष्ट्रमेका रक्षति देवयुनाम् ॥ १३ ॥
 अग्नीषोमोवदधुयां तुरीयासीद्
 यज्ञस्यं पक्षावृषेयः कल्पयन्तः ।
 गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं
 बृहदुकीं यजमानाय स्वगिरिभरन्तीम् ॥ १४ ॥
 पञ्च व्युष्टिरनु पञ्च दोहा
 गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च ।
 पञ्च दिशः पञ्चदशेन कल्पाः
 ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम् ॥ १५ ॥
 पट् जाता मृता प्रथमजतस्य
 पट् सामानि पट्दं वहन्ति ।
 पट्पोगं सारिमनु सामंसाम्
 पट्पुष्टीर्वापृथिवीः पट्पुष्टीः ॥ १६ ॥
 पट्पुष्टीः शीतान्यदुं माम् उष्णान्
 ऋतं नो व्रत यत्तमोऽर्तिरिक्तः ।
 सप्त सुपर्णाः क्वयो नि वैदुः
 सप्त च्छन्दास्पनुं सप्त द्वीषाः ॥ १७ ॥ (७५४)

सप्त होमाः समिधो ह सप्त
मधूनि सप्तर्वो ह सप्त ।
सप्तार्ज्यानि परिं भूतमायन्
ताः सप्तगुत्रा इति शुश्रुमा वयम् ॥ १८ ॥
सप्त च्छन्दांसि चतुरुत्तराणि
अन्यो अन्यस्मिन्नध्यापितानि ।
कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु
तानि स्तोमेषु कथमार्षितानि ॥ १९ ॥
कथं गायत्री त्रिवृतं व्यापि
कथं त्रिष्टुप्चन्द्रशेनं कल्पते ।
त्रयस्त्रिंशेन जर्गती कथमनुष्टुप्कथमेकविंशः ॥ २० ॥
अष्ट ज्ञाता भूता प्रथमजर्तस्य
अष्टेन्द्रत्विजो दैव्या ये ।
अष्टयोनिरादितिरष्टपुत्रा
अष्टमीं रात्रिमि हव्यमेति ॥ २१ ॥
इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमार्गं
युष्माकं सख्ये अहमेस्मि शेवा ।
समानजन्मा ऋतुरस्ति वः शिवः
स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन् ॥ २२ ॥
अष्टेन्द्रस्य षडयमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा ।
अपो मनुष्याश्चनोपधीस्तां उ पञ्चानु सेचिरे ॥ २३ ॥
केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिः
वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना ।
अथातर्पयच्चतुरश्वतुर्धा
देवान् मनुष्यांश्च असुरानुत ऋषीन् ॥ २४ ॥
को नु गाँः क एक ऋषिः
किमु घाम का आशिर्षः ।
युधं पृथिव्यामेकवृद्धैर्कर्तुः कंतमो नु सः ॥ २५ ॥
एको गौरेकं एकऋषिरेकं घामैकघाशिर्षः ।
युधं पृथिव्यामेकवृद्धैर्कर्तुर्नाति रिन्यते ॥ २६ ॥

१४ विश्वसंचालकः ।

कांड ६, सूक्त ३५

(ऋषिः- कौशिकः । देवता- वैश्वानरः)

वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावर्तः ।
अग्निर्नः सुष्टीरुपं ॥ १ ॥
वैश्वानरो न आगंमदिमं युजं सजूरुपं ।
अग्निरुक्थेष्वहंसु ॥ २ ॥
वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोमंमुकथं च चाकल्पत् ।
एषुं धन्नुं स्वर्षिमत् ॥ ३ ॥

१५ सर्वव्यापक ईश्वरः ।

कांड ७ सूक्त २६

(ऋषिः- मेघातिथिः । देवता- विष्णुः ।)

विष्णोर्धुं कुं प्रा वोचं वीर्याणि
यः पार्थिवानि विममे रजोसि ।
यो अस्कंभायदुत्तरं सघस्थं
विचक्रमाणखेधोरुंगायः ॥ १ ॥
प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्याणि
मृगो न भीमः कुचरो गिरिग्याः
परावत आ जंगम्यात्परस्याः ॥ २ ॥
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेपु
आविक्षियन्ति ध्रुवनालि विश्वा ।
उरु विष्णो वि क्रमस्त्रोरु क्षयाय नस्कृषि ।
घृतं घृतयोने पिवु प्रप्र युजर्षति तिर ॥ ३ ॥
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेषा नि दधे पदा ।
समूढमस्य पांसुरे ॥ ४ ॥
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदांम्यः ।
इतो घर्मीणि धारयन् ॥ ५ ॥
विष्णोः कर्माणि पश्यत् यतो व्रतानि पस्पृशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सता ॥ ६ ॥ (७३२)

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सुर्यः ।

दिवीवि चक्षुराततम् ॥ ७ ॥

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या

महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।

हस्तौ पूणस्व बहुभिर्वसव्यैः

आप्रथच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥ ८ ॥

१६ व्यापको देवः ।

कांठ ७, सूक्त ८७

(ऋषिः— अथर्वा । देवता— रुद्र ।)

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्सवृन्तः

यं ओषधीर्वीरुधं आविवेश्च ।

य इमा विश्वा भुवनानि चाकल्पे

तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्र्ये ॥ १ ॥

१७ दिव्यः सुपर्णः ।

कांठ ९, सूक्त १०

(ऋषि — ब्रह्मा । देवता— सो, विराट्, अश्वत्थाम् ।)

यद्वायुत्रे अधि गायत्रमार्हितं

त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुमान्निरतक्षत ।

यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं

य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानंशुः ॥ १ ॥

गायत्रेण प्रति मिमीते अकं

अक्रेण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।

वाकेन वाके द्विपदा चतुष्पदा

अधरेण मिमते मुप्त चाणीः ॥ २ ॥

जगता मिन्युं दिव्यस्क्रिमायद्

रथतरे एयं पर्यपश्यत् ।

गायत्रस्य समिधस्त्रिस्त आहुः

ततो मृदा प्र रिरिचि महित्वा ॥ ३ ॥

उपे ह्ये मुदुपां घेनुमेता

गुदुप्तां गोपुगुत दौर्ददनाम् ।

श्रेष्ठं सवं संविता साविपन्नः

अभीद्भो घर्मस्तदु पु प्र वोचत् ॥ ४ ॥

हिङ्कुण्वती वसुपत्नी वर्धना

वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।

दुहामश्वभ्यां पर्यो अङ्घयेयं

सा वर्धता महते सौमगाय ॥ ५ ॥

गौरमीमेदुभि वत्सं म्पिपन्तं

मूर्धानं हिङ्कुण्वोन्मातवा उ ।

सुक्राणं घर्ममभि वावशाना

मिमाति मायुं पर्यते पर्योभिः ॥ ६ ॥

अयं स शिङ्क्ते येन गौरमीर्वता

मिमाति मायुं च्वसनावधि श्रिता ।

सा चित्तिमिनि हि चकार मर्त्यान्

विद्युद्भवन्ती प्रति वत्रिमौहत ॥ ७ ॥

अनच्छये तुरगात् जीवं

एजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।

जीवो मृतस्यं चरति स्वधाभिर

अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ८ ॥

विधुं द्रद्राणं संलिलस्यं पृष्टे

युवानं सन्तं पलितो जंगार ।

देवस्यं पश्य काव्यं महित्वा

अद्या ममार स क्षः समान ॥ ९ ॥

य ईं चकार न सो अस्य वेदु

य ईं दुदश्च हिङ्गिष्णु तस्मात् ।

स मातुर्याना परिवीतो अन्तः

पद्मप्रजा निष्कतिरा विवेश ॥ १० ॥

अपश्यं गोपामनिपर्यमानं

आ च परा च पृथिमिथरन्तम् ।

स सध्रीचीः स विपूचीर्षसानः

आ वरीवति भुवनैन्पन्तः ॥ ११ ॥ (७२६)

द्यौर्निः पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्नो माता पृथिवी महयिम् । उत्तानयोश्चम्बोऽयोनिरन्तः अत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाघात पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः । पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नामिं पृच्छामि वाचः परमं व्योमि इयं वेदि परो अन्तः पृथिव्या अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः । अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नामिः ब्रह्मायं वाचः परमं व्योमि न वि जानामि यदिवेदमस्मि निष्यः संनद्धो मर्नमा चरामि । यदा मार्गन्प्रथमजा क्रतस्य आदिद्वाचो अश्रुवे सागमस्याः अपाङ् प्राड्हेति स्वधया गृमीतः अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः । ता अश्वन्ता विपूचीना वियन्ता न्यून्यं चिकपुने नि चिकपुरन्यम् सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतः विष्णोऽस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि । ते धीतिर्मिर्मनसा ते विपृथितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः श्रुचो अक्षरं परमे व्योमिन् यसिन्देवा अधि विश्वे निपेदुः । यस्तन्न वेद किमुचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्ते अमी समासते श्रुचः पदं मात्रया कल्पयन्तः अर्धचर्चनं चाकल्पुर्विश्वमेजत ।	॥ १२ ॥	॥ १३ ॥	॥ १४ ॥	॥ १५ ॥	॥ १६ ॥	॥ १७ ॥	॥ १८ ॥
त्रिपाद् ब्रह्म पुरुषं वि रथे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः सूयवसाद्भगवती हि भुया अघा वयं भगवन्तः स्याम । अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिवं शुद्धमुदकमाचरन्ती गौरिन्मिमाय सलिलानि तक्षति एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी । अष्टापदी नवपदी चमबुर्षी सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिः तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति कृष्णं नितानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिव्यमृतपतन्ति । त आववृत्रन्तसदेनाहृतस्य आदिद् घृतेन पृथिवीं व्युद्भिः अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वा मित्रावरुणा चिकेत । गर्भो मारं भरत्या चिदस्याः श्रुतं पिपृत्यनृतं नि पाति विराड् वाग् विराद् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः । विरापृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्यं मृतं मव्यं वशे स मे भूतं मव्यं वशे कृणोतु शुकमयं धूममारादपद्मं विपुवता पर एनावरेण । उक्षाणं पृथिमपचन्त वीराः तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् त्रयः केचिन्नं श्रुतय वि चक्षते संवत्सरे वपत एकं एषाम् ।	॥ १९ ॥	॥ २० ॥	॥ २१ ॥	॥ २२ ॥	॥ २३ ॥	॥ २४ ॥	॥ २५ ॥ (८००)

विश्वमन्यो अभिचष्टे शचीभिः
 भ्राजिरकंस्य ददृशे न रूपम् ॥ २६ ॥
 चत्वारि वाक्परिमिता पदानि
 तानि विदुर्बाह्वणा ये मन्त्रीपिणः ।
 गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति
 तुरीयं वाचो मनुष्याः वदन्ति ॥ २७ ॥
 इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः
 अथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
 एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति
 अथि यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ २८ ॥

१८ द्वौ सयुजौ सुपर्णौ ।

कांड १. सूक्त ९

(ऋषि - मरुता । देवता - वाम , अश्वत्थाम, आदित्य .)

अस्य वामस्य पलितस्य होतुः
 तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्रैः ।
 तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्य
 अत्रापदं विदपतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥
 सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रं
 एकं अश्वं वहति सप्तनामा ।
 त्रिनाभिं एकमर्जरमतपं
 गन्धमा पिशाचं छत्रनाभिं तुष्टुः ॥ २ ॥
 इमं रथमथि ये सप्त तस्युः
 सप्तचक्रं सप्त बहन्त्यश्वः ।
 सप्त स्पर्शरो अभि मं नवन्तु
 यत्र गत्रां निहिता सप्त नामा ॥ ३ ॥
 को देदृशे प्रथमं जायमानं
 अथ्यन्वन्तं यदनुष्या विमति ।
 भूम्या अगमृगात्मा क्व चिन्
 कां त्रिदामसुपं मात्प्रष्टमेतत् ॥ ४ ॥

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेद
 अस्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
 शीर्ष्णः शीरं दृहते गावो अस्य
 अथि वसना उदकं पदापुः ॥ ५ ॥
 पाकः पृच्छामि मनसाविजानन्
 देवानामेना निहिता पदानि ।
 वत्से वृष्कयेऽपिं सप्त तन्तुन्
 वि तन्निर कवय ओतवा उ ॥ ६ ॥

अचिकित्वांश्चिकितुपुंश्चिदत्रं
 कवीन्पृच्छामि विद्वनो न विद्वान् ।
 वि यस्तस्तम्भ पडिमा रजांसि
 अजस्यं रूपे किमपिं स्वदेकम् ॥ ७ ॥

माता पितरमृत आ वभाज
 धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
 सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा
 नमस्वन्तु कर्मीयुः ॥ ८ ॥

युक्ता मात
 अतिष्ठुर्भो
 अमीभेद्वत्सो
 विश्वरूप्यं ।

मातुः

पञ्चपादं पितरं द्वादशकृति
द्विव आहुः परे अर्धे पुरीषिणाम् ।

अथेमे अन्य उपरे विचक्षणे
सप्तचक्रे पठर आहुरार्षितम् ॥ १२ ॥

द्वादशारं नहि तज्जराय
वर्षति चक्रं परि धामृतस्य ।

आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र
सप्त शतानि विशतिश्च तस्युः ॥ १३ ॥

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत
उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।

धर्यस्य चक्षु रजस्रत्यावृतं
यसिन्नातस्युर्मुर्वनानि विश्वा ॥ १४ ॥

द्विष्यः सुतोस्ता उ मे पुंस आहुः
पश्यदक्षुष्वान्न वि चेतदुन्धः ।

कृषिर्षः पुत्रः स ईमा चिकेत
यस्ता विज्ञानात्स पितुष्पितासव ॥ १५ ॥

साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं
पडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ।

तेषामिष्टानि विहितानि धामश
स्थात्रे रंजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १६ ॥

अवः परेण पर एनावरेण
पदा वृत्सं चित्रती गौरुदम्यात् ।

सा कद्रीची कं म्बिदधर् परागान्
कृत्स्विस्वते नहि युथे अस्मिन् ॥ १७ ॥

अवः परेण पितरं यो अस्य वेद
अवः परेण पर एनावरेण ।

कवीपमानः क इह प्र वांचदु
देयं मनुः कुतो अधि प्रजातम् ॥ १८ ॥

ये अवाञ्छस्ता उ पराच आहुः
ये पराञ्छस्ता उ अवांच आहुः ।

इन्द्रश्च वा चक्रयुः सोम तानि
धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥ १९ ॥

द्वा सुपर्णा मयुजा सखाया
समानं वृक्षं परि पस्वजति ।

तयोर्न्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति
अनंशन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ २० ॥

यसिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा
निविशन्ते सुवते चाधि विश्वं ।

तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्ग्रे
तन्नोन्नशयः पितरं न वेदं ॥ २१ ॥

यत्रा सुपर्णा अपृतस्य मक्षं
अनिमेषं विदद्यामिस्वरन्ति ।

एना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः
स मा धारिः पाकमत्रा विवेश ॥ २२ ॥

१९ सर्वाधारः ।

कांड, १०, सूक्त ७

(ऋषेः- अथर्वा । देवता- इन्द्रम आत्मा वा ।)

कस्मिन्नङ्गे तपो अम्याधि तिष्ठति
कस्मिन्नङ्गे श्रुतमस्याध्याहितम् ।

कृत् व्रतं कृत् श्रद्धासं तिष्ठति
कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्रातिष्ठितम् ॥ १ ॥

कस्मादद्वादीप्यते अप्रिरेस्य
कस्मादद्वात्पवते मातरिशां ।

कस्मादद्वादि भिमिरेऽधि चन्द्रमा
मह स्कम्भस्य मिमानो अहम् ॥ २ ॥

कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम् ।

कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्पाहिता घोः
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्पुचरं द्विवः ॥ ३ ॥ (८४८)

- कर्तुं प्रेप्सन्दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः
 कर्तुं प्रेप्सन्पवते मातुरिश्वा ।
 यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतः
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः सिंवदेव सः ॥ ४ ॥
 क्वाधिमासाः क्वियन्ति मासाः
 संवत्सरेण सह संविदानाः ।
 यत्र यन्त्युत्तवो यत्रार्तिवाः
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः सिंवदेव सः ॥ ५ ॥
 कर्तुं प्रेप्सन्ती युवती विरूपे
 अहोरात्रे ब्रूवतः संविदुग्ने ।
 यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः सिंवदेव सः ॥ ६ ॥
 यस्मिन्स्तुब्ध्वा प्रजापतिः
 लोकान्तसर्षो अधारयत् ।
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः सिंवदेव सः ॥ ७ ॥
 यत्परममवमं यच्च मध्यमं
 प्रजापतिः समृजे विश्वरूपम् ।
 किर्यता स्कम्भः प्र विवेश तत्र
 यन्न प्राविशत्कियच्चद्रभूव ॥ ८ ॥
 किर्यता स्कम्भः प्र विवेश भूतं
 किर्यद्भविष्यदुन्वाशयेऽस्य ।
 एकं यदङ्गमर्कणोत्सहस्रधा
 किर्यता स्कम्भः प्र विवेश तत्र ॥ ९ ॥
 यत्र लोकाश्च कोशाश्चापो ब्रह्म जनां विदुः ।
 असंघं यत्र सचान्तं
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः सिंवदेव सः ॥ १० ॥
 यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम् ।
 क्रतुं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिता
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः सिंवदेव सः ॥ ११ ॥

- यस्मिन्भूमिरन्तरिक्षं धीर्यस्मिन्मघ्याहिताः ।
 यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यापिताः
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः सिंवदेव सः ॥ १२ ॥
 यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अद्गो सर्वे समाहिताः ।
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः सिंवदेव सः ॥ १३ ॥
 यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम् यजुर्मही ।
 एकार्षर्यस्मिन्नार्पितः
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः सिंवदेव सः ॥ १४ ॥
 यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते ।
 समुद्रो यस्य नाड्यर्षुः पुरुषेऽधि समाहिताः
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः सिंवदेव सः ॥ १५ ॥
 यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्यर्षुः स्तिष्ठन्ति प्रथमाः ।
 यज्ञो यत्र पराक्रान्तः
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः सिंवदेव सः ॥ १६ ॥
 ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
 यो वेदं परमेष्ठिनं यश्च वेदं प्रजापतिम् ॥
 ज्येष्ठये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ॥ १७ ॥
 यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरङ्गिरसोऽमवन् ।
 अङ्गानि यस्य यातवः
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः सिंवदेव सः ॥ १८ ॥
 यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत ।
 विराज्मूषो यस्याहुः
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः सिंवदेव सः ॥ १९ ॥
 यस्मादृचो अपातंक्षन्त्यजुर्धस्मादुपाकषन् ।
 सामानि यस्य लोमान्यथवादिग्रसो मुखं
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः सिंवदेव सः ॥ २० ॥
 असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परमामिव जनां विदुः ।
 उतो सन्मन्यन्तेऽधरे ये ते शारामुपासते ॥ २१ ॥

यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः ।
 मृतं च यत्र मर्ष्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ २२ ॥
 यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधि रक्षन्ति सर्वदा ।
 निधि तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ ॥ २३ ॥
 यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते ।
 यो वै तान्विधात्प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् ॥ २४ ॥
 बृहन्तो नाम ते देवा येऽसंतः परं जज्ञिरे ।
 एकं तदङ्गं स्कम्भस्वासदाहुः परो जनाः ॥ २५ ॥
 यत्र स्कम्भः प्रजनयन्पुराणं च्यवर्तयत् ।
 एकं तदङ्गं स्कम्भस्यं पुराणमनुसंविदुः ॥ २६ ॥
 यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अह्नो गात्रा विभेजिरे ।
 तान्वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेकं ब्रह्मविदो विदुः ॥ २७ ॥
 हिरण्यगर्भं परममनत्यद्यं जना विदुः ।
 स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्विराण्यं लोके अन्तरा २८
 स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्युतमाहितम् ।
 स्कम्भं त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् २९
 इन्द्रं लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्युतमाहितम् ।
 इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ३०
 नाम नात्रा जोहवीति पुरा सूर्यात्पुरोपसः ।
 यदुजः प्रथमं संचभूव स ह तत्स्वराज्यमियाय
 यस्मान्नान्यत्परमस्ति भूतम् ॥ ३१ ॥
 यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।
 दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ३२
 यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
 अपि यश्चक्रे आसं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ३३
 यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
 दिशो यश्चक्रे प्रजापतीः
 तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३४ ॥

स्कम्भो दाधार धावापृथिवी उभे इमे
 स्कम्भो दाधारोर्वीन्तरिक्षम् ।
 स्कम्भो दाधार प्रदिशुः पटुर्वाः
 स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेद्य ॥ ३५ ॥
 यः श्रमात्तपसो जातो लोकान्सर्वान्त्समानशे ।
 सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ३६
 कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः ।
 किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीनेलयन्ति कदा च न ३७
 महद्यक्षं सूर्यनस्य मध्ये
 तपसि क्रान्तं सलिलस्यं पृष्ठे ।
 तस्मिन् छ्यन्ते य उ के च देवा
 वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ॥ ३८ ॥
 यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा ।
 यस्मै देवाः सदा बलि प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं
 स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ३९ ॥
 अप तस्यं हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना ।
 सर्वाणि तस्मिन् ज्योतीषि
 यानि श्रीणि प्रजापतौ ॥ ४० ॥
 यो वै तसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेदं ।
 स वै गुह्यः प्रजापतिः ॥ ४१ ॥
 तन्त्रमेकं युवती विरूपे
 अभ्याक्रामं वयतः पणमयूयम् ।
 प्राण्या तन्तृस्तिरते धृत्ते अन्या
 नापं बृहत्ते न गमातो अन्तम् ॥ ४२ ॥
 तयोर्हं परिनृत्यन्त्योरिव
 न वि जानामि यतरा परस्तात् ।
 पुमानेनद्वयत्युद्गणचि
 पुमानेनद्वि जमाराधि नाकं ॥ ४३ ॥
 इमे मयूखा उर्प तस्तमुदिवं
 सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे ॥ ४४ ॥ (८३९)

२० ईश्वरस्य प्रचंडं सामर्थ्यम् ।

कांड ६, सूक्त ३३

(ऋषिः— जाटिकायनः । देवता— इन्द्र ।)

यस्येदमा रजो युजस्तुजे जना वनं स्वः ।
 इन्द्रस्य रन्त्यं वृहत् ॥ १ ॥
 नार्धुप आ दधृपते धृषाणो धृषितः शर्वः ।
 पुरा यथा व्यथिः श्रु इन्द्रस्य नार्धुपे शर्वः ॥ २ ॥
 स नो ददातु तां रयिमुहं पिशङ्गसंदशम् ।
 इन्द्रः पतिस्तुविष्टमो जनेष्वा ॥ ३ ॥

२१ परमेश्वरस्य महिमा ।

कांड ६, सूक्त ६१

(ऋषिः— अथर्वा । देवता— इन्द्र ।)

मद्यमापो मधुमदेरपन्तां
 मद्यं स्रो अमरज्ज्योतिषे कम् ।
 मद्यं देवा उत विश्वे तपोजा
 मद्यं देवा संविता व्यचो धात् ॥ १ ॥
 अहं विवेच पृथिवीमुत धां
 अहमूर्तूरजनयं सप्त साकम् ।
 अहं सत्यमनृतं यददामि
 अहं देवीं परि वाचं विश्व ॥ २ ॥
 अहं जजान पृथिवीमुत धां
 अहमूर्तूरजनयं सप्त सिन्धुम् ।
 अहं सत्यमनृतं यददामि
 यो अग्नीषोमावर्जुषे सर्वाया ॥ ३ ॥

२२ तेजस्वी ईश्वरः ।

कांड ६, सूक्त ३४

(ऋषिः— कायनः । देवता— अग्नि ।)

प्रापये वार्चमीरय वृषुमायं क्षितीनाम् ।
 स नः पर्षदति द्विपः ॥ १ ॥

यो रक्षांसि निजूर्वेत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा ।
 स नः पर्षदति द्विपः ॥ २ ॥
 यः परंस्याः परावतंस्तिरो धन्वातिरोचते ।
 स नः पर्षदति द्विपः ॥ ३ ॥
 यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।
 स नः पर्षदति द्विपः ॥ ४ ॥
 यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत ।
 स नः पर्षदति द्विपः ॥ ५ ॥

२३ विजयी इंद्रः ।

कांड ६, सूक्त ९

(ऋषिः— अथर्वा । देवता— सोम, वनस्पतिः ।)

इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत ।
 स्तोतुर्यो वचः शृणुवद्भवं च मे ॥ १ ॥
 आ यं विशन्तीन्द्रो वयो न वृक्षमन्धसः ।
 विरेपिशन्वि मृधो जहि रक्षस्विनीः ॥ २ ॥
 सुनोता सोमपात्रे सोममिन्द्राय वृजिर्ण ।
 युवा जेतेशानः स पुरुदुतः ॥ ३ ॥

२४ विजयी देवः ।

कांड ७, सूक्त ४४

(ऋषिः— प्रस्कन्वः । देवता— इन्द्र, विष्णुः ।)

उभा जिग्मथुर्न परा जपेधे
 न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः ॥ १ ॥
 इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृषेथा
 श्रेधा सहस्रं वि तर्दरेयथाम् ॥ २ ॥

२५ ईश्वरस्य ध्यानं ।

कांड ७, सूक्त ७१

(ऋषिः— अथर्वा । देवता— अग्निः ।)

परिं स्वाप्ते पुरं पयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
 धृषद्वर्ण दिवेदिंवे हुन्तारं भङ्गुरावतः ॥ १ ॥

२६ रक्षक-ईश्वरः ।

कांड ७, सूक्त ६३

(ऋषिः- मरिचिः काश्यपः । देवता- आत्वेदाः ।)

पुतनाजितं सहमानमग्निं
उक्थैर्हवामहे परमात्सुधस्यात् ।
स नः पर्यदति दुर्गाणि विश्वा
क्षामहेवोऽतिं दुरितान्यग्निः ॥ १ ॥

२७ नृचक्षः श्येनः ।

कांड ७, सूक्त ४१

(ऋषिः- प्रह्वणः । देवता- श्येनः ।)

अति धन्वान्यत्यपस्ततर्द
श्येनो नृचक्षा अवसानदुर्ध्वः ।
तरन्विश्वान्यवरा रजांसि
इन्द्रेण सख्या शिव आ जंगम्यात् ॥ १ ॥
श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः
सहस्रपाञ्चतयैर्निर्वयोधाः ।
स नो नि यच्छादसु यत्परांमृतं
असाकमस्तु पितृषु स्वधावत् ॥ २ ॥

२८ एकः पतिः ।

कांड ७, सूक्त २१

(ऋषिः- मद्रा । देवता- आत्मा ।)

समेत विश्वे वर्चसा पतिं दिव
एकौ विभ्रतिथिर्जनानाम् ।
स पूर्वो नूतनमाविवास्तु
तं वर्तनिरतुं वाचुत् एकमित्पुरु ॥ १ ॥

२९ सर्वस्य उत्पादकः ।

कांड ७, सूक्त १४

(ऋषिः- अथर्वी । देवता- सविता ।)

अभि त्वं देवं संवितारंभोग्योऽि क्विक्रतुम् ।
अर्चामि सत्यसर्वं रत्नधामभि प्रियं मातुम् ॥ १ ॥

ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युत्सर्वामनि ।

हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात्स्वः ॥ २ ॥

सावीर्हि देवं प्रथमार्थं पित्रे
वृर्माणमसै वरिमाणमसै ।
अथास्मभ्यं सवितुर्वार्याणि
दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः ॥ ३ ॥
दमूना देवः संविता वरेण्यः
दधद्रत्नं दधं पितृभ्य आर्युणि ।
पित्रात्सोमं ममदेदेनमिष्टे
परिज्मा चिरक्रमते अस्य घर्मेणि ॥ ४ ॥

३० सविता देवः ।

कांड ७, सूक्त १५

(ऋषिः- भृगुः । देवता- सविता ।)

तां संवितः सत्यसर्वा सुचिप्रा
आहं वृणे सुमतिं विश्ववाराम् ।
यामंस्य कण्ठो अर्दुहत्प्रपीनां
सहस्रधारां महिषो मगाय ॥ १ ॥

३१ कवीनां ज्योतिः ।

कांड ७, सूक्त ००

(ऋषिः- मद्रा । देवता- मंजोकाः । म. १ ।)

अयं सहस्रमा नो ह्ये कवीनां
मतिज्योतिर्विधर्मणि ॥ १ ॥
ब्रह्मः सुमीचरुपसः समैरयन् ।
अरेपसः सचैतसः स्वसरे मन्युमर्त्तमाश्रिते गोः २

३२ स्वस्तिदा पोषकः ।

कांड ७, सूक्त ९

(ऋषिः- उपरिब्रह्मः । देवता- पूषा ।)

प्रपथे पृथामजनिष्ट पूषा
प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उमे अभि प्रियतमे सुधस्ये
आ च परां च चरति प्रजानन् ॥ १ ॥ (८९८)

पूषेमा आशा अनु वेदु सर्वाः
 सो अस्माँ अभयतमेन नेपत् ।
 स्तुस्तिदा आघृणि सर्ववीरः
 अप्रयुच्छन्पुर एतु प्रजानन् ॥ २ ॥
 पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन ।
 स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ३ ॥
 परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् ।
 पुनर्नो नृपमार्जतु सं नृपेन गमेमहि ॥ ४ ॥

३३ परमं धाम ।

कांठ १, सूक्त १३

(श्रिया- मृगवहिरा । देवता- विद्युत् ।)

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयिन्नवे ।
 नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्वसि ॥ १ ॥
 नमस्ते प्रवतो नपाद्यतस्तर्पः समूहसि ।
 मडयां नस्तनभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥ २ ॥
 प्रवतो नपान्नम एवास्तु तुभ्यं
 नमस्ते हेतये तपुषे च कृणमः ।
 त्रिभ ते धाम परमं गुहा यत्
 संमुद्रे अन्तनिर्हितासि नामिः ॥ ३ ॥
 यां त्वा देवा अस्तुजन्त विश्वे
 इषु कृण्वाना असनाय धृणुम् ।
 सा नो मृड विदथे गृणाना
 तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥ ४ ॥

३४ विश्वंभरः ।

कांठ ०, सूक्त १६

(श्रिया - मद्रा । देवता- प्राण, ध्यान, आयु ।)

प्राणापानौ मृतयोर्मा पातुं स्वाहा ॥ १ ॥
 घावांपृथिवी उपश्रुत्या मा पातुं स्वाहा ॥ २ ॥
 स्यं चतुषा मा पाहि स्वाहा ॥ ३ ॥

अग्ने विश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ॥ ४ ॥
 विश्वंभर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ॥ ५ ॥

३५ कस्मै देवाय हविषा विधेम ?

कांठ ४, सूक्त १

य आत्मदा बलदा यस्य विश्वं
 उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
 योऽस्येवं द्विपदो यश्चतुष्पदुः
 कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥

यः प्राणतो निर्भिपतो महित्वा
 एको राजा जगतो बभूव ।
 यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः
 कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥

यं क्रन्दसी अवंतश्चस्कमाने
 मियसानि रोदसी अह्वयेथाम् ।
 यस्यासौ पन्था रजसो विमानः
 कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

यस्य घोरुर्वा पृथिवी च मही
 यस्याद उर्वीन्तरिक्षम् ।
 यस्यासौ सरो विततो महित्वा
 कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

यस्य विश्वं द्विमवन्तो महित्वा
 संमुद्रे यस्य रसामिद्राहुः ।
 इमार्थं प्रदिशो यस्य बाहू
 कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥

आपो अग्ने विश्वमावन्
 गमै दधाना अमृतां प्रतज्ञाः ।
 यासु देवीष्वधि देव आसीत्
 कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥ (११६)

हिरण्यगर्भः समवर्ततप्रै

मृतस्य जातः पतिरेकं आसीत् ।

स दाधार पृथिवीमृत द्यां

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ७ ॥

आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन् ।

तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद्विरण्ययुः

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८ ॥

३६ ब्रह्मा ।

कांठ १०, सूक्त २

(श्रुतिः- नारायणः । देवता- पार्ष्णिस्तकम्, पुरुषः,
ब्रह्मप्रकाशानम् ।)

केन पार्ष्णीं आमृतं पूरुपस्य

केन मांसं संमृतं केन गुल्फौ ।

केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि

केनोच्छ्रुल्लङ्घौ मन्थ्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥ १ ॥

कस्मान्नु गुल्फावर्धरावकृष्णन्

अष्टीवन्ताश्चुत्तरौ पूरुपस्य ।

जक्ष्ये निर्मृत्यु न्यदिधुः क्व सिञ्चत्

जानुनोः संघी क उ तर्धिकेत ॥ २ ॥

चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं

जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कवन्धम् ।

श्रोणी यदरू क उ तज्जजान

याम्यां कुसिन्धं सुददं बभूव ॥ ३ ॥

कर्ति देवाः कतमे त आसन्

य उरौ प्रीवाधिक्युः पूरुपस्य ।

कति स्तनौ व्यदिधुः कः कफोढौ

कर्ति स्कन्धानकर्ति पृष्टारचिन्वन् ॥ ४ ॥

को अस्य बाहू सममरद्वीपं करवादिदि ।

अंसौ को अस्य तद्वेवः कुसिन्धे अघ्या दधौ ॥ ५ ॥

कः सप्त खानि वि ततर्द श्रीर्षणि

कर्णाधिर्मा नासिके चक्षणी मुखम् ।

येषां पुरुत्रा विजयस्य मद्भानि

चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥ ६ ॥

हन्वोर्हि जिह्वामदधात्पुरूचीं

अथा महीमर्षिं शिश्राय वाचम् ।

स आ वरीवर्तिं ध्रुवनेष्पन्तः

अपो वसानुः क उ तर्धिकेत ॥ ७ ॥

मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटं

कृकार्दिकां प्रथमो यः कृपालम् ।

चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुपस्य

दिवं रुरोह कतमः स देवः ॥ ८ ॥

प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संवाधतुन्यः ।

आनन्दानुगो नन्दाश्च कस्मद्ब्रह्मति पूरुपः ॥ ९ ॥

आतिरवतिर्निर्ऋतिः कुतो उ पुरुषेऽमतिः ।

राद्धिः समृद्धिस्वृद्धिर्मतिरुद्धितयः कुतः ॥ १० ॥

को अस्मिन्नापो व्यदधाद्रिपूवृतः

पुरुवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः ।

तोत्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रघत्रा

ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरथीः ॥ ११ ॥

को अस्मिन्पुपमदधात्को मद्धानं च नाम च ।

गातुं को अस्मिन्कः कतुं कश्चरित्राणि पूरुपे १२

को अस्मिन्प्राणमवयत्को अपानं व्यानसु ।

समानमस्मिन्को देवोऽधि शिश्राय पूरुपे ॥ १३ ॥

को अस्मिन्यज्ञमदधात्को देवोऽधि पूरुपे ।

को अस्मिन्स्तत्यं कोऽनृतं

कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ॥ १४ ॥

को अस्मिं वासः पर्यदधादेको अस्यायुरकल्पयत् ।

यलं को अस्मिं प्रायच्छत् ॥ १५ ॥

को अस्याकल्पयज्जवम् ॥ १६ ॥

(१३३)

केनापो अन्वतसुतु केनाहरकरोद्बुचे ।
 उपसं केनान्वैन्द्र केन सायंभवं ददे ॥ १६ ॥
 को अस्मिन्नेतो न्यदिघाचन्तुरा तायतामिति ।
 मेधा को अस्मिन्नध्वौहृत्
 को वाणं को नृते दधौ ॥ १७ ॥
 केनेमा भूमिर्माणोत्केन पर्यंभवदिवम् ।
 केनामि मृद्धा पर्वताञ् केन कर्माणि पूरुषः ॥ १८ ॥
 केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं त्रिचक्षणम् ।
 केन युञ्जं च श्रद्धां च केनास्मिन्निति मनेः ॥ १९ ॥
 केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम् ।
 केनेममग्निं पूरुषः केनं संवत्सरं ममे ॥ २० ॥
 ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् ।
 ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्मं संवत्सरं ममे ॥ २१ ॥
 केन देवा अतु क्षियति केन देवजनीविंशः ।
 केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत्क्षत्रमुच्यते ॥ २२ ॥
 ब्रह्म देवा अतु क्षियति ब्रह्म देवजनीविंशः ।
 ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत्क्षत्रमुच्यते ॥ २३ ॥
 केनेयं भूमिर्विहिता केन यौरुचरा हिता ।
 केनेदमूर्ध्वं तिर्यक्चान्तरिक्षं व्यचौ हितम् ॥ २४ ॥
 ब्रह्म देवा भूमिर्विहिता ब्रह्म यौरुचरा हिता ।
 ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक्चान्तरिक्षं व्यचौ हितम् ॥ २५ ॥
 भूर्भान्तमस्य संक्षीघ्वार्धर्मा हृदयं च यत् ।
 मन्त्रिष्वाद्दूर्ध्वं प्रेरयत्पर्यमानोऽधि शीर्षतः ॥ २६ ॥
 तद्वा अर्धेणः शिरो देवक्रोशः सप्तव्रजितः ।
 तत्राणो अमि रक्षति शिरो अन्नमयो मनेः ॥ २७ ॥
 ऊर्ध्वो नु गुहाश्चित्पर्यट् नु गुहाः
 गर्वा दिशः पूरुष आ र्धभूर्वा ३ ।
 पुरं यो ब्रह्मणो वेदु यस्याः पूरुष उच्यते ॥ २८ ॥
 यो ये तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।
 पश्मे ब्रह्म च प्रादास्य चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः २९

न वैतं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।
 पुरं यो ब्रह्मणो वेदु यस्याः पूरुष उच्यते ॥ ३० ॥
 अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरुषोऽध्या ।
 तस्यां हिरण्ययुः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ३१
 तस्मिन्हिरण्यये कोशे ज्योतिः त्रिप्रतिष्ठिते ।
 तस्मिन्व्यष्टक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ३२ ॥
 प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरिवृताम् ।
 पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥ ३३ ॥

३७ दिव्यं महः ।

कांड ६, सूक्त १०

(श्रुति - अथवा । देवता - चरना ।)

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा मृतावचाकेशत ।
 शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेनां ते हविषा विधेम ॥ १ ॥
 ये त्रयः कालकाञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः ।
 तान्तसर्वानह ऊतयेऽस्मा अरिष्टतांतये ॥ २ ॥
 अप्सु ते जन्मं दिवि तै सधस्यं
 समुद्रे अन्तर्हिमा तै पृथिव्याम् ।
 शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेनां ते हविषा विधेम ॥ ३ ॥

३८ स्वर्ज्योतिः ।

कांड ४, सूक्त १४

(श्रुति - मृग । देवता - आर्य, अग्निः ।)

अजो ह्यभिर्जनिष्ट शोकात्
 सो अपश्यज्जनितामग्नें ।
 तेन देवा देवतामग्ने आयन्
 तेन रोहाञ्चरुधुर्मेघ्यासः ॥ १ ॥
 क्रमं च मग्निना नाकृष्टरूपान्दस्तेषु विभ्रतः ।
 दिवस्पृष्टं स्वर्गित्वा मिथा देवेभिराश्वम् ॥ २ ॥
 पृष्टार्षप्रिष्या अदमन्तरिक्षमारुहं
 अन्तरिक्षादिश्वमारुहम् ।
 दिवो नाकस्य पृष्टारक्ष्यो ज्योतिरिगामदम् ॥ ३ ॥

स्वर्ग्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोभारं सुविद्वांसो वितेनिरे ॥ ४ ॥
अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां
चक्षुर्देवानामृत मानुषाणाम् ।
इयंक्षमाणा भृगुभिः सजोपाः
स्वर्ग्यन्तु यजमानाः स्वास्ति ॥ ५ ॥
अजमनजिम् पर्यसा घृतेन
दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम् ।
तेन गेषु सुकृतस्यं लोकं
स्वशिरोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥ ६ ॥
पञ्चोदनं पञ्चभिर्हृगुलिभिः
दध्योर्द्वारं पञ्चघैतमौदनम् ।
प्राच्यां दिशि शिरो अजस्यं घेहि
दक्षिणायां दिशि दक्षिणं घेहि पार्श्वम् ॥ ७ ॥
पृथीच्यां दिशि मसदमस्य घेहि
उत्तरस्यां दिश्युत्तरं घेहि पार्श्वम् ।
ऊर्ध्वायां दिश्युजस्यानकं घेहि
दिशि ध्रुवायां घेहि पाजस्यम्
अन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य ॥ ८ ॥
श्रुतमजं श्रुतया प्रोर्णुहि त्वचा
सर्वरक्षैः संभृतं विश्वरूपम् ।
स उत्तिष्ठेतो अभि नाकमुत्तमं
पद्भिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु ॥ ९ ॥
३९ द्रविणोदा जातवेदाः ।
कांड, १९, सूक्त ३
(ऋषिः—अथर्वाङ्गिराः । देवता—अभिः ।)
दिवस्पृषिन्याः पर्यन्तरिक्षाद्
वनस्पतिभ्यो अप्योपधीभ्यः ।
यत्रयत्र विभृतो जातवेदाः
तव स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥ १ ॥

यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु
य ओपधीषु पशुष्वप्सुन्तः ।
अग्ने सर्वास्तन्वतुः सं रभस्व
ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः ॥ २ ॥
यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गः
या ते तनूः पितृष्विवेशं ।
पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथे
अग्ने तया रयिमस्मासु धेहि ॥ ३ ॥
श्रुत्कर्णाय क्वये वेद्याय
वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम् ।
यतो भयममयं तन्नो अस्तु
अवं देवानां यज ह्येहो अग्ने ॥ ४ ॥

४० जगतः राजा ।

कांड १९, सूक्त ५

(ऋषिः—अथर्वाङ्गिराः । देवता—ईदः ।)

इन्द्रो राजा जगतर्षणीनां
अधि क्षमि विपुरुषं यदस्ति ।
ततो ददाति द्राशुषे वधंनि
चोदुद्राघ उपस्तुतश्चिदुर्वाक् ॥ १ ॥

४१ ब्रह्मा ।

कांड १९, सूक्त ४३

(ऋषिः—ब्रह्मा । देवता—ब्रह्म, बहवो देवाः ।)

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेघां दधातु मे ।
अमये स्वाहा ॥ १ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान्दधातु मे ।
वायवे स्वाहा ॥ २ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
स्यो मा तत्र नयतु चक्षुः स्यो दधातु मे ।
स्योय स्वाहा ॥ ३ ॥ (१०१)

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तर्पसा सह ।
 चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे ।
 चन्द्राय स्वाहा ॥ ४ ॥
 यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तर्पसा सह ।
 सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे ।
 सोमाय स्वाहा ॥ ५ ॥
 यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तर्पसा सह ।
 इन्द्रो मा तत्र नयतु चलमिन्द्रो दधातु मे ।
 इन्द्राय स्वाहा ॥ ६ ॥
 यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तर्पसा सह ।
 आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोषं तिष्ठतु ।
 अन्नः स्वाहा ॥ ७ ॥
 यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तर्पसा सह ।
 ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ।
 ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ८ ॥

४२ आत्मा ।

काण्ड १९, सूक्त ५१

(ऋषिः - ब्रह्मा । देवता - आत्मा, सविता च ।)

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुः
 अयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे प्राणोऽयुतो
 मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥ १ ॥
 देवस्य त्वा सन्निहः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्यां
 पूष्णो हस्ताभ्यां प्रधत् आ रमे ॥ २ ॥

४३ प्रजापतिः ।

काण्ड १६, सूक्त १

(ऋषि - अथर्वः । देवता - प्रजापति ।)

(१)

अतिमृष्टो अपां वृषुमः
 अतिमृष्टा अथर्वो द्विष्याः ॥ १ ॥

रुजन्परिरुजन्मृणन्प्रमृणन् ॥ २ ॥
 प्रोको मनोहा खनो निर्द्राह
 आत्मदूर्पिस्तनुदूर्पिः ॥ ३ ॥
 इदं तमतिं सृजामि तं माम्यवनिक्षि ॥ ४ ॥
 तेन तमभ्यतिसृजामः
 योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥
 अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥ ६ ॥
 योऽस्त्वृषिरति तं सृजामि
 प्रोक्तं खनि तनुदूर्पिम् ॥ ७ ॥
 यो व आपोऽगिराविवेश
 स एष यद्वो घोरं तदेतत् ॥ ८ ॥
 इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि पिञ्चेत् ॥ ९ ॥
 अरिप्रा आपो अपं रिप्रमस्मत् ॥ १० ॥
 प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुग्धप्यं वहन्तु ॥ ११ ॥
 शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः
 शिवया तन्वोषं स्पृशत त्वचं मे ॥ १२ ॥
 शिवानग्नीनंप्सुपदो हवामहे
 मयि क्षत्रं वचं आ धत्त देवीः ॥ १३ ॥
 (२)
 निर्दुरमृष्यं रुर्जा मधुमती वाक् ॥ १ ॥
 मधुमती स्थ मधुमती वाचंसुदेयम् ॥ २ ॥
 उपहृतो मे गोपा उपहृतो गोपीथः ॥ ३ ॥
 सुश्रुतौ कर्णौ मद्रश्रुतौ कर्णौ
 मद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥ ४ ॥
 सुश्रुतिश्च मोषंश्रुतिश्च मा हासिष्टां
 सौपर्णं चक्षुरजंघं ज्योतिः ॥ ५ ॥
 ऋषीणां प्रस्तुरोऽसि
 नमोऽन्तु देवाय प्रस्तराय ॥ ६ ॥ (१९०)

(३)

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥ १ ॥

रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां

मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम् ॥ २ ॥

उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां

घृता च मा घृणश्च मा हासिष्टाम् ॥ ३ ॥

विमोक्षश्च मारुद्रपविश्च मा हासिष्टां

आर्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ॥ ४ ॥

बृहस्पतिर्म आन्सा नृमणा नाम ह्यः ॥ ५ ॥

असंतापं मे हृदयमूर्धा गव्युतिः

समुद्रो अस्मि विधर्मणा ॥ ६ ॥

(४)

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥ १ ॥

स्वासदसि सुपा असूतो मत्येष्वा ॥ २ ॥

मा मां प्राणो हासीत्

मो अपानः अवहाय परां गात् ॥ ३ ॥

सूर्यो माहः पात्वभिः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षात्

यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥ ४ ॥

प्राणापानौ मा मां हासिष्टं मा जने प्र मेधि ॥ ५ ॥

स्वस्त्यश्चोपसो दोषसश्च

सर्वे आपः सर्वेगणो अशीय ॥ ६ ॥

शुक्वरी स्थ पञ्चवो भोषं स्वेषुः

मित्रावरुणौ मे प्राणापानावृषिमं दृष्टं दृष्टं ॥ ७ ॥

विद्य तं स्वप्न जनित्रं

निःश्रुत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।

अन्तको० । तं त्वा० ॥ ४ ॥

विद्य तं स्वप्न जनित्रं

अभृत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।

अन्तको० । तं त्वा० ॥ ५ ॥

विद्य तं स्वप्न जनित्रं

निर्मृत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।

अन्तको० । तं त्वा० ॥ ६ ॥

विद्य तं स्वप्न जनित्रं

पराभृत्याः पुत्रोऽसि वनस्य करणः ।

अन्तको० । तं त्वा० ॥ ७ ॥

विद्य तं स्वप्न जनित्रं

देवजानानां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।

अन्तको० । तं त्वा० ॥ ८ ॥

विद्य तं स्वप्न जनित्रं

तं त्वा० वनस्य करणः ।

अन्तको० । तं त्वा० ॥ ९ ॥

विद्य तं स्वप्न जनित्रं

तं त्वा० वनस्य करणः ।

अन्तको० । तं त्वा० ॥ १० ॥

जाम्बुद्वीप्यं स्वप्नेदुष्वप्यम् ॥ ९ ॥
 अनागमिष्यतो वरानवित्तः
 संकल्पानमृच्या द्रुहः पाशान् ॥ १० ॥
 तदमुष्मां अग्ने देवाः परां वहन्तु
 वधिर्यथासद्विधुरो न साधुः ॥ ११ ॥

(७)

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि
 निर्भूत्यैनं विध्यामि
 पराभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि
 तमसेनं विध्यामि ॥ १ ॥
 देवानामिनं घोरैः क्रूरैः प्रैरैभिप्रेष्यामि ॥ २ ॥
 वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥ ३ ॥
 एवानेवाव सा गरत् ॥ ४ ॥
 योऽस्मान्द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु
 यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥ ५ ॥
 निद्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या
 निरन्तरिक्षाद्भजाम ॥ ६ ॥
 सुयामंश्चाक्षुष ॥ ७ ॥
 इदमहमासुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दुष्वप्यं मृजे ८
 यदुदोऽदो अम्यगच्छन्त्यहोषा यत्पूर्वा रात्रिम् ९
 यजाग्रद्यत्सुप्ता यद्विवा यन्नक्तम् ॥ १० ॥
 यदहरहरभिमच्छामि तस्मादेनमर्ष दये ॥ ११ ॥
 तं जह्ति तेनं मन्दस्व तस्यं पृथीरपि शृणीहि १२
 स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु ॥ १३ ॥

(८)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं
 श्रुतमसाकं तेजोऽसाकं ब्रह्मासाकं
 स्वर्गसाकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं
 प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।

तस्मादुष्टं निर्मजामः
 अमुमासुष्यायणमुष्याः पुत्रमसौ यः ।
 स ग्राह्याः पाशान्मा मौचि ।
 तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुः
 निर्वैटयामीदमेनमधुराश्च पादयामि ॥१-४॥१॥
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं० ।
 स निष्कृत्याः पाशान्मा मौचि ।
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ ५ ॥ २ ॥
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
 सोऽभूत्याः पाशान्मा मौचि ।
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ ६ ॥ ३ ॥
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
 स निर्भूत्याः पाशान्मा मौचि ।
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ ७ ॥ ४ ॥
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
 स पराभूत्याः पाशान्मा मौचि ।
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ ८ ॥ ५ ॥
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
 स देवजामीनां पाशान्मा मौचि ।
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ ९ ॥ ६ ॥
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
 स बृहस्पतेः पाशान्मा मौचि ।
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १० ॥ ७ ॥
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
 स प्रजापतेः पाशान्मा मौचि ।
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ ११ ॥ ८ ॥
 जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
 स श्रुषीणां पाशान्मा मौचि ।
 तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १२ ॥ ९ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स आर्षेयाणां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १३ ॥ १० ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १४ ॥ ११ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स आङ्गिरसानां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १५ ॥ १२ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
सोऽथर्वणां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १६ ॥ १३ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स आथर्वणानां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १७ ॥ १४ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स वनस्पतीनां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १८ ॥ १५ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स वानस्पत्यानां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ १९ ॥ १६ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स ऋतुनां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २० ॥ १७ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स आर्तवानां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २१ ॥ १८ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स मासानां पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २२ ॥ १९ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
सोऽर्धेमासानां पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २३ ॥ २० ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २४ ॥ २१ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
सोऽह्नोः संयतोः पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २५ ॥ २२ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २६ ॥ २३ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स इन्द्रान्योः पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २७ ॥ २४ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २८ ॥ २५ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ २९ ॥ २६ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं०
स मृत्योः पद्वीशात् पाशान्मा मौचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः० ॥ ३०-३३ ॥ २७ ॥

(१)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकं
अभ्यष्टां विश्वाः पृत्तना अरवीः ॥ १ ॥
(१००९)

तदुमिराह तद् सोमं आह
 पूषा मां धात्सुकृतस्य लोके ॥ २ ॥
 अगन्म स्वर्गः स्वर्गिगन्म
 सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ॥ ३ ॥
 वसुभूयां वसुमान्यज्ञो वसु वंशिपीय
 वसुमान्भूयांसं वसु मयि धेहि ॥ ४ ॥

४४ प्राणः ।

कांड ७, सूक्त ४

(ऋषि - अथर्वा 'ब्रह्मवचसकामः' । देवता- वायु ।)

एकया च दुशभिश्चा सुहुते
 द्वाभ्यामिष्ट्यै विशत्या च ।
 तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च
 विद्युर्भिर्भाय इह ता वि सुश्च ॥ १ ॥

४५ आत्मयज्ञः ।

कांड ७, सूक्त ५

(ऋषि - अथर्वा 'ब्रह्मवचसकामः' । देवता- आत्मा ।)

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः
 तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
 ते ह नाकं महिमानं सचन्त
 यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः ॥ १ ॥
 यज्ञो बंधूव स आ बंधूव
 स प्र जज्ञे स उ वावृधे पुनः ।
 स देवानामधिपतिर्वभूव
 सो अम्मासु द्रविणमा दधातु ॥ २ ॥
 यद्देवा द्वेवान्हविषां जन्तामेत्यन्मनसा मर्त्येन ।
 मर्दम तत्र परमे व्योमिन्परश्वेन तदुदितौ सूर्यस्य ३
 यत्पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत ।
 अस्ति तु तस्मादोर्जायो यद्विहर्ष्येनेजिरे ॥ ४ ॥
 मुग्धा देवा उत श्रुनायजन्त
 उत गोरक्षः पुरुषायजन्त ।

य इमं यज्ञं मनसा चिकेत
 प्र णो वोचस्तमिहेह व्रवः ॥ ५ ॥

४६ त्रितः धर्ता ।

कांड ५, सूक्त १

(ऋषि - बृहद्विबोऽथर्वा । देवता - वरुणः ।)

ऋधंङ्मन्त्रो योनिं य आ वभूव
 अमृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा ।
 अर्दग्धासुर्भ्राजमानोऽहव
 त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि ॥ १ ॥

आ यो धर्माणि प्रथमः सुसादु
 ततो वपुषि कृणुषे पुरुणि ।
 धास्युयोनिं प्रथम आ विवेश
 आ यो वाचमनुदितां चिकेत ॥ २ ॥

यस्ते शोकाय तन्विरिरेच
 क्षरद्विरण्यं शुचयोऽनु स्वाः ।
 अत्रा दधेते अमृतानि नाम
 अस्मे वस्त्राणि विश पर्यन्ताम् ॥ ३ ॥

प्र यदेते प्रतरं पूर्वं गुः
 सदांसद आतिष्ठन्तो अजुर्यम् ।
 कविः शुपस्यं मातरां रिहाणे
 जाम्यै धुर्यं पतिमेरयेथाम् ॥ ४ ॥

तद् पु ते महत्पृथुज्मन्त्रमः
 कविः काव्येना कृणोमि ।
 यत्सम्यञ्चावभियन्तावमि क्षां
 अत्रा मही रोधचक्रे वावृधेते ॥ ५ ॥

सप्त मर्यादाः कुरयस्ततक्षुः
 तासाभिदेकामभ्यंद्ुरो गात् ।
 आयोहं स्कम्भ उर्यमस्य नीडे
 पथां विस्मो धर्णेपु तस्यौ ॥ ६ ॥ (१०८७)

उतामृतासुर्वृत एमि कृष्वन्
असुरात्मा तन्वत्तस्सुमद्गुः ।

उत वा शक्रो रत्नं दधाति
ऊर्जया वा यत्सचते हविर्दोः

उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडे
ज्येष्ठं मर्यादमह्वयन्स्वस्त्रये ।

दर्शन्नु ता वरुण यास्ते विष्टा
आचरंततः कृणवो वर्षीपि

अर्धमर्धेन पर्यसा ष्टाक्षि
अर्धेन शुष्म वर्षसे अगुर ।

अर्वि वृधाम शग्मियं सखायं
वरुणं पुत्रमर्दित्या इपिरम् ।

कविशस्तान्यस्मै वर्षीपि
अवोचाम रोदसी सत्यवाचा

४७ दिव्य-दृष्टिः ।

कांड ४, सूक्त १०

(ऋषिः - मातृनामा । देवता - मातृनामा ।)

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति ।
दिवमन्तरिक्षमाद्भिमि सर्वं तदेवि पश्यति ॥ १ ॥

तिस्रो दिवस्तिष्ठः पृथिवीः
पद् चेमाः प्रदिशः पृथक् ।

त्वयाहं सर्वा मृतानि पश्यानि देव्योषधे ॥ २ ॥
दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कृनीर्निका ।

सा भूमिमा रुरोहिय वृक्षं श्रान्ना वधूरिव ॥ ३ ॥
तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत् ।

तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ॥ ४ ॥
आविष्कृष्व रूपानि मात्मानमर्ष गृहथाः ।

अथो सहस्रक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ५
दुश्यं मा यातुधानान्दुश्यं यातुधान्यः ।

पिशाचान्तसर्वान्दुश्येति त्वा रंभ ओषधे ॥ ६ ॥

कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्षाः ।

वीधे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ॥ ७ ॥
उदग्रमं परिपाणाघानुधानं किमीदिनम् ।

तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ॥ ८ ॥
यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यथातिसर्पति ।

भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्र दर्शय ॥ ९ ॥
४८ आत्मवलम् ।

कांड ५, सूक्त ९

(ऋषिः - ब्रह्मा । देवता - वान्तोष्पति, आत्मा ।)

दिवे स्वाहा ॥ १ ॥
पृथिव्यै स्वाहा ॥ २ ॥

अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ३ ॥
अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ४ ॥

दिवे स्वाहा ॥ ५ ॥
पृथिव्यै स्वाहा ॥ ६ ॥

सूर्यो मे चक्षुर्वीर्यः प्राणेशः
अन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् ।

अस्तुतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं
नि देवे धात्रापृथिवीभ्यां गोपीधाय ॥ ७ ॥

उदायुरुद्रलमुत्कृतमुत्कृत्यामुन्मनीषामुदिन्दियम् ।
आयुष्कदायुष्पत्नी स्वधावन्तो

गोपा मे स्तं गोपायतं मा ।
आत्मसदो मे स्तं मा मां हिसिष्टम् ॥ ८ ॥

४९ आत्मवलम् ।

कांड ५, सूक्त १०

(ऋषिः - ब्रह्मा । देवता - वारुतोष्पतिः ।)

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्राच्यां दिशः
अधायुरंभिदासात् । एतत्स ऋच्छात् ॥ १ ॥

अश्मवर्म मेऽसि यो मा दक्षिणायां दिशः
अधायुरंभिदासात् । एतत्स ऋच्छात् ॥ २ ॥

तदुभिराहृ तदु सोमं आह
 पूषा मां धात्सुकृतस्यं लोके
 अर्गन्म स्वः स्वः खरिगन्म
 सं धर्यस्य ज्योतिपागन्म
 वसुमूर्याय वसुमान्युज्ञो वसु वंशिपीय
 वसुमान्मूर्यामं वसु मर्यं वेहि

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

४४ प्राणः ।

कांड ७, सूक्त ४

(ऋषि - अथर्वा ब्रह्मवर्चसकामः । देवता - वायुः ।)

एकया च दुशर्मिश्वा सुहुते
 द्वाभ्यामिष्टयै विश्रुत्या च ।
 तिसृभिश्च वहसे त्रिशतां च
 त्रियुग्भिर्वाय इह ता वि मुञ्च

॥ १ ॥

४५ आत्मयज्ञः ।

कांड ७, सूक्त ५

(ऋषि - अथर्वा 'ब्रह्मवर्चसकामः' । देवता - आत्मा ।)

यज्ञेन यज्ञमेयजन्त देवाः
 तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
 ते ह नार्कं महिमानं सचन्त
 यत्र पूर्वं माध्याः सन्ति देवाः
 यज्ञो चंभूव म आ चंभूव
 म प्र जंत्रं म उ वावृधे पुनः ।
 स देवानामधिपतिर्चभूव
 मो अमासु द्रविणमा देघातु
 यदेवा देवान्द्रविपार्यजन्तामर्त्यान्मनसामर्त्येन ।
 मर्त्ये म तर्ग परमे ष्योमिन्पर्ये म तदुदितौ मूर्यस्य ३
 यन्पुरुषेण हविषा यष्टं देवा अर्तन्वत ।
 अग्निं नु तस्मादोजीषो यद्द्विहर्ष्येनजिरे ॥ ४ ॥
 मुग्धा देवा उत शूनार्यजन्त
 उग गोरक्षैः पुरुषार्यजन्त ।

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

४६ त्रितः धर्ता ।

कांड ५, सूक्त १

(ऋषि - बृहद्विबोऽथर्वा । देवता - वरुणः ।)

ऋषेभ्यमन्त्रो योनि य आं वृभूव
 अमृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा ।
 अदन्वासुर्भ्राजमानोऽहैव
 त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि
 आ यो धर्माणि प्रथमः मुसादु
 ततो वपुषि कृशुपे पुरुणि ।
 घ्रास्युयोनिं प्रथम आ विवेश
 आ यो वाचमनुदितां चिकेत
 यस्ते शोकाप तन्विरिरेच
 क्षरद्विरण्यं शुचयोऽनु स्वाः ।
 अत्रा दधेते अमृतानि नाम
 अस्मे वस्त्राणि विश पर्यन्ताम्
 प्र यदेते प्रतरं पूर्य गुः
 सदैःसद आतिष्ठन्तो अजुर्धम् ।
 ऋषिः शुपस्यं माठरां रिहाणे
 जाम्ये धुषं पतिमेर्येधाम्
 तदु पु ते महत्पृथुज्मन्मः
 ऋषिः काव्येना ऋणोमि ।
 यत्सम्पञ्चावभियन्तावमि क्षा
 अत्रा मही रोधचक्रे वावृधेते
 सप्त मूर्यादाः कुर्यस्ततक्षुः
 तासांमिदेकांम्युङ्कुरो गात् ।
 आयोई स्कम्म उर्यमस्य नीहे
 प्यां विसर्गे धरुषं प तस्यो

॥ ५ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥ (१००९)

जानीत स्मै न परमे व्योमिन्
देवाः सर्षस्था विद लोकमत्र ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति
इष्टायुतं स्मं कृणुताविरस्मै
देवाः पितरः पितरो देवाः ।

॥ २ ॥

यो अस्मि सो अस्मि
स पंचामि स ददामि स यजे
स दुचान्मा यूपम्
नाकं राजन्प्रति तिष्ठ तत्रैतत्प्रति तिष्ठत ।
विद्धि पुर्वस्य नो राजन्स देव सुमना भव ॥५॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

५३ वद्धस्य मोचनम् ।

कांड ६, सूक्त १११

(ऋषिः- अथर्वी । देवता- अग्निः ।)

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्धि
अयं यो बद्धः सुयंता लालपीति ।
अतोऽपि ते कृणवद्भ्रागुधेयं
यदानुन्मदितोऽसति
अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् ।
कृणोमिं विद्वान्मेपजं यदानुन्मदितोऽसति ॥२॥
देवेनसादुन्मदितुमुन्मत्तं रक्षसुस्परिं ।

॥ १ ॥

कृणोमिं विद्वान्मेपजं यदानुन्मदितोऽसति ॥३॥
पुनश्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः ।
पुनश्त्वा दुर्विश्वे देवा यदानुन्मदितोऽसति ॥४॥

५४ अमरत्वस्य प्राप्तिः ।

कांड ७, सूक्त १०६

(ऋषिः- अथर्वी । देवता- ज्ञातवेदा वदणथ ।)

यदस्मृति चकृम किं चिदमे
उपारिम चरणं जातवेदः ।
ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः
शुभे सपिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः

॥ १ ॥

५५ दैव्यं वचः ।

कांड ७, सूक्त १०५

(ऋषिः- अथर्वी । देवता- मन्त्रोच्चा ।)

अपक्रामन्पौहोपयादृणानो दैव्यं वचः ।
प्रणीतोरभ्यावर्तस्त्र विश्वेभि सखिभिः सह ॥१॥

५६ ऊर्ध्वावस्थानं ।

कांड ७, सूक्त १०२

(ऋषिः- प्रजापतिः । देवता- यावापृथिवी, अन्नाग्नि सूर्यः ।)
नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे ।
मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन्मा मां हिसिपुरीश्वराः ॥१॥

५७ ब्रह्मचारी ।

(अथर्वं ११।५।१-१६)

ब्रह्मचारी । [ब्रह्मचर्यम्] । त्रिष्टुप् ; १ पुरोऽतिप्रागता विराट्-
गर्गा, २ पञ्चपदा बृहतीगर्गा विराट् शर्करा; ३ उरोबृहती;
६ शक्रवरगर्गा चतुष्पदा जगती; ७ विराट्गर्गा; ८ पुरो-
ऽतिप्रागता विराट् जगती; ९ बृहतीगर्गा; १० सुरिङ्;
११, १३ जगती; १२ शक्रवरगर्गा चतुष्पदा
विराडतिजगती; १५ पुरस्ताज्जगती; १५,
१६-२२ अनुष्टुप्, २३ पुरोबाह्वताति-
जागतगर्गा; २५ एकावसानाद्युष्टिङ्;
२६ मध्येज्योतिहृत्पिण्डगर्गा ।

ब्रह्मचारिण्यंश्वरति रोदसी उमे
तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च
स आचार्यं तपसा पिपति ॥ १ ॥

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः
पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन्
त्रयस्त्रिंशत् त्रिश्रताः पट्सहस्राः
सर्वान्तस देवास्तपसा पिपति ॥ २ ॥ (११।८)
आचार्यं उपनयमानो
ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।

अश्मवर्म मैऽसि यो मा प्रतीच्या दिशः
 अघायुरभिदासात् । एतत्स ऋच्छात् ॥ ३ ॥
 अश्मवर्म मैऽसि यो मोदीच्या दिशः
 अघायुरभिदासात् । एतत्स ऋच्छात् ॥ ४ ॥
 अश्मवर्म मैऽसि यो मा ध्रुवाया दिशः
 अघायुरभिदासात् । एतत्स ऋच्छात् ॥ ५ ॥
 अश्मवर्म मैऽसि यो मोर्ध्वाया दिशः
 अघायुरभिदासात् । एतत्स ऋच्छात् ॥ ६ ॥
 अश्मवर्म मैऽसि यो मा द्विशामन्तदेशेभ्यः
 अघायुरभिदासात् । एतत्स ऋच्छात् ॥ ७ ॥
 बृहता मन उष ह्ये मातरिश्चना प्राणापानौ ।
 सूर्याचक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम् ।
 सरस्वत्या वाचसृषं ह्ययामहे मनोयुजा ॥ ८ ॥

५० पशुपतिः ।

कांड १, सूक्त ३४

(ऋषिः- अथर्वा । देवता- पशुपतिः ।)

य ईशे पशुपतिः पशुनां
 चतुष्पदामृत यो द्विपदाम् ।
 निष्क्रीतः स यन्नियं भागमेतु
 रायस्वोपा यजमानं सचन्ताम् ॥ १ ॥
 प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य रेतो
 गातुं धत्त यजमानाय देवाः ।
 उपाकृतं शशमानं यदस्यात्
 प्रियं देवानामर्च्येतु पाथः ॥ २ ॥
 ये वृष्यमानमनु दीष्याना
 अन्वेषन्तु मनसा चक्षुषा च ।
 अग्निष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः
 विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ॥ ३ ॥
 ये ग्राम्वाः पृथ्वी विश्वरूपा
 विरूपाः सन्तो षड्धैकरूपाः ।

वायुष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः
 प्रजापतिः प्रजया संरराणः ॥ ४ ॥
 प्रजानन्तः प्रति गृह्णन्तु पूर्वं
 प्राणमङ्गैभ्यः पर्याचरन्तम् ।
 दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरैः
 स्वर्गं याहि पृथिभिर्देवयानैः ॥ ५ ॥

५१ धृतव्रतः राजा ।

कांड ७, सूक्त ८२

(ऋषिः- शुनःशेखः । देवता- वरुणः ।)

अप्सु ते राजन्वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः ।
 ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥ १ ॥
 धाम्नोषाम्नो राजन्व्रतो वरुण मुञ्च नः ।
 यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम
 ततो वरुण मुञ्च नः ॥ २ ॥

उदुत्तमं वरुण पाशंस्मद्
 अवाधमं वि मध्मं श्रथाय ।
 अधा वयमादित्य व्रते तव
 अनागसो अदितये स्याम ॥ ३ ॥
 प्रासत्पाशांन्वरुण मुञ्च सर्वान्
 य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
 दुध्वन्मयं दुरितं नि ध्वास्मद्
 अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ ४ ॥

५२ सुमना भव ।

कांड ६, सूक्त १२१

(ऋषिः- सृष्ट । देवता- विश्वदेवाः ।)

एतं संधस्याः परिं वो ददामि
 यं श्रेष्ठिमावहाज्जातवेदाः ।
 अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति
 तं स्म जानीत परमे व्योमन् ॥ १ ॥ (१११)

ज्ञानीत स्मैर्न परमे व्योमिन्
 देवाः सर्घस्या विद लोकमत्र ।
 अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति
 इष्टापूर्त स्मं कृणुताविरस्मै ॥ २ ॥
 देवाः पितरोः पितरो देवाः ।
 यो अस्मि सो अस्मि ॥ ३ ॥
 स पंचामि स दंदामि स यज्ञे
 स दुचान्मा यूपम् ॥ ४ ॥
 नाकं राजन्प्रति तिष्ठ तत्रैतत्प्रति तिष्ठतु ।
 विद्धि पूर्वस्य नो राजन्त्स देव सुमनां भव ॥ ५ ॥

५३ वद्धस्य मोचनम् ।

कांड ६, सूक्त १११

(ऋषिः- अथर्वा । देवता- अग्निः ।)

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्धि
 अयं यो वद्धः सुयतो लालपीति ।
 अतोऽर्घं ते कृणवद्भागुधेयं
 यदानुन्मदितोऽसंसति ॥ १ ॥
 अग्निष्टे नि श्मयतु यदि ते मन उद्युतम् ।
 कृणोमि विद्वान्भेषजं यथानुन्मदितोऽसंसति ॥ २ ॥
 देवेनसादुन्मदितुमुन्मत्तं रक्षसुस्परि ।
 कृणोमि विद्वान्भेषजं यदानुन्मदितोऽसंसति ॥ ३ ॥
 पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्मर्गः ।
 पुनस्त्वा दुर्विषे देवा यथानुन्मदितोऽसंसति ॥ ४ ॥

५४ अमरत्वस्य प्राप्तिः ।

कांड ७, सूक्त १०६

(ऋषिः- अथर्वा । देवता- जालवेदा वरुणः ।)

यदस्मृति चक्रम किं चिदभे
 उपारिम चरणं जातवेदः ।
 ततः याहि त्वं नः प्रचेतः
 शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः ॥ १ ॥

५५ दैव्यं वचः ।

कांड ७, सूक्त १०५

(ऋषिः- अथर्वा । देवता- मन्त्रोक्ता ।)

अपक्रामन्पौरुषेयानुदृणानो दैव्यं वचः ।
 प्रणीतोऽरम्भावर्तस्व विश्वेभि सखिभिः सह ॥ १ ॥

५६ ऊर्ध्वावस्थानं ।

कांड ७, सूक्त १०९

(ऋषिः- प्रजापतिः । देवता- यावापृथिवी, अन्नरिक्ष सृष्टुः ।)

नमस्कृत्य यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे ।
 मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन्मा मां हितिपुरीश्वराः ॥ १ ॥

५७ ब्रह्मचारी ।

(अथर्व ० ११५१-१६)

ब्रह्मचारी । [ब्रह्मचर्यम् ।] शिष्टम् ; १ पुरोऽतिजागता विराट्-
 गर्गा, २ पञ्चपदा बृहतीगर्गा विराट् शक्राः, ३ उरोबृहती ।
 ६ शक्रवरगर्गा चतुष्पदा जगती, ७ विराट्गर्गा, ८ पुरो-
 ऽतिजागता विराट् जगती, ९ बृहतीगर्गा, १० सुरिङ् ;
 ११, १२ जगती; १२ शक्रवरगर्गा चतुष्पदा
 विराट्तिजगती; १५ पुरस्ताज्जगती; १५,
 १६-२२ अतुष्टु, २३ पुरोबर्हताति-
 जागतीगर्गा; २५ एकावसानाच्युदियङ् ;
 २६ मध्येज्योतिहस्त्रिगर्गा ।

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदमी उमे
 तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।
 म दाधार पृथिवीं दिवं च
 स आचार्यं तपसा पिपति ॥ १ ॥
 ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः
 पृथग्देवा अनुसंयन्ति मयं ।
 गन्धर्वा एनमन्वायन्
 श्रयंसिद्यत् शिशुताः पट्टसहस्राः
 मर्शन्त्स देवास्तपसा पिपति ॥ २ ॥ (११५८)
 आचार्यं उपनयमानो
 ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।

तं रात्रींस्तिस्र उदरं विभर्ति
 तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥ ३ ॥
 इयं समित् पृथिवि द्यौर्द्वितीया
 उतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
 ब्रह्मचारी समिधा मेखलया
 श्रमेण लोकान्स्तपसा पिपति ॥ ४ ॥
 पूर्वां जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी
 यमं वसानस्तपसोदतिष्ठत् ।
 तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं
 देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ ५ ॥
 ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः
 काष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ।
 स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं
 लोकान्तसंगृभ्य घृहुराचरिक्त् ॥ ६ ॥
 ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मणो लोकं
 प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् ।
 गर्भो भूत्वाऽमृतस्य योनौ
 इन्द्रो ह भूत्वाऽसुरांस्ततर्ह ॥ ७ ॥
 आचार्यस्त्वत्तन्न नभसी उभे इमे
 उर्वो गम्भीरे पृथिवी दिवं च ।
 ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी
 तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ॥ ८ ॥
 इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी
 भिक्षामा जमार प्रथमो दिवं च ।
 ते कृत्वा समिधावुपांस्ते
 तयोरापिता भूर्वनानि विश्वा ॥ ९ ॥
 अर्वागुन्यः पुरो अन्यो द्विवस्पृष्टाद्
 गुहां निधी निहिर्तो ब्राह्मणस्य ।
 तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी
 तन्न केवलं कृणुते मर्षं विद्वान् ॥ १० ॥

अर्वागुन्य इतो अन्यः पृथिव्या
 अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे ।
 तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढाः
 ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥ ११ ॥
 अमिकन्दं स्तनपद्मरुणः श्रितिङ्गः
 घृह्छेपोऽनु भूमौ जमार ।
 ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः
 पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिश्वतस्तः ॥ १२ ॥
 अग्नौ सूर्यं चन्द्रमसि मातरिश्चन्
 ब्रह्मचार्येषु समिधमा दधाति ।
 तासामर्चापि पृथग्भे चरन्ति
 तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥ १३ ॥
 आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पर्यः ।
 जीमूता आसन्तस्त्वान्स्तेरिदं स्वर्गं राभूतम् १४
 अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा
 वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ ।
 तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत्
 स्वान् मित्रो अघ्यात्मनः ॥ १५ ॥
 आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
 प्रजापतिविं राजति विराडिन्द्रोऽभवद्दृशी ॥ १६ ॥
 ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
 आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १७ ॥
 ब्रह्मचर्येण कन्याश्च युवानं विन्दते पतिम् ।
 अनङ्गान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥ १८ ॥
 ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपांस्तत ।
 इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वर्गं राभरत् ॥ १९ ॥
 ओषधयो भूतभुव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।
 संवत्सरः सहर्तुमिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २० ॥
 पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये ।
 अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २१ ॥
 (११५७)

पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु विभ्रति ।
 तान्तसर्वान् ब्रह्मं रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥२२॥
 देवानामितत् परिपुतं
 अनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।
 तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं
 देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ २३ ॥
 ब्रह्मचारी ब्रह्म ब्राजद्विभति
 तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः ।
 प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं
 वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेघाम् ॥ २४ ॥
 चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु घेहि
 अन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥ २५ ॥
 तानि कल्पद्रह्मचारी संलिलस्यं पृष्ठे
 तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे ।
 स स्नातो वृशुः पिङ्गलः
 पयिर्व्यां चहु रौचते ॥ २६ ॥

(अथर्वण १९।४०।१-४)

ब्रह्म । [ब्रह्मपक्षः] । १ अतुष्टुः २ श्यवसाना कडुधमनो
 पथ्यापंक्तिः ३ त्रिष्टुप् ४ जगती ।

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मितः ।
 अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥१॥
 ब्रह्म सुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता ।
 ब्रह्म यज्ञस्य तस्यै च ऋत्विजो ये हविष्कृतः ।
 शमिताय स्वाहा ॥ २ ॥
 अंहोद्युचे प्र भरे मनीषां
 आ सुत्राण्ये सुमतिर्मातृगानः ।
 इदमिन्द्र प्रति हव्यं गुंमाय
 सत्याः संन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ३ ॥
 अंहोद्युचै वृषभं यज्ञियाणां
 विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।
 अपां नपातमश्चिनां हुवे धियं
 इन्द्रियेण त इन्द्रियं दंत्तमोजः ॥ ४ ॥ (११६६)

पुरुषः ।

॥ १ ॥ (क्र० १०९०।१-१६)

(१-५८) नारायण । अनुष्टुप्, २६ त्रिष्टुप् ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
 स भूमिं विश्वतो वृत्त्वा ऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥११
 पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ।
 उतामृतत्वस्येशानो यदन्नैनातिरोहति ॥ २ ॥
 एतावानस्य महिमा ऽतो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
 पादोऽस्य विश्वा भतानि त्रिपादस्यामृतं द्विवि ३
 त्रिपादूर्ध्व उद्वैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभं वृत्पुनः ।
 ततो विश्वरू व्यंक्रामत् साशनानश्नन् अमि ४
 तस्माद्द्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः ।
 स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५
 यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमर्त्तन्वत ।
 वृसन्तो अस्यासीदाज्यं शीघ्रम इधमः शरद्भुविः ६
 तं यज्ञं ब्रह्मिणि प्रीक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
 तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥७॥
 तस्माद्यज्ञात्सर्वेद्भुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
 पृश्नतोऽक्षके वायुष्या नारण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥८

तस्माद्यज्ञात्सर्वेद्भुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
 छन्दोऽसि जज्ञिरे तस्माद्यज्ञस्तस्मादजायत ॥९
 तस्मादक्षा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
 गार्वोह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयाः १०
 यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
 मुखं किमस्य को वाह का ऊरू पादा उच्येते ११
 ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
 ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत १२
 चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
 मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥१३॥
 नाभ्यां आसीदुन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
 पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्
 तथा लोकं अकल्पयन् ॥ १४ ॥
 सप्तस्योसन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
 देवा यद्यज्ञं तन्वाना अर्बन्नुपुरुषं पशुम् ॥१५
 यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः
 तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
 ते ह नाकं महिमानः सचन्त
 यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः ॥ १६ ॥
 (११८२)

॥ २ ॥ (अथर्व० १९६, १-६, ९, ११, १६)

सहस्रवाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
 स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठदशाङ्गुलम् ॥ १ ॥
 त्रिभिः पङ्क्तिर्धर्मरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः ।
 तथा व्यक्रामद्विष्वङ्गनानशने अनु ॥ २ ॥
 तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।
 पादोऽस्य विश्वा मूतानि त्रिपादस्यामृतं द्विवि ३
 पूरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
 उतामृतस्वस्येश्वरो यदुन्येनाभवंत्सह ॥ ४ ॥
 यत् पूरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
 मुखं किमस्य किं वाहू किमूरु पादा उच्येते ॥ ५ ॥
 ब्राह्मणोऽस्य मुखमातीद्वाहू राजन्यो भवत् ।
 मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ६
 विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः ।
 स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमधो पुरः ॥ ९ ॥
 तं यज्ञं प्रावृषा प्रीक्षन्पुरुषं जातमग्रशः ।
 तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥ ११ ॥
 भूमो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततोः ।
 राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥ १६ ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० १०१, १-३३)

पाणिशुक्लम्, पुरुषः, महाप्रकाशनम् । भवदृष्टः १-४ ;
 ७, ८ मिथुण, ९, ११ जगती; २८ सुरिरवृहती ।

केन पाष्णीं आभृते पूरुषस्य
 केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ ।
 केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि
 केनोच्छुङ्क्षी मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥ १ ॥
 कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्
 अष्टीवन्तुवुत्तरो पूरुषस्य ।
 जङ्घं निर्भृत्य न्यदधुः क्व स्त्रिव्
 जानुनोः संधी क उ तर्धिकेत ॥ २ ॥

चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं
 जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कर्षणम् ।
 श्रोणी यदूरु क उ तज्जानु
 याम्यां कुसिन्धं सुदंठं वृभवं ॥ ३ ॥
 कर्ति देवाः कंतमे त आसन्
 य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य ।
 कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोर्द्धौ
 कर्ति स्कन्धान् कर्ति पृथीरचिन्वन् ॥ ४ ॥
 को अस्य वाहू समभरद् वीर्यं करवादिति ।
 अंसौ को अस्य तदेवः कुसिन्धे अध्या दंशौ ॥ ५ ॥
 कः सप्त खानि वि तंतदे शीर्षणि
 कर्णाविमो नासिके चक्षणी मुखम् ।
 येषां पुरुत्रा विजयस्यं मूढानि
 चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥ ६ ॥
 हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरुचीं
 अर्धा महीमधि शिश्राय वाचम् ।
 स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः
 अपो वसानः क उ तर्धिकेत ॥ ७ ॥
 मस्तिष्कमस्य यतभो ल्लाटं
 ककार्टिकां प्रथमो यः कपालम् ।
 चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य
 दिवं रुरोह कतमः स देवः ॥ ८ ॥
 प्रियाप्रियाणि बहुला स्वमं संवाभतन्म्युः ।
 आनन्दानुप्रो नन्दाश्च कसाद् बहति पूरुषः ॥ ९ ॥
 आतिरवातिर्नक्तिः कुतो नु पुरुषेऽमतिः ।
 राद्विः समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुवं ॥ १० ॥
 को अस्मिन्नापो व्यदधाद्विपुवृतः
 पुरुवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः ।
 तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रघ्न्या
 ऊर्वा अवाचीः पूरुषे तिरथीः ॥ ११ ॥

को अस्मिन् रूपमदधात् को महानं च नाम च ।
 गातुं को अस्मिन् कः कृतं कश्चित्राणि पूरुषे ॥ १२
 को अस्मिन् प्राणमवयत् को अपानं व्यानम् ।
 समानमस्मिन् को देवोऽधि शिश्नाय पूरुषे ॥ १३
 को अस्मिन् यज्ञमदधादेको देवोऽधि पूरुषे ।
 को अस्मिन्स्तस्य कोऽनृतं
 कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ॥ १४ ॥
 को अस्मै वासः पर्यदधात्
 को अस्यायुरकल्पयत् ।
 वलं को अस्मै प्रायच्छत्
 को अस्याकल्पयज्जवम् ॥ १५ ॥
 केनापो अन्वतनुत् केनाहरकरोद्बुधे ।
 उपसं केनान्वैन्द्र केन सायंभवं ददे ॥ १६ ॥
 को अस्मिन् रेतो न्यदिधात्
 तन्तुरा तोयतामिति ।
 मेधां को अस्मिन्नध्वीहत्
 को बाणं को नृतो दधौ ॥ १७ ॥
 केनेमां भूमिमीणोत् केन पर्यभवदिवम् ।
 केनाभि मह्ना पर्यतान् केन कर्माणि पूरुषः ॥ १८
 केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम् ।
 केन यज्ञं च श्रद्धां च केनास्मिन् निहितं मनः ॥ १९
 केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम् ।
 केनेममग्निं पूरुषः केन संवत्सरं ममे ॥ २० ॥
 ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् ।
 ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे ॥ २१ ॥
 केन देवां अनु क्षियति केन देवजनीर्विशः ।
 केनेदमन्यप्रक्षत्रं केन सत्क्षत्रमुच्यते ॥ २२ ॥
 ब्रह्म देवां अनु क्षियति ब्रह्म देवजनीर्विशः ।
 ब्रह्मेदमन्यप्रक्षत्रं ब्रह्म सत्क्षत्रमुच्यते ॥ २३ ॥

केनेयं भूमिर्विहित्वा केन द्यौरुत्तरा हित्वा ।
 केनेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥ २४ ॥
 ब्रह्मणा भूमिर्विहित्वा ब्रह्म द्यौरुत्तरा हित्वा ।
 ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥ २५ ॥
 मूर्धानमस्य संसीव्यार्थवा हृदयं च यत् ।
 मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पर्वमानोऽधि शीर्षतः २६
 तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः ।
 तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः २७
 ऊर्ध्वो नु सृष्टाश्स्तिर्यङ् नु सृष्टाश्ः
 सर्वा दिशः पूरुष आ वंभूर्वाश् ॥
 पुरं यो ब्रह्मणो वेदु यस्याः पूरुष उच्यते ॥ २८
 यो वै तां ब्रह्मणो वेदाभ्युत्तेनावृतां पुरम् ।
 तस्मै ब्रह्म च ब्राह्मश्च कर्षुः प्राणं प्रजां ददुः २९
 न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।
 पुरं यो ब्रह्मणो वेदु यस्याः पूरुष उच्यते ॥ ३० ॥
 अष्टाचक्रा नर्धद्वारा देवानां पूर्योष्या ।
 तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ३१
 तस्मिन् हिरण्यये कोशे ज्युरि त्रिप्रतिष्ठिते ।
 तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ३२
 प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम् ।
 पुरं हिरण्यधीं ब्रह्मा विविशापराजिताम् ॥ ३३ ॥
 ॥ ४ ॥ (वा० य० ३१।१८-२२)
 वेदाहमेतं पूरुषं महान्तं
 आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
 तमेव विदित्वाति मृत्युमेति
 नान्यः पन्थां विद्यतेऽयनाय ॥ १८ ॥
 प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर
 अजायमानो बहुधा वि जायते ।
 तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीराः
 तस्मिन् ह तस्यूर्ध्वनानि विद्या ॥ १९ ॥ (१९२६)

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
 पूर्वा यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मणे २०
 रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तर्दयुवन् ।
 यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात् तस्य देवा असन् वशे २१
 श्रीश्वं ते लक्ष्मीश्च परन्यावहोरात्रे
 पाश्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनो व्यात्तम् ।
 इष्णन्निपाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ॥२२
 ॥ ५ ॥ (वा० य० ३११-१०)
 तदेवाभिस्तदादित्यस्तद्वायुस्तद् चन्द्रमाः ।
 तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥१॥
 सर्वे निमेया जङ्घिरे विद्युतः पुरुपादधि ।
 नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत् ॥२॥
 न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।
 हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा
 यस्मान्न जात इत्येषः ॥ ३ ॥
 एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः
 पूर्वा ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।
 स एव जातः स जनिष्यमाणः
 प्रत्यह् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ ४ ॥
 यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव
 य आवभूव भुवनानि विश्वा ।
 प्रजापतिः प्रजया सञ्चरमाणः
 श्रीणि ज्योतिंश्चपि सचतं स पौढुशी ॥ ५ ॥
 येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा
 येन स्व स्तमितं येन नाकः ।
 यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः
 कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥
 यं क्रन्दसी अवसा तस्तमाने
 अम्पक्षता मनसा रेजमाने ।
 यत्राधि हर उदितो विभाति
 कस्मै देवाय हविषा विधेम ।

आपो ह यद्दृहतीर्यधिदापः ॥ ७ ॥
 वेनस्तत् पश्यन्निहितं गुहा सत्
 यत्र विश्वं भन्त्येकेनीडम् ।
 तस्मिन्निदंश् सं च वि चैति सर्वंश्च
 स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥ ८ ॥
 प्र तद्वैचेदमृतं नु विद्वान्
 गन्धर्वो घाम विभृतं गुहा सत् ।
 त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य
 यस्तानि वेदु स पितुः पिताऽसत् ॥ ९ ॥
 स नो बन्धुर्जनिता स विधाता
 धामानि वेदु भुवनानि विश्वा ।
 यत्र देवा अमृतमानशानाः
 तुतीये धामन्नध्वर्यैर्यन्त ॥ १० ॥
 ॥ ६ ॥ (वा० य० ८५३)
 भूर्ध्रुवः स्वः सुप्रजाः प्रजामिः स्याम
 सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः ॥ ५३ ॥
 ॥ ७ ॥ (वा० य० ३६१२)
 यतो-यतः समीहसे ततो नो अमयं कुरु ।
 शं नः कुरु प्रजाम्योऽमयं नः पशुभ्यः ॥२२॥
 ॥ ८ ॥ (वा० य० ४०१७)
 हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
 योऽसावादित्ये पुरुषः सौऽसावहम् ।
 ओ३म् खं ब्रह्म ॥ १७ ॥
 ॥ ९ ॥ (अथर्व० ६११६-३)
 (७७-१०५) अथर्वः । दः (विद्यया)
 १ विद्युत्, २-३ अस्ति ।
 मह्यमापो मधुमदेर्यन्तां
 मह्यं सूर्यो अभरज्ज्योतिषे कम् ।
 मह्यं देवा उत विश्वं तपोजा
 मह्यं देवः संविता व्यचो घाव ॥ १

अहं विवेच पृथिवीमुत् द्यां
अहमूर्तुरंजनयं सप्त साकम् ।
अहं सत्यमनृतं यद्ब्रह्मि
अहं दैवीं परि वाचं विशश्व ॥ २ ॥
अहं जंजान पृथिवीमुत् द्यां
अहमूर्तुरंजनयं सप्त सिन्धून् ।
अहं मृत्यमनृतं यद्ब्रह्मि
यो अग्नीषोमावर्जुषे सखाया ॥ ३ ॥

॥ १० ॥ (अथर्व० ८।१।१-१६)

(वश्ययः, सर्वे ऋषयः, छन्दसि च), विगट । त्रिष्टुप्, २
पङ्क्तिः, ३ आस्तारपङ्क्तिः, ४-५, २३, २५-२६
अनुष्टुप्; ८, ११-१२, २२ जगती, ९ सुरिम्, १४
चतुष्पदातिजगती ।

कुतस्तौ ज्ञातौ कनमः सो अर्धः
कस्माच्छांकात् केतमस्याः पृथिव्याः ।
वत्सो विराजः सलिलादुदैर्ता
तौ त्वां पृच्छामि कतुरेणं दुग्धा ॥ १ ॥
यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा
योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः ।
वत्सः कामदुधो विराजः
स गुहां चक्रे तुन्वुः पराचैः ॥ २ ॥
यानि श्रीणिं वृहन्ति
येषां चतुर्थं विंयुनक्ति वाचम् ।
ब्रह्मनेदु विद्यात् तर्पसा विपश्चिद्
यस्मिन्नेकं युज्यते यस्मिन्नेकम् ॥ ३ ॥
वृष्टः परि मामानि पृष्ठात् पश्चाधि निर्मिता ।
पृष्टृष्टन्या निर्मितं कुतोऽधिं वृष्टी मिता ॥४॥
पृष्टी परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता ।
माया हे जज्ञे मायायां मायाया मातुर्मात्रा परि ॥५॥
पृष्टानस्य प्रतिमोपरि धौः
पाष्ट्रोदसी विषयाधे अमिः ।

ततः पृष्ठादामुतो यन्ति स्तोमाः
उदितो यन्त्यभि पृष्ठमहः ॥ ६ ॥
पट् त्वां पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे
त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च ।
विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं
तां नो वि धेहि यतिधा सखिम्यः ॥ ७ ॥
यां प्रच्युतामनुं यज्ञाः प्रच्यवन्त
उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् ।
यस्यां ब्रूते प्रसवे यक्षमेजति
सा विराडृषयः परमे व्योमिन् ॥ ८ ॥
अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां
विराट् रविराजमभ्येति पश्चात् ।
विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजं
पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम् ॥ ९ ॥
को विराजो मिथुनत्वं प्र वेदु
क ऋतून् क उ कल्पमस्याः ।
क्रमान् को अस्याः कतिधा विदुर्घान्
को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः ॥ १० ॥
इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छत्
आस्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तौ अस्यां महिमानौ अन्तः
वभूर्जिगाय नवगजनित्री ॥ ११ ॥
छन्दः पथे उपसा पेपिशाने
समानं योनिमनु सं चरेते ।
सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजान्ती
केतमती अजरे भूरिरितसा ॥ १२ ॥
ऋतस्य पन्थामनुं तिस्र आगुः
प्रयो घर्मा अनु रेतु आगुः
प्रजामेका त्रिन्वयूर्जमेका
राष्ट्रमेका रक्षति देवयुनाम् ॥ १३ ॥ (११५८)

अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद्
यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः ।
गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं
बृहदुक्तीं यजमानाय स्वराभरन्तीम् ॥ १४ ॥
पञ्च षुष्टीरनु पञ्च दोहा
गां पञ्चनाग्नीमृतवोऽनु पञ्च ।
पञ्च दिशः पञ्चदशेन कलुप्ताः
ता एकैर्भारिभि लोकमेकम् ॥ १५ ॥
पद् ज्ञाता भूता प्रथमजर्तस्य
पटु सामानि पढहं वंहन्ति ।
पढयोगं सीरमनु सामसाम्
पडाहुद्यावापृथिवीः पडुर्वीः ॥ १६ ॥
पडाहुः शीतान् पडुं मास उष्णान्
ऋतुं नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्तः ।
सप्त सुपणीः कवयो नि पेंदुः
सप्त च्छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः ॥ १७ ॥
सप्त होमाः समिधो ह सप्त
मर्धुनि सप्तर्वो ह सप्त ।
सप्ताज्यानि परिं भूतमायन्
ताः सप्तगृधा इति शुश्रुमा व्यम् ॥ १८ ॥
सप्त च्छन्दांसि चतुरुत्तराणि
अन्यो अन्यस्मिन्नध्यापितानि ।
कथं स्तोत्राः प्रति तिष्ठन्ति तेषु
तानि स्तोत्रेषु कथमार्षितानि ॥ १९ ॥
कथं गायत्री त्रिवृतं व्यापि
कथं त्रिष्टुप् पञ्चदशेन कल्पते
त्रयस्त्रिंशेन जगती कथं
अनुष्टुप् कथमेकविंशः ॥ २० ॥
अष्ट ज्ञाता भूता प्रथमजर्तस्य
अष्टेन्द्रत्विजो देव्या ये

अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्रा
अष्टमीं रात्रिमभि हव्यमेति ॥ २१ ॥
इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमार्गम्
गुप्माकं सुरवे अहर्मस्मि शेवा
समानजन्मा क्रतुरासि वः शिवः
स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन् ॥ २२ ॥
अष्टेन्द्रस्य पढ्यमस्य ऋषीणां सप्त संमथा ।
अपो मनुष्याङ्गुनोपवीस्तां उ पञ्चानुं सेचिरे २३
केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिः
वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना
अथातर्पयच्चतुरंश्चतुर्धा
देवान् मनुष्याङ्गुं अंसुरानुत ऋषीन् ॥ २४ ॥
को नु गौः क एकऋषिः किमु धाम का आशिषः
यक्षं पृथिव्यामेकवृद्धैर्कर्तुः कृतमो नु सः ॥ २५ ॥
एको गौरैकं एकऋषिरैकं धामैकवाशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृद्धैर्कर्तुर्नातिं रिच्यते ॥ २६ ॥
॥ ११ ॥ (अथर्वं ८।२०।२-६०)
अथर्वान्यः । विराट् । (पद् पर्यायाः) । १-१३, [प्रथमः
पर्यायः] १ त्रिपदावो पङ्क्तिः, २-७ याज्ञुषी जगती,
३, ९ साम्यनुष्टुप्; आर्च्यनुष्टुप्; ५, १२ विष्टु
गायत्री; ११ सात्री बृहती ।
(१)
विराट् वा इदमग्र आसीत्
तस्यां ज्ञातायाः सर्वमधिभेत्
इयमेवेदं भविष्यतीति ॥ १ ॥
सोदकामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् ॥ २ ॥
गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥
सोदकामत् साऽऽह्वनीये न्यक्रामत् ॥ ४ ॥
यन्त्येस्य देवा देवहृतिं प्रियो देवानां भवति
य एवं वेद ॥ ५ ॥
सोदकामत् मा दक्षिणाग्नी न्यक्रामत् ॥ ६ ॥
(१६३७)

यज्ञतो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद ७
 सोदकामत् सा सभायां न्युक्रामत् ॥ ८ ॥
 यन्त्यस्य सभां सम्यो भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥
 सोदकामत् सा समितौ न्युक्रामत् ॥ १० ॥
 यन्त्यस्य समितिं साभित्यो भवति य एवं वेद ११
 सोदकामत्सामन्त्रेण न्युक्रामत् ॥ १२ ॥
 यन्त्यस्यामन्त्रेणामन्त्रणीयो भवति
 य एवं वेद ॥ १३ ॥

१-१० [द्वितीयः पर्यायः] १ त्रिपदा साम्बुष्टुप् ;
 २ त्रिपदा चतुष्पदा विराह्वायत्री; ३ एकपदा
 गायत्री गायत्री; ४ एकपदा साम्नी पङ्क्तिः, ५
 विराह्वायत्री; ६ आच्यनुष्टुप्; ७ साम्नी
 पङ्क्तिः; ८ आधारी गायत्री; साम्बुष्टुप्;
 १० साम्नी बृहती ।

(२)

सोदकामत् साऽन्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत् १
 तां देवमनुष्यां अश्रुवक्षिणमेव तद्वेद
 यदुभयं उपजीवेमेषामुप ह्यामहा इति ॥ २ ॥
 तामुपाह्वयन्त ॥ ३ ॥
 ऊर्जे एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्येहीति ॥ ४ ॥
 तस्या इन्द्रो वृत्स आसीद्
 गायत्र्यं भिधान्यम्रमूषः ॥ ५ ॥

बृहच्च रथन्तरं च द्वौ स्तनावास्तां
 यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ ॥ ६ ॥
 ओषधीरेव रथन्तरेण देवा अदुहन् व्यचो बृहता ७
 अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियेन ॥ ८ ॥
 ओषधीरेवासं रथन्तरं दुहे व्यचो बृहत् ॥ ९ ॥
 अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायज्ञियं य एवं वेद १०

१-८ [तृतीयः पर्यायः] १ चतुष्पदा विराह्वायत्री; २ आर्ची
 त्रिष्टुप्; ३, ५, ७ चतुष्पदा प्राजापत्या पङ्क्तिः; ४, ६,
 ८ आर्ची बृहती ।

(३)

सोदकामत् सा वनस्पतीनामगच्छत्
 तां वनस्पतयोऽग्नत सा संवत्सरे समभवत् ॥ १ ॥

तस्माद् वनस्पतीनां संवत्सरे वृषणमपि रोहति
 वृथतेऽस्वाप्रियो आर्च्यो य एवं वेद ॥ २ ॥
 सोदकामत् सा पितृनामगच्छत्
 तां पितरोंऽग्नत सा मासि समभवत् ॥ ३ ॥
 तस्मात् पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददति
 प्र पितृयाणं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥ ४ ॥
 सोदकामत् सा देवानामगच्छत्
 तां देवा अग्नत सार्धमासे समभवत् ॥ ५ ॥
 तस्माद् देवभ्योऽर्धमासे वर्षत् कुर्वन्ति
 प्र देवपानं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥ ६ ॥
 सोदकामत् सा मनुष्यानामगच्छत्
 तां मनुष्यां अग्नत सा सद्यः समभवत् ॥ ७ ॥
 तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युरुपं हरन्ति
 उपांस्य गृहे हरन्ति य एवं वेद ॥ ८ ॥

(१-१६; १-१६) [चतुर्थः पञ्चमौ पर्यायौ] २२, २३ २५,
 २६ (प्र०) चतुष्पदा साम्नी जगती; २२-२४, २८-२९
 (द्वि०) साम्नी बृहती, २२, २६. (तृ०) साम्बुष्टुप् २२
 २३, २६, २९ (च०) आच्यनुष्टुप्; २३ (तृ०) आर्ची
 गायत्री; २४-२५, २८ (प्र०) चतुष्पदा त्रिष्टुप्;
 २४ (तृ०) प्राजापत्यायत्री; २४-२५, २७
 आर्ची त्रिष्टुप्; २५-२६ (द्वि०) साम्बु-
 ष्टुप् २५, २७-२८ (तृ०) विराह्वायत्री;
 २७ (प्र०) चतुष्पदा प्राजापत्या जगती;
 २७ (द्वि०) साम्नी बृहती त्रिष्टुप्;
 २८ (च०) त्रिपदा प्राज्ञी मुनि-
 गायत्री; २९ (तृ०)
 साम्बुष्टुप् ।

(४)

सोदकामत् सासुरानामगच्छत्
 तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति ॥ १ ॥
 तस्या विरोचनः प्राहर्दिवत्स
 आसीदयस्पात्रं पात्रम् ॥ २ ॥
 तां दिग्धर्तव्योऽपिक् तां मायामेवाधोक् ॥ ३ ॥

(१३०५)

तां मायामसुरा उप जीवन्ति
 उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥
 सोदक्रामत् सा पितृनागच्छत्
 तां पितर उपाह्वयन्त् स्वध एहीति ॥ ५ ॥
 तस्या युमो राजा वृत्स आसीद्
 रजतपात्रं पात्रम् ॥ ६ ॥
 तामन्तको मार्त्यवोऽधोक् तां स्वधामेवाधोक् ॥ ७ ॥
 तां स्वधां पितर उप जीवन्ति
 उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ८ ॥
 सोदक्रामत् सा मनुष्याङ्गनागच्छत्
 तां मनुष्याङ्ग उपाह्वयन्तेरावृत्येहीति ॥ ९ ॥
 तस्या मनुर्वेवस्वतो वृत्स आसीत्
 पृथिवी पात्रम् ॥ १० ॥
 तां पृथीं वैन्योऽधोक् तां कृषिं च
 सस्यं चाधोक् ॥ ११ ॥
 ते कृषिं च सस्यं च मनुष्याङ्ग उप जीवन्ति ।
 कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥
 सोदक्रामत् सा सप्तश्रुधीनागच्छत्
 तां सप्तश्रुपय उपाह्वयन्त् ब्रह्मणवृत्येहीति ॥ १३ ॥
 तस्याः सोमो राजा वृत्स आसीच्छन्दुः पात्रम् १४
 तां बृहस्पतिराङ्घ्रिसोऽधोक्
 तां ब्रह्मं च तपश्चाधोक् ॥ १५ ॥
 तद् ब्रह्मं च तपश्च सप्तश्रुपय उप जीवन्ति
 ब्रह्मवचंस्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद १६
 (५)
 सोदक्रामत् सा देवानागच्छत्
 तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति ॥ १ ॥
 तस्या इन्द्रो वृत्स आसीधमसः पात्रम् ॥ २ ॥

तां देवः संधिताधोक् तामूर्जामेवाधोक् ॥ ३ ॥
 तामूर्जां देवा उप जीवन्ति
 उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥
 सोदक्रामत् सा गन्धर्वाप्सरसु आगच्छत् ।
 तां गन्धर्वाप्सरसु उपाह्वयन्त् पुण्यगन्ध एहीति ५
 तस्याश्चित्ररथः सार्यवर्चसो वृत्स आसीत्
 पुष्करपर्णं पात्रम् ॥ ६ ॥
 तां वसुरुचिः सौर्यवर्चसोऽधोक्
 तां पुण्यमेध गन्धमधोक् ॥ ७ ॥
 तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरसु उप जीवन्ति
 पुण्यगन्धिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ८ ॥
 सोदक्रामत् सेतरज्जनानागच्छत्
 तामितरज्जना उपाह्वयन्त् तिरोधु एहीति ॥ ९ ॥
 तस्याः कुचरो वैश्रुणो वृत्स
 आसीदामपात्रं पात्रम् ॥ १० ॥
 तां रज्जतनाभिः कावेरकोऽधोक्
 तां तिरोधामेवाधोक् ॥ ११ ॥
 तां तिरोधामितरज्जना उप जीवन्ति
 तिरो धत्ते सर्वं पाप्मानंमुपजीवनीयो भवति
 य एवं वेद ॥ १२ ॥
 सोदक्रामत् सा सूर्पानागच्छत्
 तां सूर्पा उपाह्वयन्त् विषंरृत्येहीति ॥ १३ ॥
 तस्यास्तक्षको वैशाल्यो वृत्स
 आसीदलावुपात्रं पात्रम् ॥ १४ ॥
 तां धृतराष्ट्र एरावतोऽधोक् तां विषमेवाधोक् १५
 तद्विषं सूर्पा उप जीवन्ति
 उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ १६ ॥

१-४ [षष्ठ पर्याय] १ द्विपदा विराड् गायत्री, २ द्विपदा
साम्नी त्रिष्टुप्, ३ द्विपदा प्राञ्जपत्यानुष्टुप्, ४ द्विपदा-
च्युंष्णिक् ।

तद् यसां एवं विदुषेऽलायुनामिपिश्वेत
प्रत्याह्न्यात् ॥ १ ॥
न च प्रत्याह्न्यानमनसा त्वा
प्रत्याह्नमीति प्रत्याह्न्यात् ॥ २ ॥
यत् प्रस्थाहन्ति विपमेव तत् प्रत्याहन्ति ॥ ३ ॥

विपमेवास्याप्रियं आतंध्यमनुविपिच्यते
य एवं वेदं ॥ ४ ॥

॥ १२ ॥ (मध्यमं १९।७९।१)
गृध्रिणा मन्ना । परमारमा देवाद्य । त्रिष्टुप् ।

यस्मात् कोशाद्दुदमराम वेदं
तस्मिन्नन्तरयं दध्म एनम् ।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण
तेन मा देवास्तपसाऽनुतेह ॥ १ ॥ (१३३९)

संसदध्यक्षः

सदसस्पतिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।१८।६ ९)
(१-४) मेधातिथि काण्व । (९ नराशसो वा) । गायत्री ।
सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सुनि मेधामयासिपम् ॥ ६ ॥
यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन ।

स धीनां योगमिन्वति ॥ ७ ॥
आदभोति हविष्कृतिं प्राञ्च कृणोत्यधुरम् ।
होत्रां देवेषु गच्छति ॥ ८ ॥
नराशंसं सुष्टुष्टम्—मपश्यं सप्रथंस्तमम् ।
दिवो न सन्नमखसम् ॥ ९ ॥ (१३४३)

संसदुपाध्यक्षः

क्षेत्रपतिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ४।५७।१-३)
(१-३) वामरवो गीतम । १ अनुष्टुप्, २-३ त्रिष्टुप् ।
क्षेत्रस्य पतिना धृतं हितेनैव जयामसि ।
गामर्षं पोषयित्वा स नो मृत्वातीदृशं ॥ १ ॥
क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमभि
घेनुरिव पर्यो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुयुतं घृतमिव सुपतं

ऋतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥ २ ॥
मधुमतीरोपधीर्घोव आपो
मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान् नो अस्तु
अरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ३ ॥
॥ १ ॥ (पा० य० १६।१८)
क्षेत्राणां पतये नमः ॥ १८ ॥ (१३४७)



अदितिः, आदित्याश्च ।

(१) अदितिः ।

॥ १ ॥ (क्र० १८९।१०)

(१) × गोतमो राष्ट्रगणः । त्रिष्टुप् ।

अदितिर्घोरदितिरन्तरिक्षं—मदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वं देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्

१० १

॥ २ ॥ (क्र० ८।१८।४-७)

(२-५) इरिम्बिः काण्वः । उष्णिक् ।

देवेभिर्देव्यदिते ऽरिष्टमर्मन्वा गन्धि । स्मत् सुरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः
ते हि पुत्रासो अदिते—विदुर्द्वेषासि योतवे ।

४

अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः

५

अदितिर्नो दिवा पशु—मदितिर्नक्तमद्वयाः । अदितिः पात्वंहंसः सदावृषा

६

उत स्या नो दिवा मति—रदितिरुत्था गमत् । सा शंताति मयस्कारदपु सिष्यः ७

५

॥ ३ ॥ (क्र० ८।६७ १०-१२)

(६-८) मत्स्यः साम्मद्, मेघाद्यगणितान्यः यद्वयो घा मत्स्या जालनद्धाः । गायत्री ।

उत त्वामदिते म—हृद् देव्युषं ब्रुवे । समृद्धीकामभिष्टये

१०

परिषं द्विने गमीर आ उग्रं पुत्रे जिघांसतः । मार्कस्तोकरुषं नो रिपत्

११

अनेहो न उरुयज उरुचि वि प्रसर्ववे । कृधि तोकायं जीघसे

१२

॥ ४ ॥ (९-१५) (वा० य० ११।५६-५७, ५९)

सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वापशा । सा तुभ्यमदिते मद्योर्गा दधानु हर्षयोः ६६

२

× वा० य० २५, २३ । अयं ० ७।६।१ ।

१ ६. [अदिति.]

उखां कृणोतु शक्यां बाहुभ्यामर्दितिर्धिया ।

माता पुत्रं यथोपस्थे सामिं विभर्तुं गर्भं आ । मुखस्य शिरोऽसि
अदित्यै रास्नास्यर्दितिष्टे चिर्ले गृभ्णातु ।

५७ १०

कृत्वाय सा महीमुखां मुन्मयीं योनिमुद्गये ।

पुत्रेभ्यः प्रायच्छददितिः श्रपयानितिं

५९ ११

॥ ५ ॥ (चा० य० २१।५-७) अथर्व० ७।६।२-३ ।

महीमु पु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे ह्रुवेम ।

तुविक्षत्रामजरन्तीमुरुची सुशर्माणमर्दिति सुप्रणीतिम्

५

सुत्रामाणं पृथिवीं धामनेहस सुशर्माणमर्दिति सुप्रणीतिम् ।

देवीं नावं स्वर्त्रामनांगसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये

६

सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनांगसम् । शतारित्रा स्वस्तये

७ १४

॥ ६ ॥ (चा० य० २९।४) दे० [अतिः] २१०९ ।

स्तीर्णं चर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।

देवोर्भिर्युक्तमर्दितिः सजोपाः स्योनं कृष्णाना सुविते दधातु

४ १५

॥ ७ ॥ (अथर्व० ७।६।४) वा० य० ९, ५, १८, ३० ।

(१६-१७) अथर्वी । घिराद् जगती ।

वाजस्य तु प्रसवे मातरं महीमर्दितिं नाम वचसा करामहे ।

यस्या उपस्थं उर्वर्यन्तरिक्षं सा नः गर्भं त्रिवरुंशं नि यच्छातु

४ १६

॥ ८ ॥ (अथर्व० ७।७।१) आर्षी जगती ।

दितेः पुत्राणामदितेरकारिणमर्भं देवानां वृहतामनुर्मणाम् ।

तेषां हि धामं गमिपक् संप्रद्रियं नैनाञ्च नमसा परो अस्ति कश्चन

१ १७

अदिति-सहचारी देवगण ।

(१) सोमः, अदितिः ।

॥ ९ ॥ (अथर्व० ६।७।१-२)

येन सोमार्दितिः पृथा मिश्रा वा यन्त्युद्गृहः । तेन नोऽवसा गृधि

१

येन सोम साहन्त्या सुराञ्च रुन्धयांसि नः । तेना नो अधि वोचत

२ १४

(२) आदित्याः ।

॥ १० ॥ (ऋ० १।४१।४-६)

(१८-२०) कण्वो घोरः । गायत्री ।

सुगः पन्थां अनृक्षर	आदित्यास ऋतं यते । नात्रावस्तादो अस्ति वः	४
यं यज्ञं नर्यथा नर	आदित्या ऋजुनां पथा । प्र वः स धीतये नशत्	५
स रत्नं मर्त्यो वसु	विश्वं तोकमुत त्मना । अच्छां गच्छत्यस्त्वंतः	६ २०

॥ ११ ॥ (ऋ० २।२७।१-१७)

(२१-३७) कुर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । त्रिष्टुप् ।

इमा गिरं आदित्येभ्यो घृतस्नूः	सुनाद् राजेभ्यो जुह्वा जुहोमि ।	
शृणोतु मित्रो अर्यमा मगौ न	स्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः	१
इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य	मित्रो अर्यमा वरुणो जुपन्त ।	
आदित्यासः शुच्यो धारंपूता	अवृजिना अनयथा अरिंष्टाः	२
त आदित्यास उरवो गभीरा	अदंघामो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः ।	
अन्तः पश्यन्ति वृजिनोत साधु	सर्वं राजेभ्यः परमा चिदन्ति	३
धारयन्त आदित्यासो जगत् स्या	देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।	
दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्ये	मृतानानुश्रयमाना ऋणानि	४
चिद्यामादित्या अरसो वो अस्य	यदर्यमन् भय आ चिन्मयोश्चु ।	
युष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ	परि श्वत्रैव दुरितानि वृज्याम्	५ २५
सुगो हि वो अर्यमन् मित्रं पन्थां	अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।	
तेनादित्या आर्षिं वोचता नो	यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म	६
पिपतु नो अदिती राजपुत्रा	जति द्वेषास्वर्यमा सुगोभिः ।	
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मो	पे स्याम पुरुवीरा अरिंष्टाः	७
तिस्रो भूमिर्धारयन् अरुत द्यन्	त्रीणि व्रता विदथे अन्तर्गेषाम् ।	
ऋतेनादित्या माहिं वो महितं	तदर्यमन् वरुण मित्र चारुं	८
त्री रौचिना दिव्या धारयन्त	हिरण्ययाः शुच्यो धारंपूताः ।	
अस्वप्नजो अनिमिषा अदंघवा	उरुशंसां ऋजुने मर्त्याय	९
त्वं विश्वेषां वरुणासि राज्ञा	ये च देवा असुर ये च मर्ताः ।	
शतं नो रास्व शरदो विचक्षे	इद्यामार्युषि सुधितानि पूरी	१० ३०

न दक्षिणा वि चिकित्ते न सूव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा । पाक्यां चिद् वसवो धीर्यां चिद् युष्मानीतो अर्भयं ज्योतिरइयाम् यो राजभ्य ऋतुनिभ्यो द्वादश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।	११
स रेवान् याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः शुचिरपः सुयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।	१२
नकिष्टं ह्यन्त्यन्तितो न दूराद् य आदित्यानां भवति प्रणीतौ अदिते मित्र वरुणोत मृळ यद् वो वयं चकृमा कच्चिदारगः ।	१३
उर्वश्यामर्भयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन् तमिस्राः उभे असौ पीपयतः समीची दिवो वृष्टि सुभगो नाम पुष्यन् ।	१४
उभा क्षयावाजयन् याति पृच्छ भावर्षी भवतः साधू असौ या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः ।	१५ ३५
अश्वीच तौ अति येष रथेना रिष्टा उरावा शर्मन्त्सयाम माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदान आ विदं शूनमापेः ।	१६
मा रायो राजन्त्सुयमादवं स्यां बृहद् वदेम विदथे सुवीराः	१७ ३७

॥ ११ ॥ (ऋ० ७।५।१-३)

(३८-५३) मित्रावरुणिवसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शतमेन । अनागास्त्वे अदितित्वे तुरासं इमं यज्ञं दधतु श्रोपमाणाः	१
आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः । अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिवन्तु सोममवसे नो अद्य	२
आदित्या विश्वं मरुतश्च विश्वं देवाश्च विश्वं ऋमवश्च विश्वं । इन्द्रो अग्निरश्विनां तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	३ ४०

॥ १३ ॥ (ऋ० ७।५।१-३)

आदित्यासो अदितयः स्याम् पूर्देव्या वसवो मर्त्यत्रा । सनैम मित्रावरुणा सनन्तो भवैम घावापृथिवी भवन्तः	१
मिग्रस्तन्नो वरुणो मामहन्तु शर्मं तोकाय तर्नयाय गोपाः । मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत् कर्म वसवो यचयध्वे	२ ४१

तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरिथानाः ।
 पिता च तन्नो महान् यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुपन्त २ ४३

॥ १४ ॥ (ऋ० ७।६।४-६३)

गायत्री, १०-१३ प्रगाथः = (क्षमा बृहती+विषमा सतोबृहती)

यदद्य सूर उदिते जनांगा मित्रो अर्यमा । सूत्रार्ति सविता भगः ४
 सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ५ ४५
 उत खराजो अदिति रदन्वस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ६
 प्रति त्वां सूर उदिते मित्रं वृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशार्दसम् ७
 राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शर्वसे । इयं विप्रो मेघसातये ८
 ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इपं स्वश्च धीमहि ९
 बृहवः सूरचक्षसो ऽभिजिह्वा ऋतावृधः ।

त्रीणि ये येषुर्विदथानि धीतिमिर्विश्वानि परिभूतिभिः १० ५०

वि ये द्रघुः शरदं मासमादहं यज्ञमक्तं चादचम् ।
 अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ११
 तद् वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते ।

यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः १२

ऋतावानं ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विर्पः ।

तेषां वः सुमे सुच्छदिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः १३ ५३

॥ १५ ॥ (ऋ० ८।१।१-३, १०-१२)

(५४-६९) इरिभ्यदिः काण्वः । उष्णिक् ।

इदं हं नूनमेषां सुम्रं भिक्षेतु मर्त्यः । आदित्यानामर्पून्व्यं सर्वांमनि १
 अनर्वाणो धौपां पन्था आदित्यानाम् । अदन्वाः सन्ति पायवः सुगेवृधः २ ५५
 तद् सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा । शर्मं यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे ३
 अपामीवामप सिधुमपं सेधत दुर्मतिम् । आदित्यासो युयोर्वना नो अंहसः १०
 युयोता शरुमस्मदा आदित्यास उतामतिम् । ऋधग् द्वेषः कृणुत विश्ववेदसः ११
 तद् सु नः शर्मं यच्छता ऽऽदित्या यन्मुमोचति । एनंखन्तं चिदेनसः सुदानवः १२
 यो नः कश्चिद् रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यैः । स्वैः प एवै रिरिषीष्ट युर्जनः १३
 समिद् तमघर्मश्रवद् दुःशंसं मर्त्यं रिपुम् । यो अस्मन्ना दुर्हणावो उपं द्रघुः १४ ६१

पाकत्रा म्यंन देवा हृत्सु जानीथ मर्त्यम् । उप ह्युं चार्द्रयुं च वसवः	१५	
आ शर्म पर्वताना मोतापां वृणीमहे । द्यावाक्षामारे असद् रपस्कृतम्	१६	
ते नो मूद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वंसवः । अति विश्वानि दुरिता पिपर्वतन	१७	
तुचे तनाय तत् सु नो द्राधीय आयुर्जावसे । आदिन्यासः सुमहसः कृणोतन	१८	६५
यज्ञो हीळो वो अन्तर आदित्या अस्ति मूळत ।		
युष्मे इद् वो अपि प्मसि सजात्ये	१९	
बृहद् वरुथं मरुता देवं त्रातारमश्विना । मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये	२०	
अनेहो मित्रार्यमन् नृवद् वरुण शंस्यम् । त्रिवरुथं मरुतो यन्त नश्छर्दिः	२१	
ये चिद्धि मृत्युर्वन्धव आदित्या मनवः स्मसि ।		
प्र स न आयुर्जावसे तिरेतन	२२	६३

॥ १६ ॥ (ऋ० ८।१९।३४-३५)

(७०-७१) सोमरिः काण्वः । ३४ उष्णिक्, ३५ सतोवृहती ।

यमादित्यासो अद्रुहः पारं नयथ मर्त्यम् । मघोनां विश्वेषां सुदानवः	३४	७३
युयं राजानः कं विचर्षणीसहः क्षयन्तं मानुषां अनु ।		
वयं ते वो वरुण मित्रार्यमन्त्स्यामेहतस्य रथ्यः	३५	७१

॥ १७ ॥ (ऋ० ८।७।१-१३)

(७२-८४) त्रित आप्यः । महापृक्किः ।

महिं वो महतामवो वरुण मित्रं द्राशुपे ।

यमादित्या अमि द्रुहो रक्षथा नेमघं नश दनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः	१	
विदा देवा अघाना मादित्यासो अपाकृतिम् ।		
पृक्षा वयो यधोपरि व्यस्मे शर्म यच्छता नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः	२	
व्यस्मे अधि शर्म तत् पृक्षा वयो न यन्तन ।		
विश्वानि विश्वेदमो वरुथ्या मनामहे ज्नेहमो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः	३	
यस्मा अरासतु धर्यं जीवातुं च प्रचेतमः ।		
मनोविश्वस्य घेदिस आदित्या राप ईशते ज्नेहमो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः	४	७
परिं णो वृणजन्नुपा दुर्गाणि रथ्यो यथा ।		
स्वामेदिन्द्रस्य शर्म प्यादित्यानामृतावस्य ज्नेहमो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः	५	७

परिहृतेदुना जनों युष्मादत्तस्य वायति ।

देवा अर्दभ्रमाश वो यमादित्या अहेतना नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ६
न तं तिग्मं चन त्यजो न द्रासद्रभि तं गुरु ।

यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्वमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ७
युष्मे देवा अपि प्मसि युष्यन्त इव वर्मसु ।

युयं म्हो न एनसो युयमर्मादुरुष्यता नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ८
अदितिन उरुष्यत्व दितिः शर्म यच्छतु ।

माता मित्रस्य रेवतो ऽयम्पो वरुणस्य चा नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ९ ८०
यद् देवाः शर्म शरणं यद् भद्रं यदनातुरम् ।

त्रिघातु यद् वरुष्यं तदुसासु वि यन्तना नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १०
आदित्या अव हि ख्यता धि क्लादिव स्पशः ।

सुतीर्यमर्वतो यथा नु नो नेपथा सुगमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ११
नेह भद्रं रक्षास्त्रिने नात्रयै नोपया उत ।

गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्तु नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १२
यदाविर्यदपीच्यं देवासो अस्ति दुष्कृतम् ।

त्रिते तद् विश्वमाप्त्य आरे असद् दधातना नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १३ ८४
॥ १८ ॥ (क्र० ८६७।१-९, १३-२१)

(८५-१०९) मत्स्यः साम्मदः, मैत्रायणनिर्मन्यः, बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः । गायत्री ।

त्यान् नु क्षत्रियाँ अवं आदित्यान् याचिपामहे । सुमृष्टीकौ अभिष्टये १ ८५

मित्रो नो अत्यंहति वरुणः पर्पदर्थमा । आदित्यासो यथा विद्रुः २

तेषां हि चित्रमुक्थ्यं वरुणमस्ति द्वाशुपे । आदित्यानामरुकते ३

महिँ वो महतामत्रो वरुण मित्रार्यमन् । अवांसा वृणीमहे ४

जीवान् नो अभि धेतना ऽऽदित्यासः पुरा हथात् । कर्द्धं स्य हवनश्रुतः ५

यद् वः श्रान्तायं सुन्वते वरुणमस्ति यच्छर्दिः । तेनां नो अधि वोचत ६ ९०

अस्ति देवा अहोरुर्वस्ति रत्नमनांसः । आदित्या अद्रुतेनसः ७

मा नः सेतुः सिपेद्रयं महे वृणक्तु नस्परिं । इन्द्र इदि श्रुतो वशी ८

मा नो मुचा रिपुणां वृजिनानामविष्यवः । देवा अभि प्र मृंसत ९

ये मूर्धानः क्षितीनामदन्धासः स्वयंशसः । व्रता रक्षन्ते अद्रुहः १३ ९४

ते न आस्रो वृकाणां—मादित्यासो मुमोचत	। स्तेनं वृद्धमिवादिते	१४	१५
अपो पु ण इयं शरु—रादित्या अप दुर्मतिः	। अस्मदेत्वजमुपी	१५	
शश्वद्वि वः सुदानव आदित्या ऊतिभिर्वियम्	। पुरा नूनं युमुज्जमेहे	१६	
शश्वन्तं हि प्रचेतसः प्रतिघ्नन्ति चिदेनसः	। देवाः कृणुथ जीवसे	१७	
तत् सु नो नयं सन्यसु आदित्या यन्मुमोचति	। घन्धाद् वृद्धमिवादिते	१८	
नास्माकमस्ति तत् तत् आदित्यासो अतिष्कदे	। युयमुस्मभ्यं मृळत	१९	१००
मा नो हेतिविंस्वत आदित्याः कृत्रिमा शरुः	। पुरा तु जुरसो वधीत्	२०	
वि पु द्वेषो व्यंहति—मादित्यासो वि संहितम्	। विष्वग् वि वृहता रपः	२१	१०१

॥ १९ ॥ (ऋ० ८।१०।१६)

(१०३) जमदग्निर्भागवः । सतोवृहती ।

ते हिंन्विरे अरुणं जेन्यं वस्वे—कं पुत्रं तिसृणाम् ।			
ते धामान्यमृता मर्त्याना—मदच्छा अमि चक्षते		६	१०३

॥ २० ॥ (ऋ० १०।१८।१-३)

(१०४-१०६) सत्यधृतिर्वाकणि । आदित्यः (स्वस्त्ययनम्) । गायत्री ।

महिं श्रीणामवोऽस्तु शुक्षं मित्रस्यार्यम्पाः	। दुराधर्यं वरुणस्य	१	
नहि तेषाममा चन नाश्वसु वारणेयुं	। ईशं रिपुघर्शंसः	२	१०५
यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय	। ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम्	३	१०६

॥ २१ ॥ (१०७-१२०) (चा० य० ८।१-५)

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा ।			
विष्णं उरुगायैप ते सोमस्तश् रक्षस्व मा त्वा दभन्		१	
कदा चन स्तरीरंसि नेन्द्रं सश्वसि दाशुषे ।			
उपोपेन्न मघवन् भूय इन्न ते दानं देवस्यं पृच्यत आदित्येभ्यस्त्वा		२	
कदा चन प्रयुच्छस्युभे निपांसि जन्मनी ।			
तुरीयादित्यं सर्वनं त इन्द्रियमार्तस्थावमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा		३	
यज्ञो देवानां प्रत्येति सुन्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।			
आ वोऽर्वाचीं सुमतिर्ववृत्याद्रुहोश्चिद्या वरिवोवित्तारासदादित्येभ्यस्त्वा		४	११०
विर्वस्वन्नादित्येप ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व		५	१११

॥ २२ ॥ (चा० य० १३।३,५)

अदं जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।			
स पुष्ण्या उपमा अस्य त्रिष्ठाः सुतश्च योनिमसंतश्च विवः		३	११२

द्रुप्तश्चस्कन्द पृथिवीमनु धामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वैः ।

समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रुप्तं जुहोम्यनु सप्त होत्राः

५ ११३

॥ २३ ॥ (वा० य० १७।५९-६०)

विमानं एष दिवो मर्घ्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।

स विश्वार्चीरभिचष्टे घृतार्चीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम्

५९

उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश ।

मर्घ्यं दिवो निर्हितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्पात्यन्तौ

६० ११५

॥ २४ ॥ (वा० य० २३।५; ३१।१७) ×

युञ्जन्ति ब्रह्मरूपं चरन्तं परिं तस्युष्यः । रोचन्ते रोचना द्विवि

५

अद्भ्यः सम्मृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रै ।

तस्य त्वष्टां विदधद् रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रै

१७ ११७

॥ २५ ॥ (वा० य० ३३।८१-८३)

इमा उं त्वा पुरुवसो गिरों वर्धन्तु या मम ।

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूपत

८१

यस्यायं विश्व आयो दासः शेषधिपा अरिः ।

तिराश्चिदुर्ये रुशमे पर्वारवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः

८२

अयं सहस्रमूर्षिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।

सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये

८३ १२०

॥ २६ ॥ (अथर्व० २।३१।१-६) [दे० (आयुर्वेद०) १२५ सूक्तं द्रष्टव्यम् ।]

॥ २७ ॥ (अथर्व० १६।३।१-६)

(१२१-१६३) ब्रह्मा । १ आसुरो गायत्री; २-३ आचर्यनुष्टुप्; ४ प्राजापत्या त्रिष्टुप्;

५ साम्युष्णिक्; ६ द्विपदा साक्षी त्रिष्टुप् ।

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम्

१

रुजश्च मा वेनश्च मा हांसिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हांसिष्टाम्

२

उर्वश्च मा चमसश्च मा हांसिष्टां घृता च मा घृणश्च मा हांसिष्टाम्

३

विमोकश्च मार्षेपविश्च मा हांसिष्टामार्षेदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हांसिष्टाम्

४ १२४

× वा० य० २३।५ = दे० [इन्द्रः] २४, अथर्व० २०, २६, ४, ४७, १०, ६९, ९; धाम० १४६८

* बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम ह्यः	५	११५
असतापं मे हृदयमुर्वा गच्युतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा	६	११६

॥ २८ ॥ (अथर्व० १६।४।१-७)

१,३ साम्यनुष्टुप्; २ साम्युष्णिक्; ४ त्रिपदाऽनुष्टुप्; ५ आसुरी गायत्री; ६ आर्च्युष्णिक्; ७ त्रिपदा विराड्गर्भाऽनुष्टुप् ।

नाभिंरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम्	१	
स्वासदासि सूपा अमृतो मर्त्येष्व	२	
मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽब्रुहाय परां गात्	३	
सूर्यो माहः पात्वभिः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः	४	१३०
प्राणापानौ मा मां हासिष्टं मा जने प्र मैपि	५	
स्वस्त्युद्योपसौ द्रोपसंश्च सर्वे आपः सर्वेगणो अशीय	६	
शकरी स्य पशवो मोषं स्थेषुमित्रावरुणौ मे प्राणापानावभिर्मै दक्षं दधातु	७	१३१

॥ २९ ॥ (अथर्व० १७।१।१-३०)

१ जगती; १-८ इयवसाना; १-३ अतिजगती; ६-७, १९ अत्यष्टिः; ८, ११, १६ अतिधृतिः;
९ पञ्चपदा शकरी; १०-१३, १६, १८-१९, २४ इयवसाना; १० अष्टपदा धृतिः;
१२ कृतिः; १३ प्रकृतिः; १४-१५ पञ्चपदा शकरी, १७ पञ्चपदा विराडतिशकरी;
१८ भूरिगष्टिः; २४ विराडत्यष्टिः; १-५ षट्पदा; ११-१३, १६, १८-१९, २४
सप्तपदा; २० ककुप्; २१ चतुष्पदा उपरिष्टाद्बृहती; २२ याजुषी
अनुष्टुप्; २३ निचृद्बृहती (२२-२३ द्विपदा); २५-२६ अनुष्टुप्;
२७, ३० जगती; २८-२९ त्रिष्टुप् ।

विपासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।

सहमानं सहोजितं स्वजितं गोजितं संघनाजितम् ।

ईदयं नाम ह्य इन्द्रमायुष्मान् भूयासम्	१	
विपासहिं । सहमानं० । ईदयं नाम ह्य इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम्	२	१३१
विपासहिं । सहमानं० । ईदयं नाम ह्य इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम्	३	
विपासहिं । सहमानं० । ईदयं नाम ह्य इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम्	४	
विपासहिं । सहमानं० । ईदयं नाम ह्य इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम्	५	
उद्विषादिदि मूर्यं वचंसा माम्पुदिदि ।		
द्विषंथ मयं रष्यंतु मा चाहं द्विषते रघं तवेद् विष्णो पदुषां वीर्याणि ।		
न्यं नः पूर्णादि पशुमिर्विस्वरूपैः गुधायो मा धेहि परमे व्योमिन्	६	१३१

- उद्विह्वदिहि सूर्ये वर्चसा माम्युदिहि ।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ७ १४०
मा त्वा दमन्तसलिले अप्स्वन्तये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र ।
द्वित्वाशस्ति दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ तं स्याम् तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ८
त्वं न इन्द्र मुहते सौमगायादब्धेभिः परिं पाह्यक्तुमित्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ९
त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव ।
आरोहस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियघामा स्वस्तये तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १०
त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहुतस्त्वमिन्द्र ।
त्वमिन्द्रं मुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ तं स्याम् तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ११
अदब्धो द्विधि पृथिव्यामुतासि न तं आपुर्महिमानंमन्तरिक्षे ।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र द्विधि पृथग् यच्छ तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १२ १४५
या तं इन्द्र तनुस्सु या पृथिव्यां यान्तरधौ या तं इन्द्र पर्वमाने स्वर्दिदि ।
ययेन्द्र तन्वाहुन्तरिक्षं व्यापिथ तथा न इन्द्र तन्वाहुं शर्म यच्छ तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १३
त्वमिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सुग्रं नि पेटुर्कृपयो नाघमानास्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १४
त्वं तुतं त्वं पर्येषुत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्दिदं तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १५
त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नमसी वि मामि ।
त्वमिमा विश्वा भव्वनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्यामन्त्रैपि विद्वांस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १६
पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयावार्वाङ्शस्तिमेपि सुदिने वाघमानुस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १७ १५०
त्वमिन्द्रस्त्वं महेंद्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।
तुभ्यं यज्ञो वि तापते तुभ्यं जुहति जुह्वतस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १८
असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।
भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १९
शुक्रोऽसि आजोऽसि । स यथा त्वं आजता आजोऽस्येवाहं आजता आज्यासम् २०
रुचिरासि रोचोऽसि । स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन
च रुचिपीय २१
उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः । विराजे नमः स्वराजे नमः सत्राजे नमः २२ १५५

अस्तंयते नमोऽस्तमेप्यते नमोऽस्तमिताय नमः । विराजे नमः स्वराजे नमः०	२३
उदंगाद्रयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।	
सपत्नान् मधं रन्धयन् मा चाहं द्विपते मधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।	
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायी मा घेहि परमे व्योमिन्	२४
आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सुत्रातिं पारय	२५
स्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । रात्रिं मात्यपीपरोऽहं सुत्रातिं पारय	२६
ग्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।	
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतशरैरयम्	२७ १६०
परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।	
मा मा प्रापन्निर्पचो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय	२८
ऋतेन गुप्त ऋतुमिश्च सर्वभूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।	
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं संल्लिलेन वाचः	२९
अग्निर्मा गोप्ता परिं पातु विश्वत उद्यन्तस्यो नुदतां मृत्युपाशान् ।	
व्यूच्छन्तीरुपसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम्	३० १६३

॥ ३० ॥ (अथर्व० १२।१८।८)

(१६४) अथर्वी । आर्च्यनुष्टुप् ।

वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु । ये माघ्रायच एतस्यां दिशोऽभिदासात्

४ १६४

(१६५) ॥ ३१ ॥ (अथर्व० १०।३५।६)

आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन् ।

तां ह जरितः प्रत्यायन्तामृ ह जरितः प्रत्यायन्

६ १६५

आदित्य-सहचारी देवगणः ।

(१) आदित्योपसः ।

॥ ३२ ॥ [दै० (उपा) १८७-१९१ मन्त्राः द्रष्टव्याः ।]

(२) अग्निमित्रवरुणादित्यविश्वेदेवाः ।

(१६६) ॥ ३३ ॥ (वा० य० १११)

व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञिर्यः ।

देवां धियं मनामहे सुमूढीकामभिष्टये वर्चोषां यज्ञवाहसः सुतीर्या नो असुद्वये ।

ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षकृतवस्ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा ११ १६६

(३) आदित्या वसवोऽङ्गिरसः पितरः ।

॥ ३४ ॥ (अथर्व० २।१२।४) (१६७) मरुदाजः । त्रिष्टुप् ।

अशीतिभिस्त्सृभिः सामगोभिरादित्येभिर्वसुभिराङ्गिरोभिः ।

इष्टापूर्तमवतु नः पितृणामासुं दंष्ट्रे हरसा दैव्येन ४ १६७

(४) भगादित्याः ।

॥ ३५ ॥ (अथर्व० ३।१६।२-३, ५) (१६८-१७०) ; अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमादित्यो विंघर्ता ।

आश्रिद् यं मन्यमानस्तुरश्रिद् राजां चिद् यं भगं मस्रीत्याहं २

भगु प्रणेतुर्भगु सत्यराधो भगेमां धियमुदेवा ददन्नः ।

भगु प्र षो जनयु गोभिरश्वैर्भगु प्र नृभिर्नृवन्तः स्वाम ३

भगो एव भगवां अस्तु देवस्तेना वयं भगवन्तः स्वाम ।

तं त्वा भगु सर्व इजोहवीमि स नो भगु पुरेता भवेह ५ १७०

(५) बृहस्पतिः, आदित्यः ।

॥ ३६ ॥ (अथर्व० ४।१।१-७) +

(१७१-१७७) घेनः । त्रिष्टुप्, २, ५ पुरोऽनुष्टुप् ।

ब्रह्मं जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो घेन आचः ।

स चुष्ण्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः १

इयं पित्र्या राष्ट्रैत्वरे प्रथमार्यं जनुपे घ्वनेष्ठाः ।

तसां एतं सुरुचं ह्यारमक्षं घर्मं श्रीणन्तु प्रथमार्यं घ्रास्यवे २ १७२

अस्तंयते नमोऽस्तमेव्यते नमोऽस्तमिताय नमः । विराजे नमः स्वराजे नमः०	२३
उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।	
सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विपते रघं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।	
त्वं नः ष्णोहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुघार्या मा घेहि परमे व्योमिन्	२४
आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सुत्रातिं पारय	२५
सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सुत्रातिं पारय	२६
प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मेणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।	
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्वरेयम्	२७ १६०
परीवृतो ब्रह्मणा वर्मेणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।	
मा मा प्रापन्निर्यवो दैव्या या मा मानुपीरवसृष्टा वधायं	२८
ऋतेन गुप्त ऋतुमिश्र सर्वभूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।	
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं संल्लिलेन वाचः	२९
अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो जुदता मृत्युपाशान् ।	
व्युच्छन्तीरुपसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम्	३० १६३

॥ ३० ॥ (अथर्व० १२।१८।४)

(१६४) अथर्वा । आर्च्यनुष्टुप् ।

वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्यां दिशोऽभिदासात्

४ १६४

(१६५) ॥ ३१ ॥ (अथर्व० ००।१३।६)

आदित्या ह जरितराङ्गिरोभ्यो दक्षिणासनयेन् ।

तां ह जरितुः प्रत्यायंस्ताम् ह जरितुः प्रत्यायन्

६ १६५

(३) मित्रः, मित्रावरुणौ च ।

॥ ४० ॥ (ऋ० १।१५१।१)

(१८४) दीर्घतमा औचथ्यः । जगती ।

मित्रं न यं शिम्या गोपुं गव्यवः स्वाध्व्यो विदथे अप्सु जीर्जनम् ।

अरेजेतां रोदसीं पाजसा गिरा प्रतिं प्रियं यजतं जनुपामवः

१ १८४

॥ ४१ ॥ (ऋ० ३।५९।१-९) ×

(१८५-१९३) गायिनो विश्वामित्रः । घृष्टप्, ६-९ गायत्री ।

मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत् द्याम् ।

मित्रः कृष्टीरनिमिपाभि चेटे मित्राय हव्यं घृतवज्रहोत

१ १८५

प्र स मित्रं मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्यं शिक्षति व्रतेन ।

न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमहो अश्रोत्यन्तितो न दूरात्

२

अनमीवास हलया मदन्तो मितज्ञो वरिमन्ना पृथिव्याः ।

आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमर्तो स्याम

३

अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।

तस्य वयं सुमर्तो यज्ञियस्या-ऽपि भद्रे सौमनसे स्याम

४

महो आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।

तस्मा एतत् पन्यतमाय जुष्टं-मग्नौ मित्राय हविरा जुहोत

५

मित्रस्य चर्पणीघृतो ऽवो देवस्य सानसि । द्युञ्जं चित्रश्रवस्तमम्

६ १९०

अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः । अभि श्रवोभिः पृथिवीम्

७

मित्राय पश्वं येमरे जनां अभिष्टिगवसे । स देवान् विश्वान् विमर्ति

८

मित्रो देवेन्वायुपु जनाय वृक्तवर्हिषे । ह्यं इष्टव्रता अकः

९ १९३

॥ ४२ ॥ (१९४) (वा० य० ११।५३)

मित्रः सःसृज्यं पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह ।

सुजातं जातवेदसमयुक्षमार्यं त्वा सःसृजामि प्रजाम्यः

५३ १९४

॥ ४३ ॥ (अथर्व० १२।१९।१)

(१९५) अथर्वा मुत्तिगृहती ।

मित्रः पृथिव्योदकाम् तां पुरं प्र गयामि वः ।

तामा विंशतु तां प्र विंशतु सा वः शर्मं च वर्मं च यच्छतु

१ १९५

प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ।	
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुचैः स्वधा अभि प्र तस्यौ	३
स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत् ।	
महान् मही अस्कभायद् वि जातो धां सन्न पार्थिवं च रजः	४
स बुध्न्यादाष्ट्र जुनुपोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट् ।	
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टार्थं द्युमन्तो वि र्ससन्तु विप्राः	५ १७५
नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्वस्य धाम ।	
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वं अर्धे विपिते ससन्तु	६
योऽर्थवाणं पितरं देवर्बन्धुं बृहस्पतिं नमसायं च गच्छात् ।	
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कृविर्देवो न दभायत् स्वधावान्	७ १७७

(६) दिवादित्यौ ।

॥ ३७ ॥ (अथर्व० ४।३१।५-६)

(१७८-१७९) अङ्गिराः । ५ त्रिपदा महावृहती, ६ संस्तरपञ्क्तिः ।

दिव्यादित्याय समनमन्त्स आर्धोत् ।	
यथा दिव्यादित्याय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु	५
द्यौर्येनुस्तस्या आदित्यो वत्सः । सा म आदित्येन वत्सेनेपमूर्जं कामं दुहाम् ।	
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा	६ १७९

(७) आदित्यादयः ।

॥ ३८ ॥ (अथर्व० ५।२१।१०-१२)

(१८०-१८१) ब्रह्मा । अनुष्टुप्, ११ बृहतीगर्गा त्रिष्टुप् ।

आदित्यं चक्षुरा दत्स्व मरीचयोऽस्तु धावत । पत्सङ्गिनीरा संजन्तु विगते बाहुवीर्ये	१० १८०
यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीतु शत्रून् ।	
सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः	११
एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः । अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा	१२ १८१

(८) आदित्या रुद्रा वसवश्च ।

॥ ३९ ॥ (१८३) (अथर्व० १०।१३।५)

आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेतुं त इदं राधुः प्रति गृष्णीष्यङ्गिरः ।

इदं राधो विद्यु प्रस्य इदं राधो बृहत्पृथुं

(३) मित्रः, मित्रावरुणौ च ।

॥ ४० ॥ (ऋ० १।१५१।१)

(१८४) दीर्घतमा औचथ्यः । जगती ।

मित्रं न यं शिष्या गोपुं गुण्यवः स्वाध्यां विदथे अप्सु जीर्जनन् ।

अरेजितां रोदसी पार्जसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुपामवः

१ १८४

॥ ४१ ॥ (ऋ० ३।५२।१-९) ×

(१८५-१९३) गायिनो विश्वामित्रः । त्रिष्टुप्, ६-९ गायत्री ।

मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत धाम् ।

मित्रः कृष्टीरनिमिपाभि चष्टे मित्राय ह्वयं घृतवज्रहोत

१ १८५

प्र स मित्रं मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्यं शिक्षति वृतेन ।

न हन्यते न जीयते त्वोलो नैनमहो अश्रोत्यन्तितो न दूरात्

२

अनमीवास इळया मर्दन्तो मितज्ञो वरिमन्ना पृथिव्याः ।

आदित्यस्य व्रतधृपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमर्तो स्याम

३

अयं मित्रो नमस्यः सुशेषो राजा सुशत्रो अजनिष्ट वेधाः ।

तस्य वयं सुमर्तो यज्ञियस्याऽपि मूद्रे सौमनसे स्याम

४

महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।

तस्मा एतत् पन्यतमाय जुष्टं मग्नौ मित्राय हविरा जुहोत

५

मित्रस्य चर्पणीधृतो ऽवो देवस्य सानसि । द्युमं चित्रश्रवस्तमम्

६ १९०

अभि यो महिना दिवै मित्रो बभूव सप्रथाः । अभि श्रवोभिः पृथिवीम्

७

मित्राय पश्वं येमिरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान् विश्वान् विमर्ति

८

मित्रो देवेन्द्रायुषु जनाय वृक्तवर्हिषे । ह्यं इष्टव्रता अकः

९ १९३

॥ ४२ ॥ (१९४) (वा० य० ११।५३)

मित्रः सःसृज्यं पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह ।

सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सःसृजामि प्रजाम्यः

५३ १९४

॥ ४३ ॥ (अथर्व० १२।१९।१)

(१९५) अथर्वा भुरिगृहती ।

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।

तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्मं च चर्मं च यच्छत

१ १९५

॥ ४४ ॥ (ऋ० १।२।७-९)

(१९६-१९८) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

मित्रं हुवे पुतदक्षं वरुणं च रिशादंसम् । धियं घृताचीं सार्धन्ता ७
 ऋतेन मित्रावरुणा वृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशथे ८
 कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दसै दधाते अयसम् ९ १९८

॥ ४५ ॥ (ऋ० १।२३।४-६)

(१९९-२०१) मेघातिथिः काण्वः । गायत्री ।

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । जज्ञाना पुतदक्षसा ४
 ऋतेन यावृतावृधा वृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ५ २००
 वरुणः प्राविता भुवन् मित्रो विश्वाभिरुतिभिः । करतां नः सुरार्धसः ६ २०१

॥ ४६ ॥ (ऋ० १।४३।३)

(२०२) कण्वो घोरः । गायत्री ।

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा विश्वं सजोषसः ३ २०२

॥ ४७ ॥ (ऋ० १।१३६।१-७)

(२०३-२१३) परुच्छेषो देवोदासिः । अत्यष्टिः, ७ त्रिष्टुप् ।

प्र सु ज्येष्ठं निचिराम्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळ्यद्भ्यां स्वार्दिष्टं मृळ्यद्भ्याम् ।
 ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता ।

अथैनोः क्षत्रं न कृत्स्ननाथृषे देवत्वं नू चिदाथृषे १

अदक्षि गातुरुवे वरीयसी पन्या ऋतस्य समर्यस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः ।

घुषं मित्रस्य सार्दनमर्यम्णो वरुणस्य च ।

अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वयं उपस्तुत्यं बृहद् वयः २

ज्योतिष्मतीमर्दति धारयर्क्षति स्वर्वतीमा संचेते द्विवेदिवे जागृवांसां द्विवेदिवे ।

ज्योतिष्मत् क्षत्रमांशाते आदित्या दानुंनस्पती ।

मित्रस्तपोर्वरुणो यातयज्ञनो ऽर्यमा यातयज्ञनः ३ २०५

अयं मित्राय वरुणाय शतंमः सोमो भूत्वयपानेष्वाभंगो देवो द्वेष्वामंगः ।

तं देवासां जुपेरत् विश्वं अघ सजोषसः ।

यथा राजाना करयो यदीर्मह ऋतायाना यदीर्महे ४ २०६

यो मित्राय वरुणाय विधुज्जनोऽनुवाणं तं परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहमः ।
तमर्यमाभि रक्षत्यजुयन्तमनु व्रतम् ।

उक्थैर्य एनोः परिभूयति व्रतं स्तोमैराभूपति व्रतम् ५

नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुपे सुमृळीकार्यं मीळ्हुपे ।
इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।

ज्योन्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ६

ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयंशसो मरुद्भिः ।

अग्निमित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ७ २०९

॥ ४८ ॥ (१।१३७।१-३) अतिशक्ती ।

सुपुमा यातमद्रिमि गौर्धीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे ।

आ राजाना दिविस्पृशा अस्मत्रा गन्तमुप नः ।

इमे वा मित्रावरुणा गवांशिरः सोमाः शुक्रा गवांशिरः १ २१०

इम आ यातमिन्द्रवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः ।

उत वामुपसो वृधि साकं धर्यस्य रश्मिभिः ।

मुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋतार्यं पीतये २

तां वा धेनुं न वासुरी मंशुं दुहन्त्यद्रिमिः सोमं दुहन्त्यद्रिमिः ।

अस्मत्रा गन्तमुप नो अर्वाञ्चा सोमपीतये ।

अयं वा मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ३ २१०

॥ ४९ ॥ (ऋ० १।१६९।१०) अत्यष्टिः ।

यद्द त्यन्मित्रावरुणावृतादभ्यादुदाये अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।

युवो रित्थाधि सञ्च स्वपश्याम हिरण्ययम् ।

धीमिश्चन मनसा स्वोभिरक्षभिः सोमस्य स्वोभिरक्षभिः २ २१३

॥ ५० ॥ (ऋ० १।१५१।१०-९)

(२१७-२३०) दीर्घतमा औचध्यः । जगती ।

यद्द त्यद् वां पुरुमीळ्हस्यं सोमिनः प्र मित्रामो न दधिरे स्वाधुवः ।

अध क्रतुं निदतं गातुमर्चेत उत श्रुतं धृषणा पुस्त्यावतः २

आ वा भूपन् क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रानर्ष्यं धृषणा दक्षसे महे ।

यदीमताय भर्यो यदर्वते प्र होत्रया शिम्पा वीयो अप्तरम् ३ २१५

॥ ४४ ॥ (ऋ० १।१।७-९)

(१९६-१९८) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

मि॒त्रं हु॒वे पु॒त॒र्दक्षं॑ वरु॒णं च रि॒शाद॑सम् । धि॒र्यं घृ॒ता॒र्चीं सा॑र्धन्ता ७
 ऋ॒तेन॑ मि॒त्रावरु॑णा—घृ॒ताघृ॒धाघृ॒तस्पृ॑शा । ऋ॒तुं बृ॒हन्त॑माशाये ८
 क॒वी नो॑ मि॒त्रावरु॑णा तुवि॒ज्ञाता॑ उरु॒क्षया॑ । दक्षं॑ दधाते अ॒यस॑म् ९ १९८

॥ ४५ ॥ (ऋ० १।२३।४-६)

(१९९-२०१) मेघातिथिः काण्वः । गायत्री ।

मि॒त्रं वृ॒षं ह॒वामहे॑ वरु॒णं सोम॑पीतये । ज॒ज्ञाना॑ पु॒त॒र्दक्ष॑सा ४
 ऋ॒तेन॑ यावृ॒तावृ॒धा—वृ॒तस्य॑ ज्योति॑र्यस्पती । ता मि॒त्रावरु॑णा हु॒वे ५ २००
 वरु॑णः प्रा॒विता भु॑वन् मि॒त्रो विश्वा॑भिरु॒तिभिः॑ । कर॑तां नः सुरा॒र्घसः॑ ६ २०१

॥ ४६ ॥ (ऋ० १।४३।१)

(२०२) कण्वो घौरः । गायत्री ।

यथा॑ नो मि॒त्रो वरु॑णो यथा॑ रु॒द्रश्चि॑के॒तति॑ । यथा॑ विश्वे॑ स॒जोर्घ॑सः ३ २०२

॥ ४७ ॥ (ऋ० १।१३६।१-७)

(२०३-२१३) परुच्छेपो द्वैवोदासिः । अत्यष्टिः, ७ त्रिष्टुप् ।

प्र सु ज्येष्ठं नि॒चिरा॑भ्यां बृ॒हन्न॑मो ह॒व्यं म॒र्ति भ॑रता मृ॒ळ्यद्भ्यां॑ स्वादि॑ष्ठं मृ॒ळ्यद्भ्याम्॑ ।
 ता स॒म्राजा॑ घृ॒तासु॑ती य॒ज्ञेय॑न्नु॒ उप॑स्तुता ।
 अथै॑नोः क्ष॒त्रे न कृ॑त॒क्षना॑धृषे दे॒वत्वं नू चि॑द्राधृषे १
 अदंशि॑ गा॒तुरु॑वे वरी॒यसी॑ प॒न्यां ऋ॒तस्य॑ स॒मय॑स्त र॒श्मिभि॑—श्व॒श्रुर्भ॑र्गस्य र॒श्मिभिः॑ ।
 द्युषं॑ मि॒त्रस्य॑ सा॒र्दन॑—म॒र्यम्णो॑ वरु॒णस्य॑ च ।
 अथा॑ दधाते बृ॒हद्दु॒कथं॑ व॒र्यं उ॒प॒स्तुत्यं॑ बृ॒हद् व॒र्यः २
 ज्योति॑ष्मती॒मर्दि॑ति धार॒यत्क्षि॑ति॒ स्व॑र्वती॒मा स॑चेते दि॒वेदि॑वे जागृ॒वांसां॑ दि॒वेदि॑वे ।
 ज्योति॑ष्मत् क्ष॒त्रमा॑शाते आ॒दित्या॑ दानु॒नस्प॑ती ।
 मि॒त्रस्तयो॑र्वरु॒णो या॑त॒यज॑नो उ॒र्यमा॑ या॒त॒यज॑नः ३ २०५
 अ॒यं मि॒त्राय॑ वरु॒णाय॑ श॒तम॑ः सोमो॑ भू॒त्वघृ॑पाने॒ष्वाभ॑गो दे॒वो दे॒वेष्वाभ॑गः ।
 तं दे॒वासीं॑ जु॒पेर॑त् विश्वे॑ अ॒घ स॒जोर्घ॑सः ।
 तथा॑ राजाना॒ कर॑थो यदी॒मह॑ ऋ॒तावान्ना॑ यदी॒महे ४ २०६

यो मित्राय वरुणायाविध्वज्जनोऽनुर्वाणं तं परि पातो अहंसो दाक्षांसं मर्तमहंसः ।
तमर्यमाभि रक्ष त्वृजुयन्तमनु व्रतम् ।

उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ५
नमो द्विवे वृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हृषे सुसृळ्ळीकार्यं मीळ्हृषे ।
इन्द्रमग्निष्टुपं स्तुहि द्युक्षमर्यमणं मगम् ।

ज्योःजीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ६
उती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयंशसो मरुद्भिः ।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ७ २०९

॥ ४८ ॥ (१।१३७।१-३) अतिशक्ती ।

सुपुमा यातमार्द्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमांसो मत्सरा इमे ।
आ राजाना दिविस्पृशाऽस्मत्रा गन्तुषुपं नः ।

इमे वा मित्रावरुणा गवाशिरः सोमांः शुक्रा गवाशिरः १ २१०
इम आ यातमिन्द्रवः सोमांसो दध्याशिरः सुतांसो दध्याशिरः ।

उत वामुपसो बुधि साकं सूर्यस्य रुश्मिभिः ।
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुंश्रुताय पीतये २
तां वा धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्यद्रिभिः सोमं दुहन्यद्रिभिः ।
अस्मत्रा गन्तुषुपं नो उवाञ्चा सोमपीतये ।

अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ३ २११
॥ ४९ ॥ (ऋ० १।१६९।१) अत्यष्टिः ।

यद्द त्यन्मित्रावरुणावृतादध्यादुदाये अनृतं स्वेन मनुयुना दक्षस्य स्वेन मनुयुना ।
युवोरित्थाधि सन्न स्वर्पश्याम हिरण्यर्यम् ।

धीमिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः २ २१३
॥ ५० ॥ (ऋ० १।१५१।१-९)

(२१४-२३१) दीर्घतमा औचष्यः । जगती ।

यद्द त्यद् वां पुरुमीळ्हस्यं सोमिनः प्र मित्रांसो न दधिरे स्वाभुर्वः ।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पुस्त्यावतः २

आ वां भूपन् क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदांमताय भरयो यदर्वते प्र होत्र्या शिम्वां वीथो अध्वरम् ३ २१५

प्र सा खितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषयो बृहत् ।	
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युषं युञ्जाथे अपः	४
मही अत्र महिना वारमृण्वथो ऽरेणवस्तुज आ सन्नं धेनवः ।	
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निशुचं उपसस्तक्वयीरिव	५
आ वांमृतायं केशिनीरनुपत् मित्र यत्र वरुण गातुमर्चयः ।	
अव त्मनां सृजतं पिन्वंतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः	६
यो वां युवैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।	
उपाह तं गच्छथो धीधो अश्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू	७
युवां युवैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।	
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरो ऽदृष्यता मनसा रेवदाशये	८ २१०
रेवद् वयो दधाथे रेवदाशये नरां मायाभिरितऊति माहिनम् ।	
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पुणयो नानंशुर्धम्	९ २११

॥ ५१ ॥ (ऋ० १।१५२।१-७) विष्टुप् ।

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।	
अवातिरतमनृतानि विश्वं ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे	१
एतच्चुन त्वो वि चिकेतदेपां सत्यो मन्त्रः कविशुस्त ऋवावान् ।	
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन्	२
अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत ।	
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपत्यनृतं नि तारीत्	३
प्रयन्तमित् परिं जारं कनीनां पश्यामसि नोर्पनिपद्यमानम् ।	
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम	४ २१५
अनश्वो जातो अनभीशुर्वा कनिकदत् पतयदूर्ध्वसानुः ।	
अचित्तं ब्रह्मे जुजुपुषुवानुः प्र मित्रे धाम वरुणे गुणन्तः	५
आ धेनवो मामतेयमवन्ती ब्रह्मप्रियं पीपयन्तस्मिन्नृधन् ।	
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वा नासाविवासन्नर्दित्तिमुक्षयेत्	६
आ वां मित्रावरुणा हव्यञ्जति नमसा देवाववसा वष्ट्याम् ।	
अस्माकं ब्रह्म पृतेनासु ससा अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा	७ २१८

॥ ५२ ॥ (ऋ० १।१५३।१-४)

यजामहे वां महः सजोषां	दृव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।	
घृतैर्घृतस्नु अध यद् वामसे	अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति	८
प्रस्तुतिर्वा घाम् न प्रयुक्ति	रयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः ।	
अनक्ति यद् वां विदथेषु होतां	सुम्रं वां सूरिवृषणाविर्यक्षन्	२ २३०
पीपायं धेनुरदितिर्ऋताय	जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।	
हिनोति यद् वां विदथे सपर्य	न्त्स रातहव्यो मानुषो न होतां	३
उत वां विष्णु मद्यास्वन्यो	गात्र आपश्च पीपयन्त देवीः ।	
उतो नो अस्य पूर्यः पतिर्दन्	वीतं पातं पर्यस उस्त्रियायाः	४ २३२

॥ ५३ ॥ (ऋ० २।११४-६) ×

(२३३-२३५) गृत्समद् (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) मार्गवः शौनकः । गायत्री ।

अयं वां मित्रावरुणा	सुतः सोमं ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम्	४
राजानावनभिद्गुहा	ध्रुवे सदैस्थुत्तमे । सहस्रस्थृण आसाते	५
ता सम्राजां घृतासुती	आदित्या दानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम्	६ २३५

॥ ५४ ॥ (ऋ० ३।६२।१६-१८) +

(२३६-२३८) गायिनो विश्वामित्रः, जमदग्निर्वा । गायत्री ।

आ नो मित्रावरुणा	घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्या रजांसि सुक्रतू	१६
उरुशंसा नमोवृधा	महा दक्षस्य राजथः । द्राविष्ठाभिः शुचित्रता	१७
गृणाना जमदग्निना	योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा	१८ २३८

॥ ५५ ॥ (ऋ० ५।६२।१-९)

(२३९-२४७) श्रुतविद्वात्रेयः । त्रिष्टुप् ।

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां	सर्वस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान् ।	
दर्शं श्रुता सह तस्थुस्तदेकं	देवानां श्रेष्ठं वषुषामपश्यम्	१
तत् सु वां मित्रावरुणा महित्व	मीर्मा तस्थुपरिर्हभिर्दुदुहे ।	
विश्वाः पिन्वथः स्वसंरस्य धेना	अनुं वामेकः पविरा ववर्त	२
अधारयतं पृथिवीमुत द्यां	मित्रं राजाना वरुणा महोभिः ।	
वृषेयतमोपधीः पिन्वतं गा	अवं वृष्टिं सृजतं जीरदानू	३ २४१

× ऋ० २, ११, १४ = वा० य० ७, ९;

+ ऋ० ३, ६२, १६ = वा० य० २१।८; वा० २२०, ६६३

आ चामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरंमय उप यन्त्वर्वाक् ।	
धृतस्य निणिगालुं वर्तते वा मुप सिन्धवः प्रुदिवि क्षरन्ति	४
अनुं श्रुताममतिं वर्षेदुर्वी वहिरिव यजुषा रक्षमाणा ।	
नमस्वन्ता धृतदक्षधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः	५
अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ।	
राजाना क्षत्रमहंणीयमाना सहस्रस्थूणं विमृथः सह द्वौ	६
हिरण्यनिणिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्यभृश्वार्जनीव ।	
भद्रे क्षेत्रे निर्मिता तिलिवले वा सनेम मध्वो अधिगत्यस्य	७ २४५
हिरण्यरूपमुपसो व्युष्टावयःस्थूणमुदिता सूर्यस्य ।	
आ रोहथो वरुण मित्र गर्ते मत्श्वक्षाये अर्दितिं दितिं च	८
यद् वहिष्टं नातिविधे सुदानु अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।	
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिपासन्तो जिगीवांसः स्याम	९

॥ ५६ ॥ (ऋ० ५।६३।१-७)

(२४८-२६१) अर्चनाना आधेयः । जगती ।

ऋतस्य गोपावधिं तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि ।	
यमत्रं मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुंमत् पिन्वते दिवः	१
सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दशा ।	
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः	२
सम्राजा उत्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।	
चित्रेभिरभ्रैरुपं तिष्ठथो रवं धां वर्षयथो असुरस्य मायया	३ ५५०
माया वा मित्रावरुणा द्विवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुंधम् ।	
तमभ्रेण वृष्टया गृहथो द्विवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते	४
रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।	
रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पर्यसा न उक्षतम्	५
वाचं सु मित्रावरुणाविरावती पर्जन्यश्चित्रां वंदति त्विपीमतीम् ।	
अभ्रा वंसत मरुतः सु मायया धां वर्षयतमरुणामरेपसम् ।	६
धर्मेणा मित्रावरुणा विपथिता व्रता रक्षथे असुरस्य मायया ।	
ऋतेन विश्वं सुर्वनं वि राजथः सूर्यमा धंत्यो द्विवि चित्र्यं रथम्	७ २५४

॥ ५७ ॥ (ऋ० ५।६४।१-७) अनुष्टुप्, ७ पङ्क्तिः ।

वरुणं वो रिशादस—मृचा मित्रं हवामहे । परिं वृजेत्रं वाहो—जगन्वासां स्वर्णरम् १ २५५
 ता वाहवा सुचेतना प्र यन्तमस्मा अर्चते । शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुंवे २
 यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा । अस्य प्रियस्य शर्मण्य—हिंसानस्य सश्विरे ३
 युवाभ्यां मित्रावरुणो—पुमं धेयामृचा । यद्द्र क्षयं मघोनां स्तोतृणां च स्पृषसे ४
 आ नो मित्र सुदीतिभि—र्वरुणश्च सुधस्य आ । स्वे क्षयं मघोनां सखीनां च वृधसे ५
 युवं नो येषु वरुण क्षत्रं वृहच्च विमथः । उरुणो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ६ २६०
 उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्रवि ।

सुतं सोमं न हस्तिभि—रा पङ्क्तिर्ध्रुवतं नरा विभ्रतावर्चनानसम् ७ २६१

॥ ५८ ॥ (ऋ० ५।६५।१-६)

(२६२-२७२) रातहव्य आश्रयः । अनुष्टुप्, ६ पङ्क्तिः ।

यश्चिकेत स सुकृतं—देवत्रा स व्रवीतु नः । वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः १
 ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुचमा । ता सत्पती क्रतावृथं क्रतावाना जनेजने २
 ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप व्रुवे सचा । स्वश्वांसुः सु चेतना वाजो अभि प्र दावने ३
 मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते । मित्रस्य हि प्रत्यूतः सुमतिरास्ति विधतः ४ २६५
 वयं मित्रस्पर्षसि स्वामं सुप्रथंस्तमे । अनेहसुस्तवोतयः सत्रा वरुणशेषसः ५
 युवं मित्रमं जनुं यतयुः सं च नयथः ।

मा मघोनः परिं ख्यतं मो अस्माकृष्टपीणां गोपीथे न उरुप्यतम् ६ २६७

॥ ५९ ॥ (ऋ० ५।६६।१-६) अनुष्टुप् ।

आ चिकितान सुकृतं देवां मर्त रिशादसा । वरुणाय क्रतुपेशसे दधीत प्रथसे महे १
 ता हि क्षत्रमविहृतं सम्यगसुर्यैः माशाते । अर्धं व्रतेत्र मानुषं स्वर्गं घापि दर्शतम् २
 ता वामेषु रथाना—मुषीं गव्यूतिमेषाम् । रातहव्यस्य सुपुतिं द्रष्टुं स्तोमर्मनामहे ३ २७०
 अथा हि काष्ठां युवं दक्षस्य पुभिरंश्रुता । नि केतुना जनानां चिकेथे पृतदक्षसा ४
 तदृत्तं पृथिवि वृह—च्छ्रवण्य ऋषीणाम् । जयसानावरं पृथ्व—तिं धरान्ति यामभिः ५
 आ यद् वामीयचक्षसा मित्रं वयं च सुर्यः । व्यचिष्टे बहुपाग्ये यतमहि स्वराज्ये ६ २७३

॥ ६० ॥ (ऋ० ५।६७।१-५)

(२७४-२८३) यजन आश्रयः । अनुष्टुप् ।

चक्षित्या देव निष्कृत—मादित्या यजतं वृहत् । वरुण मित्रार्थमनु वरिष्ठं क्षत्रमाशाये १
 आ यद् योनिं हिरण्यं वरुण मित्रं सदैधः । धर्तारां चर्षणीनां युन्तं सुभ्रं रिशादसा २ २७५

विश्वे हि विश्वेदसो वरुणो मित्रो अर्धमा । व्रता पदेव सश्विरे पान्ति मर्त्य रिपः ३
 ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतार्वानो जनैजने । मुनीथासः सुदानवो—ऽहोधिदुरुचक्रयः ४
 को नु वा मित्रास्तुतो वरुणो वा तन्नाम् । तत् सु वामपैते मति—रथिम्य एपंत मतिः ५ २३

॥ ६१ ॥ (ऋ० ५.६८।१-५) गायत्री ।

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् १
 सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता २ २८०
 ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महिं वां क्षत्रं देवेषु ३
 ऋतमतेन सर्पन्ते—पिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवा वधेते ४
 वृष्टिर्धावा रीत्यापि—पस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ५ २८१

॥ ६२ ॥ (ऋ० ५।६९।१-४)

(२८४-२९८) उरुचक्रित्रात्रेयः । त्रिष्टुप् ।

त्री रौचिना वरुण त्रीरुत द्युन् त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
 वावृधानावमतिं क्षत्रियस्या—ऽनुं व्रतं रक्षमाणावजुर्मम् १
 इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद् वां सिन्धवो मित्र दुहे ।
 त्रयस्तस्थुर्वृषभासंस्तिसृणां धिपर्णानां रेतोघा वि द्युमन्तः २ २८५
 प्रातर्देवीमर्दितिं जोहवीमि मध्वंदिन उर्दिता स्र्यस्य ।
 राये मित्रावरुणा सर्वताते—ळं तोकाय तनयाय शं योः ३
 या घर्तारा रजंसो रोचनस्यो—तादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
 न वां देवा अमृता आ भिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ४ २८६

॥ ६३ ॥ (ऋ० ५।७०।१-४) गायत्री ।

पुरूरुणां चिद्वचस्त्य—वो नूनं वां वरुण । मित्रं वीसं वां सुमतिम् १
 ता वां सम्यग्द्रुह्वाणे—पमश्याम धार्यसे । वयं ते रुद्रा स्याम २
 पातं नो रुद्रा पायुभिं—रुत ज्ञायेथां सुत्रात्रा । तुर्याम् दस्युन् तनूभिः ३ २९०
 मा कस्याद्भुतक्रत् यक्षं भुञ्जेमा तनूभिः । मा शेषसा मा तनसा ४ २९१

॥ ६४ ॥ (ऋ० ५।७१।१-३)

(२९२-२९७) याहुवृक्त आश्रेयः गायत्री ।

आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्रं वरुणा । उपेमं चारुमध्वरम् १
 विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राज्ञधः । ईशाना पिप्यतं धियः २ २९३

उप नः सुतमा गंतं वरुण मित्रं द्राशुपः । अस्य सोमस्य पीतये ३ २९४

॥ ६५ ॥ (ऋ० ५।७२।१-३) उष्णिक् ।

आ मित्रे वरुणे वृषं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् । नि वृर्हिपि सदत् सोमपीतये १ २९५

व्रतेन स्यो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना । नि वृर्हिपि मदत् सोमपीतये २

मित्रश्च नो वरुणश्च जुपेतां यज्ञमिष्टये । नि वृर्हिपि मदतां सोमपीतये ३

॥ ६६ ॥ (ऋ० ६।६७।१-११)

(२९८-३०८) वार्हस्पत्यो भरद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

विक्षेपां वः सुतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृध्व्यं ।

सं या रश्मेव यमतुर्यामिष्टा द्वा जना अममा वाहुभिः स्वैः १

इयं मद् वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नमसा वहिरच्छ ।

यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं हृदिर्द्यद् वां वरुध्वं सुदान् २

आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्रुप प्रिया नमसा ह्ययमाना ।

सं यावमःस्यो अपसेव जनाञ्छुधीयतथिद् यतयो महित्वा ३ ३००

अश्वा न या वाजिनां पृतवंधू ऋता यद् गर्भमदितिर्भरंध्वं ।

प्र या महिं मुहान्ता जायमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दौघः ४

विश्वे यद् वां मुहन्ता मन्दमानाः क्षत्रं देवामो अर्दधुः सुजोषाः ।

परि यद् भूयो रोदसी चिदुर्वा सन्ति स्पशो अदध्वामो अमूराः ५

ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु धन् हृहेथे सानुषुपमादिव घोः ।

हृहो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान् द्यां घासिनायोः ६

ता विग्रं धेथे जठरं पूणघ्या आ यत् मद्म सभृतयः पूणन्ति ।

न मृप्यन्ते युवतयोऽजाता वि यत् पर्यो विश्वजिन्वा भरन्ते ७

ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद् वां सत्यो अरविर्भूते भूत् ।

तद् वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं द्राशुपे वि वीयष्टमहः ८ ३०१

प्र यद् वां मित्रावरुणा स्पृधन् प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति ।

न ये देवान् ओहमा न मर्ता अयंजमाचो अप्यो न पुत्राः ९

वि यद् वाचं कीस्तासो मरन्ते शंसन्ति के विन्निविदां मनाः ।

आद् वां व्रवाम सत्यान्युक्था नर्किद्वेभिर्यतथो महिन्या १०

अवोरित्था वां हृदिपो अभिर्था युवोर्मित्रावरुणावर्कंधायु ।

अनु यद् गावः स्फुरानुजिप्यं धृष्णं यद् रणे वृषणं युनर्त्र ११

॥ ६७ ॥ (ऋ० ७।५०।१)

(२०९-२४७) मित्रावरुणिवेत्तिष्ठ। जगती ।

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद् विश्वयन्मा न आ गन् ।
अजकावं दुर्दृशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदुत् स्तरुः

१ ३०९

॥ ६८ ॥ (ऋ० ७।६०।२-१२) त्रिष्टुप् ।

एष स्य मित्रावरुणा नुचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन् ।
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मतेषु वृजिना च पश्यन्
अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद् या इं वहन्ति सूर्यं घृताचीः ।
धामानि मित्रावरुणा युवाकः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे
उद् वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोपोः
इमे चेतारो अनृतस्य भूरं मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शुग्मासः पुत्रा अदितेरदध्वाः
इमे मित्रो वरुणो दूळभासो ऽचेतसं चिचितयन्ति दक्षैः ।
अपि ऋतुं सुचेतसं वर्तन्तस्तिरश्चिदंहः सुपधां नयन्ति
इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांमो अचेतसं नयन्ति ।
प्रत्राजे चिन्नद्यौं गाधर्मस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्यं पर्यन्
यद् गोपावददितिः शर्म मद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासं ।
तस्मिन्ना लोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः
अव वेदिं होत्राभिर्यजेत् रिपुः काश्चिद् वरुणधृतः सः
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तुं सुदासं वृषणा उ लोकम्
सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेर्षेपा मपीर्षेन सहसा सहन्ते ।
युष्मद् भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मूळता नः
यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाति वाजस्य सातौ परमस्यं रायः ।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्यं उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातुं
द्वयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां युज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा विपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

२ ३१०

३

४

५

६

७ ३१५

८

९

१०

११

१२ ३१०

॥ ६९ ॥ (ऋ० ७।६।११-७)

उद् वां चक्षुर्वरुण मुप्रतीकं देवयोरेति स्वर्षस्तत्त्वान् ।	
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मनुं मत्येष्व्वा चिकेत	१
प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियति ।	
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतु अवाथ आ यत् कत्वा न शरदः पूणैथे	२
प्रोरोमित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव क्रुष्वाद् बृहतः सुदान् ।	
स्पशौ दघाथे ओपघीपु विक्ष्वधंग्यतो अर्निमिपं रक्षमाणा	३
शंसां मित्रस्य वरुणस्य घाय शुष्मो रोदमी वद्वथे महित्वा ।	
अयन् मासा अयंज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते	४
अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददंशे न यक्षम् ।	
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निष्यान्यचिते अभूवन्	५ ३२५
समु वां यज्ञे महयं नमोभिर्हुवे वां मित्रावरुणा सवाधः ।	
प्र वां मन्मान्यचसे नवानि कृतानि ब्रह्मं जुजुपन्निमार्नि	६
द्वयं देव पुरोर्हितियुवभ्यां युज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।	
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो ययं पात स्वस्तिभिः सदां नः	७ ३२७

॥ ७० ॥ (ऋ० ७।६।१४-६)×

द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जुहुः सुजनिमान ऋष्वे ।	
मा हेतै मूम वरुणस्य वायोर्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम्	४
प्र चाहवा मिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।	
आ नो जनै श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा	५
नू मित्रो वरुणो अर्यमा नू स्तमनै तोकाय वरिवो दघन्तु ।	
सुगा नो विश्वा सुपथानि मन्तु ययं पात स्वस्तिभिः सदां नः	*६ ३३०

॥ ७१ ॥ (ऋ० ७।६।११-५)

दिवि क्षयन्ता रजमः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन् ।	
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुपन्त	१ ३३१

× ऋ० ७, ६०, ५ = वा० य० २१, ९ । * ऋ० ७।६।११

आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।
 इळो नो मित्रावरुणोत वृष्टि—मर्षं दिव ईन्वतं जीरदानू २
 मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु ।
 व्रवद् यथा न आदुरिः सुदासं इपा मदेम सह देवगोपाः ३
 यो वां गर्तं मनसा तक्षदेत—मूर्ध्वा घीतिं कृणवद् धारयंच ।
 उक्षेयो मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ४
 एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवैऽयामि ।
 अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधी—र्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५ ३३५

॥ ७२ ॥ (ऋ० ७।६।१-५)

प्रति वां सर उदिते सूक्तै—मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षस्र ।
 ययोरसुर्यमक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगतु १
 ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जेयन्तीः ।
 अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावां च यत्र पीपयन्नहां च २
 ता मूरिपाशावर्नृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय ।
 ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वा—मुपो न नावा दुरिता तरेम ३
 आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतेर्गव्युतिमुक्षतमिळाभिः ।
 प्रति वामत्र वरुमा जनाय पृणीतमुद्रो दिव्यस्य चारोः ४
 एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवैऽयामि ।
 अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधी—र्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५ ३४०

॥ ७३ ॥ (ऋ० ७।६।१-३, १७-१९) गायत्री ।

प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूर्यः । नमस्वान् तुविज्जातयोः १
 या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा । असुर्याय प्रमहसा २
 ता नः स्तिपा तंनूपा वरुण जरितृणाम् । मित्रं साधयंतं धियः ३
 काव्येभिरद्वाभ्या ऽऽयातं वरुण ध्रुमत् । मित्रश्च सोमपीतये १७
 दिवो धामभिर्वरुण मित्रथा यातमद्रुहा । पिबंतं सोममातुजी १८ ३४५
 आ यातं मित्रावरुणा जुपाणावाहुतिं नरा । पातं सोममृताष्टवा १९ ३४६

॥ ७४ ॥ (ऋ० ८।१५।१-९, १३-२४)

(३४७-३६७) विश्वमना ध्येभ्यः । उरिणक्, २३ उरिणग्गमां ।

ता वां विश्वस्य गोपा देवा देवेषु यत्रिया । ऋतावाना यजसे पूतदक्षसा १ ३४७

मित्रा तना न रथ्याः	वरुणो यश्च सुक्रतुः ।	सनात् सुजाता तनया धृतव्रता	२
ता माता विश्ववेदसा	ऽसुरीय प्रमहसा ।	मही जेजानादितिःकृतावरी	३
महान्ता मित्रावरुणा	मम्राजा देवावसुरा ।	ऋतावानावृतमा घोषतो बृहत्	४ ३५०
नपाता शर्वसो मूहः	सूनु दक्षस्य सुक्रतू ।	मुप्रदानं ड्रुषो वास्त्रार्थि क्षितः	५
सं या दानूनि येमथु	द्विन्याः पार्थिवीरिषिः ।	नर्मस्वतीरा वां चरन्तु वृष्टयः	६
अधि या बृहतो दिवोरे	ऽमि यूथेच पश्यतः ।	ऋतावाना मम्राजा नर्मसे हिता	७
ऋतावाना नि पेदतुः	साम्राज्याय मुक्रतू ।	धृतव्रता क्षत्रियां क्षत्रमांशतुः	८
अक्ष्णाश्चिद् गातुविचारा	ऽनुल्यणेन चक्षसा ।	नि चिन्मिपन्तां निचिरा नि चिक्वतुः	९ ३५५
तद् वार्यं वृणीमहे	वरिष्ठं गोपयत्यम् ।	मित्रो यत् पान्ति वरुणो यदर्यमा	१३
उत नः सिन्धुरपां	तन्मरुतस्तदुश्विना ।	इन्द्रो विष्णुर्माद्वांसः सुजोपसः	१४
ते हि प्मां वनुपो नरो	ऽभिमातिं कयस्य चित् ।	तिग्मं न क्षोर्दः प्रतिमन्ति भूर्णयः	१५
अयमेकं इत्या पुरू	रु चष्टे वि विदपतिः ।	तस्य व्रतान्यर्तुं वशरामसि	१६
अनु पूर्वाण्योक्त्या	साम्राज्यस्य सधिम ।	मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत्	१७ ३६०
परि यो रश्मिनां दिवो	ऽन्तान् ममे पृथिव्याः ।	उमे आ प्रपौ रोदसी महित्वा	१८
उद्रु प्य शरणे दिवो	ज्योतिरयस्त सूर्यः ।	अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः	१९
वचो दीर्घप्रसन्नानी	शे वाजस्य गोमंतः ।	ईशे हि पित्वोऽविपस्यं द्वावनें	२०
तत् सूर्यं रोदसी उमे	दोषा वस्तोरुषं ब्रुवे ।	भोजेष्वसां अम्युचरा सदा	२१
ऋत्रमृक्षण्यार्यने	रजतं हरयाणे ।	रथं युक्तमसनाम सुयामणि	२२ ३६५
ता मे अक्ष्यानां	हरिणां नितोशना ।	उतो नु कृत्व्यानां नृवाहसा	२३
सदमीशु कशावन्ता	विप्रा नविष्टया मती ।	महो वाजिनाववन्ता सचासनम्	२४ ३६७

॥ ७१ ॥ (क्र० ८१०११-४) +

(३६८-३७१) जमदग्निर्भागवतः १-० प्रगायः=(वृहती+स्तोवृहती), २ गायत्री, ४ स्तोवृहती ।

ऋषिगित्या स मर्त्यैः शशमे देवतातये ।

यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये १

वर्षिष्ठक्षत्रा उरुचक्षसा नरा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।

ता बाहुता न दुंसना रथर्यतः साकं सूर्यस्य रश्मिभिः २

प्र यो वां मित्रावरुणा जजिरो द्रुतो अद्रवत् । अर्यःशीर्षा मदैरघुः ३ ३७०

न यः संपृच्छे न पुनर्हवीतवे न संवादाय रमते ।
तस्मान्नो अद्य समृतेरुत्पद्यतं वाहुभ्यां न उरुत्पद्यतम् ४ ३७१

॥ ७६ ॥ (ऋ० १०।१३०।२-७)

(३७०-३७७) शकपूतो नामैषः । विराड्दरूपा, २, ६ प्रस्तारपङ्क्तिः, ७ महासतोवृहती ।

ता वां मित्रावरुणा धारयन्क्षिती सुपुत्रेर्पितृत्वता यजामसि ।

युवोः क्राणायं सख्यै—रभि ध्याम रक्षसः २

अघां चिन्नु यद्दिधिपामहे वा—मभि प्रियं रेक्णः पत्यमानाः ।

दुद्रां वा यत् पुष्यति रेक्णः सम्वारन् नकिरस्य मधानि ३

असावन्यो असुर सूयत् द्यौ—स्त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ।

मूर्धा रथस्य चाकन् नैतावतैनसान्तकृद्भुक् ४

अस्मिन्स्वेतच्छकंपूत एनो हिते मित्रे निर्गतान् हन्ति वीरान् ।

अवोवा यद्वात् तन्पुष्वः प्रियासुं यक्षियास्वर्वा ५ ३७५

युवोर्हि मातादिर्विचिचत्सा द्यौर्न भूमिः पर्यसा पुपुतनि ।

अवं प्रिया दिदिष्टन् सरो निनिक्त रश्मिभिः ६

युवं क्षमराजावसीदत् तिष्ठद् रथं न धूर्पदं वनर्पदम् ।

ता नः कण्कयन्ती—र्नमेधस्तत्रे अंहसः सुमेधस्तत्रे अंहसः ७

॥ ७७ ॥ (३७८-३८१) (वा० य० ७।१०) +

राया वृय० संसवा० शसो मदेम हृष्येन देवा यवंसेन गावं ।

तां वेतुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वार्हा चक्षुमनपस्फुरन्तीम् १० ३७८

॥ ७८ ॥ (वा० य० १०।६६, ११)

हिरण्यरूपा उपमो निरोक् उभाविन्त्रा उदिधः सूर्यश्च ।

आरोहतं वरुण मिश्र गत्तं तर्तश्वाधामदितिं दिवि च मित्रोऽसि वरुणोऽसि १६

मित्रावरुणयोस्ता प्रज्ञास्रोः प्रथिषां युनक्ति २१ ३८०

॥ ७९ ॥ (वा० य० १०।६६)

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्तीं सुर्वं यजानामभि संविद्वाने ।

उपामां वा० मुहिरण्ये मुशिल्ये श्रुतस्य योनां विह सादयामि ६ ३८१

॥ ८० ॥ (चा० य० ३३।७०)

काव्ययोरान्जानेषु कृत्वा दक्षस्य दुरोणे । रिशार्दसा सुधस्थ आ

७२ ३८२

॥ ८१ ॥ (अथर्व० १।२८।१) +

(३८३) शम्भुः । त्रिष्टुप् ।

मित्र एनं वरुणो वा रिशार्दा जराभृत्यं कृणुतां संविदानौ ।
तदभिहोता वयुनानि विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति

२ ३८३

॥ ८२ ॥ (अथर्व० ३।२५।१-६)

(३८४-३८९) भृगुः । अनुष्टुप् ।

उत्तुदस्त्वोत्तुदत्तु मा धृथाः शयने स्वे ।

इपुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि

१

आधीपर्णा कामशल्यामिषुं संकल्पकुलमलाम् ।

तां सुसैनतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि

२ ३८५

या प्लीहानै शोषयति कामस्येपुः सुसैनता ।

प्राचीनपक्षा व्योषिा तया विध्यामि त्वा हृदि

३

शुचा विद्धा व्योषिया शुष्कास्याभि सर्प मा ।

मृदुनिर्मन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता

४

आजामि त्वाजन्त्या परिं मातुरथो पितुः । यथा मम ऋतावसो मम चित्तमुपायसि ५

व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम् । अथैनामकृतं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे ६ ३८९

॥ ८३ ॥ (अथर्व० ४।२९।१-७) [आयुर्वेदप्रकरणे सूक्तं (२६४) द्रष्टव्यम् ।]

॥ ८४ ॥ (अथर्व० १।२०।१)

(३९०-३९४) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

यो अद्य सेन्यो वधेऽघायूनामुदीरते । युवं तं मित्रावरुणावसर्गावयतं परिं

२ ३९०

॥ ८५ ॥ (अथर्व० ५।२४।५) चतुष्पदातिऽशकरो ।

मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ भावताम् ।

अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोघायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामार्क-

त्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा

५ ३३१

॥ ८६ ॥ (अथर्व० ६।३१३) त्रिष्टुप् । +

अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नोऽर्चिपात्रिणो नुदतं प्रतीचः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम्

३ ३९२

॥ ८७ ॥ (अथर्व० ६।८९।३) अनुष्टुप् ।

मह्यं त्वा मित्रावरुणौ मह्यं देवी सरस्वती ।
मह्यं त्वा मध्यं भूम्या उभावन्तौ समस्यताम्

३ ३९३

॥ ८८ ॥ (अथर्व० ६।९७।२) जगती ।

स्वधास्तु मित्रावरुणा विपथिता प्रजावत् क्षत्रं मधुनेह पिन्वतम् ।
वाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत्

२ ३९४

॥ ८९ ॥ (अथर्व० ९।१०।३)

(३९५) ब्रह्मा । त्रिष्टुप् ।

अपादेति प्रथमा पद्धतीनां कस्तद्वा मित्रावरुणा चिकेत ।
गमो भारं भरत्या चिदस्या कृतं पिपत्यर्नृतं नि पाति

२३ ३९५

॥ ९० ॥ (अथर्व० १०।५।११)

(३९६) सिन्धुद्वीपः । पथ्यापङ्क्तिः ।

मित्रावरुणयोर्भाग स्थ । अपां शुकमापो देवीर्वचो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकार्यं सादये

११ ३९६

॥ ९१ ॥ (२९७-३९९) (सा० ९८६-९८७) ७

ता वां सम्भ्यगद्गुह्याणपमदयाम धाम च । वयं वां मित्रा स्याम
पातं नो मित्रा पापुमिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा । साक्षाम दस्यू तनुमिः

२

३ ३९८

॥ ९२ ॥ (सा० १६४७) x

त्वा विष्णुवृहन् क्षया मित्रो गृणाति वरुणः । त्वां श्रयो मदत्यनु मारुतम्

३ ३९९

मित्र-मित्रावरुण-सहचारी-देवगणः ।

(१) मित्रावरुणौ नभस्यश्च ।

॥ ९३ ॥ (ऋ० २।३।६)

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) मार्गंघः शौनकः । जगती ।

जुपेयो यज्ञं घोषतं हवस्य मे सुतो होता निविदः पून्या अर्तु ।

अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिधतं सोम्यं मधुं

६ ४००

(२) मित्रावरुणादित्याः ।

॥ ९४ ॥ (ऋ० ८।१०।१५)

जमदग्निमर्गिणः । गृहती ।

प्र मित्राय प्रार्यम्णे संचुर्यमृतावसो ।

वरुण्यं वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत

५ ४०१

(३) उखामित्रौ ।

॥ ९५ ॥ (वा० य० ६।१।६४)

उत्यायं गृहती भुवोटुं तिष्ठ ध्रुवा त्वम् ।

मित्रैतां तं उखां परिदद्राम्यभित्या एपा मा भेदि

६४ ४०२

(४) सविता ।

॥ ९६ ॥ (ऋ० १।१५-८)+

(४०३-४०६) मेघातिथिः काण्वः । गायत्री ।

हिरण्यपाणिमूतयें	सवितारमुषं ह्वये । स चेत्ता देवतां पुदम्	५
अपां नपातमवसे	सवितारमुषं स्तुहि । तस्यं व्रतान्युंशमसि	६
विभक्तारं हवामहे	वसोश्चित्रस्य राधंसः । सवितारं नूचक्षंसम्	७ ४०
सखाय आ नि पीदत	सविता स्तोम्यो नु नः । दाता राधांसि शुम्भति	८ ४०

॥ ९७ ॥ (ऋ० १।१४-५)

(४०७-४०९) स्याजीगतिः शुनःशेषः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । (५ भगो वा) । गायत्री ।

अभि त्वां देव सवितु	रीशानं वार्याणाम् । सदावन् भागर्मीमहे	३
यश्चिद्वि तं इत्या भगः	शशमानः पुरा निदः । अद्वेषो हस्तयोर्दुधे	४
भगंभक्तस्य ते वय	मुदंशेम् तवावसा । मूर्धानं राय आरभे	५ ४०

॥ ९८ ॥ (ऋ० १।३५-११)×

(४१०-४१९) हिरण्यस्तूप धाङ्गिरसः । त्रिष्टुप्, ९ जगती ।

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो	निवेश्यन्नमृतं मर्त्यं च ।	
हिरण्ययेन सविता रथेना	ऽऽ देवो याति भुवंनानि पश्यन्	२ ४१
याति देवः प्रवता यात्युदता	याति शुभ्राम्यां यजतो हरिभ्याम् ।	
आ देवो याति सविता परावतो	ऽप विश्वां दुरिता वाधमानः	३
अमीवृतं कर्शनैर्विश्वरूपं	हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।	
आस्थाद् रथं सविता चित्रभानुः	कृष्णा रजामि तविपीं दधानः	४
वि जनाञ्छयावाः श्रित्तिपादो अख्यन्	रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः ।	
शशद् विशः सवितुर्देव्यस्यो	पस्थे विश्वा भुवंनानि तस्थुः	५
तिस्रो धावः सवितुर्ना उपस्थौ	एका युमस्य भुवने विरापाट् ।	
आणि न रथ्यममृताधि तस्थु	रिह व्रवीतु य उ तधिकेत्त	६
वि सुपर्णो अन्तरिक्षापख्यद्	गभीरवेषा असुरः सुनीथः ।	
क्वेर्ददानो धर्यः कथिकेत्	कतमां धां रश्मिरस्या ततान	७
अष्टौ र्थ्यग्यन् कृद्मः पृथिव्या	सी धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।	
दिरण्याधः सविता देव आगाद्	दधद्रमां द्राशुषे वार्याणि	८ ४१

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणि—रुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।	
अपामींवां वाधते वेति मूर्यं—मुभि कृष्णेन रजसा घामृणोति	९
हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृष्टीकः स्वर्वा यात्वर्वाङ् ।	
अपसेधन् रक्षसो यातुधाना—नस्याद् देवः प्रतिद्वेषं गृणानः	१०
ये ते पन्थाः सवितः पूर्यासो जरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।	
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभ्री रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव	११ ४१९

॥ ९९ ॥ (अ० २।३८।१-११)

(४००-४२०) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) मार्गवः शौनकः। त्रिष्टुप् ।

उदु ष्य देवः सविता सुवायं शश्वत्तमं तदपा वह्निरथात् ।	
नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्न—मथामंजद् व्रीतिहोत्रं स्वस्तौ	१ ४००
विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र वाहवां पृथुपाणिः सिसर्ति ।	
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृशा अयं चिद् वातो रमते परिज्मन्	२
आशुभिश्चिद्यान् वि मुचाति नून—मरीरम्पदतमानं चिदेतोः ।	
अद्यपूर्णां चिन्नर्यां अविध्या—मनुं व्रतं सवितुमोक्यागात्	३
पुनः समन्व्यद् विततं वयन्ती मृध्या कर्तन्व्यघाच्छकम् घोरः ।	
उत् संहार्यास्याद् व्यृत्तूरदधर—रमतिः सविता देव आगात्	४
नानौकांसि दुर्यो विश्वमायु—वि तिष्ठते प्रमवः शोको अग्रेः ।	
ज्येष्ठं माता सुनवे भागमाधा—दन्वस्य केतमिपितं मविशा	५
समाववर्ति विष्टितो जिगीषु—विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।	
शश्वो अपो विकृतं हिल्व्यागा—दनुं व्रतं सवितुदैव्यस्य	६ ४०५
त्वया हितमप्यमप्सु भागे धन्वान्वा मृगयसो वि तस्युः ।	
वनांनि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुमिनन्ति	७
याद्राध्यं वरुणो योनिमप्य—मनिशितं निमिपि जश्वराणः ।	
विश्वो मार्तोण्डो व्रजमा पृथुगीत् स्यशो जन्मानि सविता व्याकः	८
न यस्येन्द्रो वरुणो न मिश्रो श्रतर्मयमा न मिनन्ति रुद्रः ।	
नारातयस्तमिदं सस्त्रि द्वे देवं सवितारं नमोभिः	९
भगं धियं वाजयन्तुः पुरंधि नराशमो प्रास्पतिर्नो अच्याः ।	
आये वामस्य संग्धे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम	१० ४०९

असम्यं तद् दिवो अद्भ्यः पृथिव्या—स्त्वया दुत्तं काम्यं राघ आ गांत ।
 शं यत् स्तोतृभ्यं आपये मवा—त्युह्यंशाय सवितर्जस्रिरे

११ ४३०

॥ १०० ॥ (ऋ० ३।६।१०-१०)X

(४३१-४३३) गाथिनो विश्वामित्रः । गायत्री ।

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात्
 देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरंध्या । भर्गस्य रातिर्मीमहे
 देवं नरः सवितारं विप्रां यज्ञैः सुवृक्तिभिः । नमस्यन्ति द्वियेपिताः

१०

११

१२ ४३३

॥ १०१ ॥ (ऋ० ४।५।३।२-७)

(४३४-४४६) वामदेवो गौतमः । जगती ।

तद् देवस्य सवितुर्वार्यं महद् वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः ।
 हृदियेन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो मह्यं उदयान् देवो अक्तुभिः
 दिवो घर्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रति मुञ्चते कृविः ।
 विचक्षणः प्रथयन्नापूणञ्चूर्त्तं जीजनत् सविता सुन्नमुक्थ्यम्
 आग्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे ।
 प्र बाहू अस्ताक् सविता सर्वाभानि निवेश्यन् प्रसुवन्नक्तुभिर्नगत्
 अदाभ्यो भुवनानि प्रचारकंश्च व्रतानि देवः सविताभि रक्षते ।
 प्रास्ताग् बाहू भुवनस्य प्रजाभ्यो धृतव्रतो महो अजमस्य राजति
 त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना श्री रजांसि परिभृत्स्त्रीणि रोचना ।
 तिस्रो दिवः पृथिवीस्तिष्ठ इन्वति त्रिभिर्वैरभि नो रक्षति त्मना
 वृहत्सुन्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्यात्तुभयस्य यो वशी ।
 स नो देवः सविता शर्मं यच्छत्वसे क्षयाय त्रिवरुथमंहसः
 आगन् देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजाभिर्षम् ।
 स नः स्रुपाभिरहंभिश्च जिन्वतु प्रजान्तं रथिमस्मे समिन्वतु

१

२ ४३५

३

४

५

६

७ ४४०

॥ १०२ ॥ (ऋ० ४।५।३।२-६) जगती, ६ त्रिष्टुप् ।

अभूद् देवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमहं उपवाच्यो नृभिः ।
 रि यो रत्ना भर्जति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत्
 देवभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्यो ऽमृतत्वं मुवामि भागवत्तमम् ।
 आदिद् दामानं मवितुर्वृणुषे ऽनृचीना जीविता मानुषेभ्यः

१

२ ४४१

अचिञ्ची यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभृती पुरुषत्वता ।	
द्वेषु च सवितुर्मार्तुपेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः	३
न प्रभिये सवितुर्दैव्यस्य तद् यथा विश्वं भुवनं चारयिष्यति ।	
यत् पृथिव्या वरिमन्ना खड्गुरिर्वर्षमन् दिवः सुवति सत्यमस्य तत्	४
इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः क्षयो एभ्यः सुवसि पुस्त्यावतः ।	
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सुवार्यं ते	५
ये ते त्रिरहन्त्सवितः सुवासो दिवेदिवे सौभंगमासुवन्ति ।	४४५
इन्द्रो धार्यापृथिवी सिन्धुरग्निरादित्यैर्नो अदितिः शर्मं यंसत्	६

॥ १०३ ॥ (ऋ० ५।८।११-५) ×

(४४७-४६०) दयावाश्व आत्रेयः । जगती ।

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपथितः ।	
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिन्दुतिः	१
विश्वो रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।	
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्यो ऽनु प्रयाणमुपसो वि राजति	२
यस्य प्रयाणमन्वन्य इद् ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।	
यः पार्थिवानि विममे स एतंशो रजांसि देवः सविता महित्वना	३
उत यांसि सवितस्त्रीणि रोचनो त सूर्यस्य रुचिमभिः समुच्यसि ।	
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मेभिः	४
उतेशिषे प्रसुवस्य न्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः ।	४५०
उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि दयावाश्वस्ते सवितुः स्तोममानये	५

॥ १०४ ॥ (ऋ० ५।८।११-९) + । गायत्री, १ अनुष्टुप् ।

तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वघातं तुं तं भगस्य धीमहि ।	
अस्य हि स्वयंशस्तरं सवितुः कचन प्रियम् । न मिनन्ति स्वराज्यम्	२
स हि रत्नानि द्राशुषे सुवार्ति सविता भगः । तं भागं चित्रमीमहे	३
अद्या नो देव सवितः प्रजावत् सावीः सौमंगम् । परां दुःष्वप्स्यं सुव	४
विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परां सुव । यद् भद्रं तन्न आ सुव	५
अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सुवे । विश्वा वामानि धीमहि	६

× ऋ. ५।८।११-३ = वा य. ५, १४; ११।४, ६; ३७, २; १२, ३ । अयं, ७, ७१, ६ (उत्तरार्धः) ।

+ ऋ. ५।८।१४-५ = वा य ३०, ३; सा. १४१ ।

आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे । सत्यमवं सविताम् ७	७
य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुञ्जन् । स्वाधीदेवः सविता ८	८
य इमा विश्वा ज्ञातान्याश्रावयति श्लोकैः । प्र च मुवाति मविता ९ ४६०	९ ४६०

॥ १०५ ॥ (ऋ० २।७१।१-६)

(४६१-४६६) वाहेस्पत्यो भरद्वाजः । जगती, ४-६ त्रिष्टुप् ।

उदु प्य देवः सविता हिरण्यया वाह अयंस्त नयनाय सुक्रतुः ।	
धृतेन पाणी अभि प्रुणुते मखो युवा मुदक्षो रजसो विषर्मणि १	१
देवस्य वयं सवितुः सर्वामनि श्रेष्ठे स्वाम वसुंश्च दावने ।	
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रमवे चामि भूमनः २	२
अदंघ्रेभिः सवितः पायुभिष्टं शिवेभिर्द्य परि पाहि नो गयम् ।	
हिरण्याजिह्वः सविताय नव्यसे रक्षा मार्किनो अघशंम ईशत ३	३
उदु प्य देवः सविता दमना हिरण्यपाणिः प्रतिदोपमस्यात् ।	
अयोहनुर्षजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् ४	४
उदु अयो उपवक्तेव वाह हिरण्यया सविता सुप्रतीका ।	
दिवो रोहांस्यरुहत् पृथिव्या अरीरमत् पतयत् कच्चिदभ्वम् ५ ४६१	५ ४६१
वाममद्य सवितवाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्ये सावीः ।	
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरि रया धिया वामभार्जः स्वाम ६ ४६६	६ ४६६

॥ १०६ ॥ (ऋ० ७।३८।१-६)

(४६७-४७६) मैत्रावरुणिसिष्ट । ६ उत्तरार्धस्य षणो वा । त्रिष्टुप् ।

उदु प्य देवः सविता ययाम हिरण्यधीममतिं यामशिथेत् ।	
नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्पि यो रत्नां पुरूरमुर्दधाति १	१
उदु तिष्ठ सवितः श्रुच्यस्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य ।	
व्युर्षीं पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तमोजनं सुजानः २	२
अपि पृतः सविता देवो अस्तु यमा चिद् विश्वे नर्मो गृणन्ति ।	
म नः स्तोमान् नमस्यथर्षेणो धाद् विश्वेभिः पात पायुभिर्नि मृरान् ३	३
अभि यं देव्यदितिगोणाति मुपं देवस्य सवितुर्गोणा ।	
अभि मन्नाजो यरुणां गृणन्त्यभि मिशामो अयमा सुजोपाः ४ ४७०	४ ४७०
अभि ये मिथो वनुषः गर्पन्ते राति द्विगो रतिपाचः पृथिव्याः ।	
अर्द्विर्ष्व उत नः गृणोतु वरुष्येर्ष्वनुमिर्नि पातु ५ ४७१	५ ४७१

अनु तन्नो जास्पतिर्मसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।

भगमग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम्

६ ४७९

॥ १०७ ॥ (ऋ० ७।४५।१-४)

आ देवो यातु मविता सुरन्नो ऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।

हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूमं

१

उदस्य घाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्ययां दिवो अन्ता अनष्टाम् ।

नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट खरंश्चिदस्मा अलु दादपस्याम्

२

स वा नो देवः सविता सुहावा ऽऽ साविपद् वसुपतिर्वधनि ।

विश्रयमाणो अमतिमुरूची मर्तभोजनमघं रासते नः

३

४७५

इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगमस्तिमीळते सुपाणिम् ।

चित्रं वयो बृहदुसे दधातु यूतं पात स्वास्तिभिः सदां नः

४

४७६

॥ १०८ ॥ (ऋ० १०।१३९।१-३)

(४७७-४७९) देवगन्धर्वो विश्वाचसुः । त्रिष्टुप् ।

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात् सविता ज्योतिरुदयो अर्जसम् ।

तस्य पूषा प्रसवे याति विद्रान्तसंपद्यन् विश्वा भुवनानि गोपाः

१

नृचक्षा एष दिवो मध्यं आस्त आपश्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।

स विश्वाचीरभि चष्टे घृताचीं रन्तरा पूर्वमपरं च केतुम्

२

रायो युध्नः संसर्पन्तो वसून्तां विश्वा रूपाभि चष्टे रुचीभिः ।

देव इव सविता सत्यधर्मोन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम्

३

४७९

॥ १०९ ॥ (ऋ० १०।१४९।१-५)

(४८०-४८४) अर्चन् हिरण्यस्नूपः । त्रिष्टुप् ।

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णा दस्कम्भने सविता धामदंहत् ।

अश्वमिवाधुक्षद्वनिमन्तरिक्षं मत्तुं वद्धं सविता संमुद्रम्

१

४८०

यत्रा समुद्रः स्क्रभितो व्यौन् दर्पा नपात् सविता तस्य वेद ।

अतो भरतं आ उत्थितं रजो ऽतो चावापृथिवी अग्रथेताम्

२

पश्वेदमन्यदभवद् यजत्रं मर्मर्त्यस्य भुवनस्य भूना ।

सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गुरुमान् पूर्वो ज्ञातः स उ अस्यानु धर्मं

३

४८१

गावँ हव प्रांसं यूयुधिरिवाश्वान् वाश्रेवं वत्सं सुमना दुहाना ।
 पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः ४
 हिरण्यस्तूपः सवितुर्थथा त्वा ऽऽङ्गिरसो जुह्वे वाजं असिन् ।
 एवा त्वाचैन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम् ५ ४८४

॥ ११० ॥ (४८५-५१६) (वा० य० १।१०, ३१)+

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् १० ४८५
 सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
 सवितुर्वैः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ३१ ४८६

॥ १११ ॥ (वा० य० ४।४, २५)*

चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मां सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण
 सूर्यस्य रश्मिभिः ।

तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छक्रेयम् ४
 अभि त्वं देव ऽसवितारमोण्योः कृचिक्रतुमर्चामि सत्यसंवत् रत्नधामभि प्रियं मतिं कृषिम् ।
 ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सर्वीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुकतुः कृपा स्वः २५ ४८८

॥ ११२ ॥ (वा० य० ५।३९)

देवं सवितुरेप ते सोमस्तत् रक्षस्व मा त्वा दमन् ।
 एतत् त्वं देव सोम देवो देवाँर उपांगा इदमहं मनुष्यान्तसह रायस्पोषेण स्वाहा ३९ ४८९

॥ ११३ ॥ (वा० य० ८।७)

उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्वनोधा असि चनो मयि धेहि ।
 जिन्वं यज्ञं जिन्वं यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ७ ४९०

॥ ११४ ॥ (वा० य० ९।१; ११।७, ३०, १)x

देवं सवितुः प्रमुवं यज्ञं प्रमुवं यज्ञपतिं भगाय ।
 द्विष्यो गन्धर्वाः केतूपः केतं नः पुनातु वाचस्पतिवर्जं नः स्वदतु स्वाहा १ ४९१

+ वा० य० १।११, ५४; २।११; ५।१०, ३६; ६।१, ९, ३०; ९।३०, ३८; १०।६; ११।९, १८, १८।३७, ३०।३; २१।१
 ३७, ३; ३८।६। अथर्व १९।५१, १० ।

• अथर्व. ७।१४।१-२ । वा० ४६४ ।

x वा० य० ९.५; १८, ३० = दे० [अदिनि०] १६ ।

	॥ ११५ ॥ (वा० य० १०,५; ०८) ×		
सवित्रे स्वाहा ॥ ५ ॥	सवितारिं सत्यप्रंसवः	२८	४९३
	॥ ११६ ॥ (वा० य० ११,१-३,८,११,१३)		
युञ्जानः प्रथमं मनस्तुच्चार्य सविता धियः ।			
अग्नेज्योतिर्निचाय्यं पृथिव्या अध्याभरत्		१	
युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सुवे । स्वर्ग्याय शक्त्या		२	४९५
युक्त्वायं सविता देवान्स्वैर्यतो धिया दिवम् ।			
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्		३	
इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवान्पृथुः सखिविदेः सत्राजितं घनजितं स्रजितम् ।			
ऋचा स्तोमः समर्थय गायत्रेण रथन्तरं बृहद्रायिष्वर्त्तनि स्वाहा		८	
हस्तं आघार्य सविता विभ्रदभ्रिः हिरण्ययीम् ।			
अग्नेज्योतिर्निचाय्यं पृथिव्या अध्याभरत्		११	
देवस्त्वा सवितोद्वपत् सुपाणिः स्वङ्कुरिः सुघाहुरुत शक्त्या ।			
अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश आपृण		६३	४९९
	॥ ११७ ॥ (वा० य० १७,१७)		
ताः सवितुर्वरंण्यस्य चित्रामाहं वृणे मुमति विश्वजंन्याम् ।			
यामस्य कण्ठो अदुहत् प्रपीनाः महस्रघारां पर्यसा मही गाम्		७४	५००
	॥ ११८ ॥ (वा० य० १९,१३)		
उभाम्यां देव सवितः पवित्रेण मवेन च । मां पुनीहि विश्वतः		४३	५०१
	॥ ११९ ॥ (वा० य० २०,७०) ॥		
य इन्द्रं इन्द्रियं दुधुः सविता वरुणो भगः । स सुत्रामां द्रविष्यतिर्यजमानाय सद्यत् ७०		५०२	
	॥ १२० ॥ (वा० य० २१,११)		
शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम् ।			
ककुप् छन्द इहेन्द्रियं वशा वेहद्रयो दुधुः		२१	५०३
	॥ १२१ ॥ (वा० य० २०,११-१२)		
देवस्य चेततो मही प्र सवितुर्हवामहे । सुमतिः सत्यराभसम्		११	
सुष्टुतिः सुमतीयुषो रतिः सवितुरीमहे । प्र देवार्य मतीविदे		१२	५०५

रातिः सत्पतिं महे संवितारमुषं ह्वये । आसवं देवर्वातये	१३
देवस्य संवितुर्मतिमासवं त्रिश्वदेव्यम् । धिया भर्गं मनामहे	१४ ५०३
॥ १२५ ॥ (वा० य० ३०।४)	
विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधंसः । सवितारं नृचक्षसम्	४ ५०८
॥ १२३ ॥ (वा० य० ३५।२-३,५)	
सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्याँल्लोकमिच्छतु । तस्मै युज्यन्तामुस्त्रियाः	२
सविता पुनातु	३ ५१०
सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ आ वंपतु । तस्मै पृथिवि शं भव	५ ५११
॥ १२४ ॥ (वा० य० ३७।११-१२;१४-१५)	
देवस्त्वां सविता मध्वानक्तु ।	११
सुपदां पश्चाद् देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मं दाः	१२
गर्भो देवानां पिता मंतीनां पतिः प्रजानाम् ।	
सं देवो देवेन सवित्रा गतु सः सूर्येण रोचते	१४
समग्निरग्निना गतु सं देवेन सवित्रा सः सूर्येणारोचिष्ट ।	
स्वाहा समग्निस्तर्पसा गतु सं दैव्येन सविता सः सूर्येणारुरुचत	१५ ५१५
॥ १२५ ॥ (३८।८)	
सवित्रे त्वं ऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा	८ ५१६
॥ १२६ ॥ (अथर्व० १।१८।३ + (५१७) द्रविणोदाः । चिराद्वास्तारपद्किल्लिष्टुप् ।	
यत् तं आत्मानि तन्वाँ धोरमस्ति यद् वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा ।	
सर्वं तद् वाचार्प हन्मो वयं देवस्त्वां सविता सृदयतु	३ ५१७
॥ १२७ ॥ (अथर्व० ५।२४।१) (५१८-५२४) अथर्वा । चतुष्पदाऽतिशकरी ।	
सविता प्रंसवानामधिपतिः स मांयतु ।	
असिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्वामस्यामाकू- त्यामस्यामाधिप्यस्यां देवहृत्यां स्नाहा	१ ५१८

॥ १२८ ॥ (अथर्व० ६।१।१-३)

उष्णिक्, १ त्रिपदा पिपीलिकमध्या साम्नी जगती, २-३ पिपीलिकमध्या पुर उष्णिक् ।
 दोषो गाय बृहद् गाय धुमद् घेहि । आथर्वेण स्तुहि देवं संवितारम् १
 तम्यं षुहि यो अन्तः सिन्धोँ सुनुः । मृत्यस्य युवानमद्रोषवाचं सुशेवंम् २ ५२०
 स धा नो देवः संविता साविपद्रुमृतानि भूरि । उभे सुपृती सुगारवे ३ ५०१

॥ १२९ ॥ (अथर्व० ७।१४।३-४) +

३ त्रिष्टुप्, ४ जगती ।

सावीर्हि देव प्रथमार्य पित्रे वर्ष्माणमसै वरिमाणमसै ।
 अयास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवोर्दिव आ सुवा भूरि पश्वः ३
 दमूना देवः संविता वरेण्यो दधद् रत्नं दक्षं पितृभ्य आयूषि ।
 पिवात् सोमं ममर्देदेनमिष्टे परिज्मा चित् क्रमते अस्य घर्षणि ४ ५२३

॥ १३० ॥ (अथर्व० १९।१६।१) अनुष्टुप् ।

असपत्नं पुरस्तात् पश्चाच्चो अमयं कृतम् ।
 सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः १ ५२४

॥ १३१ ॥ (अथर्व० ५।६५।१०)

(५०५-५०६) ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
 पुमांसं पुत्रमा घेहि दशमे मांसि सूर्त्वे १२ ५२५

॥ १३२ ॥ (अथर्व० ५।१६।२) द्विपदा प्राजापत्या बृहती ।

युनक्तु देवः संविता प्रज्ञानन्नस्मिन् युजे महिपः स्वाहा ३ ५२६

॥ १३३ ॥ (अथर्व० ७।१६।१)

(५२७) मृगः । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पते सर्वितर्वर्धयेनं ज्योतयेनं महते सौरगाय ।
 संशितं चित् संतरं सं शिशाधि विश्वं एनमनुं मदन्तु देवाः १ ५२७

॥ १३४ ॥ (अथर्व० १०।५।१३)

(५०८) सिन्धुर्वाह । वर्ष्माणमसै ।

देवसं सवितुर्माग स्य । अपां शुक्रमारो देवैर्विचो वृन्तुं वृत् ।
 प्रजापतेर्वो घाम्नास्मै लोकार्यं मादये

सवितृ-सहचारी देवगणः ।

(१) सवित्राद्याः ।

॥ १३५ ॥ (५१९-५३०) (वा० य० १०।३०)

सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूषणा
पृथुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाग्निना
तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसृतः प्रसर्पामि

३० ५१९

(२) सवित्रादयः ।

॥ १३६ ॥ (वा० य० ३९।६)

सविता प्रथमेऽहन्नग्निद्वितीये वायुस्तृतीये आदित्यश्चतुर्थे
चन्द्रमाः पञ्चम ऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे ।
मित्रो ननुमे वरुणो दशम इन्द्रं एकादशे विश्वे देवा द्वादशे

६ ५२०

(३) इन्द्रः, भगः, सविता ।

॥ १३७ ॥ (अथर्व० १।२६।२)

(५३१) ब्रह्मा । त्रिपदा एकावसाना सास्त्री त्रिष्टुप् ।

सत्त्वाभावस्मभ्यमस्तु रातिः सखेन्द्रो भगः सविता चित्रराधाः

२ ५३१

(४) सविता, आदित्याः, रुद्राः, वसवः ।

॥ १३८ ॥ (अथर्व० ६।६८।१)

(५३०) अथर्वा । पुरो विराटतिशाकरगर्भा चतुष्पदा जगती ।

आपमगन्तमविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदुकेनेहि ।
आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसुः सोमस्य राज्ञो वपत् प्रचेतसः

१ ५३१

(५) बृहस्पतिः सविता मित्रोऽर्यमा भगोऽश्विनौ ।

॥ १३९ ॥ (अथर्व० ६।६०।१)

(५३६) उच्छोचन । अनुष्टुप् ।

मुदानं वो बृहस्पतिः मुदानं मविता करत् ।

मुदानं मित्रो अर्यमा मुदानं भगो अश्विनौ

१ ५३१

(५) सूर्यः ।

॥ १४० ॥ (ऋ० १।५०।२-२३) *

(५३४-४६) प्रस्कण्वः काण्वः । गायत्री, १०-२३ अनुष्टुप् ।

उदु त्पं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वायु सूर्यम्	१	
अप त्पे तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूर्याय विश्वचक्षमे	२	५३५
अदृशमस्य केतवो वि रश्मयो जना अर्तु । आजन्तो अग्रयो यथा	३	
तरणिं विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम्	४	
प्रत्यङ् देवानां विश्वः प्रत्यङ्ङुदेषि मालुपान् । प्रत्यङ् विश्वं स्वदेशे	५	
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जना अर्तु । त्वं वरुण पश्यसि	६	
वि घामेषि रजस्पृथ्व हा मिमानो अक्तुभिः । पश्यन्नमानि सूर्य	७	५४०
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण	८	
अयुक्त सप्त शुन्ध्यवः सरो रथस्य नृपत्यः । तामिर्वाति स्वयुक्तिभिः	९	
उदु वयं तमसपरि ज्योतिष्पश्यन्त उचरम् । देवं देवत्रा सूर्य मगन्म ज्योतिरुत्तमम् १०		
उद्यन्नध मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् । हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ११		
शुकैषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दधमसि । अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदधमसि १२		५४५
उदगादुयमादित्यो विश्वेन सहसा सह । द्विपन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विपते रंघम् १३		५४६

॥ १४१ ॥ (ऋ० १।२१।२-६) +

(५४७-५९) कृत्स्न आङ्गिरसः । त्रिष्टुप् ।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणभ्यामेः ।		
आप्रा घावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्ये आत्मा जगत्स्तस्युपयथ	१	
सूर्यो देवीमुपसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पृथात् ।		
यत्रा नरो देव्यन्तो युगानि वितन्ते प्रति मद्राप्य मद्रम्	२	
मद्रा अश्वा हरितुः सूर्यस्य चित्रा एतग्ना अनुमार्धासः ।		
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्युः परि घावापृथिवी यन्ति मद्यः	३	५४८

* ऋ० १।५०।२-१०, १२-२३ = वा० य० ७, ४१, ८, ४०-४१, ४०, ४१, ८७, १०, ३३, ३१-३०, ३६, ३५, १४, ३८, ३८, ३९, ३९, ६३३-६४० । अथर्व० १।४२, ४, १३, २, १६, २४, १७, १, ४०, ४१, १३-२२ । ऋ० १।५०।२-१३ = दे० [आयुर्वेद०] ५, ४५-४७ ।

+ ऋ० १।२१।२-४, ४-६ = वा० य० ७, ४२, ६३, ४६, ३३, ३७-३८, ४० । अथर्व० १।३, ४, ४५, ९०, १०७, १४४-१५, १५३, १-७ । सा० ६२९ ।

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्वितं सं जभार । यदेदयुक्त हरितः सधस्यादाद् रात्री वासस्तनुते सिमस्मै तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणते धोरुपस्थे । अनन्तमन्यद् रुद्रदस्य पाजः कृष्णमन्यद्हरितः सं भ्ररन्ति अथा देवा उदित्ता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवघात् । तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता मर्दितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः	४	५१०
॥ १४२ ॥ (ऋ० १।१६४।४४-४७) × (५५३-५४) दीर्घतमा औचथ्यः । त्रिष्टुप् । इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति त आववृत्रन्त्सदेनाहृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते	४६	५५४
॥ १४३ ॥ (ऋ० ४।४०।५) + (५५५) वामदेधो गौतमः । जगती । हंसः शुचिपद् वसुरन्तरिक्षसद्भोता वेदिपदतिथिर्दुरोणसत् । नृपद् वरसहृतसद् व्योमसद्बजा गोजा ऋतजा अद्विजा ऋतम्	५	५५५
॥ १४४ ॥ (ऋ० ५।४०।५) (५५६) अग्निर्भोम । । अनुष्टुप् । यत् त्वां सूर्यं स्वर्मानुस्तमसाविध्यदासुरः । अथैत्रविद् यथा मुग्धो भुव्नानान्यदीधयुः	५५६	
॥ १४५ ॥ (ऋ० ७।६०।१) (५५७-५६७) मैत्राचक्षणिर्वसिष्ठ । त्रिष्टुप् । यदद्य सूर्यं ब्रवोऽनागा उद्यन् मित्राय वरुणाय सत्यम् । व्यं देवत्रादिते स्याम् तव प्रियामो अर्यमन् गृणन्तः	१	५५७
॥ १४६ ॥ (ऋ० ७।६२।१-३) उत् सूर्यो बृहदुचींष्यथेत् पुरु विश्वा जनिम् मातुंषाणाम् । ममो दिवा ददृशे रोचमानः ऋत्वा कृतः सुकृतः कर्त्तुभिर्भूत् स सूर्यं प्रति पुरो न उद् गा एभिः स्तोमैभिरेतथेभिरेवैः । प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागतो अर्यम्णे अमर्ये च	१	५५९

वि नः सहस्रं शुरुषो रदन्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानीः ३ ५६०

॥ १४७ ॥ (ऋ० ७।६।१-४)

उद्वेति सुमगो विश्वक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् ।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मैव यः समविष्यत् तमांसि १
उद्वेति प्रसवीता जनानां महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य ।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन् यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः २
विभ्राजमान उपसांपुपस्याद् रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ।
एष मे देवः संविता चच्छन्दु यः समानं न प्रमिनाति धामं ३
दिवो रुक्म उरुकक्षा उद्वेति दुरैर्यस्तुरणिभ्राजमानः ।
नूनं जनाः सूर्येण प्रसृता अयन्नर्थानि कृणवन्नर्पांसि ४ ५६४

॥ १४८ ॥ (ऋ० ७।६।१४-१६) +

प्रगाथः = (समा वृहती + विपमा सतोवृहती) १६ पुर उष्णिक् ।

उद्दु त्यद् दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे ।
यदीमाशुर्वहति देव एतेशो विश्वस्मै चक्षसे अरम् १४ ५६५
शीर्ष्णाःशीर्ष्णो जगतस्तुस्थुपस्पतिं सुमया विश्वमा रजेः ।
सप्त स्वसारःसुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे १५
तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुचरत् । पश्येम श्रुदः श्रुतं जीवेम श्रुदः श्रुतम् १६ ५६७

॥ १४९ ॥ (ऋ० ८।१०।१।१-१२) ×

(५६८-६९) जमदग्निर्भागवः । प्रगाथः = (विपमा वृहती + समा सतोवृहती)

वणमहो असि सूर्यं चक्रादित्य महो असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यते ऽद्वा देव महो असि ११
वद् सूर्यं थवसा महो असि सत्रा देव महो अग्नि ।
मृहा देवानामसूर्यः पुरोहितो विश्व ज्योतिरदाभ्यम् १२ ५६९

+ ऋ० ७।६।१६ = वा० य० ३६, २४ ।

× वा० य० ३३, ३९-४० । अथर्व० १३, २, २९; २०, ५८, ३-४ । सा० २७६, १७८८-८९ ।

॥ १५० ॥ (अ० १०३७१-१२) ×

(५७०-८१) सौर्योऽभितपाः । जगती, १० त्रिष्टुप् ।

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं संपर्यत ।	
दुरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पत्राय सूर्याय शंसत	१ ५७०
सा मां सत्योक्तिः परिं पातु विश्वतो धावां च यत्र ततन्नहानि च ।	
विश्वमन्यन्नि विश्वते यदेजति विश्वाहाऽऽपो विश्वाहोदेति सूर्यः	२
न ते अदेवः प्रदिशे नि वांसते यदेतशेभिः पतरै रथर्यासि ।	
प्राचीर्नमन्यदनुं वर्तते रज्ज उदुन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य	३
येन सूर्य ज्योतिषा चार्धसि तमो जगच्च विश्वमुदियापि भानुना ।	
तेनासद् विश्वामर्निरामनाहुति मपार्मावामप दुष्प्वच्यै सुव	४
विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रत महैक्यन्नुचरसि स्वधा अनु ।	
यदुद्य त्वा सूर्योपत्रवामहे तं नो देवा अनु मंसीरत क्रतुम्	५
तं नो धावापृथिवी तन्न आप इन्द्रः शृण्वन्त मरुतो हवं वचः ।	
मा शूने भूम सूर्यस्य संदृशि मद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि	६ ५७५
विश्वाहां त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः ।	
उद्यन्तं त्वा मित्रमहो द्विवेदिशे ज्योग् जीवाः प्रति पश्येम सूर्य	७
महि ज्योनिर्विभ्रंतं त्वा विचक्षण भास्वन्तं चक्षुषेचक्षुषे मर्या ।	
आरोहन्तं बृहत्तः पार्जसुस्परि वयं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य	८
यस्य ते विश्वा सुवनानि केतुना प्र चेरते नि च विशन्ते अक्तुभिः ।	
अनागास्त्वेन हरिकेज सूर्याऽऽह्वा नो वस्यंसावस्यसोदिहि	९
शं नो मय चक्षसा शं नो अह्वा शं भानुना शं हिमा शं घृणेन ।	
यथा श्वमघ्नच्छमसद् दुराणे तत् सूर्यं द्रविणं धेहि चित्रम्	१०
अस्माकं देवा उमयापु जन्मन्तं शर्म यच्छत द्विपदे चतुस्पदे ।	
अदत् पिचदृर्जयमानमाशितं तद्रुम्भे शं योररपो दधातन	११ ५८०
यद् वां देवाथकृम जिह्वा गुरु मनसो वा प्रपुंठी देवहेळनम् ।	
मरावा यो नो अमि दृच्छुनापते तस्मिन् तदेनो वसवो नि धेतन	१२ ५८१

॥ १५१ ॥ (ऋ० १०।१५।१-५)

(५८९-८६) चक्षुः सौर्यः । गायत्री, २ स्वरत् ।

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात् । अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः	१
जोषां सवितर्यस्य ते हरः शतं सुवाँ अर्हति । पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः	२
चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः । चक्षुर्वाता दधातु नः	३
चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विर्यं तनूम्यः । सं चेदं वि च पश्येम	४ ५८५
सुसंदृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य । वि पश्येम नृचक्षुसः	५ ५८६

॥ १५२ ॥ (ऋ० १०।१७।१-४) ७

(५८७-९०) विश्राद् सौर्यः । जगती, ४ आत्तारपङ्क्तिः ।

विश्राद् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधन्नपनावावर्हुतम् ।	
वातेज्जतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुषोप पुरुषा वि राजति	१
विश्राद् बृहत् सुभृतं वाजसातमं धर्मेन् दिवो ध्रुवो सत्यमर्षितम् ।	
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहंतमं ज्योतिर्जने असुरहा संपन्नहा	२
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद् धनजिदुच्यते बुद्धि ।	
विश्वभ्राद् भ्राजो महि सूर्यो ह्य उरु पप्रये सह आजो अच्युतम्	३
विश्राज्ज्योतिषा स्वर्गच्छो रोचनं दिवः ।	
येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता	४ ५९०

॥ १५३ ॥ (५९१-६०९) (चा० य० १।११)

मूतार्यं त्वा नारातये स्वरभिविर्येषुं दृशन्तां दुयांः पृथिव्यामुर्व्वन्तरिक्षमन्वेमि ।	
पृथिव्यास्त्वा नामाँ सादयाम्यर्दित्या उपस्येऽग्ने हव्यश् रस	११ २९१

॥ १५४ ॥ (चा० य० २।२६) ×

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिवंचोदा अमि वचीं मे देहि । सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते	२६ २९२
---	--------

॥ १५५ ॥ (चा० य० ३।१,९-१०)

भूर्ध्रुवः सूर्वाँरिव मूसा पृथिवीव वरिम्णा ।	
तसास्ते पृथिवि देवयजनि पूष्टेऽमिर्मन्नादमन्नाद्यायादधे	५ ५९३

× ऋ० १०, १७०, १-३ = वा० य० ३३, ३०; सा० ६१८, १४५३-१४५५

× वा० य० १।२६ (वल्लार्पः) = अयव० १८, ५, ३७ (८); वा० य० २।२७

सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा । सूर्यो वचो ज्योतिर्वचः स्वाहा ।	
ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा	९
सज्जुदेवेन सवित्रा सज्जुरुपसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा	१० ५९५
॥ १६५ ॥ (वा० य० ११३३)	
अध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पृथि देवयाने भूयात्	३३ ५९६
॥ १५७ ॥ (वा० य० ८४०)	
अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँर अतु । ब्राजन्तो अग्रयो यथा ।	
उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा ब्राजायैपते योनिः सूर्याय त्वा ब्राजायै ।	
सूर्यं ब्राजिष्ठ ब्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि ब्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम्	४० ५९७
॥ १५८ ॥ (वा० य० ११५८) ×	
परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्टे ज्योतिष्मतीम् ।	
विश्वस्मै प्राणायानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।	
सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद	५८ ५९८
॥ १५९ ॥ (वा० य० २०१६, २१) +	
यद्वि जाग्रदादि स्वप्न एनांशसि चक्रमा वृषम् ।	
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व हंसः	१६
उद्वयं तमसस्पति स्तुः पश्यन्त उत्तरम् ।	
देवं देवत्रा सूर्यमर्गन्म ज्योतिरुत्तमम्	२१ ६००
॥ १६० ॥ (वा० य० ३३१३३-३५, ४१) •	
देव्यावध्वर्य आ गंतु रथेन सूर्यत्वचा । मध्वा यज्ञुः समञ्जाथे	३३
आ न इडाभिविदये सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।	
अपि यथा पुवानो मत्संथा नो विश्वं जगदभिवित्त्वे मनीषा	३४
यदुद्य कर्त्तु वृग्रहद्गदा अभि सूर्ये । सूर्ये तदिन्द्र ते वरे	३५
धायन्त इव सूर्ये विश्वेदिन्द्रस्य मद्यत ।	
पयानि जाते जर्नमान् ओजसा प्रति भागं न दीधिम्	४१ ६०४

• वा० य० ८४१ । × वा० य० १२, ४३ = २० [अति०] ५०१ मन्त्र दृष्टव्यः ।

+ वा० य० २०१६ = अथर्ववेदे (६, १, १५१-२) पाठभेद अथर्व, तथा च वा० य० २०१२, २३, १०, ३५, १४, १८, १९
= अ० १, ८०१, ० अथर्व = ७, ५, १, ३ पाठभेदेन च दृश्यते ।

• वा० य० ३३, १५, ४१ = २० [इन्द्रः] ६४३३, ६३७८ ।

॥ १६१ ॥ (वा० य० ३६।९, २४) ×

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वयमा ।

शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुक्कमः

९ ६०५

तच्चक्षुर्देवाहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।

पश्येम श्रदः शतं जीवेम श्रदः शतं शृणुयाम श्रदः शतं प्र व्रवाम श्रदः

शतमदीनाः स्याम श्रदः शतं भूयश्च श्रदः शतात्

२४ ६०६

॥ १६२ ॥ (वा० य० ३७।१६-१८)

धृता दिवो वि माति तपसस्पृथिव्यां धृता देवो देवानामर्मर्त्यस्तपोजाः ।

वाचमसे नि यच्छ देवायुर्वम्

१६

अपदयं गोपामनिपद्यमानमा च परां च पृथिभिश्वरन्तम् ।

स सध्रीचीः स विपूचीर्वसान् आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः

१७

विश्वासां भुवां पते विश्वस्य मनसस्पते विश्वस्य वचसस्पते सर्वस्य वचसस्पते ।

देवश्रुचं देव धर्म देवो देवान् पाह्यन्न प्रावीरनुं वां देववीतये ।

मधु माध्वीभ्यां मधु माध्वीभ्याम्

१८ ६०९

॥ १६३ ॥ (अथर्व० १।३।५)

(६१०-६२०) अथर्वा । पथ्यापङ्क्तिः ।

विन्ना शरस्यं पितरं सूर्यं शतघृण्यम् ।

तेना ते तन्वेष्टुं शं करं पृथिव्यां तै निपेचनं वृहिष्टै अस्तु वालिति

५ ६१०

॥ १६४ ॥ (अथर्व० २।२।१-५)

[एकावसानम्] १-४ निचृद्विपमा गायत्री, ५ सुरिगिपमा ।

सूर्यं यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

१

सूर्यं यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

२

सूर्यं यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्चं योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

३

सूर्यं यत् तै शोचिस्तेन तं प्रति शोचं योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

४

सूर्यं यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

५

६१५

॥ १६५ ॥ (अथर्व० ५।२४।९) चतुष्पदाऽतिशकरी ।

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स भावतु ।

अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोघायामस्यां प्रतिष्ठायां मस्यां चित्र्यां मस्यामा-
कृत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा । ९ ६१६

॥ १६६ ॥ (अथर्व० ७।१३।१-२) अनुष्टुप् ।

यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विपतां वर्च आ ददे ।
यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ ।

उद्यन्तसूर्ये इव सुप्तानां द्विपतां वर्च आ ददे २ ६१८

॥ १६७ ॥ (अथर्व० १९।१७।५) अतिजगती ।

सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्यां दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिन् लूये तां पुरं प्रेमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा । ५ ६१९

॥ १६८ ॥ (अथर्व० १९।१८।५) सम्राडाच्यंनुष्टुप् ।

सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवं प्रतीच्यां दिशोऽभिदासात् ५ ६२०

॥ १६९ ॥ (अथर्व० १९।१९।३) भुरिगृहती ।

सूर्यो दिवोर्दक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।

तामा विंशतु तां प्र विंशतु सा वः शर्मं च वर्मं च यच्छतु ३ ६२१

॥ १७० ॥ (अथर्व० १९।२३।२७) देवी पङ्क्तिः ।

सूर्याभ्यां स्वाहा २४ ६२२

॥ १७१ ॥ (अथर्व० २।३६।५)

(६२३) पतिवेदनः । अनुष्टुप् ।

मगस्य नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम् । तयोपप्रतारस्य यो वरः प्रतिक्राम्यः ५ ६२३

॥ १७२ ॥ (अथर्व० ४।४०।७)

(६२४) नृक्रः । त्रिष्टुप् ।

य उपरिष्ठाज्जुहति जातवेद ऊर्ध्वायां दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।

सूर्यं मत्वा ते परांश्वो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसुरेणं हन्मि ७ ६२४

॥ १७३ ॥ (अथर्व० ६।५१।१)

(६२५) मागतिः । अनुष्टुप् ।

उत्सूर्यो दिव णंति पुरो रक्षांसि निजूर्वेन् ।

आदित्यः पर्वेनेभ्यो विश्वरटो अट्टहा १ ६२५

॥ १७४ ॥ (अथर्व० १६।१।३-४)

(६२६-२७) यमः । ३ साम्नी पङ्क्तिः, ४ परोष्णिक् ।

अगन्म स्वः^१ स्वः^२रिगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिपागन्म

३

वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिपीय वसुमान् भूयासं वसु मरियं धेहि

४ ६२७

॥ १७५ ॥ (साम० ४५८)

(६२८) गौराङ्गिरसः । अतिजगती (अष्टिर्वा) ।

^{३३} अयं ^{३२} सहस्रमानवो ^{३१} दृशः ^{३०} कवीनां ^{२९} मतिज्योतिर्विधर्म ।

^{३२} ब्रह्मः ^{३१} समीचोरुपसः ^{३०} सभैरयदरेपसः । ^{२९} सचेतसः ^{२८} स्वसरं ^{२७} मन्द्युमन्तश्चिता गोः

२ ६२८

॥ १७६ ॥ (साम० १७९०-९२) × सुकक्ष आङ्गिरसः । गायत्री ।

सूर्य-सहचारी देवगणः ।

(१) सूर्यः पर्जन्यामयो वा, सरस्वान् सूर्यो वा ।

॥ १७७ ॥ (ऋ० १।१६४।५१-५२)

(६२९-३०) दीर्घतमा औच्ययः । ५१ अनुष्टुप्, ५२ त्रिष्टुप् ।

समानमेतद्दुदकमुच्चैत्यवु चार्हभिः ।

भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्रयः

५१

दिव्यं सुपर्णं वायुसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोर्षधीनाम् ।

अभीपतो वृष्टिभिस्तुपर्यन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि

५२ ६३०

(२) सूर्यमित्रावरुणाः ।

॥ १७८ ॥ (ऋ० ७।६३।५)

(६३१) मैत्रावरुणिर्षसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

यत्रा चक्रुरमृतां गातुर्मस्मै श्येनो न दीपन्नन्वेति पार्थः ।

प्रति वां हर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हन्यैः

५ ६३१

(३) सूर्याविवाहः ।

॥ १७९ ॥ (ऋ० १०।८।५।६-१६)

(६३२-५८) सावित्री सूर्या ऋषिका । अनुष्टुप्, १४ त्रिष्टुप् ।

रैभ्यांसीदनुदेर्या नाराशंसी न्योचनी ।

सूर्यायां मद्रामिद् वामो गार्धर्येति परिष्कृतम्

६ ६३२

चित्तिरा उपवर्हणं चक्षुरा अम्यङ्गनम् ।	
धौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम्	७
स्तोमा आसन् प्रतिघयः कुरीरं छन्द ओपशः ।	
सूर्यायां अश्विना वरा ऽभिरासीत् पुरोगवः	८
सोमो वधुयुरभव दुश्विनास्तामुभा वरा ।	
सूर्या यत् पत्ये शंसन्ती मनसा सविताददात्	९ ६३१
मनो अस्या अन आसीद् धौरासीद्दुत च्छदिः ।	
शुक्रावनुद्वाहावास्तां यदयात् सूर्या गृहम्	१०
ऋक्सामाम्यामभिहितौ गावो ते सामनावितः ।	
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां द्विवि पन्थाश्चराचरः	११
शुचीं ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।	
अनो मनस्ये सूर्या ऽऽरोहत् प्रयती पतिम्	१२
सूर्यायां वहतुः प्रागात् सविता यमवासुजत् ।	
अघासु हन्यन्ते गावो ऽर्जुन्योः पयुंक्षते	१३
यदश्विना पुच्छमानावयाते त्रिचक्रेण वहतं सूर्यायाः ।	
विश्वे देवा अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितराववृणीत पूषा	१४ ६४०
यदयातं शुमस्पती वरेयं सूर्यामुप । कैकं चक्रे वामासीत् कं देप्रायं तस्यधुः	१५
द्वे तं चक्रे सूर्ये ब्रह्माणं ऋतुया विदुः ।	
अथैकं चक्रे यद् गृहा तदद्भ्रातय इद् विदुः	१६ ६४२

(४) सूर्या-सावित्री ।

॥ १८० ॥ (ऋ० १०।८।५।३२-४७)

अनुष्टुप्, ३४ उरोवृहती, ३६-३७, ४४ त्रिष्टुप्, ४३ जगती ।

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दंपती ।	
सुगेभिर्दुर्गमतीता मप द्रान्त्वरांतयः	३२
सुमङ्गलीरियं वधू रिमां समेतु पश्यत ।	
सौमाग्यमस्यै दुत्वाया ऽथास्तं वि परेतन	३३
तृष्टमेवत् कर्डकमेत दपाष्टवद् विपवश्चैतदर्चवे ।	
सूर्या यो ब्रह्मा विघात स इद् वार्धुयमर्हति	३४ ६४५

आशंसनं विशसनं मर्यो अधिविकर्षनम् ।	
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्वति	३५
गृह्णामि ते सौमगुत्वाय हस्तं मया पत्यां जरदप्रियथासः ।	
मर्गो अर्युमा संविता पुरंधि मर्हं त्वाद्गर्हाहंपत्याय देवाः	३६
तां पूषच्छिवतंमाभेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्याइं वर्पन्ति ।	
या नं ऊरू उंशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहराम शेप्य	३७
तुभ्यमग्रे पर्यवह न्सूयां बंहतुनां सह ।	
पुनः पतिभ्यो ज्ञायां दा अग्ने प्रजयां सह	३८
पुनः पत्नीमग्निर्ददा दायुंषा सह वर्चसा ।	
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम्	३९ ६५०
सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविदु उत्तरः ।	
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः	४०
सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो दददुभयै ।	
रयिं च पुत्रांश्चादा दुभिर्मह्यमर्यो इमाम्	४१
इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यंश्रुतम् ।	
क्रीळन्तो पुत्रैर्नमृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे	४२
आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वयमा ।	
अर्हुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश्वां शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे	४३
अघौरक्षुरपतिभ्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।	
वीरुद्वेवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे	४४ ६५५
इमां त्वमिन्द्र मीद्वः सुपुत्रां सुमगां कृणु ।	
दशास्यां पुत्राना वैहि पतिभेकादुशं कृधि ।	४५
सुभ्राह्मी शशुरे भव सुभ्राह्मीं शश्र्वां भव ।	
ननान्दरि सुभ्राह्मीं भव सुभ्राह्मी अर्धि देवृषु	४६
समञ्जन्तु विश्वं देवाः समापो हृदयानि नी ।	
सं मातरिश्वा सं घाता समु देष्ट्रीं दघातु नी	४७ ६५८

[५] सूर्य-वैश्वानरोऽग्निः ।

॥ १८१ ॥ (क्र० १०१८०१-१९)

(६५९-७७) आङ्गिरसो मूर्धन्वान्, वामदेव्यो धा । त्रिष्टुप् ।

हविष्पान्तमजरं स्वर्दिदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ ।	
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा भर्मणे कं स्वर्घा पप्रथन्त	१
ग्रीणि भुवनं तमसापमूळह माविः स्वरभवजाते अग्नौ ।	
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापो ऽरण्यन्नोपधीः सख्ये अस्य	२ ६६०
देवेभिर्निविपितो यज्ञियैभिर्ऽग्निं स्तोपाण्यजरं बृहन्तम् ।	
यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमा माततान रोदसी अन्तरिक्षम्	३
यो होताऽऽसीत् प्रथमो देवजुष्टो यं समाञ्जन्नाज्येना घृणानाः ।	
स पतत्रीत्वरं स्या जगद्यच्छ्वान्नमग्निरेकणोज्जातवेदाः	४
यजातवेदो भुवनस्य मूर्धन्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन ।	
तं त्वाहेम मतिभिर्गीभिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः	५
मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः स्रयो जायते प्रातरुद्यन् ।	
मायामु तु यज्ञियानामेतामपो यत् तूणिश्वरति प्रजानन्	६
दृशेन्न्यो यो महिना समिद्धो ऽरोचत दिवियोनिर्विभावा ।	
तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्व आजुहवुस्तनूपाः	७ ६६५
सूक्तवाकं प्रथममादिदग्निमादिद्विविरजनयन्त देवाः ।	
स एषां यज्ञो अभवत् तनूपास्तं द्यौर्वेदु तं पृथिवी तमापः	८
यं देवासोऽर्जनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहवुर्भुवनानि विश्वा ।	
सो अर्चिषा पृथिवीं द्यामुतेमा मृज्यमानो अतपन्महित्वा	९
स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निमर्जीजनच्छक्तिभी रोदसिप्राम् ।	
तमु अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स ओपधीः पचति विश्वरूपाः	१०
यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः स्रयमादितेयम् ।	
यदा चरिष्णु मिथुनावभूतामादित् प्रापश्यन् भुवनानि विश्वा	११
विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमहामकृण्वन् ।	
आ यस्ततानोपसो विभ्रातीरपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन्	१२ ६७०

वैश्वानरं कवयो यज्ञियांसो ऽग्निं देवा अजनयन्नजुर्यम् ।	
नक्षत्रं प्रत्नमभिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तविषं बृहन्तम्	१३
वैश्वानरं विश्वहा दीदिवांसं मन्त्रैरग्निं कविमच्छां वदामः ।	
यो मंहिन्ना परिव्रभूवोर्वी उतावस्तादुत देवः पुरस्तात्	१४
द्वे स्रुती अशृणवं पितृणां—महं देवानामुत मर्त्यानाम् ।	
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च	१५
द्वे समीची विभृतश्चरन्तं शीर्षतो जातं मनसा विमृष्टम् ।	
स प्रत्यहं विश्वा भुवनानि तस्था—वप्रयुच्छन् तरणिर्त्राजमानः	१६
यत्रा वदेते अवर्ः परश्च यज्ञन्योः कतरो नौ वि वैद ।	
आ शैकुरित् संघमादुं सखायो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वोचत्	१७ ६७५
कत्यग्रयः कति सूर्यांसः कत्युपासः कत्युं स्विदापः ।	
नोपस्विर्जं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्वन्ने कम्	१८
यावन्मात्रमुपसो न प्रतीकं सुपण्योऽङ्के वसते मातरिष्वः ।	
तावद् दधात्युप यज्ञमायग् ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन्	१९ ६७७

(६) सूर्यो, हरिमा हृद्रोगश्च ।

॥ १८१ ॥ [दे० (आयुर्वेद०) ४८९-९० मन्त्राः द्रष्टव्याः ।]

(७) सूर्यः प्रजापतिः ।

॥ १८२ ॥ [दे० (आयुर्वेद०) १३३९-३३ मन्त्रो द्रष्टव्यो ।]

(८) सूर्याचन्द्रमसौ ।

॥ १८३ ॥ (अथर्व० ६।८३।१) ×

(६७८) भगः । अनुष्टुप् ।

अपचितः प्र पतत सुपणो वसतेरिव ।

सूर्यः कृणोतु मेपजं चन्द्रमा वोऽपोच्छत

१ ६७८

॥ १८५ ॥ (अथर्व० ७।८१।१-६) +

(६७९-८४) अथर्वा । त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप्, ४ आस्तारपङ्क्तिः, ५ स्वराटास्तारपङ्क्तिः ।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशु श्रीडन्तौ परिं यातोऽर्णवम् ।

विश्वान्यो भुवना विचष्टं क्रतुरन्यो विदधंजायसे नवः

१ ६७९

नवो नवो मवसि जायमानोऽह्नां केतुरुपसामेष्यग्रम् ।	
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः	२ ६८०
सोमस्यांशो युधां पतेऽनूनो नाम वा असि ।	
अनूनं दर्श मा कृषि प्रजया च धनेन च	३
दृशोऽसि दर्शतोऽसि समग्रोऽसि समन्तः ।	
समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन	४
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना प्यायस्व ।	
आ वयं प्याशिपीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन	५
यं देवा अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षिता मक्षयन्ति ।	
तेनास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिरा प्याययन्तु भुवनस्य गोपाः	६ ६८४

(९) सूर्यः आपश्च ।

॥ १८६ ॥ (अथर्व० ७।१०७।१)

(६८५) भृगुः । अनुष्टुप् ।

अर्धं दिवस्त्वारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः ।

आपः समुद्रिया धारास्तास्ते शल्यमसिससन् १ ६८५

(१०) सूर्यः गौः ।

॥ १८७ ॥ (अथर्व० २०।४८।१-६)

(६८६-९१) थिलम्, ४-६ सर्पराज्ञी । गायत्री ।

अभि त्वा वचैसा गिरः सिञ्चन्तीराचैरण्यवः । अभि वत्सं न धेनवः	१
ता अर्पन्ति भ्रुश्रियः पृञ्चन्तीर्वचैसा म्रियः । जातं जाश्रीर्यथा हृदा	२
वजापवुसाध्यः क्रीर्तिम्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्वृतं पर्यः	३
आयं गौः पृश्निरक्रीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्तस्त्रुः	४
अन्तर्धरति राचुना अस्य प्राणादपान्तः । न्यख्यन्महिपः स्त्रुः	५
म्रिशदाम्ना वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् । प्रति वस्तोरहर्घुभिः	६ ६९१

(६) त्वष्टा, धाता, पूषा, भगः, अर्यमा ।

[१] त्वष्टा । *

॥ १८८ ॥ (ऋ० १०।१८।६)

(६९२) संकसुको यामायनः । त्रिष्टुप् ।

आ रोहतापुंजसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति ष्ट ।

इह त्वष्टां सुजनिमा सजोषां दीर्घमायुः करति जीवसे वः

६ ६९२

॥ १८९ ॥ [६९३-९७] (वा० य० २।२४) ×

सं वचसा पर्यसा सं तनुभिरगन्महि मनसा सः शिवेन ।

त्वष्टां सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमाष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्

२४ ६९३

॥ १९० ॥ (वा० य० ६।७)

उपावीरस्युषं देवान् दैवीर्विशः प्रागुरुशिक्षो वहितमान् ।

देवं त्वष्टर्वसुं रम हव्या ते स्वदन्ताम्

७ ६९४

॥ १९१ ॥ (वा० य० ८।१७) +

धाता रातिः संवितेदं जुपन्तां प्रजापतिर्निधिषा देवोऽग्निः ।

त्वष्टा विष्णुः प्रजयां सशरणा यजमानाय द्रविणं दधातु स्वाहा

१७ ६९५

॥ १९२ ॥ (वा० य० २०।४४)

त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपाकोऽर्चिष्टुर्यशसें पुरूषि ।

वृषा यजन् वृषणं भूरिरेता मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान्

४४ ६९६

॥ १०३ ॥ (वा० य० २९।९)

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टरवीं जायत आशुरक्षः ।

त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान ब्रह्मोः कर्तारमिह यक्षि होतः

९ ६९७

॥ १९४ ॥ (अथर्व० ३।३।५)

(६९८-९९) ब्रह्मा । विराट् प्रस्तारपहंकिः ।

त्वष्टां दुहिते वहतुं युनक्तीतीदं विश्वं भुवनं वि याति ।

व्यं हं सर्वेण पाप्मना वि यस्मेण समायुषा

५ ६९८

* दे० [अग्निः (आग्नी सूक्तानि)] १९१५, १९२७, १९३२, १९५०, १९६१, १९७१, १९८९, २०००, २०११, २०२२, २०३४, २०४५, २०५७, २०६९, २०८१, २०९२, २१०३, २११४, २१२६, २१३८ ।

× वा० य० ८।१४, १६; अथर्व० ६।५३।३ (पाठभेदेन) । + अथर्व० ७।१७।४ ।

(अथर्व० ५।१६।८) द्विपदा प्राजापत्या वृहती ।

त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा असिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा

८ ६९९

॥ १९५ ॥ (अथर्व० ६।१३।३)

(७००) वृहच्छुक्रः । त्रिष्टुप् ।

सं वर्चसा पर्यसा सं तनुभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।

त्वष्टा नो अत्र वरियः कृणोत्वन्तु नो माष्टु तन्वोऽे यद् विरिष्टम्

३ ७००

॥ १९६ ॥ (अथर्व० ६।७८।३)

(७०१-२) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

त्वष्टा ज्ञायामजनयत् त्वष्टास्यै त्वां पतिम् ।

त्वष्टा सहस्रमार्युषि दीर्घमार्युः कृणोतु वाम्

३ ७०१

॥ १९७ ॥ (अथर्व० ६।८१।३)

यं परिहृस्तमविभरदितिः पुत्रकाम्या ।

त्वष्टा तमस्या आ बंधाद् यथा पुत्रं जनादिति

३ ७०२

त्वष्ट-सहचारी देवगणः ।

(१) त्वष्टा शुक्रश्च ।

॥ १९८ ॥ (ऋ० २।३६।३)

(७०३) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । जगती ।

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तं नु नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।

अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसु स्त्वष्टदेवेभिर्जनिभिः सुमद्रणः

३ ७०३

(२) त्वष्टा, पर्जन्यः, ब्रह्मणस्पतिः, अदितिः ।

॥ १९९ ॥ (अथर्व० ६।४।२)

(७०४) अथर्वा । पथ्यावृहती ।

त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।

पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टं त्रायमाणं सहः

१ ७०४

[२] घाता ।

॥ २०० ॥ (ऋ० १०।१८।५)

(७०५) संकुसुको यामापनः । त्रिष्टुप् ।

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथं ऋतव्यं ऋतुभिर्यन्ति साधु ।

यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा घातरार्युषि कल्पयैषाम्

५ ७०५

॥ २०१ ॥ (अथर्व० १३।४।३)
(७०६) ब्रह्मा । प्राजापत्याऽनुष्टुप् ।

स धाता स विधृता स वायुर्नम उच्छ्रितम् ।

रश्मिभिर्नम आर्भृतं महेन्द्र एत्यावृतः

३ ७०६

॥ २०२ ॥ (अथर्व० १८।३।२६)
(७०७-१०) । अथर्वा । जगती ।

धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पातु वाहुच्युता पृथिवी धार्मिवोपरि ।

लोककृत्तः पथिकृत्तौ यजामहे ये देवानां हुतमांगा इह स्य

२६ ७०७

धातृ-सहचारी-देवगणः ।

(१) धाता, सविता, इन्द्रः, त्वष्टा, अदितिः ।

॥ ३०३ ॥ (अथर्व० ३।८।२)

धाता रातिः संवितेदं जुषन्तामिन्द्रस्त्वष्टा प्रति हयन्तु मे वचः ।

हुवे देवीमदितिं शरपुत्रां सजातानां मध्यमेष्टा यथासानि

२ ७०८

(२) धाताविधातारौ, ऋतवः ।

॥ २०४ ॥ (अथर्व० ३।१०।१०)

ऋतम्यद्धारतवेभ्यो माद्भयः संवत्सरेभ्यः ।

धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे

१० ७०९

(३) धाता, विधाता, सविता, आदित्याः, रुद्राः, अश्विनौ ।

॥ २०५ ॥ (अथर्व० ५।३।९)

धाता विधाता ह्यवनस्य यस्पतिर्देवः संवितार्मिमातिपाहः ।

आदित्या रुद्रा अश्विनोमा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात्

९ ७१०

(४) धाता, सविता ।

॥ २०६ ॥ (अथर्व० ७।१७।१-३)

(७११-१३) मृगुः । १-२ गायत्री, ३ अष्टुप् ।

धाता दधातु नो रथिमीशानो जगतस्पतिः । स नः पूणेन यच्छतु

धाता दधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमर्शिताम् ।

१

वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विश्वराधसः

२ ७११

धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय द्वाशुपे दुरोणे ।

तस्यै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोपाः

३ ७१३

(५) सविता, धाता, पूषा, त्वष्टा ।

॥ २०७ ॥ (अथर्व० ११।६।३)

(७१४) शन्ताति । अनुष्टुप् ।

ब्रूमो देवं सवितारं धातारंभुत पूषणम् । त्वष्टारमग्निं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्वंहंसः

३ ७१४

[३] पूषा ।

॥ २०८ ॥ (ऋ० १।२३।२३-१५)

(७१५-१७) मेधातिथिः काण्व । गायत्री ।

आ पूषञ्चित्रर्षिपुमाघृणे घृणै दिवः । आजा नष्टं यथा पशुम्

१३ ७१५

पूषा राजानमाघृणि रपगूळहं गुहां हितम् । अविन्दच्चित्रर्षिपु

१४

उतो स मद्भिमिन्दुभिः पद् युक्तां अनुसेपिघत् । गोभिर्यवं न चर्कृपत्

१५ ७१७

॥ २०९ ॥ (ऋ० १।४९।१-२०)

(७१८-२७) कण्वो घौरः । गायत्री ।

सं पूषन्नध्वनस्तिरु व्यंहो विमुचो नपात् । सक्ष्वां देव प्र णस्पूरः

१

यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेवं आदिदेशति । अपं स्म तं पथो जहि

२

अप त्वं परिपन्थिनं सुपीवाणं दुरश्चितम् । दूरमधि सुतेरज

३ ७२०

त्वं तस्य द्याविनो ऽघशंसस्य कस्य चित् । पदाभि तिष्ठ तपुपिम्

४

आ तत् ते दस मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे । येन पितृनचोदयः

५

अर्धा नो विश्वसौमग हिरण्यवाशीमत्तम । धनानि सुपणां कृधि

६

अति नः सधतो नय सुगा नः सुपथां कृणु । पूर्षन्निह क्रतुं विदः

७

अभि सुयवसं नय न नवज्वारो अध्वने । पूर्षन्निह क्रतुं विदः

८ ७२५

शग्धि पूर्धि प्र येसि च शिश्रीहि प्रास्युदरम् । पूर्षन्निह क्रतुं विदः

९

न पूषणं मेधामसि सूक्तेरभि गृणीमसि । वध्वनि दुस्मर्मांमहे

१० ७२७

॥ २१० ॥ (ऋ० १।१३८।१-४)

(७२८-३१) परच्छेपो दैघोदासि । अत्यष्टिः ।

प्रप्र पूषणस्तुविजातस्य द्यसते महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते ।

अर्चामि मुन्नयन्नह मन्त्यूति मधोध्वम् ।

विश्वस्य यो मने आयुयुवे मुखो देव आयुयुवे मृतः

१ ७२८

प्र हि त्वां पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमैभिः कृण्वन्नृणवो यथा मृध
उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।

हुवे यत् त्वां मयोमुवं देवं सुख्याय मर्त्यैः ।

अस्माकमाङ्गुपान् द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि २

यस्यं ते पूषन्सखये विपन्यवः क्रत्वा चित् सन्तोऽवसा बुमुजिर
इति क्रत्वा बुमुजिरे ।

तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।

अहेळमान उरुशंसं सरीं भव वाजेवाजे सरीं भव ३ ७३०

अस्या ऊ पु ण उप सातये भुवो ऽहेळमानो ररिवां अजाश्च श्रवस्यतामजाश्च ।

ओ पु त्वां वधृतीमहि स्तोमैर्भिर्दिस्म साधुभिः ।

नहि त्वां पूषन्नतिमन्यं आघृणे न ते सुख्यमपहृणे ४ ७३१

॥ ७३१ ॥ (ऋ० ३।६२।७-९)

(७३०-३४) गाथिनो विश्वामित्रः । गायत्री ।

इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देवं नन्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ७

तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तींमवा धियम् । वधुयुरिव योषणाम् ८

यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । म नः पूषावित्रा संवत् ९ ७३२

॥ ७३२ ॥ (ऋ० ६।४८।१६-१९)

(७३५-३८) शंयुर्वाहस्पत्य (वृणपाणिः) १६ ककुप्, १७ सतांरुहरो, १८ द्रु अज्यह, १९ वृहती ।

आ मां पूषन्नुषं द्रव शंसिषुं तु ते अपिकूर्णं आवृणे । इवा इवो अर्गनयः १६ ७३३

मा काकम्भीरमुद् वृहो वनस्पति मशस्तीर्णि हि नीनद्रः ।

मोत सरो अहे एवा चन ग्रीवा आदर्षते वेः १७

दृतेरिव तेऽनुकर्मस्तु सुख्यम् । अछिद्रस्य दन्वतः दृतेमन्व दन्वतः १८

परो हि मर्त्यैरसिं सुमो देवैरुव श्रिया ।

अभि ख्यः पूषन् पृतनासु नुस्त्व मवां नूनं ददां दुग १९

॥ ७३३ ॥ (ऋ० ६।७३।१-१०)

(७३९-७५४) वाहस्पत्यो नन्दः । अज्यह, ८ अज्यह ।

वयसुं त्वा पथस्पते रथं न वाजं प्रादद्वे । विनं दृतेमन्व दन्वदि

अभि नो नर्यं वसुं वीरं प्रयतदक्षिपत् । इत्तं दृतेमन्व नन

अर्दिस्सन्तं चिदाघृणे	पुपन् दानाय चोदय ।	पुणेश्चिद् वि ऋद्रा मनः	३
वि पुथो वाजसातये	चिनुहि वि मृधो जहि ।	साधन्तामुग्र नो धियः	४
परिं तन्धि पणीना	मारया हृदया कवे ।	अथेमस्मभ्यं रन्धय	५
वि पूपन्नारया तुद	पुणेरिच्छ हृदि प्रियम् ।	अथेमस्मभ्यं रन्धय	६
आ रिख किकिरा कृणु	पणीनां हृदया कवे ।	अथेमस्मभ्यं रन्धय	७ ७४५
यां पूपन् ब्रह्मचोदनी	मारां विमर्ष्याघृणे ।		
तयां समस्य हृदय	मा रिख किकिरा कृणु		८
या ते अष्टा गोओपशा	ऽऽघृणे पशुसाधनी ।	तस्यांस्ते सुन्नमीमहे	९
उत नो गोपणि धिय	मश्वसां वाजसामुत ।	नृवत् कृणुहि वीतर्ये	१० ७४८

॥ २१४ ॥ (ऋ० ६।५४।१-१०) + गायत्री ।

सं पूपन् विदुषा नय	यो अञ्जसानुश्चासति ।	य एवेदमिति ब्रवंत्	१
सम् पूष्णा गभेमहि	यो गृहो अंभिश्चासति ।	इम एवेति च ब्रवंत्	२ ७५०
पूष्णश्चक्रं न रिंध्यति	न कोशोऽव पद्यते ।	नो अस्य व्यथते पविः	३
यो अस्मै हविषाविष	न्न तं पूषाऽपि मृष्यते ।	प्रथमो विन्दते वसु	४
पूषा गा अन्वेतु नः	पूषा रक्षस्ववैतः ।	पूषा वाजं सनोतु नः	५
पुपन्ननु प्र गा इहि	यजमानस्य सुन्वतः ।	अस्माकं स्तुवतामुत	६
मार्किर्नश्नमार्की रिप	न्मार्की सं शारि केवटे ।	अथारिष्टाभिरा गहि	७ ७५५
शूष्वन्तं पूषणं वय	मिर्यमनष्टवेदसम् ।	ईशानं राय ईमहे	८
पूपन् तव व्रते वयं	न रिंष्येम कदा चन ।	स्तोतारस्त इह स्मस्ति	९
परिं पूषा परस्ता	द्वस्तं दधातु दक्षिणम् ।	पुनर्नो नष्टमाजतु	१० ७५८

॥ २१५ ॥ (ऋ० ६।५५।१-६)

एहि वां विमृचो नपा	दाघृणे सं संचावहै ।	रथीकृतस्यं नो भव	१
रथीतमं कपदिनु	मीशानं राधसो मुहः ।	रायः सखायमीमहे	२ ७६०
रायो धारास्थाघृणे	वसो राशिरंजाश्च ।	धीवतोधीवतः सखा	३
पूषणं न्यजाश्च	मुषं स्तोषाम वाजिनम् ।	स्वसुर्यो जार उच्यते	४
मातुर्दिधिपुमं ब्रवं	स्वसुर्जारः शृणोतु नः ।	आतन्द्रस्य सखा मम	५
आजासः पूषणं रथे	निश्रम्मास्ते जन्धियम् ।	द्वेवं बहन्तु विभ्रतः	६ ७६४

॥ २१६ ॥ (ऋ० ६।५६।१-६) गायत्री, ६ अनुष्टुप् ।

य एनमादिदेशति	करम्भादिति पूषणम् ।	न तेन देव आदिशे	१	७६५
उत घा स रथीतमः	सरुया सत्पतिर्युजा ।	इन्द्रो वृषाणि जिघ्रते	२	
उतादः परुषे गवि	सूरश्चक्रं हिरण्ययम् ।	न्यैरयद् रथीतमः	३	
यद्यु त्वा पुरुष्टुत	ब्रवांम दस्र मन्तुमः ।	तत् सु नो मन्म साधय	४	
इमं च नो गवेषणं	सातये सीपघो गुणम् ।	आरात् पृषन्नसि श्रुतः	५	
आ ते स्वस्तिमीमह	आरेअघामुपावसुम् ।	अघा च सर्वतातये	६	७७०

॥ २१७ ॥ (ऋ० ६।५८।१-४) × त्रिष्टुप्, २ जगती ।

शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद्	विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।			
विश्वा हि माया अवसि स्वभावो	भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु		१	
अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो	धियंजिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।			
अष्टौ पूषा शिथिरामुद्धरीवृजत्	संचक्षाणो भुवना देव ईयते		२	
यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे	हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।			
ताभिर्यासि दुत्यां सूर्यस्य	कामेन कृत श्रवं इच्छमानः		३	
पूषा सुवर्णुर्दिव आ पृथिन्या	इळस्पतिर्मघवा दुसर्वर्चाः ।			
यं देवासो अददुः सुर्यायै	कामेन कृतं तवसं स्वश्रम्		४	७७४

॥ २१८ ॥ (ऋ० १०।१७।३-६) +

(७७५-७८) देवश्रवा यामायनः । त्रिष्टुप् ।

पूषा त्वेतश्च्यवयतु प्र विद्वा	ननेष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।			
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्यो	ऽभिर्देवेभ्यः सुविद्विर्वेभ्यः		३	७७५
आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा	पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।			
यत्रासते सुकृतो यत्र ते युयु	स्तत्र त्वा देवः संविता दधातु		४	
पूषेमा आश्या अर्तु वेदु सर्वाः	सो अस्मो अमयतमेन नेपत् ।			
स्वस्तिदा आर्षणिः सर्वेवीरो	ऽभ्युच्छन् पुर एतं प्रजानन्		५	
प्रपथे प्यामंजनिष्ट पूषा	प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिन्याः ।			
उमे अमि प्रियतमे सुघस्ये	आ च परा च चरति प्रजानन्		६	७७८

× ऋ० ६, ५८, १ = षा० ७१ ।

+ ऋ० १०, १७, ५-६, ३-४ = मयवे० ७, १, १-२, १८, १, ५४-५५ ।

॥ २१९ ॥ (ऋ० १०।२६।१-२)

(७७९-८७) विमद पेन्द्रः प्राजापत्यो धा, वासुक्रो वसुक्रदा । अनुष्टुप्, १,४ उष्णिक् ।

प्र ह्यच्छा मनीषाः स्पर्हा यन्ति नियुतः । प्र दुस्ता नियुद्रथः पूषा अविष्टु माहिनः १

यस्य त्यन्महित्वं वाताप्यमयं जनः । विप्र आ वैसद्वीतिभिश्चिकेत सुष्टुतीनाम् २ ७८०

स वैद सुष्टुतीनामिन्दुर्न पूषा वृषा । अभि प्सुरः प्रुपायति व्रजं न आ प्रुपायति ३

मंसीमहिं त्वा वयमस्माकं देव पूषन् । मतीनां च सार्धनं विप्राणां चाध्वम् ४

प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वहृयो रथानाम् । ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्स्रः ५

आधीपमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचसं च ।

वासोवायोऽर्वीनामा वासांसि मर्मजत् ६

इनो वाजानां पतिरिनः पुष्टीनां सखा । प्र इमश्रुं हृतो दूधोद् वि वृथा यो अदांभ्यः ७ ७८१

आ ते रथस्य पूषन्नजा धुरं ववृत्युः । विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ८

अस्माकमुर्जा रथं पूषा अविष्टु माहिनः । भुवद् वाजानां वृष इमं नः शृणवद्भवम् ९ ७८२

॥ २२० ॥ [७८८] (वा० य० ३४।४२) ×

पथस्पथः परिपति वचस्या कामेन कृतो अभ्यानडर्कम् ।

स नो रासच्छुरुषश्चन्द्राग्रा धिर्यधियः सीपधाति प्र पूषा । ४२ ७८८

॥ २२१ ॥ [दे० (आयुर्वेद० १७६५-६७) मन्त्राः द्रष्टव्या ।]

पूषा-सहचारी देवगण ।

(१) मरुतः, पूषा, बृहस्पतिः, अग्निः ।

॥ २२२ ॥ (अथर्व० ७।३३।१)

(७८९) ब्रह्मा । पथ्यापङ्क्ति ।

सं मां सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः ।

सं मायमग्निः सिञ्चन्तु प्रजयां च धनेन च दीर्घमार्युः कृणोतु मे १ ७८९

(२) अग्निः, सोमः, पूषा ।

॥ २२३ ॥ (अथर्व० १६।१।२)

(७९०) यम । आच्युष्णिक् ।

तदुपिराह तद् सोमं आह पूषा मां धातु सुकृतस्य लोके २ ७९०

[४] भगः ।

॥ २२४ ॥ (ऋ० १।२४।५)

(७९१) आजीगर्तिः शुनःशेषः, स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । गायत्री ।

भगंभक्तस्य ते वय—सुदंशेभ्यं तवावसा । मुर्धानं राय आरभे ५ ७९१

॥ २२५ ॥ (ऋ० ७।३८।६ उत्तरार्धः)

(७९२-९७) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

भगंमृगोऽवसे जोहवीति भगंमनुश्रो अघं याति रत्नम् ६ ७९२

॥ २२६ ॥ (ऋ० ७।४१।२-६)*

प्रातर्जितं भगंमग्रं हुवेम वयं पुत्रमदिनेयो विंघर्ता । २

आप्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं मक्षीत्याह २

भगं प्रणेतुर्भगं सत्यंराघो मग्नेमां धियमुदवा ददन्नः । ३

भगं प्र णो जनय गोभिरश्चैर्भगं प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ३

उतेदानीं भगवन्तः स्यामो—त प्रपित्व उत मध्ये अह्वाम् । ४

उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतां स्याम ४ ७९५

भगं एव भगवां अस्तु देवा—स्तेन वयं भगवन्तः स्याम । ५

तं त्वां भगं सर्वं इजोहवीति स नो भगं पुरएता भवेह ५

समंघ्वरायोपसो नमन्त दधिक्रावेषु शुचये पदार्य । ६

अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाथा वाजिन आ वदन्तु ६ ७९७

॥ २२७ ॥ (अथर्व० १।३०।५)

(७९८) प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।

एयमेगन् पतिकामा जर्निकामोऽहमार्गमम् । ५

अश्वः कर्निकदृद् यथा भगेनाहं सहार्गमम् ५ ७९८

॥ २२८ ॥ (अथर्व० १।३६।७)

(७९९) पतिवेदनः । अनुष्टुप् ।

इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः । एते पतिभ्यस्त्वामेदुः प्रतिक्रामाय वेत्तवे ७ ७९९

॥ २२९ ॥ (अथर्व० ५।२३।९)

(८००) प्रहा । [एकायसाना] त्रिपदा विपीलिकमप्या पुरउष्णिक् ।

भगो युनक्त्वाशिपो न्वंसा अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ९ ८००

* वा० य० ३४, ३५-३९; अथर्व० ३, १६, २-६

॥ २३० ॥ (अथर्व० ६।१५१।१-३)

(८०१-३) अथर्वाङ्गिराः । अनुष्टुप् ।

भगेन मा शांशपेन साकामिन्द्रेण मेदिना । कृणोमि भुगिनं मापं द्रान्त्वरांतयः १
येन वृक्षां अभ्यर्भवो भगेन वर्चसा सह । तेन मा भुगिनं कृण्वपं द्रान्त्वरांतयः २
यो अन्धो यः पुनःसरो भगो वृक्षेष्वार्हितः । तेन मा भुगिनं कृण्वपं द्रान्त्वरांतयः ३ ८०१

॥ २३१ ॥ (अथर्व० १४।१।५०-५१, ५३, ६०)

(८०४-७) सूर्या सावित्री । ५०, ५३ त्रिष्टुप्, ५१ अनुष्टुप्, ६० पराऽनुष्टुप् ।

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्यां जरदप्रियथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गाहंपत्याय देवाः ५०
भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्त्वं ५१ ८०५
त्वष्टा वासो व्यदिधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषां कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता, भगश्च सूर्यामिव परिं घत्तां प्रजयां ५३
भगस्ततक्ष चतुरः पादान् भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टां पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्नान्तसा नो अस्तु सुमङ्गली ६० ८०७

भग-सहचारी-देवगणः ।

(१) अंशः, भगः, वरुणः, मित्रः, अर्यमा, अदितिः, मरुतः ।

॥ २३२ ॥ (अथर्व० ६।१।२)

(८०८) अथर्वा । प्रस्तारपङ्क्तिः ।

अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु मरुतः ।
अप तस्य देवो गमेदभिद्भृतो यावयच्छत्रुमन्तितम् २ ८०

(२) धाता, अर्यमा, भगः, अश्विनौ ।

॥ २३३ ॥ (अथर्व० १४।२।१३)

(८०९) सूर्या सावित्री । त्रिष्टुप् ।

श्रिवा नारीयमस्तमार्गन्निमं धाता लोकमुस्यै दिदेश ।
तार्यमा भगो अश्विनोमा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु १३ ८०

[५] अर्थमा ।

॥ २३४ ॥ (अथर्व० ६।६०।१-३)

(८१०-१२) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

अयमा यात्यर्थमा पुरस्ताद् विधितस्तुपः । अस्या इच्छन्नगुर्वै पतिमुत् जायामजानये १ ८१०

अश्रमद्वियमर्थमन्नन्यासां समनं यती । अङ्गो न्व्र्यमन्नस्या अन्याः समनमार्यति २
घाता दाधार पृथिवी घाता घामुत् सूर्यम् ।

घाताऽस्या अगुर्वै पतिं दधातु प्रतिक्राम्यम् ३ ८१२

॥ २३५ ॥ (अथर्व० ११।६।४)

(८१३) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।

अर्थमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहंसः ४ ८१३

॥ २३६ ॥ (अथर्व० १३।४।४)

(८१४-१६) ब्रह्मा । प्राजापत्याऽनुष्टुप् ।

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ।

रश्मिभिर्नम आमृतं महेन्द्र एत्यावृतः ४ ८१४

अयमन्न-सहचारी-देवगणः ।

(१) अर्थमा, पूषा, बृहस्पतिः, इन्द्रः ।

॥ २३७ ॥ (अथर्व० ३।१४।२) अनुष्टुप् ।

सं वः सृजत्वर्थमा सं पूषा सं बृहस्पतिः ।

समिन्द्रो यो धनंजयो मयि पुण्यत यदुर्षु २ ८१५

(२) मित्रः, वरुणः, त्वष्टा, अर्थमा, महादेवः ।

॥ २३८ ॥ (अथर्व० ९।७।७) त्रिपदा पिपीलिकमध्या निचृद्रायत्री ।

मित्रश्च वरुणश्चासौ त्वष्टा चार्थमा च द्रोपणीं महादेवो वाह ७ ८१६

(३) अर्थमा, भगः, बृहस्पतिः, देवीः ।

॥ २३९ ॥ (अथर्व० ३।१०।३)

(८१७) यत्तिष्ठः । अनुष्टुप् ।

प्र णो यच्छत्वर्थमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।

प्र देवीः श्रोत सनुता रयिं देवी दधातु मे ३ ८१७

(७) विष्णुः ।

॥ २४० ॥ (क्र० १।२०।१६-२१) +

(८१८-२३) मेघातिथिः काण्यः । गायत्री ।

अतो देवा अवनतु नो	यतो विष्णुर्विचक्रमे	। पृथिव्याः सप्त धामभिः	१६
इदं विष्णुर्वि चक्रमे	त्रेधा नि दधे पदम्	। समृद्धमस्य पांसुरे	१७
त्रीणि पदा वि चक्रमे	विष्णुर्गोपा अदाभ्यः	। अतो धर्माणि धारयन्	१८ ८१०
विष्णोः कर्माणि पश्यत	यतो व्रतानि पस्पशे	। इन्द्रस्य युज्युः सर्वा	१९
तद् विष्णोः परमं पदं	सदा पश्यन्ति सूरयः	। दिवीव चक्षुराततम्	२०
तद् विप्रासो विपुन्यवो	जागृवांसः समिन्धते	। विष्णोर्यत् परमं पदम्	२१ ८११

॥ २४१ ॥ (क्र० १।२५।१-६) +

(८२४-३७) दीर्घतमा औचथ्यः । त्रिष्टुप् ।

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं	यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।	
यो अस्कंभायदुत्तरं सधस्यं	विचक्रमाणस्त्रेघोरुगायः	१
प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण	भृगो न भीमः कुंचरो गिरिष्ठाः ।	
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणे	ष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा	२ ८२५
प्र विष्णवे श्रुपमेतु मन्म	गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।	
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्यं	मेको विममे त्रिभिरिद् पदेभिः	३
यस्य त्री पूर्णा मधुना पदा	न्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।	
य उ त्रिघातुं पृथिवीमुत घा	मेको दाघार भुवनानि विश्वा	४
तदस्य प्रियमाभि पार्थो अश्यां	नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।	
उरुक्रमस्य स हि चन्द्रुरित्था	विष्णोः पदे परमे मच्च उत्सः	५
ता वां वास्तुन्युश्मसि गमध्यै	यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।	
अग्राह तदुरुगायस्य वृष्णः	परमं पदमव भाति भूरि	६ ८२९

॥ २४२ ॥ (क्र० १।२५।४-६) जगती ।

तत्तदिदस्य पांसुर्यं गृणीमसी	नस्यं त्रातरवुकस्यं मीळ्हुषः ।	
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद् विर्गामभि	रुरु कर्मिष्टोरुगायार्यं जीवसे	४ ८३०

+ क्र० १।२१।१७-२१ = वा० य० ५, १५; ३४, ४३-४४; ६, ४-५; १३, ३३; अथर्व. ७, २६, ४-७; छा० २२९, १६६९-७४ ।

* क्र. १।२५।१-२, ६ = वा० य० ५, १८, २०; ६, ३; अथर्व ७।२६।१-२, ३ (प्रथमचरणः) ।

द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्द्धौ ऽभिरुयाय मर्त्यो भ्रूण्यति ।
 तृतीयमस्य नकिरा दधर्पति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ५
 चतुर्भिः साकं नवति च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीरिणीविपत् ।
 बृहच्छरीरो विमिमान् ऋकाभिर्बुवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ६ ८२१

॥ २४३ ॥ (ऋ० १।१५६।२-५)

मवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः ।
 अर्धा ते विष्णो विदुषा चिदध्वः स्तोमो यज्ञश्च राध्वो हविष्मता १
 यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।
 यो जातमस्य महतो महि व्रवत् सेदु श्रवोभिर्बुध्वं चिदभ्यसत् २
 गम् स्तोतारः पूर्वं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषां पिपर्तन ।
 आस्यं जानन्तो नामं चिद् विवक्तन मदस्ते विष्णो सुमृतिं मंजामहे ३ ८२५
 तमस्य राजा वरुणस्तमश्चिना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।
 द्राघार दक्षमुत्तममहविदे व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णते ४
 आ यो विवार्यं सचर्याय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृतरः ।
 वेधा अजिन्वत् त्रिपद्यस्य आर्यं मृतस्य मागे यजमानमामजत् ५ ८२७

॥ २४४ ॥ (ऋ० ७।१९।१-३,७) +

(८३८-४७) मंत्रावरुणिर्यलितः । त्रिष्टुप् ।

परो मात्रया तन्वा वृषान् न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
 उमे ते विश्व रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्यं विन्से १
 न ते विष्णो जायमानो न जातो देवं महिम्नः परमन्तमाप ।
 उदस्तन्ना नाकमृष्वं बृहन्तं द्राधर्यं प्राचीं कृकृमं पृथिव्याः २
 इरावती धेनुमती हि भूतं स्यवमिनी मनुषे दशस्या ।
 व्यस्तन्ना रोदसी विष्णवेते द्राधर्यं पृथिवीमभितो मयूरैः ३
 वपत् ते विष्णवासा आ कृणोमि तन्मे जुपस्य शिपिविष्ट हव्यम् ।
 वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरां मे यूयं पात म्वास्तिभिः मदा नः ७ ८४६

॥ २४५ ॥ (ऋ० ७।१०।१-६)

नू मर्तो दयते सनिभ्यन् यो विष्णव उरुगायाय दाञ्जत् ।	
प्र यः सत्राचा मनसा यजात् एतावन्तं नयमाविवासात्	१
त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्त्या मप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।	
पचो यथा नः सुवितस्य भूरे रश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः	२
त्रिदिवः पृथिवीमेप एतां वि चक्रमे शतर्षसं महित्वा ।	
प्र विष्णुरस्तु त्वसस्तवीयान् त्वेपं हस्य स्वविरस्य नामं	३
वि चक्रमे पृथिवीमेप एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।	
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार	४ ८४५
प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट नाम्ना ऽर्यः शंसामि व्युनानि विद्वान् ।	
तं त्वा गृणामि त्वसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके	५
किमित् ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत् प्र यद् ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।	
मा वषो अस्मदपं गूह एतद् यदुन्यरूपः समिथे बभूथ	६ ८४७

॥ २४६ ॥ (८४८-६०) (वा० य० १।२७,३०)

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन
त्वा छन्दसा परिगृह्णामि ।

सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुपदा चास्यूर्जस्वती चासि पर्यस्वती च २७
अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेषोऽस्यूर्जे त्वाऽर्दब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि ।
अमेर्जिह्वासि सुहृद्वेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ३० ८४३

॥ २४७ ॥ (वा० य० २।३,८,१५)

ध्रुवा असदन्वृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां
यज्ञन्वृम् ६ ८५०
अर्द्धिघ्ना विष्णो मा त्वावक्रमिषुं वसुमतीमग्ने ते च्छायामुपस्थेपुं विष्णो
स्थानमसीत् इन्द्रो वीर्यमकृणोदुध्वोऽध्वर आस्थात् ८
दिवि विष्णुर्व्यक्रश्स्तु जागतेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च
वयं द्विष्णोऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रश्स्तु त्रैष्टुभेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः पृथिव्या विष्णुर्व्यक्रश्स्तु गायत्रेण
च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः २५ ८५१

॥ २४८ ॥ (वा० य० ५।१, १९, २१, २३-२५, ३८) x

अग्नेस्तनूरांसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरांसि विष्णवे त्वातिथेरातिथ्यमसि विष्णवे
त्वा श्येनार्य त्वा सोमभृते विष्णवे त्वाऽऽग्नये त्वा रायस्योपदे विष्णवे त्वा १

दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।

उमा हि हस्ता वसुना पुणस्वा प्र यञ्छु दक्षिणादोत सुव्याद् विष्णवे त्वा १९

विष्णो रराटमसि विष्णोः शष्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि ।

वैष्णवमसि विष्णवे त्वा

२१ ८५५

रक्षोहर्णं बलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे निष्टयो यममात्वी

निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे सभानो यमसमानो निचखा-

नेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे सर्वन्धुर्यमसंघन्धुर्निचखानेदमहं तं

बलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्यां किरामि २३

खराडसि सपत्नहा संत्रराडस्यभिमातिहा जंनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा २४

रक्षोहर्णो वो बलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोहर्णो वो बलगहनोऽर्वनयामि

वैष्णवान् रक्षोहर्णो वो बलगहनोऽर्वस्तृणामि वैष्णवान् रक्षोहर्णो वां

बलगहना उप दक्षामि वैष्णवी रक्षोहर्णो वां बलगहनो पर्युहामि वैष्णवी

वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ

२५

उरु विष्णो विक्रमस्यो क्षयाय नस्कृधि ।

घृतं घृतयोने पिघ प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा

३८ ८५९

॥ २४९ ॥ (वा० य० ८।१)

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्तवा ।

विष्ण उरुगायेप ते सोमस्त रक्षस्व मा त्वा दमन्

१ ८६०

॥ २५० ॥ (अथर्व० ७।२६।१-३, ८)

विष्णोर्नु कं प्रा वीचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विमुमे रजामि ।

पो अस्कमायुदुत्तरं सधस्यं विचक्रमाणद्येधोरुगायः

१

प्र तद् विष्णुं स्तवते वीर्याणि मृगो न भीमः कुन्वरो गिरिष्ठाः ।

परावत आ जंगम्यात् परस्याः

३ ८६१

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वाधिक्षियन्ति सुवर्नानि विश्वा ।

उरु विष्णो वि क्रमस्त्रोरु क्षयाय नस्कृधि ।

घृतं घृतयोने पिव प्रप्रं यज्ञपतिं तिर

३

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या मुहो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।

हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादौत सुव्यात्

८ ८६४

॥ ६५१ ॥ (अथर्व १०।५।२५-३५)

(८६५-७५) कौशिकः । व्यवसाना यदूपदा यथाक्षरं शक्यतिशकरी ।

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्निर्तेजाः ।

पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽेऽसान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।

स मा जीवीत् तं प्राणो जहात्

२५ ८६५

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाऽन्तरिक्षमंशितो वायुर्तेजाः ।

अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो०

२६

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौर्मंशितः सूर्यतेजाः ।

दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात्

२७

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्मंशितो मनस्तेजाः ।

दिशोऽनु वि क्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो०

२८

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाऽऽशांसंशितो वाततेजाः ।

आशा अनु वि क्रमेऽहमाशांभ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो०

२९

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा ऋक्संशितः सामतेजाः ।

ऋचोऽनु वि क्रमेऽहमृग्भ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात्

३० ८७०

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः ।

यज्ञमनु वि क्रमेऽहं यज्ञात् तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात्

३१

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहापैथीसंशितः सोमतेजाः ।

ओषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो०

३२

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः ।

अपोऽनु वि क्रमेऽहमद्भ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात्

३३

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृपिसंशितोऽग्नेतेजाः ।

कृपिमनु वि क्रमेऽहं कृप्यास्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात्

३४ ८७४

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः ।

प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात् तं निर्भेजामो । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात् ३५ ८७५

विष्णु-सहचारी-देवगणः ।

(१) विष्णु-त्वष्टृ-प्रजापति-धातारः ।

॥ २५० ॥ (क्र० १०१८८११) +

(८७६) त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । अनुष्टुप् ।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिशतु ।

आ सिञ्चतु प्रजापति-धृता गर्भं दधातु ते १ ८७६

(२) विष्णुर्वरुणश्च ।

॥ २५३ ॥ (८७७) (चा० य० ८५९) ×

ययोरजसा श्कभिता रजांशसि वीर्येभिर्वीरर्तमा श्विष्टा ।

या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन्वरुणा पूर्वहृता ५९ ८७७

॥ २५४ ॥ (अथर्व० ७१२५०)

(८७८) मेधातिथिः । त्रिष्टुप् ।

यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते प्र चानति वि च चष्टे शर्वाभिः ।

पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिर्विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहृतिः २ ८७८

(८) विवस्वान् ।

॥ २५५ ॥ (८७९) (चा० य० २१३०)

विवस्वते स्वाहा ३० ८७९

॥ २५६ ॥ (अथर्व० ६।११६।१-३) *

(८८० ८९ । जाटिकायनः । जगती, २ त्रिष्टुप् ।

यद् यामं चक्रनिखनन्तो अग्रे कार्पावणा अन्नविदो न विद्यया ।

वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्ययं यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् १ ८८०

वैवस्वतः कृणवद् मागधेयं मधुमागो मधुना सं सृजाति ।

मातुर्यदेन इषितं न आगन् यद् वा पितारपराद्धो जिहीडे २

यदीदं मातुर्यदि वा पितरुः परि भ्रातुः पुत्राचेतंस एन आगन् ।

याचन्तो असान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मृत्युः ३ ८८०

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्लियन्ति भुवनानि विश्वा ।

उरु विष्णो वि क्रमस्त्रोरु क्षयाय नस्कृधि ।

घृतं घृतयोने पितृ प्रप्रं यज्ञर्षति तिर

३

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।

हस्तां पृणस्र बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात्

८ ८६४

॥ ५५१ ॥ (अथर्वं १०।५।२५-३५)

(८६५-७५) कौशिकः । व्यवसाना पदपदा यथाक्षरं शक्यंतिशकरी ।

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽश्रितेजाः ।

पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽज्ञान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।

स मा जीवीत् तं प्राणो जहात्

२५ ८६५

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाऽन्तरिक्षसंशितो वायुर्तेजाः ।

अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं प्राणो २६

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः ।

दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात् २७

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः ।

दिशोऽनु वि क्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं प्राणो २८

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाऽऽशांसंशितो वारतेजाः ।

आशा अनु वि क्रमेऽहमाशाभ्यस्तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं प्राणो २९

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा ऋक्संशितः सामतेजाः ।

ऋचोऽनु वि क्रमेऽहमृग्भ्यस्तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात् ३० ८६

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः ।

यज्ञमनु वि क्रमेऽहं यज्ञात् तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं प्राणो ज

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहौषधीसंशितः सोमतेजाः ।

ओषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः ।

अपोऽनु वि क्रमेऽहमप्यस्तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं प्राणो

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृपिसंशितोऽर्धतेजाः ।

कृपिमनु वि क्रमेऽहं कृप्यास्तं निर्भजामो । स मा जीवीत् तं ३१

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुंपतेजाः ।

प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात् तं निर्भेजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहात् ३५ ८१५
विष्णु-सहचारी-देवगणः ।

(१) विष्णु-त्वष्टृ-प्रजापति-धातारः ।

॥ २५० ॥ (ऋ० १०।१८४।१) +

(८७६) त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । अनुष्टुप् ।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिशतु ।

आ सिंश्चतु प्रजापतिर्घाता गर्भं दधातु ते १ ८७६

(२) विष्णुर्वरुणश्च ।

॥ २५३ ॥ (८७७) (वा० य० ८।५२) ×

ययोरोजसा स्कभिता रजांशसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा ।

या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन्वरुणा पूर्वहूतौ ५९ ८७७

॥ २५४ ॥ (अथर्व० ७।२५।०)

(८७८) मेघातिथिः । त्रिष्टुप् ।

यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते प्र चानति वि च चष्टे शर्चाभिः ।

पुरा देवस्य धर्मेणा सहोभिर्विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहूतिः २ ८७८

(८) विवस्वान् ।

॥ २५५ ॥ (८७९) (वा० य० २।२।३०)

विवस्वते स्वाहा

॥ २५६ ॥ (अथर्व० ६।११६।६-३) *

(८८० ८९) जाटिकायनः । जगती, ० त्रिष्टुप् ।

यद् यामं चक्रनिखनन्तो अग्रे कार्षीषणा अन्नविदो न विद्यया ।

वैवस्वते राजनि तजुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् १ ८८०

वैवस्वतः कृणवद् मागधेयं मधुभागो मधुना सं सृजाति ।

मातुर्यदेनं इषितं न आगन् यद् वा पितापराद्धो जिह्नीडे २

यदीदं मातुर्यदिं वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राचेतस एन आगन् ।

यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः ३ ८८०

(९) संवत्सरः कालः ।

॥ २५७ ॥ (ऋ० १।१६४।४८)

(८८३) दीर्घतमा श्रीचथ्यः । त्रिष्टुप् ।

द्वादश प्रघर्यश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तर्चिकेत ।

तस्मिन्साकं त्रिशता न शुक्लवोऽर्पिताः पृष्टिर्न चलाचलासः

४८ ८८३

॥ २५८ ॥ [८८४-८६] (वा० य० २१।१८)

संवत्सराय स्वाहा

२८ ८८४

॥ २५९ ॥ (वा० य० २७।४५)

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि ।

उपसंस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्धमासास्ते कल्पन्ता मासास्ते

कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ता संवत्सरस्ते कल्पताम् ।

प्रेत्या एत्यै स चाञ्च प्र च सारय ।

सुपर्णचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद

४५ ८८५

॥ २६० ॥ (वा० य० ३०।१५)

संवत्सराय पर्यायिणी परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वंरीमिद्वत्सराया-

तिष्कद्वरी वत्सराय विजर्जरा संवत्सराय पलिकनीम्

१५ ८८६

॥ २६१ ॥ (अथर्व० ३।२०।८)

(८८६-८९) अथर्वो । अनुष्टुप् ।

आयमगन्तसंवत्सरः पतिरेकाष्टके तव ।

सा न आयुष्मती प्रजां रायस्पोषेण सं सृज

८ ८८७

॥ २६२ ॥ (अथर्व० ४।१५।१३) ×

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।

वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूकां अवादिषुः

१३ ८८८

॥ २६३ ॥ (अथर्व० ११।७।१८)

समृद्धिरोज आकृतिः स्रष्टं राष्ट्रं पदुर्व्यः ।

संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडां प्रैषा ग्रहां हविः

१८ ८८९

॥ २६४ ॥ (अथर्व० १५।३।१) पिपीलिकमध्या गायत्री ।

स संवत्सरमूर्ध्वोऽविष्टुत् तं देवा अंब्रुवन् व्रात्य किं नु तिष्ठसीति

१ ८९०

॥ २६५ ॥ (अथर्वं ११।५।२०)

(८९१) ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

अपघयो भूतमन्व्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।

संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः

२० ८९१

॥ २६६ ॥ (अथर्वं १९।५।३।१-१०)

(८९२-९०६) श्रुगुः । अनुष्टुप्; १-४ त्रिष्टुप्; ५ निचृत् पुरस्ताद्दृहती ।

कालो अश्वो वहति सप्तारश्मिः सहस्राश्वो अजरो भूरिताः ।

तमा रोहन्ति क्वयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा १

सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नामीरमृतं न्वर्षः ।

स इमा विश्वा भुवनान्यजत् कालः स ईयते प्रथमो तु देवः २

पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा तु सन्तः ।

स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्कलं तमाहुः परमे व्योमिन् ३

स एव सं भुवनान्यामरत् स एव सं भुवनानि पर्यत् ।

पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ४ ८९५

कालोऽमृं दिवंमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत ।

काले ह भूतं मन्व्यं चेपितं ह वि तिष्ठते ५

कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः ।

काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ६

काले मनः काले ग्राणः काले नामं समार्हितम् ।

कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ७

काले तपः काले ज्येष्ठे काले ब्रह्मं समार्हितम् ।

कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पिताऽऽसीत् प्रजापतिः ८

तेनैपितं तेन ज्ञातं तद् तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।

कालो ह ब्रह्मं मृत्वा विमर्ति परमेष्ठिनम् ९ ९००

कालः प्रजा असृजत कालो अप्रे प्रजापतिम् ।

स्वयंभूः कद्रपः कालात् तपः कालादजायत १० ९०१

॥ २६७ ॥ (अथर्व० १२।५४।१-१५)

अनुष्टुप्, २ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री; ५ इयवसाना पदपदा विराडष्टिः ।

कालादापुः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः ।	
कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः	१
कालेन वारतः पवते कालेन पृथिवी मही । धौर्मही काल आहिता	२
कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा ।	३
कालाद्वचः समभवन् यज्ञः कालादजायत	
कालो यज्ञं समैरयद् देवेभ्यो भागमक्षितम् ।	
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः	४ ९०५
कालेऽयमाङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः ।	
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विष्टीतीश्च पुण्याः ।	
सर्वाँल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः	५ ९०६

(१०) ऋतवः ।

॥ २६८ ॥ (ऋ० १।१५।१-१२)+

(९०७-१८) मेघातिथिः काण्वः । [ऋतुदेवताः = १ इन्द्रः, २ मरुतः, ३ त्वष्टा, ४ अग्निः, ५ इन्द्रः, ६ मित्रावरुणौ, ७-१० द्रविणोदाः, ११ अश्विनौ, १२ अग्निः] । गायत्री ।

इन्द्र सोमं पिवं ऋतुना ऽऽ त्वां विशन्त्विन्दवः । मत्सुरासुस्तदोकसः	१
मरुतः पिवन्त ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन । युयं हि ष्ठा सुदानवः	२
अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्राशो नेष्टः पिवं ऋतुना । त्वं हि रत्नधा असि	३
अग्ने देवाँ इहा बंह सादया योनिषु त्रिषु । परिं भूप पिवं ऋतुना	४ ९१०
ग्राशणादिन्द्र राधसः पिवा सोमंमूर्तुरुं । तवेद्वि सख्यमस्तृतम्	५
युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूर्ळमम् । ऋतुना यज्ञमाशाथे	६
द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अघ्वरे । यज्ञेषु देवमिच्छते	७
द्रविणोदा दंदात् नो वसन्ति यानि मृण्विरे । देवेषु ता वनामहे	८
द्रविणोदाः पिपीपति जुहोत प्र चं तिष्ठत । नेष्ट्राद्वतुभिरिव्यत	९ ९१५
पत् त्वां तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे । अधं स्मा नो दुर्दिर्भव	१० ९१६

+ ऋ० १।१५।१,४,१२ = दे० [अग्निः] २२-२१; [मरुतः] ५।

अश्विना पिबतं मधु दीर्घानी शुचित्रता । ऋतुना यज्ञवाहसा ११
 गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि । देवान् देवयुते यज्ञ १२ ११८

॥ २६९ ॥ (ऋ० २।३६।१-६) ७

(१११-३०) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्राः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । [ऋतुदेवताः-१ इन्द्रो मधुश्च, २ मरुतो माधवश्च, ३ त्वष्टा शुक्रश्च, ४ अग्निः शुचिश्च, ५ इन्द्रो नमश्च, ६ मित्रावरुणो नमस्यश्च । जगती ।

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ठ गा अपो ऽधुक्षन्तमीमविभिरद्रिभिर्नरः ।
 पिबेन्द्र स्वाहा प्रहृतं वपट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईक्षिषे ८
 यज्ञैः संमिक्षाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्-र्यामच्छुभ्रासो अजिषु प्रिया उत ।
 आसधा वहिर्भरतस्य स्रनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः २ ११०
 अमेवं नः सुहवा आ हि गन्तव नि वहिषिं मदतना रणिष्टन ।
 अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्वसु-स्त्वष्टं देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ३
 आ वक्षि देवा इह विप्र यक्षि चो-शन् हौतनिपदा योनिषु त्रिषु ।
 प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिवाग्नीध्रात् तव भागस्य तृष्णुहि ४
 एष स्य तं तन्वां नृम्यावर्धनः सह ओजः प्रदिविं वाहोर्हितः ।
 तुभ्यं सुतो मधवन् तुभ्यमार्भृत-स्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत् पिब ५
 जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होतां निविदंः पुर्व्या अतु ।
 अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ६ ११४

॥ २७० ॥ (अथर्व० २।३७।१-६) ×

[ऋतुदेवताः- १-४ द्रविणोदा ऋतवश्च, ५ अश्विनो, ६ अग्निः ऋतुश्च]

मन्दस्व होत्रादनु जोषुमन्वसो ऽध्वर्यवः स पूर्णां वष्टयासिचम् ।
 तस्मा एतं भरत तद्वयो दुदि-होत्रात् सोमं द्रविणोदः पिबं ऋतुभिः १ ११५
 यमु पूर्वमह्वे तमिदं ह्वे सेदु हव्यो द्रविषो नाम पत्यते ।
 अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिबं ऋतुभिः २
 मेघन्तु ते बह्वयो घेमिरीयसे ऽरिपण्यन् वीळ्यस्या वनस्पते ।
 आयूयां धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात् सोमं द्रविणोदः पिबं ऋतुभिः ३
 अपाद्दोत्राद्दुत पोत्रादमत्तो-त नेष्ट्रादजुपत् प्रयो हितम् ।
 तुरीयं पात्रमर्भुक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्रविणोदुसः ४ ११८

अर्वाश्रमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वा विमोचनम् ।
 पूङ्क्त हवींषि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीवद् ५
 जोष्यंसे समिधं जोष्याद्दृतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषिं सुष्टुतिम् ।
 विश्वंभिरिषीं ऋतुना वसो मह उशन् देवा उशतः पायया हविः ६ १३०

॥ २७१ ॥ [१३१ ४८] (वा० य० ७।३०)

उपयामगृहीतोऽसि मध्वे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि
 शुक्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नर्मसे त्वोपयाम-
 गृहीतोऽसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्जे त्वोप-
 यामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि
 तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोऽस्यहसस्पतये त्वा ३० १३१

॥ २७२ ॥ (वा० य० १३।२५)

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृत् अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी
 कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सन्नताः ।
 ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ।
 वासन्तिकावृत् अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया
 देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् २५ १३२

॥ २७३ ॥ (वा० य० १३।६, २५-२६, २७, २९)

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृत् अग्नेरन्तः० ।०। ग्रैष्मावृत् अभिकल्पमाना० ६
 नर्मश्च नभस्यश्च वार्षिकेवृत् अग्नेरन्तः० ।०। वार्षिकेवृत् अभिकल्पमाना० १५
 इष्योर्जश्च शारदावृत् अग्नेरन्तः० ।०। शारदावृत् अभिकल्पमाना० १६ १३५
 सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृत् अग्नेरन्तः० ।०। हैमन्तिकावृत् अभिकल्पमाना० २७
 एकाद्रशभिरस्तुवत ऋतवोऽसृज्यन्तार्त्विषा अधिपतय आसन् २९ १३७

॥ २७४ ॥ (वा० य० १५।१७)

तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृत् अग्नेरन्तः० ।०। शैशिरावृत् अभिकल्पमाना० ५७ १३८

॥ २७५ ॥ (वा० य० १७।३)

ऋतवै स्य ऋतावृधं ऋतुष्ठा स्यै ऋतावृधः ।
 पृतश्रुतो मधुश्रुतो विराजो नाम कामदद्या अर्क्षीयमाणाः ३ १३९

॥ २७६ ॥ (वा० य० २१।०३-२८)

वसन्तेन ऋतुना देवा वसवास्त्रिवृता स्तुताः ।	
रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः	२३ ९४०
ग्रीष्मेण ऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः ।	
बृहता यशसा बलं हविरिन्द्रे वयो दधुः	२४
वर्षाभिर्ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः ।	
वैरूपेण विशाजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः	२५
शारदेन ऋतुना देवा एकविंश ऋभवं स्तुताः ।	
वैराजेन श्रिया श्रियं हविरिन्द्रे वयो दधुः	२६
हेमन्तेन ऋतुना देवास्त्रिणवे मरुतं स्तुताः ।	
बलेन शक्रवरीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः	२७
शैशिरेण ऋतुना देवास्त्रयस्त्रिंशोऽमृता स्तुताः ।	
सत्येन रेवतीः क्षत्रं हविरिन्द्रे वयो दधुः	२८ ९४१

॥ २७७ ॥ (वा० य० २२।०८)

ऋतुभ्यः स्वाहाऽऽर्चवेभ्यः स्वाहा	२८ ९४६
----------------------------------	--------

॥ २७८ ॥ (वा० य० २३।१०)

ऋतवस्त ऋतुथा पर्वं अमितारो वि शसितु ।	
संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा	४० ९४७

॥ २७९ ॥ (वा० य० २६।१४)

ऋतवस्ते यज्ञं वि तन्वन्तु मासां रक्षन्तु ते हविः ।	
संवत्सरस्ते यज्ञं दधातु नः प्रजां च परिं पातु नः	१४ ९४८

॥ २८० ॥ (अथ० ३।१०।९)
(९४९-६४) अथर्षा । अनुष्टुप् ।

ऋतून् यज्ञं ऋतुपतीनार्तमानुत हायनान् ।	
समां संवत्सरान् मासान् भूतस्य पर्वये यजे	९ ९४९

॥ २८१ ॥ (अथ० ५।२८।१३) पुरउष्णिच् ।

ऋतुभिर्द्वार्वैरायुषे चर्चमे त्वा ।	
संवत्सरस्य तेजसा तेन महेन्दु कृणमि	१३ ९५०

॥ २८१ ॥ (अथर्व० ११।३।१७) आसुर्यनुष्टुप् ।

ऋसवः पक्तारं आर्तवाः समिन्धते

१७ १५१

॥ २८२ ॥ (अथर्व० १५।३।४) द्विपदाऽऽच्युंष्णिक् ।

तस्यां ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्चं वर्षाश्च द्वौ

४ १५२

॥ २८४ ॥ (अथर्व० १५।४।२-३, ५-६, ८-९, ११-१२, १४-१५, १७-१८)

वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्चं रथंतरं चानुष्टातारौ

२

वासन्तवेनं मासौ प्राच्यां दिशो गोपायतो बृहच्चं रथंतरं चानु तिष्ठतो

य एवं वेदं

३

ग्रीष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्टातारौ

५

१५५

ग्रीष्मवेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं

चानु तिष्ठतो य एवं वेदं

६

वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्टातारौ

८

वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्यां दिशो गोपायतो वैरूपं च वैराजं चानु तिष्ठतो

य एवं वेदं

९

शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् छयैतं च नौघसं चानुष्टातारौ

११

शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च नौघसं चानु तिष्ठतो

य एवं वेदं

१२

१६०

हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्टातारौ

१४

हैमनावेनं मासौ ध्रुवायां दिशो गोपायतो भूमिंश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेदं

१५

शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्टातारौ

१७

शैशिरावेनं मासावूर्ध्वायां दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेदं

१८

१६४

॥ २८५ ॥ (अथर्व० १०।६।१८)

(१६५) बृहस्पति । अनुष्टुप् ।

ऋतवस्तमवभ्रतार्तवास्तमवभ्रत । संवत्सरस्तं बृद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति

१८

१६५

॥ २८६ ॥ (अथर्व० ११।४।४)

(१६६) भार्गवो वेदार्थि । अनुष्टुप् ।

यत् प्राण ऋतावागतेऽभिकन्दृत्योर्पधीः ।

सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि

४

१६

॥ २८७ ॥ (अथर्व० ११।६।१७, २२)

(१६७-६८) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

ऋतुं ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।

समाः संवत्सरान् मासांस्ते नो मृञ्चन्त्वंहंसः

१७

या देवीः पर्ञ्चं प्रदिशो ये देवा द्वादशर्त्तवः ।

संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः ।

२२ १६८

॥ २८८ ॥ (अथर्व० ११।१।३६)

(१६९) अथर्वा । विपरीतपादलक्षणा पङ्क्तिः ।

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्वैमन्तः शिशिरो वसन्तः ।

ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम्

३६ १६९

॥ २८९ ॥ (अथर्व० १६।८।२१)

(१७०) यमः । आसुरी पङ्क्तिः ।

स आर्त्तवानां पाशान्मा मौचि

२१ १७०

॥ २९० ॥ (अथर्व० ७।१।१२२)

(१७१) प्रह्ला । त्रिष्टुप् ।

ऋतेन गुप्त ऋतुमिश्च सर्वभूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।

मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं संलिलेन वाचः

२९ १७१

(११) चन्द्रमाः । ×

॥ २९१ ॥ (ऋ० १०।८।११९) *

(१७२) साधित्री सूर्या ऋषिका । त्रिष्टुप् ।

नवोनवो भवति जायमानो ऽह्नां केतुर्हपसमित्त्वग्रम् ।

भागं देवेभ्यो वि दंघात्पापन् प्र चन्द्रमास्तिरते द्वीधमायुः

१९ १७२

॥ २९२ ॥ (ऋ० १०।९०।१३) +

(१७३) नारायणः । अनुष्टुप् ।

चन्द्रमा मनसो ज्ञात श्लोः सूर्यो अजायत ।

सुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरंजायत

१३ १७३

॥ २९३ ॥ [१७४-७९] (वा० य० १।२८)

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरग्निन्नुद्रादार्यं पृथिवीं जीवदांनुम् ।

यामैरयश्चन्द्रमसि स्वधामिस्तामु धीरांसो अनुदिश्य यजन्ते

२८ १७४

× १० [आयुर्वेद०] ६-७, ३२, ६८, ७१, ८८, ९१, ११६, १२३, १५४, २३२, २४५, २६८, २७४, ३१२ सूक्तानि ४२५मानि ।

* अथर्व० ७, ८१, २, १४, १, २३; + अथर्व १९, ६, ७ ।

॥ १९४ ॥

चन्द्राय स्वाहा (वा० य० ११।१८) + चन्द्रमसे किलासम् । (वा० य० ३०।११) २८ १७१

॥ १९५ ॥ (वा० य० १३।४, १०)

एष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा ।

यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा संवभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ४

सूर्ये एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।

अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत्

१० १७३

॥ १९६ ॥ (वा० य० ३१।१२)

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।

श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखाद्भिरजायत

१२ १७८

॥ १९७ ॥ (वा० य० ३३।९०)

चन्द्रमा अप्सवृन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।

रयि पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृह्य हरिरिति कनिक्रदत्

१० १७९

॥ १९८ ॥ (अथर्व० १।३।४)

(१८०-१०) अथर्वा । पथ्यापङ्क्तिः ।

विद्या शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृण्यम् ।

तेनां ते तन्वेक्षे शं करं पृथिव्यां ते निपेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति

४ १८०

॥ १९९ ॥ (अथर्व० २।११।१-५)

(एकावसानम्) १-४ निचृद्विपमा गायत्री, ५ भुरिग्विपमा ।

चन्द्र यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

१

चन्द्र यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

२

चन्द्र यत् तेऽचिस्तेन तं प्रत्यर्चं योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

३

चन्द्र यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

४

चन्द्र यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

५ १८१

॥ २०० ॥ (अथर्व० ५।१४।१०) चतुष्पदातिशङ्करौ ।

चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु ।

अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोघार्यामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां

चिर्यामस्यामाकृत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा

१० १८६

॥ ३०१ ॥ (अथर्वं ६।७।८।१-२) अनुष्टुप् ।

तेन मुतेन हविपायमा प्यायतां पुनः ।

ज्यायां यामस्मा आवाधुस्तां रसेनाभि वर्धताम्

१

अभि वर्धतां पर्यसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् । रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्वामनुपक्षितौ

२ १८८

॥ ३०२ ॥ (अथर्वं १८।४।८९) पञ्चपदा पर्यायपङ्क्तिः । x

चन्द्रमा अप्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।

न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस रौदसी

८९ १८९

॥ ३०३ ॥ (अथर्वं ११।११।४) अनुष्टुप् ।

चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।

तामा विशतु तां प्र विशतु सा वः शर्मं च वर्मं च यच्छतु

१९०

॥ ३०४ ॥ (अथर्वं ११।६।७)

(१९१) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

मुञ्चन्तु मा अप्थ्यादिहोरात्रे अथो ज्ञपाः ।

सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति

१९१

॥ ३०५ ॥ (अथर्वं ११।२७।२, ५)

(१९२-१३) भृग्वक्त्रिः । अनुष्टुप् ।

सोमस्त्वा पात्वोर्षधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः ।

माद्भयस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वार्तः प्राणेन रश्नु

२

घृतेन त्वा समुसाम्यम आज्येन वृधयेन् ।

अमेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दमन्

५ १९३

॥ ३०६ ॥ (अथर्वं ११।४३।४)

(१९४) शला । ज्ययसाना शङ्कुमती पथ्यापङ्क्तिः ।

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह । चन्द्रो मा तत्र नपतु मर्नश्चन्द्रो दधातु मे ष

१९४

चन्द्रमा-सहचारी-देवगणः ।

(१) सूर्यः चन्द्रश्च ।

॥ ३०७ ॥ (अथर्वं ६।१५।३)

(१९५-९६) शला । त्रिपाद् गायत्री ।

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न विमीतो न रिप्यतः । एवा मे प्राण मा विभेः

३ १९५

(२) द्यौः, पृथिवी, सूर्यः, चन्द्रमाः, अन्तरिक्षं च ।

॥ ३०८ ॥ (अथर्व० ८।१।१२) इयवसाना पञ्चपदा जगती ।

मा त्वा क्रुव्याद्रुमि मैस्तारात् संकसुकाच्चर ।

रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च । अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः १२ १९६

॥ ३०९ ॥ (अथर्व० ११।६।५)

(१९७) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसांबुमा ।

विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो भुञ्जन्त्वंहसः

५ १९७

(३) दिक्चन्द्रमसः ।

॥ ३१० ॥ (अथर्व० ४।३९।७-८)

(२९८-९९) अक्षिराः । ७ त्रिपदा महावृहती, ८ सस्तारपङ्क्तिः ।

द्विक्षु चन्द्राय समनमन्त्स आर्षोत् ।

यथा द्विक्षु चन्द्राय समनमन्नेवा मर्षं संनमः सं नमन्तु

दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः । ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषुमूर्जं कामं दुहाम् ।

आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा

७

८ १९९

(४) अग्निः, चन्द्रमाश्च ।

॥ ३११ ॥ (अथर्व० ६।८६।२)

(१०००) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

समुद्र ईशे स्रवतामग्निः पृथिव्या वृशी ।

चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेकवृषो भव

२ १०००

(१२) रात्रिः ।

॥ ३१२ ॥ (ऋ० १।११३।१ [उत्तरार्ध])

(१००१) वृत्त आक्षिरस । त्रिष्टुप् ।

यथा प्रथिता सवितुः सवायं एवा रात्र्युपसे योनिमारैक्

१ १००१

॥ ३१३ ॥ (ऋ० १०।१०।९)

(१०००) वैवस्वतो यमः क्रयिः । त्रिष्टुप् ।

रात्रींभिरस्मा अहंभिर्जशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुर्गुन्मिमीयात् ।
 दिवां पृथिव्या मिथुना सर्वन्धू यमीर्धमस्य विमृयादजाभि

९ १००२

॥ ३१४ ॥ (ऋ० १०।१२७।१-८)

(१००३-१०१०) कुशिकः सौमरः, रात्रिर्वा मारद्वाजी । गायत्री ।

रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्युक्षभिः । विश्वा अधि श्रियोऽधित १
 ओर्धेप्रा अमर्त्या निवर्तो देव्युर्द्वतः । ज्योतिषा वाधते तमः २
 निरु स्वसारमस्कृतो पसं देव्यायती । अपेदु हासते तमः ३ १००५
 सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्षमहि । वृक्षे न वसति वयः ४
 नि ग्रामासो अविशत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः । नि श्येनासंश्रिदार्धिनः ५
 यावपा वृक्यं वृकं यवयं स्तेनमूर्म्ये । अर्था नः सुतरा भव ६
 उपं मा पेपिशत् तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित । उपं क्रुण्वे यातय ७
 उपं ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः । रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ८ १०१०

॥ ३१५ ॥ [१०।११-१६] (वा० य० ३।१८)

चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय

१८ १०११

॥ ३१६ ॥ (वा० य० २३।१०) ×

घौरासीत् पूर्वचिच्चिरश्च आसीद् बृहद्रयः ।

अचिरासीत् पिलिप्पिला रात्रिरासीत् पिशङ्गिला

१२ १०१२

॥ ३१७ ॥ (वा० य० २४।२५)

अहं पारावतानालमते रात्र्यै सीचापूर्वहोरात्रयोः सन्धिर्म्यो

जुतर्मासंम्यो दात्योहान्संवत्सराय महतः सुपर्णान्

२५ १०१३

॥ ३१८ ॥ (वा० य० ३०।२६)

रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम्

२१ १०१४

॥ ३१९ ॥ (वा० य० ३४।२०) ×

आ रात्रि पार्थिव रजः पितुरप्रायि धार्मभिः ।

दिवः सदाश्मि बृहती वि तिष्ठसु आ त्पेणं वर्तते तमः

३२ १०१५

- ॥ ३२० ॥ (वा० य० ३७।११ [उत्तरार्धः]) +
 रात्रिः केतुना जुषता५ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा २१ १०१६
- ॥ ३२१ ॥ (अथर्व० १।१६।१)
 (१०१७) चातनः । अनुष्टुप् ।
 येमावास्यां३ रात्रिमुदस्युर्वाजमत्त्रिणः ।
 अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मम्युमर्षिं ब्रवत् १ १०१७
- ॥ ३२२ ॥ (अथर्व० २।१५।२)
 (१०१८-१९) ब्रह्मा । त्रिपाद् गायत्री ।
 यथाहश्च रात्रीं च न विभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा विभेः २ १०१८
- ॥ ३२३ ॥ (अथर्व० २।३।३०) प्राजापत्याऽनुष्टुप् ।
 स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत ३० १०१९
- ॥ ३२४ ॥ (अथर्व० ५।५।१)
 (१०२०-२९) अथर्वा । अनुष्टुप् ।
 रात्रीं माता नभः पितार्यमा तै पितामहः ।
 सिद्धाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा १ १०२०
- ॥ ३२५ ॥ (अथर्व० १।५।२।५, १३, २१, २९) द्विपदाऽऽर्चा गायत्री ।
 श्रद्धा पुंश्रुली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहंरुष्णीपं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ
 कल्मलिर्मणिः ५
- उयाः पुंश्रुली मन्त्रौ मागधो विज्ञानं वासोऽहंरुष्णीपं रात्री केशा हरितौ १३
- इरा पुंश्रुली हसौ मागधो विज्ञानं वासोऽहंरुष्णीपं रात्री केशा हरितौ २१
- विद्युत् पुंश्रुली स्तनयित्त्तुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहंरुष्णीपं रात्री केशा हरितौ २९ १०२४
- ॥ ३२६ ॥ (अथर्व० १।५।१।१, ३, ५, ७, ९)
 १ साम्युष्णिक्, ३, ५, ७ आसुरी गायत्री; ९ द्विपदानिचूद्रायत्री ।
 तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमर्तिधिर्गृहे वसति १ १०२५
 तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमर्तिधिर्गृहे वसति ३
 तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमर्तिधिर्गृहे वसति ५
 तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यश्चतुर्थीं रात्रिमर्तिधिर्गृहे वसति ७
 तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽपरिमिता रात्रीरर्तिधिर्गृहे वसति ९ १०२९

॥ ३२७ ॥ (अथर्व० ६।१२८।२)
(१३०) अङ्गिराः । अनुष्टुप् ।

भद्राहं नो मर्घ्यंदिनि भद्राहं सायमस्तु नः ।

भद्राहं नो अह्नां पाता रात्रीं भद्राहमस्तु नः

२ १०३०

॥ ३२८ ॥ (अथर्व० १९।७।१०-९)*

(१०३१-५२) गोपय । अनुष्टुप् ; १ पञ्चपदाऽनुष्टुभर्मा पराऽतिजगती ;
६ पुरस्ताद्बृहती ; ७ श्यवसाना पदपदा जगती ।

न यस्याः पारं ददृशे न योर्ध्वद् विश्वमस्यां नि विशते यदेजति ।

अरिंष्टासस्त उवि तमस्वति रात्रिं पारमशीमहि भद्रं पारमशीमहि २

ये तं रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नवं । अशीतिः सन्त्यष्टा उतो तं सप्त सप्ततिः ३

पृष्टिश्च पदं च रेवति पश्चाश्च पश्च सुन्नयि । चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ४

द्वौ च ते विशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः । तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ५

रक्षा मार्किर्नो अघर्षस ईशत मा नो दुःशंस ईशत ।

मा नो अद्य गवां स्तेनो मार्वाणां वृक ईशत

६ १०३५

माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः ।

परमेभिः पृथिभिं स्तेनो धावतु तस्करः । परेण दुत्वती रज्जुः परेणाघ्रायुरर्षतु ७

अधं रात्रि तुष्टधूमशीर्षाणमहिं कृणु । हनु वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ८

त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिप्यामसि जागृहि ।

गोभ्यो नुः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः

९ १०३८

॥ ३२९ ॥ (अथर्व० १९।७।११-६)

अनुष्टुप् ; १ त्रिपदाऽऽर्षीं गायत्री ; २ त्रिपदा विराडनुष्टुप् ; ३ बृहतीगर्भाऽनुष्टुप् ;
५ पथ्यापङ्क्तिः ।

अथो यानि च यस्मां ह यानि चान्तः परीणहिं । तानि ते परिं दशसि १

रात्रि मार्तरुषसं नुः परिं देहि । उपा नो अहे परिं दद्रात्वहस्तुभ्यं विभावरि २ १०४०

यत् किं चेदं पतर्यति यत् किं चेदं सीरिसृपम् ।

यत् किं च पर्वतायासत्वं तस्मात् त्वं रात्रि पाहि नः ३

सा पश्चात् पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत ।

गोपायं नो विभावरि स्तोतारंस्त इह स्मसि

४ १०४२

ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति
 पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ते नः पशुषु जाग्रति ५
 वेदु वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।
 तां त्वा भरद्वाजो वेदु सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ६ १०४४

॥ ३३० ॥ (अथर्वं ११।५०।१-७) अनुष्टुप् ।

अधे रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु । अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि १ १०४५
 ये ते रात्र्यनुद्वाहस्तीक्ष्णशृङ्गाः स्वाशवः । तेभिर्नो अद्य पारयार्ति दुर्गाणि विश्वहा २
 रात्रिरात्रिमरिष्यन्तस्तरैम तन्वा वियम् । गम्भीरमर्लवा इव न तरैयुररांतयः ३
 यथा शाम्पाकः प्रपतन्नपवान् नानुविद्यते । एवा रात्रि प्र पांतय यो अस्माँ अभ्यघायति ४
 अप स्तेन वासो गोअजमुत तस्करम् । अयो यो अर्बतः शिरोंऽभिघाय निनीपति ५
 यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु । यदेतदस्मान् भोजय यथेदुन्यानुपार्थसि ६ १०५०
 उपसे नः परि देहि सर्वान् रात्र्येनागसः । उपा नो अहे आ मजादहस्तुभ्यं विभावरि ७ १०५१

॥ ३३१ ॥ (अथर्वं ११।४९।१-१०)

(१०५०-६०) गोपया, मरद्वाजश्च । अनुष्टुप् ; १-५, ८ त्रिष्टुप् ; ६ आस्वारपङ्क्तिः ; ७ पद्यापङ्क्तिः ;
 १० इयवसाना पटपदा जगती ।

इपिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य ।
 अश्वक्षमा सुहवा संभृतश्रीरा पंग्रौ धावापृथिवी महित्वा १
 अहि विश्वान्परुहद् गम्भीरो वपिष्ठमरुहन्त अविष्टाः ।
 उशती रात्र्यनु सा मद्रामि तिष्ठते मित्र इव स्वधार्मिः २
 वये चन्दे सुभगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम् ।
 अस्माँघ्रायस्व नयीणि ज्ञाता अयो यानि गन्यानि पुष्ट्या ३
 सिंहस्य रात्र्युशती पीपस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे ।
 अश्वस्य ब्रध्ने पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुपे विभाती ४ १०५५
 शिवां रात्रिमनुस्य च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
 अस्य स्तोमस्य सुभगे नि वोध येन त्वा चन्दे विश्वासु दिक्षु ५
 स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजैव जोपसे ।
 आसाम् सर्ववीरा मवाम् सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनुपसः ६ १०५७

- शर्म्या ह नाम दधिपे मम दिप्सन्ति ये घना ।
 रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न विद्यते ७
 मद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्ट्वं गोरूप युवतिर्विमपि ।
 चक्षुष्मती मे उशती वर्षपि प्रति त्वं दिव्या न क्षाममुक्याः ८
 यो अद्य स्तेन आर्यत्वघायुर्मर्त्यो रिपुः ।
 रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरों हनत् ९ १०६०
 प्र पादौ न यथार्यति प्र हस्तौ न यथाश्लिषत् ।
 यो मलिच्छुरुपर्यति स संविष्टो अपार्यति ।
 अपार्यति स्वपार्यति शुष्कं स्थाणावपार्यति १० १०६१
 ॥ ३३२ ॥ [१०६०-६७] (वा० य० ६१२१)
 अहोरात्रे गच्छ स्वाहा २१ १०६२
 ॥ ३३३ ॥ (वा० य० १४१३०)
 नयद्रुशभिस्तुवत् शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे अर्धपत्नी आस्ताम् ३० १०६३
 ॥ ३३४ ॥ (वा० य० १८१२३)
 अहोरात्रे ऊर्ध्वीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् २३ १०६४
 ॥ ३३५ ॥ (वा० य० २११२८)
 अहोरात्रेभ्यः स्वाहा २८ १०६५
 ॥ ३३६ ॥ (वा० य० २३१४१)
 अर्धमासाः परुक्षपि ते मासा आ च्छर्यन्तु शर्मन्तः ।
 अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टं हृदयन्तु ते ४१ १०६६
 ॥ ३३७ ॥ (वा० य० ३११२०)
 श्रीश्वं ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमधिनी व्याचम् ।
 इष्णाभिषाणासुं मे इषाण सर्वलोकं मे इषाण २ १०६७
 ॥ ३३८ ॥ (अथर्व० ६१०८११)
 (१०६८) अदित्याः । अनुष्टुप् ।
 अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् ।
 मद्राहमसर्भ्यं राजन्डकधूम त्वं ऊचि ३ १०६८

॥ ३३९ ॥ (अथर्व० १५।१।२२)

(१०६९-७३) अथर्वो । आसुरी गायत्री ।

अहंश्च रात्रीं च परिष्कन्दौ मनो विपथम् २२ १०६९

॥ ३४० ॥ (अथर्व० १५।६।१७-१८) १७ आर्ची पङ्क्तिः, १८ विराड् जगती ।

तमृतबंधार्तिवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्यचिलन् १७ १०७०

ऋतूनां च वै स आर्तिवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां चार्धमासानां

चाहोरात्रयोश्च त्रियं धाम भवति य एवं वेद १८ १०७१

॥ ३४१ ॥ (अथर्व० १५।१८।४-५) आर्च्यनुष्टुप् ।

अहोरात्रे नार्सिके दितिश्वार्दितिश्व शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः ४

अर्द्धा प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय ५ १०७३

॥ ३४२ ॥ (अथर्व० १६।८।१४) +

(१०७४) यमः । आसुरी जगती ।

सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मौचि २४ १०७४

रात्रि-सहचारी-देवगणः ।

रात्रिः, धेनुः ।

॥ ३४३ ॥ (अथर्व० ३।१०।२-४)

(१०७५-७७) २-३ अनुष्टुप्, ४ त्रिष्टुप् ।

यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं धेनुर्धृषापृतीम् ।

संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली २ १०७५

संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वां रात्र्युपास्महे ।

सा न आर्युष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ३

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छद्वास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।

महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगजनित्री ४ १०७७

॥ ३२२ ॥ (अथर्व० १०।२६)

(१०७८) नारायणः । यानः । जगती ।

ऋः सुप्त खानि वि तवदं श्रीणि कर्णोविमौ नासिके चर्षणी मुतम्
 येषां पुत्रा विजयस्य महानि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम्

६ १०७८

(१३) पूर्णिमा ।

॥ ३२२ ॥ (अथर्व० ७।८०।१-२, २)

(१०७९-८०) अथर्वो । त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप् ।

पूर्णा पश्चाद्भूत पूर्णा पुरस्ताद्भूतं च्युतः पूर्णमासी विंशत्य ।
 तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिधा मंदेम
 वृषमं वाजिनं वृयं पूर्णमासं यजामहे ।

१

स नो दद्रात्वक्षितां रयिमनुपदस्वतीम्

२ १०८०

पूर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रिणामविश्वरेषु ।

ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्चयन्त्यमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः

४

॥ ३२६ ॥ (अथर्व० १५।१६।१) साम्युष्मिष् ।

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पूर्णमासी

१ १०८२

(१४) राका ।

॥ ३२७ ॥ (ऋ० २।३२।४-५) ३

(१०८३-८४) शूत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । जगती ।

राकामहं मुहर्षां सुष्टुती हुवे शुणोतुं नः सुमगा बोधतु त्मना ।

सीव्यत्त्वर्षः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं श्रुतदायमुक्थ्यम्

४

यास्तं राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि द्राष्टुपे वक्षनि ।

ताभिर्नो अथ सुमना उपार्गाहि सहस्रपोषं सुमगे राणा

५ १०८४

(१५) अमावास्या ।

॥ ३२८ ॥ (अथर्व० ७।७९।१-४)

(१०८५-९१) अथर्वो । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

यत् ते देवा अकृण्वन् माग्धेयमर्मावास्ये संवसन्तो महित्वा ।

तेनां नो यज्ञं पिष्टुहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुमगे सुवीरम्

१ १०८५

अहमेवास्यर्षमावास्याः मामा वंसन्ति सुकृतो मयीमे ।

मार्ये देवा उमये साच्याथेन्द्रं ज्येष्ठाः समगच्छन्तु सर्वे

२ १०८६

आगन् रात्रीं संगमनीं वसुनामूर्जे पुष्टं वस्त्रावेभ्यन्ती ।

अमावास्यां चै हविषां विधेमोर्जे दुहानां पर्यसा न आगन् ३

अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जेजान ।

यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो ग्नीणाम् ४ १०८८

॥ ३४९ ॥ (अथर्वं १५।०।१४) सास्त्री पङ्क्तिः ।

अमावास्यां च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपथम् १४ १०८९

॥ ३५० ॥ (अथर्वं १५।१६।३) साम्प्रयुष्णिक् ।

तस्य ब्राह्मणस्य । योऽस्य तृतीयोऽपानः सामावास्यां ३ १०९०

॥ ३५१ ॥ (अथर्वं १५।१७।९) द्विपदा सास्त्री त्रिष्टुप् ।

तस्य ब्राह्मणस्य । यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत् पौर्णमासी च ९ १०९१

(१६) सिनीवाली ।

॥ ३५२ ॥ (क्र० ७।३१।६-७) ×

(१०९२-९३) शृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गव. शौनकः । अनुष्टुप् ।

सिनीवालि पृथुष्टके या देवानामसि स्वसा ।

जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिदिडि नः ६

या सुवाहुः स्वहुरिः सुपृमा बहुसवरी ।

तस्यै विश्वतस्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ७ १०९३

॥ ३५३ ॥ (अथर्वं ७।४६।३)

(१०९४) अथवा । त्रिष्टुप् ।

या त्रिपत्नीन्द्रमभिं प्रवीचीं सहस्रस्तुकाभियन्तीं देवी ।

विष्णोः पत्रि तुभ्यं राता हवीषि पतिं देवि राघसे चोदयस्व ३ १०९४

॥ ३५४ ॥ [१०९५] (या० य० ११।५५) ×

संस्तुष्टां वसुमी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम् ।

हस्ताभ्यां मूर्ध्ना कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ५५ १०९५

॥ ३५५ ॥ (अथर्वं ९।४।१४)

(१०९६) धृष्णा । अनुष्टुप् ।

गुदा आसन्तिसनीगल्पाः सूर्यायाम्स्वर्चमम्रवन् ।

उत्थातुर्गम्वन् पुद क्रुपुमं यदकल्पयन् १४ १०९६

१४ १०९६

सिनीवाली-सहचारी-देवगणः ।

(१) गुंगू-सिनीवाली-राका-सरस्वतीन्द्राणीवरुणानीः ।

॥ ३५६ ॥ (क्र० २३०३)

(१०९७) घृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । अनुष्टुप् ।

या गुङ्गूया सिनीवाली या राकाया सरस्वती । इन्द्राणीमहं ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ३ १०९७

(२) बृहस्पतिः, सिनीवाली, अनुमतिः ।

॥ ३५७ ॥ (अथर्व० २१२६।२)

(१०९८) सविता । त्रिष्टुप् ।

इमं गोष्ठं पशवः सं संवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन् ।

सिनीवाली नयत्वाग्रमेपामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ

२ १०९८

(३) सिनीवाली-सरस्वत्याश्विनः ।

॥ ३५८ ॥ (अथर्व० ५।२५।३) ×

(१०९९) ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

गर्भं धेहि सिनीवाल्लि गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करसजा ३ १०९९

(४) प्रजापतिः, अनुमतिः, सिनीवाली ।

॥ ३५९ ॥ (अथर्व० ६।११।३)

(११००) प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।

प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीकल्पत् । स्रैपूयमन्यत्र दधत् पुमांससु दधद्विह ३ ११००

(५) विष्णुः, सरस्वती, सिनीवाली, भगः ।

॥ ३६० ॥ (अथर्व० १४।१।१५, २१)

(११०१-११०२) सूर्या सावित्री । १५ भुरिक्, २१ अनुष्टुप् ।

प्रतिं तिष्ठ विराडसि विष्णुरिविह सरस्वति ।

सिनीवाल्लि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत्

१५

शर्म वमैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरै । सिनीवाल्लि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् २१ ११०२

(६) सरस्वती, सिनीवाली ।

॥ ३६१ ॥ (अथर्व० १९।३।१०)

(११०३) सविता । अनुष्टुप् ।

आ भे धनं सरस्वती पर्यस्फाति च धान्यम् । सिनीवाल्ल्युपा वहादुयं चौदुम्बरो माणिः १० ११०३

(१७) कुहूः ।

॥ ३६२ ॥ (अथर्व० ७।४७।१-२)

(११०४-११०५) अथर्वी । १ जगती, २ त्रिष्टुप् ।

कुहूँ देवीं सुकृतं विघ्ननापसमसिन् यज्ञे सुहृवां जोहवीमि ।

सा नो रयिं विश्ववारं नि रञ्छाद् ददातु वीरं श्रुतदायमुकथ्यम् १

कुहूँ देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्थ हविषो जुषेत ।

शृणोतु यज्ञमृशती नो अद्य रायस्पोषं चिकितुषीं दधातु २ ११०५

(१८) नक्षत्राणि ।

॥ ३६३ ॥ [११०६-१३] (वा० य० १४।१९)

नक्षत्राणि छन्दः

१९ ११०६

॥ ३६४ ॥ (वा० य० १८।१८,४०)

नक्षत्राणि च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्

१८

तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो मेकुरयो नाम । ताम्यः स्वाहा

४० ११०८

॥ ३६५ ॥ (वा० य० २०।२८) X

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा

२८ ११०३

॥ ३६६ ॥ (वा० य० २३।४३)

धौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते ।

स्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया

४३ १११०

॥ ३६७ ॥ (वा० य० २५।९)

नक्षत्राणि रूपेण

९ ११११

॥ ३६८ ॥ (वा० य० ३०।१०,२१)

प्रज्ञानाय नक्षत्रदुर्गम् ॥ १० ॥ नक्षत्रेभ्यः किर्मिरम्

२१ १११३

॥ ३६९ ॥ (अथर्व० १।२।४)

(१११४) मातृनामा । त्रिपादिराज्नाम गायत्री ।

अध्रिये दिद्यन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचेध्वे ।

ताम्यो यो देवीर्नम इत् कृणोमि

४ १११४

॥ ३७० ॥ (अथर्व० ३।७।७)

(१११५) शृग्वहिरा । अनुष्टुप् ।

अपयामे नक्षत्राणामपयाम उपमांमुत । अपासत् सर्वं दुर्भूतमपं क्षेत्रियमुच्छतु ७ १११५

॥ ३७१ ॥ (अथर्व० ६।१०८।१, ४)
(१११६-१७) अदिराः । अनुष्टुप् ।

शक्रधूमं नक्षत्राणि यद् राजानमकुर्वत । भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति १
यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा । तस्मै ते नक्षत्रराज शक्रधूम सदा नमः ४ १११७

॥ ३७२ ॥ (अथर्व० ९।७।१५)
(१११८-१९) ब्रह्मा । साम्नी बृहती ।

विश्वव्यचाश्वमौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् १५ १११८

॥ ३७३ ॥ (अथर्व० १३।६।०८) प्राजापत्याऽनुष्टुप् ।

तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह २८ १११९

॥ ३७४ ॥ (अथर्व० १०।२।२०-२३)
(११२०-२१) नारायणः । अनुष्टुप् ।

केन देवाँ अनु क्षियति केन दैवजनीर्विशः । केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत् क्षत्रमुच्यते २२ ११२०
ब्रह्म देवाँ अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः ।

ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत् क्षत्रमुच्यते २३ ११२१

॥ ३७५ ॥ (अथर्व० ११।६।१०)
(११२२) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।

समुद्रा नद्यो विशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वहंसः १० ११२३

॥ ३७६ ॥ (अथर्व० १५।१७।४)
(११२३) अथर्वा । साम्न्युष्णिक् ।

तस्य ब्राह्मस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि ४ ११२४

॥ ३७७ ॥ (अथर्व० १९।७।१-५)
(११२४-२४) गार्ग्यः । त्रिष्टुप्, ४ सुरिक् ।

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि ध्रुवने जवानि ।

तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः संपर्यामि नार्कम् १

सुहवमग्रे कृत्तिका रोहिणी चास्तुं मद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।

पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुरांशुषा अर्यनं मृधा मे २ ११२५

पुष्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।

राधे विश्वासे सुहवानुराधा ज्येष्ठां सुनक्षत्रमरिष्टं मूलम् ३ ११२६

अन्नं पूर्वां रासतां मे अपाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु ।

अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम्

आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्रुया श्रोष्ठपदा सुशर्म ।

आ रेवती चाश्वयुजौ भगै म आ मे रयि भरण्य आ वहन्तु

॥ ३७८ ॥ (अथर्व० १९।८।१-५,७) त्रिष्टुप्, १ विराड् जगती ।

यानि नक्षत्राणि दिव्यंश्चरिषे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।

प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु

अष्टाविंशानि शिवानि शम्भानि सह योगं भजन्तु मे ।

योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु

स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु ।

सुहवमग्रे खस्त्व्यंमर्त्यं गत्वा पुनरायांभिनन्दन

अनुहवं परिहवं परिवार्दं परिक्ष्वम् । सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान् परा तान् संवितः सुव

अपपापं परिक्ष्वं पुण्यं भक्षीमहि क्ष्वम् । शिवा तै पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहेताम्

स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु

नक्षत्राणि-सहचारी-देवगणः ।

(१) द्यौः, चक्षुः, नक्षत्राणि, सूर्यः ।

॥ ३७९ ॥ (अथर्व० ६।१०।३)

(११३५) शन्तातिः । साक्षी वृहती ।

दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा

(२) सूर्यः, चन्द्रः, नक्षत्राणि ।

॥ ३८० ॥ (अथर्व० १५।६।५ - ६)

(११।६-३७) अथर्वा । ५ साक्षी त्रिष्टुप्, ६ निघृद् वृहती ।

तमृतं च मृत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुष्यचिलन्

श्रुतस्य च वै स मृत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च

प्रियं धामं भवति य एवं वेदं



शिक्षा-विभाग

शिक्षा-मंत्री

१ अग्निदेवता ।

॥ १ ॥ (ऋग्वेदस्य मण्डलं १, सूक्तं १, मंत्राः १-९) [१-९] मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री (८×३) ।

॥३॥

अग्निमीळे पुरोहितं	यज्ञस्य देवमृत्विजम्	। होतारं रत्नधातमम्	१
अग्निः पूर्वभिर्ऋषिभिर्	ईदृथो नूनैरुत	। स देवाँ एह वंशति	२
अग्निना रयिमश्नवत्	पोषमेव द्विवेदिवे	। यशसं वीरवचमम्	३
अग्ने यं यज्ञमध्वरं	विश्वतः परिभूरसि	। स इद् देवेषु गच्छति	४
अग्निहोतां कविक्रतुस्	सत्यश्चित्रश्रवस्तमः	। देवो देवेभिरा गमत्	५
यदुक्तं दाशुषे त्वम्	अग्ने भद्रं करिष्यसि	। तवेत् तव सत्यमङ्गिरः	६
उप त्वामे द्विवेदिवे	दोषावस्तर्धिया वृषम्	। नमो भरन्त एमसि	७
राजन्तमध्वराणां	शोषामृतस्य दीदिविम्	। वर्धमानं स्वे दमे	८
स नः पितेर्ध सुनवे	ऽग्ने सूपायनो मव	। सचंस्वा नः स्वस्तये	९

॥ २ ॥ (ऋ० १। १२। १-१२) [१० - २६] मेघातिथिः काण्वः । गायत्री ।

अग्निं दूतं चूणीमहे	होतारं विश्वेदसम्	। अस्य यज्ञस्य सुकृतम्	१०
अग्निमग्निं हवीममिस्	सदा हवन्त विशपतिम्	। हव्यवाहं पुरुप्रियम्	११
अग्ने देवाँ इहा वंह	जज्ञानो वृक्तर्वाहिषे	। अग्निं होतां न ईदृथः	१२
तो लंशतो वि चोधय	यदग्ने यासि दूत्यम्	। देवरा संतिसि वाहिषि	१३

घृताहवन दीदिवः	प्रतिं प्म रिपंतो दह । अग्ने त्वं रक्षस्विनः	१४
अग्निनाग्निः समिध्यते	कृविर्गृहर्पतिर्युवा । हृद्यवाड् जुह्वांस्यः	१५
कृविमग्निमृषं स्तुहि	सत्यधर्माणमध्वरे । देवर्ममीवचार्तनम्	१६
यस्त्वामग्ने हृविर्पतिरु	दुतं देव सपर्यति । तस्यै स प्राविता मंत्र	१७
यो अग्निं देववीतये	हृविर्मो आविवांसति । तस्मै पावक मृळ्य	१८
स नः पावक दीदिवो	ऽग्ने देवा इहा वह । उपं युजं हृविश्च नः	१९
स नः स्तवान् आ भर	गायत्रेण नवीयसा । रयिं वीरवंतीमिषम्	२०
अग्ने शुक्लेर्ण शोचिषा	विश्वाभिर्देवर्हृतिभिः । मं स्तोमं जुषस्व नः	२१

॥ ३ ॥ (क्र० १।१५।४, १२)

अग्ने देवा इहा वह	सादया योनिषु त्रिषु । परिं भूष पिबं क्रतुना	२२
गार्हपत्येन सन्त्य	क्रतुना यज्ञनीरसि । देवान् देवयुते यज	२३

॥ ४ ॥ (क्र० १।२०।९-१०)

अग्ने पर्त्वारिहा वह	देवानामृशतीरुषं । त्वष्टारं सोमपीतये	२४
आ मा अग्र इहावसे	होत्रो यविष्ठ भारतीम् । वरुत्रो धिषणां वह	२५

॥ ५ ॥ (क्र० १।२३।२४) अत्रुष्टुप् (८×४) ।

सं माग्ने वचसा सृज	सं प्रजया समायुषा ।	
विद्युर्मै अस्य देवा	इन्द्रो विद्यात् सह क्रपिभिः	२४

॥ ६ ॥ (क्र० १।२४।२)

[१७-४९] शुनःशेष आजीगतिः स कृत्रिमो वैश्वामिमो देवरातः । त्रिष्टुप् (११×४) ।

अग्नेर्व्यं प्रथमस्यामृतानां	मनामहे चारु देवस्य नाम ।	
स नो मृषा आदितये पुनर्दात्	पितरं च दृशेयं मातरं च	२७

॥ ७ ॥ (क्र० १।२६।१-१०) गायत्री (८×३) ।

वसिष्ठा हि मिषेप्य	घस्ताण्युजां पते । सेमं नो अघ्नुरं यज	२८
नि नो होता वरेण्यस्	सदा यविष्ठ मन्मभिः । अग्ने दिविर्तमता वचः	२९
आ दि र्मा सुनर्षे पिता	ऽऽपिर्षेजत्यापये । सरता सत्ये वरेण्यः	३०

आ नो वृही रिश्रादसो	वरुणो मित्रो अर्यमा ।	सीदन्तु मनुषो यथा	३१
पूर्व्यं होतरस्य भो	मन्दस्व सख्यस्य च ।	इमा उ पु श्रुधी गिरः	३२
यच्चिद्धि शश्वता तना	देवंदेवं यजामहे ।	त्वे इद्रूपते वृधिः	३३
प्रियो नो अस्तु-विश्वपतिर्	होता मन्द्रो वरेण्यः ।	प्रियाः स्वग्रयो वयम्	३४
स्वग्रयो हि वार्यं	देवासो दधिरे च नः ।	स्वग्रयो मनामहे	३५
अथा न उभयेषाम्	अमृत मर्यानाम् ।	मिथः संन्तु प्रशस्तयः	३६
विश्वेभिरग्रे अग्निभिर्	इमं यज्ञमिदं वचः ।	चनो धाः सहसो यदो	३७

॥ ८ ॥ (ऋ० १ । २७ । १-२२) ।

अश्वं न त्वा वारवन्तं	वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।	सम्राजन्तमध्वराणाम्	३८
स धा नः सूनुः शर्वसा	पृथुप्रगामा सुशेवः ।	मीर्द्रा अस्माकं वभूयात्	३९
स नो दूराक्षासाच्च	नि मर्यादद्यायोः ।	पाहि सदमिद् विश्वार्युः	४०
इमम् पु त्वमस्माकं	सनिं गांयत्रं नव्यासम् ।	अग्रे देवेषु प्र वीचः	४१
आ नो भज परमेष्वा	वाजेपु मध्यमेपु ।	शिक्षा वस्वो अन्तमस्य	४२
विभक्तार्सिं चित्रभानो	सिन्धोर्लुमा उपाक आ ।	सद्यो द्राशुपे धरसि	४३
यमग्रे पृत्सु मर्यम्	अवा वाजेपु यं जुनाः ।	स यन्ता शश्वतीरिपः	४४
नकिरस्य सहन्त्य	पर्यंता कर्यस्य चित् ।	वाजो अस्ति श्रवाग्यः	४५
स वाजं विश्वचर्षणिर्	अर्धद्विरस्तु तरुता ।	विश्वेभिरस्तु सनिता	४६
जराबोधे तद् विविद्धि	विश्वेर्विशे यज्ञियाय ।	स्तोमं रुद्राय दृशीकम्	४७
स नो मुहो अनिमानो	धूमकेतुः पुरुश्रन्द्रः ।	धिमे वाजाय दिन्वतु	४८
स रेवो इव विश्वपतिर्	दैव्यः केतुः शृणोतु नः ।	उक्थ्यग्निर्यद्वृहद्भानुः	४९

॥ ९ ॥ (ऋ० १ । ३२ । १-२८) [५० - ६७] हिरण्यग्नूप आङ्गिरसः ।
जगती (१२×३); ५७, ६५, ६७ त्रिष्टुप् (२१×२) ।

त्वमग्रे प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्	देवो देवानामभवः शिवः मरुता ।	
तर्षं व्रते क्वयो विश्वनापमो	ऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः	५०
त्वमग्रे प्रथमो अङ्गिरस्तमः	कुविदेवानां परि भूपमि व्रतम् ।	
विश्वविश्वस्मै भुवनाय मेधिगे	द्विमाता प्रायः कतिधा चिद्रायं	५१

त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्चन	आविर्भव सुकृतया विवस्वते ।	
अरेजेतां रोदसी होतृवृषे	ऽसंभोर्भारमयजो महो वंसो	५२
त्वमग्ने मनने धामवाशयः	पूरुरवसे सुकृते सुकृत्तरः ।	
श्वारेण यत् पित्रोर्मुच्यसे पर्या	ऽऽ त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः	५३
त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन	उद्यतसुचे भवसि श्रवाय्यः ।	
य आहुतिं परि वेदा वपट्कृतिम्	एकायुरग्रे विश आविवांससि	५४
त्वमग्ने वृजिनवर्तनि नरं	सकमन् पिपिं विदथे विचर्पणे ।	
यः श्ररसात् परितक्म्ये धने	दुभ्रेभिश्चित् समृता हंसि भूयसः	५५
त्वं तमग्ने अमृतत्प उक्तमे	मती दधासि श्रवसे दिवेदिवे ।	
यस्तावपाण उभयाय जन्मने	मयः कृणोपि प्रय आ चं सुरये	५६
त्वं नो अग्रे सनधे धर्मानां	यशसं फारुं कृणुहि स्तवानः ।	
ऋष्याम कर्मापसा नधेन	देवैर्घावापृथिवी प्रारवत नः	५७
त्वं नो अग्रे पित्रोरुपस्थ आ	देवो देवेष्पनवद्य जागृविः ।	
तनूकृद् बोधि प्रमतिश्च कारवे	त्वं कल्पण वसु विश्वमोपिपे	५८
त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्	त्वं वयस्कृत् तवं जामयो वयम् ।	
सं त्वा रायः शक्तिनः सं संहसिणः	सुधीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य	५९
त्वमग्ने प्रथममायुमायवे	देवा अकृण्वन् नहुपस्य निदपतिम् ।	
इदामकृण्वन् मनुपस्य श्रासनीं	पितर्यत् पुत्रो ममकस्यं जायते	६०
त्वं नो अग्रे त्र देव पायुभिर्	सुघोनो रक्ष तन्वथ वन्ध ।	
श्राता तोरुस्य तनये गवामसि	अनिमेषं रक्षमाणस्तवं व्रते	६१
त्वमग्ने जय्यने पायुरन्तरो	ऽनिपुद्गार्य चतुरक्ष ईष्यमे ।	
यो रातह्यपोऽनृकाय धार्यसे	कीरोक्षिन् मन्त्रं नर्नसा वनोपि तम्	६२
त्वमग्ने उरुगंभाय श्राघते	स्पाटं यद् रेवणः परमं वनोपि तत् ।	
आप्रम्यं चिन् प्रमतिरुच्यमे पिता	प्र पाकं शास्मि प्र दिशो विदुष्टरः	६३
त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं	वभेय स्पृतं परि पापि विधत्तः ।	
स्पाटधन्ना यो वंसना स्पानृन्	जीविगात्रं यजते गोपमा द्विवः	६४

इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगांम दूरात् ।	
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भूमिरस्यृषिकृन् मर्त्यानाम्	६५
मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत् सदाने पूर्ववच्छुचे ।	
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनम् आ सादय बर्हिषि यक्षिं च प्रियम्	६६
एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्तीं वा यत्तं चक्रुमा विदा वा ।	
उत प्र णेप्यमि वस्यो अस्मान्त् सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या	६७

॥ १० ॥ (क्र० १।३६।१-१२, ५-२०)

[६८-८५] कण्वो घोरः । प्रगाथः = वृहती (८।८।१२।८) + सतो वृहती (१२।८।१२।८) ।

प्र वो यंहं पुरुणां विशां देवयतीनाम् ।	
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदुन्य ईर्ळते	६८
जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते ।	
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेपु सन्त्य	६९
प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्वेदसं ।	
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः	७०
देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।	
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः	७१
मुन्द्रो होता गृहपतिर् अग्ने दूतो विशाममि ।	
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृष्वत	७२
त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठय विश्वमा ह्यते हविः ।	
स त्वं नो अद्य सुमना उताऽपरं यक्षिं देवान्सुवीर्या	७३
तं धेमित्या नमस्विन् उपं स्वराजमासते ।	
होत्राभिरग्निं मनुषुः समिन्धते तित्तिवांसो अति स्त्रियः	७४
मन्तो वृत्रमतरन् रोदसी अप उरु धयाय चकिरे ।	
सुवत् कण्वे वृषां घृम्न्याहुतः क्रन्दुदध्नो गर्विष्टिपु	७५
सं सीदस्व महौ अग्निं शोचस्व देववीर्यमः ।	
वि धूममग्ने अरुपं भियेध्य सृज प्रशमन्त दर्शतम्	७६

यं त्वां देवासो मनवे दुधुरिह यजिष्ठं हृष्यवाहन ।	
यं कण्वो मेघ्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमृपस्तुतः	७७
यमग्निं मेघ्यातिथिः कण्वं ईध ऋतादधि ।	
तस्य त्रेपो दीदियुस्तमिमा ऋचस् तमग्निं वर्धयामसि	७८
रायस्पृधिं स्वधावोऽस्ति हि ते ऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।	
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महौ असि	७९
पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।	
पाहि रीपत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठय	८०
धनेव विष्वग् वि जह्वराव्णस् तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक ।	
यो मर्त्यः शिशीति अत्यक्तुभिर् मा नः स रिपुरीशत	८१
अग्निर्वने सुवीर्यम् अग्निः कण्वाय सौभंगम् ।	
अग्निः प्रावन् मित्रोत मेघ्यातिथिम् अग्निः साता उपस्तुतम्	८२
अग्निना तुर्वशं यदुं परावर्त उग्रादेवं हवामहे ।	
अग्निर्नयन् नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीति दस्यवे सहः	८३
नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।	
द्वीदेश कण्वं ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः	८४
त्वेषासो अग्नेरभवन्तो अर्चयो भीमानो न प्रतीतये ।	
रक्षस्विनुः सद्रमिघांतुमार्वतो विश्वं समत्रिणं दह	८५

॥ ११ ॥ (क० १ । ४४ । १-१४)

[८६ - १०९] प्रस्कण्वः काण्वः । प्रगाथः = बृहती (८१ । ८१ । १२ । ८) + सतो बृहती (१२ । ८१ । १२ । ८)

अग्ने विवस्वदुपस्य चित्रं राधो अमर्त्यम् ।
 आ दाशुपे जातवेदो बहा त्वम् अ
 जुष्टो हि दूतो असि हृष्यवाहनो अ
 नृजृश्विर्म्यामुपसा सुवीर्यम् अ
 अया दत्तं वृणीमहे
 धूमकेतुं भार्कजीकं

श्रेष्ठं यविष्टमतिर्थं स्वाहुतं जुष्टं जनाय द्वाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसम् अग्निमीळे व्युष्टिपु ८९

स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्नें त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्टं हव्यवाहन ९०
सुशंसो बोधि गृणते यविष्टय मधुं जिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जाविसं नमस्या देव्यं जनम् ९१

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश्वं इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसो ऽग्नें देवाँ इह द्रवत् ९२
सवितारमुपसमाश्रिन्ना भगम् अग्निं व्युष्टिपु धर्षः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ९३

पतिर्हीध्वराणाम् अग्नें दूतो विशामसि ।
उपर्युध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दशः ९४
अग्ने पूर्वा अनुपसो विभावसो दूदिधं विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेण्वविता पुरोहितो ऽसिं यज्ञेषु मानुषः ९५

नि त्वा यज्ञस्य सार्धनम् अग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद् देव धीमहि प्रचेतसं ज्ञीरं दूतममर्त्यम् ९६
यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितो ऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोःखि प्रस्वनितास ऊर्मयो ऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः ९७

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर् देवैरग्ने मयावभिः ।
आ सीदन्तु वहिषिं मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ९८
गृण्वन्तु स्तोमं मरुतः मुदानवो ऽग्निजिहा ऋतावृधः ।
पिबन्तु सोमं वरुणो धृतव्रतो ऽश्विन्यामुपसा सृजः ९९

॥ १२ ॥ (ऋ० १ । ४५ । १-१०) अनुष्टुप (८×४) ।

ग्ने वषेतिह रुद्राँ आदित्याँ उत । यज्ञाँ स्वध्वरं जनं मनुजातं धृतप्रुषम् १००
दीवानो हि द्वाशुषे देवा अग्ने विचेतमः । तान् रोहिदश्व गिर्वणस् प्रयास्त्रिगतमा वह १०१
मिपयदत्रिबज् जातवेदो विरुपवत् । अङ्गिरस्वन् मेहिप्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् १०२

यं त्वा देवासो मनने दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।	
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः	७७
यमग्निं मेध्यातिथिः कण्वं ईध ऋतादधि ।	
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचुस् तमग्निं वर्धयामसि	७८
रायस्पूधिं स्वधावोऽस्ति हि ते ऽग्नें द्वेवेष्वाप्यम् ।	
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महौ असि	७९
पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेर्राव्यः ।	
पाहि रीपत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठय	८०
घनेव विध्वग् वि जह्यराव्यस् तपुर्जम्भ यो अस्मधुक् ।	
यो मर्त्यः शिशीति अत्यक्तुभिर् मा नः स रिपुरीशत	८१
अग्निर्वन्ने सुवीर्यम् अग्निः कण्वाय सौभंगम् ।	
अग्निः प्रावन् भित्रोत मेध्यातिथिम् अग्निः साता उपस्तुतम्	८२
अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे ।	
अग्निर्नयन् नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीति दस्यवे सहः	८३
नि त्वामग्ने मर्तुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।	
दीदिय कण्वं ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः	८४
त्वेपासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो मीमासो न प्रतीतये ।	
रक्षस्विनः सदाभिधातुमावतो विध्वं समन्त्रिणं दह	८५

॥ ११ ॥ (क्र० १ । ४४ । १-१४)

[८६-१०९] प्रस्कण्वः काण्वः । प्रगाधः = बृहती (८१।८।१२।८) + सतो बृहती (१२।८।१२)

अग्ने विवस्वदुपसंश् चित्रं राधो अमर्त्य ।	
आ द्वाशुपे जातवेदो बहा त्वम् अद्या देवां उपर्षुधः	८६
जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनो ऽग्नें रथीरध्वराणाम् ।	
सजूरश्चिम्पोमुपसा सुवीर्यम् अस्मे धेहि श्रवो बृहत्	८७
अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।	
धूमकेतुं भाक्रजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम्	८८

श्रेष्ठं यविष्ठमार्तिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय द्राशुपे । देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसम् अग्निमीळे व्युष्टिषु	८९
स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन । अग्ने त्रातारममृते मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठय मधुजिह्वः स्वाहुतः । प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जिवसे नमस्या देव्यं जर्नम्	९० ९१
होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विशं इन्धते । स आ वहं पुरुहूत प्रचेतसो अग्ने देवाँ इह द्रवत् सवितारमुपसंभक्षिना भगंम् अग्निं व्युष्टिषु क्षपः । कण्वासस्ता सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर	९२ ९३
पतिर्ह्यध्वराणाम् अग्ने दूतो विशामसि । उपसृष्ट आ वहं सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दशः अग्ने पूर्वा अनूपसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः । असि ग्रामेष्वविता पुरोहितो असि यज्ञेषु मानुषः	९४ ९५
नि त्वा यज्ञस्य सार्धनम् अग्ने होतारमृत्विजम् । मनुष्वद् देव घीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितो ऽन्तरो यासि दूत्यम् । सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयो अग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः	९६ ९७
श्रुधि श्रुत्कर्णं वह्निभिर् देवेरग्ने मयावभिः । आ सीदन्तु वह्निपि मित्रो अर्धमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् शुण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवो ऽग्निजिह्वा ऋतावृषः । पिबन्तु सोमं वरुणो धृतव्रतो ऽश्विन्यामुपसां सृजः	९८ ९९

॥ १२ ॥ (ऋ० १ । ४५ । १-१०) अनुष्टुप् (८×४) ।

मने वधेहिह रुद्राँ आदित्याँ उत । यजाँ स्वध्वरं जन्मं मनुजातं घृतशुषम् १००
दीवानो हि द्राशुपे देवा अग्ने विचेतसः । तान् रोहिदश्व गिर्यणस् त्रयस्त्रिंशत्तमा वहं १०१
पमेपवर्दविचज् जातवेदो विरूपवत् । अङ्गिरस्वन् मंहिव्रत् प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् १०२

महिकैरव उतये प्रियमेधा अहृपत । राजन्तमध्वराणाम् अग्निं शुक्रेण शोचिषां १०३
 घृताहवन सन्त्य इमा उ पु श्रुधी गिरः । याभिः कण्वस्य सूनत्रो हवन्तेऽर्चसे त्वा १०४
 त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विधु जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुप्रिय अग्ने हव्याय वोह्वे १०५
 नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वंसुवित्तमम् । श्रुत्कणं सप्रथस्तमं विप्रां अग्ने दिर्विष्टिषु १०६
 आ त्वा विप्रां अजुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः । बृहद् भा विभ्रतो हविर् अग्ने मर्तीय द्राशुषं १०७
 प्रातर्याष्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य । इहाद्य दैव्यं जनं बृहिरा सादया वसो १०८
 अर्वाञ्च दैव्यं जन्म अग्ने यक्षत्र सहृतिभिः । अयं सोमः सुदानवस् तं पात त्तिरोऽह्वयम् १०९

॥१३॥ (क्र० १।५८।१-२) [११०-१२३] नोधा गीतमः । जगती, (१२×४) ११५-१२३ त्रिष्टुप् (११×४) ।

नू चित् सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद् दूतो अभवद् विवस्वतः ।
 वि साधिष्ठेभिः पधिभी रजौ मम् आ देवताता हविषां विवासति ११०
 आ स्वमद्य युवमानो अजरस् तृष्वविष्यन्नतसेपु तिष्ठति ।
 अत्यो न पृष्टं श्रुपितस्य रोचते दिवो न सानुं स्तनयन्नाचिक्रदत् १११
 क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निपत्तो रयिपाळमर्त्यः ।
 रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुपग् वार्या देव क्रण्वति ११२
 वि वारतजूतो अतसेपु तिष्ठते वृथा जुह्वभिः सृण्यां तुविष्वणिः ।
 तृषु यदग्ने वनिनो वृपायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ११३
 तर्पुर्जम्भो वन आ चातचोदितो युथे न साह्वं अत्र वाति वंसंगः ।
 अभिब्रजन्नक्षितं पार्जसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पत्रिणः ११४
 दधुष्टा भृगवो मानुषेष्वा रथि न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
 होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवै दिव्याय जन्मने ११५
 होतारं सुप्त जुह्वोऽै यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
 अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ११६
 अच्छिद्रा सनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
 अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्य ऊर्जो नपात् पुभिरायसीभिः ११७
 भया वरुथं गृणते विभावो भवा मघवन् मघवञ्च्यः शर्म ।
 उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षु धियावसुर्जगम्यात् ११८

॥ १४ ॥ (ऋ० १।६०।१-५)

[११९-१२३] नोधा गौतमः । त्रिष्टुप् ।

वह्निं यशसं विदथस्य केतुं	सुप्रान्वयं द्रुतं मद्योर्जयम् ।	
द्विजन्मानं रविमिव प्रशस्तं	रातिं भरद् भृगवे मातरिश्वा	११९
अस्य शासुरुभयासः सचन्ते	हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः ।	
दिवश्चित् पृथो न्यसादि होता	ऽऽपृच्छथो विश्वपतिर्विभु वेधाः	१२०
तं नव्यसी हृद् आ जायमानम्	अस्मत् सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः ।	
यमृत्विजो वृजने मानुपासः	प्रयस्वन्त आयवो जीर्जनन्त	१२१
उशिक् पावको वसुमानुपेषु	वरैण्यो होताघायि विभु ।	
दमृना गृहपतिर्दम आँ	अग्निर्धुवद् रयिपती रयीणाम्	१२२
तं त्वा वयं पतिमग्रे रयीणां	प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः ।	
आशुं न वाजंभरं मर्जयन्तः	प्रातर्मक्षु धियावसुर्जगम्यात्	१२३

॥ १५ ॥ (ऋ० १।६५।१-१०)

[१२४-२१४] पराशरः शान्त्यः । द्विपदा चिराद् ।

पश्वा न त्रायुं, गुहा चतन्तं	नमो युजानं, नमो वहन्तम्	१२४
सजोपा धीराः, पदैरनु ग्मुन्	उप त्वा सीदन्, विश्वे यजत्राः	१२५
ऋतस्य देवा, अनु वृता गुर्	भुवत् परिष्टिर्, चौरं भूम	१२६
वर्धन्तीमापः, पुन्वा सुशिश्चिम्	ऋतस्य योना, गर्भे सुजातम्	१२७
पुष्टिर्न रुषा, क्षितिर्न पृथ्वी	गिरिर्न भुज्म, क्षोदो न शंभु	१२८
अत्यो नाज्मन्, त्सर्गप्रतक्तः	सिन्धुर्न क्षोद्रः, क ई वराते	१२९
जामिः सिन्धुनां, आतेव स्वस्त्राम्	इम्यान् न राजा, वनान्यत्ति	१३०
यद्वातजृतो, वना व्यस्थाद्	अग्निर्ह दाति, रोमा पृथिव्याः	१३१
श्वासित्यप्सु, हंसो न सीदन्	कत्वा चेतिष्ठो, विशामुपभुव्	१३२
सोमो न वेधा, ऋतप्रजातः	पशुर्न शिश्वा, विश्वदूरेमाः	१३३

॥ १६ ॥ (ऋ० १।६६।१-१०)

रयिर्न चित्रा, स्रो न संहग्	आयुर्न प्राणो, नित्यो न मृतः	१३४
तक्वा न भूर्णिर, वना सिपक्ति	पयो न धेनुः, शुचिर्विभावा	१३५

दाधार क्षेमम्, ओको न रण्वो	यवो न पक्को, जेता जनानाम्	१३६
ऋषिर्न स्तुभ्वा, विक्षु प्रशस्तो	वाजी न प्रीतो, वयो दधाति	१३७
दुरोकंशोचिः, क्रतुर्न नित्यो	जायेव योनाव्, अरं विश्वस्मै	१३८
चित्रो यदभ्राट्, ह्येतो न विक्षु	रथो न रुक्मी, त्वेपः समत्सु	१३९
सेनेव सुष्टा, ऽमं दधाति	अस्तुर्न दिद्युत्, त्वेपप्रतीका	१४०
यमो ह जातो, यमो जनित्वं	जारः कनीनां, पतिर्जनीनाम्	१४१
तं वंश्वराथां, वयं वंसत्यास्	तं न गावो, नर्क्षन्त इदम्	१४२
सिन्धुर्न क्षोदः, प्र नीचीरैनोन्	नर्वन्त गावः, स्वर्दृष्टीके	१४३

॥ १७ ॥ (ऋ० १। ६७। १-१०)

वनेषु जायुर, मतेषु मित्रो	वृणीते श्रुष्टि, राजैवाजुर्यम्	१४४
क्षेमो न साधुः, क्रतुर्न भद्रो	भुवत् स्वाधीर, होता हव्यवाद्	१४५
हस्ते दधानो, नृम्णा विश्वानि	अमे देवान् धाद्, गुहा निपीदन्	१४६
विदन्तीमत्र, नरो धियधा	हृदा यत् तृष्टान्, मन्त्रां अशंसन्	१४७
अजो न क्षां, दाधारं पृथिवीं	तस्तम्भं धां, मन्त्रैभिः सत्यैः	१४८
प्रिया पदानि, पश्वो नि पाहि	विश्वार्युग्मे, गुहा गुहं गाः	१४९
य ईं चिकेतु, गुहा भवन्तम्	आ यः ससाद्, धारामृतस्य	१५०
वि ये चूतन्ति, ऋता सर्पन्त	आदिद् वद्वनि, प्र ववाचास्मै	१५१
वि यो धीरुत्सु, रोधन् महित्वा	उत प्रजा, उत प्रसूष्वन्तः	१५२
चित्तिरपां, दर्मे विश्वायुः	सद्यैव धीराः, संमायं चक्रुः	१५३

॥ १८ ॥ (ऋ० १। ६८। १-१०)

श्रीणन्तुर्प स्याद्, दिवं भुरण्युः	स्थातुश्चरथम्, अक्तून् व्यूणोत्	१५४
परि यदेषाम्, एको विश्वेषां	भुवद् देवो, देवानां महित्वा	१५५
आदित् ते विश्वे, क्रतुं जुपन्त	शुक्लाद्यद् देव, जीवो जनिष्ठाः	१५६
भर्जन्त विश्वं, देवत्वं नाम	ऋतं सर्पन्तो, अमृतमेवैः	१५७
ऋतस्य प्रेषां, ऋतस्य धीतिर्	विश्वार्युर्विश्वे, अपांसि चक्रुः	१५८
यस्तुभ्यं दाशाद्, यो वा ते शिक्षात्	तस्मै चिकित्वान्, रयिं दयस्व	१५९
होता निषन्तो, मनोरपत्ये	स चिन् न्वासां, पती रयीणाम्	१६०

इच्छन्त॒ रेतो॑, मिथस्तनूप॒ सं जानतु॒ स्वैर॒, दक्षैरमृताः	१६१
पित॒र्न पुत्राः॑, कर्तुं॒ जुपन्त॒ श्रोपन्॒ ये अस्य॒, शासं॑ तुरासः	१६२
वि रायं॑ और्णोद॒, दुरः॑ पुरुक्षुः॒ पिपेश॑ नाकं, स्तृभिर्दमृनाः	१६३

॥ १९ ॥ (ऋ० १ । ६९ । १-१०)

शुकः॑ शुशुक्लौ, उ॒पो न जा॒रः॒ प॒प्रा संमी॑ची, दि॒वो न ज्योतिः॑	१६४
परि॑ प्रजातः, क॒र्त्वा बभू॑य भुवो॑ दे॒वानां॑, पि॒ता पु॒त्रः सन्	१६५
वेधा॑ अद॒प्तो, अ॒ग्निर्वि॒जानन् ऊ॒र्ध्नं गो॒नां, स्वा॒द्यां पि॒तृनाम्	१६६
जने॑ न शे॒र्व, आ॒हृर्यः॑ सन् मध्ये॑ नि॒पत्तो, र॒ण्वो दुरो॑णे	१६७
पु॒त्रो न जा॒तो, र॒ण्वो दुरो॑णे वा॒जी न प्री॑तो, वि॒शो वि ता॑रीत्	१६८
वि॒शो यद॒द्वे, नृ॒भिः सर्नी॑ळा अ॒ग्निर्दे॒वत्वा, विश्वा॑न्यश्याः	१६९
नकि॑ष्ट ए॒ता, व्र॒ता मि॑नन्ति नृ॒भ्यो यदे॒भ्यः, श्रु॒ष्टिं च॒कर्धं	१७०
तत् तु॒ ते दंसो॑, यद॒र्हन्त॑समानैर् नृ॒भिर्यद् यु॒क्तो, वि॒वे रपांसि॑	१७१
उ॒पो न जा॒रो, वि॒भावो॑सः सं॒ज्ञाति॑रूप॒श्चि॒कैतद॑स्मै	१७२
त्मना॑ वहन्तो, दुरो॑ ष्य॒ण्वन् नव॑न्त॒ विश्वे॑, स्व॒र्षे दृ॒शीके॑	१७३

॥ २० ॥ (ऋ० १ । ७० । १-११)

वने॑र्म॒ पूर्वी॑र्, अ॒र्यो म॑नी॒पा अ॒ग्निः सु॒योको॑, विश्वा॑न्यश्याः	१७४
आ॑ दै॒व्यानि॑, व्र॒ता चि॑कित्वा॒न् आ॑ मानु॒पस्य॑, ज॒नस्य॑ जन्मं	१७५
ग॒र्भो यो अ॒पां, ग॒र्भो वना॑नां ग॒र्मश्च॑ स्था॒तां, ग॒र्मश्च॑रथाम्	१७६
अ॒द्रौ चि॑द॒स्मा, अ॒न्तर्दुरो॑णे वि॒शां न वि॒श्वो, अ॒मृतः॑ स्या॒धीः	१७७
स हि॑ क्ष॒पावो॑, अ॒ग्नी र॑यी॒णां दा॒शद् यो अ॑स्मा, अ॒रं सु॑क्तः	१७८
ए॒ता चि॑कित्वा॒न् भृ॒मा नि पा॑हि दे॒वानां॑ जन्मं, म॒तीश्च॑ विद्वान्	१७९
वर्ध॑न्यं॒ पूर्वीः॑, क्ष॒पो वि॑रू॒पाः स्या॑तुश्च॒ रथम्॑, कृत॒प्रवी॑तम्	१८०
अ॒राधि॑ हो॒ता, स्व॑र्षे॒र्निप॑त्तः कृ॒ण्वन् विश्वा॑नि, अ॒पांसि॑ स॒त्या	१८१
गो॒षु प्र॒द्यस्ति॑, वने॑षु धि॒पे म॑रन्त॒ विश्वे॑, व॒लिं स्व॑र्णः	१८२
वि॒ त्वा न॑रः, पु॒रुवा॑ सं॒पर्यन् पि॒तुर्न॑ जि॒ज्ञेर्, वि॒ वेदो॑ मरन्त	१८३
सा॒धुर्न॑ गृ॒ध्नन्, अ॒स्तैव॑ श॒रो या॑त॒व प्री॑मस्, त्वे॒पः नृ॑मत्सुं	१८४

॥ २१ (क्र० १।७१।१-१०) । त्रिष्टुप् ।

उप प्र जिन्वन्नशतीरुशन्तं	पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः ।	
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुपन्	चित्रमुच्छन्तीमुपसं न गावः	१८५
वीळ् चिद् दृह्हा पितरो न उक्थैर्	अद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण ।	
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे	अहः स्वविविदुः केतुमुस्ताः	१८६
दधन्नृतं धनयन्नस्य घीतिम्	आदिदुर्यो दिधिष्वोरे विभृत्राः ।	
अतृप्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा	देवाञ् जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः	१८७
मयीद् यदीं विभृतो मातरिश्वा	गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् ।	
आदीं रात्रे न सहीयसे सच्चा	सच्चा दूत्यं भृगवाणो विवाय	१८८
महे यत् पित्र इं रसं दिवे क्	अवं त्सरत् पृशन्त्यश्चिकित्वान् ।	
सृजदस्ता घृपता दिद्युमस्मै	स्वार्या देवो दुहितरि त्विषिं घात्	१८९
स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति	नमो वा दाशादुशतो अनु धून् ।	
वधीं अग्ने वयो अस्य द्विचर्हा	यासद् राया सरथं यं जुनार्सि	१९०
अग्नि विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते	समुद्रं न स्रवतः सप्त गृह्णीः ।	
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो	विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान्	१९१
आ यद्रिपे नृपतिं तेज आनद्	शुचि रेतो निरपिंक्तं घौरभीकं ।	
अग्निः शर्धमनवृद्यं युवानं	स्वाध्व्यं जनयत् सूदर्यच	१९२
मनो न योऽध्वनः सद्य एति	एकः सत्रा सरो वस्वं ईशे ।	
राजांता मित्रावरुणा सुपाणी	गोपुं प्रियममृतं रक्षमाणा	१९३
मा नो अग्ने सूर्या पित्र्याणि	प्र मर्षिष्ठा अभि विदुःकृविः सन् ।	
नमो न रूपं जरिमा भिनाति	पुरा तस्या अमिशस्तेरधीहि	१९४

॥ २२ ॥ (क्र० १।७२।१-१०)

नि काच्या वेघसः शश्वतस्कर्	हस्ते दधानो नर्यां पुरूणि ।	
अग्निभुंद् रयिपती रयीणां	सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा	१९५
अम्मे वृन्मं परि पन्तं न विन्दन्	इच्छन्तो विश्वं अमृता अमृताः ।	
अमपुर्वः पदुर्व्यो धियंघाम्	तस्थुः पदे परमे चावेधः	१९६

तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्च	लुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान् ।	
नामानि चिद् दधिरे यज्ञियानि	अमृदयन्त तन्वः सुजाताः	१९७
आ रोदसी वृहती वेविदानाः	प्र रुद्रियां जग्निरे यज्ञियांसः ।	
विदन् मतीं नेमधिंता चिकित्वान्	अग्निं पदे परमे तस्थिवांसम्	१९८
संजानाना उर्ष सीदन्नभिज्जु	पनीवन्तो नमस्यं नमस्यन् ।	
रिरिकांसस्तन्वः कृण्वतु स्वाः	सखा सख्युनिमिपि रक्षमाणाः	१९९
त्रिः सप्त यद् गुह्यानि त्वे इत्	पदाविदन् निहिता यज्ञियांसः ।	
तेभीं रक्षन्ते अमृतं सजोषाः	पशुञ्च स्थातृश्चरथं च पाहि	२००
विद्वां अग्ने वयुनानि क्षितीनां	व्यानुपकृष्टुरुषो जीवसे धाः ।	
अन्तर्विद्वां अध्वनो देवयानान्	अतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाद	२०१
स्वाध्वो दिव आ सप्त यद्वा	रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।	
विदद् गव्यं सरमा दृहमूर्ध्वं	येना नु कं मानुषी भोजते विद्	२०२
आ ये विश्वा स्वपत्यानि तुस्थुः	कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।	
महा महद्भिः पृथिवी वि तस्थे	माता पुत्रैरदितिर्घायसे वेः	२०३
अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन्	दिवो यदुक्षी अमृता अकृण्वन् ।	
अर्ध क्षरन्ति सिन्धवो न मृष्टाः	प्र नीचीरग्ने अरुपीरजानन्	२०४
॥ २३ ॥ (ऋ० १ । ७३ । १-१०)		
रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः	सुप्रणीतिश्चिकित्त्वा न शासुः ।	
स्योनशीरतिथिर्न ग्रीणानो	होतेषु सन्न विधुतो वि तारीत्	२०५
देवो न यः संविता मृत्यमन्मा	क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा ।	
पुरुप्रशस्तो अमतिर्न मृत्य	आत्मेव शेवो दिधिपाय्यो भूत्	२०६
देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया	उपक्षेति हितर्मिश्रो न राजा ।	
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा	अनवद्या पतिजुष्टेव नारीं	२०७
तं त्वा नरो दम् आ नित्यमिदम्	अग्ने सचन्त क्षितिपु ध्रुवासु ।	
अधि घृक्षं नि दधुर्धर्मस्मिन्	मवां विश्वापुर्धरुणो रयीणाम्	२०८

वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्रुर्	वि सूरयो ददतो विश्वमार्युः ।	
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो	भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ।	२०९
ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः	स्मर्दधीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।	
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा	वि सिन्धवः सुमर्या ससुराद्रिम्	२१०
त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा	दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।	
नक्ता च चक्रुरपसा विरूपे	कृष्णं च वर्षमरुणं च सं धुः	२११
यान् राये मर्तान्सुपृदो अग्ने	ते स्याम मघवानो वयं च ।	
छायेव विश्वं भुवनं सिसाक्षि	आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम्	२१२
अर्वद्विरग्ने अर्वतो नृभिर्नृन्	शीरैर्वीरान् वञ्जयामा त्वोताः ।	
ईशानासः पितृविचस्यं रायो	वि सूरयः शतहिमा नो अश्रुः	२१३
एता तं अग्न उचथानि वेधो	जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।	
शक्रेम रायः सुधुरो यमं ते	अधि श्रवो देवभक्तं दधानाः	२१४

॥ २४ ॥ (ऋ० १ । ७४ । १-९) [२१५-२५५] गोतमो राहूगणः । गायत्री ।

उपप्रयन्तो अघ्वरं	मन्त्रं वोचेमाग्रये	। अरे अस्मे च शृण्वते	२१५
यः स्त्रीहितीषु पूर्यः	संजग्मानासु कृष्टिषु ।	अरक्षद् द्वाशुषे गयम्	२१६
उत भुवन्त जन्तव	उदग्रिवृत्रहाजनि ।	धनंजयो रणेरेणे	२१७
यस्य दूतो असि क्षये	वेपिं हव्यानि वीतये ।	दस्मत् कृणोष्यध्वरम्	२१८
तमित् सुदृष्यमङ्गिरः	सुदेवं सहसो यहो ।	जना आहुः सुवर्हिषम्	२१९
आ च वहासि तां इह	देवां उप श्रयस्तये ।	हव्या सुश्रन्द्र वीतये	२२०
न योरुपव्दिदर्य्यः	शृण्वे रथस्य कचन ।	यदग्ने यासि दृत्यम्	२२१
त्वोतो वाज्यहयो	अग्नि पूर्वस्मादपरः ।	प्र द्वाधां अग्ने अस्थात्	२२२
उत घुमत् सुवीर्यं	बृहदग्ने विवामसि ।	देवेभ्यो देव द्वाशुषं	२२३

॥ २५ ॥ (ऋ० १ । ७५ । १-५)

जुपस्व सप्रथस्तमं	घर्षो देवर्षरस्तमम् ।	हव्या जुष्टान आसनि	२२४
अथा ते अङ्गिरस्तम	अग्ने वेधस्तम प्रियम् ।	वोचंम ब्रह्म सानसि	२२५
फन्तं जामिर्जनानाम्	अग्ने फो द्वाधध्वरः ।	फो ह कस्मिन्नसि श्रितः	२२६

त्वं जामिर्जनांनाम् अग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सर्षिभ्य ईर्ष्यः २२७
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् । अग्ने यक्षि स्वं दर्मम् २२८

॥ २६ ॥ (ऋ० १ । ७६ । १-५) त्रिष्टुप् ।

का त उपेतिर्भनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा ।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम २२९
एक्ष्य इह होता नि पीद अर्द्व्यः सु पुरएता भवा नः ।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्त्रे यजा महे सौमनसार्य देवान् २३०
प्र सु विश्वान् रक्षसो घर्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिगस्तिपार्वा ।
अथा बृह सोमपतिं हरिभ्याम् आतिथ्यमस्मै चक्रमा सुदानै २३१
प्रजावता वचसा वहिरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः ।
वेपि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वर्षनाम् २३२
यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर् देवाँ अयंजः कविर्भिः कविः सन् ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्य अग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व २३३

॥ २७ ॥ (ऋ० १ । ७७ । १-५)

कथा दाशेमाग्रये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः ।
यो मर्त्येष्वमृतं ऋतावा होता यजिष्ठ इत् कृणोति देवान् २३४
यो अंबुरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम् ।
अभिर्यद् वेर्मर्तीय देवान् त्स चा बोधाति मनसा यजाति २३५
स हि ऋतुः स मर्यः स साधुर् मित्रो न मुदङ्कृतस्य रथीः ।
तं मेधेषु प्रथमं देव्यन्तीर् विश् उर्पं ब्रुवते द्रुस्ममारीः २३६
स नो नृणां नृत्तमो रिशार्दा आग्निर्गिरोऽर्वसा वेत्तु घीतिम् ।
तनां च ये मुघवानः शर्विष्ठा चार्जप्रसृता इपर्यन्त मन्म २३७
एवाग्निर्गोर्तमिर्कृतावा विप्रैर्भिरस्तोष्ट जातवेदाः ।
स एषु द्युम्नं पीपयत् स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् २३८

॥ २८ ॥ (ऋ० १ । ७८ । १-५) गायत्री

अभि त्वा गोर्तमा गिरा जातवेदो विचर्षणे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः २३९

तमु त्वा गोर्तमो गिरा	रायस्क्रामो दुवस्यति ।	द्युम्नैरभि प्र णोनुमः	२४०
तमु त्वा वाज्रसातमम्	अङ्गिरस्वद् हवामहे ।	द्युम्नैरभि प्र णोनुमः	२४१
तमु त्वा वृत्रहन्तमं	यो दस्यूरत्वधनुषे ।	द्युम्नैरभि प्र णोनुमः	२४२
अवोचाम् रहंगणा	अग्रये मधुमद् वचः ।	द्युम्नैरभि प्र णोनुमः	२४३

॥ २९ ॥ (ऋ० १ । ७९ । १-१२)

२४४-४६ त्रिष्टुप्, २४७-४९ उष्णिक्, २५०-२५५ गायत्री ।

हिरण्यकेशो रजसो विसारे	ऽहिर्धुनिर्वात इव धर्जीमान् ।		
शुचिभ्राजा उपसो नवेद्वा	यज्ञस्वतीरपस्युवो न सुत्याः		२४४
आ ते सुपर्णा अभिनन्त एवैः	कृष्णो नोनाव वृषभो यद्रीदम् ।		
शिवाभिर्न स्मर्यमानाभिरागात्	पतन्ति मिहः स्तनर्यन्त्यभ्रा		२४५
यदीमृतस्य पर्यसा पियानो	नर्यन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः ।		
अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा	त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ		२४६
अग्ने वाजस्य गोमत्त ईशानः	महसो यहो । अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः		२४७
स ईशानो वसुक्विर् अग्निरीळिन्यो गिरा	। रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि		२४८
क्षपो राजन्नत त्मना	ऽग्ने वस्तोरुतोपसः । स विग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति		२४९
अवा नो अग्न ऊतिभिर्	गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वांसु धीषु वन्द्य		२५०
आ नो अग्ने रयि भर सत्रासाहं वरेण्यम्	। विश्वांसु पुत्सु दुष्टरम्		२५१
आ नो अग्ने सुचेतुनां	रयि विश्वायुषोपसम् । भार्दीकं धेहि जीवसे		२५२
प्र पूवास्तिग्मशोचिपे	वाचो गोतमाग्रये । भरस्व सुम्नयुगिरः		२५३
यो नो अग्नेऽभिदासति	अन्ति दूरे पदीष्ट सः । अस्माकमिद् वृधे भव		२५४
सहस्राक्षो विचर्षणिर्	अग्नी रक्षांमि सेधति । होतां गृणीत उक्थ्यः		२५५

॥ ३० ॥ (ऋ० १ । ९४ । १-१६)

[२५६-२७१] कुत्स आङ्गिरस । जगताः, २७०-७१ त्रिष्टुप् ।

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे	रथमिव सं महेमा मनीषया ।		
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संमदि	अग्ने सुर्ये मा रिपामा वयं तव		२५६
यस्मै त्वमायजसे स साधति	अन्वा धेति दधते मुवीष्यम्		
म त्वाव नैनमश्नोत्यंहतिर्	अग्ने सुग्न्ये मा रिपामा वयं तव		२५७

शक्रेम त्वा समिधै साधया धियस्	त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।	
त्वमादित्याँ आ वृह तान् ह्युश्मसि	अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव	२५८
भरामेध्मं कृणवामा हवीर्षि ते	चितर्यन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।	
जीवातवे प्रतरं साधया धियो	अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव	२५९
विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो	द्विपञ्च यदुत चतुष्पदक्कुभिः ।	
चित्रः प्रक्रेत उपसोँ महोँ असि	अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव	२६०
त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्यः	प्रशास्ता पोता जुनुषा पुरोहितः ।	
विशां विद्रोँ आर्त्विज्या धीर पुष्यसि	अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव	२६१
यो विश्वतः सुप्रतीकः सद्दृष्टि	दूरे चित् सन्तळिद्विवाति रोचसे ।	
राज्याग् चिदन्धो अति देव पश्यासि	अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव	२६२
पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथो	ऽस्माकं शंसोँ अम्भ्यस्तु दूह्यः ।	
तदा जानीतोत पुष्यता वचो	अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव	२६३
वधैर्दुःशंसोँ अप दूह्योँ जहि	दूरे वा ये अन्ति वा के चिदुत्रिणः ।	
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृधि	अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव	२६४
यदयुक्था अरुपा रोहिता रथे	वार्तजूता वृषभस्यैव ते रवः ।	
आदिन्वसि वनिनोँ धूमकेतुना	अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव	२६५
अध स्वनादुत विभ्युः पतत्रिणोँ	द्रप्सा यत् ते यवसादो व्यस्थिरन् ।	
सुगं तत् ते तावकेभ्यो रथेभ्यो	अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव	२६६
अयं मित्रस्य वरुणस्य धारसे	ऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।	
मुञ्जा सु नो भूत्वैषां मनः पुनर्	अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव	२६७
देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो	वसुर्वस्रनाममि चारुरध्वरे ।	
शर्मन् तस्याम् तव सप्रथस्तमे	अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव	२६८
तत् ते भद्रं यत् समिद्धः स्वे दमे	सोमाहुतो जरसे मृळ्यत्तमः ।	
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुपे	अग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव	२६९
यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशो	ऽनागास् त्वमदिते सर्वताता ।	
यं भद्रेण शर्वसा चोदयासि	प्रजावता राधमा ते स्याम	२७०

स त्वमग्ने सौभगुत्वस्य विद्वान् अस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।
तन् नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम् अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः २७१

॥ ३१ ॥ (ऋ० १ । १२७ । १-११)

[२७२—२९१] परच्छेपो दैवोदासिः । अत्याष्टिः, २७७ अतिघृतिः ।

- अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवैदसं विप्रं न जातवैदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनुं वष्टि शोचिपा ऽऽजुह्वानस्य सर्षिपः २७२
- यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्रं मन्मभिरु विप्रैभिः शुक्र मन्मभिः ।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः २७३
- स हि पुरु चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।
वीळ चिद् यस्य समृतौ श्रुवद् वनेव यत् स्थिरम् ।
निष्पहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते २७४
- दृहा चिदस्मा अन्तु दुर्यथां विदे तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्टयवसे ऽग्नये द्वाष्टयवसे ।
प्र यः पुरुणि गार्हते तक्षद् वनेव शोचिपा ।
स्थिरा चिदन्ना नि रिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा २७५
- तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातराद् अप्रायुषे दिवातरात् ।
आदस्यायुर्ग्रभणवद् वीळ शर्म न सूनवे ।
भक्तमभक्तमद्यो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः २७६
- स हि शशो न भारुतं तुविष्वणिरु अमस्वतीपूर्वरास्त्रिष्टनिरु आर्तनास्त्रिष्टनिः ।
आदद्द्व्यान्यादुदिरु यज्ञस्य केतुरर्हणा ।
अर्ध स्मास्य हर्षतो हर्षीवतो विश्वे जुपन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् २७७
- द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो मधन्तो द्वाशा भृगवः ।
अग्निरीशे वसनां शुचियो धर्णिरैषाम् ।
प्रियां अपिषीर्वनिपीष्टु मेधिरु आ वनिपीष्टु मेधिरुः २७८

विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे	सर्वासां समानं दंपतिं भुजे	सत्यगिर्वाहसं भुजे ।
अतिथिं मानुषाणां	पितुर्न यस्यासया ।	
अमी च विश्वे अमृतासु आ वयो	हव्या देवेष्वा वयः	२७९
त्वमग्ने सहसा सहन्तमः	शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये	र्यिर्न देवतातये ।
शुष्मिन्तमो हि ते मदो	द्युष्मिन्तम उत क्रतुः ।	
अथ स्मा ते परिं चरन्त्यजर	श्रुष्टीवानो नाजर	२८०
प्र वो महे सहसा सहस्वत	उप्युधे पशुपे नाग्रये	स्तोमो बभूत्वग्र्ये ।
प्रति यदीं हविष्मान्	विश्वासु क्षासु जोगुवे ।	
अग्रे रेभो न जेत ऋषूणां	जृग्णिर्होत ऋषूणाम्	२८१
स नो नेदिष्टं ददृशान्	आ भर अग्रे देवेभिः सचंनाः सुचेतनां	महो रायः सुचेतनां ।
महिं शविष्ठ नस्कृधि	संचक्षे भुजे अस्यै ।	
महिं स्तोवृभ्यो मघवन्	त्सुवीर्ये मयीरुग्रो न शवंसा	२८२

॥ ३२ ॥ (ऋ० १ । १२८ । १-८)

अयं जायत मनुषो धरीमणि	होता यजिष्ठ उशिजामनु व्रतम्	अग्निः स्वमनु व्रतम् ।
विश्वश्रुष्टिः सखीयते	र्यिर्निव श्रवस्यते ।	
अदन्धो होता नि पदद्विळस्पदे	परिंवीत इळस्पदे	२८३
तं यज्ञसाधमपि वातयामसि	ऋतस्यं पथा नमसा हविष्मता	देवताता हविष्मता ।
स न ऊर्जामुषामृति	अया कृपा न ज्यैति ।	
यं मातरिश्वा मनवे परावतो	देवं भाः परावतः	२८४
एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं	सुहुर्गा रेतो वृषभः कर्निकदद्	दधद् रेतः कर्निकदद् ।
शतं चक्षाणो अक्षभिर्	देवो वनेषु तुर्वणिः ।	
सदो दधान् उपरेषु सानुषु	अग्निः परेषु सानुषु	२८५
स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमे	अग्निर्जस्योध्वरस्यं चेतति	ऋत्वा यज्ञस्यं चेतति ।
ऋत्वा वेधा इंपूयते	विश्वा जातानि पस्पथे ।	
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत	वद्विर्वेधा अजायत	२८६

- ऋत्वा यदस्य तविपीपु पृञ्चते ऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्या इषिराय न भोज्या ।
 स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्जना ।
 स नस् त्रासते दुरितादभिहुतः संसादुघादभिहुतः २८७
- विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रथच् छ्रवस्यया न शिश्रथत् ।
 विश्वस्मा इदिपुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे ।
 विश्वस्मा इत् सुकृते वारमृणति अग्निद्वारा व्यृणति २८८
- स मानुषे वृजने शंतमो हितोऽग्नेः ऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्रपतिः प्रियो यज्ञेषु विश्रपतिः ।
 स हव्या मानुषाणाम् इळा कृतानि पत्यते ।
 स नस् त्रासते वरुणस्य धूर्तेर् महो देवस्य धूर्तेः २८९
- अग्निं होतारमीळते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं न्यैरिरे हव्यवाहं न्यैरिरे ।
 विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम् ।
 देवासां रूष्वमवसे वसूयवो ग्रीर्भी रूष्वं वसूयवः २९०

॥ ३३ ॥ (ऋ० १ । १३२ । ७)

- ओ पू णो अये शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवासि यज्ञियैभ्यो राजभ्यो यज्ञियैभ्यः ।
 यद्वा त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन ।
 वि तां दुद्रे अर्यमा कर्त्तरी सचौ एष तां वेद मे सचा २९१

॥ ३४ ॥ (ऋ० १ । १४० । १-१३)

[२९२-३६०] दीर्घतमा ओचध्य । जगती, ३०१ त्रिष्टुप्वा, ३०३-४ त्रिष्टुप् ।

- वेद्विपदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिन् प्र भरा योनिमग्रये ।
 वस्त्रेणिव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् २९२
- अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।
 अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्यङ्न्येन वनिर्नो मृष्ट वारुणः २९३
- कृष्णप्रुतां वेदिजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
 प्राचारिहं घृसयन्तं वपुच्युतम् आ साच्यं कर्पयं वर्धनं पितुः २९४
- मुमुक्षोऽग्ने मनने मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णभीतास ऊ जुवः ।
 अममना अजिगसां रघुप्यदो वातं जता उप युज्यन्त आश्रवः २९५

आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथैरते कृष्णमभ्यं महि वर्षः करिकतः । यत् सीं महीमवन्ति प्राभि मर्मृशद् अभिश्चसन् तस्तनयन्नेति नानदत्	२९६
भूपन् न योजर्धि वभ्रूप नभ्रते वृषेव पत्नीरभ्येति रोहवत् । ओजायमानस् तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दधिधाव दुर्गभिः	२९७
स संस्तिरो विष्टिरः सं गृमायति जानन्नेव जानतीनित्य आ श्ये । पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यम् अन्यद् वर्षः पित्रोः कृण्वते सचा	२९८
तमग्रुवः केशिनीः सं हि रैभिर ऊर्ध्वासु तस्थुर्मन्त्रुषीः प्रायवे पुनः । तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानदद् असुं परं जनयंजीवमस्तुतम्	२९९
अधीवासं परि मात् रिहन्नहं तुविश्रेभिः सत्वभिर्याति वि ज्यः । वयो दधत् पद्वते रेरिहत् सदा अनु श्येनीं सचते वर्तनीरहं	३००
अस्माकमग्रे मधवत्सु दीद्विहि अघ श्वसीवान् वृपभो दर्मनाः । अवास्या शिशुमतीरदीदेर् वर्षेव युत्सु परिजर्धराणः	३०१
इदमग्रे सुधितं दुधितादधि प्रियादुं चिन् मन्मनः प्रेयो अस्तु ते । यत् तैं शुक्रं तन्वोऽं रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम्	३०२
रथाय नार्वमुत् नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्रे । अस्माकं वीरो उत नो मघोनो जनांश्च या पारयाच्छर्म या च	३०३
अमी नो अग्न उक्थमिज् जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वर्गताः । गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहा इपं वरंमरुण्यो वरन्त	३०४

॥ ३५ ॥ (ऋ० १ । १४१ । १-१३) जगती, ३१६-१७ विष्टुप् ।

वद्विथा तद् वर्षुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि । यदीमुष ह्वरति सार्धते मतिर् श्रुतस्य घेना अनयन्त समुतः	३०५
पृक्षो वर्षुः पितृमान् नित्य आ श्ये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु । तृतीयमस्य वृषभस्य द्रोहसे दशप्रमति जनयन्त योषणः	३०६
निर्यदीं बुभान् मण्डिपस्य वर्षस ईशानासुः शर्वमा क्रन्तं सूरयः । यदीमर्तुं प्रदिवो मर्ष आघवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति	३०७

प्र यत् पितुः परमाञ्जीयते परि	आ पृथुघो वीरुधो दंसु रोहति ।	
उभा यदस्य जनुपं यदिन्वत	आदिद् यविष्ठो अमवद् घृणा शुचिः	३०८
आदिन्मातृराविशद् यास्वा शुचिर्	अहिंस्यमान उर्विया वि वायुधे ।	
अनु यत् पूर्वा अरुहत् सनाजुवो	नि नव्यमीप्यवरासु धावते	३०९
आदिद्वोत्तरं वृणते दिविष्टिपु	भगमिव पपृचानासं ऋञ्जते ।	
देवान् यत् ऋत्वा मज्मना पुरुष्टुतो	मर्तं शंसं विश्वधा वेति धार्यते	३१०
वि यदस्याद् यजतो वार्तचोदितो	हारो न वक्त्रां जरणा अनाकृतः ।	
तस्य पत्नम् दुक्षुपः कृष्णजहसः	शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः	३११
रयो न यातः शिकंभिः कृतो घाम्	अङ्गभिररूपेभिरीयते ।	
आदस्य ते कृष्णासौ दक्षि सूरयः	शूरस्येव त्वेपथादीपते वयः	३१२
त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो	मित्रः शाश्वरे अर्यमा सुदानवः ।	
यत् सीमनु ऋतुना विश्वधा विशुर्	अरान् न नेमिः परिभूरजायधाः	३१३
त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते	रत्नं यविष्ट देवतातिमिन्वसि ।	
तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन् वयं	भगं न कारे महिरत्न धीमहि	३१४
अस्मे रयि न स्वर्थं दर्मनसं	भगं दक्षं न पृष्टासि घर्णासिम् ।	
रुर्मोरिव यो यमति जन्मनी उभे	देवानां शंसंमृत आ चं सुक्रतुः	३१५
उत नः सुद्योत्मा जीराश्चो	होता मन्द्रः शृणवच् चन्द्ररथः ।	
स नो नेपुत्रेपतमैरमूरो	ऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छे	३१६
अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिर्कैः	साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।	
अमी च ये मघवानो वयं च	मिहं न स्रो अति निष्टतन्युः	३१७

॥ ३६ ॥ (क्र० १ । १४३ । १-८) जगती, ३२५ त्रिष्टुप् ।

प्र तव्यंसीं नव्यंसीं धीतिमग्र्ये	वाचो मतिं सहसः सुनवे भरे ।	
अपां नपाद् यो वसुभिः सह प्रियो	होता पृथिव्यां न्यसीददृत्विर्यः	३१८
स जायमानः परमे व्योमनि	आनिरग्निरभवन् मातरिश्चने ।	
अस्य ऋत्वा समिधानस्य मज्मना	प्र धावां शोचिः पृथिवी अरोचयत्	३१९

अस्य त्वेपा अजरा अस्य भानवः । सुसंद्दशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः । मात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवो ऽग्ने रँजन्ते असंसन्तो अजराः	३२०
यमैरिरे भृगवो विश्ववेदसं नामा पृथिव्या भुवनस्य मज्जना । अग्निं तं गीर्भिर्हिन्दुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति	३२१
न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः । अग्निर्जन्मैस् तिगितैरँत्ति भवँति योधो न शत्रून् त्स वना न्यृञ्जते	३२२
कुविन्नो अग्निरुचयस्य वीरसद् वसुष्कुविद् वसुभिः कामपावरत् । चोदः कुवित् हुतुज्यात् सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे	३२३
घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्पदम् अग्निं मित्रं न संमिधान ऋञ्जते । इन्धानो अक्रो विदथेपु दीर्घच् छुक्रवर्णामुर्दु नो यंसते धियम्	३२४
अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेर्भिनः पायुर्भिः पाहि श्रमैः । अदब्धेभिरदपितेभिरिष्टे ऽग्निमिपद्भिः परि पाहि नो जाः	३२५

॥ ३७ ॥ (ऋ० १ । १४४ । १-७) जगती ।

एति प्र होता व्रतमस्य मायया ऊर्ध्वा दधानः शुचिपेशसं धियम् । अग्निं सुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अंस्य धामं प्रथमं ह निसते	३२६
अभीमृतस्य दोहना अनूपत् योनौ देवस्य सदर्ने परीवृताः । अपामुपस्थे विभृतो यदावसद् अर्धे स्वधा अर्धयद् याभिरीर्यते	३२७
युयूपतः सर्वयसा तदिद् वपुः समानमर्थं वितरिर्व्रता मिथः आर्दो मग्ने न हव्यः समस्मदा बोहूर्न रश्मीन् त्समयंस्त सारथिः	३२८
यमी द्वा सर्वयसा सपर्यतः समाने योर्ना मिथुना समोकसा । दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मारुपा युगा	३२९
तर्मा हिन्वन्ति धीतयो दश त्रिंशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे । घनोरार्थिं प्रवत् आ स ऋष्वति अभिन्नर्जद्भिर्व्युना नवाधित	३३०
त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुषा इव त्मना । एनीं त एते बृहती अभिधिया हिरण्ययी वक्त्रेरी वहिराज्ञाते	३३१

अग्ने जुषस्य प्रति हर्यं तद् वचो मन्द्र स्वधावु ऋतं ज्ञातु सुक्रतो ।
यो विश्वतः प्रत्यङ्गुसिं दर्शतो रण्यः संदृष्टौ पितुर्माँ ह्यु क्षयः ३३२

॥ ३८ ॥ (ऋ० १ । १४५ । १-५) जगती, ३३७ त्रिष्टुप् ।

तं पृच्छता स जंगामा स वेदु स चिकित्वाँ ईयते सा न्वीयते ।
तस्मिन्सन्ति प्रशिपस्तस्मिन्निष्टयुः स वाजस्य शवंसः शुष्मिणस्पतिः ३३३

तमित् पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वनेव धीरो मनसा यदग्रमीत् ।
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचो ऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदपितः ३३४

तमिद् गच्छन्ति जुह्वंस्तमर्वतीर् विश्वान्येकः शृण्वद् वचांसि मे ।
पुरुमैपस् तर्तुरियंसाधनो ऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ३३५

उपस्थायं चरति यत् समारत सद्यो ज्ञातस् तत्सार युज्येभिः ।
अभि श्वान्तं मृशते नान्धे मुदे यदा गच्छन्त्युशतीरं पिष्टितम् ३३६

स ईं मृगो अप्यो वनर्गुर् उप त्वच्युपमस्यां नि धायि ।
व्यव्रवीद् वयुना मर्त्येभ्यो ऽग्निविद्वाँ ऋतंचिद्धि सत्यः ३३७

॥ ३९ ॥ (ऋ० १ । १४६ । १-५) त्रिष्टुप् ।

त्रिमूर्धानं सप्तर्दिम गृणीपे ऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे ।
निपत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रौचनापंप्रिवांसम् ३३८

उक्षा महौ अभि वंक्ष एने अजरस् तस्थावितर्कतिर्कृष्वः ।
उर्च्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्युधो अरुपासो अस्य ३३९

समानं वत्समभि संचरन्ती विष्वग् धेनू वि चरतः सुमेके ।
अनपवृज्याँ अर्ध्वनो मिमनि विश्वान् केतोँ अधि महो दधाने ३४०

धीरांसः पदं क्वयौ नयन्ति नानाँ हृदा रक्षमाणा अजुर्मम् ।
सिपांसन्तः पर्येषश्यन्त सिन्धुम् आविरेभ्यो अभवत् स्रयो नृन् ३४१

द्विदक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईलेन्यो महो अर्भीय जीवसे ।
पुरुत्रा यदमवत् स्रहेभ्यो गर्भेभ्यो मधवा विश्वदर्शतः ३४२

॥ ४० ॥ (ऋ० १ । १४७ । १-५)

क्या तै अग्ने शुचयन्त आयोर् ददाशुर्वाजेभिराशुपाणाः ।
उभे यत् तोके तर्नये दधाना ऋतस्य सामन् रणयन्त देवाः ३४३

चोर्घा मे अस्य वचसो याविष्टु	मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वघावः ।	
पीर्यति त्वो अनु त्वो गृणाति	वन्दारुम् ते तन्वं वन्दे अग्ने	३४४
ये पायवो मामतेयं ते अग्ने	पश्यन्तो अन्धं दुरितादर्क्षन् ।	
ररश्च तान् सुकृतो विश्ववेदा	दिप्सन्त इद् रिपवो नाहं देभुः	३४५
यो नो अग्ने अरिर्वा अघायुर्	अरातीवा मर्चयति द्वयेन ।	
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा	अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तः	३४६
उत वा यः संहस्य प्रविद्वान्	मतो मर्त मर्चयति द्वयेन ।	
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तम्	अग्ने मार्किनो दुरिताय घायीः	३४७

॥ ४१ ॥ (ऋ० १ । १४८ । १-५)

मयीद् यदीं विष्टो मारिश्वा	होतारं विश्वाप्सु विश्वदेव्यम् ।	
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु	स्वर्णं चित्रं वपुषे विभारम्	३४८
दुदानमिन्न ददमन्त मन्म	अग्निर्वरुथं मम तस्य चाकन् ।	
जुपन्त विश्वान्यस्य कर्म	उपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः	३४९
नित्यं चिन्नु यं सदेने जगुभ्रे	प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियांमः	
प्र ह नयन्त गृभयन्त इष्टो	अश्वामो न रथ्यो रारहाणाः	३५०
पुरुषिण् दुस्मो नि रिणाति जम्भैर्	आद् रौचते वन आ विभारवा ।	
आदस्य वातो अनु वाति शोचिर्	अस्तुर्न शर्यामसनामनु धृन्	३५१
न यं रिपवो न रिष्यवो	गर्भे सन्त रेपणा रेपयन्ति ।	
अन्धा अपश्या न दमन्नभिग्या	नित्यास इं भेतारो अरक्षन्	३५२

॥ ४२ ॥ (ऋ० १ । १४२ । १-५) विराट्

महः स राय एषते पतिर्दन्	इन इनस्य धर्मुनः पुद आ ।	
उप ध्रजन्तमद्रयो विघन्ति		३५३
स यो वृषा नरां न रोदस्योः	श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः ।	
प्र यः संस्राणः शिश्रीत योनां		३५४
आ यः पुरं नार्मिणीमदीद्रेद्	अत्यः कविर्नभन्योऽ नार्वा ।	
धरो न रुरुकाञ्छतात्मा		३५५

अभि द्विजन्मा त्री रोजनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।

होता यज्ञिष्ठो अपां सधस्थे

३५६

अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दुधे वार्याणि श्रवस्या ।

मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश

३५७

॥ ४३ ॥ (ऋ० १ । १५० । १-३) उष्णिक् ।

पुरु त्वा द्राश्वान् वीचे अरिरग्ने तर्ष स्विदा । तोदस्यैव शरण आ महस्य ३५८

व्यनिनस्य धनिनः प्रहोपे चिदररूपः । कदा चन प्रजिगतो अदैवयोः ३५९

स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो वार्धन्तमो दिवि । प्रमेत् तै अग्ने वतुष्यः स्याम ३६०

॥ ४४ ॥ (ऋ० १ । १८९ । १-८)

(३६१-३६८) अगस्त्यो मैत्रावरुणः । त्रिष्टुप् ।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूरिष्टां ते नमउक्ति विधेम ३६१

अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान् त्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।

पृथ्वी पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ३६२

अग्ने त्वमस्मद् युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।

पुनरस्मभ्यं सुविताय देव क्षां विश्वेभिरमृतैर्भिर्यजत्र ३६३

पाहि नो अग्ने पायुभिरजसैर् उत प्रिये सदेन आ शुशुक्वान् ।

मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदुन् मापरं सहस्वः ३६४

मा नो अग्नेऽव सृजो अघायं अविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।

मा दुत्वते दशते मादते नो मा रीपते सहसावन् परा दाः ३६५

त्रि ष त्वावो ऋतजात यंसद् गृणानो अग्ने तन्वेऽ वरुथम् ।

विश्वाद् रिरिक्षोरुत वा निनित्सोर अभिहुतामसि हि देव विष्पद् ३६६

त्वं तौ अय उभयान् वि विद्वान् वेपि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।

अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर् मर्मजेन्य उशिग्भिर्नाकः ३६७

अर्षोचाम निवचनान्यस्मिन् मानस्य सुनुः सहसाने अमौ ।

वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेयं वृजनं जीरदानुम् ३६८

॥ ४५ ॥ (ऋग्वेदस्य द्वितीयं मण्डलं २, सूक्तं १, मन्त्राः १-१६)

जगती । (३६९—४१५) गृत्समदः शौनकः (आङ्गिरसः शौनहोत्रो मार्गवः) ।

त्वमग्ने द्युमिस् त्वमांशुशुक्षणिस् त्वमद्भयस् त्वमश्मनस् परि ।	
त्वं वनेभ्यस् त्वमोषधीभ्यस् त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः	३६९
त्वमग्ने होत्रं त्वं पोत्रमृत्विद्यं त्वं नेष्ट्रं त्वमग्निर्दृतायतः ।	
त्वं प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहर्पतिश् च नो दमे	३७०
त्वमग्ने इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगाधो नमस्यः ।	
त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरंध्या ।	३७१
त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस् त्वं मित्रो भवसि दुस्म इह्यः ।	
त्वमर्थमा सत्पतिर्यस्य संभुजं त्वमंशो विदथे देव भाज्युः	३७२
त्वमग्ने त्वष्टा विघते सुवीर्यं तव भावो मित्रमहः सजात्यम् ।	
त्वमांशुहेमा ररिपे स्वदन्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरुवसुः	३७३
त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस् त्वं शर्धो मारुतं पुक्ष ईशिपे ।	
त्वं वातररुणैर्यासि शंगयस् त्वं पूषा विघतः पासि नु त्मना	३७४
त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकृते त्वं देवः संविता रन्धा असि ।	
त्वं भगो नृपते वस्व ईशिपे त्वं पायुर्दमे यस् तेऽविघत्	३७५
त्वामग्ने दम् आ विदपतिं विशस् त्वां राजानं सुविदत्रमृञ्जते ।	
त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति	३७६
त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस् त्वां भ्रात्राय शम्या तनुरुचम् ।	
त्वं पुत्रो भवसि यस् तेऽविघत् त्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः	३७७
त्वमग्ने ऋमुराके नमस्यस् त्वं वार्जस्य क्षुमतो राय ईशिपे ।	
त्वं वि भास्पनुं दक्षि द्रावने त्वं विशिर्भुरसि यजमातर्निः	३७८
त्वमग्ने अदिर्दिदेव द्राशुपे त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा ।	
त्वमिळा शतर्हिमासि दक्षमे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती	३७९
त्वमग्ने सुमृत उत्तमं वयस् त्वं स्पार्हं वर्ण आ मंदाग्नि धियः ।	
त्वं वार्जः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्वहुलो विश्वतस्पृधुः	३८०

त्वामन्न आदित्यासं आस्यं त्वां जिह्वां शुचयश् चक्रिरे कवे ।
 त्वां रातिपाचो अध्वरेषु सञ्चिरे त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् । ३८१
 त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्दुर्ह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम्
 त्वया मर्तासः स्पदन्त आसुति त्वं गर्भो वीरुषां जज्ञिषे शुचिः ३८२
 त्वं तान् त्सं च प्रति चासि मज्जना अग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे ।
 पृथो यदत्र महिना वि ते भुवद् अनु घावापृथिवी रोदसी उभे ३८३
 ये स्तोतभ्यो गोअग्रामश्वपेशसम् अग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
 अस्माश्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ३८४

॥ ४६ ॥ (ऋ० २ । २ । १-१३)

यज्ञेन वर्धत जातवेदसम् अग्नि यजध्वं हविषा तना गिरा ।
 समिधानं सुप्रयमं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्पदम् ३८५
 अभि त्वा नक्तीरुपसो ववाशिरे अग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
 दिव हवेदरतिर्मानुषा युगा आक्षपो भासि पुरुनार संयतः ३८६
 तं देवा वृधे रजसः सुदंसं दिवस्पृथिव्योररति न्यैरिरे ।
 रथमिव वेद्यं शुक्रशौचिपम् अग्नि मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ३८७
 तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्यार आ दधुः ।
 पृथ्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ३८८
 स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु ह्वैर्मनुष क्रञ्जते गिरा ।
 हिरिशिप्रो वृधसानासु जभैरद् दौर्न स्तृभिश् चितयद् रोदसी अनु ३८९
 स नो रेवत् समिधानः स्वस्तये संददुस्वान् रयिमुस्मासु दीदिहि ।
 आ नः कृष्ण्य सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देव वीतये ३९०
 दा नो अग्ने बृहतो दाः महसिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अया वृधि ।
 प्राची घावापृथिवी ब्रह्मणा ऋधि स्वर्णं शुक्रमुपसो वि दिद्युतः ३९१
 म ईधान उपसो राम्या अनु स्वर्णं दीदेदरूपेण भानुना ।
 होत्रोभिरग्निर्मनुषः स्वधरो राजा त्रियामतिथिश् चारुणयवे ३९२

एवा नो अग्ने अमृतेषु पृथ्वी धीप् पीपाय वृहद्विषु मानुषा ।	
दुहाना धेनुवृजनेषु कारवे त्मना गतिर्न पुरुषमिषणि	३९३
वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जना अति ।	
अस्माकं धुममधि पञ्च कृष्टिषु उचा सर्षणि शुशुचीत दुष्टरम्	३९४
स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन् त्सुजाता इपर्यन्त सुरयः ।	
यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्यं तोके दीद्विवासं स्वे दमे	३९५
उभयासौ जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सुरयश् च शर्मणि ।	
वसो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्यै शग्धि नः	३९६
ये स्तोतृभ्यो० (३८४)	

॥ ४७ ॥ (क्र० २ । ८ । १-६) गायत्री, ४०२ अनुष्टुप् ।

वाजयन्त्रिं नू रथान् योगो अग्रेरुपं स्तुहि । यशस्तमस्य मीहुषः	३९७
यः सुनीयो ददाशुषे अजुर्यो जरयन्नरि । चारुप्रतीक आहुतः	३९८
य उ श्रिया दमेष्वा द्रोपोपसिं प्रशस्यते । यस्य व्रतं न मीर्यते	३९९
आ यः स्वर्षणि भानुना चित्रो मिमात्यर्चिषा । अज्ञानो अजररिभि	४००
अग्निमनु स्वराज्यम् अग्निमुक्थानि वामृषुः । विश्वा अग्नि श्रियो दधे	४०१
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामुतिभिर्भयम् । अरिप्यन्तः सचेमहि अग्नि प्याम पृतन्यतः	४०२

॥ ४८ ॥ (क्र० २ । ९ । १-६) त्रिष्टुप् ।

नि होता होतृपदने विदानस् त्वेषो दीद्विवा अमदत् सुदक्षः ।	
अदन्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रंभुरः शुचिंजिहो अग्निः	४०३
त्वं दूतस् त्वमुं नः परस्पास् त्वं यस्य आ वृषभ प्रणेता ।	
अग्नें तोकस्यं नस् तनें तनूनाम् अग्रयुच्छन् दीर्घद् बोधि गोपाः	४०४
विधेम ते परमे जन्मन्मग्ने विधेम स्तोमरवरे सधस्ये ।	
यस्माद् योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवीषि जुहुरे मर्मिद्वे	४०५
अग्ने यजस्व हविषा यजीपाश् छृष्टी द्वेष्यमग्नि गृणीहि राधः ।	
त्वं शसिं रयिपती रथीणां त्वं शुक्रस्य चर्मो मनोता	४०६

उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म ।
 कृधि धुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्यं रायः ४०७
 सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यदा देवाँ आर्यजिष्ठः स्वस्ति ।
 अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्रे द्युमदुत रेवद् दिदीहि ४०८

॥ ४९ ॥ (ऋ० २ । १० । १-६)

जोहत्रो अग्निः प्रथमः पितेव इळस्पदे मनुष्या यत् समिद्धः ।
 श्रियं वमानो अमृतो विचेता मर्मजेन्यः श्रवस्वर्षुः स वाजी ४०९
 श्रूया अग्निश् चित्रभानुर्हर्वे भे विश्वाभिर्गोभिर्मृतो विचेताः ।
 श्यावा रथं बहतो रोहिता वा उतारुषाहं चक्रे विमृत्रः ४१०
 उत्तानार्यामजनयन् त्सुपूतं श्रुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।
 शिरिणायां चिदक्नुना महोभिर् अपरीवृतो वसति प्रचेताः ४११
 जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
 पृथुं तिरश्चा वर्यसा बृहन्तं व्यचिष्टमन्नै रभसं दृशानं ४१२
 आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्मि अरक्षसा मनसा तज्जुपेत ।
 मर्षश्रीः स्पृहयद् वर्णो अग्निर् नाभिमृशे तन्ग्राई जश्चैराणः ४१३
 ज्ञेया भागं सहसानो चरेण त्वादृतासो मनुवद् वंदेम ।
 अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ४१४

॥ ५० ॥ (ऋ० २ । ४१ । १९ तृतीयः पादः) गायत्री ।

अग्निं च हव्यवाहनम् ४१५

॥ ५१ ॥ (ऋ० २ । ४ । १-२) (४१६-४४६) सोमाहुतिर्भागवः । त्रिष्टुप् ।

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्ति विशामग्निमतिथि सुप्रयसम् ।
 मित्र ईव यो दिधिपाग्यो भूद् देव आदिवे जने जातवेदाः ४१६
 इमं विघन्तो अपां सधस्ये द्वितादधुर्मृगवो विश्वाइयोः ।
 एष विश्वान्यम्यस्तु भूमा देवानामग्निरतिर्जाराश्वः ४१७
 अग्निं देवातो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेप्यन्तो न मित्रम् ।
 स दीदयदशतीरुर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वन्ते दम् आ ४१८

अस्य रूपा स्वस्येव पुष्टिः संदृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः ।	
वि यो भरिभ्रदोर्षधीषु जिह्वाम् अत्यो न रथ्यो दोषवीति वारान्	४१९
आ यन्मे अर्भवं वनद्रः पनन्त उशिग्म्यो नार्मिमीत वर्णम् ।	
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुंजुर्वी यो मुहुरा युवा भूत्	४२०
आ यो वनां तातृपाणो न भाति वार्णं पथा रथ्येव स्वानीत् ।	
कृष्णाघ्ना तर्प रूष्वश् चिकेत द्यौरिव स्मर्यमानो नभोभिः	४२१
स यो व्यस्थाद्गभि दक्षदुर्वी पशुर्नैति स्वयुरगोपाः ।	
अग्निः शोचिष्मो अतुसान्युष्णान् कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूमं	४२२
नू ते पूर्वस्यार्षसो अर्धीतौ तृतीयं विदये मन्मं शंसि ।	
अस्मे अग्ने संयद्दीरं बृहन्तं क्षमन्तं वाजं स्वपत्यं रयि दाः	४२३
त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहां वन्वन्त उपरो अभि प्युः ।	
सुवीरासो अभिमातिपाहः स्मत् सुरिभ्यो गृणते तद् वयो धाः	४२४

॥ ५२ ॥ (ऋ० २ । ५ । १-८) । अनुष्टुप् ।

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्यं ऊतये ।	
प्रयक्षजेन्यं वसुं शकेमं वाजिनो यमम्	४२५
आ यस्मिन् त्सप्त रश्मयम् तता युज्जस्य नेतरि ।	
मनुष्वद् दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति	४२६
दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्माणि वेरु तत् ।	
परि विश्वानि काव्या नेमिश् चक्रमिवाभयत्	४२७
साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि ।	
विद्वो अस्य वृता ध्रुवा वया इवानुं रोहते	४२८
ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः ।	
कुवित् तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं युयुः	४२९
यदीं मातुरुषु स्वसा घृतं भरन्त्यस्थित ।	
तासामध्वयुरागतौ यवो वृष्टीरं मोदते	४३०
स्वः स्वाय धारयमे कृणुतामृतिगृत्विर्जम् ।	
स्तोमं यजं चादरं वनेमा ररिमा वयम्	४३१

यथा विद्वाँ अरं करद् विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।
अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चक्रुमा वयम् ४३२

॥ ५३ ॥ (ऋ० २ । ६ । १-८) गायत्री ।

इमां मे अग्ने समिधम् इमामुपसर्द वनेः । इमा उ पु श्रुधी गिरः ४३३
अया ते अग्ने विधेम ऊर्जां नपादश्वमिष्टे । एना सूक्तेर्न सुजात ४३४
तं त्वा गीर्भिर्गिर्विणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः । सपर्येम सपर्ययः ४३५
स बोधि सुरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यः समद् द्वेषीसि ४३६
स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम् । स नः सहस्रिणीरिषः ४३७
ईळांनायावस्ये यविष्ठ दूत नो गिरा । यजिष्ठ होतरा गहि ४३८
अन्तर्ह्यग्ने ईर्यसे विद्वान् जन्मोभयां कपे । दूतो जन्नेव मित्र्यः ४३९
स विद्वाँ आ च पिप्रयो यक्षिं चिकित्वा आनुपक् । आ चास्मिन् त्सत्सि वृहिषि ४४०

॥ ५४ ॥ (ऋ० २ । ७ । १-६)

श्रेष्ठं यविष्ठ भारत अग्ने द्युमन्तमा भर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ४४१
मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च । परि तस्या उत द्विपः ४४२
विश्वा उत त्वया वयं धारा उद्वन्या इव । अति गाहेमहि द्विपः ४४३
शुचिः पावक वन्दो अग्ने बृहद् वि रोचसे । त्वं घृतोभिराहुतः ४४४
त्वं नो असि भारत अग्ने वशाभिरुक्षभिः । अष्टार्पदीभिराहुतः ४४५
द्वन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पृत्रो अद्भुतः ४४६

॥ ५५ ॥ (ऋग्वेदस्य तृतीय मण्डल ३, सूक्तं १, मन्त्रा १-२३)

(४४७-५७३) विद्वामित्रो गाथिन । त्रिष्टुप् ।

सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वहिं चकथं विदये यजध्वै ।
देवाँ अच्छा दीर्घद् युजे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुपस्व ४४७
प्राश्चं यज्ञं चक्रुम वर्धतां गीः समिद्धिरिदि नमसा दुवस्यन् ।
दिवः शशासुविदया कवीनां गृत्साथ चित् तवसें गातुमीषुः ४४८
मयो दधे मेधिरः पूतर्दक्षो दिवः सुवन्धुर्जनुषा पृथिन्याः ।
अर्विन्दमु दशतमप्स्यन्तर देवासाँ अभिमपसि स्वसृणाम् ४४९

अवर्धयन् त्सुभर्गं सप्त यद्हीः	श्वेतं जज्ञानमरूपं महित्वा ।	
शिशुं न जातमस्पर्शरुश्वा	देवासो अग्निं जनिमन् वपुष्यन्	४५०
शुक्रेभिरङ्गै रजं आततन्वान्	ऋतुं पुनानः क्रिभिः पवित्रैः ।	
शोचिर्वसान् पर्यायुर्षां	त्रियो मिमीते बृहतीरर्ननाः	४५१
वत्राजा सीमनदतीरदन्धा	दिवो यद्हीरवसाना अनन्धाः ।	
सना अत्र युवतयः सयोनीर्	एकं गर्भं दधिरे मत्त वाणीः	४५२
स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा	घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम् ।	
अस्युरत्र धेनवः पिन्वमाना	मही दुस्मस्यं मातरां समीची	४५३
वभ्राणः खनो सहसो व्यद्यौद्	दधानः शुक्रा रंभसा वपूषि ।	
श्रोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य	वृषा यत्र वावृषे काव्येन	४५४
पितुश् चिदूर्ध्वजसुषां विवेद	व्यस्य धारा असृजद् वि धेनाः ।	
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्	दिवो यद्हीभिर्न गुहां बभूव	४५५
पितुश् च गर्भं जनितुश् च वभ्रे	पूर्वारेको अघयत् पीप्यानाः ।	
वृष्णं मपत्नी शुचये सवन्धू	उभे अस्मै मनुष्येभ्यो नि पाहि	४५६
उरौ महौ अनिवाधे ववर्ध	आपो अग्निं यज्ञसः सं हि पूर्वाः ।	
ऋतस्य योनावशयद् दर्मना	जामीनामग्निरपस्वि स्वसृणाम्	४५७
अक्रो न वभ्रिः समिधे महीनां	दिदृक्षेयः सूनवे भार्कजीकः ।	
उद्भुस्त्रिया जनिता यो जज्ञान	अपां गर्भो नृत्तमो यद्दो अग्निः	४५८
अपां गर्भं दर्शतमोर्षधीनां	वर्ना जज्ञान सुभगा विरूपम् ।	
देवासंश् चिन्मनसा सं हि जग्मुः	पनिष्ठं जातं त्रसं दुवस्यन्	४५९
बृहन्त इद् भानवो भार्कजीकम्	अग्निं संचन्त विद्युतो न शुक्राः ।	
गुहैव वृद्धे सदैसि स्वे अन्तर	अपार ऊर्ध्वे अमृतं दुहानाः	४६०
ईळं च त्वा यजमानो हविर्भिर्	ईळं सखित्वं सुमतिं निकामः ।	
देवैरवो मिमीहि सं जरित्रे	रक्षां च नो दम्येभिरनीकैः	४६१
उपसेवारस् तव सुप्रणीते	अग्ने विश्वानि धन्या दधानाः ।	
सुरैतसा श्रवसा तुजमाना	अभि प्याम पृतनापूरदेवान्	४६२

आ देवानामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।	
प्रति मर्तो अवासयो दमूना अनु देवान् रथिरो यासि साधन्	४६३
नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।	
घृतप्रतीक उर्विया व्यधौद् अग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान्	४६४
आ नो गहि सरुयोभिः शिवेभिर् महान् महीभिरूतिभिः सरुण्यन् ।	
अस्मे रथि बंहूलं संतरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः	४६५
एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्याय नृतनानि वोचम् ।	
महान्ति वृष्णे सर्वना कृतेमा जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदाः	४६६
जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिष्यते अजस्रः ।	
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्य अपि भद्रे सौमनसे स्याम	४६७
इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुकृतो रराणः ।	
प्र यासि होतवृहतीरिपो नो अग्ने महि द्रविणमा यजस्व	४६८
इकामग्ने पुरुदंसं सनि गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।	
स्यान्नः सनुस् तनयो विजावा अग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे	४६९

॥ ५६ ॥ (ऋ० ३।५। १-११)

प्रत्यगिरूपसश् चर्कितानो ऽत्रोधि विप्रः पदुवीः कवीनाम् ।	
पृथुपाजा देवपद्भिः समिद्धो ऽपु द्वारा तमसो बहिरावः	४७०
प्रेहप्रिवोवृधे स्तोमेभिर् गीभिः स्तोतृणां नमस्ये उक्थैः ।	
पूर्वीर्भूतस्य संदर्शश् चकानः सं दूतो अघौद्रुपसो विरोके	४७१
अषाङ्गयिर्भालुपीपु विश्व अपां गर्भो मित्र ऋतेन साधन् ।	
आ हयतो यजतः सान्वस्याद् अभूद्दु मित्रो हव्यो मतीनाम्	४७२
मित्रो अग्निर्भवति यत् समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।	
मित्रो अघ्वरुर्गिपिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम्	४७३
पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति युद्धश् चरणं ध्वयस्य ।	
पाति नामा सुप्तशीर्षाणामग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः	४७४

ऋभृश् चक्र ईदधं चारु नाम	विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।	
ससस्य चर्म धृतवत् पदं वेस्	तदिदुग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन्	४७५
आ योर्निमग्निधृतवन्तमस्थात्	पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः ।	
दीर्घानः शुचिर्ऋष्वः पात्रकः	पुनःपुनर्मातरा नर्व्यसी कः	४७६
सद्यो जात ओर्षधीभिर्वचक्षे	यदी वर्धन्ति प्रस्वो धृतेर्न ।	
आर्ष इव प्रवता शुर्ममाना	उरूप्यदग्निः पित्रोरुपस्थे	४७७
उदु पुतः समिधा यद्दो अद्यौद्	वर्षन् दिवो अघि नामा पृथिव्याः ।	
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा	दूतो वक्षद् यजथाय द्वेवान्	४७८
उदस्तम्मीत् समिधा नार्कमुष्वोडे	अग्निर्भवन्नृत्तमो रोचनानाम् ।	
यदी मृगुस्यः परि मातरिश्वा	गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे	४७९
इळांमग्ने० (४६९)		

॥ ५७ ॥ (ऋ० ३ । ६ । १-११)

प्र कारवो मनना वच्यमाना	देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।	
दक्षिणावाद् वाजिनी प्राच्येति	हविर्भरन्त्यग्रये घृताचीं	४८०
आ रोदसी अपृणा जायमान	उत प्र रिक्या अघ नु प्रयज्यो ।	
दिवश् चिदग्ने महिना पृथिव्या	वच्यन्तां ते वह्यः सप्तजिह्वाः	४८१
द्यौश् च त्वा पृथिवी यजियांसो	नि होतारं सादयन्ते दर्माय ।	
यदी विशो मानुषीदेव्यन्तीः	प्रयस्वतीरीकंते शुक्रमचिः	४८२
महान् लघस्ये ध्रुव आ निपत्तो	अन्तर्घात्रा माहिने हर्ममाणः ।	
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते	सवर्दुषे उरुगायस्य धेन्	४८३
व्रता ते अग्ने महतो महानि	तव क्रत्वा रोदमी आ तंतन्य ।	
त्वं दूतो अमत्रो जायमानस्	त्वं नेता वृषम चर्षणीनाम्	४८४
ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्	घृतस्नुवा रोहिता घुरि थिष्व ।	
अथा वह द्वेवान् देव विश्वान्	स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः	४८५
दिवश् चिदा ते रुचयन्त रोका	उपो विमातीरनु मामि पूर्वाः ।	
अपो यदम उग्रघग् वनेषु	होतुर्मन्त्रस्य पुनर्यन्त देवाः	४८६

उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति	दिवो वा ये रौचने सन्ति देवाः ।	
ऊर्मा वा ये सुहर्वासो यजत्रा	आयेभिरे रथ्यो अग्ने अर्धाः	४८७
ऐभिरग्ने सरथं याह्वर्वाङ्	नानारथं वा विभवो ह्यधाः ।	
पत्नीवतस् त्रिंशत् त्रींश् च देवान्	अनुष्वधमा वह मादयस्व	४८८*
स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी	यज्ञयज्ञमभि वृधे गृणीतः ।	
प्राचीं अध्वरेवं तस्थतुः सुमेके	ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये	४८९
इळांमधे० (४६९)		

॥ ५८ ॥ (ऋ० ३। ७। १-११)

प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेर्	आ मातरां विविशुः सप्त वाणीः ।	
परिक्षितां पितरां सं चरेते	प्र संस्राति दीर्घमायुः प्रयक्षे	४९०
दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अर्धा	देवीरा तस्थौ मयुम्द् वहन्तीः ।	
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं	पर्येकां चरति वर्तनि गौः	४९१
आ सीमरोहत् सुयमा भवन्तीः	पतिंश् चिकित्वा रंथिविद् रंथिणाम् ।	
प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस्	ता अवासयत् पुरुधप्रतीकः	४९२
महिं त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुषं	स्तंभूयमानं वहतो वहन्ति ।	
व्यङ्गैभिर्दिद्युतानः सधस्थ	एकांमिव रोदसी आ विवेश	४९३
जानन्ति वृष्णां अरुपस्य शेषम्	उत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति ।	
दिवोरुचंः सुरुचो रोचमाना	इळा येषां गण्या माहिना गीः	४९४
उतो पितृम्यां प्रविदानु घोषं	महो महज्यामनयन्त शूपम् ।	
उक्षा ह यत्र परि धानमक्तोर्	अनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष	४९५
अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त त्रिषाः	प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।	
प्राञ्चीं मदन्त्युक्षणीं अजुष्या	देवा देवानामनु हि व्रता गुः	४९६
दैव्या होतारा प्रथमा न्युञ्जे	सप्त पृक्षासं स्वधया मदन्ति ।	
ऋतं शंमन्त ऋतमिद् त आहूर्	अनु व्रवं व्रतपा दीप्यानाः	४९७
वृषायन्तं महे अत्याय पूर्वीर्	वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।	
दैवं होतमन्त्रतरंश् चिकित्वा	महो देवान् रोदमी एह वांक्षि	४९८

पुक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उपसो रेवदृषुः ।
 उतो चिदग्रे महिना पृथिच्याः कृतं चिदेनः सं महे दशस्य ४९९
 इळाममे० (४६९)

॥ ५९ ॥ (क्र० ३ । ९ । १-९) वृद्धता, ५०८ त्रिष्टुप् ।

सखायस् त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
 अपां नपातं सुभगं सुदीदिति सुप्रतूर्तिमनेहसम् ५००
 कार्यमानो वना त्वं यन्मातृरजगन्नपः ।
 न तत् ते अग्रे प्रमृषे निवर्तनं यद् दूरे सन्निहाभवः ५०१
 अति तूष्टं ववक्षिथ अथैव सुमना असि ।
 प्रप्रान्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये आसि श्रितः ५०२
 ईयिवांसमति सिधः शश्वतीरतिं सश्वतः ।
 अन्वीमविन्दन् निचिरासो अद्रुहो अप्सु सिहामिव श्रितम् ५०३
 ससृवांसमिव त्मना अग्निमित्था तिरोहितम् ।
 ऐनं नयन् मातरिश्वा परावर्ता देवेभ्यो मथितं परिं ५०४
 तं त्वा मर्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हन्यवाहन ।
 विश्वान् यद् यज्ञां अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्य ५०५
 तद् भद्रं तव दुंसना पाकाय चिच्छदयति ।
 त्वां यदग्रे पशवः सुमासते समिद्धमपिश्वरे ५०६
 आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकशोचिपम् ।
 आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीढ्यं श्रुथी देवं संपर्यत ५०७
 त्रीर्णे शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिशचं देवा नवं चासपर्यन् ।
 औक्षन् घृतरस्त्वनं बृहिरस्मा आदिद्वोतारं न्यसादयन्त ५०८

॥ ६० ॥ (क्र० ३ । १० । १-९) । उष्णिक् ।

त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम् । देवं मर्तास इन्धते समध्वरे ५०९
 त्वां यज्ञेष्वृत्विजम् अग्रे होतारमीळते । गोपा क्रतुस्य दीदिहि स्वे दमे ५१०
 स घा यस् ते ददांशति समिधा जातवेदमे । सो अग्रे घते सुवीर्यं स पुंयति ५११

स केतुरध्वराणाम्	अग्निदेवेभिरा गमत् । अज्ञानः सप्त होतृभिर्हविष्मते	५१२
प्र होत्रे पूर्य वचो	अग्र्ये भरता बृहत् । विपां ज्योतीषि विभ्रते न वेधसे	५१३
अग्निं वर्धन्तु नो गिरो	यतो जायत उक्थ्यः । महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः	५१४
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे	देवान् देवयते यज । होता मन्द्रो वि राजस्यति सिधः	५१५
स नः पावक दीदिहि	द्युमदस्मे सुवीर्यम् । भवां स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्त्यै	५१६
तं त्वा विप्रां विपन्यवो	जागृवांसः समिन्धते । हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम्	५१७

॥ ६१ ॥ (क्र० ३ । ११ । १-९) गायत्री ।

अग्निहोता पुरोहितो	अध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक्	५१८
स हव्यवाहमर्त्य उशिग् दूतश् चनोहितः ।	अग्निर्धिया समृण्वति	५१९
अग्निर्धिया स चैतति	केतुर्यज्ञस्य पूर्यः । अर्थं ह्यस्य तरणिं	५२०
अग्निं सूनुं सनंश्रुतं	सहसो जातवेदसम् । बर्हिं देवा अकृण्वत	५२१
अदाभ्यः पुरता विशामग्निर्मानुषीणाम् ।	तूर्णां रथः सदा नवः	५२२
साह्वान् विश्वां अभियुजः	ऋतुदेवानाममृक्तः । अग्निस् तुविश्र्वस्तमः	५२३
अग्निं प्रयांसि ब्राह्मसा	दाश्वाँ अश्रोति मर्त्यैः । क्षयं पावकशोचिपः	५२४
परि विश्वानि सुधिता	अग्नेरदयाम् मन्मभिः । विप्रांसो जातवेदसः	५२५
अग्ने विश्वानि वार्या	वाजेषु सनिषामहे । त्वे देवास एरिरे	५२६

॥ ६२ ॥ (क्र० ३ । २४ । १-५) ५२७ अनुष्टुप् ; ५२८-५३१ गायत्री ।

अग्ने सहस्र पृतना	अभिमातीरपास्य । दुष्टरस् त्रन्नातीर् वचो धा यज्ञवाहसे	५२७
अग्ने इत्या समिध्यसे	वीतिहोत्रो अमर्त्यः । जुपस्व ह नो अध्वरम्	५२८
अग्ने द्युक्षेन जागृवे	सहसः ह्यनवाहुत । एदं बर्हिः सद्यो मर्म	५२९
अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्	देवेभिर्महया गिरः । यज्ञेषु य उं चायवः	५३०
अग्ने दा द्रागृपे रयि	वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नः ह्यनुमतः	५३१

॥ ६३ ॥ (क्र० ३ । २५ । १-५) वितद ।

अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेताम्	तनां पृथिव्या उत विश्ववेदाः ।	
ऋषेर्गु देवाँ इह यजा चिकित्पः		५३२
अग्निः मनोति वीर्याणि विडान्	त्सनोति वार्जममृताप भपन् ।	
म नो देवाँ एह वंदा पुरुक्षो		५३३

अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये	आ भाति देवी अमृते अमूरः ।	
क्षयन् वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः		५३४
अम्र इन्द्रंश् च द्राशुषो दुरोणे	सुतावतो यज्ञमिहोप यातम् ।	
अमर्धन्ता सोमपेर्याय देवा		५३५
अग्ने अपां समिध्यसे दुरोणे	नित्यंः सूनो सहसो जातवेदः ।	
सधस्थानि मह्यमान ऊती		५३६

॥ ६४ ॥ (ऋ० ३ । २७ । १-१५) गायत्री ।

प्र वो वाजा अभिर्धवो	दृविष्मन्तो घृताच्या	। देवाज्जिगाति सुस्रयुः	५३७
ईळे अग्निं विपथितं	गिरा यज्ञस्य सार्धनम्	। श्रुष्टीवानं धितावानम्	५३८
अग्ने शक्रेम ते वयं	यमं देवस्य वाजिनः	। अति द्वेषांसि तरेम	५३९
समिध्यमानो अध्वरेडे	अग्निः पावक ईडधः	। शोचिष्केशस् तमीमहे	५४०
पृथुपाजा अमर्त्यो	घृतनिर्णिक् स्वाहुतः	। अग्निर्यज्ञस्य ह्यवाद्	५४१
तं सवाधो यतसुच	इत्या धिया यज्ञवन्तः	। आ चक्रुरग्निमृतये	५४२
होता देवो अमर्त्यः	पुरस्तादिति मायया	। विदधानि प्रचोदयन्	५४३
वाजी वाजेषु धीयते	अध्वरेषु प्र णीयते	। विप्रो यज्ञस्य सार्धनः	५४४
धिया चक्रे वरेण्यो	भूतानां गर्भमा दधे	। दक्षस्य पितरं तना	५४५
नि त्वां दधे वरेण्यं	दक्षस्येळा सहस्कृत	। अग्ने सुदीतिमाशिजम्	५४६
अग्निं यन्तुरमन्तुरम्	ऋतस्य योगे वनुर्पः	। विप्रा वाजैः समिन्धते	५४७
ऊजां नपातमध्वरे	दींदिवासमुप धर्वि	। अग्निमीळि क्विक्रतुम्	५४८
ईळैन्यो नमस्यस्	तिरस् तमांसि दर्शतः	। समग्निरिध्यते वृषा	५४९ *
वृषो अग्निः समिध्यते	अश्वो न देववाहनः	। तं हविष्मन्त ईळते	५५० *
वृषणं त्वा धयं वृषन्	वृषणः समिधीमहि	। अग्ने दीधतं बृहत्	५५१ *

॥ ६५ ॥ (ऋ० ३ । २८ । १-६)

५५२-५५३, ५५७ गायत्री, ५५४ उष्णिक्, ५५५ त्रिष्टुप्, ५५६ जगती ।

अग्ने जुपस्व नो हविः	पुरोळायं जातवेदः	। प्रातःमावे धियावसो	५५२
पुरोळा अग्ने पचतस्	सुर्म्यं वा घा परिष्कृतः	। तं जुपस्व यविष्ठय	५५३
अग्ने वीहि पुरोळानम्	आहुतं तिरोअक्षयम्	। सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः	५५४

माघ्येदिने सर्वने जातवेदः पुरोळार्शमिह कवे जुषस्य ।	
अग्नें यद्दस्य तर्ष भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः	५५५
अग्नें तृतीये सर्वने हि कार्निपः पुरोळार्शं सहसः स्रनवाहुतम् ।	
अथा देवेष्वध्वरं विपन्वया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम्	५५६
अग्नें वृधान आहुतिं पुरोळार्शं जातवेदः । जुषस्य तिरोअह्वयम्	५५७

॥ ६६ ॥ (ऋ० ३ । २९ । १-१६) त्रिष्टुप्.

५५८, ५६१, ५६७, ५६९ अनुष्टुप्. ५६३, ५६८, ५७१, ५७२ जगती ।

अस्तीदमधिमन्थनम् अस्ति प्रजननं कृतम् ।	
एतां विश्वतीमा भर अग्निं मन्थाम पूर्वथा	५५८
अरण्योर्निर्हितो जातवेदा गर्भं इव सुधितो गर्भिणीषु ।	
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर् हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः	५५९
उत्तानायामर्षं भरा चिकित्वान् तस्यः प्रवीता वृषणं जजान ।	
अरुपस्तूपो रुशदस्य पाज इळायाम् पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट	५६०
इळायाम् त्वा पदे वयं नामां पृथिव्या अधि ।	
जातवेदो नि धीमहि अग्नें हव्याय वोह्वे	५६१
मन्थता नरः क्विमद्रयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम् ।	
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्ताद् अग्निं नरो जनयता सुशेवम्	५६२
यदी मन्थन्ति बाहुभिवि रोचते अश्वो न वाज्यरूपो वनेष्वा ।	
चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मन्स् तृणा दहन्	५६३
जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदारुः ।	
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमर्दधुरध्वरेषु	५६४
सीदं होतुः स्व उं लोके चिकित्वान् त्सादयां यज्ञं सुकृतस्य योनौ ।	
देवावीर्देवान् हविषा यजासि अग्नें बृहद् यजमाने वयो धाः	५६५
कृणोत धूमं वृषणं सरायो अस्तेघन्त इतन् वाजमच्छं ।	
अयमग्निः पृतनापाद् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्युन्	५६६

अयं ते योनिर्ऋत्वियो	यतो जातो अरोचथाः ।	
तं जानन्नग्र आ सीद	अथा नो वर्धया गिरः	५६७
तनूनपादुच्यते गर्भं आमुरो	नराशंसो भवति यद् विजायते ।	
मातरिश्वा यदर्ममीत मातरि	वार्तस्य गर्गो अभवत् सरीमणि	५६८
सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः ऋविः ।		
अग्ने स्वध्वरा कृणु	देवान् देवयते यज	५६९
अजीजनन्नमृतं मर्त्यासो	अस्त्रेमाणं तरणिं वीळुज्जम्भम् ।	
दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः	पुमांसं जातमभि सं रंभन्ते	५७०
प्र सप्तहोता सनकादरोचत	मातुरुपस्थे यदशोचदूर्धनि ।	
न नि मिपति सुरणो दिवेदिवे	यदसुरस्य जठरादजायत	५७१
अभिन्नायुषो मरुतामिव प्रयाः	ग्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद् विंदुः ।	
द्युन्नवद् ब्रह्मं कुशिकाम एरिर	एकएको दमे अग्नि ममीधिरे	५७२
यदुद्यं त्वां प्रयति यजे अस्मिन्	होतश् चिकित्त्वोऽवृणीमहीह ।	
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः	प्रजान् विद्वाँ उप याहि सोमम्	५७३

॥ ६७ ॥ (ऋ० ३ । १३ । १-७) [५७४-५८७] ऋषभो वैश्वामित्रः । अनुष्टुप् ।

प्र वो देवायामये	वर्हिष्ठमर्चास्मै ।	
गमद् देवेभिरा स नो	यजिष्ठो वर्हिरा संदत्	५७४
ऋताया यस्य रोदसी	दक्षं सचन्त उतर्यः ।	
हविष्मन्तस् तमीळते	तं संनिप्यन्तोऽवसे	५७५
स यन्ता विप्र एषां	स यज्ञानामथा हि पः ।	
अग्निं तं वो दुवस्यत्	दाता यो वर्निता मघम्	५७६
स नः शर्माणि वीतये	अग्निर्यच्छतु शंतमा ।	
यतो नः प्रुप्यावद् वसु	द्विवि क्षितिभ्यो अप्सवा	५७७
द्वीद्विवांसमपूर्य	वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।	
ऋकाणो अभिमिन्धते	होतारं विदपतिं विश्राम	५७८

उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहृतमः ।
 शं नः शोचा मरुद्ब्रूवो अग्नें सहस्रसार्तमः ५७९
 नू नो रास्व सहस्रवत् तोकनत् पुष्टिमद् वसु ।
 द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ५८०

॥ ६८ ॥ (ऋ० ३ । १४ । १-७) त्रिष्टुप् ।

आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात् सत्यो यजा कवितमः स वेधाः ।
 विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पार्जो अश्रेत् ५८१
 अयामि ते नमउक्तिं जुपस्य ऋतावस् तुभ्यं चेतते सहस्वः ।
 विद्रां आ वक्षि विदुपो नि पत्सि मध्य आ वहिरूतये यजत्र ५८२
 द्रवतां त उपसां वाजयन्ती अग्ने वातस्य पृथ्याभिरच्छ ।
 यत् सीमञ्जन्ति पूर्यं हविभिर् आ वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ५८३
 मित्रश् च तुभ्यं वरुणः सहस्वो अग्ने विश्वे मरुतः सुमर्मर्चन् ।
 यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन् त्सर्वो नून ५८४
 वयं ते अद्य ररिमा हि कामम् उत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
 यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवान् अस्त्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ५८५
 त्वद्वि पुत्र सहसो वि पूर्वीर् देवस्य यन्त्युतयो वि वाजाः ।
 त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नो अद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ५८६
 तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तोसो अधुरे अकर्म ।
 त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ५८७

॥ ६९ ॥ (ऋ० ३ । १५ । १-७) (५८८-५९९) उत्कीलः कात्यः । त्रिष्टुप् ।

वि पार्जसा पृथुना शोशुचानो वाधस्व द्विपो रक्षसो अमीवाः ।
 सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्याम् अग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ५८८
 त्वं नो अस्या उपसो व्युष्टौ त्वं ह्य उदिते बोधि गोपाः ।
 जन्मैव नित्यं तनयं जुपस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वां सुजात ५८९
 त्वं नृचक्षां वृषभानुं पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुपो वि भाहि ।
 वसो नैषि च पर्षि चात्पंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ५९०

अपाहो अग्ने वृषभो दिदीद्वि	पुरो विश्वाः सौभगा संजिगीवान् ।	
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्	जातवेदो बृहतः सुप्रणीते	५९१
अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरूणि	देवाँ अच्छा दीधानः सुमेधाः ।	
स्थो न सस्त्रिभिर्वक्षि वाजम्	अग्ने त्वं रोदसी नः सुमेकै	५९२
प्र पीपय वृषभ जित्वा वाजान्	अग्ने त्वं रोदसी नः सुदोषै ।	
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो	मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परिं छात्	५९३
इत्थामग्ने० (४६९)		

॥ ७० ॥ (अ० ३ । १६ । १-६) प्रगाथः (= बृहती + सतोबृहती ।)

अयमाग्निः सुवीर्यस्य ईशे महः सौभगस्य ।		
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत्	ईशे वृत्रहथानाम्	५९४
इमं नरो मरुतः सधत्ता वृधं	यस्मिन् रायः श्रेवृथासः ।	
अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो	विश्वाहा शत्रुमादधुः	५९५
स त्वं नो रायः शिशीद्वि मीढ्वो	अग्ने सुवीर्यस्य ।	
तुर्विद्युम्न चर्षिष्ठस्य प्रजावतो	अनमीवस्यं शुष्मिणः	५९६
चक्रियो विश्वा भुवनाभि सासहिश्	चक्रिदेवेष्व्वा दुवः ।	
आ देवेषु यतत आ सुवीर्य आ शंस उत नृणाम्		५९७
मा नो अग्नेर्मतये मावीरतायै रीरघः ।		
मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदे	अप द्वेषास्या कृधि	५९८
शग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतो	अग्ने बृहतो अंध्वरे ।	
सं राया भूर्यसा सृज मयोभुना	तुर्विद्युन् यशस्वता	५९९

॥ ७१ ॥ (अ० ३ । १७ । १-५) ६००—६०२ कतो वैश्वामित्रः । त्रिष्टुप् ।

समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा	ममकुभिरज्यते विश्ववारः ।	
शोचिर्केशो घृतनिर्णिक् पावकः	सुयज्ञो अग्निर्यज्ञथाय देवान्	६००
यथार्यज्ञो ह्यत्रमग्ने पृथिन्या	यथा दिवो जातवेदश् चिकित्वान् ।	
एवानेन हविषा यक्षि देवान्	मनुष्वद् यज्ञं प्र तिरिमद्य	६०१

त्रीण्यायुषि तव जातवेदस् तिस्र आजानीरुपसस् ते अग्ने । ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वान् अथा भव यजमानाय शं योः	६०२
अग्निं सुदीर्तिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस् त्वेष्ट्यं जातवेदः । त्वां दूतमर्तिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम	६०३
यस् त्वद्वोता पूर्वो अग्ने यजीयान् द्विता च सत्ता स्रधया च शंभुः । तस्यानु धर्मं प्र यजा चिकित्वो अथा नो धा अध्वरं देववीती	६०४

॥ ७२ ॥ (ऋ० ३ । १८ । १-५)

भवां नो अग्ने सुमना उपेतौ सरेव सख्ये पितरेव साधुः । पुरुद्वहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्देहतादरातीः	६०५
तपो ष्ये अन्तरौ अमित्रान् तपा शंसमररुपः परस्य । तपो वसो चिकित्तानो अचित्तान् वि तै तिष्ठन्तामजरा अयासः	६०६
इभेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय । यानुदीशे ब्रह्मणा चन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम्	६०७
उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद् वयः शशमानेषु धेहि । रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर् मर्मज्मा तै तन्त्रां भूरि कृत्वः	६०८
कृधि रत्नं सुसन्निर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत् समिद्धः । स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत् सुप्रा करत्ना दधिषे वष्षि	६०९

॥ ७३ ॥ (ऋ० ३ । १९ । १-५) [६१०—६२६] गार्गी कौशिकः ।

अग्निं होतारं प्र वृणे मियेधे गृत्सं कृधि विश्वविदुममूरम् । स नो यक्षद् देवताता यजीयान् राये वाजाय वनते मधानि	६१०
प्र तै अग्ने हृन्मिमीमिर्मि अच्छा सुद्युम्नां रातिर्नी वृताचीम् । प्रदक्षिणिद् देवतातिष्ठरणः मं रातिभिर्वसुभिर्वज्रमथैत्	६११
स तेजीयसा मनसा त्वोतं उत शिक्ष स्वपत्वस्यं शिक्षोः । अग्नें रायो नृतमस्य प्रभृतां भूयाम ते सुष्टुतयश् च वसः	६१२
भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीका अग्ने देवस्य यज्यवो जनासः । न आ बह देवताति यविष्ठ शर्धो यदुद्य दिच्यं यजासि	६१३

यत् त्वा होतारमनर्जन् मियेधे निपादयन्तो यजथाय देवाः ।
स त्वं नो अग्नेऽवितेह घोधि अधि श्रवांसि धेहि नस् तनृषु ६१४

॥ ७४ ॥ (ऋ० ३ । २० । २-४)

अग्ने श्री ते वाजिना श्री पृथस्था तिस्रस् ते जिह्वा ऋतजात पूर्वाः ।
तिस्र उ ते तन्वो देववाताम् ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ६१५

अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देवं स्वधावोऽमृतस्य नाम ।
याश् च माया मायिना विश्वमिन् त्वे पूर्वाः सँद्रघुः पृथ्वन्धो ६१६

अभिनेता भग इव क्षितीनां देवीनां देव ऋतुपा क्रुतावा ।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्पद् विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ६१७

॥ ७५ ॥ (ऋ० ३ । २१ । १-५)

६१८, ६२१ त्रिष्टुप्, ६१९-२० अनुष्टुप्, ६२२ विराड्-रूपा सतोऽमृता ।

इमं नो यजममृतेषु धेहि इमा हव्या जातवेदो जुपस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राद्यान प्रथमो निपर्ध ६१८

घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्रोतन्ति मेदसः ।
स्वर्धर्मन् देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ६१९

तुभ्यं स्तोका घृतश्रुतो अग्ने विप्राय सन्त्य ।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यजस्यं प्राविता मेर ६२०

तुभ्यं श्रोतन्त्यधिगो शचीवः स्तोकामो अग्ने मेदसो घृतस्य ।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुपस्व मेधिर ६२१

ओजिष्ठं ते मध्यतो मेदु उद्धृतं प्र ते वयं ददामहे ।
श्रोतान्ति ते वमो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान् देव्यो विहि ६२२

॥ ७६ ॥ (ऋ० ३ । २२ । १-५) ६२६ पुरीष्यान्नयः । त्रिष्टुप्, ६२६ अनुष्टुप् ।

अयं सो अभिर्यस्मिन् त्सोमं इन्द्रः सुतं द्रधे जठरं वावज्ञानः ।
सहस्रिणं वाज्रमत्यं न मतिं मसवान् त्मन् त्स्तूपसे जातवेदः ६२३

अग्ने यत् ते द्विवि वचैः पृथिव्यां यदोषधीषुप्स्वा र्यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वीततन्यं त्वेषः म भानुर्णवो नृचक्षाः ६२४

अग्नें द्विवो अर्णमच्छा जिगासि अच्छा देवाँ ऊंचिपे धिष्ण्या ये ।
 या रोचने परस्तात् सूर्यस्य याश् चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ६२५
 पुरीष्यासो अग्रयः प्रावणेभिः सजोषसः ।
 जुपन्ता यज्ञमद्रुहो अनमीवा इषो महीः ६२६
 इळांमग्ने० (४६९)

॥ ७७ ॥ (ऋ० ३ । २३ । १-५)

६२७-६३० देवश्रवा देववातश्च भारतौ । त्रिष्टुप्, ६२९ सतोवृहती ।

निर्मथितः सुर्धित आ सधस्थे युवां क्विरध्वरस्य प्रणेता ।
 जूर्यस्वधिरजरो वनेषु अत्रा दधे अमृतं जातवेदाः ६२७
 अमन्थिष्ठां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम् ।
 अग्ने वि पश्य वृहताभि राया इषां नो नेता भवतादनु धून् ६२८
 दश क्षिपः पूर्य सीमजीजनन् त्रुजातं मातृषु प्रियम् ।
 अग्निं स्तुहि देववातं देवश्रवो यो जनानामसदं वशी ६२९
 नि त्वा दधे वर आ पृथिन्या इळांयास्पदे सुदिनत्वे अह्वाम् ।
 ह्यद्रत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ६३०
 इळांमग्ने० (४६९)

॥ ७८ ॥ (ऋग्वेदस्य चतुर्थे मण्डले, सूक्तं १, मंत्राः १, ६-२०)

[६३१-७५५] वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप्, ६३१ अष्टिः ।

त्वां ह्यग्ने सदमिह संमन्यवो देवासां देवमरुतिं न्येरिर इति फत्वा न्येरिरे ।
 अमर्त्यं यजत मर्त्येषु देवमादेवं जनतु प्रचेतसं विश्वमादेवं जनतु प्रचेतसम् ६३१
 अस्य श्रेष्ठां सुमर्गास्य संदग्ं देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।
 शुचिं घृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य महनेव धेनोः ६३२
 धिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः ।
 अनन्ते अन्तः परिवीत आगान् शुचिः नुक्रो अयो रोरुचानः ६३३
 स द्रुतो विश्वेदमि वंष्टि मघा होता हिरण्यरथो रंजिह्वः ।
 रोहिदशो वपुष्यो विभात्रा सदा रणवः पितृमतीव संमत् ६३४

स चैतयन् मनुषो यज्ञवन्धुः	प्र तं म्हा रश्नया नयन्ति ।	
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन्	देवो मर्तस्य सघनित्वमाप	६३५
स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्	अच्छा रत्नं देवमक्तं यदस्य ।	
धिया यद् विश्वे अमृता अकृष्वन्	धौष्पिता जनिता सत्यमुधन्	६३६
स जायत प्रथमः पुस्त्यासु	महो बुधे रजसो अस्य योनौ ।	
अपादशीर्षा गृहमानो अन्ता	आयोर्युवानो वृषभस्य नीळे	६३७
प्र शर्षे आर्ते प्रथमं विपन्याँ	ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे ।	
स्पाहोँ युवा वपुष्यो विभावाँ	सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णै	६३८
अस्माकमत्र पितरो मनुष्या	अभि प्र सेदुर्कृतमाशुपाणाः ।	
अश्मत्रजाः सुदुधा वृत्रे अन्तर	उदुस्ता आजन्नपसो हुवानाः	६३९
ते मर्मजत दह्वांसो अद्रि	तदेपामन्ये अभितो वि वीचन् ।	
पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चन्	विदन्त ज्योतिश् चक्रुपन्त धीभिः	६४०
ते गन्व्यता मनसा हृद्भ्रमुब्धं	गा येमानं परि पन्तमद्रिष् ।	
हृहं नरो वचसा दैव्येन	व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वद्वुः	६४१
ते मन्वत प्रथमं नाम धेनोस्	त्रिः सप्त मातुः परमाणि विन्दन् ।	
तजानतीरभ्यनूपत त्रा	आविर्भुवदरुणीर्यशसा गोः	६४२
नेशत् तमो दुधितं रोचत द्यौर	उद् देव्या उपसो भानुरर्त ।	
आ स्यो वृहत्तस् तिष्ठदजो	ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्	६४३
आदित् पश्चा बुबुधाना व्यख्यन्	आदिद् रत्नं धारयन्त शुभक्तम् ।	
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा	मित्रं धिये वरुण सत्यमस्तु	६४४
अच्छा वोचेय शुशुचानमग्नि	होतारं विश्वमरसं यजिष्ठम् ।	
शुच्यूधो अतृणन्न गवाम्	अन्धो न पूतं परिपिक्तमंशोः	६४५
विश्वेपामदितिर्यज्ञियानाँ	विश्वेपामतिथिर्मानुपाणाम् ।	
अग्निदेवानामव आवृणानः	सुमृळीको भवतु जातवैदाः	६४६
॥ ७२ ॥ (ऋ० ४ । २ । १-२०) त्रिष्टुप् ।		
यो मर्त्येष्वमृतं क्रतावा	देवो देवेष्वरतिर्निघार्य ।	
होता यजिष्ठो म्हा शुचस्यै	हृव्यैरग्निर्मनुप ईर्यस्यै	६४७

इह त्वं खनो सहसो नो अद्य जानो जातो उभयो अन्तरंगे ।	
दूत ईयसे युयुजान ऋष्य ऋजुमुष्कान् वृषणः शुक्रांश्च	६४८
अत्या वृधस्नु रोहिता घृतस्नु ऋतस्य मन्ये मर्नसा जविष्ठा ।	
अन्तरीयसे अरुपा युञ्जानो युष्माश् च देवान् विश आ च मर्तान्	६४९
अर्यमणं वरुणं मित्रमेपाम् इन्द्राविष्णूं मरुतो अश्विनोत् ।	
स्वर्धो अग्ने सुरर्धः सुराघ्ना एदुं वह सुहविषे जनाय	६५०
गोमौ अग्नेऽर्विमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सत्ता सदमिदं प्रमुष्यः ।	
इळावाँ एपो असुर प्रजावान् दीवो रयिः पृथुगुभः सभावान्	६५१
यस् तं इध्म जभरत् सिष्णिदानो मूर्धानं वा ततपते त्नाया ।	
भुवस् तस्य स्वर्तवाः पायुरंगे विश्वसात् सीमघायत उरुष्य	६५२
यस् ते भरादन्नियते चिदन्नं निशिर्षन् मन्द्रमर्तिथिमुदीरत् ।	
आ देयुरिनर्धते दुरोणे तस्मिन् रयिर्भ्रुवो अस्तु दास्वान्	६५३
यस् त्वा द्रोपा य उपसिं प्रशंसात् प्रियं वा त्वा कृण्वते हविष्मान् ।	
अश्वो न स्वे दम् आ हेम्यावान् तमंहसः पीपरो दाश्वासम्	६५४
यस् तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद् दुवस् त्वे कृणवते यत्सुक् ।	
न स राया शंशमानो वि योपत् नैनमंहः परिं वरदघायोः	६५५
यस्य त्वमग्ने अधुरं जुजोपो देवो मर्तस्य सुर्धितं रराणः ।	
प्रितेदसद्दोत्रा सा यविष्ठ असां यस्य विधतो वृधासः	६५६
चित्तिमर्चितिं चिनवद् वि विद्वान् पृष्ठेवं वीता वृजिना च मर्तान्	
राये च नः स्वपत्यार्यं देव दितिं च रास्नादितिष्ठरुष्य	६५७
फविं शंशासुः कृवयोऽर्दग्धा निधारयन्तो दुर्यास्वायोः ।	
अतस् त्वं दृश्यो अग्न एतान् पङ्क्तिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः	६५८
त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।	
रत्नं भर शशमानाय घृष्वे पृथु श्रन्द्रमवसे चर्षणिग्राः	६५९
अघाँ ह यद् वयमग्ने त्वाया पङ्क्तिर्हैस्तेभिश् चक्रमा तनुभिः ।	
रथं न व्रन्तो अर्पसा भुरिजोर् श्रुतं येभ्यः सुर्धय आशुपाणाः	६६०

अर्धा मातुरुपसः सप्त विप्रा जार्येमहि प्रथमा वृधसो नृन् ।
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेम अद्रिं रुजेम धनिर्न शुचन्तः ६६१

अघा यर्धा नः पितरः परीसः प्रत्तासौ अग्न क्रतुर्माशुपाणाः ।
शुचीदयन् दीर्घितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरपं व्रन् ६६२

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रंश्च ऊर्वं गव्यं परिपदन्तो अगमन् ६६३

आ यूथेवं क्षुमर्ति पश्वो अरुयद् देवानां यज् जनिमान्त्युग्र ।
मर्तीनां चिदुर्वशीरिक्वप्रन् वृधे चिदुर्य उपरस्यायोः ६६४

अकर्म ते स्वर्पसो अभूम क्रतुमवसन्नूपसो विभ्रातीः ।
अनूनमग्निं पुरुघा सुश्वन्द्रं देवस्य मर्मजतश् चारु चक्षुः ६६५

एता ते अग्न उचयानि वेधो अवीचाम क्रवये ता जुपस्व ।
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्र यन्धि ६६६

॥ ८० ॥ (ऋ० ४ । ३ । २-१६)

अयं योर्निश् चक्रुमा यं वयं ते जायेव पत्यं उशती सुवासाः ।
अर्वाचीनः परिवीतो नि पीद इमा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ६६७

आशुष्वते अहपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृळीकार्यं वेधः ।
देवार्पं शक्तिममृतापं शंस प्रार्थेव सोता मपुषुद् यमीष्टे ६६८

त्वं चिन्नः शम्वा अग्रे अस्या क्रतस्यं घोघृतचित् स्नाधीः ।
कदा ते उक्थ्या संघमाद्यानि कदा भवन्ति सुख्या गृहे तं ६६९

कथा ह तद् वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः ।
कथा मित्राय मीहुषे श्रियैव ब्रवः कदर्यम्णे कद् मगाय ६७०

कद्विष्णासु वृषसानो अग्ने कद् वाताय प्रतवसे शुभये ।
परिजमने नासत्याय धे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृमे ६७१

कथा महे पुष्टिमुरार्यं पूष्णे कद् रुद्राय मुमस्ताय हविर्दे ।
कद् विष्णव उरुगापाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे वृहत्यै ६७२

कृथा शर्धीय मरुतामृताय कृथा सुरे बृहते पृच्छयमानः । प्रति त्रयोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश् चिकित्त्वान्	६७३
ऋतेन ऋतं निर्यतमीळ आ गोर आमा सचा मधुमत् पक्रमन्ने । कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पर्यसा पीपाय	६७४
ऋतेन हि प्मा वृषभश् चिदुक्तः पुमौ अग्निः पर्यसा पृच्छेन । अस्पन्दमानो अचरद् वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरुधः	६७५
ऋतेनाद्रिं व्यसन् भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः । शुनं नरः परिं पदन्नुपासम् आविः स्वरभवज् जाते अग्नौ	६७६
ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अणोभिरापो मधुमङ्गिरसे । वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्र सदामित् स्रवितवे दघन्युः	६७७
मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेदस्य प्रमिनतो मापेः । मा भ्रातुरग्ने अनृजोऽर्कणं वेर् मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम	६७८
रक्षा णो अग्ने तन्न रक्षणेभी रारक्षणः सुमख प्रीणानः । प्रति प्फुर वि रुज वीङ्गहो जहि रक्षो मर्हि चिद् वावृधानम्	६७९
एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कं इमान् त्स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् । उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुपस्व मं ते शस्तिर्देववाता जरेत	६८०
एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि । निवचना कवये काव्यानि अशंसिपं मतिभिर्विप्र उक्थैः	६८१
॥ ८१ ॥ (ऋ० ४ । ६ । १-११)	
ऊर्ध्व ऊ पु णो अघ्वरस्य होतुर् अग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान् । त्वं हि विश्वमभ्यसि मन्म प्र वेधसश् चित् तिरसि मनीषाम्	६८२
अमृरो होता न्यसादि विक्षु अग्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेताः । ऊर्ध्वं भातुं संवितेवाग्नेन् मेतेव धूमं स्तभायदुप घाम्	६८३
यता मुंजुर्णा रातिनीं घृताचीं प्रदक्षिणिद् देवतातिमुराणः । उदु स्वरुर्नघजा नाक्रः पथो अनक्ति सुधितः सुमेकः	६८४

स्तीर्णे वृद्धिर्पि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अघ्नुर्युर्जुजुपाणो अस्यात् ।	
पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्टचैति प्रदिव उगुणः	६८५
परि त्मना मितद्वरेति होता अग्निर्मन्द्रो मधुवचा क्रुतावा ।	
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राद्	६८६
भद्रा तै अग्ने स्वर्नाक संदग् घोरस्य सतो विपुणस्य चारुः ।	
न यत् तै शोचिस् तमसा वरन्त न ध्वस्मानस् तन्वीडे रेप आ धुः	६८७
न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।	
अर्धा मित्रो न सुर्धितः पावको अग्निर्दीदाय मानुपीषु विक्षु	६८८
द्वियं पञ्च जीर्जनन् त्संवसानाः स्वसारो अग्नि मानुपीषु विक्षु ।	
उपधुर्धमययोडे न दन्तं शुक्रं स्वासं पर्युं न तिग्मम्	६८९
तव त्पे अग्ने हरितो घृतस्त्रा रोहितास क्रुञ्चञ्चः स्वञ्चः ।	
अरुपासो वृषण क्रुजुमुष्का आ देवतातिमहन्त दुस्माः	६९०
ये ह त्पे ते सहमाना अयासस् त्वेपासां अग्ने अर्चयन् चरन्ति ।	
श्येनासो न दुवसनासो अर्थे तुविष्वणसो मारुतं न शर्धः	६९१
अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः ।	
होतारमग्निं मनुषो नि पैदुर् नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः ।	६९२

॥ ८२ ॥ (क्र० ४ । ७ । १-११) त्रिष्टुप्. ६९३ जगता, ६९४-९८ अनुष्टुप् ।

अयमिह प्रथमो धावि घातुभिर् होता यजिष्ठो अघ्नुरेप्वीद्व्यः ।	
यमर्मवानो भृगवो विरुरुचुर् वनेषु चित्रं विश्वं विशेविशे	६९३
अग्ने कदा तं आनुपग् भुवद् देवस्य चेतनम् ।	
अद्या हि त्वां जगृभ्रिरे मतीसो विक्ष्वीडचम्	६९४
क्रुतार्वानं विचेतसं पश्यन्तो घामिबु स्तार्भिः ।	
विश्वेपामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे	६९५
आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यन् चर्पणीरभि ।	
आ जभुः केतमायवो भृगवाणं विशेविशे	६९६

तर्मां होतारमानुषक् चिकित्वांसं नि पेंदिरे ।	
रणं पापकशोचिपं यलिष्टं सप्त धामभिः	६९७
तं शश्वतीषु मारुषु वन आ वीतमश्रितम् ।	
चित्रं सन्तं गुहां हितं सुवेदं कूचिदुर्धनम्	६९८
ससस्य यद् वियुता सस्मिन्नूधन् ऋतस्य धामन् रणयन्त देवाः ।	
महाँ अग्निर्मसा रातहव्यो वेरंध्वराय सदमिदृतावा	६९९
वेरंध्वरस्य दृत्यानि विद्वान् उभे अन्ता रोदसी संचिकित्वान् ।	
दूत ईयसे प्रदिवं उरणो त्रिदुष्टरो दिव आरोधनानि	७००
कृष्णं त एम रुद्रतः पुरो भाश् चरिष्णुर्चिर्वपुषामिदेकम् ।	
यदप्रवीता दधते ह गर्भे सद्यश् चिज् जातो भवसीदु दूतः	७०१
सद्यो जातस्य ददृशानमोजो यदस्य धातो अनुगतिं शोचिः ।	
वृणाक्ति तिग्मामतसेपु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते वि जम्भैः	७०२
तुषु यदन्ना तुषुणा वनक्षं तुषुं दूतं कृणुते यद्दो अग्निः ।	
वार्तस्य मेळि संचते निजर्वन् आशुं न वाजयते हिन्वे अर्वा	७०३

॥ ८३ ॥ (ऋ० ४ । ८ । १-८) गायत्री ।

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्टमृजसे गिरा	७०४
स हि वेदा प्रसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः । स देवा एह वक्षति	७०५
म वेद देव आनमं देवां ऋतायते दमं । दातिं प्रियाणि चिद् वसु	७०६
स होता सेदु दृत्यं चिकित्वां अन्तरीयते । विद्रां आरोधनं दिवः	७०७
ते स्वामं ये अग्रयं ददाशुर्हव्यदातिभिः । य ईं पुष्यन्त इन्धते	७०८
ते राया ते सुरीयैः ससवासो वि शृण्विरे । ये अग्ना दधिरे दुवः	७०९
अस्मे रायो दिवेदिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः । अस्मे वाजास ईरताम्	७१०
स त्रिप्रश् चर्षणीनां शर्वसा मानुषाणाम् । अतिं क्षिप्रेवं विध्यति	७११

॥ ८४ ॥ (ऋ० ४ । ९ । १-८)

अयं मृश महाँ अग्नि य ईमा देव्युं जनम् । इयेयं ग्रहिरासदम्	७१२
म मानुषीषु दूळमो त्रिधु प्रावीरमर्त्यः । दूतो विश्वेषां भवत्	७१३

स सन्न परिं णीयते	होता मन्द्रो दिविष्टिषु । उत पोता नि पीदति	७१४
उत प्रा अथिरध्वर	उतो गृहपतिर्दमे । उत ब्रह्मा नि पीदति	७१५
वेपि हध्वरीयताम्	उपवक्ता जनानाम् । हव्या च मारुपाणाम्	७१६
वेपीद् वंस्य द्रुत्यं	यस्य जुजोपो अध्वरम् । हव्यं मर्तस्य वोहवे	७१७
अस्माकं जोप्यध्वरम्	अस्माकं यज्ञमद्भिरः । अस्माकं गृणुयी हवम्	७१८
परिं ते दूळमो रथो	अस्माँ अश्रोतु विश्वतः । येन रक्षसि द्राशुपः	७१९

॥ ८५ ॥ (क्र० ४ । १० । १-८)

पदपांक्तिः, (७२३, ७२५, ७२६ उष्णिग्या,) ७२४ महापदपांक्तिः, ७२७ उष्णिक् ।

अग्ने तमघ	अश्वं न स्तोमैः	ऋतुं न मद्रं	हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा तु ओहैः	७२०
अघा हग्ने	ऋतोर्भद्रस्य	दर्शस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य	वृहतो वभूर्य	७२१
एभिर्नो अर्कर	मवा नो अवाह	स्वर्णं ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः	सुमना अनीकैः	७२२
आभिष्टे अघ	गीभिर्गुणन्तो	अग्ने दार्यम । प्र ते दिवो न	स्तनयन्ति शुर्माः	७२३
तव स्वादिष्ट	अग्ने संदष्टिर्	इदा चिदहं	इदा चिदुक्तोः । श्रिये रुक्मो न	रौचत उपाके ७२४
घृतं न पूतं	तनूरैपाः	शुचि हिरण्यम् । तत् ते रुक्मो न	रौचत स्वधावः	७२५
कृतं चिद्धि प्मा	सनेभि, द्वेषो	अग्ने इनोपि मर्तात् । इत्या यजमानादतावः		७२६
शिवा नः सख्या	सन्तु, भ्रात्रा	अग्ने द्वेषु युष्मे । सा नो नाभिः	सदने सस्मिन्ध्वन्	७२७

॥ ८६ ॥ (क्र० ४ । ११ । १-६) विष्टुत् ।

मद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकम्	उपाक आ रौचते ध्रुस्य ।	
रुशद् दृशे दृशे नक्त्या चिद्	अरुधितं दृश आ रूपे अन्नम्	७२८
वि पांशुभे गृणते मनीषां	खं वेपसा तुविजातु स्तवानः ।	
विश्वेभिर्विद् वावनः	शुक द्वैवस् तर्त्रो रास्व सुमहो भूरि मन्म	७२९
त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास्	त्वदुक्था जायन्ते राघ्यानि ।	
त्वदेति द्रविणं वीरपेशा	इत्याधिषे द्राशुपे मर्त्याय	७३०
त्वद् वाजी वाजंमरो विहाया	अभिष्टिक्त्वा जायते मृत्युष्मः ।	
त्वद् रपिद्वैवजतो मयोभुम्	त्वद्राशुर्जुवाँ अग्ने अर्वा	७३१
त्वामग्ने प्रयमं देव्यन्तो	देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।	
द्रेपोपुतमा विवामन्ति घीभिर्	दर्मनमं गृहपतिमर्मगम्	७३२

अरे अस्मदमतिमारे अहं अरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।
दोषा शिवः संहसः ह्यनो अग्ने यं देव आ चित् सचसे स्वस्ति ७३३

॥ ८७ ॥ (क्र० ४ । १२ । १-६)

यम् त्वामग्ने इनघते यतसुकृ त्रिस् ते अन्नं कृणवत् सस्मिन्नहन् ।
स सु द्युन्नैरभ्यस्तु प्रसन्नत् तव कृत्वां जातवेदग् चिकित्त्वान् ७३४

इध्मं यम् ते जभरच्छथ्रमाणो महो अग्ने अनीकमा संपर्यन् ।
स इध्मानः प्रतिं दोषामुपासं पुष्यन् रयिं संचते भन्नमित्रान् ७३५

अग्निरीशि बृहतः क्षत्रियस्य अग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।
दधाति रत्नं विद्यते यविष्ठो व्यानुषद् मर्त्याय स्वधावान् ७३६

यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठ अचित्तिभिश् चक्रुमा कश्चिदागः ।
कृधी ध्वस्माँ अदितेरनागान् व्येनांसि शिश्रयो विष्वग्ने ७३७

महग् चिदग्ने एनसो अभीकं ऊर्वाद् देवानामुत मर्त्यानाम् ।
मा ते सखायः सद्मिद् रिपाम् यच्छां तोक्वाय तर्नयाय शं योः ७३८

यथा ह त्यद् वंसवो गौर्यं चित् पदि पिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवो प्वस्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ७३९

॥ ८८ ॥ (क्र० ४ । १३ । १-५)

प्रत्यग्निरुपनामग्रमख्यद् विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।
शातमश्विना सुकृतीं दुरोणम् उत् सूर्यो ज्योतिषा देव एति ७४०

ऊर्ध्वं भानुं संविता देवो अश्रेद् द्रुप्सं दर्विष्वद् गविषो न सत्वा ।
अनुं व्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत् सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ७४१

यं मीमकृण्वन् तमसे विष्टुचं ध्रुवधेमा अनवस्यन्तो अर्धम् ।
तं सूर्यं हरितं सप्त यद्हीः स्पशं विश्वस्य जगती वहन्ति ७४२

वदिष्ठमिर्हरन् यामि तन्तुम् अवव्ययन्नमितं देव चर्म ।
दर्विष्वतो रदमयः सूर्यस्य चमेवावापुस् तमो अप्स्ववृन्तः ७४३

अनायतो अनिवदः कृषायं न्यहृत्तानोऽयं पयते न ।
कयां याति स्वधया को ददशं दिवः स्कम्भः ममृतः पाति नार्कम् ७४४

॥ ८९ ॥ (ऋ० ४ । १४ । १-५)

प्रत्यग्निरुपसो जातवेदा अख्यद् देवो रोचमाना महोभिः । आ नासत्योरुगाया रथेन इमं यज्ञमुप नो यातमच्छं	७४५
ऊर्ध्वं केतुं संविता देवो अश्रेज् ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन् । आग्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिग् चैकितानः	७४६
आवहन्त्यरूपीज्योतिपागान् मही चित्रा रश्मिभिग् चैकिताना । प्रबोधयन्ती सुविताय देवी उपा ईयते सुयुजा रथेन	७४७
आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उपमो व्युष्टौ । इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन् यज्ञे वृषणा मादयेथाम्	७४८
अनायतो० (७४४)	

॥ ९० ॥ (ऋ० ४ । १५ । १-६) गायत्री ।

अग्निहोता नो अध्वरे वाजी सन् परि णीयते । देवो देवेषु यज्ञियः	७४९
परि त्रिविष्टयध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत्	७५०
परि वाजपतिः कविर् अग्निहोत्यान्यक्रमीत् । दधद् रत्नानि दाशुपे	७५१
अयं यः सृज्ये पुरो दैववाते संमिध्यते । द्युर्मा अमित्रदम्भनः	७५२
अस्य घा वीर ईवतो अग्नेरीशीत् मर्त्यः । तिम्रजम्भस्य मीहृषः	७५३
तमर्वन्तं न सानसिम् अरुपं न द्विवः शिशुम् । मर्मज्यन्ते द्विवेदिवे	७५४

॥ ९१ ॥ (ऋग्वेदस्य पञ्चमं मण्डलं, सूक्तं १, मन्त्राः १-१२)

(७५५-७६६) बुधगविष्टिरावायेयौ । त्रिष्टुप् ।

अवोध्यभिः समिधा जनानां प्रतिं घेनुमिवायतीमुपासम् । यद्वा इव प्र वयामुजिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाक्रमच्छं	७५५
अवोधि होता यजथाय देवान् ऊर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरंस्थात् । समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान् देवस् तर्मसा निरमोचि	७५६
यदीं गणस्यं रशनामजीगः शुचिरङ्गे शुचिभिर्गोभिर्गभिः । आद् दक्षिणा युज्यते वाजयन्ती उतानामूर्ध्वो अघयज् जुहूर्भिः	७५७

अग्निमच्छा देवपुतां मनांसि चर्क्षुपीव स्युं सं चरन्ति । यदा सुवति उपसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्वाम्	७५८
जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेर्गुरुपो वनेषु । दमेदमे सप्त रत्ना दधानो अग्निर्होता नि पसादा यजीयान्	७५९
अग्निर्होता न्यसीदद् यजीयान् उपस्थे मातुः सुरभा उं लोके । युवा कविः पुरुनिःष्ठ क्रुतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्रः	७६०
प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुम् अग्निं होतारमीळते नमोभिः । आ यस् ततान् रोदसी क्रुतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन	७६१
मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दर्मनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः । सहस्रश्रद्धो वृषभस् तदौजा विश्वो अग्रे सहसा प्रास्यन्यान्	७६२
प्र सुद्यो अग्रे अत्येप्यन्यान् आविर्यस्मै चारुतमो वृभूर्य । ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिधिमार्नुपीणाम्	७६३
तुस्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ वलिमग्ने अन्तित ओत दूरात् । आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत् ते अग्रे महि शर्म भद्रम्	७६४
आद्य रथं भानुमो भानुमन्तम् अग्रे तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् । विद्वान् पथीनामूर्वाः न्तरिक्षम् एह देवान् हरिर्नद्याय वक्षि	७६५
अगोचाम कुत्रये मेघ्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे । गर्निष्ठो नमसा स्तोममग्नौ दिवीं न रुक्ममुरुष्यञ्चमथेत्	७६६

॥ ९२ ॥ (ऋ० ५।२।१-१२)

(७६७-७७८) कुमार आत्रेयः, वृशो वा जानः, उभो वा, २, ९ वृशो जानः । त्रिष्टुप्, १२ शक्यती ।

कुमारं माता युवतिः ससृग्धं गुहां विभर्ति न ददाति पित्रे । अनीकमस्य न मिनजनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरुतौ	७६७
कमेतं त्वं युवते कुमारं पेपीं निमर्षिं महिषी जजान । पूर्वाहिं गर्भः शरदां युवर्ध अपश्यं ज्ञातं यदस्य माता	७६८
हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात् क्षेत्रापश्यमायुंघ्रा मिमानम् । इदानो अस्मा अमृतं विपृक्त्वा किं मामेनिन्द्राः कृणवन्ननुकथाः	७६९

क्षेत्रादपश्यं सनुतश् चरन्तं सुमद् युथं न पुरु शोभमानम् ।	
न ता अगृभ्रन्नर्जनिष्ट हि पः पलिङ्गीरिद् युवतर्यो भवन्ति	७७०
के मे मर्यकं वि र्वन्त गोभिर् न येषां गोषा अरणश् चिदासं ।	
य ई जगृभ्रव ते संजन्त आजाति पृथ्व उषं नश् चिकित्वान्	७७१
वसां राजानं वसति जनानाम् अरातयो नि दधुर्मर्त्येषु ।	
ब्रह्माण्यत्रैरव तं संजन्त निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु	७७२
शुनश्चिच्छेपं निर्दितं सहस्राद् यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि पः ।	
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान् होतेश् चिकित्व इह तू निपद्य	७७३
दृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।	
इन्द्रो विद्वां अनु हि त्वा चक्ष तेनाहमग्ने अलुशिष्ट आगाम्	७७४
वि ज्योतिषा वृहता भात्यग्निर् आविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।	
भ्राद्वीर्मायाः संहते दुरेगाः शिशिति शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे	७७५
उत स्वानासो द्विवि पन्त्वग्नेस् तिग्मार्युधा रक्षसे हन्तवा उ ।	
मदं चिदस्य प्र रुजन्ति मामा न वरन्ते परिवाधो अद्वीः	७७६
एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरुः स्वर्पा अतथम् ।	
यदीदमे प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरुप एना जयेम	७७७
तुविशीर्वो वृषभो वावृधानो अश्व्वृथः समजाति वेदः ।	
इतीममग्निममृता अवोचन् वहिष्मते मनवे शर्म यंसद्विष्मते मनवे शर्म यमत्	७७८

॥ ९३ ॥ (क्र० ५ । ३ । १-२, ४-१२)

(७७२-८१०) वसुश्रुत आत्रेयः । ७७९ विराट्, ७८०-७८९ त्रिष्टुप् ।

त्वमग्ने वरुणो जायसे यत् त्वं मित्रो भवसि यत् समिद्रः ।	
त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास् त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय	७७९
त्वमर्यमा भवसि यत् कनीनां नाम स्वधावृन्त गुह्यं विमर्षिं ।	
अज्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर् यद् दंपती समनसा कृणोषि	७८०
तव श्रिया सुदृशो देव देवाः पुरु दधाना अमृतं सपन्त ।	
होतारमग्निं मनुषो नि पैदुर् दशस्यन्त उशिजः अंसमायोः	७८१

न त्वद्भोता पूर्वो अग्ने यजीयान्	न काव्यैः पुरो अस्ति स्वधावः ।	
विशश् च यस्या अतिथिर्भवासि	स यज्ञेन वनवद् देव मर्तान्	७८२
व्यमग्ने वनुयाम् त्वोता वसूयवो हविषा	बुध्यमानाः ।	
वयं समर्थे विदथेष्वह्नां वयं राया	सहसस्पुश्र मर्तान्	७८३
यो न आगो अभ्येनो भराति	अधीदुघमघशंसे दधात ।	
जही चिकित्वो अभिशस्तिमेताम्	अग्ने यो नो मर्चयति ह्येन	७८४
त्वामस्या व्युषिं देव पूर्वे दूतं कृष्णाना	अयजन्त हव्यैः ।	
संस्थे यदग्र इयंसे रयीणां देवो	मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः	७८५
अव स्पधि पितरं योधि विद्वान् पुत्रो	यस् तै सहसः स्रन ऊहे ।	
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नो अग्ने	कदा ऋतचिद् यातयासे	७८६
भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता	वसो यदि तज् जोपयासे ।	
कुविद् देवस्य सहसा चकानः सुम्नमभिर्वनते	वावृधानः	७८७
त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने	दुरितार्तिं पयिं ।	
स्तेना अदश्रन् रिपवो जनासो अज्ञातकेता	वृजिना अभूवन्	७८८
इमे यामासस् त्वद्रिगभूवन् वसवे वा	तदिदागो अवाचि ।	
नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रीपते	वावृधानः परा दात्	७८९

॥ ९४ ॥ (ऋ० ५ । ४ । १-११) त्रिष्टुप् ।

त्वामग्ने वसुपतिं वसूनाम् अभि प्र मन्दे	अध्वरेषु राजन् ।	
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेम अभि	प्याम पृत्सुतर्मित्यानाम्	७९०
हव्यवाञ्छिरजरः पिता नो विभुर्विभावा	सुदशीको अस्मे ।	
सुगार्हपत्याः समिपौ दिदीहि अस्मभ्यः	क् सं मिमीहि श्रवांसि	७९१
विशां कवि विशपतिं मानुषीणां शुचिं	पावकं घृतपृष्ठमग्निम् ।	
नि होतारं विश्वविदं दधिध्रे स देवेषु	वनते चार्याणि	७९२
जुपस्वाम् इळ्या सजोपा यतमानो रुमिमिः	सूर्यस्य ।	
जुपस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान्	हविरघाय वक्षि	७९३

जुष्टो दर्मना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् । विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि	७९४
वधेन दस्युं प्र हि चातर्यस्व वयः कृष्णानस् तन्वेइ स्वायै । पिपिर्षि यत् संहसस्पुत्र देवान् तसो अग्ने पाहि नृतम् वाजे अस्मान्	७९५
वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे । अस्मे रयि विश्ववारं समिन्व अस्मे विश्वानि द्रविणानि घेहि	७९६
अस्माकमग्ने अध्वरं जुपस्व संहसः सनो त्रिपधस्थ हव्यम् । वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस् त्रिवरूथेन पाहि	७९७
विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरिताति पपि । अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानोइ अस्माकं बोध्यविता तनूनाम्	७९८
यस् त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानो अमर्त्यं मर्यो जोहवीमि । जातवेदो यशो अस्मास्तु घेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम्	८९९
यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् । अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयि नशते स्वस्ति	८००

॥ ९५ ॥ (ऋ० ५ । ६ । १-१०) पशुक्तिः ।

अग्निं तं मन्ये यो वसुर् अस्तं यं यन्ति धेनवः । अस्तमर्धन्त आशवो अस्तं नित्यासो वाजिन इपं स्तोतृभ्य आ भर	८०१
सो अग्नियो वसुर्गुणे सं यमायन्ति धेनवः । समर्धन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इपं स्तोतृभ्य आ भर	८०२
अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः । अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यम् इपं स्तोतृभ्य आ भर	८०३
आ ते अग्न इधीमहि धुमन्तं देवाजरम् । यद्द स्या ते पनीयसी समिद् दीदर्यति घधि इपं स्तोतृभ्य आ भर	८०४
आ ते अग्न क्रुचा हविः शुक्रस्य शोचिपस्पते । सुध्वन्द्व दस्म विश्वते हव्यवाद् तुभ्यं ह्यव इपं स्तोतृभ्य आ भर	८०५

प्रो त्ये अग्रयोऽग्निपु	विश्वं पुष्यन्ति वार्षम् ।	
ते हिंन्विरे त ईन्विरे	त इपण्यन्त्यानुपग्	इपं स्तोत्रम्य आ भर ८०६
तव त्ये अग्ने अर्चयो	महिं ब्राधन्त वाजिनः ।	
ये पत्वंभिः शफानां	ब्रजा भ्रुन्त गोनाम्	इपं स्तोत्रम्य आ भर ८०७
नवां नो अग्र आ भर	स्तोत्रम्यः सुक्षितीरिपः ।	
ते स्याम य आनुचुस्	त्वादृतासो दमेदम्	इपं स्तोत्रम्य आ भर ८०८
उभे सुश्वन्द्र सर्षिपो	दवीं श्रीणीप आसनि ।	
उतो न उत् पुंपूर्या	उक्थेपुं शवसस्पत	इपं स्तोत्रम्य आ भर ८०९
एवाँ अग्रिमंजुर्यमूर्	गीर्भिर्यज्ञेभिरानुपक् ।	
दधंद्रस्मे सुवीर्यम्	उत त्यद्वाश्वश्वयम्	इपं स्तोत्रम्य आ भर ८१०

॥ ९६ ॥ (ऋ० ५ । ७ । १-१०) (८११-८२७) इप आग्नेयः । अनुष्टुप्, ८२० पङ्क्तिः ।

सखायः सं वः सम्यञ्चम्	इपं स्तोमं चाग्रये ।	
वर्षिष्ठाय क्षितीनाम्	ऊजो नष्ट्रे सहस्वते	८११
कुत्रा चिद् यस्य समृतौ	रुष्वा नरो नृपदने ।	
अर्हन्तश् चिद् यमिन्धते	संजनयन्ति जन्तवः	८१२
सं यद्विपो वनामहे	सं ह्वया मानुपाणाम् ।	
उत द्युमस्य शवस	ऋतस्य रश्मिमा ददे	८१३
सः स्मा कृणोति केतुमा	नक्तं चिद् दूर आ सते ।	
पावको यद् वनस्पतीन्	प्र स्मा मिनात्यजरः	८१४
अव स्म यस्य वेपणे	स्वेदं पथिपु जुहति ।	
अभीमह स्वर्जेन्यं	भूमां पृष्ठेवं रुरुहुः	८१५
यं मर्त्यः पुरुस्पृहं	विदद् विश्वस्य धार्यसे ।	
प्र स्वादनं पितृनाम्	अस्तंताति चिदायवे	८१६
स हि ष्मा घन्वाक्षितं	दाता न दात्या पशुः ।	
हिरिंश्मश्रुः शुचिदन्	ऋशुरनिभृष्टविपिः	८१७

शुचिः प्म यस्मा अत्रिवत् प्र स्वर्धितीव रीर्यते ।

सुपूरघत माता क्राणा यदानशे भगम् ८१८

आ यस्ते सर्पिरासुते अग्ने शमस्ति धायसे ।

ऐषु धुम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ८१९

इति चिन् मन्युमग्निजस् त्वादातमा पशुं देदे ।

आदग्ने अर्पणतो अग्निः सासह्याद् दस्युन् इपः सासह्यान्नृन् ८२०

॥ ९७ ॥ (ऋ० ५ । ८ । १-७) जगती ।

त्वामग्ने ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नासं ऊतये सहस्कृत ।

पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ८२१

त्वामग्ने अतिथिं पूच्यं विशाः शोचिष्केगं गृहपतिं नि पैदिरे ।

बृहत्केतुं पुरुरुर्वं धनस्पतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विपम् ८२२

त्वामग्ने मानुषीरीक्यते विशो होत्राविदं विविचि रत्नघातमम् ।

गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्णसं सुयजं घृतश्रियम् ८२३

त्वामग्ने घर्णासि विश्वधा वयं गीर्भिर्गुणन्तो नमसोप सोदिम ।

स नो जुपस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिभिः ८२४

त्वामग्ने पुरुरूपो विशोविशे वयो दधासि प्रत्नया पुरुष्टुत ।

पुरुष्पन्ना सहसा वि राजसि त्विपिः सा ते तित्विष्णस्य नाधृये ८२५

त्वामग्ने समिधानं यविष्ण्व देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम् ।

उरुन्नपसं घृतयोनिमाहुतं त्वेपं चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति ८२६

त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुम्नायवः सुपमिघा समीधिरे ।

स वावधान ओपधीभिरुक्षितोऽभि जयोसि पार्थिवा वि तिष्ठसे ८२७

॥ ९८ ॥ (ऋ० ५ । ९ । १-७)

(८२८-८४१) गय आनेयः । अनुष्टुप् । ८३२; ८३४ पदाक्तिः ।

त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईक्यते ।

मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुपक् ८२८

अग्निहोता दास्वतुः क्षयस्य वृक्तवर्हिपः ।

सं यज्ञासश् चरन्ति यं सं वाजासः श्रवस्यवः ८२९

उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणीं । धृतीरं मानुषीणां विशामग्निं स्वधृतरम्	८३०
उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्यार्याणाम् । पूरु यो दग्धासि वना अग्ने पशुर्न यवसे	८३१
अघं स्म यस्यार्चयः सम्यक् संयन्ति धूमिनः । यदीमहं त्रितो द्विवि उप ध्मातेव धर्मति शिशीते ध्मातरीं यथा	८३२
तवाहमग्र ऊतिभिर् मित्रस्य च प्रशस्तिभिः । द्वेषोयुतो न दुःखिता तुर्याम मर्त्यानाम्	८३३
तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्र आ भर । स क्षेपयत् स पौपयद् भुवद् वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे	८३४

॥ ९९ ॥ (ऋ० ५। १०। १-७) अनुष्टुप्. ८३८, ८४१ पङ्क्तिः ।

अग्र ओजिष्ठमा भर द्युन्नमस्मभ्यमग्निगो । प्र नो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम्	८३५
त्वं नो अग्ने अद्भुत ऋत्वा दक्षस्य मंहना । त्वे असुर्यै मारुहत् क्राणा मित्रो न यज्ञियः	८३६
त्वं नो अग्र एषां गयं पुष्टिं च वर्धय । ये स्तोमैभिः प्र सूरयो नरो मधान्यानुशुः	८३७
ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः । शुम्भेभिः शुष्मिणो नरो दिवश् चिद् येषां बृहत् सुकीर्तिर्वोधति त्मना	८३८
तव ते अग्ने अर्चयो भ्राजन्तो यन्ति धृष्णुया । परिज्मानो न विद्युतः स्वानो रथो न वाजयुः	८३९
नृ नो अग्र ऊतयै सवाधसश् च रातयै । अस्माकीसश् च सूरयो विश्वा आशीस् तरीषणि	८४०
त्वं नो अग्ने अङ्गिरः स्तुतः स्तवान् आ भर । होतृविभ्यामहं रयिं स्तोतृभ्यः स्रवसे च न उतैधि पृत्सु नो वृधे	८४१

॥ १०० ॥ (क्र० ५ । ११ । १-६) (८४२-८६५) सुतंमर आत्रेयः । जगती ।

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविर् अग्निः सुदर्शः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा धूमद् वि भाति भरतेस्युः शुचिः ८४२
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितम् अग्निं नरस् त्रिपधस्थे समीधिरे ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स वहिषि सीदन्निं होता यजथाय सुक्रतुः ८४३
असंमृद्यो जायसे मात्रोः शुचिर् मन्द्रः क्विरुदतिष्ठो विवस्वतः ।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्र आहुत धूमस् तै केतुरंभवद् दिवि श्रितः ८४४
अग्निर्नो यज्ञस्युषं वेतु साधुया अग्निं नरो वि भरन्ते गृहेगृहे ।
अग्निर्दूतो अभवद्द्रव्यवाहनो अग्निं वृणाना वृणते क्विक्रतुम् ८४५
तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वचस् तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे ।
त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्महीर् आ वृणन्ति शर्वसा वर्धयन्ति च ८४६
त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहां हितम् अन्वविन्दञ्छिष्याणं वनेवने ।
स जायसे मध्यमानः सहो महत् त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ८४७

॥ १०१ ॥ (क्र० ५ । १२ । १-६) त्रिष्टुप् ।

प्राग्रयं बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म ।
घृतं न यज्ञ आस्येडे सुपर्तं गिरं भरे वृषभार्यं प्रतीचीम् ८४८
ऋतं चिकित्त्व ऋतमिच् चिकिद्धि ऋतस्य धारा अरुं तन्धि पूर्वीः ।
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं संपाम्यरुषस्य वृष्णः ८४९
कया नो अग्न ऋतयंभृतेन श्रुवो नवेदा उचयस्य नव्यः ।
वेदां मे देव ऋतुपा ऋतुनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः ८५०
के तै अग्ने रिष्वे वन्धनासुः के पायवः सनिपन्त धूमन्तः ।
के घासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः ८५१
सखायस् ते विषुणा अग्न एते शिवासुः सन्तो अशिवा अभूवन् ।
अधूर्धत स्वयमेते वचोभिर् ऋजूयते वृजिनानि न्रुवन्तः ८५२
यस् तै अग्ने नमसा यज्ञमीदृं ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः ।
तस्य क्षयः पृथुरा सायुरेतु प्रसर्षीणस्य नहुषस्य शेषः ८५३

॥ १०२ ॥ (ऋ० ५ । १३ । १-६) गायत्री ।

अर्चन्तस् त्वा हवामहे	अर्चन्तः समिधीमहि	। अग्ने अर्चन्त उतये	८५४
अग्नेः स्तोमं मनामहे	सिध्रमद्य दिविसृष्टः	। देवस्य द्रविणस्यवः	८५५
अग्निर्जुपत नो गिरो	होता यो मानुषेष्वा	। स यक्षद् दैव्यं जनम्	८५६
त्वमग्ने सप्रथा असि	जुष्टो होता वरेण्यः	। त्वया यज्ञं वि तन्वते	८५७
त्वमग्ने वाज्रसातमं	विप्रां वर्धन्ति सुष्टुतम्	। स नो रास्व सुवीर्यम्	८५८
अग्ने नेमिराँ इव	देवाँस् त्वं परिभूरसि	। आ राधश् चित्रमृज्जसे	८५९

॥ १०३ ॥ (ऋ० ५ । १४ । १-६)

अग्निं स्तोमेन बोधय	समिधानो अमर्त्यम् ।	हव्या देवेषु नो दधत्	८६०
तमध्वरेष्वीळते	देवं मर्ता अमर्त्यम् ।	यजिष्ठं मानुषे जने	८६१
तं हि शश्वन्त ईळते	स्रुचा देवं धृतश्रुता ।	अग्निं हव्याय वोह्वे	८६२
अग्निर्जातो अरोचत	मन् दस्यून् ज्योतिषा तमः ।	अविन्दुद् गा अपः स्वः	८६३
अग्निमीलेन्यं कृधि	धृतपृष्ठं सपर्यत ।	वेतुं मे शृणवद्ववम्	८६४
अग्निं धृतेन वावृधुः	स्तोमैर्भिविश्वर्षणिम् ।	स्वाधीर्भिवचस्युभिः	८६५

॥ १०४ ॥ (ऋ० ५ । १५ । १-५) (८६६-८७०) धरुण आङ्गिरसः । त्रिष्टुप् ।

प्र वेधसे कवये वेद्याय	गिरं भरे यशसे पूर्व्याय ।		
धृतप्रसक्तो असुरः सुशेवो	रायो धर्ता धरुणो वस्रो अग्निः		८६६
ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त	यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।		
दिवो धर्मन् धरुणं सेदुपो नृम्	जातैरजाताँ अग्नि ये ननक्षुः		८६७
अंहोयवस् तन्वस् तन्वते वि	वयो महद् दुष्टं पूर्व्याय ।		
स संवतो नवजावस् तुतुर्पात्	सिंहं न क्रुद्धमभितः परिं धुः		८६८
मातेव यद् भरसे पप्रथानो	जनंजनं धार्यसे चर्क्षसे च ।		
वयोवयो जरसे यद् दधानः	परि त्मना त्रिष्टुप्पो जिगासि		८६९
वानो नु ते शर्वसस्तात्वन्तम्	उरुं दोषं धरुणं देव रायः ।		
पदं न तायुर्गुहा दधानो	महो राये चितयन्नत्रिमस्यः		८७०

॥ १०५ ॥ (ऋ० ५ । १६ । १-५) [८७१-८८०] पूरुत्रयेयः । अनुष्टुप्, ८७५ पङ्क्तिः ।

बृहद् वयो हि भानवे ऽर्चा देवायाम्रये ।	
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर् मतीसो दधिरे पुरः	८७१
स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य ग्राहोः ।	
वि हव्यमभिरानुपग् भगो न चारमृण्वति	८७२
अस्य स्तोमं मघोनः सख्ये वृद्धशोचिपः ।	
विश्वा यस्मिन् तुविष्वणि समये शुष्ममादधुः	८७३
अथा ह्यप्र एपां सुवीर्यस्य मंहना ।	
तमिद् यहं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः	८७४
नू न एहि वार्यम् अग्नें गृणान आ भर ।	
ये वयं ये च सूर्यः स्वस्ति घामहे सचा उतैधि पृतसु नो वृधे	८७५

॥ १०६ ॥ (ऋ० ५ । १७ । १-५) अनुष्टुप्, ८८० पङ्क्तिः ।

आ युज्ञेदेव मर्त्यं इत्था तव्यांसमूतये ।	
अग्निं कुते स्वध्वरे पूरुतीळीतार्वसे	८७६
अस्य हि स्वयंशस्तर आसा विधर्मन् मन्यसे ।	
तं नार्कं चित्रशोचिपं मन्द्रं पुरो मनीपर्या	८७७
अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।	
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः	८७८
अस्य क्रत्वा विचेतसो दुस्मस्य वसु रथ आ ।	
अथा विश्वासु हव्यो ऽग्निर्विष्णु प्र शस्यते	८७९
नू न इद्धि वार्यम् आसा संचन्त सूरयः ।	
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तयं उतैधि पृतसु नो वृधे	८८०

॥ १०७ ॥ (ऋ० ५ । १८ । १-५)

[८८१-८८५] द्वितो मृकधादा आग्नेयः । अनुष्टुप्, ८८५ पङ्क्तिः ।

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।	
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति	८८१

द्वितीयं मृक्तवाहसे	स्वस्य दक्षस्य मंहना ।	
इन्द्रं स धत्त आनुपक्	स्तोता चित् ते अमर्त्य	८८२
तं वो दीर्घायुशोचिपं	गिरा हुवे मघोनाम् ।	
अरिष्टो येषां रथो	व्यश्वदाघ्न नीयते	८८३
चित्रा वा येषु दीर्घितिर्	आसन्नकथा पान्ति ये ।	
स्तीर्णं वहिः स्वर्णरे	श्रवांसि दाधरे परि	८८४
ये मे पञ्चाशतं दुदुर्	अश्वानां सधस्तुति ।	
द्युमदग्ने महि श्रवां	बृहत् कृधि मघोनां नृवदंमृत नृणाम्	८८५

॥ १०८ ॥ (ऋ० ५ । १९ । १-५)

[८८६-८९०] चमिरात्रेय । ८८६-८८७ गायत्री, ८८८-८८९ अनुष्टुप्, ८९० विराह्रूपा ।		
अभ्ययवस्थाः प्र जायन्ते	प्र वत्रेर्वत्रिश् चिकेत । उपस्थे मातुर्वि चष्टे	८८६
जुहुरे वि चितयन्तो	ऽनिमिपं नृम्णं पान्ति । आ दृह्णां पुरं विविशुः	८८७
आ श्वेत्रेयस्य जन्तवो	द्युमद् वर्धन्त कृष्टयः ।	
निष्क्रीणो बृहदुक्थ	एना मघ्वा न वाजयुः	८८८
प्रियं दुग्धं न काम्यम्	अजामि जाम्योः सचा ।	
घर्मो न वाजजठरो	ऽदब्धुः शश्वतो दभः	८८९
कीळन् नो रदम आ श्ववः	सं भस्मना वायुना वेविदानः ।	
ता अस्य सन् ध्रुपजो न तिग्माः	सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः	८९०

॥ १०९ ॥ (ऋ० ५ । २० । १-४) [८९१-८९४] प्रयस्वन्त आत्रेयाः । अनुष्टुप्, ८९४ पङ्क्तिः ।

यमग्ने वाजसातम्	त्वं चिन् मन्यसे रयिम् ।	
तं नो गीभिः श्रवाग्यं	देवत्रा पनया युजम्	८९१
ये अग्ने नेरयन्ति ते	वृद्धा उग्रस्य शर्वसः ।	
अप द्वेषो अप ह्यरो	ऽन्यत्रतस्य सधिरे	८९२
होतारं त्वा वृणीमहे	ऽग्ने दक्षस्य सार्धनम् ।	
यज्ञेषु पूच्यं गिरा	प्रयस्वन्तो हवामहे	८९३
इत्या यथा त उतपे	सहसावन् द्विवेदिवे ।	
राय श्रुताय मुन्नतो	गोभिः प्याम सधुमादो धीरैः स्याम सधुमादः	८९४

॥ ११० ॥ (ऋ० ५ । २१ । १-४) [८९५-८९८] सप्त आत्रेयः । अनुष्टुप्, ८९८ पङ्क्तिः ।

मनुष्वत् त्वा नि धीमहि	मनुष्वत् सर्मिधीमहि । अग्ने मनुष्वर्दङ्गिरो देवान् देवयते यज्ञ	८९५	
त्वं हि मानुषे जने	ऽग्ने सुप्रीत इध्यमे । सुर्चस् त्वा यन्त्यानुपक् सुजात सर्पिरासुते	८९६	
त्वां विश्वे सजोषसो	देवासो दूतमक्रत । सपर्यन्तम् त्वा कवे यज्ञेषु देवमीकते	८९७	
देवं वो देवयज्यया	अग्निमीकीत मर्त्यैः ।		
सर्मिद्धः शुक्र दीदिहि	ऋतस्य योनिमासदः	ससस्य योनिमासदः	८९८

॥ १११ ॥ (ऋ० ५ । २२ । १-४) [९०१-९०२] विश्वसामा आत्रेयः । अनुष्टुप्, ९०२ पङ्क्तिः ।

प्र विश्वसामन्नद्विवद्	अर्ची पावकशोचिषे । यो अर्ध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि	८९९
न्युभि जातवेदसं	दर्घाता देवमृत्विर्जम् । प्र यज्ञ एत्वानुपग् अद्या देवव्यचस्तमः	९००
चिकित्विन् मनसं त्वा	देवं मर्तास ऊतये । वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि	९०१
अग्ने चिकित्त्वयस्य न	इदं वचः सहस्य ।	
तं त्वा सुशिप्र दंपते	स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीभिः शुम्भन्त्यत्रयः	९०२

॥ ११२ ॥ (ऋ० ५ । २३ । १-४) [९०३-९०६] द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेयः । अनुष्टुप्, ९०६ पङ्क्तिः ।

अग्ने सहन्तमा भर	द्युम्नस्य ग्रासर्हा रयिम् । विश्वा यश् चर्षणीरभि आइसा वार्जेषु मामहत्	९०३
तमग्ने पृतनापहं	रयिं सहस्व आ भर । त्वं हि सत्यो अद्भुतो द्राता वार्जस्य गोमतः	९०४
विश्वे हि त्वां सजोषसो	जनासो वृक्तवर्हिषः । होतारं सन्नसु प्रियं व्यन्ति वार्यां पुरु	९०५
स हि प्मां विश्वचर्षणिर्	अभिमाति सहो द्वेषे ।	
अग्र एषु क्षयेष्वा	रेवन् नः शुक्र दीदिहि द्युमन् पावक दीदिहि	९०६

॥ ११३ ॥ (ऋ० ५ । २४ । १-४)

[९०७-९१०] यन्धुः सुवन्धुः धृतवन्धुर्विप्रवन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा । छिपदा विगद ।

अग्ने त्वं नो अन्तम उत	त्राता शिवो भवा वरुध्व्यः	९०७
वसुरभिर्वसुश्रवा अच्छा	नाक्षि द्युमत्तमं रयि दाः	९०८
स नो वोधि भ्रुधी हवम्	उरुण्या णो अवायुतः संमस्मात्	९०९
तं त्वां शोचिष्ठ दीदिवः	सुम्नार्यं नूनमीमहे सखिभ्यः	९१०

॥ ११४ ॥ (ऋ० ५ । २५ । १-२) [९११-२२७] चक्षय आत्रेयाः । अनुष्टुप् ।

अच्छा वो अग्निमवसे	देवं गांसि स नो वसुः ।	
रासत् पुत्र ऋषूणाम्	ऋतानां पर्पति द्विपः	९११

स हि सत्यो यं पूर्वं चिद् देवासंश् चिद् यमीधिरे ।	
होतारं मन्द्रजिह्वमित् सुदीतिभिर्विभावंसुम्	११२
स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या ।	
अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य	११३
अग्निदेवेषु राजति अग्निर्मतेष्वविशन् ।	
अग्निनां हव्यवाहनो ऽग्निं धीभिः संपर्यत	११४
अग्निस् तुविश्रवस्तमं तुवित्रं ब्राह्मणमुत्तमम् ।	
अतूर्ति श्रावयत् पतिं पुत्रं ददाति द्वाशुषे	११५
अग्निर्देदाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।	
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम्	११६
यद् वाहिष्ठं तदग्रये बृहदर्चं विभावसो ।	
महिषीव त्वद् रायिस् त्वद् वाजा उदीरते	११७
तव द्युमन्तो अर्चयो प्रावेवोऽयते बृहत् ।	
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मनां द्विवः	११८
एवो अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।	
स नो विश्वा अति द्विपः पर्षन्नावेवं सुकृतुः	११९

॥ ११५ ॥ (ऋ० ५ । २६ । १-८) गायत्री ।

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रयां देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च	१२०
तं त्वा घृतस्त्रवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवाँ आ वीतये वह	१२१
वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे	१२२
अग्ने विश्वेभिरा गंहि देवेभिर्देव्यदातये । होतारं त्वा वृणीमहे	१२३
यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह । देवैरा संत्सि वृहिषि	१२४
समिधानः संहस्रजिद् अग्ने धर्माणि पुष्यसि । देवानां द्रुत उक्थ्यः	१२५
न्यः प्रिं जातवेदसं होत्रवाहं यमिष्ठ्यम् । दधाता देवमृत्विजम्	१२६
प्र यज्ञ षत्वानुपग् अथा देवच्यञ्चस्तमः । स्तृणीत वृहिरासदे	१२७

॥ ११६ ॥ (ऋ० ५ । २७ । १-५)

[१२८-१३२] व्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्सः, अश्वमेघश्च भारताः राजानः (अत्रिमौम इति केचित्) । त्रिष्टुप्, १३१-१३२ अनुष्टुप् ।

अनस्वन्ता सत्पतिर्मांमहे मे गात्रा चेतिष्ठो असुरो मुघोनः ।
 त्रैवृष्णो अग्ने दुशर्मिः सहस्रैर् वैश्वानर व्यरुणश् चिकेत १२८
 यो मे शता च विशति च गोनां हरीं च युक्ता सुधुरा ददाति ।
 वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानो ऽग्ने यच्छ व्यरुणाय शर्म १२९
 एवा ते अग्ने सुमति चक्रानो नविष्टाय नवमं त्रसदस्युः ।
 यो मे गिरस् तुविजातस्य पूर्वार् युक्तेनाभि व्यरुणो गुणाति १३०
 यो मु इति प्रयोचति अश्वमेधाय मुर्ये ।
 ददहचा सनि यते ददन्मेधामृतायते १३१
 यस्य मां परुषाः शतम् उद्धर्षयन्त्युक्षणः ।
 अश्वमेघस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः १३२

॥ ११७ ॥ (ऋ० ५ । २८ । १-६)

[१३३-१३८] विश्ववारात्रेयी । १३३, १३५ त्रिष्टुप्, १३४ जगती, १३६ अनुष्टुप्, १३७-१३८ गायत्री ।

समिद्धो अप्रिदिवि शोचिरंश्रेत् प्रत्यङ्गुपसंभुर्विया वि मांति ।
 एति प्राचीं विश्ववारा नमोभिर् देवा ईळोना हविषो धृताचीं १३३
 समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष् कृष्वन्तं सचसे स्वस्तये ।
 विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वसि आतिथ्यमग्ने नि च धत्त इत् पुरः १३४
 अग्ने शर्षं महते सामंगाय तव द्युम्रान्युत्तमानि सन्तु ।
 सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि १३५
 समिद्धस्य प्रमहसो ऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।
 वृषभो द्युम्रवांसि समध्वोऽप्विध्यसे १३६
 समिद्धो अग आहुत देवान् यक्षि स्वध्वर । त्वं हि हव्यवाळमि १३७
 आ जुहोता दुवस्पत अग्निं प्रयत्यध्वरे । वृणीष्वं हव्यवाहनम् १३८

॥ ११८ ॥ (ऋग्वेदस्य षष्ठं मण्डलं, सूक्तं १, मन्त्राः १-१६)

[९३९ १०९०] भरद्वाजो वार्दस्पत्यः । शिष्टुषु ।

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता	अस्या धियो अर्भवो दस्म होता ।	
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु	सहो विश्वस्मै सहसे सहर्घ्यं	९३९
अथा होता न्यसीदो यजीयान्	इळस्पद इपयन्नीद्वः सन् ।	
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तौ	महो राये चितर्यन्तो अनु ग्मन्	९४०
वृतेव् यन्तं वृहुभिर्वसुव्यैकुस्	त्वे रयि जागृतांसो अनु ग्मन् ।	
रुशन्तमग्निं दर्शतं वृहन्तं	वृषान्तं विश्वहा दीद्विवांसम्	९४१
पदं देवस्य नमसा व्यन्तः	श्रवस्यवः श्रवं आपन्नमृक्तम् ।	
नामानि चिद् दधिरे यज्ञियानि	भद्रायां ते रणयन्तु संदृष्टौ	९४२
त्वां वर्धन्ति क्षितर्यः पृथिव्यां	त्वां रायं उमयांसो जनानाम् ।	
त्वं ज्ञाता तरणे चेत्यौ भूः	पिता माता सद्मिन्मानुषाणाम्	९४३
सपय्येण्यः स प्रियो विक्ष्वग्निर्	होता मन्द्रो नि पसादा यजीयान् ।	
तं त्वा वयं दम् आ दीद्विवांसम्	उप जुवाधो नमसा सदेम	९४४
तं त्वा वयं सुध्योऽहं नव्यमग्ने	सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।	
त्वं विशो अनयो दीर्घानो	दिवो अग्ने वृहता रौचनेन	९४५
विशां कविं विश्वपतिं शश्वतीनां	नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।	
भेतीपणिमिपर्यन्तं पावकं	राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम्	९४६
सो अग्र ईजे शशमे च मतो	यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।	
य आहुतिं परि वदा नमोभिर्	विश्वेत् स वामा दधते त्वोतः	९४७
अस्मा उं ते महि महे विधेम	नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।	
वेदीं सनो सहसो गीभिरुक्थैर्	आ ते भद्रायां सुमतौ यतेम	९४८
आ यस् ततन्थ रोदसी वि भासा	श्रवोभिश्च श्रवस्योस् तरुनः ।	
वृहद्विर्वाजैः स्थीरैरिभिरस्मे	रेवद्विग्ने वितरं वि माहि	९४९
नृषद् वंसो सद्मिद्वैद्यस्मे	भूरिं तोकाय तनयाय पथः ।	
पूर्वीरिपो वृहतीरारेर्वा	अस्मे भद्रा सींश्रवसानि सन्तु	९५०

पुरुष्यग्ने पुरुधा त्वाया वसन्ति राजन् वसुता ते अश्याम् ।
पुरुणि हि त्वे पुरुवार सन्ति अग्ने वसु विधत्ते राजन्ति त्वे

९५१

॥ ११९ ॥ (ऋ० ६ । २ । १-११) अनुष्टुप्. ९६२ शकरी ।

त्वं हि क्षैतवद् यशो ऽग्ने मित्रो न पत्यसे । त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुंष्यसि ९५२
त्वां हि पर्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते । त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तुर्विश्वचर्षणिः ९५३
सजोपस् त्वा द्विवो नरो यज्ञस्य केतुर्मिन्धते । यद्द स्य मानुषो जनः सुम्रायुर्जुहे अंधरे ९५४
ऋधन् यस् तं सुदानवे धिया मर्तः शशमते । ऊर्ता पवृहतो द्विवो द्विपो अंहो न तरति ९५५
समिधा यस् तु आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत् । वपावन्तं स पुंष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ९५६
त्वेपस् तं धूम ऋण्वति दिवि पञ्चुक्र आततः । सरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ९५७
अथा हि विक्षीत्वो ऽसिं प्रियो नो अतिथिः । रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाच्यः ९५८
ऋत्वा हि द्रोणे अज्यसे ऽग्ने वाजी न कृत्व्यः । परिज्मेव स्वधा गयो ऽत्यो न ह्यार्यः शिशुः ९५९
त्वं त्या चिदच्युता अग्ने पशुर्न यवसे । धामा ह यत् तं अजर वना वृथन्ति शिकसः ९६०
वेपि ह्यध्वरीयताम् अग्ने होता दमे विशां । समृधो विदयते कृशु जुयस्व हन्यमङ्गिरः ९६१
अच्छा नो मित्रमहो देव देवान् अग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्ति सुक्षितिं द्विवो नृन् द्विपो अहांसि दुरिता तरेम, ता तरेम, तवावसा तरेम ९६२

॥ १२० ॥ (ऋ० ६ । ३ । १-८) त्रिष्टुप् ।

अग्ने स क्षेपदत्तपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोपा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ९६३
ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर् ऋधद्दारायाग्र्ये ददाश ।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर् नांहो मर्तं नशते न प्रदक्षिः ९६४
सरो न यस्य दशतिरेपा भीमा यदेति शुचवस् तु आ धीः ।
हेपस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुर्वा चिद् रण्वो वसतिर्वेनेजाः ९६५
तिग्मं चिदेम महि वपो अस्य मसदश्चो न यममान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धरन् ९६६
स इदस्तेव प्रति धादसिप्यन् छिशीत तेजोऽयमो न धाराम् ।
चित्रांजतिररतियो अक्तोर् वेर्न द्रुपदा रघुपत्मजंहाः ९६७

स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्त्राः	शोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।	
नक्तं य ईंमरुपो यो दिवा नृन्	अमर्त्यो अरुपो यो दिवा नृन्	९६८
दिवो न यस्य विधतो नवीनोद्	घृषा रुक्ष ओषधीषु नृनोत् ।	
घृणा न यो ध्रजसा पत्मेना यन्	ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी	९६९
घायोभिर्वा यो युज्यैभिरकैर्	विद्युन्न दविद्योत् स्वेभिः शुष्मैः ।	
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष	ऋशुर्न त्वेषो रभसानो अर्धौत्	९७०

॥ १२१ ॥ (ऋ० ६।४।१-८)

यथा होतर्मनुषो देवताता	यज्ञेभिः सन्नो सहस्रो यजासि ।	
एवा नो अद्य समना समानान्	उशन्नम उशतो यक्षि देवान्	९७१
स नो विभारवा चक्षणिर्न वस्तोर	अग्निर्वन्दारु वेद्यश् चनो घात् ।	
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषु	उपशुद्भूदतिथिर्जातवैदाः	९७२
घावो न यस्य पनयन्त्यभ्यं	भासांसि वस्ते स्यो न शुक्रः ।	
वि य इनोत्यजरः पावको	ऽभ्रस्य चिच्छिन्नयत् पूर्याणि	९७३
वद्वा हि सन्नो अस्यन्नसद्वा	चक्रे अभिर्जनुपाज्मानम् ।	
स त्वं न ऊर्जसन् ऊर्जे घा	राजैव जेरवृके क्षेप्यन्तः	९७४
नितिक्रिं यो वारणमन्नमत्ति	वायुर्न राष्ट्रयत्येत्यक्तन् ।	
तुर्याम् यस् त आदिशामरातीर्	अत्यो न हृतः परतः परिहृत	९७५
आ स्यो न भानुमद्भिरकैर्	अग्ने तन्नय रोदसी वि भासा ।	
चित्रो नयत् परि तर्मास्यक्तः	शोचिषा पत्मेन्नौशिजो न दीर्यन्	९७६
त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्	ववृमहे महि नः श्रोप्यग्ने ।	
इन्द्रं न त्वा शर्षसा देवता	वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः	९७७
नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति	वेपि रायः पृथिभिः पर्वहः ।	
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुन्न	मदेम शतहिमाः सुवीराः	९७८

॥ १२२ ॥ (ऋ० ६।५।१-७)

हुवे वः सूनुं सहस्रो युवानम्	अद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम् ।	
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता	विश्ववाराणि पुरुवारो अशुक्	९७९

- त्वे वद्वनि पुर्वणीक होतर् द्रोपा वस्तोरेरिरे यजियांसः ।
 क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन् त्सं सौमंगानि दधिरे पावके १८०
- त्वं विक्षु प्रदिवः सीद आसु कृत्वा रथीरभवो वार्याणाम् ।
 अत इनोपि विघते चिकित्वा व्यानुपग् जातवेदो वद्वनि १८१
- यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुप्यात् ।
 तमजरैर्भिवृषभिसु तव स्वैस् तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् १८२
- यस् ते यज्ञेन समिधा य उक्थैर् अर्केभिः सूनो सहसो ददाशत् ।
 स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति १८३
- स तत् कृधीपितस् तूर्यमग्ने स्पृधो वाघस्व सहसा सहस्वान् ।
 यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिसु तज् जुपस्व जरितुर्धोपि मन्म १८४
- अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रथि रथिवः सुवीरम् ।
 अश्याम वाजमभि वाजयन्तो ऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते १८५

॥ १२३ ॥ (ऋ० ६।६।१-७)

- प्र नव्यसा सहसः सनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः ।
 वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति १८६
- सं श्वितानस् तन्यत् रौचनस्था अजरैर्भिर्नानदद्विर्यविष्टः ।
 यः पावकः प्ररुतमः पुरुणिं पृथून्यागिरनुयाति भवेन् १८७
- वि ते विष्वग् वार्तजूतासो अग्ने मामांसः शुचे शुचयश् चरन्ति ।
 तुविभ्रक्षासो दिव्या नवग्या वना वनन्ति धृपता रुजन्तः १८८
- ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः धां वपन्ति विषितासो अश्वः ।
 अघं भ्रमस् तं उर्विया वि भाति यातयेमानो अधि सानु पृश्रैः १८९
- अधं जिह्वा पापतीति प्र वृष्णो गोपुयुधो नाशनिः सृजाना ।
 शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरभेर् दुर्वर्तुर्मीमो दयते वनानि १९०
- आ भानुना पार्थिवानि जयांसि महस् तोदस्यं धृपता तंतन्य ।
 स वाघस्वार्य भया सहोभिः स्पृधो वनुप्यन् वनुपो नि जूर्व १९१

स चित्रं चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्रं चित्रतमं वयोधाम् ।
चन्द्रं रथिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्रं चन्द्राभिर्गृणते युवस्व १९२

॥ १२४ ॥ (ऋ० ६।१०।१-७) त्रिष्टुप् । १९२ छिपदा विराट् ।

पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति युजे अग्निर्मध्वरे दधिध्वम् ।
पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः १९३

तमुं द्युमः पुर्वणीक होतृर् अग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः ।
स्तोमं यमस्मै मुमतेव शूपं धृतं न शुचिं मतयः पवन्ते १९४

पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्रं उक्थैः ।
चित्राभिस् तमूतिभिश् चित्रशोचिर् ब्रजस्य साता गोमतो दघाति १९५

आ यः पुरौ जायमान उर्वी दरेदशा भासा कृष्णाध्वा ।
अर्धं बहु चित् तम ऊर्न्यायास् तिरः शोचिषा ददशे पावकः १९६

नू नेश् चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रथिं मध्वञ्जश् च धेहि ।
ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान् त्सुवीर्येभिश् चाभि सन्ति जनान् १९७

इमं यज्ञं चनो धा अग्र उशन् यं त आसानो जुहुते हविष्मान् ।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिम् अवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ १९८

वि द्वेषासीनुहि-वर्धयेळ्मं मदेम शतहिमाः सुवीराः १९९

॥ १२५ ॥ (ऋ० ६।११।१-६) त्रिष्टुप् ।

यजस्व होतरिपितो यजीयान् अग्ने वाधो मरुतां न प्रयुक्ति ।
आ नो मित्रावरुणा नासत्या धावा होत्राय पृथिवी वयुत्याः १०००

त्वं होता मन्द्रतमो नो अभ्रुग् अन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु ।
पावकया जुह्वाङ् वाहिरासा ऽग्ने यजस्व तन्वं तव स्वाम् १००१

घन्या चिद्धि त्वे धिपणा वष्टि प्र देवाञ् जन्मं गृणते यज्यै ।
वेपिष्ठो अद्भिरसां यद्द विप्रो मयुं च्छन्दो भनति रेभ इष्टौ १००२

अदिद्युतत् स्वर्पाको विभावा ऽग्ने यजस्व रोदसी उरूची ।
आयुं न यं नर्मसा रातर्हव्या अज्जन्ति सुप्रयसुं पञ्च जनाः १००३

वृद्धे ह यन्नर्मसा बृहिरिधौ अयामि सुग् घृतवती सुवृक्तिः ।	
अम्यक्षि सन्न सदर्ने पृथिव्या अथापि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः	१००४
दशस्या नः पुर्वणीक होतर् देवाभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।	
रायः स्रनो सहसो वावसाना अति ससेम वृजनं नाहः	१००५

॥ १२६ ॥ (ऋ० ६ । १२ । १-६)

मध्ये होता दुरोणे बृहिपो राळ् अग्निस् तोदस्य रोदसी यजघ्यै ।	
अयं स सुनुः सहस क्रुतावा दूरात् सूर्यो न शोचिर्पा ततान	१००६
आ यस्मिन् त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद् राजन्त्सर्वततिव नु द्यौः ।	
त्रिषधस्थस् ततरुषो न जंहो हव्या मयानि मानुषा यजघ्यै	१००७
तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराद् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत् ।	
अद्रोघो न द्रविता चैतति त्मन् अमत्योऽवर्त्र ओपधीषु	१००८
सास्माकैभिरेतरी न शूपैर् अग्निः एवे दम आ जातवेदाः ।	
दृन्नो धन्वन् क्रत्वा नार्वा उस्रः पितेव जारयार्थि यज्ञैः	१००९
अर्ध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत् तर्क्षदनुयाति पृथ्वीम् ।	
सद्यो यः स्पन्द्रो विषितो षवीयान् ऋणो न तापुरति घन्वा राद्	१०१०
स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।	
वेपिं रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुत्रीराः	१०११

॥ १२७ ॥ (ऋ० ६ । १३ । १-६)

त्वद् विश्वा सुमग सौमगानि अग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।	
श्रुष्टी र्षिर्वाजो वृत्रतृप्ये द्विवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम्	१०१२
त्वं भगो न आ हि रत्नमिपे परिज्मेव क्षयसि दुस्मर्चाः ।	
अग्ने मित्रो न वृद्धत क्रतस्य असि क्षत्ता वामस्य देव भूरैः	१०१३
स सत्पतिः शर्वसा हन्ति वृत्रम् अग्ने विप्रो वि पुणेर्मति वार्जम् ।	
यं त्वं प्रचेत क्रतजात राया सजोषा नप्रापां दिनोपि	१०१४
यस् ते स्रनो सहसो गीर्मिक्क्यैर् यज्ञैर्मतो निशिति वेद्यानद् ।	
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने घृत्ते धान्यं पत्यते वमृच्यैः	१०१५

ता नृभ्य आ सौश्रुता सुवीरा अग्नें धनो सहसः पुण्यसे धाः ।
 कृणोपि यच्छवसा भूरिं पश्वो वयो वृकाधारये जसुरये १०१६
 यद्वा धनो सहसो नो विहाया अग्नें लोकं तनयं वाजि नो दाः ।
 विश्वाभिर्गाभिर्भिरभि पूतिर्मद्यां मदम शतर्हिमाः सुवीराः १०१७

॥ १२८ ॥ (ऋ० ६ । १४ । १-६) अनुष्टुप्, ९६२ शक्वी ।

अग्रा यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोषं घीतिभिः । भसुत्तु प प्र पुर्व्य इपं वुरीतावसे १०१८
 अग्निरिद्वि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः । अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः १०१९
 नाना ह्यग्नेऽवसे स्वर्धन्ते रायो अर्यः । तूर्वेन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अत्रतम् १०२०
 अग्निरप्तामृतीपहं वीरं दंदाति सप्ततिम् । यस्य व्रसन्ति शवंसः संचक्षि शत्रवो भिया १०२१
 अग्निर्हि विद्वानां निदो देवो मर्तेशुरुप्यति । सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः १०२२
 अच्छा नो मित्रमहो० (९६२)

॥ १२९ ॥ (ऋ० ६ । १५ । १-२९)

जगती, १०२५, १०३७ शक्वी, १०२८ अतिशक्वी, १०३९ अनुष्टुप्, १०४० वृहती,
 १०३२-३६, १०३८, १०४१ त्रिष्टुप् ।

इममू पु यो अतिथिसुपूर्वधं विश्वासां विशां पतिमृज्जसे गिरा ।
 वेतीद् दिवो जनुषा कश्चिदा शुचिर् ज्योक् चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् १०२३
 मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर् वनस्पतावीह्वयमूर्ध्वशीचिपम् ।
 स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे १०२४
 स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्य अन्तरस्य तरुपः ।
 रायः धनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः १०२५
 द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरम् अग्निं होतारं मनुषः स्वधुरम् ।
 मित्रं न द्युधवचसं सुवृक्तिभिर् हव्यवाहमरतिं देवमृज्जसे १०२६
 पावकया यश् चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच उपसो न भानुना ।
 तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो धृणे न तंत्तपाणो अजरः १०२७
 अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्पत प्रियंप्रियं वो अतिथिं गृणीषणिं ।
 उपं वो गीर्भिरमृते निवामत देवो देवेषु वनन्ते हि वार्यं देवो देवेषु वनन्ते हि नो दुवः १०२८

समिद्धमग्निं समिधां गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अंधरे ध्रुवम् । विश्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं क्विं सुमैरीमहे जातवेदसम्	१०२९
त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् । देवासंश् च मर्तांसश् च जामृविं विभुं विश्वति नमसा नि पैदिरे	१०३०
विभूपन्नम् उभयाँ अनुं व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे । यत् तं धीतिं सुमतिमावृणीमहे ऽर्धं स्मा नस् त्रिवरूथः गिवो भव	१०३१
तं सुप्रतीकं मुद्दशं स्वञ्चम् अविद्वांसो विदुष्टं सपेम । स यक्षद् विश्वा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निर्मृत्येषु वोचत्	१०३२
तमग्ने पास्युत तं पिपिपि यस् त आनट् क्वयै शूर धीतिम् । यज्ञस्य वा निश्चितिं वोदितिं वा तमित् पृणक्षि शर्वमोत राया	१०३३
त्वमग्ने वनुप्यतो नि पाहि त्वष्टं नः सहसावन्नवधात् । सं त्वा ध्वस्मन्वदुभ्येतु पाथः सं रुयिः स्पृहयाग्यः सहस्री	१०३४
अग्निहोता गृहपतिः स राजा विश्वा वेदु जनिमा जातवेदाः । देवानामृत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा	१०३५
अग्ने यदद्य विशो अंधरस्य होतः पावकशोचे वेष्टं हि यज्वा । ऋता यजासि महिना वि यद् भूर् हव्या वंह यविष्ट या तं अद्य	१०३६
अग्निं प्रयांसि सुधितानि हि रुयो, नि त्वा दधीतुं रोदसी यजघ्यै । अवां नो मर्षवन् वाजसांस्तै, अग्ने विश्वानि दुरितान् तरेम, जातरेम जवापसां तरेम	१०३७
अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैर् उर्णाध्वन्तं प्रथमः सीदु योनिम् । कुलायिनं धृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु	१०३८
इममु त्यमधर्ववद् अग्निं मन्थन्ति वेधमः । परमङ्कयन्तमानयन् अमूरं श्याच्याभ्यः	१०३९
जनिष्या देववीतये सुर्वताता स्वस्तये । आ देवान् वंस्यमृताँ ऋतावृषाँ यज्ञं देवेषुं पिस्पृशः	१०४०
युष्टु त्वा गृहपते जनानाम् अग्ने अकर्म समिधां वृहन्तम् । अस्पूरि नो गार्हपत्यानि मन्तु तिग्मेन नस् तेजसा मं दिद्याधि	१०४१

॥ १३० ॥ (क्र० ६ । १६ । १-१८) -

गायत्री; १०४२, १०४७ वर्धमाना; १०६८।१०८८-१०८९ अनुष्टुप्; १०८७ त्रिष्टुप् ।

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।	देवेभिर्मानुषे जने १०४२
स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः ।	आ देवान् वक्षि यक्षि च १०४३
वेत्था हि वैधो अर्ध्वनः पथश् च देवाञ्जसा ।	अग्ने यज्ञेषु सुकृतो १०४४
त्वामीळि अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम् ।	ईजे यज्ञेषु यज्ञियम् १०४५
त्वमिमा वार्यां पुरु दिवोदासाय सुन्वते ।	भूरद्वाजाय दाशुषे १०४६
त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम् ।	शुष्वन् विप्रस्य सुष्टुतिम् १०४७
त्वमग्ने स्वाध्वोऽे मतीसो देववीतये ।	यज्ञेषु देवमीळते १०४८
तव प्र यक्षि संदशम् उत क्रतुं सुदानवः ।	विश्वे जुपन्त कामिनः १०४९
त्वं होता मनुर्हितो वहिरासा विदुष्टरः ।	अग्ने यक्षि दिवो विशः १०५०
अग्र आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।	नि होतां सत्सि वर्हिषि १०५१
तं त्वां समिद्धिराङ्गिरो घृतेनं वर्धयामसि ।	वृहच्छोचा यविष्ठव १०५२
स नः पृथु श्रवाय्यम् अच्छा देव विवाससि ।	वृहदग्ने सुवीर्यम् १०५३
त्वमग्ने पुष्करादधि अथर्वा निरमन्थत ।	मूर्धो विश्वस्य वाघतः १०५४
तमु त्वा दुध्यङ्गुषिः पुत्र ईधे अथर्वणः ।	वृत्रहणं पुरंदरम् १०५५
तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ।	धनंजयं रणेरणे १०५६
एषु पु व्रवाणि ते ऽग्र इत्येतरा गिरः ।	एभिर्वर्धासु इन्दुभिः १०५७
यत्र कं च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् ।	तत्रा सदैः कृणवसे १०५८
नहि ते पृथर्मक्षिपद् भुवन्नेमानां वसो ।	अथा दुवो वनवसे १०५९
आशिरंगाभि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः ।	दिवोदासस्य सत्पतिः १०६०
स हि विश्वाति पार्थिवा रयि दाशन महित्वना ।	धन्वन्नवातो अस्तृतः १०६१
स प्रन्नवन्नवीयसा अग्ने घृन्नेन संयता ।	वृहत् तंतन्ध भानुना १०६२
प्र वः सखायो अग्रये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।	अर्चं गार्यं च वेधसे १०६३
स हि यो मानुषा युगा सीदुद्वोता क्विक्रतुः ।	दूतश् च हव्यवाहनः १०६४
ता राजाना शुचित्रता आदित्यान् मारुतं गणम् ।	वसो यक्षीह रोदसी १०६५
वस्वीं ते अग्ने संदष्टिर् इपयते मर्त्याय ।	ऊर्जो नपाद्रमृतस्य १०६६
क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठो ऽद्य त्वां धन्वन्त्सुरेकणाः ।	मते आनाश सुवृकितम् १०६७

ते ते अग्ने त्वोर्ता इपर्यन्तो विश्वमार्युः ।	
तरन्तो अर्यो अरातीर् वन्वन्तो अर्यो अरातीः	१०६८
अग्निस् तिग्मेन शोचिषा यासद् विश्वं न्यत्रिणम् ।	अग्निर्नी वनते रयिम् १०६९
सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे ।	जहि रक्षांसि सुक्रतो १०७०
त्वं नः पाहंहसो जातवेदो अघायतः ।	रक्षां णो ब्रह्मणस् कवे १०७१
यो नो अग्ने दुरेष आ मर्तो वधाय दाशति ।	तस्मान्नः पाहंहसः १०७२
त्वं तं देव जिह्या परिं वाधस्व दुष्कृतम् ।	मर्तो यो नो जिघांसति १०७३
भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य ।	अग्ने वरेण्यं वसु १०७४
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्पुर्विपन्यया ।	समिद्धः शुक्र आहुतः १०७५
गर्भे मातुः पितृपिता विदिद्युतानो अक्षरे ।	सीदन्नृतस्य योनिमा १०७६
ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे ।	अग्ने यद् द्वादयद् द्विवि १०७७
उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत ।	अग्ने ससृज्महे गिरः १०७८
उप च्छायामिव घृणेर् अगन्म शर्म ते वयम् ।	अग्ने हिरण्यसंदृशः १०७९
य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसंगः ।	अग्ने पुरो रुरोजिथ १०८०
आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न विभ्रति ।	विश्रामग्निं स्वध्वरं १०८१
प्र देवं देववीतये भरता वसुचित्तमम् ।	आ स्वे योर्नो नि पीदतु १०८२
आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतार्तिथिम् ।	स्योन आ गृहपतिम् १०८३
अग्ने युक्ष्वा हि ये तव अश्वासो देव साधवः ।	अरुं वहन्ति मन्यवे १०८४
अच्छा नो याक्षा ब्रह्म अभि प्रयांसि वीतये ।	आ देवान् त्सोर्मपीतये १०८५
उदग्ने भारत धुमद् अजस्रेण दविद्युतत् ।	शोचा वि माक्षजर १०८६
वीती यो देवं मर्तो दुवस्पेद् अग्निमीळीताध्वरे हविष्मान् ।	
होतारं सत्ययज्ञं रोदस्योर् उज्जानहस्तो नमसा विवासेत् ।	१०८७
आ ते अम ऋचा हविर हृदा तष्टं भरामसि ।	ते ते भवन्तुक्षणं ऋप्रभासो वशा उत १०८८
अग्निं देवासो अग्रियम् इन्धतं वृत्रहन्तमम् ।	येना वसुन्पामृता तुहा रक्षांसि वाजिना १०८९

॥ १३१ ॥ (ऋ० ६। ४८। १-१०)

(१०९०-१०९९) शयुर्वाहस्पत्य. (तृणपाणि) । प्रगाय = १०००, १०९२ वृहती; १०९१, १०९३ सतोवृहती, १०९४ वृहती, १०९५ महा सतोवृहती, १०९६ महा वृहती, १०९७ महा सतो वृहती, १०९८ वृहती, १०९९ सतोवृहती ।

यज्ञायज्ञा वो अग्रये गिरागिरा च दक्षसे ।
अग्रं वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिपम् १०९०

ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर् दाशेम हव्यदातये ।
ध्रुवद् वाजेध्रविता भुवद् वृध उत त्राता तनुनाम् १०९१

वृषा ह्यग्ने अजरो महान् त्रिभास्यर्चिषा ।
अजस्त्रेण शोचिषा शोशुचच् छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि १०९२

महो देवान् यजसि यक्ष्यानुषक् तव ऋत्रोत दुंसना ।
अर्वाचः सीं कृणुह्येऽरसे रास्य वाजोत वैस्य १०९३

यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सान्वि १०९४

आ यः पशौ भानुना रोदसी उभे धूमेन घात्रे दिवि ।
तिरस् तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरूपो वृषा श्यावा अरूपो वृषा १०९५

वृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भ्रुद्धाजे समिघ्नानो यन्मिष्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि ध्रुमत् पावक दीदिहि १०९६

निश्वासां गृहपतिविशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ।
शतं पूभिर्यविष्ठ पाद्यंहमः समेद्वारं शतं हिमाः स्तोत्रभ्यो ये च ददति १०९७

त्वं नन् चित्र उत्था वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस् त्वमग्ने रथीरमि विदा गाधं तुचे तु नः १०९८

पथि तोकं तनयं पूर्वभिष्टम् अर्दधैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेर्वामि दैव्या युयोधि नो उदेवानि ह्वरामि च १०९९

॥ १३२ ॥ (ऋग्वेदस्य सप्तमं मण्डलं, सूक्तं १, मन्त्राः १-२५)

[११००-१२१३] वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विराट्, १११८-२४ त्रिष्टुप् ।

अग्निं नरो दीर्घितिभिररण्योर्	हस्तंच्युती जनयन्त प्रशस्तम् ।	
दूरेदृशं गृहपतिमथर्धुम्		११००
तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्	त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश् चित् ।	
द्रक्षाय्यो यो दम आस नित्यः		११०१
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नो	ऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।	
त्वां शश्वन्त उर्प यन्ति वाजाः		११०२
प्र ते अग्रयोऽग्निभ्यो वरं निः	सुवीरांसः शोशुचन्त द्युमन्तः ।	
यत्रा नरः समासते सुजाताः		११०३
दा नो अग्ने धिया रयि सुवीरं	स्वपत्यं संहस्य प्रशस्तम् ।	
न यं यावा तरति यातुमावान्		११०४
उप यमेति युवतिः सुदक्षं	द्रोपा वस्तोर्हविष्मती घृताचीं ।	
उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः		११०५
विश्वा अग्नेऽप्य दहारातीर्	येभिस् तपोभिरदहो जरुथम् ।	
प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम्		११०६
आ यस् ते अग्र इषते अनीकं	वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पार्वक ।	
उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः		११०७
वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं	मर्ता नरः पित्र्यांसः पुरुत्रा ।	
उतो न एभिः सुमना इह स्याः		११०८
इमे नरो वृत्रहत्येषु श्रा	विश्वा अदेवीरभि संन्तु मायाः ।	
ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम्		११०९
मा शूने अग्ने नि पदाम नृणां	माशेषसोऽवीरन्ता परिं त्वा ।	
प्रजावतीषु दुर्योगु दुर्य		१११०
यमृषी नित्यंमुपपार्ति यजं	प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः ।	
स्वजन्मना शेषसा वानृधानम्		११११

पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात् त्वा युजा पृतनायुराभि प्याम्	पाहि धूर्तेरररूपो अघायोः ।	१११२
सेदग्निरग्नीरत्यस्त्वन्यान् सहस्रपाथा अक्षरा समेति	यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः ।	१११३
सेदग्नियो वंजुप्यतो निपाति सुजातासः परि चरन्ति वीराः	समेद्वारमंहस उरुप्यात् ।	१११४
अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा परि यमेत्यध्वरेषु होता	यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान् ।	१११५
त्वे अग्न आहवर्नानि भूरि उमा कृष्वन्तो वहतू मियेधे	ईशानास आ जुहुयाम नित्या ।	१११६
इमो अग्ने वीतवमानि हव्या प्रति न ई सुरभीणि व्यन्तु	ऽजस्रो वाक्षि देवतातिमच्छ ।	१११७
मा नो अग्नेऽवीरते परा दा मा नः क्षुधे मा रक्षसं ऋतावो	दुर्वाससेऽमृतये मा नो अस्यै । मा नो दमे मा वन आ जुहर्थाः	१११८
नू मे ब्रह्माप्यन्न उच्छशाधि रातौ स्यामोभयास आ ते	त्वं देव मध्वञ्चः सुपूदः । यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	१११९
त्वमग्ने सुहवो रण्वसैदृक् मा त्पे सचा तनये नित्य आ घृद्	सुदीती घ्नो सहसो दिदीहि । मा वीरो अस्मन्नयो वि दासीत्	११२०
मा नो अग्ने दुर्भृतये सचा मा ते अस्मान् दुर्भृतयो भृमाचिद्	एषु देवेद्वेष्वग्निषु प्र वोचः । देवस्य घ्नो सहसो नशन्त	११२१
स मतो अग्ने स्वनीक रेवान् म देवता वसुचनि दधाति	अमर्त्ये य आजुहोति हुष्यम् । यं सुरिरुथी पुच्छमान एति	११२२
महो नो अग्ने सुप्रितस्य विद्वान् येन वयं सहमान् मदेम	रयिं सुरिभ्य आ वहा वृहन्तम् । अविक्षितास आपुपा सुवीराः	११२३
नू मे ब्रह्माप्यन्नं (१११९)		

॥ १३३ ॥ (ऋ० ७ । ३ । १-१०) त्रिष्टुप् ।

अग्निं वाँ देवमग्निभिः सजोपा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृशुध्वम् । यो मर्त्येषु निधुर्विर्कृतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः	११२४
प्रोधदश्वो न यवसेऽविप्यन् यदा महः संवरणाद् व्यस्यात् । आदस्य वातो अर्नु वाति शोचिर् अर्धं स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति	११२५
उद्यस्यं ते नवजातस्य वृष्णो ऽग्ने चरन्त्यजरां इधानाः । अच्छा घामरूपो धूम एति सं दूतो अन्न ईर्यसे हि देवान्	११२६
वि यस्य ते पृथिव्यां पाजो अत्रेत् तृषु यदन्ना समवृक्तं जम्भैः । सेनैव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस जुह्वा विवेक्षि	११२७
तमिद् दोषा तमुपसि यविष्ठम् अग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः । निशिशान्ना अतिथिमस्य योनौ दीदार्यं शोचिराहुतस्य वृष्णः	११२८
सुसंष्टक् तं स्वनीकं प्रतीकं वि यद् रुक्मो न रोचंस उपाके । दिवो न तं तन्यतुरेति शुष्मश् चित्रो न स्रः प्रतिं चक्षि भानुम्	११२९
यथा वः स्वाहाप्रये दाशेम परीळाभिर्धृतवद्भिश् च हव्यैः । तेभिर्नो अग्ने अर्मितैर्महोभिः शतं पूभिरार्यसीभिर्नि पाहि	११३०
या वां ते सन्ति द्राशुपे अघृष्टा गिरौ वा याभिर्नृवतीरुह्य्याः । ताभिर्नः स्रनो सहसो नि पाहि सत् सुरीन् जरितृन् जातवेदः	११३१
निर्घृत् पृतेषु स्वर्षितिः शुचिर्गात् स्वर्षा कृपा रुन्नाङ्क रोचमानः । आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुकृतः पावकः	११३२
एता नो अग्ने सौमगा दिदीहि अपि क्रतुं सुचेवसं वतेम । विश्वा स्तोत्रभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	११३३

॥ १३४ ॥ (ऋ० ७ । ४ । १-१०)

प्र वः शुक्रार्यं भानवे भरध्वं हव्यं मूर्तिं चाग्रये सुपृतम् । यो दैव्यानि मानुषा जन्पि अन्तर्विश्वानि विद्यना जिगाति	११३४
स गृत्तो अग्निस् तरुणश् चिदस्तु यतो यविष्ठो अर्जनिष्ट मातुः । सं यो वना युवते शुचिदन् भूरि चिदन्ना समिदति सद्यः	११३५

अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जंगुभ्रे । नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोचं दुरोकमग्निरायवें शुशोच	११३६
अयं कविरकविपु प्रचेता मतेष्वग्निरमृतो नि घायि । स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम	११३७
आ यो योनिं देवकृतं ससाद् कृत्वा ह्यग्निमृतां अतारीत् । तमोपधीश् च वनिनश् च गभं भूमिश् च विश्वधायसं विभर्ति	११३८
ईशे ह्यग्निमृतस्य भूरेर् ईशे रायः सुवीर्यस्य दातोः । मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परिं पदाम् मादुवः	११३९
परिपद्यं हारणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम । न शेषो अग्रे अन्यजातमस्ति अचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः	११४०
नहि प्रभायारणः सुशेवो ऽन्योदर्यो मनसा मन्त्वा उ । अर्धा चिदोक्तः पुनरित् स एति आ नो वाज्यंभीपाकेतु नव्यः	११४१
त्वमग्ने चनुप्यतो० (१०३४) एता नो अग्ने० (११३४)	

॥ १३५ ॥ (ऋ० ७।७।१-७)

प्र वो देवं चित् सहसानमग्निम् अश्वं न वाजिनं हिपे नमोभिः । भवां नो दूतो अध्वरस्य विद्वान् त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः	११४२
आ याक्ष्मे पृथ्याङ्गे अनु स्या मन्द्रो देवानां सूर्यं जुपाणः । आ सानु शुर्मनर्दयन् पृथिन्या जम्भेभिर्विध्वंशुशुग् वनानि	११४३
ग्राचीनां यज्ञः सुधितं हि वह्निः श्रीणीते अग्निरीळितो न होता । आ मातरा विश्वारं ह्रवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः	११४४
मयो अध्वरे रंधिरं जनन्त मानुपासो विचेतसो य ऐषाम् । विश्वार्मायि विष्पतिर्दुरोणेङ्गे ऽग्निमन्द्रो मधुवचा श्रुतावा	११४५
अमादि पृतो यदिराजगुन्यान् अग्निर्भ्रष्टा नृपदेने विपुता । घांश् च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजेति विश्वारम्	११४६

एते धुम्नेभिर्विश्वमातिरन्त मन्त्रं ये वारं नर्या अतंधन् ।
 प्र ये विशस् तिरन्त श्रोपमाणा आ ये मे अस्य दीर्घयन्तस्य ११४७
 नृ त्वामग्र ईमहे वसिष्ठा ईशानं सनो सहमो वसूनाम् ।
 इयं स्तोत्रभ्यो मधवञ्च आनङ् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११४८

॥ १३६ ॥ (ऋ० ७।८।१-७)

इन्धे राजा समर्यो नमोभिर् यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
 नरो हव्येभिरीकते सुवाग् आगिरग्र उपसामशोचि ११५९
 अयमुप्य सुमहो अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यज्ञो अग्निः ।
 वि मा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपत्रिरोपधीभिर्ववक्षे ११५०
 कया नो अग्ने वि वंसः सुवृक्ति कामुं स्वधामृणवः शस्यमानः ।
 कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस साधोः ११५१
 प्रप्रायमग्निर्मृतस्य शृण्वे वि यत् स्रयो न रोचते बृहद्भाः ।
 अभि यः पूरं पृतनासु तस्थौ घुतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ११५२
 असन्नित् त्वे आहर्वनाति भूरि भुवो विश्वेभिः सुमता अनीकैः ।
 स्तुतश्चिदग्रे शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्नै सुजात ११५३
 इदं वचः शतसाः संसहस्रम् उदग्रये जनिपीष्ट द्विवर्हाः ।
 शं यत् स्तोत्रभ्यं आपये भवाति शुमदमीवचार्तनं रक्षोहा ११५४
 नृ त्वामग्र ईमहे वसिष्ठा० (११५०)

॥ १३७ ॥ (ऋ० ७।९।१-६)

अवोधि जार उपसामुपस्थाद् होता मन्द्रः कथितमः पावकः ।
 दर्धाति केतुमुभयस्य जन्तोर् हव्या देवेषु द्रविणं सुकृतुं ११५५
 स सुकृतुर्यो वि दुरं पणीनां पुनानो अकं पुरुमोजसं नः ।
 होता मन्द्रो विशां दमूनास् तिरस् तमो ददृशे राम्याणाम् ११५६
 अमूरः कविरदितिर्विस्वान् त्सुमंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः ।
 चित्रमानुरुपसां मात्यग्रे ऽपां गर्भः प्रस्व आ विविश ११५७

इच्छेन्न्यो वो मनुषो युगेषु समनगा अशुचज् जातवेदाः ।
 सुसंदशा भानुना यो विभाति प्रति गावः समिधानं बुधन्त ११५८
 अग्ने याहि दूत्यं मा रिपण्यो देवाँ अच्छां ब्रह्मकृतां गुणेन ।
 सरस्वतीं मरुतो अधिनापो यक्षिं देवान् रत्नधेयाय विश्वान् ११५९
 त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरुथं हन् यक्षिं राये पुरंधिम् ।
 पुरुणीथा जातवेदो जरस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११६०

॥ १३८ ॥ (ऋ० ७ । १० । १-५) ।

उपो न जारः पृथु पाजो अश्रेद् दर्विद्युत्तत् दीद्यच्छोशुचानः ।
 वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः ११६१
 स्वर्णं वस्तोरुपसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म ।
 अग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान् द्रवद् दूतो देवयावा वनिष्ठः ११६२
 अच्छा गिरो मृतयो देवयन्तीर् अग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः ।
 सुसंदशं सुप्रतीकं स्वर्चं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ११६३
 इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सजोषा रुद्रं रुद्रेभिरा वहा वृहन्तम् ।
 आदित्येभिरदितिं विश्वजन्त्यां बृहस्पतिमृक्कभिर्विश्वारम् ११६४
 मन्द्रं होतारमुशिजो यविष्ठम् अग्निं विश ईच्छते अध्वरेषु ।
 स हि क्षपावाँ अमेवद् रयीणाम् अतन्द्रो दूतो यजथाय देवान् ११६५

॥ १३९ ॥ (ऋ० ७ । ११ । १-५)

महाँ अस्पध्वरस्यं प्रक्रेतो न क्रुते त्वदुमृता मादयन्ते ।
 आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर् न्यग्ने होता प्रथमः संदेह ११६६
 त्वामीच्छते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सद्रामिन् मानुषासः ।
 यस्यं देवैरामदो वृहिरग्ने ऽहान्यस्मै मुदिना भवन्ति ११६७
 त्रिन् चिदुक्तोः प्र चिक्वितुर्वसुनि त्वे अन्तर्द्राशुपे मर्त्याय ।
 मनुष्यदम इह यक्षि देवान् मवां नो दूतो अभिशस्तिपावाँ ११६८
 अग्निरीग्निं बृहतो अध्वरस्य अग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्यं
 त्रन् वस्य वमवो जुपन्त अथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ११६९

अग्नें वह हविरघाय देवान् इन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम् ।
इमं यज्ञं दिवि देवेषु वेदि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११७०

॥ १४० ॥ (ऋ० ७ । १२ । १-३)

अगन्म महा नमसा यविष्टं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोगे ।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ११७१

स मद्वा विश्वा दुरितानि साह्वान् अग्निः एवे दम आ जातवेदाः ।
स नो रक्षिपद् दुरितार्दवघाद् अस्मान् गृणत उत नो मघोनः ११७२

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुपणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११७३

॥ १४१ ॥ (ऋ० ७ । १४ । १-३) त्रिष्टुप्, ११७४ मृहती ।

समिधा जातवेदसे देवाय देवहृतिभिः ।
हविभिः शुक्रशोचिषे नमस्विनो वयं दाशेमाग्रये ११७४

वयं ते अग्ने समिधा विधेम वयं दाशेम सुष्टुती यजत्र ।
वयं धृतेनाध्वरस्य होतर् वयं देव हविषा भद्रशोचे ११७५

आ नो देवेभिरुप देवहृतिम् अग्ने याहि वपट्कृति जुषाणः ।
तुभ्यं देवाय दाशतः स्याम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११७६

॥ १४२ ॥ (ऋ० ७ । १५ । १-१५) गायत्री ।

उपसघाय मीहुप आस्ये जुहुता हविः । यो नो नेदिष्टुमाप्यम् ११७७

यः पञ्च चर्षणीरुभि निपसाद् दमेदमे । क्विर्गृहपतिर्युवा ११७८

स नो वेदो अमात्यम् अग्नी रक्षत विश्वतः । उतास्मान् पात्वंहंसः ११७९

नवं नु स्तोर्ममग्रये दिवः श्येनाय जीजनम् । वस्यः कुविद् वुनार्ति नः ११८०

स्पर्हा यस्य त्रियो ह्ये रयिर्वीरवतो यथा । अग्ने यज्ञस्य शोचतः ११८१

सेमां वेतु वपट्कृतिम् अभिर्जुपत नो गिरः । यजिष्ठो हव्यवाहनः ११८२

नि त्वा नक्ष्य विद्रपते घुमन्तं देव घीमहि । सुवीरमग्र आहुत ११८३

क्षप उन्नय च दीदिहि स्वग्रयस् त्वया वपम् । सुवीरम् त्वमस्मयुः ११८४

उप त्वा सातये नरो विप्रांसो यन्ति प्रीतिभिः । उपाक्षरा सहस्रिणी ११८५

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईर्ष्यः ११८६
 स नो राधास्या भर ईशानः सहसो यहो । भर्गश् च दातु वार्यम् ११८७
 त्वमग्ने वीरवृद् यशो देवश् च सधिता भर्गः । दितिश् च दाति वार्यम् ११८८
 अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति प्म देव रीपंतः । तपिष्ठैरजरो दह ११८९
 अर्घा मही न आयासि अनाघृष्टो नृपीतये । पूर्ववा श्रतभुंजिः ११९०
 त्वं नः पाद्महंसो दोषावस्तरघायतः । दिवा नक्तमदाम्य ११९१

॥ १४३ ॥ (ऋ० ७ । १६ । १-१२) प्रगाथः- (घृहती, सतोवृहती ।)

एना वीं अग्नि नमसा ऊर्जो नपातमा हुवे ।
 प्रियं चेतिष्ठमरति स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ११९२
 स योजते अरुपा विश्वमोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ।
 सुव्रता यज्ञः सुशमी वर्धनां देवं राधो जनानाम् ११९३
 उदस्य शोचिरस्थाद् आजुह्वानस्य मीहुषः ।
 उद्धमासो अरुपासो दिविस्पृशः समग्निर्मन्घते नरः ११९४
 तं त्वा दूतं कृण्महे यशस्तमं देवाँ आ वीतये वह ।
 विश्वां घ्नो सहसो मर्तमोजना रास्व तद् यत् त्वेमहे ११९५
 त्वमग्ने गृहपतिस् त्वं होता नो अध्वरे ।
 त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि वेपि च वार्यम् ११९६
 कृधि रत्नं यजमानाय सुकृतो त्वं हि रत्नघा असि ।
 आ नं ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश् च दक्षते ११९७
 त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
 यन्तारो ये मघवानो जनानाम् ऊर्वान् दयन्त गोनाम् ११९८
 येपामिडा घृतहस्ता दुरोण आ अर्पि प्राता निपीदति ।
 ताम् प्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घधुव ११९९
 स मन्द्रपां च जिह्या वहिरामा विदुष्टरः ।
 अत्रे रपि मघर्वज्ञो न आ वह हृन्पदाति च सूदय १२००

ये राधांसि ददुत्यश्रया मघा कामेन श्रवसो महः ।	
ताँ अहंसः पिपृहि पर्वभिष्टं शतं पूर्भिर्भ्यविष्ट्व	१२०१
देवो वो द्रविणोदाः पूर्णा विवष्ट्यासिचम् ।	
उद् वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वम् आदिद् वो देव ओहते	१२०२
तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।	
दधाति रत्नं विधत्ते सुवीर्यम् अभिर्जनाय दाशुषे	१२०३

॥ १४४ ॥ (ऋ० ७ । १७ । १-७) द्विपदा त्रिष्टुप् ।

अग्ने भवं सुपामिघा समिद्ध उत वहिर्हविष्या वि स्तृणीताम्	१२०४
उत द्वारं उशतीर्वि श्रयन्ताम् उत देवाँ उशत आ वहेह	१२०५
अग्ने वीहि हविषा यक्षिं देवान् त्वध्वरा कृणुहि जातवेदः	१२०६
स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद् देवाँ अमृतांन्-पिप्रयञ्च	१२०७
वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या भवन्त्वाशिपो नो अद्य	१२०८
त्वाम् ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्जे आ नपातम्	१२०९
ते ते देवाय दाशतः स्याम महो नो रत्ना वि दध इयानः	१२१०

॥ १४५ ॥ (ऋ० ७ । ५० । २) जगती ।

यद् विजामन् परुषि वन्दनं भुवद् अष्टीवन्तौ परिं कुल्फौ च देहव ।	
अग्निष्टच्छोचन्नप चाघतामितो मा मां पथेन रपसा विदुत् त्सरः	१२११

॥ १४६ ॥ (ऋ० ७ । १०४ । १०, १४) त्रिष्टुप् ।

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वांनां यो गवां यस् तनुताम् ।	
रिपुः स्तेनः स्तैयकृद् दुभ्रमेतु नि प हीयतां तन्याङ्गे तनां च	१२१२
यदि चाहमनृतदेव आस मोघं वा देवाँ अप्यहे अग्ने ।	
किमस्मभ्यं जातवेदो हणीषे द्रोघुवार्चस् ते निर्ऋयं संचन्ताम्	१२१३

॥ १४७ ॥ (ऋग्वेदस्य अष्टमं मण्डलम् । सूक्तं ११, मन्त्राः १-१०)

(१२१४-१२२३) यत्सः काण्यः । गायत्री, १२१४ प्रतिष्ठा, १२१५ वर्धमाना, १२२३ त्रिष्टुप् ।

त्वमेमे व्रतपा असि देव आ मत्येष्वा । त्वं युजेष्वीदधः १२१४

त्वमसि प्रशस्यो विदधेषु सहन्त्य	अग्ने रथीरध्वराणाम्	१२१५
स त्वमस्मदप द्विपो युयोधि जातवेदः	अर्देवीरग्ने अरातीः	१२१६
अन्ति चित् सन्तमर्ह यज्ञं मर्तस्य रिपोः	नोप वेपि जातवेदः	१२१७
मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे	विप्रासो जातवेदसः	१२१८
विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये	अग्निं गीभिर्हवामहे	१२१९
आ ते वत्सो मनो यमत् परमार्चित् सुधस्थात्	अग्ने त्वां-कामया गिरा	१२२०
पुरुत्रा हि सदङ्कुसि विशो विश्वा अनु प्रभुः	समत्सु त्वा हवामहे	१२२१
समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे	वाजेषु चित्रराधसम्	१२२२

प्रन्नो हि कमीर्द्धो अध्वरेपु सनाच्च होता नव्यश् च सत्ति ।

स्वां चाग्ने तन्वे पिप्रयस्व अस्मभ्यं च सौमगमा यजस्व १२२३

॥ १४८ ॥ (ऋ० ८ । १९ । १-३३)

(१२२४—१२६९) सोमरिः काण्वः । प्रगाथः= (ककुप+ सतोवृहती), १२५० द्विपदा विराट् ।

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमोहिरे १२२४

विभ्रंतरातिं विप्र चित्रशोचिपम् अग्निमीळिष्व यन्तुरम् ।

अस्य मेघस्य सोम्यस्य सोमरे प्रेमध्वराय पूष्यम् १२२५

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होताममर्त्यम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतम् १२२६

ऊर्जो नपातं सुमगं सुदीदितिम् अग्नि श्रेष्ठशोचिपम्

स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपाम् आ सुमं यक्षते द्विवि १२२७

यः समिधा य आहुती यो वेदेन ददाशु मर्तो अग्रये । यो नमसा स्वध्वरः १२२८

तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस् तस्यं द्युन्नितमं यज्ञः ।

न तमहो देवकृतं कुर्वश् च न मर्त्यैकृतं नशत् १२२९

स्वययो यो अग्निभिः स्याम ह्यनो सहस ऊर्जा पते । सुवीरस् त्वमस्मयुः १२३०

प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियो ऽग्नी रथो न वेद्यः ।

त्वे क्षेमासो अपि सन्ति साधवस् त्वं राजा रथीणाम् १२३१

सो अद्वा द्राध्वरो ऽग्ने मर्तः सुमग् स प्रशंस्यः । स धीभिरस्तु सनिता १२३२

यस्य त्वमूर्ध्वो अघ्वराय तिष्ठसि क्षयद्वीरः स साधते ।	
सो अर्बुद्धिः सनिता स विपन्द्युभिः स शूरैः सनिता कृतम्	१२३३
यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनो दधीत विश्ववार्थः । ह्वया वा वेविपद् विपः	१२३४
विप्रस्य वा स्तवतः सहसो यहो मक्षतमस्य रातिपुं ।	
अवोदेवमुपरिमर्त्यं कृधि वसो विविदुषो वचः	१२३५
यो अग्निं ह्वयदातिभिर् नमोभिर्वा सुदक्षमाविर्वासति । गिरा वाजिरशोचिपम्	१२३६
समिधा यो निर्गिती दाशददिति धामभिरस्य मर्त्यः ।	
विश्वेत् स धीभिः सुगगो जना अतिं द्युन्नरु इव तारिपद्	१२३७
तदग्ने द्युन्ममा भर यत् सासहत् सदने कं चिद्विणम् । मनुं जनस्य दूह्यः	१२३८
येन चष्टे वरुणो मित्रो अर्थमा येन नासत्या भगः ।	
वयं तत् ते शवसा गातुवित्तमा इन्द्रत्वोता विधेमहि	१२३९
ते घेदग्ने स्वाघ्योऽ ये त्वा विप्र निदधिरे नृचक्षसम् । विप्रासो देव सुकृतम्	१२४०
त इद् वेदिं सुभग त आहुतिं ते सोतुं चाकिरे द्विवि ।	
त इद् वाजेभिर्जिग्युर्महद्वनं ये त्वे कामं न्येरिरे	१२४१
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अघ्वरः । भद्रा उव प्रशस्तयः	१२४२
भद्रं मनः कृशुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः ।	
अव स्थिरा तनुहि भरि शर्घता वनेमां ते अमिष्टिभिः	१२४३
ईळे गिरा मनुहितं यं देवा द्रुतमरति न्येरिरे । यजिष्ठं ह्वयवाहनम्	१२४४
तिग्मजम्माय तरुणाय राजते प्रयो गायस्यमये ।	
यः पिशते सूनृताभिः सुवीर्यम् अग्निधृतेभिराहुतः	१२४५
यदीं धृतेभिराहुतो वाशीमभिर्मरत उचारं च । अमुर इव निर्णिजम्	१२४६
यो ह्वयान्यैरयता मनुहितो देव आसा सुगन्धिना ।	
विवासते वार्याणि स्वधुरो होवा देवो अमर्त्यः	१२४७
यदग्ने मर्त्यस् त्वं स्यामहं मित्रमहो अमर्त्यः । सहमः यनवाहुत	१२४८

न त्वा रासीयाभिर्शस्तये वसो न पापत्वार्य सन्त्य ।	
न मे स्तोतामतीवा न दुहितः स्यादग्ने न पापया	१२४९
पितुर्न पुत्रः सुभृतो दुरोण आ देवाँ एतु प्र षोँ हविः	१२५०
तवाहमग्र ऊतिभिर् नेदिष्टाभिः सचेय जोपमा वसो । सदा देवस्य मर्त्यैः	१२५१
तव ऋत्वा सनेयं तव रातिभिर् अग्ने तव प्रशस्तिभिः ।	
त्वामिदाहुः प्रमति वसो मम अग्ने हर्षस्व दातवे	१२५२
प्र सो अग्ने तत्रोतिभिः सुवीराभिस् तिरते वाजर्मभिः । यस्य त्वं सख्यमावरः	१२५३
तव द्रप्सो नीलवान् वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे ।	
त्वं महीनामुपसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि	१२५४
तमार्गन्म मोक्षरयः सहस्रमुष्कं स्वभिष्टिमवसे । सम्राजं त्रासदस्यवम्	१२५५
यस्य ते अग्ने अन्ये अग्रय उपक्षितो वया इव ।	
विपो न द्युम्ना नि युञ्जे जनानां तव क्षत्रार्णि वर्धयन्	१२५६

॥ १४९ ॥ (ऋ० ८ । १०३ । १-१३)

वृहतीः १२६१ विराड्‌रूपा, १२६३, १२६५, १२६७, १२६९, सतोवृहतीः
१२६४, १२६८ ककुप्, १२६६ हसीयसी ।

अदशिं गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादुधुः ।	
उपो पु जातमार्यस्य वर्धनम् अग्निं नक्षन्त नो गिरः	१२५७
प्र देवोदासो अग्रिर् देवाँ अच्छ्वा न मज्जना ।	
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तुस्थौ नाकस्य सानवि	१२५८
यस्माद् रेजन्त कृष्टयश् चर्कृत्यानि कृण्वतः ।	
सहस्रसां मेघसाताविद्य त्मना अग्निं धीभिः संपर्यत	१२५९
प्र यं राये निर्नीपसि मतोँ यस् ते वसो दाशत् ।	
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम्	१२६०
म दृहे चिदुमि वृणन्ति वाजुम् अर्वता स धत्ते अक्षिति श्रवः ।	
त्वे देवशा सदा पुरुवसो निश्वा वामानि धीमदि	१२६१

यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् । मघोर्न पात्रां प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यत्त्वग्रये	१२६२
अश्वं न गीर्भा रथ्यं सुदानवो मर्मज्यन्ते देवयवः । उभे त्रुके तनये दस्म विस्पते पपि राघो मघोनाम्	१२६३
प्र माहिष्ठाय गायत क्रुतान्नै बृहते शुक्रशोचिषे । उपस्तुतासो अग्रये	१२६४
आ वंसते मघर्वा वीरवद् यज्ञः समिद्रो घुम्पयाहुतः । कुविन्नो अस्य सुमतिर्नवीयसी अच्छा वाजैभिरांगमत्	१२६५
प्रेष्टुमु प्रियाणां स्तुह्यासावार्तिथिम् । अग्नि रथानां यमम्	१२६६
उर्दिता यो निर्दिता वेदिता वसु आ यज्ञियो ववर्तति । दुष्टरा यस्य प्रवृणे नोर्मयो धिया वाजं सिपांसतः	१२६७
मा नो हणीतामार्तिथिर् वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एपः । यः सुहोता स्वध्वरः	१२६८
सो ते रिण्ये अच्छोक्तिभिर्वसो ज्ञे केभिश् चिदेवैः । कीरिश् चिद्धि त्वामीष्टे दूत्याय रातहव्यः स्वध्वरः	१२६९

॥ १५० ॥ (ऋ० ८ । २३ । १-३०)

(१२७०-१२९९) विश्वमना चैयध्वः । उज्जिर्ह ।

किंवा हि प्रतीच्यं	यजस्व ज्ञातवेदसम् ।	चरिष्णुधूममगृभीतशोचिपम्	१२७०
ज्ञानं विश्वचरणे	जग्निं विश्वमनो गिरा ।	उत स्तुपे विष्पर्धसो रथानाम्	१२७१
पैर्मावाध भ्रग्निर्य	इपः पृक्षश् च निग्रभे ।	उपविद्धा वह्निर्विन्दते वसु	१२७२
उदस्य शोचिरिस्थाद्	दीदियुपो व्यज्रम् ।	तपुर्जम्भस्य सुद्युतो गणधिर्यः	१२७३
उर्दु तिष्ठ स्वध्वर	स्तवानो देव्या कृपा ।	अभिरुया भासा बृहता शुशुक्निः	१२७४
अग्ने याहि सुशस्तिभिर्	हव्या जुह्वान आनुपक्।	यथा दूतो बभूथ हव्यवाहनः	१२७५
अग्नि वः पूर्य हुवे	होतारं चर्षणीनाम् ।	तमया वाचा गृणे तस्य वः स्तुपे	१२७६
पद्मेभिरद्भुतक्रतुं	यं कृपा सुदयन्त इत् ।	मित्रं न जने सुधितमृतावनि	१२७७

ऋतावानमृतायवो यज्ञस्य साधनं गिरा । उपो एनं जुजुपुर्नमसस्पदे ।	१२७८
अच्छा नो अङ्गिरस्तमं यज्ञासो यन्तु संयतः । होता यो अस्ति विद्वा यज्ञस्तमः ।	१२७९
अग्ने तव त्वे अजर इन्धानासो बृहद् माः । अश्वा इव घृषणस् तविपीयवः ।	१२८०
स त्वं न ऊर्जा पते रथि रोस्व सुवीर्यम् । प्रायं नस् तोके तनये समत्स्वा ।	१२८१
यद्वा उं विद्वपतिः शितः सुप्रीतो मनुपो विशि । विश्वेदुग्निः प्रति रक्षोसि सेधति ।	१२८२
श्रुष्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विशपते । नि मायिनस् तपुपा रक्षसो दह ।	१२८३
न तस्य मायया चन रिपुरीशीत मर्त्यः । यो अग्रये ददाश हव्यदातिभिः ।	१२८४
व्यश्वस् त्वा वसुविदम् उक्षपुरप्रीणाद्यपिः । महो राये तमु त्वा समिधीमहि ।	१२८५
उशना कान्यस् त्वा नि होतारमसादयत् । आयुजि त्वा मनवे जातवेदसम् ।	१२८६
विश्वे हि त्वा सुजोपसो देवासो दूतमक्रत । श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः ।	१२८७
इमं धा वीरो अमृतं दूतं कृष्वीत मर्त्यः । पावकं कृष्णवर्तनि विहायसम् ।	१२८८
तं हुवेम यत्सुचः सुभासं शुक्रशोचिपम् । विशामग्निमजरं प्रत्नमीड्यम् ।	१२८९
यो अस्मै हव्यदातिभिर् आहुतिं मतोऽविधत् । भूरि पोपं स धत्ते वीरवद् यशः ।	१२९०
प्रथमं जातवेदसम् अग्निं यज्ञेषु पूर्यम् । प्रति सुगेति नमसा हविष्मती ।	१२९१
आग्निर्विधेमाग्रये ज्येष्ठाभिर्व्यश्वत् । महिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशोचिपे ।	१२९२
नूनमर्चं विहायसे स्तोमैभिः स्पूरयूपवत् । ऋपे वैयश्च दम्यायाग्रये ।	१२९३
अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनाम् । विप्रा अग्निमवसे प्रत्नमीड्ये ।	१२९४
महो विश्वो अभि पतोऽग्निं हव्यानि मानुषा । अग्ने नि पस्ति नमसाधिं वहिषिं ।	१२९५
वंस्वा नो वार्यो पुरु वंस्व रायः पुरुस्पृहः । सुवीर्यस्य प्रजावतो यशस्वतः ।	१२९६
त्वं वीरो सुपाम्णे अग्ने जनाय चोदय । सदा वसो राति यविष्ठु शश्वते ।	१२९७
त्वं हि सुप्रतरसि त्वं नो गोमतीरिपः । महो रायः सातिमग्ने अर्पा वृधि ।	१२९८
अग्ने त्वं यशा असि आ मित्रावरुणा वह । ऋतावाना सम्राजा पूतदक्षसा ।	१२९९

॥ १५१ ॥ (ऋ० ८ । ३९ । १-१०) [१३००-१३०९] नाभाकः काण्वः । महापदकिः ।

अग्निमस्तोप्यग्निमयम् अग्निमीळा यजर्ष्यं ।
 अग्निदेवां अनक्तु न उमे हि विदथे क्वविर अन्तश्चरति दूत्यं । नमन्तामन्यके संमे १३००
 न्यग्ने नव्यमा वचस् तनूपु शंसमेपाम् ।
 न्यराती रराच्यां विश्वा अयो अरातीर् इतो युञ्जन्त्वामुरो नमन्तामन्यके संमे १३०१

अग्ने मन्मानि तुभ्यं कं घृतं न जुह्व आसनि ।		
स देवेषु प्र चिकिद्दि त्वं ह्यसि पूर्यः शिशो दूतो विवस्वतो नभन्तामन्यके संमे	१३०२	
तत्तदभिर्वियौ दधे यथायथा कृपण्यति ।		
ऊर्जाहुतिर्विर्वानां शं च योश् च मयो दधे विश्वस्यै देवहृत्यै नभन्तामन्यके संमे	१३०३	
स चिकेतु सहीयसा अग्निश् चित्रेण कर्मणा ।		
स होता शश्वतीनां दार्क्षिणाभिरभीवृत इनोति च प्रतीच्यं नभन्तामन्यके संमे	१३०४	
अग्निर्जाता देवानामग्निर् वेदु मतीनामपीच्यम् ।		
अग्निः स द्रविणोदा अग्निर्द्वारा व्यूण्णते स्वाहुतो नवीयसा नभन्तामन्यके संमे	१३०५	
अग्निर्देवेषु संवसुः स विक्षु यज्ञियास्वा ।		
स मुदा काव्यां पुरु विश्वं भूमैव पुष्यति देवो देवेषु यज्ञियो नभन्तामन्यके संमे	१३०६	
यो अग्निः सुप्तमानुषः श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु ।		
तमार्गन्म त्रिपुस्त्यं मन्धातुर्देस्युहन्तमम् अग्नि यज्ञेषु पूर्यं नभन्तामन्यके संमे	१३०७	
अग्निस् त्रीणि त्रिघातूनि आ क्षेति विदधा क्विः ।		
स त्रीरेकादशो इह यक्षच पिप्रयच नो विप्रो दूतः परिष्कृतो नभन्तामन्यके संमे	१३०८	
त्वं नो अग्र आयुषु त्वं देवेषु पूर्यं वस्व एकं इरज्यसि ।		
त्वामापः परिस्नुतः परिं यन्ति स्वसेतवो नभन्तामन्यके संमे	१३०९	

॥ १५२ ॥ (ऋ० ८। ४३। १-३३) [१३१०-१३८८] विरूप आङ्गिरसः । गायत्री ।

इमे विप्रस्य वेधसो	ऽग्नेरस्तृतयज्वनः	। गिरः स्तोमांस ईरते	१३१०
अस्यै ते प्रतिहर्षति	जातवेदो विचर्षणे	। अग्ने जनामि सुपुतिम्	१३११
आरोका इव घेदहं	तिग्मा अग्ने तव त्विर्षः	। दुद्धिर्वनानि वप्सति	१३१२
हरयो धूमकेतवो	वातजूता उप धवि	। यतन्ते वृथंगप्रयः	१३१३
एते त्ये वृथंगप्रयं	इद्वासुः समदक्षते	। उपसामिव केतवः	१३१४
कृष्णा रजांसि पत्सुतः	प्रयाणं जातवेदसः	। अग्निर्यद् रोधति क्षमि	१३१५
घासिं कृष्णान ओषधीर्	वप्सदुग्निर्न वायति	। पुनर्थन् तरुणीरपि	१३१६
जिह्वाभिरह नर्नमद्	अर्चिषा जङ्गणामवन्	। अग्निर्वनेषु रोचते	१३१७
अप्सर्वमे साधेष्टव	सौषधीरुन् रुध्यसे	। गर्भे सन् जायसे पुनः	१३१८

उदग्ने तव तद् घृताद्	अर्ची रोचतु आहुतम्	निसानं जुहोतु मुते	१३१९
उक्षात्नाय वशात्नाय	सोमपृष्ठाय वेधसे	स्तोमैर्विधेमाग्रये	१३२०
उत त्वा नर्मसा वयं	होतुर्वरेण्यक्रतो	अग्ने समिद्धिरीमहे	१३२१
उत त्वा भृगुवच्छुचे	मनुष्वदग्र आहुत	अङ्गिरस्वद्धवामहे	१३२२
त्वं ह्यग्ने अभिना विप्रो	विप्रेण सन्तसता	सरा सरुया समिध्यसे	१३२३
स त्वं विप्राय द्राशुपै	रयि देहि सहस्रिणम्	अग्ने वीरवतीमिषम्	१३२४
अग्ने भ्रातः सहस्कृत	रोहिदश्च शुचिं व्रत	इमं स्तोमं जुपस्व मे	१३२५
उत त्वाग्ने मम स्तुतो	वाश्राय प्रतिहर्यते	गोष्ठं गाव इवाशत	१३२६
तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम	विश्वाः सुक्षितयः पृथक्	अग्ने कामाय येमिरे	१३२७
अग्निं धीभिर्मनीपिणो	मेधिरासो विपश्चितः	अब्रसघाय हिन्विरे	१३२८
तं त्वामज्मेषु वाजिनं	तन्वाना अग्ने अघ्नुरम्	वह्निं होतारमीळते	१३२९
पुरुत्रा हि सृष्टुसि	विशो विश्वा अनुं प्रभुः	समत्सु त्वा हवामहे	१३३०
तमीळिष्व य आहुतो	ऽग्निर्विभ्राजते घृतैः	इमं नः शृणुवद्धवम्	१३३१
तं त्वा वयं हवामहे	शृण्वन्तं ज्ञातवेदसम्	अग्ने घ्नन्तमप द्विपः	१३३२
विशां राजानमद्भुतम्	अध्यक्षं धर्मणामिमम्	अग्निमीळि स उं श्रवत्	१३३३
अग्निं विश्वायुवेपसं	मर्यं न वाजिनं हितम्	समिं न वाजयामसि	१३३४
मन् मूधाण्यप द्विपो	दहन् रक्षांसि विश्वहा	अग्ने तिग्मेन दीदिहि	१३३५
यं त्वा जनास इन्धते	मनुष्वदङ्गिरस्तम	अग्ने स घोधि मे वचः	१३३६
यदग्ने दिविजा असि	अप्सुजा वा सहस्कृत	तं त्वा गीर्भिहवामहे	१३३७
तुभ्यं घेत ते जना इमे	विश्वाः सुक्षितयः पृथक्	घ्रासिं हिन्वन्त्यत्तवे	१३३८
ते घेदग्ने स्वाधयो	ऽहा विश्वा नृचक्षसः	तरन्तः स्याम दुर्गहा	१३३९
अग्निं मन्द्रं पुरुप्रियं	शीरं पावकशोचिपम्	हृद्धिर्मन्द्रेभिरीमहे	१३४०
स त्वमग्ने विभार्वसुः	सृजन्तस्यो न रश्मिभिः	शर्धन् तमांसि जिघ्रसे	१३४१
तत् तं सहस्व ईमहे	दात्रं यन्नोपदस्यति	त्वदग्ने वार्यं वसु	१३४२

॥ १५३ ॥ (क्र० ८ । ४४ । १-३०)

समिधामि दुवस्यत	घृतैर्वैधयुतातिथिम्	आस्मिन् हव्या जुहोतन	१३४३
अग्ने स्तोमं जुपस्व मे	धर्धस्यानेन मन्मना	प्रति सुक्तानि हर्य नः	१३४४

अग्निं दूतं पुरो दधे	हव्यवाहसुपं न्रुवे	। देवाँ आ सांदयाद्दिह	१३४५
उत् तै बृहन्तो अर्चयः	समिधानस्य दीदिवः	। अग्ने शुक्रास ईरते	१३४६
उपं त्वा जुहोइ मम	यृताचीर्यन्तु हर्यत	। अग्ने हव्या जुपस्व नः	१३४७
मन्द्रं होतारमृत्विजं	चित्रमानुं विभार्वसुम्	। अग्निमीळे स उं श्रवत्	१३४८
प्रत्नं होतारमीड्यं	जुष्टमग्निं कृषिक्रंतुम्	। अध्वराणामभिश्रियम्	१३४९
जुषाणो अङ्गिरस्तम	इमा हव्यान्यानुपक्	। अग्ने यज्ञं नय क्रतुथा	१३५०
समिधान उं सन्त्य	शुक्रशोच इहा वंह	। चिकित्वान् देव्यं जनम्	१३५१
विश्रं होतारमद्रुहं	धूमकैतुं विभार्वसुम्	। यज्ञानां केतुमीमहे	१३५२
अग्ने नि पाहि नस् त्वं	प्रतिं प्म देव रीपतः	। भिन्धि द्वेषः सहस्कृत	१३५३
अग्निः प्रजेन मन्मना	शुम्भानस् तन्वंश्च स्वाम्	। कृविर्विप्रेण वावृधे	१३५४
ऊर्जो नपातमा हुंवे	अग्नि पावकशोचिपम्	। अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे	१३५५
स नो मित्रमहस् त्वम्	अग्ने शुकेण शोचिपां	। देवैरा संत्सि वृहिरिषिं	१३५६
यो अग्निं तन्नोइ दमे	देवं मर्तैः सपर्यतिं	। तस्मा इद् दीदयद् वसु	१३५७
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्	पतिः पृथिव्या अयम्	। अपां रतांसि जिन्वति	१३५८
उदग्ने शुचयस् तवं	शुक्रा आजन्त ईरते	। तव ज्योतीष्यर्चयः	१३५९
ईशिपे वार्यस्य हि	दात्रस्याग्ने स्वर्पतिः	। स्तोता स्यां तव शर्मणि	१३६०
त्वामग्ने मनीषिणस्	त्वां हिन्वन्ति चित्तिभिः	। त्वां वर्धन्तु नो गिरः	१३६१
अर्दब्धस्य स्वधार्वतो	दूतस्य रेमतुः सदा	। अग्नेः सख्यं वृष्णीमहे	१३६२
अग्निः शुचिर्व्रततमः	शुचिर्विप्रः शुचिः कविः	। शुची रोचत आहुतः	१३६३
उत् त्वां धीतयो मम	गिरो वर्धन्तु विश्वहा	। अग्ने सख्यस्य वोधि नः	१३६४
यदग्ने स्यामहं त्वं	त्वं वा घा स्या अहम्	। स्युष्टे सत्या इहाशिषः	१३६५
वसुर्वसुपतिर्हि क्रम्	अस्यग्ने विभार्वसुः	। स्याम ते सुमतावपिं	१३६६
अग्ने घृतव्रताय ते	समुद्रायैव सिन्धवः	। गिरो वाश्रास ईरते	१३६७
युवानि विश्पतिं कविं	विश्वार्दं पुरुवैपसम्	। अग्निं शुम्भामि मन्मभिः	१३६८
यज्ञानां र्धये वयं	तिग्मजम्भाय वीळ्वे	। स्तोमैरिपेमाद्ये	१३६९
अयमग्ने त्वे अपिं	जरिता भूतु सन्त्य	। तस्मै पावक मृळ्य	१३७०
धीरो ह्यस्यंभसद्	विश्रो न जागृविः सदा	। अग्ने द्वीदर्यसि धविं	१३७१

पुराग्नें दुरितेभ्यः पुरा मुध्रेभ्यः कवे । प्र ण आयुर्वसो तिर १३७२

॥१५४॥ (ऋ० ८ । ७५ । १-१६)

युक्ष्णा हि देवहृतमौ	अश्वौ अग्ने रथीरिव	। नि होता पूच्यः संदः	१३७३
उत नो देव देवाँ	अच्छा वोचो विदुष्टरः	। श्रद् निश्चा वार्या कृधि	१३७४
त्वं ह यद् यविष्ट्य	सहसः स्रनवाहुत	। क्रुतावा यज्ञियो भुवः	१३७५
अयमग्निः सहास्रिणो	वाजस्य श्रतिनस्पतिः	। मुर्धा कृवी रथीणाम्	१३७६
तं नेमिमृभवो यथा	नमस्व सहतिभिः	। नेदीयो यज्ञमङ्गिरः	१३७७
तस्मै नूनमभिद्यवे	वाचा विरूप नित्यया	। वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम्	१३७८
कमुं ण्दिदस्य सेनया	अग्नेरपाकचक्षसः	। षणि गोपुं स्तरामहे	१३७९
मा नो देवानां विशः	प्रस्त्रातीरिवोस्त्राः	। कृशं न हासुरभ्याः	१३८०
मा नः समस्य दृढ्यः	परिद्वेषतो अंहतिः	। ऊर्मिर्न नावमा बंधीत्	१३८१
नमस् ते अग्र ओजसे	गुणन्ति देव कृष्टयः	। अमैरुमित्रमर्दय	१३८२
कुवित् सु नो गर्विष्ट्ये	ऽग्ने संवेपिपो रथिम्	। उरुकुदुरु णस् कृधि	१३८३
मा नो अस्मिन् महाधने	परा वर्गारभृद् यथा	। संवर्गं सं रथिं जय	१३८४
अन्यमसाङ्गिया इयम्	अग्ने सिपंकतु दुच्छुना	। वर्धा नो अमवच्छर्वः	१३८५
यस्याजुपन्नमस्विनः	शमीमदुर्भेरास्य वा	। तं धेदुभिर्वृधार्चति	१३८६
परस्या अधि संवतो	ऽर्वरो अभ्या तर	। यत्राहमस्मि तौ अव	१३८७
विद्वा हि ते पुरा वयम्	अग्ने पितुर्यथावसः	। अधा ते सुम्नमीमहे	१३८८

॥१५५॥ (ऋ० ८।६०।१-२०) [१३८९-१४०८] मर्गः प्रागाथः ।

प्रागाथः= (वृहती+सतोवृहती) ।

अग्र आ यास्रभिभिर् होतांरं त्वा वृणीमहे ।
 आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं वहिरासदे १३८९
 अच्छा हि त्वा सहसः स्रनो अङ्गिरः सुच्यश् चरन्त्यधुरे ।
 ऊर्जो नपातं धृतकेशमीमहे ऽग्नि यज्ञेषु पूच्यम् १३९०
 अग्ने कृनिर्वेधा असि होता पावकृ यक्ष्यः ।
 मन्द्रो यजिष्ठो अधुरेप्नीड्यो विप्रैभिः शुक्र मन्मभिः १३९१

अद्रौघमा बहोशतो यविष्य देवाँ अजस्र वीतर्ये ।	
अभि प्रयाँमि सुधिता वंसो गहि मन्दस्व धीतिर्मिहितः	१३९२
त्वमित् सुप्रथाँ असि अग्नेँ त्रातरुतस् कृविः ।	
त्वाँ विप्रांसः समिधान दीदिव आ विवासान्ति वेघसः	१३९३
शोचाँ शोचिष्ट दीदिहि विशे मयो रास्वँ स्तोत्रे मुहाँ असि ।	
देवानाँ शर्मन् मर्म सन्तु सूरयः शत्रूपाहः स्वग्रयः	१३९४
यथाँ चिद् बुद्धमंतसम् अग्नेँ संजूर्वसि धर्मि ।	
एवा दह मित्रमहो यो अस्मद्भुग् दुर्मन्मा कश् च वेनति	१३९५
मा नो मर्ताय रिपवेँ रक्षस्विने भावशसाय रीरथः ।	
अस्त्रेघद्विस् तरणिभिर्यविष्य गिधेभिः पाहि पायुभिः	१३९६
पाहि नो अग्र एकया पाह्युत द्वितीयया ।	
पाहि ग्रीभिस् तिसृभिर्रुजाँ पते पाहि चंतमृभिर्वसो	१३९७
पाहि विश्वस्माद् रक्षसो अराव्यः प्र स्म वाजेंपु नोऽव ।	
त्वामिद्धि नेदिष्टं देवतांतय आपि नक्षामहे वृधे	१३९८
आ नो अग्ने वयोवृधेँ रयिँ पावकू शंस्येँ ।	
रास्वाँ च न उपमाते पुरुस्पृष्टं सुनीतीँ स्वयंशस्तरम्	१३९९
येन वंसाँम घृतनामु शर्धतम् तरन्तो अर्ये आदिशः ।	
स त्वं नोँ वधेँ प्रयसा शचीवसो जिन्वाँ धियोँ वसुविदः	१४००
शिशाँनो वृषभो यथा अग्निः शृङ्गे दर्विध्वत् ।	
तिन्मा अंस्य हनत्रो न प्रतिधृषेँ सुजम्भः सहसो यहुः	१४०१
नहि तेँ अग्ने वृषभ प्रतिधृषेँ जम्भाँसो यद् वितिष्टसे ।	
स त्वं नोँ होतुः सुहृतं हविष्कृधि वंस्वाँ नो वार्याँ पुरु	१४०२
शेषेँ वनेँषु मात्रोः सं त्वा मर्ताँस इन्धते ।	
अतन्द्रो हव्या बहसि हविष्कृत आदिद् देवेपुँ राजसि	१४०३
सप्त होतारस् तमिदीँळते त्वा अग्नेँ सुत्यजमह्रयम् ।	
मिनत्स्यद्विँ तर्पसा वि शोचिषा प्राथेँ विष्ट जनाँ अति	१४०४

अग्निर्मग्निं वो अध्रिगुं हुवेम वृक्षतर्वाहिपः ।	
अग्निं हितप्रयसः शश्वतीप्या होतारं चर्पणीनाम्	१४०५
केतेन शर्मन्तसचते सुपामणि अग्ने तुभ्यं चिकित्वना ।	
इपण्यया नः पुरु रूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये	१४०६
अग्ने जरितविंशपतिस् तेपानो देव रक्षसः ।	
अप्रोपिवान् गृहपतिर्महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोगयुः	१४०७
मा नो रक्ष आ वंशीदाघृणीवसो मा यातुर्यातुमावताम् ।	
परोगव्यूत्यनिरामप क्षुधम् अग्ने सेध रक्षस्विनः	१४०८

॥ १५६ ॥ (ऋ० ८ । ७१ । १-१५)

[१४०८—१४२३] सुदीति-पुरुमीद्ग्लावाङ्गिरसौ, तयोर्वान्यतरः । गायत्री, १४१८-१४२३ प्रगाथः=(बृहती, सतोबृहती) ।

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरतिः । उत द्विपो मर्त्यस्य	१४०९
नहि मन्युः पौरुषेय ईशे हि वः प्रियजात । त्वमिदसि क्षर्पावान्	१४१०
स नो विश्वेभिर्देवेभिर् ऊर्जो नपाद् भद्रशोचे । रयिं देहि विश्ववारम्	१४११
न तमग्ने अरातयो मर्ति युवन्त रायः । यं त्रायसे दाश्वासम्	१४१२
यं त्वं विप्र मेधसातौ अग्ने हिनोपि धनाय । स तवोती गोषु गन्ता	१४१३
त्वं रयिं पुरुवीरम् अग्ने द्राशुपे मर्ताय । प्र णो नय वस्यो अच्छ	१४१४
उरुप्या णो मा परा दा अघायते जातवेदः । दुराध्येडे मर्ताय	१४१५
अग्ने मार्किटे देवस्य रातिमदेवो युयोत । त्वमीशिपे वसनाम्	१४१६
स नो वस्व उप मासि ऊर्जो नपान्माहिनस्य । सखेँ वसो जरितृभ्यः	१४१७
अच्छा नः शीरशोचिपुं गिरो यन्तु दर्शतम् ।	
अच्छा यज्ञामो नमसा पुरुवसुं पुरुप्रशस्त्वमूतये	१४१८
अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।	
द्विता यो भृदमृतो मर्त्येप्या होता मन्द्रतमो विशि	१४१९
अग्निं वो देवयज्यया अग्निं प्रयत्यध्वरे ।	
अग्निं धीषु प्रथममग्निमर्वति अग्निं धैत्राय सार्धसे	१४२०

अग्निरिपां सख्ये ददातु न ईशे यो वार्थीणाम् ।
अग्निं तोकै तनये शश्वदीमहे वसुं सन्तं तनूषाम् १४२१**

अग्निमीष्टिष्यावसे गाथाभिः शीरशौचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीह श्रुतं नरो ऽग्निं सुद्वीतये हृदिः १४२२ ×

अग्निं द्वेषो योतवै नो गृणीमसि अग्निं शं योज् च दातवै ।
विश्वासु विश्ववितेव हव्यो सुवद् वस्तुर्गुणाम् १४२३

॥ १५७ ॥ (क्र० ८ । ७२ । १-१८) [१४२४-१४४१] हयतः प्रागायः । गायत्री ।

हविष्कृण्वमा गमद् अध्वर्युर्वनते पुनः ।	विद्वाँ अस्य प्रशासनम् १४२४
नि तिग्ममभ्यंशुं सीदद्वोर्ता मनावधि ।	जुषाणो अस्य सुग्न्यम् १४२५
अन्तरिच्छन्ति तं जनें रुद्रं परो मनीषया ।	गृभ्णन्ति जिह्वया ससम् १४२६
जाम्यतीतपे घनुर् वयोधा अरुहद्वनम् ।	द्वपदं जिह्वयावधीत् १४२७
चरन् वस्तो रुशन्निह निदातारं न विन्दते ।	वेति स्तोतव अभ्यम् १४२८
उतो न्वस्य यन्महद् अश्वावद् योजनं बृहत् ।	दामा रथस्य दह्ये १४२९
दुहन्ति सप्तकाम् उप द्वा पञ्च सृजतः ।	तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे १४३०
आ द्यग्भिर्विवस्वत इन्द्रः कोशमसुच्यवीत् ।	रेदया त्रिवृता दिवः १४३१
परि त्रिघातुरध्वरं जूर्णिरिति नवीयमी ।	मध्या होतारो अज्जते १४३२
सिञ्चन्ति नमसावतम् उच्चाचक्रं परिज्मानम् ।	नीचीर्नवारमर्धितम् १४३३
अभ्यारमिदद्रयो निरिपक्तं पुष्करं मधुं ।	अवतस्य विसर्जने १४३४
गाव् उपावतावतं मही यज्ञस्यं रप्सुदा ।	उभा कर्णा हिरण्यया १४३५
आ सुते सिञ्चत ध्रियं रोदस्योरभिध्रियम् ।	रसा दधीत वृषभम् १४३६
ते जानत स्वमोक्षयं सं वत्सामो न मावभिः ।	मिथो नसन्त जामिभिः १४३७
उप सवत्रेषु वपसतः कृणुते वरुणां द्विवि ।	इन्द्रे अग्रा नमः स्वः १४३८
अधुक्षत् पिप्युपीमिषम् ऊर्जे मत्सपदीमरिः ।	द्यस्य सप्त रश्मिभिः १४३९
सोमस्य मित्रावरुणा उर्दिता सूर आ ददे ।	तदारुणस्य मेपजम् १४४०
उतो न्वस्य यत् पदं ह्येतस्य निधान्यम् ।	परि घां जिह्वयातनत् १४४१

॥ १५८ ॥ (ऋ० ८।७४।१-१२)

[१४४२ १४५३] गोपवन आत्रेय । अनुष्टुम्भुतः प्रगाथाः= (अनुष्टुप्+गायत्री) ।

विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।	
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुपे शूपस्य मन्मभिः	१४४२
यं जनासो हृनिर्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् ।	प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः १४४३
पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्सुद्यता ।	ह्वयान्यैरयद् द्विवि १४४४
आगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।	
यस्य श्रुतर्वा बृहन् आक्षो अनीक एधते	१४४५
अमृतं जातवेदसं तिरस् तमांसि दर्शतम् ।	घृताहवनमीढ्यम् १४४६
सवाधो यं जना इमेडे अग्निं हव्येभिरिळते	। जुह्वानासो यतस्तुचः १४४७
इय ते नव्यंसी मतिर् अग्ने अधाय्यस्वदा ।	
मन्द्रं सुजातं सुकृतो ऽमूर् दस्मातिथे	१४४८
सा ते अग्ने शंतमा चनिष्ठा भवतु प्रिया	। तया वर्धस्व सुष्टुतः १४४९
सा घुम्नेर्घुग्निनी बृहद् उपोप श्रवांसि श्रवः	। दर्धाते वृत्रतूर्ये १४५०
अधमिद् गां रथप्रां त्रेपमिन्द्रं न सत्पतिम् ।	
यस्य श्रवांसि तूर्यथ पन्यंपन्यं च कृष्टयः	१४५१
यं त्रां गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अङ्गिरः	। स पावक श्रुधी हवम् १४५२
यं त्वा जनासु ईळते सवाधो वाजसातये	। स वोधि वृत्रतूर्ये १४५३

॥ १५९ ॥ (ऋ० ८।८४।१-९) (१४५४-१४६२) उशना काव्यः । गायत्री ।

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुपे मित्रमिव प्रियम् ।	अग्निं रथं न वेद्यम् १४५४
कनिर्मिन् प्रचेतसं यं देवासो अधं द्विता	। नि मर्त्येणाद्बुधुः १४५५
त्वं यन्निष्ठ द्वाशुषो नूः पाहि शृणुधी गिरः ।	रक्षां लोकमुव त्मना १४५६
कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जी नपादुपस्तुतिम् ।	वराय देव मन्यवै १४५७
दाशेम् कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो ।	कर्दु वोच इदं नमः १४५८
अधा त्वं हि नस् करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः ।	वाजद्रविणसो गिरः १४५९
कस्य नूनं परीणसो धियो जिन्वसि दंपते ।	गोपाता यस्य ते गिरः १४६०
तं भर्जयन्त मुफ्तुं पुरोयावानमाजिपुं	। स्वेषु क्षयेषु चाजिनम् १४६१
भेत्ति क्षेमैभिः साधुभिर् नक्रियं तन्ति हन्ति यः ।	अग्ने सूचीर एधते १४६२

॥ १६० ॥ (ऋ० ८ । १०२ । १-२२)

१४६३-१४८४ प्रयोगो भार्गवः, पात्रकोऽग्निर्दक्षस्त्यो वा, गृहपति-यजिष्ठो सहस्रः पुत्रौ अन्यतरो वा ।

त्वमग्ने गृहद् वयो	दधासि देव दाशुषं	।	कृविर्गृहर्पतिर्युवा	१४६३
स न ईळानया सह	देवाँ अग्ने दुवस्युवा	।	चिकिद् विभान्वा वंह	१४६४
त्वया ह स्विद् युजा वयं	चोर्दिष्टेन यविष्ठ्य	।	अभि प्मो वाजसातये	१४६५
और्विभृगुवच्छुचिम्	अमवान्वदा हुवे	।	अग्निं समुद्रवामसम्	१४६६
हुवे वार्तस्वनं कृवि	पर्जन्यक्रन्द्यं सहः	।	अग्निं समुद्रवामसम्	१४६७
आ सवँ सवितुर्यथा	भगस्येव भुजि हुवे	।	अग्निं समुद्रवासनम्	१४६८
अग्निं चो वृधन्तम्	अध्वराणां पुरुतमम्	।	अच्छा नष्टे सहस्वते	१४६९
अयं यथा न आभुवत्	त्वया रूपेव तक्ष्या	।	अस्य क्रत्वा यशस्वतः	१४७०
अयं विश्वा अभि त्रियो	ऽग्निर्देवेषु पत्यते	।	आ वाजैरुप नो गमत	१४७१
विश्वेषामिह स्तुहि	होतृणां यशस्तमम्	।	अग्निं यज्ञेषु पूर्णम्	१४७२
शीरं पावकशोचिपं	ज्येष्ठो यो दमेष्वा	।	दीदार्य दीर्विश्रुतमः	१४७३
तमर्वन्तं न सानसि	गृणीहि विप्र शुष्मिणाम्	।	मित्रं न यातुयजनम्	१४७४
उप त्वा जामयो गिगो	देदिशतीर्हविष्कृतः	।	शायोरनीके अस्मिन्	१४७५
यस्य त्रिधात्ववृतं	वर्हिस् तस्थावसंदिनम्	।	आपश् चिन्नि दधा पदम्	१४७६
पदं देवस्य मीहुपो	ऽनाष्टामिहृतिभिः	।	भद्रा सूर्य इवोपहृक्	१४७७
अग्ने घृतस्य धीतिभिस्	तेपानो देव शोचिषा	।	आ देवान् वक्षि यक्षि च	१४७८
तं त्वाजनन्त मातरः	कृवि देवासो अङ्गिरः	।	हव्यवाहममर्त्यम्	१४७९
प्रचेतसं त्वा कवे	अग्ने दूतं वरेण्यम्	।	हव्यवाहं नि पैदिरे	१४८०
नहि मे अस्त्यत्र्या	न स्वर्धितिर्यनन्वति	।	अथैतादृग् भंगमि ते	१४८१
यदग्ने कानि कानि चिद्	आ ते दारुणि दुष्मसि	।	ता जुपस्व यविष्ठ्य	१४८२
यदस्युपजिह्विका	यद् वत्रो अतिसर्पति	।	मर्वं तदस्तु ते घृतम्	१४८३
अग्निमिन्धानो मनसा	धियं सचेत मर्त्यः	।	अग्निमीधे विवस्वभिः	१४८४

॥ १६१ ॥ ऋग्वेदस्य मण्डलं १० । सूक्त १ । मन्त्राः १-७)

[१४८५—१५३३] नित आप्त्यः । त्रिष्टुप् ।

अग्ने गृहन्नूपसामूर्ध्वो अस्थान् निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिपागात् ।

अग्निमानुना रुशता स्वह आ जातो विश्वा सर्भान्यप्राः

१४८५

स जातो गर्भो असि रोदस्योर्	अग्ने चारुर्विभृतु ओषधीषु ।	
चित्रः शिशुः परि तर्मास्यक्तून	प्र मातृभ्यो अधि कर्निक्रदद् गाः	१४८६
विष्णुरित्था परममस्य विद्वान्	जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।	
आसा यदस्य पयो अकृत स्वं	सचेतसो अम्यर्चन्त्यत्र	१४८७
अत उ त्वा पितुभृतो जनित्रीर्	अन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।	
ता इ प्रत्येपि पुनरन्वयरूपा	असि त्वं विधु मातृपीपु होता	१४८८
होतारं चित्ररथमध्वरस्य	यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम् ।	
प्रत्यर्धि देवस्यदेवस्य मुह्या	श्रिया त्वग्निमतिधि जनानाम्	१४८९
स तु वस्त्राप्यध पेशनानि	वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः ।	
अरुपो जातः पद इळायाः	पुरोहितो राजन् यक्षीह देवान्	१४९०
आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे	सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ ।	
प्र ग्राह्यच्छोशतो यविष्ठ	अथा बह सहस्येह देवान्	१४९१

॥ १६२ ॥ (ऋ० १० । २ । १-७)

पिप्रीहि देवा उशतो यविष्ठ	विद्वो ऋतुर्ऋतुपते यजेह ।	
ये दैव्या ऋत्विजस् तेभिरग्ने	त्वं होतृणामस्यायजिष्ठः	१४९२
वेपि होत्रमुत् पोत्रं जनानां	मन्धातासि द्रविणोदा क्रुतावा ।	
स्वाहा वयं कृणवामा हवीपि	देवो देवान् यजत्वभिरहेन्	१४९३
आ देवानामपि पन्थामगन्म्	यच्छक्रवाम तदनु प्रवोहुम् ।	
अभिर्विद्वान् त्स यजात् सेद्दु होता	सो अध्वरान् त्स ऋतून् कल्पयाति	१४९४
यद् वो वयं प्रमिनाम वृतानि	विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।	
अग्निष्ट विश्वमा पृणाति विद्वान्	येभिर्देवा ऋतुभिः कल्पयाति	१४९५
यत् पाक्या मनेसा दीनदक्षा	न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।	
अग्निष्टद्वोर्ता ऋतुविद् विजानन्	यजिष्ठो देवा ऋतुशो यजाति	१४९६
विश्वेषां हध्वराणामनीकं	चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान ।	
स आ यजस्व नृवतीरनु क्षाः	स्पर्हा इपः क्षुमतीर्विश्वजन्याः	१४९७

यं त्वा घावापृथिवी यं त्वापुस् त्वष्टा यं त्वा सुजर्निमा जुजार्न ।
पन्थामनुं प्रधिद्वान् पितृयानं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि १४९८

॥ १६३ ॥ (ऋ० १० । ३ । १-७)

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुपुमां अदक्षि ।
चिकिद् वि भाति भासा बृहता असिक्रीमेति रुशतीमपाजन् १४९९

कृष्णां यदेनीमभि वर्षसा भूज् जनयन् योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ष्वं भानुं धर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिभि भाति १५००

भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अम्वेति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्घुभिरभिर्वितिष्ठन् रुशङ्घिर्वर्णैराभि राममस्थात् १५०१

अस्य यामासो बृहतो न वभून् इन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य ।
ईडर्यस्य वृष्णां बृहतः स्वासो भामासो यार्मन्नक्तवश् चिकित्रे १५०२

स्वना न यस्य भामासः पर्वन्ते रोचमानस्य बृहतः सुदिवः ।
ज्येष्ठेभिर्यस तेजिष्ठैः क्रीडुमद्भिर् वर्षेभिर्भानुभिर्भक्षति घाम् १५०३

अस्य शुष्मासो ददृशानपर्वेर् जेहमानस्य स्वनयन् निशुद्धिः ।
प्रत्नेभियो रुशङ्घिर्देवतमो वि रेभङ्गिररतिर्भाति विभ्वा १५०४

स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्ध्रुवत्योः ।
अग्निः सुतुकः सुतुकैभिरश्चै रभस्वद्धी रभस्वाँ एह गम्याः १५०५

॥ १६४ ॥ (ऋ० १० । ४ । १-७)

प्र ते यक्षि प्र ते इयमिं मन्म भ्रवो यथा वन्द्यो नो हवेषु ।
चन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्ने इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् १५०६

यं त्वा जनासो अभि संचरन्ति गाव उष्णाभिव ब्रजं यविष्ठ ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानाम् अन्तर्महोश् चरसि रोचनेन १५०७

शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता विभर्ति सचनस्यमाना ।
घनोरधि प्रवर्ता यासि हर्यब् जिगीपसे पशुरिवावर्सृष्टः १५०८

मूरा अमूर न वयं चिकित्वा महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से ।
शवे वद्विश् चरति जिह्वयादन् रैरिहाते युवति विस्पतिः मन् १५०९

कूचिञ्जायते सनयासु नच्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः । अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं ग्रणयन्त मतीः	१५१०
तनूत्यजेध तस्करा वनर्गू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम् । इयं ते अग्ने नच्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयश्चिरङ्गैः	१५११
ब्रह्म च ते जातवेदो नमश् च इयं च गीः सद्रमिद् वर्धनी भूत् । रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस् तन्नोऽङ्ग अप्रद्युच्छन्	१५१२

॥ १६५ ॥ (ऋ० १० । ५ । १-७)

एकः समुद्रो धरुणो रयीणां अस्मद्भृदो भूरिजन्मा वि चंष्टे । सिपक्त्व्यूर्धनिण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः	१५१३
समानं नीळं वृषणो वसानाः सं जग्मिरे महिषा अर्धतीभिः । ऋतस्य पदं क्वयो नि पान्ति गुहा नामानि दाधिरे पराणि	१५१४
ऋतायिनीं मायिनीं सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती । विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य क्वेश् चित् तन्तुं मनसा विघन्तः	१५१५
ऋतस्य हि वर्तेनयः सुजातम् इपो वाजाय प्रदिवः सचन्ते । अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मर्धनाम्	१५१६
सप्त स्वसररुषीर्वावशानो विद्वान् मध्व उर्जभारा दृशे कम् । अन्तर्यमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन् वृत्रिमविदत् पूषणस्य	१५१७
सप्त मर्यादाः क्वयस् ततक्षुस् तासामेकाभिदभ्यंहरो गात् । आयोर्हे स्कम्भ उंपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ	१५१८
असच्च सच्च परमे व्योमन् दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे । अग्निर्हे नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं आयुनि वृषभश् च धेनुः	१५१९

॥ १६६ ॥ (ऋ० १० । ६ । १-७)

अयं म यस्य शर्मन्नवोभिर् अग्नेरेधते जरिताभिर्घां । ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋपूणां पर्येति परिधीतो विभावां	१५२०
यो भानुभिर्विभावां विभाति अग्निदेवेभिर्ऋतावाजसः । आ यो विवायं सग्या सखिभ्यो स्परिहृतो अत्यो न सतिः	१५२१

ईशे यो विश्वस्या देववीतिर् ईशे विश्वायुर्गुप्तो व्युष्टौ । आ यस्मिन् मना हवीप्यथौ अरिष्टरथः स्कन्नाति शूपैः	१५२२
शूपैर्मिर्वृषो जुपाणो अकैर् देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति । मन्द्रो होता स जुह्वा ई यजिष्ठः संमिश्रो अगिरा जिघर्ति देवान्	१५२३
तमुस्त्रामिन्द्रं न रेजमानम् अग्निं गीर्भिर्नमोभिरा कृणुध्वम् । आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति ज्ञातवेदसं जुह्वं सहानाम्	१५२४
सं यस्मिन् विश्वा वसन्ति जग्मुर् वाजे नाश्वाः सप्तीवन्त एवैः । अस्मे ऊतीरिन्द्रवाततमा अर्वाचीना अग्न आ कृणुष्व	१५२५
अधा ह्यग्ने महा निषद्यां सद्यो जज्ञानो हव्यो वभूर्य । तं ते देवासो अनु केर्तमायन् अर्धावर्धन्त प्रथमासु ऊमाः	१५२६

॥ १६७ ॥ (ऋ० १०।७।१-७)

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव । सचेमहि तव दस्म प्रकेतर् उरुप्या ण उरुभिर्देव शंसैः	१५२७
इमा अग्ने मतयस् तुम्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः । यदा ते मतो अनु भोगमानद् वसो दधानो मतिभिः सुजात	१५२८
अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिम् अग्निं आतरं सदमित् सखायम् । अग्नेरनीकं बृहतः संपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य	१५२९
सिधा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर् यं त्रायसे दम् आ नित्यं होता । ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुर् द्युभिरस्मा अहंभिर्वाग्ममस्तु	१५३०
द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्यं जारम् । वाह्म्यामग्निमायवोऽजनन्त विष्णु होतारं न्यसादयन्त	१५३१
स्वयं यजस्व दिवि देव देवान् किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः । यथार्यज ऋतुभिर्देव देवान् एवा यजस्व तन्वं सुजात	१५३२
भवां नो अग्नेऽवितोत गोपा भवां वयस्कृदुत नो वयोधाः । रास्वा च नः सुमहो हव्यदाति त्रास्वोत नस् तन्वोऽे अप्रयुच्छन्	१५३३

॥ १६८ ॥ (क्र० १०।८।१-६) [१५३४-१५३९] त्रिशिरास्त्वाप्युः ।

प्र क्रेतुना वृहता यात्यग्निर् आ रोदसी वृषभो रौरवीति ।	
दिवश् चिदन्तो उपमाँ उदानञ् अपामुपस्थे महिपो ववर्ध	१५३४
मुमोदु गर्भो वृषभः ककुब्धान् अस्त्रेमा वृत्सः शिमीवाँ अरावीत् ।	
स देवतात्युद्यतानि कृण्वन्त् स्वेपु क्षयेषु प्रथमो जिगाति	१५३५
आ यो मूर्धानं पित्रोररब्ध न्यध्वरे दधिरे स्ररो अर्णः ।	
अस्य पत्म्नरुपीरश्वबुधा ऋतस्य योनौ तन्वो जुपन्त	१५३६
उपउपो हि वंसो अग्रमेपि त्वं यमयोरभवो विभावा ।	
ऋतार्यं सप्त दधिपे पदानि जनयन् मित्रं तन्वेडे स्वायै	१५३७
भुवश् चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेपि ।	
भुवो अपां नपाजातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोषः	१५३८
भुवो यज्ञस्य रजसश् च नेता यत्रा नियुद्धिः सचसे शिवाभिः ।	
दिवि मूर्धानं दधिपे स्वर्पा जिह्वामग्ने चकूपे हव्यवाहम्	१५३९

॥१६९॥ (क्र० १०।११।१-९) [१५४०-१५५६] हविर्धान आङ्घ्रिः । जगती, १५४६-४८ त्रिष्टुप् ।

वृषा वृष्णे द्रुदुहे दोहसा दिवः पर्यासि यद्भो अदितेरदाभ्यः ।	
विश्वं स वेदु वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजतु यज्ञियो ऋतून्	१५४०
रपद् गन्धर्वोरप्यां च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः ।	
इष्टस्य मध्ये अदितिनि घातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वीचति	१५४१
नो चिन्तु भद्रा क्षुमती यशस्वती उपा उवाप्त मनवे स्वर्वती ।	
यदीमुग्रन्तमुग्रतामनु ऋतुम् अग्निं होतारं विदथाय जीजनन्	१५४२
अध त्वं द्रुप्मं विश्वं निचक्षणं विरारभरदिपितः श्येनो अघ्वरे ।	
यदी विशो वृणते द्रुस्ममार्या अग्निं होतारमधु धीरजायत	१५४३
मदाग्निं रणो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।	
विप्रस्य वा यच्छेग्रमान उक्थ्यं वाजं समवाँ उपयामि भूरिभिः	१५४४
उदीरय पितर्गा जार आ भगम् इयधनि हर्यतो हृत् इष्यति ।	
विर्वसित वाटिः स्वपुष्यते मगरस् त्विष्यते असुरो धेपते मती	१५४५

यस् तै अग्ने सुमतिं मर्तो अक्षत् सहसः घ्नो अति स प्र शृण्वे ।
इपं दधानो वहमानो अथैर् आ स द्युमाँ अमवान् भूपति द्युन् १५४६

यदग्र एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद् विभर्जासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् १५४७

श्रुधी नो अग्ने सदर्ने सुधस्यै युक्ष्या रथममृतस्य द्रवितुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे मार्किर्देवानामप भूरिह स्याः १५४८

॥ १७० ॥ (क्र० १० । १२ । १-९) त्रिष्टुप् ।

धावां ह क्षामां प्रथमे ऋतेन अभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन् सीदुद्वोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् १५४९

देवो देवान् परिभृर्ऋतेन वहां नो हव्यं प्रथमश चिंक्ित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भार्गजीको मन्द्रो होता नित्यौ वाचा यजीयान् १५५०

स्वावृग् देवस्यामृतं यदी गोर अतो ज्ञातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर दुहे यदेनीं दिव्यं घृतं वाः १५५१

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नु धावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद् द्यावोऽसुनीतिमयन् मध्वा नो अत्र पितरां शिशीताम् १५५२

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदुस्य अतिं ब्रतं चक्रमा को वि वेद ।
मित्रश् चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ् छोको न यातामपि वाजो अस्ति १५५३

दुर्मन्त्वश्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विपुरुषा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्तु अग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् १५५४

यस्मिन् देवा विदथे मादर्यन्ते विवस्वतः सदर्ने धारयन्ते ।
स्ये ज्योतिरदधुर्मास्ययुक्त्वा परिं द्योतनिं चरतो अर्जसा १५५५

यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्ति अपीच्येऽ न वयमस्य विन्न ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान् सविता देवो वरुणाय वोचत् १५५६

श्रुधी नो अग्ने सदर्ने सुधस्ये० । (१५४८)

॥ १७१ ॥ (ऋ० १० । १६ । १—१४)

[१५५७-१५७०] दमनो गामायनः । त्रिऋषुषु, १५६७-७० अनुष्टुप् ।

मैनमग्ने वि दहो मामि शौचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।	
यदा शृतं कृणवो जातवेदो ऽर्थमेनं प्र हिणुतात् पितृभ्यः	१५५७
शृतं यदा करसि जातवेदो ऽर्थमेनं परिं दत्तात् पितृभ्यः ।	
यदा गच्छात्यसुनीतिमेताम् अथा देवानां वशनीर्भवाति	१५५८
स्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा धां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।	
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितम् ओषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरः	१५५९
अजो भागस् तपसा तं तपस्व तं तं शोचिस् तपतु तं तं अर्चिः ।	
यास् तं शिवास् तन्वो जातवेदस् ताभिर्वहेनं सुकृताम् लोकम्	१५६०
अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस् त आहुतश् चरति स्वधाभिः ।	
आयुर्वसान उर्ष वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वां जातवेदः	१५६१
यत् तं कृष्णः शंकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।	
अग्निष्टद विश्वाद्गदं कृणोतु सोमश् च यो ब्राह्मणो आविवेश	१५६२
अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोषेत् पविंसा मेदसा च	
नेत् त्वां धृष्णुर्हरसा जर्हेपाणो दधृग् विधुक्ष्यन् पर्यह्वयति	१५६३
इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।	
एष यश् चमसो देवपानम् तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ते	१५६४
ऋच्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।	
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्	१५६५
यो अग्निः ऋच्यात् प्रविवेश वो गृहम् इमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।	
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स धर्माभिन्वात् परमे सुधस्ये	१५६६
यो अग्निः ऋच्युवाहनः पितृन् यक्षहतावृधः ।	
प्रेदुं हच्यानि वोचति देवेभ्यश् च पितृभ्य आ	१५६७
उग्रन्तम् त्वा नि धीमहि उग्रन्तः समिधीमहि ।	
उग्रन्तुशत आ वह पितृन् हविषे अत्तवे	१५६८

यं त्वमग्ने समदहस् तमु निर्वापया पुनः ।

क्रियाम्बव्रं रोहतु पाकदूर्घा व्यल्कशा

१५६९

शीर्तिके शीर्तिकावति हार्दिके हार्दिकावति ।

मण्डूक्याइ सु सं गम इमं स्वगिं हर्षय

१५७०

॥ १७२ ॥ (ऋ० १० । २० । १-१०)

[१५७१-१५८८] विमदपन्द्रः, प्राजापत्यो वा, यस्तुकदा वास्तुकः । गायत्री, १५७१ एकपदा विराट् (एष मन्त्रः शान्त्यर्थः), १५७२ अनुष्टुप्, १५७९ विराट्, १५८० त्रिष्टुप् ।

भद्रं नो अपि वातय मनः

१५७१

अग्निमीळे भुजां यविष्ठं शासा मित्रं दुर्धरीतुम् ।

यस्य धर्मन् त्ववृरेनीः सपर्यन्ति मातुरुधः

१५७२

यमासा कृपनीळं भासाकेतुं वर्धयन्ति । भ्राजते श्रेणिदन्

१५७३

अर्यो विशां गातुरेति प्र यदानद् द्विवो अन्तान् । कविरभ्रं दीधानः

१५७४

जुपद्भव्या मातुरुपस्य ऊर्ध्वस् तस्थावृम्बां युजे । मिन्वन् त्सन्नं पुर एति

१५७५

स हि क्षेमो हविर्यज्ञः श्रुष्टीदस्य गातुरेति । अग्निं देवा वाशीमन्तम्

१५७६

यज्ञासाहं दुवं इपे ऽग्निं पूर्वस्य शेवस्य । अद्रेः सूसुमायुर्माहुः

१५७७

नरो ये के चास्मदा विश्वेत् ते वाम आ स्युः । अग्निं हविषा वर्धन्तः

१५७८

कृष्णः श्वेतोऽरुयो यामो अस्य व्रध्न क्रुञ्ज उत शोणो यशस्वान् ।

हिरण्यरूपं जनिता जजान

१५७९

एवा र्ते अग्ने विमदो मनीषाम् ऊर्जो नपादमृतेभिः सजोषाः ।

गिर आ बक्षत् सुमतीरियान इपमूर्जं सुक्षिति विश्वमाभाः

१५८०

॥ १७३ ॥ (ऋ० १० । २१ । १-८) आस्तात्पान्तिः (८+८+१२+१२) ।

आग्निं न स्ववृक्षितमिर् होतांरं त्वा वृणीमहे ।

यज्ञाय स्तीर्णवर्हिषे वि वो मदे शीरं पावकशोचिपुं विवक्षसे

१५८१

त्वामु ते स्वाभुवः शुम्भन्त्यश्वराघसः ।

वेति त्वामुपसेचनी वि वो मदु ऋजीतिरभ्र आहुतिविवक्षसे

१५८२

त्वे धर्माण आसते जुह्वभिः सिञ्चतीरिव ।

कृष्णा रूपाण्यर्जुना वि वो मदे विश्वा अधि श्रियो धिपे विवक्षसे

१५८३

यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्यं ।	
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चिग्रमा भरा विवक्षसे	१५८४
अभिर्जातो अर्धर्वणा विदद् विश्वानि काव्या ।	
भुवद् द्रुतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे	१५८५
त्वां यज्ञेष्वीळते ऽग्नें प्रयत्यध्वरे ।	
त्वं वसनि काम्या वि वो मदे विश्वा दधासि द्वाशुपे विवक्षमे	१५८६
त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने नि पैदिरे ।	
घृतप्रतीकं मनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठप्रक्षभिर्विवक्षमे	१५८७
अग्ने शुक्रेण शोचिषा उरु प्रथयसे ब्रुहत्	
अभिक्रन्दन् वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विवक्षसे	१५८८

॥ १७४ ॥ (ऋ० २०।४५।१-२२) [१५८९-१६१०] वत्सप्रिर्भालन्दनः । प्रिण्ड्व ।

द्विस्परिं प्रथमं जज्ञे अग्निर् अस्मद् द्वितीयं परिं जातवेदाः ।	
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रम् इन्धान एनं जरते स्वाधीः	१५८९
विद्वा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्वा ते धाम विभृता पुरुत्रा ।	
विद्वा ते नाम परमं गुहा यद् विद्वा तस्रस्सं यत आजगन्थ	१५९०
समुद्रे त्वां नृमणां अप्स्वन्तर नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊर्धन् ।	
तृतीयं त्वा रजसि तस्थिवांसम् अपामुपस्थे महिषा अर्धर्धन्	१५९१
अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद् वीरुधः समञ्जन् ।	
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अरुयद् आ रोदसी भानुनां भात्यन्तः	१५९२
श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीपाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।	
वसुः सनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्रं उपसांमिधानः	१५९३
विध्वस्य केतुर्धुवनस्य गर्भं आ रोदसी अपृणाजार्यमानः ।	
षीळं चिदद्रिमिनत् परायञ् जना यदग्निमयजन्त पञ्च	१५९४
उशिरु पावको अरतिः सुमेधा मर्तेष्वग्निरमृतो नि घायि ।	
इपति धूममरुपं मरिभ्रद् उच्छुक्रेण शोचिषा धामिनक्षन्	१५९५

दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौद् दुर्मर्पमायुः श्रिये रुचानः ।	
अग्निर्मृत्तो अभवद् वयोभिर् यदेनं द्यौर्जनयत् सुरताः	१५९६
यस् तै अघ कृणवद् मद्रशोचे ऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।	
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छ अभि सुम्रं देवर्मक्तं यविष्ठ	१५९७
आ तं मज सौश्रवसेष्वग्ने उक्थउक्थ आ मज शस्यमाने ।	
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना मन्वाति उज्जातेन भिनददुज्जिनत्वैः	१५९८
त्वामग्ने यजमाना अनु धून् विश्वा वसुं दधिरे चार्याणि ।	
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वन्तुः	१५९९
अस्ताव्यग्निर्नरां सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमगोपाः ।	
अद्वेपे द्यावापृथिवी हुवेम देवा घत्त रयिमस्मे सुवीरम्	१६००

॥ १७५ ॥ (ऋ० १० । ४६ । १-१०)

प्र होता जातो महान् नभोविन् नृपद्वा सीददुपामुयस्थे ।	
दधिर्यो धायि स ते वयोसि यन्ता वसूनि विधत्ते तनुपाः	१६०१
इमं विधन्तो अपां सघस्थे पशुं न नष्टं पदैरतुं गमन् ।	
गुहा चर्तन्तमुशिजो नमोभिर् इच्छन्तो धीरा भृगवोऽविन्दन्	१६०२
इमं त्रितो भूर्यविन्ददिच्छन् वैभूवसो मूर्धन्यभ्यायाः ।	
स शेर्वधो जात आ हर्म्येषु नाभिर्युवां भवति रोचनस्थे	१६०३
मन्द्रं होतारमुशिजो नमोभिः प्राञ्चं यज्ञं नेतारमध्वराणाम् ।	
विशामकृण्वभरति पावकं हव्यवाहं दधतो मानुषेपु	१६०४
प्र भूर्जयन्तं महान् विपोषां मुरा अमूरं पुरां दुर्माणम् ।	
नयन्तो गर्भं वनां धिर्यं धूर् हिरिश्मश्रुं नावाणं धर्नर्चम्	१६०५
नि पुस्त्यासु त्रितः स्तंभयन् परिवीतो योनौ सीददुन्तः ।	
अतः संगृभ्या विशां दमृना विघर्मणायन्त्ररीयते नृन्	१६०६
अस्याजरांसो दुमामरित्रा अर्चदूमासो अग्रयः पावकाः ।	
क्षितोचर्यः श्वात्रासो मूरुण्यवो वनर्पदो वायवो न सोमाः	१६०७

प्र जिह्वया भरते वेपौ अग्निः प्र वयुनानि चेतसा पृथिव्याः ।
तमायुर्गः शुचयेन्तं पावकं मुन्द्रं होतारं दधिरे यजिष्ठम् १६०८

घात्रा यमग्निं पृथिवीं जनिष्ठाम् आपम् त्रष्टा भृगवो यं सहोभिः ।
ईक्षेन्थं प्रथमं मातरिश्वा देवास् तंतक्षुर्मनवे यजत्रम् १६०९

यं त्वा देवा दधिरे हव्यवाहं पुरुस्पृहो मानुपासो यजत्रम् ।
स यामन्नग्रे स्तुते वयो धाः प्र देवयन् यशसः सं हि पूर्वाः १६१०

॥ १७६ ॥ (ऋ० १० । ५१ । १, ३, ५, ७, ९,) [१६११-१६२४] देवा ।

महत् तदुल्वं स्थविरं तदासीद् येनाविष्टितः प्रविशेश्यापः ।
विश्वा अपश्यद् बहुधा तै अग्ने जातवेदस् तन्वो देव एकः १६११

ऐच्छाम त्वा बहुधा जातवेदुः प्रविष्टमग्ने अप्सोपंधीषु ।
तं त्वा यमो अचिक्रेच्चित्रभानो दशान्तरुप्यादतिरोचमानम् १६१२

एहि मनुदेवयुर्यज्ञकामो ऽरंकृत्या तमसि क्षेप्यग्रे ।
सुगान् पृथः कृणुहि देवयानान् वहं हव्यानिं सुमनस्यमानः १६१३

कुर्मस् त आयुरजरं यदग्ने यथा युक्तो जातवेदो न रिप्याः ।
अथा वहासि सुमनस्यमानो भागं देवेभ्यो हनिषः सुजात १६१४

तव प्रयाजा अनुयाजाश् च केरल ऊर्जस्वन्तो हनिषः सन्तु भागाः ।
तवाग्ने यज्ञोऽयमस्तु सर्गस् तुभ्यं नमन्तां प्रदिशश् चतस्रः १६१५

॥ १७७ ॥ (ऋ० १० । ५३ । १-३, ६-११) जगती, १६१६-१८, १६२१ त्रिष्टुप् ।

यमैच्छाम मनसा सोऽं ड्यमागाद् यज्ञस्यं विद्वान् परुषश् चिकित्वान् ।
म नो यधद् देवताता यजीयान् नि हि पत्सुदन्तरः पूर्वा अस्मत् १६१६

अराधि होता निषदा यजीयान् अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यत् ।
यजामहं यजियान् हन्तं देवो ईळामहा ईळ्यो आज्येन १६१७

साध्मीमर्दुवरीति नो अद्य यज्ञस्यं जिह्वामनिदाम गुह्याम् ।
स आपुरागात् सुरभिर्गसानो भद्रामकदेवहृति नो अद्य १६१८

तन्तं तन्वन् रजमो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पृथो रक्ष धिया कृतान् ।
अनुल्लणं रयत् जोगुणामपो मनुर्मव जनया दैव्यं जनम् १६१९

अज्ञानहो नद्यतनोत सोम्या	इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत ।	
अथावन्धुरं वहताभितो रथं	येन देवासो अनयन्नाभि प्रियम्	१६२०
अश्मन्वती रीयते सं रभध्वम्	उत् तिष्ठत् प्र तरता सखायः ।	
अत्रां जहाम ये असन्नशेवाः	शिवान् वयस्युत् तरेमाभि वाजान्	१६२१
त्वष्टां माया वेदपसांमपस्तमो	विभ्रत् पात्रां देवपानानि अंतमा ।	
शिशीति नूनं परशुं स्वायसं	येन वृथादेतेशो ब्रह्मणस्पतिः	१६२२
सतो नूनं कवयः सं शिशीत्	वाशीभिर्याभिरमृताय तक्षथ ।	
विद्वांसः पदा गुह्यानि कर्तन्	येन देवासो अमृतत्वमानशुः	१६२३
गर्भे योपामर्दधुर्वत्समासनि	अपीच्येन मनसोत जिह्वया ।	
स विश्वार्हा सुमना योग्या अभि	सिपासनिर्वनते कार इजित्तिम्	१६२४

॥७८॥ (ऋ० १० । ६९ । १-१२) [१६२५-१६३६] सुमित्रो वाध्यश्वः । त्रिष्टुप्, १६२५-२६ जगती ।

भद्रा अयेर्वेद्यश्वस्य संदशो	वामी प्रणीतिः सुरणा उपेतयः ।	
यदीं सुमित्रा विशो अग्रं इन्धते	घृतेनाहुतो जरते दिविद्युत्त	१६२५
घृतमप्रेर्वेद्यश्वस्य वर्धनं	घृतमन्नं घृतम्वस्य मेदनम् ।	
घृतेनाहुत उर्विया वि पंप्रथे	सूर्य इव रोचते सपिरामुतिः	१६२६
यत् ते मनुर्यदनीकं सुमित्रः	समीधे अग्ने तद्विदं नवीयः ।	
स रेवच्छौचं स गिरौ जुपस्व	स वाजं दधिं स इह श्रवो धाः	१६२७
यं त्वा पूर्वमीळितो वंध्यश्वः	समीधे अग्ने स इदं जुपस्व ।	
स नः स्तिपा उत मवा तनुपा	दात्रं रक्षस्व यद्विदं तं अस्मे	१६२८
मवां घृन्नी वाध्यश्वोत गोपा	मा त्वां तारीद्रभिमांतिर्जनानाम् ।	
शरं इव घृणुदच्यवनः सुमित्रः	प्र नु वौचं वाध्यश्वस्य नाम	१६२९
समृज्यां पर्वत्याइ वस्रनि	दासा वृत्राण्यार्यां जिगेथ ।	
शरं इव घृणुशु च्यवनो जनानां	त्वमग्ने प्रतनापूरभि प्याः	१६३०
द्रीर्धतन्तुर्बृहदुक्षायमभिः	सहस्रस्त्रीः शतनीथ क्रम्या ।	
घुमान् घुमत्सु नृभिर्मृज्यमानः	सुमित्रेषु दीदयो देवयत्सु	१६३१

त्वे धेनुः सुदुर्घा जातवेदो ऽमुश्वतेव समुना संचर्षुक् ।	
त्वं नृभिर्दक्षिणावद्विरमे सुभिन्नेभिर्दिष्यसे देव्याङ्घ्रिः	१६३२
देवाश् चिन्त् ते अमृता जातवेदो महिमानं वाध्यश्च प्र वोचन् ।	
यत् संपृच्छं मानुषीर्दिश आयन् त्वं नृभिरजयस् त्वार्वृधेमिः	१६३३
पितेवं पुत्रमविमरुपस्थे त्वामग्ने वध्यश्चः संपर्यन् ।	
जुषाणो अस्य समिधं यविष्ठ उत पूर्वा अवनोर्वाघतग् चित्	१६३४
शश्वदग्निर्वध्यश्चस्य शत्रून् नृभिर्जिगाय सुतसोमवद्विः ।	
सर्मनं चिददहश् चित्रमानो ऽव् व्राघन्तमभिनद् वृधश् चित्	१६३५
अयमग्निर्वध्यश्चस्यं वृत्रहा संनकात् प्रेद्धो नमसोपवाक्य्यः ।	
स नो अजामील्व वा विजामीन् अभि तिष्ठ शर्धतो वाध्यश्च	१६३६

॥ १७९ ॥ (ऋ० १० । ७९ । १-७)

[१६३७-१६५०] अग्निः सौचीको, वैश्वानरो वा, (सतिर्वाजंभरो वा) । प्रिष्टुप् ।

अपश्यमस्य महतो महित्वम् अप्रत्यस्य मर्त्यासु विक्षु ।	
नाना हनु विभृते सं भेते असिन्वती वपस्ती भूर्यतः	१६३७
गुहा गिरो निहितमृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्या वनानि ।	
अत्राण्यस्मै पृग्भिः सं भेरन्ति उत्तानहस्ता नमसाधिं विक्षु	१६३८
प्र मातुः प्रतुरं गुह्यमिच्छन् कृमारो न वीरुधः सर्पदुर्वीः ।	
ससं न पृक्मविदच्छुचन्तं रिरिह्वासं रिप उपस्थे अन्तः	१६३९
तद् वामृतं रोदसी प्र व्रवीमि जायमानो मातरा गर्भो अचि ।	
नाहं देवस्य मर्त्यश् चिकेत अग्निरङ्ग विचेताः स प्रचेताः	१६४०
यो अस्मा अन्नं तृप्त्राङ्गदधाति आज्यैर्धृतैर्जुहोति पुष्यति ।	
तस्मै सहस्रमक्षभिर्वि चक्षे ऽप्ये विश्वतः प्रत्यङ्गसि त्वम्	१६४१
किं देवेषु त्यज एनश् चकुर्य अग्रे पृच्छामि नु त्वामर्षिद्वान् ।	
अश्रीञ्चन् श्रीञ्चन् हरिरत्तवेऽदन् वि पर्वशश् चकर्व गार्मिवासिः	१६४२
विष्वचो अध्वान् युयुजे वनेजा ऋजीतिभी रशनाभिर्गृभीतान् ।	
चक्षदे मित्रो वसुभिः सुजातः ममानृधे पर्वभिर्वावृधानः	१६४३

॥ १८० ॥ (क्र० १० । ८० । १-७)

अग्निः सार्तिं वाजंभ्रं ददाति	अग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिःश्याम् ।	
अग्नी रोदसी वि चरत् समञ्जन्	अग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरंधिम्	१६४४
अग्नेरभसः समिदस्तु मद्रा	अग्निर्मही रोदसी आ विवेत्र ।	
अग्निरेकं चोदयत् समत्सु	अग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि	१६४५
अग्निर्ह त्वं जरतः कर्णमाव	अग्निश्चो निरदहज्जरुथम् ।	
अग्निरत्रिं घर्म उरुप्यदन्तर	अग्निर्नृभेधं प्रजयासृजत् सम्	१६४६
अग्निर्दाद् द्रविणं वीरपेशा	अग्निर्कपिं यः महस्रां सुनोति ।	
अग्निर्दिवि हव्यमा तंतान	अग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा	१६४७
अग्निमुक्थैर्कपयो वि ह्यन्ते	अग्निं नरो यामनि वाधितासः ।	
अग्निं वयो अन्तरिक्षे पतन्तो	अग्निः महस्रा पारिं याति गोनाम्	१६४८
अग्निं विश ईळते मानुषीर्या	अग्निं मनुषो नहुषो वि जाताः ।	
अग्निर्गान्धर्वा पृथ्यामृतस्यं	अग्नेर्गव्यूतिर्धृत आ निपत्ता	१६४९
अग्नये ब्रह्म क्रमवस् ततक्षुर्	अग्निं महामत्रोचामा सुवृक्तिम् ।	
अग्ने प्रावं जरितारं यविष्ठ	अग्ने महि द्रविणमा यजस्व	१६५०
॥ १८१ ॥ (क्र० १० । ९१ । १-२५) [१६५१-१६६५] अरुणो चैतहव्यः । जगती, १६६५ त्रिष्टुप् ।		
सं जागुवद्भिर्जरमाण इध्यते	दमे दमूना इपर्यन्निष्ठस्पदे ।	
विश्वस्य होता हविषो वरेण्यो	विभुर्विभावा सुपर्वा सखीयते	१६५१
स दर्शतश्रीरतिथिर्गृहेर्गृहे	वनैवने शिश्रिये तक्षुवीरिव ।	
जनंजनं जन्यो नार्तिं मन्यते	विश आ धेति विश्वोक्ते विश्वविशम्	१६५२
सुदक्षो दक्षैः कर्तुनासि सुक्रतुर्	अग्ने कविः काव्येनासि विश्वविद् ।	
वसुवर्षनां क्षयसि त्वमेक इद्	द्यावां च यानि पृथिवी च पुष्यतः	१६५३
प्रजानर्क्षे तव योनिमृत्विषम्	इच्छायास्पदे घृतवन्तमामदः ।	
आ तं चिकिञ् उपसामिवेत्तयो	जरेपसुः सूर्यस्येव रश्मयः	१६५४
तव श्रियो वुष्यस्येव चिद्युत्तश्	चित्राश् चिकिञ् उपसां न क्रेतवः ।	
यदोपधीरभिस्तुष्टो वनानि च	परि स्वयं चिनुपे अन्नमास्यं	१६५५

तमोपधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।	
तमित् समानं वृनिर्नश् च वीरुधो ऽन्तर्वतीश् च सुवते च विश्वहा	१६५६
वातोपधूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेधिपद् वितिष्ठसे ।	
आ ते यतन्ते रथ्योइ यथा पृथक् शर्धीस्यग्रे अजराणि धक्षतः	१६५७
मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनम् अग्निं होतारं परिभूतं मतिम् ।	
तमिदं हविष्या समानमित् तमिन्महे वृणते नान्यं त्वत्	१६५८
त्वामिदं वृणते त्वायवो होतारग्रे विदथेषु वेधसः ।	
यद् देव्यन्तो दधति प्रयांसि ते हविष्मन्तो मनवो वृक्षतर्वर्हिपः	१६५९
तवाग्रे होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्टं त्वग्निदंतायतः ।	
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहर्पतिश् च नो दमे	१६६०
यस् तुभ्यमग्रे अमृताय मर्त्यः समिधा दाशदुत वा हविष्कृति ।	
तस्य होता भवसि यासि दूत्यं उषं ब्रूषे यजस्यध्वरीयसि	१६६१
इमा अस्मै मतयो वाचो अस्मदाँ ऋचो गिरः सुष्टुतयः समग्मत ।	
वसूयवो वसवे जातवेदसे वृद्धासु चिद् वर्धनो यासु चाकनत्	१६६२
इमां प्रत्वार्य सुष्टुतिं नवीयसीं वोचेयमस्मा उशते शृणोतु नः ।	
भूया अन्तरा हृद्यस्य निस्पृशे जायेव पत्यं उशती सुवासाः	१६६३
यस्मिन्नर्थास ऋपभास उक्षणो वशा मेपा अवसुष्टास आहुताः ।	
क्रीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्र्ये	१६६४
अहाव्यग्रे हविरास्ये ते सुचीं व घृतं चम्बीं व सोमः ।	
वाज्रसर्नि रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसे बृहन्तम्	१६६५

॥ १८२ ॥ (ऋ० १०।११५।१-९)

[१६६६-१६७३] उपस्तुतो वाग्निदेव्यः । जगती, १६७३ त्रिष्टुप्, १६७४ शकरी ।

त्रिषु इच्छिशोस् तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावप्येति धातवे ।	
अनूधा यदि जीजनदधा च नु वयक्षं सद्यो महि दूत्यं चरन्	१६६६
अग्निर्ह नाम धायि दन्नपस्तमः सं यो वना युवते भस्मना द्रुता ।	
अग्निप्रमुरा जुद्धा स्वध्वर इनो न प्रोथमानो यवसे वृषा	१६६७

तं वो विं न द्रुपदै देवमन्धसु इन्दुं प्रोथन्तं प्रवपन्तमर्णवम् ।
 आसा वह्निं न शोचिषा विरुष्णिनं महिब्रतं न सरजन्तमध्वनः १६६८
 वि यस्य ते जयसानस्याजर धक्षोर्न वाताः परि सन्त्यच्युताः ।
 आ र्ण्वासो युयुधयो न सत्त्वनं त्रितं नशन्त प्र शिपन्त इष्टये १६६९
 स इदग्निः कर्ण्वतमः कर्ण्वसरा अर्यः परस्यान्तरस्य तरुपः ।
 अग्निः पातु गृणतो अग्निः सूरीन् अग्निर्देदातु तेषामवो नः १६७०
 वाजिन्तमाय सहसे सुपित्र्य तृषु च्यवानो अनुं जातवैदसे ।
 अनुद्रे चिद् यो धृपता वरं सते महिन्तमाय धन्वनेदविप्यते १६७१
 एवाग्निर्मतः सह सूरीभिर् वसुः एवे सहमः सुनरो नृभिः ।
 मित्रासो न ये सुधिता ऋतायवो द्यावो न द्युर्भरि सन्ति मातुषाच् १६७२
 ऊर्जां नपात् सहसावन्धितिं त्वा उपस्तुतस्य वन्दते वृषा वाक् ।
 त्वां स्तोपाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः १६७३
 इति त्वाग्ने वृष्टिहर्ष्यस्य पुत्रा उंपस्तुतासु ऋषयोऽवोचन् ।
 तांश्च पाहि गृणतश् चं सूरीन् वपद्द्वपक्रित्यूर्ध्वासो अनक्षन्
 नमो नम इत्यूर्ध्वासो अनक्षन् १६७४

१८३ ॥ (क्र० १० । १२२ । १-८) [१६७१-१६८१] चित्रमहा वासिष्ठः । जगती; १६७५-१६७९ निष्टुप् ।

वसुं न चित्रमहसं गृणीषे वामं शेवमर्तिधिमद्विपुण्यम् ।
 स रांसते शुरुषो विश्वघायसो ऽग्निर्होता गृहर्पतिः सुवीर्यम् १६७५
 जुषाणो अग्ने प्रति हर्षे मे वचो विश्वानि विद्वान् वृथुनानि सुक्रतो ।
 घृतनिर्णिग् ब्रह्मणे गातुमेरय तर्ष देवा अजनयन्तु व्रतम् १६७६
 सप्त धामानि परियन्नमत्यो दाशद् द्राशुपे मुकृते मादइच्च ।
 सुवीरेण रथिणाग्ने स्वाधुवा यम् त आनन्द ममिवा तं उंन्व १६७७
 यजस्य केतुं प्रथमं पुरोहितं हृत्प्रिपन्त ईच्छे सुद ज्ञादिनम् ।
 गृणन्तमग्निं घृतपृष्ठमुक्षणं पृणन्तं देवं पृञ्जे सुवीरेन् १६७८
 त्वं दूतः प्रथमो वरेण्यः म ह्यमानो इन्द्रांय नन्व ।
 त्वां मर्जयन् मरुतो द्राशुपो गृहं त्वां प्पान्निर्मुग्धा वि क्लृवुः

इयं दुहन् त्सुदुर्घा विश्वधायसं यज्ञप्रिये यजमानाय सुकृतो । अग्ने घृतस्नुस् त्रिर्भूतानि दीर्घद् वर्तिर्यज्ञं परियन् त्सुकृत्यसे	१६८०
त्वामिदस्या उपसो व्युष्टिषु दूतं कृष्णाना अयजन्त मानुषाः । त्वां देवा मह्याय्याय वाष्टुधूर् आज्यमग्ने निमज्जन्तो अध्वरे	१६८१
नि त्वा वसिष्ठा अह्वन्त वाजिनं गृणन्तो अग्ने विदधेषु वेधसः । रायस्पोपं यजमानेषु धारय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	१६८२

॥ १८४ ॥ (ऋ० १०।१०४।१) [१६८३] अग्निः । त्रिष्टुप् ।

इमं नो अग्र उषं यज्ञमेहि पञ्चयामं त्रिवृते सप्ततन्तुम् । असौ हव्यवाकृत नः पुरोगा ज्योगेव द्वीर्घं तम् आशयिष्ठाः	१६८३
--	------

॥ १८५ ॥ (ऋ० १०।१४०।१-६)

[१६८४-१६८९] अग्निः पावकः । सतोरुहती, १६८४-८६ विष्टारपङ्क्तिः, १६८९ उपरिष्ठाज्ज्योतिः ।

अग्ने तन् श्रयो वयो महिं भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो । बृहद्भानो शर्वसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषं कवे	१६८४
पावकमर्चाः शुरुवर्चा अनूनमर्चा उदियधिं भानुना । पुत्रो मातरां विचरन्नुपांसि पूणाक्षि रोदसी उभे	१६८५
ऊर्जा नपाजातवेदः सुशस्तिभिर् मन्दस्व धीतिभिर्हितः । त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्षसश् चित्रोर्तयो वामजाताः	१६८६
इरज्यन्मग्ने प्रथयस्व जन्तुभिर् अस्मे रायो अमर्त्य । स दर्शतस्य चपुषो वि राजमि पूणाक्षि सानसिं क्रतुम्	१६८७
इष्टुर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः । रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम्	१६८८
ऋतावानं महिषं निशददर्शतम् अग्निं सुभार्यं दधिरे पुरो जनाः । धुत्कणं मप्रधस्त्वमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा	१६८९

॥ १८६ ॥ (ऋ० १० । १४२ । १-८)

[१६९०-१६९७] १६९०-१६९१ जरिता, १६९२-९३ द्रोणः, १६९४-९५ सारिखकः, १६९६-९७ स्तन्यमित्रः
(एते शाङ्गाः) । त्रिष्टुप्. १६९०-९१ जगती, १६९६-९७ अनुष्टुप् ।

अयमग्ने जरिता त्वे अमुदपि सहसः सन्नो नह्यन्यदस्त्याप्यम् ।
 भद्रं हि शर्मं त्रिवरुथमस्ति त आरे हिंसानामप दिद्युमा कृधि १६९०
 प्रवत् तं अग्ने जनिमा पितृयतः साचीव विश्वा भुवना न्यृजसे ।
 प्र सप्तयुः प्र संनिपन्त नो धियः पुरश् चरन्ति पशुपा इव त्मना १६९१
 उत वा उ परि वृणक्षि वप्सद् वहोरश् उलपस्य स्वधावः ।
 उत खिल्या उर्वराणां भवन्ति मा ते हेति तर्विपीं चुकुधाम १६९२
 यदुद्वतो निवतो यासि वप्सत् पृथगेपि प्रगर्धिनीव सेना ।
 यदा ते वातो अनुवार्ति शोचिर् वसेव श्मश्रुं वपसि प्र भूम १६९३
 प्रत्यस्य श्रेणयो ददृश्र एकं निपानं वृहवो रथांसः ।
 शह्र यदग्ने अनुमर्षृजानो न्यृहुत्तानामन्वेपि भूमिम् १६९४
 उत ते शुष्मा जिहतामुत् तं अचिर् उत ते अग्ने शशमानस्य वाजाः ।
 उच्छ्वस्व नि नम वधमान् आ त्वाद्य विश्वे घसवः सदन्तु १६९५
 अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।
 अन्यं कृणुष्वेतः पन्थां तेन याहि वशां अनु १६९६
 आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः ।
 हृदान् च पुण्डरीकाणि समुद्रस्य गृहा इमे १६९७

॥ १८७ ॥ (ऋ० १० । १५० । १-५)

[१६९८-१७०२] मृळीको वासिष्ठः । वृहती, १७०१-२ उपरिष्टाज्योतिः, १७०१ जगती घा ।

समिदश् चित् समिद्यसे देवेभ्यो ह्य्यवाहन ।
 आदित्ये रुद्रैर्वसुभिर्न आ गंहि मृळीकार्यं न आ गंहि १६९८
 इमं यज्ञमिदं वचां जुजुषाण उपागंहि ।
 मतीसस् त्वा समिधान हवामहे मृळीकार्यं हवामहे १६९९

त्वामुं जातवेदसं विश्ववारं गृणे धिया ।	
अग्नें देवाँ आ वह नः प्रियव्रतान् मृळीकार्यं प्रियव्रतान्	१७००
अग्निदेवो देवानामभवत् पुरोहितो ऽग्निं मनुष्याइ ऋषयः समीधिरे ।	
अग्निं महो धनसातावहं हुवे मृळीकं धनसातये	१७०१
अग्निरग्निं भरद्वाजं गर्विष्ठिं प्रावन्नः कर्ष्वं त्रसदस्युमाहवे ।	
अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकार्यं पुरोहितः	१७०२

॥ १८८ ॥ (ऋ० १० । १५६ । १-५) [१७०३-१७०७] केतुराग्नेयः । गायत्री ।

अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुभिवाजिषु । तेन जेष्म धनधनम्	१७०३
यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तत्रोत्या । तां नो हिन्व मुवत्तये	१७०४
अग्नें स्थूरं रथिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् । अङ्घ्रि खं वर्तया पुणिम्	१७०५
अग्ने नक्षत्रमजरम् आ सूर्यं रोहयो द्विवि । दधञ् ज्योतिर्जनैभ्यः	१७०६
अग्नें केतुर्वियाममि प्रेषुः श्रेष्ठ उपस्थसत् । वोधां स्तोत्रे वयो दधत्	१७०७

॥ १८९ ॥ (ऋ० १० । १७६ । १-४) [१७०८-१७१०] सूत्रारम्भवः । गायत्री, १७०९-१० अनुष्टुप् ।

प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् । हव्या नो वक्षदानुपक्	१७०८
अयमु प्य प्र देव्युर् होता यज्ञाय नीयते ।	
रथो न योरभीवृत्तो घृणीवाञ् चेतति त्मना	१७०९
अयमग्निररुष्यति अमृतादिव जन्मनः ।	
सहसन् चित् सहीयान् देवो जीवातवे कृतः	१७१०

॥ १९० ॥ (ऋ० १० । १८७ । १-५) [१७११-१७१५] वत्स आग्नेयः । गायत्री ।

प्राग्रये वाचमीरय वृषभार्यं क्षितीनाम् । स नः पर्षदति द्विषः	१७११
यः परम्याः परावर्तस् तिरो धन्यातिरोचते । स नः पर्षदति द्विषः	१७१२
यो रक्षांसि निजर्वति वृषां शुक्रेण शोचिषां । स नः पर्षदति द्विषः	१७१३
यो विश्वामि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पर्षदति द्विषः	१७१४
यो अय्य पारं रजमः शुक्रो अग्निरजायत । स नः पर्षदति द्विषः	१७१५

॥ १९१ ॥ (ऋ० १ । १९१ । १) [१७१६] संवनन आदिरसः । अनुष्टुप् ।

मममिद् युंयमे वृषन् अग्ने विश्वान्यर्य आ ।	
इत्यस्यदे गर्मिष्यमे स नो वसून्या भर	१७१६

वैश्वानरोऽग्निः ।

॥ १९२ ॥ (ऋ० १ । ५९ । १-७) [१७१७-१७२३] नोधा गौतमः । त्रिष्टुप् ।

वृषा इदमे अमृत्यस् ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते ।	
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेषु जना उपमिद् ययन्थ	१७१७
मूर्धा द्विवो नाभिरग्निः पृथिव्या अर्थाभवदरती रोदस्योः ।	
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय	१७१८
आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना चर्द्धनि ।	
या पर्वतेष्वोपधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा	१७१९
वृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्योऽङ्गे न दक्षः ।	
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वार् वैश्वानराय नृत्तमाय युह्वीः	१७२०
द्विवश् चिद् ते वृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।	
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश् चकर्थ	१७२१
प्र नू महित्वं वृषभस्य घोचं यं पूर्वो वृत्रहणं सर्चन्ते ।	
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वा अधृनोत् काष्ठा अब शम्बरं भेत्	१७२२
वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर् भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।	
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीधे जरते सूनुतवान्	१७२३

॥ १९३ ॥ (ऋ० १ । ९८ । १-३) [१७२४-१७२६] कुत्स आहिरसः ।

वैश्वानरस्य सुमृतौ स्याम् राजा हि कं ध्रुवनानामग्निश्रीः ।	
इतो ज्ञातो विश्वमिदं वि चंटे वैश्वानरो यतते सूर्येण	१७२४
पृष्टो द्विवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओपधीरा विवेश ।	
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिपः पातु नक्तम्	१७२५
वैश्वानर तत्र तत् सत्यमस्तु अस्मान् रायो मधवानः सचन्ताम् ।	
तर्धो मित्रो वरुणो मामहन्ताम् अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः	१७२६

॥ १२४ ॥ (ऋ० ३।२। १-१५) [१७२७-१७५७] विश्वामित्रो गायिनः । जगती ।

वैश्वानरायं धिषणांमृतां नृधे	घृतं न पूतमग्रयं जनामसि ।	
द्विता होतारं मनुं पशु च वाघतो	धिया रथं न कुलिशः समृणति	१७२७
स रौचयन् जनुपा रोदसी उभे	स मात्रोरभनत् पुत्र ईडयः ।	
हव्यवाळमिरजरश् चनोहितो	दूळभो विशामर्तिधिधिभावेसुः	१७२८
कत्वा दक्षस्य तरुपो विधर्मणि	देवासो अग्निं जनपन्तु चित्तिभिः ।	
रुचानं भानुना ज्योतिषा महाम्	अत्यं न वाजं सनिप्यन्नपं ब्रुवे	१७२९
आ मन्द्रस्य सनिप्यन्तो वरेण्यं	वृणीमहे अह्यं वाजमुग्मियम् ।	
रातिं भृगूणामुशिजं क्विक्रतुम्	अग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा	१७३०
अग्निं सुभ्रायं दधिरे पुरो जना	वाजंश्रवसमिह वृक्तवर्हिषः ।	
यतसुचः सुरुचं विश्वदैव्यं रुद्रं	यजानां सार्घदिष्टिमपसाम्	१७३१
पावकशोचे तव हि क्षयं परि	होतयज्ञेषु वृक्तवर्हिषो नरः ।	
अग्ने दुवं इच्छमानासु आप्यम्	उपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः	१७३२
आ रोदसी अपृणदा स्वर्भहज्	जातं यदेनमपसो अर्धारयन् ।	
मो अघ्नराय परिं गीयते क्विर	अत्यो न वाजसातये चनोहितः	१७३३
नमस्यतं हव्यदातिं स्वध्वरं	दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।	
रथीर्नतस्यं बृहतो मिचर्षणिर्	अग्निर्दुवानामभवत् पुरोहितः	१७३४
तिस्रो यद्वस्यं समिधः परिं जमनो	ऽग्नेरपुनन्नाशिजो अमृत्यवः ।	
तासामेकामदधुर्मत्ये भुजसु	लोकमु द्वे उपं जामिमीयतुः	१७३५
त्रियां क्विं विश्वपतिं मानुषीत्पिः	सं सीमकृण्णन् त्स्वधिंति न तेजमे ।	
न उद्वतो निवतो याति वेत्तिपत्	स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत्	१७३६
स जिन्वते जटरेषु प्रजन्नितान्	वृषां चित्रेषु नानन्दन्न सिंहः ।	
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यां	वसु रत्ना दर्यमानो वि द्राशुषे	१७३७
वैश्वानरः प्रलथा नारुमारुहद्	दिवस्पृष्टं मन्दमानः सुमन्मभिः ।	
न पर्यज् जनयन् जन्तये धनं	समानमजम् पर्येति जागृविः	१७३८

ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्यम् आ यं दुधे मातरिश्वा द्विवि क्षयम् ।
 तं चित्रयामि हरिकेशमीमहे सुदीप्तिमग्निं सुविताय नव्यसे १७३९
 शुचिं न यामन्निपिरं स्वर्दशं केतुं दिवो रौचनस्थामुपवृषम् ।
 अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कृतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् १७४०
 मन्द्रं होतारं शुचिमद्रयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
 रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सद्रमिद् राय ईमहे १७४१

॥ १९५ ॥ (ऋ० ३ । ३ । १-११)

वैश्वानरायं पृथुपाजसे विपो रवां विधन्त धरुणेषु गातवे ।
 अग्निर्हि देवां अमृतो दुव्रस्यति अथा घर्माणि मनता न दृदुपत् १७४२
 अन्तर्दूतो रोदसी दुस्म ईयते होता निर्यतो मनुषः पुरोहितः ।
 क्षयं बृहन्तं परि भूपति द्युभिर् देवेभिरुग्निरिपितो धियावसुः १७४३
 केतुं यज्ञानां विदथस्व साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।
 अपांसि यस्मिन्नाधि संदधुर्गिरस् तस्मिन् त्मुञ्जानि यजमान आ चके १७४४
 पिता यज्ञानाममुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् ।
 आ विविश रोदसी भूरिवर्षसा पुरुषियो भन्दते घार्मभिः क्विः १७४५
 चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुपदं स्वर्विदम् ।
 विगाहं तृणं तर्धिपीभिरावृतं भूर्णं देवासं इह मुश्रियं दधुः १७४६
 अग्निदेवेभिरमनुष्यं च जन्तुभिस् तन्वानो यज्ञं पुरुषेशंसं धिया ।
 रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर् जीरो दमूना अभिशस्तिचार्तनः १७४७
 अप्ते जरस्व स्वपत्य आयुनि ऊर्जा पिन्वस्व सभिपो दिदीहि नः ।
 वयांसि जिन्व वृहतयं च जाश्रव उशिग् देवानामसि सुकृतुर्विषाम् १७४८
 विश्पतिं यद्दमतिधिं नरः सदा यन्तारं घीनामुशिजं च वाघताम् ।
 अध्वराणां चेतनं ज्ञातर्वेदमं प्र श्रमन्ति नममा जूतिभिर्वृषे १७४९
 विभावां देवः सुरणः परि क्षितीर् अग्निर्वभूव श्रवसा मुमद्रथः ।
 तस्यं व्रतानि भरिपोपिणो वपम् उप भूपम दम् आ सुगृक्तिभिः १७५०
 वैश्वानर् तय घामान्या चक्रे येभिः स्वर्विदमगो विचक्षण ।
 ज्ञात आयुषो सर्वनानि रोदसी अप्ते वा विश्वा यत्रिभूरिति त्मना १७५१

वैश्वानुरस्यं दुंसनाभ्यो बृहद् अरिणादेकः स्वपस्पया कृधिः ।
उभा पितरा महयन्नजायत अग्निर्घावापृथिवी भूरिरेतसा १७५२

॥ १२६ ॥ (ऋ० ३ । २६ । १-३, ७-८) जगती, [१७५६-१७५७] त्रिष्टुप् ।

वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुपत्यं स्वर्विदम् ।
सुदानुं देवं रंधिरं वंसूयवो गीर्भां रणं कुशिकासो हवामहे १७५३

तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् ।
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतास्मतिथिं रघुप्यदम् १७५४

अथो न क्रन्दुञ्जं जनिभिः समिष्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे ।
स नो अग्निः सुधीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतैषु जागृविः १७५५

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अकस् त्रिधातु रजसो विमानो ऽजसो घर्मो हविरस्मि नाम १७५६

त्रिभिः पवित्रैरपुपोऽह्यकं हृदा मतिं ज्योतिरनुं प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिर् आदिद् घावापृथिवी पर्यपश्यत् १७५७

॥ १२७ ॥ (ऋ० ४ । ५ । १-१५) [१७५८-१७७२] चामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

वैश्वानुरायं मीहुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्र्ये बृहद् भाः ।
अन्तेन वृहता वृक्षधेन उप स्तभायदुपमिन्न रोषः १७५८

मा निन्दतु य इमां मह्यं रातिं देवो दुदौ मर्त्याय स्वधावान् ।
पाकाष गृत्तो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो य्हो अग्निः १७५९

सामं द्विघर्हां महिं तिग्ममृष्टिः सहसरेता वृषभस् तुर्विष्मात् ।
पदं न गोरपर्यगृह्यं विविद्वान् अग्निर्मह्यं प्रेदुं वोचन्मनीषाम् १७६०

प्र तां अग्निर्वभसत् तिग्मजम्भस् तर्षिष्ठेन शोचिषा यः सुराधाः ।
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धामं प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि १७६१

अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।
पापामः मन्तो अनुता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् १७६२

इदं मे अग्ने किर्यते पावक अमिनते गुरुं भारं न मन्म ।
पृदद् दधाथ धृपता गभीरं यद्दं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु १७६३

तमिन्नेडुध समुना समानम्	अभि ऋत्वा पुनती धीतिरंदयाः ।	
ससस्य चर्मन्नाधि चारु पृश्नेर्	अग्नें रूप आरुपितं जवारु	१७६४
प्रवाच्यं वचंसः किं मे अस्य	गुहां हितमृषं निणिग् वंदन्ति ।	
यदुस्त्रियाणामप चारिवं व्रन्	पातिं प्रियं रूपो अग्रं पदं वेः	१७६५
इदमु त्यन्महि महामनीकं	यदुस्त्रिया सचंत पूच्यं गौः ।	
ऋतस्य पदे अधि दीर्घानं	गुहां रघुप्यद् रघुयद् विवेद	१७६६
अर्धं द्युतानः पित्रोः सचासा	ऽर्मनुत गुहां चारु पृश्नेः ।	
मातृपृ पदे परमे अन्ति यद् गोरु	वृष्णाः शोचिपुः प्रथतस्य जिह्वा	१७६७
ऋतं वोचि नमसा पूच्छयमानस्	तवाशसा जातवेदो यद्वीदम् ।	
त्वमस्य क्षयसि यद्द विश्वं	दिवि यदु द्रविणं यत् प्रथिव्याम्	१७६८
किं नो अस्य द्रविणं कद्द रत्नं	वि नो वोचो जातवेदश् चिकित्त्वान् ।	
गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य	रेकुं पदं न निर्दाना अगन्म	१७६९
का मर्यादा वयुना कद्द वामम्	अच्छा गमेम रघवो न वार्जम् ।	
कदा नो देवीरसृत्तस्य पत्नीः	सुरो वर्णेन ततननुपासः	१७७०
अनिरण वचसा फल्ग्वेन	प्रतीत्येन कृधुनातृपासः ।	
अघा ते अग्ने किमिहा वंदन्ति	अनायुघासु आसता सचन्ताम्	१७७१
अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो	वसोरनीकं दम् आ रुरोच ।	
रुशद् वसानः सुदशीकरूपः	क्षितिर्नि राया पुरुवारो अघात्	१७७२

॥ १९८ ॥ (क्र. ६ । ७ । १-७)

[१७७३-१७९३] मरुताजो वार्हस्पत्यः । त्रिपुट्टपृ. १७७८-१७७९ जगती ।

मूर्धानं दिवो अरतिं प्रथिव्या	वंशानरमृत आ जातमग्निम् ।	
कविं सत्राजमार्तिधिं जनानाम्	आसन्ना पात्रं जनयन्त देवाः	१७७३
नार्भि यज्ञानां सदनं रयीणां	महामाहावमभि सं नयन्त ।	
वंशानरं रथ्यमघ्वराणां	यज्ञस्यं केतुं जनयन्त देवाः	१७७४
त्वद् विप्रो जायते वाज्यमे	त्वद् वीरासो अभिमातिपाहः ।	
वंशानर त्वमस्मासुं धेहि	वयनि राजन् तस्यहयाप्याणि	१७७५

त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।	
तत्र क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत् पित्रोरदीदेः	१७७६
वैश्वानर तत्र तानि व्रतानि महान्यग्ने नक्रिरा दर्धर्ष ।	
यज् जायमानः पित्रोरुपस्थे ऽर्विन्दः केतुं वयुनेष्वह्वाम्	१७७७
वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि द्विवो अमृतस्य केतुना ।	
तस्येदु विश्वा भुवनार्धं मूर्धनि वया इव रुरुहुः सप्त विशुहः	१७७८
त्रि यो रजांस्यभिमीत सुक्रतुर् वैश्वानरो वि द्विवो रौचिना कविः ।	
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथे ऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता	१७७९

॥ १९९ ॥ (ऋ० ६ । ८ । १-७) जगती, १७८६ त्रिष्टुप् ।

पृक्षस्य वृष्णो अरुपस्य नू सहः प्र नु वौचं विदथा जातवेदसः ।	
वैश्वानरार्यं मतिर्नव्यसी शुचिः सोमं इव पवते चारुरग्रयं	१७८०
स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।	
व्युन्तरिक्षमभिमीत सुक्रतुर् वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत्	१७८१
व्यस्तभ्राद् रोदसी मित्रो अद्भुतो ऽन्तर्वावदकृणोज् ज्योतिषा तमः ।	
त्रि चर्मणीप धिपणं अवर्तयद् वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम्	१७८२
अपामुपस्थे महिषा अगृम्णात् विशो राजानमुषं तस्थुर्गुग्मियम् ।	
आ दूतो अग्निर्मरद् विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः	१७८३
युगेयुगे विदुष्यं गृणञ्चो ऽग्ने रयि यद्यसं धेहि नव्यसीम् ।	
पच्येवं राजन्नघयंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा	१७८४
अस्माकमग्ने मधर्वत्सु धार्य अनामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।	
ययं जयेम शतिर्न सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तत्रोतिभिः	१७८५
अदन्धेमिम् तवं गोपामिरिष्टे ऽस्माकं पाहि त्रिषधस्य सूरीन् ।	
रधां च नो दृष्ट्वां शयीं अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः	१७८६

॥ २०० ॥ (६ । ९ । १-७) त्रिष्टुप् ।

अहं च कृष्णमहरजुनं च नि वंतेते रजंसी वेद्याभिः ।	
वैश्वानरो जायमानो न राजा अवातिरज् ज्योतिषाग्निम् तमांसि	१७८७

नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं	न यं वयन्ति समुरेऽतमानाः ।	
कस्य स्विन् पुत्र इह वक्तवानि	पुरो वंदात्यवरेण पित्रा	१७८८
स इत् तन्तुं स वि जानात्योतुं	स वक्तवान्यृतथा वंदाति ।	
य इ चिकेतदमृतस्य गोपा	अवग् चरन् पुरो अन्येन पश्यन्	१७८९
अयं होता प्रथमः पश्यतेमम्	इदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।	
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निपत्तो	ऽमर्त्यस् तन्वाङ्के वर्धमानः	१७९०
ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृश्ये कं	मनो जविष्ठं पतर्यत्स्वन्तः ।	
विश्वे देवाः समनसः सकंता	एकं कर्तुमभि वि यन्ति साधु	१७९१
वि मे कर्णां पतयतो वि चक्षुर्	वीङ्केदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।	
वि मे मनश् चरति दूरार्धाधीः	किं स्विद् वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये	१७९२
विश्वे देवा अनमस्यन् भियानास्	त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम् ।	
वैश्वानरोऽवततुये नो	ऽमर्त्योऽवततुये नः	१७९३

॥ २०१ ॥ (क्र० ७ । ५ । १-९) [१७९४-१८१२] वासिष्ठो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

प्राप्तये तुवसे भरध्वं गिरं दिवो अरतये पृथिव्याः ।	
यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः	१७९४
पृष्टो दिवि धाय्यभिः पृथिव्यां नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।	
स मारुपीराभि विशो वि भाति वैश्वानरो वावृधानो वरेण	१७९५
त्वद् भिया विश आयन्नसिक्तीर् असमना जहंतीर्भोजनानि ।	
वैश्वानर पूर्ये शोशुचानः पुरो यदग्ने दुरयन्नदीदेः	१७९६
त्वं त्रिधातुं पृथिवी उत द्यौर वैश्वानर व्रतमग्ने सचन्त ।	
त्वं भासा रोदसी आ तंतन्थ अजसेण शोचिषा शोशुचानः	१७९७
त्वामग्ने हरितो वावशाना गिरः सचन्ते धुनयो घृताचीः ।	
पतिं कृष्टीनां रथ्यं रयीणां वैश्वानरमुपसां केतुमह्वाम्	१७९८
त्वे असुयं वसद्यो न्यृण्वन् क्रतुं हि तं मित्रमहो जुपन्त ।	
त्वं दस्युरोर्कसो अग्न आज उरु ज्योतिर्जनयुच्चार्याय	१७९९

स जायमानः परमे व्योमन् वायुर्न पाथः परिं पासि सद्यः ।
 त्वं भुवना जनयन्नभि क्रन् अपत्याय जातवेदो दशस्यन् १८००
 तामग्ने अस्मे ह्यमेरयस्य वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः ।
 यया राधुः पिन्वसि विश्ववार पृथु श्रवो द्राशुपे मर्त्याय १८०१
 तं नो अग्ने मध्वय्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यै युवस्व ।
 वैश्वानर महिं नुः शर्मं यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः १८०२

॥ २०२ ॥ (ऋ० ७ । ६ । १-७)

प्र सम्राजो असुरस्य प्रशंसिंतं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
 इन्द्रस्येव प्र त्वसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्ति १८०३
 क्विं केतुं घासिं भानुमद्रेर् द्विन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः ।
 पुरंदरस्य गीभिरा विवासे ज्ञेव्रतानि पूव्या महानि १८०४
 न्यक्रतन् ग्रथिनो मध्ववाचः पूर्णारश्रद्धो अवृध्वा अयज्ञान् ।
 प्रप्र तान् दस्युराग्निविवाय पूर्वश् चकारापरौ अयज्यन् १८०५
 यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचींश् चकार नृतमः शचीभिः ।
 तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीपे जनानतं दुमयन्तं पृतन्यून १८०६
 यो देहोके अनमयद् वधसैर् यो अर्यपत्नीरुपसंश् चकार ।
 स निरुध्या नहुपो यहो अग्निर् विशश् चक्रे बलिहतः सहोभिः १८०७
 यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस् तुस्युः सुप्रति भिक्षमाणाः ।
 वैश्वानरो वरमा रोदस्योर् आग्निः संसाद पित्रोरुपस्थम् १८०८
 आ देवो ददे वुध्याडे वध्वनि वैश्वानर उदित्ता ह्यस्य ।
 आ समुद्रादवरादा परस्माद् आग्निर्देदे दिव आ पृथिव्याः १८०९

॥ २०३ ॥ (ऋ० ७ । १३ । १-३)

प्राग्रये विश्वशुचे धियंधे असुरग्ने मन्म धीतिं भरध्वम् ।
 भरे हविर्न वहिर्वि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् १८१०
 त्वमग्ने शोचिपा शोशुचान् आ रोदसी अपृणा जायमानः ।
 त्वं देवां अभिशस्तेरमुञ्चे वैश्वानर जातवेदो महित्वा १८११

जातो यदग्ने भुवना व्यस्यः पृथ्वीं न गोपा इर्यः परिज्मा ।
 वैश्वानरु ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १८१२

३ रक्षोहाऽग्निः ।

॥ २०४ ॥ (श्लो ४ । ४ । १-१५) [१८१३-१८२७] चामदेवो गीतमः । विष्टुः ।

कृणुष्व याजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इमेन ।
 तूष्णीमनु प्रसितिं दृणानो ऽस्तासि विध्य रक्षसम् तर्पिष्ठः १८१३
 तव भ्रमास आगुया पतन्ति अनु स्पृश धृपता शोशुचानः ।
 तपूप्यमे जुह्वा पतङ्गान् असंदिता वि सृज विष्वगुल्काः १८१४
 प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अर्दब्धः ।
 यो नो दूरे अघशंसो यो अन्ति अग्ने मार्किष्टे व्यधिरा दंघर्षात् १८१५
 उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राँ ओपतात् तिग्महेते ।
 यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं घक्षयतसं न शुष्कम् १८१६
 ऊर्ध्वो भव प्रति विष्याध्यस्मद् आविष्कृणुष्व देवान्याग्ने ।
 अर्ब स्थिरा तनुहि यातुजनां जामिमजामि प्र मृणीहि शत्रून् १८१७
 स तं जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवति ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
 विश्वान्वस्मै सुदिनानि रायो धुम्नान्ययो वि दुरो अभि द्यात् १८१८
 सेदग्ने अस्तु सुमगः सुदानुर् यस् त्वा नित्येन हविषा य उक्थः ।
 पिप्रीपति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासद्विष्टिः १८१९
 अर्चामि ते सुमतिं घोप्यर्वाक् सं तं चावार्ता जरतामियं गीः ।
 स्वशास् त्वा सुरथा मर्जयेम अस्मे सत्रार्णि धारयेरनु धून् १८२०
 इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन् दोषावस्तर्दीद्विवांसमनु धून् ।
 श्रीळन्तस् त्वा सुमनसः सपेम अभि धुम्ना तंस्थिवांसो जनानाम् १८२१
 यस् त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।
 तस्यं श्रता भवमि तस्य सग्ना यम् तं आतिध्यमानुपग् जुजोषन् १८२२

महो रुजामि वन्धुता वचोभिस् तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय । त्वं नो अस्य वचसश् चिकिद्धि होतैर्यविष्ठ सुकृतो दमूनाः	१८२३
अस्वमजस् तरणायः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः । ते पायवः सध्रयश्चो निपद्य अग्रे तव नः पान्त्वमूर	१८२४
ये पायवो मामतेयं ते अग्रे पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् । ररक्ष तान् त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद् रिपवो नाहं देशुः	१८२५
त्वया वयं सध्रयस् त्वोत्तास् तव प्रणीत्यश्याम् वाजान् । उभा शंसां सद्य सत्यताते ऽनुष्टुया कृणुह्यह्याण	१८२६
अया ते अग्रे समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय । दहाशसो रक्षसः पाह्यस्मान् द्रुहो निदो मित्रमहो अवघात्	१८२७

॥ २०५ ॥ (ऋ० १० । ८७ । १-२५)

[१८२८—१८५२] पायुर्भारद्वाजः । त्रिष्टुप्, १८४९-५२ अनुष्टुप् ।

रक्षोहर्षं वाजिनमा जिघमि मित्रं प्रथिष्टुष्वं यामि शर्म । शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिपः पातु नक्तम्	१८२८
अयोदष्टो अर्चिषा यातुधानान् उषं स्पृश जातवेदः समिद्धः । आ जिह्वया मूर्देवान् रभस्त्र क्रुव्यादो वृकत्व्यपि धत्स्वांसन्	१८२९
उभोभयाविष्णुषं धेहि दंष्ट्रां हिंस्रः शिशानोऽवैरं परं च । उत्तान्तरिक्षे परिं याहि राजन् जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान्	१८३०
यज्ञैरिषुः संनममानो अग्रे वाचा शलयाँ अशनिभिर्दिहानः । ताभिर्दिध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो वाहन् प्रति भङ्घ्येषाम्	१८३१
अग्रे त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंसाशनिर्हरसा हन्त्वेनम् । प्र पयोणि जातवेदः शृणीहि क्रुव्यात् क्रविष्णुर्वि चिन्तोत वृक्णम्	१८३२
यत्रेदानां पश्यसि जातवेदस् तिष्ठन्तमग्र उत वा चरन्तम् । यद् वान्तरिक्षे पृथिभिः पतन्तं तमस्तां विध्य शर्वा शिशानः	१८३३
उतार्लब्धं स्पृणुहि जातवेद आलेभानादृष्टिभिर्यातुधानात् । अग्रे पयो नि जेष्टि शोर्मुचान आमादः श्विशाम् तमद्वन्त्वेनीः	१८३४

इह प्र ब्रूहि यतुमः सो अग्ने	यो यातुधानो य इदं कृणोति ।	
तमा रभस्व सुमिर्षा यविष्ठ	नृचर्क्षसश् चक्षुषे रन्धयैनम्	१८३५
तीक्ष्णेनाग्निं चक्षुषा रक्ष यज्ञं	प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।	
हिंसं रक्षोस्यभि शोशुचानं	मा त्वा दभन् यातुधानां नृचक्षः	१८३६
नृचक्षा रक्षः परिं पश्य विक्षु	तस्य त्रीणि प्रतिं शृणीष्यतां ।	
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि	त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृध	१८३७
त्रियीतुधानः प्रसितिं त एतु	ऋतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।	
तमाचिषां स्फूर्जयन् जातवेदः	समुक्षमेनं गृणते नि वृद्धि	१८३८
तदग्ने चक्षुः प्रतिं घेहि रेभे	शंफारुजं येन पश्यसि यातुधानम् ।	
अथर्ववज् ज्योतिषा दैव्येन	सत्यं धूर्धन्तमचितुं न्योषि	१८३९
यदग्ने अद्य मिथुना शर्पातो	यद् वाचस् तुष्टं जनयन्त रेभाः ।	
मन्योर्मेनसः शरुच्याद्दे जायते	या तया विध्य हृदये यातुधानान्	१८४०
परां शृणीहि तर्पसा यातुधानान्	पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।	
पराचिषा मूर्देवाब् छृणीहि	परासुवृषो अग्नि शोशुचानः	१८४१
पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु	प्रत्यगेनं शपथां यन्तु तुष्टाः ।	
वाचास् तेनं शरव ऋच्छन्तु	मर्मन् विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः	१८४२
यः पौरुषेयेण ऋविषां समुक्ते	यो अश्वयेन पशुनां यातुधानः ।	
यो अफ्याया भरति क्षीरमग्ने	तेषां शीर्षाणि हरमापि वृध	१८४३
संवत्सरिणं पर्य उस्त्रियांयास्	तस्य माशीद् यातुधानो नृचक्षः ।	
पीयूषमग्ने यतमस् तितृप्सात्	तं प्रत्यञ्चमचिषां विध्य मर्मन्	१८४४
विषं गवां यातुधानांः पिबन्तु	आ वृक्ष्यन्तामदितये दुरेवाः ।	
परंनान् देवः संविता ददातु	परां भागमोषधीनां जयन्ताम्	१८४५
सनादग्ने मृणसि यातुधानान्	न त्वा रक्षाभि पृवनासु जिग्युः ।	
अनुं दह सहमूरान् ऋच्यादो	मा ते हेत्या मुंसत दैव्यायाः	१८४६
त्वं नो अग्ने अघरादुदंक्तात्	त्वं पश्चाद्दुत रक्षा पुरस्तात् ।	
प्रति ते ते अजराम् तपिष्ठा	अघर्यमं शोशुचतो दहन्तु	१८४७

पुथात् पुरस्तादधुरादुदक्तात् कविः काव्येन परि पाहि राजन् । ससे सरायमजरो जरिम्णे ज्ञे मर्ता अमर्त्यस् त्वं नः	१८४८
परि त्वाग्ने पुरं वृथं विप्रं सहस्य धीमहि । धूपद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम्	१८४९*
विषेणं भङ्गुरावतः प्रतिं प्म रक्षसो दह । अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिर्ऋष्टिभिः	१८५०
प्रत्यग्ने मिथुना दह यातुधानां किमीदिनां । सं त्वा शिशामि जागृहि अदब्धं विप्रं मन्मभिः	१८५१
प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणीहि विश्वतः प्रतिं । यातुधानस रक्षसो वलं वि रुज वीर्यम्	१८५२
॥ २०६ ॥ (ऋ० १०। ११८। १-२) [१८५३-१८६१] उरुक्षय आमहीयव । गायत्री ।	
अग्ने हंसि न्यगृणिणं दीद्यन् मर्त्येणा । स्वे क्षये शुचिव्रत	१८५३
उत् तिष्ठसि स्नाहुतो घृतानि प्रति मोदसे । यत् त्वा सुचंः समस्थिरन्	१८५४
स आहुतो वि रोचते जगिरीछिन्यो गिरा । सुचा प्रतीकमज्यते	१८५५
घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः । रोचमानो विभावंसुः	१८५६
जरमाणः सर्भिष्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन । तं त्वा हवन्त मर्त्याः	१८५७
तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाग्निं संपर्यत । अदाभ्यं गृहपतिम्	१८५८
अदाभ्येन शोचिषा ज्ञे रक्षस् त्वं दह । गोपा ऋतस्य दीदिहि	१८५९
स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योप यातुधान्यः । उरुक्षयेषु दीर्घत्	१८६०
तं त्वा गीभिर्ऋक्षया हव्यवाहं समीधिरे । यजिष्ठं मातृपे जनै	१८६१

४ जातवेदा अग्निः ।

॥२०७॥ (ऋ० १। ९९। १) [१८६२] ऋक्षयो मारीचः । त्रिष्टुप् ।

जातवेदसे सुनवाम सोमम् अरातीयतो नि दंहाति वेदः ।
म नः पर्षदति द्रुगाणि विश्वा नावेष्ट सिन्धुं दुरितात्यग्निः

१८६२

॥ २०८ ॥ (ऋ० १० । १८८ । १-३) [१८६३-१८६५] इयेन आग्नेयः । गायत्री ।

प्र नूनं जातवेदसम् अथ हिनोत वाजिनम् । इदं नो वहिरासदे १८६३
 अस्य प्र जातवेदसो विप्रवीरस्य मीहुषः । महीर्मियमि सुष्टुतिम् १८६४
 या रुचो जातवेदसो देवत्रा हव्यवार्हनीः । ताभिर्नो यज्ञमिन्वतु १८६५

॥ २०९ ॥ (अथर्ववेदे कां० ७ । ८४ (८९) । १) [१८६६] भृगुः । जगती ।

अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडग्रे धन्नमृद् दीदिहीह ।
 विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवाभिरद्य परि पाहि नो गर्यम् १८६६

५ घर्मोऽग्निः ।

॥ २१० ॥ (ऋ० १ । ११२ । १ द्वितीयः पादः) [१८६७] कुत्स आगिरसः ।

अग्निं घर्मं सरुचं यार्मन्निष्टये । १८६७

६ औपसोऽग्निः ।

॥ २११ ॥ (ऋ० १ । ९५ । १-२१) [१८६८-१८७८] कुत्स आगिरसः । त्रिष्टुप् ।

द्वे विरूपे चरतुः स्वर्धे अन्यान्या वत्समुषं घापयेते ।
 हरिरुन्यस्यां भवति स्वधावाञ् दृक्रो अन्यस्यां ददशे सुवर्चाः १८६८
 दशेभं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भम् अतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
 तिग्मानीकं स्वयंशसं जनेषु विरोचमानं परि पीं नयन्ति १८६९
 ग्रीणि जाना परि भूपन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमुष्णु ।
 पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानाम् क्रतून् प्रशासद् वि दधावनुष्टु १८७०
 क इमं पो निष्पमा चिकेत वत्सो मातृर्जनयत स्वधाभिः ।
 पहीनां गर्भो अपसांमुपस्थात् महान् कुविनिद् चरति स्वधावान् १८७१
 आविष्ट्यो वर्षते चारुंरासु जिहानामूर्ध्वः स्वयंशा उपस्थं ।
 उमे त्वष्टुर्विम्यतुर्जायमानात् प्रतीचो सिंहं प्रति जोषयेते १८७२

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवः ।	
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूव अञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः	१८७३
उद् ययमीति सवितेर्व वाह उभे सिर्चां यतते भीम ऋञ्जन् ।	
उच्छृक्रमत्कमजते सिमस्मात् नवां मातृभ्यो वसना जहाति	१८७४
त्वेपं रूपं कृणुत उचरं यत् संपृञ्चानः सदेने गोभिरङ्घ्रिः ।	
कृत्रिभुम् परिं मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव	१८७५
उरु ते जयः पर्येति वृधं विरोचमानं महिषस्य धाम ।	
विश्वेभिरग्रे स्वयंशोभिरिद्वो ऽद्वेषेभिः पायुभिः पाह्यस्मान्	१८७६
धन्न् त्सोतः कृणुते गातुपूर्भि शुक्रैर्हृमिभिरभि नक्षति क्षाम् ।	
विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते ऽन्तर्वासु चरति प्रहृषुं	१८७७
एवा नो अग्रे समिधां वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि माहि ।	
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम् अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः	१८७८

७ द्रविणोदा अग्निः ।

॥ २१२ ॥ (ऋ० १ । ९६ । १-२) [१८७९-१८८७] कुत्स आंगिरसः । त्रिष्टुप् ।

स प्रतया सहसा जायमानः सद्यः काव्यान्ति चळधत् विश्वा ।	
आपश् च मित्रं धिपर्णा च साधन् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्	१८७९
स पूर्वया निविदां कव्यतायोर् इमाः प्रजा अंजनयन् मर्नुताम् ।	
विवस्वता चक्षसा धामपश् च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्	१८८०
तमीळत् प्रथमं यज्ञसाधुं विश आरीराहुतमृञ्जानम् ।	
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदां देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्	१८८१
स मातरिश्वां पुरुवारपुष्टिर् विदद् गातुं तनयाय स्ववित् ।	
विशां गोपा र्जनिता रोदस्पोर् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्	१८८२
नक्तोपामा वर्णामामेभ्याने धापयेति शिशुमेकं समीची ।	
पायाधामां रुमो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्	१८८३

रायो वृधः संगमनो वधनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसार्धनो वेः । अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्	१८८४
नू च पुरा च सदेनं रयीणां ज्ञातस्यं च जायमानस्य च क्षाम् । मत्तश् च गोपां भवतश् च भूरर् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्	१८८५
द्रविणोदा द्रविणसम् तुरस्यं द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंमत् । द्रविणोदा वीरवतीमिपे नो द्रविणोदा रांसते दीर्घमार्युः	१८८६
एवा नो अग्ने समिधां वृधानो० । (१८७८)	

७ शुचिरग्निः ।

॥ २१३ ॥ (क्र० १।९७।१-८) (१८८७-१८९४) कृष्ण अग्निः ॥ २१३ ॥

अपं नः शोशुचदुधम्	अग्नें शुशुग्ध्या गुचिम् ।	
अपं नः शोशुचदुधम्		१८८७
मुक्षेत्रिया सुगातुया	वमया च यज्ञान्तं ।	
अपं नः शोशुचदुधम्		१८८८
प्र यद् भन्दिष्ठ एषां	प्रास्माकामिद् च नृस्यः ।	
अपं नः शोशुचदुधम्		१८८९
प्र यत् ते अग्ने सूर्यो	ज्ञान्तिष्ठं अग्नें वृत्तम् ।	
अपं नः शोशुचदुधम्		१८९०
प्र यदग्नेः महस्वतो	द्वियन्ते नन्दिं नृस्यः ।	
अपं नः शोशुचदुधम्		१८९१
त्वं हि विश्वतोमुत्त	द्वियन्तेः नृस्यमिद् ।	
अपं नः शोशुचदुधम्		१८९२
द्विपो नो विश्वतोमुत्त	अग्नें नृस्यं प्राग्य ।	
अपं नः शोशुचदुधम्		
म नः मिन्वामिद् नृस्य	अग्नें नृस्यं प्राग्य ।	
अपं नः शोशुचदुधम्		

८ अग्निरापो गावश्च ।

अग्निः सूर्यो वा आपो वा गावो वा घृतस्तुतिर्वा ।

॥ २१४ ॥ (ऋ० ४।५८। १-११) [१८९५-१९०५] वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप्, १९०५ जगती ।

समुद्राद्दूर्मिर्मधुमाँ उदारद्	उपांशुना सममृतत्वमानद् ।	
घृतस्य नाम शुद्धं यदस्ति	जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः	१८९५
त्रयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्य	अस्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।	
उपे ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं	चतुःशृङ्गोऽवमीद् गौर एतत्	१८९६
चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा	द्वे शीपे सप्त हस्तासो अस्य ।	
त्रिधा बद्धो वृषभो रौरवीति	महो देवो मर्त्याँ आ विवेश	१८९७
त्रिधा हितं पणिभिर्गृह्यमानं	गर्वि देवासाँ घृतमन्वविन्दन् ।	
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान	वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः	१९९८
एता अर्पन्ति हृद्यात् समुद्रात्	शतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।	
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि	हिरण्ययो वेतसो मर्घ्य आसाम्	१९९९
सम्यक् स्रवन्ति सरितो न घेना	अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।	
एते अर्पन्त्यूर्ध्वयो घृतस्य	मुगा इव क्षिपणोरीपमाणाः	१९००
सिन्धोरिव प्राध्वने शृङ्घनासो	वार्तप्रभियः पतयन्ति यहाः ।	
घृतस्य धारा अरुपो न वाजी	काष्ठा भिन्दन्नुभिभिः पिन्वमानः	१९०१
अभि प्रवन्त समनेव योषाः	कल्याण्यः स्मर्यमानासो अग्निम् ।	
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त	ता जुषाणो हर्षति जातवेदाः	१९०२
कन्या इव बहुतमेतुना उ	अङ्घ्र्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।	
यत्र मोर्मः सूपते यत्र यज्ञो	घृतस्य धारा अभि तत् पवन्ते	१९०३
अभ्यर्षत मुष्टतिं गव्यमाजिम्	अस्मानु मद्रा द्रविणानि घत् ।	
इमं यथं नेपत् देवता नो	घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ते	१९०४
धामन् ते विश्वं भुवन्मार्थं धितम्	अन्तः संमुद्रे हृद्यन्तरायुषि ।	
अपामनीकं ममिथे य अभृतम्	तमश्याम् मधुमन्तं त ऊर्मिम्	१९०५

९ आप्रीसूक्तानि ।

॥ २१५ ॥ (ऋ० १ । १३ । १-१२)

१९०६-१७ मेधातिथिः काण्वः । आप्रीसूक्तं= [क्रमेण-१ इधमः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळाः, ५ वहिः, ६ देवीः द्वारः, ७ उपासानका, ८ दैव्यां होतारौ प्रचेतसां, ९ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, १० त्वष्टा, ११ चनस्पतिः, १२ स्वाहाकृतयः] । गायत्री ।

सुसमिद्धो न आ वंह	देवाँ अग्ने हविर्मते ।	होतः पावक यक्षि च	१९०६
मधुमन्तं तनूनपाद्	यज्ञं देवेषु नः कवे ।	अद्या कृणुहि वीतये	१९०७
नराशंसमिह प्रियम्	अस्मिन् यज्ञ उषं ह्ये ।	मधुजिह्वं हविष्कृतम्	१९०८
अग्ने सुखर्तमे रथे	देवाँ ईळित आ वंह ।	असि होता मरुहितः	१९०९
स्तृणीत वहिरानुपग्	घृतपृष्ठं मनीषिणः ।	यत्रामृतस्य चक्षणम्	१९१०
वि श्रयन्तामृतावृधो	द्वारो देवीरंसथतः ।	अद्या नूनं च यष्ट्वे	१९११
नक्तोपासां सुपशसा	अस्मिन् यज्ञ उषं ह्ये ।	इदं नो वहिरासदे	१९१२
ता सुजिह्वा उषं ह्ये	होतारा दैव्या कवी ।	यज्ञं नो यक्षतामिमम्	१९१३
इळा सरस्वती मही	तिस्रो देवीर्मयोभुवः ।	वहिः सीदन्त्वसिधः	१९१४
इह त्वष्टारमग्रियं	विश्वरूपमुषं ह्ये ।	अस्माकमस्तु केवलः	१९१५
अव सृजा चनस्पते	देवं देवेभ्यो हविः ।	प्र दातुरस्तु चेतनम्	१९१६
स्वाहा यज्ञं कृणोतन	इन्द्राय यज्वनो गृहे ।	तत्र देवाँ उषं ह्ये	१९१७

॥ २१६ ॥ (ऋ० १ । १४२ । १-१३)

१९१८-३० दीर्घमता औचर्यः । आप्रीसूक्तं= [क्रमेण- १ इधमः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळाः, ५ वहिः, ६ देवीः द्वारः, ७ उपासानका, ८ दैव्यां होतारौ प्रचेतसां, ९ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, १० त्वष्टा, ११ चनस्पतिः, १२ स्वाहाकृतयः, १३ इन्द्रः] । अनुष्टुप् ।

समिद्धो अग्र आ वंह	देवाँ अद्य यत्सुचे ।	तन्तुं तनुष्व पुष्यं	सुतसोमाय दाशुषे	१९१८
घृतवन्तमुषं मामि	मधुमन्तं तनूनपात् ।	यज्ञं विप्रस्य मार्वतः	शशमानस्यं दाशुषः	१९१९
शुचिः पावको अद्भुतो	मध्वा यज्ञं मिमिक्षति ।	नराशंसम् त्रिरा द्विवो	देवो देवेषु यज्ञियः	१९२०
ईळितो अग्र आ व्ह	इन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।	इयं हि त्वां मतिर्मम	अच्छां सुजिह्व वृच्यते	१९२१
स्तृणानासो यत्सुचो	वहिर्यज्ञे स्वध्वरे ।	वृञ्जे देववर्षचस्तमम्	इन्द्राय शर्म सुप्रयः	१९२२
वि श्रयन्तामृतावृधः	प्रये देवेभ्यो महीः ।	पावकासः पुरुष्टुहो	द्वारो देवीरंसथतः	१९२३

आ भन्दमाने उपांके नक्तोपासा सुपेशसा । यद्ही ऋतस्य मातरा मीदतां बर्हिरा सुमत् १९२४
 मन्द्रर्जिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कृवी । यजं नो यक्षतामिमं मिध्रमद्य दिविस्पृशम् १९२५
 शुचिदैवेष्वर्षिता होत्रा मरुत्सु भारती । इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः १९२६
 तन्नस् तुरीपमर्द्धतं पुरु वारं पुरु त्मना । त्वष्टा पोषाय वि प्यतु राये नाभा नो अस्मयुः १९२७
 अवसृजन्तुप त्मना देवान् यक्षि वनस्पते । अग्निर्हव्या सुपूदति देवो देवेषु मेधिरः १९२८
 पूषन्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे । स्वाहा गायत्रेवपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन १९२९
 स्वाहाकृताण्या गृहि उप हव्यानि वीतये । इन्द्रा गृहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अप्वरे १९३०

॥ २१७ ॥ (क्र० १ । १८८ । १-११)

१९३१-४१ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । आग्नीसूक्तं = (क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उपासानका, ७ दैव्यो होतारो प्रचेतसा, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । गायत्री ।

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः महस्रजित् । दूतो हव्या कृविर्वह १९३१
 तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत् सहस्रिणीरिपः १९३२
 आजुह्वानो न ईड्यो देवा आ वक्षि यज्ञियांन् । अग्ने सहस्रसा असि १९३३
 प्राचीनं बर्हिरोजसा महस्रवीरमस्त्रणन् । यत्रादित्या विराजथ १९३४
 विराट् सम्राड् विम्बीः प्रम्बीर बह्वीश् च भूर्यसीश् च याः । दुरो घृतान्यक्षरन् १९३५
 मुरुक्मे हि सुपेशसा अर्धि श्रिया विराजतः । उपासावेह सीदताम् १९३६
 प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कृवी । यजं नो यक्षतामिमम् १९३७
 भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश् चोदयत श्रिये १९३८
 त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशन् विश्वान् त्समानजे । तेषां नः स्फातिमा यज्ञ १९३९
 उप त्मन्या वनस्पते पार्थो देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् १९४०
 पुरोगा अग्निदेवानां गायत्रेण समज्यते । स्वाहाकृतीषु रोचते १९४१

॥ २१८ ॥ (क्र० २ । ३ । १-११)

१९४२-५२ अस्तमदः शौनकः । आग्नीसूक्तं = [क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उपासानका, ७ दैव्यो होतारो प्रचेतसा, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः] । सिष्वदत् १९४८ जगती ।

समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यद् विश्वानि भुवनाण्यस्थात् ।

होता पावकः प्रदिर्वः सुमेधा देवो देवान् यजत्वग्निर्हन्

नराशंसः प्रति धामान्यज्जन् तिस्रो दिवः प्रति मुह्य स्वर्चिः ।	
घृतप्रुपा मनसा हव्यमुन्दन् मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान्	१९४३
ईळितो अग्ने मनमा नो अहन् देवान् यक्षि मारुपात् पूर्वो अद्य ।	
म आ वह मरुतां शर्षो अच्युतम् इन्द्रं नरो बहिर्पदं यजध्वम्	१९४४
देवं बहिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राधे सुमरं वेद्यस्याम् ।	
घृतेनाक्तं वमन्नः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियांसः	१९४५
वि श्रयन्तामुर्विया ह्यमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।	
व्यर्चस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशर्म सुवीरम्	१९४६
साध्वर्षांसि मनतां न उक्षितं उपामानक्तो वृष्येव रण्विते ।	
तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेयः सुदुधे पयस्वती	१९४७
देव्या होतारा प्रथमा त्रिदुष्टरं ऋजु यक्षतुः ममूचा वृषुष्टरा ।	
देवान् यजन्तावृतथा ममज्जतो नामा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु	१९४८
मरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतृतिः ।	
तिस्रो देवीः स्वधया बहिरेदम् अच्छिद्रं पान्तु शरुणं निपथं	१९४९
पिशङ्गैरुपः सुमरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।	
प्रजां त्वष्टा वि प्येतु नार्भिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः	१९५०
वनस्पतिरत्रमुजन्नुरपं स्थाद् अग्निर्हविः संद्रयाति प्र धीभिः ।	
त्रिधा मर्मक्तं नयतु प्रजानन् देवेभ्यो देव्यः शमितोपं हव्यम्	१९५१
घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर् घृते त्रितो घृतम्वस्य धाम ।	
अनुप्यधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषम वक्षि हव्यम्	१९५२

॥ २१९ ॥ (ऋ० ३ । ४ । १-११)

१९५३-६३ विद्ययामियो गाधिना॥ आप्रीसक्तः = [क्रमेण- १ इधमः सामिहोऽग्निर्षा, २ तनूनपात्, ३ इळा, ४ बहिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उवासानक्त, ७ देव्या होतारी प्रचतसो, ८ तिस्रो देव्यः सरम्यतीळाभागत्या, ९ त्वष्टा, १० वनस्पति, ११ स्वाहाकृतया] । त्रिष्टुप् ।

ममिन् समिन् सुमनां घोष्यस्मे शुचार्तुचा मुमतिं रांसि वस्वः ।
आ देवं देवान् यजथाय वक्षि मग्ना मग्नीन् त्सुमनां यक्षयत्रे १९५३

यं देवासस त्रिरहन्नायजन्ते	दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।	
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नसु	तर्तूनपाद्भृतयोनिं विघन्तम्	१९५४
प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति	होतारमिळः प्रथमं यजध्वै ।	
अच्छा नमोभिर्वृषमं वृन्दध्वै	स देवान् यक्षदिपितो यजीयान्	१९५५
ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकारि	ऊर्ध्वा शोचांषि प्रास्थिता रजांसि ।	
दिवो वा नाभा न्यसादि होतां	स्तृणीमहिं देवव्यचा वि बर्हिः	१९५६
सप्त होत्राणि मनसा वृणाना	इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन ।	
नृपेशंसो विदथेषु प्र जाता	अभीष्टं यज्ञं वि चरन्त पूर्वाः	१९५७
आ मन्दमाने उपसा उपाके	उत स्मयेते तन्नाडं विरूपे ।	
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषद्	इन्द्रो मरुत्वो उत वा महोभिः	१९५८
दैव्या होतासा ग्रथमा न्यञ्जे	सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।	
ऋतं शंसन्त ऋतमित् त आहुर	अनुं व्रतं व्रतपा दीघ्यानाः	१९५९
आ मारती भारतीभिः सजोपा	इळां देवैर्मनुष्यैर्मिरग्निः ।	
सरस्वती सारस्वतेभिरवाक्	तिस्रो देवीर्ब्रह्मिरेदं संदन्तु	१९६०
तन्नस् तुरीपमधं पोषयित्नु	देवं त्वष्टृर्वि रराणः स्वस्व ।	
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो	युक्तग्राश जायते देवकामः	१९६१
वनस्पतेस्व सृजोषं देवान्	अग्निर्हविः शमिता संदयाति ।	
सेद्द्र होतां सत्यतरो यजाति	यथा देवानां जनिमानि वेद	१९६२
आ याक्षमे समिधानो अर्वाह्	इन्द्रेण देवैः सुरथं तुरेभिः ।	
धर्दिर्न आस्तामर्दितिः सुपुत्रा	स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम्	१९६३

॥ २२० ॥ (ऋ० ५ । ५ । १-११)

१९६४-७३ परबुधत धारणः । आश्विनस्य = ऋमेण - १ इध्मः समिखोऽग्निर्वा २ नराशंसः, ३ इळाः ४ बर्हिः, ५ देवाकाराः, ६ उपासानका ७ दीघ्यां होतारो प्रचेतसी, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळा-भारत्यः, ९ स्वधा, १० वनस्पतिः, ११ स्यादाकृतयः) । गायत्री ।

सुर्मिद्राय शोचिषं	धृतं तीत्रं लुहोतन	। अग्रयं जातवेदसे	१९६४
नराशंसः सुपूदति	इमं यज्ञमदाभ्यः	। कृषिर्हि मधुहस्त्यः	१९६५

इलितो अग्र आ वह	इन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । सुखे रथेभिरुतये	१९६६
ऊर्णप्रदा वि प्रथस्व	अभ्यर्का अनूपत । मवां नः शुभ्र सातये	१९६७
देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं	सुप्रायणा न ऊतये । प्रप्र यज्ञं पृणीतन	१९६८
सुप्रतीके वयोवृधा	यह्नी ऋतस्य मातरा । दोषामुपासमीमहे	१९६९
वार्तस्य पत्मञ्जीलिता	दैव्या होतारा मनुषः । इमं नो यज्ञमा र्गतम्	१९७०
इळा सरस्वती मही० । (१९१४)		
शिवस् त्वंष्टरिहा गंहि	विश्वः पोषं उत त्मना । यज्ञेयज्ञे न उदव	१९७१
यत्र वेत्यं वनस्पते	देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गामय	१९७२
स्वाहाप्रये वरुणाय	स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः । स्वाहा द्वेभ्यो हविः	१९७३

॥ २२१ ॥ (ऋ० ७।२। १-११)

१९७४-८० यस्मिन्ना मैत्रायणः । आपीसूक्तं- (क्रमेण १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्या, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ यद्भिः, ५ देवोः द्वारः, ६ उपासानका, ७ दैव्यो होतारो प्रचेतसो, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळामारत्यः, ९ त्वष्टा १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । त्रिष्टुप् ।

जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य	शोचां बृहद् यज्ञतं धूममुपन्न ।	
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः	सं रदिमभिस् तननः सूर्यस्य	१९७४
नराशंसस्य महिमानमेषाम्	उपं स्तोपाम यज्ञतस्य यज्ञः ।	
ये सुक्रतवः शुचयो धिपंधाः	स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या	१९७५
इलिन्यं वो असुरं सुदर्क्षम्	अन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम् ।	
मनुष्वदुभि मनुना समिद्धं	समंघ्नुराय सद्भूमिन्महेम	१९७६
सपर्यवो भरमाणा अभिनु	प्र वृञ्जते नर्ममा वृहिरौ ।	
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्बुद्	अध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम्	१९७७
स्वाप्योष्ठे वि दुरो देवयन्तो	ऽग्निश्रयू रथयुद्धेवताता ।	
पूर्वीं शिशुं न मातरा रिहाणे	सममुग्रो न समनेपञ्जन्	१९७८
उत योषणे दिव्ये मही नं	उपासानका सुदुषेव धेनुः ।	
घर्हिपदां पुरुहूते मघोनी	आ यन्नियं सुवितार्य श्रयेताम्	१९७९
विप्रा युज्ञेषु मानुषेषु कारू	मन्ये वां ज्ञातवैदमा यज्ञेयै ।	
ऊर्ध्वं नो अघ्नुरं कृतं हवेषु	ता द्वेषु वनयो वापीणि	१९८०

आ भारती भारतीभिः सजोपा० । (१९६०)
 तत्रस् तुरीपमर्ध पोपयित्नु० । (१९६१)
 वनस्पतेऽर्व सजोप देवान्० । (१९६२)
 आ याहमे समिधानो अर्वाङ्० । (१९६३)

॥ २२२ ॥ (क्र० ९। ५। १-११)

१९८१-२१ असितः कादयपो देयलो वा । आप्रीसुक्तं=(क्रमेण- १ इधमः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळा, ४ बर्हिः, ५ देवीर्दारः, ६ उपासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पति, ११ स्वाहाकृतयः । गायत्री,) १९९४-९७ अनुष्टुप् ।

समिद्धो विश्वतस्पतिः	पर्वमानो वि राजति ।	प्रीणन् वृषा कर्निकदत्	१९८१
तनूनपात् पर्वमानः	शृङ्गे शिशानो अर्पति ।	अन्तारिक्षेण रारंजत्	१९८२
इळैन्यः पर्वमानो	रयिर्वि राजति द्युमान् ।	मधोर्धाराभिरोजसा	१९८३
बर्हिः प्राचीनमोर्जसा	पर्वमानः स्तृणन् हरिः ।	देवेषु देव ईयते	१९८४
उदातैर्जिहते बृहद्	द्वारौ देवीर्हिरण्ययीः ।	पर्वमानेन सुष्टुताः	१९८५
सुशिल्पे वृहती मही	पर्वमानो वृषण्यति ।	नक्तोपासा न दर्शते	१९८६
उभा देवा नृचर्क्षसा	होतारौ दैव्या हुवे ।	पर्वमान इन्द्रो वृषा	१९८७
भारती पर्वमानस्य	सरस्वतीळा मही । इमं नो यज्ञमा गमन्	तिस्रो देवीः सुपेशसः	१९८८
त्वष्टारमग्रजां गोपां	पुरोयावानमा हुवे । इन्दुरिन्द्रो वृषा हरिः	पर्वमानः प्रजापतिः	१९८९
वनस्पतिं पवमान्	मध्वा समर्द्धि धारया । सहस्रवल्शं हरितं	आर्जमानं हिरण्ययम्	१९९०
विश्वे देवाः स्वाहाकृतिं	पर्वमानस्या गत । वायुर्वृहस्पतिः स्यौ	ऽग्निरिन्द्रः सजोर्पसः	१९९१

॥ २२३ ॥ (क्र० १०। ७०। १-११)

१९९२-२००२ सुमित्रो वाष्प्यथ्यः । आप्रीसुक्तं= (क्रमेण- १ इधमः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसा, ३ इळा, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उपासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । त्रिष्टुप् ।

इमां मे अग्रे समिधं जुपस्व इळस्पदे प्रतिं हर्या वृताचीम् ।
 वर्ष्मन् पृथिव्याः सुदिनत्वे अह्वाम् ऊर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या १९९२
 आ देवानामग्रयावेह यातु नराशंसा विश्वरूपेभिरथैः ।
 ऋतस्य पथा नर्मसा मियेषो देवेभ्यो देवर्तमः सुष्टुदत् १९९३

शश्वत्तममीकृते दूत्याय हविष्मन्तो मनुष्यासो अग्निम् ।	
वर्हिष्टैरथैः सुवृता रथेन आ देवान् वक्षि नि पदेह होता	१९९४
वि प्रथतां देवजुष्टं तिरश्चा दीर्घं द्राघ्मा सुरभि भूत्वस्मे ।	
अहेकृता मनसा देव बर्हिर् इन्द्रज्येष्ठां उशतो वक्षि देवान्	१९९५
दिवो वा सानुं स्पृशता वरीयः पृथिव्या वा मार्त्रया वि श्रयध्वम् ।	
उशतीर्वारो महिना महङ्गिर देवं रथं रथयुर्धोरयध्वम्	१९९६
देवी दिवो दुहितरां सुशिल्पे उपासानक्ता सदतां नि यानां ।	
आ वां देवासं उशती उशन्तं उरौ सीदन्तु सुभगे उपस्थं	१९९७
ऊर्ध्वो ग्रावां बृहदग्निः समिद्धः प्रिया धामान्यदितेरुपस्थं ।	
पुरोहितावृत्विजा यज्ञे अस्मिन् विदुष्टसा द्रविणमा यजेथाम्	१९९८
तिस्रो देवीर्बर्हिर्दं वरीय आ सीदत चक्रुमा वः स्योमम् ।	
मनुष्वद् यज्ञं सुधिता हवींषि इळां देवी घृतपर्दी जुपन्त	१९९९
देवं त्वष्टर्यद्वं चारुत्वमान् इ यदाङ्गिरसामर्भवः सचाभुः ।	
स देवानां पाथ उप प्र विद्वान् उशन् वक्षि द्रविणोदः सुरतः	२०००
वनस्पते रशनयां नियूया देवानां पाथ उप वक्षि विद्वान् ।	
स्वदाति देवः कृणवद्धवींषि अर्वातां घावापृथिवी हव मे	२००१
आग्नें बहु वरुणमिष्टये न इन्द्रं दिवो मरुतो अन्तरिक्षात् ।	
सीदन्तु बर्हिर्विश्व आ यजत्राः स्वाहा देवा अमृतो मादयन्ताम्	२००२

॥ २२४ ॥ (ऋ० १० । ११० । १-११)

११ जमदग्निर्भागवा, रामो वां जामदग्नयः । आग्नीसुक्तं=(क्रमेण-१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळा, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उपासानका, ७ देव्यो होतारो प्रचेतसी, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळामारत्याः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाशुनयः) । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ५ । १० । १-११ [अथर्ववेदे अंगिरा ऋषिः ।] काठक सं० १६ । २०, मैत्रायणी सं० ४।१३ । ३; तै० ब्रा० ३।३।३)

समिद्धो अथ मनुषो दुरीणे देवो देवान् यजसि जातवेदः ।	
आ च बर्हि मित्रमहय चिकित्वान् त्वं दूतः क्विर्वांसि प्रचेताः	२००३
तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान् मघ्वा समञ्जन् त्वर्षदया मुनिह ।	
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुषध्वरं नः	२००४

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्च आ याहाग्ने वसुभिः सजोपाः ।
त्वं देवानामसि यद्बु होता स एनान् यक्षीपितो यजीयान् २००५

ग्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्ने अह्वाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अर्दितये स्योनम् २००६

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः २००७

आ सुष्वयन्ती यजते उपक्वे उपासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुग्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने २००८

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजर्ध्वे ।
प्रचोदयन्ता विदर्थेषु कारू ग्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता २००९

आ नो यज्ञं भारती त्र्यमेतु इळां मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्विहरेदं स्योनं सरस्वती स्वर्षसः सदन्तु २०१०

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिशुब्धुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतारपितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् २०११

उपावसृज त्मन्यां समञ्जन् देवानां पार्थ ऋतुथा हवीर्षिं ।
वनस्पतिः श्रमिता देवो अग्निः स्वर्दन्तु हव्यं मधुना धृतेन २०१२

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञम् अग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिदयुतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः २०१३

॥ २२५ ॥ (वा० यजुर्वेद २०। ३६-४६; तैत्ति० सं० २।६।८; काठकसं० ३।८।६; मैत्रायणीसं० ३।१।१।१)

सर्मिद्धं इन्द्र उपसामनीके पुरोरुचां पूर्वकृद् वावृधानः ।
त्रिभिर्द्वैसं त्रिधंशता चक्रवाहूर् जधानं वृत्रं वि दुरो ववार २०१४

नराशंभुः प्रति शूरो मिमानस् तनुनपात् प्रति यज्ञस्य धामं ।
गोर्भिवृषान् मधुना समञ्जन् हिरण्येश् चन्द्री यजति प्रचेताः २०१५

मैत्रायणी-पाठभेदाः- २०१४ (१ तमिका) (२००४-५ मध्ये ' नराशंभुः ' इति मन्त्रोऽग्रे वा० यजुर्वेद
२१-२५-३६ इत्यम्)

पाठक-पाठभेदाः- २०१५ (१ यजुः)

ईदितो देवैर्हरिवाँ २ अग्निष्टिर्	आजुह्वानो हविषा शर्धमानः ।	
पुन्दुरो गोत्रभिद् वज्रवाहुर्	आ यातु यज्ञमुप नो जुषाणः	२०१६
जुषाणो बर्हिर्हरिवाँ न इन्द्रः	प्राचीर्नथ सीदैत् प्रदिशा पृथिव्याः ।	
उरुप्रथाः प्रथमानथ स्योनम्	आदित्यैरुक्तं वसुभिः सजोषाः	२०१७
इन्द्रं दुरः कञ्चप्यो धावमाना	वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः ।	
द्वारो देवीरभितो वि श्रयन्ताथ	सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः	२०१८
उपासानक्ता बृहती बृहन्तं	पर्यस्वती सुदुधे शरमिन्द्रम् ।	
तन्तुं तत् पेशसा संवर्यन्ती	देवानां देवं यजतः सुरुक्मे	२०१९
दैव्या मिमाना मनुष्यः पुरुत्रा	होतासविन्द्रं प्रथमा सुवाचा ।	
मूर्धन् यज्ञस्य मधुना दर्धाना	प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः	२०२०
तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमाना	इन्द्रं जुषाणा जर्नयो न पत्नीः ।	
अच्छिन्नं तन्तुं पर्यसा सरस्वती	इडां देवी भारती विश्वर्तुतिः	२०२१
त्वष्टा दध्च छुग्ममिन्द्राय वृष्णे	ऽपांकोऽचिष्टुर्गुणैः पुरुणि ।	
वृषा यजन् वृषणं भूरिरेता	मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान्	२०२२
वनस्पतिरर्वसृष्टो न पाशैस्	त्मन्यां समञ्जब् छमिता न देवः ।	
इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः	स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन	२०२३
स्तोकानामिन्दुं प्रति शर इन्द्रो	वृषायमाणो वृषमस् तुरापाद् ।	
घृतप्रुषा मनसा मोर्दमानाः	स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम्	२०२४

॥ २२६ ॥ (पा० यजुर्वेद २० । ५५-६६; मैत्रा० सं० ३।१।३; फाडक सं० ३।८; तैत्ति० ब्रा० १।६।१०)

समिद्धो अग्निराश्विना तप्तो यमो विराद् मुतः ।

दुहे धेनुः सरस्वती सोमंथं शुक्रमिहेन्द्रियम् २०२५

मैत्रा० पाठ०- २०१६ (१ गोत्रवृद्), २०१७ (१ ना, २ सीदात्) २०१८ (१ यजित); २०१९ (१ पेशसातो तन्तुना),
२०२० (१ मनसा ; २ होताथ इन्द्रं) २०२१ (१ वृषणं) ; २०२२ (१ दध्चिन्द्राय शुभमपाको)
२०२३ (१ इवरातु), २०२४ (१ हव्यमुन्दन् स्वादृष्टं उपता हव्यमिन्द्रः)

फाडक पाठ०- २०१९ (१ पेशसातो तन्तुना), २०२० (१ मनसा ; २ होताथ इन्द्रं) २०२१ (१ वृषणं),
२०२२ (१ दध्चिन्द्राय शुभमपाको) २०२४ (१ हव्यमुन्दन्गुणैः पुरुणैः उपता इवरा)

तनुपा भिपजां सुते ऽश्विनोभा सरस्वती ।	२०२६
मघ्ना रजांशसीन्द्रियम् इन्द्राय पृथिभिर्वहान्	
इन्द्रायिन्दुं सरस्वती नराशंसेन नमहुंम् ।	२०२७
अर्धातामश्विना मधुं भेषजं भिपजां सुते	
अजुह्वाना सरस्वती इन्द्रायिन्द्रियाणि वीर्यम् ।	२०२८
दृढाभिरश्विनामिपुं समर्जं संधं रयिं दंधुः	
अश्विना नमृचेः सुतं सोमं शुक्रं परिस्रुता ।	२०२९
सरस्वती तमा भरद् वृहिपेन्द्राय पातवे	
कृण्व्यो न व्यचस्वतीर् अश्विन्यां न दुरो दिशः ।	२०३०
इन्द्रो न रोदसी उंभे दुहे कामान् त्सरस्वती	
उपासानक्तमश्विना दिवेन्द्रं सायमिन्द्रियैः ।	२०३१
सञ्जानाने सुपेयसा समजाते सरस्वत्या	
पातं नो अश्विना दिवां पाहि नक्तं सरस्वति ।	२०३२
दैव्या होतारा भिपजा पातमिन्द्रं सचां सुते	
निस्त्रस् त्रेधा सरस्वती अश्विना भारतीडा ।	२०३३
तीव्रं परिस्रुता सोमम् इन्द्राय सुषुनुर्मदम्	
अश्विनां भेषजं मधुं भेषजं नः सरस्वती ।	२०३४
दंष्ट्रे त्वया यज्ञः श्रियं रूपं रूपमधुः सुते	
ऋतुधेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता ।	२०३५
फीलालमश्विन्यां मधुं दुहे धेनुः सरस्वती	
गोभिर्न मोर्ममश्विना मार्मरेण परिस्रुता ।	२०३६
ममघातं मरंस्वत्या स्वाहेन्द्रं सुतं मधुं	

पाठ०- २०२६ (१ पृथिवीर्ह), २०२८ (१ अश्विना इव), २०३३ (१ अश्विनाद्युपु०)
२०३६ (१ मगधान)

पाठ०- २०२८ (१ अश्विना इव), २०३० (१ दुहे), २०३३ (१ अश्विनाद्युपु०)
२०३६ (१ अश्विना इव), मगधानां २०३५ नोपलभते; २०३६ (१ मगधानां)

॥ २२७ ॥ (चा० यजुर्वेद २१ । १२-२२; मैत्रा० सं० ३।१।११; काठक सं० ३०।१०; तै० ब्रा० २।६।१८)

समिद्धो अग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः ।	
गायत्री छन्द इन्द्रियं त्र्यविर्गोर्वयो दधुः	२०३७
तनूनपाञ्च छुचिन्नतस् तनुपाश् च सरस्वती ।	
उष्णिहा छन्द इन्द्रियं दित्यवाद् गोर्वयो दधुः	२०३८
इडाभिरगिरीडयः सोमो देवो अमर्त्यः ।	
अनुष्टुप् छन्द इन्द्रियं पञ्चाविर्गोर्वयो दधुः	२०३९
सुबर्हिः पृष्वान् स्तीर्णवर्हिः अमर्त्यः ।	
बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सो गोर्वयो दधुः	२०४०
दुरो देवीदिशो महीर् ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः ।	
पङ्क्तिश् छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाद् गोर्वयो दधुः	२०४१
उपे यद्ही सुपेशसा विश्वं देवा अमर्त्याः ।	
त्रिष्टुप् छन्द इहेन्द्रियं पृथवाद् गोर्वयो दधुः	२०४२
दैव्या होतारा भिपजा इन्द्रेण सयुजा युजा ।	
जगती छन्द इन्द्रियम् अनड्वान् गोर्वयो दधुः	२०४३
तिस्त्रे इडा सरस्वती भारती मरुतो विशः ।	
विराद् छन्द इहेन्द्रियं धेनुर्गानि वयो दधुः	२०४४
त्वष्टा तुरीपो अङ्गुत इन्द्रायो धृष्टिवर्धना ।	
द्विपदा छन्द इन्द्रियम् उक्षा गानि वयो दधुः	२०४५
शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् मर्गम् ।	
कुकुप् छन्द इहेन्द्रियं वशा वेहेदयो दधुः	२०४६
स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो मेषजं करत् ।	
अतिच्छन्दा इन्द्रियं बृहद् ऋषुभो गोर्वयो दधुः	२०४७

मैत्रा० पाठ०— २०३७ (१ त्रिवयो); २०३८ (१ अयं प्रथमोऽप्यो न ददयते; २ तानिहृ); २०४१ (१ इन्द्रियं); २०४४ (१ तिलो देवीरिडा मही; २ इन्द्रियं); २०४६ (१ ऋषभो गोर्वयो), २०४७ (१ वृहदा वेदवो)

काठ० पाठ०— २०३७ (१ त्रिवयो); २०४१ (२ इन्द्रियं); २०४७ (१ अतिच्छन्द; २ वरुणो)

॥ २२८ ॥ (वा० यजुर्वेद २१ । २९—४०, मैत्रायणी सं० ३ । ११ । २, तै० ब्रा० २ । ६ । ११)

होता यक्षत् समिधान्निमिडस्पद्रे—ऽश्विनेन्द्रं सरस्वती—मजो धूम्रो न गोधूमः कुर्वैले-
भेपजं मधु शप्पैर्न तेज इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य
होतर्यजं २०४८

होता यक्षत् तनूनपात् सरस्वती—मविमेषो न भेपजं पथा मधुमता भर—ऽश्विनेन्द्राय
वीर्यं वदरैरुपवाकाभिर्भेपजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य
होतर्यजं २०४९

होता यक्षन्नराशं सं न नग्रहुं पतिं सुरया भेपजं मेपः सरस्वती भिपग् रयो न
चन्द्रश्चिनी—र्वपा इन्द्रस्य वीर्यं वदरैरुपवाकाभिर्भेपजं तोक्मभिः पयः सोमः
परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यजं २०५०

होता यक्षद्विडेडित आजुह्वानः सरस्वती—मिन्द्रं वलेन वर्धय—ऋपभेण गर्वेन्द्रिय—म-
श्विनेन्द्राय भेपजं यवैः कर्कन्धुभि—र्मधुं लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं
मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यजं २०५१

होता यक्षद् वहिर्रूपम्रदा भिपङ् नासत्या भिपजाश्विनाश्वा शिशुमती भिपग् धेनुः
सरस्वती भिपग् दुह इन्द्राय भेपजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य
होतर्यजं २०५२

होता यक्षद् दुरो दिशः कवप्यो न व्यचस्वती—रश्विभ्यां न दुरो दिशं इन्द्रो न
रोदसी दुचे दुहे धेनुः सरस्वत्यै—श्विनेन्द्राय भेपजं शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः
सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यजं २०५३

होता यक्षत् सुपेशसोपे नक्तं दिवा—श्विना समं द्राति सरस्वत्या त्विपिमिन्द्रे न
भेपजं श्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु
व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यजं २०५४

मैत्रा० पाठ० - २०४९ (१ मधुमदामरजः, २ वेत्वाज्यस्य); २०५० (१ सुराया, २ वेत्वाज्यस्य),
२०५२ (१ भिपगिन्द्राय दुह इन्द्रियं); २०५३ (१ दिशा; २ 'अश्विनेन्द्राय भेपजं' इति न
दृश्यते) २०५४ (१ मंजानि सुपेशया गमयति, २ त्विपिमिन्द्रेण; ३ हृदा पयः; ४ वीतामा-
जगस्य)

होता यक्षद् दैव्या होतारा भिपजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजं शृपथं
सरस्वती भिपक् सीसेन दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य
होतर्यजं २०५५

होता यक्षत् विस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रं हिरण्ययं माश्विनेटा न
भारती वाचा सरस्वती महं इन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु
व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यजं २०५६

होता यक्षत् सुरेतसमृपभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिपजं न सरस्वतीमोजो न
जृतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिपग् यशः सुर्या भेषजथं त्रिया न मासंरं
पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यजं २०५७

होता यक्षद् वनस्पतिंथं शमितारंथं शतक्रतुं भीमं न मन्युंथं राजानं व्याघ्रं नमसा-
श्विना भामथं सरस्वती भिपगिन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु
व्यन्त्वा ज्यस्य होतर्यजं २०५८

होता यक्षद्रथिंथं स्वाहाज्यस्य स्तोक्रानांथं स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागम-
श्विम्यांथं स्वाहा भेषथं सरस्वत्यै स्वाहा ऋपभमिन्द्राय सिंथहाय सहस इन्द्रियंथं
स्वाहाभि न भेषजंथं स्वाहा सोममिन्द्रियं स्वाहेन्द्रंथं सुत्रामाणंथं सवितारं वरुणं
भिपजां पतिंथं स्वाहा वनस्पतिं प्रियं पायो न भेषजंथं स्वाहा देवा आज्यपा
जुपाणो अग्निभेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यजं २०५९

॥ २२८ ॥ (वा० यजुर्वेद २७ । ११-२२; काठक सं० १८ । १७; मैत्रा० सं० २ । १२ । ६)

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्ति ऊर्ध्वा शुक्रा शोचींथंप्पग्रेः ।

धुमत्तमा सुप्रतीकस्य सुनोः २०६०

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवैः । पथो अनक्तु मध्वा घृतेन २०६१

मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराग्रंथंसो अग्रे । सुकृद्देवः सविता विश्ववारः २०६२

मैत्रा० पाठ०— २०५५ (१ वीतामाज्यस्य); २०५६ (१ रूपमिन्द्रो ; २ महा); २०५७ (१ यशस्यष्टारं-
रूपशतं गुपेष्टमं शृपमः ; २ श्रारमा; ३ वेत्वाज्यस्य); २०५८ (१ वेत्वाज्यस्य); २०५९ (१ स्वाहा;
२ भेषजः; ३ ०मिन्द्रियैः) [पंक्तिपदच्छेदपद्धतिः क्वचिद्विज्ञा] २०६० (१ देवेभ्यो देवयानाय)
२०६२ (१ नक्षति; २ क्षमिः;)

काठ० पाठ०— [पंक्तिपदच्छेदविधिना] २०६१ (१ घृतेन.....प्रीणानः इत्येव एवा पंक्तिः) २०६२ (१ नक्षति)

अच्छायमंति शर्वसा घृतेनेडानो वद्विर्नमसा ।

अग्निं सुचो अध्वरेषु प्रयत्सु

२०६३

स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ई मन्द्रो सुप्रयसः ।

वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च

२०६४

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः ।

उरुव्यचंसो धाम्ना पत्यमानाः

२०६५

ते अस्य योषणे दिव्ये न योनी उपासानक्ता ।

इमं यज्ञमवतामध्वरं नः

२०६६

दैव्या होतारा ऊर्ध्वमध्वरं नो ऽग्नेर्जिह्वामभि गृणीतम् ।

कृणुतं नः स्विष्टिर्मे

२०६७

तिस्रो देवीर्षिहिरेदं सदन्तु इडा सरस्वती भारती ।

मही गृणाना

२०६८

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् ।

रायस्योपं वि ध्यतुं नाभिमस्मे

२०६९

वनस्पतेऽव संजा रराणस्मना देवेषु ।

अग्निर्हव्यंश्च शमिता खदयाति

२०७०

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदं इन्द्राय हव्यम् ।

विश्वे देवा हविरिदं जुपन्ताम्

२०७१

॥ २३० ॥ (अथर्व० कां० ५।२७)

१—१२ ब्रह्मा । अग्निः १ वृहतीगर्भा त्रिष्टुप्; २ द्विपदा साक्षी भुरिगनुष्टुप्; ३ द्विपदाचीं वृहती;

४ द्विपदा साक्षी भुरिग्वृहती; ५ द्विपदा साक्षी त्रिष्टुप्; ६ द्विपदा विराणनाम गायत्री;

७ द्विपदा साक्षी वृहती; ८ संस्तारपहक्तिः; ९ पदपदानुष्टुभामां पराति-

जगती; १०—१२ पुरउष्णिफ (२-७ एकाघसाना) ।

उर्ध्वा अस्य समिधो भवन्ति ऊर्ध्वा शुक्रा शोर्चीष्यग्नेः ।

द्युमत्तमा सुप्रतीकः सस्रनुस् तनूनपादसुरो भूरिपाणिः

२०७२

मैत्रा० पाठ०— २०६४ (१ स ई मन्द्रा सुप्रयसा स्तरीमन् । महिषो मित्रमहाः) २०६५ (१ विश्वा); २०६७ (१ होताय ऊर्ध्वमिमध्वरं; २ रिक्ष्टम्); २०६८ (१ स्योनम्; २ मही शब्दः नास्ति) २०६९ (१ त्वष्टा) २०७० (१ विष्य; २ देवेभ्यः) २०७१ (१ जातवेदा; २ देवेभ्यः)

काठ० पाठ०— २०६१ (१ अच्छायं यन्ति; २ घृताचीः ईडाना वद्वि; २०६४ (१ स्तनी मन्द्रसुप्रयष्ट) २०६६ (१ दिव्यो न योनिरथासानमग्नेः); २०६७ (१ होतारोर्ध्वमिमध्वरं; २ रिक्ष्टम्) २०६८ (१ महीगृणाना); २०६९ (१ त्वष्टः योपाय विष्य नाभिमस्मे) २०७० (१ मृज; २ हविः)

देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा वृतेर्न ।	२०७३
मध्वा यज्ञं नक्षति प्रेणानो नराशंसो अग्निः सुकृद् देवः संविता विश्ववारः	२०७४
अच्छायमेति शर्वसा वृता चिदीढानो वाहिनर्ममा	२०७५
अग्निः सुचो अच्वरेषु प्रयक्षु स यक्षदस्य महिमानंमुधेः	२०७६
त्तरी मुन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन् वसुधातरश्च	२०७७
द्वारो देवीरन्नस्य विश्वे वृतं रक्षन्ति विश्वहा	२०७८
उरुव्यचंमाऽग्नेर्घाम्ना पत्यमाने ।	
आ सुष्वर्यन्ती यजते उपाके उपासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः	२०७९
दैवा होतार उर्ध्वम् अर्ध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वया अभि गृणत गृणता नः स्विष्टिये ।	
तिस्रो देवीर्घोहिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना	२०८०
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु । देवं त्वष्टा रायस्पोषं वि प्य नाभिमस्य	२०८१
वनस्पतेऽर्धं सृजा रराणः । त्मना देवेभ्यो अग्निर् हव्यं शंमिता स्वंदयतु	२०८२
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः । इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हृदिरिदं जुषन्ताम्	२०८३

॥ २३१ ॥ (वा० यजुर्वेदे २८।१-११)

होता यक्षत् समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि ।	
दिवो वर्धन् त्समिधयत् ओर्जिष्ठधर्षणीसहा वेत्वाज्यस्य होतयज्ञं	२०८४
होता यक्षत् तनुनपातपातिभिर्जेतारमर्पराजितम् ।	
इन्द्रं देवथं स्वविदं पृथिभिर्मधुमत्तमर्नराशथंसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतयज्ञं	२०८५
होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम् ।	
देवो देवैः सवीर्यो वन्नहस्तः पुरन्दुरो वेत्वाज्यस्य होतयज्ञं	२०८६
होता यक्षद् घृहिपीन्द्रं निषद्वरं धृषुमं नर्यापमम् ।	
वसुमी रुद्रैरादित्यैः सयुग्भिर्वहिरामद्वद् वेत्वाज्यस्य होतयज्ञं	२०८७
होता यक्षदोजो न वीर्यथं सहो द्वार इन्द्रमवर्धयन् ।	
सुप्रायणा अस्मिन् यज्ञे वि श्रयन्तामृतावृधो द्वार इन्द्राय मीदुपे व्यन्त्वाज्यस्य होतयज्ञं	२०८८
होता यक्षदुपे इन्द्रस्य घेन् सुदुधं मातरा मही ।	
सवातरौ न चेजसा वृत्समिन्द्रमवर्धता वीतामाज्यस्य होतयज्ञं	२०८९

- होता यक्षद् दैव्या होतारा भिपजा सराया हविषेन्द्रं भिपज्यतः ।
 कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्त इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज २०९०
- होता यक्षत् तिस्रो देवानि भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा सरस्वती भारती महीः ।
 इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०९१
- होता यक्षत् त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिपजं सुयजं घृतश्रियम् ।
 पुरुरूपं सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दर्धदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९२
- होता यक्षद् वनस्पतिं शमितारं शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् ।
 मघ्वा समञ्जन् प्रथिभिः सुगोभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९३
- होता यक्षदिन्द्रं स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा
 स्तोत्रानां स्वाहा स्वाहाकृतीनां स्वाहा हव्यवृत्तीनाम् ।
 स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज २०९४

॥ २३२ ॥ (वा० यजुर्वेद २८ । २४-३४)

- होता यक्षत् समिधानं महद् यज्ञः सुसमिद्धं वरेण्यमिमिन्द्रं वयोधसम् ।
 गायत्रीं छन्दं इन्द्रियं व्यविं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९५
- होता यक्षत् तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमार्दितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम् ।
 उष्णिहं छन्दं इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९६
- होता यक्षडीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडाभिरीडयं सहः सोममिन्द्रं वयोधसम् ।
 अनुष्टुभं छन्दं इन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९७
- होता यक्षत् सुर्हिषं पृषण्णन्तममर्त्यं सीदन्तं वृहिषिं प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम् ।
 वृहतीं छन्दं इन्द्रियं त्रिंशत्सं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९८
- होता यक्षद् व्यचस्वतीः सुप्रायणा क्रतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम् ।
 पृदिक्तं छन्दं इहेन्द्रियं तृषवाहं गां वयो दधद् व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०९९
- होता यक्षत् सुपेयसा सुशिल्ले वृहती उभे नक्तोपासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम् ।
 त्रिष्टुभं छन्दं इहेन्द्रियं पृषवाहं गां वयो दधद् वीतामाज्यस्य होतर्यज २१००
- होता यक्षन् प्रचेतसा देवानामुत्तमं यज्ञो होतारा दैव्या कृती सुयुजेन्द्रं वयोधसम् ।
 जगतीं छन्दं इन्द्रियमनइवाहं गां वयो दधद् वीतामाज्यस्य होतर्यज २१०१

- होता यक्षत् पेशस्वतीस्त्रिस्रो देवीर्हिरण्ययीभरतीर्वृहतीर्महीः पतिमिन्द्रं वयोधसम् ।
 विराजं छन्दं इहेन्द्रियं घेनुं गां न वयो दधद् व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यजं २१०२
- होता यक्षत् सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्धनं रूपाणि विभ्रतं पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम् ।
 द्विपदं छन्दं इन्द्रियमुक्षणं गां न वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यजं २१०३
- होता यक्षद् वनस्पतिंश्च शमितारंश्च शतक्रतुंश्च हिरण्यपर्णमुक्थिनंश्च
 रशनां विभ्रतं वृशि भगमिन्द्रं वयोधसम् ।
 ककुभं छन्दं इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यजं २१०४
- होता यक्षत् स्वार्हाकृतीरग्निं गृहर्पतिं पृथग् वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम् ।
 अतिच्छन्दसं छन्दं इन्द्रियं वृहदपमं गां वयो दधद् व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यजं २१०५

२३३ ॥ (वा० यजुर्वेद २९ । १-११ काठक, सं० ५।६।२; मैत्रा० सं० ३ । १६ । २; तै० ब्रा० ५।१।११)

- सर्मिद्रो अज्जन्कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः ।
 वाजी वहन् वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्यम् २१०६
- घृतेनाजन् त्सं पथो देवयानान् प्रजानन् वाज्यप्येतु देवान् ।
 अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्तांश्च स्वधामसमै यजमानाय धेहि २१०७
- ईह्यश्वासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्वासि मेर्ध्यश्च सप्ते ।
 अग्निद्रां देवैर्वसुभिः सजोपाः श्रितं वहिं वहतु जातवेदाः २१०८
- स्तीर्णां वहिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।
 देवेभिर्युक्तमदितिः सजोपाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु २१०९
- एता उ वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षीभिः श्रयमाणा उदातैः ।
 ऋष्याः सतीः कृष्युः शुभमाना द्वारो देवीः सुप्राप्यैणा भवन्तु २११०
- अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुरं यजानामि संविदाने ।
 उपासा वांश्च सुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योर्नात्रिह सादयामि २१११

मैत्रा० पाठ० — २१०७ (१ तनूनपासं, २ एवषां देवैः); २१०८ (१ मेध्यवासि); २१०९ (१ देवेभिरण्यम्)
 २११० (१ विश्ववारा); २१११ (४ योना इह)

काठ० पाठ० — २१०९ (१ देवेभिरण्यम्); २११० (१ विश्ववारा; २ एवषा, ३ सुप्रयाणा) २१११ (१ योना इह)

प्रथमा वांछं सरथिनां सुवर्णां देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा । अपिप्रथं चोदना वां मिमोना होतांरा ज्योतिः प्रदिशां दिग्गन्तां	२११२
आदित्यैर्नां भारती वष्टु यज्ञं सरस्वती सह रुद्रैर्न आवीत । इडापहृता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्तं	२११३
त्वष्टां वीरं देवकामं जजान त्वष्टूरवीं जायत आशुरश्वः । त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान वहोः कर्तारमिह यक्षि होतः	२११४
अथो वृतेन त्मन्या समक्तं उप देवां २ ऋतुशः पार्थ एतु । वनस्पतिर्देवलोकं प्रज्ञानभग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत्	२११५
प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिपे' यज्ञमग्ने । स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि मांघ्या हविरदन्तु देवाः	२११६

॥ २३४ ॥ (वा० यजुर्वेद २१, २५-३६; काठकसं० १६, २०, मैत्रा० सं० ४।१, ३।३; तैत्ति० ब्रा० २।६।१)

मर्मिद्वो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः । आ च वहं मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः	२११७
तर्जुपाद् पथ ऋतस्य यानान् मर्धां समजन् त्वदया सुजिह्व । मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा चं कृणुह्यध्वरं नः	२११८
नराशुभस्य महिमानमेपासुर्पं स्तोपाम यजतस्पर् यज्ञैः । ये सुकृतव्यः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या	२११९
आजुह्वानं ईड्यो वन्द्यथा याहमे वसुभिः सजोषाः । त्वं देवानाममि यद्द होता स एनान् यक्षीपितो यजीयान्	२१२०
प्राचीनं वृहिः प्रदिशां पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्वाम् । व्यु प्रथते वितरं वरीषो देव्येभ्यो अर्दिनये स्योनम्	२१२१
व्यचम्बतीरुर्विया वि श्रेयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः । देवीर्दारी वृहतीर्विधमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः	२१२२

मैत्रा० पाठ० - २११३ (१ १योनं वृज्याना गुक्तिं दधातु) २११४ (१ त्वष्टेमा विश्वा भुवना) २११५ (१ ममण्
२ देव) ; २११६ (१ १वदःतु) ; २१२० (१ आजुदाना)

वा० पाठ० - २११६ (१ मगिंधा २ ममणा), २११९ अयं मन्यो जाति ।

आ सु॒ष्वर्य॑न्ती य॒जते॑ उ॒पाके॑ उ॒पामान॑क्ता सद॒तां नि यो॑नीं । द्वि॒ध्वे यो॑षणे वृ॒हती॑ सु॒रुक्मे॑ अधि॒ श्रिय॑थं, शु॒क्रपि॑शं द॒धाने॑	२१२३
द॑व्या॒ होत॑रा प्रथ॒मा सु॒वाचा॑ मि॒मांसा॒ यज्ञं॑ मनु॒षो यज॑र्घ्यं । प्र॒चोद॑र्यन्ता वि॒दथे॑षु क्वा॒रू प्रा॒चीनं॑ ज्योतिः॒ प्रदि॑शां दि॒शन्ता॑	२१२४
आ नो॑ य॒ज्ञं भा॑रती॒ तूर्य॑मे॒त्विटां॑ मनु॒ष्वद्दि॒ह चेत॑र्यन्ती । ति॒स्रो दे॒वीर्षि॑हिरेद॒थं स्यो॑न॒थं सर॑स्वती॒ स्वप॑सः सदन्तु	२१२५
य इ॒मे धा॒वापृ॑थि॒वी ज॑र्नित्री रू॒पैरपि॑थंशुद् भु॒वनानि॑ विश्वा । तम॒द्य हो॑तरि॒पितो॑ यजी॒यान् दे॒वं त्व॑ष्टार॒मिह॑ य॒क्षि वि॒द्वान्	२१२६
उ॒पाव॑सृ॒ज त्म॑न्या॒ सम॒ज्जन् दे॒वानां॑ पाथं ऋ॒तुथा॑ ह॒वीथ॑र्षि । व॒न॒स्पतिः॑ श्र॒मिता॑ दे॒वो अ॒ग्निः स्व॑दर्दन्तु ह॒व्यं म॑र्धुना घृ॒तेन॑	२१२७
स॒द्यो जा॑तो व्य॒मिमी॑त य॒ज्ञमग्नि॑दे॒वाना॑मभवत् पुरो॒गाः । अ॒स्य हो॑तुः प्र॒दिश्य॑तस्य॒ वाचि॑ स्वाहा॒कृत॑थं ह॒विर॑र्दन्तु दे॒वाः	२१२८

॥ २३५ ॥ (ऋग्वेदीय-परिशिष्ट-प्रपाठ्याये १-१३ । मैत्रा० सं० ४ । १३ । २; २०० । १; काटक सं० १५ । १३; तै० ब्रा० ३ । ६ । २ । १)

होता य॒क्षद॑ग्निं स॒मिधा॑ सु॒पमि॑धा स॒मिद्धं॑ नामा पृथि॒व्याः मंग॑थे वाम॒भ्य । वं॒र्ष्मन् दि॒व इ॒ळस्प॑दे वे॒त्वाज्य॑स्य हो॒त॒र्यज॑	२१२९
होता य॒क्षत् त॑नू॒नपा॑तमदि॒तेर्ग॑र्भं भु॒वन॑स्य गो॒पाम् । म॒ध्वाद्य॑ दे॒वो दे॒वेभ्यो॑ दे॒वयाना॑न् पथो॒ अन॑क्तु वे॒त्वाज्य॑स्य हो॒त॒र्यज॑	२१३०
होता य॒क्षन्न॑राय॑सं नृ॒शंख॑नूः प्र॑णेत्रं । गो॒भिर्व॑पा॒वान् त्स्याद् धी॑रैः श्र॒क्तीवा॑न् रथैः प्रथ॒मया॑वा हि॒रण्य॑श्च॒न्त्री वे॒त्वाज्य॑स्य हो॒त॒र्यज॑	२१३१
होता य॒क्षद॑ग्निमी॒ळ ई॒ळितो॑ दे॒वो दे॒वा आव॑क्षद्द॒त्तो ह॑व्यवा॒ळमूर्ः । उ॒पेमं॑ य॒ज्ञमु॑पे॒मो दे॒वो दे॒वहृ॑तिमव॒तुं वे॒त्वाज्य॑स्य हो॒त॒र्यज॑	२१३२

मैत्रा० पाठ०- २१२८ मंत्रः नोपलभ्यते, २१३१ (१ नृगएनं, नृस्पत्रोत्रं); २१३० (१ दग्निमिद, २ देव भा च वक्षद्, ३ ०मूला),

काट० पाठ०- २१२९ (१ गमिधं), २१३१ अयं मन्त्र नोपलभ्यते, २१३० (१ ० १ इति ये वा०),

- होता यक्षद् बर्हिः सुष्टरीमोर्णप्रदा अस्मिन् यज्ञे वि च प्र च प्रथतां स्वासस्यं देवेभ्यः ॥
 एमेनदद्य वसवो रुद्रा आदित्याः सदैन्तु प्रियार्भिद्रस्यास्तु वेत्वाज्यस्य होतर्यज २१३३
- होता यक्षद् दुर ऋष्वाः क्वप्यो कोपधावनीरुद्राताभिर्जिहतां विपक्षोभिः श्रयतां ।
 सुप्रायणा अस्मिन् यज्ञे विश्रयन्तामृतावृधो व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २१३४
- होता यक्षदुपासानक्ता बृहती सुपेशसा नृःपतिभ्यो योनिं कृष्वाने ।
 संस्यमाने इन्द्रेण देवैरेदं बर्हिः सीदतां वीतामाज्यस्य होतर्यज २१३५
- होता यक्षद् दैव्या होतारा मन्द्रा पोतारा कवी प्रचेतसा ।
 स्विएमद्यान्यः करदिपा स्वभिर्गूर्तमन्य ऊर्जा सतवसेमं यज्ञं दिवि
 देवेषु धत्तां वीतामाज्यस्य होतर्यज २१३६
- होता यक्षद् तिस्रो देवीरपसामपस्तमा अच्छिद्रमद्येदमपस्तन्यतां ।
 देवेभ्यो देवीर्देवमपो व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २१३७
- होता यक्षत् त्वष्टारमर्चिष्टमपाकं रेतोधां विश्रवसं यशोधां ।
 पुरुरूपमकामकर्शनं सुपोषः पोषैः स्यात् सुवीरो वीरैर्वेत्वाज्यस्य हातर्यज २१३८
- होता यक्षद् वनस्पतिमुपावस्रक्षद्वियो जोष्टारं शशमं नरः ।
 स्वदान् स्वधितिक्रतुथाद्य देवो देवेभ्यो हव्यवाद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २१३९
- अजैदग्निरसनद्वाजं नि देवो देवेभ्यो हव्यवाद् प्राञ्जोभिर्हिन्वानो धेनाभिः ।
 कल्पमानो यज्ञस्यायुः प्रतिरन्नुपप्रेष्य होतर्हव्या देवेभ्यः २१४०
- होता यक्षदग्निं स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोक्रानां स्वाहा
 स्वाहाकृतीनां स्वाहा हव्यस्रक्तीनाम् ॥
- स्वाहा देवा आज्यपा जुपाणा अग्न आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज २१४१

मंत्रा० पाठ०- २१३३ (१ देवेभ्यः, स्वदन्तु); २१३४ (१ श्रयतां); २१३५ (नृःपतिभ्यो);
 २१३६ (१ स्वदान्, २ हव्यवाद्); २१४०-२१४२ मन्द्राः नोपलभ्यन्ते ।

पाठ० पाठ०- २१३४ (१ श्रयतां); २१३६ (१ कररक्षमिः, २ ०मग्नरवतसेमं); २१३८ (१ ०मविष्टुमपाकं)
 २१३९ (१ स्वदान्); २१४० अयं मंत्रो नोपलभ्यते ।

अथर्ववेदेऽग्निमन्त्राः ।

(अथर्ववेदे कां० १, सू० ९, मं० ३-४ अथर्वा । त्रिष्टुप् ।)

येनेन्द्राय सममर्ः पर्यां स्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः ।	
तेन त्वमग्ने इह वर्धयेमं संजातानां श्रेष्ठ्य आ धेहिनम्	२१४२
ऐषां यज्ञमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोपमुत चित्तान्यग्ने ।	
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमार्धि रोहयेमम्	२१४३

(अथर्व० १ । १९ । १-४ । विष्णुद्विपमा गायत्री, २१४८ भुरिग्विपमा ।)

अग्ने यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप	योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः	२१४४
अग्ने यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर	योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः	२१४५
अग्ने यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च	योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।	२१४६
अग्ने यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच	योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः	२१४७
अग्ने यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु	योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः	२१४८

(अथर्व० २ । २९ । १-२ । २१४९ अनुष्टुप्, २१५० त्रिष्टुप् ।)

पार्थिवस्य रस देवा भगस्य तन्नोरे वले ।	
आयुष्यमिस्सा अग्निः सूर्यो वर्च आ धाद् बृहस्पतिः	२१४९
आयुरसै धेहि जातवेदः प्रजां त्वंष्टरघिनिधेह्यसै ।	
रायस्पोपं सवितुरा सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायम्	२१५०

(अथर्व० २ । ३४ । ३ । त्रिष्टुप् ।)

ये ब्रह्मयमान्मनु दीध्याना अन्वैक्षन्त मर्नसा चक्षुषा च ।	
अग्निष्टानग्ने प्र मुमोक्तु देवो विश्वकर्मा प्रजयां संररणः	२१५१

(अथर्व० कां० ३ । १ । १-३, ५-६ । २१५० त्रिष्टुप्, २१५३ विराद्गर्मा भुरिक, २१५४ अनुष्टुप्, २१५६ विरादपुर उष्णिक् ।)

अग्निर्नः शशून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्मिर्शस्तिमरांतिम् ।	
स सेना मोहयतु परेषां निर्हस्ताथ कृणवज्जातवेदाः	२१५२

युयमुग्रा मरुत ईदृशे स्था—भि प्रेतं मृणत् सहध्वम् ।	
अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्हीपां दूतः प्रत्येतुं विद्वान्	२१५३
अग्नित्रसेनां मयवन्न अस्मान् छत्रयतीमामि ।	
युवं तानिन्द्र वृत्रहन् अग्निश्च दहतं प्रति	२१५४
इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो मन्त्वोर्जसा ।	
चक्षुष्यागिरा दंक्षां पुनरेतु पराजिता	२१५५

(अथर्व० ३।१०।१—३।१५६ त्रिष्टुप् ; ३१५७-५८ अनुष्टुप् ।)

अग्निर्दूतः प्रत्येतुं विद्वान् प्रतिदहन्नभिर्शस्तिमरातिम् ।	
स चित्तानि मोहयतु परेषां निहंस्त्वांश्च कृणवज्जातवेदाः	२१५६
अपमग्निर्मृमुहद् यानि चित्तानि वो हृदि ।	
वि वो धमत्वोर्कसः प्र वो धमतु सर्वतः	२१५७
इन्द्रं चित्तानि मोहयन्नुर्वाडाकृत्या चर ।	
अग्नेर्वर्तस्य धाज्या तान् विपृचो वि नाशय	२१५८

(अथर्व० ३।३।२। त्रिष्टुप्)

अचिक्रदत् स्वपा इह भुवदग्ने व्यचिस्त्र रोदसी उरुची ।	
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आमं नय नमसा रातहव्यम्	२१५९

(अथर्व० ३।४।३)

अच्छं त्वा यन्तु हविनः सजाता अग्निर्दूतो अजिरः मं चरात ।	
जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु बृहं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः	२१६०

(अथर्व० ३।१०।१। पञ्चपदा ककुम्मतीगर्भाऽष्टिः ।)

प्राची दिग्गिरिर्धिपतिसितो रक्षितादित्या इषवः ।	
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।	
योईस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस् तं वो जम्भे दध्मः	२१६१

(अथर्व० ४।४।६। भुरिक् ।)

अद्यापं अद्य मंचितर्य देवि मरस्वति ।	
अद्यास्य बंक्षणस्पते धनुर्निवा तानया पसः	२१६२

(अथर्व० ५। ८। १-३। अनुष्टुप्, २१६४ इयवसाना पदपदा जगती ।)

वैकङ्कतेनेध्मेन दुवेभ्यु आज्यं वह ।
अग्ने ताँ इह मादयु सर्व आ र्यन्तु मे हवम् २१६३

इन्द्रा याहि मे हवम् इदं करिष्यामि तच्छृणु ।
इम ऐन्द्रा अतिसरा आकृतिं सं नमन्तु मे ।
तोभिः शक्रेम वीर्ये जातवेदस्तर्नवशिन् २१६४

यदुसानुमृतो देवा अदेवः संशिकीर्षति ।
मा तस्याग्निर्हव्यं वांशीद्धवं देवा अस्य मोषं गुर्मभव हवमेतन् २१६५

(अथर्व ५। २४। २। चतुष्पदातिशकरी ।)

अग्निर्वनस्पतीनाम् आर्धपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चिरयामस्यामाकृत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा २१६६

(अथर्व० ५। २८। १-२४ । त्रिष्टुप्, २१७२ पञ्चपदातिशकरी २१७३, ७५, ७६, ७८
ककुम्भत्यनुष्टुप् २१७९ पुरउष्णिक् ।)

नवं प्राणान् नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वार्यं शतशारदाय ।
हरिते त्रीणि रजते त्रीणि अयमि त्रीणि तपसाविष्टितानि २१६७

अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरन्तरिक्षं प्रदिशो दिशश्च ।
आर्तवा श्रुतुभिः संविदाना अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु २१६८

त्रयः पोषास्त्रिवृतिं श्रयन्ताम् अनक्तुं पूषा पर्यसा वृतेन ।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् २१६९

इममादित्या वसुना समुक्षते मर्मग्रे वर्धय वावृद्धानः ।
इममिन्द्र सं सृज वीर्येणास्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोपपिष्यु २१७०

भूमिद्रा पातु हरितिन विश्वमृदुभिः पिपृत्वैर्यसा सुजोषाः ।
वीरुद्रिष्टे अर्जुनं संविदानं दधे दघातु सुमनस्पमानम् २१७१

त्रेधा ज्ञातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं चभूत् सोमस्यैकं हिमितस्य पर्गपत् ।
अपामेकं वेधमां रेत आहुस् तत् ते हिरण्यं त्रिवृद्रस्त्वायुषे २१७२

ज्यायुषं जमदग्नेः कृश्यपस्य ज्यायुषम् ।	
त्रेधामृतस्य चक्षुषं त्रीण्यायुषि तेऽरुम्	२१७३
त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदार्यन्तु एकाक्षरमभिसंभूय शक्राः ।	
प्रत्यौहन् मृत्युममृतेन साकम् अन्तर्दधाना दुरितानि निश्वा	२१७४
दिवस्त्रा पातु हरितं मध्यात् त्वा पात्रर्जुनम् ।	
भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम्	२१७५
इमास्त्रिस्रो देवपुरास्तास्त्रा रक्षन्तु सर्वतः ।	
तास्त्रं विभ्रद्वर्चस्व्युत्तरो द्विपतां भव	२१७६
पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य अविधे प्रथमो देवो अग्रे ।	
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोम्यनु मन्यतां त्रिवृदानर्धे मे	२१७७
आ त्वां चृतत्वयमा पूषा वृहस्पतिः ।	
अहर्जातस्य यन्नाम तेन त्वातिं चृतामसि	२१७८
ऋतिभिर्घृतिवैरायुषे वर्चसे त्वा ।	
संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृणमसि	२१७९
यूतादुल्लुभं मधुना समक्त भूमिदंहमच्युत पारयिष्णु ।	
भिन्दत् सपत्नानर्धरांश्च कृण्वदा मां रोह सहते सौभगाय	२१८०

(अथर्व० ६ । ३६ । १-३ । गायत्री ।)

ऋतावानं वैश्वानरम् ऋतस्य ज्योतिषुस्पतिम् । अजस्र घर्ममीमहे	२१८१
ग विश्वा प्रति चाकल्प ऋतंरुत्सृजते वशी । यज्ञस्य वयं उत्तिरन्	२१८२
अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सत्राडेको वि राजति	२१८३

(अथर्व० ६ । ११० । २-३ । त्रिष्टुप् ।)

ज्येष्ठ्यां जातो निचृतेर्यमस्य मूलवर्हेणात् परिं पात्नेनम् ।	
अत्येनं नेपद् दुरितानि निश्वा दीर्घायुस्त्वार्यं शतशारदाय	२१८४
व्याग्रेऽह्यथजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।	
ग मा वधीत् पितरं वर्षमानो मा मानरं प्र मिनीजनित्रीम्	२१८५

(अथर्व० ६ । १११ । १-४ । अनुष्टुप्, २१८६ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् ।)

इमं मे अग्रे पुरुषं मुमुग्धु—यं यो वृद्धः सुर्यतो लालपीति ।
 अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति २१८६
 भेष्टे नि शमयतु यदि ते मनु उच्यतम् । कृणोमि विद्वान् भेषुजं यदानुन्मदितोऽसति २१८७
 नसादुन्मदितम् उन्मत्तं रक्षसुस्परिं । कृणोमि विद्वान् भेषुजं यदानुन्मदितोऽसति २१८८
 स्त्वा दुरप्सरसुः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः । पुनस्त्वा दुर्विश्वं देवा यदानुन्मदितोऽसति २१८९

(अथर्व० ६ । ११२ । १-३ । त्रिष्टुप् ।)

मा ज्येष्ठं वधीद्वयमग्न एषां मूलवर्हेणात् परिं पाह्वेनम् ।
 स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वं २१९०
 उन्मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां त्रयस्त्रिभिरुत्सिता येभिरासन् ।
 स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान् २१९१
 येभिः पाशैः परिवित्तो विद्वदो ऽङ्गैश्चङ्ग आर्पित उत्सितश्च ।
 वि ते मुच्यन्तां विसृञ्चो हि सन्ति भ्रूणानि पूषन् दुर्गितानि मृक्ष्व २१९२

(अथर्व० ७ । ३४ (३५) । १ ॥ जगती ।)

अग्रे जातान् प्र णुदा मे सपन्नान् प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
 अघस्पदं कृणुष्व ये पूतन्यवो ऽनागमस्ते व्यमर्दितये स्याम २१९३

(अथर्व० ७ । ३५ [३६] १-३ ॥ त्रिष्टुप्, २१९४ अनुष्टुप् ।)

प्रान्यान् त्सपन्नान् त्सहसा सहस्व प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
 इदं राष्ट्रं पिंपूहि सामगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः २१९४
 इमा यास्ते शतं द्विराः सहस्रं धमनीरुत ।
 तासां ते सर्वासामह—मश्मन्ता विलमर्षधाम् २१९५
 परं योनेरवरं ते कृणोमि मा त्वां प्रजाभि भूमोत घनुः ।
 अस्वैः त्वाप्रजसं कृणोम्य—श्मानं ते अपिधानं कृणोमि २१९६

(अथर्व० ७ । ३६ [३७] । ४ ॥ अनुष्टुप् ।)

व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा मुमना दीदिहीद् ।
 तं त्वा व्यं जातवेदुः समिदं प्रजावन्त उषं मदेम सर्वे २१९७

(अथर्व० ७ । ७८ (८३) १-२ ॥ २१९८ परोष्णिक्, २१९९ त्रिष्टुप् ।)

वि ते मुञ्चामि रक्षणां वि योक्त्रं वि नियोजनम् । इहैव त्वमर्जस एष्यमे २१९८
अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन ।
दीदिवह्यस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्रेमं वोचो हविदां देवतासु २१९९

(अथर्व० ७ । १०६ [१११] । १ । वृहतीगर्भा त्रिष्टुप् ।)

यदस्मृति चक्रुम किं चिदग्न उपारिम चरणे जातवेदः ।
ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः २२००

(अथर्व० ७ । ११५ [१२०] १-४ ॥ अनुष्टुप्, २२०२-३ त्रिष्टुप् ।)

प्र पतितः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत । अयस्मयेनाङ्केन द्विपुते त्वा संजामसि २२०१

या मां लक्ष्मीः पतयात्खरजुष्टा भिच्छस्कन्दु चन्दनेव वृक्षम् ।
अन्यत्रास्मत् संजितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः २२०२

एकशतं लक्ष्म्योऽं मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुपोऽधि जाताः ।
तासां पार्ष्णिना निरितः प्र हिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ २२०३

एता एना व्याकरं सिले गा विष्टिता इव ।
रमन्तां पुण्यां लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् २२०४

(अथर्व० १९ । ३ । १-४ ॥ त्रिष्टुप्, २२०६ सुरिक् ।)

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तारिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अघ्योर्पधीभ्यः ।
यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्ततस्तुतो जुपमाणो न एहि २२०५

यस्तं अप्सु महिमा यो वनेषु य ओर्पधीषु पशुप्यस्त्रन्तः ।
अग्ने सर्वास्तन्वः सं रभस्त्र ताभिर्न एहि द्रविणोदा अर्जसः २२०६

यस्तं देवेषु महिमा स्रुगां या ते तनूः पितृप्रातिवेश ।
पुष्टियां ते मनुष्येषु पत्रये ऽग्ने तया रथिमम्मासु धेहि २२०७

श्रुत्पर्णाप कथये वेद्याय वचांभिर्वाकरुपं यामि रातिम् ।
यतो भयमभयं तन्नो अस्त्र देवानां यज हेडो अग्ने २२०८

अथर्व० १९ । ४ । १-४ ॥ त्रिष्टुप्, २२०९ पद्यपदा चिरादितिजगती, २२१० जगती ।

यामाहुर्वि प्रथमामर्षवां यां जाता या हृष्यमर्कणोजातवेदाः ।
तां मे एतां प्रथमो जौहर्षामि ताभिष्टुतो वंदतु हृष्यमग्नि-रभ्ये स्वाहा २२०९

आकृतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु । यामाशामेमि केवली सा मै अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम्	२२१०
आकृत्या नो बृहस्पत आकृत्या न उपा गहि । अथो भगस्य नो धेहि अथो नः सुहवो भव	२२११
बृहस्पतिर्म आकृतिमाङ्गिरमः प्रति जानातु वाचमेताम् । यस्य देवा देवताः संवभूतुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान्	२२१२

(अथर्व० १२ । ३७ । १-४ ॥ २०६३ त्रिष्टुप्; २२१४ आस्तारपांक्तिः; २०१५ त्रिपदा महाबृहती;
२०१६ पुरोष्पिष् ।)

इदं वचीं अग्निना दत्तमागन् भगो यशः सह ओजो वयो बलम् । त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्याग्निः प्र ददातु मे	२२१३
वर्च आ धेहि मे तन्वांके सह ओजो वयो बलम् । इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्यायि प्रति गृह्णामि शतशरदाय	२२१४
ऊर्जे त्वा बलाय त्वौर्जसे सहसे त्वा । अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशरदाय	२२१५
श्रुतस्यैधर्तवेभ्यो माञ्चः संवत्सरेभ्यः । धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे	२२१६

(अथर्व० ४ । १४ । १-२ । शृगुः । त्रिष्टुप्; २०१८, २०२० अनुष्टुप्; २०१९ प्रस्ताप्यङ्क्तिः;
२०२३, २०२५ जगती; २०२४ पञ्चपदातिशक्ती ।)

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात् सो अपश्यज्जनिवारमग्रे । तेन देवा देवतामग्र आयन् तेन रोहान् रुरुहुर्मेष्यासः	२२१७
क्रमध्वमग्निना नाक-मुग्ध्यान् हस्तेषु विभ्रतः । दिवस्पृष्टं स्वर्गित्वा मिश्रा देवभिराध्वम्	२२१८
पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षम् आरुहमन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् । दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरंगामहम्	२२१९
स्वर्पुर्यन्तो नापेधन्त आ धां रोहन्ति रोदसी । यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्रामो धितेन्निरे	२२२०

अग्ने ग्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम् ।
 इयक्षमाणा भृगुभिः सजोपाः स्वर्गिन्तु यजमानाः स्वस्ति २२२१
 अजमनञ्चि पर्यसा घृतेन द्विव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम् ।
 तेन गोप्म सुकृतस्य लोकं स्वर्गारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् २२२२
 पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभिर्दव्योद्धर पञ्चधैतमौदनम् ।
 प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् २२२३
 प्रतीच्यां दिशि भसदमस्य धेहि उत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम् ।
 ऊर्ध्वायां दिश्युजस्यानूकं धेहि दिशि ध्रुवायां धेहि पाजस्यं अन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य २२२४
 शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वैरङ्गैः संभृतं विश्वरूपम् ।
 स उत्तिष्ठतो अभि नाकमुत्तमं पद्भिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु २२२५

(अथर्व० ७ । ८४ । १ । जगती ।)

अनाभृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडग्ने धत्रभृद् दीदिहीह ।
 निश्वा अमीथाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवाभिरथ परि पाहि नो गयम् २२२६

(अथर्व० ७ । १०८ [११३] । १-०॥ २००७ वृहतीगमां त्रिष्टुप्, ००२८ त्रिष्टुप् ।)

यो नस्तायद् दिप्मति यो न आविः स्वो पिद्वानरणो वा नो अग्ने ।
 प्रतीच्येत्वरणी द्रत्वती तान् स्मैषामग्ने वास्तु भूमो अपत्यम् २२२७

यो नः सुसाज्ञाप्रतो वाभिदासान् निर्ष्टतो वा चरतो जातवेदः ।
 वैश्वानरेण सयुजां सजोपास् तान् प्रतीचो निर्देह जातवेदः २२२८

(अथर्व० वां १२ । ० । १-१३, ३३-५१॥ त्रिष्टुप्, ०२३०, ०२३३, ००३८-४५, ००४७-४९, २२५१-५४, २२५६, ००६४, २०६७ अनुष्टुप् (०२४० वक्षुम्मती परावृहती, ०२४४ निचृत्, २०५३ पुरस्तात्क्षुम्मती) । २२३१ धारस्तरपदङ्गितः, २२३४ भुरिगार्थी पङ्क्तिः २२५८ जगती; २२६१-६२ भुरिगु, २२३५ अनुष्टुप्गमां विपर्ययनाद्दृष्टमा पङ्क्तिः । २२५० पुरस्ताद्गृहती, ००५५ त्रिष्टुप् एका० भुरिगार्थी गायत्री, २२५३ एका० द्विष्टुप् आर्वा गृहती, ००५९ एका० द्विष्टुप् सास्त्री त्रिष्टुप्, २२६० पञ्चपदा बाह्वतवैराजगमां जगती; २२६३ उपरिष्ठाद्विराद् गृहती, ००६५ पुरस्ताद्विराद् गृहती, २२६८ गृहतीगमां ।)

नडमा रोट न ते अग्रं लोक इदं सीसं भागुधेयं तु एहि ।

यो गोषु यक्ष्मः पुर्येषु यक्ष्मस्तेन त्वं माकमधराद् परेहि २२२९

अप्रधंसद्गुःश्रमाभ्यां कुरेणानुरेणं च । यक्ष्मं च मयं तेनेतो मृत्युं च निरंजामसि २२३०

निरितो मृत्युं निर्रति निररातिमजामसि ।

यो नो द्वेष्टि तमद्दघमे अक्रव्याद्यमुं द्विप्मस्तमुं ते प्र सुवामसि २२३१

यद्यग्निः क्रव्याद्यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविशेयान्योकाः ।

तं मापाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुपदोऽप्यग्नीन् २२३२

यच्चा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते । सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोदीपयामसि २२३३

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।

पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वार्थं शतशरिदाय २२३४

यो अग्निः क्रव्यात् प्रविशेशं (क्र० १० । १६ । १०) (१५६६)

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं (१० । १६ । ९) (१५६६)

क्रव्यादमग्निमिषितो हेरामि जनान् दहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।

नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितृणां लोकेऽपि भागो अस्तु २२३५

क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्र हिणोमि पथिभिः पितृयार्णैः ।

मा देव्यानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृपुं जागृहि त्वम् २२३६

समिन्धते संकंसुके स्वस्वये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।

जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति २२३७

देवो अग्निः संकंसुको द्विवस्पुष्टान्यारुहत् ।

मुच्यमानो निरेणसो ऽसौगस्माँ अशस्त्याः २२३८

अस्मिन् वयं संकंसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।

अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूषि तारिषत् २२३९

संकंसुको विकंसुको निरुयो यथ निस्तरः । ते ते यक्ष्मं सर्वेदसो दूराद् दूरमनीनशन् २२४०

यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोप्राजाविषुं क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः २२४१

अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा ।

निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः २२४२

यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत । तस्मिन् घृतस्तापो मृष्टा त्वमग्ने दिवं रुह २२४३

समिद्धो अप आहुत् म नो माम्यपक्रमीः । अत्रैव दीदृहि घग्नि ज्योक् न ग्र्यं दृग् २२४४

मीसं मृहद् नृदे पृहद्म अग्नौ संकंसुके न यत् । अघो अघ्या रामायां शीर्षक्तिमुपवर्हेण २२४५

यो नो अग्निः पितरो हृत्स्वन्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।

मध्यहं तं परिं गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् २२४६

अवावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा । प्रियं पितृभ्यं आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् २२४७

द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या । अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः २२४८

यत् कृपते यद् वनुते यच्च वृक्षेन विन्दते । सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याद्येदनिराहितः २२४९

अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनैन हरिश्चवे । छिनत्ति कृप्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्तते २२५०

मुहुर्गृह्यैः प्र वदत्यातिं मर्त्यो नीत्यं । क्रव्याद्यानुगिरन्तिका दनुविद्यान्वितारति २२५१

ग्राह्यां गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्त्रियते पतिः ।

ब्रह्मैव विद्वानेप्योऽं यः क्रव्यादं निरादधत् २२५२

यद् रिशं शर्मलं चकृम यच्च दुष्कृतम् । आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वभेः संकसुकाच्च यत् २२५३

ता अघरादुदीचीरावृत्रन् प्रजान्तीः पथिभिर्देवयानैः ।

परतस्य वृषभस्याधिं पृष्ठे नवाश्वरन्ति सुरितः पुराणीः २२५४

अग्ने अक्रव्याग्निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह २२५५

इमं क्रव्यादा निवेशाय क्रव्यादुमन्वगात् । व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् २२५६

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणाम् । अग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः २२५७

जीरानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितृणां लोकमपि गच्छतु ये मृताः ।

सुगार्हपत्यो रितपन्नरातिम् उपांशुपां श्रेयसीं धेह्यस्मै २२५८

सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासुं धेहि २२५९

इममिन्द्रं यद्विं परिमन्वारंभघ्नं स वो निर्वक्षद् दुरितादवघ्यात् ।

तेनापं हतं शर्हमापतन्तं तेनं रुद्रस्य परिं पातास्ताम् २२६०

अनुद्गार्हं प्लवमन्वारंभघ्नं स वो निर्वक्षद् दुरितादवघ्यात् ।

आ रोहव स रितुर्नार्वमेतां पृद्भिर्गोभिरमतिं तरेम २२६१

अरोराग्ने अन्वेषि विश्रन् क्षेम्यिस्तृष्टन् प्रतरणः सुवीरः ।

अनांतरान् न्युमनंमस्त्वपु विश्रन् ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि २२६२

ते देवेभ्य आ वृधन्ते पापं जीरन्ति मर्तुदा । क्रव्याद्यानुगिरन्तिकादंश्च हवानुवर्षते नृदम् २२६३

यज्ञिभ्रदा धनफाम्पात् क्रव्यादां ममासते । ते वा अन्येषां कूर्मिां पर्यादधति सर्वदा २२६४

१ पिपतिपति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः । क्रव्याद्यान्प्रिरन्तिका दनुविद्वान्प्रितावति २२६५
 अविः कुप्या भांगुधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं तं आहुः ।
 मापां पिषा भांगुधेयं ते दृव्यमरण्यान्वा गह्वरं सचस्व २२६६
 इपीकां जरतीमिष्टा तिल्विज्जं दण्डनं नडम् ।
 तमिन्द्रं इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ २२६७
 प्रत्यञ्चमकं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पथां वि छाविवेश ।
 परामीषामर्द्धन्दिदेश दीर्घेणार्युषा समिमान् त्मृजामि २२६८

अथर्व० १९ । ५५ । १-६ ॥ त्रिष्टुप्; २२७० आस्तारपंक्तिः; २२७३ इयवसाना पंचपदा पुरस्ताज्ज्योतिष्मती॥)

रात्रिरात्रिमप्रयातं भरन्तो ऽश्वयिव तिष्ठते घ्रासमस्मै ।
 रायस्पोषेण समिषा मर्दन्तो मा तं अग्ने प्रविवेश रिषाम २२६९
 या ते वसोर्वातु इपुः सा तं एषा तया नो मृड ।
 रायस्पोषेण समिषा मर्दन्तो मा तं अग्ने प्रविवेश रिषाम २२७०
 सायंसायं गृहर्षतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्यं द्वाता ।
 वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्व्यं पुषेम २२७१
 प्रातःप्रातर्गृहर्षतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्यं द्वाता ।
 वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतार्हिमा ऋधेम २२७२
 अपश्वा दुग्धानस्य भूयासम् । अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्रये ।
 सुभ्यः समां मे पाहि ये च सुभ्याः संप्रासदः २२७३
 त्वमिन्द्रा पुरुहूत विश्वमायुर्च्युश्चवत् ।
 अहरहर्षलिमिन् ते हरन्तो ऽश्वयिव तिष्ठते घ्रासमग्ने २२७४

(अथर्व० कां०२, सू० २५, मं० १-४ । भृग्वहिराः । २२७१ त्रिष्टुप् २२७६-७७ विषाहर्मा, २२७८ पुरोऽनुष्टुप् ।)

यदभिरापो अर्दहत् प्रविदय यत्राकृण्वन् धर्मघृतो नमोसि ।
 तत्रं त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान् परिं शृष्टिंघ तक्मन् २२७५
 यद्यर्चिर्षदि वासिं श्रोचिः शंसल्येपि यदि वा ते जनित्रम् ।
 हूहुर्नोमासि हरितस्य देय स नः संविद्वान् परिं शृष्टिंघ तक्मन् २२७६

यदि शोको यदि वाभिःशोको यदि वा राजो वरुणस्यासि पुत्रः ।

बुद्धुर्नामांसि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृद्धिग्घ तकमन् २२७७

नमः शीतार्य तकमने नमो रुरार्य शोचिपे कृणोमि ।

यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तकमने २२७८

(अथर्व० २ । ३१ । १ ॥ अङ्गिराः । विष्टुप् ।)

ये भक्षयन्तो न वसून्यानुधु—र्यानुग्रयो अन्वतेप्यन्त धिष्ण्याः ।

या तेषामव्या दुरिष्टिः सिर्षिष्टि नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा २२७९

(अथर्व० ४ । ३९ । १, २, ९, १० ॥ अङ्गिराः । २२८० विष्टुदा महावृहती, २२८१ संस्तारपक्षिः । २२८२-८३ निष्टुप् ।)

पृथिव्यामग्रये समनमन्त्स आभ्रोत् ।

यथा पृथिव्यामग्रये समनमन्नेवा महे संनमः सं नमन्तु २२८०

पृथिवी धेनुस्तस्या अभिर्वत्सः । सा मेऽग्निना वृत्सेनेपमूर्जं कामं दुहाम् ।

आर्युः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा २२८१

अग्नावग्निञ्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उं ।

नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागम् २२८२

हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

सप्तस्यानि तव जातवेदुस्तेभ्यो जुहोमि स जुपस्व हव्यम् २२८३

(अथर्व० १ । ७ । १-७ ॥ चातनः । अनुष्टुप्, २२८८ विष्टुप् ।)

स्तुवानमश्र आ वह यातुधानं किमीदिनम् । त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्विभूविध २२८४

आज्यंस्य परमेष्ठिन् जातवेदुस्तनुरग्निन् । अग्रे तौलस्य प्राज्ञान यातुधानान् वि लोपय २२८५

वि लोपन्तु यातुधानां अस्त्रिणो ये किमीदिनः । अथेदमग्ने नो हवि—रिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् २२८६

अग्निः पूर्ण आ रभतां प्रेन्द्रो उदत्त वाहुमान् । ब्रवीतु सर्वो यातुमान् अयमस्मीत्येत् २२८७

पश्याम ते धीर्यं जातवेदुः प्र णो ब्रूहि यातुधानान्चक्षः ।

त्वया सरे परितप्ताः पूरस्तात् त आ यन्तु प्रनुवाणा उपेदम् २२८८

आ रभस जातवेदो ऽस्माकार्थीय जज्ञिपे । दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लोपय २२८९

त्वमग्ने यातुधानान् उपवदो इहा वह । अथैपामिन्द्रो वज्रेण अपि शीपाणि वृश्त २२९०

(अथर्व० १ । ८ । ३-४ ॥ २२९१ अनुष्टुप्, २२९२ बार्हतगर्गा त्रिष्टुप् ।

यातुधानस्य सोमप जृहि प्रजां नयस्व च । नि स्तुवानस्य पातय परमक्षुतावरम् २२९१

यत्रैपामग्ने जनिमानि वेत्य गुहां सुतामत्त्रिणां जातवेदः ।

तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृथानो जृहोषां शततर्हमग्ने २२९२

(अथर्व० १ । २८ । १-२ । अनुष्टुप् ।)

उप प्रागाद् देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः । दहनपं द्रयाधिनीं यातुधानान् किमीदिनः २२९३

प्रतिं दह यातुधानान् प्रतिं देव किमीदिनः । प्रतीचींः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्याः २२९४

(अथर्व० ४ । ३६ । १-१० ॥ अनुष्टुप्, २३०३ मुरिक् ।)

वान् त्सत्यौजाः प्र दह त्वभिर्वैश्वानरो वृषां । यो नो दुरस्यादिप्सा चाथो यो नो अरातियात् २२९५

यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति । वैश्वानरस्य दंष्ट्रयो ररेरपि दधामि तम् २२९६

य आंगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशेऽमावास्ये । क्रव्यादौ अन्यान् दिप्सतः सर्वास्तान् त्सहसा महे २२९७

सहै पिशाचान् त्सह मैषां द्रविणं ददे । सर्वांन् दुरस्यतो द्वन्मि सं म आकृतिर्कृष्यताम् २२९८

ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम् । नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पृथुभिर्विदे २२९९

तर्पनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव ।

श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यश्चनम् २३००

न पिशाचैः सं शकनोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः । पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे २३०१

यं ग्राममाविशत इदमुग्रं महो मम । पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते २३०२

ये मां क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनै मशका इव । तानहं मन्ये दुहितान् जने अल्पशयूनिव २३०३

अभि तं निर्झतिर्घत्ताम् अश्वमिवाश्वभिधान्यां । भ्रुवो यो मह्यं कुर्ष्यति स उ पाशान्न मुच्यते २३०४

(अथर्व० ५ । २९ । १-१५ । त्रिष्टुप्, २३०७ त्रिपदा विराणनाम गायत्री, २३०९ पुरोऽतिजगतां विराहजगती २३१५-१८ अनुष्टुप् (२३१५ मुत्किः २३१७ चतुष्पदा परापृहती फकुम्भती ।)

पुरस्ताद् युक्तो बह जातवेदो ऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।

त्वं भिपग् भैपजस्यासि कृता त्वया गामथं पुरुषं सनेम २३०५

तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह संविद्वानः ।

यो नो द्विदेवं यत्तमो जघास यथा सो अस्य परिधिप्पताति २३०६

यथा सो अस्य परिधिप्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः ।

विश्वेभिर्देवैः सह संविद्वानः २३०७

अक्षयौड् नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्दि प्र दतो मृणीहि ।
पिशाचो अस्य यतमो जघास अग्ने यविष्ठ प्रति तं मृणीहि

२३०८

यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतम् आत्मनो जग्धं यतुमत् पिशाचैः ।
तदग्ने विद्वान् पुनरा भेरु त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः

२३०९

आमे सुपक्के श्वले विपक्के यो मां पिशाचो अशने दुदम्भ ।
तदात्मनां प्रजयां पिशाचा वि यातयन्तामगदोड् यमस्तु

२३१०

क्षीरे मां मन्थे यतमो दुदम्भा कृष्टपच्ये अशने धान्येड् यः ।
तदात्मनां प्रजयां पिशाचा वि यातयन्तामगदोड् यमस्तु

२३११

अपां मा पाने यतमो दुदम्भं क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मनां प्रजयां पिशाचा वि यातयन्तामगदोड् यमस्तु

२३१२

दिवा मा नक्तं यतमो दुदम्भं क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मनां प्रजयां पिशाचा वि यातयन्तामगदोड् यमस्तु

२३१३

क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः ।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः

२३१४

सनादग्ने मृणसि यातुधानान्० (ऋ० १० । ८७ । १९) (१८४६)

सुमाहर् जातवेदो यदृतं यत् पराभृतम् । गात्राण्यस्य वर्धन्ताम् अंशुरिवा प्यायतामयम् २३१५
सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम् । अग्ने विरप्शिनं मेघ्यम् अयक्ष्मं कृणु जीवतु २३१६
एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भेनीः । तास्त्वं जुपस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः २३१७
तार्ष्टाधीरग्ने समिधः प्रति गृहाह्यचिपां । जहातु क्रव्याद् रूपं यो अस्य मांसं जिहीर्षति २३१८
(अथर्व० ० । ६ । १-५ ॥ शौनवः । त्रिष्टुप् ०३०० चतुष्पदापां पङ्क्तिः, ०३०३ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः)

समास्तवाग्ने ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या ।

मं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशथर्तसः

२३१९

मं चेष्यस्वाग्ने प्र च वर्धयेमम् उचं तिष्ठ महते साभगाय ।

मा ते रिपनुपसत्तारो अग्ने ब्रह्माणस्ते यदासः सन्तु मान्ये

२३२०

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणं भवा नः ।

गुपद्वाग्ने अभिमातिजिद् भव्य स्वे गये जागृह्यप्रपुच्छन्

२३२१

क्षत्रेणाग्निं स्वेन सं रमस्व मित्रेणाग्निं मित्रधा यतस्व ।
 सजातानां मध्यमेष्टा राजाग्ने अग्ने विहव्यो दीदिहीह २३२२
 अति निहो अति सिधो ऽत्यर्चितीरति द्विषः ।
 विश्वा ह्यग्निं दुरिता तर त्वमधास्मभ्यं महवीरं रयिं दाः २३२३

(अथर्व० ६ । १०८ । ४ । अनुष्टुप् ।)

यामृषयो मृतकृतो मेघां मेघाविनो विदुः । तया मामद्य मेघया ऽग्ने मेघाविनें कृणु २३२४

(अथर्व० ७ । ८७ (८७) । २-६ ॥ त्रिष्टुप्, २३२५ ककुम्मती वृहती, २३२६ जगती ।)

मय्यग्ने अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
 मयि प्रजां मय्यार्युर्दधामि स्वाहा मय्यग्निम् २३२५

इहैवाग्ने आर्धं धारया रयिं मा त्वा नि क्रुन् पूर्वचित्ता निकारिणः ।
 क्षत्रेणाग्निं सुयममस्तु तुभ्यम् उपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टतः २३२६

अन्वग्निरुपसामग्रमल्पदन् वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
 अनु सूर्यं उपमो अनु रश्मीन् अनु द्यावापृथिवी आ विवेश २३२७

प्रत्यग्निरुपसामग्रमल्पत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
 प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान २३२८

घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्यं घृतेन त्वां मनु रथा समिन्धे ।
 घृतं ते देवीर्निप्त्यं आ बहन्तु घृतं तुभ्यं दुःस्तां गावो अग्ने २३२९

(अथर्व० ४ । २३ । १-७ । मृगारः । त्रिष्टुप्, २३३० पुरस्ताञ्ज्योतिष्मती, २३३१ अनुष्टुप्, २३३५ प्रस्तारपङ्क्तिः ।)

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसुः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते ।
 विशोविशः प्रविशिवोसमीमहे स नो मृञ्चत्वर्हसः २३३०

यथा ह्वयं बहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयामि प्रजानन् ।
 एवा देवेभ्यः सुमतिं नु आ बह स नो मृञ्चत्वर्हसः २३३१

यामेन् यामनुष्युक्तं वहिष्टं कर्मन् कर्मन्नाभगम् ।
 अग्निमीडे रसोहर्णं यत्तवृषं युताहुतं स नो मृञ्चत्वर्हसः २३३२

सजातं जातवेदमम् अग्निं वैश्वानरं विश्वम् ।
 ह्वयवाहं हवामहे स नो मृञ्चत्वर्हसः २३३३

येन ऋषयो ब्रह्मघोतयन् युजा	येनासुराणामधुवन्त मायाः ।	
येनाग्निना पृणीनिन्द्रो जिगाय	स नो मुञ्चत्वंहसः	२३३४
येन देवा अमृतमन्वविन्दन्	येनौपधीर्मधुमतीरकृण्वन् ।	
येन देवाः स्वशूराभरन्	त्स नो मुञ्चत्वंहसः	२३३५
यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते	यज्जातं जनितुर्व्यं च केवलम् ।	
स्तौम्यमि नाशितो जोहवीमि	स नो मुञ्चत्वंहसः	२३३६

(अथर्व० ६।४९ १-२ ॥ गार्ग्यः । २३३७ अनुष्टुप्, २३३८ जगती ।)

नहि ते अग्ने तन्वः	ऋरमानंश्च मर्त्यैः ।	
ऋषिर्भस्ति तेजनं	स्वं जरायु गौरिव	२३३७
मेप इव वै सं च वि चोर्वच्यसे	यदुत्तरद्रावुपरश्च खादतः ।	
शीर्ष्णा शिरोऽप्ससाप्तौ अर्दर्यञ्	अंशन् बभस्ति हरितेभिरासभिः	२३३८

(अथर्व० २।३६।१, ३। पतिवेदनः । २३३९ त्रिष्टुप्, २३४० भुक्ति ।)

आ नो अग्ने सुमतिं सभलो गमे	दिमां कुमारीं सह नो भगेन ।	
जुष्टा वरेषु समनेषु ब्रह्म	रोषं पत्या सौभगमस्त्वस्यै	२३३९
इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट	सोमो हि राजा सुभगां कृणोति ।	
सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति	गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु	२३४०

(अथर्व० २०।२।२। शूत्समदो मेघातिथिर्वा । चिराद् गायत्री ।)

अग्निराग्नीध्रात् सुष्टुभः	स्वर्कादतुना सोमं पिबतु	२३४१
----------------------------	-------------------------	------

(अथर्व० ४।४०।१। शुक्रः । त्रिष्टुप् ।)

ये पुरस्ताद्ब्रह्मति जातवेदः	प्राच्यां दिशोऽभिदासन्त्युस्मान् ।	
अग्निमृत्वा ते पराश्वो व्यथन्तां	प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि	२३४२

(अथर्व० ३।३१।१, ६। ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।)

वि देवा जुरसावृतन्	वि स्वमग्ने अरात्सया ।	व्यंशं सर्वेण प्राप्मना	वि यक्ष्मेण समार्युपा	२३४३
अग्निः प्राणान् त्सं दधाति	चन्द्रः प्राणेन संहितः ।			
व्यंशं सर्वेण प्राप्मना	वि यक्ष्मेण समार्युपा			२३४४

(अथर्व० ५ । २६ । १ । द्विपदार्यो उष्णिक् ।)

यजैपि यज्ञे समिधः स्वाहा ऽग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु २३४५

(अथर्व० ६ । ७१ । १-३ । जगती, २३४८ त्रिष्टुप् ।)

यदन्नमग्निं बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामुजामावेम ।
यदेव किं च प्रतिजग्राहाम् अग्निष्टद्वोता सुहुतं कृणोतु २३४६यन्मा हुतमहुतमाजगाम दुत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।
यस्मान्मे मनु उदिव रारंजीत्यग्निष्टद्वोता सुहुतं कृणोतु २३४७यदन्नमभ्यनृतेन देवा द्रास्यन्नदास्यन्नत संगुणामि ।
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदुस्त्वनम् २३४८

(अथर्व० १९ । ६५ । १ । जगती ।)

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् ।
अव तां जहि हरसा जातवेदो ऽग्निभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह ह्यर्ष २३४९

(अथर्व० १९ । ६६ । १ । अति जगती ।)

अयोजाला असुरा मायिनो ऽयस्मर्यः पार्श्वरिद्धिनो ये चरन्ति ।
तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सुहस्रऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पांढि वज्रः २३५०

(अथर्व० १९ । ६४ । १-४ ॥ अनुष्टुप् ।)

अग्ने समिधमाहापं बृहते जातवेदसे । स मे श्रद्धां च मेघां च जातवेदाः प्र यच्छतु २३५१
दुष्मेन त्वा जातवेदः समिधां वर्षयामसि । तथा त्वमस्मान् वर्षय प्रजयां च घनेन च २३५२
यदमे यानि कानि चिदा ते दारुणि दुष्मसि । सर्वे तदस्तु मे शिवं तज्जुपस्व यविष्य २३५३
एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्विद्वः समिद्धव । आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमात्रार्पयि २३५४

(अथर्व० ३ । २१ । १-१० । घसिष्टः । त्रिष्टुप्, २३५५ पगोनष्टुप्, २३५६-५७, २३६० मुत्कि, २३५९ जगती, २३६० उपरिष्टाद्विराद्दृष्टती, २३६१ विराद्गमा, २३६३ निचृदनुष्टुप्, २३६४ अनुष्टुप् ।)

ये अग्रयो अर्ष्वर्षन्तर्ये वृत्रे ये पुरुषे ये अशर्मसु ।
य आविवेशोपधीयो वनस्पतीं स्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् २३५५यः सोमं अन्तर्यो गोप्सन्तर्य आविष्टो वर्यःसु यो मृगेर्यु ।
य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् २३५६

य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वद्राव्युः । यं जोहवीमि पृतनासु सासहि तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्	२३५७
यो देवो विश्वाद्यमु काममाहु—यं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः । यो धीरः शक्रः परिभूरदाभ्यस् तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्	२३५८
यं द्वा होतारं मनसाभि सविदुस् त्रयोदश भौवनाः पञ्च मानवाः । वर्चोघसें यशसें सुनृतांते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्	२३५९
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्टाय वेधसे । वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्	२३६०
दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुमंचरन्ति । ये दिक्स्वन्तये वारं अन्तस् तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्	२३६१
हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम् । विश्वान् देवानर्हिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्वाग्निम्	२३६२
शान्तो अग्निः क्रव्याच् छान्तः पुरुपरेपणः । अधो यो विश्वद्राव्युस् तं क्रव्यादमशीशमम्	२३६३
ये पर्षताः सोमपृष्टा आप उचानशीशरीः । वार्तः पर्जन्य आदग्निस् ते क्रव्यादमशीशमन्	२३६४
(अथर्वं ७ । १०९ (११४) । १-७ । यादरायणिः । अनुष्टुप् २३६५ चिराद् पुरस्ताद्गृह्णती, २३६६-६७, २३६९-७० (चिन्टुप्))	
इदमुग्र्यं वृत्रे नमो यो अक्षेर्षु तन्वयी । पृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे	२३६५
पृतमप्तराम्यो वह त्वमग्नि पांसुक्षेभ्यः सिकता अपथं । यथामागं हृष्यदाति जुषाणा मर्दन्ति देवा उमयानि हृष्या	२३६६
अप्तरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च । ता मे हस्तौ सं सृजन्तु पृतेन सपत्नं मे कित्तं रन्धयन्तु	२३६७
आदिनुवं प्रतिदीप्तं पृतनास्मां अग्नि धर । पृषामिशाश्रयां जटि यो अस्मान् प्रतिदीव्यति	२३६८

यो नो ध्रुवे धनमिदं चुकार यो अक्षाणां ग्लहनं शेषणं च ।

स नो देवो हविरिदं जुषाणो गन्धर्वोभिः सध्मादं मदेम २३६९

सर्वसन्न इति यो नामधेयम् उग्रपश्या राष्ट्रभृतो ह्यक्षाः ।

तेभ्यो व इन्द्वो हविषा विधेम वयं स्याम परयो रयीणाम् २३७०

देवान् यन्नाथितो हुवे ब्रह्मचर्यं यदपिम । अक्षान् यद् वृक्षनालमे ते नो मृडन्तीदृशे २३७१

(अथर्व० ६ । ४७ । १ । अङ्गिराः प्रचेताः । त्रिष्टुप् ।)

अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभुः ।

स नः पावको द्रविणे दधातु आर्युष्मन्तः सहर्मक्षाः स्याम २३७२

(अथर्व० ७ । ६२ (६४) । १ । मरोचिः काश्यपः । जगती ।)

अयमग्निः सत्पतिर्वृद्धवृष्णो रथीर्व पत्नीनंजयत् पुरोहितः ।

नामा पृथिव्यां निहितो दर्विद्युतद् अधस्पदं कृणुतां ये पृतन्त्यवः २३७३

(अथर्व० ७ । ६३ (६५) । १ । जातवेदाः । जगती ।)

पृतनाजितं सहमानमग्निमुक्थैर् हवामहे परमात् सधस्थात् ।

स नः पर्यदति दुर्गाणि विश्वा क्षार्मद् देवोऽतिं दुरितान्यग्निः । २३७४

(अथर्व० ८ । ३५ । १-३ । कौशिकः । गायत्री ।)

वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः । अग्निर्नः सुष्टीरुष २३७५

वैश्वानरो न आगमद् इमं यज्ञं सजूरुष । अग्निरुक्थेष्वंहसु २३७६

वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोममुक्थं च चाकल्पत् । ऐषु घृन्नं स्वयिमत् २३७७

(अथर्व० ८ । ११७ । १-३ । त्रिष्टुप् ।)

अपमित्यमप्रतीक्षं यदास्मि यमस्य येनं गलिना चरामि ।

इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्वं पाशान् विचूर्त वेत्थ सर्वान् २३७८

इहैव सन्तः प्रतिं दध एनज् जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत् ।

अपमित्यं धान्यं यज्ञघसाहम् इदं तदग्ने अनृणो भवामि २३७९

अनृणा अस्मिन्नृणाः परस्मिन् तृतीयं लोके अंरृणाः स्याम ।

ये देवपानाः पितृपाणांश्च लोकाः सर्वान् पयो अंरृणा आ क्षियेम २३८०

(अथर्व० ६ । ११८ । १-३ । त्रिष्टुप्)

यद्भस्ताभ्यां चक्रुम किल्बिपाणि अक्षाणां गन्तुमुपलिप्तमानाः ।
 उग्रंपश्ये उग्रजितौ तदद्य अप्सरसावन्तु दत्तामृणं नः २३८१
 उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिपाणि यदुक्ष्वृत्तमन्तु दत्तं न एतत् ।
 ऋणाच्चो नर्णमर्त्समानो यमस्य लोके अधिरञ्जुरायत् । २३८२
 यस्मां ऋणं यस्य ज्ञायामुर्षमि यं यार्चमानो अर्भ्यैर्मि देवाः ।
 ते वाचं वादिषुर्मोत्तरां मद्देवपत्नी अप्सरसावधीतम् २३८३

(अथर्व० ६ । ११९ । १-३ । त्रिष्टुप् ।)

यददीच्यन्नृणमुहं कृणोमि अदांस्यन्नग उत संगृणामि ।
 वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् २३८४
 वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्युणं संगरो देवतासु ।
 स एतान् पाशान् विचृत्तं वेद सर्वांन् अर्थं पक्केन सह सं भवेम २३८५
 वैश्वानरः पविता मां पुनातु यत् संगरमभिधावाभ्याशाम् ।
 अनाजानन् मनसा यार्चमानो यत् तत्रैनो अप तत् सुवामि २३८६

(अथर्व० ६ । १२१ । १, २, ४ । २३८७, २३८८, त्रिष्टुप्, २३८९, २३९० अनुष्टुप् ।)

विषाणा पाशान् वि प्याध्यस्मद् य उक्तमा अघमा वारुणा ये ।
 दुष्यस्यं दुरितं नि प्वास्मद् अर्थं गच्छेम सुकृतस्य लोकम् २३८७
 यद् दाहेणि वृध्यसे यच्च रज्यां यद् भूम्यां वृध्यसे यच्च वाचा ।
 अपं तस्माद् गार्हपत्यो नो अमिर् उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् २३८८
 वि जिहीष्य लोकं कृणु बुन्धान्शुश्राप्ति चर्द्धकम् ।
 योन्यां इव प्रच्युतो गर्भः पृथः सर्वा अनु क्षिय २३८९

(अथर्व० ६ । ७३ । १-४ कयन्धः । अनुष्टुप्, २३९२ ककुम्भती ।)

य एनं परिपीदन्ति ममादधन्ति चक्षसे । संप्रेद्धो अमिर्जिह्वाभिर उदंतु हृदयादधि २३९०
 अग्नेः मातृपुनस्याहं आर्युषे पृदमा रंभे । अद्वाविर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यतः २३९१
 यो अंघ्र्य मुमिधं वेद ध्रुप्रियेण समाहिताम् । नाभिहारे पृदं नि दधाति स मृत्यवे २३९२

नैनं मन्ति पर्यायिणो न सन्नो अर्च गच्छति । अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान् नाम गृह्णात्यायुषे २३९३

(अथर्व० ६ । ७७ । १-३ । अनुष्टुप् ।)

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिवि अस्थाद् विश्वमिदं जगत् ।

आस्थाने पर्वता अस्थु स्थाङ्गयशौ अतिष्ठिपम् २३९४

य उदानर्त् पुरायणं य उदान्पुन्यार्यनम् । आवर्तेन निर्वर्तेन यो गोपा अपि तं ह्वे २३९५

जातवेदो नि वर्तय श्रुतं ते सन्त्वाद्युतः । महसं त उपावृतस् तार्भिनः पुत्रा ऋधि २३९६

अग्निमहधारी देवगणः

१२ वैश्वानरोऽग्निः सूर्यश्च ।

(क्र० १० । ८८ । १-१९) मूर्धन्धानाद्द्विरमो, वामदेव्यो वा । सौर्य-
वैश्वानरोऽग्निः । विष्टुप् ।)

हविष्पान्तमजरं स्वर्दिदि दिविस्पृदयाहुतं जुष्टमग्नौ ।

तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्रधया पप्रथन्त २३९७

गीणं भुवनं तमसापगूळहम् आविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ।

तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापो उरणयन्नोपधीः सस्ये अस्य २३९८

देवेभिन्धिपितो यज्ञियेभिर् अग्निं स्तोपाप्यजरं बृहन्तम् ।

यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमाम् आतुतान् रोदसी अन्तरिक्षम् २३९९

यो होतासीत् प्रथमो देवजुष्टो यं समाज्जन्नाज्येना वृणानाः ।

स पतत्रीत्वरं स्था जगद् यत् श्वात्रमग्निरंक्रुणोज्जातवेदाः २४००

यजातवेदो भुवनस्य मूर्धन् अर्तिष्ठो अग्ने सह रंचनेन ।

तं त्वाहिम मतिभिर्गीभिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः २४०१

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस् ततः ध्रुवो जायते प्रातरुधन् ।

मायाम् तु यज्ञियानामेताम् अपो यत् तूर्णिश्रति प्रजानन् २४०२

दृग्नेन्यो यो महिना समिद्धो उरोधत् दिवियोनिर्विमावा ।

तस्मिन्नपौ यंक्तवाफेन देवा हविर्विधु आजुहवृस्तनृपाः २४०३

- सूक्तवाकं प्रथममादिदग्निम् आदिद्विविरजनयन्त देवाः ।
म एषां यज्ञो अभवत् तनूपास् तं द्यौर्वेदं तं पृथिवी तमापः २४०४
- यं देवासोऽर्जनयन्ताग्निं यस्मिन्नालुहवुर्भुवनानि विश्वा ।
सो अर्चिषां पृथिवीं घामुतेमाम् ऋजुयमानो अतपन्महित्वा २४०५
- स्तोमेन हि द्विवि देवासो अग्निम् अर्जीजनञ्छक्तिभी रोदसिप्राम् ।
तम् अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः २४०६
- यदेदेनमदर्घुर्यज्ञियासो द्विवि देवाः सूर्यमादितेयम् ।
यदा चरिष्णु भिंधुनावभूताम् आदित् प्रापश्यन् भुवनानि विश्वा २४०७
- विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्वामकृण्वन् ।
आ यस्ततानोपसो विभ्रातीर् अपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन् २४०८
- वैश्वानरं कवयो यज्ञियासो ऽग्निं देवा अर्जनयन्नजुर्यम् ।
नक्षत्रं व्रतमग्निं तच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तद्विषं बृहन्तम् २४०९
- वैश्वानरं विश्वहा दीदिवीसं मन्त्रैरग्निं कविमच्छां वदामः ।
यो महिम्ना परिवभूवोर्वा उतावस्तादृत देवः परस्तात् २४१०
- द्वे स्रुती अश्रुणवं पितृणाम् अहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च २४११
- द्वे समीची विभृतधरन्तं शर्पितो जातं मनसा निमृष्टम् ।
म प्रत्यद् विश्वा भुवनानि तस्था अप्रयुच्छन् तुरणिर्भार्जमानः २४१२
- यज्ञावदेते अररः परंश्च यज्ञन्वोः कतरो नां वि वेद ।
आ श्रेयुरित् सधमाद्रे मग्यो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वोचत् २४१३
- कत्यप्रयः कति श्र्यासुः कत्युपासुः कत्युं स्विदापः ।
नोपस्विजं वः पितरो यदामि पृच्छामि वः कययो विश्वने कम् २४१४
- यान्मायमुपसो न प्रतीकं गुप्योङ्के वसते मातरिश्चः ।
तारंद् दधात्युर्प यज्ञमायन् ब्राह्मणो होतुरवरो निपीटन् २४१५

१३ रक्षोहाऽग्निः ।

(ऋ० १० । १६२ । १-६ । रक्षोहा = (गर्भम्व्य दोषनिवारकः) (अत्रानुसंधेया मन्त्राः १८१३-१८६१)
रक्षोहा ब्राह्म. । अनुष्टुप् ।)

ब्रह्मणाग्निः सँविदानो रक्षोहा घोघतामितः ।	
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये	२४१६
यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।	
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्कव्यादमनीनशत्	२४१७
यस्ते हन्ति पतयन्तं निपत्सुं यः संरीसुपम् ।	
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि	२४१८
यस्तं ऊरू विहरति अन्तरा दंपती शये ।	
योनिं यो अन्तरारेच्छिह तमितो नाशयामसि	२४१९
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।	
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि	२४२०
यस्त्वा स्वमेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।	
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि	२४२१

१४ अपां-न-पादग्निः ।

(ऋ० ० । ३५ । १-१५ । गृत्समदः शौनकः । त्रिष्टुप् ।)

उपैमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।	
अपां नपादाशुहेमा कुवित् स सुपेशमस्करति जोषिपुद्धि	२४२२
इमं स्वस्मै हृद् आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत् ।	
अपां नपादसुर्वस्य मद्वा विश्वान्ययो भुवना जजान	२४२३
समन्या यन्त्युपं यन्त्यन्याः संमानमूर्वं नद्यः पृणन्ति ।	
तमु शुचिं शुचयो दीदिवान्सम् अपां नपातं परिं तस्युरापः	२४२४
तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मज्यमानाः परिं यन्त्यापः ।	
स शुक्रेभिः शिकंभो रेवद्रस्मे द्रीदायान्निष्मो घृतनिर्णिगुप्सु	२४२५

अस्मै तिस्रो अन्वथ्याय नारीर् देवार्य देवीर्दिधिपुन्त्यन्नम् ।	
कृता इवोप हि प्रसस्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वस्रनाम्	२४२६
अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वरं द्रुहो रिपः संपृचंः पाहि सुरीन् ।	
आमासुं पुरुं पुरो अप्रमृष्यं नारीतयो वि नशन्नानृतानि	२४२७
स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुम्बन्नमति ।	
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्वन्तर् वसुदेवाय विधृते वि भाति	२४२८
यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन क्रतावाजस्र उचिंया विभाति ।	
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुर्वश्च प्रजाभिः	२४२९
अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिहानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।	
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर् हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यद्वाहीः	२४३०
हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदग् अपां नपात्सेद्दु हिरण्यवर्णः ।	
हिरण्ययात् परि योनेर्निपद्या हिरण्यदा दंदत्यन्नमस्मै	२४३१
तदस्यानीकमुत चारु नाम अपीच्यं वर्धते नप्टरपाम् ।	
यमिन्वते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य	२४३२
अस्मै वह्नूनामत्रमाय सर्ये यज्ञैर्विधेम नमसा इविभिः ।	
सं सानु भार्जिम दिधिपामि विल्लैर् दधाम्यन्नैः परि वन्द क्रग्भिः	२४३३
म इं वृषाजनयत् तासु गर्भं स इं शिशुर्धयति तं रिहन्ति ।	
सो अपां नपादनमिम्लातणोऽन्यस्येवैह तन्वा विवेप	२४३४
अस्मिन् पदे परमे तस्थिवांसम् अघ्नस्मभिर्विश्वहा दीदिवांसम् ।	
आपो नप्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यद्वाहीः	२४३५
अयाममग्रे सुक्षिति जनाय अयांससु मघवद्भ्यः सुवृक्तिम् ।	
रिश्चं तद् भद्रं यदर्वन्ति देवा वृहद् वदेम विदथे सुवीराः	२४३६

१५ अग्नीन्द्रादयः ।

(प्र० ७ । ४१ । १ । यत्सिष्ठो मंत्रावरुणिः । अग्नीन्द्रमित्रावरुणाभिवभगवृषग्रहणस्पतिसोमरुद्राः । जगती ।)

प्रातरग्निं प्रातरिष्टं हवामहे प्रातर्भिर्ग्रावरुणा प्रातरश्विना ।

प्रातरभर्षं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं इवेम

२४३७

१६ अग्निर्मरुतश्च ।

(ऋ० १ । १९ । १-९ । मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।)

प्रति त्वं चारुमध्वरं	गोपीधाय प्र ह्ययमे ।	मरुद्भिरग्न आ गंहि	२४३८
नहि देवो न मर्त्यो	महस्त्व क्रतुं परः ।	मरुद्भिरग्न आ गंहि	२४३९
ये महो रजसो विदुर्	विश्वे देवामो अद्रुहः ।	मरुद्भिरग्न आ गंहि	२४४०
ये उग्रा अर्कमानुचुर्	अनाष्टथाम ओजसा ।	मरुद्भिरग्न आ गंहि	२४४१
ये शुभ्रा घोरवर्षसः	सुस्रवासो रियादसः ।	मरुद्भिरग्न आ गंहि	२४४२
ये नाकस्यार्धे रोचने	दिवि देवास आसते ।	मरुद्भिरग्न आ गंहि	२४४३
य ईद्वर्यन्ति पर्वतान्	तिरः समुद्रमर्णवम् ।	मरुद्भिरग्न आ गंहि	२४४४
आ ये तन्वन्ति रश्मिम्	तिरः समुद्रमोजसा ।	मरुद्भिरग्न आ गंहि	२४४५
अभि त्वां पूर्वपीतये	मृजामि मोम्यं मधु ।	मरुद्भिरग्न आ गंहि	२४४६

(ऋ० ८ । २०३ । १४ । सोमरिः काण्वः । अनुष्टुप् ।)

आग्नें याहि मरुत्संरया	रुद्रेभिः सोमपीतये ।	
सोमर्या उर्प सुष्टुतिं	मादर्यस्व स्वर्णरे	२४४७

१७ अग्निमित्रावरुणादयः ।

(ऋ० १ । ३५ । १ । हिरण्यस्वूप आङ्घ्रिसः । अग्निमित्रावरुणौ रात्रिः सधिता च । जगती ।)

हयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये	हयामि मित्रावरुणाधिहावसे ।	
हयामि रात्रीं जगतीं निवेशनीं	हयामि देवं सवितारंमूर्त्ये	२४४८

१८ अग्निर्वरुणश्च ।

(ऋ० ४ । १ । १-५ । धामदेवो गोतमः । त्रिष्टुप्, २४४९ अति जगती, २४५० घृतिः ।)

स आतरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ	अच्छां मुमती यजर्वनसं ज्येष्ठं यजर्वनमम् ।	
ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं	राजानं चर्षणीधृतम्	२४४९
सस्रे सस्रापमम्या ववृत्स्वाशुं न	चर्कं रथ्येयं रंधास्मम्यं दस्म रंसां ।	
अग्नें मृळीकं वरुणे सचां निदो	मरुसुं विश्वमानुषु ।	
तोकार्यं तुजे शशुचान्	शं कृष्यस्मम्यं दस्म शं कृधि	२४५०

त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्	देवस्य हेळोऽयं यामिसीष्ठाः ।	
यजिष्ठो वहितमः शोशुचानो	विश्वा द्वेषांसि प्र सुमुग्ध्युस्मत्	२४५१
स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती	नेदिष्ठो अस्या उपमो व्युष्टौ ।	
अयं यस्व नो वरुणं रराणो	वीहि मृळीकं सुहवो न एधि	२४५२

१९ अग्नाविष्णू ।

(अथर्व कां० ७ । २९ (३०) । १-२ । मेघातिथिः । त्रिष्टुप् ।)

अग्राविष्णु महि तद्वा महित्वं	पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम ।	
दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ	प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात्	२४५३
अग्राविष्णु महि धाम प्रियं वां	वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ ।	
दमेदमे सुष्ट्या वावृधानौ	प्रति वां जिह्वा घृतमुचरण्यात्	२४५४

२० अग्निसूर्यौ ।

(ऋ० ८ । ५६ । (८) ५ । बाल्यपिल्वसूक्तम् । पृषधः काण्वः । पंक्तिः ।)

अचैत्यमिथिकित्त्	ह्व्यवाद् स सुमद्रथः ।	
अग्निः शुक्रेण शोचिषां	बृहत्सरो अरोचत द्विवि सूर्यो अरोचत	२४५५

२१ (केशिनः)-अग्निः सूर्यो वायुश्च ।

(ऋ० १ । १६४ । ४४ दार्ढतमा आचव्यः । त्रिष्टुप् ।)

प्रयः केशिनं क्रतुया नि चक्षते	संवत्सुरे वपत् एक एषाम् ।	
विश्वमेकां अमि चष्टे शचीभिर्	धाजिरेकस्य ददृशे न रूपम्	२४५६

२२ अग्निसूर्यानिलाः ।

(ऋ० ८ । १८ । १ इतिम्यिठिः काण्वः । उपणिक् ।)

अग्निरग्निमिः परच्	छं नस्तपत् सूर्यः ।	शं चार्तो वातु	अरपा अपु सिषाः	२४५७
--------------------	---------------------	----------------	----------------	------

अग्निस्सूर्यवायवः ।

(ऋ० १० । १३६ । १-७ ॥ २४५८ जूतिः, २४५९ वातजूतिः २४६० विप्रजूतिः, २४६१ वृषाणकः, २४६२ करिकतः २४६३ पतशः, २४६४ ऋष्यशृङ्गः (एते वातरशना मुनयः) । (कशिनः=)
आग्नि-सूर्य-वायवः । अनुष्टुप् ।)

केश्यमि केशी विपं केशी विमतिं रोदसी ।	
केशी विश्वं स्वर्दशे केशीदं ज्योतिरुच्यते	२४५८
मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसते मला ।	
वातस्यानु ध्राजिं यन्ति यद् देवासो अविज्ञत	२४५९
उन्मदिता मौनेयेन वातां आ तंस्थिमा वयम् ।	
शरीरेदस्माकं यूयं मर्तासो अभि पश्यथ	२४६०
अन्तरिक्षेण पतति विश्वा रूपावचाकशत् ।	
मुनिर्देवस्यदेवस्य सौष्ठव्याय सखां हितः	२४६१
वातस्याश्चो वायोः सखा अथो देवेर्पितो मुनिः ।	
उमौ समुद्रावा धेति यश्च पूर्वं उतापरः	२४६२
अप्सरसां गन्धर्वाणां मुगाणां चरणे चरन् ।	
केशी केतस्य विद्वान् त्सां स्वादुर्मदिन्तमः	२४६३
वायुरस्मा उपामन्यत् पिनष्टि स्मा कुनन्नमा ।	
केशी विपस्य पात्रेण यद् रुद्रेणापिधत् सह	२४६४

अग्नीषोमो ।

(ऋ० १ । ९३ । १-१२ । गोतमो राह्वगणः । २४६५-२४६७ अनुष्टुप् । २४६८-२४७१, २४७६ त्रिष्टुप् ; २४७२ जगती त्रिष्टुप् ; २४७३-२४७५ गायत्री ।

अग्नीषोमाग्निं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् । प्रतिं सूक्तानि हर्यतुं भवंतं द्वाशुषे मयः	२४६५
अग्नीषोमा यो अद्य वांम् इदं वचः सपर्यति । तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वदर्व्यम्	२४६६
अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्भविष्कृतिम् । स प्रजयां सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यंभवत्	२४६७
अग्नीषोमा चेति तद् वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणि गाः ।	
अवातिरतुं वृमपस्य शेषो ज्विन्दतुं ज्योतिरेकं वृहुम्यः	२४६८

युवमेतानि द्विवि रौचनानि अग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।	
युवं सिन्धूरभिश्चस्तेरवुद्याद् अग्नीपोमावमुञ्चतं गृभीतान्	२४६९
आन्यं द्वित्रो मातरिश्वां जभार अमध्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।	
अग्नीपोमा ब्रह्मणा वावृधाना उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम्	२४७०
अग्नीपोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्षतं वृषणा जुषेथाम् ।	
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतम् अथा घत्तं यजमानाय शं योः	२४७१
यो अग्नीपोमा हविषा सपर्याद् देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।	
तस्यं व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम्	२४७२
अग्नीपोमा सवेदसा सहती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवधुः	२४७३
अग्नीपोमावनेन वा यो वां घृतेन दाशति । तस्मै दीदयतं वृहत्	२४७४
अग्नीपोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोपतम् । आ यातमुप नः सचा	२४७५
अग्नीपोमा पिपृतमर्वतो नु आ प्यायन्तामस्त्रिया हव्यसूदः ।	
असे बलानि मघवत्सु घत्तं कृणुतं नो अघ्वरं श्रुष्टिमन्तम्	२४७६

(अथर्व० ६ । ५४ । १-३ । ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।)

इदं तद् युज उत्तरम् इन्द्रं शुभ्राम्यष्टये । अस्य क्षत्रं धियं महीं वृष्टिरिव वर्षया तृणम्	२४७७
अस्मै क्षत्रमग्नीपोमौ अस्मै धारयतं रयिम् । इमं राष्ट्रस्याग्नीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम्	२४७८
सर्वं घृथासं वन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति । सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते	२४७९

(अथर्व० ६ । ५८ । ३ । अथर्वा (यशस्कामः) । अग्निः, इन्द्रः, सोमः । अनुष्टुप् ।)

यशा इन्द्रो यशा अग्निर् यशाः सोमो अजायत ।	
यशा विश्वस्य भूतस्य अहर्मसि यशस्तमः	२४८०

(अथर्व० ६ । ९३ । ३ । शन्तातिः । अग्निपोमौ चरुणः मरुतः वातपर्जन्यौ । त्रिष्टुप् ।)

प्रार्थघ्नं नो अघर्विषाम्यो वृषाद् विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः ।	
अग्नीपोमा चरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमुतौ स्याम	२४८१

(अथर्व० ७ । ११४ (११९) । १-० ॥ भार्गवः । अग्नीपोमौ । अनुष्टुप् ।)

आ ते ददे वृक्षणाम्य आ तेऽहं हृदयाद् ददे ।	
आ ते मुग्गस्य संकाशात् सर्वं ते वर्च आ ददे	२४८२
प्रेतो यन्तु व्याप्युः प्रातृच्याः प्रो अशस्तयः ।	
अग्नी रक्षस्त्रिनीर्हन्तु सोमो हन्तु दुरस्यतीः	२४८३



सहायक उप-विद्यामन्त्री

ब्रह्मणस्पतिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।१८।१-३)

(१-३) मेधातिथिः काण्व । गायत्री ।

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।

कक्षीर्वन्तं य औशिजः

॥ १ ॥

यो रेवान् यो अमीगृहा वंसुवित् पुष्टिवर्धनः ।

स नः सिपक्तु यस्तुरः

॥ २ ॥

मानः शंसो अररुपो घृतिः प्रणट् मर्त्यस्य ।

रक्षां णो ब्रह्मणस्पते

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १।१८०।१-८)

(४-११) इण्वो वीर । प्रगाथ =

[विपना बृहती+समा घत बृहती ।]

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्रमेहे ।

उप प्र यन्तु मरुतः सुदानु

इन्द्रं प्राशूर्भवा सचा

॥ १ ॥

त्वामिद्धि संहसस्पुत्रु मर्त्यं उपत्रूते घने हिते ।

सुरीर्यं मरुत आ स्वद्वयं

दर्शति यो व आचके

॥ २ ॥

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येत् सुनुतां ।

अच्छो वीरं नयं पृद्क्तिसाधम

देवा यद्यं नयन्तु नः

॥ ३ ॥

यो वाघते ददाति सुनरं वसु

स घत्ते अक्षिति श्रवंः ।

तस्मा इळा सुवीरामा यजामहे

सुप्रवृत्तिमनेहसम्

॥ ४ ॥

प्र नूनं ब्रह्मणस्पति-मन्त्रं वदत्युच्यम् ।

यस्मिन्निद्रो वरुणो मित्रो अर्यमा

देवा ओक्तांसि चक्रिरे

॥ ५ ॥

तमिद् वोचिमा विदथेपु शुभुनं

मन्त्रं देवा अनेहसम् ।

इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो

विशेद् वामा वो अश्रमन्

॥ ६ ॥

को देवयन्तमश्रु-जतं को वृक्तर्हिषम् ।

प्रप्रं द्राश्वान् पृस्त्याभिरस्थित

अन्तर्वावत् क्षय दधे

॥ ७ ॥

उपं सत्रं पृथ्वीत हन्ति राजभिः

भये चित्रं सुक्षितिं दधे ।

नास्यं वृतां न तरुता महाघने

नाभं अस्ति वृत्रिणः

॥ ८ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० २।२३।२, ५, ९, ११, १७, १९)

(१२-३८) गृह्यसूत्र (आश्विनः शौनहोत्रः पथ्यात्)
भाष्य । जगती, १५, १९ प्रिष्टुप् ।

गुणानां त्वा गुणपतिं हवामहे
 क्विं क्वीनामुपमश्रवस्तमम् ।
 ज्येष्ठराजं ब्रह्मणा ब्रह्मणस्पत
 आ नः शुण्वन्नूतिभिः सीदु सादेनम् ॥ १ ॥
 न तमंहो न दुरितं कुतश्चन
 नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।
 विश्वा इदंस्माद् ध्वरसो वि चाधसे
 यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥ ५ ॥
 त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते
 स्पार्हा वसुं मनुष्या दंदीमहि ।
 या नो दूरे तल्लितो या अरातयः
 अमि सन्ति जम्भया ता अनससः ॥ ९ ॥
 अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं
 निष्टम्ना शुश्रु पृतनासु सासहिः ।
 असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत
 उग्रस्य चिद् दमिता वील्लहर्षिणः ॥ ११ ॥
 विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परि
 त्पटाऽर्जनत् साम्नः साम्नः क्विः ।
 स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिः
 द्रुहो हन्ता मह क्रतस्य घर्तरी ॥ १७ ॥
 ब्रह्मणस्पते त्वमस्य युन्ता
 सूक्तस्य घोधि तनयं च जिन्व ।
 विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा
 पृहद् वंदेम विदये सुवीराः ॥ १९ ॥
 ॥ ४ ॥ (ऋ० २।२४।२-९, ११, १३-१५) जगती ।
 यो नन्त्वान्यनैमन्त्योर्जमोत
 अर्ददमन्त्युना शम्भराणि वि ।

प्राच्याविष्यदच्युता ब्रह्मणस्पतिः
 आ चाविशद् वसुमन्तं वि पथं तम् ॥ २ ॥
 तद् देवानां देवतमाय कर्तुं
 अश्रन्त् दृळ्हाव्रदन्त वीळिता ।
 उद्गा आजदभिन्दद् ब्रह्मणा वलं
 अगूहत् तमो व्यचक्षयत् स्वः ॥ ३ ॥
 अश्मास्यमवत् ब्रह्मणस्पतिः
 मधुधारमभि यमोजसाऽवृणत् ।
 तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दशः
 बहु साकं सिंसिचरुत्समुद्रिणम् ॥ ४ ॥
 सना ता का चिद् भुवना भवीत्वा
 माञ्जिः शरद्धिर्दुरो वरन्त वः ।
 अयतन्ता चरतो अन्यदन्यदिद्
 या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५ ॥
 अभिनक्षन्तो अमि ये तमानुशुः
 निधिं पणीनां परमं गुहां हितम् ।
 ते विद्वांसः प्रतिचक्षयान्तु पुनः
 यतं तु आयन् तदुदीयुराविशम् ॥ ६ ॥
 क्रतावानः प्रतिचक्षयान्तु पुनः
 आत आ तस्थुः क्वयो महस्पथा ।
 ते बाहुभ्यां धमितमग्निमश्मनि
 नकिः यो अस्त्यरणो जहुर्हि तम् ॥ ७ ॥
 क्रतज्येन क्षिमेण ब्रह्मणस्पतिः
 यत्र वाष्टि प्र तदश्रोति धन्वना ।
 तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति
 नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः ॥ ८ ॥
 स संनयः स विनयः पुरोहितः
 स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः ।
 चाक्ष्मो यद् वाजं भरते मती घनाद्
 इत् स्यंस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥ ९ ॥
 (१५)

योऽवरे वृजने विश्वया विश्वः
 महामुं रण्वः शर्वसा ववर्क्षिथ ।
 स देवो देवान् प्रति पप्रथे पृथु
 विश्वेदु ता परिर्भूत्रक्षणस्पतिः ॥ ११ ॥
 उताशिक्षा अलुं शृण्वन्ति वह्ययः
 सुभेयो विप्रो भरते मती घना ।
 वीळुद्वेषा अनु वशं ऋणमाद्रुदिः
 स ह वाजी समिथे ब्रह्मणस्पतिः ॥ १३ ॥
 ब्रह्मणस्पतेरभवद् यथावशं
 सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः ।
 यो गा उदाजत् स दिवे वि चांमजन्
 महीवं रीतिः शर्वसाऽसरत् पृथक् ॥ १४ ॥
 ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा
 रायः स्याम रथ्योऽं वयस्वतः ।
 वीरेषु वीरां उप पृळुषि नस्त्वं
 यदीशानो ब्रह्मणा वेपि मे हवम् ॥ १५ ॥
 ॥ ५ ॥ (ऋ० २।१५।१-५)
 इन्धानो अग्निं वनवद् वनुष्यतः
 कृतब्रह्मा श्शुशुवद् रातहव्य इत् ।
 जातेन जातमति स प्र संसृते
 ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ १ ॥
 वीरेभिर्वीरान् वनवद् वनुष्यतो
 गोभीं रयिं पप्रथद् बोधति त्मना ।
 तोकं च तस्य तनयं च वर्धते
 ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ २ ॥
 सिन्धुर्न क्षोद्रः शिर्षिवां ऋणायतो
 वृषेव वृधोरभि वृष्टयोर्जसा ।
 अपोरिव प्रसित्तिर्नाह वर्धे
 ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥

तस्मा अर्पन्ति दिव्या असुधतः
 स सत्त्वमिः प्रथमो गोपुं गच्छति ।
 अनिमृष्टतविषिहन्त्योर्जसा
 ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ४ ॥
 तस्मा इद्विश्वे धुनयन्त सिन्धुवः
 अस्त्रिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि ।
 देवानां सुभ्रे सुभगः स एधते
 ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५ ॥
 ॥ ६ ॥ (ऋ० २।१६।१-४)
 ऋजुरिच्छंसो वनवद् वनुष्यतो
 देवयन्निदेदेवयन्तमर्षसत् ।
 सुप्रावीरिद् वनवत् पुसुस दुष्टरं
 यन्वेदयन्त्यां वि मजाति भोजनम् ॥ १ ॥
 यजस्व वीर प्र विहि मनायतः
 मद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।
 हविष्कृणुष्व सुभगो यथाऽसंसि
 ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥ २ ॥
 स इजनेन स विश्वा स जन्मना
 स पुत्रैर्वर्ज भरते घना नृभिः ।
 देवानां यः पितरमाविवांसति
 श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥ ३ ॥
 यो अस्मि हव्यैर्घृतवङ्गिरविघ्नत्
 प्र तं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।
 उरुष्यतीमहंसो रक्षती रिपोऽं
 अहोर्धिदसा उरुचक्रिरद्भुतः ॥ ४ ॥
 ॥ ७ ॥ (ऋ० १०।१५।१-३)
 (१९-४०) विरिम्बिडो मारुदात्र । अनुष्टुप् ।
 चत्तो इतश्चामुतः सर्वा भूणान्यारुर्पा ।
 अराय्यं ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णानुद्गोहृपन्निहि ॥ २ ॥
 अदो यदाहृ प्रवते सिन्धोः पारि अपरुपम् ।
 तदा रमस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम् ॥ ३ ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० ९।८३।१)

(४१) पवित्र आह्निरस । [पवमान सोम ।] जगती ।

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते

प्रभृर्गात्राणि पर्येपि विश्वतः ।

अतस्तनुर्न तदामो अंशुते

श्रुतासु इद्वहन्त्वस्तत् समाशत ॥ १ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० १०।६७।७)

(४२) अयास्य आह्निरसः । [वृद्धस्यणि] त्रिःपु ।

स इ सत्येभिः सखिभिः शुचिभिः

गोधांसं वि धनसैरददः ।

ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैः

धर्मस्वैदेभिर्द्रिषिणं व्यानत् ॥ ७ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० १०।१७४।१)

(४३) अभीवर्ते आह्निरसः । अनुष्टुप् ।

अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृते ।

तेनास्मान् ब्रह्मणस्पते, ऽभि राष्ट्रार्यं वर्धय ॥ १ ॥

॥ ११ ॥ (चा० य० ३।२।५५)

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे

सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम् ।

सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः

तत्र जागृतो अस्वमजौ सत्रसदौ च देवौ ॥ ५५ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० १।१९।१-६)

(४५-५०) ऋषिष्ठः (अभीवर्तपणिः) । अनुष्टुप् ।

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे ।

तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्रार्यं वर्धय ॥ ११ ॥

अभिवृत्यं सपत्नानुभि या नो अरांतयः ।

अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥ २ ॥

अभि त्वा देवः संविताभि सोमो अवीवृधत् ।

अभि त्वा विश्वा मृतान्यमीवृते यथासंसि ॥ ३ ॥

अभीवर्तो अभिभवः संपन्नधर्यणो मणिः ।

राष्ट्राय मह्यं वध्यतां मुपनैम्यः पराभुवै ॥ ४ ॥

उदुमां यूपो अगादुद्विदं मामकं वचः ।

यथाऽहं शंभुहोऽमान्यमपन्नः संपन्नहा ॥ ५ ॥

सपन्नधर्यणो वृषाभिराष्टौ विपासुहिः ।

यथाऽहमेपां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥ ६ ॥

॥ १३ ॥ (अथर्व० ६।६।१)

(५१-५३) अथर्वी । अनुष्टुप् ।

योऽस्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते ।

सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥ १ ॥

(अथर्व० ६।७।१) अथर्वी । ब्रह्मणस्पतिः । अनुष्टुप् ।

सं वः पृच्यन्तां तन्वतुः सं मनोसि समु व्रता ।

सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भृगुः सं वो अजीगमत् ॥ १ ॥

(अथर्व० ६।१४।१) अथर्वी । ब्रह्मणस्पतिः । नरोऽसि ।

यो व्याघ्राववरूढो जिघंसतः पितरं मार्तां च ।

यो दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवो कृणु जातवेदः ॥ १ ॥

॥ १४ ॥ (अथर्व० ७।५।१) विपद् प्रस्तारणे ।

अयं यो वक्रो विपरुर्व्यङ्गो

मुखानि वक्रा वृजिना कुणोपि ।

तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इपीकामिव सं नेमः ॥ ४ ॥

॥ १५ ॥ (अथर्व० १९।२४।१) अनुष्टुप् ।

येन देवं संवितारं परि देवा अघारयन् ।

तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्रार्यं घत्तन ॥ १ ॥

॥ १६ ॥ (अथर्व० ६।१०।१।२-३)

(५४-५६) अथर्वी । अनुष्टुप् ।

आ वृषायस्व श्वमिहि वर्षस्व प्रथर्यस्व च ।

यथाऽङ्गं वर्धतां शेषस्तेन योषितमिज्जहि ॥ १ ॥

येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातृत् ।

तेनास्य ब्रह्मणस्पते घनुरिवा तानया पसः ॥ २ ॥

आऽहं तेनोभि ते पमो अधि ज्यारिमिव घन्ति ।

क्रमस्वशं हव रोहितमनवग्लायता सदा ॥ ३ ॥

॥ १७ ॥ (अथर्व० ८।६।१५)

(५७) मातृनामा । श्ववधाना सतपदा श्ववती ।

येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा ।

सलजाः शकधूमजा उरुण्डा ।

ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाश्रवाः ।

तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीघोर्धेन नाशय ॥ १५ ॥

(५९)

॥ १८ ॥ अथर्वं १९।८।६ ।

(५८) गम्ये । अनुष्टुप् ।

इमा या ब्रह्मणस्पते विपूचीर्वात ईरते ।

सुग्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतर्मांस्कृधि ६

॥ १९ ॥ (अथर्वं १९।६।१)

(५९-६१) मद्गा । विर द्पय्यावृहती ।

तनुस्तुन्वा] मे सहे द्रुतः सर्वमायुरशीय ।

स्योनं मे सीद पुरुः पूणस्त्रु पर्वमानः सुगो ॥ १ ॥

॥ २० ॥ (अथर्वं १९।६।२) अनुष्टुप् ।

प्रियं मां कृणु देवेषु प्रियं राजंसु मां कृणु ।

प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ २ ॥

॥ २१ ॥ (अथर्वं १९।६।३) विराडुपरिष्टाद्वृहती ।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् युवेन बोधय ।

आयुः प्राणं प्रजां पशुन् क्रीतिं यजमानं च वर्षय १

ब्रह्मणस्पति-सहचारी देवगणः

(ऋ० १।१८।८, ५)

मेधातिथि काण्व । ४ इन्द्रो ब्रह्मणस्पति-सोमश्च,
५ ब्रह्मणस्पति सोम इन्द्रो दक्षिणा च । गोयत्री ।

स धां वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।

सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥

त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् ।

दक्षिणा पातवंहंसः ॥ ५ ॥

(ऋ० १।७।१२)

सूक्तमदः (आंगिरस, सोमहात्र, पथात्) सूक्तमद शोतक-
इन्द्राब्रह्मणस्पति । त्रिष्टुप् ।

विश्व सत्यं मंधवाना सुवोरित्

आपंश्चन प्र मिन्नन्ति व्रतं वाम् ।

अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नः

अन्नं पुजेव वाजिनां जिगातम् ॥ १२ ॥

(ऋ० ६।७।१७)

पापुमारदात्र । युदभूमि-कवच-ब्रह्मणस्पत्य द्या । पृथिः ।
यत्र चाणाः सं पतन्ति कुमाराः विशिस्तो डैव ।

तत्रां नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु

विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ १७ ॥

(ऋ० ७ ९७।३, ९)

मेधावर्णिसिध । इन्द्राब्रह्मणस्पति । त्रिष्टुप् ।

तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः

सुशेनं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।

इन्द्रं श्लोको महि देव्यः सिपकु

यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥ ३ ॥

इयं वां ब्रह्मणस्पते सुभक्तिः

ब्रह्मेन्द्राय वृजिणं अकारि ।

अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीः

जजस्तमयो वनुषामरातीः ॥ ९ ॥

(अथर्वं १।१६।१)

अथर्वी । अमि, इन्द्र, विरावर्णो, अशिनो, भगः पूषा,
ब्रह्मणस्पति, सोम, इन्द्र । आर्षो जगती ।

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे

प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विनां ।

प्रातर्मगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं

प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥ १ ॥

(अथर्वं ६।४।१)

अथर्वी । त्वष्टा, पर्जन्य, ब्रह्मणस्पतिः अदिति । पथ्यावृहती ।

त्पृष्टा मे देव्यं वचंः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।

पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिनुं पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहैः १

(अथर्वं ६।५।३)

अथर्वी । अमि, धाम, ब्रह्मणस्पतिः । अनुष्टुप् ।

यस्यं कृणो हविर्गृहे तममे वर्षया त्वम् ।

तस्मै सोमो अर्धिं अवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥

(अथर्वं ७।३।०।१) सूक्तगिरा । यावापृथवी,
मित्र, ब्रह्मणस्पति उदिता च । वृहती ।

स्वाक्तं मे यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम् ।

स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत् ॥ १

॥ ८ ॥ (ऋ० ९।८३।१)

(४१) पवित्र आत्तरिष । [पवमान सोम] जगता ।

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते

प्रभृर्गात्राणि पर्येपि विश्वतः ।

अतस्तनुर्न तदामो अश्रुते

श्रुतासु इद्वहन्तस्तत् समाशत ॥ १ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० १० २७।७)

(४२) अयास्य आत्तरिष । [घृत्स्वणि] विश्व ।

स इ सत्येभिः सखिभिः शुचिभिः

गोर्घापसं वि धनसैरदर्दः ।

ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैः

धर्मस्वैदेभिर्द्रविणं व्यानत् ॥ ७ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० १०।१७।१)

(४३) अमीवर्त आत्तरिष । अनुष्टुप् ।

अमीवर्तेन हविषा येन्द्रो अभिरावृते ।

तेनास्मान् ब्रह्मणस्पते, ऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥ १ ॥

॥ ११ ॥ (वा० य० ३।५।५)

सप्त ऋषयः प्रविहिताः शरीरे

मस रक्षन्ति सदमप्रमादम् ।

सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः

तत्र जागृतो अस्मन्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥ ५ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० १।१९।१-६)

(४४-५०) अमिष्ठ (अमीवर्तमणि) । अनुष्टुप् ।

अमीवर्तेन मणिना येन्द्रो अभिरावृषे ।

तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥ १ ॥

अमिवृत्यं सपत्नानुभि या नो अरांतपः ।

अमि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्वति ॥ २ ॥

अमि त्वा देवः संविताभि सोमो अवीवृषत् ।

अमि त्वा विश्वा भूतान्यमीवृते यथासंति ॥ ३ ॥

अमीवृते अभिमयः संपन्नक्षर्यणो मणिः ।

राष्टाप मह्यं चप्यतां मुपसेस्यः पराश्वेवं ॥ ४ ॥

उदुमो यूपो अगादुदुदं मामुकं वचः ।

पथाऽर्दं श्युहोऽमान्यमपत्तः संपत्तहा ॥ ५ ॥

सपत्नक्षर्यणो वृषाभिराष्टौ विपासहिः ।

यथाऽहमेपां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥ ६ ॥

॥ १३ ॥ (अथर्व० ६।६।१)

(५१-५३) अथर्वी । अनुष्टुप् ।

योऽस्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते ।

सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥ १ ॥

(अथर्व० ६ ७।३।१) अथर्वी । ब्रह्मणस्पते । अनुष्टुप् ।

सं वः पृच्छन्तां तन्वतुः सं मनांसि समु व्रता ।

सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत् ॥ १ ॥

(अथर्व० ६ १४।०।१) अथर्वी । ब्रह्मणस्पति । अजीगमत् ।

यौ व्याघ्राववर्कूढौ जिघर्सतः पितरं मातरं च ।

यौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः ॥ १ ॥

॥ १४ ॥ (अथर्व० ७।५।१४) विराट् पृस्तागणिके ।

अयं यो वक्रो विपरुर्वर्षाङ्गो

मुखानि वक्रा वृजिना कृणोपि ।

तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इषीकामिव सं नेमः ॥ ४ ॥

॥ १५ ॥ (अथर्व० १९।१४।१) अनुष्टुप् ।

येन देवं संवितारं परि देवा अधोरयन् ।

तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय घत्तन ॥ १ ॥

॥ १६ ॥ (अथर्व० ६।१०।१।१-३)

(५४-५६) अथर्वी । अनुष्टुप् ।

आ वृषायस्व श्वमिहि वर्षेस्व प्रथयस्व च ।

यथाऽङ्गं वर्धतां शेषस्तेन योपितमिज्जिहि ॥ १ ॥

येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातरम् ।

तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुर्निवा तानया पसे ॥ २ ॥

आऽहं तनेमि ते पमो अधि ज्वामिन् घन्ति ।

क्रमस्वशं हव रोहितमनवग्लायता सर्दा ॥ ३ ॥

॥ १७ ॥ (अथर्व० ८।६।५)

(५७) मातृनामा । स्ववसाना घतयदा घन्वती ।

येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पाण्णीः पुरो मुहतां ।

सलजाः शकधूमजा उरुण्डा

ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाश्वः ।

तानुस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीषोधेन नाशय ॥ १ ॥

(५८)

॥ १८ ॥ अथर्वं १९।८।६ ।
(५८) गार्ग्यः । अनुष्टुप् ।

इमा या ब्रह्मणस्पते विपूचीर्वात ईरते ।

सुप्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मर्हं शिवतमोःस्तुधि ६

॥ १९ ॥ (अथर्वं १९।६।११)

(५९-६१) ब्रह्मा । विर ट्पथ्यावृद्धी ।

तनूस्तन्वा मे सहे द्रुतः सर्वमायुरशीय ।

स्योनं मे सीद पुरुः पूणस्व पवमानाः स्वर्गो ॥ १ ॥

॥ २० ॥ (अथर्वं १९।६।२१) अनुष्टुप् ।

प्रियं मां कृणु देवेषु प्रियं राजसु मां कृणु ।

प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ २ ॥

॥ २१ ॥ (अथर्वं १९।६।३१) विण्डुगतिष्ठाद्वृद्धी ।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् युजेन बोधय ।

आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वृक्षिय १

ब्रह्मणस्पति-सहचारी देवगणः ।

(ऋ० १।१।८।४, ५)

मेधातिथिः काण्डः । ४ इन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः सोमश्च,

५ ब्रह्मणस्पतिः सोम इन्द्रो दक्षिणा च । गोयनी ।

स या वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।

सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥

त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् ।

दक्षिणा पात्वंहसः ॥ ५ ॥

(ऋ० २।२४।१०)

गृहममदः (आगिरसः, शौनहोत्रः, पश्चात्) गृहममदः शौनकः ।

इन्द्राब्रह्मणस्पती । त्रिष्टुप् ।

विश्वं सत्यं मधवाना युवोरिव्

आपंश्चन प्र मिनन्ति व्रतं चाम् ।

अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविनिः

अन्नं युजेव वाजिनां जिगातम् ॥ १२ ॥

(ऋ० ६।७५।१७)

पाशुमरदात्र । पुदभूमि-कवच-ब्रह्मणस्पत्य द्यां पृथिवी ।

यत्र चाणाः सं पतन्ति कुमाराः विंशितो इव ।

त्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु

विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ १७ ॥

(ऋ० ७ ९।७।१, ९)

मेधावर्धनार्थमिन्द्रः । इन्द्राब्रह्मणस्पति । त्रिष्टुप् ।

तमु ज्येष्ठं नमसा हविभिः

सुशुभं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।

इन्द्रं शोको महि देव्यः सिपक्तु

यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥ ३ ॥

इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिः

ब्रह्मेन्द्राय वृज्जिणं अकारि ।

अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीः

जजस्तमयो वृनुषामरातीः ॥ ९ ॥

(अथर्वं २।१६।१)

अथर्वी । धामिः, इन्द्रः, त्रिभ्रावण्यो, अश्विनो, मगः, पूषा,
ब्रह्मणस्पतिः, सोमः, रदः । आयो अगती ।

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे

प्रातमिन्नावर्हणा प्रातरश्विनां ।

प्रातमर्गं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं

प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥ १ ॥

(अथर्वं ६।४।१)

अथर्वी । रदरा, पञ्चमः, ब्रह्मणस्पतिः अदितिः । पश्यावृद्धी ।

त्वष्टा मे देव्यं वचंः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।

पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिरु पांत नो दुष्टं त्रायमाणं सहः १

(अथर्वं ६।५।१)

अथर्वी । अग्नि, सोमः, ब्रह्मणस्पतिः । अनुष्टुप् ।

यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्षया त्वम् ।

तस्मै सोमो अर्धिं अवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥

(अथर्वं ७।३।०१) सुवर्गिरा । यावापृथिवी,
मित्रः, ब्रह्मणस्पतिः कथिता च । वृद्धी ।

स्वाक्तं मे यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम् ।

स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत् ॥ १



सहायको द्वितीय उप-विद्यामन्त्री

बृहस्पतिः ।

॥ १ ॥ (अ० १।१३९-१०)

(१) पदच्छेपो देवोराधिः । अथष्टिः ।

होवां यक्षश्च वनिर्नो वन्त वायं
 पृहस्पतिर्विजति चेन उद्यमिः पुरुवारोभिरुधभिः॥
 जगुम्मा दूरश्रीदिशुं श्लोकमद्रेरध् स्मना ।
 अधोरपदरिन्दानि सुकृतः
 पुरु सपानि सुकृतः ॥१०॥

॥ १ ॥ (अ० १।१९०।१-८)

(१-९) अथष्टो मेत्रावरणिः । त्रिष्टुप् ।

अनुवाणो वृषमं मन्द्रजिह्वं
 पृहस्पतिं वर्षेया नर्ष्यमर्कः ।
 गायान्यः मरुषो यस्य देवा
 श्रीमृषन्ति नर्षमानस्य मतोः ॥ १ ॥

तमृषिया उप वाचः सचन्ते
 मतो न यो देव्यतामर्षिजि ।
 पृहस्पतिः स वाशो वरांसि
 विश्वामर्षवृ सप्तते मोतरिषा ॥ २ ॥

उर्वस्तुनि नर्मसु उर्वति च
 शोकं यमसु सवितेव प्र वाह ।
 अस्य मग्वाहन्वोः यो अरिं
 मृतो न भीमो अरधगन्तुर्विष्मान् ॥ ३ ॥

अस्य श्लोको द्विवीर्यते पृथिव्या
 अत्यो न यस्य यक्षभृद् विचेताः ।
 मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा
 बृहस्पतेराहिमायां अभि घ्नन् ॥ ४ ॥

ये त्वा देवोस्त्रिकं मन्षमानाः
 पापा भद्रसंप्रजीवन्ति पजाः ।
 न दूदयेः अतुं ददासि वामं
 बृहस्पते चर्यसु इत् पियारुम् ॥ ५ ॥

सुमैतुः सुयवसो न पन्था
 दुर्निपन्तः परिप्रीतो न मिथः ।
 अनुवाणो अभि ये चक्षते नः
 अपीवृता अपोर्णवन्तो अस्पुः ॥ ६ ॥

सं यं स्तुमोऽवर्नयो न यन्ति
 समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।
 स विद्रो उमयं षष्टे अन्तर
 पृहस्पतिस्तर आपश्च मृधः ॥ ७ ॥

एवा मृहस्तुविजातस्तुविष्मान्
 पृहस्पतिर्वृषमो वापि देवाः ।
 स नः स्तुतो धीरवद् धातु गोमद
 विद्यामं पृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥ (८)

॥ ३ ॥ (ऋ० १।०३।१-४, ६-१०, १२-१६, १८)

(१०-२५) यत्समद शोनक । जगती, १५ भिष्टुप् ।

देवाश्चित् ते असुर्य प्रचेतसः
 बृहस्पते यद्विष्यं भागमानशुः ।
 उस्त्रा इव क्षयो ज्योतिषा महः
 विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥ २ ॥
 आ विवाच्या परिरापस्तमांसि च
 ज्योतिष्मन्तं रथंमृतस्य तिष्ठसि ।
 बृहस्पते मीमर्षमिन्द्रममं
 रक्षोहर्षं गोत्रमिदं स्वविदम् ॥ ३ ॥
 सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं
 यस्तुभ्यं दाशान्न तमहो अश्रवत् ।
 ब्रह्मद्विपुस्तर्पनो मन्युमीरंसि
 बृहस्पते महि सत् तं महिस्त्रुनम् ॥ ४ ॥
 त्वं नो गोपाः पथिकुद् विचक्षणः
 तव व्रतार्यं मृतिभिर्जामहे ।
 बृहस्पते यो नो अभि ह्रोरो दुषे
 स्वा तं मर्मर्तु दुच्छुना हरस्वती ॥ ६ ॥
 उत वा यो नो मर्चयादनागसः
 अरातीवा मर्तः सानुको वृकः ।
 बृहस्पते अप तं वर्तया पथः
 सुग नो अस्य देववीतये कृषि ॥ ७ ॥
 श्रतारं त्वा तनुना हवामहे
 अवस्पतेरधिवृत्कारमस्मयुम् ।
 बृहस्पते देवनिद्रो नि बहेय
 मा दुरेवा उत्तरं सुम्रमृन्मृन् ॥ ८ ॥
 त्वयो व्यमृत्तमं धीमहे वयो
 बृहस्पते परिणा सलिना युजा ।
 मा नो दुःशंसो अभिद्रिप्सुरीश्रुत्
 प्र मुशंसो मृतिभिस्तारिषीमहि ॥ १० ॥

अदेवेन मनसा यो रिपुण्यति
 शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।
 बृहस्पते मा प्रणक् तस्य नो वधो
 नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्षतः ॥ १२ ॥
 मरेषु हव्यो नमसोपसद्यो
 गन्ता वाजेषु सनिता घनघनम् ।
 विश्वा इदुर्यो अभिद्रिप्सवोऽं मृधो
 बृहस्पतिर्वि ववर्हा रथो इव ॥ १३ ॥
 तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप
 ये त्वा निदे दधिरे हृष्टवीर्यम् ।
 आविस्तत् कृष्व यदसत् त उक्थयं
 बृहस्पते वि परिरापो अर्दय ॥ १४ ॥
 बृहस्पते अति यदुर्यो अर्हाद्
 शुमद् विभाति क्रतुमजनेषु ।
 यद्दीदयच्छवंस क्रतुप्रजात्
 तदुस्मासु द्रविणं घेहि चित्रम् ॥ १५ ॥
 मा नः स्तेनेभ्यो ये अभि ब्रहस्पदे
 निरामिणो रिपवोऽन्त्रेषु जागृधुः ।
 आ देवानामोहते वि त्रयो हुदि
 बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥ १६ ॥
 तव श्रियं व्यजिहीत पर्वतो
 गवां गोत्रमुदसंजो यदङ्गिरः ।
 इन्द्रेण युजा तमसा परीवृत
 बृहस्पते निरपामीञ्जो अर्णवम् ॥ १८ ॥
 ॥ ४ ॥ (ऋ० १।१४ १, १०) जगती ।
 सेमामविद्वि प्रमृति य ईशिपे
 अया विभिम नवया महा गिरा ।
 यथा नो मीद्धान्स्तवते मग्ना त
 बृहस्पते सीषघः सोत नो मृतिम् ॥ १ ॥

विभु प्रभु प्रथमं मेहनोवतः ।
 वृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या ।
 इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो
 येन जनो उभये भुञ्जते विशः ॥ १० ॥
 ॥ १ ॥ (क्र० २३०९) त्रिष्टुप् ।
 यो नः सनुत्य उत वा जिघ्रस्तुः
 अभिरुषाय तं विंगितेन विध्य ।
 वृहस्पत आर्युधैर्जेपि शत्रून्
 द्रुहे रीपन्तं परि धेहि राजन् ॥ ९ ॥
 ॥ ६ ॥ (क्र० ३६१३४-६)
 (२६-२८) त्रियामित्यो गायिनि । गायत्री ।
 वृहस्पते जुपस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य ।
 रास्व रतानि द्वाशुषे ॥ ४ ॥
 शुचिर्मर्कवृहस्पतिं मधुरेषु नमस्त ।
 अनाम्योज आ चंके ॥ ५ ॥
 वृषमं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम् ।
 वृहस्पति वरेण्यम् ॥ ६ ॥
 ॥ ७ ॥ (क्र० ४११०१-९)
 (२९-३०) वामदेवो गौतम । त्रिष्टुप्, १० अगती ।
 यस्तुस्तम् सहसा वि ज्मो अन्तान्
 वृहस्पतिस्त्रिपद्यस्यो र्वेण ।
 तं प्रत्नासु ऋषयो दीर्घानाः
 पुरो विप्रो दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १ ॥
 घुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो
 वृहस्पते अमि ये नस्तत्ते ।
 पृषन्तं सुप्रमदं चमूर्ध
 वृहस्पते रथतादस्य योनिम् ॥ २ ॥
 वृहस्पते या परमा परावद्
 अत आ तं ऋतुस्पृशो नि पेंदुः ।
 सुभ्यं रागा अरुता अद्रिदुग्धा
 मर्ष्यः धोतन्यमितो विरप्यम् ॥ ३ ॥

वृहस्पतिः प्रथमं जायमानः
 महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
 मत्तास्यस्तुविजातो र्वेण
 वि सुतरिश्मिरश्मन् तमांसि ॥ ४ ॥
 स सुष्टुभा, स ऋकता गुणेन
 वलं हरोज फलिगं र्वेण ।
 वृहस्पतिरुस्रियां, हव्यस्रद्रुः
 कर्निक्रदुद् वावशतीरुदाजत् ॥ ५ ॥
 एवा पित्रे, त्रिश्चर्देवाय, वृष्णे-
 यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्मिः ।
 वृहस्पते सुप्रज्ञा-वीरवन्तः
 वयं स्याम परतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥
 म इद् राजा प्रतिजन्यानि विश्वा
 शुष्मेण तस्यावाभि वीर्येण ।
 वृहस्पति यः सुभृतं विभर्ति
 वल्गुयति वन्दते पूर्वभाजम् ॥ ७ ॥
 स इत् क्षेति सुधित ओकसि स्वे
 तस्मा इळां पिन्वते विश्वदानीम् ।
 तस्मै विशः स्रयमेवा नमन्ते
 यस्मिन् ब्रह्मा राजन्ति पूर्व एति ॥ ८ ॥
 अप्रतीतो जयति सं धनानि
 प्रतिजन्यान्युत या सजन्या ।
 अवस्यये यो वरिषः कुणोति
 ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥ ९ ॥
 ॥ १० ॥ (क्र० ६७१११-३)
 (३०-४०) महाभारो बार्हस्पत्य । त्रिष्टुप् ।
 यो अद्रिभित् प्रथमजा क्रुतावा
 वृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
 द्विचर्हजमा प्राधर्मसत् पिता न
 आ रोदसी वृषभो रोरपीति ॥ १ ॥ (१११)

जनाय चिद् य ईर्वत उ लोकं
 बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
 मन् बुत्राणि वि पुरो ददर्शीति
 जयच्छत्रमित्रान् पुत्सु साहन् ॥ २ ॥
 बृहस्पतिः समजयद् वसूनि
 महो ब्रजान् गोर्मतो देव एपः ।
 अपः सिपांसन्स्वभ्रप्रतीतो
 बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमकैः ॥ ३ ॥
 ॥ ९ ॥ (ऋ० ७१७१२, ४-८)
 मन्त्रावर्षाणर्वशिष्ठः । त्रिष्टुप् ।
 आ दैव्या वृणीमहेऽवांसि
 बृहस्पतिर्नो मह आ सखायः ।
 यथा भवेम मीळ्ह्ये अनाशा
 यो नो दाता परावतः पितेव ॥ २ ॥
 स आ नो योनिं सदतु प्रेष्यो
 बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति ।
 कामो रायः सुवीर्यस्य तं दातु
 पर्यन्तो अति सुशतो अरिष्टान् ॥ ४ ॥
 तमा नो अर्कममृताय जुष्टं
 इमे चासुरमृतांसः पुराजाः ।
 शुचिकन्दं यजतं पुस्त्यानां
 बृहस्पतिमनुवाणं हुवेम ॥ ५ ॥
 तं शुम्भासो अरुपासो अश्वा
 बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति ।
 सहश्चिद् यस्य नीलवत् सुधस्यं
 नभो न रूपमरुषं वसानाः ॥ ६ ॥
 स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युः
 हिरण्यवाशीरिपिरः स्रर्षाः ।
 बृहस्पतिः स स्वावेश क्रुष्वः
 पूरु सारिम्य आसृति करिष्ठः ॥ ७ ॥

देवी देवस्य रोदसी जनित्री
 बृहस्पतिं वाष्टघतुर्महित्वा ।
 दुस्त्राय्याय दक्षता सखायः
 करद् ब्रह्मणे सुतरां सुग्राधा ॥ ८ ॥
 ॥ १ ॥ (ऋ० १०६७१२-१२)
 अयास आङ्गिरसः । त्रिष्टुप् ।
 इमां धिर्यं सप्तशीर्ष्णीं पिता न
 ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
 तुरीयं खिजनयद् विश्वजन्यो
 ऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥ १ ॥
 ऋतं शंसन्त ऋजु दीप्याना
 दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
 विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना
 यज्ञस्य धार्मं प्रथमं मनन्त ॥ २ ॥
 हंसैरिव सखिभिर्वावदाङ्गिः
 अश्मन्मयानि नहन् व्यस्यन् ।
 बृहस्पतिरभिकनिंक्रदद्वा
 उत प्रास्तौदुक्षं विद्वां अंगायत् ॥ ३ ॥
 अवो द्वाभ्यां पुर एकया गा
 गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
 बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्
 उदुसा आकवि हि तिस्र आवः ॥ ४ ॥
 विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं
 निष्ठीणिं साकमुदुधेरकृन्वत् ।
 बृहस्पतिरुपसं स्र्यं गां
 अकं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ ५ ॥
 इन्द्रो बलं रक्षितारं दुर्धानां
 करेणैव वि चकर्ता रवंण ।
 स्वेदाङ्गिमिराधिरमिच्छमानो
 ऽरोदयत् पाणिमा गा अमुष्यात् ॥ ६ ॥

स इँ सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिः
 गोष्वापसं वि घनसैरददः ।
 ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैः
 धर्मस्वैदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ ७ ॥
 ते सत्येन मनसा गोपतिं गा
 इयानासं इपणयन्त घीभिः ।
 बृहस्पतिर्मिथोऽवद्यपेभिः
 उदुस्त्रियां असृजत स्वयुग्भिः ॥ ८ ॥
 तं वर्षयन्तो मतिभिः शिवाभिः
 सिद्धमिव नानंदतं सुधस्यै ।
 बृहस्पतिं वृषणं शरसातौ
 भरंभरे अतुं मदेम जिष्णुम् ॥ ९ ॥
 यदा वाजमसंनद्विश्वरूपं
 आ घामरुक्षुदुचराणि सद्यं ।
 बृहस्पतिं वृषणं वर्षयन्तो
 नाना सन्तो विभ्रतो ज्योतिरसा ॥ १० ॥
 सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै
 कीरिं चिद्वचवयं स्वैभिरवैः ।
 पश्चा मृधो अपं भवन्तु विश्वाः
 तद् रौदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥ ११ ॥
 इन्द्रो महा महतो अर्णवस्य
 मि मुर्धानमभिनदर्वुदस्य ।
 अहन्नष्टिमरिणात् सप्त सिन्धून्
 देवैद्योवापृथिवी प्रावतं नः ॥ १२ ॥
 ॥ ११ ॥ (आ० १०।१८।१-१२)
 उदुप्रतो न वयो रक्षमाणा
 वार्यदतो अग्निरस्येव घोषाः ।
 गिरिभ्रजो नोर्मयो मर्दन्तो
 पृहस्पतिर्मम्यांका अनावन् ॥ १ ॥

सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो
 भगं इवेदर्यमणं निनाय ।
 जने मित्रो न दंपती अनाक्ति
 घृहस्पते वाजयाशूरिंवाजौ ॥ २ ॥
 साध्वर्या अतिथिनीरिपिराः
 स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।
 बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या
 निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥ ३ ॥
 आप्रुपायन् मधुन ऋतस्य
 योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव घोः ।
 बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा
 भूम्यां उद्रेव वि त्वचं विभेद ॥ ४ ॥
 अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षाद्
 उद्गः शीपालमिव वात आजत् ।
 बृहस्पतिरनुमृश्या बलस्य
 अभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥ ५ ॥
 यदा बलस्य पीयतो जसुं भेद्
 बृहस्पतिरग्नितापोभिरकैः ।
 दद्विर्न जिह्वा परिविष्टमादद्
 आविर्निर्घोरिकृणोदुस्त्रियाणाम् ॥ ६ ॥
 बृहस्पतिरमतु हि त्यदासां
 नाम स्वरीणां सदेने शुहा यत् ।
 आप्ण्डेव भिच्वा शंकुनस्य गर्भं
 उदुस्त्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥ ७ ॥
 अश्रापिनदं मधु पर्यपश्यन्
 मत्स्यं न द्दीन उदनिं क्षियन्तम् ।
 निष्टर्जमार चमसं न वृक्षाद्
 बृहस्पतिर्विरेवेणा विकृत्य ॥ ८ ॥
 (१९९)

सोपार्मविन्दुत्स स्वः । सो अग्नि
 अर्केण वि वषाधे तर्मासि ।
 बृहस्पतिर्गोवपुषो बृहस्प
 निर्मुञ्जानं न पर्वणो जभार ॥ ९ ॥
 हिमेवं पर्णा मृषिता वनानि
 बृहस्पतिनाकृपयद्वलो गाः ।
 अनानुकृत्यर्मपुनश्चकार
 पात्सयांमासां मिथ उचरातः ॥ १० ॥
 अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं
 नक्षत्रेभिः पितरो धामपिशुन् ।
 रात्र्यां तमो अर्दधुज्योतिरहन्
 बृहस्पतिर्मिनदद्रिं विदद्राः ॥ ११ ॥
 इदमर्कर्म नमो अत्रियाय
 यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
 बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः
 स वीरोभिः स नृभिर्नो वयो धाव् ॥ १२ ॥
 ॥ १० ॥ (अ० १०।१०२।४)
 अत्रतिरथ ऐन्द्रः । त्रिष्टुप् ।
 बृहस्पते परि दीया रथेन
 रक्षोहाऽमिश्रौ अपुवाधमानः ।
 प्रमञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्
 अस्माकमेष्यविता रथानाम् ॥ ४ ॥
 ॥ १३ ॥ (अ० १०।१०२।६-७)
 तपुर्मर्षा भार्गवतः । त्रिष्टुप् ।
 बृहस्पतिर्नयत् दुर्गहां त्रिः
 पुनर्नेपद्रुघशसाय मन्म ।
 क्षिपदशस्तिमर्षं दुर्मतिं हन्
 अथा करघर्जमानाय शं योः ॥ १ ॥
 नराशंसो नोऽवत् प्रयाजे
 शं नो अस्वत्तुयाजो हवेषु ।
 क्षिपदशस्तिमर्षं दुर्मतिं ॥ २ ॥

तपुर्मर्षा तपत् रक्षसो ये
 ब्रह्मद्विषुः शरवे हन्तवा उ ।
 क्षिपदशस्तिमर्षं दुर्मतिं ॥ ३ ॥
 ॥ १४ ॥ (वा० य० २।१३)
 बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्विरिष्टं
 यज्ञं समिमं दधातु ॥ १३ ॥
 ॥ १५ ॥ (वा० य० ४।७,११)
 बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ॥ ७ ॥
 बृहस्पतिंष्टा सुत्रे रम्णातु ॥ २१ ॥
 ॥ १६ ॥ (वा० य० ६।८)
 रेवंती रमच्चं बृहस्पते धारया वसूनि ॥ ८ ॥
 ॥ १७ ॥ (वा० य० ७।२७)
 बृहस्पतये त्वा मद्यं वरुणो ददातु ॥ ४७ ॥
 ॥ १८ ॥ (वा० य० ९।१०-११ पूर्वापः)
 देवस्याहं संवितुः सुवे सत्यसवसः
 बृहस्पतेरुत्तमं नार्कं रुहेयम् ।
 देवस्याहं संवितुः सुवे सत्यप्रसवसः
 बृहस्पतेरुत्तमं नार्कमरुहम् ॥ १० ॥
 बृहस्पते वार्जं जय बृहस्पतये वाचं वदतु
 बृहस्पतिं वार्जं जापयत ॥ ११ ॥
 ॥ १९ ॥ (वा० य० १०।५)
 बृहस्पतये स्वाहा ॥ ५ ॥
 ॥ २० ॥ (वा० य० ३।६)
 यन्मै छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो
 वार्तिशृष्णं बृहस्पतिर्मै तदधातु ।
 शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २ ॥
 (अथयं० २।१३।२-३)
 अथर्षा । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।
 परिं घत्त घत्त नो वचसेमं
 जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
 बृहस्पति प्रायच्छुद्रासं एतत्
 सोमाय रात्रे परिधातवा उ ॥ २ ॥

परीदं वासो अथिथाः स्वस्तये
अभूर्गृष्टीनामभिश्चस्तिपा उ ।
शतं च जीवं शरदः पुरुची
रायश्च पोषंमुपसंन्ययस्व ॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ७।८।१)

उपरिवन्नव । निष्टुप् ।

मद्रादधि श्रेयः प्रेहि
वृहस्पतिः पुराता ते अस्तु ।
अधेममस्या वर आ पृथिव्या
आरेश्वरुं कृणुहि सर्ववीरम् ॥ १ ॥

॥ २० ॥ (अथर्व० १९।१८।१०)

अथर्वा । द्विपदा प्राजापत्या निष्टुप् ।

वृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमुच्यन्तु ।
ये माघायवं ऊर्ध्वायां दिशोभिदासात् ॥ १० ॥
वृहस्पति-सहचारी देवगणः ।

(ऋ० १।१४।३)

मेधातिथि ऋषयः । इन्द्रवापुवृहस्पतिमित्रामिपुषमगा
दित्यमध्वर्याः । गायत्री ।

इन्द्रवापु वृहस्पतिं मित्रामि पुषणं भगम् ।
आदित्यानमारुतं गुणम् ॥ ३ ॥
(ऋ० ४।४१।१-६)

वामदेवो गौतमः । इन्द्रावृहस्पती । गायत्री ।

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्रावृहस्पती ।
उकथं मदश्च शस्यते ॥ १ ॥

अयं वां परि पिच्यते सोमं इन्द्रावृहस्पती ।
चाहमदाय पीतये ॥ २ ॥

आ नं इन्द्रावृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥

अस्मे इन्द्रावृहस्पती रयिं घत्तं शतृग्विनम् ।
अघावन्नं मृदामिणम् ॥ ४ ॥

इन्द्रावृहस्पती वयं मुते ग्रीभिर्देषामहे ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥

सोममिन्द्रावृहस्पती पिचतं दामुषो गृहे ।
मादयेथां तदोक्ता ॥ ६ ॥

(ऋ० ४।५०।१०, ११)

वामदेवो गौतमः । इन्द्रावृहस्पती । जगती, निष्टुप् ।

इन्द्रश्च सोमं पिचतं वृहस्पते
अस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषणवस्र ।
आ वां विशन्तिवन्दवः स्वामुवः
अस्मे रयि सर्ववीरं नि रच्छतम् ॥ १० ॥

वृहस्पत इन्द्र वधतं नः
सचा सा वां सुमतिभूत्वस्मे ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः
जजस्तमयो वनुपामरातीः ॥ ११ ॥

(ऋ० ६।४७।२०)

गयो भारद्वाजः । देव-भूमि-वृहस्पतीन्द्राः । निष्टुप् ।

अगुण्यति क्षेत्रमार्गन्म देवा
उर्वी सुती भूमिर्हरणाभूत् ।
वृहस्पते प्र चिकित्सा गर्विष्टौ
इत्था सुते जरित्र इन्द्र पन्थाम् ॥ २० ॥

(ऋ० ७।९७।१०)

मैत्रावरुणवर्षिष्ठः । इन्द्रावृहस्पती । निष्टुप् ।

वृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वोः
दिच्यस्वेषाथे उत पार्थिवस्य ।
घत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

(ऋ० ८।९६।१५)

तिरथोरगिरथो घुतानो वा माहतः । इन्द्रावृहस्पती । निष्टुप् ।

अर्घं द्रुप्तो अशुमत्या उपसथे
अधारयत् तुन्यं तिरिवाणः ।
विशो अदेवीरम्याः चरन्तीः
वृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ १५ ॥

(अ० १०।१६७।३)

विश्वामित्र-त्रमदमो । सोम-वरुण-बृहस्पति-अनुमति-मघवत्-
घाता-विघातारः । जगती ।

सोमस्य रात्रौ वरुणस्य धर्मणि

बृहस्पतेरनुमत्या उ धर्मणि ।

तवाहमद्य मघवन्नुपस्तुतौ

घातुर्विघातः कलशां अमक्षयम् ॥ ३ ॥

(?) बृहस्पतिसवितासौ, बृहस्पत्यादयः ।

(या० य० १७।८-९)

बृहस्पते सवितयोर्धयेनं

संश्रितं चित्सन्तुरांशं संधं शिवाधि ।

वर्धयेनं महते सौभगाय

विश्वं एनमनुं मदन्तु देवाः ॥ ८ ॥

अमुत्रभूयादथ यद्यमस्य

बृहस्पते अभिशस्तेरश्व्यः ।

प्रत्यौहतामश्विनां मृत्युर्मस्माद्

देवानामग्रे भिपजा शचीभिः ॥ ९ ॥

(अथर्व० १।८।१-२)

चातनः । बृहस्पतिः अभियोमौ । अनुष्टुप् ।

इदं हविषीतुधानान् नदी फेनमिवा बहत् ।

य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जनः ॥ १ ॥

अयं स्तुवान आगमदिमं स्म प्रति हयत ।

बृहस्पते वधे लब्ध्वाग्नीषोमा वि विष्यतम् ॥ २ ॥

(अथर्व० १।६९।१)

अथर्व । अग्निः सूर्यः बृहस्पतिः । अनुष्टुप् ।

पाथिवस्य रसे देवा भगस्य तन्वोऽक्षं चले ।

आयुष्यमिसा अग्निः

सूर्यां वर्चे आ धाद् बृहस्पतिः ॥ १ ॥

(अथर्व० ३।११।०)

ब्रह्मा । अर्यमा, पूषा, बृहस्पतिः इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

सं वः सृजत्वर्ष्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः ।

समिन्द्रो यो धनंजयो मार्षे पुष्यत् यद्भसु ॥ २ ॥

(अथर्व० ३।१०।३,४,७)

बसिष्ठः । ३ अर्यमा, भगः, बृहस्पतिः, देवोः, ४ सोमः, अग्निः,
आदित्यः, विष्णुः, ब्रह्मा, बृहस्पतिः, ७ अर्यमा, बृहस्पतिः,
इन्द्रः, वातः, विष्णुः, सरस्वती, सविता, वाजो । अनुष्टुप् ।

प्र णो यच्छत्वर्ष्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।

प्र देवीः प्रोत सुनृतां र्षिं देवी र्दधातु मे ॥ ३ ॥

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हिवामहे ।

आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ ४ ॥

अर्धमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।

वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च याजिनम् ॥ ७ ॥

(अथर्व० ३।२६।६)

अथर्व । बृहस्पतिगुता अवस्वन्तः । जगती ।

येऽस्यां स्योर्घ्वायां दिश्यधस्वन्तो

नामं देवास्तेषां वो बृहस्पतिरिर्षवः ।

ते नो मडत् ते नोऽधि ब्रूत्

तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ६ ॥

(अथर्व० ३।२७।६)

अथर्व । बृहस्पतिः, विश्वं, वर्षम् । पंचमदा ककुम्मती गर्माऽष्टिः ।

ऊर्घ्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः ।

श्वित्रो रक्षिता वर्षमिर्षवः ।

तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो

रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।

योऽऽसान्द्रेष्टि यं वयं द्विष्मः

तं वो जग्मे दध्मः ॥ ६ ॥

(अथर्व० ४।१।१-७)

वेनः । बृहस्पतिः, आदित्यः । विष्टुप्, २, ५ परोऽनुष्टुप् ।

ब्रह्मं जजानं प्रथमं पुरस्ताद्

वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।

स बुध्न्या उपमा अस्य विष्टाः

सतश्च योनिमसंतश्च वि षंः ॥ १ ॥

(३) बृहस्पतिः (इन्द्रः, द्यावापृथिवी, सविता) ।

॥ २६ ॥ (अथर्व० ६।१८।१-२)

(यशस्कामः) । १ जगती, २ प्रस्तापञ्चिकः ।

यशसं मेन्द्रो मघवान् कृणोतु

यशसं द्यावापृथिवी उभे इमे ।

यशसं मा देवः सविता कृणोतु

प्रियो दातुर्दक्षिणाया इह स्याम् ॥ १ ॥

यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान्

यथाऽऽपु ओर्पथीषु यशस्वतीः ।

एवा विश्वेषु देवेषु

वयं सर्वेषु यशसः स्याम ॥ २ ॥

(अथर्व० ६।७३।१)

अथर्वा । वरुणसोमोऽग्निमबृहस्पतिवसवः । शुरिक् ।

एह यातु वरुणः सोमो

अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु ।

अस्य श्रियंमुपसंयातु सर्वं

उग्रस्य चेतुः सं मनसः स जाताः ॥ १ ॥

(अथर्व० ६।१०३।१)

उच्छोचनः । बृहस्पतिः सविता मित्रो अर्यमा भगो अश्विनी ।

अनुष्टुप् ।

सुदानं मे बृहस्पतिः सुदानं सञ्जिजा करतु ।

सुदानं मित्रो अर्यमा सुदानं भगो अश्विनी ॥ १ ॥

(अथर्व० ७।३३।१)

भद्रा । मरुतः, पूषा, बृहस्पतिः, अग्निः । पञ्चापञ्चिकः ।

स मा सिचन्तु मरुतः

सं पूषा सं बृहस्पतिः ।

सं मायमग्निः सिंचतु प्रजयां च घनेन च
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ १ ॥

(अथर्व० ७।११।१)

अंगिराः । इन्द्रा बृहस्पती । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चात्

उतोत्तरस्मादधरादद्यायोः ।

इन्द्रः पुरस्ताद्भूत मघ्यतो नः

सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥ १ ॥

(अथर्व० ७।५३।१)

भद्रा । बृहस्पतिः, अश्विनी । त्रिष्टुप् ।

अमुत्रभूयादधि यद्यमस्य

बृहस्पतेरभिर्शस्तेरभुञ्चः ।

प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमसम्भू

देवानामग्रे भिपजा शचीभिः ॥ १ ॥

(अथर्व० १२।४०।१)

भद्रा । बृहस्पतिः विश्वेदेवाश्च । परानुष्टुप्, त्रिष्टुप् ।

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः

सरस्वती मन्युमन्तं जगाम् ।

विश्वैस्तद्देवैः सह संविदानः

सं दधातु बृहस्पतिः ॥ १ ॥

(अथर्व० १०।१३।१)

वामदेवः । इन्द्राबृहस्पती । जगती ।

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते

असिन्युज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।

आ वा विश्वन्त्विन्दवः स्वाधुवः

असे रयिं सर्ववीरं नियञ्छतम् ॥ १ ॥

(२०८)

अध्यापकविघ्नशमनम् ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ७।५४।६-२) (१-२) १ ब्रह्मा, २ मृग्यः। १ अन्नघामनी, २ इन्द्रः। अनुष्टुप् ।

ऋचं सामं यजामहे याम्यां कर्माणि कुर्वते । एते सदासि राजतो यज्ञं देवेषु यच्छतः ॥ १ ॥

ऋचं साम यदप्राक्षं हविरोजो यजुर्गलम् । एष मा तस्मान्मा हिंसीद्विदः पृष्टः शचीपते ॥ २ ॥
(११०)





संरक्षण-विभागः ।

इन्द्रदेवता ।

संरक्षण-मंत्राः ।

(१-६९) मधुच्छन्दा वैशामित्रः । गायत्री ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।३।४-६)

इन्द्रा याहि चित्रमानो सुता इमे त्यायवः ।

अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ ४ ॥

इन्द्रा याहि धियेपितो विप्रजूतः सुतार्यतः ।

उप ब्रह्माणि घ्राघतः ॥ ५ ॥

इन्द्रा याहि तूतुजान् उप ब्रह्माणि हरिवः ।

सुते दधिष्व नृध्ननः ॥ ६ ॥

॥ १ ॥ (ऋ० १।४।१-१०)

सुरूपकृन्नुमतये सुदुर्घामिव गोदुर्हे ।

जुहुमसि घर्विघवि ॥ १ ॥

उर्ष नः सवना गृहि सोमस्य सोमपाः पिब ।

गोदा इद् देवतो मर्दः ॥ २ ॥

अर्घा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।

मा नो भर्ति ख्य मा गृहि ॥ ३ ॥

परेहि विप्रमस्तृत-मिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् ।

यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥

उत युवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत ।

दर्धाना इन्द्र इद् दुवः ॥ ५ ॥

उत् नः सुमार्गो अरि-संक्षेपुर्दस्म कृष्टयाः ।

स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥

एमाशुमाशवे भर यद्वाश्रियं नृमादनम् ।

पतयन् मन्द्यत्सखम् ॥ ७ ॥

अस्य पीत्वा शतक्रतो घ्नो घृत्राणांमभवः ।

प्रायो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

तं त्या वाजेषु वाजिनं वाजयांमः शतक्रतो ।

घनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥

यो रायोऽथनिर्महान् त्सुपाः सुन्यतः सर्वा ।

तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

॥ ३ ॥ (श्र० १।५।१-१०)

आ त्वेता नि पीदते—न्द्रमभि प्र गांयत ।
 सर्वायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥
 पुरुतमं पुरुणा—मीशानं वार्याणाम् ।
 इन्द्रं सोमं सर्वा सुते ॥ २ ॥
 स घा नो योग आ मुजत् स राये स पुरंध्याम् ।
 गमद्राजैभिरा स नः ॥ ३ ॥
 यस्य संस्थे न वृणवते हरीं समस्तु शत्रवः ।
 तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥
 सुतपातै सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये ।
 सोमासो दध्याशिरः ॥ ५ ॥
 त्वं सुतस्य पीतये सुद्यो वृद्धो अजायथाः ।
 इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुकतो ॥ ६ ॥
 आ त्यां विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः ।
 शं तै सन्तु प्रचैतसे ॥ ७ ॥
 त्यां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुन्था शतक्रतो ।
 त्यां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥
 अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणाम् ।
 यस्मिन् विश्वानि पौस्यां ॥ ९ ॥
 मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिरणः ।
 ईशानो यवया वृधम् ॥ १० ॥

॥ ४ ॥ (श्र० १।६।१-३, १०)

युजन्ति ब्रह्मरुपं चरन्तं परि तस्थुयः ।
 रोचन्ते रोचना द्विवि ॥ १ ॥
 युजन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
 शोणां धृणू नृवाहसा ॥ २ ॥
 वेतुं वृणवन्तेतये पेशो मर्या अपेशसे ।
 समुपद्रिरजायथाः ॥ ३ ॥
 इतो यां मातिमीमहे दियो या पार्थिवादधि ।
 इन्द्रं महो या रजसः ॥ १० ॥

॥ ५ ॥ (श्र० १।७।१-१०)

इन्द्रमिन्द्राधिनीं वृह—दिन्द्रमर्कैभिरुर्विणः ।
 इन्द्रं वाणीरनुपत ॥ १ ॥
 इन्द्र इक्षयोः सत्रा संमिदल आ वचोयुता ।
 इन्द्रो घृञ्जी हिरण्ययः ॥ २ ॥
 इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्ये रोहयद् द्विवि ।
 धि गोभिर्द्रिमैरयत् ॥ ३ ॥
 इन्द्रा वज्रेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
 उग्र उग्राभिरुतिभिः ॥ ४ ॥
 इन्द्रं वयं महाघ्नन् इन्द्रमर्कं हवामहे ।
 युजं वृषेषु वज्रिणाम् ॥ ५ ॥
 स नो वृषभ्रमुं चक्रं सत्रादावभ्रपां वृधि ।
 अस्मभ्यमप्रतिष्कृतः ॥ ६ ॥
 तुजेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः ।
 न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥
 वृषा यूथेव वंसंगः कृष्टोरित्य्योर्जसा ।
 ईशानो अप्रतिष्कृतः ॥ ८ ॥
 य एकध्वरणीनां वसूनामिरज्यति ।
 इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ ९ ॥
 इन्द्रं धो विश्वतस्परि हवामहे जनैभ्यः ।
 अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

॥ ६ ॥ (श्र० १।८।१-१०)

एन्द्रं सानसि रयिं सजित्वानं, सत्रासहम् ।
 वार्षिष्ठमुतये भर ॥ १ ॥
 नि येनं मुष्टिहृत्यया नि वृत्रा रणघामहे ।
 त्वोतासो न्यर्विता ॥ २ ॥
 इन्द्र त्वोतासु आ वयं वज्रं घना दंदीमहि ।
 जयैम सं युधि स्पृधः ॥ ३ ॥
 वयं शरैरिन्द्रस्तृभि—रिन्द्र त्वया युजा वयम् ।
 सासह्यामं पृतन्यतः ॥ ४ ॥

महो इन्द्रं परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे ।
 चीर्नं प्रथिना शर्वः ॥ ५ ॥
 समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनिता ।
 विप्रोसो वा धियायव ॥ ६ ॥
 यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते ।
 उर्वीरापो न काकुर्व ॥ ७ ॥
 प्वा हास्य सूनता विरप्शी गोमती मही ।
 पक्षा शाखा न दाशुपे ॥ ८ ॥
 प्वा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र भावते ।
 सद्यश्चित् सन्ति दाशुपे ॥ ९ ॥
 प्वा हास्य काम्या स्तोम उकथं च शस्या ।
 इन्द्राय सोमपीतये ॥ १० ॥
 ॥ ७ ॥ (अ० १।१।१-२०)
 इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विभ्वभिः सोमपूर्वभिः ।
 महा अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥
 पमेन सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने ।
 चक्रि विभ्वानि चरये ॥ २ ॥
 मत्स्या सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमैभिर्विभ्वचरणे ।
 सत्रेषु सर्वनेष्या ॥ ३ ॥
 असृप्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुर्दहासत ।
 भजोपा वृषमं पतिम् ॥ ४ ॥
 सं चौदय त्रिप्रमर्वाग् राधे इन्द्र वरेण्यम् ।
 असदित् तं विभु प्रमु ॥ ५ ॥
 अस्मान्स्तु तत्र चोदये इन्द्र राये रमस्वतः ।
 तुर्विष्टम्न यरास्वतः ॥ ६ ॥
 सं गोमदिन्द्र याजय दस्मे पृथु भ्रगो बृहत् ।
 विभ्वायुधैहाशितम् ॥ ७ ॥
 अस्मे धैहि भ्रवो बृहद् शुम्नं सहस्रमातेमम् ।
 इन्द्र ता रथिनीरिप ॥ ८ ॥
 यलोरिन्द्र यलुपति गीर्भिर्गुणन्तं ऋग्मियम् ।
 होम गन्तारमतये ॥ ९ ॥

सुतेसुते स्योकसे बृहद् बृहत पदरिः ।
 इन्द्राय श्रुयमर्चति ॥ १० ॥
 ॥ ८ ॥ (अ० १।१०।१-१९) अनुष्टुप् ।
 गायन्ति त्वा गायत्रिणो ऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
 ब्रह्माणस्त्वा शतशत उद् वृशमिव येमिरे ॥ १ ॥
 यत् सानोः सानुमारुहद् भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।
 तदिन्द्रो अथै चेतति युथेनं वृष्णिरेजति ॥ २ ॥
 युस्या हि केदिना हरी वृषणा कक्ष्या ।
 अर्था न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुति चर ॥ ३ ॥
 एहि स्तोमो अभि स्वरा ऽभि रृणीह्या र्वय ।
 ब्रह्मं च नो वसो सत्रे—न्द्रं यज्ञं च वर्धय ॥ ४ ॥
 उकथमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्पिधे ।
 शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत् सत्येषु च ॥ ५ ॥
 तमिन् सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्यं ।
 स शक्र उत नः शक्र—दिन्द्रो वसु दर्यमानः ॥ ६ ॥
 सुविष्टुर्तं सुनिरज—मिन्द्र त्वादातमियदा ।
 गन्नामपं भुजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिव ॥ ७ ॥
 नहि त्वा रोदसी उमे ऋचायमाणमिन्वत ।
 जेषु स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धनुहि ॥ ८ ॥
 आशुत्कर्णं श्रुधी हव नू चिहधिष्व मे गिरं ।
 इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्या युजश्चिदन्तरम् ॥ ९ ॥
 विष्वा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवन्धुतम् ।
 वृषन्तमस्य इमह ऊतिं सहस्रसार्तमाम् ॥ १० ॥
 आ त न इन्द्र कोशिक मन्दसानः सुतं पिब ।
 नव्यमायुः प्र स तिर कृधी सहस्रसामुपिमम् ॥ ११ ॥
 परि त्वा गिरणो गिरं इमा भयन्तु विभ्वतः ।
 वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भयन्तु जुष्टयः ॥ १२ ॥
 ॥ ९ ॥ (अ० १।१।१-८)
 अत्र मापुष्टदसः । अनुष्टुप् ।
 इन्द्रं विभ्वा अविवृधन् त्समुद्रव्यचमं गिरं ।
 रथीतमं रथीना वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥

सुपथे तं इन्द्रं प्राजिनो मा भैम दायरागपते ।
 त्वामभि प्र णोनुमो जेतांरमपराजितम् ॥ २ ॥
 पूर्वोत्तिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्वृतयः ।
 यदी वाजस्य गोमंतः स्तोत्रस्यो मंहते मधम् ॥ ३ ॥
 पुरां भिन्दुर्युयां क्वि—रमितौजा अजायत ।
 इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धृतां पृञ्जी पुंगुपुतः ॥ ४ ॥
 त्वं बलस्य गोमतो ऽर्पावरद्वियो विलम् ।
 त्वां देवा अविभ्युपस् तुज्यमानास ध्रायिपुः ॥ ५ ॥
 तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमायर्दन ।
 उपातिष्ठन्त गर्वणो विदुष्टे तस्य कारयः ॥ ६ ॥
 मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।
 विदुष्टे तस्य मेधिरास् तेषां श्रवांस्युक्तिर ॥ ७ ॥
 इन्द्रमीशानमोजसा—भि स्तोमां अनूपत ।
 सहस्रं यस्य रातयं उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ८ ॥

॥ १० ॥ (११६:१-९)

मेधातिथिः काण्व. । गायत्री ।

आ त्वां वहन्तु हरयो धृपणं सोमपीतये ।
 इन्द्रं त्वा सूरचक्षसः ॥ १ ॥
 इमा धाना घृतस्तुयो हरी इहोपं वक्षतः ।
 इन्द्रं सुखतमे रथे ॥ २ ॥
 इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
 इन्द्र सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥
 उपं नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः ।
 सुते हि त्वा हवामहे ॥ ४ ॥
 सोम नः स्तोमामा गु—हृपेदं सर्वं सुतम् ।
 गौरौ न वृषितः पिब ॥ ५ ॥
 इमे सोमासु इन्द्रवः सुतासो अथि बहिषि ।
 तौ इन्द्र सहसे पिब ॥ ६ ॥
 अयं ते स्तोमो अग्निषो हविस्पृगस्तु शंतमः ।
 अथा सोमं सुत पिब ॥ ७ ॥
 विश्वमित् सर्वं सुत—मिन्द्रो मदाय गच्छति ।
 वृत्रहा सोमपीतये ॥ ८ ॥

मेमं नः वागमा पूण गोशिरभ्यः शतत्रतो ।
 स्तवाम त्वा इयाभ्यः ॥ ९ ॥

॥ ११ ॥ (का० ८:११-२९)

[प्रगाथो (षोः) व ष्यः १-२९ मेघातिथि-मेघातिथि
 काण्वो ।] १-४ प्रगाथ = (विषमा वृषी, तथा हटे (१९),
 ५-२९ वृषी ।

मा विदुष्यद् वि दंसत मलायो मा रिस्यत ।
 इन्द्रमित् स्तोता धृपणं सचां सुते
 मुष्टकया च दंसत ॥ १ ॥
 अयक्रक्षिणं धृपणं ययाजुरं गां न चर्षणीसर्दम् ।
 विद्रेषणं संयननोभयंकरं मंहिष्ठमुमपाविर्नम् ॥ २ ॥
 यश्चिदि त्या जना इमे नाना हर्षत उतयं ।
 अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु ते
 ऽहा विभ्यां च धर्धनम् ॥ ३ ॥

चि तर्त्त्यन्ते मघयन् पिपाश्चितोऽयो विषो जनांनम् ।
 उपं क्रमस्य पुरुषुपुमा भरं याजं नेदिष्ठमुतये ॥ ४ ॥
 महे चन त्वामद्रियः परां शुल्कार्यं देयाम् ।
 न सहस्राय नायुताय यज्ञियो ॥ ५ ॥
 न शतार्यं शतामघ
 वस्यो इन्द्रासि मे पितु—स्त भ्रातृमुञ्जत ।
 माता चं मे छदयथः समा वंसो ॥ ६ ॥
 वसुत्वनाय राधसे
 कैयय केदसि पुरुत्रा चिदि ते मनः ।
 अलापिं युष्म खजकृत् पुर्दर ॥ ७ ॥
 प्र गायत्रा अंगासिपुः
 प्रास्मै गायत्रमंचत वावातुर्यः पुर्दरः ।
 याभिः काण्वस्वोपं बहिंरासदं ॥ ८ ॥
 यासदं वज्री भिनत् पुरः
 ये ते सन्ति दशग्विनः शतिनो ये सहस्रिणः ।
 अर्वांसो ये ते धृपणो र्युद्रुवः ॥ ९ ॥
 तेभिर्नस्तूयमा गहि ॥ १० ॥

आ त्व॑घ स॒धर्दु॑यां हुवे गा॒यत्र॑वे॒पसम् ।
 इन्द्र॑ धे॒नुं सु॒दु॒घाम॒न्यामि॑र्ष—मुरु॒धा॒राम॑रु॒र्कन॑म् ॥ १० ॥
 यत् तु॒दत्त् सूर॑ प॒तशं॑ व॒द् वा॒तस्य॑ प॒र्णिना॑ ।
 ब॒हत् कृ॒त्समा॑र्जु॒नेयं॑ श॒तक्र॑तुः
 त्स॑र॒द् गन्ध॑र्वमस्तु॒तम् ॥ ११ ॥
 य ऋ॒ते वि॑दमि॒श्रिर्षः॑ पु॒रा ज॒ग्रभ्य॑ आ॒तुर्दः॑ ।
 संघा॑ता स॒ंधिं म॒घवा॑ पुरु॒वसुः॑
 इ॒ष्क॒र्ता वि॒हृत् पु॑नः ॥ १२ ॥
 मा र्मु॑म् नि॒ष्टया॑ इ॒वे—न्त् त्व॑द॒रेणा॑ इव ।
 वना॑नि न प्र॒जहि॑तान्य॒द्रिवो॑
 कु॒रोपा॑सो अम॒न्महि॑ ॥ १३ ॥
 अम॑न्म॒द्दी॒दना॑शवो॒ऽनु॒प्रास॑श्च वृ॒त्रह॑न् ।
 स॒रुव॑ सु॒ तै म॒हता॑ श॒र राघ॑सा
 ऽनु॒ स्तोमं॑ मु॒दीम॑हि ॥ १४ ॥
 यदि॑ स्तोमं॒ मम॑ श्र॒व—द॒साक्मि॑न्द्र॒मिन्द्र॑वः ।
 तिरः॑ प॒वित्रं॑ ससू॒वांसं॑ आ॒शवो॑
 म॒न्दन्तु॑ तु॒ग्न्यापृ॑थः ॥ १५ ॥
 आ त्व॑घ स॒धस्तु॑तिं या॒वातुः॑ सख्यु॒रा ग॑हि ।
 उप॑स्तुति॒र्मयो॑नां प्र॒ त्वाव॑-
 त्व॒धा ते॑ व॒दिम॑ सु॒पुति॑म् ॥ १६ ॥
 सो॒ता हि॑ सोम॒मद्रि॑मि—रे॒मेन॑म॒प्सु धा॑वत ।
 ग॒व्या व॒श्रैव॑ या॒सय॑न्त॒ इश्रो॑
 नि॒र्धु॒क्षन् वृ॒क्षणा॑भ्यः ॥ १७ ॥
 अ॒ध ज्मो॑ अ॒र्ध या॑ दि॒वो बृ॒हतो॑ रौ॒च॒नाद॑र्धि ।
 अ॒या व॑र्धस्व॒ तन्वा॑ गिरा॒ ममा॑
 ऽऽजा॑ता सु॒क्रतो॑ षुण ॥ १८ ॥
 इन्द्रा॑य सु॒मदि॑न्त॒मं सोमं॑ सो॒ता व॑रे॒ण्यम् ।
 श॒क्र ष॑णं पी॒पय॑द् वि॒श्वया॑ धि॒या
 हि॒न्या॒नं न धा॑ज्यु॒म् ॥ १९ ॥
 मा त्वा॑ सोम॒स्य ग॑ल्द॒या स॒ना या॑च॒ग्रहं॑ गिरा ।
 मूर्षि॑ मृ॒गं न॑ सर्व॒नेषु॑ शु॒क्रुध॑
 क ई॒शानं॑ न या॒धिप॑त् ॥ २० ॥

म॒न्देने॑पितं म॒द—मु॒ग्रमु॒प्रेण॑ शर्वसा ।
 वि॒श्वे॒षां त॒रुता॑रं म॒दच्यु॑तं
 म॒दे हि॑ प्मा॒ दवा॑ति नः ॥ २१ ॥
 शे॒वा॒रे वा॒र्यां पु॒रु दे॒वो म॑र्तीय॒ द्वाशु॑र्षे ।
 स सु॒न्वते॑ च॒ स्तुय॑ते च॒ रास॑ते
 वि॒श्वग॑र्तो॒ अरि॑पु॒तः ॥ २२ ॥
 ए॒न्द्रं या॑हि॒ मत्स॑ चि॒त्रेण॑ दे॒व रा॑र्धसा ।
 स॒पे न॑ प्रा॒स्युद॑रं स॒पीति॑मिः
 आ सो॑मै॒भिर्ह॑र॒ स्फिर॑म् ॥ २३ ॥
 आ त्वां स॒हस्र॑मा श॒तं यु॒का रथे॑ दि॒रुण्य॑ये ।
 ब्र॒ह्मयु॑जो ह॒रय॑ इन्द्र॒ केशि॑नो
 व॒हन्तु॑ सोम॒पीत॑ये ॥ २४ ॥
 आ त्वा॑ रथे॑ दि॒रुण्य॑ये ह॒री म॑यूर॒शोप्या॑ ।
 शि॒तिप॑ष्ठा व॒हता॑ म॒ध्वो अ॒न्यसो॑
 वि॒वर्ष॑णस्य पी॒तये॑ ॥ २५ ॥
 पि॒शा त्व॑ऽस्य गि॒र्वणः॑ सु॒तस्य॑ पृ॒थपा॑ इव ।
 पा॒रि॒ष्क॒नस्य॑ र॒सिनं॑ इ॒यमा॑सु॒तिः
 चा॒रुर्म॑दा॒य प॑त्यते ॥ २६ ॥
 य ए॒को अ॑स्ति॒ दंस॑नो॒ महो॑ उ॒ग्रो अ॒भि ब्र॑तः ।
 ग॒मत् स॑ शि॒मी न॑ स यो॒पदा॑ ग॒मत्
 ह॒यं न॑ पा॒रि व॑र्जति ॥ २७ ॥
 त्वं पु॑रं च॒रिष्ण॑न् व॒धैः शु॒ण्यस्य॑ स पि॒णक् ।
 त्वं भा॑ अनु॒ चरो॑ अ॒र्ध द्वि॑ता
 यद्वि॑न्द्र॒ हव्यो॑ मु॒वः ॥ २८ ॥
 म॒म त्वा॑ सू॒र उ॑र्दिते॒ मम॑ म॒भ्यन्दि॑ने द्वि॒वः ।
 म॒म प्र॑पि॒त्ये अ॑पि॒शांरे॑ व॒सो
 आ स्तो॑मा॒सो अ॒वृत्स॑त ॥ २९ ॥
 ॥ १२ ॥ (ऋ० टा० ११-३०)
 [नेरातिवि काव्य, (आश्रिम प्रियमेषध)] ।
 गावश्री, २८ अनुष्टुप् ।
 इ॒दं व॑सो सु॒तम॒न्यः पि॒शा सु॑र्षण॒मुद॑रम् ।
 अ॒ना॒मयि॑न् र॒दिमा॑ ते ॥ १ ॥ (१६६)

नृभिर्धृतः सुतो अश्वे—रव्यो वारैः परिपूतः ।	इच्छन्ति देवाः सुन्यन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
अश्वो न निष्कतो नृवीर्युः ॥ २ ॥	यन्ति प्रमादमर्तन्द्राः ॥ १८ ॥
तं ते ययं यथा गोभिः स्वादुर्मकर्म शीणन्तः ।	ओ पु प्र याहि वाजेभिर्मां हृणीथा भ्रम्युः सान् ।
इन्द्रं त्वास्मिन्संधुमादे ॥ ३ ॥	महो इषु युर्वजानिः ॥ १९ ॥
इन्द्र इत् सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वार्युः ।	मो प्वृच दुर्हणावान् त्सायं करदारे असत् ।
अन्तर्देवान् मत्वीथ ॥ ४ ॥	अश्वीर इषु जामाता ॥ २० ॥
न यं शुक्रो न दुरांशी—न तूपा उरुव्यचसम् ।	विद्या हंस्य वीरस्यं भूरिदाघरी सुमतिम् ।
अपस्पृण्वते सुहादेम् ॥ ५ ॥	त्रिषु जातस्य मनांसि ॥ २१ ॥
गोभिर्यदीमन्य अस्मन् मृगं न या मृगयन्ते ।	आ त् पिञ्च कण्वमन्त्वं न घा विष शवसानात् ।
अमित्सरन्ति धेनुभिः ॥ ६ ॥	यशस्तरं शतमूर्तेः ॥ २२ ॥
प्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्यं ।	ज्येष्ठेन सोतरिन्द्राय सोमं वीराय शक्राय ।
स्वे क्षयं सुतपात्रः ॥ ७ ॥	भरा पियन्नर्याय ॥ २३ ॥
प्रयः कोशासः श्वोतन्ति तिस्रश्चम्बः सुपूर्णाः ।	यो वेदिष्ठो अव्यधि—प्वश्वोवन्तं जरितम्यं ।
समाने अधि भार्मन् ॥ ८ ॥	वाजं स्तोतृभ्यो गोमेन्तम् ॥ २४ ॥
शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः ।	पन्यंपन्यमित् सोतार आ धायत् मर्दाय ।
दग्धा मन्दिष्टः शूरस्य ॥ ९ ॥	सोमं वीराय शूराय ॥ २५ ॥
इमे तं इन्द्र सोमा—स्तीवा अस्मे सुतासः ।	पाता वृत्रहा सुत—मा घां गमुदारे अस्मत् ।
शुक्रा आशिरं याचन्ते ॥ १० ॥	नि यमते शतमूर्तिः ॥ २६ ॥
ता आशिरं पुरोब्दाश—मिन्द्रेमं सोमं शीणीहि ।	पह हरीं ब्रह्मयुजां शग्मा वक्षतः सखायम् ।
रेवन्तं हि त्वां शृणोमि ॥ ११ ॥	ग्रीभिः श्रुतं गिर्वेषसम् ॥ २७ ॥
हत्सु पीतासो युष्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् ।	स्वादवः सोमा आ याहि शीताः सोमा आ याहि ।
ऊधनं नग्ना जरन्ते ॥ १२ ॥	शिप्रिन्नृपीवः शचीवो नायमच्छां सधुमादेम् ॥ २८ ॥
रेवो इद् रेवतः स्तोता स्यात् त्वावतो मघोर्नः ।	स्तुतश्च यास्त्या वर्धन्ति महे राधसे नृगणाय ।
भेदुं हरिषः श्रुतस्यं ॥ १३ ॥	इन्द्रं कारणं वृधन्तः ॥ २९ ॥
उपयं चन शस्यमानं—मगोररिरा चिकेत ।	गिरश्च यास्ते गिर्वाह उपथा च तुभ्यं तानि ।
न गायत्रं गीयमानं ॥ १४ ॥	सत्रा दधिरे शवांसि ॥ ३० ॥
मा न इन्द्र पीयल्लये मा शर्धते परां दाः ।	पृथेदेप तुविकुर्मि—वाजो एको वज्रहस्तः ।
शिक्षां शचीयः शचीभिः ॥ १५ ॥	सनादमृको दयते ॥ ३१ ॥
पयमुं त्वा तदिदंशां इन्द्रं त्वायन्तः सत्वायः ।	हन्ता वृषं दक्षिणेने—न्द्रः पुरू पुरहता ।
वर्षा उपयोभिर्जरन्ते ॥ १६ ॥	महान् महीभिः शचीभिः ॥ ३२ ॥
न घेमन्यदा पपन वज्रिप्रपसो नविष्टौ ।	यस्मिन् विश्वार्थपर्ययः उत च्यौना ज्योसि च ।
तयेद् स्तोमं चिकेत ॥ १७ ॥	अनु घेन्मन्दी मघोर्नः ॥ ३३ ॥ (१४)

एष पृतानि चकारे—न्द्रो विश्वा योऽतिं शूण्ये ।	इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
घाजदावा मघोनाम् ॥ ३४ ॥	इन्द्रं समीके वनिनां हवामह
प्रमर्ता रथं गव्यन्त—मपाकाच्चिद् यमचति ।	इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ५ ॥
इनो वसु स हि वोळ्हा ॥ ३५ ॥	इन्द्रो महा रोदसी पप्रयच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
सनिता विप्रो अर्षेद्वि—हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः ।	इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर्
सुर्योऽविता विघन्तम् ॥ ३६ ॥	इन्द्रं सुयानास इन्द्रवः ॥ ६ ॥
यज्ञध्वेनं प्रियमेधा इन्द्रं सुभ्राचा मनसा ।	अभि त्वां पुर्वर्षीतय इन्द्र स्तोमैभिरायवः ।
यो भूत् सोमैः सन्यमद्वा ॥ ३७ ॥	समीचीनासं ऋभवः समस्वरत्
गायध्रवसं सत्पतिं श्रवस्कांमं पुरुमानम् ।	रुद्रा गृणन्त पूर्यम् ॥ ७ ॥
कण्वांसो गात घाजिनम् ॥ ३८ ॥	अस्येदिन्द्रो वावृषे वृष्णयं शवो
य ऋते विद् गास्पदेभ्यो	मर्दे सुतस्य विष्णवि ।
दात् सखा नृभ्यः शर्चीवान् ।	अथा तमस्य महिमानमाययो
ये अस्मिन् काममार्थियन् ॥ ३९ ॥	ऽनुं घ्रुवन्ति पुर्वथां ॥ ८ ॥
इत्या धीर्वन्तमद्विचः क्राण्वं मेध्यातिथिम् ।	तत् त्वां यामि सुधीर्यं तद् ग्रहं पुर्वर्षितये ।
मेयो भूतोऽभि यन्नयः ॥ ४० ॥	येना यतिभ्यो भृगवे धनें द्विते
॥ १३ ॥ (ऋ० ८।३।१-१४)	येन प्रस्कण्वमार्थिय ॥ ९ ॥
[मेध्यातिथि. काञ्च] प्रगायः = (विषया बृहती, समा	येनां समुद्रमसृजो महीरपसु
सतोबृहती), २१ अनुष्टुप्, २२-२३ गायत्री, २४ बृहती ।	तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
पियां सुतस्य रसिनो मत्स्यां न इन्द्र गोमर्तः ।	सद्यः सो अस्य महिमा न संनरो
आपिनीं योधि सद्यमाचो वृधेऽ	यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ १० ॥
ऽसाँ अवन्तु ते धियः ॥ १ ॥	शग्धी न इन्द्र यत् त्वां रुषिं यामि सुधीर्यम् ।
मूयामं ते सुमतां घाजिनो वयं	शग्धि याजाय प्रथमं सिर्पासते
मा नः स्तरभिर्मातये ।	शग्धि स्तोमाय पूर्य ॥ ११ ॥
अस्माञ्जिभार्मिप्यतादभिष्टिभिः	शग्धी नो अस्य यदं पौरमार्थिय
आ नः सुज्ञेषु यामय ॥ २ ॥	धियं इन्द्र सिर्पासतः ।
इमा उं त्वा पुरुवसो गिरों वधेन्तु या मम ।	शग्धि यथा रुशमं श्यार्यकं रूपम्
पावकयर्णाः शूर्चयो विपश्चितो	इन्द्र प्रायः स्वर्णरम् ॥ १२ ॥
ऽमि स्तोमैरनुपत ॥ ३ ॥	कप्रव्यो अनसीनां तुरो गृणीत मत्यैः ।
अयं सहस्रसृषिभिः सहस्रहतः समुद्र इय पप्रये ।	नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो	स्यंगृणन्तं आनुशुः ॥ १३ ॥
यज्ञेषु विप्रतान्ये ॥ ४ ॥	

कर्तुं स्तुवन्तं ऋतयन्त देवत
 ऋषिः को विप्रं ओहते ।
 कदा ह्ययं मघवन्निन्द्र सुन्वतः
 कर्तुं स्तुवत आ गमः ॥ १४ ॥
 उदु त्वे मधुमत्तमा गिरः स्तोमांस ईरते ।
 सत्राजितो धनुसा अक्षितोतयो
 वाजयन्तो रथा इव ॥ १५ ॥
 कण्वा इव भृगवः सूर्यो इव
 विश्वमिद् धीतमानशुः ।
 इन्द्रं स्तोमैर्भिर्महयन्त आयवः
 प्रियमैघासो अस्वरन् ॥ १६ ॥
 युस्वा हि वृत्रहन्तम् हरीं इन्द्र परावतः ।
 अर्षाचीनो मघवन्त्सोमपीतय
 उग्र ऋष्वेभिरा गंहि ॥ १७ ॥
 इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया
 विप्रांसो मेघसातये ।
 स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो
 येनो न शृणुषी हवम् ॥ १८ ॥
 निरिन्द्रं बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः ।
 निर्युदस्य सृगयस्य मायिनो
 निः पर्यंतस्य गा साजः ॥ १९ ॥
 निरुग्रयो रुचुर्निरु स्यो निः सोमं इन्द्रियो रसः ।
 निरन्तरिक्षादधमो महामहिं
 कृपे तर्दिन्द्रं पौंस्यम् ॥ २० ॥
 यं मे दुग्न्द्रो मरुतः पाकंस्थामा कौरयाणः ।
 विश्वेभ्यं तमना शोभिष्टम्
 उपेय विवि धार्वमानम् ॥ २१ ॥
 रोहितं मे पाकंस्थामा सुधुरं कश्यप्राम् ।
 अदाद् शयो विषोर्धनम् ॥ २२ ॥
 यस्मा अन्ये दना प्रति धुरं यहन्ति यद्वयः ।
 अस्मं ययो न तुग्न्यम् ॥ २३ ॥

आत्मा पितुस्तनूर्वासं ओजोदा अम्यर्जनम् ।
 तुरीयमिद् रोहितस्य पाकंस्थामानं
 भोजं दातारंमग्रवम् ॥ २४ ॥
 ॥ १४ ॥ (ऋ० ८।३१।१-३०)
 [मेघातिथिः काण्वः] । गायत्री ।
 प्र कृतान्यृजीपिणः कण्वा इन्द्रस्य गार्धया ।
 मदे सोमस्य वोचत ॥ १ ॥
 यः सृचिन्दमनर्शनिं पिष्टुं दासमहीशुर्वम् ।
 वर्षीतुम्रो रिणन्नपः ॥ २ ॥
 न्यर्षुदस्य विष्टर्षं यूर्षाणीं बृहतस्तिर ।
 कृपे तर्दिन्द्रं पौंस्यम् ॥ ३ ॥
 प्रतिं श्रुतायं वो ध्रुपत् तूर्णांशं न गिरेतधि ।
 हुवे सुशिप्रमुतये ॥ ४ ॥
 स गोरभ्रंस्य वि भ्रुजं मन्दानः सोम्येभ्यः ।
 पुं न शूर दर्षसि ॥ ५ ॥
 यर्दिं मे रारणः सुत उक्थे वा दर्षसे वनः ।
 आरादुपं स्वधा गंहि ॥ ६ ॥
 धयं घां ते अपिं प्मसि स्तोतारं इन्द्र गिर्वणः ।
 त्वं नो जिन्य सोमपाः ॥ ७ ॥
 उत नः पितुमा मर संरराणो अविक्षितम् ।
 मयवन् भूरिं ते वसुं ॥ ८ ॥
 उत नो गोमंतस्कृधि हिरण्यवतो अश्विनः ।
 इळांभिः सं रमेमहि ॥ ९ ॥
 वृवदुक्थं हवामहे सुप्रकरंरुमुतये ।
 साधुं कृण्वन्तमवसे ॥ १० ॥
 यः संस्ये चिच्छ्रतक्रतु—रादीं कृणोति बृहदा ।
 जरितुभ्यः पुरुवसुं ॥ ११ ॥
 स नः शक्रश्चिदा शकद् दानयां अन्तरामरः ।
 इन्द्रो विश्वाभिरुतिभिः ॥ १२ ॥
 यो रायोधुनिर्महान् रसुपारः सुन्वतः सत्ता ।
 तमिन्द्रंमभि गायत ॥ १३ ॥

आयन्तारं महि स्थिरं पृतनासु श्रवोजितम् ।
 भूरेरीशानमोजेसा ॥ १४ ॥
 नकिरस्य शचीनां नियन्ता सुचृतानाम् ।
 नकिरिक्का न द्वादिति ॥ १५ ॥
 न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वताम् ।
 न सोमो अप्रता पीये ॥ १६ ॥
 पन्य इदुर्षं गायत पन्य उक्थानि शंसत ।
 ब्रह्मा कृणोत पन्य इत् ॥ १७ ॥
 पन्य आ दीरिच्छता सहस्रा वाज्यवृतः ।
 इन्द्रो यो यज्वनो वृधः ॥ १८ ॥
 वि पू चर स्वधा अनु कृष्णामन्याहुर्धः ।
 इन्द्र पिब सुतानाम् ॥ १९ ॥
 पिव स्वधैनवाना—मुत यस्तुम्ये सचा ।
 उतायमिन्द्र यस्तर्ध ॥ २० ॥
 अतीहि मन्युपाविणं सुपुवांसमुपारणे ।
 इमं रातं सुतं पिब ॥ २१ ॥
 इहि तिम्रः पर्यावत इहि पञ्च जनाँ अति ।
 धेना इन्द्रावचाकशत् ॥ २२ ॥
 सूर्यो रदिम यथा सृजा ऽऽत्वा यच्छन्तु मे गिरः ।
 निन्नमापो न सध्न्यक् ॥ २३ ॥
 अर्धयथा तु हि पिञ्च सोमं वीरायं शिप्रिणे ।
 भरा सुतस्य पीतये ॥ २४ ॥
 य उद्रः फलिनं मिन—न्युक् सिन्धुँरवावृजव ।
 यो गोषु पक् धारयत् ॥ २५ ॥
 अहन् वृत्रमृचीपम और्णवाभमहीशार्यम् ।
 हिमेनाविष्यदवुदम् ॥ २६ ॥
 र धं उम्रायं निपुटे ऽर्वाब्हाय प्रसक्षिणे ।
 देवसं ब्रह्म गायत ॥ २७ ॥
 यो विभ्वान्युभि व्रता सोमस्य मदे अर्धसः ।
 इन्द्रो देधेपु चेतति ॥ २८ ॥
 इत्वा संप्रमाद्या हरी हिरण्यकेद्या ।
 योब्धामभि प्रयो हितम् ॥ २९ ॥

अर्वाञ्चं त्वा पुरुषुत प्रियमैधस्तुता हरी ।
 सोमपेयाय वक्षतः ॥ ३० ॥
 ॥ १५ ॥ (ऋ० ८।३३।१-१९)
 मिथ्यातिथिः काण्वः । वृषी, १६-१८ गायत्री, १५ अउङ् ।
 वयं धं त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तर्धहिपः ।
 पवित्रस्य प्रन्त्रवणेपु वृत्रहन्
 परि स्तोतारं आसते ॥ १ ॥
 स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उन्नियनः ।
 कदा सुतं तृपाण ओक् आ गम्
 इन्द्रं स्वन्दीव वंसेगः ॥ २ ॥
 कर्णैभिर्धृष्णवा ध्रुपद् याजं दर्पि सहन्निराम् ।
 पिशङ्गरूपं मघवन् विचरपणे मधू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥
 प्रादि गायान्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
 यः संमिद्रो ह्योयः सुते सचा
 वृची रथो हिरण्ययः ॥ ४ ॥
 यः सुपुच्यः सुदक्षिण इनो यः सुनतुर्गणे ।
 य आकरः सहस्रा यः शतामघ
 इन्द्रो यः पुभिर्दारितः ॥ ५ ॥
 यो धृपितो योऽवृत्तो यो अस्ति इमध्रुपु श्रितः
 विभूतद्युम्नदच्यवनः पुरुषुतः
 क्रत्वा गौरिव शाकिनः ॥ ६ ॥
 क इ वेद सुते सन्ना पिरन्तं कद् धयो दधे ।
 अयं यः पुते विभिनस्योजेसा
 मन्दानः शिष्यन्धसः ॥ ७ ॥
 दाना मृगो न वारुणः पुंगुशा चरथं दधे ।
 नकिष्ठा नि र्यमदा सुते गमो
 महाध्वरन्योजेसा ॥ ८ ॥
 य उग्रः सन्ननिपृतः स्थियो रणाय संस्कृतः ।
 यदि स्तोतुर्मघवां द्रुणवृद्धयं
 जेद्रे योयत्या गमव् ॥ ९ ॥

सत्यमित्था वृषेदसि वृषं जतिर्नोऽवृतः ।
 वृषा हुं प्र वृषिष्ये परावति
 वृषो अर्वावर्ति श्रुतः ॥ १० ॥
 वृषणस्ते अमीशयो वृषा कशा हिरण्ययी ।
 वृषा रथो मघवन् वृषणा हरी
 वृषा त्वं शतकतो ॥ ११ ॥
 वृषा सोतां सुनोतु ते वृषं शृजीपिना भर ।
 वृषा दधन्ते वृषणं नदीप्या
 तुभ्यं स्वातर्हरीणाम् ॥ १२ ॥
 पन्द्रं याहि पीतये मधुं शविष्ठ सोम्यम् ।
 नायमच्छां मघवां शृणवद् गिते
 ब्रह्मोन्था च सुकतुः ॥ १३ ॥
 बहन्तु त्वा रथेष्ठा—मा हरयो रथयुजः ।
 तिरथिर्द्वयं सर्वानानि वृत्रहन्
 अन्येषां या शतकतो ॥ १४ ॥
 अस्माकं महान्तं स्तामं धिष्य महामह ।
 अस्माकं ते सर्वना सन्तु शतं मा
 मदाय युक्ष सोमपाः ॥ १५ ॥
 नहि पस्तव नो मम शाखे अन्यस्य रण्यति ।
 यो अस्मान् वीर आनयत् ॥ १६ ॥
 इन्द्रं धिद् धा तदवगीत् स्त्रिया अंशास्यं मनः ।
 उतो अहं क्रतुं रघुम् ॥ १७ ॥
 मतीं चिद् धा मदुच्युतां मिथुना बहतो रथम् ।
 एवेद् धृष्येण उत्तरा ॥ १८ ॥
 अथः पश्यस्य भोपरि संतरां पादकौ हर ।
 मा नै कशाप्यकां हृदन्तु तमी हि ब्रह्मा पुभूविष्य ॥ १९ ॥
 ॥ १६ ॥ (अ० ८।४।१-१४)
 [देवादिषु वाच्यः] । प्रगाथ = (विषमा वृत्तौ, सम
 एतेषु हरी) ।
 यदिन्द्रं प्रागणामुद् न्यग्या हृष्ये नृभिः ।
 गिरमां पुरु नृत्तौ अघ्नानयेऽसि प्रशर्ष नृवर्षे ॥ १॥

यद् धा रमे रशोमे श्यावके रूप इन्द्रं मदायसे सर्वा ।
 कर्णासस्त्या ब्रह्मभिः स्तोमं वाहस ॥ २० ॥
 इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २१ ॥
 यथा गौरो अपा कृतं तृष्येतेत्यवोरणम् ।
 आपित्वे नः प्रपित्वे तृयमा गहि ॥ २२ ॥
 कर्ष्वेषु सु सत्वा पिबं ॥ २३ ॥
 मन्दन्तु त्वा मघवान् इन्द्रेन्दवो राघोदेयाय सुनुते ।
 आमुष्या सोममपिबश्चमु सुतं ॥ २४ ॥
 ज्येष्ठं तद् दधिष्ये सहं ॥ २५ ॥
 प्र च्चेत् सहसा सहो वमजं मन्युमांजसा ।
 विध्वं त इन्द्र पृतनायवो यद्दो ॥ २६ ॥
 नि वृक्षा इव येमिरे ॥ २७ ॥
 सहस्रेणैव सचते यवीयुधा यस्तु आनकुपस्तुतिम् ॥ २८ ॥
 पुत्रं प्रावर्षो कृणुते सुवीर्यं ॥ २९ ॥
 दाश्रोति नर्मडकिमिः ॥ ३० ॥
 मा मैम मा श्रमिष्मो—प्रस्यं सुख्ये तर्ब ।
 महत् ते वृष्णो अभिचस्यं कृतं ॥ ३१ ॥
 पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥ ३२ ॥
 सव्यामर्जुं स्त्रिग्यं वावसे वृषा
 न दानो अस्य रोपति ।
 मघ्ना संपृकाः सारथेण धेनवः ॥ ३३ ॥
 तृयमेहि द्रवा पिबं ॥ ३४ ॥
 अश्वी रथी सुरूप इद् गोमां इदिन्द्र ते सर्वा ।
 श्वाभ्रभाजा वयसा सचते सर्दा ॥ ३५ ॥
 चन्द्रो याति सुभामुपं ॥ ३६ ॥
 अदयो न तृष्यन्नवपानमा गहि
 पिवा सोमं वशां अनुं । ॥ ३७ ॥
 निमेषमानो मघवन् दिवेदिव
 योजिष्ठं दधिष्ये सहं ॥ ३८ ॥
 अर्ष्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
 उपं नून युयुजे वृषणा हरी ॥ ३९ ॥
 धा च जगाम वृत्रहा ॥ ४० ॥

स्वयं चित् स मन्यते दाशुर्जितो
यत्रा सोमस्य तृप्सति ।
इदं ते अन्नं युज्यं समुक्षितं
तस्येहि प्र द्रवा पियं ॥ १२ ॥
रयेष्ठायाश्चयेवः सोममिन्द्राय सोतन ।
अधि ब्रह्मस्पाद्रयो वि चक्षते
सुन्वन्तो दाश्वध्वरम् ॥ १३ ॥
उप ब्रह्म वाचाता वृषणा हरी इन्द्रमपसु वक्षतः ।
अर्वाञ्च त्वा सतयोऽध्वरिभ्यो
यद्वन्तु सयनेदुषं ॥ १४ ॥
॥ १७ ॥ (क्र. ८।६।१-४९)
[वषः ऋणः] । गायत्री ।
महा इन्द्रो य ओजसा पुर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ।
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥
प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वक्षयः ।
विष्वा ऋतस्य वाहसा ॥ २ ॥
कष्या इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्वृक्षस्य सार्धनम् ।
जामि ध्रुयन् आर्यधम् ॥ ३ ॥
समस्य मन्यये विशो विष्वा नमन्त कृष्यैः ।
समुद्रायैव सिन्धयः ॥ ४ ॥
ओजस्तदस्य तित्विप उमे यत् समयतयत् ।
इन्द्रश्चमेषु रोदसी ॥ ५ ॥
पि चिद् वृत्रस्य दोर्धनो यजेण शतपथेणा ।
शितो विभेद् यृष्णिना ॥ ६ ॥
इमा अग्नि प्र जोनुमो विषामम्रेषु धीतर्यः ।
अग्नेः शोचिर्न दिद्युतः ॥ ७ ॥
शुहाँ सतीरुष त्मना प्र यच्छोचन्त धीतर्यः ।
कष्याँ भूतस्य धारया ॥ ८ ॥
प्र तमिन्द्र नदीमदि रयि गोमन्तमभिधनम् ।
प्र ब्रह्मं पूषेचिच्छये ॥ ९ ॥
भद्रमिदि पितुष्यरि मेधामृतस्यं जप्रमं ।
अहं सूर्य इयाजनि ॥ १० ॥

अहं प्रत्नेन मग्मना गिरः शुम्मामि कण्ववत् ।
येनेन्द्रः शुष्ममिद् दधे ॥ ११ ॥
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवु—ऋपयो ये च तुष्टुवुः ।
ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥ १२ ॥
यदस्य मन्युरध्वनीद् वि वृत्रं पथिशो वृजन् ।
अपः समुद्रमैरयत् ॥ १३ ॥
नि शुष्ण इन्द्र धर्णीसि वज्रं जघन्य दस्ययि ।
वृषा हुप्र शृण्वये ॥ १४ ॥
न घात्र इन्द्रमोजसा नान्तरिक्षाणि यजिर्णम् ।
न विष्यचन्त भूमयः ॥ १५ ॥
यस्त इन्द्र महीरुपः स्तमूयमान आशयत् ।
नि तं पद्यासु शिक्षयः ॥ १६ ॥
य इमे रोदसी मही संमीची समजप्रभीत् ।
तमोभिरिन्द्र तं गुहः ॥ १७ ॥
य इन्द्र यतपस्त्या भृगवो ये च तुष्टुवुः ।
ममेदुर्ध्र शुष्नी हयम् ॥ १८ ॥
इमास्त इन्द्र पृथयो धृतं दुहत आशिरम् ।
पनामृतस्यं पिप्युर्षीः ॥ १९ ॥
या इन्द्र प्रस्वस्ता ऽऽसा गर्भमर्चक्रिरन् ।
परि धमेव सूर्यम् ॥ २० ॥
त्वामिच्छेयसस्पते कष्या उफथेन वावृधुः ।
त्वां सुतासु इन्दवः ॥ २१ ॥
तथेदिन्द्र प्रणीतिपु—त प्रतास्तिरद्विचः ।
यत्रो विंतन्तसाग्यः ॥ २२ ॥
आ न इन्द्र महीमिषं पुरं न दीपिं गोमतीम् ।
उत प्रजां सुवीर्यम् ॥ २३ ॥
उत त्वदाभ्यदयं यदिन्द्र नाहुंगोष्या ।
अग्नें विष्णु प्रदीदयत् ॥ २४ ॥
अग्नि व्रजं न तद्विषे सूरं उपाकचक्षसम् ।
यदिन्द्र मन्वासि नः ॥ २५ ॥
यद्ब्रह्म तयिणीयम् इन्द्रं प्रराजमि क्षितीः ।
महाँ अणार ओजसा ॥ २६ ॥

तं त्वां हविर्भतीविंश उप द्रुवत ऊतये ।
 उरुज्वर्यसमिन्दुमिः ॥ २७ ॥
 उपहरे गिर्षणां संग्धे च नदीनाम् ।
 धिया विप्रो अजायत ॥ २८ ॥
 अतः समुद्रमुद्धत—श्चिकित्वाँ अर्ब पश्यति ।
 यतो विपान पर्जति ॥ २९ ॥
 आदित् प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यान्ति वासुत्म् ।
 पुरो यदिध्यते दिवा ॥ ३० ॥
 कर्णास इन्द्र ते मति विभ्वे वर्धन्ति पौंस्यम् ।
 उतो शविष्ट वृष्ण्यम् ॥ ३१ ॥
 इमां मं इन्द्र सुष्टुति जुपस्व प्र सु मामव ।
 उत प्र वर्धया मतिम् ॥ ३२ ॥
 उत प्रहृषण्या वृयं तुभ्यं प्रवृद्ध वज्रिवः ।
 विप्रा अतश्म जीवसे ॥ ३३ ॥
 अग्नि कर्णा अनूपता—ऽऽपो न प्रवता यतीः ।
 इन्द्रं वर्नन्वती मतिः ॥ ३४ ॥
 इन्द्रमुन्धानि वावृधुः समुद्रमिव सिन्धवः ।
 अनुत्तमन्युमजरम् ॥ ३५ ॥
 आ नो याहि परावतो हरिभ्यां हर्यताभ्याम् ।
 इमामिन्द्र सुतं विव ॥ ३६ ॥
 त्वामिद् धृत्रहन्तम् जनांसो वृक्तयर्हिपः ।
 हवन्ते वार्जसातये ॥ ३७ ॥
 धनु त्वा रोदसी उमे चक्रं न चर्यतेराम् ।
 धनु सुयानाम् इन्द्रयः ॥ ३८ ॥
 मर्दस्या सु स्वर्पर उतेन्द्रं शर्यणावति ।
 मन्था विवम्यतो मृती ॥ ३९ ॥
 यावृधान उप चवि वृगां घृत्पररोरवात् ।
 यूपहा सोमपानमः ॥ ४० ॥
 अशिर्दि पूर्व जा शस्ये—क इरानु भोजसा ।
 इन्द्रं घोषयन्त वसु ॥ ४१ ॥
 धमार्कः त्वा सुता उप धीनृष्टा अग्नि प्रयः ।
 इतं वदन् हरयः ॥ ४२ ॥

इमां सु पुर्व्या धियं मर्धोघृतस्य पिप्युर्षीम् ।
 कर्णा उपयेनं वावृधुः ॥ ४३ ॥
 इन्द्रमिद् विमदीनां मेधे घृणीन मर्त्यः ।
 इन्द्रं सनिप्युस्तये ॥ ४४ ॥
 अर्वाञ्च त्वा पुरुष्टुत प्रियमघस्तुता हरी ।
 सोमपेयाय वक्षतः ॥ ४५ ॥
 ॥ १८ ॥ (ऋ० ८।१२।१-३३)
 [पर्वतः काण्यः] । सण्डि, ३३ शंङ्गमती (विषतमतेव) ।
 य इन्द्र सोमपातमो मर्दः शविष्ट चेतति ।
 येना हंसि न्युत्रिणं तर्मीमहे ॥ १ ॥
 येना दशम्वमाधिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् ।
 येना समुद्रमाविथा तर्मीमहे ॥ २ ॥
 येन सिन्धुं महीरपो र्यो इव प्रचोदयः ।
 पन्थामतस्य यातवे तर्मीमहे ॥ ३ ॥
 इमं स्तोममभिष्टये घृतं न पुतमद्रिवः ।
 येना तु सद्य ओजसा ववक्षिय ॥ ४ ॥
 इमं जुपस्व गिर्वणः समुद्र इव पिन्वते ।
 इन्द्र विभ्वाभिरुतिभिर्ववक्षिय ॥ ५ ॥
 यो नो देवः परावतः सखित्वनार्य मामहे ।
 दिवो न वृष्टिं प्रथयन् ववक्षिय ॥ ६ ॥
 ववक्षुरस्य केतव उत वज्रो गभस्वयोः ।
 यत् सूर्यो न रोदसी अर्बर्धयत् ॥ ७ ॥
 यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अर्घः ।
 आदित् तं इन्द्रियं महि प्र वावृधे ॥ ८ ॥
 इन्द्रः सूर्यस्य रुदिमभि—न्यशंसानमोपति ।
 अग्निर्वेनच सासहिः प्र वावृधे ॥ ९ ॥
 इयं तं ऋत्वियावती धीतिरेति नवीयसी ।
 सपर्यन्ती पुषप्रिया मिमीत इत् ॥ १० ॥
 गर्भो यशस्य देव्युः क्रतुं पुनीत आनुपक् ।
 स्तोमैन्द्रस्य वावृधे मिमीत इत् ॥ ११ ॥
 सनिमिषस्य पप्रथ इन्द्रः सोमस्य पीतये ।
 प्राची यार्शीय सुन्यते मिमीत इत् ॥ १२ ॥ (११९)

यं विप्रं उक्थवाहसो ऽभिप्रमन्दुरायवः ।
घृतं न पिप्य आसन्पृतस्य यत् ॥ १३ ॥
उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत् ।
पुरुप्रशस्तमुतयं ऋतस्य यत् ॥ १४ ॥
अभि वह्नय ऊतये ऽनूपत प्रशस्तये ।
न वैषु विप्रता हरीं ऋतस्य यत् ॥ १५ ॥
यत् सोममिन्द्र विष्णोवि यद् वा घ त्रित आप्ये ।
यद् वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १६ ॥
यद् वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे ।
अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥ १७ ॥
यद् वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते ।
उन्धे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥ १८ ॥
देवैर्देवो ऽर्चस इन्द्रमिन्द्रं गृणीषणि ।
मर्धा यथायं तुर्धणे व्यानगुः ॥ १९ ॥
ऽहोभिर्देववाहसं सोमैभिः सोमपातमम् ।
शेत्रमिन्द्रिन्द्रं वावृधुर्व्यानगुः ॥ २० ॥
महीरस्य प्रणीतयः पूर्वाहृत प्रशस्तयः ।
येभ्य वसूनि द्रागुषे व्यानगुः ॥ २१ ॥
एन्द्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुरः ।
एन्द्रं वाणीरनूपता समोजसे ॥ २२ ॥
महान्तं महिना वयं स्तोमैर्भिह्वयनश्रुतम् ।
(पूँकैरभि प्र णोनुमः समोजसे ॥ २३ ॥
न यं विविको रोदसी नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् ।
ममादिदस्य तित्विषे समोजसः ॥ २४ ॥
मदिन्द्रं पृतनाज्यं देवास्त्वां दधिरे पुरः ।
नादित् तं हयता हरीं ववक्षतुः ॥ २५ ॥
।दा वृत्रं नदीवृत्तं शयसा वज्रिप्रवधीः ।
नादित् तं हयता हरीं ववक्षतुः ॥ २६ ॥
।दा ते विष्णुरोजसा श्रीणि पदा विवक्रमे ।
नादित् तं हयता हरीं ववक्षतुः ॥ २७ ॥
।दा तं हयता हरीं वायुधातं द्विवेदिवे ।
नादित् ते विभ्वा भुव्नानानि येमिरे ॥ २८ ॥

यदा ते माकृतीर्विदुः—स्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे ।
आदित् ते विभ्वा भुव्नानानि येमिरे ॥ २९ ॥
यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः ।
आदित् ते विभ्वा भुव्नानानि येमिरे ॥ ३० ॥
इमां तं इन्द्र सुपुतिं विप्रं इयतिं धीतिभिः ।
जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे ॥ ३१ ॥
यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरन् ।
नामां यक्षस्य दोहना प्राध्वरे ॥ ३२ ॥
सुवीर्यं स्वद्वयं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः ।
होतैव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ॥ ३३ ॥
॥ १९ ॥ (ऋ० ८।१३।१-३३)
[नारदः काण्वः] । उणिक् ।
इन्द्रः सुतेषु सोमेषु कर्तुं पुनीत उक्थ्यम् ।
विद्रे वृधस्य दक्षसो महान् हि पः ॥ १ ॥
स प्रथमे व्योमनि देवानां सदेने वृधः ।
सुपारः सुधर्यस्तमः समस्तुजित् ॥ २ ॥
तमहे वाजसातय इन्द्र भरोय शुष्मिणम् ।
भवां नः सुन्ने अन्तमः सपां वृधे ॥ ३ ॥
इयं तं इन्द्र गिर्वणो रतिः क्षरति सुन्वतः ।
मन्द्रानो अस्य बहिषो धि रजसि ॥ ४ ॥
नुनं तदिन्द्र दद्धि नो यत् त्वां सुन्वन्त इमहे ।
रथिं नेध्रिमा भरा स्वर्चिदम् ॥ ५ ॥
स्तोता यत् ते विचरणि—रतिप्रशार्धयद् गिरः ।
वृया इवाचुं रोहते जुपन्त यत् ॥ ६ ॥
प्रत्नवज्जनया गिरः शृणुधो जैरितुर्द्वयम् ।
मर्दमदे वयाक्षिया सुरुत्वनै ॥ ७ ॥
श्रीळन्त्यम्य मृन्ता आपो न प्रजतां यतीः ।
अया धिया य उच्यते पतिर्दिवः ॥ ८ ॥
उतो पतियं उच्यते रुष्टीनामेक इद् वशी ।
नमोवृधैरवस्युभिः सुते रण ॥ ९ ॥
स्तुदि धुतं विपधितुं हरी यस्य प्रसक्षिणा ।
गन्ताप द्रागुषो गृहं नमस्विनः ॥ १० ॥ (१३०)

तृज्जानो महिमते ऽर्धभिः प्रुषितम्भिः ।
 आ याहि यशमाशुभिः शमिद्धि तै ॥ ११ ॥
 इन्द्रं शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सु धारय ।
 ध्रुवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वन्म ॥ १२ ॥
 हवै त्वा सूर उदिते हवै मध्यर्दिने दिवः ।
 जुषाण इन्द्रं सतिभिर्न आ गेहि ॥ १३ ॥
 आ तू गेहि प्र तु द्रव्यं मत्स्यां सुतस्य गोमतः ।
 तन्तुं तनुष्य पूर्य्य ययां विदे ॥ १४ ॥
 यच्छक्रांसि पपावति यद्वर्षावति वृत्रहन ।
 यद् वा समुद्रे अर्धसोऽवितेर्दसि ॥ १५ ॥
 इन्द्रं वर्षन्तु नो गिर इन्द्रं सुतास इन्द्रवः ।
 इन्द्रे हविर्भतीर्विशो अराणिषुः ॥ १६ ॥
 तमिद् विप्रा अवस्यवः प्रवत्वंतीभिरुतिभिः ।
 इन्द्रं धोणीरवर्धयन् वया इव ॥ १७ ॥
 त्रिकेद्रुकेषु चेतनं देवासो यशमन्तन ।
 तमिद् वर्षन्तु नो गिरः सुदावृधम् ॥ १८ ॥
 स्तोता यत् ते अनुमत उन्नयान्यृतथा दधे ।
 शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः ॥ १९ ॥
 तदिद् रुद्रस्यं चेतति यद्दं प्रलेपु धामसु ।
 मनो यथा वि तद् दधुविचैतसः ॥ २० ॥
 यदि मे सख्यमावरं इमस्यं पाह्यन्धंसः ।
 येन विभ्या अति द्विषो अतारिम ॥ २१ ॥
 कदा तं इन्द्रं गिर्वणः स्तोता भवाति शंतमः ।
 कदा नो गत्ये अद्व्ये वसो दधः ॥ २२ ॥
 उत ते सुपुता हरी वृषणा यदतो रथम् ।
 वज्रस्यं मदिन्तं यमीमहे ॥ २३ ॥
 तमीमहे पुरुषुतं यद्दं प्रनामिभिरुतिभिः ।
 नि यर्हिषि प्रिये मंददधं द्विता ॥ २४ ॥
 वर्षस्या सु पुंरुपुत ऋषिपुतामिभिरुतिभिः ।
 पुक्षस्यं पिप्युगीमिपमवां च नः ॥ २५ ॥
 इन्द्रं त्यमवितेर्दमी—त्या स्तुपनो भद्रियः ।
 भ्रुतादियमि ते धियं मनोपुजं ॥ २६ ॥

इह त्या नपुमाया युजानः सोमपातये ।
 हरी इन्द्रं प्रतदंस्व अमि स्वर ॥ २० ॥
 अमि स्वरन्तु ये तयं रुद्रासः सशत धियम् ।
 उतो मरुत्वतीर्विशो अमि प्रयः ॥ २८ ॥
 इमा अंस्य प्रन्तयः पदं जुषन्त यद् दिवि ।
 नाभां यशस्य सं दधुययां विदे ॥ २९ ॥
 अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यधुरे ।
 मिमीति यशमानुपग्विचस्यं ॥ ३० ॥
 वृषायमिन्द्रं ते रथं उतो ते वृषणा हरी ।
 वृषा त्वं शंतकतो वृषा हयः ॥ ३१ ॥
 वृषा प्राचा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।
 वृषा यशो यमिर्बसि वृषा हवः ॥ ३२ ॥
 वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्जिन्नामिभिरुतिभिः ।
 वावन्थ दि प्रतिपुति वृषा हवः ॥ ३३ ॥

॥ २० ॥ (ऋ० ८।१४।१-१५)

[गोपृक्षस्यसूक्तिना काव्यायनो] । गान्दी ।

यद्विन्द्राहं यथा त्व—मीशीयं वस्य पक इव ।
 स्तोता मे गोपखा स्यात् ॥ १ ॥
 शिश्नयमस्मै दित्संयं शचीपते मनीषिणे ।
 यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥
 धेनुष्टं इन्द्रं सुनुता यजमानाय सुन्वते ।
 गामर्धं पिप्युषो दुहे ॥ ३ ॥
 न तं वर्तास्ति राधंस इन्द्रं देवो न मत्स्यः ।
 यद् दित्संसि स्तुतो मधम् ॥ ४ ॥
 यत् इन्द्रं मवर्धयद् यद् भूमिं व्यर्वतयत् ।
 चक्राण ओपशं दिवि ॥ ५ ॥
 वावृधानस्यं ते वयं विभ्या धनानि जिप्युः ।
 ऊतिमिन्द्रा वृषीमहे ॥ ६ ॥
 व्यन्तारिक्षमतिर—न्मदे सोमस्य रोचना ।
 इन्द्रो यदभिनद् घलम् ॥ ७ ॥
 उद् गा आजुदाङ्गिरोम्य आविष्कृण्वन् गुरो मनीः ।
 अयोर्धं जुनुदे घलम् ॥ ८ ॥ (१११)

इन्द्रेण रोचुना द्विषो इच्छहानि इंहितानि च ।
 स्थिराणि न पराणुदे ॥ ९ ॥
 अपामुर्मिर्मदधिव स्तोम इन्द्राजिरायते ।
 वि ते मदा अराजिपुः ॥ १० ॥
 त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युन्धवर्धनः ।
 स्तोतृणामुत मद्रुहत् ॥ ११ ॥
 इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः ।
 उर्ष यज्ञे सुरार्धसम् ॥ १२ ॥
 अषा फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदचतयः ।
 विश्वा यदजयः स्पृधः ॥ १३ ॥
 मायाभिस्तिसरुस्त इन्द्र चामारुक्षतः ।
 अय दस्युरधुनुयाः ॥ १४ ॥
 असुन्वामिन्द्र संसद्वे विपृच्छी व्यनाशयः ।
 सोमपा उत्तरो मर्वन् ॥ १५ ॥
 ॥ ११ ॥ (ऋ० ८।१५।१-१३)
 [गोपृक्लधसुकिनौ काण्वायनौ] । उभिकृ ।
 तम्बमि प्र गांयत पुरुहूतं पुरुष्टुतं ।
 इन्द्रं गीर्मिस्तविपमा विचासत ॥ १ ॥
 यस्य द्वियहसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।
 गिरिरज्जो अपः स्वर्धुपत्वना ॥ २ ॥
 स राजसि पुरुष्टुतं एको वृत्राणि जिघ्रसे ।
 इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ ३ ॥
 तं ते मदै गृणीमसि धृषणं वृत्सु सासहिम् ।
 उ लोकुरुनुमद्रिषो हरिश्रियम् ॥ ४ ॥
 येन ज्योतींष्यायये मनवे च विवेदिथ ।
 मन्द्रानो अस्य वहिपो वि राजसि ॥ ५ ॥
 तद्वा चित् त उभियनो ऽनु षुवन्ति पुर्यथा ।
 वृषपत्नीरपो जया द्विवेदिथे ॥ ६ ॥
 तव स्वदिन्द्रियं बृहत् तव शुभ्रममुत कर्तुम् ।
 वञ्च शिशाति धिपणा वरंण्यम् ॥ ७ ॥
 तप घौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वधन्ति श्रवः ।
 त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ ८ ॥

त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
 त्वां शर्धो मदत्यनु मार्कतम् ॥ ९ ॥
 त्वं वृषा जनानां मंहिष्ठ इन्द्र जशिपे ।
 सत्रा विश्वा स्वपत्वानि दधिपे ॥ १० ॥
 सत्रा त्वं पुरुष्टुतं एको वृत्राणि तोशसे ।
 नान्य इन्द्रात् करणं भूय इन्वति ॥ ११ ॥
 यदिन्द्र मन्मशस्त्वा नाना हवन्त ऊतये ।
 अस्माकैभिर्नृभिरत्रा स्वर्जय ॥ १२ ॥
 अरं क्षयाय नो मूहे विश्वा रूपाण्याविशान् ।
 इन्द्रं जैत्राय हर्यथा शचीयतिम् ॥ १३ ॥
 ॥ २१ ॥ (ऋ० ८।१६।१-११)
 [इरिभिष्ठिः धाणः] । गायत्री ।
 प्र सुभ्राजं चर्षणीना-मिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्मिः ।
 नरं नृपाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥
 यस्मिन्नुन्धयानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या ।
 अपामवो न संमुद्रे ॥ २ ॥
 तं सुष्टुत्या विचासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् ।
 महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३ ॥
 यस्यानूना गभीरा मदा उरवस्तरुवाः ।
 हृषमन्तः शूरसातौ ॥ ४ ॥
 तमिद् धनेषु हितेष्य-धिचाकाय हवन्ते ।
 येषामिन्द्रस्ते जयन्ति ॥ ५ ॥
 तमिच्छयोलैरार्यन्ति तं कृतेभिर्धर्षण्यः ।
 एष इन्द्रो वरिवस्वत् ॥ ६ ॥
 इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषि-रिन्द्रः पुरु पुरुहूतः ।
 महान् महीभिः शचीभिः ॥ ७ ॥
 सः स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुषिकुर्मिः ।
 एकश्चित् सप्तभिर्भूतिः ॥ ८ ॥
 तमकैमिस्तं साममि-स्तं गोपृथैश्चर्षण्यः ।
 इन्द्रं वधन्ति क्षितयः ॥ ९ ॥
 प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समस्तु ।
 सासदांसं युधामित्रान् ॥ १० ॥ (३९१)

स नः परिः पारयाति स्वस्ति नाया पुण्डितः ।
इन्द्रो विश्वा अति द्विपः ॥ ११ ॥

स त्वं न इन्द्र वार्जेभि—दंशस्या चं गातुया चं ।
अच्छा च नः सुस्रं नैपि ॥ १२ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० ८।१७।१-१५)

[इरिभिः ३ः] । [१४ वाक्तेःपतिर्वा] । गायत्री,
प्रगाथः = (१४ वृहती, १५ सतीवृहती) ।

आ याहि सुपुमा हि त इन्द्र सोमं पिया इमम् ।
पदं बुहिः संशो मर्म ॥ १ ॥

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी यद्वतामिन्द्र केशिनी ।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपा मिन्द्र सोमिनः ।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

आ नो याहि सुतावतो ऽस्माकं सुपुतोरुपं ।
पिया सु दिप्रिन्नर्गसः ॥ ४ ॥

आ तं सिञ्चामि कृष्यो—रनु गात्रा वि धावतु ।
गूमाय जिह्वया मधु ॥ ५ ॥

स्यादुष्टं अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वेः तव ।
सोमः शर्मस्तु ते हृदे ॥ ६ ॥

अयसु त्वा विचरणे जनीरिवाभि संवृतः ।
प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ ७ ॥

तुविप्रीवो वपोदरः सुयादुरन्धसो मदे ।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्रते ॥ ८ ॥

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा ।
वृत्राणि वृषहन्जहि ॥ ९ ॥

दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुरो येना वसुं प्रयच्छसि ।
यजमानाय सुन्यते ॥ १० ॥

अयं तं इन्द्र सोमो निपुतो अघि बहिर्पि ।
पदीमस्य द्रवा पिवं ॥ ११ ॥

शार्चिगो शार्चिपूजना—ऽयं रणाय ते सुतः ।
आर्गण्डल प्र ह्वयेते ॥ १२ ॥

यस्यै दृष्टयुयो नपात् प्रणयात् कुण्डपार्यः ।
न्यसिन् दध्ना धा मर्नः ॥ १३ ॥

यान्मोप्यते धुया म्यूषां—ऽसंघं सोम्यानाम् ।
द्रुप्तो भेत्ता पुरां शर्ध्वतीनां ॥ १४ ॥

इन्द्रो मुनीनां मर्गा पृदाकुःसानुर्यजतो गयेरण एकः सप्रमि भूयसा
भूणिमर्ध्वं नयत् तुजा पुरो गूमा ॥ १५ ॥

इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ १६ ॥

॥ १६ ॥ (ऋ० ८।११।१-१६)

[सोमारेः ३ः] । प्रगाथः = (विपना इन्द्र, सना
सतीवृहती) ।

वयम् त्वामपूर्य्यं स्थुरं न कश्चिद् भरन्तोऽवस्वः ।
वार्जे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥

उपं त्वा कर्मधृतये स नो युयो—प्रध्वकाम यो धृपद ।
त्वामिन्द्रयधितारं वयमहे सराय इन्द्र सातसिम् ॥ २ ॥

आ याहीम इन्द्रवो ऽर्ध्वपते गोपत उर्वरापते ।
सोमं सोमपते पिव ॥ ३ ॥

वयं हि त्वा वन्धुमन्तमवन्धयो विप्रास इन्द्र येमि ।
या ते धामानि वृषभ तेभिरा गहि ॥ ४ ॥

विश्वेभिः सोमपीतये सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रौते मघो मदरे विवसोमि ॥ ५ ॥

अभि त्वामिन्द्र नोनुमः अच्छा च त्वैना नर्मसा वदामसि किं मुहुश्चिद् वि दीधयः ।

सन्ति कामासो हरिवो दुद्विष्टं स्रो वयं सन्ति नो धिर्यः ॥ ६ ॥

नूना इदिन्द्र ते वयमूती अंभूम न्हि नू ते अदिवः ॥ ७ ॥

विभ्रा पुरा परीणसः विभ्रा संखित्वमुत शूर भोज्यः—
मा ते ता वञ्चिमीमहे ।

उतो संमस्मिन्ना शिशीहि नो वसो वार्जे सुदिप्र गोमति ॥ ८ ॥

यो न इदमिदं पुरा
 प्र चस्य आनिनाय तमु वः स्तुपे ।
 सखाय इन्द्रमुतये ॥ ९ ॥
 हर्यभ्यं सत्याति चर्पणीसहं स हि प्मा यो अमन्दत ।
 आ तु नः स चयति गव्यमद्वयं
 स्तोत्रभ्यां मुघवां शतम् ॥ १० ॥
 त्वया ह स्विद् युजा वयं
 प्रति श्वसन्तं वपम द्रुवीमहि ।
 संस्ये जर्नस्य गोमंतः ॥ ११ ॥
 जयैम कारे पुरुहूत कारिणो ऽभि तिष्ठेम दुर्हाः ।
 नृमिर्वृत्रं हन्यामं शश्याम च
 अवेरिन्द्र प्र णो धियः ॥ १२ ॥
 अभातृव्यो अना त्व—मनापिरिन्द्र जनुर्गा सुनादंसि ।
 युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १३ ॥
 नकी रेवन्तं सत्प्यायं विन्द्रसे पीर्यन्ति ते सुप्रुध्वः ।
 यदा कृणोषिं नद्रुं समर्हस्य
 आदित् पितेव ह्यसे ॥ १४ ॥
 मा ते अमाजुते यथा मुरासं इन्द्र सत्ये त्वार्यतः ।
 नि पंदासु सचां सुते ॥ १५ ॥
 मा ते गोदन्न निरंराम राधसु इन्द्र मा ते गृहामहि ।
 हृद्धा चिद्वयः प्र मृशाभ्या भरं
 न ते दामानं आदभै ॥ १६ ॥

॥ २५ ॥ (ऋ० ८।३४१-१८)

[नोवातिथि. काव., १६-१८ सहस्रं वसुधोविषोऽङ्गिरस.]
 अत्रुष्टु. १६-१८ गायत्री ।

एन्द्र याहि हरिभि—रुप कण्वस्य सुपुतिम् ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिव्यं यय दिवावसो ॥ ११ ॥
 आ त्वा प्राया वदग्निह सोमी घोषेण यच्छतु ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिव्यं यय दिवावसो ॥ २१ ॥
 अत्रा वि नेमिरैण—मुरां न धनुते वृकः ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिव्यं यय दिवावसो ॥ ३१ ॥

आ त्वा कणां दृहायसे हवन्ते वाजसातये ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिव्यं यय दिवावसो ॥ ४१ ॥
 दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाप्यम् ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिव्यं यय दिवावसो ॥ ५१ ॥
 सत्पुंरन्धिर्न आ गहि विभवतोधीनं जुनये ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिव्यं यय दिवावसो ॥ ६१ ॥
 आ नो याहि महेमने सहस्रोने शतामव ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिव्यं यय दिवावसो ॥ ७१ ॥
 आ त्वा होता मनुहितो देवत्रा वंशदीर्घः ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिव्यं यय दिवावसो ॥ ८१ ॥
 आ त्वा मद्रच्युता हरीं श्येनं पक्षेयं वक्षतः ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिव्यं यय दिवावसो ॥ ९१ ॥
 आ याह्यय आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिव्यं यय दिवावसो ॥ १०१ ॥
 आ नो याहापशु—त्युश्वेषु रणया इह ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिव्यं यय दिवावसो ॥ १११ ॥
 सहस्रैरा सु नो गहि संभृतेः संभृताभ्यः ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिव्यं यय दिवावसो ॥ १२१ ॥
 आ याहि पवतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिव्यं यय दिवावसो ॥ १३१ ॥
 आ नो गव्यान्वद्व्यां सहस्रां शूर दर्दहि ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिव्यं यय दिवावसो ॥ १४१ ॥
 आ नः सहस्रशो मंप—ऽयुतानि शतानि च ।
 दिवो अमुष्य शासतो दिव्यं यय दिवावसो ॥ १५१ ॥
 आ यदिन्द्रश्च द्रव्हे सहस्रं वसुंरोचियः ।
 ओजिष्ठमद्वयं पशुम् ॥ १६ ॥
 य ऋचा वारंरदसो ऽरुयानो रमुष्यदः ।
 भ्राजन्ते स्यां इय ॥ १७ ॥
 पारावनस्य रातिषुं इवशंकेष्याशुषुं ।
 तिष्ठं वनस्य मभ्य आ ॥ १८ ॥

॥ २६ ॥ (श्रु ८४५।१-४८)

[त्रिशोकः काव्यः] । [१ अग्रोन्द्रः] । गायत्री ।

आ घा ये अग्निमिन्द्रते स्तुणान्ति बर्हिर्दानुपक् ।
 येषामिन्द्रो युवा सर्वा ॥ १ ॥
 बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः ।
 येषामिन्द्रो युवा सर्वा ॥ २ ॥
 अयुद्ध इद् युधा वृतं शर आजति सत्वाभिः ।
 येषामिन्द्रो युवा सर्वा ॥ ३ ॥
 आ युद्धं वृत्रहा वदे जातः पृच्छद् वि मातरम् ।
 क उग्राः के हं शृण्वरे ॥ ४ ॥
 प्रति त्वा शवसी बद्ध् गिरावप्सो न योधिपत् ।
 यस्तं शनुत्वमाचके ॥ ५ ॥
 उत त्वं मधवन्धुषु यस्ते वाष्टे ववञ्चि तत् ।
 यद् वीळ्यासि वीळु तत् ॥ ६ ॥
 यदाजि याल्याजिरु—दिन्द्रः स्वश्वयुक्प ।
 रथीतमो रथीनाम् ॥ ७ ॥
 वि षु विभ्वा अभियुजो वञ्चिन् विष्वग्यथा बृह ।
 भवां नः सुश्रवस्तमः ॥ ८ ॥
 अस्माकं सु रथं पुर इन्द्रः कृणोतु सातये ।
 न यं धूर्षन्ति धूर्तयः ॥ ९ ॥
 घृज्यामं ते परि द्विपो इरं ते शक्र दावने ।
 गुमेमेदिन्द्र गोमंतः ॥ १० ॥
 शनैश्चिद् यन्तो अद्रियो ऽश्वान्तः शतग्विनः ।
 धिषक्षणा अनेहसः ॥ ११ ॥
 ऊर्वा हि तं दिधेदिधे सहस्रां सुनृतां शता ।
 जगिन्ध्र्यां विमहते ॥ १२ ॥
 रिना हि त्वा धनेज्य—मिन्द्रं हृळ्हा त्रिदारुजम् ।
 आदारिणं यथा गर्यम् ॥ १३ ॥
 बृहद् धित् त्वा कये मन्दन्तु धृष्णचिन्दयः ।
 आ र्यां पणि यदीमहे ॥ १४ ॥
 यन्ने रेयां अदाशरिः प्रममये मृषस्ये ।
 तम्यं नो येद् आ मर ॥ १५ ॥

इम उ त्वा वि चक्षते सर्वाय इन्द्र सोमिनः ।
 पुष्टार्धन्तो यथा पशुम् ॥ १६ ॥
 उत त्वाबधिरे वयं श्रुत्केणं सन्तमृतये ।
 दूरादिह हवामहे ॥ १७ ॥
 यच्छुभ्रुया इमं हवं दुर्मये चक्रिया उत ।
 भवेरापिनो अन्तमः ॥ १८ ॥
 यच्चिदि ते अपि व्यथि—जगन्वांसो अमन्महि ।
 गोदा इदिन्द्र वोधि नः ॥ १९ ॥
 आ त्वा रम्भं न जिब्रयो ररम्भा शवसस्पते ।
 उदमासिं त्वा सुधस्थ आ ॥ २० ॥
 स्तोत्रमिन्द्राय गायत पुरनुम्णाय सत्वने ।
 नक्रियं वृण्वते युधि ॥ २१ ॥
 अभि त्वा वृषभा सुते सुतं र्जजामि पीतये ।
 तृम्पा व्यंशुह्नी मर्दम् ॥ २२ ॥
 मा त्वा मृता अविष्यवो मोपहस्वान आ दमर ।
 मार्कीं ब्रह्माद्रिपो वनः ॥ २३ ॥
 इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे ।
 सरं गौरो यथा पिय ॥ २४ ॥
 या वृत्रहा परावति सना नयां च चुच्युवे ।
 ता संसत्सु प्र धौचत ॥ २५ ॥
 अपिबत् क्रदुयः सुत—मिन्द्रः सहस्रयाहे ।
 अत्रादेदिष्ट पौंस्यम् ॥ २६ ॥
 सत्यं तत् तुवशे यदौ विदानो अह्वानायम् ।
 ध्यानत् तुवणे शर्मि ॥ २७ ॥
 तरणिं वो जनानां वृदं वाजस्य गोमंतः ।
 समानमु प्र शैसिपम् ॥ २८ ॥
 श्रुमुक्षणं न वर्तय उरुधेषु तुष्टावृधम् ।
 इन्द्रं सोमे सर्वां सुते ॥ २९ ॥
 यः हन्तदिद् वि योन्यं त्रिशोकाय गिरि पुषुम् ।
 गोभ्यो गानुं निरैतये ॥ ३० ॥
 यद् दधिपे मनुम्यासि मन्दानः प्रेदियंक्षसि ।
 मा तत् करेन्द्र मूळ्यं ॥ ३१ ॥ (४३१)

दुभ्रं चिद्धि त्वावतः कृतं दृण्वे अधि शर्मि ।
जिगातिवन्द्र ते मनः ॥ ३२ ॥
तवेदु ताः सुकीर्तयो ऽसंभ्रुत प्रदास्तयः ।
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ ३३ ॥
मा न एकस्मिन्नागसि मा ह्योस्त त्रिषु ।
वधर्मा शूर भूरिषु ॥ ३४ ॥
विभया हि त्वावत उग्रावभिप्रमङ्गिनः ।
दस्माद्दहर्मृतीपहः ॥ ३५ ॥
मा सख्युः शूनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूवसो ।
आवृत्वद् भूतु ते मनः ॥ ३६ ॥
को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमग्रवीत् ।
जहा को अम्मदीपते ॥ ३७ ॥
एवारं वृषमा सुते ऽसिन्धुन् भूयीवयः ।
श्वघ्नीवं निवता चरन् ॥ ३८ ॥
आ तं एतां वंचोयुजा हरीं गृण्णे सुमद्रथा ।
दीं ब्रह्मभ्य इहर्दः ॥ ३९ ॥
भेन्धि विश्वा अप द्विषुः परि धार्धो जही मृधः ।
सुं स्याहं तदा भंर ॥ ४० ॥
द्वीळाविन्दु यत् स्थिरे यत् पर्शानि पराभृतम् ।
सुं स्याहं तदा भंर ॥ ४१ ॥
स्यं ते विश्वमनुषो भूरैर्दं चस्य वेदंति ।
सुं स्याहं तदा भंर ॥ ४२ ॥

॥ २७ ॥ (ऋ० ८।४९।१-१०)

[प्रस्कण्य काण्व] । प्रगाथ = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

गभि प्र वः सुरार्धसु—मिन्द्रमर्चं यया निदे ।
गे जीरिवृष्यो मप्रयो पुरुवसुः
उहर्षेणैव शिर्क्षति ॥ १ ॥
एतानीकेषु प्र जिगाति घृष्णुया
न्ति वृत्राणि दाशुषे ।

गिरेरेव प्र रेसा अस्य पिन्विरे
दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥
आ त्वां सुतासु इन्द्रो मदा य इन्द्र गिर्विणः ।
आपो न वज्रिन्नन्वोभ्यं सरः
पुणन्ति शूर राधसे ॥ ३ ॥
अनेहसं प्रतरणं विवर्क्षणं मध्यः स्वादिष्टमी पिव ।
आ यथा मन्दसानः किरासि नः
प्र क्षुत्रेव त्मना घृपत् ॥ ४ ॥
आ नः स्तोममुषं द्रव—द्वियानो अश्वो न सोतंभिः ।
यं तै स्वधावन्त्स्यदयान्ति धेनव
इन्द्र कर्षेपु रातर्यः ॥ ५ ॥
उग्रं न वीर नमसोषं सेदिम विभूतिमक्षितावसुम् ।
उद्रीवं वज्रिन्नृतो न सिञ्जते
क्षरन्तीन्द्र धीतर्यः ॥ ६ ॥
यद्धं नूनं यद्वा यद्धे यद्वा पृथिव्यामधि ।
अतो नो यन्नमाशुभिर्महेमत
उग्र उग्रेभिरा गंहि ॥ ७ ॥
अजिरासो हरयो ये तं आशयो वाता इव प्रसुक्षिणः ।
वेभिरपत्यं मनुष्यः परीर्यसं येभिविध्वं स्वर्दशे ॥ ८ ॥
एतावतस्त ईमह इन्द्रं सुन्नस्य गोमंतः ।
यथा प्रावो मघवन् मेभ्यातिथिं
यथा नीपातिथिं धने ॥ ९ ॥
यथा कर्षे मघवन् वसदस्यवि
यथा पन्थे दशवजे ।
यथा गोशर्ये वसन्तोऽङ्गिजिथ्वनि
इन्द्र गोमदिरण्यवत् ॥ १० ॥

॥ २८ ॥ (ऋ० ८।५०।१-१०)

[पृष्ठिणु काण्व] । प्रगाथ - (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

प्र सु धृतं सुरार्धसु—मर्चो शुकमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुचते काम्यं वसुं
सहर्षेणैव मंहते ॥ १ ॥

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा

इन्द्रस्य समिपो महीः ।

गिरिर्न मुन्मा मघवन्सु पिन्वते

यदा सुता अमन्दिपुः

॥ २ ॥

यदा सुतासु इन्द्रो ऽभि प्रियममन्दिपुः ।

आपो न धायि सर्वान् म आ चमो

दुर्या इवोष दाशुषे

॥ ३ ॥

अनेत्र्यो वो हवमानमुतये मध्यः क्षरन्ति धीतयः ।

आ न्वा चमो हवमानासु इन्द्रव

उप स्तोत्रेषु दधिरे

॥ ४ ॥

आ नः सोमं स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते ।

यं नै स्वदानुस्वर्गान्ति गृह्ययः

प्रागे उन्मयमे हवम्

॥ ५ ॥

प्र धीरमुषे विविचि धनुस्पृन् विभूर्ति राधसो महः ।

उद्रीं यजिष्यतो यमुन्वना

मदा पीपेथ दाशुषे

॥ ६ ॥

यदं नून पंगवति यद् वा पृथिव्यां दिवि ।

युजान इन्द्र हरिभिर्महेमत

भ्रुष्य भ्रुषेमिग्रा गंदि

रधिरागो हरयो ये नै क्षत्रिध

धोपो पारतस्य पिमति ।

येमिनि दस्यं मनुषो निघोषयो

येमि मं पृतीयमे

॥ ८ ॥

एतायंमने यमो यिचामं दूर नव्यसः ।

यथा प्राय एतदा ह्ये एते

यथा यदा दनामने

॥ ९ ॥

यथा कथं मपयन् मंथे भण्टरे

हृषीर्निधि दस्यंति ।

यथा एतयो धरिगामो भद्रिषुः

सपि एते हृषिधियं

॥ १० ॥

॥ २९ ॥ (ऋ० ८।५।१-१०)

श्रुष्टिगु कण्वः । प्रगाय - (विषमा वृहतीः

समा चतोवृहती) ।

यथा मनौ सांवरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतम् ।

नीपातिथौ मघवन् मेघ्यातिथौ

पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा

॥ १ ॥

पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समसादयत्

शर्यान् जिन्निमुद्धितम् ।

सहस्राण्यसिपासद् गयामृषिस्त्वोतो दस्यवे वृकः ।

य उन्मयेभिर्न विन्धते चिकिच ऋषिचोदन ।

इन्द्रं तमच्छा वद् नव्यस्या मती

अरिष्यन्तं न भोजसे

॥ ३ ॥

यसां अकं सप्तशीर्षाणमानुषु खिघातुमुत्तमे पुे ।

स त्विमा विश्वा भुवनानि चिक्रद्

आदिर्जनिष्ट पोस्यम्

॥ ४ ॥

यो नो दाता वसुनामिन्द्रं त इमहे धृषम् ।

विभ्रा हस्य सुमति नवीयसां

गमेम गोमति वजे

॥ ५ ॥

यस्मै त्वं वंसो दानाय शिर्हासि

स रायस्पोपमधुते ।

तं त्वां ययं मंघवन्दिन्द्र गिवंणः

सुतायन्तो हयामहे

कदा चन स्तरींसि नेन्द्रं मद्यसि दाशुषे ।

उपोपेष्टु मंघवन् भूय इष्टु ते

दानं देवस्यं पृच्यते

॥ ६ ॥

प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रियं

धृषेः शृष्णं निघोषयन् ।

यदेवस्मर्गमां प्रथयन्तुं दिपं

आदिर्जनिष्ट पार्षियः

॥ ८ ॥

यस्याय विभ्य आयो दारुः दोषधिगा मृदि ।

तिरधिदुये रदांम पर्वात्सि

सुभ्येन् नो भज्यते ह्यिः

॥ ९ ॥

(११)

तुरण्ययो मधुमन्तं घृतञ्चतुनं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृण्यं शवो
अस्मे सुवानास इन्द्रवः ॥ १० ॥

॥ ३० ॥ (अ० ८।५२।१-१०)

आयुः काण्वः । प्रणयः = (विषमा बृहती,
यमा सतोबृहती) ।

यथा मनो विवस्वति सोमं शक्रार्पियः सुतम् ।
यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोपसि
आयो मादियसे सचा ॥ १ ॥
पृषधे मेधेयं मातरिष्वनीन्द्रं सुवाने अमन्दथाः ।
यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्यूमरस्मावृजूनसि ॥२
य उक्था केवला दधे यः सोमं धृयितापिवत् ।
यस्मि विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रुमे
उप मित्रस्य धर्मभिः ॥ ३ ॥

यस्य त्वमिन्द्र स्तोमेषु चाकनो वाजे वाजिन्छतक्रतो ।
तं त्वां वयं सुदुर्वामिव गोदुहो
जुहुमसि श्रवस्ववः ॥ ४ ॥
यो नो दाता स नः पिता मह्यं उप ईशानकृत् ।
अयोमधुश्रो मधवां पुरुवसु गौरभस्व्यं प्र दातु नः ॥५॥
यस्मै त्वं वसो दानाय मह्येसे स रयस्पोपमिन्वाति ।
यस्ययवो वसुपति शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥६॥
कदा चन प्र युच्छस्युभे नि प्रांसि जग्मेनी ।
तुपीयादित्य हव्यं त इन्द्रियं
आ तस्यायमूर्तं द्विवि ॥ ७ ॥

यस्मै त्वं मधवन्निन्द्र गिर्वणः
शिक्षो शिप्रंसि दाशये ।
असाकं गिरं उत सुपुति वसो
कण्ववचरुणुशै हव्यम् ॥ ८ ॥
अस्तायि मन्मं पुत्र्ये ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वाभ्रुतस्यं वृहतीरनूपत स्तोतुमेषा अमृशत ॥९॥
समिन्द्रो रायो वृहतीरधुनुत सं शोणी समु स्यम् ।

सं शुक्रासुः शचयः सं गवाशिरः
सोमा इन्द्रममन्दिपुः ॥ १० ॥

॥ ३१ ॥ (अ० ८।५३।१-८)

मेघ्यः कण्वः । प्रणयः = (विषमा बृहती,
यमा सतोबृहती) ।

उपमं त्वां मद्योनां ज्येष्ठं च वृषभाणाम् ।
पूर्वित्तमं मधवन्निन्द्र गोविद्र मीशानं राय ईमहे ॥१
य आयुं कुत्संमतिधिग्वमर्दयो वावृघ्नानो दिवेदिवे ।
तं त्वां वयं हयैश्वं शतक्रतुं वाज्रपन्तो हवामहे ॥२॥
आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्जन्वद्रयः ।
ये पप्रवति सुन्विरे जनेष्व्वा ये अर्वावतीन्द्रवः ॥३
विश्व्वा द्वेषोसि जहि चान् चा कृधि
विश्वं सन्वन्त्वा वसुं ।

शीघ्रेषु चित् ते मदिरासो अंशवो
यत्रा सोमस्य तुम्पसि ॥ ४ ॥
इन्द्र नेदीय पाद्विहि मितमेषाभिरुतिभिः ।
आ शतम शतमभिरभिष्टिभिः
आ स्वापे स्वापिभिः ॥ ५ ॥
आजितुरं सत्याति विश्वचर्यणि कृधि प्रजास्वार्भगम् ।
प्र सू तिरा शर्चीभियं तं उन्थिनः
क्रतुं पुनत आनुपक् ॥ ६ ॥
यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरैषु ते ।

यं होत्राभिरुत वेवहृतिभिः ससुवांसो मनामहे ॥७॥
अहं हि तै हरिवो ब्रह्म वाज्रयुः
आजि यामि सद्योतिभिः ।
त्वामिदेव तममे समश्वयु-गन्धुरर्षे मथीनाम् ॥८

॥ ३२ ॥ (अ० ८।५४।१-७; ५-८)

मातरिषा काण्वः । प्रणयः = (विषमा
बृहती, यमा सतोबृहती) ।

एतत् तं इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गुणन्ति कारयः ।
ते स्तोमन्त ऊर्जमावन् घृतञ्चत
पौरासो नक्षत्र धीतिभिः ॥ १ ॥

नक्षन्तु इन्द्रमयसे सुकृत्या येषां सुतेषु मन्दसे ।
 यथा संवर्ते अमन्त्रो यथा रुद्रा
 एवास्मे इन्द्र मत्स्य ॥ २ ॥
 यदिन्द्र राधो अस्ति ते माघानं मघवत्तम ।
 तेन नो बोधि सधुमाघो वृधे
 भगो दानाय वृत्रहन ॥ ५ ॥
 आजिपने नृपने त्वमिद्धि नो वाज आ वांक्षि सुक्रतो ।
 धीनी होत्राभिरुत देयधीतिभिः
 समन्तांसो वि दृष्टिपरे ॥ ६ ॥
 सन्ति ह्ययं आशिप इन्द्र आयुर्जनानाम् ।
 अस्मान् नक्षस्व मय्यनुपावसे
 घुक्षस्व पिन्वुयीमिरम् ॥ ७ ॥
 घयं त इन्द्र स्तोमैर्भिविधेम त्वमस्माकं शतक्रतो ।
 महिं स्युरं शशयं राधो अहयं
 प्रस्वण्वाय नि तौशाय ॥ ८ ॥

॥ ३३ ॥ (ऋ० ८।५०।१-५)

इय वाय । (प्रश्नवच) । माघश्रे ३, ५ अनुष्टुप ।

मूरीदिन्द्रस्य धीर्यं व्यग्यमभ्यार्यति ।
 राधस्ने दस्यये वृक ॥ १ ॥
 नानं श्येतामं उक्षणो विधि तारो न रोचन्ते ।
 मद्रा दिपं न संस्नभुः ॥ २ ॥
 नानं येणुच्छन्ते नूनैः नानं चर्माणि म्र्यातानि ।
 नानं मे वत्यजस्तुका अरंणीणां चतुःशतम् ॥ ३ ॥
 सुदेयाः रथं वाणपायना धर्योपयो विचरन्तः ।
 धर्यागो न चंद्रमन ॥ ४ ॥
 धादिन् वामाग्यं धार्वरु-धाननम्य मग्नि धर्यः ।
 एवाधीगतिष्यन्तु वृष-धर्युषा घ्नन् गंनदी ॥ ५ ॥

॥ ३४ ॥ (ऋ० ८।५१।१-४)

एवमं ७७१ । माघश्रे ।

प्रति ते दस्यये वृक राधो अहयं वृधे ।
 धानं प्रभुना नायः ॥ १ ॥

दश मर्हं पौतकृतः सहस्रा दस्यवे वृकः ।
 नित्याद्वायो अमंहत ॥ २ ॥
 शतं मे गर्दमानां शतमूर्णावतीनाम् ।
 शतं दासां अति स्रजः ॥ ३ ॥
 तत्रो अपि प्राणीयत पूतक्रतायै व्यक्ता ।
 अश्वानामिध्न युध्याम् ॥ ४ ॥

॥ ३५ ॥ (ऋ० ८।६१।१-६८)

मर्गः प्रागाथ । प्रागाथ = (विषमा वृहती,
 धमा धते वृहती) ; १७ शंकुमती ।

उभयं शृण्वंश्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
 सत्राच्यां मघवा सोमपीतये
 धिया शर्विष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥
 तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिपणे निष्टतशतं ।
 उतोपमानां प्रथमो नि पीदसि
 सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥

आ घृपस्व पुरुवसो सुतस्येन्द्राग्यसः ।
 विद्या हि त्वा हरिवः पूत्सु सांसिद्धि
 अर्धष्टं चिद् दधुष्वणिम् ॥ ३ ॥
 अप्रामिसत्व मघवन् तथेदंसत्
 इन्द्र क्रत्या यथा घशः ।
 सनेम वाजं तथं शिप्रिभ्रवसा
 मक्ष चिचन्तो अद्रिवः ॥ ४ ॥
 शृण्व्युषु शीचीपत् इन्द्र विभ्याभिरुतिभिः ।
 भगं न हि त्वां यदासं यमुयितुं
 अनुं शूर चरामसि ॥ ५ ॥
 पीरो अर्धस्य पुण्ड्रुद गपामिमि
 उत्तो देय हिरण्ययः ।
 नविदिं दानं परिमर्षिपुत् त्वे
 यद्युषामि तदा भं
 त्वं होदि चेरये विदा भगं यमुनये ।
 उठावृषम्य मघवन् गर्विष्टय उदिन्द्राधमिष्टये ॥ ३३ ॥

त्वं पुरुसहस्राणि शतानि च युथा दानाय महसे ।
 आ पुरंदरं चंद्रम विप्रवचसु
 इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ ८ ॥
 अविप्रो वा यदविप्र—द्विप्रो वेन्द्र ते वचः ।
 स प्र ममन्द्रत् त्याया शतकृतो
 प्राचामन्यो अहंसन ॥ ९ ॥
 उग्रवाहुर्भ्रश्रुत्वा पुरंदरो यदि मे शूणवृद्धयम् ।
 वसुयद्यो वसुर्पाति शतकृतु स्तोमैरिन्द्र हवामहे १०
 न पापासो मनामहे नारयासो न जल्हवः ।
 यद्विन्विन्द्रं वृषणं सचा सुते
 सपायं कृणवामहे ॥ ११ ॥
 उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहि—मृणकान्तिमदाभ्यम् ।
 वेदा भूमं चित् सनिता रथीतमः
 अजिनं यमिदु नदात् ॥ १२ ॥
 तं इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
 अर्चवन्लघि तव तत्रं कृतिभिः
 वे द्विपो वि मृधो जाहि ॥ १३ ॥
 वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः ।
 त्वा घयं मघवत्रिन्द्र गिर्वणः
 वृतावन्तो हवामहे ॥ १४ ॥
 इन्द्रः स्फुटत वृषडा एरुसा नो वरेण्यः ।
 उ नो रक्षिषच्चरमं स मध्यमं
 न पश्चात् पातु नः पुरः ॥ १५ ॥
 चं नः पश्चादधरादुत्तरात् पुर
 इन्द्र नि पाहि विश्वतः ।
 शारे असत् कृणुहि देव्यं भयं
 शारे हेतीरदेयीः ॥ १६ ॥
 अघाघा भ्यः इन्द्र प्रास्यं परे चं नः ।
 विश्वा च नो जरितुर्नमत्पते अहा
 दिवा नभतं च रक्षिषः ॥ १७ ॥

प्रमद्री शूरो मघवा तुवीमघः संमिन्लो वीर्योय कम् ।
 उमा ते वाह्व वृषणा शतकृतो
 नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥ १८ ॥
 ॥ १६ ॥ (क्र. ८६११-१२)
 प्रगयो घोः कण्वः पक्षिः, ७-९ वृहता ।
 प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजोपति ।
 उन्धैरिन्द्रस्य माहिंनं वर्यो वधन्ति सोमिनो
 भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १ ॥
 अयुजो असमो नृभि—रेकः कृष्टीरयास्यः ।
 पूर्वोरति प्र वावृधे विश्वा जाताम्योजसा
 भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ २ ॥
 अहितेन चिदवता जीरदानुः सिपासति ।
 प्रवाच्यमिन्द्र तत् तव वीर्योणि करिष्यतो
 भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ३ ॥
 वा याहि कृणवाम तु इन्द्र ग्रहाणि वधेना ।
 येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह ध्रवस्यते
 भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ४ ॥
 धृपतश्चिद् धृण्मनः कृणोर्पिन्द्र यत् त्यम् ।
 तीर्थः सोमः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूर्यतो
 भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ५ ॥
 अयं चपु ऋचीपमो ऽवता इव मानुषः ।
 जुष्टी दक्षस्य सोमिनः सगायं कृणुते युजं
 भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ६ ॥
 विश्वे त इन्द्र वीर्ये देवा अनु क्रतुं ददुः ।
 भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुषुत
 भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ७ ॥
 गृणे तदिन्द्र ते शयं उपमं देवतातये ।
 यजंसि वृषमौजसा शचीपते
 भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ८ ॥
 समनेव वपुष्यतः कृणवन्मानुषा युगा ।
 विदे तदिन्द्रधेतनमघं ध्रुते
 भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ९ ॥

उज्जातमिन्द्र ते शव उक्त्वा मुत् तव क्रतुम् ।
 भूरिगो भूरि वावृधु—मर्धवन् तव शर्मणि
 मद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ० ॥
 अहं च त्वं च वृत्रहन् त्वं युज्याव सुनिभ्य आ ।
 अरातीवा चिद्विधो ऽनु नौ शूर मंसते
 मद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ११ ॥
 सुत्वमिद् वा उ तं वय—मिन्द्रं स्तवाम नानृतम् ।
 मद्वा असुन्वतो वधो भूरि ज्योतीषि सुन्वतो
 मद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १२ ॥

॥ ३७ ॥ (ऋ० ८।६।२-११)

प्रगथ कथ. । गायत्री; १, ४-५, ८ अनुष्टुप् ।

स पृथ्वीं महानां वेनः क्रतुमिरानजे ।
 यस्य द्वाप मनुष्पिता देवेषु धियं आनजे ॥ १ ॥
 दिवो मानं नोत्सदन् त्सोमपृष्ठासो अद्रयः ।
 उन्था ब्रह्म च शंस्या ॥ २ ॥
 स विहो अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अंवृणोदपं ।
 स्तुपे तदस्य पांस्यम् ॥ ३ ॥
 स प्रनथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वृक्षणिः ।
 दिवो अर्कस्य होम—न्यस्मन्ना गन्ववसे ॥ ४ ॥
 वादु नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः ।
 ध्यात्रमर्का अनृपते—न्द्र गोत्रस्य दावने ॥ ५ ॥
 इन्द्रे विभ्यानि दीप्यां कृतानि कर्त्यानि च ।
 यमकां अंपरं विदुः ॥ ६ ॥
 यत् पाञ्चजन्यया विशे—न्द्रे घोषा असृक्षत ।
 अम्णाहृष्टां विपोऽयो मानस्य स क्षयः ॥ ७ ॥
 इयमुं ते अनुष्पति—धृष्टये तानि पांस्यां ।
 प्रार्यध्रमस्य यनेनिम् ॥ ८ ॥
 ध्रस्य पृष्णा प्योदन उगः प्रमिष्ट जीवमे ।
 ययं न पृथ आ ददे ॥ ९ ॥
 महर्षाना धयम्ययो युष्मानिर्दक्षपितरः ।
 श्यामं मरुत्यतो वृषं ॥ १० ॥

वृष्टत्वियाय धाम्न ऋकमिः शूर नोनुमः ।
 जेगमिन्द्र त्वया युजा ॥ ११ ॥
 ॥ ३८ ॥ (ऋ० ८।६।२-१२) गायत्री ।
 उक्त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अट्टिवः ।
 अयं ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥
 पदा पूर्णारं राधसो नि वाधस्व मद्वा असि ।
 नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥
 त्वमीशिपे सुताना—मिन्द्र त्वमसुतानाम् ।
 त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥
 एहि प्रेहि क्षयौ दि—व्याधु घोषञ्चर्षणीनाम् ।
 ओभे पृष्णासि रोदसी ॥ ४ ॥
 स्यं चित् पर्वतं गिरिं शतवन्तं सहस्रिणम् ।
 वि स्तोतृभ्यो रुरोजिध ॥ ५ ॥
 वयमुं त्वा दिवा सुते वयं नस्तं हवामहे ।
 अस्माकं काममा पृण ॥ ६ ॥
 कः स्य वृषभो युवां तुविप्रीयो अनानतः ।
 ब्रह्मा कस्तं संपर्यति ॥ ७ ॥
 कस्यं स्थित् सर्वं वृषा जुजुष्यां अवं गच्छति ।
 इन्द्रं क उं स्थिदा चके ॥ ८ ॥
 कं ते दाना असृक्षत वृत्रहन् कं सुवीर्यी ।
 उक्थे क उं स्थिदन्तमः ॥ ९ ॥
 अयं ते मारुपे जने सोमः पुरुषुं स्यते ।
 तस्येहि प्र द्रवा पिवं ॥ १० ॥
 अयं ते शर्यणावति सुपोमायामधि प्रियः ।
 आर्जाकीर्ये मदिन्तमः ॥ ११ ॥
 तमय राधसे मद्दे चारुं मदाय धृष्ये ।
 एहीमिन्द्र द्रवा पिवं ॥ १२ ॥
 ॥ ३९ ॥ (ऋ० ८।६।२-१२)
 यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्या हुयसे नृभिः ।
 वा योहि त्र्यमाशुभिः ॥ १३ ॥
 यदां प्रध्वरणे दिवो मादयामि स्वर्णरे ।
 यथा समुद्रे अन्धसः ॥ १४ ॥

आ त्वा गीर्मिर्महामुवं हुवे गामिष्व भोजसे ।	स ऊर्वस्य रेजयत्यपावृति
इन्द्र सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥	इन्द्रो गव्यस्य वृत्रहा ॥ ३ ॥
आ तं इन्द्र महिमानं हरयो देव ते महः ।	निखातं चिद्यः पुरुसंमृतं वसू-दिद्वपति वाशुपे ।
रथे वहन्तु विभ्रतः ॥ ४ ॥	वृज्जी सुशिप्रो हयैश्च इत् करत्
इन्द्रं गृणीप उं स्तुपे महौ उग्र ईशानकृत् ।	इन्द्रः क्रत्वा यथा वशत् ॥ ४ ॥
एहि नः सुतं पिबं ॥ ५ ॥	यद् वावन्थ पुरुषुत पुरा चिच्छूर नृणाम् ।
सुतावन्तस्त्वा वयं प्रयस्थन्तो हवामहे ।	वयं तत् तं इन्द्र स भंरामसि यद्गमुन्थं तुरं वचः ॥ ५ ॥
इदं नो वहिंरासदं ॥ ६ ॥	सत्त्वा सोमेषु पुरुहत वज्रिवो मदाय युक्ष सोमपाः ।
यच्चिद्वि शश्वतामसी -न्द्र साधारणस्त्वम् ।	त्वमिद्वि ब्रह्मकृते काम्यं वसु देष्टः सुन्वते भुवंः ॥ ६ ॥
तं त्वा वयं हवामहे ॥ ७ ॥	वयमेनमिदा ह्यो ऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
इदं ते सोम्यं मध्व-धृक्षत्रिमिनरः ।	तस्मा उ अद्य संमना सुतं भर
जुयाण इन्द्र तत् पिब ॥ ८ ॥	आ नूनं भूपत ध्रुते ॥ ७ ॥
विश्वो अयो विपश्चितो ऽति ख्यस्तूयमा गहि ।	वृकाश्चिदस्य वारुण उंरामथि-रा वयुनेषु भूपति ।
अस्मे धेहि ध्रुवो वृहत् ॥ ९ ॥	संमं नः स्तोमं जुजुयाण आ गहि
दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनाम् ।	इन्द्र प्र चित्रया धिया ॥ ८ ॥
मा देवा मघवा रिपत् ॥ १० ॥	कद्रु न्वुस्याकृत-मिन्द्रस्यास्ति पांस्यम् ।
सहस्रे पृषतीना-मधि श्वन्द्रं वृहत् पृथु ।	केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे
शुकं हिरण्यमा देदे ॥ ११ ॥	जनुपः परि वृत्रहा ॥ ९ ॥
नपातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुरार्घसः ।	कद्रु महीरघृष्टा अस्य तविपीः
ध्रुवो देवेर्ष्यकत ॥ १२ ॥	कद्रु वृत्रघ्नो अस्तुतम् ।
॥ ४० ॥ (ऋ० ८।६६।१-१५)	इन्द्रो विश्वानं वेकनाटो अहर्दश
कलिः प्रागापः । प्रागापः = (विश्वमा वृहती, समा धतोवृहती),	उत क्रत्वा पूर्णोरभि ॥ १० ॥
१५ अनुष्टुप् ।	वयं धां ते अपृष्ये-न्द्र ब्रह्माणि वृत्रहन् ।
तरौभिर्घो विदहंसु-मिन्द्रं स्रुवार्धं ऊतये ।	पुरुतमांसः पुरुहत वज्रिवो
वृहद्भार्यन्तः सुतसोमे अच्यरे	भूति न प्र भंरामसि ॥ ११ ॥
हुये भरं न कारिणम् ॥ १ ॥	पूर्वाश्चिद्वि त्वे तुंविक्मिप्राशसो हवन्त इन्द्रोतर्यः ।
न यं दुधा वरन्ते न स्थिरा सुरो मदे सुशिप्रमन्धसः ।	तिरश्चिद्वयः सवना वंसो गहि
य आहत्यां शशामानार्यं सुन्वते	शविष्णु धृधि मे हवम् ॥ १२ ॥
दाता जरित्र उफर्ष्यम् ॥ २ ॥	वयं धां ते त्वे इ-न्द्रिन्द्र विप्रा अपि प्मसि ।
यः शक्रो मुखो अश्वयो यो वा कीर्तो हिरण्ययः ।	नहि त्वदन्यः पुरुहत कश्चन
४	मघवप्रसि मडिता ॥ १३ ॥

त्वं नो अस्या अमतेरुत क्षुधोः

अभिर्शस्तेर्यं स्पृधि ।

त्वं न ऊती त्वं चित्रया धिया

शिक्षा शचिष्ठ गातुषित् ॥ १४ ॥

सोम इहः सुतो अस्तु कलयो मा विभीतन ।

अपेदेप ध्वस्मार्यति स्वयं धैपो अपायति ॥ १५ ॥

॥ ४२ ॥ (ऋ० ८।७६।१-१२)

कुरुमति ऋष्य गायत्री ।

इमं नु मायिनं हुव इन्द्रमीशानमोजसा ।

मरुत्वन्त न वृञ्जसे ॥ १ ॥

अयमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ।

वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥

वावृथानो मरुत्सखेन्द्रो वि वृत्रमैरयत् ।

सृजन्तसमुद्रिया अपः ॥ ३ ॥

अय ह येन वा इदं श्यमरुत्वता जितम् ।

इन्द्रेण सोमपीतये ॥ ४ ॥

मरुत्वन्तमृजीपिणमोजस्वन्तं विरिञ्चानम् ।

इन्द्रं गीर्भिर्हिवामहे ॥ ५ ॥

इन्द्रं प्रलेन मग्मना मरुत्वन्तं हवामहे ।

अस्य सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥

मरुत्वां इन्द्र मीढुः पित्रा सोमं शतक्रतो ।

अस्मिन् यज्ञे पुरुषुत ॥ ७ ॥

तुभ्येदिन्द्र मरुत्वन्ते सुताः सोमांसो अद्रिवः ।

इदा हयन्त उक्थिनः ॥ ८ ॥

पिपेदिन्द्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिर्विष्टिषु ।

यज्ञं शिशानु ओजसा ॥ ९ ॥

उत्तिष्ठशोर्जना सह पीत्वी शिमे अवेपयः ।

सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ १० ॥

अनु त्वा रोदमी उमे क्रथमाणमरुपेताम् ।

इन्द्र यद् दस्युष्टामयः ॥ ११ ॥

वाचमष्टापदीमहं नयंमृत्सृष्टाम् ।

इन्द्रात् परी तन्वं ममे ॥ १२ ॥

॥ ४२ ॥ (ऋ० ८।७७।१-११)

[गायत्री, १०-११ प्रगाथाः (बृहती, सतो बृहती)]

जज्ञानो नु शतक्रतुर्वि पृच्छदिति मातरम् ।

फ उग्राः फे ह दृषिरे ॥ १ ॥

आदीं शवस्वप्रवी-दौर्णवाममदीगुयम् ।

ते पुत्र सन्तु निष्टुरः ॥ २ ॥

समित् तान वृत्रहाभिवृत् ये अरौ इष खेदया ।

प्रवृद्धो दस्युहामवत् ॥ ३ ॥

एकया प्रतिधापिवत् साकं मरौसि त्रिदाम् ।

इन्द्रः सोमस्य काणुका ॥ ४ ॥

अभि गन्धर्वमतृण-द्वुधेषु रजःखा ।

इन्द्रो ब्रह्मभ्य इद् वृधे ॥ ५ ॥

निराविध्यद् गिरिभ्य आ धारयत् एकमौदनम् ।

इन्द्रो बुद्धं स्वाततम् ॥ ६ ॥

शतक्रान् इपुस्तव सहस्रपर्ण एक इत् ।

यमिन्द्र चरुपे युजम् ॥ ७ ॥

तेन स्तोतृभ्य आ मर नृभ्यो नारिभ्यो अत्वे ।

सद्यो ज्ञात ऋभुष्टिर ॥ ८ ॥

पता ज्यौत्नानि ते कृता यपिष्ठानि परीणसा ।

इदा वीङ्गधारयः ॥ ९ ॥

विश्वेत् ता विष्णुरामर-उरुकमस्त्वेपितः ।

शतं महिपान् क्षीरपाकमौदनं

वंग्रहमिन्द्र पसुपम् ॥ १० ॥

तुविशं ते सुकृतं सुमय धनुः साधुर्वुन्दो हिरण्यव ।

उमा तं वाह रण्या सुसंस्कृत

ऋदुपे चिहदुवृधा ॥ ११ ॥

॥ ४३ ॥ (ऋ० ८।७८।१-१०)

[गायत्री, १० बृहती]

पुपेज्जानं नो अन्धस इन्द्र सहस्रमा मर ।

शता च शर गोनाम् ॥ १ ॥

या नो मर व्यजनं गामर्धमभ्यजनम् ।

सचा मना हिरण्यया ॥ २ ॥

उत नः कर्णशोभना पुरुणि धृष्णवा भर ।
 त्वं हि शृण्विषे वंसो ॥ ३ ॥
 नकीं वृथीक इन्द्र ते न सुपा न सुदा उत ।
 नान्यस्त्वच्छ्रेय वाघतः ॥ ४ ॥
 नकीमिन्द्रो निकर्तवे न शक्रः परिशक्तवे ।
 विश्वे शृणोति पश्यति ॥ ५ ॥
 स मन्थुं मर्त्याना—मर्दधो नि चिकीपते ।
 पुरा निदक्षिकीपते ॥ ६ ॥
 क्रत्य इत् पुष्पमुदरं तुरस्यास्ति विधतः ।
 वृषघ्नः सौमपारतः ॥ ७ ॥
 त्वे वसन्ति संगता विश्वा च सोम सौमगा ।
 सुदात्वपरिहृता ॥ ८ ॥
 त्वामिधं वयुर्मम कामो गन्धुर्हिरण्ययुः ।
 त्वामंश्वयुरेपते ॥ ९ ॥
 तवेदिन्द्राहमाशसा हस्ते दारं घना ददे ।
 दिनस्य वा मघवन्तसंभृतस्य वा
 पुंश्चि यवस्य काशिना ॥ १० ॥
 ॥ ४४ ॥ (ऋ० ८।८।१-९)
 एकशुभेषसः । गायत्री ।
 नहास्यं वृद्धाकरं मर्दितारं शतक्रतो ।
 त्वं न इन्द्र मृळय ॥ १ ॥
 यो नः शभ्वत् पुराणिथा—ऽमृधो वार्जसातये ।
 स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ २ ॥
 विमह रंघ्रचोदनः सुन्वानस्यावितेदसि ।
 कुपित् स्थिन्द्र णः शक्रः ॥ ३ ॥
 इन्द्र प्र णो रथमत्र पृश्वाचित् सन्तमद्रिवः ।
 पुरस्तादेन मे रुधि ॥ ४ ॥
 हन्तो नु किमांससे प्रयमं नो रथं रुधि ।
 उपमं वाज्यु ध्रयः ॥ ५ ॥
 अवा नो याज्युं रथं सुकरं ते किमिव पति ।
 अस्मान्मु जिग्युपंस्थाधि ॥ ६ ॥

इन्द्र दहास्व पूरसि मद्रा तं पति निष्कृतम् ।
 इयं धीर्भुक्तिव्यावती ॥ ७ ॥
 मा सीमवद्य आ मागु—वीं काष्ठां हितं धनम् ।
 अपावृका अरुत्तयः ॥ ८ ॥
 तुरीयं नामं यज्ञियं यदा करस्तदुश्मसि ।
 आदित् पतिर्न ओहमे ॥ ९ ॥
 ॥ ४५ ॥ (ऋ० ८।८।१-९)
 कुसोदी काव्य ।

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं प्रामं सं गृमाप ।
 मद्राहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥
 विद्वा हि त्वां तुविकुर्मि तुविदेष्णं तुधीर्मघम् ।
 तुविमात्रमवोभिः ॥ २ ॥
 नहि त्वां शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् ।
 मीमं न गां चारयन्ते ॥ ३ ॥
 एतो न्विन्द्रं स्तनामे—शानं वस्यः स्वराजम् ।
 न राधसा मधिपन्नः ॥ ४ ॥
 प्र स्तोपदुषं गासिय—च्छ्रुत् सामं गीयमानम् ।
 अमि राधसा जुगुपत् ॥ ५ ॥
 आ नो भर दक्षिणेना—ऽभि मज्येन प्र मृग ।
 इन्द्र मा नो वसोनिर्माक् ॥ ६ ॥
 उयं क्रमस्वा भरं वृयता वृष्णे इनानान् ।
 अदाश्रुप्रस्य वेदः ॥ ७ ॥
 इन्द्र य उ तु ते अग्निं वाऽऽ विभ्रंभिः सन्वित् ।
 अस्माभिः सु ते मनुहि ॥ ८ ॥
 सयोज्युपंन्ते वाऽऽ इन्द्रं विश्वधन्ना ।
 यदंश्च मश्रु इन्द्रं ॥ ९ ॥

इषा मन्त्रस्यादु ते ऽन् यरोय म्गुयर्थे ।
 भुवंत् त इन्द्रं नो हृदे ॥ ३ ॥
 आ त्वंशत्रया गतिः स्युःकथानि च ह्यते ।
 उपमे रौचने दिघः ॥ ४ ॥
 तुभ्यायमद्रिभिः सुतो गोभिः धीनो मदाय कम् ।
 प्र सोमं इन्द्र ह्यते ॥ ५ ॥
 इन्द्रं ध्रुधि सु मे ह्यं—मस्मे सुतस्य गोमंतः ।
 वि प्रीति तृप्तिमश्नुहि ॥ ६ ॥
 य इन्द्र चमसेष्या सोमंश्चमूपुं ते सुतः ।
 पिषेदस्य त्वमीशिपे ॥ ७ ॥
 यो ध्रुवु चन्द्रमा इव सोमंश्चमूपु दददो ।
 पिषेदस्य त्वमीशिपे ॥ ८ ॥
 यं तं श्येनः पदामरत् तितरो रजांस्यस्पृत्तम् ।
 पिषेदस्य त्वमीशिपे ॥ ९ ॥

॥ ४७ ॥ (अ० ११८१-४)

आओगतिः शुनतेपः स कृत्रिमो वैश्वमित्रो

देवानः । अमुमुषु ।

यत्र प्रावा पृथुतुभं ऊर्ध्वो भवति सोतवे ।
 उल्लपलसुताना—मवेद्विन्द्र जत्गुलः ॥ १ ॥
 यत्र द्वाविंश जघना—धिपनुण्या कृता ।
 उल्लपलसुताना—मवेद्विन्द्र जत्गुलः ॥ २ ॥
 यत्र नार्यपच्यव—मुपच्यव च शिक्षते ।
 उल्लपलसुताना—मवेद्विन्द्र जत्गुलः ॥ ३ ॥
 यत्र मन्थां विवधते रश्मीन् यमित्वा इव ।
 उल्लपलसुताना—मवेद्विन्द्र जत्गुलः ॥ ४ ॥

॥ ४८ ॥ (अ० ११९११-७) पाकः ।

यच्चिद्धि संत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।
 आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुध्रिषु
 सहस्रेषु तुयीमघ ॥ १ ॥
 शिभिन् वाजानां पते शर्ध्विस्तव्यं दंसना ।
 आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुध्रिषु
 सहस्रेषु तुयीमघ ॥ २ ॥

नि त्वापया मिथुदनां सुतामकुण्यमाने ।
 आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुध्रिषु
 सहस्रेषु तुयीमघ ॥ ३ ॥
 सुगन्तु त्या धर्गतयो योषन्तु शूर गतयः ।
 आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुध्रिषु
 सहस्रेषु तुयीमघ ॥ ४ ॥
 समिन्द्र गन्तं मृण नृपन्तं पापयामुया ।
 आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुध्रिषु
 सहस्रेषु तुयीमघ ॥ ५ ॥
 पताति कुण्डणाच्या दूरं यातो यत्रादधि ।
 आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुध्रिषु
 सहस्रेषु तुयीमघ ॥ ६ ॥
 सर्वं परिक्रोदां जेहि जम्भया कृकद्रादाम् ।
 आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुध्रिषु
 सहस्रेषु तुयीमघ ॥ ७ ॥

॥ ४९ ॥ (अ० ११९०१-१०)

१-१०, ११-१५ गायत्री, ११ वासिष्ठ्यायत्रो, १६ मिथु ।
 आ व इन्द्रं निधिं यथा वाजयन्तः शतमृतम् ।
 महिष्ठं सिञ्ज इन्दुभिः ॥ १ ॥
 शतं वा यः शुधीनां सहस्रं वा समाशिराम् ।
 पदुं निजं न रीयते ॥ २ ॥
 सं यन्मदाय शुधिमिणं पुना हंस्योदरे ।
 समुद्रो न व्यचो दधे ॥ ३ ॥
 अयमुं ते समतसि कपोतं इव गर्भधिम ।
 वच्यस्ताच्चिन्न ओहसे ॥ ४ ॥
 स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीट् यस्य ते ।
 विभूतिरस्तु सुनतां ॥ ५ ॥
 ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयं ऽस्मिन् वाजे शतवतो ।
 समन्येषु ब्रवावहै ॥ ६ ॥
 योगैयोगे तयस्तं वाजेवाजे हवामहे ।
 सखाय इन्द्रमृतये ॥ ७ ॥

। वा गमद्यद्भि श्रवत् । सहस्रिणीभिर्भक्तिभिः ।
 जिभिर्युषं नो हव्यम् ॥ ८ ॥
 तु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रति नरम् ।
 ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥
 त्वा वयं विश्ववारा—ऽऽ शासहे पुरुहत् ।
 खे वसो जरितुभ्यः ॥ १० ॥
 स्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपात्राम् ।
 खे वज्रिन्सखीनाम् ॥ ११ ॥
 था तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन् तथा कृणु ।
 था त उद्गमसीष्टये ॥ १२ ॥
 यतीनिः सधमाद् इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
 मन्तो यामिर्मदेम ॥ १३ ॥
 ॥ घ त्वावान् त्मनातः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः ।
 इणोरक्षं न चक्रवोः ॥ १४ ॥
 ॥ यद् दुर्व्यः शतक्रतु—वा कामे जरितुणाम् ।
 इणोरक्षं न शचीभिः ॥ १५ ॥
 ॥ श्वदिन्द्रः पोमृथद्विर्जिगाय
 तानदद्विः शाश्वंसद्विर्धनानि ।
 ॥ नो हिरण्यरथं वंसनावान्
 स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥ १६ ॥
 ॥ ५० ॥ (ऋ० १, ३१, १-१५)
 हिरण्यरथ आङ्गिरसः । त्रिष्टुप् ।
 इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वीर्यं
 पानिं चकार प्रथमानिं वज्री ।
 अहन्नहिमन्वपस्ततर्दं
 प्र वक्षणां अभिनत् पथतानाम् ॥ १ ॥
 अहन्नहिं पर्यते शिप्रियाणं त्वष्टस्मै वज्रं स्वयं ततश्च ।
 शश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना
 मज्जः समुद्रमयं जग्मुरापः ॥ २ ॥
 मृषायमाणोऽघृणीतु सोमं त्रिकंद्रुकेष्वपिवत् कृतस्व्यं ।
 मा सार्यकं मघवांस्तु वज्रं
 मह्येनं प्रथमजामहीनाम् ॥ ३ ॥

यदिन्द्राहंन प्रथमजामहीनां
 आन्मथिनाममिनाः प्रोत मायाः ।
 आत् सूर्ये जनयन् धामुपासं
 तादीन्ना शयं न किला विविस्ते ॥ ४ ॥
 अहंन् वृधं वृत्रतरं व्यसं
 इन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
 स्कन्धासीव कुलिगेना विघृष्ण
 अहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः ॥ ५ ॥
 अयोद्वेद्यं दुर्मद् आ हि जुद्धे
 महाधीरं तुविवाधमृजीपम् ।
 नातारीदस्य ससृतिं वधानां
 सं रुजानाः पिपिप इन्द्रं शत्रुः ॥ ६ ॥
 अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रं
 आस्य वज्रमधि सानां जघान ।
 घृष्णो वधिः प्रतिमानं सुमूपन्
 पुरुषा वृषो अशयद् व्यस्तः ॥ ७ ॥
 नदं न मिन्नममुषा शयानं
 मनोरुहाणा अतिं यन्त्यापः ।
 याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्
 तासामहिः पत्सुतः शौर्यभूव ॥ ८ ॥
 नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रा
 इन्द्रो अस्या अन्व वधेजमार ।
 उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्
 दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥ ९ ॥
 अतिष्ठन्तीनामनिधेदानानां
 काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
 वृत्रस्य निष्यं वि चरन्व्यापी
 दीर्घं तन् आशयदिन्द्रं शतुः ॥ १० ॥
 शतपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्
 निकृष्टा आपः पृत्तिर्नैव गार्दः ।
 अपां विलनपिहितं यजसीद्
 वृधं जघन्यां अप तद् वयार ॥ ११ ॥ (७६)

अद्वयो वागे अमयस्तदिन्द्र
सुके यत् त्वां प्रत्यदंश्च देव एकः ।
अर्जयो गा अर्जयः शूर सोमं
अवाञ्छजः सतैवे सत सिन्धून्
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिंघेभू
न यां मिहमकिरद् ध्रादुनि च ।
इन्द्रश्च यद् युयुधाते अर्हिश्च
उतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये
अर्ह्यतारं कर्मपदय इन्द्र
हृदि यत् ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नर्व च यध्वति च स्रवन्तीः
श्येनो न मीतो अतरो रजांसि
इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा
शर्मस्य च द्राक्षिणो वज्रबाहुः ।
सदु राजा क्षयति चर्पणीनां
अपान न नेमिः परि ता र्भव
॥ ५६ ॥ (क्र. १२३।१-१५)

पतायामोर्षं गव्यन्त इन्द्रं
अस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति ।
अनामृणः कुविदादस्य रायो
गवां केतं परमावर्जते नः
उपेद्रहं धनदामप्रतीतिं
जुष्टां न श्येनो वसति पतामि ।
इन्द्रं नमस्यध्रुपमोर्भिरकैः
यः स्तोत्रभ्यो हव्यो अस्ति यामन्
नि सर्वसेन इपुधोरसक्त
समयो गा अजति यस्य वष्टि ।
चोष्क्यमाण इन्द्र मूर्तिं वामं
मा पुणिभ्रूरस्मदधि प्रवृद्ध
यधीर्हि दस्युं धनिनं घनेन
पकध्वरप्रपदाकेभिरिन्द्र ।

धनोरधि विद्युणक् ते ज्वायन्
अयंज्यानः सतृताः प्रेतिमीयुः ॥ ५ ॥
परं चिच्छीर्षा वयंजुस्त इन्द्र
अयंज्यानो यज्वभिः म्यधमानाः ।
प्र यद् दिवो हरियः म्यातग्र
निर्गतां अघ्नो रोदस्योः ॥ ५ ॥
अयुगुत्सघ्नवधस्य सेनां
अयातयन्त क्षितयो नयंवाः ।
यूपायुधो न घघ्नो निरंशः
प्रवक्षिरिन्द्रोश्चितयन्त आयन् ॥ ६ ॥
त्यमेतान् रुद्रतो जक्षतश्च
अयोधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवाद्दहो दिव आ दस्युमुधा
प्र सुन्यतः स्तुघतः शंसमाघः ॥ ७ ॥
चक्राणासंः परिणहै पृथिव्या
हिरण्येन मणिना शुर्ममानाः ।
न दिन्वानासंस्तितिरुस्त इन्द्रं
परि र्पशौ अदधात् सूर्येण ॥ ८ ॥
परि यद्विन्द्र रोदसी उभे
अवुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।
अमन्यमानौ अभि मन्यमानैः
निर्गन्वाभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥
न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुः
न मायामेधनुदां पृथंभुवन् ।
युजं वज्रं वृषमश्नू इन्द्रो
निज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥ १० ॥
अनु स्वधामक्षरत्रापो अस्य
अवर्धत मध्य था नाव्यानाम् ।
सध्रीचीनैन मनसा तमिन्द्र
ओजिष्ठेन इर्मनाहश्मि घ्न ॥ ११ ॥

न्याविष्यद्विहीविशस्य दृढदा
 वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णामिन्द्रः ।
 यावत्तरो मघवन् यावदोजो
 वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम्
 अमि सिध्मो बंजिगादस्य शत्रुन्
 वि तिग्मेन वृषमेणा पुरोऽमेत् ।
 सं वज्रेणासृजद् वृत्रमिन्द्रः
 प्र स्वां मतिर्मतिरच्छाशदानः
 आयः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्
 प्रावो युध्यन्तं वृषमं दशद्युम् ।
 शफच्युतो रेणुनक्षत धां
 उच्छ्वेयो नृपाहाय तस्यौ
 आयः शर्म वृषमं तुभ्यासु
 क्षेत्रजेपे मघवन्निद्वयं गाम् ।
 ज्योक् चिदत्र तस्यिवांसौ अरुञ्
 च्छत्रप्यतामधरा वेदनाकः

॥ ५१ ॥ (अ० १।५१।१-२५)

स्य आङ्गिरसः । अगती, १४-१५ त्रिष्टुप् ।

अमि त्वं मेपं पुंरुहुतमृगिम्यं
 इन्द्रं गीर्भिमदत्ता वसवो अर्णवम् ।
 यस्य दायो न विचरन्ति मानुषा
 मुजे मंहिष्टममि विप्रमर्चत
 अभीमवन्वन्त्स्वमिष्टिमतयो
 ऽन्तरिक्षमां तथिपौमिरावृत्तम् ।
 इन्द्रं दक्षांश्च शुभवो मद्दच्युते
 शतक्रतुं जयनी सुनुतारुहत्
 त्वं गोत्रमङ्गितोभ्योऽवृणोरप
 उताग्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
 ससेनं चिद् विमदायावहो वसुं
 आजायद्रिं यावसानस्यं नतयन्
 त्वमपामपिधानावृणोरप
 अधारयः पयैते शानुमद् वसुं ।

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

वृत्रं यद्विन्द्र शवसावधीरहिं
 आदित् सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे
 त्वं मायामिरपं मायिनोऽधमः
 स्वधामिर्ये अधि शुप्तावजुद्धत ।
 त्वं पिप्रोर्नुमणः प्रारुजः पुरः
 प्र श्रुजिभ्वानं दस्युहर्त्येष्वाविथ
 त्वं कुत्सं शुष्णहर्त्येष्वाविथ
 अरन्धयोऽतिथिग्वायु शर्म्यरम् ।
 महान्तं चिद्वर्षुदं नि क्रमीः पदा
 सनादेव दस्युहर्त्याय जक्षिपे
 त्वे विश्वा तथिपी सध्व्यग्विता
 तद्य राधेः सोमपीयाय हर्षते ।
 तद्य वज्रश्रिकिते ब्राह्मोर्हितो
 वृक्षा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या
 वि जानीहार्यान् ये च दस्ययो
 ब्रह्मिष्मते रन्धया शासंदम्रतान् ।
 शार्की मव यजमानस्य चोदिता
 विश्वेत् ता तै सधमादेषु चाकन
 अनुवताय रन्धयध्रपव्रतान्
 आभूमिरिन्द्रः श्रययन्नानुभवः ।
 वृद्धस्य चिद् वर्धतो धामिनक्षतः
 स्तवानो वृत्रो वि जघान सुदिहः
 तक्षद् यत् तं उदाना सहसा सहो
 वि रोदसी मज्जनां वाधते शर्वः ।
 आ त्वा चार्तस्य नृमणो मनोयुज
 आ पूर्वमाणमवहप्रमि श्रवः
 मन्दिष्ट पदुशनं वाच्ये सखा
 इन्द्रो वृद्धं बंधुतरार्थं तिष्ठति ।
 उग्रो ययिं निरुपः श्रोतसासृजद्
 वि शुणोस्य दंदिता पंगयत् पुरः

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

(७५५)

अद्वयो वारो अमवस्तदिन्द्र
सुके यत् त्वा प्रत्यहं देव एकः ।

अज्ञयो गा अज्ञयः शर सोमं
अवासुजः सतैव सत सिन्धून्
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिपेध
न यां मिहमाकेरद् ध्रादुर्नि च ।

इन्द्रश्च यद् युयुधाते अहिंश्च
उतापरीभ्यो मृगया वि जिग्ये
अहर्यातारं कर्मपदय इन्द्र
दृदि यत् ते ज्वनुषो भीरुगच्छत् ।

नव च यन्नवति च स्रवन्तीः
श्येनो न भीतो अतरो रजांसि
इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा
शमस्य च शूद्रिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनां
अरान् न नेमिः परि ता र्थमू

॥ ५१ ॥ (ऋ. १:३:१-१५)

पतायामोर्षं गव्यन्त इन्द्रं
अस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति ।

अनामृणः कुविदादस्य रायो
गयां केतं परमावर्जते नः
उपेदहं धेनुदामप्रतीतं
जुष्टां न श्येनो र्धसति पतामि ।

इन्द्रं नमस्यद्रुपमेभिरकं:
यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन्
नि सयसेन इषुधीरंसक
समयो गा अजति यस्य धाष्टे ।

शोभ्यमाण इन्द्र भूरं यामं
मा पणिभैरस्मदधि प्रवृद्ध
यधीदिं दम्युं धनिनं धनेन
एवधरंशुपशाकेभिस्त्रिन्द्र ।

धनोरधि विपुणक् ते व्यायन्
अयज्वानः सनुकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥

परं चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्र
अयज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद् दियो हरिवः स्यातग्र
निरप्रतो अंधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥

अयुयुत्सघ्नवद्यस्य सेनां
अयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुषो न वध्रयो निरघाः
प्रवद्विरिन्द्राश्चित्तयन्त आयन् ॥ ६ ॥

त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्च
अयोधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवाद्दहो दिव आ दस्युमुद्या
प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ७ ॥

चक्राणासः परीणहं पृथिव्या
हिरण्येन मणिना शुभ्रमानाः ।
न हिन्वानासंस्तितिरुस्त इन्द्रं
परि स्पर्शो अदधात् सूर्येण ॥ ८ ॥

परि यदिन्द्र रोदसी उभे
अवभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।
अमन्यमानां अभि मन्यमानैः
निर्ग्रहामि रधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥

न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुः
न मायामिधेनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो
निज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥ १० ॥

अनु स्वधामक्षरघ्रापो अस्य
अवधेत मध्य आ नाध्यानाम् ।
सग्नीचीनेन मनसा तमिन्द्र
ओजिष्ठेन हन्मनाहभिमि घ्न् ॥ ११ ॥

न्याविध्यदिल्लीविदास्य हृद्धा
 वि शृङ्गिणममिनच्छुष्णमिन्द्रः ।
 यावत्तरो मघवन् यावदोजो
 वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥ १२ ॥
 अभि सिध्मो अजिगादस्य गवुन्
 वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
 सं वज्रेणासृजद् वृषमिन्द्रः
 प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥ १३ ॥
 आवः कुन्मीमिन्द्र यस्मिञ्चाकन्
 प्रायो युध्यन्त वृषमं दशद्युम् ।
 शफच्युतो रेणुर्नक्षत चां
 उच्चैर्विद्यो नृपाहाय तस्यौ ॥ १४ ॥
 आवः शर्म वृषमं तुश्यासु
 क्षेत्रजेपे मघवन्निष्ठुयं गाम् ।
 ज्योक् चिदत्र तस्विवांसो अकम्
 च्छत्रयतामर्धरा वेदनाकः ॥ १५ ॥

॥ ५२ ॥ (अ० १५११-१५)

सव्य आश्रितः । जपती, १४-१५ विष्टु ।

अभि त्वं मेपं पुष्यहृतमृगिम्यं
 इन्द्रं गीर्भिमैदता वस्वो अणयम् ।
 यस्य घायो न विचरन्ति मानुषा
 भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ १ ॥
 अमीमंयन्वन्त्स्वभिष्टिमृतयो
 उन्तरिभ्रमां तपिंषीभिरार्धृतम् ।
 इन्द्रं दक्षाम् भुभवो मदच्युतं
 शतप्रतुं जयनी मनुतारहव
 त्वं शोत्रमङ्गिराभ्योऽवृणोरप
 उताप्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
 ससेनं निद् विमदायायतो घसुं
 भाजायाद्रिं धायमानस्यं नतयन्
 स्वमपामं पिधानावृणोरप
 अघोरयः पयैते दानुमद् घसुं ।

युत्रं यद्विन्द्र शयसावधीरहिं
 आदित् सूर्यं दिव्यारोहयो हृदो ॥ ४ ॥
 त्वं मायाभिरपं मायिनोऽधमः
 स्वधामिष्ये अधि दुन्तावजुह्वत ।
 त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारजुः पुरः
 प्र ऋजिभ्वानं दस्युहर्त्यप्याविथ ॥ ५ ॥
 त्वं कुत्सं दुष्णहर्त्यप्याविथ
 अरन्धयोऽतिथिग्याय शम्बरम् ।
 महान्तं चिदयुं दे नि क्रमाः पदा
 सनादेव दस्युहत्याय जग्धिपे ॥ ६ ॥
 त्वे विश्वा तपिंषी सध्वान्विता
 तव राधः सोमणीयायं हर्षते ।
 तव वज्रश्चिकिते याहोर्हितो
 वृश्वा शत्रोरप्य विश्वानि वृण्व्या ॥ ७ ॥
 वि जानीहारायान् ये च दस्यवो
 युहिर्मते रन्धया शासदमतान् ।
 शाकीं मव यजमानस्य चोदिता
 विश्वेत् ता तै सधमादेपु चाकन ॥ ८ ॥
 अनुमताय रन्धयुध्रपमतान्
 आभृमिन्द्रिन्द्रः श्रययन्ननाभुयः ।
 वृद्धस्यं विद् यर्धना घामिनक्षतः
 स्वानो युत्रो वि जघान संदिदः ॥ ९ ॥
 तद् यत् तं उशना सहसा सतो
 वि रोदसो मग्मनां वाघते शयः ।
 आ त्वा यातस्य नृमणो मनोयुज
 आ पूयमाणमवहयमि अयः ॥ १० ॥
 मन्दिष्टु यदुदानं वाग्ये सत्रो
 इन्द्रो वद् यदुतरार्थि निष्ठिति ।
 उत्रो यपि निरुपः श्रोतमागजुद्
 वि नृणाम्य दहिता रंग्यपु पुरः ॥ ११ ॥

वा स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि
 शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
 इन्द्र यथा सुतसोमेषु चावन
 अनर्वाण ऋक्मा रोहसे द्विवि
 अर्दवा अर्मा महते वचस्यवै
 कक्षीवन्ते वृक्षयामिन्द्र सुन्वते ।
 मेनांभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो
 विश्वेत् ता ते सर्वनेपु प्रवाच्या
 इन्द्रो अश्रायि सुधो निरेके
 पत्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूप ।
 अश्वयुर्गन्तू रथयुर्वसुयु ।
 इन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता
 इद नमो वृषभाय स्वराजै
 सत्यशुप्माय तवसेऽवाचि ।
 अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीरा
 सत् सुरिमिस्तव शर्मन्स्याम
 ॥ ५३ ॥ (ऋ० १।५०।१-१५) जगती, १३, १५ त्रिष्टुप् ।
 त्वं सु मेपं महया स्वविदं
 शतं यस्यं सुभ्यः साकमीरते ।
 अत्यं न वाजं हवनस्यद् रथं
 पन्त्रं ववृत्त्यामवसे सुभृक्तिभिः ।
 स पर्वतो न धरुणेष्वच्युत-
 सहस्रमूर्तिस्तविषीषु वावृषे ।
 इन्द्रो यद् वृत्रमवधीन्नदीवृत्तं
 उञ्जघ्नपीसि जहंपाणो अन्धंसा
 स हि हरो हरियुं यत्र ऊर्धनि
 चन्द्रबुध्नो मर्दवृद्धो मनीषिभिः ।
 इन्द्र तमहे स्वपस्ययां धिया
 मर्दिष्टरातिं स हि पप्रिख्वंस-
 आ य पृणन्ति द्विवि सन्नवर्हिपः
 समुद्रं न सम्युः न्वा अभिष्टयः ।

तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरुतयुः
 शुष्मा इन्द्रमवाता बहुतपस्यः ॥ ४ ॥
 अभि स्ववृष्टिं मर्दे अस्य यध्यतो
 ॥ १२ ॥ रन्वीरिव प्रवणे संस्रुन्नर्यः ।
 इन्द्रो यद् वृत्री धूपमाणो अन्धंसा
 भिनद् वलस्यं परिधीरिव त्रितः ॥ ५ ॥
 परी घृणा चरति तित्विये शवः
 धपो वृत्वी रजसो युधनमारायत् ।
 वृत्रस्य यत् प्रवणे दुर्गुमिभ्यनो
 निजघन्य हन्वीरिन्द्र तन्यतुम् ॥ ६ ॥
 हृदं न हि त्वां न्युपन्युर्मयो
 ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
 त्वष्टां चित् ते युज्यं वावृषे शवः
 ततश्च वज्रमभिमूल्योजसम् ॥ ७ ॥
 जघन्वां उ हरिभिः संभृतव्रतो
 इन्द्रं वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः ।
 अयच्छ्रया याहोर्वज्रमायस
 अघोरयो दिव्या सूर्ये हरो ॥ ८ ॥
 वृहत् स्वर्धन्द्रममवद् यदुष्यं
 अकृण्वत मियसा रोहणं दिवः ।
 यन्मानुषप्रधना इन्द्रमृतयः
 स्वर्नृपाचो महतोऽमद्वन्ननु ॥ ९ ॥
 द्यौश्चिद्रस्यामर्वा अहेः स्वनाद्
 ॥ २ ॥ अयोयवीद् मियसा वज्रं इन्द्र ते ।
 वृत्रस्य यद् वद्वधानस्यं रोदसी
 मर्दे सुतस्य शवसाभिन्निच्छरः ॥ १० ॥
 यदिन्निन्द्र पृथिवी दर्शभुजिः
 ॥ ३ ॥ अहानि विश्वा ततर्नन्त कृष्यः ।
 अग्राहं ते मघवन् विश्रुतं सहो
 चामनु शवसा वृहणां भुवत् ॥ ११ ॥
 (७७०)

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः ।
 स्वभृत्योजा अर्धसे धृपन्मनः ।
 चक्रुषे भूमिं प्रतिमानमोजसुः ।
 अपः स्वः परिभूरेध्या दिवम् ॥ १२ ॥
 त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या
 ऋष्यवीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।
 विश्वमाप्रां अन्तरिक्षं महित्वा
 सत्यमदा नकिन्त्यस्त्वावान् ॥ १३ ॥
 न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो
 न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
 नोत स्वर्वाष्टि मर्दे अस्य युध्यत
 एको अन्यश्चरुषे विश्वमानुषक ॥ १४ ॥
 आर्च्यत्र मरुतः ससिन्ध्राजा
 विश्वे देवास्तो अमदधनुं त्वा ।
 बृत्रस्य यद् वृष्टिमतां वधेन
 नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्य ॥ १५ ॥
 ॥ ५४ ॥ (ऋ० १।५३।१-११) जगतो १०-११ । अष्टपु ।
 न्युः पु वाचं प्र महे भ्रामहे
 गिर इन्द्राय सदेने विवस्वतः ।
 नू चिद्धि रजं ससतामिवाविदत्
 न दुष्टतिर्देविणोदेपु शस्यत ॥ १ ॥
 दुरो अर्धस्य दुर इन्द्र गोरसि
 दुरो ययस्य वसुन इनस्पतिः ।
 सिन्धानरः प्रदिवो अकामकरानः
 सद्या सधिभ्यस्तामिदं शृणोमसि ॥ २ ॥
 शचीव इन्द्र पुरुहद् पुमत्तम
 तथेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
 अतः संशृभ्याभिभूत आ भर्
 मा त्वापतो जैरितुः काममूनपीः ॥ ३ ॥
 एभिद्युमिः सुमना एभिरिन्द्रभिः
 निरुघ्नानो अमति गोभिः तयिनां ।

इन्द्रेण वस्युं दुरयन्त इन्द्रभिः
 युतर्हेपसः समिया रभेमहि ॥ ४ ॥
 समिन्द्र यया समिया रभेमहि
 से वाजैभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
 सं देव्या प्रमत्या वीरदाभ्या
 गोअप्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥ ५ ॥
 ते त्वा मदां अमदन् तानि घृण्या
 ते सोमास्तो बृहद्वल्येषु सत्यते ।
 यत् काखे दश वृत्राण्यप्रति
 यर्हिभते नि सद्व्रान्णि बृहदयः ॥ ६ ॥
 युधा युधमुप घेदैपि घृण्या
 पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
 नम्या यादिन्द्र सत्यां परवति
 निबर्हयो नमुचि नाम मायिनम् ॥ ७ ॥
 त्वं करञ्जमुत पूर्णयं वधीः
 तेजिष्ठयातिथिग्यस्यं वर्तनी ।
 त्वं शता बहूदस्याभिनत् पुरी
 अनानुदः परिपूताः ऋजिर्भना ॥ ८ ॥
 त्वमेताञ्जनराभो द्विदेश
 अवन्युनां सुधर्यसोपज्जमुषः ।
 पृष्टि सद्व्रान् नवति नव श्रुतो
 नि चक्रेण रथ्यां दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥
 त्वमाधिय सुधर्वसं तयोतिभिः
 तव धामभिरिन्द्र त्वैवाणाम् ।
 त्वमस्मै कुत्समतिथिग्यमायुं
 मदे रामे यूने अरुघनापः ॥ १० ॥
 य उहर्चीन्द्र देवगोपाः
 सगोपले निवर्तमा अंताम ।
 त्वां स्तोषाम् त्वया सुवीप
 द्राधीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ११ ॥

॥ ५५ ॥ ऋ० १।५।१-११) अर्थात्, ६, ८-९, ११

विद्युत् ।

मा नो अस्मिन् मधयन् पृत्स्वर्हसि

नहि ते अन्तः शर्वसः पृतीणोः ।

अकन्दयो नद्योः रोहवद् घना

कथा न क्षोणीर्मयला समारत

अर्चां शक्रायं शाकिने शर्चीवते

शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्मिं पुंहि ।

यो धृष्णुना शर्वसा रोदसी उमे

वृषा वृपत्वा वृपमो न्युञ्जते

अर्चां द्विषे वृहते शृष्यं । वचः

स्वक्षत्रं यस्य घृपतो धृपन्मनः ।

वृहच्छ्रवा असुरो वर्हणा कृतः

पुरो हर्षिष्यां वृपमो रथो हि पः

त्वं द्विषो वृहतः सानु कोपयो

अव त्मनां घृपता शर्वरं भिनत् ।

यन्मायिनो मन्दिनां मन्दिनां घृपत्

शितां गमस्तिमशानि पृत्न्यासि

नि यद् वृणाक्षिं श्वसनस्यं मुर्धनि

शृण्वन्स्य चिद् मन्दिनो रोहवद् घना ।

प्राचीर्निन मनसा वर्हणापता

यद्वा चित् कृणवः कस्त्या परि

रयमावियु नयं तुर्वशं यदुं

त्वं तुयीतिं वृष्यं शतक्रतो ।

त्वं रयमेतशं शृत्ये धने

त्वं पुरो ननुतिं दग्मयो नयं

स पा राजा सत्पतिः शशुपञ्चनो

सुतर्ह्यः प्रति यः शाममिन्वति ।

उफया वा यो धमिगुणाति शर्वसा

शानुर्म्मा उपसा पिन्वते द्वियः

धर्मं क्षत्रमर्मा मनीया

प्र गोमया धरणा सन्तु नेमं ।

ये त इन्द्र वृषो वर्धयन्ति

महिं क्षत्रं स्वयिं वृष्यं च

तुम्येदेते वहुला अद्रिदुग्धाः

चमूदधमसा इन्द्रपानाः ।

व्यशुहि तर्पया काममेयां

अथा मनो वसुदेयाय कृष्य

अपामतिप्रसुरणहरं तमो

अन्तर्वृषस्यं जुडरेयु पर्वतः ।

अनीमिन्द्रो नद्यो घृषिणां हिता

विश्वानुप्राः प्रवृणोयु जिघ्रते

स शर्वधमधि धा शुभ्रमसे

महिं क्षत्रं जनापाळिन्द्र तव्यम् ।

रक्षां च नो मद्योनः पाहि सुरीन्

राये च नः स्वपत्या इपे धाः

॥ ५६ ॥ (ऋ० १।५।१-८) अर्थात् ।

द्विष्यश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ

इन्द्रं न मुहा पृथिवी चन प्रति ।

भीमस्तुविष्माश्रयणिम्यं आतपः

शिशीति वज्रं तेजसे न वसंगः

सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः

प्रति शृष्णाति विधिंता वरीमभिः ।

इन्द्रः सोमस्य पीतयं वृषायते

सनात् स युष्म ओजसा पनस्यते

त्वं तामिन्द्र पर्वतं न भोजसे

महो नृगणस्य धर्मेणामिर्ज्यासि ।

प्र धीर्येण देवतार्तिं चिकिते

विश्वसा उग्रः कर्मणे पुरोहितः

स इद् घनं नमस्युभिर्वचस्यते

चारु जनैषु प्रमुग्ण इन्द्रियम् ।

वृषा छन्दुर्भवति ह्यतो वृषा

क्षेमं धेनां मधया यदिन्वति

॥ ४ ॥ (८००)

स इन्द्रहानि समिधानि मज्जना
 कृणोति युष्म ओजसा जनैभ्यः ।
 अर्धा चन भद्र दधति त्विषामत
 इन्द्राय वज्रं निघनिभ्रते वधम् ॥ ५ ॥
 स हि श्रवस्युः सर्दनानि कृत्रिमा ।
 ह्मया वृधान ओजसा विनाशयन् ।
 ज्योतीषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवे
 अवं सुक्रतुः सतवा अपः सजत् ॥ ६ ॥
 दानाय मनः सोमपावन्नस्तु ते
 अर्वाञ्जा हरी वन्दनश्रुदा कृधि ।
 यमिष्ठानः सारथ्यो य इन्द्र ते
 न त्वा केता वा दम्भुवन्ति भूर्णयः ॥ ७ ॥
 अप्रक्षितं वसु विमरिं हस्तयोः
 अपाळं सहस्तान्वि श्रुतो द्ये ।
 आवृतासोऽवृतासो न कर्तमिः
 तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥ ८ ॥
 ॥ १७ ॥ (ऋ० १।५६।१-६)
 एष प्र पूर्वोरव तस्य चत्रिपो
 अत्यो न योपामुदयस्त भूर्वणिः ।
 दक्षं महे पाययते हिरण्ययं
 रथमावृत्वा हरियोगमृध्वंसम् ॥ १ ॥
 तं गुतयो नेमश्चिपः परीणसः
 समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।
 पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो
 गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा
 स तुर्वणिमिहो अरेणु पौंस्यै
 गिरिमृष्टिने भ्राजते तुजा शवः ।
 येन शुष्णं मायिनमायसो मदै
 दुध्र आमर्षु रामयन्नि दामनि
 देवी यन्नि तर्विषी त्वावृधोतय
 इन्द्रं सिपन्त्युपसं न स्यैः ।

यो घृष्णना शयसा बाधते तम्
 इयति रेणुं बृहदहिरिषणिः ॥ ४ ॥
 वि यत् तिरो घृष्णमच्युते रजो
 अतिष्ठिपो दिव आतास्तु यर्हणा ।
 स्वमीळहे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन्
 वृत्रं निरुपामौञ्जो अर्णवम् ॥ ५ ॥
 त्वं द्विषो धरुणं धिय ओजसा
 पृथिव्या इन्द्र सर्दनेषु माहिनः ।
 त्वं सुतस्य मदै अरिणा अपो
 धि वृनस्य समया पाप्यारुजः ॥ ६ ॥
 ॥ ५८ ॥ (ऋ० १।५७।१-६)
 प्र माहृष्टाय वृहते वृहद्रये
 सत्यशुष्पाय तवसे मतिं मेरे ।
 अपामिच प्रयणे यस्य दुधेरं
 राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥ १ ॥
 अर्धं ते विश्वमनुं हासदिष्टय
 आपो निञ्जेव सर्वना ह्विष्पतः ।
 यत् पथेते न समशीत हर्यत
 इन्द्रस्य वज्रः श्रधिता हिरण्ययं ॥ २ ॥
 अस्मै भीमाय नमसा समध्वर
 उपो न शुभ्र आ भरा परनीयसे ।
 यस्य धाम श्रवसे नमिन्द्रियं
 ज्योतिरकारि हरितो नार्यसे ॥ ३ ॥
 इमे त इन्द्र ते वयं पुंरुपुत
 ये त्वारभ्य चरामसि प्रमूयसो ।
 नहि त्वदन्यो निर्वणो गिरः सधत्
 क्षोणीरिव प्रति नो हर्यं तद् वचः ॥ ४ ॥
 मरिं त इन्द्र वीर्यं तव स्मसि
 अस्य स्तोतुमेष्वन् कामभा पृण ।
 अनुं ते वीर्यं हृती वीर्यं मम
 इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥ ५ ॥

त्वं तमिन्द्र पर्वत महासुहृ
 वज्रेण चाग्निं पर्वशश्वकींथ ।
 अरांसृजो निवृता सर्तवा अप
 सत्रा विश्वं दधिपे केवल सह

॥ ५९ ॥ ऋ० १।१०।१।१-११)

वृत्स आ॥३।स । (१ गर्भसविष्णुप निषद्) । जगतः

८ ११ । नहुष ।

प्र मन्दिने पितुमर्दचेता यवो
 य कृष्णगर्भा निरहंजतिश्वना ।
 अवस्यवो वृषेण वज्रदक्षिण
 मरुत्वन्त सूर्यार्य हवामहे
 ॥ १ ॥
 यो व्यस जाहृपाणेन मन्युना
 य शम्बर यो अहन् पिप्रेमव्रतम् ।
 इन्द्रो य शुष्णमशुष न्यावृणद्
 मरुत्वन्त सूर्यार्य हवामहे
 ॥ २ ॥
 यस्य चावापृथिवी पौंस्यं महद्
 यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्ये ।
 यस्येन्द्रस्य सिन्धव सश्रति व्रत
 मरुत्वन्त सूर्यार्य हवामहे
 ॥ ३ ॥
 यो अश्वाना यो गत्रा गोपतिवृशी
 य आरित कर्मणिकर्मणि स्थिर ।
 वीन्द्रोधिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो
 मरुत्वन्त सूर्यार्य हवामहे
 ॥ ४ ॥
 यो विश्वस्य जगत प्राणतस्पति
 यो वृक्षेण प्रथमो गा अविन्दत् ।
 इन्द्रो यो दम्यूरवरुं अगतिरज
 मरुत्वन्त सूर्यार्य हवामहे
 ॥ ५ ॥
 य गर्भमिद्वयो यश्च मीरुभि
 यो धार्याङ्गुयते यश्च निम्बुभि ।
 इन्द्र य पिभ्या मुपनाभि सद्गु
 मरुत्वन्त सूर्यार्य हवामहे
 ॥ ६ ॥

रुद्राणांमिति प्रदिशा विचभ्रुणो
 रुद्रेभ्योपां तनुते पृथु जयं ।
 इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं
 ॥ ६ ॥ मरुत्वन्त सूर्यार्य हवामहे ॥ ७ ॥

यद् वां मरुत्व एते सुधस्ये
 यद् वां वमे वृजनं मादयासे ।
 अत आ याहाध्वर नो अच्छा
 त्याया हविश्चरमा सत्यराथ

॥ ८ ॥

त्यायेन्द्र सोमं सुपुमा सुदक्ष
 त्याया हविश्चरमा ब्रह्मवाह ।
 ॥ १ ॥
 अथा नियुत्व सर्गणो मरुद्भि
 अस्मिन् यद्भे वरिधिपे मादयस्व

॥ ९ ॥

मादयस्व हरिमिये त इन्द्र
 वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
 ॥ २ ॥
 आ त्वा सुशिप्र हरयो बहुन्तु
 उशान् हव्यानि प्रति नो जुषस्व

॥ १० ॥

मरुत्वस्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा
 वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
 ॥ ३ ॥
 तक्षो मित्रो वरुणो मामहन्ता
 अदिति सिन्धुं पृथिवी उत घा ।

॥ ११ ॥

॥ ६० ॥ (ऋ० १।१०।१।१-११)

१-१० जगती; ११ मिथुप ।

॥ ४ ॥

इमां ते धिय प्र भेरे महो महो
 अस्य स्तोत्रे धियणा यत् त आनजे ।
 तमुत्सवे च प्रसवे च सासाहि
 ॥ ५ ॥ इन्द्र देवास शर्वसामद्वरुं

॥ १ ॥

अस्य श्रवो नर्यं सत विश्रति
 पावाक्षामां पृथिवी दर्शत वपुं ।
 ॥ ६ ॥ अस्य सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे
 धरे कर्मिन्द्र चरतो वितर्तुस्म

॥ २ ॥

तं स्मा रथं मघवन् प्रावं सातये
 जैत्रं यं तं अनुमदां संगमे ।
 आजा न इन्द्र मन्सा पुष्टुत ।
 त्वायद्रथो मघवञ्जमे यच्छ नः
 वयं जयेम त्वया युजा वृत्
 अस्माकमंशुमुदया भरेभरे ।
 अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि
 प्र शत्रूणां मघवन् वृण्यां रुज
 नाना हि त्वा हवंमाना जना इमे
 धनानां धतरवस्ता विपन्यवः ।
 अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये
 जैत्रं हीन्द्र निभृत मनस्तव
 गोजितां बाह्व अर्मितरुतः सिमः
 कर्मन्कर्मञ्छतर्मतिः खजंकरः ।
 अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसा
 अथा जना वि ह्यन्ते सिपासवः
 उत् तं शतान्मघवन्नृच भूर्यम्
 उत् सहस्राद् रिरिचे कृष्टिपु श्रवः ।
 अमात्रं त्वा धिपणां तितिवे महि
 अघा वृत्राणि जिप्रसे पुरंदर
 त्रिविष्टिघातुं प्रतिमानमोजसः
 तिष्ठो भूर्मानुपते वीणि रोचना ।
 अतीदं विश्वं भुवनें ववक्षिय
 अशत्रुरिन्द्रं जुनुपां सनादसि
 त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे
 त्वं बभूय पृतनासु सासहिः ।
 सेमं नः कारसुपमन्युमुद्दिदं
 इन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः
 त्वं जियेय न घनां रथोधिष्य
 अर्भेष्वाजा मघवन् महत्सु च ।
 त्वामुप्रमवसे सं दीशामीसि
 अर्या न इन्द्र हवनेषु चोदय

विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्तु
 अपरिहृताः सनुयाम वाजम् ।
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तां
 अदिति. सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः
 ॥ ६१ ॥ (ऋ० १।१०३।१-८) त्रिष्टुप ।
 तत् तं इन्द्रियं परमं पराचैः
 अर्धारयन्त कुवयः पुरेदम् ।
 क्षमेदमन्यद् दिव्यं न्यदस्य
 सर्मा पृच्यते समनेव केतुः
 स धारयत् पृथिवीं प्रप्रयञ्च
 वज्रेण हुत्वा निरपः संसर्ज ।
 अहन्नाहिमर्भिनद्राहिणं
 व्यहन व्यसं मघवा शर्चीभिः
 स जातुर्ममा अहघान् ओजः
 पुरो विभिन्दन्नचरद् वि दासी ।
 विद्वान् वंजिन दस्यवे हेतिमस्य
 आर्यं सहो वधया युन्नामिन्द्र
 तदुचुपे मानुषेमा युगानि
 कीर्तन्यं मघया नाम विभ्रत् ।
 उपप्रयन् दस्युहत्याय वजी
 यदं सुनुः श्रवसे नाम दधे
 तदस्येदं पश्यता भूरिं पुष्टं
 धदिन्द्रस्य घत्तन वीर्याय ।
 स गा अविन्दत् सो अविन्दद्भवान्
 स ओपेधी सो अपः स वनानि
 भूरिकर्मणे वृपमाय वृष्णे
 सत्यशुष्पाय सुनवाम सोमम् ।
 य आहत्यां परिपन्थीव शूरो
 अयज्यनो विमज्जन्नेति वेदः
 तदिन्द्रं प्रेवं वीर्यं चकथ
 यत् ससन् वज्रेणोषोषयोऽहिम् ।
 अन्तु त्वा पतीर्हपित वयञ्च
 विश्वं देवासो अमदन्तु त्वा

शुष्ण पिपुं कुर्यवं वृत्रभिन्द्र ।
 युदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।
 तत्रो मिश्रो वरुणो मामहन्तां
 अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत धौः
 ॥ ६९ ॥ (ऋ० १।१०४।१-२)

योनिष्ठ इन्द्र निपदै अकारि ।
 तमा नि पीद स्वानो नार्वी ।
 विमुच्या वयोऽवसायाभ्यान्
 दोषा वस्तोर्वर्हयसः प्रपित्वे
 ओ त्ये नर इन्द्रमुतर्यै गुः
 नू चित् तान्त्वद्यो अर्चनो जगभ्यात् ।
 देवासो मनुं दासस्य श्रमन्
 ते न आ वंशन्त्वविताय वर्णम्
 अव त्मना भरते केतवेदा
 अव त्मना भरते फेनेमुइन् ।
 क्षीरेण स्नात् कुर्यवस्य योपे
 हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः
 युयोप नाभिरुपरस्यायोः
 प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्ट्रि शूरः ।
 अन्नक्षी कुलिशी वीरपत्नी
 पर्यो दिव्याना उदभिर्मरते
 प्रति यत् स्या नीयार्दशि दस्योः
 ओत्रो नाच्छ सदन जानती गात् ।
 अथ स्मा नो मघवञ्चकृतादित्
 मा नो मघेयं निष्पी परा दाः
 ए त्वं न इन्द्र स्ये सो अप्सु
 अनागास्य आ भंज जीवशंसे ।
 मान्तरं भुजमा रीरिपो नः
 अदिते ते महत् हिन्द्रयार्य
 अथा मन्ये थत् ते अस्मा अपायि
 पूर्वा घोदस्य महते धनाय ।

मा नो अर्हते पुरुहूत योनौ
 इन्द्र क्षुर्घ्नप्यो वय आसुति दाः ॥ ७ ॥
 मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा
 मा नः प्रिया भोजनानि प्र मौषिः । ॥ ८ ॥
 आण्डा मा नो मघवञ्चक्रु निर्भेत्
 मा नः पाशां भेत् सहजावृषाणि ॥ ८ ॥
 अर्वाडेहि सोमकामं त्वाहुः
 अयं सुतस्तस्य पिया मदाय । ॥ १ ॥
 उरघ्यचा जठर आ वृषस्य
 पितेवं नः शृणुहि ह्यमानः ॥ २ ॥
 ॥ ६३ ॥ (ऋ० १।६१।१-१६)
 नोषा गीतेम ।
 ॥ २ ॥ अस्मा इदु प्र तवसें तुराय
 प्रयो न हर्मिं स्तोमं माहिनाय ।
 ऋचीपमायाधिगव ओइ
 इन्द्राय ब्रह्माणि रातर्तमा ॥ १ ॥
 ॥ ३ ॥ अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि
 भराभ्याङ्गुपं वार्ये सुवृक्ति ।
 इन्द्राय हुदा मनसा मनीपा
 प्रलाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥ २ ॥
 ॥ ४ ॥ अस्मा इदु त्वमुपमं स्वर्णं भराभ्याङ्गुपमास्व्येन ।
 मंहिष्ठमच्छौकिभिर्मतीनां
 सुवृक्तिभिः सुरि वावृघर्ष्यै ॥ ३ ॥
 ॥ ५ ॥ अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि
 रथं न तष्टेव तत्तिनाय ।
 गिरश्च गिर्वीहसे सुवृक्ति
 इन्द्राय विश्वमिन्यं मेधिराय ॥ ४ ॥
 ॥ ६ ॥ अस्मा इदु सभिमिय श्रवस्य
 इन्द्रायार्कं जुह्वामु समञ्जे ।
 धीरं दानांकेसं युन्दर्यै पुरां मृतश्रयसे दुर्माणम् ॥ ५ ॥
 (८६०)

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वञ्च
 स्वपस्तमं स्वयं रणाय ।
 वृत्रस्य चिद् विदद् येन भर्मे
 तुजघ्नीशानस्तुजता क्रियेधाः ॥ ६ ॥
 अस्येदु मातुः सर्वनेषु सद्यो-
 महः पितुं पपिवाञ्चार्वा ।
 मुषायद् विष्णुः पञ्चतं सहीयान्
 विष्यद् घराहं तिरौ अट्टिमस्ता ॥ ७ ॥
 अस्मा इदु आश्विद् देवपत्नीः
 इन्द्रायाकर्महिहस्य ऊवुः ।
 परि घावापृथिवी जंभ उर्वी
 नास्य ते महिमानं परि एः ॥ ८ ॥
 अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं
 दिवस्यथियाः पर्यन्तरिक्षात् ।
 स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वर्तः
 स्वरिरमत्रो यवञ्जे रणाय ॥ ९ ॥
 अस्येदेव शर्वसा शुपन्तं
 वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
 गा न प्राणा अवनरीरमुञ्चद्
 अमि श्रवो दाचने सचैताः ॥ १० ॥
 अस्येदु त्वेपसा रन्त सिन्धुः
 परि यद् वज्रेण सीमयच्छद् ।
 ईशानरुद् दाशुपे दशस्यन्
 तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११ ॥
 अस्मा इदु प्र मय तूनुजानो
 वृत्राय वज्रमीशानः क्रियेधाः ।
 गोर्न पर्न वि रदा तिरश्चा
 इष्यभर्णाभ्यपां चरथ्यं ॥ १२ ॥
 अस्येदु प्र वृद्धिं पुर्व्याणि
 तुरस्य कर्माणि नर्व्य उक्थैः ।
 युधे यदिष्णान् आयुधानि
 ऋघ्रायमाणो निरिणाति शत्रुन् ॥ १३ ॥

॥ ६ ॥
 ॥ ७ ॥
 ॥ ८ ॥
 ॥ ९ ॥
 ॥ १० ॥
 ॥ ११ ॥
 ॥ १२ ॥
 ॥ १३ ॥

अस्येदु मिया गिर्यश्च हृद्धा
 घावां च भूर्मा जनुपस्तुजेते ।
 उषो वेनस्य जोगुवान् ओषि
 सद्यो मुवद् धीर्यय नोधाः ॥ १४ ॥
 अस्मा इदु त्वदनु दाय्येया
 एको यद् वृत्ते भूरीशानः ।
 प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौर्वश्ये सुध्विमावदिन्द्रः १५
 पथा तं हारियोजना सुवृक्ति
 इन्द्र व्रद्धाणि गोतमासो अक्रन् ।
 पेपु विश्वपेशं धियं धाः
 प्रातर्मक्षु धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥
 ॥ १४ ॥ (अ० १६०१-१६)
 प्र मन्महे शवसानाय शुपं
 आङ्गुयं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
 सुवृक्तिमिः स्तुवत् ऋग्मियाय
 अर्चामाकं नरे विश्वताय ॥ १७ ॥
 प्र धौ महे महि नमो भरथं
 आङ्गुयं शवसानाय सामं ।
 येना नः पूर्वं पितरः पदहा
 अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥ १८ ॥
 इन्द्रस्यांगिरसां चेष्यै
 विदद् सुरमा तनयाय घासिम ।
 वृहस्पतिर्मिनदाद्रिं विदद् गाः
 समुक्षियाभिर्वावशान्तु नरः ॥ १९ ॥
 स सुष्टुमा स स्तुमा सत त्रिभैः
 स्वरेणाद्रिं स्वयोर्नु नर्वयैः ।
 सरण्युभिः फलिगामिन्द्र शक
 वलं रवेण दरयो दशवैः ॥ २० ॥
 गुणानो अङ्गिपोमिदस्म वि यः
 उपसा सूर्येण गोमिरन्वः ।
 वि भूम्या अमथय इन्द्र मानु
 द्वियो ग्नु उपगमन्नायः ॥ २१ ॥

तद् प्रयक्षतममस्य कर्म
 दूस्मस्य चारुनममस्ति दंसः ।
 उपहरे यदुपरा अपिन्यन्
 मर्धर्णसो नचध्वतः ॥ ६ ॥
 द्विता वि बंधे सनजा सनीळे
 अयास्य स्तवमानेभिरकैः ।
 भगो न मेने परमे व्योमन्
 अधारयद् रोदसी सुदंसाः ॥ ७ ॥
 सनाद् दिवं परे भूमा विरूपे
 पुनर्भुवा युवती स्वभिवेवै ।
 कुणेभिरक्तोपा रुशद्वि
 वर्षभिरा चरतो अन्वान्या ॥ ८ ॥
 सनेमि सुख्यं स्वपस्यमानः
 सुनुदीधार शवसा सुदंसाः ।
 आमाहुं चिद् दधिरे पक्वमन्तः
 पर्यः कृष्णासु रुशद् रोहिणीपु ॥ ९ ॥
 सनात् सनीळा अबनीरवाता
 व्रता रक्षन्ते अमताः सहोभिः ।
 पुरू सहस्रा जर्नयो न पर्वाः
 दुवस्यन्ति स्वसारो अहयाणम् ॥ १० ॥
 सनायुवो नर्मसा नव्यो अर्कः
 वंसुयवो मतयो दस दद्दुः ।
 पति न पतीरुशती रुशन्ते
 स्पृशन्ति त्वा शयसावन मनीपाः ॥ ११ ॥
 सनादेव तव रायो गर्भस्तौ
 न क्षीरन्ते नेप दस्यन्ति दस्म ।
 द्रुमां असि वतुमां इन्द्र धीरः
 दिक्षा शचीयस्तव नः शचीभिः ॥ १२ ॥
 सनायते गोतम इन्द्र नन्यं
 अतश्चद् प्रष्टं हरियोर्जनाय ।
 सुनीधाय नः शयमान नोधाः
 शतमंश्च धियायनुजंगम्यात् ॥ १३ ॥

॥ ६५ ॥ (क्र० ११३१-९)

त्वं महो इन्द्र यो ह शुभैः
 धावो जग्नानः पृथिवी अमं धाः ।
 यद्दे ते विभो गिरयश्चिदभ्या
 भिया हृद्धासः किरणा नैजन् ॥ १ ॥
 आ यद्वरी इन्द्र विव्रता धेः
 आ ते यच्च जरिता ग्राहोर्धात् ।
 येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान्
 पुरं इष्णासि पुरहृत पूर्वाः ॥ २ ॥
 त्वं सुत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्
 त्वमंभुक्षा नर्यस्त्वं पाट् ।
 त्व शुष्णं युजनें पूक्ष आणौ
 यूने कुत्सायि द्रुमते सचाहन ॥ ३ ॥
 त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा
 वृत्रं यद् वज्रिन् वृषकर्मभृग्नाः ।
 यद्दे शर वृषमणः पराचैः
 वि दस्युयोनवकृतो वृथापाट् ॥ ४ ॥
 त्वं ह त्यदिन्द्रारिपण्यन्
 हृद्धस्यं विमर्तानामजुष्टौ ।
 व्यसदा काष्ठा अर्वते वः
 धनेवं वज्रिञ्जथिहामित्रान् ॥ ५ ॥
 त्वां ह त्यदिन्द्राणीसातौ
 स्वर्मीळ्हे नरे आज्ञा हवन्ते ।
 तव स्वधाव इयमा संमयं
 अतिर्योजेष्वतसाय्यां भूत् ॥ ६ ॥
 त्व ह त्यदिन्द्र सुप्त युध्यन्
 पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय ददः ।
 यद्दिने यत् सुदासे वृथा वर्क्
 अहो रजन् वरिवः पुरवं कः ॥ ७ ॥
 त्वं त्वां न इन्द्र देव वित्रां
 इयमापो न पीपयः परिजमन् ।
 ययो शर प्रत्यस्मभ्यं यंसि
 त्वममूर्त् न विभव्य शरव्यै ॥ ८ ॥ (८९२)

अकारि त इन्द्र गोतमेभिः

ब्रह्माण्योक्ता नर्मसा हरिभ्याम् ।

सुपेशसं वाजमा भरा नः

प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥

॥ ६६ ॥ (ऋ० ८।८।१-६)

[प्रणयः = (विषया वृद्धी, समा सतोवृद्धी) ।]

तं यो वसुमृतीपहं वसोमिन्द्रानमन्धसः ।

अभि वृत्सं न स्वसरेषु धेनव

इन्द्रं गीभिर्नैवामहे ॥ १ ॥

द्युधं सुदानं तविपीभिरावृतं गिरि न पुरुभोजसम् ।

क्षुमन्तं वाजं शतितं सहस्रिणं

मक्षू गोर्मन्तमीमहे ॥ २ ॥

न त्वा वृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळ्यः ।

यद् दित्ससि स्तुवते मावते वसु

नक्तिष्टदा मिनाति ते ॥ ३ ॥

योद्धासि क्रत्वा शर्वसोत वंसता

विश्वो जाताभि मृज्मना ।

आ त्वायमर्क ऊतर्यं ववर्तति

यं गोतमा अर्जाजनन् ॥ ४ ॥

प्र हि रिंश्चि ओर्जसा दिवो अन्तम्यस्परिं ।

न त्वा विज्याच रजं इन्द्र पार्थिवं

अनु स्वधां ववक्षिय ॥ ५ ॥

नक्तिः परिष्टिमघवन् मघस्यं ते

यद् दाशुपे दशस्यसि ।

अस्माकं घोष्युचर्यस्य चोदिता

मंहिष्ठो वाजसातये ॥ ६ ॥

॥ ६७ ॥ (ऋ० १।८०।१-१६)

गोतमो राहुगणः । (अथवा, मनुः, दध्यङ् च) । पंक्तिः ।

इत्या हि सोम इन्मर्दे ब्रह्मा चकार वर्धनम् ।

शर्विष्ठ वज्रिभोजसा पृथिव्या निः शशा अहि

अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १ ॥

स त्वामिदद् वृषा मद्रः सोमः श्येनामृतः सुतः ।

येना वृत्रं निरुद्ध्यो जगन्ध्रं वज्रिभोजसा

अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ २ ॥

प्रेहमीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि र्यसते ।

इन्द्रं नृगणं हि ते शशो हनो वृत्रं जया अपो

अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥

निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जगन्ध्रं निर्विषः ।

सृजा मरुवतीरवं जीवधन्या इमा अपो

अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥

इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः ।

अभिरुम्याव जिघ्रते अपः समीय चोदयन्

अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥

अधि सानो नि जिघ्रते वज्रेण शतपर्वणा ।

मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छति

अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ६ ॥

इन्द्र तुभ्यमिदंष्ट्रिचो ऽनुत्तं वज्रिन् धीर्यम् ।

यद् त्वं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीः

अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ७ ॥

वि ते वज्रासो अस्थिरन् नवति नाव्याः अनु ।

महत् तं इन्द्र वीर्यं बाहोस्ते वलं हितं

अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ८ ॥

सहस्रं साकर्मचतु परि शोभत विशतिः ।

शतैनमन्धनोनवुः इन्द्राय ब्रह्मोद्यतं

अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ९ ॥

इन्द्रो वृत्रस्य तविषां निरहन्सहसा सहः ।

महत् तदस्य पौंस्यं वृत्रं जगन्ध्रो अर्चन्ननु

अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १० ॥

इमे चित् तव मन्यवे वेपेते भियसा मही ।

यार्दन्द्र वज्रिभोजसा वृत्रं मरुवां अर्चधीः

अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ११ ॥

न वेपसा न तन्युत इन्द्रं वृषो वि वीभयत् ।
 अर्धेन वज्रं आयसः
 सहस्रमृष्टिरायता ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥
 यद् वृत्रं तव चाशन्ति वज्रेण समयोधयः ।
 अहिमिन्द्र जिघांसते
 द्विवि ते वदधे शवो ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १३ ॥
 अभिष्टेने ते अद्रिवो यत् स्या जगद्य रेजते ।
 त्वष्टां चित् तव मन्यवे
 इन्द्रं वेधियते मिया-ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १४ ॥
 नहि नु यार्द्धीमसी-न्द्रं को वीर्यो परः ।
 तस्मिन्नम्यमत क्रतुं
 देवा ओजांसि सं दधु-र्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १५ ॥
 यामर्थवा मनुष्यिता वध्यङ् धियमलत ।
 तस्मिन् ब्रह्माणि पृथथा
 इन्द्र उन्था सममता-ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १६ ॥
 ॥ ६८ ॥ (ऋ० १८११-९)
 इन्द्रो मदाय वावृधे शर्वसे वृत्रहा नृभिः ।
 तमिन्द्रहस्याजिपु-तेममै हवामहे
 स वाजेपु प्र नोऽधिपत् ॥ १ ॥
 असि हि वीर सेन्यो ऽसि भूरि पराददिः ।
 असि दुधस्य चिद् वृधो यजमानाय शिशसि
 सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २ ॥
 यदुदीरत आजयो धृष्णवं धीयते धना ।
 युधवा मदच्युता हरी कं हनः कं यसौ दधो
 अममो इन्द्र वसौ दधः ॥ ३ ॥
 प्रत्या मुहो अनुष्यध भीम आ वावृधे शर्वः ।
 श्रिय प्रभुय उपाकयो-नि शिप्री हरिवान् दधे
 हस्नयोयंजमापसम् ॥ ४ ॥
 आ पशो पार्षियं रजो यद्वधे रंचना द्विवि ।
 न त्वायो इन्द्र कश्चन न ज्ञातो न जनिष्यते
 धति विष्यं ववशिय ॥ ५ ॥

यो अयो मर्तमोर्जन पराददाति द्वागुपे ।
 इन्द्रो अस्मभ्यं शिशतु वि भंजा भूरि ते वसु
 भशीय तव राधसः ॥ ६ ॥
 मदैमदे हि नो ददि-पृथा गवामृजुक्रतुः ।
 सं गभाय पुरु शतो-भयाहस्तया वसु
 शिशिहि राय आ भंर ॥ ७ ॥
 मादयस्य सुते सचा शर्वसे शर राधसे ।
 विज्ञा हि त्वां पुरुवसु-सुप कामान्त्ससृग्महे
 अथा नोऽविता भव ॥ ८ ॥
 एते त इन्द्र जन्तयो विश्वं पुष्यन्ति वायंम् ।
 अन्तर्हि ख्यो जनाना-मयो वेदो अदाशुपां
 तेषां नो वेद आ भंर ॥ ९ ॥
 ॥ ६९ ॥ (ऋ० १८११-६) पंक्तिः ६ जगती ।
 उपो पु शृणुही गितो मध्वन् मातया इव ।
 यदा नः सुनुतावतः कर आदर्थयास इद्
 योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ १ ॥
 अश्रन्नमीमदन्त ह्य-र्ध म्रिया अधूपत ।
 अस्तोपत स्वभानयो विप्र नविष्टया मती
 योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ २ ॥
 सुसंहशे त्वा व्ये मध्वन् वन्दिषोमहि ।
 प्र नूनं पूर्णवन्दुरः स्तुतो याहि वशां अनु
 योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ३ ॥
 स घा तं वृषणं रथ-मधि तिष्ठति गोविदम् ।
 यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति
 योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ४ ॥
 युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो ।
 तेन जायामुषं म्रियां मन्दाजो याहान्वसो
 योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ५ ॥
 युनग्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी
 उप प्र याहि दधिपे गर्भस्तयोः ।
 उत् त्वां सुतासो रमसा अमन्दिपुः
 पूषण्यान् वञ्चिन्त्समु पान्यामदः ॥ ६ ॥

॥ ७० ॥ (ऋ० १।८३।१-६) जगतां ।

अर्थावति प्रथमो गोपुं गच्छति
सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तत्रोतिभिः ।
तमित् पृणक्षि वसुना भर्वायसा
सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः
आपो न देवीरुपं यन्ति होत्रियं
अवः पदयन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचेदेवासः प्र णयन्ति देव्युं
ब्रह्ममियं जोपयन्ते वरा इव
अधि इयोरुद्धा उक्थ्यं वचो
यत्सुखा मियुना या संपर्यतेः ।
असंयतो व्रते तै क्षेति पुष्यति
भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते
आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वयं
इन्द्राग्रयः शम्या ये मुकुल्यया ।
सर्वे पूणेः समविन्दन्त भोजनं
अर्थावन्ते गोमन्तमा पशुं नरैः
यक्षैरथर्वा प्रथमः पयस्ते
ततः सूर्यो व्रतपा वेन आर्जनि ।
आ गा आजदुशर्ना काव्यः सर्वा
यमस्य जातममृतं यजामहे
बर्हिषा यत् स्वपत्यायं वृज्यते
अको वा श्लोकमाधोपते दिवि ।
प्रावा यत्र वर्दति कारुदुन्ध्युः
तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषुं रणयति

॥ ७१ ॥ (ऋ० १।८३।१-१०)

[१-६ अष्टपुः ७-९ उष्णिक्, १०-१२ पंक्तिः १३-१५
गायत्री; १६-१८ त्रिष्टुप्; (प्रगाथः= १९ बृहती, २०
सतोबृहती ।)]

असावि सोमं इन्द्र ते शक्तिं घृण्णवा गृहि ।
आ त्वां पृणक्तिरिन्द्रियं रजः सूर्यो न रुद्रमभिः ॥१

इन्द्रमिद्धरीं बहूतो ऽप्रतिघृष्टशवसम् ।
ऋषीणां च स्तुतीरुपं यक्षं च मातुंराणाम् ॥२॥
आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो प्रावां कृणोतु वृन्तुनां ॥३॥
॥ १ ॥ इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मर्दम् ।
शुकस्यं त्वाभ्यक्षरन् धारां श्रुतस्य सादने ॥४॥
इन्द्राय नूनमर्चतो—कथानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्द्रो ज्येष्ठं नमस्यता सहैः ॥५॥
॥ २ ॥ नक्तिषूद् रथीतपो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
नक्तिष्ठातुं मज्जना नक्तिः स्वर्भ्य आनशे ॥ ६ ॥
य एक इद् विदयते वसु मतीय दाशुपे ।
ईशानो अप्रतिष्कृत इन्द्रो अह ॥ ७ ॥
॥ ३ ॥ कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शश्वद् गिर इन्द्रो अह ॥ ८ ॥
यश्चिद्धि त्वां बहुभ्य आ सुतावो आविर्वासति ।
उग्रं तत् पत्यते शश्व इन्द्रो अह ॥ ९ ॥
॥ ४ ॥ स्वादोरित्या विपवतो मर्ध्वः पियन्ति गौर्यैः ।
या इन्द्रेण स्यावर्षी—वृष्णा मर्दन्ति शोभसे
वस्वीरनुं स्वराज्यम् ॥ १० ॥
ता अस्य पृशानायुवः सोमं श्रीणन्ति पृथ्वयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सार्यकं
वस्वीरनुं स्वराज्यम् ॥ ११ ॥
ता अस्य नर्मसा सहैः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
वृताभ्यस्य सध्विरे पुरुणि पूर्वचित्तये
वस्वीरनुं स्वराज्यम् ॥ १२ ॥
इन्द्रो दधीचो अस्याभि—वृत्राण्यप्रतिष्कृतः ।
जुधानं नवतीर्नवं ॥ १३ ॥
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपथितम् ।
तद् विदच्छर्यणावति ॥ १४ ॥
अत्राह गौरमन्वत् नाम त्वष्टुरपीचर्यम् ।
इत्या चन्द्रमसो गृहे ॥ १५ ॥

को अथ युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य
शिमीवतो भामिनो दुर्हणयून् ।
आसन्नपून् ह्रस्वसो मयोभून्
य पपां भृत्यामूणधत् स जीवात्
क ईपते तुज्यते को विभाय
को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति ।

कस्तोकाय क इभायोत राये
अधि द्रवत् तन्वेः को जनाय
को अग्निमीदृ हविषा घृतेन
सुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।
कसं देवा आ वहानाशु होम
को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः
त्वमङ्ग प्र शंसिपो देवः शंविष्ट मर्त्यम् ।

न त्वदन्यो मवचनस्ति मडिता
इन्द्रं ब्रवीमि ते वचः
मा ते राधौसि मा तं ऊतयो वसो
अस्मान् कदा चना दभन् ।

विश्वो च न उपमिमीहि मानुष
वर्षनि चर्षणिभ्य आ

॥ ७९ ॥ (ऋ० १:१००१-१९)

वापोगिराः ऋत्राश्विनोष-सहदेव-भयमान-सुराप्रसः ।

प्रिष्टुप ।

स यो वृषा वृष्येभिः समोका
महो दिवः पृथिव्याश्च सुम्राट् ।
सनीनसत्या दृष्यो भरेषु
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्रं ऊती
यस्यानामः सूर्यस्येव यामो
मरंभरे वृषदा शप्पो अस्ति ।
वृषन्तमः सर्गिभिः स्येभिरैवैः
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्रं ऊती
दियो न यन्म रंतसो दुर्धानाः
पर्णान्मो यन्नि शयसापरीताः ।

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

॥ १९ ॥

॥ २० ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

तरुवृषाः सासद्दिः पौंस्येभिः
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्रं ऊती ॥ ३ ॥
सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद्
वृषा वृषभिः सर्गिभिः सग्ना सन् ।
ऋग्निभिर्ऋग्नी गातुभिर्ज्येष्ठा
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्रं ऊती ॥ ४ ॥
स सुनाभिर्न रुद्रेभिर्ऋग्भ्यां
नृपाहो सासद्द्वो अभिवान् ।
सनीळैभिः श्रवस्यानि त्वेन
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्रं ऊती ॥ ५ ॥
स मनुषुमीः समर्दनस्य कर्ता
असाकेभिर्नुभिः सूर्ये सनत् ।
असिन्नहन्सत्पतिः पुरुद्वतो
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्रं ऊती ॥ ६ ॥
तमृतयो रणयन्धूरंसातौ
तं क्षेमस्य क्षितयः कृणवत् व्राम् ।
स विश्वस्य करुणस्येशु एको
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्रं ऊती ॥ ७ ॥
तमप्सन्त शर्वस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धर्नाय ।
सो अन्धे चित् तमसि ज्योतिर्विदन्
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्रं ऊती ॥ ८ ॥
स सद्येन यमति द्राघतश्चित्
स दक्षिणे संगृहीता हृतानि ।
स कीरिणां चित् सनिता धर्नानि
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्रं ऊती ॥ ९ ॥
स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिः
विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्नृषुष ।
स पौंस्येभिरभिभूरशास्तीः
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्रं ऊती ॥ १० ॥
स जामिभिर्यत् समजाति मीळ्हे
अजामिभिर्वा पुरुद्वत एवैः ।
अपां लोकस्य तनयस्य जेषे
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्रं ऊती ॥ ११ ॥

स वज्रभृद् दस्युहा भीम उग्रः
सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्या ।
चञ्चीपो न शर्वसा पाञ्चजन्यो
मृत्त्वान् नो भवत्विन्द्रं ऊती
तस्य वज्रः क्रन्दति सत् स्वर्पा
दिवो न त्वेपो र्वथः शिर्मावान् ।
तं संचन्ते सनयस्तं धनानि
मृत्त्वान् नो भवत्विन्द्रं ऊती
यस्याजंशं शर्वसा मानमुक्थं
परिभुजद् रोदसी विभ्रतः सीम् ।
स पारिपत् क्रतुभिर्मन्दसानो
मृत्त्वान् नो भवत्विन्द्रं ऊती
न यस्य देवा देवता न मर्ता
आपञ्चन शर्वसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्त्वा त्वक्षसा ह्मो दिवश्च
मृत्त्वान् नो भवत्विन्द्रं ऊती
रोहिच्छयावा सुमर्दशुर्ललामीः
द्युक्षा राय ऋञ्जाभ्यस्य ।
वृषणवन्तं विभ्रती धूप्य रथं
मन्द्रा चिकेत नाहुपीपु विशु
पतत् त्यत् तं इन्द्र वृष्णं उक्थं
वाप्रागिरा अभि गृणन्ति राधः ।
ऋञ्जाभ्यः प्रष्टिभिररुनीर्यः
सहदैवो भयमानः सुराधाः
दस्युञ्छिन्म्यैश्च पुरहुत पवैः
हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्होत् ।
सनत् क्षेत्रं सारिभिः चित्येभिः
सनत् सूर्यं सनद्रुपः सुवज्रः
विभ्याहेन्द्रो अधिवक्ता नो अन्तु
अपरिहृताः सनुयाम् वाजम् ।
तन्नो मित्रो परेणो मामहन्तां
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत घीः

॥ ७३ ॥ (ऋ० ८।१७।१-१५)
रमः काश्यपः । वृद्धतो, १०. १३ अतिजगती, ११-१२
उपरिधाद्वृद्धतो, १४ त्रिष्टुप्, १५ जगती ।
॥ १२ ॥ या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वा असुरेभ्यः ।
स्तोतापुमिन्मघवध्नम्य वर्धय
ये च त्वे वृस्तवाह्विपः ॥ १ ॥
यमिन्द्र दधिपे त्व-मश्वं गां भ्रागमव्ययम् ।
॥ १३ ॥ यजमाने सुन्वति दक्षिणावति
तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥ २ ॥
य इन्द्र सस्त्यव्रतोऽनुष्यापमदैवयुः ।
स्वैः पर्वैर्मुमुत् पोष्यं रयिं सनुतर्धेहि तं ततः ३
यच्छक्रासि परावति यदर्धावति वृत्रहन् ।
॥ १४ ॥ अतस्त्वा गीभिर्द्युगादिन्द्र केशिभिः
सुतावां आ विवासति ॥ ४ ॥
यद्वासि रोचने दिवः संमुद्रस्याधि विष्टपि ।
॥ १५ ॥ यत् पार्थिवे सदने वृत्रहन्तम्
यदन्तारिक्ष आ गंहि ॥ ५ ॥
स नः सोमेषु सोमपाः सुतेषु शवसस्यने ।
मादयस्व राधसा सनुताविते
इन्द्रं राया परीणसा ॥ ६ ॥
॥ १६ ॥ मा न इन्द्र परा वृणु भवा नः सधुमाधः ।
त्वं न ऊनी त्वमिन्न आप्यं
मा न इन्द्र परा वृणुक् ॥ ७ ॥
असे इन्द्र सचां सुते नि पदा गीतये मर्तु ।
॥ १७ ॥ कृधी जरिषे मघवव्रवो महद्
असे इन्द्र सचां सुते ॥ ८ ॥
न त्वदिवसां आशत् न मण्योमो ऋद्रिषः ।
विभ्यां ज्ञातानि शर्वगासिभ्योऽसि
॥ १८ ॥ न त्वां देवाम् आगम ॥ ९ ॥
विभ्याः पृतना अमिभर्तं न मृगः
तंतशुरिन्द्रं अन्नमृशं मृगं ।
क्रन्वा यतिंशुं यं उष्टुमि
॥ १९ ॥ उग्रमोर्जिष्टं नृपयं नृगं ययैय

समी रेभासो अस्वरन् इन्द्रं सोमस्य पीतये ।
 स्वर्पति यदा वृधे
 धतमतो होजसा समूतिभि ॥ ११ ॥
 नेमि नमन्ति चक्षसा मेपं विप्रो अभिस्वरो ।
 सुदीतयो वो अद्रुह
 अपि कर्णे तपस्विनः समकृभिः ॥ १२ ॥
 तभिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं
 सत्रा दधानमप्रतिपुतं शवांसि ।
 मंहिष्टो गीर्भिरा चं यश्चिरो
 ववर्तद् राये नो विश्वा सुपयां कपोतु वज्री ॥ १३ ॥
 त्वं पुर इन्द्र चिकिर्देना व्योजसा
 शविष्ठ शक नाशयथ्ये ।
 त्वद् विश्वानि भुवनाभि वज्रिन्
 द्यावां रेजेते पृथिवी चं भोगा ॥ १४ ॥
 तन्मं ऋतामिन्द्र शर चित्र पातु
 अपो न वज्रिन् दुरिताति परिं भूरि ।
 कदा न इन्द्र राय आ देशस्ये
 विश्वस्पर्शस्य स्पृहयाय्यस्य राजन् ॥ १५ ॥
 ॥ ७४ ॥ (ऋ० ८।१००।१-९)
 नेमो मार्गव, ४-५ इन्द्र, ९ वज्रो वा ।
 त्रिष्टुप्, ९ जगती, ७,९ अतुष्टुप् ।
 अयं नं पामि तन्वां पुरस्ताद्
 विश्वे देवा अभि मां यन्ति पश्चात् ।
 यदा महां दीर्घरो भागमिन्द्र
 आदिन्मयां वृणरो वीर्योणि ॥ १ ॥
 दधानि ते मरुतो मक्षमघे
 हिनन्ते भागं सुगो अस्तु सोमं ।
 अयंश्च त्व दीक्षिणत सत्रा मे
 अयां पुराभिः षड्यनाय भूरि
 प्र सु स्तोमं भरत याजयन्तु
 इन्द्राय सत्य यदि सत्यमग्निं ।
 नेन्द्रो क्षमीति नेमं उ त्व आहु
 व रं ददन् वमभि एयाम ॥ ३ ॥

अयमसि जरितः पर्य मेह
 विश्वा जातान्यभ्यस्मि मद्वा ।
 ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्ति
 आदर्शरो भुवना दर्दरीमि ॥ ४ ॥
 आ यन्मो वेना अरेहद्रुतस्यं
 एकमासीन हर्यतस्यं पृष्टे ।
 मनश्चिन्मे हृद् आ प्रत्यवोचद्
 अचिक्रद्विच्छुमन्तः सपायः ॥ ५ ॥
 विश्वेत् ता ते सर्वनेपु प्रवाच्या
 या चकथं मघवजिन्द्र सुन्वते)
 पारावत् यत् पुरुसंभूत वसु
 अपावणोः शरभाय ऋषियन्धवे ॥ ६ ॥
 प्र नूनं धावता पृथङ् नेह यो वो अवावरीत् ।
 नि पी वृत्रस्य मर्मेणि वज्रमिन्द्रो अपीपतत् ॥ ७ ॥
 सुमुद्रे अन्तः शयत उद्रा वज्रो अभीर्वृतः ।
 मरन्त्यस्मै संयतं पुर प्रस्रवणा वलिम् ॥ ९ ॥
 सर्वे विष्णो वितुरं वि क्रमस्यु
 द्यौर्दिहि लोकं वजाय विष्कभे ।
 हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धुन्
 इन्द्रस्य यन्तु प्रस्रवे विश्वेष्टाः ॥ १२ ॥
 ॥ ७५ ॥ (ऋ १।१९२।१-११)
 पश्छेपो दैवोदासिः । अयष्टि, ८-९ अतिशक्तयोः, ११ अष्टि ।
 यं त्वं रथमिन्द्र मेघसार्तये
 अपाका सन्तमिपिर प्रणयसि प्रान्वद्य नयसि ।
 सद्यश्चित्तं तमभिष्टये करो वदोश्च याजिनम् ।
 सास्माकमनयद्य तूतुजान वेधसां
 इमां वाचं न वेधसाम् ॥ १ ॥
 स श्रुधि यः स्मा पृतेनासु कासुं चिद्
 दृक्षार्यं इन्द्र भारुतये नृभि—रसि प्रतृतेये नृभि ।
 यः शूरः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तर्हता ।
 तमीदानीस्य इरधन्त याजिनं
 पृक्षमत्थं न याजिनम् ॥ २ ॥ १०० (

दसो हि प्सा घृषणं पिन्वसि त्वचं
 कं चिद् यावीररर्हं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् ।
 इन्द्रोत तुभ्यं तद् दिवे तद् रुद्राय स्वयंशसे ।
 मित्राय वोचं वरुणाय सप्रयः
 सुमृष्टीकार्यं सप्रयः ॥ ३ ॥
 अस्माकं व इन्द्रमुदमसीष्टये
 सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् ।
 अस्माकं ब्रह्मोतये ऽवां पृतसुपु कासुं चित् ।
 नहि त्वा शत्रुः स्तरंते स्तृणोपि यं
 विश्वं शत्रुं स्तृणोपि यम् ॥ ४ ॥
 नि पृ नमातिमतिं कयंस्य चित्
 तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभि—रुग्राभिर्ब्रह्मोतिभिः ।
 नेपि णो यथा पुरा ऽनेनाः शूर मन्यंस ।
 विश्वानि पुरोरप्यं पपिं वहिः
 आसा वहिर्नो अच्छे ॥ ५ ॥
 प्र तद् वौचेयं मर्यायेन्द्वे
 हव्यो न य इपवान् मन्म रेजति ।
 रक्षोहा मन्म रेजति ।
 स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम् ।
 अवं स्रवेदघशंसोऽचतर—मवं क्षुद्रमिव श्वेषत् ॥ ६ ॥
 घनेम तदोत्रया चित्तन्यां
 घनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रणं सन्तं सुवीर्यम् ।
 दुर्मन्मानं सुमन्तुभि—रेमिषा पृचीमहि ।
 आ सत्याभिरिन्द्रं घुस्रहतिभिः
 यजत्रं घुस्रहतिभिः ॥ ७ ॥
 प्रभां वो असे स्वयंरोमिरूती
 परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन् दुर्मतीनाम् ।
 स्वयं सा विप्रयथ्ये या न उपेरे अयः ।
 इतेमस्रणं वक्षति अिता जुर्णिनं वक्षति ॥ ८ ॥
 त्वं न इन्द्र राया परीणसा
 याहि पृषो मनेहसा पुरो यांघ्रहाया ।

सर्वस्व नः पराक आ सर्वस्वास्तमीक आ ।
 पाहि नो दुरादारदाभिष्टिभिः
 सदां याहाभिष्टिभिः ॥ ९ ॥
 त्वं न इन्द्र राया तरूपसा
 उग्रं चित् त्वा महिमा संश्रदवसे महे मित्रं नावसे ।
 ओजिष्ठं वातरवित्ता रयं कं चिदमर्त्यं ।
 अन्यमसद् रिंरियेः कं चिदद्रियो
 रिंरिहन्तं चिदाद्रिवः ॥ १० ॥
 पाहि न इन्द्र सुपुत स्त्रियो
 अवयाता सदमिद् दुर्मतीनां देवः सन् दुर्मतीनाम् ।
 हत्ता पापस्यं रक्षम—खाता विप्रस्य मावतः ।
 अथा हि त्वां जनिता जीर्जनद् वसो
 रक्षोहर्णं त्वा जीर्जनद् वसो ॥ ११ ॥
 ॥ ७६ ॥ (ऋ० १।१२०।१-१०) असाष्टिः; १० त्रिष्टुप ।
 एन्द्रं याहुर्यं नः परायतो
 नायमच्छां विदधानीव सत्यतिः
 अस्तं राजेव सत्यतिः ।
 हवामहे त्वा घ्यं प्रयंस्वन्तः सुते सत्वां ।
 पुत्रासो न पितरं यार्जसातये
 महिष्ठं वार्जसातये ॥ १२ ॥
 पिषा सोममिन्द्रं सुवानमाद्रिभिः
 कोशेन मिकमयं न वंशंगः
 तात्प्राणो न वंशंगः ।
 मदाय हयंतायं ते नृभिर्दनाय धार्यसे ।
 आ त्वा यच्छन्तु हरितो न मय्यं
 अथा रिभ्यं मय्यं
 अयिन्द्रं हिन्दो निहिन्तं गुहो निधि
 यन्ते गन्ते नृभिर्दनाय मय्यं—न्यन्ते
 इन्द्रं इन्द्रं म्यामिच मिषान्पुत्रे
 इन्द्रं इन्द्रं इन्द्रः परीवृत्त
 इन्द्रः इन्द्रः परीवृत्ताः

दाह्वाणो वज्रमिन्द्रो गर्भस्थोः
 क्षत्रेव तिग्ममन्नाय सं श्य—दहिहत्याय सं द्यत ।
 संविद्यान ओजसा शर्वोभिरिन्द्र मुज्जना ।
 तप्येव वृक्षं वनिनो नि वृक्षसि
 परश्वेव नि वृक्षसि ॥ ४ ॥
 त्वं वृथा नृचं इन्द्र सतये
 अच्छा समुद्रमखजो रथो इव वाजयतो रथो इव ।
 इत ऊतीर्युज्जत समानमर्थक्षितम् ।
 धेनुरिव मनये विश्वदोहसो
 जनाय विश्वदोहसः ॥ ५ ॥
 इमां ते वाचं वसुयन्त आयवो
 रथं न धीरः स्वपा अतक्षिपुः सुस्त्राय त्वामंतक्षिपुः ।
 शुम्भन्तो जेयं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम् ।
 अत्यमिव शर्वसे सातये धना
 विश्वा धनानि सातये ॥ ६ ॥
 मिनत् पुरो नयतिमिन्द्र पुरवे
 दिवोदासाय महि दाशुपे नृतो यजेण दाशुपे नृतो ।
 अतिथिग्याय शर्म्वरं गिरेरग्नो अवाभरत् ।
 महो धनानि दयमान ओजसा
 विश्वा धनान्योजसा ॥ ७ ॥
 इन्द्रः समत्सु यजेमानमायं
 प्रावद् विश्वेषु शतमंतिप्राजिषु स्वमीळहेप्याजिषु ।
 मनये शानंदश्रतान् त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।
 दक्षप्र विश्वं तदृषाणमोपति न्यशंसानमोपति ॥ ८ ॥
 गृदचक्रं प्र पृदजात ओजसा
 प्रपित्ये वाचमरुणो मुंयायती—ज्ञान आ मुंयायति ।
 उशान् यत् पंगयतो ऽजंगप्रतये कवे ।
 सुप्रति विश्वा मनुषेय तुषणिः
 धदा विश्वेय नृयलिः ॥ ९ ॥
 ए नो नयमिषुपकमंश्रभ्यैः
 पुर्गं दर्तः प्रायुभिः पाहि द्रामैः ।

दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो
 वावृधीथा अहोभिरिव धौः ॥ १० ॥
 ॥ ७७ ॥ (अ० ११३११-७) असाष्टः ।
 इन्द्राय हि द्यौरसुरो अर्नमन्त
 इन्द्राय महो पृथिवी वरीममिः
 युज्जसाता वरीममिः ।
 इन्द्रं विश्वे सजोपसो देवासो दधिरे पुरः ।
 इन्द्राय विश्वा सर्वनानि मानुषा
 शतानि सन्तु मानुषा ॥ १ ॥
 विश्वेषु हि त्वा सर्वनेषु तुज्जे
 समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।
 तं त्वा नावं न पर्पणिं शूपस्य धुरि धीमहि ।
 इन्द्रं न यश्चिंतयन्त आयवः
 स्तोमैभिरिन्द्रमायवः ॥ २ ॥
 वि त्वा ततत्रे मियुना अयस्यवो
 वृजस्य साता गव्यस्य निःसृजः
 सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
 यद् गन्धन्ता द्वा जना स्वयन्ता समूहसि ।
 आधिष्कारिकद् वृषणं सञ्जामुवं
 वज्रमिन्द्र सञ्जामुवंम् ॥ ३ ॥
 विदुष्टे अस्य दीर्यस्य पुरवः
 पुष्टे यदिन्द्र शारदीरवातिरः
 सासहानो अवातिरः ।
 शासुस्तमिन्द्र मत्य—मर्यज्यु शवसस्पते ।
 महोममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो
 मन्दसान इमा अपः ॥ ४ ॥
 आदिव तं अस्य दीर्यस्य चकिरन्
 मर्देषु वृषसृशिशो यदाविथ सगीयतो यदाविथ ।
 चक्रथं कार्मभ्यः पृतनासु प्रवन्तये ।
 ते अन्वामन्यां नर्घं सनिष्णत
 अयस्यन्तः सनिष्णत ॥ ५ ॥

उतो नो अस्या उपसो जुपेन हि ।
अकस्य योधि हविषो हवीममिः
स्वर्पाता हवीममिः ।

यादिन्द्र हन्तेव मृधो वृषा यजिञ्चितसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो
मम्यं श्रुधि नवीयसः ॥ ६ ॥

त्वं तामिन्द्र वायुघ्नानो अस्मयुः
अमित्रयन्तं तुविजात मत्ये वज्रेण शूर मत्येम् ।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तामः ।

रिष्टं न यामन्नपं भूत दुर्मतिः
विश्वापं भूत दुर्मतिः ॥ ७ ॥
॥ ७८ ॥ (ऋ० १।१३।११-६)
[६ (अर्धचम्य) इन्द्रापर्वतो] ।

त्वया घयं मघयन् पूर्व्ये धन
इन्द्रत्वोताः सासह्याम पृतन्यतो वनुयामं वनुष्यतः ।
नेदिष्टे अस्मिन्नह—न्यधि वोच्चा नु सुन्वते ।

अस्मिन् यज्ञे वि चयेमा भरं कृतं
याजयन्तो भरं कृतम् ॥ १ ॥
स्यजोपे भरं आप्रस्य वनर्मनि

उपूर्वधः स्वस्मिन्नज्ञसि क्राणस्य स्वस्मिन्नज्ञसि ।
अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णांपवाच्यः ।
अस्मन्ना ते सुधयं क्व सन्तु रातर्यो
भद्रा भद्रस्य रातर्यः ॥ २ ॥

तत् तु प्रयः प्रत्नथां ते शुशुक्चनं
यासिन् यज्ञे वारमठण्यत् क्षयं
श्रुतस्य चारसि क्षयम् ।

वि तद् वोचेरधं द्विता—ऽन्तः पंदयन्ति रुदिमभिः ॥
स था विदे अन्विन्द्रो गवेषणो
यन्धुक्षिन्द्रो गवेषणः ॥ ३ ॥

नू इत्या ते पुर्यथा च प्रवाच्यं
यदाईगतेभ्योऽवृणोरपं वृजं
इन्द्र शिश्रन्नपं वृजम् ।

पेभ्यः समान्या दिशा ऽस्मभ्यं जेपि योत्सि च ।
सुन्यद्रथो रन्धया कं चिद्व्रतं
हृणायन्तं चिद्व्रतम् ॥ ४ ॥

सं यजनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयद्
धने हिते तरुणत श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः ।
तस्मा आयुः प्रजायदिद् यार्धं अर्चन्त्योजसा ।

इन्द्र ओस्यं दिधिपन्त धीतर्यो
देवो अच्छा न धीतर्यः ॥ ५ ॥
युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा
यो नः पृतन्यादिप तंतमिद्धंत वज्रेण तंतमिद्धंतम् ।

दूरे चत्तार्यं च्छन्सुद् गहनं यदिर्नक्षत् ।
अस्माकं शत्रून् परि शूर विश्वतो
दर्मा दर्पाष्ट विश्वतः ॥ ६ ॥

॥ ७९ ॥ (ऋ० १।१३।११-७)
१ विष्टु, २-४ अठुष्टु, ५ पायत्री, ६ धृतिः, ७ अष्टिः ।
उभे पुनामि रोदसी क्रुतेन
द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ।

अमिच्छस्य यत्र हता अमित्रा
वैलस्थानं परि तुब्हा अशोरन् ॥ १ ॥
अमिच्छस्यां चिद्वद्रिचः शीर्षा यांतुमतीनाम् ।

छिन्धि वंदुरिणां पदा महावदूरिणा पदा ॥ २ ॥
अवासां मघवज्जहि शार्धो यांतुमतीनाम् ।
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्ये अर्मके ॥ ३ ॥

यासां तिस्रः पञ्चाशतो ऽमिच्छैरपावपः ।
तत् सु ते मनायति तक्त् सु ते मनायति ॥ ४ ॥
पिशाङ्गमृष्टिमम्भुणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण ।

सर्वे रक्षो नि वंहय ॥ ५ ॥
अवमंह इन्द्र वाहृहि श्रुधी नः
शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषां अद्रिवो
घणात्र भीषां अद्रिवः ।

शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभि—वंधरुप्रेभिरायसे ।
अपूर्वप्रो अमतीत शूर सत्वभिः
त्रिसैतः शूर सत्वभिः ॥ ६ ॥
(१०३९)

वनोति हि सुन्वन क्षयं परीणसः
 सुन्वानो हि प्मा यजस्वध द्विपो देवानामव द्विपः ।
 सुन्वान इव सिपासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
 सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुर्वं रयिं ददात्याभुर्वम् ॥७॥

॥ ८० ॥ (क्र० १।१३१।६) अलष्टिः ।

वृषन्निन्द्र वृषपाणोस इन्द्रव
 इमे सुता अद्रिपुतास उद्रिद्वः
 तुभ्यं सुतास उद्रिद्वः ।
 ते त्वा मन्दन्तु दावनें महे चिन्नाय राघसे ।

गीर्गिर्ग्याहः सव्यमान आ गंहि
 सुमृष्टीको न आ गंहि ॥ ६ ॥
 ॥ ८१ ॥ (क्र० १।१६७।१)
 अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

सहस्रं त इन्द्रोतयो नः
 सहस्रमियो हृत्विो गुर्ततमा ।
 सहस्रं रायो माद्वयर्ष्यं
 सहस्रिण उर्प नो यन्तु वाजाः

॥ ८१ ॥ (क्र० १।१६९।२-८)
 त्रिष्टुप्, २ षट्पदा विराट् ।

महश्चित् त्वमिन्द्र यत् पतान्
 महश्चिदसि त्यजसो वरुता ।
 स नो येषो मरुतां चित्रित्वान्
 मुस्ता र्यनुष्य तय हि प्रेषां
 अर्युञ्जन् इन्द्र विभ्यर्कृष्टीः
 विद्वानासो निष्पिषो मर्त्यत्रा ।
 मरुतां पृतत्विर्दाममाना
 र्यमिच्छस्य प्रधनस्य सार्ता
 धम्यक् सा तं इन्द्र शुधिरस्मे
 मनेम्यस्यं मरुतो जुनन्ति ।
 अग्निध्रिदि प्मात्से दुग्वाभान्
 धापो न ङीपं दर्धति प्रयांमि

त्व तू न इन्द्र तं रयिं द्वा
 ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।
 स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः
 स्तनं न मर्ध्वः पीपयन्त वाजैः ॥ ४ ॥
 त्वे रायं इन्द्र तोशतमाः प्रणेतरः
 कस्यं चिहत्तायोः ।

ते पु णो मरुतो मृळयन्तु
 ये सां पुरा गांतुयन्तीध देवाः ॥ ५ ॥
 प्रति प्र यादीन्द्र मीळ्हृपो नृन्
 महः पार्थिवे सदर्ने यतस्व ।

अध यर्देषां पृथुवुष्मास पर्ताः
 तीर्थे नार्यः पौस्यानि तस्युः ॥ ६ ॥

प्रति घोराणामेतानामयासां
 मरुतां शृण्व आयतामुपदिः ।
 ये मर्त्यं पृतनायन्तमर्मैः
 ऋणावानं न पतयन्त सर्गैः ॥ ७ ॥

त्वं मानेभ्य इन्द्र विभ्वर्जत्या
 रदा मरुद्रिः शुरुषो गोर्भगाः ।
 स्तवानिभिः स्तवसे देव देवैः
 विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

॥ ८३ ॥ (क्र० १।१७०।१-५)
 [इन्द्र, (५ अगस्त्यो वा) २, ५ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः] ।
 १ बृहती, २-४ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।

न नूनमस्ति नो भवः फस्तद् वेद् यद्भुतम् ।
 अन्यस्यं चित्तमभि संचरेण्यं
 उताधीतं वि नंदयति ॥ १ ॥

किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरौ मरुतस्यव ।
 तेभिः कल्पस्य साधुया मानः समरणे यधीः ॥२॥
 किं नो भ्रातरगस्य सप्रा सन्नतिं मन्यसे ।

विद्या हि ते यथा मनो ऽसभ्यमिन्न दित्ससि ॥३॥
 अरं शृण्वन्तु वेदिं समग्निर्मिन्धतां पुरः ।
 तत्रामृतस्य चेतनं यं तं तनयायदै ॥ ४ ॥

त्यर्मीशिपे वसुपते वर्तुनां
 त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्टः ।
 इन्द्र त्वं मृच्छिः सं वदस्व
 अथ प्राशानं ऋतुधा हवीर्षिं
 ॥ ८४ ॥ (क्र० १११७३।१-१३)
 विष्टुप, ४ विराट्स्थाना विषमपदा वा ।
 गायत् सामं नमन्यं यथा येः
 अर्चाम् तद् वावृधानं स्ववेत् ।
 गावो धेनवो बर्हिष्यदग्धा
 वा यत् सुधानं दिव्यं विवासान्
 अर्चद् वृषा वृषमिः स्वेटुहव्यैः
 मृगो नाश्रो अति यजुर्गुर्यात् ।
 प्र मन्द्युर्मनां गूर्तं होता
 भरते मर्यो मिथुना यजत्रः
 नश्रद्धोता परि सग्रं मिता यन्
 मरुद् गर्ममा शरुदः पृथिव्याः ।
 क्रन्दद्भ्यो नर्यमानो रुचद् गौः
 अन्तर्दृतो न रोदसी चरुद् याक्
 ता कर्मापतरास्मं प्र च्यौत्तानि देव्यन्तो भरन्ते ।
 जुजोपदिन्द्रो दुसर्था
 नासत्येव सुमर्यो रथेष्टाः
 तमुं पुहीन्द्रं यो ह सत्या
 यः शरीं मृधवा यो रथेष्टाः ।
 प्रतीचश्चिद् योर्धियान् वृषणवान्
 पयनुपश्चित् तमसो विहन्ता
 ॥ ५ ॥ प्र यदित्था मंहिना नृभ्यो अस्मि
 बरुं रोदसी कश्ये कु नास्मं ।
 सं विव्य इन्द्रो वृजन् न भूमा
 भर्ति स्वधायां ओपशमिव धाम्
 सुमत्सु त्वा शर सुतामुपणं
 प्रपथिन्तमं परिनसपथ्यं ।

सजोपस इन्द्रं मदे क्षोणीः
 सुरिं चिद् ये अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७ ॥
 पूवा हि ते शं सर्वना समुद्र
 ॥ ५ ॥ आपो यत् तं आसु मदन्ति देवीः ।
 विश्वा ते अनु जोष्यां भूद् गौः
 सुरीश्चिद् यदि धिपा वेदि जनान् ॥ ८ ॥
 असाम् यथा सुपन्वार्यं पन
 स्वमिष्टयो नरां न शंसैः ।
 असद् यथा न इन्द्रो बन्दनेष्टाः
 ॥ १ ॥ तुरो न कर्म नर्यमान उक्था
 विषर्धसो नरां न शंसैः
 अस्माकांसदिन्द्रो वज्रहस्तः ।
 मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिशौ
 ॥ २ ॥ मध्यायुव उषं शिक्षन्ति यष्टैः
 यज्ञो हि प्नेन्द्रं कश्चिद्दृन्धन्
 जुहुषणश्चिन्मनसा परियन् ।
 तीर्थे नाच्छां तावृषाणमोको
 ॥ ३ ॥ दीर्घो न सिध्रमा रुणोत्वर्था
 मो पू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैः
 अस्ति हि प्मां ते शुष्मिन्नवयाः ।
 ॥ ४ ॥ महश्चिद् यस्यं मीळुहोपो यव्या
 हविर्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥ १२ ॥
 एष स्तोमं इन्द्र तुभ्यमसे
 पतेनं गानुं हरियो विदो नः ।
 ॥ ५ ॥ आ नो ववृत्याः सुधितार्यं देव
 विद्यामेवं वृजन् जीरदानुम् ॥ १३ ॥
 ॥ ८५ ॥ (क्र० १११७३।१-१०) विष्टुप ।
 त्वं राजेन्द्र ये च देवा
 ॥ ६ ॥ रक्षा नून पाहासुर त्वमस्मान् ।
 त्वं सत्पतिर्मघवां नस्तर्षत्रः
 त्वं सत्यो यसवानः सद्गोदाः ॥ १ ॥
 (१०६९)

दनो विश इन्द्र मध्रवाचः
 सप्त यत् पुर शर्म शार्वीर्दत् ।
 ऋणोरपो अंनव्यार्णा
 यूने वृत्रं पुंसुत्साय रन्धीः
 अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीः ।
 धां च येभिः पुरहृत् नूनम् ।
 रक्षो अग्निमुद्युपं तूर्धयाणं
 सिहो न दमे अपांसि वस्तोः ।
 शेषन् तु त इन्द्र सस्मिन् योनौ
 प्रशस्तये पर्वारवस्य मद्वा ।
 सजदणोस्यव यद् युधा गाः
 तिष्ठदरी धृपता मृष्ट धार्जान्
 यद् वृत्सामिन्द्र यस्मिञ्चाकन्
 स्यूमन्यू ऋजा वातस्याध्वा ।
 प्र सूरध्वकं वृहतादभीके
 अभि स्पृधो यासिपद् वज्रयाहुः
 जघनो इन्द्र मिरेस्न्
 चोदम्रमृद्धो हरियो अदाश्वन् ।
 प्र ये पदयंत्र्यमणं सत्रायोः
 त्वयां शतां वहेमाना अपत्यम्
 रपन् वधिरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपवर्हेणां कः ।
 कर्तुं तिन्नो मध्या दानुं चित्रा
 नि दुय्योणे कुयवाच मधि ध्रेत्
 मना ता तं इन्द्र नया आगुः
 सरो नमोऽविरणाय पूर्वाः ।
 मिनत् पुरो न भिद्रो अदेवीः
 नूनमो यधुरदधस्य पीयोः
 न्यं पुनिगिन्द्र धुनिमती ।
 ऋणोरप. मोर न स्रयन्तीः ।
 प्र यन् संमुद्रमते शूर पापं
 पारयां तुपंश पदुं म्यक्ति

त्वमसाकमिन्द्र विश्वधं स्या
 अवृकर्तमो नरां नृपाता ।
 स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा
 ॥ २ ॥ विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥
 ॥ ८६ ॥ (ऋ० १।१७।१-६)
 स्कन्धोप्रावी वृहती, २-५ अनुष्टुप्, ६ त्रिष्टुप् ।
 मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मर्दः ।
 वृपां ते वृष्ण इन्दु—वाजी सहस्रसार्तमः ॥ १ ॥
 आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मद्रो वरेण्यः ।
 सहावीं इन्द्र सानसिः पृतनापाळमर्त्यः ॥ २ ॥
 त्व हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
 ॥ ४ ॥ सहावान् दस्युमन्त—मोपः पात्रं न शोचिर्या ॥ ३ ॥
 मुपाय सूर्ये कवे चक्रमीशान् ओजसा ।
 घह शुष्णाय वध कुत्सं वातस्याध्वैः ॥ ४ ॥
 शुष्मिन्तमो हि ते मदीं युष्मिन्तम उत क्रतुः ।
 ॥ ५ ॥ वृत्रघ्ना धरिवोविदां मंसीष्टा अश्वसार्तमः ॥ ५ ॥
 यथा पूर्वम्यो जरितुभ्यं इन्द्र
 मयं इवापो न तृष्यते वभृथं ।
 तामनु त्वा निधिदै जोहवीमि
 ॥ ६ ॥ विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥
 ॥ ८७ ॥ (ऋ० १।१७।१-६) अनुष्टुप्, ६ त्रिष्टुप् ।
 मत्सि नो वस्येइष्टय इन्द्रमिन्द्रो वृषा विश ।
 ॥ ७ ॥ ऋधायमाण इन्वासि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥
 तस्मिन्ना वैशया गितो य एकध्वर्षणीनाम् ।
 अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चक्रेपद् वृषा ॥ २ ॥
 यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसुं ।
 ॥ ८ ॥ स्वाशयस्य यो अस्मद्गुं दिव्येवाशनिर्जोहि ॥ ३ ॥
 अस्तुन्वन्तं समं जहि दृणाशो यो न ते मयः ।
 धसभ्यमस्य वेदनं दाहि सुरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥
 वापो यस्य दिवर्हसो ऽकेपुं सानुपगसत् ।
 ॥ ९ ॥ आजाविन्द्रस्येन्द्रो प्रायो पाजेपु धाजिनम् ॥ ५ ॥

यथा पूर्वम्यो जरितृभ्य इन्द्र
 मयं इवापो न तृप्यते वभूर्य ।
 तामनु त्वा निविदं जोहवीमि
 विद्यामेयं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥
 ॥ ८८ ॥ (ऋ० १।१७७।१-६) त्रिष्टुप् ।
 आ चर्षणिप्रा वृषमो जनानां
 राजा कृष्टीनां पुंरुहूत इन्द्रः ।
 स्तुतः श्रवस्यन्नवसोर्ष मद्रिग्
 युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाड् ॥ १ ॥
 ये ते वृषणो वृषभासं इन्द्र
 ब्रह्मयज्ञा वृषरथासो अस्याः ।
 तां आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाड्
 हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमं
 आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषां ते ॥ २ ॥
 सुतः सोमः परिपिका मधूनि ।
 युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां
 हरिभ्यां याहि प्रवतोर्ष मद्रिक्
 अयं यत्तो देवया अयं मियेधं
 इमा ब्रह्माण्यमिन्द्र सोमः ।
 स्तीर्णं यद्दिरा तु शक्र प्र याहि
 पिवा निपद्य वि मुञ्चा हरीं इह ॥ ४ ॥
 ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाड्
 उप ब्रह्माणि मान्यस्यं कारोः ।
 विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो
 विद्यामेयं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥
 ॥ ८९ ॥ (ऋ० १।१७८।१-५)
 यद्वा स्या तं इन्द्र धुष्टिरस्ति
 यया वभूर्य जरितृभ्य ऊती ।
 मा नः कामं महयन्तमा धग्
 विभ्वां ते अस्यां पर्याष आयोः ॥ १ ॥
 न घा राजेन्द्र आ दंभत्रो
 या नु स्वसारा कृण्वन्त योनीं ।

आपश्चिदस्मै सुतका अवेपन्
 गर्मन्न इन्द्रः सत्या वयश्च ॥ २ ॥
 जेता नृभिरिन्द्रः पुंसु शूरः
 श्रोता हवं नार्धमानस्य कारोः ।
 प्रमेता रथं दाशुर्ष उपाक
 उधन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥ ३ ॥
 एवा नृभिरिन्द्रः सुधवस्या
 प्रखादः पक्षो अभि मित्रिणो भूत् ।
 समर्य इपः स्तवते विवाचि
 सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥ ४ ॥
 त्वया वयं मघवन्नित् शत्रून्
 अभि प्याम महतो मन्यमानान् ।
 त्वं ज्ञाता त्वमुं नो वृधे भूः
 विद्यामेयं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥
 ॥ ९० ॥ (ऋ० १।११।१-२१)
 गूलमदः (आंगिरस शौनदोन. पथाद्) मार्गव. शौनकः ।
 विराटस्थाना, २१ त्रिष्टुप् ।
 ध्रुधी हवमिन्द्र मा रिपण्युः
 स्यामं ते दावने वसूनाम् ।
 इमा हि त्वामूजो वर्धयन्ति
 वसुयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥ १ ॥
 सूजो महोरिन्द्र या अपिन्वः
 परिष्ठिता अहिना शूर पूर्जाः ।
 अमस्यं चिद् दासं मन्यमानं
 अवाभिनदु कथेर्वावृषानः ॥ २ ॥
 उन्धेप्विन्नु शूर येपुं चाकन्न
 स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च ।
 तुभ्येदेता यासु मन्दसानः
 प्र वाययं सिद्धते न शुधाः ॥ ३ ॥
 शुभ्रं नु ते शुभ्रं वर्धयन्तः
 शुभ्रं वज्रं ग्राहोर्दर्शानाः ।
 शुभ्रस्तमिन्द्र वावृषानो अस्ये
 दासीर्विदाः सूर्येण सहाः ॥ ४ ॥

<p>गुहा हितं गुह्यं गृह्णन्नु अपीवृत्तं मायिनं क्षियन्तम् । उतो अपो द्यां तंस्तुभ्वांसं बह्वर्हिं शूर वीर्येण</p>	<p>॥ ५ ॥</p>	<p>स्याम ते तं इन्द्र ये तं ऊती अथस्यव ऊर्जे वृधयन्तः । शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देव अस्से रयिं रासि वीरयन्तम्</p>	<p>॥ १३ ॥</p>
<p>स्तया नु तं इन्द्र पृथ्वां महानि उत स्तयाम् नूतना हृतानि । स्तया यज्ञे बाहोश्शन्तं स्तया हरी सूर्यस्य केतु</p>	<p>॥ ६ ॥</p>	<p>रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शर्थे इन्द्र मारुतं नः । सजोपसो ये चं मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यप्रणीतिम्</p>	<p>॥ १४ ॥</p>
<p>हरी नु तं इन्द्र वाजयन्ता श्रुतदशुतं स्वारमस्वाष्टाम् । वि संमना भूमिप्रविष्ट अरंस्त पर्वतश्चित् सारिष्यन्</p>	<p>॥ ७ ॥</p>	<p>व्यन्त्विक्षु येषु मन्दसानः तुपत् सोमं पाहि ब्रह्मदिन्द्र । अस्मान्तु पृत्स्वा तंश्रु अवर्धयो द्यां बृहद्भिरकैः</p>	<p>॥ १५ ॥</p>
<p>नि पर्वतः साधप्रयुच्छन् सं मातृभिर्वावशानो अक्रान् । दुरे पारे वाणीं वृधयन्त इन्द्रैरपितां धमनि पमयन् नि</p>	<p>॥ ८ ॥</p>	<p>बृहन्त इक्षु ये तं तरु उपथेभिर्वा सुस्रमाविवासान् । स्तृणानासौ बर्हिः पृत्स्वावत् त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन्</p>	<p>॥ १६ ॥</p>
<p>इन्द्रो महां मिर्षुमाशयानं मायायिनं वृषमस्फुरधिः । अरेजेतां रोदसी भियाने कनिप्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात्</p>	<p>॥ ९ ॥</p>	<p>उग्रेष्विधु शूर मन्दसानः त्रिकंद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र । प्रदोषुवच्छुश्रुषु श्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्यं पीतिम्</p>	<p>॥ १७ ॥</p>
<p>अरंतरपीद् वृष्णो अम्य वज्रो वमानुषं यन्मानुषो निज्वात् । नि मायिनो दानयस्यं माया मपादयत् परियान्त्यनुम्यं</p>	<p>॥ १० ॥</p>	<p>धिष्या शर्वः शूर येन वृषं अवाभिन्द दातुमौर्णवामम् । अपावृणोज्योतिराय्याय नि संव्यतः सादि दस्युरिन्द्र</p>	<p>॥ १८ ॥</p>
<p>पिषांपिषेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्या मन्दिनः सुतामैः । पुनन्तस्ने वृक्षी पंपयत् इत्या सुतः पूर इन्द्रमाष</p>	<p>॥ ११ ॥</p>	<p>असम्यं तत् त्वाष्टं विभरुषं अरन्धयः साख्यस्यं प्रितार्य अस्य मुद्यानस्यं मन्दिनश्चितस्य न्यर्षुदे धापृथानो अस्तः ।</p>	<p>॥ १९ ॥</p>
<p>रथे इन्द्रायभूमं पिषा धियं पनेम अत्रया सर्पानः । अपुम्ययो धामहि प्रतीमिन् रुचगं रापो हायनं इयाम</p>	<p>॥ १२ ॥</p>	<p>अर्षुदे धापृथानो अस्तः । अपर्वतयत् वृष्णो न ध्रुमः मिन्द यत्मिन्द्रो अर्षुरस्यान्</p>	<p>॥ २० ॥</p>

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे
 दुह्यीयदिन्द्र दक्षिणा मृगेनी ।
 शिखां स्तोतृभ्यो मारिं धग्मगो नो
 बृहद् वंदेम विदये सुवीराः

॥ २१ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० १।२।१।१-२५) त्रिष्टुप् ।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् •
 देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
 यस्य शुष्माद् रोदसी अर्ष्यसेतां
 नृगणस्य मन्ना स जनासु इन्द्रः
 यः पृथिवीं व्यर्धमानामर्हद्
 यः पर्वतान् प्रकुपितां अरुणात् ।
 यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो
 यो घामस्नभ्नात् स जनासु इन्द्रः
 यो हृत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धुन्
 यो गा उदाजदपथा बलस्य ।
 यो अश्मनोरन्तरिक्षं जजान
 संवृक् समस्तु स जनासु इन्द्रः
 येनेमा विभ्या च्यवेना कृतानि
 यो दासुं वर्णमधरं गुहाकः ।
 भ्वप्रीव यो जिगीवां लुभमादद्
 अयः पुष्टानि स जनासु इन्द्रः
 यं सा पृच्छन्ति कुह सेति घोरं
 उतेमार्हुनेपो अस्तीर्यनम् ।
 सो अयः पुष्टीविज इवा मिनाति
 अर्दसै धत्त स जनासु इन्द्रः
 यो रुध्रस्य चोदिता यः कशस्य
 यो ब्रह्मणो नार्धमानस्य कीरेः ।
 युक्तप्राव्या योऽविता सुशिप्रः
 सुतसौमस्य स जनासु इन्द्रः
 यस्याभ्यासः प्रदिशि यस्य गात्रो
 यस्य प्राप्ता यस्य विभ्ये रयासः ।

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

यः सूर्यं य उपसं जजान
 यो अपां नेता स जनासु इन्द्रः
 यं क्रन्दसी संयती विद्वयते
 परेऽवर उमर्या अभिजाः ।
 समानं चिद् रयमातस्थिवासा
 नाना हवेते स जनासु इन्द्रः
 यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो
 यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
 यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव
 यो अच्युतच्युत् स जनासु इन्द्रः
 यः शर्भतो महोनो दर्धानान्
 अमन्यमानान्छर्वा जधान ।
 यः शर्भते नानुददाति शूच्यां
 यो दस्योर्हन्ता स जनासु इन्द्रः
 यः शर्भरं पर्वतेषु श्रियन्तं
 चत्वारिंश्यां शरयन्वविन्दत् ।
 ओजायमानं यो अहिं जघान
 दानुं शयानं स जनासु इन्द्रः
 यः सप्तर्दिमर्षुपमस्तुर्विष्मान्
 अवाख्यज्व सतये सप्त सिन्धुन् ।
 यो रौहिणमस्फुरद् वज्रवाहुः
 घामारोहन्तं स जनासु इन्द्रः
 धावां चिदस्मै पृथिवी नमेते
 शुष्माधिदस्य पर्वता भयन्ते ।
 यः सौमपा निश्चितो वज्रवाहुः
 यो वज्रहस्तः स जनासु इन्द्रः
 यः सुन्वन्तमवाति यः पर्वन्तं
 यः शंसन्तं यः शंदामानमृती ।
 यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सौमो
 यस्येदं राधः स जनासु इन्द्रः

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

(११३५)

यः सुन्वते पचते दुग्ध आ चिद्
घाजं ददौषं स किलांसि सत्यः ।

घयं तं इन्द्र विश्वहं प्रियासंः
सुवीरसो विद्यथमा वडेम

॥ १५ ॥

॥ १५ ॥ (ऋ० २।१३।१-१३) अगती, १३ त्रिष्टुप् ।

ऋतुर्जनेत्री तस्या अपस्परि
मञ्जु जात आविदाद् यासु वर्धते ।

तदाहना अभवत् पिप्पुयी पयः

अंशोः पीयूषं प्रथमं तद्वृक्यम्

॥ १ ॥

सधामा यन्ति परि विभ्रतीः पयो

विश्वप्स्याय प्र भरन्त मोजनम् ।

समानो अर्धा प्रवतामनुष्यदे

यस्ताहणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः

अन्वेको वदति यद् ददाति तद्

रूपा मिनन्तदपा एकं ईयते ।

विश्या एकस्य विनुदस्तितिक्षते

यस्ताहणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः

प्रजाभ्यः पुष्टिं विभ्रजन्त आसते

रुपिमिथ पृष्टं प्रमरन्तमायते ।

आमैन्वन् दंष्ट्रं पितुरस्ति मोजनं

यस्ताहणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः

वधाहणोः पृथिवीं संदशे दिवे

यो धीनिनामहिहप्रारिणः पयः ।

ते त्या स्तोमैभिर्मुदमिर्न धाजितं

द्वेषं द्वेषा अत्रनन्त्यास्युक्थ्यः

यो मोजनं नु दयमे च वर्धनं

धात्रंदा शुष्कं मयुमद् हुदोदिय ।

न दौवधि नि दधिरे पियन्वति

विश्वस्यैव ईदिते सास्युक्थ्यः

यः पुष्पिर्णाश प्रम्यंश्च धर्मणा

अधि दाने व्युपनीर्धारयः ।

यश्चासमा अजने दिद्युतो दिद्य

उरुहर्वा अभितः सास्युक्थ्यः

॥ ७ ॥

यो नमिरं सहर्वसुं निर्हन्तवे

पुष्यार्थं च दासर्वेशाय चावहः ।

ऊर्जर्यन्त्या अपरिविष्टमास्यं

उतैवाद्य पुरुहूत सास्युक्थ्यः

॥ ८ ॥

शतं वा यस्य दशं साकमाद्य

एकस्य शृष्टौ यज्ञं चोदमार्विथ ।

अरजौ दस्युन्तसमुनवृभीतये

सुप्राव्यो अमवः सास्युक्थ्यः

॥ ९ ॥

विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं

ददुरस्मै दधिरे कृत्तवे धनम् ।

पळस्तभ्रा विष्टिरः पञ्च संदशः

परि पृषो अमवः सास्युक्थ्यः

॥ १० ॥

सुप्रधाचनं तर्षं वीर वीर्यं

यदेकैन् क्रतुना विन्दसे वसु ।

जातृष्टिरस्य प्र वयः सहस्वतो

या चकथं सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः

॥ ११ ॥

अरमयः सरपसस्तराय कं

तुर्वीतये च व्य्याय च क्षुतिम् ।

नीचा सन्तमुदनयः परावृजं

प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्तसास्युक्थ्यः

॥ १२ ॥

अस्मभ्यं तद् वसो दानाय राघः

समर्धयस्य वहु तं वसुव्यम् ।

इन्द्र यशित्रं श्रेयस्या अनु घ्नू

पृहद् वडेम विदधे सुवीराः

॥ १३ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० १।१४।१-१२) त्रिष्टुप् ।

अपर्ययो भरतेन्द्राय सोमं

आमत्रेभिः सिञ्जता मघमन्धेः ।

वामी हि धीरः सदर्मस्य पीति

जहोत पुष्ये ताददेय यष्टि

॥ १ ॥

(११५०)

अर्ध्वर्यवो यो अपो वनिवांसं
 वृत्रं जघानाशान्यैव वृक्षम् ।
 तस्मा पृतं भरत तद्वशायै
 पृथ इन्द्रो अहति पीतिर्मस्य
 अर्ध्वर्यवो यो हर्षिक जघान
 यो गा उदाजदप हि बलं व ।
 तस्मा पृतमन्तरिक्षे न वातं
 इन्द्रं सोमैरोषुतं जूर्नं घर्षः
 अर्ध्वर्यवो य उरणं जघान
 नचं चरपांसं नयति चं याह्वन् ।
 योऽअर्ध्वदमवं नीचा वंराधे
 तमिन्द्रं सोमस्य भूये हिनेत
 अर्ध्वर्यवो य स्वर्षं जघान
 यः शुष्णामशुप यो व्यंसम् ।
 यःऽपिपुं॥नमुचि यो रुधिकां
 तस्मा इन्द्रायानघसो जुहोत ।
 अर्ध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य ।
 पुरो विभेदादमनेव पूर्वाः ॥
 यो यचिनः शतमिन्द्रः सहस्रं
 अपावपद् भरता सोममस्मै
 अर्ध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं
 भूम्या उपस्येऽवपजघन्वान् ।
 कृत्स्नस्यायोरंतिथिग्वस्यं वीरान्
 न्यावृणाम् भरता सोममस्मै
 अर्ध्वर्यवो यघ्नरं कामयाधे
 धृष्टी वहन्तो नशया तदिन्द्रं ।
 गर्मस्तिपूत भरत धृताय
 इन्द्राय सोमं यज्यया जुहोत
 अर्ध्वर्यव कर्तेना धृष्टिमस्मै
 घने निपूतं घन उग्रयघ्यम् ।
 जुषाणो हस्त्यमभि यांशो घ
 इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत

अर्ध्वर्यवः पयसोर्ध्वर्या गोः
 सोमैर्मिरां पृणता भोजमिन्द्रम् ।
 वेदाहमस्य निभृतं म पृतद्
 ॥ २ ॥ दित्सन्तं भूयो यजतश्चिक्रेत ॥ १० ॥
 अर्ध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्त्रो
 यः पार्यवस्य क्षम्यस्य राजा ।
 तमूर्धरं न पृणता यवेन
 ॥ ३ ॥ इन्द्रं सोमैभिस्तदपौ चो-अस्तु- ॥ ११ ॥
 अस्मभ्यं तद् वंसो दानाय राघु
 समर्थयस्व बहु तं वसव्यम् ।
 इन्द्र यश्चित्रं श्रवस्या अनु धून्
 ॥ ४ ॥ वृहद् वंदेम विदधे सुवीराः ॥ १२ ॥
 ॥ १४ ॥ (ऋ० १२५१-१०)
 प्र घा न्वंस्य महतो महानि ।
 सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।
 त्रिकद्रुकेष्वपिचत् सुतस्य
 ॥ ५ ॥ अस्य मदे अहिमिन्द्रो जघान- ॥ १ ॥
 अवशे धामस्तभायद् बृहन्त
 आ रोदसी अपृणदन्तरिक्षम् ।
 स धारयत् पृथिवीं पप्रथश्च
 ॥ ६ ॥ सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥ २ ॥
 सधैव प्राचो वि मिमाय मानैः
 घर्षेण खान्यतृणघ्नदीनाम् ।
 वृथासृजत् पृथिमिर्द्विर्धयायै
 ॥ ७ ॥ सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥ ३ ॥
 स प्रवोब्धन् परिगत्या दूमीतेः
 विभ्रमधागायुधमिधे अप्रो ।
 सं गोमिरध्वरसृजद् रथमि-
 ॥ ८ ॥ सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥ ४ ॥
 स ई महो धुनिमेतोररम्णात्
 सो अस्नातृर्नपारयत् स्वस्ति ।
 त उक्ताय रथिमभि प्र तस्यु ।
 ॥ ९ ॥ सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥ ५ ॥

सोदञ्जं सिन्धुमरिणान्मद्वित्वा
 वज्रेणानं उपसुः सं विपेय ।
 अज्वसो जविनीभिर्विवृश्चन्
 सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार
 स विद्धा अंपगोहं कृनीनां
 आविर्मवद्भुदतिष्ठत् परावृक् ।
 प्रति श्रोणः स्याद् व्युनगंचष्ट
 सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार
 भिनद् बलभङ्गिरोभिर्गृणानो
 वि पर्वतस्य दंष्ट्रितान्यैरत् ।
 रिणप्रोधांसि कृत्रिमाणेषां
 सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार
 स्वर्नाभ्युप्या सुसुरिं धुनिं च
 जघन्य दस्युं प्र दुर्मतिमावः ।
 रम्मी विदमं चिविदे हिरण्यं
 सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार
 नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे
 दुहीयदिन्द्रं दक्षिणा मघोनी ।
 दिक्षां स्तोतृभ्यो मार्ति धग्मगो नो
 यूहद् वंदेम विदथे सुवीराः
 ॥ १० ॥ (अ० २।१६।१-९) जगती, ९ त्रिष्टुप् ।
 प्र वः सुतो ज्येष्ठतमाय सुषुति
 अग्राविं सभिधाने हविर्भरे ।
 इन्द्रमजुयै जरयन्तमुक्षितं
 मनाद् युषानमवंसे हवामहे
 यस्मादिन्द्राद् घृहतः किं चनेमृते
 विभोभ्यस्मिन्त्समताधि वीर्या ।
 जउरे सोमं तन्वीकुं सहो महो
 हस्ते यज्ञं भरति दीर्घसिं प्रतुम्
 न शोणीभ्यां परिच्यं त इन्द्रियं
 न ममुद्रैः पर्यैरिन्द्र ते रथः ।

न ते यज्ञमन्यभ्रोति कश्चन
 यज्ञानुभिः पतंसि योजना पुरु ॥ ३ ॥
 विभ्ये हासै यज्ञताय धृण्ये
 ॥ ६ ॥ कर्तुं भरन्ति वृषभाय सधते ।
 वृषा यजस्व हविषा विदुष्टैः
 पिथेन्द्र सोमं वृषमेण भानुना ॥ ४ ॥
 वृष्णः कोशः पचते मध्वं ऊर्मिः
 ॥ ७ ॥ वृषमात्राय वृषभाय पातये ।
 वृषणाध्वर्युं वृषमालो अद्रपो
 वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ॥ ५ ॥
 वृषा ते यज्ञं उत ते वृषा रथो
 ॥ ८ ॥ वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा ।
 वृष्णो मदस्य वृषभ त्वमीशिपे
 इन्द्र सोमस्य वृषमस्य तृष्णुहि ॥ ६ ॥
 प्र ते नाधं न समने वचस्युवं
 ॥ ९ ॥ ब्रह्मणा यामि सर्वनेपु दाधुपिः ।
 कुविभ्रो अस्य वचसो नियोधिपद्
 इन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ॥ ७ ॥
 पुरा संवाधादभ्या वषत्व नो
 धेनुर्न घृतं यर्वसस्य पिप्युपी ।
 स्रक्तु तै सुमतिभिः शतक्रतो
 सं परीमिन् वृषणो नसीमहि ॥ ८ ॥
 नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे
 दुहीयदिन्द्रं दक्षिणा मघोनी ।
 ॥ १ ॥ दिक्षां स्तोतृभ्यो मार्ति धग्मगो नो ।
 यूहद् वंदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥
 ॥ ११ ॥ (अ० २।१७।१-९) जगती, ८-९ त्रिष्टुप् ।
 तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत
 ॥ २ ॥ दुष्मा यदस्य प्रह्यथोदीरते ।
 विभ्या यद् गोशा सहसा परीषता
 महे सोमस्य दंष्ट्रितान्यैरयत् ॥ १ ॥

स भूतु यो ह प्रथमाय धार्यसे
 ओजो मिमानो महिमानमार्तिरव् ।
 शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत
 शीर्षणि चां मंहिना प्रत्यमुञ्चत
 अर्धाकणोः प्रथमं वीर्यं महद्
 यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्मैरयः ।
 रथेष्टेन हर्यभ्वेन विचर्युताः
 प्र जीरयः सिञ्चते सध्याक् पृथक्
 अथा यो विश्वा मुर्वनामि मग्मना
 ईशानकृद् प्रवया अभ्यवर्धत ।
 आद् रोदसी ज्योतिषा वहिरातनोत्
 सीव्यन् तमालि दुर्धिता समव्ययत्
 स प्राचीनान् पर्वतान् दृंहदोजसा
 अधराचीनमरुणोवपामपः ।
 अधारयत् पृथिवीं विश्वर्थायसं
 अस्तभ्रान्मायया धामवृक्षसः
 सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्
 विश्वस्मादा जनयो वेदंसस्परिं ।
 येनां पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्वै
 यज्ञेण हृत्व्यवृणक् तुविष्यणिः
 अमाजूरिव पित्रोः सचां सती
 संमानादा सर्वसस्त्वामिये भर्गम् ।
 हृधि प्रक्रेतमुपं मास्या मर
 क्षधि भागं तन्वोः^१येनं मामहः
 भोजं त्वामिन्द्र पयं हुवेम
 वदिष्मिन्द्रापांसि पाजोन् ।
 अविष्टीन्द्र चित्रया न ऊनी
 हृधि वृषभिन्द्र पस्यसो नः
 नूनं सा ते प्रति वरं जरिदे
 र्दहीपादिन्द्र दक्षिणा मयोनी ।
 शिखां स्तोतृभ्यो मार्ति घग्मगो नो
 पूहद् धदेम विदधे सुपीताः

॥ २ ॥
 ॥ ३ ॥
 ॥ ४ ॥
 ॥ ५ ॥
 ॥ ६ ॥
 ॥ ७ ॥
 ॥ ८ ॥
 ॥ ९ ॥

॥ ९ ॥ अ० २१० (१-९) विष्टु ।

प्राता रथो नवीं योजि सस्तिः
 चतुर्युगाभिकृदाः सुतरदिमः ।
 दशारित्रो मनुष्यः स्वर्पाः
 स इष्टिभिर्मतिभी रथो भूत्
 सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयं
 उतो तृतीयं मनुषः स होता ।
 अन्यस्या गर्भेभ्य ऊं जनन्त
 सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा
 हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योजं
 आयै सुकेन वचसा नवेन ।
 मो पु त्वामत्रं बहवो हि विप्र
 नि रीरमन् यजमानासो अन्ये
 आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याहि
 वा चतुर्भिषु पङ्क्तिर्भुमानः ।
 आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयं
 अयं सुतः सुमन्न मा मृषस्कः
 वा विशत्या त्रिशतां याह्यर्वाद्
 आ चत्वारिंशता हरिभिर्बुजानः ।
 आ पञ्चाशतां सुरधेभिरिन्द्र
 वा पृष्टया संतत्या सोमपेयम्
 आशीत्या नवत्या याह्यर्वाद्
 आ शतेन हरिभिर्ह्यमनः ।
 अयं हि ते नूनहोत्रिषु सोम
 इन्द्रं त्याया परिपिको मर्दाय
 मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छ
 विश्वा हरीं धुरि धिष्ठा रथम्य ।
 पुरुत्रा दि विह्व्यो वभूष
 असिन्द्रैर सर्गेन मादयस्य
 न म इन्द्रेण सख्यं वि यौपद्
 असभ्यमस्य दक्षिणा दुदीत ।
 उप ज्येष्ठे धरुधे गर्मस्ती
 श्रापेभ्ये जिगीषांसं स्याम

॥ १ ॥
 ॥ २ ॥
 ॥ ३ ॥
 ॥ ४ ॥
 ॥ ५ ॥
 ॥ ६ ॥
 ॥ ७ ॥
 ॥ ८ ॥
 ॥ ९ ॥

नूनं सा ते प्रति वरं जरिरे
 दुहीयदिन्द्रं दक्षिणा मघोनी ।
 शिक्षां स्तोतृभ्यो मातिं घग्मर्गो नो
 बृहद् वंदेम विदये सुवीरोः

॥ १८ ॥ (ऋ० १।११।१-१)

अपांय्यस्यान्धसो मदाय
 मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।
 यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान
 ओकों दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः
 अस्य मन्वानो मघो वज्रहस्तो
 अहिमिन्द्रो अणोवृतं वि बृधत् ।

प्र यद् वयो न स्वसराण्यञ्ज
 प्रयांसि च नदीनां चकमन्त
 स माहेन इन्द्रो अणो अपां
 प्रत्येदहिहाञ्जं समुद्रम् ।
 अजनयत् सूर्यं विदद् गा
 अरुनाह्वां वयुर्नानि साधत्
 सो अग्रतीनि मनधे पुरुणि
 इन्द्रो दाशद् दाशुपे हन्ति वृषम् ।
 सुयो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत्
 पंसृधानेभ्यः सूर्यस्य सातो
 स सुन्वत् इन्द्रः सूर्यं
 आ देवो रिण्डमर्त्याय स्तवान् ।
 आ यद् सूर्यं गृहद्वयधमस्मै
 भरद्वा नैतशो दशस्यन्
 म रन्धयन् सदियुं सारण्ये
 शुष्णं प्रशुपु कुर्येयं कृत्साय ।
 दिवोदामाय ननुति च नव
 इन्द्रः पुते ध्यंरुच्छम्वरस्य
 पया तं इन्द्रोचधमदेम
 धवम्या न तमनो पाजयन्तः ।

अश्याम तत् सातेमाशुयाणा
 ननमो वधदेवस्य पीयोः

॥ ७ ॥

॥ ९ ॥ अवस्ययो न वयुर्नानि तधुः ।

ब्रह्मण्यन्तं इन्द्र ते नवीय

इपमूर्जे सुक्षितिं सुन्नमस्युः

॥ ८ ॥

नूनं सा ते प्रति वरं जरिरे

दुहीयदिन्द्रं दक्षिणा मघोनी ।

॥ १ ॥ शिक्षां स्तोतृभ्यो मातिं घग्मर्गो नो

बृहद् वंदेम विदये सुवीरोः

॥ ९ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० १।१०।१-१) विदुषः, इ विराड्हापा ।

वयं ते वर्य इन्द्र विद्वि पु णः

॥ २ ॥ प्र भरामहे वाजयुर्न रथम् ।

विपन्यवो दीर्घ्यतो मनीषा

सुन्नमिष्यन्तस्तवावतो नृन्

॥ १ ॥

त्वं न इन्द्र त्वाभिह्वती

॥ ३ ॥ त्वायतो अमिष्टिपांसि जनान् ।

त्वमिनो दाशुर्वा बहूता

इत्याधीरभि यो नक्षति त्वा

॥ २ ॥

सं नो युवेन्द्रो जोह्वः सखा

॥ ४ ॥ शिवो नुरामस्तु पाता ।

य शंसन्ते यः शशमानमती

पचन्तं च स्तुवन्तं च प्रणेपत्

॥ ३ ॥

तमु स्तुप इन्द्रं तं गृणीषे

॥ ५ ॥ यस्मिन् पुरा वावधुः शशितुश्च ।

स वस्यः कर्म पीपरदियानो

ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः

॥ ४ ॥

सो अङ्गिरसामुचयां जुजुर्वान्

॥ ६ ॥ प्रकां तूतोदिन्द्रो गातमिष्णन् ।

मुष्णश्रुपसः सूर्येण स्तवान्

अशंस्य चिच्छिन्नयत् पुण्याणि

॥ ५ ॥

(१३११)

स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव
 ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दुसंतमः ।
 अथ प्रियमंशसानस्य साहान्
 शिरो भरद् दासस्य स्वधावान्
 स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनिः
 पुरंदरो दासीरैर्यद वि ।
 अजनयन् मनवे क्षामपथं
 सत्रा शंसं यजमानस्य ततोत्
 तसं तवस्य मनु दायि सत्रा
 इन्द्राय देवेभिरर्णसातौ ।
 प्रति यदस्य वज्रं बाहोयुः
 हृत्वी दस्युन् पुर आर्यसीनि तारीत्
 नूनं सा ते प्रति वरं जरिरे
 दुहीयादिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
 शिक्षां स्तोत्रभ्यो मतिं धूमगो नो
 बृहद् वंदेम विदधे सुवीराः
 ॥ १०० ॥ (अ० २१११-२) अर्णोः ६-प्रिष्टुर ।
 विभ्वजितं धनजितं स्वजितं
 सत्राजितं नृजितं उर्धराजितं ।
 अश्वजितं गोजितं अजितं भर
 इन्द्राय सोमं यजतार्य हर्यतम्
 अभिभुवेऽभिमहायं वन्ते
 अर्षाब्हाय सहमानाय वेधसे ।
 त्रुविप्रये यद्रये दुष्टरीतये
 सत्रासाहे नम इन्द्राय घोचत
 सत्रासाहो जंनमशो जंनसुहः
 च्यवनो युध्मो अनु जोर्षमुक्षितः ।
 घृतंचयः सद्युतिर्विशारिण
 इन्द्रस्य घोचं प्र कृतानि धीर्या
 धनानुदो धूमगो दोधंतो घषो
 गर्मीर ऋष्यो अर्समष्टकायः ।

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

रघ्वचोदः श्रयंनो वीद्वितस्पृथुः
 इन्द्रः सुयद्य उपसः स्वर्जनत्
 ॥ ४ ॥
 युवेनं गातुमप्तुरो विविद्विरे
 धियो हिन्वाना उशिर्जो मनीषिणः ।
 अभिस्वरा निपदा गा अंवस्य
 इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत
 ॥ ५ ॥
 इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि
 चित्ति दक्षस्य सुमगत्वमसे ।
 पोषं रयीणामरिधिं तनूनां
 स्वाग्रानं वाचः सुदिनत्वमहाम्
 ॥ ६ ॥

॥ १०१ ॥ (अ० २१०१-४)

१ अष्टिः २-३ अतिशक्तिः, ४ अष्टि आनिनकरी वा ।

त्रिकट्टुकेषु महिषो यवाशिरे त्रिदुर्षमः
 तूपत् सोममपियद् विष्णुना सुतं यथायदात् ।
 स ई ममाद् महि कमं कर्तये महामुघं
 सेनं सधद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥१॥
 अथ त्विपीमां अभ्योजसा किधिं युषामयद्
 आ रोदंसी अपृणदस्य मन्मना प्र वायुधे ।
 अर्षत्तान्यं जडरे प्रेमंरिच्यत्
 ॥ १ ॥ सेनं सधद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥२॥
 साकं जातः क्रतुना साकमोजसा यवशिय
 साकं वृद्धो धीर्यः सासुदिमंधो विचंपणि ।
 दाता राधं स्तुयते काम्यं यम्
 ॥ २ ॥ सेनं सधद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥३॥
 तव त्यप्रये नूतोऽपं इन्द्र प्रथमं पुष्यं
 दिवि प्रवार्यं कृतम् ।
 यद् देवस्य राधमा प्रारिणा अर्षु रिणप्रपः ।
 भुवद् विभ्वमग्यादेवमोजसा
 विदादृजे शतमं तुविदादिपम्
 ॥ ४ ॥
 (१००६)

॥ १०० ॥ (ऋ० २।३०।१-१ ७-८ १०)

[८ पुरांडर्षव्य सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

ऋतं देवार्यं कृण्वते सवित्र
इन्द्रायाहिभ्रे न रमन्त आर्षः ।
अहंरह्योत्पत्तुर्षां
क्रियात्या प्रथमः सर्गं आसाम्
यो वृत्राय सिनमश्रामरिष्यत्
प्र तं जनित्री विदुषं उवाच ।
पयो रदन्तीरनु जोषमस्मै
दिधेदिधे धुन्यो यन्त्यर्थम्
ऊर्षो हस्यादप्यन्तरिक्षे
अर्षा वृत्राय प्र वृधं जंभार ।
मिह धसान उप हीमवृद्रोत्
तिग्यारुधो धनयच्छनुमिन्द्रः
वृहस्पते तपुषाभ्रैव विष्य
वृकंठरमो अस्तुरस्य वीरान् ।
यया जघन्यं धृपता पुरा चिद्
पया जति शर्युमसाकमिन्द्र
अयं क्षिप दिवो अदमानमुषा
येन शर्यु मन्द्रमानो निज्वाः ।
तोत्रम्यं म्नाती तनयस्य भूरैः
अर्षो धधे वृषुतादिन्द्र गोनाम्
न मां तमग्र धमग्रोत तन्द्रन्
न योचाम मा सुनोतेति सोमम् ।
यो मे पूणाद् यो दद् यो त्रियोधाद्
यो मां मुन्यन्मुप गोमिरार्यन्
ररच्यति स्वमसां संविद्धि
मृग्यती धृपती जति शर्युन् ।
एव त्रिच्छर्षेणं त्रिषीयमोत्
इन्द्रो हनि कृपमं शरिष्वनाम्
धृगार्षमि शर्यमिः शरु शरै
शर्यो हधि शरिं ते वर्योनि ।

ज्योगभूवन्ननुधूपितासो

हृत्वो तेषामा भरा नो वसूनि ॥ १० ॥

॥ १०३ ॥ ऋ० २।४१।(१०-१२) गायत्रो ।

इन्द्रो अन्नं मृहद् भय-ममी पदपं चुच्यवत् ।

स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ १० ॥

॥ १ ॥

इन्द्रश्च मूल्याति नो न नः पृश्वाद्यं नदात् ।

भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ११ ॥

॥ २ ॥

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वोभ्यो अर्भयं करत् ।

जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ १२ ॥

॥ १०४ ॥ (ऋ० ३।३०।१-२२

गायिनो विश्वामित्र । त्रिष्टुप् ।

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः

॥ ३ ॥

सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि ।

तितिक्षन्ते अभिशस्ति जनानां

इन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥ १ ॥

॥ ४ ॥

न ते दूरे परमा विद् रजांसि

आ तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम् ।

स्थिराय वृष्णे सर्वना कृतेमा

युक्ता प्रायोणः समिधाने अग्नौ ॥ २ ॥

इन्द्रः सुशिप्रो मधया तर्कशो

॥ ५ ॥

महाव्रतस्तुथिकुर्मिर्कृधावान् ।

यदुमो धा याधितो मर्त्येषु

कः त्या तं धृपम धीर्योणि ॥ ३ ॥

॥ ७ ॥

त्यं हि ध्मा च्याययप्रच्युतानि

एकीं वृत्रा चरसि जिप्रमानः ।

तप धायापृथिवी पर्यतासो

अनुं प्रताय निर्मितेव तस्युः ॥ ४ ॥

॥ ८ ॥

उतामये पुरहृत धर्योमिः

एकीं हृहर्मयदो युगहा सन् ।

इमे चिदिन्द्र रोदसी अणारे

यन् संगृह्णा मघयन् वाशिरित् तं ॥ ५ ॥

प्र सू तं इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् । जहि प्रतीचो अन्नचः पराचो विश्वं सुखं कृणुहि विष्टमस्तु यस्मै धायुर्वद्भ्रा मर्त्याय अर्मक्तं चिद् भजते गेहं सः । भद्रा तं इन्द्र सुमतिर्धृताचीं सहस्रदाना पुरुहूत रातिः सहस्रांशुं पुरुहूत क्षियन्तं अहस्तामिन्द्र सं पिणक् कुणारुम् । अभि वृत्रं वर्धमानं पियांकं अपादमिन्द्र तयसा जघन्थ नि साम्नारिपिरामिन्द्र भूमिं महीमंषारां सर्वेने ससत्य । अस्तंभ्नाद् द्यां वृषभो अन्तरिक्षं अपन्त्यापस्त्वयेह प्रसूताः अलातुणो बल इन्द्र प्रजो गोः पुरा हन्तोभेयमानो व्जार । सुगान् पथो अरुणोश्चिरजे गाः प्रायन् घाणीः पुरुहूतं धर्मन्तीः एको हे चलुमती समीचो इन्द्र आ परौ पृथिवीमुत धाम् । उतान्तरिक्षाद्भि नः समीक इयो इथीः सयुजः शूर याजान् विशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा द्वियेद्वेये हयंभ्यप्रसूताः । सं यदानलघ्वेन आदिदधैः विमोचनं कृणुते तद्य त्वस्य दिदक्षन्त उपसो यामप्रकोः विपस्वत्या माहि चित्रमनीकम् ।	विश्वं जानन्ति महिना यदागाद् इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुषिं महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्तु आमा पृक् चरति विभ्रती गौः । विश्वं स्वाभ्य संभृतमुक्षिर्यायां यत् सीमिन्द्रो अर्धधाद् भोजनाय इन्द्र दृष्टं यामकोशा अभूवन् यक्षार्यं शिक्ष गृणते सर्पिभ्यः । दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निपङ्क्तिणो रिपवो हन्त्वांसः सं घोषः शृण्वेऽवमैरुमिरेः जही न्येष्यशानि तपिष्ठाम् । वृक्षेमघस्ताद् वि रुजा सहस्र जहि रक्षो मघवन् रुन्धर्यस्य उद् बृह रक्षः सहस्रलमिन्द्र वृक्षा मय्यं प्रत्यत्रं दृणीहि । आ कीर्यतः सल्लूकं चकथं ग्रह्णहिपे तपुपिं हेतिमस्य स्वस्त्यै याजिभिश्च प्रणेतेः सं यन्महीरिपं आसत्सि पूर्वीः । रायो वन्तारो गृहतः स्याम असे अस्तु भगं इन्द्र प्रजावान् आ नो भर् भगमिन्द्र द्युमन्तं नि तं द्रेष्णस्यं धीमहि भ्रेके । ऊर्व इव पप्रथे कामो असे तमा वृण वसुपते वसूनाम् इमं कामं मन्दया गोमिर्ध्वैः चन्द्रवंता रायसा प्रप्रथ्य । स्वर्षवो मतिमिस्तुभ्यं चिप्रा इन्द्राय यादः कुशिकासो अमन्	॥ १३ ॥ ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥
--	---	--

महा ते सत्यं वंदिम शक्तीः
 आ वृत्रघ्ने नियतो यन्ति पूर्वाः ।
 महिं स्तोत्रमव आगन्म सुरैः
 अस्माकं सु मघवन् योषि गोपाः ॥ १४ ॥
 महिं श्वेत्तं पुरुश्चन्द्रं विविद्वान्
 आदित् सारिभ्यश्चरथं सैमैरत् ।
 इन्द्रो नृभिरेजनद् दीर्घानः
 साकं सूर्यमुपसं गातुमग्निम् ॥ १५ ॥
 अपाश्चिद्रेप विभ्योऽं दमनाः
 प्र सधोर्चीरसृजद् विश्वश्चन्द्राः ।
 मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैः
 द्युमिहिन्वत्युक्तामिधनुनीः ॥ १६ ॥
 अतुं कृष्णे वसुधितौ जिहाते
 उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे ।
 परि यत् ते महिमानं वृजध्वै
 सत्याय इन्द्र काम्यां ऋजिव्याः ॥ १७ ॥
 पतिर्भव वृत्रहन्तसूनतानां
 गिरां विश्वार्यवृपभो वंयोधाः ।
 आ नो गहि सत्येभिः शिवेभिः
 मृहान् महीभिर्हृतिभिः सरण्यन् ॥ १८ ॥
 तमद्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्
 नव्यै कृष्णोमि सन्यसे पुराजाम् ।
 द्रुहो वि याहि बहुला अर्देवीः
 स्वश्च नो मघवन्सातये धाः ॥ १९ ॥
 मिहः पावकाः प्रतेता अभूवन्
 स्यास्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।
 इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिपो
 मक्षुर्मक्षु कृणुहि गोजितो नः ॥ २० ॥
 अर्देदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा
 अन्तः कृष्णो अर्दयैर्धार्मभिर्गात् ।

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

॥ १९ ॥

॥ २० ॥

प्र सुनृता दिशमानं ऋतेन
 दुरश्च विभ्वां अवृणोदप स्वाः ॥ २१ ॥
 शुनं हुवेम मघवानामिन्द्रं
 अस्मिन् भरे नृतमं वाजंसातौ ।
 शृण्वन्तमुग्रमृतये समस्तु
 प्रन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ २२ ॥
 ॥ १०६ ॥ (ऋ० ३१११२-१७)
 इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं
 माध्व्यदिनें सर्वनं चारु यत् ते ।
 प्रप्रुथ्या शिषे मघवद्रुजीपिन्
 विमुच्या हरी इह मांदयस्व ॥ २ ॥
 गवांशिरं मग्धिनमिन्द्र शुक्रं
 पिवा सोमं ररिमा ते मदाय ।
 ब्रह्मकृता मारतेना गुणेन
 सजोपां रुद्रेस्तुपदा वृपस्व ॥ २ ॥
 ये ते शुष्मं ये तविपीमवर्धन्
 अर्धन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः ।
 माध्व्यदिनें सर्वने वज्रहस्त
 पिवा रुद्रेभिः सर्गणः सुशिप्र ॥ ३ ॥
 त इन्वस्व मधुमद् विभिप्र
 इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन् ।
 येभिर्वृत्रस्यैपितो विवेदं
 अमर्मणो मन्व्यमानस्य मर्म ॥ ४ ॥
 मनुष्वदिन्द्रं सर्वनं जुराणः
 पिवा सोमं शश्वते धीर्याय ।
 स आ वंषत्व्य हर्यश्व यज्ञैः
 संरण्युमिरपो अर्णां सिसरि ॥ ५ ॥
 त्वमपो यद्वं वृत्रं जंघन्वां
 अत्यां इव प्रावृजः सतेवाजौ ।
 शयानमिन्द्र चरता पृधेन
 वद्विवासं परि देवीरदेवम् ॥ ६ ॥

यजाम इधमसा वृद्धमिन्द्रं
 वृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
 यस्य प्रिये ममर्तुर्यद्वियस्य
 न रोदसी महिमानं ममाते
 इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुषि
 प्रतानि देवा न मिनान्ति विश्वे ।
 दाधार यः पृथिवीं धामुतेमां
 जजान सूर्यमपसं सुदंसाः
 अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं
 सुघो यज्जातो अपियो ह सोमम् ।
 न धाव इन्द्र तवसस्त वोजो
 नाहा न मासाः शरदो वरन्त
 त्वं सुघो अपियो जात इन्द्र
 मदाय सोमं परमे व्योमन् ।
 यद् धारापृथिवी आविधेदीः
 अयोमयः पृथ्व्यः कारुघायाः
 अद्भ्राहि परिदारानमर्ष
 ओजायमानं तुविजात तव्यान् ।
 न ते महित्वमनु भूदघ द्यौः
 यदन्यया स्विह्याः क्षामयस्याः
 यज्ञो हि ते इन्द्र यधेनो भूद्
 उन प्रियः सुतसोमो मियेधेः ।
 यज्ञेन यजमय यज्ञियः मन्
 यजन्ते यजमिहव्यं आपत्
 यज्ञेनेन्द्रमयसा र्षभे अर्याक्
 एनं सत्ताय नव्यने ययृत्याम् ।
 यः स्नामिमियापुधे पृथ्वेभिः
 यो मण्यमोनेन्द्र नूतनेभिः
 वियेय यन्मा धियजा जजान
 त्वयं पुत्र पायादिन्द्रमर्षः ।

अंहसो ययं पीपरव् यथा नो
 नावेव यातमुभये हवन्ते
 आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा
 सेकेव कोशं सिसिचे पियद्यै ।
 समु प्रिया आववृषन् मदाय
 प्रदक्षिणिदभि सोमांस इन्द्रम्
 न त्वां गमीरः पुंरुहृत् सिन्धुः
 नाद्रयः परि पन्तो वरन्त ।
 इत्या सखिभ्य इपितो यदिन्द्र
 आहृहं चिदरुजो गर्यमुर्धम्
 शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रं
 अस्मिन् भरे नूतमं वाजसातौ ।
 दृण्वन्तमुप्रमतेयं समत्सु
 प्रन्तं वृत्राणि संजितं धर्नानाम्
 ॥ १०७ ॥ (अ० ३।३।६-७)
 इन्द्रो असां अरदद् वज्रयाहुः
 अपाहन् वृत्रं परिधि नदीनाम् ।
 देवोऽनयत् सविता सुपाणिः
 तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः
 प्रवाच्यं शश्वधा धीये तत्
 इन्द्रस्य कर्म यदाहि विवृक्षत् ।
 वि वज्रेण परिपदौ जघान
 आयन्नापोऽयंनमिच्छमानाः
 ॥ १०८ ॥ (अ० ३।३।१-११)
 इन्द्रः पुमिदातिरुद् दासमर्कैः
 यिदद् संसुदंयमानो वि शार्नुन् ।
 अहंजतस्तन्यां चावृषानो
 भूरिदात्र आपृणद् रोदसी उमे
 मसस्य ते तयिपस्य प्र जूर्ति
 इयमिं याचममृताय भूर्गन् ।
 इन्द्रं क्षितीनामसि मानुषीणां
 यिदां दीयीनामुत पृथंधायां

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

(१०९)

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्षणीतिः
 प्र मायिनाममिनाद् वर्षणीतिः ।
 अहन् व्यंसमशुशुघ्वनेनपु
 आविधेनां अरुणोद् रम्याणाम्
 इन्द्रः स्वर्पा जनयन्नहानि
 जिगायोशिग्मिः पृतना अमिष्टिः ।
 प्रारोचयन्मनवे केतुमद्वा
 अर्षिन्द्रज्योतिर्षुद्वते रणाय
 इन्द्रस्तुजो वरहेणा आ विवेश
 नृवद् दधानो नयो पुरुणि ।
 अर्चैतयद् धियं इमा जरिवे
 प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम्
 महो महानि पनयन्त्यस्य
 इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुणि ।
 पूजनैर्न वृजिनान्तं पिपेप
 मायाभिर्दस्यैरभिर्मूल्योजाः
 युधेन्द्रो मद्वा वरिवेशकार
 देवेभ्यः सत्पतिध्वर्षणिप्राः ।
 विवस्वतः सदर्ने अस्य तानि
 विप्रा उक्थेभिः कृचयो गृणन्ति
 सप्रासाहं वरेण्यं सहोदां
 संस्रवांसं स्वरेपध्वं देवीः ।
 ससान यः पृथिवीं घामुतेमां
 इन्द्रं मवन्त्यनु धीरणासः
 ससानात्प्यो उत सूर्ये ससान
 इन्द्रः ससान पुरुमोजसं गाम् ।
 हिरण्ययमुत भोगं ससान
 हृत्वी दस्युन् प्रार्थं वर्णमावत्
 इन्द्र ओषधीरसनोदहानि
 घनस्पतीरसनोदन्तारिक्षम् ।

विमेदं वलं तुनुदे विवाचो
 अथामवद् दमितामिकृतनाम्
 ॥ १० ॥
 शुनं हुचेम मृघवानमिन्द्रं
 अस्मिन् अरे नृतमं वाजसातौ ।
 ॥ ३ ॥
 शृण्वन्तमुग्रमृतये समस्तु
 मन्तै वृत्राणि संजितं धर्नानाम्
 ॥ ११ ॥
 ॥ १०९ ॥ ऋ० २।३।१।१-११)
 ॥ ४ ॥ तिष्ठा हरी स्य आ युज्यमाना
 याहि वायुर्न नियुतो जो अचड ।
 पिवास्वन्धो अभिर्दृष्टो असे
 इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय
 ॥ १ ॥
 ॥ ५ ॥ उपाजिरा पुंरहुताय सती
 हरी रर्यस्य घूर्णा युनज्मि ।
 द्रवद् यया संभृतं विश्वतश्चित्
 उपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम्
 ॥ २ ॥
 ॥ ६ ॥ उपो नयस्व वृषणा तपुष्पा
 उतेमव त्वं वृषम स्वधावः ।
 प्रसेतामभ्या वि मुचेह शोणा
 दिवेदिवे सहशीरादि घानाः
 ॥ ३ ॥
 ॥ ७ ॥ ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि
 हरी सखाया सघमाद आशु ।
 स्थिरं रयं सुखमिन्द्राधितिष्टन्
 प्रजानन् विद्वो उप याहि सोमम्
 ॥ ४ ॥
 ॥ ८ ॥ मा ते हरी वृषणा शीतपृष्ठा
 नि रीरमन् यजमानासो अन्ये
 अत्यापाहि शश्वतो वयं ते
 अरे सुतेभिः वृणवाम सोमैः
 ॥ ५ ॥
 ॥ ९ ॥ तजाय सोमस्त्वमेह्यर्थाद्
 शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि ।
 अस्मिन् यमे वरिष्या निपया
 दधिष्येमं जठर इन्दुमिन्द्र
 ॥ ६ ॥

स्त्रीणं ते वहिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अर्चते ते हरिभ्याम् । तदौकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हृषीपि इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमकन । तस्यागत्या सुमना ऋष्य पाहि प्रजानन् विद्वान् पथ्याः अनु स्वाः यो आर्मजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामवर्धधर्मवन् गणस्ते । तेभिरेतं सजोषा वाचशानोः अग्नेः पिप जिह्वया सोममिन्द्र इन्द्र पिपं स्वधया चित् सुतस्य अग्नेर्गो पाहि जिह्वया यजत्र । मन्वयोर्वा प्रयतं शक्र हस्तात् होतृया यत्र हृषियो जुपस्व शुनं हृषेम मघवान्मिन्द्र असिन् भरे नृतमं वाजंसातौ । दाण्यन्तमुप्रमृतये समस्तु प्रनन् वृत्रापि सजित धनानाम् ॥ ११० ॥ (अ० ३।३।१-११) [१० मोर आह्वारः ।] इमाम् पु प्रभृतिं सानये धाः शभ्यच्छभ्यदृतिमिवाद्मानः । सुनेसुने वापृधे पधेनेभिः याः बर्मेभिर्महद्भिः सुश्रोणे भूत् इन्द्राप सोमाः प्रदियो विद्वाना अमुष्येभिर्गणेषां विद्यायाः । प्रयम्यमानान् प्रति वृष्टमाप इन्द्र पिपं पृषधृतस्य वृष्णाः पिपा पधेस्व तपं पा श्रुताप इन्द्र सोमातः प्रथमा उनेमे ।	यथापिवः पूर्वो इन्द्र सोमो एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् महो अर्मत्रो वृजनै विरप्शीः उग्रं शवः पत्यते धृण्वोजः । नाह विव्याच पृथिवी चनेनं यत् सोमालो हयैश्वमर्मन्दन् महो उग्रो वावृधे धीर्योय सुमाचक्रे वृषभः काव्येन । इन्द्रो भर्गो वाजदा अस्य गावः प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वाः प्र यत् सिन्धवः प्रसवं यथायन् षापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः । अतश्चिदिन्द्रः सदैसो वरीयान् यदा सोमः पृणति दुग्धो अंशुः समुद्रेण सिन्धवो यादमानाः । इन्द्राय सोमं सुपुत भरन्तः । अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भ्रिचैः मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः हृदा इव कुक्षयः सोमधानाः समी विव्याच सर्वना पुनर्णि । अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश पृथं जघ्न्यो अंवृणीत् सोमम् आ तू भर् माकिरेतत् परि छाद् विषा दि त्वा वसुपतिं पसूनाम् । इन्द्र यत् ते मादिन् दग्म अस्यसभ्य तदर्थय्य प्र यन्धि अस्मे प्र यन्धि मघयद्रुजीपिन् इन्द्रे रायो विभ्यपोरस्य भूरे । अस्मे शत शरदो जीर्मे धा अस्मे धीराच्छभ्येन इन्द्र दिभिन्	॥ ३ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ४ ॥ ॥ ८ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥
---	---	--

शुनं हुवेम मघधानमिन्द्रं
 अस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
 शृण्वन्तमुग्रमृतये समत्सु
 झन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥
 ॥ १११ ॥ (ऋ० ३।३।७१-११) गायत्री, ११ अउटुः ।
 वार्षहत्याय शर्वसे पृतनापाहाय च ।
 इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥
 अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो ।
 इन्द्रं कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥
 नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे ।
 इन्द्राभिमातिपाहो ॥ ३ ॥
 पुरुपुतस्य धामभिः ॥ शतेन महयामसि ।
 इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥
 इन्द्रं वृत्राय हन्तवे ॥ पुरुहृतमुपं ध्रुवे ।
 भरंपु वाजसातये ॥ ५ ॥
 वाजेषु सासुहिर्भेषु त्वामीमहे शतक्रतो ।
 इन्द्रं वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥
 ध्रुवेषु पृतनाज्ये पृतसुतुर्षु अवे सु च ।
 इन्द्र सास्वाभिमातिपु ॥ ७ ॥
 शुष्मिन्तमं न ऊतये धृञ्चिर्न पाहिं जारुचिम ।
 इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ ८ ॥
 इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनैषु पञ्चसु ।
 इन्द्र तानि तु आ वृणे ॥ ९ ॥
 अर्गसिन्द्र ध्रुवां वृहद् ध्रुञ्चं दधिष्णु दुष्टरम् ।
 उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ ११ ॥
 अर्वाघतो न आ शु-हायो शक्र परावतः ।
 उ लोमो यस्तं अद्रिषु इन्द्रेह तत आ गहिं ॥ ११ ॥
 ॥ ११० ॥ (ऋ० ३।३।१-१०)
 [प्रकाशसिर्षमिषः, धञ्च पतिशच्यो वा, तातुमावपि वा
 गायत्री विश्वाभिषो वा ।] विष्टुप् ।
 अभि तप्रेय दीधया मनीषां
 अथो न याजी सुधरो जिहानः ।

अभि प्रियाणि मर्मशत पराणि
 कवीरिच्छामि सुहरो सुमेधाः ॥ १ ॥
 इनोत पृच्छु जनिमा कवीनां
 मनोधृतः सुहृतस्तक्षत धाम् ।
 इमा उं ते प्रण्योः वर्धमाना
 मनोवाता अध तु धर्मीणि गम् ॥ २ ॥
 नि यीमिदत्र गुहा दधाना
 उत क्षत्राय रोदसी समञ्जम् ।
 सं मात्राभिर्ममिरे वेमुर्वा
 अन्तर्मही समृते धायमे धुः ॥ ३ ॥
 आतिष्टन्तं परि विश्वे अभूपन्
 ध्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
 महत् तद् वृष्णो असुरस्य नाम
 आ विश्वरूपो अमृतानि तस्यौ ॥ ४ ॥
 असुत पूर्वा वृष्णो ज्यायान्
 इमा अस्य शुक्धः सन्ति पूर्वाः ।
 दिवो नपाता निदधस्य श्रीभिः
 क्षत्र राजाना प्रदिवो दधये ॥ ५ ॥
 श्रीणि राजाना विदये पुरुणि
 परि विश्वानि भूपथः सदांसि ।
 अपश्यमन् मनसा जगन्वान्
 धृते गन्धर्वा अपि वायुकेदान् ॥ ६ ॥
 तदिन्द्रस्य वृषभस्य धेनोः
 आ नामभिर्ममिरे सक्थ्यं गोः ।
 अन्येन्द्रस्य सुये वसाना
 नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥ ७ ॥
 तदिन्द्रस्य सवितुर्नर्वमं
 द्विरुष्ययीममिति यामानोधेत् ।
 आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्द्रे
 अर्पीय योपा जनिमानि धये ॥ ८ ॥

युवं प्रलस्य साधयो महो यद्
द्वी स्वस्तिः परं णः स्यातम् ।

गोपार्जिह्वस्य तस्युपो विरूपा
विश्वे पदयन्ति मायिनः कृतानि

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रं
अस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमृतये समत्सु
मन्तं वृत्राणि संजितं धर्नानाम्

॥ ११३ ॥ (ऋ० ३।३९।१-९)

इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमाना
अच्छा पति स्तोमं तथा जिगाति ।

या जागृविर्विदधे शस्यमान
इन्द्र यत् ते जायते विद्धि तस्य

द्वियश्चिदा पृथ्या जायमाना
वि जागृविर्विदधे शस्यमाना ।

भद्रा यत्राप्यजुना वसाना
मेयमस्मे संनजा पित्या धीः

यमा चिदत्रं यमसूरत
जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्यात् ।

यर्ष्वि जाता मिथुना संचेते
तमोहना तपुपो वृष्ट पता

नर्विरेयां निन्द्रिता मलयु
ये अश्मार्क पितरो गोषु योधाः ।

इन्द्रं ण्यां रंहिता माहिनायान्
उद् गोत्राणि मरुते क्षंसनायान्

मर्णा ह यत्र नर्विगमिनैर्यग्यैः
अभिश्वा मर्यगिणां धनुमन् ।

मर्यं नदिन्द्रो हृदासिर्दशैषैः
मर्यं विपेद् नमैति द्वियग्नम्

इन्द्रो मधु मंभृतमृष्टिपापां
पृष्ट विधिं नानुवृष्टो गोः ।

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

गुहा हितं गुह्यं गुल्हमप्सु
हस्तै दधे दक्षिणे दक्षिणावान्

ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्
आरे स्याम दुरितादभीकै ।

इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध
जुपस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः

ज्योतिर्वृणाय रोदसी अनु प्याद्
आरे स्याम दुरितस्य भूरैः ।

भूरि चिद्धि तुजतो मर्यस्य
सुपारासौ वसवो वर्हणावत्

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रं
अस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमृतये समत्सु
मन्तं वृत्राणि संजितं धर्नानाम्

॥ ११४ ॥ (ऋ० ३।४०।१-९) गायत्री ।

इन्द्रं त्वा वृषमं वयं सुते सोमं हवामहे ।
स पाहि मध्वो अर्घसः

इन्द्रं क्रतुविदं सुतं सोमं हर्यं पुरुष्टुत ।
पिवा धूपस्य तार्त्पिम्

इन्द्रं प्र णो धितायानं यशं विश्वेभिर्देवेभिः ।
निर स्तवान विशपते

इन्द्रं सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते ।
क्षयं चन्द्रास इन्द्रवः

दधिष्वा जुष्टं सुतं सोममिन्द्रं परेण्यम् ।
तवं घृक्षास इन्द्रवः

गिर्वेणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।
इन्द्रं त्यादातमिद् यदाः

अभि घृष्टानि यनिन् इन्द्रं सचन्ते अक्षिता ।
पीत्वी सोमस्य यापृधे

अर्वायतीं न भा गहि पत्यपतध पृष्टदन् ।
इमा जुपस्य नो गिरः

यदन्तरा परायत—मर्षावर्तं च हृयसे ।
 इन्द्रेह तत् आ गृहि ॥ ९ ॥
 ॥ ११५ ॥ (ऋ० ३।४१।१-९)
 आ तू न इन्द्र मर्ष्य—गुवानः सोमपीतये ।
 हरिभ्यां याहाद्रियः ॥ १ ॥
 सत्तो होता न ऋत्विष्य—स्तास्तरे वर्हिरानुपक् ।
 अयुञ्जन् प्रातरर्द्रयः ॥ २ ॥
 इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ वर्हिः सीद ।
 धीहि शूर पुरोळाराम् ॥ ३ ॥
 राग्नि सर्वनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन ।
 उपयेष्विन्द्र गिर्वेणः ॥ ४ ॥
 मृतयः सोमपामुहं रिहन्ति शर्वस्यस्पातिम् ।
 इन्द्रं घृतं न मात्रं ॥ ५ ॥
 स मन्दस्या ह्यन्धलो राघसे तन्यां महे ।
 न स्तोतारं निदे करः ॥ ६ ॥
 घ्यामिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे ।
 उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥
 मारे अस्मद् वि मुमुञ्चो हरिप्रियार्वाङ् वर्हि ।
 इन्द्रं स्वघायो मत्स्वेह ॥ ८ ॥
 अर्षाञ्च त्वा सुखे रथे यहतामिन्द्र केशिना ।
 घृतस्नू वर्हिसासदे ॥ ९ ॥
 ॥ ११६ ॥ (ऋ० ३।४१।१-९)
 उपं नः सुतमा गृहि सोममिन्द्र गवांशिरम् ।
 हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १ ॥
 तमिन्द्र मद्रमा गृहि वर्हिःष्ठां प्रार्षभिः सुतम् ।
 कुयिन्वस्य तुष्पार्वः ॥ २ ॥
 इन्द्रमित्या गिरो ममा—ऽच्छांगुरिपिता इतः ।
 आपृते सोमपीतये ॥ ३ ॥
 इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे ।
 उपयेभिः कुयिन्नगमत् ॥ ४ ॥
 इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्य दातक्रतो ।
 अर्दरे वाजिनोयसो ॥ ५ ॥

विश्रा हि त्वा धनंजय वाजेषु दधूपं कवे ।
 अर्षां ते सुन्नमीमहे ॥ ६ ॥
 इममिन्द्र गवांशिरं यवांशिरं च नः पिय ।
 आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥
 तुभ्येदिन्द्र स्व भोभ्येऽ सोमं चोदामि पीतये ।
 एष रान्तु ते हृदि ॥ ८ ॥
 त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे ।
 कुशिकासो अवस्यवः ॥ ९ ॥
 ॥ ११७ ॥ (ऋ० ३।४१।१-८) विष्णु ।
 आ याह्याङ्गुप वन्धुरेष्ठाः
 तवेदनुं प्रदिष्यः सोमपेयम् ।
 प्रिया सखाया वि मुचोषं वर्हिः
 त्वामिमे ह्य्यवाहो हवन्ते ॥ १ ॥
 आ याहि पूर्वोरतिं चर्षणीरौ
 अयं आशिष उषं नो हरिभ्याम् ।
 इमा हि त्वां मृतयः स्तोमंतष्टा
 इन्द्र हवन्ते सत्यं जुषाणाः ॥ २ ॥
 आ नो यज्ञं नमोवृषं सजोषा
 इन्द्रं देव हरिभियांहि तुर्यम् ।
 अहं हि त्वां मतिभिर्जोहवीमि
 घृतप्रयाः सधमादे मर्धनाम् ॥ ३ ॥
 आ च त्वामेता वरणा यहातो
 हृषि सखाया सुधुषु म्यर्ज्ञा ।
 धानावादिन्द्रः सर्वनं जुषाणाः
 सखा सत्युः शृणुयद् घन्दनानि ॥ ४ ॥
 कुयिन्मा गोषो करसे जनस्य
 कुविद् राजानं मघयन्नृजीपिन् ।
 कुयिन्म ऋषिं पपिषांसे सुतस्य
 कुयिन्मे यस्थो अमृतस्य दिक्षाः ॥ ५ ॥
 आ त्वां यदन्तो हरयो युजाना
 अर्षाग्निन्द्र सधमादौ यदन्तु ।
 प्र ये द्विता दिष अन्नयाताः
 मसंमृष्टासो वृषमस्य मुराः ॥ ६ ॥

इन्द्र पिव वृषधृतस्य वृष्ण
 आ यं तं द्येन उद्गते जभार ।
 यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीः
 यस्य मदे अप गोत्रा ववथे ॥ ७ ॥
 शुनं हुवेम मधवानमिन्द्रं
 अस्मिन् मरे नृतमं वाजसातो ।
 धृण्वन्तमप्रमृतये समत्सु
 प्रन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ८ ॥
 ॥ ११८ ॥ (ऋ० ३।४१।१-५) बृहती ।
 ध्ययं तं अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः ।
 जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ गृहि
 आ तिष्ठ हरितं रथम् ॥ १ ॥
 हर्यधुपसमर्चयः सूर्यं हर्यत्रोचयः ।
 विद्वांश्चिकित्वान् हर्यश्व वर्धसु
 इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥ २ ॥
 घामिन्द्रो हरिघायसं पृथिवीं हरिर्वपसम् ।
 अघारयद्दरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् ३
 जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम् ।
 हर्यश्वो हरितं धत्त आर्युध—मा वज्रं वाहोर्हरिम् ४
 इन्द्रो हर्यन्तमहुतं वज्रं शुक्रैरभीवृतम् ।
 अर्षावृणोद्धरिभिर्द्विभिः सुतम्
 उद् गा हरिभिराजत ॥ ५ ॥
 ॥ ११९ ॥ (ऋ० ३।४।१-५)
 आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभि—र्याहि मयूररोमभिः ।
 मा त्या के चिप्रि यमन्वि न पादिनो
 अति धन्वन् तां ईहि ॥ १ ॥
 वृत्रघातो घलेगजः पुरां दमो अपामजः ।
 म्याता रथस्य हयोर्भिस्युर
 इन्द्रो दृच्छा चिदाग्न ॥ २ ॥
 गम्भीरो उद्घोरिषि पत्तं पुष्यसि गा इव ।
 प्र सुगोपा यवसं धेनयो यथा
 हृदं वृत्त्या रषाणात् ॥ ३ ॥

आ नस्तुजं रथिं भुरां—ऽशुं न प्रतिजानते ।
 वृक्षं पकं फलमृद्भिं धनुही—न्द्रं संपारणं वरु ॥४
 स्वयुरिन्द्र स्वराजसि सार्दिष्टिः स्वयंशस्तरः ।
 स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत
 भवां नः सुधर्वस्तमः ॥ ५ ॥
 ॥ १२० ॥ (ऋ० ३।४६।१-५) त्रिष्टुप् ।
 युष्मस्यं ते वृषमस्यं स्वराजं
 उग्रस्य यूनः स्थविरस्य वृष्यैः ।
 अजूर्यतो वृजिर्णो वीर्यांशुणि
 इन्द्रं धृतस्यं महतो महानि ॥ १ ॥
 महौ असि महिष वृष्णयैभिः
 धनस्पृदुप्र सहमानो अन्यान् ।
 एको विश्वस्य भुवनस्य राज्ञा
 स योधया च क्षयया च जनान् ॥ २ ॥
 प्र मात्रामी रिरिचे रोचमानः
 प्र देवेभिर्विदवतो अप्रतीतः ।
 प्र मन्मनां दिव इन्द्रः पृथिव्याः
 प्रोरोर्महो अन्तारिक्षाहजीपी ॥ ३ ॥
 उरुं गभीरं जनुषाम्युप्रं
 विदवव्यचसमवतं मतीनाम् ।
 इन्द्रं सोमांसः प्रदिवि सुतासः
 समुद्रं न स्रवत् आ विरान्ति ॥ ४ ॥
 यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा
 गर्भं न माता विभ्रतस्त्वाया ।
 तं तं हिन्वन्ति तमुं ते सृजन्ति
 अच्यर्वयो वृषम पातवा उं ॥ ५ ॥
 ॥ १२१ ॥ (ऋ० ३।४७।१-५)
 मृत्वीं इन्द्र वृषभो रणांय
 पिना सोममनुष्यं मदाय ।
 आ सिञ्चस्य जड्रे मर्ष्य उर्मि
 त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥ १ ॥

सुजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः । सोमं पिव वृत्रहा शूर विद्वान् । जहि शत्रुरप मूर्धो रुद्रस्व अथामयं कृणुहि विश्वतो नः । उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोमं इन्द्र देवेभिः सखिभिः सुत नः । यो वामजो मरुतो ये त्वा अन्नहन् धूममर्द्धुस्तुभ्यमोजः ये त्वाहि हत्ये मघवन्नवर्धेन् ये शाश्वरे हरिवो ये गर्विष्ठौ । ये त्वां नूनमनुमर्दन्ति चिप्राः पिवेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः मरुत्सन्तं घृपमं वावृथानं अकवारि दिव्यं शासामिन्द्रम् । विश्वासाहमवसे नूतनायु उग्रं संहोदामिह ते हुवेम ॥ २१ ॥ (ऋ० ३।४८।१-५)	त्वष्टारमिन्द्रो जनुगामिभूय आमुष्या सोममपिवञ्चामुषुं शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रं अस्मिन् भरे नूतमं वार्जसातौ । शृण्वन्तमुग्रमृतये समत्सु भ्रन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ २२ ॥ (ऋ० ३।४९।७-५) शंसा महामिन्द्रं यस्मिन् विश्वा आ हृथयः सोमपाः काममन्यन् । यं सुकृतुं धिपणे विश्वतुष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः यं तु नाकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नूतमं हरिष्टाम् । इतमः सत्वमियो हं शूपैः पृथुञ्जया अमिनादायुर्दस्याः सदावा पृत्सु तरुणिर्नवी व्यानदी रोर्दसी मेहर्नावान् । भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहयो वयोधाः धृता दिवो रजसस्पष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियत्वान् । क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विमंका भागं धिपणेषु वार्जम् शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रं अस्मिन् भरे नूतमं वार्जसातौ । शृण्वन्तमुग्रमृतये समत्सु भ्रन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ २३ ॥ (ऋ० ३।५०।१-५) इन्द्रः स्वाहा पितृ यस्य सोमं आगत्या तुष्टो घृपभो मरुत्वान् । ओरुथ्यचाः पृणतामेभिरदुः आस्य हविस्तन्वयुः काममृष्याः	॥ ४ ॥ ॥ २ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ २ ॥ ॥ १ ॥ ॥ ४ ॥ ॥ २ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ३ ॥ ॥ १ ॥
--	--	---

आ ते सपर्यु ज्वसे युनग्नि
 ययोरनुं प्रदिवः श्रुष्टिमारवः ।
 इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र
 पिया त्वस्य सुपुतस्य चारोः
 गोभिर्मिभिश्चुं दधिरे सुपारं
 इन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धार्यसे गृणानाः ।
 मन्दानः सोमं पपिषां ऋजीपिन्
 समसम्यं पुरुधा गा इपण्य
 इमं कामं मन्द्या गोभिरश्वैः
 चन्द्रवता राधेसा प्रप्रयथ ।
 स्यर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विश्वा
 इन्द्राय वाहैः कुशिकासौ अरुन्
 शुनं हुवेम मघवानिमिन्द्रं
 अस्मिन् भरे नृतमं वाजेसातौ ।
 शृण्वन्तमुप्रमूर्तेयं सुमत्सु
 प्रन्तं घृनाणि संजितं घनानाम्

॥ ६५ ॥ (ऋ० ३।१।१-१२)

त्रिष्टुप्, १-३ जगती, १०-१२ गायत्री ।

चर्यणीघृतं मघवानमुक्थ्यं
 इन्द्रं गिरो वृहतीभ्यंनूपत ।
 यायूधानं पुरुहूतं सुवृकिमिः
 अमर्त्यं जर्माणं दिवेदिवे
 शतशतुमर्णये शाकिनं नरं
 गिरो मं इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः ।
 वाज्रगर्भिं पूमिन्द्रे त्वीमिन्नुरं
 धामसाचममियाचं स्वविदंम्
 आक्रे वसोर्जिता पनस्यते
 अनेदमः स्तुम इन्द्रो दुवस्यति ।
 त्रियस्यतुः सदन आ हि पिम्रिये
 संश्रासाहममिमातिहनं स्तुहि
 नृणामुं त्या नृतमं गीभिर्दुर्भ्यः
 अमि प्र धीरमर्चता स्यार्धः ।

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

सं सहेते पुरुमापो जिहीते
 नमो अस्य प्रदिव एक इदो ॥ ४ ॥
 पृथीरस्य निष्पिषो मर्त्येषु
 पुरु वसूनि पृथिवी विभति ।
 इन्द्राय घाय ओपधीरुतापो
 रयिं रश्नन्ति जीरयो घनानि ॥ ५ ॥
 तुभ्यं ब्रह्मणि गिर इन्द्र तुभ्यं
 सना दधिरे हरियो जुगस्यं ।
 योभ्यामुपिरवसो नूतनस्य
 सरो वसो जरित्त्वयो वयो धाः ॥ ६ ॥
 इन्द्रं मरुत्व इह पाहि सोमं
 यया शार्याते अपिषः सुतस्यं ।
 तव प्रणीती तव शर शर्मन्
 आ विधासन्ति क्वयः सुयथाः ॥ ७ ॥
 स वावशान इह पाहि सोमं
 मरुद्गिरिन्द्र साविमिः सुतं नः ।
 जातं यत् त्वा परि देवा अमृपन्
 महे भारय पुरुहूत विश्वे ॥ ८ ॥
 अमर्त्यं मरुत औपिरेपो
 अमन्दाधिन्द्रमनु दातिवाराः ।
 तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः
 सुतं सोमं दाशुयः स्वे सुधस्यं ॥ ९ ॥
 इदं हान्वोजसा सुतं राधानां पते ।
 पिना त्वस्य गिर्वणः ॥ १० ॥
 यस्ते अनु स्यधामसत् सुते नि यच्छ तन्वम् ।
 स त्वा ममन्तु सोम्यम् ॥ ११ ॥
 प्र ते अश्रोत कुश्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।
 प्र वाह शर राधसे ॥ १२ ॥
 ॥ १०६ ॥ (ऋ० ३।५०।१-८)
 त्रिष्टुप्, १-४ गायत्री, ६ जगती ।
 धानार्चन्तं करुभिर्गो अपुपवन्तमुपियनम् ।
 इन्द्रं प्रातर्जुपस्व नः ॥ १ ॥

पुरोळाशं पचस्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च ।
 तुभ्यं हृव्यानि सिन्नते ॥ २ ॥
 पुरोळाशं च नो घसो ज्ञोपर्यासे गिरश्च नः ।
 वधुपरिव योषणाम् ॥ ३ ॥
 पुरोळाशं सनश्चत प्रातःसावे जुषस्व नः ।
 इन्द्रं कतुहिं तं बृहन् ॥ ४ ॥
 मार्घ्यदिनस्य सर्वनस्य धानाः
 पुरोळाशमिन्द्रं कृष्वेह चारुम् ।
 प्र यत् स्तोता जरिता तृण्यैयो
 वृषायमाणं उषं गीर्मिरेदं ॥ ५ ॥
 तृतीयं धानाः सर्वने पुरुषुत
 पुरोळाशमाहुतं मामहस्व नः ।
 श्रुमुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे
 प्रयस्वन्त उषं शिक्षेम धीतिभिः ॥ ६ ॥
 पुषण्वते ते चक्रमा कर्मम्
 हरिवते ह्यैश्वर्या धानाः ।
 अपुषमंदि सगणो मरुद्भिः
 सोमं पिव बृनुहा शरं विद्वान् ॥ ७ ॥
 प्रति धाना मरुत तूर्यमसै
 पुरोळाशं वीरतमाय नृणाम् ।
 दिवेदिवे सदशीरिन्द्रं तुभ्यं
 वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय घृष्णो ॥ ८ ॥
 ॥ १०७ ॥ (ऋ० ३।५३।०-१३)
 त्रिष्पु, १० ऋगती, १० अनुष्टुप्, १३ गायत्री ।
 तिष्ठा सु कं मघवन् मा परा गाः
 सोमस्य जु त्वा सुपुतस्य यक्षि ।
 पितुर्न पुत्रः सिचुमा रंभे त
 इन्द्रं स्वादिष्ट्या गिरा शंवीवः ॥ २ ॥
 शंसावाप्ययो प्रति मे शृणीहि
 इन्द्राय वाहः रुणवाय जुष्टम् ।
 एदं यर्हिर्यजमानस्य सौद
 वधा च नूदुष्यमिन्द्राय शस्तम् ॥ ३ ॥

जायेदस्तं मघवन्सेदु योनिः
 तदित् त्वा युक्ता ह्ययो बहन्तु ।
 यदा कदा च सुनवांम सोमं
 अग्निद्रां दूतो घन्वात्यच्छं ॥ ४ ॥
 परां याहि मघवन्ना चं याहि
 इन्द्रं भ्रातरुमयनां ते अर्थम् ।
 यत्रा रथस्य बृहतो निधानं
 विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥ ५ ॥
 अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि
 कल्याणीजाया सुरणं गृहे तं ।
 यत्रा रथस्य बृहतो निधानं
 विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥ ६ ॥
 इमे भोजा अङ्गिरसो विरुपा
 दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
 विश्वामित्राय ददतो मघानि
 सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥ ७ ॥
 रूपरूपं मघवां योमवीति
 मायाः कृष्वानस्तन्नें परि स्वाम् ।
 त्रियंद् दिवः परि मुहुतमागात्
 स्वर्मन्त्रैर्नृत्तुपा ऋतावा ॥ ८ ॥
 महो अर्पिदेवजा देवजुतो
 अस्तम्यात् सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः ।
 विश्वामित्रो यदवहत् सुदासं
 अप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥ ९ ॥
 हंसा इव रुणुय खोक्रुमर्दिभिः
 मर्दन्तो गीर्मिरेधरे सुते सर्वा ।
 देवेभिर्विप्रा ऋपयो नृचक्षसो
 वि पिबध्वं कुशिका सोम्यं मघुं ॥ १० ॥
 उप प्रेतं कुशिकाश्चेतयध्वं
 अथं राये प्र मुञ्जता सुदासः ।
 राजा वृषं जङ्घनत् प्रागपागुदम्
 अथा यजाते यत् आ पृथिव्याः ॥ ११ ॥

य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमनुष्यम् ।
 विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेद भारतु जन्मम् ॥१२॥
 विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय धृञ्जिणे ।
 करदित्रं सुरार्धस ॥ १३ ॥
 किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो
 नाशिर दुद्वे न तपन्ति घर्मम् ।
 धा नो भर प्रमगन्दस्य वेदो
 नैवाशाख मघवन रन्धया न ॥ १४ ॥
 ॥ १२८ ॥ (ऋ० ४।१६।१-११)
 वाग्मवा गौतम । विष्टुष ।
 आ सत्यो यांतु मघवो ऋजीपी
 द्रघन्त्वस्य हरय उप न ।
 तस्मा इदन्धं सुपुमा सुदक्षं
 इहामिपित्व करते गृणान
 अवं स्य शूराध्वनो नान्ते
 अस्मिन् नो अद्य सर्वने मन्द्रधै ।
 दासात्युक्थमुशनेव वेधा
 चिकितुषे असुर्याय मन्म
 क्विर्न निष्य विद्रथानि साधुन्
 पूषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात् ।
 शिव इत्या जीजनत् सप्त कारुन्
 अहो चिचन्नुयुनां गुणन्तं
 स्वयंयद् वेदं सुदशीक्मक
 महि ज्योतीं सरसुयं वस्तो ।
 अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे
 नृभ्यश्चकार नृतमो अभिद्यौ
 पुरुक्ष इन्द्रो अमितमृजीपी
 उभे आ पमौ रोदसी महित्वा ।
 अर्तधिम्य महिमा वि रेचि
 धमि यो विश्वा भुयंना धभूयं
 विभ्यानि शुभो नयोणि विहान्
 धपो रिरेन् सपिभिर्निकामै ।

अश्मानं चिद् ये विभिर्दुर्धर्षीभि
 धेज गोर्मन्तमुशितो धि यन्तु ॥ ६ ॥
 अपो वृष वद्विवांस पराहन्
 प्रावत् ते वज्रं पृथिवी सर्वता ।
 प्राणोसि समद्रियाण्येनो
 पतिर्भवन्ध्रवसा शूर धृष्णो ॥ ७ ॥
 अपो यदद्रिं पुरहत् ददं
 आविर्भुवत् सुरमां पृथ्यं तं ।
 स नो नेता चाजमा दपि भृति
 गोना रजनङ्गिरोभिर्गृणान ॥ ८ ॥
 अच्छां कविं नृमणो गा अभिप्रो
 स्वर्पाता मघवनाधमानम् ।
 अतिभिस्तमिपणो वृषहंतो
 नि मायावानब्रह्मा दस्युरत् ॥ ९ ॥
 आ दस्युन्ना मनसा याह्यस्त
 भुवत् ते कुत्सं सुरये निकाम ।
 स्वे योनौ नि पदत् सरूपा
 वि वां चिकित्सदत्तचिद्ध नारी ॥ १० ॥
 यासि कुत्सेन सुरधमवस्यु
 तोदो वार्तस्य हयोरीशान ।
 ऋजा वाज न गथ्य सुयूपन्
 कविर्यदहन् पार्याय भूयात् ॥ ११ ॥
 कुत्साय शुष्णामशुप नि बर्ही
 प्रपित्व अहं कुर्यं सहसा ।
 सद्यो दस्युन् प्र मृण कुत्स्येन
 प्र सूरदक्षं वृहतादभीकं ॥ १२ ॥
 त्व पिमु मृगयं शशुवासे
 ऋजिभवे वेदयिनाय रन्धीः ।
 पञ्चाशत् कृष्णा नि वपः सहस्र
 अत्क न पुरो जरिमा वि र्दं ॥ १३ ॥
 (१४७९)

सूर उपाके तन्वंः॑ दर्शानो
 वि यत् ते चेत्यमृतस्य वर्षः ।
 मृगो न हृस्ती तर्विपीमुप्राणः
 सिद्धो न भीम आयुधानि विभ्रत्
 इन्द्रं कामा वसुयन्तो अग्न
 स्वर्मील्लहे न सर्वने चक्रानाः ।
 श्रवस्वर्बः शशमानास उक्थैः
 ओक्रो न र्णवा सुदर्शाव पुष्टिः
 तमिद् व इन्द्रं सहर्षं हुवेम
 यस्तां चकार नयां पुरुषिण ।
 यो मावते जरिषे गर्ध्वं चिन्
 मध्व वाजं भरति स्याहर्षाधाः
 तिग्मा यदन्तरशनिः पताति
 कसिञ्चिच्छूर मुहुके जनानाम् ।
 घोरा यदर्थ्य समृतिर्नवाति
 अर्धे सा नस्तन्वां बोधि गोपाः
 भुवोऽविता वामदैवस्य धीनां
 भुवः सखावृको वाजसातो ।
 त्वामनु प्रमतिमा जंगम्
 उरशसो जरिषे विश्वधे स्याः
 पमिर्नृभिर्निन्द्र त्वायुभिर्द्रा
 मघवन्निर्मवन् विश्वं आजौ ।
 चाथो न दुष्मैरभि सन्तो अर्थः
 क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वाः
 पवेदिन्द्राय वृषमाय वृष्णे
 ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
 नू चिद् यथा नः सुत्वा वियोपत्
 असन्न उग्रोऽविता रतृपाः
 नू पुत इन्द्र नू रृणान
 'इषं जरिषे नद्योः॑ न पीयेः ।

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

॥ १९ ॥

॥ २० ॥

अकारि ते हरिवो ब्रह्म नर्च्यं
 धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ २१ ॥
 ॥ १२१ ॥ (श्लो ०१७१-२२)
 निद्युः, १५ एक्यदा विराट् ।
 त्वं महो इन्द्र तुभ्यं हु क्षा
 अलु क्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः ।
 त्वं वृत्रं शर्वसा जघन्वान्
 सृजः सिन्धूरहिना जगस्रानान् ॥ २२ ॥
 तव त्विपो जनिमन् रेजत द्यौ
 रेजद् भूमिर्भियसा स्वस्य मन्योः ।
 ऋघायन्तं सुभ्वः॑ पर्वतासु
 आर्दन् घन्वानि सरयन्त आपः ॥ २३ ॥
 मिनद् गिरि शर्वसा वज्रमिष्णन्
 आविष्णुशानः संहसान ओजः ।
 वर्षीद् वृत्रं वज्रेण मन्दसानः
 सर्घ्नापो जर्वसा हतवृष्णीः ॥ २४ ॥
 सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौः
 इन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत् ।
 य ई जजान स्वयं सुवज्रं
 अनपच्युतं सदेसो न भूम ॥ २५ ॥
 य एक इच्छयावयति प्र भूमा
 राजा कृष्टीनां पुरुहुत इन्द्रः ।
 सत्यमेनमनु विश्वं मदन्ति
 रति देवस्य गूणतो मघोनः ॥ २६ ॥
 सत्रा सोमा अमवन्नस्य विश्वं
 सत्रा मडासो बृहतो मर्दिष्टाः ।
 सत्रामघो वसुपतिर्वसतां
 द्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ॥ २७ ॥
 त्वमर्धं प्रयमं जायमानो
 अग्ने विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
 त्वं प्रति प्रयत आशर्यान्
 अहिं वज्रेण मवयन् वि वृधः ॥ २८ ॥

सजाहणं दाधृषिं तुष्टमिन्द्रं
 महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
 हन्ता यो वृत्रं सन्तितोत् वाजं
 दातां मवानिं मघवां सुरार्थाः
 अयं वृत्तश्चातयते समीचीः
 य आजिषुं मघवां शृण्व एकः ।
 अयं वाजं भरति यं सुनोति
 अस्य प्रियासंः सत्ये स्याम
 अयं शृण्वे अप्र जयंस्तुतं घ्नन्
 अयमुत प्र हृणुते युधा गाः ।
 यदा सत्यं कृणुते मनुमिन्द्रो
 विश्वं दृढं भयत एजदस्मात्
 समिन्द्रो गा अंजयत् सं हिरण्या
 समंश्रिया मघवा यो हं पूर्वाः ।
 एमिनेभिर्नतमो अस्य शाकैः
 रापो विमुक्ता संभरश्च वर्धः
 क्रियत् स्वदिन्द्रो अर्घ्येति मातुः
 क्रियत् पितुर्जितियुषो जजान ।
 यो अस्य शुभं मुहुर्करियाति
 वातो न जुतः स्तनयंश्चिरधैः
 क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोति
 रयति रेणुं मघवां समोहम् ।
 विमञ्जनुरशनिर्मां इव द्यौः
 उत स्तोतारं मघवा वसां धात्
 अयं चप्रमियणत् सूर्यस्य
 न्येनेदं रीरमत् सख्यमाणम् ।
 वा कृष्णं हं जहृगुणो जियति
 त्युचो वृषो रजतो अस्य योर्नां
 भक्तिभ्यां यजमानो न होता
 गन्धन् इन्द्रं मग्याय विप्रां
 अभ्यापन्तो वृषं याजयन्तः ।

जनीयन्तो जनिदामक्षितोर्ति
 वा च्यावयामोऽप्यते न कोदाम् ॥ १६ ॥
 दाता नो बोधि दददान आपिः
 अभिव्याता मर्दिता सोम्यानाम् । ॥ ८ ॥
 सर्वा पिता पितृतमः पितृणां
 कर्तुमु लोकमुशते वयोधाः ॥ १७ ॥
 सखीयतामयिता योधि सर्वा
 गृणान इन्द्र स्तुवते वयो धाः । ॥ ९ ॥
 वयं ह्य ते चक्रमा सुवाघं
 आभिः शर्माभिमेहयन्त इन्द्र ॥ १८ ॥
 स्तुत इन्द्रो मघवा यजं वृत्रा
 भूरीण्येको अप्रतीतिं हन्ति । ॥ १० ॥
 अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्
 नाकिर्वेवा वारयन्ते न मर्ताः ॥ १९ ॥
 एवा न इन्द्रो मघवा विरष्णी
 करत् सखा चर्षणीधृदनुवा । ॥ ११ ॥
 त्वं राजा जनुषां धेह्यसे
 अधि श्रवो माहिर्न यज्जस्त्रि ॥ २० ॥
 नू पृत इन्द्र नू गृणान
 इयं जरित्रे नद्योः न पीयेः । ॥ १२ ॥
 अकारि ते हरिषो ब्रह्म नर्व्यं
 धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ २१ ॥
 ॥ १३० ॥ (ऋ० ८।१८।१-१३)
 [१३ वामदेवो गातम , १ इन्द्र ,
 ४ (उतरार्धस्य) , ५-७ अदिति ।] ।
 [१,४ उतरार्धस्य , ५ ६,७ व मेदेः ; २,३,६ पूर्वाधिस्य ,
 ८-१३ इन्द्रः ।] त्रिष्टुप् ।
 अयं पन्था अनुचित्तः पुराणो
 यतो देवा उदजायन्त विश्वे । ॥ १४ ॥
 अनक्षिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो
 मा मातरममुया पत्तये कः ॥ १५ ॥
 ॥ १ ॥
 (१५०९)

नाहमतो निरया दुर्गहेतव्
तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।
बहुनि मे अरुता कर्त्वाति
युध्यं त्वेन सं त्वेन पृच्छे
प्रायती मातस्मन्वचष्ट
न नालु गान्यनु नू रगमानि ।
त्वष्टुर्गहे अपियव् सोममिन्द्रः
शतघ्न्यं चर्मोः सुतस्य
किं स ऋधक् कृणवद् यं सहस्रं
मासो जभारं शरदश्च पूर्वोः ।
नही न्वस्य प्रतिमानमस्ति
अन्तर्जातेपुत्र ये जनिन्वाः
अवयमिव मन्यमाना गुहाकः
इन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम् ।
अथोर्दस्वात् स्वयमत्कं वसानं
आ रोर्दसी अपृणाज्जायमानः
पृता अर्पन्त्यललाभयन्तीः
श्रुतावपीरिव संक्रोशमानाः ।
पृता वि पृच्छ किमिदं मनन्ति
कमापो अर्दि परिधिं कृजन्ति
किमुं प्विदसै निविदो भनन्त
इन्द्रस्यावचं विधिपन्त आर्पः ।
ममैतान् पुत्रो मंहता वधेन
वृत्रं जयन्थो अस्तजुद् वि सिन्धून्
ममश्चन त्वा युवतिः परास
ममश्चन त्वा कुपवां जगारं ।
ममश्चिदापुः शिशवे ममृडपुः
ममश्चिदिन्द्रः सहसोर्दतिष्ठत्
ममश्चन तं मघयन् ध्यंसो
निविधिष्ठां अप हन् जघान ।

अथा निविद्ध उत्तरो यमवान्
शिरों दासस्य सं पिणग्वधेन ॥ ९ ॥
गुष्टिः संसृव स्वविरं तवागां
अनाधृष्यं वृषमं तुष्टमिन्द्रम् । ॥ २ ॥
अरीळहं वृत्सं चरयाय माता
स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम् ॥ १० ॥
उत माता महिपमन्वधेनत्
अमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।
अथाव्रवीद् वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्
सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥ ११ ॥
कस्ते मातरं विधवामचक्रत्
शयुं कस्त्वामजिघांसुचरन्तम् ।
कस्ते देवो अधि मर्डीक आसीद् ॥ १२ ॥
यत् प्राक्षिणाः पितरं पादुगृह्यं
अवर्त्या शुनं आन्नाणि पेत्ते
न देवेषु विविदे मर्डीतारम् ।
अर्पश्यं जायामर्महीयमानां ॥ १३ ॥
अथा मे श्येनो मघा जभार
॥ १३१ ॥ (ऋ० ४।१९।१-११)
पृवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र
विश्वे देवासः सुहवांस ऊमाः ।
महामुभे रोर्दसी वृद्धम्व्यं
निरेकमिद् वृणते वृत्रहर्त्यं ॥ १ ॥
अवास्तुजन्तु जिघ्रयो न देवा
भुवः सप्रालिन्द्र सत्ययोनिः ।
अहमर्हि परिशयानमर्णः
प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥ २ ॥
अर्तृष्णवन्तं विर्यतमबुध्यं
॥ ८ ॥ अर्बुध्यमानं सुयुषाणमिन्द्र ।
सत प्रतं प्रवतं आशयानं
अर्हि वज्रेण वि रिणा अपर्नन् ॥ ३ ॥

अक्षोदयच्छत्रंसा क्षामं बुधं वार्षं वातस्तविषीभिर्गिन्द्रः । हृद्धान्यांभ्रादुशमान् ओजो अर्वाभिनत् कुकुमः पर्वतानाम् अभि प्र देहृर्जनयो न गर्भं रथा इव प्र ययुः साकमद्रयः । अर्तपयो विसृतं उञ्ज ऊर्मीन् त्वं वृत्तां अरिणा इन्द्र सिन्धून् त्वं मृहीमर्न विभ्वर्धेनां तुर्वीर्तये वृष्याय क्षरन्तीम् । अर्तमयो नमसंजदणैः सुतरणां अरुणोरिन्द्र सिन्धून् प्राप्तुर्यो नमन्वोऽं न वहां ध्वन्ना अंपिन्यद् युवतीर्भ्रतशाः । घन्यान्वर्जां अपृणक् तृषाणां अधोगिन्द्रः स्तयोऽं दुंसुपतीः पूर्वाह्यसः शरदश्च गुतां युधं जयन्त्यां अंसुजद् वि सिन्धून् । पारिष्टिता अतृणद् वदधानाः भीरा इन्द्रः अर्चिनवे पृथिव्या युध्रीभिः पुत्रमृष्टयो अदानं निरेरानाद्धरिव आ जर्मथं । ध्युग्धो अंष्यदर्हिमादानो निर्भृदुगच्छित्त्वं समरन्त्वं पर्व प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्र अग्निर्गो आह विदुषे करामि । ययोयथा वृष्ण्यान्त्वं स्यगुतां धर्षामि राजन् नयांविषेर्षीः नृ पुत्र इन्द्र नृ गृणान इपं अरिधे नयोऽं न पीपिः ।	अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥ ॥ १३० ॥ (ऋ० शं० १-११) ॥ ४ ॥ आ न इन्द्रो वृषदा न आसाद् अभिष्टिद्वदवसे यासदुग्रः । ओजिष्टेभिर्नपतिवर्जवाहुः संगे समत्सु तुर्वर्णिः पृतन्यून् ॥ १ ॥ ॥ ५ ॥ आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छा अर्वाचीनोऽवसे राधसे च । तिष्ठति वृजी मघवां विरिष्ठा इहं यज्ञमनुं नो वाजंसातौ ॥ २ ॥ ॥ ६ ॥ इमं यज्ञं त्वमसाकमिन्द्र पुरो दधत् सनिष्यसि क्रतुं नः । श्वघ्नीव वज्रिन्सनये धनानां त्वया वयमये आर्जे जयेम ॥ ३ ॥ ॥ ७ ॥ उशसु पु णः सुमनां उपाके सोमस्य तु सुपुतस्य स्वधावः । पा इन्द्र प्रतिभृतस्यः मध्वः समन्वस्ता ममदः पृष्ट्येन ॥ ४ ॥ ॥ ८ ॥ वि यो ररुषा ऋषिभिर्नवैभिः वृक्षो न पक्वः सृष्यो न जेता । मयो न योषामभि मन्यमानो अच्छां विवन्निम पुरुहूतमिन्द्रम् ॥ ५ ॥ ॥ ९ ॥ गिरिर्न यः स्वतर्वां ऋष्य इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः । आदर्तां वज्रं स्वविरं न भीम उदेव कोशं वसुतां न्यृष्टम् ॥ ६ ॥ ॥ १० ॥ न राधेम आमृता मघस्यं । उद्वायुषाणस्त्विषीय उग्र असम्यं ददि पुरुहूत रायः ॥ ७ ॥
--	---

<p>ईक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीनां उत व्रजमपवृतांसि गोनाम् ।</p>	<p>यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुष्या नयति वस्यो अच्छे ॥ ४ ॥</p>
<p>शिक्षानरः समिथेषु प्रहायान् वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम्</p>	<p>उप यो नमो नमसि स्तभायन् इर्यति वाचं जनयन् यजध्वै । ॥ ८ ॥</p>
<p>कया तच्छृण्वे शच्या शचिष्टो यया कृणोति मुहु का चिद्वप्यः ।</p>	<p>ऋजुसानः पुरवारं उर्यैः एन्द्रं कृण्वीत सर्दनेषु होता ॥ ५ ॥</p>
<p>पुरु दाशुपे विचर्यिष्टो अंहो अथा दधाति द्रविणं जरित्रे</p>	<p>धिपा यदि धिपण्यन्तः सरण्यान् सर्दन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे । ॥ ९ ॥</p>
<p>मा नो मर्शिरा भरा दद्धि तन्नः प्र दाशुपे दातवे भूरि यत् तै ।</p>	<p>आ दुरोर्पाः पास्यस्य होता यो नो महागन्सर्वरणेषु वद्विः ॥ ६ ॥</p>
<p>नर्घ्ये देष्णे शस्ते अस्मिन् तं उर्ये प्र व्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः</p>	<p>सुत्रा यदी भार्वरस्य वृष्णः सिर्पक्ति शुष्मः स्तुवते भरतीय । ॥ १० ॥</p>
<p>नू घृत ईन्द्र नू गृणान् इपं जरित्रे नद्योः न पीपेः ।</p>	<p>गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद् धिये प्रायसे मदाय ॥ ७ ॥</p>
<p>अकारि ते हरिवो ब्रह्म नर्घ्यं धिया स्याम र्य्यः सदासाः</p>	<p>वि यद् वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पर्योमिजिन्ये अपां जवांसि । ॥ ११ ॥</p>
<p>॥ १३३ ॥ (ऋ० ४।१२।१-११)</p>	
<p>आ यात्विन्द्रोऽवस उर्यं न इह स्तुतः सधमादस्तु शरः ।</p>	<p>विदद् गौरस्यं गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्योः वहन्ति ॥ ८ ॥</p>
<p>यावृधानस्तविपीर्यस्यं पूर्वाः शौनं क्षत्रमभिभूति पुष्यात्</p>	<p>भद्रा ते हस्ता सुकृतात पाणी प्रयन्तारां स्तुवते राघं इन्द्र । ॥ १ ॥</p>
<p>तस्येदिह स्तयथ वृण्व्यानि तुविद्युन्नस्यं तुविराघसो नून ।</p>	<p>का ते निरपत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उं ॥ ९ ॥</p>
<p>यस्य कर्तुर्विद्वयोः न सप्राद् साहान् तरन्त्रो अभ्यस्ति कृष्टीः</p>	<p>एवा वस्य इन्द्रः सत्यः सप्राद् हन्ता वृत्रं वरिवः पुर्ये कः । ॥ २ ॥</p>
<p>आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मह्यं समुद्रादुत वा पुरीपात् ।</p>	<p>पुरेष्टुत् त्रत्वा नः शग्घि रायो मंशीय तेऽवसो दैव्यस्य ॥ १० ॥</p>
<p>स्वर्णरादवसे नो मक्त्यान् परावर्तो वा सर्दनाहृतस्य</p>	<p>नू घृत ईन्द्र नू गृणान् इपं जरित्रे नद्योः न पीपेः । ॥ ३ ॥</p>
<p>स्पर्स्य रायो बृहतो य ईशे तमु धवाम विदयेध्विन्त्रं ।</p>	<p>अकारि ते हरिवो ब्रह्म नर्घ्यं धिया स्याम र्य्यः सदासाः ॥ ११ ॥</p>

॥ १३४ ॥ (ऋ० ४।२०।१-११)

यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि
 तन्नो महान् करति शुष्मया चित् ।
 ग्रह्य स्तोमं मघवा सोममुन्या
 यो अस्मान् शर्वसा विभ्रदेति
 वृषा वृषान्धि चतुरधिमस्यन्
 उग्रो वाहुभ्यां नृत्तमः शर्चावान् ।
 ध्रिये पदेषामुग्रमाणं ऊर्णां
 यस्याः पर्वणि सरयाय विज्ये
 यो देवो देवतमो जायमानो
 महो वाजेभिर्महद्विष्ट्य दुर्मैः
 दर्धानो यज्ञं वाढोरुशन्तं
 घाममैन रेजयत् प्र भूमं
 रिभ्या रोघांसि प्रवतश्च पृथीः
 धौर्गुप्याज्जर्तमन् रेजत क्षाः ।
 या मातरु भर्षति शुष्मया गोः
 नृवत् परिअमन् नोनुबन्तु चार्ताः
 ता नू तं इन्द्र महतो महानि
 विभ्रेष्वित् सप्तनेषु प्रयाच्यां ।
 यच्छूर घृष्णो धृयता दधृष्वान्
 यष्टि यज्ञेण शयसाधैवेयीः
 ता नू ते नृन्या तुवितृष्ण विभ्र्या
 प्र धेनयैः सिद्धते वृष्ण ऊग्रः ।
 धर्षा ह त्वद् वृषमजो भियानाः
 प्र मिर्धयो जयसा चक्रमन्त
 अत्राद ते हरिष्यन्ता उं देयीः
 अर्षामिन्द्र स्तयन् स्वमारः ।
 यन् क्षीमनु प्र मुषो पद्भ्याना
 क्षीपामनु प्रविति स्थन्दप्यै
 विरीटे भ्रामयो न विन्युः
 आ त्वा शमीं शरामानस्ये शक्तिः ।

अस्मद्भक् शुशुचानस्य यम्या
 आशुर्न रश्मि तृष्योजसं गोः ॥ ८ ॥
 अस्मे वर्षिष्ठा रुणुहि ज्येष्ठा
 नृम्णानि सत्रा सहुरे सहसि ।
 ॥ १ ॥ अस्मभ्यं वृत्रा सहर्नानि रन्धि
 जुहि वर्षवन्तुपो मर्त्यस्य ॥ ९ ॥
 अस्माकमित् सु शृणुहि त्वमिन्द्र
 अस्मभ्यं चित्रां उप माहि वार्जान् ।
 ॥ २ ॥ अस्मभ्यं विश्वा इयणः पुरंधीः
 अस्माकं सु मघवन बोधि गोदाः ॥ १० ॥
 नू पुत इन्द्र नू गृणान
 इपं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
 ॥ ३ ॥ अकारि ते हरिवो ग्रह्य नव्यै
 धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥
 ॥ १३५ ॥ (ऋ० ४।२१।१-११) ८-१० ऋतं ११
 कथा महामवृथत् कस्य होतुः
 ॥ ४ ॥ यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः ।
 पिवंश्रुशानो जुषमाणो अन्वो
 यवश्च ऋष्वः शुचते धनाय ॥ १ ॥
 को अस्य वीरः संप्रमार्दमाप्
 ॥ ५ ॥ समानंश सुमतिभिः को अस्य ।
 कदस्य चित्रं चिकित्ते कदती
 पृथे भुवच्छरामानस्य यज्योः ॥ २ ॥
 कथा शृणोति ह्यमानमिन्द्रः
 ॥ ६ ॥ कथा दृष्यन्नव्यस्तामस्य वेद ।
 का अस्य पृथारपमातयो ह
 कथेनमाहुः पुरौरि जरित्रे ॥ ३ ॥
 कथा मवार्षः शशामानो अस्य
 ॥ ७ ॥ नराशुभि द्रविष्यं दीच्यानः ।
 देवो सुप्रप्रवेदा म ऋतानां
 नमो जगृभ्यां धमि यजुर्जोपत् ॥ ४ ॥

कथा कद्रस्या उपसौ व्युद्यौ
 देवो मर्तस्य सत्यं जुजोष ।
 कथा कद्रस्य सत्यं सविभ्यो
 ये अस्मिन् कामं सुयुजं तत्तत्रे
 किमादमंत्रं सत्यं सविभ्यः
 कदा नु ते भ्रात्रं प्र प्रवाम ।
 धिये सुदृशो वपुस्स्य सर्गाः
 स्वर्गं चित्रतममिष आ गोः
 द्रुहं जियांसन् ध्वरसंमनिन्द्रां
 तेतिंके त्रिम्मा तुजसे अनीका ।
 ऋणा चिद् यत्र ऋणया न उग्रो
 दुरे अभाता उपसौ ववाधे
 ऋतस्य हि शुक्रः सन्ति पूर्वाः
 ऋतस्य धीतिवृजिनानि हन्ति ।
 ऋतस्य श्लोकौ यधिरा ततर्द
 कर्णा बुधानः शुचमान् आयोः
 ऋतस्य दृढहा धरणांनि सन्ति
 पुरुणि चन्द्रा वपुषे वपुषि ।
 ऋतेन दीर्घमिपणन्त पृथ
 ऋतेन गाव ऋतमा विवेदुः
 ऋतं यमान ऋतामिद् वनाति
 ऋतस्य शुष्मस्तुरया उ गन्धुः ।
 ऋतार्य पृथ्वी बहूले गभीरे
 ऋतार्य धेनु परमे दुहाते
 नू पुत इन्द्र नू गृणान
 इयं जरित्रे नद्योः न पीयेः ।
 अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं
 धिया स्याम रथ्यः सदासाः
 ॥ १३६ ॥ (ऋ० ४।२४।१-११) त्रिष्टुप्, १० अनुष्टुप् ।
 का सुपृतिः शवसः सुजुमिन्द्रं
 अवाचीनं राधस आ ववर्तत् ।

ददिहि वीरो गृणते वसन्ति
 स गोपतिर्निधिर्घां नो जनासः ॥ १ ॥
 स वृत्रहृत्वे हव्यः स ईड्यः
 स सुपुत इन्द्रः सत्यरथाः ।
 स यामशा मघवा मर्त्याय
 ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात् ॥ २ ॥
 तमिन्नरो वि ह्यन्ते समीके
 रिरिकांस्तन्वः कृण्वत प्राम् ।
 मिथो यत् त्यागमुभयासौ अग्नन्
 नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥ ३ ॥
 क्रतुयन्ति क्षितयो योग उग्र
 आशुपाणासौ मिथो अणसातौ ।
 सं यद् विशोऽववृत्रन्त युष्मा
 आदिधेम इन्द्रयन्ते अमीके ॥ ४ ॥
 आदिङ् नेम इन्द्रियं यजन्त
 आदिन् प्रक्तिः पुरेच्छाशं रिरिच्यात् ।
 आदिन् सोमो वि पृथ्यादसुष्वीन्
 आदिञ्जुजोष वृषमं यजध्वै ॥ ५ ॥
 कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्य
 इन्द्राय सोममुशते सनोति ।
 सधीचीनेन मनसाविवेनन्
 तमित् सखायं कृणुते सुमत्सुं ॥ ६ ॥
 य इन्द्राय सुनवत् सोममय
 पचात् पक्तीरुत भृज्जाति धानाः ।
 प्रति मनायोरुचथानि हर्यन्
 तस्मिन् दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्रः ॥ ७ ॥
 यदा समयं व्यचेदधावा
 शीर्षं यदाजिमभ्यर्ष्यद्वयः ।
 अचिक्रद्द् वृषणं पत्न्यच्छा
 दुरोण आ निशीतं सोमसुद्धिः ॥ ८ ॥

भूयसा वस्नमचरत् कनीयो
 अर्विक्रीतो अकानिपुं पुनर्यन् ।
 स भयसा कनीयो नारिरेचीद्
 दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम् ॥ ९ ॥
 क इमं दशमिर्मम इन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।
 यदा वृत्राणि जङ्घनत् अयं न मे पुनर्ददत् ॥ १० ॥
 नू पुत इन्द्रं नू गृणान
 इपं जरित्रे नद्योः न पीपेः ।
 अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं
 धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

॥ १३७ ॥ (ऋ० ४।१५।१-८) त्रिष्टुप् ।

को अद्य नयो देवकाम
 उशश्रिन्द्रस्य सरयं जुजोप ।
 को वा महेऽवसे पायीय
 समिद्धे अग्नौ सुतसौम ईष्टे ॥ १ ॥
 को नानाम चर्चसा सोम्यायं
 मनायुर्वी भवति वस्त उद्या ।
 क इन्द्रस्य युज्य कः सखित्व
 को धारं वष्टि कचये क ऊती ॥ २ ॥
 को देवानामवो अद्या वृणीते
 क आद्रित्यो अर्दिति ज्योतिरीष्टे ।
 कस्याग्निनाविन्द्रो अग्निः सुतस्य
 अंशोः पिपन्ति मनसाविधेनम् ॥ ३ ॥
 तन्मा अग्निमोर्तुः शर्म यंसुत्
 जयोक् पदयात् सूर्यमुधरन्तम् ।
 य इन्द्राय सुनद्यामेत्याह
 नरे नयीय नृतमाय नृणाम् ॥ ४ ॥
 न तं जिनन्ति षट्थो न दुधा
 उर्ध्वग्मा अर्दितिः शर्म यसत् ।
 म्रिय. गुरत् म्रिय इन्द्रं मनायुः
 म्रिय. सुम्रायीः म्रियो धंस्य सोमी ॥ ५ ॥

सुप्राग्यः प्राणुपाळेय वीरः
 सुप्यैः पक्तिं कृणुते केषुलेन्द्रः ।
 नासुष्येरापिर्न सप्रा न जामिः
 दुष्पाद्योऽवहन्तेदवाचः ॥ ६ ॥
 न रेवता पणिनां सख्यमिन्द्रो
 असुन्यता सुतपाः स गृणीते ।
 आस्य वेदः सिदति हन्ति नग्र
 वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत् ॥ ७ ॥
 इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास
 इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम् ।
 इन्द्रं श्रियन्त उत युध्यमाना
 इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्त ॥ ८ ॥

॥ १३८ ॥ (ऋ० ४।१६।१-३)

[१-३ इन्द्रो वा] । [१-३ आत्मा वा] ।

अहं मनुंरभवं सूर्यश्च
 अहं कक्षीवो ऋषिरस्मि विप्रः ।
 अहं कुत्समाजुनेयं न्यूजे
 अहं कविरुशाना पश्यता मा ॥ १ ॥
 अहं भूमिमद्वामायीय
 अहं वृष्टिं दाशुपे मत्याय ।
 अहमपो अनयं वायशाना
 मम देवासो अनु केतमायन् ॥ २ ॥
 अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं
 नव्यं साकं नवतीः शम्परस्य ।
 शततमं वेदयं सर्वताता
 दिवोदासमतिथिग्य यदावम् ॥ ३ ॥
 ॥ १३९ ॥ (ऋ० ४।१८।१-५) [इन्द्रस्यो वा ।]

त्वा युजा तव तत् सौम सुख्य
 इन्द्रो अपो मनवे ससुतस्कः ।
 अहंप्राद्विमरिणात् सप्त सिन्धुन्
 अपावृणोदापहितेय खानि ॥ १ ॥

त्वा युजा नि खिदत् सूर्यस्य
 इन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्द्रो ।
 अधि ष्णना बृहता वर्तमानं
 महो द्रुहो अपे विश्वायुं धायि
 अहन्निन्द्रो अर्दहदग्निरिन्द्रो
 पुरा दस्युन् मय्यदिनादमीके ।
 दुग्ं दुरोणे कत्वा न यातां
 पुरु सहस्रा शर्वा नि वहीत्
 विश्वंस्मात् सीमधमो इन्द्र दस्युन्
 विशो दासीररुणोरप्रशस्ताः ।
 अवाधेयाममृणतं नि शत्रुन्
 अविन्देयामपचितिं वधत्रैः
 एवा सत्यं मघवाना युवं तत्
 इन्द्रश्च सोमोर्वमरुयं गोः ।
 आर्दहंतमपिहितान्यथा
 तिरिच्युः क्षाश्चित् तद्दाना
 ॥ १४० ॥ (ऋ० ४।१९।१-५)
 आ नः स्तुत उप चाजेमिरुती
 इन्द्रं याहि हरिर्भिर्मन्दसानः ।
 तिरश्चिदयं सधना पुरुणि
 आरूपोर्भेर्गणानः सत्यराधाः
 आ हि प्सा याति नर्थश्चिकित्वाञ्च
 ह्ययमानः सोलमिहर्ष यज्ञम् ।
 स्वश्वो यो अमीसुर्मन्यमानः
 सुष्वाणेभिर्मर्दति सं हं वीरैः
 श्वावयेर्दस्य कर्णो वाज्यध्यै
 जुष्टामनु प्र दिशं मन्द्यध्यै ।
 उह्रावृषाणो राधसे तुष्यिप्मान्
 करंभ इन्द्रः सुतीर्थोर्मयं च
 अच्छा यो गन्ता नार्धमानमृती
 इत्या विप्रं हवमानं गृणन्तम् ।

॥ २ ॥
 ॥ ३ ॥
 ॥ ४ ॥
 ॥ ५ ॥
 ॥ ६ ॥
 ॥ ७ ॥
 ॥ ८ ॥
 ॥ ९ ॥
 ॥ १० ॥
 ॥ ११ ॥
 ॥ १२ ॥
 ॥ १३ ॥

उप त्मनि दधानो धुर्याद्भृशन्
 सहस्राणि शतानि वज्रावाहुः
 त्वोर्तासो मघवन्निन्द्र विप्रां
 वयं ते स्याम सुरयो गृणन्तः ।
 भेजानासो बृहद्विष्वस्य राय
 आकाव्यस्य दावनें पुरुशोः
 ॥ १४१ ॥ (ऋ० ४।२०।१-८; १२-२४)
 गायत्री; ८, २४ अनुष्टुप् ।
 नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।
 नकिरेवा यथा त्वम्
 सत्रा ते अर्तुं कृण्यो विश्वां चक्रेवं वाधुतः ।
 सत्रा महो अस्ति श्रुतः
 विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः ।
 यदहा नरुमातिरः
 यत्रोत वाधितेभ्यं—श्चक्रं कुत्साय युध्यते ।
 मुपाय इन्द्र सूर्यम्
 यत्र देवां क्रुत्रायतो विश्वां अयुष्य पक् इत् ।
 त्वमिन्द्र वन्दुरहन्
 यत्रोत मत्याय क—मारेणा इन्द्र सूर्यम् ।
 प्रावः शर्चीभिरेतंशम्
 किमादुतासि वृत्रहन् मघवन् मन्युमत्तमः ।
 अत्राह दानुमातिरः
 एतद् घेदुत वीर्यं—मिन्द्रं चक्रेवं पौंस्यम् ।
 स्त्रियं यद् दुर्हेणापुयं वधीर्दुहितरं दिवः ॥ ८ ॥
 उत सिन्धुं विश्वालयं वितस्थानामधि क्षमिं ।
 परिं एा इन्द्र साययां
 उत शुष्णास्य घृष्णया प्र शृशो अमि वेदानम् ।
 पुरे यदस्य संपिणक्
 उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि ।
 अवाहनिन्द्र शर्मरम्
 उत दासस्यं वचिनः सहस्राणि प्रागार्यपीः ।
 अधि पञ्च प्रधीरिव

उत त्वं पुत्रमप्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः ।
 उन्मयेषिन्द्र आर्मजत् ॥ १६ ॥
 उत त्या त्ववशायद् अस्नाताया शचीपतिः ।
 इन्द्रो विष्टो अपारयत् ॥ १७ ॥
 उत त्या सुद्य आयी सूर्योरिन्द्र पारतः ।
 वर्णाच्चित्ररथाघधीः ॥ १८ ॥
 अनु द्वा जंहिता नयो ऽन्धं श्रेणं च वृत्रहन् ।
 न तत् तं सुन्नमष्टवे ॥ १९ ॥
 शनमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् ।
 दिवोदासाय दारुपे ॥ २० ॥
 अम्यापयद् इमीतये सहस्रां त्रिशतं हथैः ।
 शम्पानामिन्द्रो मायया ॥ २१ ॥
 न घेदुतासि वृत्रहन् त्समान इन्द्र गोपतिः ।
 यस्ता विश्वानि चिच्युपे ॥ २२ ॥
 उत नूनं यद्विन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् ।
 अथा नकिष्टदा मिनत् ॥ २३ ॥
 यामेवामं त आहुरे देवो वृदात्वयमा ।
 यामे पूया यामं भगो यामं देवः करुजती ॥ २४ ॥
 ॥ १८० ॥ (ऋ० १।३।१-१५)
 गायत्री, ३ पदनिवृत् ।
 यया नद्विचत्र आ भुव—दृती सदावृष्टः सर्गा ।
 यया शनिष्टया वृता ॥ १ ॥
 यया सत्यो मदानो महिष्टो मत्सदन्धमः ।
 इन्द्रा गिदाञ्जे वरु ॥ २ ॥
 धमी पु षाः सर्गीना—मयिता जग्नुनाम् ।
 शनि नयान्यतिभिः ॥ ३ ॥
 धमी न धा र्पयत्स यज्ञः न पुक्तमधेतः ।
 निवर्द्धिधर्षणनाम ॥ ४ ॥
 प्रयता दि वरुणा—मा हां प्रदेय गच्छसि ।
 शर्माधि श्ये सखा ॥ ५ ॥
 सं दन न इन्द्र म्पयः सं यवार्त्तं दधन्विते ।
 ध्यु त्वं ध्यु श्ये ॥ ६ ॥

उत स्मा हि त्वामाहुरि—न्मघवानं शचीपते ।
 दातारमविदीधयुम् ॥ ७ ॥
 उत सां सुद्य इत् परिं शशामानाय सुन्वते ।
 पुरू चिन्महसे वरु ॥ ८ ॥
 नहि म्मां ते शतं चन राधो वरन्त आमुर्तः ।
 न च्यौत्तानि करिष्यतः ॥ ९ ॥
 असां अवनतु ते शत—मस्मान्त्सहस्रमृतयः ।
 अस्मान् विश्वा भभिष्टयः ॥ १० ॥
 अस्मां इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये ।
 महो राये दिवित्मते ॥ ११ ॥
 असां अविष्टि विश्वहे—न्द्र राया परीणसा ।
 अस्मान् विश्वाभिरुतिभिः ॥ १२ ॥
 अस्मभ्यं तां अपा वृधि वृजो अस्तेव गोमंतः ।
 नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥ १३ ॥
 अस्माकं धृणुया रथो यमां इन्द्रानपच्युतः ।
 गव्युत्सव्युरीयते ॥ १४ ॥
 अस्माकमुत्तमं वृधि श्रवो देवेषु सूर्ये ।
 यरिषुं धामिवोपरि ॥ १५ ॥
 ॥ १४३ ॥ (ऋ० १।३।१-१९) गायत्री ।
 आ त् न इन्द्र वृत्रह—प्रस्माकमधमा गदि ।
 महान् महीभिर्कृतिभिः ॥ १ ॥
 भूमिधिद्व घालि त्तंजि—रा चित्र चिप्रिणीष्या ।
 चित्रं वृणोष्युतये ॥ २ ॥
 दधेभिश्चिच्छरीयांसं हंसि याधन्तमोजसा ।
 नगिभियं त्ये सर्वा ॥ ३ ॥
 ययामिन्द्र त्ये सर्वा ययं त्याभि नोनुमः ।
 अस्मां अस्मां इदुदय ॥ ४ ॥
 न नधिप्रभिरद्विषो ऽजयघामिर्कृतिभिः ।
 अनाष्टाभिरा गदि ॥ ५ ॥
 भूयामो पु रयापंतः सत्वाय इन्द्र गोमंतः ।
 युजो याजाय धृष्ये ॥ ६ ॥

त्वं हेक ईशिय इन्द्र वाजस्य गोमतः ।
 सः नो यन्धि महीमिर्षम् ॥ ७ ॥
 न त्वा वरन्ते अन्यथा यद् दित्संसि स्तुनो मधम् ।
 स्तोत्रभ्य इन्द्र गिर्घणः ॥ ८ ॥
 अग्नि त्वा गोतमा गिरा ऽनूपत प्र द्वावने ।
 इन्द्र वाजाय घृण्वये ॥ ९ ॥
 प्र ते वोचाम धीर्यां या मन्दसान आरुजः ।
 पुरो दासीरमीत्यं ॥ १० ॥
 ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकथ पास्या ।
 सुतेष्विन्द्र गिर्घणः ॥ ११ ॥
 अर्धावृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः ।
 पेयुं धा वीरवद् यशः ॥ १२ ॥
 यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्यम् ।
 ते त्वा वयं हवामहे ॥ १३ ॥
 अर्वाचीनो वंसो मवा—ऽसे सु मत्स्वान्धसः ।
 सोमार्नामिन्द्र सोमपाः ॥ १४ ॥
 अस्माकं त्वा मतीना—मा स्तोम इन्द्र यच्छतु ।
 अर्वागा वर्तया हरी ॥ १५ ॥
 पुरोळाशं च नो वसो जोपयासि गिरश्च नः ।
 वधुयुरिव योपणाम् ॥ १६ ॥
 सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे ।
 शतं सोमस्य सार्यैः ॥ १७ ॥
 सहस्रां ते शता वयं गगामा च्यावयामसि ।
 अस्मन्ना राधं पतु ते ॥ १८ ॥
 दशं ते कृलशानां हिरण्यानामधीमहि ।
 भूरिदा असि वृत्रहन् ॥ १९ ॥
 भूरिदा भूरिं देहि नो मा दुधं भूर्या मर ।
 भूरि वेदिन्द्र दित्संसि ॥ २० ॥
 भूरिदा हसि ध्रुतः पुंरुगा शूर वृत्रहन् ।
 मा नो भजस्व राधसि ॥ २१ ॥
 प्र ते भूध विचक्षणं शंसामि गोवणो नपात् ।
 मान्वां गा अनु शिधयः ॥ २२ ॥

॥ १४४ ॥ (ऋ० पृ० १२, १२-१५)

गौरिकीति शाक्यः ।

[९ (प्रथमपादस्य) उचाना वा] । त्रिष्टुप् ।

अय्ययमा मनुषो देवताता
 श्री रौचिना दिव्या धारयन्त ।
 अर्चन्ति त्वा मरुतः पुतदक्षाः
 त्वमेपाभृषिरेन्द्रासि धीरः ॥ १ ॥
 अनु यतीं मरुतो मन्दसान
 आर्चन्तिन्द्रं पपियांसं सुतस्य ।
 आदत्त वज्रमभि यदहि हन्
 अपो यहीरंभृजत् सतवा उं ॥ २ ॥
 उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्य
 इन्द्रः सोमस्य सुपुतस्य पेयाः ।
 तद्धि हृष्यं मनुषे गा अविन्दत्
 अहन्नहि पपियां इन्द्रो अस्य ॥ ३ ॥
 आद् रोदसी वितरं वि च्क्रभायत्
 संघिव्यानाश्चैद् मियसं मगं कः ।
 जिर्गतिमिन्द्रो अपजगुराणः
 प्रति श्वसन्तमवं दानवं हन् ॥ ४ ॥
 अध क्रत्या मघवन् तुभ्यं देवा
 अनु विश्वे अद्दुः सोमपेयम् ।
 यत् सूर्यस्य हरितः पतन्तीः
 पुरः सतीरुपरं पतन्ने कः ॥ ५ ॥
 नव यदस्य नवति चं भोगान्
 साकं वज्रेण मघवां विवृश्चत् ।
 अर्चन्तीन्द्रं मरुतः सधस्थे
 त्रिष्टुभेन वचसा वाधत् घाम् ॥ ६ ॥
 सत्या सत्ये अपचत् तृयमग्निः
 अस्य क्रत्या महिया श्री शतानि ।
 श्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि
 सुतं पिबद् वृत्रहत्यापि सोमम् ॥ ७ ॥

श्री यच्छ्रुता महिषाणामघो माः
 श्री सर्वसि मन्त्रवा सोम्यापाः ।
 कुरं न विभ्ये अहन्त देवा
 मग्निन्द्राय यदाहं जुधानं
 उदाना यत् संहस्यैरुयाते
 गृहमिन्द्र जुज्वानोभिरथैः ।
 वृन्वानो अत्र सरथं ययाय
 कुन्मेन देवरयोहोहं शुष्मम्
 प्रान्यद्यन्मन्त्रैः सूर्यस्य
 कुन्मायान्द वरिवो यातवेऽकः ।
 धनामो दस्यैरमुषो वृधेन
 नि दुयौण आवृषण्ड् मूधवाचः
 सोमाममन्या गारिधीतेरवधेन
 मरन्धयो धदधिनाय पिप्रम् ।
 धा त्यामजिभ्यां सत्याय चभ्रे
 पचन् पकीरापियुः सोममस्य
 नपंग्यासः सुनसोमाम् इन्द्रं
 दशंग्यामो अम्यंयन्त्यकैः ।
 गर्ग्यं चिदुधमेषिधानयन्तं
 तं चित्ररतः दशमाना अर्षं प्रन्
 वृषो नु मे परि पराणि विहान्
 दीयो मपयन् वा चक्रथे ।
 वा सो नु नप्यां वृषवंः शविष्ठ
 प्रेदु ता मे विदधेनु प्रवाम
 एता विभ्यां वृषयो इन्द्र भूरि
 अर्षेणो जुजुर्वा धीयेण ।
 वा विष्ट धीजिन् वृषयो दधुष्यान्
 प्र मे वृषो तवियन्त भस्मि तव्याः
 इन्द्र इष्टं विप्रमाणं वृषम्
 वा मे तविकृत् तव्या अर्षमं ।

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

वल्लेव भद्रा सुकृता वसुयू
 रथं न धीरुः स्वपा अतक्षम् ॥ १५ ॥
 ॥ १४५ ॥ (श्र० पा१०१-११) अत्रात्रेयः ।

कस्य वीरः को अपश्यदिद्रं
 सुखरंधमीर्यमानं हरिभ्याम् ।
 यो यया वृजी सुतसोममिच्छन्
 तदोको गन्तां पुरुहुत ऊती ॥ १ ॥

अवाचचक्षं पदमस्य सस्वः
 उग्रं निधातुरन्वायमिच्छन् ।
 अपृच्छमन्यां उत ते मं आहुः
 इन्द्रं नरो वुवृधाना अशेम ॥ २ ॥

प्र नु वयं सुते या ते कृतानि
 इन्द्र प्रवाम यानि नो जुजोपः ।
 धेददविहान्द्रुणयंश्च विहान्
 वहतेऽयं मघवा सर्वसेनः ॥ ३ ॥

स्थिरं मनश्चरुपे जात इन्द्र
 वेपीदेको युधये भूर्यसश्चित् ।
 अदमानं चिच्छयंसा दिद्युतो वि
 विदो गवामुधमृशियाणाम् ॥ ४ ॥

परो यत् त्वं परम आजर्निष्ठाः
 परायति धृत्यं नाम विधत् ।
 अर्तश्चिदिन्द्रोदभयन्त देवा
 विभ्यां अपो अजयद् दासपत्नीः ॥ ५ ॥

नुम्येदेते मरुतः सुदोषा
 अर्षन्त्यकैः सृन्त्यवर्षः ।
 अर्दिमोहानमप आशयानं
 प्र मायाभिर्मोषिणं सधदिन्द्रः ॥ ६ ॥

वि पू गृधो अनुषा दानमिन्यन्
 अहन् गवां मघयग्मेघवानः ।
 अत्रां दागम्य नमुधेः दितो यत्
 अर्षतेयो मरुधे गातुमिच्छन् ॥ ७ ॥

<p>युजं हि मामकृष्या आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मयायन् । अदमानं चित् स्वयैः वर्तमानं प्र चक्रियैव रोदसी मरुद्भयः ॥ ८ ॥ स्त्रियो हि दास आयुधानि चके किं मां करन्नयला अस्य सेनाः । अन्तर्हास्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद् युधये दस्युमिन्द्रः ॥ ९ ॥ समत्र गाघोऽभितोऽनयन्त इहेह वत्सैर्वियुता यदासन् । सं ता इन्द्रो अस्त्रजदस्य शाकैः यदीं सोमांसः सुपुता अमन्दन् ॥ १० ॥ यदीं सोमां वधुधूता अमन्दन् अरौरधीद् वृषभः सादनेपु । पुरंदरः पंपिषाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्त्रियाणाम् ॥ ११ ॥</p>	<p>अनघस्ते रथमध्वाय तक्षन् त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् । ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अकैः अवर्धयन्नदये हन्तवा उँ ॥ ४ ॥ वृष्णे यत् ते वृषणो अकर्मर्चान् इन्द्रं भ्रावाणो अर्दितिः सजोषाः । अनभ्वास्तो ये पचयौऽरथा अनभ्वास्तो ये पचयौऽरथा इन्द्रैऽपिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥ ५ ॥ प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन् या चकर्थे । शक्तीवो यद् विभ्रा रोदसी उमे जयन्नपो मनवे दारुचिन्नाः ॥ ६ ॥ तदिह्यु ते करणं दस्य विप्र अहिं यद् भ्रन्नोजो अत्रामिमीथाः । शुष्णस्य चित् पारं माया अंगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूरसेधः ॥ ७ ॥ त्वमपो यदवे तुवशाय अरमयः सुदुघाः पार इन्द्र । उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद् धामुशनारन्त देवाः ॥ ८ ॥ वातस्य युक्तान्तस्युजश्चिदश्वान् कविश्चिदपो अजगन्नवस्युः । विश्वे ते अत्रं मरुतः सखाय ॥ १० ॥ इन्द्रं ब्रह्माणि तविपीमवर्धन् सुरश्चिद् रथं परित्स्म्यायां पूर्वं करदुपरं जजुवांसम् । भरुक्क्रमेतेशः सं रिणाति ॥ २ ॥ पुरो दधत् सनिप्यति क्रतुं नः आयं जना अभिचर्ये जगाम इन्द्रः सखायं सुतसौममिच्छन् । वदन् भ्रावाय धेदिं ध्रियाते ॥ ३ ॥ यस्य जीरमध्वयवध्वरन्ति ॥ १२ ॥</p>
---	---

॥ १४६ ॥ (ऋ० ५।३।१-८; १०-१३)
अवस्युगनेयः, (८ तृतीयपादस्य
कुत्सो वा, चतुर्थपादस्य उशना वा) ।

इन्द्रो रथाय प्रवर्तं कृणोति
यमध्यस्थान्मघवां वाजयन्तम् ।
युधेवं पृथ्वो व्युनोति गोपा
अरिष्टो याति प्रथमः सिपांसन्
मा प्र द्रव हरिवो मा वि वैनः
पिशङ्गराते अभि नः सचस्व ।
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्ति
अमेनाँश्चिज्जनिवतश्चकर्थ
उद्यत् सहः सहस्र आर्जनिष्ट
देदिष्ट इन्द्रं इन्द्रियाणि विश्वा ।
प्राचोदयत् सुदुघां वृषे अन्तः
वि ज्योतिषा संववृत्त्यत् तमोऽचः

ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते
मतीं अमृत मो ते अहं आरन् ।
घाघन्धि यज्जुंरुत तेपुं धेहि
ओजो जनैपु येपुं ते स्यामं

॥ १३ ॥

॥ १८७ ॥ (अ० ५।३२।१-१०) गानुरात्रेयः ।

अद्वंद्वरुत्समर्षजो वि खानि
त्वमर्षवान् बह्वधानां अरुणाः ।
महान्तमिन्द्र पर्यंतं वि यद् वः
सृजो वि घाय अयं दानधं हन्

॥ १ ॥

त्समुन्तां ऋतुभिर्वह्वधानां

अरुह ऊधुः पर्यंतस्य वज्रिन् ।

अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं

॥ २ ॥

जग्न्यां इन्द्र तविपीमघस्थाः

त्यस्य चिन्महतो निर्मगस्य

घर्षजेषान् तविपीभिर्निन्द्रः ।

य एक इदं प्रतिमन्यमान

॥ ३ ॥

आदंस्मानुन्यो अंजनिए तज्यान्

सं चिदेपां स्यधया मदन्तं

मिहो नपांतं सुवृधं तमोगाम् ।

पृथं प्रमर्मा दानयस्य भासं

॥ ४ ॥

यज्रंण यज्रां नि जंवान् शुष्णम्

सं चिदस्य ऋतुमिनिर्पंचं

धममर्षो विददिरस्य ममं ।

यदीं मुधत्र प्रभृता मदस्य

॥ ५ ॥

सुवृग्मन्तं तममि ह्यस्य घाः

सं चिदिरथा बन्धयं शयानं

अस्यै तममि वायुधानम् ।

तं निग्मष्टानो धृगमः सृत्स्य

॥ ६ ॥

उच्छरिन्द्रो अयुग्यां ऋषान्

उद् घदिरुद्रो महते दानवाय

बधुर्पमिष्ट गहो अर्षनीजम् ।

यदीं वज्रस्य प्रभृता ददाम

विश्वस्य जन्तोरेधमं चकार

॥ ७ ॥

सं चिदपि मधुपं शयानं

असिन्वं वज्रं मह्यादुग्रः ।

अपादमंत्रं महता वधेन

नि दुयौण आवृणद् मूधवाचम्

॥ ८ ॥

को अस्य शुष्मं तविपीं वरात्

एको धनां भरते अप्रतीतः ।

इमे चिदस्य जयसो नु देवी

इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते

॥ ९ ॥

न्यस्यै देवी स्वधितिर्जिहीत

इन्द्राय गातुंशतीव येमे ।

सं यदोजो युवते विश्वमामिः

अनु स्वधात्रे श्रितयो नमन्त

॥ १० ॥

एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं

जातं शृणोमि यदासं जनैपु ।

तं मे जगृध आदासो नविष्टं

दोषा वस्तोर्हर्षमानास इन्द्रम्

॥ ११ ॥

एवा हि त्वामृतया यातयन्तं

मुधा विप्रैभ्यो ददंतं शृणोमि ।

किं ते प्रह्मणां गृहते सखायो

ये त्वाया निदुधुः काममिन्द्र

॥ १२ ॥

॥ १८८ ॥ (अ० ५।३३।१-१०) राजापत्यः संवरणः ।

महिं महे तयसे दीधे नृन्

इन्द्रियेथा तयसे अमन्यान् ।

यो अमं सुमतिं घाजसतानो

स्तुतो जनें समयंश्चिकेत

॥ १ ॥

स त्वं न इन्द्र धियमानो धूर्धः

दरीणां वृणन् योकरमधेः ।

या इथा मयधुप्रनु जोपं

वरां भमि प्रार्यः संधिं जतान्

॥ २ ॥

(१७८)

न ते तं इन्द्राभ्युसहृष्य
 अयुकासो अग्रहता यदसत्रं ।
 तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्त
 आ रुचिम देव यमसे स्वश्वेः
 पुरु यत् तं इन्द्र सन्नुकथा
 गर्वे चक्रयोर्वरासु युष्यन् ।
 ततश्चे सूर्यीय विद्रोकांसि स्वे
 वृषा समस्तु दासस्य नाम चित्
 वयं ते तं इन्द्र ये च नरः
 शशो जज्ञाना याताश्च रयाः ।
 आसाङ्गम्यादहिशुष्म सत्वा
 मगो न हव्यः प्रभूयेषु चारुः
 पपुक्षेर्णमिन्द्र त्वे होजो
 नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः ।
 स न पर्णो वसवानो रयि दाः
 प्रार्यः स्तुपे तुविमघस्य दानम्
 एवा न इन्द्रोतिमिरव
 पाहि शृणतः शूर कारुर ।
 उत त्वचं ददतो वाजेसातौ
 पिप्रीहि मघ्यः सुयुतस्य चारोः
 उत त्वे मां पौरुकृतस्यस्य सुरेः
 प्रसदस्योर्हिरणिनां रराणाः ।
 बर्हन्तु मा दश श्येतासो अस्य
 गैरिक्षितस्य कर्तुमिनुं संश्वे
 उत त्वे मां मारुताश्वस्य शोणाः
 कर्त्वामघासो विदथस्य रातौ ।
 सहस्रा मे च्यवतानो ददान
 आनुकमयो चपुपे नार्चत्
 उत त्वे मां घ्नन्त्यस्य जुष्टा
 लक्षमण्यस्य सुरुचो यतानाः ।
 मद्वा रायः स्ववरेणस्य ऋपैः
 वृजे न गावः प्रयता अर्षि गान्

॥ १४१ ॥ / क्र० ५।३।१-९)

अगती, ९ त्रिष्टुप् ।

- ॥ ३ ॥ अजातशत्रुमजरा स्वर्वति
 अनु स्वधार्मिता दसमीयते ।
 सुनोर्तन पर्वत ब्रह्मवाहसे
 पुरुष्टुताय प्रतरं दघातन ॥ १ ॥
- ॥ ४ ॥ आ यः सोमिन जुठरमर्षिप्रता
 अमन्दत मघवा मघो अन्धसः ।
 यदीं मूगाय हन्तवे महावधः
 सहस्रमृष्टिमुशना वधं यमत् ॥ २ ॥
- ॥ ५ ॥ यो अस्मै धंस उत वा य ऊर्धनि
 सोमं सुनोति भवति शुभो अहं ।
 अपाप शक्रस्तानुष्टिमूहति
 तनुशुभ्रं मघवा यः कवासुखः ॥ ३ ॥
- ॥ ६ ॥ यस्यावधीत् पितरं यस्य मातरं
 यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईपते ।
 वेतीदस्य प्रयता यतक्रो
 न किलियपादीपते वस्यं आकुरः ॥ ४ ॥
- ॥ ७ ॥ न पञ्चभिर्दशभिर्वष्टारमं
 राहुन्वता सञ्जते पुष्यता चर ।
 जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिः
 आ देवयुं भजति गोमति वृजे ॥ ५ ॥
- ॥ ८ ॥ विवक्षणाः समृतौ चक्रमासुजः
 अलुन्वतो विषुणः सुन्वते वृधः ।
 इन्द्रो विश्वस्य दामिता विभीषणो
 यथावशं नयति दासुमार्यैः ॥ ६ ॥
- ॥ ९ ॥ सर्मा पुणेर्जति भोजनं मुपे
 वि दाशुपे भजति सुनरं वस्तु ।
 दृगे चन प्रियते विश्व आ पुरु
 जजो यो अस्य तवियामशुकुधत् ॥ ७ ॥
- ॥ १० ॥

सं यज्जनौ सुघनौ विम्बवार्धसौ
अपेदिन्द्रो मघवा गोपुं शुभ्रिपुं ।
युजं ह्युन्यमरुत प्रवेपुन्
युदीं गर्यं सृजते सत्वमिधुनिः
सहस्रसामाग्निर्वेशि गृणीपे
शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त
तस्मिन् क्षत्रममवत् त्वेपमस्तु

॥ १५० ॥ (ऋ० ५।३।५।१-८)

प्रभूवसुराग्निरस । अनुष्टुप्, ८ पङ्क्ति ।

यस्ते साधिष्ठोऽवसं इन्द्र क्रतुप्रमा मरं ।
असम्यं चर्षणीसहं सस्मि वाजेषु दुष्टरम् ॥ १ ॥
यादिन्द्र ते चतस्रो यच्छूरं सन्ति तिस्रः ।
यद् वा पञ्च क्षितीना—मवस्तु सु न आ मरं ॥ २ ॥
आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हमहे ।
वृषन्तिहि जज्ञिष आभूमिन्द्र तुर्धणिः ॥ ३ ॥
वृषा हसि राधसे जज्ञिषे वृषिणं ते शवः ।
स्वशंरं ते धृपन्मनः सग्राहमिन्द्र पौस्यम् ॥ ४ ॥
त्वं तमिन्द्र मर्यं—ममिन्द्रयन्तमद्रिवः ।
सुरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥ ५ ॥
त्वामिद् वृषहन्तम जनांसो वृक्त्वर्हिपः ।
उग्रं पूर्वापुं पुष्यं हवन्ते वाजसातये ॥ ६ ॥
अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिपुं ।
मयावानं धनेधने याजयन्तमया रथम् ॥ ७ ॥
अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरंध्या ।
धयं शविष्ठु वायं
दिवि श्रवो दधामहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥ ८ ॥
॥ १५१ ॥ (ऋ० ५।३।५।१-६) त्रिष्टुप्, ऋगी ।
म आ गमदिन्द्रो यो धर्मनां
चिक्वत् दातुं दामनो रथिणाम् ।
धन्वन्वरो न धर्मगन्तुयानः
ध्वमानः पिबतु हृद्यमंशुम्

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १ ॥

आ ते हनू हरिवः शरु शिप्रे
रुहत् सोमो न पर्यतस्य पृष्टे ।
अनुं त्वा राजघ्रवतो न हिन्यन्
गीर्मिर्मदेम पुरुहत् विभ्ये ॥ २ ॥
चक्रं न वृत्त पुंग्रहत् वेपते
मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः ।
रथादधि त्वा जरिता संदावृष
कृविष्णु स्तोपन्मघवन् पुरुवसुः ॥ ३ ॥
एष प्रावेव जरिता तं इन्द्र
इयति वाचं बृहदाशुपाणः ।
प्र सव्येन मघवन् यंसि रायः
प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः ॥ ४ ॥
वृषां त्वा वृषणं वर्धतु द्यौः
वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम् ।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र
वृषक्रतो वृषा वज्रिन् भरं धाः ॥ ५ ॥
यो रोहितौ वाजिनो वाजिर्नवान्
त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट ।
यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां
धृतरथाय मरतो दुबोया ॥ ६ ॥
॥ १५२ ॥ ऋ० ५।३।७।१-५ ।
मौमोऽत्र । त्रिष्टुप् ।
सं भानुनां यतते सूर्यस्य
आजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वज्ञाः ।
तस्मा अमृधा उपसो व्युञ्जान्
य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥ १ ॥
समिद्धाग्निर्वनवत् स्तीर्णवर्हिः
युक्तप्रावा सुतसोमो जराते ।
प्रावापो यस्यपिरं यदन्ति
अयदध्ययुर्द्विपाव सिन्धुम् ॥ २ ॥

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति
य इ वहाति महिषीमिषिराम् ।
आस्यं धवस्याद् रथ आ च घोपात्
पुरु सहस्रा परिं वर्तयाते ॥ ३ ॥
न स राजा व्ययते यस्मिन्निन्द्रः
तीव्रं सोमं पिबति गोसंखायम् ।
आ संत्वनरजति हन्ति वृत्रं
क्षेति क्षितीः सुमगो नाम पुष्यन् ॥ ४ ॥
पुष्यात् क्षेमं अमि योगे भवाति
उमे वृती संयती सं जयाति ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्रा भवाति
य इन्द्राय सुतसोमो ददात् ॥ ५ ॥
॥ १५३ ॥ (ऋ० ५।३।१-५) अनुष्टुप् ।
उरोष्टे इन्द्र राधसो विभी रातिः शतक्रतो ।
अर्धा नो विश्वचर्षणे शुभ्रा सुश्रव मंहय ॥ १ ॥
यदीमिन्द्र श्रवाय्य—मिषं शविष्ठ क्षुषिपे ।
पुत्रये दीधिभ्रुस्तंमं हिरण्यवर्षण दुष्टरम् ॥ २ ॥
शुष्मांसो ये ते अद्रियो मेहना केतसापः ।
उमा देवाचमिष्टये दिवश्च गमश्च राजयः ॥ ३ ॥
उतो नो अस्य कस्य चिद् दक्षस्य तव वृत्रहन् ।
असभ्यं नृगणमा मरु—ऽसभ्यं नृगणस्यसे ॥ ४ ॥
नू तं आभिरभिष्टिभि—स्तव शर्मच्छतक्रतो ।
इन्द्र स्याम सुगोपाः शर स्याम सुगोपाः ॥ ५ ॥
॥ १५४ ॥ (ऋ० ५।३।१-५) अनुष्टुप्, ५ पङ्क्ति ।
यदिन्द्र चित्र मेहना ऽस्ति त्वादातमद्रियः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या मरु ॥ १ ॥
यन्मन्त्ये वरेण्य—मिन्द्रं शुश्रुं तदा मरु ।
विद्याम् तस्य ते वय—मकूपारस्य क्षयने ॥ २ ॥
यत् ते दित्सु प्रराष्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन हृह्वा चिदद्रिच आ वाजं दीपि सातये ॥ ३ ॥
महिष्ठे वो मघोनां राजानं चर्षणीनाम् ।
इन्द्रमुप प्रदास्तये पूर्वोभिर्जुजुपे गिरः ॥ ४ ॥

अस्मा इत् कायं वच उक्यमिन्द्राय शंस्यम् ।
तस्मा उ ग्रहवाहसे
गिर्गे वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥ ५ ॥
॥ १५५ ॥ (ऋ० ५।४।१-४) ऋग्, ४ त्रिष्टुप् ।
आ याहद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिय ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम् ॥ १ ॥
वृषा प्रावा वृषा मद्रो वृषा सोमो अयं सुतः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम् ॥ २ ॥
वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्जिवाभिरुतिभिः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम् ॥ ३ ॥
ऋजीपी वजी वृषमस्तुरापाद्
शुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासद्वर्वाङ्
माध्यंदिने सर्वने मत्सदिन्द्रः ॥ ४ ॥
॥ १५६ ॥ (ऋ० ८।३।१-७)
श्यानाश्च आश्रयः । शकरो, ७ महापङ्क्तिः ।
अघितासि सुन्वतो वृक्षवर्हिपः पिया सोमं
मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतनाः
उरु जयः समंस्तुजि—न्मरुत्वा इन्द्र सत्पते ॥ १ ॥
प्राव स्तोतारं मघव—न्नव त्वां पिया सोमं
मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतनाः
उरु जयः समंस्तुजि—न्मरुत्वा इन्द्र सत्पते ॥ २ ॥
ऊर्जा देवा अवस्यो—जसा त्वां पिया सोमं
मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतनाः
उरु जयः समंस्तुजि—न्मरुत्वा इन्द्र सत्पते ॥ ३ ॥
जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिया सोमं
मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतनाः
उरु जयः समंस्तुजि—न्मरुत्वा इन्द्र सत्पते ॥ ४ ॥

जनिताभ्यानां जनिता गयोमसि पिया सोमं
मदाय कं शतक्रतो ।

यं तै भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतनाः
उरु जयः समप्सुजि—न्मरत्वो इन्द्र सत्पते ॥ ५ ॥

अत्रीणां स्तोममद्रिवो मद्रस्त्रुधि पिया सोमं
मदाय कं शतक्रतो ।

यं तै भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतनाः
उरु जयः समप्सुजि—न्मरत्वो इन्द्र सत्पते ॥ ६ ॥

श्यावाश्वस्य सुन्यत—स्तथा शृणु यथाशृणोः
अत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।

प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इद्रुपाह
इन्द्र ब्रह्मणि वर्धयन् ॥ ७ ॥

॥ १५७ ॥ (क्र० ८।३।१-७)

महापृष्ठी, १ अतिजगती ।

प्रेदं ब्रह्म वृत्रतयैष्वाविथ प्र सुन्यतः शचीपते
इन्द्र विश्वाभिरुतिभिः ।

माध्यंदिनस्य सर्वनस्य वृत्रहन्
अनेद्य पिया सोमस्य वज्रिवः ॥ १ ॥

सेहान उग्र पृतना अभि द्रुहः शचीपते
इन्द्र विश्वाभिरुतिभिः ।

माध्यंदिनस्य सर्वनस्य वृत्रहन्नेद्य
पिया सोमस्य वज्रिवः ॥ २ ॥

एकुरालस्य भुवनस्य राजसि शचीपते
इन्द्र विश्वाभिरुतिभिः ।

माध्यंदिनस्य सर्वनस्य वृत्रहन्नेद्य
पिया सोमस्य वज्रिवः ॥ ३ ॥

सम्भार्याना ययसि त्वमेक इच्छचीपते
इन्द्र विश्वाभिरुतिभिः ।

माध्यंदिनस्य सर्वनस्य वृत्रहन्नेद्य
पिया सोमस्य वज्रिवः ॥ ४ ॥

क्षेमस्य च प्रयुजंश्च त्वमीदित्ये शचीपते
इन्द्र विश्वाभिरुतिभिः ।

माध्यंदिनस्य सर्वनस्य वृत्रहन्नेद्य
पिया सोमस्य वज्रिवः ॥ ५ ॥

क्षत्राय त्वमवसि न त्वमाविथ शचीपते
इन्द्र विश्वाभिरुतिभिः ।

माध्यंदिनस्य सर्वनस्य वृत्रहन्नेद्य
पिया सोमस्य वज्रिवः ॥ ६ ॥

श्यावाश्वस्य रेभंत—स्तथा शृणु यथाशृणोः
अत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।

प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इद्रुपाह
इन्द्र अत्राणि वर्धयन् ॥ ७ ॥

॥ १५८ ॥ (सू० ८।११।१-७)

आत्रयो अपाला । अनुश्रुप, १-२ पृष्ठी ।

कन्यां वारंवायती सोममपि सुतायिदत् ।
अस्तं भरन्त्यत्रवी—दिन्द्राय सुनवै त्वा

शकार्यं सुनवै त्वा ॥ १ ॥
असौ य पपि वीरुको गृहगृहं विचारकशत् ।

इमं जग्मंसुतं पिय धानावन्तं करम्भिर्ण
अपुपर्वन्तमुक्थिनम् ॥ २ ॥

आ चून त्वां चिकित्सामो ऽधि चून त्वा नेमसि ।
शनीरिव शनकैरिवे—न्द्रायिन्द्रो परि स्रव ॥ ३ ॥

कुविच्छकत् कुवित् करत् कुविन्नो वस्यसस्करत् ।
कुवित् पतिद्विषो यती—रिन्द्रैण संगमामहै ॥ ४ ॥

इमानि त्रीणि विष्टया तानीन्द्र वि रोहय ।
शिरस्ततस्योर्वेद्य—मादिदं म उपोदरे ॥ ५ ॥

असौ च या न उर्वरा—दिमां त्वन्मम ।
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा हृषि ॥ ६ ॥

खे रयस्य खेऽनसुः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्णु—त्यर्कणोः सूर्यत्वचम् ॥ ७ ॥

॥ १५१ ॥ (ऋ० ८।४।१-२७)
विषमना वैषमः । सगिक् ।

सखायं आ शिपामहि प्रहोन्द्राय वृजिर्णे ।
स्तुप ऊ पु वो नृत्तमाय ध्रुणवे ॥ १ ॥
शर्वसा हारिं श्रुतो वृत्रहत्येन वृन्दा ।
मूर्धमवोनी अति शूर दाशसि ॥ २ ॥
स नः स्तवान् आ भर् रयि चित्रध्रुवस्तमम् ।
निरेके चिद् यो हरिवो वसुर्ददिः ॥ ३ ॥
आ निरेकमुत प्रिय—मिन्द्र दधि जनानाम् ।
धूपता घृष्णो स्तवमान् आ भर् ॥ ४ ॥
न ते सव्यं न वक्षिणं हस्तं चरन्त आमुः ।
न परिवार्यो हरिवो गर्वधिपु ॥ ५ ॥
आ त्वा गोभिरेव प्रजं गोभिर्ऋणोम्याद्रिवः ।
आ स्मा कामं जरितुरा मनः पूण ॥ ६ ॥
विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृत्रहन्तम् ।
उप्रं प्रणेतृधि पू वंसा गहि ॥ ७ ॥
घयं ते अस्य वृत्रहन् विधामं शूर नव्यंसः ।
वसोः स्पर्हस्यं पुरुहूत राधंसः ॥ ८ ॥
इन्द्र यथा शस्ति ते उपरीतं नृतो शर्वः ।
अमृक्ता रातिः पुरुहूत दाशुर्णे ॥ ९ ॥
आ ध्रुपन्व महामह महे नृत्तम् राधसे ।
हृब्धश्चिद् दहा मयपन् मयत्तये ॥ १० ॥
नू अन्यत्रां चिदद्रिव—स्त्वचो जामुराशंसः ।
मघवन्ऋग्धि तत्र तन्न कुतिभिः ॥ ११ ॥
नहाङ्क नृतो त्व—द्वयं विन्दाभि राधसे ।
राये धृष्णाय शर्वसे च गिर्वणः ॥ १२ ॥
पन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिवाति सोम्यं मधुं ।
प्र राभंसा चोदयाते महिच्यना ॥ १३ ॥
उपो हरीणां पतिं दक्षं पुञ्चन्तमप्रवम् ।
नुनं भुधि स्तुवतो व्यस्यस्य ॥ १४ ॥
नः पुरा च न जज्ञे वीरतंरुस्त्वत् ।
नकी राया नैवया न सुन्दना ॥ १५ ॥

पदु मध्वो मदन्तरं सिञ्च वाग्ध्वयो अन्वसः ।
पवा हि वीरः स्तवते सुदावृधः ॥ १६ ॥
इन्द्रं स्यातहरीणां नकिष्टे पृथ्वस्तुतिम् ।
उदानंश शर्वसा न सुन्दना ॥ १७ ॥
तं वो वाजानां पति—महमहि श्रवस्यवः ।
अप्रायुमिर्धेभेभिर्वावृधेन्यम् ॥ १८ ॥
पतो निवद्रं स्तवामं सखायः स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीयो विश्वा अय्यस्येक इत् ॥ १९ ॥
अगौरुधाय गविषे दृक्षाय दस्म्यं वचः ।
धृताव स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २० ॥
यस्यार्मितानि वीर्यांश्च न राधः पर्येतये ।
ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥ २१ ॥
स्तुहीन्द्रं व्यश्वव—दनामं वाजिनं यमम् ।
अयो गयं महमानं धि दाशुर्णे ॥ २२ ॥
पवा नूनमुपं स्तुहि धैर्यश्व दशमं नवम् ।
सुर्विदांसं वृहेत्यं चरणीनाम् ॥ २३ ॥
वेत्या हि निश्चैतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
अहरहः शुन्व्युः परिपदांमिव ॥ २४ ॥
तदिन्द्राव आ भर् येनां दंसिष्ट कृत्येन ।
द्विता कुस्ताय शिश्वयो नि चोदय ॥ २५ ॥
तमुं त्वा नूनमीमहे नव्यं दंसिष्ट सन्यसे ।
स त्वं नो विश्वा अमिमातीः सुक्षणिः ॥ २६ ॥
य ऋक्षादंशो मुचद् यो धार्यात् सप्त सिन्धुषु ।
वर्धर्दासस्यं नुविनृम्ण नानमः ॥ २७ ॥
॥ १६० ॥ (ऋ० ८।४।१-२०; २९-३१; ३१)
वधोऽदयः । गायत्री, १ पादोवृत्तः; ५ षड्पु, ७ वृहती,
८ अजुडपु, ९ सतोवृहती, ११-१२ विपरीतोत्तरः प्रगाथः
(वृहती, विपरीता), १३ द्विपदा अगती, १४ वृहती
पिपीलिकमन्था, १५ कडुम्यकुशिरा, १६ विराट्, १७ अगती,
१८ उपरीक्षाद् वृहती, १९ वृहती, २० विषमपदा वृहती,
३० द्विपदा विराट्, ३१ सगिक् ।
त्वावतः पुरुवसो व्यमिन्द्र प्रणेतः ।
ससिं स्यातहरीणाम् ॥ १ ॥

त्वां हि सत्यमद्रिचो विन्न दातारमिपाम् ।
 विन्न दातारं रयीणाम् ॥ २ ॥
 वा यस्य ते महिमानं शतमृते शतंरुतो ।
 शीर्मिर्गुणन्ति कारयः ॥ ३ ॥
 सुनीथो घा स मत्थो यं मरतो यमर्यमा ।
 मित्रः पान्त्यद्रुहः ॥ ४ ॥
 दधानो गोमदश्वयन् सुवीर्यमादित्यजूत पथते ।
 सदा राया पुरस्पृहा ॥ ५ ॥
 तमिन्द्रं दानमीमहे शयसानमभीषम् ।
 ईशानं राय ईमहे ॥ ६ ॥
 तस्मिन् हि सन्त्यृतयो विश्वा अभीरवः सचा ।
 तमा यदन्तु सतयः पुरुषसुं
 मदाय हरयः सुतम् ॥ ७ ॥
 यस्ने मदो वरैष्यो य इन्द्र वृत्रहन्तमः ।
 य आददिः स्वभुंमिः यः पृतनासु दुष्टरः ॥ ८ ॥
 यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो घाजेष्यस्ति तरुता ।
 स नः शयिष्ठ सत्रना वसो गदि
 गुमेम गोमंति मजे ॥ ९ ॥
 गन्यो पु णो यथा पुरा ऽश्वयोत रथ्या ।
 धरियस्य महामद ॥ १० ॥
 मुदि ते दार वाधसो अन्तं विन्दामि सत्रा ।
 इनाम्या नो मघयस् विदद्रियो
 धियो वाजेभिराविश ॥ ११ ॥
 य ऋष्यः धायपत्नरा
 पिश्वेत् स र्वं जनिमा पुगपुतः ।
 न विश्वे मानुषा युगा
 इद्रं हयने तायिपं वृत्रघ्नयः ॥ १२ ॥
 स नो वाजेप्ययिता पुरुषयुतः
 पुरःश्रुता मगवां वृत्रदा भुवन् ॥ १३ ॥
 अग्निं वा वागमर्षयो मर्देषु गाय
 गिरा मदा विर्भसम ।
 इद्रं माम् धुव्यं शाबिन् वधो यथा ॥ १४ ॥

ददी रेकणस्तन्वै ददिवसुं
 ददिवजेपु पुरुहूत वाजिनम् । नूनमथ ॥ १५ ॥
 विश्वेवापामिज्यन्तं वसूनां
 सास्रह्नांसं चिदस्य वर्षसः ।
 रूपयतो नूनमत्यथं ॥ १६ ॥
 महः सु वो अरमिपे स्तवामहे
 मीळहुपे अरगमाय जग्मये ।
 यज्ञेभिर्गीर्भिर्विश्वमनुपां मरतां
 इयक्षसि गायं त्वा नमसा गिरा ॥ १७ ॥
 ये पातयन्ते अजमभिः गिरीणां स्तुभिरेपाम् ।
 यज्ञं महिष्वणीनां सुस्रं तुविष्वणीनां प्राध्वरे ॥ १८ ॥
 प्रभङ्गं दुर्मतीना - मिन्द्रं शयिष्ठा भर ।
 रथिमसभ्यं युज्यं चोदयन्मते
 ज्येष्ठं चोदयन्मते ॥ १९ ॥
 सनिंतः सुसनिंतद्वर चित्र चेतिष्ठ सूनुत ।
 प्रासदा सत्राद् सहरिं सहन्तं
 मुज्युं वाजेपु पूर्वम् ॥ २० ॥
 अथ प्रियमिपिरायं पापिं सहस्रासनम् ।
 अश्वानामिन्न वृष्णाम् ॥ २१ ॥
 गाधो न युधमुपं यन्ति यधंप
 उप मा यन्ति यधंपः ॥ २० ॥
 अथ यद्यारथे गणे इतमुष्टं अचिरुदत् ।
 अथ भिवज्ञेषु विशति शता ॥ २१ ॥
 अथ स्या योपेणा मुदी प्रतीची यदांमस्यम् ।
 अधिदस्मा वि नीयते ॥ २३ ॥
 ॥ १६१ ॥ (अ० ६।१७।१-१५)
 बाहंस्वो मदा । शिष्टः १५ शिपरा शिष्टः ।
 पिया शोममभि यमुं तदं
 ऊर्यं गय्यं मदिं शृणान इन्द्र ।
 वि यो पृष्णो वधिरो यजदस्त्
 विश्वा वृत्रमित्रिया शर्वीभिः ॥ १ ॥

स ई पाहि य ऋजीपी तरुणे
यः शिप्रवान् वृषभो यो मर्तानाम् ।
यो गौत्रभिद् वज्रभृद् यो हरिष्ठाः
स इन्द्र चित्रां अमि रुन्धि वाजान् ॥ २ ॥
एवा पाहि प्रक्षया मन्दतु त्वा
श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीभिः ।
आविः सूर्यं रुणुहि पीपिहीपीं
जुहि शत्रून्मि गा इन्द्र रुन्धि ॥ ३ ॥
ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव
इमे पीता उक्षयन्त युमन्तम् ।
महामनुं तवसं विभूति-
मत्सरसो जह्वन्त प्रसाहम् ॥ ४ ॥
येभिः सूर्यमुपसं मन्दसानो
अवासयोऽपं दृळ्हानि दद्रुत् ।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं
नृत्या अच्युतं सृदसुस्परि स्वात् ॥ ५ ॥
तव क्रत्या तव तद् देसनाभिः
आमासु पन्वं शच्या नि दीधः ।
और्णोदुरं उस्त्रियाभ्यो वि दृळ्ह
उदुर्वाद् गा अंसुजो अङ्गिरस्वान् ॥ ६ ॥
प्रप्राथ क्षां महि दंसो व्युर्वी
उप धामुषो बृहदिन्द्र स्तभायः ।
अथारयो रोदसी देवपुत्रे
प्रक्षे मातरा युद्धी ऋतस्य ॥ ७ ॥
अथ त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवाः
एकं तवसं दधिरे भराय ।
अदेयो यदभ्योहिष्ट देवान्
स्वर्पाता वृणत इन्द्रमत्र ॥ ८ ॥
अथ द्यौश्चित् ते अप सा नु वज्राद्
द्वितानमद् भियसा स्वस्यं मन्योः ।
अहिं यदिन्द्रो अग्योहसानं
नि विद् विश्वायुः शयथे ज्ञानं ॥ ९ ॥

अथ त्वष्टां ते मह उग्र वज्रं
सहस्रभृष्टं ववृतच्छताश्रिम् ।
निकाममरमणसं येन
नवन्तमहिं सं पिणगृजीपिन् ॥ १० ॥
वधुन् यं विश्वे मरुतः सजोषाः
पचच्छतं मंष्टिपां इन्द्र तुभ्यम् ।
पुषा विष्णुक्षीणि सर्वासि धावन्
वृत्रहर्णं मदिरमंशमसौ ॥ ११ ॥
आ क्षोदो महिं वृतं नदीनां
परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम् ।
तासामनुं प्रवतं इन्द्र पन्थो
प्राद्वेयो नीचीरपसंः समुद्रम् ॥ १२ ॥
एवा ता विश्वां चक्रुवांसमिन्द्रं
महामुग्रमंजुर्यं संहोदाम् ।
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रं
आ ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्त्यात् ॥ १३ ॥
स नो वाजाय ध्रुवस ह्ये च
राये धेहि युमतं इन्द्र विप्रान् ।
भृच्छाजे नवतं इन्द्र सुरान्
दिवि च स्मेधि पाथे न इन्द्र ॥ १४ ॥
अथा वाजं देवहितं सनेम
मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १५ ॥
॥ १६० ॥ (अ० ६।१८।१-१०)
तसु पुहि यो अमिर्मूलोज
वृन्वध्रवातः पुष्टत इन्द्रः ।
अपाळ्डसुधे सहमानननिः
गीर्मिर्धे वृपनं वदंनान् ॥ ११ ॥
स युष्मः सन्वा नृकृन् सुमहो
नुविभ्रशो मन्दुनो ऋईपी ।
बृहद्रेणुश्चर्वनो नानुपीपां
एकः कृशेनानमरन् महावां

त्वं ह तु त्यद्वदमायो दस्यु
 परकः कृष्टीरवनोरायाय ।
 अस्ति स्विद्रु वीर्यं तत् तं इन्द्र
 न स्विद्रस्ति तद्वदुया वि वीचः ॥ ३ ॥
 सदिद्धि तं तुविजातस्य मन्ये
 सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्यं ।
 उग्रमुग्रस्यं तुरस्तुरायायो
 अरघस्य रघुतुरो वभूव ॥ ४ ॥
 तन्नः प्रले सत्यमस्तु गुप्ते
 इत्या वदद्विधंलमाङ्गिरोभिः ।
 हर्षच्युतच्युद् दस्मेपर्यन्तं
 श्रुणोः पुणे पि दुरो अस्य विर्वाः ॥ ५ ॥
 स हि धीमिदंद्यो अस्त्युग्र
 ईशानरुग्मद्वति वृत्रत्यै ।
 स तोवसाता तनये स वजी
 वितन्तसाय्या अमवत् समत्सु ॥ ६ ॥
 स मुग्मना जनिम मानुषाणां
 अमत्येन नास्नाति प्र संश्रै ।
 स पुष्टेन स शर्मसोत राया
 स धीर्येण नृतमः समोक्ताः ॥ ७ ॥
 स यो न मुहं न मिषु जतो भूत्
 गुमन्तनामा सुमुर्दि घुर्नि च ।
 पूणक् पिषुं शर्म्यं शृण्णामिन्द्रः
 पुंशं ध्यासायं शायषाय नृ चित्
 उदार्यता त्यक्षमा पर्यसा च
 यत्रदव्याय र्यमिन्द्र तिष्ठ ।
 पिप्य वसे हस्त भा दक्षिणत्रा
 धमि प्र मन्द पुष्टत्र माया
 धान्नेन शृण्वं वनिमिन्द्र हेती
 वसो नि धीयुदनिनं भीमा ।

गम्भीर्यं श्रुष्वया यो दुरोज
 अध्यानयद् दुरिता दम्भयञ्च ॥ १० ॥
 आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया
 तुविद्युम्न तुविवात्रेभिर्वाक् । ॥ ३ ॥
 याहि सूनो सहस्रो यस्य नू चित्
 अदेव ईशे पुरुहूत योतीः ॥ ११ ॥
 प्र तुविद्युन्नस्य स्थविरस्य घृन्वेः
 दिवो ररण्डो महिमा पृथिव्याः । ॥ ४ ॥
 नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति
 न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥ १२ ॥
 प्र तत् तं अद्या करणं कृतं भूत्
 कुत्सं यदायुमतिधिग्वमसौ ।
 पुरु सहस्रा नि शिशा अभि ह्यं
 उत् त्वैषाणं धृपता निनेथ ॥ १३ ॥
 अनु त्वाहिष्णे अर्ध देव देवा
 मद्रुन् विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
 करो यत्र चरिषो वाधितार्य
 दिवे जनाय तन्वे शृणानः ॥ १४ ॥
 अनु चाघापृथिवी तत् त ओजो
 अमत्यां जिहत् इन्द्र देवाः ।
 कृष्या रून्तो अहंतं यत् ते अस्ति
 उक्थं नवीयो जनयस्य यजेः ॥ १५ ॥

॥ १६३ ॥ (अ० ६।१९।१-१३)

महां इन्द्रो नृपदा र्वर्षणिप्रा
 उन द्वियर्हो अमिनः सहोमिः ।
 अस्मदांघायुधे धीर्याय
 उदाः पूषुः सुरहतः वरुभिर्भूत् ॥ १ ॥
 इन्द्रमेव पिपणां सातये धाय्
 वृहर्तमूष्यमजरं युवानम् । ॥ ९ ॥
 अर्पाब्देन शार्यसा दानुधासं
 स्रष्टक्रिद् यो योयुधे अस्ताधि ॥ २ ॥

पृथु करन्ना बहुला गर्भस्तीः ।
 अस्मद्युक् स मिमीहि श्रवांसि ।
 युयेवं पृथ्व, पशुया दम्नना
 अस्मां इन्द्राभ्या वयुत्स्वाजौ ॥ ३ ॥
 त च इन्द्रं चतिर्नमस्य शार्कैः
 इह नूनं वाज्रपन्तौ हुवेम ।
 यथा चित् पूर्वं जरितारं आसुः
 अनेद्या अनवद्या आरंष्टाः ॥ ४ ॥
 धृतमंतो धनदाः सोमंवृद्धः
 स हि वामस्य वसुं न पुंशु ।
 सं जग्मिरे पृथ्यां रायौ असिन्
 समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥ ५ ॥
 शर्विष्ठ न आ भर शूर शवः
 भोजिप्रमोजौ अमिभूत उग्रम् ।
 विश्वां युद्धा वृष्ण्या मातृपाणां
 अस्मभ्यं दा हरिवो माद्रयध्वं ॥ ६ ॥
 यस्ते मर्दः पृतनापाळमृध
 इन्द्र तं न आ भर शशुवांसम् ।
 येन तोकस्य तनयस्य सातौ
 मैसीमहि जिगीवांसुस्त्योताः ॥ ७ ॥
 आ नो मर वृषणं शुष्ममिन्द्र
 धनस्पृष्टं शशुवांसं सुदक्षम् ।
 येन वंसां पृतनासु शत्रून्
 तयोतिर्मिहृत जार्मीरजामीन् ॥ ८ ॥
 आ ते शुष्मो वृषभ पंतु पश्चात्
 उक्तपदधरादा पुरस्तात् ।
 आ विश्वतो अमि समेत्योर्वाङ्
 इन्द्रं युद्धं स्वर्कदेहासे ॥ ९ ॥
 नवत् तं इन्द्रं नृत्तमाभिरूती
 वैसीमहि वाम श्रोमतेभिः ।

इन्धे हि वस्वं उभयस्य राजन्
 धा रत्नं महि स्थर बृहन्तम् ॥ १० ॥
 मरुत्वंतं वृषभं वावृधानं
 अर्कवारिं दिव्यं शासामिन्द्रम् ।
 विश्वासाहमवसे नूतनाय
 उग्रं संहोदामिह तं हुवेम ॥ ११ ॥
 जनं वज्रिन् महि चिन्मन्त्र्यमानं
 प्रभ्यो नृभ्यो रन्ध्र्या येष्वसि ।
 अथा हि त्वां पृथिव्यां शूरसातौ
 हवामहे तनये गोष्वप्सु ॥ १२ ॥
 वयं तं पृमिः पुंशुहृत सत्यैः
 शत्रोः शत्रोरुत्तर इत् स्याम ।
 भ्रन्तो वृत्राण्युमर्यानि शूर
 राया मदेम बृहता त्योताः ॥ १३ ॥
 ॥ १६४ ॥ (क्र० ६।०।१-१३) त्रिष्टुप्, ७ त्रिराट् ।
 शौने य इन्द्रमि भूमार्यः
 तस्यौ रयिः शर्वसा पृत्सु जनान् ।
 तं नः सहस्रं मरमुर्वरासां
 दृद्धि संनो सहसो वृत्रतुरम् ॥ १ ॥
 दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रा
 असुर्यं देवेभिर्घायि विद्ववम् ।
 अहिं यद् वृत्रमपो वंश्रिवांसं
 हर्षजोषिन् विष्ण्या सत्रान् ॥ २ ॥
 त्वयं भोजीयान् तवसुस्तर्वीयान्
 वृत्तमहोन्द्रो वृद्धमहा ।
 राजामवमर्चुनः सोम्यस्य
 विश्वासां यत् पुरां दृष्टुमावत् ॥ ३ ॥
 शतैरपद्रन् पणयं इन्द्रान्
 दशौणये कवयेऽर्कसातौ ।
 वधे शुष्मस्याशुपस्य मायाः
 पित्वो नारिरेञ्जीत् किं चान प्र ॥ ४ ॥

महो वृहो अर्प विदमार्यु धायि
 वज्रस्य यत् पतने पादि शुष्णाः ।
 उरु प सस्य सारथये क्रुः
 इन्द्र. कुत्साय सूर्यस्य सार्ता
 प्र श्येनो न मन्दिरेमंशाम्भै
 शिरो दासस्य नमुचेमथायन् ।
 प्रायत्रमो साप्य ससन्त
 पूणध्राया समिग्य सं स्वन्ति
 पि पिप्रोरहिमायस्य इह्वाः
 पुरो वज्रिन्त्रमा न ददः ।
 सुदामन् तद् रेणो अग्रमूष्यं
 ऋजिदने दात्रं दाशुपे दाः
 स वेतसु दशमाय दशोपि
 नृत्तजिमिन्द्रः स्वमिष्टिसुन्न ।
 आ नुप्रं शदुदिम चोतनाय
 मातुर्न सीमुप सृजा इयधै
 स ई स्पृधो यनते अर्पितातो
 विभ्रद् यज्रं वृप्रहण गर्भस्त्रौ ।
 तिप्रदरो अच्यम्नेव गते
 यचोयुजां घहत् इन्द्रमृपम्
 सनेम तेऽयमा नर्व्य इन्द्र
 प्र पुर्यं स्तयन्त एना युष्मः ।
 एन यत् पुरः शर्म शारदीदत्
 दन् दार्मी. पुरकृगाय शिश्न
 म्ब वृध इन्द्र पुर्यो भू.
 शिष्यम्वदुदानं काप्याय ।
 परा नर्षयाम्बमनदेयं
 मदे शिषे दंदायु म्वं नपांगम्
 म्ब धुर्निगिन्द्र धुर्निमती.
 अजोप म्बरा न म्बर्गतीः ।

प्र यत् समुद्रमतिं शूर पापि
 पारया तुवंशं यदुं स्वस्ति
 तजं ह स्वदिन्द्र विभ्वंमाजौ
 ॥ ५ ॥ सुस्तो धुनीचुमुपी या ह सिध्वं ।
 दीदयदित तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन्
 द्रमीतिरिष्मभृतिः पुत्र्युकेः ॥ १३ ॥
 ॥ १६५ ॥ (ऋ० ६।११।१-८, १०, ११)
 ॥ ६ ॥ इमा उं त्वा पुस्तमस्य कारोः
 ह्ये वीर ह्य्या हवन्ते ।
 धियो रथेग्रामजरं नवीयो
 रयिर्विभृतिरीयते वक्षस्या
 ॥ ७ ॥ तमुं स्तुप इन्द्रं यो विदानो
 गिर्वाहसं गीर्भियंभृदम् ।
 यस्य दिवमतिं म्हा पृथिन्या.
 पुंरुमायस्यं गिरिचे महित्वम्
 ॥ ८ ॥ स इत् तमोऽवयुन ततन्वत्
 सूर्येण वयुनवञ्चकार ।
 कदा ते मतीं अमृतस्य धाम
 इयंक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः
 ॥ ९ ॥ यस्ता चकार स कुहं स्वदिन्द्रः
 कमा जनं चरति वासु विशु ।
 कस्ते यद्यो मनसे शं वराय
 को अर्षं इन्द्र क्तमः स होता
 इदा हि ते वेदिपतः पुराजाः
 ॥ १० ॥ प्रजासं आसुः पुंरुत् सार्पायः ।
 ये मध्यमासं उत नृतनास
 उतायमस्यं पुरुहत् बोधि
 ॥ ११ ॥ ते पृच्छन्तोऽयंरासः पराणि
 प्रजा तं इन्द्र धृत्यातु येसुः ।
 अर्चामसि वीर प्रज्ञयाहो
 यादेय विप्र तात् स्यां म्हाहान्म
 ॥ ६ ॥

अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तंस्थे
महिं जज्ञानमभि तत् सु तिष्ठ ।

तत्र प्रलेन युज्येन सख्या
वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व

स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य
ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः ।

त्वं ह्याहुपिः प्रदिविं पितृणां
शश्वद् वभूर्य सुहव पृष्टौ

इम उं त्वा पुरुशाक प्रयज्यो
जरितारो अर्भ्यचन्त्यकैः ।

श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो
न त्वावो अन्यो अमृत त्वदस्ति

स नो योधि पुरपता सुगोपु
उत दुर्गेपुं पथिठद् विदानः ।

ये अग्रमास उरवो वहिष्ठाः
तेभिर्न इन्द्रामि वक्षि वाजम्

॥ १६६ ॥ (अ० ६।१०।१-११)

य एक इन्द्रव्यञ्चर्षणीनां
इन्द्रं तं गीर्भिरर्भ्यर्चे आभिः ।

यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्
सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्रवान्

तमुं नः पूर्वं पितरो नवग्वाः
सप्त विमसो अभि वाजयन्तः ।

नक्षत्राभं तर्तुरिं पथेष्टां
अद्रोववाचं मतिभिः शर्विष्ठम्

तमीमह इन्द्रमस्य रायः
पुरुवीरस्य नूवतः पुरुक्षोः ।

यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्
तमा भर हरिवो माद्र्यर्भ्यं

तन्नो वि वौचो यदि ते पुरा चित्
जरितारं आनदाः सुम्नमिन्द्र ।

कस्तौ भागः किं वयो दुध खिहः
पुरंहत पुरुवसोऽसुरधः

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्टां
इन्द्र वेणी वस्वरी यस्य नू गीः ।

तुविश्रामं तुविकुर्मि रंभोदां
गातुमिषे नक्षेते तुभ्रमच्छ

अया हृ त्यं मायया वावृधानं
मनोजुवां स्वतवः पर्वतेन ।

अच्युता चिद् वीळिता स्वौजो
रुजो वि हृब्हा धृपता विराश्विन्

तं वो धिया नव्यस्या शर्विष्ठं
प्रत्न प्रत्नवत् परितंसयर्भ्यं ।

स नो वक्षदनिमानः सुवह्य
इन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि

आ जनाय दुर्हणे पार्थिवानि
दिव्यानि दीपयोऽतरिक्षा ।

तपो वृषन् विश्वतः शोचिषा तान्
ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्वं

भुवो जनस्य दिव्यस्य राज्ञा
पार्थिवस्य जगत्स्वेषसंदक् ।

धिष्य वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते
विश्वो अजुयं दयसे वि मायाः

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्ति
शंभुत्प्रीय वृहतीममृध्राम् ।

यया दासान्यार्याणि वृत्रा
करो वध्नन् सुतुका नाहुपाणि

स नो नियुज्जिः पुरुहूत वेधो
विश्वचारामिरा गीहि प्रयज्यो ।

न या अदेवो वरते न देव
आभिर्याहि तूयमा मद्रयद्रिक्

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ १० ॥

॥ १२ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १६७ ॥ (ऋ० ६।१३।१-१०)

सुतं इत् त्वं निर्मित्वा इन्द्र सोमे
स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमानं उच्ये ।

यद् वा युक्ताभ्यां मघवन् हरिभ्यां
विभ्रद् वज्रं बाहोरिन्द्र यासिं

॥ १ ॥

यद् वा द्विवि पायं सुष्विमिन्द्र
वृत्रहृत्येऽवसिं शूरसातौ ।

यद् वा दक्षस्य विभ्युषो अरिभ्यद्
अरन्धयः शर्यत इन्द्र दस्यून्

॥ २ ॥

पातां सुतमिन्द्रो अस्तु सोमै
प्रणेनीरुप्रो जरितारमृती ।

कर्ता वीरप्य सुष्वय उ लोकं
दाता वसु स्तुवते कीरयं चित्

॥ ३ ॥

गन्तेयान्ति सर्वना हरिभ्यां
वृत्रिवज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः ।

कर्ता वीरं नयं सर्ववीरं

श्रोता हव्यं गृणतः स्तोमंवाहाः

॥ ४ ॥

असं वयं यद् वायान तद् विविष्म
इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः ।

सुते सोमै स्तुमसि शंसदुक्थ

इन्द्राय ब्रह्म वर्धनं ययासत्

॥ ५ ॥

ब्रह्मणि द्वि चरुषे वर्धेनानि

तायत् त इन्द्र मतिमिर्विविष्मः ।

सुते सोमै सुतपाः शंतेमानि

रान्द्यां क्रियास्म यश्र्णानि युधैः

॥ ६ ॥

स नो योधि पुरोव्याशं रराणः

पिषा तु सोमं गोर्धुजीकमिन्द्र ।

एदं वहिर्यजमानस्य मीद

उरं ह्यधि त्यापत उं शोभम्

॥ ७ ॥

म मन्दस्या ह्यनु जोर्यमुम

प्र त्यां यज्ञासं इमे अश्रुयन्तु ।

प्रेमे हवांसः पुरहृतमस्मे

आ त्वेयं धीरवंस इन्द्र यम्याः

॥ ८ ॥

तं वः सप्रायः सं यथा सुतेषु

सोमैभिरां पृणता भोजमिन्द्रम् ।

कुवित् तस्मा असति नो भराय

न सुष्विमिन्द्रोऽवसि मृघाति

॥ ९ ॥

पवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमै

भूरुजिषु क्षयदिन्मघोनः ।

असद् यथा जरित्र उत सूरिः

इन्द्रो सुयो विश्ववारस्य दाता

॥ १० ॥

॥ १६८ ॥ (ऋ० ६।१४।१-१०)

वृषा मद इन्द्रे श्लोकं उन्था

सच्चा सोमेषु सुतपा ऋजुषी ।

अर्चय्यो मघवा नृभ्य उन्थैः

दुक्षो राजा गिरामक्षितोतिः

॥ १ ॥

ततुरिर्वारो नयो विचैताः

श्रोता हव्यं गृणत उर्व्यूतिः ।

वसुः शंसो नरां कारुषाया

वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम्

॥ २ ॥

अश्वो न चक्रयोः शर वृहन्

प्र ते मद्वा रिंरिचे रोदस्योः ।

वृक्षस्य नु ते पुरहृत वया

व्युत्तयो रुहृदिर्षि पूर्वीः

॥ ३ ॥

शचीवतस्ते पुरशाक शक्वा

गवांमिष श्रुतयः सुंचरणीः ।

वत्सानां न तंतयस्त इन्द्र

दामन्वन्तो अदामानः सुदामन्

॥ ४ ॥

अन्यदथ कर्वरमन्यदु श्वो

असंश सन्मुहुंराचक्रिर्दः ।

मिषो नो अप घर्षणश्च पूषा

अयो घशस्य पर्येतास्ति

॥ ५ ॥

धि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठाद् उभयेभिर्निद्रानयन्त युधैः ।		त्वमेपां त्रियुरा शर्वीसि	१
तं त्वाभिः सुपुतिभिर्वाजयंत आजि न जंमुर्गिर्वाहो धर्वाः	॥ ६ ॥	जहि वृष्ण्यानि रुणुही परांचः शरौ वा शूरं वनते शरीरैः	॥ ३ ॥
न यं जरति शरदो न मासा न घाव इन्द्रं मवकुर्गयति ।		तनुरुचा तरुपि यत् कृष्वेतैः । तोके वा गोषु तनये यदन्सु	
वृद्धस्य चिद् वर्धतामस्य तनूः स्तोमैर्मिदुनयैश्च शन्यमाना	॥ ७ ॥	वि मन्दसी उर्वरासु व्रतते नहि त्या शूरो न तुरो न घृष्णुः	॥ ४ ॥
न वीळ्ये नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युज्जाय स्तुवान् ।		इन्द्र नकिङ्का प्रत्यस्त्येषा विश्वं जातान्यभ्यासि तानि	॥ ५ ॥
अजा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्या गम्भीरे चिद् भगति गाधर्मसै	॥ ८ ॥	स पत्यत उमयोनृष्णमयोः यदी वेचसः समिये हवन्ते ।	
गम्भीरेण न उरुणा मद्रिन् प्रेपो यन्धि सुतपाजन् धार्जान् ।		वृत्रे वा महो नृचति श्रयं वा ज्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैतै	॥ ६ ॥
स्था ऊ पु ऊर्षं ऊती अरिपण्यन् अकोर्ग्युष्टौ परितम्ब्यायाम्	॥ ९ ॥	अथे स्ता ते चर्षणयो यदेजान् इन्द्रं नातोत मंवा वरुता ।	
सचस्य नायमरंसे अमीकै इतो वा तमिन्द्र पाहि रिपः ।		असाकासो ये नृतमासो अयं इन्द्रं सूर्यो दधिरे पुरो नः	॥ ७ ॥
अमा चैनमरण्ये पाहि रिपो मदंम शतहिमाः सुपीराः	॥ १० ॥	अनु ते दायि मह इन्द्रियायं सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहर्त्ये ।	
॥ १६९ ॥ (ऋ० ६।१०।१-९)		अनु क्षनमनु सहो यजत्र इन्द्रं देवेभिरनु ते नृपते	॥ ८ ॥
या तं ऊतिरवमा या परमा या मच्यमेन्द्रं शुम्भिनास्ति ।		एवा नः स्पृज्ज समजा सुमस्तु इन्द्रं सारन्धि मिथतीरदेवीः ।	
तामिरु पु वृत्रहर्त्येऽधीर्न पमिश्च धार्जमहान् न उग्र	॥ १ ॥	विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो मरुद्वाजा उत तं इन्द्र नुनम्	॥ ९ ॥
आभिः स्पृषो मिथतीरपण्यन् अमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।		॥ १० ॥ (ऋ० ६।१०।१-८)	
आमिर्विश्वा अभियुजो त्रिपृचीः आर्याय विशोऽथं तारीर्दसीः	॥ २ ॥	श्रुधी न इन्द्र हयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः ।	
इन्द्रं जामयं उत येऽजामयो अर्वाचीनासो वनुवो युयुजे ।		सं यद् विशोऽयन्तु शूरसाता उग्रं नोऽयः पार्ये अहन् दा	॥ १ ॥

आ यस्मिन् हस्ते नयीं मिमिक्षुः ।
 आ रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ।
 आ रदमयो गर्भस्त्योः स्युरयोः ।
 आच्यन्नर्थासो वृषणो युजानाम् ॥ २ ॥
 ध्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुः ।
 धृणुर्वृषी शर्वसा दार्धिणावान् ।
 वसानो अर्कं सुरभि दशो कं ।
 स्वर्णं नृतविपरो बभूथ । ३ ॥
 स सोम आमिश्रतमः सुतो भूद् ।
 यस्मिन् पकिः पच्यते सन्ति धानाः ॥ ४ ॥
 इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकाराः ।
 उरुया शंसन्तो देवर्वाततमाः ॥ ४ ॥
 न ते अन्तः शर्वसो धाय्यस्य ।
 वि तु वावधे रोदसी महित्वा ।
 आ ता सुरिः पृणति तृतुजानो ।
 युयेवास्तु समीजमान ऊनी । ५ ॥
 पवोदिन्द्रः सहव ऋष्यो अस्तु ।
 ऊती अनृती हिरिदिप्रः सत्या ।
 एवा हि जातो अंसमात्योजाः ।
 पुरु च वृत्रा हनति नि दस्युन् ॥ ६ ॥
 ॥ १७३ ॥ (ऋ० ६।३०।१-५)
 भूय इद् वावृधे वीर्यीयं ।
 एकौ, अजुयो दयते वसनि ।
 प्र रिरिचे द्विच इन्द्रः पृथिव्या
 अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उमे ॥ १ ॥
 अघा मन्ये बृहदसुर्यमस्य
 यानि दाधार नक्रिरा मिनाति ।
 द्विचेद्विचे सूर्यो दशतो भूद्
 वि सप्रान्युर्विया सुकतुघात् ॥ २ ॥
 अघा चिभ्र चित् तदपो, नदीनां
 यदाभ्यो अरदो गातमिन्द्र ।

नि पर्वता बहसदो न सँदुः
 त्वया इब्दानि सुकतो रजांसि ॥ ३ ॥
 सत्यमित् तन्न त्वायो अन्यो अस्ति
 इन्द्रं देवो न मत्यो ज्यायान् ।
 अद्भ्राहिं परिशयानमणो
 अवांसुजो अपो अचडा समुद्रम् ॥ ४ ॥
 त्वमपो वि दुरो विपृचीः
 इन्द्रं दृढरमरुजः पर्वतस्य ।
 राजाभवो जगतश्चर्यणानां
 साकं सूर्यं जनयन् धामुपासम् ॥ ५ ॥
 ॥ १७४ ॥ (ऋ० ६।३०।१-५)
 अर्वाप्रयं विश्ववारं त उग्र
 इन्द्रं युक्तासो हरयो वहन्तु ।
 कीरिश्चिदि त्वा हवते स्वर्गान् ॥ १ ॥
 ऋषीमहिं सधमार्दस्ते अद्य
 प्रो द्रोणे हरयः कर्मागमन्
 पुनातासु ऋज्यन्तो अभूवन् ।
 इन्द्रो नो अस्य पूर्यः पपीयाद्
 दृक्षो मर्दस्य सोम्यस्य राजा ॥ २ ॥
 आसन्नाणार्सः शवसानमच्छ
 इन्द्रं सुचके रथ्यासो अर्थाः ।
 अमि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुः
 नृ विशु वायोरमृतं वि वस्येत् ॥ ३ ॥
 वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियति
 इन्द्रो मघोर्ना तुविकूर्मितमः ।
 यया वज्रिचः परियास्यंहो
 मघा च धृष्णो दयसे वि सुरीन् ॥ ४ ॥
 इन्द्रो वाजस्य स्वविरस्य दाता
 इन्द्रो गीर्मिर्वर्धता वृज्रमहाः ।
 इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्या
 आ ता सुरिः पृणति तृतुजानः ॥ ५ ॥
 (१९७७)

॥ १७५ ॥ (ऋ० ६।३।१-५)

अर्पादित उडु नश्चिप्रतमो
 महो मर्षद् शुमतीमिन्द्रहतिम् ।
 पन्थमो धीनि वैर्यस्य यामन्
 जर्नम्य राति वनते सुदारुः
 दृशाधिदा वंमतो मस्य कर्णा
 घोणादिन्द्रस्य तन्यति प्रुजाणः ।
 पयमेन देवहृतिवृत्त्याव्
 मस्य गिन्द्रमियमृच्यमाना
 ते यो धिया परमया पुपजां
 अत्रमिन्द्रमम्यनृप्यदः ।

अग्नां च गिरौ दधिरे समस्मिन्
 मदाश्च न्नामो अधि वर्धेदिन्द्रे
 यथाद् यं युज उत सोम इन्द्र
 यथाद् अत्र गिर उक्त्वा च मग्म ।
 यथादनमृपयो यामेप्रनोः
 यथां मायाः नारदो धाय इन्द्रम्
 यथा ज्ञान मदेमे अस्तामि
 यापृधानं राधने च धुतार्य ।
 महाप्रमयमे विप्र नूनं
 या थियांगम धृत्रत्यैयु

॥ १७६ ॥ (ऋ० ६।३।१-५)

मन्द्रम्यं कथेदिप्यम्य पट्टेः
 विप्रमग्नां वचनम्य मर्षे ।
 अथां नूनम्यं वचनम्यं देव
 इयो वृषम्य गृणते गोमप्रोः
 धयमृज्ञान पर्येदिमृषा
 अतर्धीतिनिश्रंतयुपज्ञान ।
 इन्द्रं वि वृषम्य वानुं
 पुनर्वेधोनिश्रंत वेधेदिन्द्रः
 अथ वेधेवदन्तो इयु कन्त
 इन्वा वाने इन्द्र इन्द्रिन्द्र ।

इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां
 शुचिजन्मन उपसंश्चकार ॥ ३ ॥
 अयं रौचयद्रुचो रुचानोडु
 अयं वांसयद् व्युत्तेन पूर्वाः ।
 ॥ १ ॥ अयमीयत ऋतयुग्मिरथैः ।
 स्वविदा नार्भेना चर्षणिप्राः ॥ ४ ॥
 नू गृणानो गृणते प्रल राजन्
 इपः पिन्व वसुदेयाय पूर्वाः ।
 ॥ २ ॥ अथ ओपधीरविषा वनानि
 गा अर्वतो नूनचसे रीरिहि ॥ ५ ॥

॥ १७७ ॥ (ऋ० ६।४।१-५)

इन्द्र पित्र तुभ्यं सुतो मदाय
 अर्व स्य हरी वि मुञ्चा सखाया ।
 ॥ ३ ॥ उत प्र गांय गण आ निपद्य
 अथा यहायं गृणते धयो धाः ॥ १ ॥
 अस्यं पिय यस्यं जज्ञान इन्द्र
 मदाय प्रत्वे अपियो विरश्चिन् ।
 ॥ ४ ॥ तमु ते गावो नर आपो अग्निः
 इन्दुं समहान् पीतये समसै ॥ २ ॥
 समिजे अहो सुत इन्द्र होम
 ॥ ५ ॥ आ त्वां यहन्तु हरयो धदिष्टाः ।

त्यायता मनस्ता जोहयीमि
 इन्द्रा यादि सुवितार्य मदे नं ॥ ३ ॥
 आ यादि शर्भेदुज्ञाता र्वाद्य
 ॥ १ ॥ इन्द्रं मदा मनस्ता नोमपेयम् ।
 उप प्रह्वाणि दृणय इमा नः
 अथां ते यञ्जन्त्येकं ययो धात् ॥ ४ ॥
 यदिन्द्र क्रिय पायं यरधम्
 ॥ २ ॥ यद् आ स्वे मर्दने यत्र पामि ।
 अतो नो यद्धमयमे त्रिपुषान्
 वृजोयोः पादि गिर्वनो मृग्निः ॥ ५ ॥

॥ १७८ ॥ (अ० ६।११।१-५)

अद्वैलमान उर्य याहि युद्धं
 तुभ्यै पवन्त इन्द्रवः सुतासः ।
 गाथो न वञ्चिन्स्वमोको अच्छ
 इन्द्रा गृहि प्रथमो युक्षिवांनाम् ॥ १ ॥
 या ते काकुत् सुरहता या वरिष्ठा
 यया शश्वत् पिबसि मध्वं ऊर्मिम् ।
 तया पाहि प्र ते अघ्यर्युरस्थात्
 सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गुण्युः ॥ २ ॥
 एष द्रुप्तो वृषभो विश्वरूप
 इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः ।
 एतं पिब हरिवः स्यात्तदग्र
 यस्येदिपि प्रदिचि यस्ते अग्रम् ॥ ३ ॥
 सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यान्
 अयं धेयाञ्चिकितुषे रणांय ।
 एतं तितिव्यं उर्य याहि युद्धं
 तेन विश्वास्तविपीरा पृणस्व ॥ ४ ॥
 ह्ययामसि त्येन्द्र याह्यार्ह
 अरं ते सोमस्तन्त्रं भवाति ।
 शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु
 प्रासाँ अय वृत्तनासु प्र विशु ॥ ५ ॥

॥ १७९ ॥ (अ० ६।११।१-४) अनुष्टुप्, ५ गृहती ।

प्रत्यस्मै पिपीपते विश्वानि विदुषे भर ।
 अरंगमाय जगमये उप्रध्याह्यने नरे ॥ १ ॥
 परमेन प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
 अर्मथेचिर्द्धजीपिण—मिन्द्रं सुतेमिरिन्दुभिः ॥ २ ॥
 यदी सुतेमिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूर्यथ ।
 पेदा विभ्यस्य मेधिरो धूपत् तंतमिदेपते ॥ ३ ॥
 अस्माअस्मा इन्द्रस्तो उर्ध्वयो प्र मंत सुतम् ।
 कृषित संमस्य जन्यस्य शर्षतो
 अमिदास्तेत्यस्परत् ॥ ४ ॥

॥ १८० ॥ (अ० ६।११।१-४) साम्प्ल ।

यस्य त्यच्छर्वरं मदे दिवोदासाय रुन्धयः ।
 अयं स सोमं इन्द्र ते सुतः पिबं ॥ १ ॥
 यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे ।
 अयं स सोमं इन्द्र ते सुतः पिबं ॥ २ ॥
 यस्य गा अन्तरदर्मनो मदे हृह्वा अगार्हजः ।
 अयं स सोमं इन्द्र ते सुतः पिबं ॥ ३ ॥
 यस्य मन्दानो अर्धसो मार्धानं दधिपे शर्यः ।
 अयं स सोमं इन्द्र ते सुतः पिबं ॥ ४ ॥

॥ १८१ ॥ (अ० ६।३।१।५)

सुराज्ञो मारदात्र । विष्टुप्, ५ शकरी ।

अमुरेको रयिपते रयीणां
 आ हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
 वि तोक्रे अप्सु तनये च सुरे
 अर्वाचन्त चर्पणयो विवाचः ॥ १ ॥
 त्वद्वियेन्द्र पार्थिवानि विश्वा
 अच्छ्युता चिच्छयावयन्ते रजांसि ।
 थायाशामा पर्यतासो वनानि
 विश्वं हृह्वं मयते अजमघ्रा ते ॥ २ ॥
 त्वं कुत्सेनाभि शुष्णामिन्द्र
 अशुर्य युष्य कुर्यवं गाविष्टौ ।
 ददा प्रपित्वे अप्य सूर्यस्य
 सुपायश्चक्रामविवे रपांसि ॥ ३ ॥
 त्वं शतान्यव शर्म्यरस्य
 पुरो जघन्याप्रतीनि दस्योः ।
 अशिक्षो यत्र शर्षा शचीवो
 दिवोदासाय सुन्वते सुतमे
 अर्द्धाजाय गृणते धर्मनि ॥ ४ ॥
 स मत्यसत्वन महते रणांय
 रथमा तिष्ठ तुविन्दुष्ण भीमम ।
 याहि प्रपथिन्नमोषं मद्रिक्
 प्र च धृत धायय चर्पणिभ्यः ॥ ५ ॥

॥ १८१ ॥ (ऋ० ६।३।१-१)

अपूर्व्यां पुकृतमान्यस्यै
 महे वीरार्यं तवसे तुरार्यं ।
 विरिञ्चने वाञ्छेण शर्तमानि
 वचांस्यासा स्थविंराय तक्षम्
 स मातरा सूर्येणा कवीनां
 अवांसयद् रजदग्निं गृणानः ।
 स्वाधीमिर्ऋकभिर्वायशान
 उदुस्त्रियाणामसृजन्नदानम्
 स वाह्निमिर्ऋकभिर्गोषु शश्वन्
 मितहृभिः पुरुहत्वा जिगाय ।
 पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्
 हृब्हा रंरोज कृधिभिः कृविः सन्
 स नीव्याभिर्जैरितारमच्छा
 महो वाजैर्भिर्महाद्भिश्च नृपैः ।
 पुरवीराभिर्वृषम क्षितीनां
 आ गिर्वणः सुविताय प्र याहि
 स सर्गेण शर्वसा तक्तो अत्यैः
 अप इन्द्रो दक्षिणतस्तुरापाद् ।
 इत्या सृजाना अनपावृदर्थे
 दिवेदिवे विविपुरप्रमृष्यम्

॥ १८२ ॥ (ऋ० ६।३।२-५)
 धनहोत्रो मात्मान । त्रिष्टुप् ।

य ओजिष्ठ इन्द्रं तं सु नो दा
 मदे वृषन्स्वमिष्टिर्दास्यान् ।
 सौधंरयं यो धनवत् स्वध्वो
 वृथा समस्तु सामहं दमिजान्
 त्वां ह्योन्द्रावसे विवांचो
 हर्षन्ने चरणयः शरसानो ।
 त्वं विप्रैर्मिषिं पृणीरंशायः
 त्वात् इत् मनेता याजमवी
 त्य नो इन्द्रोमयीं भूमिजान्
 दातां वृथाण्यार्यो च शर ।

यधीर्यनेय सुधितेभिरक्तैः
 आ पृत्सु दीपिं नृणां नृतम
 स त्वं न इन्द्राक्याभिरूती
 सन्ना विश्वायुरयिता वृषे भूः ।
 ॥ १ ॥ स्वर्पाता यदध्ययामसि त्वा
 युध्वन्तो नेमधिता, पृत्सु शर
 नूनं न इन्द्रापरार्यं, च स्या
 भवां मृळीक उते नो अभिष्टौ ।
 ॥ २ ॥ इत्या गुणन्तो महिनस्य शर्मन्
 दिवि ध्याम पायै गोपतमाः
 ॥ ५ ॥
 ॥ १८४ ॥ (ऋ० ६।२।५-५)
 सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीः
 वि च त्वद् यन्ति विभ्वो मनीषाः ।
 पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां
 पस्पध इन्द्रे अद्युक्थाकां
 ॥ १ ॥ पुरुहतो यः पुंगुर्त ऋभ्यां
 एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति युधैः
 रथो न महे शर्वसे यजानोऽ
 अस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत्
 ॥ २ ॥ न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीः
 इन्द्रं नक्षन्तीदमि धर्धर्यन्तीः ।
 यदि स्तोतारः शतं यत् सहस्रं
 गुणन्ति गिर्वणसं शं तदसौ
 ॥ ३ ॥ अस्मा एतद् दिव्यं कुर्वं मासा
 ॥ १ ॥ मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः ।
 जनं न धन्वन्नभि सं यदार्यः
 सत्रा वावृधुर्द्वनानि युधैः
 ॥ ४ ॥ अस्मा एतन्महाङ्गुपमस्मा
 ॥ २ ॥ इन्द्राय स्तोत्रं प्रतिभिरवाचि ।
 असद् यथा महति वृष्टव्यं
 इन्द्रो विश्वायुरयिता वृषधं
 ॥ ५ ॥

ऋतस्य वृधि वेधा अंपायि
 ध्रिये मनीसि देवासो अक्रुन् ।
 वर्धानो नाम महो यचोभिः
 वपुर्दृष्टायै वेन्या व्यावः
 धूमस्तमं दक्षं धेह्यसे
 सेधा जनानां पूर्वोररातीः ।
 वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिः
 धनस्य सातावसां अंविद्दु
 इन्द्र तुभ्यमिर्मघवन्नम
 वयं दात्रे हरियो मा वि वैनः ।
 नकिरापिर्दृष्टो मर्त्यत्रा
 किमङ्ग रंघ्रचोदनं त्वाहुः
 मा जस्वने वृषम नो ररीथा
 मा ते रेवतः सत्ये रिपाम ।
 पूर्वोष्टे इन्द्र निष्यद्यो जनैषु
 ज्ञेयसुष्योन् प्र वृहापृणतः
 उदध्राणीव स्तनयन्निष्यति
 इन्द्रो राधांस्यश्वानि गर्त्या ।
 त्यमि प्रदिवः कारुधाया
 मा त्वाद्दामान् आ दंभन् मघोर्नः
 अर्ष्यो घोर प्र महे सुतानां
 इन्द्राय मरु स हस्य राजा ।
 यः पृथ्याभिर्गत नृतनाभिः
 गीर्णियोवृधे गृणतामृषीणाम्
 अस्य मर्दे पुरु वर्षाभि विद्वान्
 इन्द्रो वृषार्ण्यप्रती जघान ।
 तमु प्र हौषि मधुमन्तमग्ने
 गोमै धीराय दिमिणे पिर्ययै
 पाता नृतमिन्द्रो अस्तु सोमं
 इग्नो वृत्र यज्ञेण मग्दमानः ।
 गन्तां वृत्रं परावर्तयिदृष्टा
 वृषधीनामंविता कारुधायाः

इद त्यत् पार्चमिन्द्रपानं
 इन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।
 मत्सद् यथा सोमनसाय देवं
 व्यसद् द्वेषो युयवद् व्यहंः
 एना मन्दानो जहि शूर शत्रून्
 जामिमर्जामि मघवन्नमित्रान् ।
 अभिपेणो अभ्यादुदैर्दिशानान्
 पराच इन्द्र प्र मृणा जही च
 आसु प्मा णो मघवन्धिद्र प्तसु
 अस्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।
 अपां तोकस्य तनयस्य ज्ञेय
 इन्द्रं सुरीन् कृणुहि सा नो अर्धम्
 आ त्वा हरयो वृषणो युजाना
 वृषरथासो वृषरत्नयोऽत्याः ।
 अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो
 वृषणे मदाय सुयुजो वदन्तु
 आ ते वृषन् वृषणो द्रोणमस्थुः
 घृतप्रपो नोमयो मर्दन्तः ।
 इन्द्र प्र तुभ्यं वृषमिः सुतानां
 वृषणे भरन्ति वृषभाय सोमम्
 वृषासि दिवो वृषमः पृथिव्या
 वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तिर्यानाम् ।
 वृषणे त इन्दुर्वृषम पीपाय
 स्वाद् रसां मधुपेयो वराय
 अयं देव सहसा जायमान्
 इन्द्रेण युजा पणिर्मस्तमायत् ।
 अयं स्वस्य पितुरायुधानि
 इन्दुरमुष्णाददीयस्य मायाः
 अयमकृणोदृषसं सुपत्नीः
 अयं सूर्ये अद्धाज्योतिरुन्तः ।
 अयं त्रिधानुं दिवि रैचनेषु
 त्रितेषु विन्दुवृत्तं निर्गच्छम्

अयं चावापृथिवी विष्कमायत्
 अयं रथमयुनक् समरंश्चिमम् ।
 अयं गोपु शच्यां पक्कमन्तः
 सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥ २४ ॥
 ॥ १८८ ॥ (ऋ० ६।४५।१-३०) गायत्रो, २९ अंतिमिच्छु ।
 य आनेयत् परावतुः सुनीती तुर्वशं यदुम् ।
 इन्द्रः स नो युवा सर्वा ॥ १ ॥
 अग्निं चिद्वधयो दधे—दनाशुनां चिद्वीता ।
 इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥ २ ॥
 महीरस्य प्रणीतयः पूर्वोरुत प्रशस्तयः ।
 नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥ ३ ॥
 सखायो ब्रह्मवाहसे ऽर्चेत प्र च गायत ।
 स हि नः प्रमतिर्मही ॥ ४ ॥
 त्वमेकस्य वृत्रह—प्रविता द्वयोरसि ।
 उतेदशो यथा वयम् ॥ ५ ॥
 नयसीद्वति द्विपः कृणोम्युक्थशांसिनः ।
 नृभिः सुवीर उच्यसे ॥ ६ ॥
 ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसे गीर्भिः सखायमृगियम् ।
 गां न दोहसे ह्वे ॥ ७ ॥
 यस्य विश्वानि हस्तयो—रुचुर्वसूनि नि द्विता ।
 वीरस्यं पृतनापहः ॥ ८ ॥
 वि इब्हानि चिद्विद्वो जनानां शचीपते ।
 बुह माया अनानत ॥ ९ ॥
 तमुं त्वा सत्य सोमया इन्द्रं वाजानां पते ।
 अहमहि श्रवस्यधः ॥ १० ॥
 तमुं त्वा यः पुरासिथु यो वां नूनं हिते धने ।
 ह्व्यः स श्रुधी हवम् ॥ ११ ॥
 धीमिर्वेद्विरवेतो वाजो इन्द्र श्रवाय्यान् ।
 त्वया जेष्म हितं धनम् ॥ १२ ॥
 अमृक वीर गिर्वणो महो इन्द्र धने हिते ।
 भरे वितन्तसाय्यः ॥ १३ ॥

या तं ऊतिरभिब्रह्म मसूजवस्तमासति ।
 तया नो हिनुही रथम् ॥ १४ ॥
 स रथेन रथीतमो ऽस्माकैनाभियुग्वना ।
 जेपि जिष्णो हितं धनम् ॥ १५ ॥
 य एक इत् तमुं पुहि कृषीनां विचर्षणिः ।
 पतिर्जहे वृषकतुः ॥ १६ ॥
 यो गृणतामिदासिथा—ऽऽपिरुती शिवः सर्वा ।
 स त्वं न इन्द्र मृज्य ॥ १७ ॥
 धिष्व वज्रं गभस्वो रक्षोहत्याय वज्रिवः ।
 सासहीष्टा अभि स्पृधः ॥ १८ ॥
 प्रलं रयीणां युजं सखायं कीरिचोर्दनम् ।
 ब्रह्मवाहस्तमं ह्वे ॥ १९ ॥
 स हि विश्वानि पार्थिवां एको वसूनि पत्यते ।
 गिर्वणस्तमो आग्निगुः ॥ २० ॥
 स नो नियुञ्जिरा पूण कामं वाजेभिश्चिभिः ।
 गोमन्दिगोपते ध्रुवत् ॥ २१ ॥
 तद् वां गाय सुते सचा पुरुहुताय सवने ।
 शं यद् गवे न शाकिनै ॥ २२ ॥
 न घा वसूनि यमते हानं वाजस्य गोमतः ।
 यत् सीमुप श्रवद् गिरः ॥ २३ ॥
 कुथितस्य प्र हि वृजं गोमन्तं वस्युहा गमत् ।
 शचीमिरपे नो वरत् ॥ २४ ॥
 इमा उं त्वा शतकतो ऽभि प्र णोनुषुगिरः ।
 इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ २५ ॥
 दुणाशं सत्यं तव गौरसि वीर गव्यते ।
 अश्वो अश्यापते भव ॥ २६ ॥
 स मन्दस्वा ह्यर्धसो राधसे तन्वां महे ।
 न स्तोतारं निदे करः ॥ २७ ॥
 इमा उं त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः
 वत्सं गावो न धेनवः ॥ २८ ॥

उरुं नो लोकमनुं नेपि विद्यान्
स्वर्विज्योतिरमयं स्वस्ति ।
ऋष्या त इन्द्र स्यर्विरस्य ब्राह्म
उपं स्वेयाम शरणा बृहन्ता
वर्षिणे न इन्द्र वन्धुरे घ्रा
वर्हिष्ठयोः गतावन्नभ्येयरा ।
इपमा वंशीपां वर्षिष्ठां
मा नस्तारिन्मघघ्न रायौ अर्यः
इन्द्रं मूळ मह्यं ज्ञेवातुमिच्छ
चोदय धियमर्यसो न घाराम् ।
यत् किं चाहं त्वायुरिदं वदामि
तज्जुपस्य कृधि मां देवयन्तम्
ज्ञातामिन्द्रमवितारामिन्द्रं
हर्षेहवे सुहृद्यं शरमिन्द्रम् ।
इयामि शकं पुरुहूतमिन्द्रं
स्वस्ति नो मघवां घ्राविन्द्रः
इन्द्रः सुत्रामा स्वर्वा अवोभिः
सुमृच्छीको मघवतु विश्ववेदाः ।
वाधतां द्वेषो अमयं कृणोतु
सुवीर्यस्य पतयः स्याम
तस्यं धयं सुम्रतौ यन्धियस्य
अपि मन्त्रे सांमनुसे स्याम ।
स सुत्रामा स्वर्वा इन्द्रो अस्मे
आराशिद् द्वेषः सनुतयुवोतु
अव त्वे इन्द्र प्रवतो नोमिः
गिरो व्रह्माणि नियुतो घघन्ते ।
उरु न राधः सघना पुरुणि
अपो गा वंजिन् युवसे समिन्द्रं
क ई स्तवत् कः पूणात् को रंजाते
यदुग्रमिन्मघवां विश्वहाधत् ।
पादाविष्य प्रहरंश्चन्यमन्यं
कृणोति पूर्वमपरं शर्चाभिः

शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्
अन्यमन्यमतिनेनीयमानः ।
एधमानद्विष्टुमयस्य राजा
॥ ८ ॥ चोष्क्यते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥ १६ ॥
पप पूर्वेषां सत्या वृणक्ति
वितर्तुराणो अपरेभिरति ।
अनानुभूतीरवधुन्वानः
॥ ९ ॥ पुर्वारिन्द्रः शरदस्तरीति ॥ १७ ॥
रूपरूपं प्रतिरूपो यमव
तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपं ईयते
॥ १० ॥ युक्ता हास्य हरयः शता दश ॥ १८ ॥
युजानो हरिता रथे मुरि त्वष्ट्रेह राजति ।
को विश्वाहा द्विपुतः पक्ष आसत
उतासीनेषु सुरिषु ॥ १९ ॥
द्विधेद्विधे सदशीरन्यमधे
॥ ११ ॥ कृष्णा असेधदप सवर्नो जाः ।
अहन दासा वृषमो वंस्यन्त
उदमंजे वृच्चितं शम्बरं च ॥ २१ ॥
॥ १११ ॥ (ऋ० ७।१८।१-२१) मैत्रावरुणवमिष्ठः । मिश्रपु ।
॥ १२ ॥ त्वे ह यत् पितरश्चिन्न इन्द्र
विश्वो वामा जरितारो असन्वन् ।
त्वे गावः सुदुघास्त्वे हाभ्याः
॥ १३ ॥ त्वं वसु देवयते वरिष्ठः ॥ १ ॥
राजेष द्वि जर्निमिः क्षेप्येव
अव द्युमिंरमि विदुष्कृविः मन् ।
पिशा गिरो मघघ्न गोभिरर्यैः
॥ १४ ॥ त्वायतः शिरीहि राये अस्मान् ॥ २ ॥
इमा उं त्वा पस्पृशानामो अर्य
मन्दा गिरो देवयन्तीर्य स्युः ।
अर्धाचीं ते पृथ्या राय वृनु
॥ १५ ॥ स्याम ते सुमनार्विन्द्र शर्मन्

धेनु न त्वां सुयवसे दुदक्षन्
 उप ब्रह्माणि सख्ये वसिष्ठः ।
 त्वामिन्मे गोपतिं विश्वं आह
 आ न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छे
 अणीसि चित् पप्रथाना सुदास
 इन्द्रो गाधान्यरुणोत् सुपास ।
 शर्धन्तं शिष्यमुच्यस्य नव्यः
 शापं सिन्धूनामरणोदशस्तीः
 पुण्ड्रा इत् तुर्धशो यशुरासीद्
 राये मत्स्यामो निदिता अपीन ।
 धुष्टिं चंभुर्भगो द्रुहवश्च
 मत्ता मन्वायमतर्द् चिपूचोः
 आ पप्रथानो मल्लनसो मनन्त
 अर्किनामो निगणिनः शिवास्तः ।
 आ योऽनयन् मधुमा धार्यस्य
 गन्या वल्गुम्यो अजगन् युधा नृन्
 दुग्धोऽर्दितिं श्रेवयन्तो
 अन्वेनमो वि जग्धे परंणीम् ।
 मुदाविष्यन् पृथिवीं पत्यमानः
 पुन्युक्पिरिशयधायमान
 इयुग्धं न युग्धं परंणीं
 आनुद्यनेर्दभिपिष्य जंगाम ।
 मुदास इन्द्रं सुतुर्वीं अमिश्रान्
 भरन्धयग्नानुपे पक्षिवाच ।
 इयुगायो न ययमादगोपा
 यगात्तमभि मित्र चित्तार्यः ।
 पृक्षिगाय पृक्षिनिद्रिनात्
 धुष्टिं वंशुनिमुतो ग्न्तयध
 पर्वं च यो विदति वं धयम्या
 धंशुंशोर्जनात् राजा म्यस्ते ।
 इगो न वदन्त नि दिनाति धुष्टिः
 इत्त इगोमदृष्टोदिन्द्रं पपाम

अथ धृतं क्वपे वृद्धमुत्सु
 अनुं दुह्यं नि वृणाम्वज्रवाहः ।
 वृणाना अत्र सत्पार्यं सख्यं
 त्वायन्तो ये अमदक्षन् त्वा
 वि सद्यो विश्वां दंहितान्येषां
 इन्द्रः पुरः सहसा सप्त ददः ।
 व्यानवस्य तत्सवे गयं भाग्
 जेषं पृहं विदये मधुवाचम्
 नि गज्यवोऽनवो दुहावश्च
 पृष्टिः शता सुपुपुः पद् सहस्रो ।
 पृष्टिर्वीरासो अग्नि पद् हुवोयु
 विश्वेदिन्द्रस्य धीयीं कृतानि
 इन्द्रैषैते तत्सवो वेवेषाणा
 आपो न सृष्टा अंधवन्त नीचीः ।
 दुर्मिनासः प्रकलविन्मिर्माना
 जुहुर्विश्वानि भोजना सुदासे
 अर्धे वीरस्य शतपामनिन्द्रं
 परा शर्धन्तं ननुदे अग्नि क्षाम् ।
 इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय
 भेजे पयो वर्तनि पत्यमानः
 आध्रेण चित् तर्हेकं चकार
 सिहो चित् पेत्येना जघान ।
 अयं स्रकीधेदयापृथुदिन्द्रः
 प्रायच्छद् विश्वां भोजना सुदासे
 शयन्तो दि शत्रपो राधुष्टे
 भेदम्यं चिच्छर्धतो विन्दु रन्धिम् ।
 मर्तो पतः स्तुपतो यः पृणोति
 निग्म तस्मिन् नि जहि यज्जमिन्द्र
 भापदिन्द्रं यमुना तत्सयद्य
 शत्रं भेदं तत्सतीना सुपायत् ।
 यज्जामश्च शिर्षयो यक्षयद्य
 धाँड शीर्षोणि जधुरदयानि

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

॥ १९ ॥

(११५)

न त इन्द्र सुमतयो न रायः
संचक्षे पूर्वा उपसो न नृताः ।

देवकं चिन्मान्यमानं जघन्था
अव त्मना बृहत्तः शम्बरं भेत्
प्र ये गृहादममदुस्त्याया
परशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।

न तै भोजस्यं सप्यं मृपन्त
अथा सुरिभ्यः सुदिना व्यञ्छान्

॥ १९१ ॥ (ऋ० ७।११।१-११)

यस्तिग्मशङ्को वृषभो न भीमः
पर्कः कृप्रीश्चावयति प्र विश्वाः ।

यः शर्भतो अदाशुषो गयस्य
प्रयन्तासि सुधितराय वेदः
त्वं हृ त्यदिन्द्र कुत्समावः
शुश्रूषमाणस्तन्वा समये ।

दासे यच्छृष्णं कुर्यं न्यस्मा
दर्पन्धय आजुनेयाय दिक्षन्
त्वं पुष्णो धृपता शीतहृष्यं *
प्रावो दिष्वाभिहृतिभिः सुदासम् ।

प्र पौरकुतिं प्रसदस्युमावः
क्षेत्रसाता वृषहृष्येषु पुरुम्
त्वं नृमिर्नृमणो देववीतो
भूरीणि वृत्रा हृष्यश्च हंसि ।

त्वं नि दस्युं चुसुरि धुनि च
अस्वापयो हृभीतये सुहन्तुं
तथं च्योत्तानि वज्रहस्त तानि
नव यत् पुरो नवति च स्यः ।

निषेदनि शततमाविषेयोः
अहञ्च वृत्रं नमुचिमुताहन्
सना ता त इन्द्र भोजनानि
शतहृष्याय दाशुषे सुदासे ।

वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि
व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक धार्जम्

॥ ६ ॥

मा तै अस्यां संहस्तावन् परिशै
अघायं भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वह्यैः
तवं प्रियासः सुरिषु स्याम

॥ ७ ॥

प्रियास इत् तै मघवन्नभिष्टौ
नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि यादं शिशोहि
अतिधिगवाय शंस्यं करिष्यन्

॥ ८ ॥

सद्यश्चिह्नं तै मघवन्नभिष्टौ
नरः शंसन्त्युपयशास उक्था ।
ये ते हवैभिर्वि पुर्णारदाशन्
अस्मान् वृणीष्व युज्याय तसं

॥ ९ ॥

पूते स्तोमां नरां नृतम् तुभ्यं
अस्मद्यज्ञो ददतो मुघानि ।
तेपामिन्द्र वृत्रहृष्ये शिवो भुः
सखा च शरौऽविता च नृणाम्

॥ १० ॥

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती
ब्रह्मजतस्तन्वा वावृधस्य ।
उपं नो वाजान् मिमीह्यप स्तान्
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ११ ॥

॥ १९३ ॥ (ऋ० ७।१०।१-१०)

उग्रो जघे शीर्याय स्वधावान्
चक्रिष्णो नयो यत् करिष्यन् ।
जग्मिषुवां नृपदंतमघोभिः
त्राता न इन्द्र परसो महाधित्

॥ १ ॥

हन्ता वृत्रमिन्द्रः शशुवान्
प्रावीधु शीरो जरितारमूती ।
कर्ता सुदासे अह या उं लोकं
दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत्

॥ २ ॥

युध्मो अर्नया खजकृत् समद्वा
 शूरः सत्रापाड् जनुपेमर्षाब्दः ।
 ध्याम् इन्द्रः पृतनाः स्वोजा
 अथा विश्वं शत्रुघ्नन्तं जवान
 उमे विदिन्द्रो रोदसी महित्वा
 आ पंप्राथ तविपीमिस्तुविष्मः ।
 नि यज्जमिन्द्रो हरिवान् मिमिक्षन्
 समन्धमा मर्देषु वा उवोच
 वृषां जजान वृषणं रणाथ
 तर्मु चित्रारी नयं ससूच ।
 प्र यः मैनानीरुध् नृभ्यो अस्ति
 इनः सन्वा गुणेयणः स धृष्णुः
 नू चिन् स ध्रैयने जने न रेपन्
 मनो यो अस्य घोरमाविवासात् ।
 यर्षय इन्द्रे दर्षने दुर्वासि
 क्षयत् स राय ऋतुपा ऋतेजाः
 यर्दिन्द्र पृषो अर्पराय शिशन्
 अयग्ग्यायान् कर्नीयसो देण्णम् ।
 धृगृन् इन् पर्यासीत् दूरं
 आ चित्र चिर्यं भय रयि नः
 यन्त इन्द्र द्वियो जने ददांनान्
 धर्मश्रिके धद्रियः सन्वा ते ।
 पृषं ते धम्यां तुमतां चर्निष्ठाः
 म्याम् यर्षये धर्मो नृर्पाती
 एष स्तोमी धर्षिहृद्दृष्ट्वा ते
 उत स्तामुमेषयप्रवपिष्ट ।
 रायश्चामी जितारं न आगन्
 स्वमृष्ट शोच चर्य धा दांनो नः
 ए न इन्द्र त्वर्षनाया इये ध्याः
 रमतां च ये म्रपरातो जनाभि ।

वस्वी पु ते जरिरे अस्तु शक्तिः
 युयं पात स्वस्तितिः सदा नः
 ॥ १० ॥
 ॥ १९४ ॥ (ऋ० ७।२१।१-२०)

॥ ३ ॥ असावि देवं गोर्ध्रुजीकमन्धो
 न्यास्मिन्नित्तो जनुपैमुवोच ।
 योर्धामसि त्वा हर्यश्च यज्ञैः
 योर्धा नः स्तोममन्धसो मर्देषु
 ॥ १ ॥
 ॥ ४ ॥ प्र यन्ति यज्ञं विपर्यन्ति वहिः
 सौममादौ विदथै दुध्रवाचः ।
 न्यु ध्रियन्ते युदासो गुभादा
 दुरउपद्रो वृषणो नृपाचः
 ॥ २ ॥
 ॥ ५ ॥ त्वमिन्द्र स्रवित्वा अपस्कः
 परिष्ठिता अहिना शूर पर्याः ।
 त्वद् वावके रथ्योऽनु न धेना
 रेजन्ते विश्वा हृत्रिमाणि भीषा
 ॥ ३ ॥
 ॥ ६ ॥ भीमो विवेपार्युधेभिरेषां
 अपांसि धिश्वा नयाणि विद्वान् ।
 इन्द्रः पुरो जर्हपाणो वि दृधोव्
 वि चञ्जहस्तो महिना जघान
 ॥ ४ ॥
 ॥ ७ ॥ न यातय इन्द्र जृञ्जवर्तो
 न यर्दना शविष्ठ वेद्याभिः ।
 स दाधेय्यो धियुणस्य जन्तोः
 मा शिश्रदेवा अपि गुर्भृतं नः
 ॥ ५ ॥
 ॥ ८ ॥ अभि प्रत्वेन्द्र मूरध् जम्न
 न ते विव्यह् महिमानं रजांसि ।
 स्येना द्वि पृथं दार्यमा जुगन्थ
 न दाश्रुगन्तं विविदद् युधा ते
 ॥ ६ ॥
 ॥ ९ ॥ देवाधीत् ते आसुर्योऽप्युप
 अनु क्षत्राय मामिरे सदांसि ।
 इन्द्रो मृषानि दयते विपरा
 इन्द्रं याजस्य जोहयन्त मतां
 ॥ ७ ॥

कीरिश्चिदि त्वामर्षसे जुहाव
ईशानमिन्द्र सौमगस्य भूरैः ।
अर्षो यमूथ शतमूते असे
अभिश्चतुस्त्वावतो वरूता
सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम
नमोवृधासो महिना तरुत्र ।
वन्यन्तु स्मा तेऽर्षसा समीकेऽ
अभीतिमयो वनुषां शर्वासि
स न इन्द्र त्वयताया इये धाः
त्मना च ये मघर्षानो जुनन्ति ।
वस्वी पु ते जरिजे थस्तु शक्तिः
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः
॥ १९५ ॥ (ऋ० ७।२१।१-९) विराट्, ९ त्रिष्टुप् ।

पिषा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा
यं ते सुपाव हर्षश्वाद्रिः ।
सोतुर्षाहृभ्यां सुयंतो नावीं
यस्ते मदी युज्यश्वाहरस्ति
येन वृषाणि हर्षभ्य हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु
योधा सु मे मघवन् वानुमेमां
यां ते वसिष्ठो अर्षति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमाद्रे जुपस्व
धृषी हवै विपिपानस्याद्रेः
योधा विप्रस्यार्षतो मनीषाम् ।
हृष्या दुर्षास्यन्तमा सचेमा
न ते गितो अपि मृष्ये तुरस्य
न सुष्टुतिर्ममुर्यस्य विद्वान् ।
सदा ते नामे स्वयशो विवन्मि
मरि दि ते सर्वना मातुपेपु
मरि मनीषी ह्यते त्वामिन् ।
मारे असन्मघवप्रज्योक् कः

तुभ्येदिमा सर्वना शूर विश्वा
तुभ्यं ब्रह्माणि वधैना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हृष्यो विश्वर्धासि ॥ ७ ॥
॥ ८ ॥ नू चिन्न ते मन्यमानस्य दस
उर्दश्रुवन्ति महिमानमुग्र ।
न धीर्यमिन्द्र ते न शर्षः ॥ ८ ॥
ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना
॥ ९ ॥ इन्द्र ब्रह्माणि जुनयन्तु विप्राः ।
असे ते सन्तु सप्त्या शिवानि
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥
॥ १९६ ॥ (ऋ० ७।२३।१-६)
उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्य
इन्द्रं समये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शर्वसा तुतान
उपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ १ ॥
अर्यामि घोष इन्द्र देवजाभिः
इरज्यन्त यच्छुश्रो विवाचि ।
नदि स्वमार्याधिकिते जनेषु
॥ २ ॥ तानीदंहांस्यति पर्यसान् ॥ २ ॥
युजे रथं गुवेषणं हरिभ्यां
उप ब्रह्माणि जुजुषामस्युः ।
॥ ३ ॥ वि वाधिष्ट स्य रोदसी महित्वा
इन्द्रो वृषाण्यप्रती जघ्नवान् ॥ ३ ॥
आपश्चित् पिप्युः स्तयोऽं न गावो
॥ ४ ॥ नक्षत्रं जरितारस्त इन्द्र ।
यादि वायुर्न नियतो नो अञ्ज
त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ ४ ॥
॥ ५ ॥ ते त्वा मदी इन्द्र मादयन्तु
शुष्मिर्ण तुविराधंस जरिपे ।
पको देवथा द्यमे दि मनान्
॥ ६ ॥ असिभृद् इ सर्वने मादयस्व ॥ ५ ॥

पुवेदिन्द्रं धृपणं वज्रबाहुं

वासिष्ठासो अर्भ्यचन्त्यकः ।

स नः स्तुतो वीरवद् धातु गोमद्

युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ११७ ॥ (ऋ० ७।२४।१-६)

योनिष्ठ इन्द्र सदेने अकारि

तमा नृभिः पुरुहत् प्र याहि ।

असो यथा नोऽपिता वृधे च

ददो वर्यनि ममदश्च सोमः

गुभीतं ते मन इन्द्र द्विचर्हाः

सुतः सोमः परिविभ्रान् मधूनि ।

विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिः

इयमिन्द्र जोहृवती मनीषा

आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीपिन्

इदं यदिः सोमपेयाय याहि ।

यदेन्तु त्वा हरयो मृशञ्चं

आहृयमच्छं तुयसं मदाय

आ नो विभ्रामिभ्रुतिभिः सजोषा

प्रष्टं तुपाणो हर्यभ्य याहि ।

परिपृजन् म्यधिरिभिः सुदिप्र

धामे दधद् वृषं नृर्षमिन्द्र

एव नोमो मह उम्राय घाटं

धृष्टिं पाण्यो न धाजयं प्रधापि ।

इन्द्रं त्वायमसं इहे पर्यानां

दिधीष्य चामधि नः धोमते धाः

एवा न इन्द्र धार्यभ्य वृधि

प्र मे मही सुमाने पैविदाम ।

इयं पिन्व मघर्षद्भ्यः सुधीर्यं

दूय पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ११८ ॥ (ऋ० ७।२५।१-६)

आ न इन्द्र इन्द्रोत्पुत्र

समंभ्यो वन् इमंरन् वना ।

पताति दिद्युन्नर्यस्य याहोः

मा ते मनो विष्वद्युष्वि चारीत्

नि दुर्ग इन्द्र अथिह्यमित्रान्

अभि ये नो मतासो अमन्ति ।

आरे तं शंसं कृणुहि निनिस्तोः

आ नो भर संभरणं वरुनाम्

शतं ते शिमिन्नतयः सुदासे

सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु ।

जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य

असे युष्ममधि रक्षं च धेहि

त्वावर्तो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि

त्वावर्तोऽवितुः शर रातो ।

विभ्वेदहानि तविपीव उग्रं

ओकः कृणुष्व हरिषो न मर्षोः

कुत्सा एते हर्यभ्याय शुपं

इन्द्रे सहो देवजुतमियानाः ।

सत्रा कृधि सुहनां शर वृना

ययं तरेत्राः सनुयाम वाजम्

पूया न इन्द्र धार्यस्य वृधि

प्र ते मही सुमाने पैविदाम ।

इयं पिन्व मघर्षद्भ्यः सुधीर्यं

युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ११९ ॥ (ऋ० ७।२६।१-५)

न सोम इन्द्रमस्तुतो ममाद्

नाप्रह्माणो मघयांन सुतासः ।

तस्मा उवयं जनये यज्जुतोपिन्

नृपप्रथियः शृणुयद् यथा नः

उवयवडेवये सोम इन्द्र ममाद्

नीधेनीये मघयांन सुतासः ।

यदी सुथायः पितरं न पुत्राः

संमानदृशा धयये हयन्ते

॥ १ ॥

॥ ६ ॥

॥ १ ॥

॥ ३ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

चकार ता कृणवन्ननुमन्या
यानि युचन्ति वेधसः सुतेषु ।
जनीरिच पतिरेकः समानो
नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वोः
पृवा तमाहुस्त इण्य इन्द्र
एको विमुक्ता तरणिर्मघानाम् ।
मिथस्तुरे ऊतयो यस्य पृथोः
असे भद्राणि सञ्चत प्रियाणि
पृवा वसिष्ठ इन्द्रमुतये नृन्
कृष्टीनां वृषमं सुते रूपाति ।
सहस्रिण उर्ष नो माहि वार्जान्
युयं पात स्वस्तिभिः सर्दा नः
॥ २०० ॥ (क्र० ७।२७।१-५)

इन्द्रं नरो नेमार्धता हवन्ते
यत् पार्यो युनर्जते धियुस्ताः ।
शूरो नृपाता शर्वसञ्चक्रान
आ गोमति मृजे भञ्जा त्वं नः
य इन्द्र शुष्मो मघयन् ते अस्ति
शिश्ना सल्लिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः ।
त्वं हि हृद्धा मघयन् विर्चता
अपा वृधि परिवृतं न राधः
इन्द्रो राजा जगतश्चरणीनां
अधि क्षमि विपुरुषं यदस्ति ।
ततो ददाति दामुषे वसन्ति
चोदद् राध उपस्तुतश्चिदुवाक्
नू किन्न इन्द्रो मघवा सहती
दानो धाजं नि यमते न ऊनी ।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपार्यं
धामं नृभ्यो अभिधीता सल्लिभ्यः
नू इन्द्र राधे परिवरुधी न
आ ने मनो यवृत्याम मघार्यं ।

गोमद्भवावद् रयवद् ध्यन्तो
युयं पात स्वस्तिभिः सर्दा नः
॥ ५ ॥
॥ २०१ ॥ (क्र० ७।२८।१-५)
॥ ३ ॥
प्रक्षा ण इन्द्रोर्ष याहि विद्वान्
अर्धोञ्जस्ते हरयः सन्तु युक्ताः ।
विदये चिद्धि त्वा विहवन्त मर्ता
अस्माकमिच्छृणुहि विश्वामिन्य
॥ १ ॥
हव्यं त इन्द्र महिमा ब्यानइ
॥ ४ ॥
ब्रह्म यत् पारिं शकसिभ्रूणीणाम् ।
आ यद् वज्रं दधिपे हस्तं उग्र
घोरः सन् क्रत्वा जनिष्ठा अर्पाब्धः
॥ २ ॥
तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान्
॥ ५ ॥
सं यध्नन् न रोदसी निनेर्यं ।
महे क्षत्राय शर्वसे हि जडे
अर्तुतुजि चित् तृतुजिरिशश्चत्
॥ ३ ॥
पुभिर्न इन्द्राहमिर्दशस्य
॥ १ ॥
दुर्मित्रासो हि क्षितयः पर्वन्ते ।
प्रति यद्यष्टे अनृतमनेना
अवे द्विता यरुणो माथी नः सात्
॥ ४ ॥
घोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं
॥ २ ॥
महो रायो राधसो यद् दर्दध्रः ।
यो अर्चतो प्रक्षरुतिमविष्टो
युयं पात स्वस्तिभिः सर्दा नः
॥ ५ ॥
॥ २०२ ॥ (क्र० ७।२९।१-५)
अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्य
॥ ३ ॥
आ तु प्र याहि हरियस्तर्दोकाः ।
पिया त्वस्य सुयुतस्य चारोः
ददो मघानि मघवप्रियानः
॥ १ ॥
प्रक्षन् वीर प्रक्षरुति जुगारो
॥ ४ ॥
अर्धाञ्जिनो हरिभिर्वादि त्वयम् ।
अस्मिन् पु सर्वेन मादयन्
उप प्रक्षाणि दृणय इमा नः
॥ २ ॥
(२२१४)

का ते अस्यरकृतिः सुक्तैः
 कदा नूनं ते मघवन् दारोम ।
 विद्वां मतीरा तंतने त्वाया
 अर्धा म इन्द्र शृणुषो ह्येमा
 उतो घा ते पुंरुष्यां इदांसुन्
 येयां पूर्वपामशृणोःकृपीणाम् ।
 अधाहं त्वां मघवजोहवीमि
 त्वं न इन्द्रसि प्रमतिः पितेव
 योचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं
 महो रायो राधसो यद् दर्दन्नः ।
 यो अर्चतो ब्रह्मरुतिमविष्टो
 युयं पांत स्वस्तिभिः सदा नः
 ॥ २०३ ॥ (ऋ० ७।३०।१-५)

आ नो देव शर्वसा याहि शुष्मिन्
 मवां वृध इन्द्र रायो अस्य ।
 महे नृगणाय नृपते सुयज्ञ
 महि क्षत्राय पांसयाय शर
 ह्यन्त उ त्वा ह्य्यं विधाञ्चि
 तनूपु शयः सूर्यस्य सातौ ।
 त्वं विभ्येषु सेन्यो जनेषु
 त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु
 यदा यदिन्द्र सुदिनां व्युच्छान्
 दधो यत् वेनुमुपमं समस्तु ।
 ग्युभिः सीदुदसुते न होता
 हुयानो अत्र सुमगाय देवान्
 युयं ते तं इन्द्र ये च देव
 स्तर्धन्त नार दर्दतो मृगानि ।
 यच्छां गुरिभ्य उषमं यर्धं
 श्वाभुषां जरणामभयन्त
 षोचमेदिन्द्रं मघवानमेनं
 महो रायो राधसो यद् दर्दन्नः ।

यो अर्चतो ब्रह्मरुतिमविष्टो
 युयं पांत स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥
 ॥ २०४ ॥ (ऋ० ७।३१।१-१२) गायत्री, १०-१२ विराट् ।
 प्र व इन्द्राय मार्दं ह्यैशवाय गायत ।
 सखायः सोमपात्रे ॥ १ ॥
 शसेदुक्थं सुदानव उत युक्षं यथा नरैः ।
 चक्रुमा सत्यराधसे ॥ २ ॥
 ॥ ४ ॥ त्वं न इन्द्र वाजयु—स्त्वं गव्युः शतक्रतो ।
 त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥ ३ ॥
 वयमिन्द्र त्वायवो ऽभि प्र णोनुमो वृपन् ।
 विद्धी त्वस्य नो वसो ॥ ४ ॥
 ॥ ५ ॥ मा नो निदे च वक्तव्ये ऽयो रन्धीरराव्ये ।
 त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥
 त्वं वर्मांसि सप्रथं पुरोयोधश्च वृत्रहन ।
 त्वया प्रति भुवे युजा ॥ ६ ॥
 ॥ १ ॥ महो उतासि यस्य ते ऽतुं स्वधावरी सहैः ।
 मन्नाते इन्द्र रोदसी ॥ ७ ॥
 त त्वां मरुवती परि भुवद् वाणीं स्यावरी ।
 नक्षमाणा सह युभिः ॥ ८ ॥
 ॥ २ ॥ ऊर्ध्वासुस्त्वान्विन्द्वो भुवन् दस्समुप धवि ।
 सं ते नमन्त कृष्टयः ॥ ९ ॥
 प्र वो महे महिवृधे भरध्वं
 प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
 ॥ ३ ॥ विशां वृषीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ १० ॥
 उरुव्यचसे मदिने सुवृकिं
 इन्द्राय ब्रह्मं जनयन्त विशाः ।
 तस्य प्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ ११ ॥
 ॥ ४ ॥ इन्द्रं वाणीरुत्तमन्युमेय
 सत्रा राजानं दधिरे सहर्ष्ये ।
 ह्यैशवाय बर्हया सम्रापीन् ॥ १२ ॥
 (१११४)

॥ १०५ ॥ (अ० ७३१।१-१७)

२६ पूर्वाध्वंस्य षाफिवाशिष्ठो वा (शाव्यायने ब्राह्मणे);
२६-२७ शाफिवाशिष्ठो वा (ताण्डिके ब्राह्मणे) । प्रगायः-
(बृहती, षतोबृहती), ३ द्विपदा विराट् । *

मो पु त्वां याघतश्चन आरे अस्मन्नि रीरमन् ।
आराचाधिव सधुमादं न आ गहि

इह वा सधुपं धुधि ॥ १ ॥

इमे हि ते ब्रह्महृतः सुते सचा

मधौ न मध्न आसते ।

इन्द्रे कामं जरितारो वसुयधो

रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥

वयस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं

पुत्रो न पितरं ह्वे ॥ ३ ॥

इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।

तो आ मदाय वज्रहस्त पीतये

हरिर्म्यां याहोक् आ ॥ ४ ॥

श्रयच्छरुत्कर्णं ईयते चसुतां

नू चिन्नो मधिपद् गिरः ।

सुघश्चिद् यः सुहघ्राणि शता ददन्

नकिर्दित्सन्तुमा मिनत् ॥ ५ ॥

स धीरो अप्रतिष्कृत इन्द्रेण शरुवे नृभिः ।

यस्तै गभीरा सर्वनानि वृत्रहन्

सुनोत्या च धारति ॥ ६ ॥

मवा चरुथं मघवन् मघोतां

यत् सुमजासि शर्यतः ।

वि त्वाहृतस्य वेदनं भजेमहि

आ दुणाशो मया गर्यम् ॥ ७ ॥

सुनोता सोमपात्रे सोममिन्द्राय पुञ्जिणे ।

पचता पत्नीरवसे छणुष्यमित्

पृणमित् पृणते मयः ॥ ८ ॥

मा च्छेषत सोमिनो दक्षता महे

रुणुष्यं राय आनुजे ।

तरगिरिर्जयति क्षेति पुष्यति

न देवासः कघत्तव्यं ॥ ९ ॥

नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत् ।

इन्द्रो यस्याविता यस्यं मरुतो

गमत् स गोमति वृजे ॥ १० ॥

गमद् वाजै वाजयन्मिन्द्र मत्प्यो

यस्य त्वमविता भुवंः ।

अस्माकं बोध्यविता रथानां

अस्माकं शूर नृणाम् ॥ ११ ॥

उदिरुष्यस्य रिच्यते अशो धनं न जिग्युषः ।

य इन्द्रो हरिवान् न दभन्ति तं रिपो

द्रक्षं दधाति सोमिनि ॥ १२ ॥

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यक्षियेभ्या ।

पूर्वाश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं

य इन्द्रे कर्मणा भुवंत् ॥ १३ ॥

कस्तमिन्द्र त्वावसु—मा मर्यो दधर्गनि ।

श्रद्धा इत् तं मघवन् पायं द्विवि

वाजी वाजै सिपासति ॥ १४ ॥

मघोनः स वृत्रहर्षेणु चोदय

ये ददति मिया वसु ।

तव प्रणीती हर्षभ्य सुरिभिः

विभ्वां तरेम दुरिता ॥ १५ ॥

तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यासि मध्यमम् ।

सुत्रा विभ्वस्य परमस्यं राजसि

नार्केप्या गोपुं वृष्वते ॥ १६ ॥

त्वं विभ्वस्य धनदा असि ध्रुतो

य ई मयन्त्याजयः ।

तवायं विद्वयः पुष्कृत पार्थिवो

अयस्युनीमं भिन्नते ॥ १७ ॥

यदिन्द्र यावतम्वं प्लाघदहमीशाय ।

स्तोतारमिद् दिधिषेय रदायमो

न पापुत्वार्य रासीय ॥ १८ ॥

द्विर्द्वैतमिर्महयते द्विधैर्द्वि

राय आ कुहचिद्विर्द्वै ।

नहि त्वदन्यन्मर्षयन् न आप्यं

वस्यो अस्ति पिता चन

॥ १९ ॥

तरणिरित् सिपामति वाजं पुरंध्या युजा ।

आ व इन्द्रं पुरद्वृतं नैमि गिरा

नेमि तप्रेय सुद्वम्

॥ २० ॥

न कुंपुती मल्यो विन्दते वसु

न श्रेयन्तं रयिर्नैदात् ।

मुशक्तिरिन्मर्षयन् तुभ्यं मावते

द्वेषं यत् पार्ये दिवि

॥ २१ ॥

अग्नि त्वां शूर नोनुमो अदुग्धा इव धेनवः ।

ईशानमस्य जगतः स्वहृशं

ईशानमिन्द्र तस्युयः

॥ २२ ॥

न त्वाप्यो अग्यो दिव्यो न पार्थिवो

न ज्ञानो न जनिष्यते ।

धृदयायग्नौ मघयभिन्द्र घाजिनो

गन्धन्तंन्या हयामदे

॥ २३ ॥

इमी पतस्तदा मर इन्द्र ज्यायः कनीयसः ।

परुपगार्हि मघयन्सनादग्नि

भर्तरे नृ हर्यः

॥ २४ ॥

परां गुदग्य मघयन्मित्रान्

सुपेदां नो यम् शधि ।

सम्पारं बोपययिमा मदाधने

मयां वृषः शरतीनाम्

॥ २५ ॥

इन्द्र वरुं नृ भा मर गिरा पुत्रेभ्यो यया ।

दिशो षो भूमिन कुंरुत्त यामनि

उवा उयोर्नैरशीमदि

॥ २६ ॥

मा नो धर्मागा वृजतो दुराप्सोः

मार्तवारां सधं वसुः ।

त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपो

अति शूर तरामसि

॥ २७ ॥

॥ १०६ ॥ (अ० ७।३३।१-९)

१-९ वसिष्ठपुत्राः इन्द्रो वा । त्रिष्टुप् ।

दिवत्यज्ञो मा दक्षिणतस्कांपदा

धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।

उत्तिष्ठन् वोचे परं वरिह्यो नृन्

न मे दुरादर्वितथे वसिष्ठाः

॥ १ ॥

दुरादिन्द्रमनयन्ना सुतेनं

तिरो वैशन्तमति पान्तंमुग्रम् ।

पार्शुद्वस्य वायतस्य सोमात्

सुतादिन्द्रोऽवृणीता वसिष्ठान्

॥ २ ॥

एवेशु कं सिन्धुमेभिस्ततार

एवेशु कं भेदमैभिर्जघान ।

एवेशु कं दाशराशे सुदासं

प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः

॥ ३ ॥

जुष्टीं नरो ब्रह्मणा वः पितृणां

अक्षमव्ययं न किला रिपाय ।

यच्छर्करीषु बृहता रयेण

इन्द्रे शुष्ममर्दाधाता वसिष्ठाः

॥ ४ ॥

उद् धामिवेत् तृणजो नाधितासो

अदीधियुदांशराशे वृतासः ।

वसिष्ठस्य स्तुषत इन्द्रो अश्रोत्

उरं तृत्सुभ्यो अरुणोदु लोकम्

॥ ५ ॥

दृण्डा इषेद् गोभर्जनास आसन्

पारिच्छिन्ना भरता अमृकासः ।

अमयव पुत्पता वसिष्ठ

आदित् तृत्सुनां पिशो अग्रभन्त

॥ ६ ॥

त्रयः कृण्वन्ति मुयनेषु रेतः

त्रिप्रः प्रजा आप्यो ज्योतीरप्राः ।

त्रयो घमांस उपासं मरुन्ते

मर्या इत् तां अनुं पितृवसिष्ठाः

॥ ७ ॥

(१०६८)

सूर्यस्यैव वक्षसो ज्योतिरेषां
समुद्रस्यैव महिमा गभीरः ।
वातस्यैव प्रजयो नान्येन
स्तोमो वसिष्ठा अन्यैतवे चः ॥ ८ ॥
त इक्षिण्यं हृदयस्य प्रकृतैः
सहस्रवल्गामभि सं चरन्ति ।
यमेन ततं परिधिं वर्यन्तो
अप्सरसु उप सेदुर्धसिष्ठाः ॥ ९ ॥
॥ १०७ ॥ (क्र० ७१५१२-८)
(प्रस्ताविका उपनिषद्) १-४ उपनिषद्बृहती, ५८ अनुष्टुप् ।
यदूर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे ।
वीथ भ्राजन्त ऋष्टय
उप स्रक्केषु वर्मन्तो नि पु स्वप ॥ २ ॥
स्तेन रथं सारमेयं तस्करं वा पुनःसर ।
स्तोतृनिन्द्रस्य रायसि
किमस्मान् दुच्छुनायसे नि पु स्वप ॥ ३ ॥
त्वं सूकरस्यं दर्दहि तवं दर्दतु सूकरः ।
स्तोतृनिन्द्रस्य रायसि
किमस्मान् दुच्छुनायसे नि पु स्वप ॥ ४ ॥
सस्तु माता सस्तु पिता
सस्तु भ्वा सस्तु विद्रपतिः ।
ससन्तु सर्वे भ्रातयः संस्त्ययमभितो जनः ॥ ५ ॥
य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।
तेषां सं हन्मो अज्ञाणि ययेदं हृम्यं तथा ॥ ६ ॥
सहस्रंशुक्रो वृषभो यः समुद्राहुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वृषं नि जनान्स्वापयामसि ॥ ७ ॥
प्रोष्टेऽथा वंशोऽथा नारीर्यास्तन्पुत्रीवरीः ।
क्षियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥ ८ ॥
॥ १०८ ॥ (क्र० ७१७११) त्रिष्टुप् ।
यये दिवो नृपदने पृथिव्या
नरो यत्र देयपयो मदन्ति ।
इन्द्राय यत्र सर्वनानि सन्त्ये
गाम्मदाय प्रयमं धर्यथ ॥ १ ॥

॥ १०९ ॥ (क्र० ७१९८११-६)
अर्धयवोऽरुणं दुग्धमंशुं
जुहोतन वृषभार्यं क्षितीनाम् ।
गौराद् वेदीर्यो अयुपानमिन्द्रो
विश्वोद्देव याति सुतसोममिच्छन् ॥ १ ॥
यद् दधिपे प्रदिवि चार्वर्चं
दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण
उत्तर्हिन्द्र प्रथितान् पाहि सोमान् ॥ २ ॥
जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ
प्र ते माता महिमानमुवाच ।
पन्द्रं पप्रार्थोर्वन्तर्दिक्षं
युधा देवेभ्यो चरिष्वक्षक्यं ॥ ३ ॥
यद् योधया महतो मर्यमानान्
साक्षाम तान् वानुभिः शारादानान् ।
यद् वा नृमिवृत इन्द्राभियुभ्याः
तं त्यजि सौश्रवसं जयेम ॥ ४ ॥
प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि
प्र नूतना मघवा या चकारं ।
यदेदेवीरसंहिष्ट माया
अथामवत् केवलः सोमो अरय ॥ ५ ॥
तयेदं विश्वमभितः पशव्यं
यत् पश्यसि चक्षमा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेके इन्द्र
मक्षीमहि ते प्रयतम्य वर्यः ॥ ६ ॥
॥ ११० ॥ (क्र० ७१९०४८, १६, १९-२०)
विष्टुः २१ जगती ।
यो मा पक्केन मनसा चरंतं
अभिचष्टे अर्नतेभिर्चोभिः ।
आपं इव काशिना संश्रुमीता
असंप्रस्त्यासंत इन्द्र वृक्ता ॥ ८ ॥

यो मार्यातुं यातुं धानेत्याह	अभिष्टेये सदावृधं स्वर्माकहेपु यं नरः ।
यो वा रक्षाः शुचिरस्सीत्याह ।	नाना हवन्त ऊतये ॥ ५ ॥
इन्द्रस्तं हंतु महता वधेन	परोमात्रमृचीपम—मिन्द्रमुग्रं सुरार्धसम् ।
विश्वस्य जन्तोरेधमस्पर्शेष्ट	॥ १६ ॥ ईशानं चिद्वर्धनाम् ॥ ६ ॥
प्र धंतय द्विवो अद्रमानमिन्द्र	तन्तमिद्रार्धसे मह इन्द्रं चोदामि पीतये ।
मोर्मक्षित मघगन्तं शिशाधि ।	यः पूर्व्यामनुष्टुति—मीशै कृष्टीनां नृतुः ॥ ७ ॥
प्राचादपाकादथरादुदकाद्	न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यैः ।
धमि जंति रक्षसु, पर्वतेन	॥ १९ ॥ नकिः शवांसि ते नशत् ॥ ८ ॥
एत उ त्वे पंतयन्ति भव्यातव	त्वोतासुस्त्वा युजा ऽप्सु सूर्ये महश्चनम् ।
इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सत्रोऽर्धाम्यम् ।	जयेम पुस्तु वज्रिवः ॥ ९ ॥
दिशोते शत्रः पिश्रुनेभ्यो वृधं	तं वा यज्ञोर्भेरीमहे तं गीर्भिर्गैर्विणस्तम ।
नूनं सृजदशानि यातुमद्रयः	॥ २० ॥ इन्द्र यथा चिदार्विय वाजेषु पुरुमाव्यम् ॥ १० ॥
इन्द्रो यातुनामभवत् पराशरो	यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्री प्रणीतिरद्विषः ।
दंनिर्मधीनामभ्याहु विवास्तताम् ।	यज्ञो वितन्तुसाय्यः ॥ ११ ॥
धमीदुं शत्रः परद्रापय्या यतं	उरु णस्तन्वेहु तन उरु क्षयाय नस्कृधि ।
पात्रेय मिन्द्रन्मत एति रक्षसः	॥ २१ ॥ उरु णो यन्धि जीवसे ॥ १२ ॥
उद्वक्यातुं शुगुलूक्यातुं	उरुं नृभ्य उरुं गर्वं उरुं रयायु पन्थाम् ।
अदि दयातुमुत कौक्यातुम् ।	देववीति मनामहे ॥ १३ ॥
गुपणयातुमुत गृध्रयातुं	॥ १११ ॥ (ऋ० ८।६९।१-१०, [११ पूर्वाधः] १३-१८)
हृपकेषु प्र मृषा रथे इन्द्र	॥ २२ ॥ अत्रुष्टु, २ उगिह, ४-६ गायत्री, १६ पशुभिः,

इन्द्राय गावं आशिरं दुदुहे वज्रिणे मधुं ।

यत् सीमुपहरे विदत् ॥ ६ ॥

उचदद्भ्रस्यं विष्टपं गृहमिन्द्रंश्च गन्वहि ।

मध्वः पीत्वा संचेवहि त्रिः सप्त सख्युःपदे ॥७॥

अर्चेत् प्राचेत् प्रियमेधासो अर्चेत् ।

अर्चेन्तु पुत्रका उत पुरं न ध्रुवर्चत ॥ ८ ॥

अवं स्वराति गर्गरो गोधा परिं सनिष्वणत् ।

पिह्ना परिं चनिष्कद—दिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ९ ॥

आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुद्या अनपस्फुरः ।

अपस्फुरं गृभ्मायत् सोममिन्द्राय पातवे ॥ १० ॥

अपादिन्द्रो अपादिभि—विश्वे देवा अमत्सत ।

(पूर्वांशः) ॥ ११ ॥

यो व्यतीरफाणयत् सुयुंन्तो उपं दाशुषे ।

तको नेता तदिद्वपु—रुपमा यो अमुच्यत ॥ १३ ॥

अतीदुं शक्र ओहत् इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।

भिनत् कृनीन ओदनं पच्यमानं पुरो गिरा ॥१४॥

अर्भको न कुमारको ऽधि तिष्ठन् नवं रथम् ।

स पक्ष्ममहिषं मृग पित्रे मात्रे विमुक्तुम् ॥१५॥

आ त् सुशिप दपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।

अधं पुक्षं संचेवहि सुहस्रपादमरुयं ॥ १६ ॥

स्वस्तिगार्मनेहसम् ॥ १६ ॥

तं घेमिन्त्या नमस्विन उपं स्वराजंमासते ।

अथे चिदस्य सुधितं यदेतव ॥ १७ ॥

अनुं प्रनस्यौकसः प्रियमेधास पपाम् ।

पूर्वामनु प्रयतिं वृत्तवर्दिषो ॥ १८ ॥

दितप्रयस आशत ॥ १८ ॥

॥ ११३ ॥ (अ० ८।७०।१-१५)

पुहन्मा आश्रितस । बृहती, १-६ प्रगाय = (विपमा बृहती,

धमां धतीपृहती), १२ शकुमती, १३ उभिह,

१४ अनुष्टुप्, १५ पुरवणिक् ।

यो राजा चर्पणीनां याता रथेमिन्द्रिणुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां

ज्येष्ठो यो वृत्रहा गुणे ॥ १ ॥

इन्द्रं तं शुभम् पुरहन्मन्त्रवेसं

यस्यं द्विता विधुर्तरिं ।

हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो

महो दिवे न सूर्यः ॥ २ ॥

नकिष्टं कर्मणा नरा—द्यश्चकारं सुदावृधम् ।

इन्द्रं न यज्ञैर्विद्वग्भूतंभुवंसं

अधृष्टं ध्रुवोजसम् ॥ ३ ॥

अपाह्वहमथं पृतनासु सासहिं

यस्मिन् महीरुद्रयः ।

सं धेनवो जायमाने अनोनवुः

घावः क्षामो अनोनवुः ॥ ४ ॥

यदयव इन्द्र ते शत शतं भूर्मीरुत स्युः ।

न त्वां वज्रिन्सहस्रं सूर्या अनु

न जातमष्टं रोदसी ॥ ५ ॥

आ पंप्राथ महिना वृष्ण्या वृष्ण

विश्वां शविष्टु शवसा ।

असां अवं मघवन् गोमति वृजे

वज्रिञ्जिनामिरुतिभिः ॥ ६ ॥

न सीमदैव आप—दिषं दीर्घायो मत्यैः ।

एतन्वा विष्ट एतशा युयोजते

हरी इन्द्रो युयोजते ॥ ७ ॥

ते घो महो म्हाप्यं इन्द्रं दानायं सुक्षणिम् ।

यो गाधेषु य आरणेषु हय्यो

वाजेष्पस्ति हय्यः ॥ ८ ॥

उदु पु णो वसो महे मृदास्यं शूर राधसे ।

उदु पु म्हा मघवन् मवर्चय

उदिन्द्र अरसे महे ॥ ९ ॥

त्वं न इन्द्र ऋतपु—स्त्यानिदो नि हंस्पमि ।

मथे वसिष्य तुयिञ्जुगोः

नि दास दिश्रयो हय्यः ॥ १० ॥

अन्यत्रतममातुप—मयज्वानमदैवयुम् ।

अव स्वः सर्वा दुधुवीत पर्वतः

सुप्राय दस्युं पर्वतः ॥ ११ ॥

त्वं न इन्द्रासां हस्ते शविष्ठ दावने ।

घानानां न सं गृभायास्मयुः

द्वि सं गृभायास्मयुः ॥ १२ ॥

सर्वायः क्रतुमिच्छन् कथा राधाम शरस्य ।

उपस्तुति भोजः सुरियो अन्नयः ॥ १३ ॥

भूरिभिः समह ऋषिभि—र्षिहिंप्मद्भिः स्तविष्यसे ।

यदित्यभेकेभेकमि—च्छरे घत्सान् पराददः ॥ १४ ॥

कर्णगुहा मुख्या शैरदेव्यो

घत्मे नस्त्रिम्य आनेयत् ।

अजां सुरिर्न धातेवे ॥ १५ ॥

इन्द्रं शुद्धो हि नो स्ये शुद्धो रत्नानि दाशुपे ।

शुद्धो वृत्रार्णि जिप्रसे शुद्धो वाजं सिपाससि ॥९

॥ ११५ ॥ (ऋ० ८।९।१-१३, १६-२१)

[बुतानो वा माहतः । त्रिष्टुप्, ४ विराट्, २१ पुरस्ताज्ज्योति]

असा उपास आतिरन्त यामं

इन्द्राय नक्तुम्य्याः सुवाचः ।

असा आपो मातरः सुप्त तस्थुः

नृम्यस्तराय सिन्धवः सुपाराः ॥ ११ ॥

अतिविद्धा विद्युरेणां विद्वान्ना

त्रिः सुप्त सानु संहिता गिरीणान् ।

न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्यात्

यानि प्रवृद्धो वृषमश्चकार ॥ २ ॥

इन्द्रस्य वज्रं आयसो निर्मिश्र

इन्द्रस्य यादोर्भूषिष्ठमोजः ।

त्रिः पृष्टिस्त्वा मरुतो वावृत्राना
 उक्त्वा इव राशयो यक्षियासः ।
 उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं
 शुभं त एना हृधिपां विधेम
 तिग्ममार्युधं मरुतामनीकं
 कस्त इन्द्र प्रति वज्रं दधर्ष ।
 अनायुधासो असुरा अदेवाः
 चक्रेण तां अप वप ऋजीपित्र
 मह उग्राय तवसे सुयुक्ति
 प्रेरय शिवतमाय पृथ्वः ।
 गिर्वाहसे गिर इंद्राय पूर्वाः
 धेहि तन्वे कृविदङ्ग वेदत्
 उक्थवाहसे विभ्वे मनीपां
 द्रुणा न पारमीरया नदीनाम् ।
 नि स्पृश धिया तन्वि ध्रुतस्य
 जुष्टरस्य कृविदङ्ग वेदत्
 तद्विचिडि यत् त इन्द्रो जुजोपत्
 स्तुहि सुष्टुति नमसा विवास ।
 उप भूय जरितुर्मा स्वण्यः
 श्रावया वाचं कृविदङ्ग वेदत्
 अयं द्रुप्तो अंशुमतीमतिष्ठत्
 इयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
 आयत् तमिन्द्रः शच्या धर्मन्तं
 अप ओर्हितीर्नमणा अघत्
 त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जार्यमानो
 अशुभभ्यो अमवः शत्रुरिन्द्र ।
 गुळ्हे द्यावापृथिवी अन्वधिन्दो
 विभुमद्रयो भुवनेभ्यो रणं धाः
 त्वं ह स्वर्दप्रतिमानमोजो
 वज्रेण यजिन् घृपितो जघन्य ।

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १६ ॥

त्वं शुष्णस्यावातिरो घघ्रैः
 त्वं गा इन्द्र शक्येदेविन्दः ॥ १७ ॥
 त्वं ह त्यदृषभ चर्षणीनां
 घनो वृत्राणां तविपो वभूथ ।
 त्वं सिन्धूरसृजस्तस्तभानान्
 त्वमपो अजयो दासपतीः ॥ १८ ॥
 स सुक्रतु रणिता यः सुतेपु
 अलुत्तमन्युयो अहेव रेवान् ।
 य एक इक्षर्यपांसि कर्ता
 स वृत्रहा प्रतीदन्यमाहुः ॥ १९ ॥
 स वृत्रहेन्द्रश्चर्षणीधृत् तं सुष्टुत्या हव्यं हुवेम ।
 स प्राविता मघवा नोऽधिवक्ता
 स चार्जस्य श्रवस्यस्य दाता ॥ २० ॥
 स वृत्रहेन्द्र ऋभुक्षाः सद्यो जज्ञानो हव्यो वभूव ।
 कृष्णन्नपांसि नर्या पुरुणि
 सोमो न पीतो हव्यः सरिभ्यः ॥ २१ ॥
 ॥ २१६ ॥ (ऋ० ८।१८।१-१९)
 नृमेघ आहिरसः । रणिक् ;
 ७, १०-११ वक्रुपः ; ९, १२ पुररणिक् ।
 इंद्राय सामं गायत विप्राय वृहते वृहत् ।
 धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ १ ॥
 त्वमिन्द्रामिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः ।
 विश्वकर्मा विश्वेदेवो महा अंसि ॥ २ ॥
 विभाज्जन्व्योतिषा स्वः—रगच्छो रोचनं दिवः ।
 देवास्त इन्द्र सत्यायं येमिरे ॥ ३ ॥
 एन्द्रं नो गाधि म्रियः संत्राजिदगोहाः ।
 गिरिर्नि विश्वतरस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ ४ ॥
 अभि हि सत्य सोमपा उमे वभूथ रोदसी ।
 इन्द्रासि सुन्वतो वृथः पतिर्दिवः ॥ ५ ॥
 त्वं हि शदर्धतीना—मिन्द्रं दत्ता पुरामभिः ।,
 हुता दस्योर्भनोवृथः पतिर्दिवः ॥ ६ ॥

अथा हीन्द्र गिर्वण उर्प त्वा कामान् महः संसृजमहे ।

उदेद्य यन्त उदभिः ॥ ७ ॥

वार्य त्वा यद्य्यामि—वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।

वावृष्णांसं विदद्रिचो द्विवेदेधे ॥ ८ ॥

युञ्जन्ति हरी इपिरस्य गार्थयो—रौ रथ उर्युगे ।

इन्द्रघाहा वचोयुजा ॥ ९ ॥

त्वं न इन्द्रा भेर ओजो नृमणं शतक्रतो विचर्षणे ।

आ धीरं पृतनापहम् ॥ १० ॥

त्वं हि नः पिता वंसो
त्वं माता शतक्रतो यभूर्विद्य ।

अर्धा ते सुन्नमीमहे ॥ ११ ॥

त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्त—मुपं द्रुवे शतक्रतो ।

स नो रास्य सुवीर्यम् ॥ १२ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० ८।१९।१-८)

प्रगाथ = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

त्वामिदा ह्यो नरो ऽपीप्यन् वञ्चिन् भूर्णयः ।

स इन्द्र स्तोमवाहसामिह शुधि

उप स्वसंरमा गंदि ॥ १ ॥

मास्यां सुशिप्र हगियस्तदीमहे

त्ये आ भूर्गन्ति घेघसः ।

तप धर्वास्युपमान्युषर्यां सुतेध्विन्द्र गिर्वणः ॥ २ ॥

धायन्त इय स्युं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।

पर्युनि ज्ञाने जर्नमान ओजसा

प्राने मागं न दीधिम् ॥ ३ ॥

भनेदंगतिं यमुदागुपं स्तुदि

भद्रा इन्द्रम्य सतयः ।

गो धैम्य वामं यिपुतो न नोपति

मनो दानार्यं शोदर्यन् ॥ ४ ॥

त्यमिन्द्र प्रवर्निष्य—भि विश्वां वामि स्पृधः ।

घनाग्निता अग्निता विभ्यन्मति

स्य नृपं ताम्प्यन् ॥ ५ ॥

अनु ते शुष्मं तुर्यन्तमपितुः

क्षोणी शिशुं न मातरां ।

विश्वास्ते स्पृधः अथयन्त मन्यवे

घृत्रं यद्विन्द्र तूर्धसि ॥ ६ ॥

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।

आशु जेतारं हेतारं रथीतम्

अतूर्तं तुग्न्याघृधम् ॥ ७ ॥

इष्कतारमनिष्कतं सहस्सृतं

शतमूर्ति शतक्रतुम् ।

समानमिन्द्रमर्वसे हवामहे

वसवानं यसुजुवम् ॥ ८ ॥

॥ २१८ ॥ (ऋ० ८।८९।१-७)

नृमेघ-पुरुमेघावाशिगासौ । १-४ प्रगाथ = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), ५-६ अनुष्टुप्, ७ बृहती ।

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।

येन ज्योतिरजनयभ्रुताघृधो

देवं देवाय जागृयि ॥ १ ॥

अपाधमद्रमिशस्तीरशस्तिहा

अथेन्द्रो घुम्याभवत् ।

वेवास्तं इन्द्र सुख्याय येमिरे

बृहन्नानो मरुद्रण ॥ २ ॥

प्र घ इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मचित ।

घृत्रं हनति घृत्रदा शतक्रतु—वर्षेण शतर्षयणा ॥ ३ ॥

अभि प्र भर घृपुता घृपन्मनः

धर्वधित् ते असद्रहत् ।

अप्यन्वापो जयसा वि मातये

हनो घृत्रं जया स्वः ॥ ४ ॥

यज्ञार्यया अपृष्यं मययन् वृत्रहत्याय ।

तन् वृषिपीमप्रथय—स्तदस्तघ्ना उत घाम् ॥ ५ ॥

तन् तं यज्ञो अजायत् तदकं उत हस्ततिः ।

तद्विभ्यमभिभूरति यज्ञानं यद्य जन्त्यम् ॥ ६ ॥

आमासु पकमैर्य आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
धर्मं न सामन् तपता सुवृक्तिभिः
जुष्टं गिर्वैणसे बृहत् ॥ ७ ॥

॥ २१९ ॥ (ऋ० ८:२०:१-३)

प्रगायः= (विपमा बृहती, समा मतोबृहती) ।

आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः सुमत्सु भूपतु ।
उप ब्रह्माणि सर्वनामि बृत्रहा
परमज्या ऋचीपमः ॥ १ ॥
त्वं दाता प्रथमो राधसाम-स्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युन्नस्य युज्या वृणीमहे
पुत्रस्य शर्वसो महः ॥ २ ॥
ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वैणः क्रियन्ते अर्नतिद्रुता ।

इमा जुषस्व हर्षद्व योजना
इन्द्र या ते अर्ममहि ॥ ३ ॥

त्वं हि सत्यो मधवन्नानतो धृवा भूरि न्युजसे ।
स त्वं शविष्ठ बज्रहस्त दाशुपे
अर्वाञ्च रयिमा कृधि ॥ ४ ॥

त्वामिन्द्र यशा अंस्यू-जीषी शवसस्पते ।
त्वं बृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्
अनुत्ता चर्षणीधृता ॥ ५ ॥

तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र
प्र ते सुम्ना नो अश्रवन् ॥ ६ ॥

॥ २२० ॥ (ऋ० ८:१९:२-३३)

श्रुतः= सुक्लो वा आत्रिसः । गावत्री, १ अनुष्टुप् ।

पान्तमा घो अर्धसु इन्द्रमभि प्र गावत ।
विश्वासाहं शतकतुं महिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥
पुनहुतं पुनहुतं गाथान्यं सनेश्रुतम् ।

इन्द्र इति प्रवीतन ॥ २ ॥
इन्द्र इथो महानां दाता याजानां नृतुः ।
महो अभिश्वा यमत् ॥ ३ ॥

अपाहु शिष्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोपिर्णः ।

इन्द्रोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ ४ ॥

तन्वभि प्रार्चते-न्द्रं सोमस्य पीतये ।

तदिद्वयस्य वर्धनम् ॥ ५ ॥

अस्य पीत्वा मदानां देवो देवस्यौजसा ।

विश्वाभि भुवना भुवत् ॥ ६ ॥

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्वायतम् ।

आ च्यावयस्युतये ॥ ७ ॥

युधं मन्तमनर्वाणं सोमपामर्नपच्युतम् ।

नर्मवार्यकतुम् ॥ ८ ॥

शिशां ण इन्द्र राय आ पुठ विद्रां ऋचीपम ।

अवा नः पायं धने ॥ ९ ॥

अतश्चिदिन्द्र ण उपा ऽऽयाहि शतवाजया ।

इपा सहर्षवाजया ॥ १० ॥

अयाम् धीवतो धियो ऽर्वाञ्चिः शक्र गोदरे ।

जयैम पूत्सु वञ्जिवः ॥ ११ ॥

व्यमु त्वा शतकतो गावो न यवसेष्वा ।

उन्धेषु रणयामसि ॥ १२ ॥

विश्वा हि मर्त्यत्वना ऽनुकामा शतकतो ।

अगन्म वञ्चिन्नाशसः ॥ १३ ॥

त्वे सु पुत्र शवसो ऽश्वन् कामकातयः ।

न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ १४ ॥

स नो वृपन्सनिष्ठया सं घोरयां द्रवित्या ।

धियाविडि पुरंध्या ॥ १५ ॥

यस्ते नूनं शतकतु-विन्द्रं सुक्षितमो मर्दः ।

तेन नूनं मर्दे मदेः ॥ १६ ॥

यस्ते चित्रध्वस्तमो य इन्द्र वृषहन्तमः ।

य औजोदातमो मर्दः ॥ १७ ॥

विष्वा दि यस्ते अद्रिष-स्यादत्ताः सत्य सोमपाः ।

विर्वासु दस कृष्टिपुं ॥ १८ ॥

इ द्राय मन्त्रे सुते परि षोभन्तु नो गिरः ।	॥ १९ ॥ । ऋ० ८।१३। (२-३३) ।
अकर्मचन्तु कारवः ॥ १९ ॥	सुवक्ष आङ्गिरसः । गायत्री ।
यस्मिन् विश्वा अधि धियो रणन्ति सप्त संसर्दः ।	उद्देदुभि धृतामर्घं वृषमं नर्यापसम् ।
इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २० ॥	अस्तारमेपि सूर्ये ॥ १ ॥
त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यश्मत्तत ।	नवु यो नवति पुरो विभेदं वाहो जसा ।
तमिदधे-तु नो गिरः ॥ २१ ॥	अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥
आ त्वा विशन्विन्दवः समुद्रमिध सिधवः ।	स न इन्द्रः शिवः सखा ऽध्वावद्रोमुद्यधमत् ।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ २२ ॥	उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥
विष्यन्थं महिना वृषन् भुधं सोमस्य जागृवे ।	यद्य कच्च वृत्रह—सुदगा अमि सूर्ये ।
य इन्द्र जडरेपु ते ॥ २३ ॥	सर्वे तदिन्द्र ते वशे ॥ ४ ॥
अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् ।	यदा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे ।
अरं धामभ्य इन्द्रवः ॥ २४ ॥	उतो तत् सत्यमित् तव ॥ ५ ॥
अमृत्वाय गायति धृतकक्षो अरं गर्धे ।	ये सोमांसः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
अमिन्द्रस्य धार्त्रे ॥ २५ ॥	सर्वांस्तो इन्द्र गच्छसि ॥ ६ ॥
अरं हि प्मा सुतेपु णः सोमैष्विद्र भूपसि ।	तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
अरं ते शक्र दावने ॥ २६ ॥	स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ७ ॥
प्राग्रात्ताविदद्रिव—स्त्वां नक्षन्त नो गिरः ।	इन्द्रः स दामने हृत ओजिष्ठः स मदे हितः ।
अरं गमाम ते वयम् ॥ २७ ॥	दुष्ठी श्लोकी स सोम्यः ॥ ८ ॥
प्रा एषी वीर्यु—रेवा दारं उत स्थिरः ।	गिरा वज्रो न संभृतः सर्वलो अर्नपच्युतः ।
प्रा ते राष्यं मनः ॥ २८ ॥	वृक्ष ऋष्वो अस्तवः ॥ ९ ॥
प्रा गतिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धानि धानुर्मिः ।	दुर्गे चित्रः सुगं कृधि गृणान इन्द्र गिवेणः ।
धर्वा चिदिद्र मे सचां ॥ २९ ॥	त्वं च मघवन् वराः ॥ १० ॥
मो पु द्रष्टेयं तन्द्र्यु—भुवो वाजानां पते ।	यस्य ते नू चिदादिशं न मिनन्ति स्वराज्यम् ।
मग्नां सुतस्य गोमतः ॥ ३० ॥	न देवो नाधिगुर्जनः ॥ ११ ॥
मा न इन्द्राभ्याहुदिशः सूरौ अक्तुष्या यमन् ।	अथां ते अर्प्रतिष्कृतं देधी शुष्मं सपर्यतः ।
त्या युजा यनेम तत् ॥ ३१ ॥	उभे सुदिशं रोदसी ॥ १२ ॥
न्ययेदिन्द्र युजा घृथं प्रति सुधीमहि स्पृधेः ।	त्वमेतदधारयः हृण्णामु रोहिणीषु च ।
न्यमन्नाथं तथं मसि ॥ ३२ ॥	परुष्णीयु रुशत् पर्यः ॥ १३ ॥
न्यामिदि न्याययो ऽनुनोनुद्यतधरान् ।	वि यदहेरुधं त्विपो विश्वे देवासो अक्रामुः ।
रागाय इन्द्र वारयः ॥ ३३ ॥	विद्रमृगस्य तां अमः ॥ १४ ॥
	आहुं मे निवरो भुवद् घृदादिष्ट पस्यम् ।
	अजातशयुरस्तुतः ॥ १५ ॥

श्रुतं वो वृत्रहन्तम् प्र शर्धे चर्षणीनाम् ।
 आ शुभे राधसे महे ॥ १६ ॥
 अया धिया च गध्यया पुरुणामन् पुरुष्टुत ।
 यत् सोमिलोम आर्मवः ॥ १७ ॥
 योधिर्माना इदंस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः ।
 शृणोतु शक्र आशिर्षम् ॥ १८ ॥
 कया त्वं न ऊत्या ऽभि प्र मन्दसे वृषन् ।
 कया स्तोतृभ्य आ भंर ॥ १९ ॥
 कस्य वृषां सुते सचा नियुतरोन् वृषभो रणन् ।
 वृत्रहा सोमपीतये ॥ २० ॥
 अभी पु णस्त्वं रयि मन्दसानः सहस्रिणम् ।
 प्रयन्ता योधि द्वाशुर्वे ॥ २१ ॥
 पत्नीवन्तः सुता इम उशन्तो यन्ति धीतये ।
 अपां जनिमिन्नुष्णुणः ॥ २२ ॥
 इष्टा होत्रा अष्टश्रुते-न्द्र वृधासो अश्वरे ।
 अच्छ्रावभृथभोजसा ॥ २३ ॥
 इह त्या संधमाद्या हरी हिरण्यकेद्या ।
 योद्धामभि प्रयो हितम् ॥ २४ ॥
 तुभ्यं सोमाः सुता इमे स्तीर्ण युर्द्विर्वाभावसो ।
 स्तोतृभ्य इन्द्रमा वद ॥ २५ ॥
 आ ते दक्षे वि रौचिना दधद्रत्ना वि द्वाशुर्वे ।
 स्तोतृभ्य इन्द्रमर्घत ॥ २६ ॥
 आ ते दधामीन्द्रिय-मुक्था विधां शतक्रनो ।
 स्तोतृभ्य इन्द्र मृळय ॥ २७ ॥
 भद्रंभद्रं न आ भरे-पृमूजं शतक्रनो ।
 यदिन्द्र मृळयांसि नः ॥ २८ ॥
 स नो विश्वान्या भंर सुषितानि शतक्रनो ।
 यदिन्द्र मृळयांसि नः ॥ २९ ॥
 त्वामिद् वृत्रदन्तम सुतायन्तो हवामहे ।
 यदिन्द्र मृळयांसि नः ॥ ३० ॥
 उषं नो हरिभिः सुतं यादि मंदानां पते ।
 उषं नो हरिभिः सुतम् ॥ ३१ ॥

हिता यो वृत्रहन्तमो विद् इन्द्रः शतक्रतुः ।
 उषं नो हरिभिः सुतम् ॥ ३२ ॥
 त्वं हि वृत्रहक्षेपां पाता मोमानामसि ।
 उषं नो हरिभिः सुतम् ॥ ३३ ॥
 ॥ २२२ ॥ (श्रु १०।८।७-९)
 त्रिशिरास्तवाष्टः । त्रिष्टुप ।
 अस्य व्रितः कर्तुना यत्र अन्तः
 इच्छन् धीतिं पितुरेवैः परस्य ।
 सत्त्वस्यमानः पित्रोऽपस्यै
 जामि श्रुवाण आयुधानि वेति ॥ ७ ॥
 स पित्र्याण्यायुधानि विद्वान्
 इन्द्रोऽपि त्वाप्यो अर्भ्ययुष्यत् ।
 त्रिशीर्षाणं सतरादिम जघन्वान्
 त्वाष्टस्यं त्रिभिः मंरुजे त्रितो गाः ॥ ८ ॥
 भूरीदिन्द्र उदिनक्षन्तमोजो
 अर्वाभिनत् सत्पतिमर्ष्यमानम् ।
 त्वाष्टस्यं विद् विश्वरूपस्य गोनां
 आचक्राणस्त्रीणि शीर्षां परां वक् ॥ ९ ॥
 ॥ २२३ ॥ (श्रु १०।२१।१-१५)
 ऐन्द्रो विमरः प्रात्रापलो वा, यापुत्रो वसुहडा । इत्यादृशोऽन्व,
 ५, ७, ९ अनुष्टुप, १५ त्रिष्टुप ।
 कुहं धृत इन्द्रः कसिन्नद्य जनें मित्रो न धयते ।
 ऋषीणां वा यः क्षये गुदां वा चर्षये गिरा ॥ ११ ॥
 इह धृत इन्द्रो असे अद्य न्नर्षयुःपृथ्वीपमः ।
 मित्रो न यो जनेष्या यनाक्षये अत्मान्या ॥ २ ॥
 मूढो यस्पतिः शर्वनो अत्मान्या
 भूतो नृष्णस्यं नृत्तुजः ।
 भूतां यक्षस्य धृणोः पिना पृथग्निव मिथम ॥ ३३ ॥
 युजानो अथ्य पार्तस्य धुनीं देवो देवस्यं यजिवः ।
 स्यन्तां पृथा त्रिगर्भता मृजानः स्तोत्राय रिनः ॥ ४४ ॥
 सं त्या विद् यातुभ्याभ्यागां क्रुत्वा तन्ना यदर्थं ।
 ययैर्वो न मस्यो यन्ता नर्षिर्दिदार्यः ॥ ५ ॥
 (१२३०)

अथ गमन्तोदानां पृच्छते चां
 कर्दथा न आ गृहम् ।
 आ जंगमथः पराकाद् द्विवश्च गमश्च मर्त्यम् ॥ ६ ॥
 आ न इन्द्र पृक्षसे ऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम् ।
 तत् त्वां याचामहेऽयः शुष्णं यद्धन्मानुषम् ॥ ७ ॥
 अकर्मा दस्युरग्निं नो अमन्तु—रन्यव्रतो अमानुषः ।
 त्वं तस्यामित्रहन् वधेर्दासस्य दम्भय ॥ ८ ॥
 त्वं न इन्द्र शूर शूरै—रुत त्वोतासो बर्हणा ।
 पुरत्रा ते वि पृतयो नवन्त क्षोणयो यथा ॥ ९ ॥
 त्वं तान् वृत्रहर्त्ये चोदयो नून
 कार्पाणे शूर वज्रिवः ।
 गुहा यदी कवीनां विशां नक्षत्रशवसाम् ॥ १० ॥
 मद्भू ता तं इन्द्र दानाप्रस आक्षणे शूर वज्रिवः ।
 यद्द शुष्णस्य दम्भयो जातं विद्वे स्यावग्निभिः ॥ ११ ॥
 माकृध्वगिन्द्र शूर वस्वीं—रसे भूवन्नभिष्टयः ।
 व्ययवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः ॥ १२ ॥
 असे ता तं इन्द्र सन्तु सत्या ऽहिंसन्तीरुपस्पृशीः ।
 विद्याम् यासां भुजो धेनुनां न वज्रिवः ॥ १३ ॥
 अदस्ता यदपदी वधत क्षाः शचीभिवेद्यानाम् ।
 नृष्णं परं प्रदक्षिणिद्
 विदनायं वि नि सिंश्रयः ॥ १४ ॥
 पिवापिवेदिन्द्र शूर सोमं
 मा रिण्यो घसयान् वसुः सन् ।
 उत शायस्य गृणतो मृधोनीं
 मद्दधं रायो रेततंरुधी नः ॥ १५ ॥
 ॥ १०४ ॥ (अ० १०१३१-३)
 अ० १, ७ त्रिष्टु १, ५ अमिगारिणी ।
 यजामहे इन्द्रं यज्ञदक्षिणं
 हरीणां हृष्यं विमंतानाम् ।
 प्र दमधु दार्पुवदृष्यं मां मूद्
 वि वेनाभिर्दयमानो वि राधेना ॥ १ ॥

हरी न्वस्य या वनें विदे वसु
 इन्द्रो मधेमवचा वृत्रहा भुवत् ।
 ऋभुर्वाजं ऋभुक्षाः पत्यते शयो
 अवं क्षणौमि दासस्य नाम चित् ॥ २ ॥
 यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं
 हरी यमस्य वहतो वि सुरभिः ।
 आ तिष्ठति मघवा सनश्चुत
 इन्द्रो वाजस्य दीर्घथ्रवसस्पतिः ॥ ३ ॥
 सो चिन्नु वृष्टिर्यथाऽ स्वा सचां
 इन्द्रः दमथ्रुणि हरितामि प्रुणुते ।
 अयं वेति सुक्षयं सुते मधुत्
 इङ्गनोति वातो यथा वनम् ॥ ४ ॥
 यो वाचा विवाचो मृधवाचः
 पुरु सहस्राशिवा जघान ।
 तत्तुदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि
 पितेव यस्तविपीं वावृधे शवः ॥ ५ ॥
 स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्
 अपूर्व्यं पुरुतमं सुदानवे ।
 विद्या हंस्य भोजनमिनस्य यत्
 आ पशुं न गोपाः करामहे ॥ ६ ॥
 मार्किन् पना सुख्या वि यौपुः
 तवं चेन्द्र विमदस्यं च ऋषेः ।
 विद्या हि ते प्रमतिं देव जामिवत्
 असे तं सन्तु सुख्या शिवानि ॥ ७ ॥
 ॥ १०५ ॥ (अ० १०१३१-३) आस्तारपृष्किः ।
 इन्द्र सोममिमं पियं मधुमन्तं चमू सुतम् ।
 असे रयिं नि धोरय वि यो मदै
 सहस्रिणं पुरुचसो विवक्षसे ॥ १ ॥
 त्वां यजेभिर्दयै—र्यं हृद्येभिरीमहे ।
 शचीपते शचीनां वि यो मदे
 धेष्टं नो धेति पार्यं विवक्षसे ॥ २ ॥

यस्पतिर्वायीणा—मसि रघ्नस्य चोदिता ।

इन्द्रं स्तोतृणामविता चि वो मर्दे

द्विपो नः पादाहंसो विवक्षसे

॥ २२६ ॥ (ऋ० १०।२७।१-२४)

ऐन्द्रो वस्रकः । त्रिष्टुप् ।

असत् सु मे जरितः सामिवेगो

यत् सुन्वते यजमानाय शिक्षम् ।

अनाशीर्दामहमसि प्रहृन्ता

संत्यध्वृतं वृजिनायन्तमामुम्

यदीदहं युधर्ये संनयानि

अदेवयून् तन्वां शशुंजानान् ।

अमा ते तुभ्रं वृषमं पंचानि

तीनं सुते पञ्चदशं नि पिञ्चम्

नाहं तं वैदं य इति ब्रवीति

अदेवयून्त्समरणे जघन्वान् ।

यदावाप्यत् समरणमृवावत्

आदिद्धं मे वृषभा प्र ध्रुवन्ति

यदज्ञातेषु वृजनेष्वसं

विश्वे सतो मयवानो म आसन् ।

जिनामि वेत् क्षेम आ सन्तमामुं

प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृहं

न धा उ मां वृजने वारयन्ते

न पर्वतासो यदहं मनस्ये ।

मम स्यनात् हृद्युकर्णो भयात्

पवेदन् घ्न किरणः समजात्

दशान्वयत्र द्रुतपां अनिन्द्रान्

धाहुक्षदः शरये पत्यमानान् ।

पृषुं धा ये नीनिदुः सन्वायं

अपृ न्वेषु पययो वध्वत्युः

अमृवांभीर्व्युः आयुरानुद्

दयप्रं पृषो अर्पते जु दैवत् ।

द्वे पवस्ते परि तं न मृतो

यो अस्य पारे रजसो विवेप

॥ ७ ॥

गाद्यो यवं प्रयुता अयो अंशुन्

ता अपदयं सुहर्गोपाश्वरन्तीः ।

हवा इदयो अभितः समायन्

कियदासु स्वपतिदछन्दयाते

॥ ८ ॥

सं यद्वयं यवसाद्रो जनानां

अहं यवाद् उर्वेञ्जं अन्तः ।

अत्रा युकोऽवसातारमिच्छात्

अयो अयुक्तं युनजद्वन्वान्

॥ ९ ॥

अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं

द्विपाद्य यच्चतुष्पात् संसृजानि ।

स्त्रीभियो अत्र वृषणं पृतन्यात्

अयुद्धो अस्य वि भंजानि वेदः

॥ १० ॥

यस्यानक्षा दुहिता जात्यासु

कस्तां विद्धां अभि मंग्याते अन्धाम् ।

कतरो मेनि प्रति तं मुंचाते

य इ वहाते य ई धा वरेयात्

॥ ११ ॥

कियती योषा मयतो वधुयोः

परिप्रीता पन्यसा वार्येण ।

अद्रा वधुर्मवति यत् सुपेशाः

स्ययं सा मित्रं वनुते जनै चित्

॥ १२ ॥

पुत्तो जंगार प्रत्यञ्जमिति

शीर्ष्णां शिरः प्रति द्यौं वरुधम् ।

आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति

न्यदुत्तानामन्वेति भूमिम्

॥ १३ ॥

वृद्धशच्छ्रायो अपलाशो अवी

तस्थो माता विपितो अति गर्भः ।

अन्यस्था वृत्सं रिद्धती मिमाय

कया भुवा नि दधे धेनुकथः

॥ १४ ॥

सत वीरासौ अधरादुदायन्
 अष्टोत्तरात्तात् समजगिर्मरन्ते ।
 नच पश्चात्तात् स्थिविमन्त आयन्
 दश प्राक् सानु वि तिरन्त्यश्रः
 दृशानामेकं कपिलं समानं
 तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्यीय ।
 गर्भे माता सुधितं वक्षणासु
 अर्चनन्तं तुपर्यन्ती विमर्ति
 पीवानं मेपमपचन्त वीरा
 न्युक्ता अक्षा अनु दीव आसन् ।
 द्वा धनुं वृहतीमप्स्वदन्तः
 पवित्रवन्ता चरतः पुनन्तां
 वि क्रौशनासो विष्वञ्च आयन्
 पचाति नेमो नहि पक्षदधः ।
 अयं मे देवः संविता तदाह
 वृक्ष इद्वनवत् सर्पिरञ्जः
 अपश्यं प्राप्तं वहमानमारात्
 अचक्रया स्वधया वर्तमानम् ।
 सिरपन्त्ययः प्र युगा जनानां
 सद्यः शिक्षा प्रमिनानो नवीयान्
 एतौ मे गावो प्रमरस्यं युक्तौ
 मो पु प्र सैधीमुंहुरिन्मन्धि ।
 आपश्चिदस्य वि नशन्त्ययं
 सूर्यश्च मर्क उपरो यमयान्
 अयं यो यज्ञः पुरुषा विवृक्तो
 अयः सूर्यस्य वृहत्तः पुरीपात् ।
 धप इदेना परो अग्यदास्ति
 नदप्यधी जरिमाणस्तरन्ति
 यक्षेपृक्षे नियता मीमयुग्नीः
 तनी वयः प्र पतान् पुरुपादः ।

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

॥ १९ ॥

॥ २० ॥

॥ २१ ॥

अथेदं विश्वं भुवनं भयात्
 इन्द्राय सुन्वदपये च शिर्षत्
 देवानां मानं प्रथमा अतिष्ठन्
 कुन्तत्रादेपामुपरा उदायन् ।
 प्रयस्तपन्ति पृथिवीमनुपा
 द्वा वृक्कं वहतः पुरीपम्
 सा ते जीवातुस्त तस्य विद्धि
 मा संतादगपे गृहः समये ।
 आविः स्वः कृणुते गृहते वुसं
 स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते

॥ २२ ॥

॥ २३ ॥

॥ २४ ॥

॥ २७ ॥ (ऋ० १०।२९।२-८)

वने न वा यो न्यधायि चाकन्
 शुचिर्वी स्तोमो भुरणावजीगः ।
 यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेपु होता
 नृणां नयो नृतमः क्षपावान्
 प्र ते अस्या उपसः प्रापरस्या
 नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
 अनुं त्रिशोकः शतमावह्वन्
 कुत्सेन रथो यो असत् ससवान्
 कस्ते मद इन्द्र रन्थो भूद्
 दुरो गिरौ अभ्युप्रो वि धाय ।
 कदाहो अर्वागुपं मा मनीषा
 आ त्वा शम्यामुपमं राघो अर्धैः
 कर्तुं युस्मिन्द्र त्वावतो नृन्
 कया धिया करसे कन्न आगन् ।
 मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या
 अर्धे समस्य यदसन् मनीषाः
 प्रेरय स्रो अर्थे न पारं
 ये अस्य कामं जनिधा इच गमन् ।
 गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वाः
 नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यर्धैः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

(५५१९)

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी
 घौर्मज्जना पृथिवी कार्थेन ।
 वराय ते घृतचन्तः सुतासः
 स्वाध्वन् भवन्तु पीतये मधूनि
 आ मध्वो अस्मा अमिचुद्रमंत्रं
 इन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
 स वावृधे वरिमन्त्रा पृथिव्या
 अभि क्रत्या मयेः पौंस्यैश्च
 व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोज्ञा
 आस्यं यतन्ते सख्यायै पूर्वीः ।
 आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ
 यं मद्रयो सुमत्या चोदयासे

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ १०८ ॥ (ऋ० १०।१८।१, ३-५, ७, ९, ११)

[१ इन्द्रस्तथा वसुकरत्रो ऋषिः ३-५, ७, ९, ११
 ऐन्द्रो वसुकर ऋषिः ।]

विश्वो हाङ्ग्यो अरिपञ्जगाम
 ममेदह भवदुरो ना जंगाम ।
 जज्ञीयाञ्जाना उत सोमं पपीयात्
 स्थाशितः पुनरस्त्वं जगायात्
 अद्रिणा ते मन्दिर्न इन्द्र त्वान
 सुन्वन्ति सोमान् पिवसि त्वमैयाम् ।
 पचन्ति ते घृतमां अस्मि तेषां
 पृक्षेण यन्मघवन् हृयमानः
 इदं सु मे जरितरा चिकिदि
 प्रतीपं शार्पं नृषो वहन्ति ।
 लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्जमत्साः
 श्रोष्टा घराहं निरतनुः कक्षात्
 कया तं पतद्दमा विभेत्तं
 शुन्मस्य पाकस्तपसो मनीषाम् ।
 त्वं नो विद्वो ऋतुया वि षोचो
 यमपे ते मघवन् क्षम्या धूः

॥ १ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

एवा हि मां त्वसं जसुरग्रं
 कर्मन्कमन् वृषणमिन्द्र देवाः ।
 यथो वृत्रं वज्रेण मन्दसानो
 अपं वृजे महिना दाशुपे वम्
 शशः शुरं प्रत्यञ्जं जगार
 अद्रिं लोपोन व्यमेदमात् ।
 बृहत्तं चिदहते रंधयानि
 वर्यद्वन्तो वृषमं शशुवानः
 तेभ्यो गोधा अयथं कपदेतत्
 ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्वयत्रं ।
 सिम उक्ष्णोऽवसृष्टो अदन्ति
 स्वयं चलानि तन्व्यः शृणानाः

॥ ७ ॥

॥ ९ ॥

॥ ११ ॥

॥ १०९ ॥ (ऋ० १०।३।१-९)

इवय ऐद्वय । अगती, ६-९ विष्टय ।

अ सु श्मन्तां धियसानस्यं सुक्षणि
 वरेभिवरं अभि पु प्रसीदतः ।
 अस्माकमिन्द्र उभयं जुजोयति
 यत् सोम्यस्यान्धमो वुर्योपति
 धीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना
 वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत ।
 ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वरं उप
 ते सु वेन्वन्तु वयनो अराधमः
 तदिन्मे छन्सुद्रपुंगो वपुष्टं
 पुत्रो यजानं पिशोरधीयति ।
 जाया पतिं वहति वगुनो मूमत्
 पंस इन्द्रो वहतुः परिष्टतः
 तदिदं सधर्ममभि चारं दीधय
 गात्रो यच्छासन् वहतुं न धेनवः ।
 माता यन्मनुष्यधर्म्यं पूत्र्यां
 अभि शाणस्यं सप्तर्षात्तरिज्जनः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

त्वां जनां ममसत्येऽप्यिन्द्र
 संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
 अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्
 नासुन्वता सत्यं वंष्टि शूरः
 धनं न स्पन्दं बहुलं यो बंसै
 तीव्रान्तसोमो आसुनोति प्रयस्थान् ।
 तस्मै शत्रून्सुतुकान् प्रातरहो
 नि स्वप्रांन् युवति हर्ति वृत्रम्
 यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे
 यः शिश्रायं मघवा काममस्मे ।
 आराशित् सन् भयतामस्य शत्रुः
 न्यस्मै धुम्ना जन्यां नमन्ताम्
 आराच्छुमपं याधस्य दूरं
 उग्रो यः शम्बः पुरुहत् तेन ।
 अस्मे घेहि यषमद्रोमदिन्द्र
 कृधी धियं जरित्रे याजरत्ताम्
 प्र यमन्तवृषसयासो अगमन्
 तीवाः सोमा बहुलान्तासु इन्द्रम् ।
 नाहं दामानं मघवा नि यंसन्
 नि सुन्वते बहति भूरि वामम्
 उत प्रहामतिदीव्यां जयाति
 कृतं यच्छुग्नी विचिनोति काले ।
 यो देवकामो न धनां रुणद्धि
 समित् तं राया खंजति स्वधावान्
 गोभिष्ट्रेमामर्ति दुरेवां
 ययेन क्षुपं पुरुहत् विभ्राम् ।
 वयं राजभिः प्रथमा धनानि
 अस्तोकेन युजनेना जयेम
 बृहस्पतिनेः परि पातु पश्चात्
 उतोत्तरस्मादर्धराद्यधयोः ।

इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः
 सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥
 ॥ २३३ ॥ (ऋ० १०।१३।१-११)
 अगतां, १०-११ निट्प् ।
 ॥ ४ ॥ अच्छो म इन्द्रं मृतयः स्वर्षिदः
 सध्रीचीर्विभ्रां उशतीरन्पत ।
 परि ष्वजन्ते जनयो यथा पति
 मर्ये न शुश्रुं मघवानमृतये ॥ १ ॥
 ॥ ५ ॥ न यो त्वद्विगर्ष वेति मे मनः
 त्वे इत् कामं पुरुहत् शिश्रय ।
 राजेव दस्स नि पदोऽधि वृद्धिपि
 असिन्सु सोमैऽवपानमस्तु ते ॥ २ ॥
 ॥ ६ ॥ विपुश्विन्द्रो अमतेकृत क्षुधः
 स इद्रायो मघवा वस्यं ईशते ।
 तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिधवो
 वयो वधन्ति वृषमस्यं शुरिर्मणः ॥ ३ ॥
 ॥ ७ ॥ ययो न वृशं सुपलाशमासदन्
 सोमास इन्द्रं मदिनंश्चमुपदः ।
 त्रैयामनीकं शर्वसा दविद्युतत्
 विदत् स्वभुमनेवे ज्योतिरायम् ॥ ४ ॥
 ॥ ८ ॥ कृतं न भवग्नी वि विनोति देवने
 संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
 न तत् तै अन्यो अनु वीर्यं शकन्
 न पुराणो मघयन् नोत नूतनः ॥ ५ ॥
 ॥ ९ ॥ विशाविशं मघवा पर्यशापत्
 जनानां धेनां अयचारकंदाद् घृणां ।
 यस्याहं शक्रः सर्वनेपु रण्यति
 स तीमैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥ ६ ॥
 ॥ १० ॥ आपो न सिधुमभि यत् समशरन्
 सोमास इन्द्रं कुन्या इव इद्रम् ।
 यधेन्ति पित्रा महो भन्यु सादने
 ययं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥ ७ ॥

वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा
 यो अर्थपत्नीरुक्णोदिमा अपः ।
 स सुन्यते मघवा जीरदानवे
 अर्धिन्द्रज्योतिर्मनवे हविष्मते
 उजायतां परशुज्योतिपा सह
 भूया ऋतम्यं सुदुर्घा पुराणवत् ।
 वि रोचतामरुपो भानुना शुचिः
 स्वर्गं नृकं शंदाचीत् सत्पतिः
 गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां
 यवेन शुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
 वयं राजभिः प्रथमा धनानि
 अस्माकेन वृजनेना जयेम
 बृहस्पतिर्नः परिं पात पश्चात्
 उत्तोरस्मादधरादद्यायोः ।
 इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः
 सग्रा सविभ्यो वरिवः कृणोतु

॥ १३४ ॥ (ऋ० १०।४४।१-२१)
 ऋषीः १-३, १०-११ त्रिष्टुप् ।

या यातिवद्रः स्वर्पतिर्मदाय
 यो धर्मणा ननुजानस्तुषिष्मान् ।
 प्रत्यश्रुणो अति विश्वा सहोसि
 अयमेण महता वृष्येन
 गृष्टामा ग्यः सुयमा हरीं ते
 मिम्यध्न यज्ञो नृपते गर्भस्तां ।
 नीमं राजन्सुपया याह्ययाद्
 पथीम ने पुपुयो वृष्यानि
 पद्रुपाटो नृपतिं पञ्चयाहुं
 उभ्रमुप्राधेस्वकिगामं एजम् ।
 प्रायशानं पृथुं सत्यदीपं
 धर्मन्वा मधमादां पदम्

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

एवा पतिं द्रोणसाचं सचैतसं
 ऊर्जः स्कम्भं ध्रुवण आ वृपायसे ।
 ओजः कृष्व सं भृभाय त्वे अपि
 असो यथा केनिपानामिनो वृधे
 गमन्नसे वसुग्या हि शंसिषं
 स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
 त्वमोशिषे सास्मिन्ना संसि वृहिषि
 अनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा
 पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहृतयो
 अकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
 न ये शेकुर्येद्यियां नावमरुहै
 ईमैव ते न्यविशन्त केपयः
 एवैवापागपरे संतु दृढवो
 अश्वा येषां दुर्यज आयुयुजे ।
 हृथा ये प्रागुपरे संति दावने
 पुरुणि यत्र वयुनानि भोजना
 गिरिरज्जान रेजमानो अधारयद्
 धीः क्रन्दन्तारिक्षाणि कोपयत् ।
 समीचीने धिपणे वि ष्कभायति
 वृष्णः पीत्वा मद उन्थानि शंसति
 इमं विममिं सुकृतं ते अद्भुशं
 येनारुजासि मघवच्छफारजः ।
 अस्मिन्सु ते सर्वने अस्त्वोक्त्यं
 सुत इष्टी मघवन घोष्याभगः
 गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां
 यवेन शुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
 वयं राजभिः प्रथमा धनानि
 अस्माकेन वृजनेना जयेम
 बृहस्पतिर्नः परिं पात पश्चात्
 उत्तोरस्मादधरादद्यायोः ।
 इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः
 सग्रा सविभ्यो वरिवः कृणोतु

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

(१५७८)

॥ २३५ ॥ (अ० १०।४८।१-११)

वेङ्कठ इन्द्रः । जगती; ७, १०-११ त्रिष्टुप् ।

अहं भुवं वसुनः पूर्वेस्पतिः
 अहं धनानि सं जयामि शश्वतः ।
 मां हवन्ते पितरं न जंतवो
 अहं दाशुपे धि भजामि भोजनम्
 अहमिन्द्रो रोषो वक्षो अर्थवर्षणः
 त्रिताय गा अजनयमहेरथि ।
 अहं दस्युभ्यः परि नृग्नमा ददे
 गोत्रा शिश्रन् द्युत्रिचे मातरिभ्वने
 मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसे
 मयि देवासोऽवृजत्रपि क्रतुम् ।
 ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टं
 मामार्थन्ति कृतेन कर्त्वेन च
 अहमेते गव्ययमर्ष्यं पशुं
 पुरीपिणं सार्यकेना हिरण्ययम् ।
 पुरु सुहस्रा नि शिषामि दाशुपे
 यन्मा सोमांस उन्निधनो अमन्दिषुः
 अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं
 न मृत्यवेऽच तस्ये कदा चन ।
 भोमभिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु
 न मे पूरयः सुत्ये रिणाधन
 अहमेतान्छाभ्यमतो हाहा
 इन्द्रं ये वज्रं युधयेऽर्हण्यत ।
 आह्वयमानो अयं हर्मनाहनं
 हृब्दा वदधनमस्युर्नमस्विनः
 अमी बुधमेकमेको अस्मि त्रिष्पात्
 अमी हा किमु प्रयः करन्ति ।
 गले न पूर्णान् प्रति हन्मि भूरि
 किं मां निदग्नि दार्धवोऽग्निद्राः
 अहं गृह्णाम्यो आतिथिन्गामिर्कं
 इयं न यंत्रतुरं विशु धारयम् ।

यत् पर्णयन्न उत वा करञ्जहे
 प्राहं महे वृत्रहृत्पे अशुश्रवि ॥ ८ ॥
 प्र मे नमी साप्य इपे भुजे मुद्
 गयामेपे सत्या कृणुत द्विता ।
 दिव्यं यदस्य समिधेषु मह्यं
 आदिदेवं शंस्यमुक्थ्यं करम् ॥ ९ ॥
 प्र नेमस्मिन् ददशो सोमो अन्तः
 गोपा नेममाचिरस्या कृणोति ।
 स तिग्मशूङ्गं वृषमं युयुत्सन्
 दुहस्तेस्यो बहुले बद्धो अन्तः ॥ १० ॥
 आदित्यानां वसुनां रुद्रियाणां
 देवो देवानां न रिनामि धाम ।
 ते मां भद्राय शवसे ततश्चुः
 अपराजितमस्वतमपारब्धम् ॥ ११ ॥
 ॥ २३६ ॥ (अ० १०।४९।१-११) जगति; २, ११ त्रिष्टुप् ।
 अहं दां गृणते पूर्वं वसु
 अहं वज्रं कृणयं महं वर्षणम् ।
 अहं भुवं यजमानस्य चोदिता
 अर्थन्वनः नाक्षि विभवंस्मिन् भरे
 मां धुरिन्द्रं नार्भ देवता
 दिवश्च गमश्चापां च जन्तवः ।
 अहं हरी धृषणा विन्ता रधू
 अहं वज्रं शवसे धृषणा ददे ॥ २ ॥
 अहमत्तं कवये शिश्रं हर्थः
 अहं कुसमायमामि कृताभिः ।
 अहं शूर्पास्य श्रथिता वर्षयं
 न यो रर आपे नाम दस्यधे ॥ ३ ॥
 अहं पिनेवं वेत्सूरमिष्टये
 तुभं कुन्साय स्मार्दिभं च गन्धयम् ।
 अहं भुवं यजमानस्य गृह्णति
 प्र यदरे तुजये न त्रियाधृषं ॥ ४ ॥

अहं रैधयं मृगयं ध्रुतर्वणे
यन्मात्रिहीत वयनां चनानुपक् ।

अहं वेशं नम्रमायवैऽकरं
अहं सव्याय पडुभिर्मरुधयम्

अहं स यो नववास्त्वं बृहद्रथं
सं वृत्रेव दासं वृत्रहारजम् ।

यद्दुर्धयन्तं प्रथयन्तमानुपम्
दूरे पारे रजसो रोचनाकरम्

अहं सूर्यस्य परिं याम्यादुभिः
प्रनशेभिर्हमात ओजसा ।

यन्मां सावो मनुप आहं निर्णिज्ज
ऋधेक् रूपे दासं कृत्यं हयैः

अहं संमहा नह्यो नहुष्टरः
प्राध्रावयं शवसा तुर्वशा यदुर्म ।

अहं न्युन्यं सहसा सहस्करं
ननु वार्धतो नवति चं वक्षयम्

अहं मस स्रवतो धारयं वृषां
द्रवित्यं पृथिव्यां सीरा अधि ।

अहमणीसि वि तिरामि सुक्रतुः
पृथा विदं मनये गातुमिष्टयं

अहं तदांमु धारयं यदांसु न
देयश्चन त्रघ्राधोरयद्रुशंत् ।

स्याहं गयामृधःसु वक्षणाप्त्वा
मधोमधु भ्यायं सोममाशिरम्

पृथा देवो इन्द्रो विल्ये ननु
प्र प्यालेनं मययां मृत्यवंधाः ।

पिभ्येत् ता तं हरियः शचीयो
धनि नृगर्गः न्ययशो वृणान्ति

॥ ११० ॥ (अ० १०१०१-७)

अ० १, ४ अ० १०१०१, ५ त्रिष्टुप् ।

प्र धो महे मन्दमात्रायाम्धुनो
अधो विभानंराय विभानुधं ।

इन्द्रस्य यस्य सुमलं सहो महि
श्रयो नृमणं च रोदसी सपर्यतः

॥ ५ ॥

सो विदु सख्या नयं इनः स्तुतः
चरैत्य इन्द्रो मावते नरै ।

विभ्वासु धूपु वाजकृत्येषु सत्पते
वृत्रे वाप्स्वभुभि शूर मंदसे

॥ ६ ॥

के ते नर इन्द्र ये तं इपे
ये तं सुजं संधन्युमिर्वक्षान् ।

के ते वाजायासुर्याय हिन्विरे
के अप्सु स्वासुर्वरासु पौंस्यै ।

॥ ७ ॥

मुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणा महान्
भुवो विभ्वेषु सर्वनेपु यक्षियः ।

भुवो नूदच्योत्तौ विभ्वस्मिन् भरे
ज्येष्ठश्च मन्त्रो विभ्वचरणे

॥ ८ ॥

अवा नु कं ज्यायान् यद्वचनसो
मही त ओमात्रां कृष्टयो विदुः ।

असो नु कमजरो वर्धोश्च
विभ्वेदेता सर्वना ततुमा रूपे

॥ ९ ॥

पृथा विभ्वा सर्वना ततुमा रूपे
स्वयं सूनो सहसो यानि दधिपे ।

वराय ते पात्रं धर्मणे तनां
यसो मन्त्रो ब्रह्मोद्यतं वचः

॥ १० ॥

ये तं विप्र ब्रह्मकृतः सुते सचा
वर्षनां च वर्सुनश्च शवनेन ।

प्र ते सुमनस्य मनसा पृथा भुंयन्
मदं सुतस्यं सोम्यस्याग्रं सः

॥ ११ ॥

॥ ११८ ॥ (अ० १०१११-६)
बृहदुक्थो वामदेव्यः । त्रिष्टुप् ।

तां सु तं कीर्ति मंघयन् महित्वा
यत् तया भोते रोदसी अर्द्धपेताम् ।

प्रायो देवो आतिरो दाममोजः
प्रजायै त्यस्ये यददीक्ष इन्द्र

॥ १ ॥

यदचरस्तन्वा वावृधानो
 बलानीन्द्र प्रवृषाणो जनेषु ।
 मायेत् सा ते यानि युद्धान्याहुः
 नाद्य शर्वं ननु पुरा विचित्से
 क उ नु ते महिमनः समस्य
 अस्मत् पूर्वं ऋपयोऽन्तमापुः ।
 यन्मातरं च पितरं च साकं
 अजनयथास्तन्वः स्वायाः
 चत्वारिं ते असुर्याणि नाम
 अदाभ्यानि महिपस्य सन्ति ।
 त्वमह तानि विश्वानि वित्से
 येभिः कर्माणि मघवञ्चकथं
 त्वं विश्वां दधिपे केवलानि
 यान्याविर्या च गुहा वसनि ।
 कामभिन्ने मघवन् मा धि तारीः
 त्वमाज्ञाता त्वमिन्द्रासि दाता
 यो अर्द्धाज्योर्तिपि ज्योतिरन्तः
 यो अर्द्धजन्मधुना सं मधूनि ।
 अधं प्रियं शूपमिन्द्राय मन्म
 ब्रह्मरुतो बृहदुक्थादवाचि
 ॥ २३९ ॥ (ऋ० १०।५।१-८)

दूरे तन्नाम गुह्यं पराचैः
 यत् त्वां भीते अह्वयेतां वयोर्धे ।
 उर्द्धस्तन्नाः पृथिवीं द्यामभीके
 भ्रातुः पुत्रान् मघवन् तित्विपाणः
 महत् तन्नाम गुह्यं पुरस्पृग्
 येन भूतं जनयो येन मध्यम् ।
 प्रत्नं ज्ञात ज्योतिर्यर्द्धस्य
 प्रियं प्रियाः समविशन्त पञ्च
 आ रोर्द्धसी अपृणादोत मध्यं
 पञ्च देवोः ऋतुशः सतसंत ।

चतुर्विंशता पुरुधा वि चष्टे
 सरूपेण ज्योतिषा विप्रतेन ॥ ३ ॥
 यदुप ओच्छेः प्रथमा विभानां
 अजनयो येन पृष्टस्य पुष्टम् ।
 यत् ते जामित्वमवरं परस्या
 महन्महत्या असुरत्वमेकम् ॥ ४ ॥
 विश्वं द्वाणं समने बहूनां
 युवानं सन्तं पलितो जंगार ।
 देवस्य पश्य काव्यं महित्वा
 अद्या ममार स ह्यः समान ॥ ५ ॥
 शान्मना शाको अरुणः सुपर्ण
 आ यो महः शरः सनादनीळः ।
 यच्चिकेतं सत्यमित् तन्न मोयं
 वसुं स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥ ६ ॥
 पेभिर्ददे वृष्ण्या पांस्यानि
 येभिरौक्षद् वृत्रहत्यां वज्री ।
 ये कर्मणः क्रियमाणस्य मद्
 ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ॥ ७ ॥
 युजा कर्माणि जनयन् विश्वौजा
 अशस्तिहा विश्वमनास्तुपुपाट ।
 पीत्वी सोमस्य दिव आ वृधानः
 शरो निर्युधार्धमद् दस्यून ॥ ८ ॥
 ॥ २४० ॥ (ऋ० १०।६०।५)
 बन्धु श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गोपायना गायत्री ।
 इन्द्रं क्षत्रासंमातिपु रथप्रोष्टेपु धारय ।
 द्विर्वीध सूर्यं दृशे ॥ ५ ॥
 ॥ २४१ ॥ (ऋ० १०।७।१-११)
 गौरिवातिः शाकल्य । त्रिष्टुप ।
 जनिष्ठा उग्रः सहसे तुरायं
 ॥ २ ॥ मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।
 अर्धर्धभिन्द्रं मरुतश्चिदर्थं
 माता यद्भिरं दधनदनिष्ठा ॥ १ ॥

द्रुहो निपत्ता पृथानी चिदेवैः
 पुरु शंसैन् वावृधुष्ट इन्द्रम् ।
 अभीवृतेव ता महापदेन
 ध्वान्तात् प्रपित्वादुदेरन्तु गर्माः
 क्रुप्या ते पादा प्र यज्जिगासि
 अर्धेन वाजा उत ये चिदत्र ।
 त्वमिन्द्र सालावृकान्सहस्रै
 आसन् दधिपे अश्विना ववृत्याः
 समना तृणैरपे यासि यज्ञं
 आ नासत्या सत्यार्य वक्षि ।
 वसान्यामिन्द्र धारयः सहस्र
 अश्विनां शूर ददतुर्मघानि
 मन्दमान क्रुतादधि प्रजायं
 सपिभिन्दि इपिरोमिर्धम् ।
 आभिर्हि माया उप दस्युमागात्
 मिदः प्र तत्रा अघपत् तर्मासि
 सनामाना चिद् घ्वसयो न्यस्मा
 अयादृभिन्द्र उपसो यथानः ।
 क्रुधैरंगच्छुः सपिभिन्किमैः
 माकं प्रतिष्ठा ह्य्या जघन्थ
 त्वं जघन्थ नमुचि मप्रस्युं
 दामं वृषान क्रुपये विमोयम् ।
 त्वं चक्रुं मनवे स्योनान्
 पथो देवभ्रात्रैस्व यानान्
 रपेमनानि पप्रिये पि नाम
 इजान इन्द्र दधिपे गर्मली ।
 धनुं त्या देवाः दार्यमा मदन्ति
 उपरिष्णान् धनिर्दधकथं
 धकं यदग्याप्या निर्वक्तं
 उतो तदग्मं धधिषच्छपात् ।

पृथिव्यामतिपितं यदृधुः
 पयो गोष्वेध्ना ओषधीषु ॥ १ ॥
 अश्व्यादियायेति यद्वान्ति
 ओजसो जातमुत मन्य एनम् ।
 मन्योरियाय हर्म्येषु तस्थौ
 यतः प्रज्ज इन्द्रो अस्य चेद ॥ १० ॥
 वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं
 प्रियमेधा क्रुपयो नाधमानाः ।
 अप ध्वान्तमूर्णुहि पृथि चक्रुः
 सुमुख्यस्मान् निधयेव वद्वान् ॥ ११ ॥
 ॥ १४२ ॥ (ऋ० १०।७।१-६)
 वसूनां वा चर्कप इयक्षन्
 धिया वा यशैवा रोदस्योः ।
 अवेन्तो वा ये रियमन्तः सातो
 वजुं वा ये सुध्रुणं सुध्रुतो धुः ॥ १ ॥
 हव एषामसुरो नध्रत चां
 श्रवस्यता मनसा निसत् क्षाम् ।
 चक्षाणा यत्र सुधितायं देवा
 धानं वारोभिः कृणवन्त स्वैः ॥ २ ॥
 इयमेवाममृतानां गीः
 सर्वता ये कृणवन्त रत्नम् ।
 धियं च यज्ञं च सार्धन्तः
 ते नो धान्तु वसव्यस्मसांमि ॥ ३ ॥
 आ तत् तं इन्द्रायवः पनन्त
 अमि य ऊर्ध्व मोमन्तं तिवृत्सान् ।
 मरुत्स्वं ये पुरुपुत्रां मुही
 सहस्रंधारं वृहता दुदृक्षन् ॥ ४ ॥
 शचीव इन्द्रमवसे वृषाध्वं
 अनानतं वमयेन्नं पृतन्यून ।
 क्रुभुक्षणं मघवानं सुवृक्तं
 गता यो यज्ञं नये पुरुशः ॥ ५ ॥

यद्वायानं पुरुतमं पुरापद्
 आ वृत्रहेन्द्रो नामान्यथाः ।
 अत्रेति प्रासहस्पतिस्तुविमान्
 यदीमुदमसि कर्तव्ये कर्तु तत् ॥ ६ ॥
 ॥ २४३ ॥ (ऋ० १०।८६।१-२३)
 इन्द्रः, ७, १३, २३ ऐन्द्रो वृषाक्षयिः;
 २-६, ९-१०, १५-१८ इन्द्राणां । पङ्क्तिः ।
 वि हि सोतोऽरुक्षत नेन्द्रं देवममसत ।
 यत्रामदद् वृषाकपि—रथ्यः पुष्टेषु मत्संया
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १ ॥
 परा हीन्द्र धार्वसि वृषाकपेरति व्यार्थेः ।
 नो अह प्र विन्द—स्यन्यत्र सोमपीतये
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २ ॥
 किमयं त्वां वृषाकपि—श्चकार हरितो मृगः ।
 यस्मां इरस्यसीदु न्वयौ वा पुष्टिमदसु
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ३ ॥
 यमिमं त्वं वृषाकपि प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
 श्वा न्वस्य जम्भिप—दपि कर्णे वराहयुः
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ४ ॥
 प्रिया तृष्टानि मे कपि—र्व्यन्ता व्यदूदुपत् ।
 शिरो न्वस्य राविपं न सुगं दुष्टते भुवं
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ५ ॥
 न मत् स्त्री सुभसत्तरा न सुयाजुतरा भुयत् ।
 न मत् प्रतिच्यवीयसी न सन्ध्युर्धमायसी
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ६ ॥
 उवे अम्य सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
 भसन्नें अम्य सार्थिथ मे शिरो मे वीय हृष्यति
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ७ ॥
 किं सुयाहो स्वहृरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
 किं शूरपति नस्त्व—भृयमीपि वृषाकपि
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ८ ॥

अवीरामिव मामयं शरावर्तभि मन्यते ।
 उताहमसि वीरिणी—न्द्रपत्नी मरुत्सन्त्रा
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ९ ॥
 संहोत्रं रमं पुरा नारी समनं वाचं गच्छति ।
 वेधा ऋतस्य वीरिणी—न्द्रपत्नी महीयते
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १० ॥
 इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगांमहमश्रवम् ।
 नहास्या अपरं चन जरसा मरते पतिः
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ११ ॥
 नाहमिन्द्राणि रारण सस्युर्वृषाकपेभ्रुते ।
 यस्येदमयं हृदिः प्रियं देवेषु गच्छति
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १२ ॥
 वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्तुपे ।
 यसत् त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हृदिः
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १३ ॥
 उष्टो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विशतिम् ।
 उताहमभि पीय इ—दुभा कुशी पृणान्ति मे
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १४ ॥
 वृषभो न तिग्मशृङ्गो ऽन्तर्यथेषु रोक्षयत् ।
 मथस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुः
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १५ ॥
 न सेशे यस्य रम्यते ऽन्तरा सन्ध्यां कपृत् ।
 सेदीशे यस्य रोमशं निपेदुषीं विजृम्भते
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १६ ॥
 न सेशे यस्य रोमशं निपेदुषीं विजृम्भते ।
 सेदीने यस्य रम्यते ऽन्तरा सन्ध्यां कपृद्
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १७ ॥
 अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हृतं विदत् ।
 असि सुनां नवं चह—मादेघस्यान आर्चितं
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १८ ॥

अयमेमि विचाकंशद् विचिन्वन् दासामयम् ।
 पिबामि पाकसुत्वन्तो ऽभि धीरमचाकशं
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १९ ॥
 धन्यं च यत् कृतं च
 कर्तं स्वित् ता वि योजना ।
 नेदीयसो वृषाकपे ऽस्तमेहि गृहो उप
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २० ॥
 पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहे ।
 य एष स्वन्नंशानो ऽस्तमेपि पथा पुनः
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २१ ॥
 यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
 कः स्य पुत्र्युधो मृगः कमगजनयोपनो
 विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २२ ॥
 पशुहे नाम मानधी साकं संसूव विशतिम् ।
 मद्रं भलं त्यस्यो अभुद् यस्यो उदरमामयद्
 विद्रस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २३ ॥

॥ ४४४ ॥ (क्र० १०८९।१-४, ६-१८)

रेषुर्धामिन् । त्रिभुव ।

इन्द्रं स्तथा नृतेमं यस्यं मद्रा
 पिथयाधे रंचना वि ज्मो अन्तान् ।
 आ यः पशो चर्षणीधृदरंभिः
 प्र मित्नुभ्यो रिरिचानो महित्वा
 म ग्यः पर्युक्त घरांस्य
 इन्द्रो यय्याद्रय्यं चमा ।
 धतिष्ठन्तमप्युक्तं न रते
 वृष्णा तर्माभि रिप्या जघान
 समानमग्मा अनपायुदयं
 समया दिषो अरमं प्रष्टु नप्यम् ।
 वि यः पृष्टेयु जनिमान्युयं
 इन्द्रं धिषाय न तर्मायमीये ॥ १ ॥
 ॥ २ ॥
 ॥ ३ ॥

इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा
 अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात् ।
 यो अक्षेणव चक्रिया शर्चीभिः
 विष्वक् तस्तम्मं पृथिवीमुत धाम् ॥ ४ ॥
 न यस्य द्यावापृथिवी न धन्य
 नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः ।
 यदस्य मन्पुरधिनीयमानः
 शृणाति वोल्लु हजति स्थिराणि ॥ ६ ॥
 जघानं वृत्रं स्वधितिर्वनेव
 सरोजं पुरो अरदन्न सिन्धून् ।
 विभेदं गिरिं नवमिन्न कुम्भं
 आ गा इन्द्रो अरुणुत स्वयुग्भिः ॥ ७ ॥
 त्वं ह त्यहण्या इन्द्र धीरो
 असिने पर्व वृजिना शृणासि ।
 प्र ये मित्रस्य वरुणस्य धाम
 युजं न जनां मिनन्ति मित्रम् ॥ ८ ॥
 प्र ये मित्रं प्रार्यमणं दुरेवाः
 प्र संगिरः प्र वरुणं मिनन्ति ।
 न्युमित्रेषु वधमिन्द्र तुष्टं
 वृपन् वृषाणमरुपं शिशीहि ॥ ९ ॥
 इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या
 इन्द्रो अपामिन्द्र इत् पर्वतानाम् ।
 इन्द्रो वृषामिन्द्र इन्मोधिषाणां
 इन्द्रः क्षेमं योगे हव्य इन्द्रः ॥ १० ॥
 प्राक्तुभ्य इन्द्रः प्र वृधो अर्धभ्यः
 प्रान्तरिक्षात् प्र संसुद्रस्य धासेः ।
 प्र घातस्य प्रथंसः प्र ज्मो अन्तात्
 प्र तित्नुभ्यो रिरिचे प्र क्षितिभ्यः ॥ ११ ॥
 प्र शोशुचत्या उपसो न केतुः
 अस्मिन्वा तं पततामिन्द्र हेतिः ।
 अर्धमेव विष्य दिव आ र्जुजानः
 तपिष्टेन हेर्यमा द्रोघमिप्रान् ॥ १२ ॥

अन्वह मासा अन्विह्नानि
अन्वोपधीरनु पर्वतासः ।
अन्विन्द्रं रोदसी वायशाने
अन्वापो अजिहत् जायमानम्
काहिं स्वित् सा त इन्द्र खेत्यासत्
अधस्य यद् भिनदो रक्ष एषत् ।

॥ १३ ॥

मित्रकृचो यच्छसने न गार्धः
पृथिव्या अपर्गमुया शयन्ते
शत्रुयन्तो अभि ये नस्ततश्चे
महि वार्धन्त ओगणार्स इन्द्र ।
अन्धेनामित्रास्तर्मसा सचन्तां
सुज्योतिर्षो अकवृस्तां अभि प्युः
पुरुणि हि त्वा सर्वना जनानां
प्रह्मणि मर्दन् गृणतामृषीणाम् ।

॥ १४ ॥

इमामाघोपध्वंसा सद्दिति
तिरो विश्वां अर्चतो याह्यर्वाङ्
एवा तै वयमिन्द्र भुञ्जतीनां
विद्याम सुमतीनां नवानाम् ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो
विश्वामिथा उत त इन्द्र नूनम्
शुने हुवेम मघवानामिन्द्र
अस्मिन् भरे नृतम् वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमृतयं समत्सु
प्रन्तं वृत्राणि संजितं धर्नानाम्

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

॥ १४५ ॥ (ऋ० १०।२९।१-१२) वक्रो वैदानसः ।

कं नैश्चिन्मिपण्यसि चिकित्वा
पृथग्मानै वाश्रं धावृध्वयं ।
कत् तस्य दातु शयसो व्युष्टौ
तश्चरञ्च पृत्रतुपार्पिन्वद्
स हि घृता विघृता वेति सामं
पृषुं योर्नमसुत्वा संमाद ।

॥ १ ॥

स सनीळिभिः प्रसद्धानो वंस्य
भ्रातुर्न ऋते सुतयस्य मायाः

॥ २ ॥

स वाजं यातापदुप्पदा यन्
स्वर्पात्ता परं पदत् सनिष्यन् ।
अनर्वा यच्छतर्दुरस्य वेदो
प्रश्चिभ्रद्वैवां अभि वर्षसा भूत्

॥ ३ ॥

स यद्दयोः ऽधनीगोष्वर्वा
आ जुहोति प्रध्न्यासु सन्निः ।
अपादो यत्र युज्यासोऽरथा
द्रोण्यभ्वास ईरते घृतं वाः

॥ ४ ॥

स रुद्रेभिरदास्तवार ऋम्या
हित्वा गर्वमारयवद्य आगात् ।
वृधस्य मन्ये मियुना विवर्त्री
अन्नममीत्यारोदयन्मुपायन्

॥ ५ ॥

स इद् दासं तुयीखं पतिर्दन्
पञ्चक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत् ।
अस्य वितो न्योजसा वृध्नानो
विपा वसहमयोअप्रया हन्

॥ ६ ॥

स द्रुहणे मनुप ऊर्ध्वसान
आ साविपदर्शसानाय शर्मम् ।
स नृत्तमो नहुषोऽसन् सुजातः
पुरोऽभिनर्दहन् दस्यहृत्स्ये

॥ ७ ॥

सो अश्रियो न ययस उद्वन्यन्
क्षयाय गातु विदश्रो अस्मे ।
उप यत् सीददिन्दुं शरिः
श्येनोऽयोपाष्टिदन्ति दस्युन्

॥ ८ ॥

स वार्धन्तः शयमानेभिरम्य
कुन्साय शुष्णं कृपणे परादात् ।
अयं क्वविर्मनयच्छम्यमानं
अत्कं यो अस्य सनितोत् नृणाम्

॥ ९ ॥

अयं दशस्यन् नर्यभिरस्य
 हसो वैभिर्यंणो न मायी ।
 अयं कनीनं क्रतुपा अवेदि
 वमिमीतारकं यश्चतुष्पात् ॥ १० ॥
 धम्य सोमंभिरौशिज क्रुजिर्भा
 नृज दरयद् वृषमेण पिप्रीः ।
 सुन्वा यद् यज्ञतो दीदयत्रीः
 पुरं इयानो अभि वर्षसा भूत् ॥ ११ ॥
 एमा महो अंसुर वृक्षयाय
 वध्नः पदिर्गपं सपदिन्द्रम् ।
 म इयानः वरति स्वस्तिमस्मा
 इपमूर्जे सुदिति विध्वमाभाः ॥ १२ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० १०।१०३।१-२, ५-११, १३)
 ऐशोऽश्विण्ये । [१३ मन्त्रो वा] । त्रिष्टुप्, १३ अनुष्टुप् ।

गोत्रभिर्दे गोविदं यज्ञवाहुं
 जयन्तमजमं प्रमणन्तमोजसा ।
 इमं संजाता अनु धारयध्वं ॥ ६ ॥
 इन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम्
 अभि गोत्राणि सहसा गार्हमानो
 अदयो धीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
 दुश्च्यवनः पृतनापाल्युध्योऽ
 अस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ७ ॥
 इन्द्रं आसां नेता बृहस्पतिः
 दक्षिणा यज्ञः पुर गंतु सोमः ।
 देवसेनानामभिभञ्जतीनां
 जयन्तीनां मरुतो युन्वग्रम् ॥ ८ ॥
 इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राक्ष
 आदित्यानां मरुतां शर्धे उग्रम् ।
 महामनसां भुवनच्यवानां

अप्सु धृतस्य हरिवः पिबेह
 नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
 मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं
 तेभिर्वधेस्व मदमुक्थवाहः
 प्रोत्रां पीति वृष्ण इयमिं सत्यां
 प्रयै सुतस्य हर्यश्च तुभ्यम् ।
 इन्द्र धेनामिह मादयस्व
 धीभिर्विश्वाभिः शच्यां गृणानः
 ऊती शचीवस्तवं वीर्येण
 वयो दधाना उशिजं ऋतुहाः ।
 प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे
 तस्थुर्गुणन्तं सधमाधासः
 प्रणीतिभिष्टे हर्यश्च सुष्टोः
 सुपुंसस्य पुरुचो जनासः ।
 महिष्ठासुतिं वितिरे दधानाः
 स्तोतारं इन्द्र तवं सुनुताभिः
 उप ब्रह्माणि हरियो हरिभ्यां
 सोमस्य याहि पीतयै सुतस्य ।
 इन्द्रं त्वा यज्ञः क्षममाणमानङ्
 दाश्वो अस्यध्वस्यं प्रक्रेतः
 सहस्रवाजमभिमातिपाहं
 सुतेरणं मघवानं सुवृक्मिम् ।
 उप भूपन्ति गिरो अप्रतीतं
 इन्द्रं नमस्या जैरितुः पनन्त
 सतापो देवीः सुरणा अमृता
 याभिः सिन्धुमतेर इन्द्र पुमिव् ।
 नवतिं श्रोत्या नवं च न्रवन्तीः
 देवेभ्यो गातुं मनुषे च विन्दः
 अपो महीरभिशास्तेरमुञ्चो
 अजागरस्वधिं देव पकः ।
 इन्द्र यास्त्वं वृषन्नृषे चकथे
 तामिर्विदवार्युस्तन्व्यं पुपुष्याः

वीरेण्यः क्रतुरिन्द्रः सुशस्तिः
 उतापि धेनां पुरुहूतमीष्टे ।
 आर्दयद् वृत्रमर्हणोढु लोकं
 ॥ २ ॥ संसाहे शकः पृतना अभिष्टिः ॥ १० ॥
 नूनं हुवेम मघवानमिन्द्रं
 अस्मिन् भरे नृतं वाजसातौ ।
 दृष्यन्तमुग्रमृतये समत्सु
 ॥ ३ ॥ अन्तं वृषाणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥
 ॥ २४८ ॥ (ऋ० १०।१०५।१-११)
 द्रोतो दुमिनः सुमित्रो वा । वृष्णिः । १ गायत्री व,
 २, ७ पिपीलिङ्गपद्या, ११ विष्टुर् ।
 कदा वसो स्तोत्रं हयंत आवं इमशा रथदाः ।
 ॥ ४ ॥ वीर्यं सुतं वाताप्याय ॥ १ ॥
 हरी यस्य सुयुजा चित्रता वे-रवन्तानु शेपा ।
 उभा रजी न केशिना पतिर्वन् ॥ २ ॥
 अप योरिन्द्रः पापञ्च आ मतो
 ॥ ५ ॥ न शंभमाणो विभीचान् ।
 शुभे यद्युजे तविवीवान् ॥ ३ ॥
 सचायोरिन्द्रश्चक्रेप आ उपाजसः संपर्यन् ।
 ॥ ६ ॥ नदयोर्विब्रतयोः शूर इन्द्रः ॥ ४ ॥
 अधि यस्तस्थौ केशवन्ता व्यवस्वन्ता न पुष्ट्यै ।
 वनोति शिप्राभ्यां शिप्रिणीवान् ॥ ५ ॥
 प्रास्तांहृष्यौजां ऋषेभि-स्ततश्च शूरः शवसा ।
 ॥ ७ ॥ ऋभुर्न क्रतुभिर्मातरिश्वां ॥ ६ ॥
 यज्ञं यश्चके सुहनाय वस्यंथे हिरीमशो हिरीमान् ।
 अरंतहनुरहुतं न रजः ॥ ७ ॥
 अयं नो वृजिना शिशी-हृचा वनेमनुचः ।
 ॥ ८ ॥ नाभेद्रा यज्ञ ऋधृजोपति त्वे ॥ ८ ॥
 ऊर्ष्या यत् तं त्रेतिनी भूद् यज्ञस्य धुषुं सघ्नम् ।
 सजूर्नाथं स्वयंशंसं सचायोः ॥ ९ ॥
 ध्रिये ते पृश्निषुसेचनी भू-क्षिण्ये दर्विरुपाः ।
 ॥ ९ ॥ यया स्वे पात्रं सिञ्चस उक् ॥ १० ॥
 (१७१३)

शतं वा यदसुर्यं प्रति त्वा
सुमित्र इत्थास्तौद् दुर्मित्र इत्थास्तौत् ।
आयो यदस्युहर्त्ये कुत्सपुत्रं
प्रायो यदस्युहर्त्ये कुत्सवत्सम् ॥ ११ ॥

॥ १४९ ॥ (अ० १०।११।१-२०)
वैश्वोऽष्टादशः । त्रिष्टुप् ।

मनीषिणः प्र भरध्वं मनीषां
यथायथा मृतयः सन्ति नृणाम् ।
इन्द्रं सत्यैरेरयामा वृतेभिः
स हि वीरो गिर्वणस्पुर्विदानः ॥ १ ॥
श्रुतस्य हि सर्दसो धीतिरद्यौत्
सं गाष्ट्रियो वृषभो गोभिरानट् ।
उदनिष्ठन् तथिषेणा रवेण
महान्ति चित्रं सं विव्याचा रजांसि ॥ २ ॥

इन्द्रः किल ध्रुवां अस्य वैद
म हि निष्णुः पथिष्ठन् सूर्याय ।
आग्नेनां वृष्यन्नच्युतो भुयद्भोः
पतिर्दिवः मनजा अर्पतीतः ॥ ३ ॥

इन्द्रो मद्रा मद्रतो धंणवस्य
मतामिनाश्रिणेभिर्गुणानः ।
पुरुणि विप्रि तंताना रजांसि
शपार यो ध्रुवं सत्यताता ॥ ४ ॥

इन्द्रो दिवः प्रतिमानं गृध्रिष्या
विदयां वेदु गर्भता हन्ति नृणाम् ।
मदीं सिद् घामातेनोन् मूर्षेण
घ्राणवग्ने विन् वरमनेन स्वभीयान् ॥ ५ ॥

यज्ञेण हि वृत्रता पृत्रमस्तुः
भर्दवस्य शानेवानस्य मायाः ।
वि भृंणो भवं भृगता जपन्थ
धर्षानसो मधयन् वार्दता ॥ ६ ॥

सर्वन्तु यदुपसुः सूर्येण
चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।
आ यन्नक्षत्रं ददर्शे दिवो न
पुनर्यतो नकिरद्धा नु वैद ॥ ७ ॥

दुरं किल प्रथमा जंगुरासां
इन्द्रस्य याः प्रसवे सलुरापः ।
कं स्विदग्रं कं बुध्न आसां
आपो मध्यं कं वो नूनमन्तः ॥ ८ ॥

सूजः सिन्धुर्वाहिना जग्रसानां
आदिदेताः प्र विविजे जवेन ।
सुमुक्षमाणा उत या सुमुञ्चे
अधेदेता न रमन्ते निर्विक्ताः ॥ ९ ॥

सग्नीचीः सिन्धुमुशतीरिवायन्
सनाञ्जार आरितः पुमिदासाम् ।
अस्तमा ते पार्थिवा वसूनि
असे जग्मुः सुनृता इन्द्र पुर्वीः ॥ १० ॥

॥ १५० ॥ (अ० १०।१२।१-२०)
वैश्वो नमाग्नेदतः ।

इन्द्र पितृं प्रतिकामं सुतस्य
प्रातःसावस्तव हि पूर्वपीतिः ।
हर्षस्य हन्तये नार शर्पन्
उपधेभिष्टे धीयांश्च प्र ध्रियाम ॥ १ ॥

यस्ने रथो मनसो जर्षीयान्
पुष्ट तेनं शोमपेयाय याहि ।
तृपमा ते हरयः प्र प्रपन्तु
येभिर्वाति वृषभिर्मन्दमानः ॥ २ ॥

हरिन्यता पर्वता मूर्षस्य
धेष्टं हृषन्तम्यं स्पदावस्य ।
भ्रगानिरेन्द्र सतिभिर्गुणानः
शर्षीर्दानो मोदयत्या निपद्य ॥ ३ ॥

यस्य त्यत् तै महिमानं मदैपु
इमे मही रोदसी नाविविक्राम् ।

तदोक्तु आ हरिभिस्त्रि युक्तैः

प्रियेभिर्योहि प्रियमममच्छे

यस्य शश्वत् पपिवा इन्द्र शश्वन्
अनानुकृत्या रण्या चकथे ।

स ते पुरीधि तविपीमियति

स ते मदाय सुत इन्द्र सोमः

इदं ते पात्रं सर्वाचित्मिन्द्र

पिया सोममेना शतक्रतो ।

पुणं आहावो मंदिरस्य मध्वो

यं विश्व इदंभिहयन्ति देवाः

वि हि त्वामिन्द्र पुरुधा जनांसो

द्वितप्रयसो वृषम ह्ययन्ते ।

अस्माकं ते मधुमत्तमानां

आ भुवन्त्सर्चना तेपु ह्ययं

प्र तं इन्द्र पूर्व्याणि प्र नूनं

धीर्यां वोचं प्रथमा कृतार्नि ।

सतीनमन्युरध्रयायो अद्रिं

सुचेदनामरुणोर्ब्रह्मणे गाम्

नि पु सीद गणपते गुणेषु

त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् ।

न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे

महामकं मंत्रवाञ्छिभ्रमं

अभिल्या नो मघवन् नार्धमानान्

सर्पे योधि वंसुपते सर्षीनाम् ।

रण्या कृधि रणठत् सत्यशुष्मा

अभक्ते चिदा भजा राये अस्मान्

॥ १५१ ॥ (ऋ० १०।११।१-२०)

वैस्पः षातशेदेन । षण्ठी, १० मिठ्पु ।

तमस्य धावापृथिगो सचैतसा

विश्वेभिर्देवरनु शुष्ममावताम् ।

यदैत् कृष्णानो महिमानमिन्द्रियं

पीत्वी सोमस्य ऋतुमां धवर्धत

॥ १ ॥

तमस्य विष्णुमहिमानमोजसा

अंशुं दधन्वान् मधुनो वि रण्दाते ।

॥ ४ ॥

देवेभिरिन्द्रो मघवां स्यावाभिः

वृत्रं जघन्वां अमघद् वरेण्यः

॥ २ ॥

वृत्रेण यदहिना विभ्रदायुधा

समस्थिया युधये शंसमाविदे ।

॥ ५ ॥

विश्वं ते अरं मरुतः सुह त्मना

अवर्धन्नुग्र महिमानमिन्द्रियम्

॥ ३ ॥

॥ ६ ॥

जज्ञान एव व्ययाधत स्पृधः

प्रापदयद् वीरो अभि पांस्यं रणम् ।

अवृश्चदद्रिमवं सस्यदः सज्जत्

अस्तंन्नात्राकं स्वपस्यया पृथुम्

॥ ४ ॥

॥ ७ ॥

आदिन्द्रः सना तविपीरपत्यत्

वरीयो धावापृथिवी अयाधत ।

अवाभरद्वृपितो वज्रमायसं

शेवं मिनाय वरुणाय द्रुगुये

॥ ५ ॥

॥ ८ ॥

इन्द्रस्यान् तविपीभ्यो विरुप्शिनं

ऋचायतो अरंहयन्त मन्यवे ।

वृत्रं यदुग्रो व्यर्चश्चदोर्जसा

अपो विश्रतं तमसा परीवृतम्

॥ ६ ॥

॥ ९ ॥

या धीर्याणि प्रथमानि कर्त्वा

महित्वेभिर्यतमानो समीयतुः ।

घ्नान्तं तमोऽव दध्वसे हृत

इन्द्रो म्हा पृथङ्तावपत्यत

॥ ७ ॥

॥ १० ॥

विश्वं देवासो अघ वृष्णानि ते

अवर्धयन्त्सोमयत्या घञस्यया ।

रुद्धं वृत्रमहिमिन्द्रस्य हन्मना

अग्निं जम्भैस्तुष्वग्रमानयत्

॥ ८ ॥

भूरि दक्षेभिर्वचनेभिर्ऋषेभिः
 सृष्टयेभिः सृष्ट्यानि प्र वौचत ।
 इन्द्रो धुनिं च चुमुरि च दम्भयन्
 श्रद्धामनस्या शृणुते दभीतये
 त्वं पुरुष्या भंग स्वदव्या
 येभिर्मसै निवचनानि शंसन् ।
 सुगेभिर्विभ्वां दुरिता तरेम
 विदो पु ण उर्विया गाधमद्य

॥ २५१ ॥ (ऋ० १०।११।१-३)

सौराऽभिपुत सौराऽभिपुते वा । त्रिष्टुप् ।

पिया सोमं महत इन्द्रियाय
 पिवा वृत्राय हन्तवे शविष्ठ ।
 पिवा राये शर्वसे ह्यमानः
 पिव मर्षस्तपदिन्द्रा वंपस्व
 अस्य पिव धुमतः प्रस्थितस्य
 इन्द्र सोमस्य वरमा सुतस्य ।
 स्यास्तिदा मनसा मादयस्व
 अवाचीनो रयेते सौमगाय
 ममत्तु त्वा दिव्यः सोम इन्द्र
 ममत्तु यः सृयते पार्थिवेषु ।
 ममत्तु येन वरिषश्चकथं
 ममत्तु येन निरिणासि शत्रून्
 आ द्विवर्षां अमिनो यात्विन्द्रो
 घृषा हरिभ्यां पारिपिक्तमन्धः ।
 गव्या सुतस्य प्रभृतस्य मर्षः
 सुत्रा येदामरुद्राहा पृपस्व
 नि तिग्मानिं ध्राशयन् ध्राश्यानि
 अयं स्थिरा तनुहि यातुजनाम् ।
 उप्राप्य ते महो षट् ददामि
 प्रनाग्या शयून् पिगदेषु वृध
 ध्ययुयं इन्द्र तनुहि ध्यांसि
 भोजः स्थिरेय धर्वन्तेऽभिमांतीः ।

अस्मद्गवावृधानः सहोभिः

अनिभृष्टस्तन्वं वाघृधस्व ॥ ६ ॥

इदं हविर्मघवन् तुभ्यं रातं

॥ ९ ॥ प्रति सम्राजहृणानो गृभाय ।

तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यं पत्न्योऽ

अर्द्धीन्द्र पिव च प्रस्थितस्य ॥ ७ ॥

अर्द्धीदेन्द्र प्रस्थितेमा हवींषि

चनो दधिष्व पचतोत सोमम् ।

॥ १० ॥

प्रयस्वन्तः प्रति ह्यामसि त्वा

सत्याः संतु यजमानस्य कामाः

॥ ८ ॥

प्रेन्द्राग्निभ्यां सुवचस्यामियमिं

सिधाविच प्रेरयं नावमकैः ।

अया इव परि चरन्ति देवा

ये अस्मभ्यं धनदा उद्रिदंश्च

॥ १ ॥

॥ २५३ ॥ (ऋ० १०।१२।१-९)

आयर्वेणो वृददिव ।

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं

यतो जज्ञ उग्रस्त्वपनृग्णः ।

॥ २ ॥

सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रुन्

अनु यं विश्वे मदन्त्यूर्माः

वावृधानः शर्वसा भूर्योज्ञाः

शत्रुर्ज्ञासायं भियसं दधाति ।

॥ ३ ॥

अव्यनच्च ध्वनच्च सस्ति

सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु

त्वे क्रतुमीपं वृजन्ति विश्वे

द्विर्यदेते निर्भयन्त्यूर्माः

स्यादोः स्वादीयः स्वादुनां रुजा सं

अदः सु मधु मधुनामि यौधीः

रतिं चिदि त्वा धना जयन्तं

मदेमदे अनुमदन्ति विप्राः ।

भोजीयो धृणो स्थिरमा तनुष्व

मा त्वां दभन् यातुधानां दुरेयाः

॥ ४ ॥

(२७६७)

त्वया वयं शाश्वते रणेपु
 प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
 चोदयामि त आरुधा वचोभिः
 सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि
 स्तुपेय्यं पुरुवपसुमृश्वं
 इनतममाप्यमाप्यानानाम् ।
 आ दर्पते शर्वसा सत दानुन्
 प्र साक्षते प्रतिमानानि भूरि
 नि तद्दधिपेऽवरं परं च
 यस्मिन्नाविथार्यसा दुरोणे ।
 आ मातरां स्थापयसे जिगत्नु
 अत इनोपि कर्वीरा पुरुणि
 इमा ब्रह्मं बृहद्दिवो विवक्ति
 इन्द्राय शूर्पमप्रियः स्वर्षाः ।
 महो गोशस्यं शयति स्वराजो
 दुरंश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः
 एषा महान् बृहद्दिवो अथुर्वा
 अवोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
 म्वसांरो मातारिभ्यरीरुप्रा
 हिन्यन्ति च शर्वसा वर्धयन्ति च
 ॥ २५४ ॥ (क्र० १०११३११-२; ६-७)
 सर्वोक्तिः काशं वनः ।
 अप प्राचं इन्द्र विश्वा अमिन्नान्
 अपापांचो अभिभूते नुदस्व ।
 अपोर्दीचो अपं शूराधराचं
 उरो यथा तप दार्मन् मदम
 कुचिद्वद् ययमन्तो ययं चिद्
 यथा दान्त्यनुपुषं वियूर्यं ।
 इहेर्दपां हृणुहि भोजनानि
 ये गर्हिणो नमोवृक्ति न जग्मुः
 नदि स्युर्पतुथा यातमस्ति
 नोत अयो विविदे संगामेषु ।

गव्यन्त इन्द्रं सत्याय विप्रा
 अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥ ३ ॥
 ॥ ५ ॥ इन्द्रः सुत्रामा स्वर्षां अर्षोभिः
 सुमृष्टीको भवतु विश्ववेदाः ।
 वार्धतां द्वेषो अभयं कृणोतु
 सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ६ ॥
 ॥ ६ ॥ तस्य वयं सुमतौ यन्नियस्य
 अपि भूरे सोमन्तसे स्याम ।
 स सुत्रामा स्वर्षा इन्द्रो अस्से
 आराशिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ ७ ॥
 ॥ ७ ॥ ॥ २५५ ॥ (क्र० १०१२३११-७)
 मुदाः पेत्रवनः । शक्रा, ४-६ महापृथ्वि, ७ विद्वत् ।
 प्रो ष्वसै पुरोरथ—मिन्द्राय शूर्पमर्चत ।
 अभीके चिद् लोकरुत् संगे समत्सु वृद्धा
 ॥ ८ ॥ अस्माकं बोधि चोदिता
 नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्यसु ॥ १ ॥
 त्वं सिधुर्वासुजो ऽधराज्ञो अहन्नाहम् ।
 अश्वानिन्द्र जग्निपे विश्वं पुष्यसि वार्यं
 ॥ ९ ॥ तं त्या परिं प्यजामहे
 नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्यसु ॥ २ ॥
 वि पु विश्वा अरातयो ऽयां नंशन्त नो धिर्षः ।
 अस्तांसि शश्वे वधं यो न इन्द्र जिर्वासति
 या ते रातिर्ददियसु
 ॥ १ ॥ नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्यसु ॥ ३ ॥
 यो न इन्द्रामिनो जर्षो वृकायुरादिर्देशति ।
 अथस्वदं तमीं कधि वियाधो अंसि सासुदिः
 नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्यसु ॥ ४ ॥
 ॥ २ ॥ यो न इन्द्रामिदासति मनोमिर्षश्च निष्पर्वः ।
 अय तस्य वलं निर मदीयं चोग्ध तन्ना
 नमन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्यसु ॥ ५ ॥

अयमस्मासु काव्यं ऋभुर्वज्रो दास्यते ।
 अयं विमल्युर्ध्वरुशनं मर्दं
 ऋभुर्न कृत्यं मर्दम् ॥ २ ॥
 घृषुः श्येनाय कृत्यंन आसु स्वासु वंसंगः ।
 अयं दीधेदहीशुवः ॥ ३ ॥
 यं सुपुर्णः पतवतः श्येनस्यं पुत्र आभरत् ।
 शतचक्रं योऽहो वर्तनिः ॥ ४ ॥
 यं ते श्येनश्चारुमवुकं पदार्भरद्
 अरुणं मानमन्वसः ।
 पना ययो वि तार्यायुर्जीवसं
 पना जांगार वंधुता ॥ ५ ॥
 पवा तदिन्द्र इन्दुना
 देवेषु चिद्धारयाते महि त्यजः ।
 कत्या ययो वि तार्यायुः सुकतो
 कत्यायमसदा सुतः
 ॥ २५९ ॥ (ऋ० १०।१४।१-५)
 सुवेदाः शीरीषिः । अगता, ५ त्रिष्टुप् ।
 अत् ते दधामि प्रयुमायं मन्यवे
 अहन्यद् घृषं नयं विधेरपः ।
 उभे यत् त्वा भयतो रोदसी अनु
 रेजते शुष्मात् पृथिथी चिद्रद्रिचः ॥ १ ॥
 त्वं मायाभिरनवध मायिनं
 अयस्यता मनसा घृषमर्दयः ।
 त्वामिधरो वृणते गर्विष्टिषु
 त्वां विश्वासु हव्यास्विष्टिषु ॥ २ ॥
 ऐषुं चाकन्धि पुरहूत सुरिषुं
 घृधासो ये मघवन्नानुशर्मघम् ।
 अर्धन्ति तोके तनये परिष्टिषु
 मेघसाता वाजिनमर्दये धने ॥ ३ ॥
 स इन्द्र शयः सुभृतस्य चाकनत्
 मत्तं यो अस्व रंघं चिरेतनि ।

त्वावृधो मघवन् दार्ध्वधरो
 मधू स वाजं भरते घना नृभिः ॥ ४ ॥
 त्वं शर्धाय महिना गृणान
 उरु कृधि मघवञ्छुधि शयः ।
 त्वं नो मित्रो वरुणो न मायी
 पित्वो न दंस दयसे विभक्ता ॥ ५ ॥
 ॥ २६० ॥ (ऋ० १०।१४।१-५) वृषुर्ध्वयः । त्रिष्टुप् ।
 सुष्वाणासं इन्द्र स्तुमसिं त्वा
 ससर्वासंश्च तुविनृग्ण वाजम् ।
 आ नो भर सुवितं यस्यं चाकन्
 त्मना तनां सनुयाम त्वाताः ॥ १ ॥
 ऋष्यस्त्वमिन्द्र शूर जातो
 दासीर्विशः सूर्येण सहाः ।
 गुहां हितं गुह्यं गुल्हमप्यु
 विभ्रमासिं प्रलवर्णेण न सोमम् ॥ २ ॥
 अयो वा गिरो अय्यंच विद्वान्
 ऋषीणां विप्रः सुमतिं चक्रानः ।
 ते स्याम ये रणयन्त सोमैः
 एनोत तुभ्यं रथोल्ह भुधैः ॥ ३ ॥
 इमा ग्रहोन्द्र तुभ्यं शंसि
 दा नृभ्यो नृणां शूर शयः ।
 तेभिर्भय सकतुष्येषुं चाकन्
 उत प्रायस्व गृणत उत स्तीन् ॥ ४ ॥
 शुधी हर्षमिन्द्र शूर पृथ्यां
 उत स्तवसे वेन्यस्याकैः ।
 आ यस्ते योनिं घृतयन्तुमभ्याः
 ऊर्मिनं निस्त्रैवयन्त यषाः ॥ ५ ॥
 ॥ २६१ ॥ (ऋ० १०।१४।१-५)
 वायो भारडासः । अमृष्टुप् ।
 शाम इत्या मुदां धेय्य-मित्रशुभो धायुः ।
 न यस्यं हृष्यन्त गृध्या न नार्यन्ते कदा चन ॥

स्वस्तिदा विशस्पति—वृत्रहा विमृधो वृशी ।
 वृषेन्द्रः पुर पंतु नः सोमपा अर्भयंकरः ॥ २ ॥
 वि रथो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
 वि मनुमिन्द्र वृत्रह—प्रमित्रस्याभिदासतः ॥ ३ ॥
 वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
 यो अस्मां अभिदास—त्यर्धं गमया तमः ॥ ४ ॥
 ओपेन्द्र द्विपतो मनो ऽप जिज्यासतो वधम् ।
 वि मृग्योः शर्म यच्छ वरीयो यवया वधम् ॥ ५ ॥

॥ २६० ॥ (ऋ० १०।१५३।१-५)

देवत्राय इन्द्रमातरः । गायत्री ।

ईड्यन्तीरपस्युय इन्द्रं ज्ञातमुपासते ।
 भेजानासः सुवीर्यम् ॥ १ ॥
 त्वमिन्द्र यलादधि सहसो ज्ञात ओजसः ।
 त्वं वृषन् वृषेदसि ॥ २ ॥
 त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः ।
 उद् धामस्तम्ना ओजसा ॥ ३ ॥
 त्वमिन्द्र सजोपस—मर्कं विभयिं याहोः ।
 यज्ञं शिदानं ओजसा ॥ ४ ॥
 त्वमिन्द्रामिभूरसि विश्वा ज्ञातान्योजसा ।
 स विश्वा भुय आर्भवः ॥ ५ ॥

॥ २६३ ॥ (ऋ० १०।१६०।१-५)

पूरणो वैश्वामित्रः । त्रिपुत्र ।

तीव्रम्याभिर्ययसो अस्य पाहि
 सधरथा वि हरी इह मुञ्च ।
 इन्द्र मा त्या यजमानासो अय्ये
 नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः ॥ १ ॥
 तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्यासः
 त्यां गिरः श्वात्या आ हयन्ति ।
 इन्द्रेदमथ सधनें त्राणाणो
 विभ्यस्य विष्टो इह पाहि सोमम्
 य उन्नाता मनन्ता सोममसै
 स रूदा देयर्षामः सुनोति ।

न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति
 प्रशस्तमिचारमसै कृणोति ॥ ३ ॥
 अनुस्पद्यो भवत्येषो अस्य
 यो असै रेवान न सुनोति सोमम् ।
 निररत्नौ मधवा तं दधाति
 ब्रह्मद्विपो हन्त्यानुदिष्टः ॥ ४ ॥
 अश्वान्तो गव्यन्तो वाजयन्तो
 हवामहे त्वोपगन्तवा उं ।
 आभूयन्तस्ते सुमतौ नवायां
 वयमिन्द्र त्या शानं हुवेम ॥ ५ ॥

॥ २६४ ॥ (ऋ० १०।१६७।१-१, ४)

विश्वामित्र—जमदग्नी । जंगनी ।

तुभ्येदमिन्द्र परि पिच्यते मधु
 त्वं सुतस्य कलशस्य राजसि ।
 त्वं रयिं पुरुवीरामु नस्तुधि
 त्वं तपः परितर्प्याजयः स्वः ॥ १ ॥
 स्वर्जितं महि मन्दानमन्धसो
 हवामहे परि शक्रं सुतां उर्ष ।
 इमं नो यज्ञमिह घोष्या गहि
 स्पृधो जयन्तं मुघवानमीमहे ॥ २ ॥
 प्रसृतो भक्षमकरं चरावपि
 स्तोमं वेमं प्रथमः सुरिरुन्मृजे ।
 सुते सातेन यथागमं वां
 प्रति विश्वामित्रजमदग्नी दमे ॥ ३ ॥

॥ २६५ ॥ (ऋ० १०।१७१।१-४)

इदो भार्गवः । गायत्री ।

त्वं त्यमिदतो रथ—मिन्द्र प्रावः सुतार्धतः ।
 अर्नृणोः सोमिनो हवम् ॥ १ ॥
 त्वं मृपस्य दोर्धतः शिरोऽयं त्वचो भरः ।
 अगच्छः सोमिनो गृहम् ॥ २ ॥
 त्वं त्यमिन्द्र मर्ये—माखवुधाय वेन्यम् ।
 मुहुः श्रधा मनस्यवे ॥ ३ ॥

त्वं त्यमिन्द्र सूर्ये पश्चा सन्तं पुरस्ठाधि ।

देवानां चित् तिरो यशम् ॥ ४ ॥

॥ २६६ ॥ (ऋ० १०।१७१।१-३)

क्रमेण शिविरोमीनरः, काशिराजः प्रतर्दनः,
रौहिदशो वसुमनाः । त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप् ।

उत् तितृतायं पद्यते—न्द्रस्य भागमृत्विष्यम् ।

यदि श्रातो जुहोतन् यद्यश्रातो ममत्तन ॥ १ ॥

श्रातं हविरो प्विन्द्र प्र याहि

जगाम स्रो अर्चनो विमंध्यम् ।

परिं त्वासेते निधिमिः सखायः

कुलपा न द्वाजपतिं चरंतम् ॥ २ ॥

श्रातं मन्य ऊर्धनि श्रातमग्नौ

सुश्रातं मन्ये तदृतं नवीयः ।

माष्येदिनस्य सचनस्य दध्नः

पिवेन्द्र वज्रिन पुरुहज्जुपाणः ॥ ३ ॥

॥ २६७ ॥ (ऋ० १०।१८०।१-३) जय ऐन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

प्र संसादिपे पुरुहत् शश्रुन्

ज्येष्ठस्ते शुष्मं इह रातिरस्तु ।

इन्द्रा भरं दक्षिणेना यस्मिन्

पतिः सिन्धूनामसि रेवतीनाम् ॥ १ ॥

मृगो न भीमः कुंचरो गैरिष्ठाः

परावत् आ जगन्था परस्याः ।

सुकं सुदार्यं पविमिन्द्र तिग्मं

यि शश्रुन् ताब्धि वि मृधो नुदस्व ॥ २ ॥

इन्द्रं क्षत्रमग्नि वाममोजो

अजायथा वृषम चर्षणीनाम् ।

अपानुदो जर्नमभिप्रयन्तं

उरुं देवेभ्यो अरुणोर लोकम् ॥ ३ ॥

॥ २६८ ॥ (ऋ० १०।४७।१-८)

अमुरागिरयः । [६४४ इन्द्रः] ।

जगम्भा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं

पस्यवो वसुपते यस्मिनाम् ।

विद्या हि त्वा गोपतिं शूर गोनां

अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ १ ॥

स्वायुधं स्ववसं सुनीधं

चतुःसमुद्रं धरुणं रयाणाम् ।

चर्हयं शंस्यं भूरिवारं

अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ २ ॥

सुग्रहाणं देववन्तं बृहन्तं

उरुं गभीरं पृथुवृष्मिन्द्र ।

ध्रुतश्रुपिमुग्रमभिमातिपाहं

अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ३ ॥

सनद्वाजं विप्रवीरं तर्हत्रं

धनुस्पृतं शशुवांसं सुदक्षम् ।

दस्युहनं पार्भेदामिन्द्र सत्यं

अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ४ ॥

अभ्यावंतं रथिनं वीरवन्तं

सहस्रिणं शतितं वार्जमिन्द्र ।

भद्रवातं विप्रवीरं स्वर्षो

अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ५ ॥

प्र सुतगुंमूतधीतिं सुमेधां

बृहस्पतिं मतिरच्छ्री जिगाति ।

य आङ्गिरसो नर्मसोपसद्यो

अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ६ ॥

वनीधानो ममं दृतासु इन्द्रं

स्तोर्माध्वरन्ति सुमतीरियानाः ।

हृदिस्पृशो मनसा वृच्यमाना

अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ७ ॥

यत् त्वा यामिं दृद्धि तत्रं इन्द्र

बृहन्तं क्षयमसंमं जनानाम् ।

अभि तद् द्यावापृथिवी गृणातं

अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ८ ॥

॥ १६९ ॥ (ऋ० १०।१।११।१-१३ ,
 ऐन्द्रो लभ । [आत्मा (इन्द्र)] । गायत्री ।
 इति वा इति मे मनो गामर्ध्वं सनुयामिति ।
 कृवित् सोमस्यापामिति ॥ १ ॥
 प्र चाता इव दोर्धत उन्मा पीता अयसत ।
 कृवित् सोमस्यापामिति ॥ २ ॥
 उन्मा पीता अयसत रथमर्ध्वा इयाशवः ।
 कृवित् सोमस्यापामिति ॥ ३ ॥
 उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम् ।
 कृवित् सोमस्यापामिति ॥ ४ ॥
 अह तष्टेव वन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम् ।
 कृवित् सोमस्यापामिति ॥ ५ ॥
 नदि मे अक्षिपच्चाना - ऽच्छान्तसु पञ्च कृष्टयः ।
 कृवित् सोमस्यापामिति ॥ ६ ॥
 नदि मे रोदसी उमे अन्यं पक्ष च न प्रति ।
 कृवित् सोमस्यापामिति ॥ ७ ॥
 अभि यां मदिना भुज - मभीक्षुमां पृथिवीं महीम् ।
 कृवित् सोमस्यापामिति ॥ ८ ॥
 हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा ।
 कृवित् सोमस्यापामिति ॥ ९ ॥
 शोपमिन् पृथिवीमहं जुहुनानीह वेह वा ।
 कृवित् सोमस्यापामिति ॥ १० ॥
 दिपि मे अन्यः पशोक्षु ऽधो अन्यमचीरपम् ।
 कृवित् सोमस्यापामिति ॥ ११ ॥
 अहमस्मि महामहो ऽभिनभ्यमुदीपितः ।
 कृवित् सोमस्यापामिति ॥ १२ ॥
 गृहो यान्यरटतो देवेभ्यो हव्यपाहनं ।
 कृवित् सोमस्यापामिति ॥ १३ ॥

॥ १७० ॥ (अथर्व० १।५।१-४)

गुणपर्वण । १ अग्निष्टोत्रं वृद्धशती, २ अग्निष्टोत्रं
 विवाहशती, ३ विवाहशती वृद्धशती, ४ अग्नीष्टोत्रं वृद्धशती ।
 इन्द्रं जुगम्य प्र वृदा याति नृर् हरिम्याम् ।
 पिवां सुतम्यं मनेरिद मर्धोद्यवानध्यामर्दाय ॥१॥

इन्द्रं जुठरं नद्यो न पूणस्य मर्धोर्दिवो न ।
 अस्य सुतस्य स्वर्णोपं
 त्वा मदाः सुवाचो अगुः ॥ २ ॥
 इन्द्रं स्तुरापाणिमत्रो वृत्रं यो जघानं यतीनं ।
 विभेदं धलं भृगुर्न संसहे शत्रुमदे सोमस्य ॥३॥
 आ त्वा विशान्तु सुतासं इन्द्र पूणस्यं
 कुक्षी विद्धि शक्र धियेहा नः ।
 शुधी हव गिरां मे जुपस्वेन्द्रं
 स्वयुग्भिर्भस्त्वेह महे रणाय ॥ ४ ॥
 ॥ १७१ ॥ (अथर्व० ४।१५।१-७)
 मृगार । त्रिष्टुप्, १ शाकरोमर्मा पुर शकरी ।
 इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे
 वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगुः ।
 यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्जत्वंहसः ॥१॥
 य उप्रीणामुग्रयाहुर्गुयुः
 यो दानवानो बलमाररोजं ।
 येन जिताः सिन्धवो येन गावः
 स नो मुञ्जत्वंहसः ॥ २ ॥
 यश्वर्षणिप्रो वृषमः स्वर्षिद्
 यस्मै प्रावाणः प्रवदन्ति नृग्णम् ।
 यस्याप्यरः सतहोता मर्दिष्टः
 स नो मुञ्जत्वंहसः ॥ ३ ॥
 यस्य वृशासं ऋषभासं उक्षणो
 यस्यै मीयन्ते स्वर्षवः स्वर्षिर्दं ।
 यस्यै शुकः पवते ब्रह्मशुम्भितः
 स नो मुञ्जत्वंहसः ॥ ४ ॥
 यस्य रुष्टिं सोमिनः कामयन्ते
 य हयन्त इषुमन्तं गव्यैष्टौ ।
 यस्मिन्नर्षः दिश्रिये यस्मिन्नोज्ज
 स नो मुञ्जत्वंहसः ॥ ५ ॥

यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे
 यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम् ।
 येनोद्यतो वज्रोऽभ्यायताहि
 स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ६ ॥

यः संप्रामात्रयति सं युधे वशी
 यः पुष्टानि संसृजति हृयानि ।
 स्तौमोन्द्रं नायितो जौहवीमि
 स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ७ ॥

॥ २७० ॥ (अथर्वं ५।२३।१-१३)
 वधः । अनुष्टुप, १३ विराट् ।

ओते मे धावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।
 ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च किमि जम्भयतामिति ॥ १ ॥
 अस्येन्द्रं कुमारस्य किमिन्धनपते जहि ।
 हता विश्वा अरतय उप्रेण वचसा मम ॥ २ ॥
 यो अश्वौ परिसर्पति यो नासं परिसर्पति ।
 दतां यो मय्यं गच्छति ते किमि जम्भयामसि ॥ ३ ॥
 सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ ।
 वभ्रुश्च वभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः ॥ ४ ॥
 ये किर्मयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिवाहवः ।
 ये के च विश्वरूपा—स्तान्किमीन्जम्भयामसि ॥ ५ ॥
 उत्पुस्तान्त्वूर्यं पति विश्वदष्टो अट्टहा ।
 हृष्टाश्च प्रन्नहृष्टाश्च सर्वाश्च प्रमृणन्किमीन् ॥ ६ ॥
 येषांपासः कर्कपास एजत्काः शिपवित्नुकाः ।
 हृष्टश्च हन्यतां किमि—स्ताहृष्टश्च हन्यताम् ॥ ७ ॥
 हतो येषांपः किमीणां हतो नन्दनिमोत ।
 सर्वाधि मप्पाकारं हृपदा खल्यौ इव ॥ ८ ॥
 त्रिशोषाणं त्रिककुदं किमिं सारङ्गमर्जुनम् ।
 शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृधामि यच्छिरः ॥ ९ ॥
 अत्रिवहः किमयो हन्मि कण्वयज्जमदग्निवत् ।
 अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिंनप्यहं किमीन् ॥ १० ॥
 हतो राजा किमीणा—मुतेपां स्थपतिहंतः ।
 हतो हतमांता किमि—हंतभ्राता हतस्वसा ॥ ११ ॥

हतामौ अस्य वेदासौ हनासुः परिवेदासः ।
 अयो ये भुङ्क्ता इव सर्वे ते किमयो हताः ॥ १२ ॥
 सर्वेषां च किमीणां सर्वाणां च किमीणाम् ।
 भिनवायश्मना गिरो ददांम्याग्निना सुपमं ॥ १३ ॥

॥ २७३ ॥ (अथर्वं ६।३६।१-३)
 जाटिकायन. । गायत्री २ अनुष्टुप ।

यस्येदमा रजो युजं—स्तुजे जना वनं स्वः ।
 इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ १ ॥
 नाधूप वा दधूपते धृषाणो धूपितः शवः ।
 पुरा यथा व्यथिः श्रव इन्द्रस्य नाधूपे शवः ॥ २ ॥
 स नो ददातु तां रथि—मुहं पिशाङ्गसंदशम् ।
 इन्द्रः पतिस्तुविष्टमो जनेष्वाम् ॥ ३ ॥

॥ २७३ ॥ (अथर्वं ६।३६।१-३)
 अथवा । अनुष्टुप, १ त्रिष्टुप ।

निहस्तः शत्रुरभिदासन्नस्तु ये
 सेनाभिर्युधमायन्त्यसान् ।
 समर्पयेन्द्र महता वधेन
 द्रात्वैपामघहारो विविद्धः ॥ १ ॥

आतन्वाना धायच्छन्तो ऽस्यन्तो ये च धायथ ।
 निहस्ताः शत्रवः स्थने—न्द्रो घोऽद्य पराशरीत् ॥ २ ॥
 निहस्ताः सन्तु शत्रवो ऽङ्गेषां म्लापयामसि ।
 अर्थयामिन्द्र वेदांनि शतशो चि मंजामहे ॥ ३ ॥

॥ २७५ ॥ (अथर्वं ६।३७।१-२) अनुष्टुप ।

परि वमीनि सर्वत इन्द्रः पुषा च सन्नतुः ।
 मुहान्वयामूः सेना अभिजाणां परस्तराम् ॥ १ ॥
 मुहा अभिवाश्चरता—शीषाणं इवाहवः ।
 तेषां वो अग्निर्मूदाना—मिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥ २ ॥
 पेषु नहृ वृषाजिनं हरिणस्या मियं कृधि ।
 पराडमित्र परं—स्ववाची गौरुपयतु ॥ ३ ॥

॥ २७६ ॥ (अथर्वं ६।३९।१-३)
 वधः । अनुष्टुप, ३ पदपदा अयतां ।

निरमुं मुद ओकमः सपतो यः पृतन्यति ।
 नैराध्येन हविषे—न्द्रं एनं पराशरीत् ॥ १ ॥

परमां ते परायत मिन्द्रो नुदतु वृत्रहा ।
यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २ ॥

एतं तिम्रः परायत एतु पञ्च जनाँ अतिं ।
एतुं तिम्रोऽतिं रोचना यतो न पुनरायति
शश्वतीभ्यः समाभ्या यावत्सुयोँ असद्विचि ॥३॥

॥ ७७ ॥ (अथर्वं २१८१-३) मगः । अनुष्टुप् ।

आगच्छत आगतस्य नामं गृह्णाम्यायतः ।
इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्द्ये वासुधस्य शतक्रतोः ॥ १ ॥

येनं सुयोँ सावित्री—मन्विनोहतुः पया ।
तेन मामप्रवीद्गर्गाँ ज्ञायामा बहतादिति ॥ २ ॥

यस्तैऽङ्कुरो वंसुदानो वृहन्निन्द्र हिरण्ययः ।
तेनां जनीयते ज्ञायां महौ धेहि शचीपते ॥ ३ ॥

॥ ७८ ॥ (अथर्वं ६१८१-३)

अथर्वो । त्रिष्टुप्, २ वृहतीगामोऽकारवृत्तिः ।

इन्द्रो जयाति न परां जयाता
अधिपुजो राजसु राजयातै ।

चर्हन्त्य इत्यो वन्द्यश्च
उपसवोँ नमस्योँ मवेह ॥ १ ॥

त्वमिन्द्राधिपुजः ध्रुवस्युः
त्वं भूरभिर्भूतिर्जनांजाम् ।

त्वं देवीर्विशं इमा वि राजा
आर्यम्भश्चमृजर्ते ते अस्तु ॥ २ ॥

प्राच्यां दिशस्त्वामिन्द्रासि राजा
उतोदीच्यां दिशो वृत्रहन्ऽनुहोँसि ।

ययु यानि श्रोत्यास्तज्जितं तै
दक्षिणतो धूमं पथि हव्यः ॥ ३ ॥

॥ ७९ ॥ (अथर्वं ७३१-१)

मृगशिराः । भुक्ति त्रिष्टुप् ।

इन्द्रोतिमिषदुग्धाभिर्नो अथ
यावच्छ्रेष्ठाभिर्मवन्द्यर जिन्व ।

यो नो हेष्टयधरः ससर्पदाष्टु
यमुं हिप्रस्तमुं प्राणो जहातु ॥ १ ॥

॥ २८० ॥ (अथर्वं ७१५०१-३, १, ८-९)

अष्टिगराः (दितववषडामः) । अनुष्टुप् ; ३ त्रिष्टुप् ।

यथां वृक्षमृशनि—विंशवाहा हन्त्यप्रति ।
पृवाहमृच कित्वा—नृश्वैर्वध्यासमप्रति ॥ १ ॥

तुराणामतुराणां विशामवर्जुपीणाम् ।
समेतुं विध्वतो भगोँ अन्तर्हस्तं हृतं मर्म ॥ २ ॥

इडे अग्निं स्वायसुं नमोभिः
इह प्रसक्तो वि चयत्कृतं नः ।

रथैरिच प्र भरे वाजयन्धिः
प्रदक्षिणं मरुतां स्तोममृध्याम् ॥ ३ ॥

अजपं त्वा संलिखित—मजपमुत संरुधम् ।
अवि वृको यथा मथ—देवा मथ्यामि ते हृतम् ५

हृतं मे दक्षिणे हस्तं ज्यो मेँ सुव्य आहितः ।
गोजिद्र्यासमभ्रजि—इनेजयो हिरण्यजित् ॥ ८ ॥

अक्षाः फलेयतीं युवं वृच गां क्षीरिणीमिव ।
से मां हृतस्य धारया धनुः क्षात्रैव नहात ॥९॥

॥ २८१ ॥ (अथर्वं ७१५१-१)

युगुः । विराट् परोष्णिक् ।

ये ते पन्यानोऽव द्विवो येभिर्विभ्यमैरयः ।
तेभिः सुमन्या धेहि नो वसो ॥ १ ॥

॥ २८२ ॥ (अथर्वं ७१९३-१)

सुवहिराः । गायत्री ।

इन्द्रेण मन्युनां वय—ममि प्याम पृतन्यतः ।
प्रन्तो वृत्रायप्रति ॥ १ ॥

॥ २८३ ॥ (अथर्वं १९१३-१) अप्रतिरयः । त्रिष्टुप् ।
इन्द्रस्य वाह स्यावितौ घृषाणौ

त्रिषा इमा वृषमौ पररिष्णु ।
तौ योँक्षे प्रथमो योग आगते

याभ्यां जितमतुराणां स्वयुयत् ॥ १ ॥
(२९१४)

॥ १८४ ॥ (अथर्व० १९।१-१९-३)

अथर्वा । त्रिष्टुप् . ३ पथ्यापङ्क्तिः ।

इन्द्रं वयमनूराधं हवामहे
 अनुं राध्यास द्विपदा चतुष्पदा ।
 मा नः सेना अरुणीरुपे गुः
 विषुचौरिन्द्र द्रुहो वि नाशय ॥ २ ॥
 इन्द्रं खातोत धृत्रहा परस्फानो वरेण्यः ।
 स रक्षिता चरमतः स मध्यतः
 स पञ्चात्स पुरस्तान्नो अस्तु ॥ ३ ॥
 ॥ १८५ ॥ (अथर्व० २०।२।३)
 गृत्समशे मेधातिषिर्वा । आर्च्युष्किक् ।
 इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात्सुष्टुमः
 स्वकादृतुना सोमं पियतु ॥ ३ ॥
 ॥ १८६ ॥ (वा० य० १।१)
 सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वर्धायाः ।
 इन्द्रस्य त्वा भागर सोमेनातनन्त्वि
 विष्णो हव्यं रक्ष ॥ ४ ॥
 ॥ १८७ ॥ (वा० य० ३।४९-५०)
 पूर्णां दधिं परां पत सुपूर्णां पुनरापत ।
 वस्नेव विक्रीणावहा ऽइपमूर्जेर शतक्रतो ॥ ४९ ॥
 देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे ।
 निहारं च हरांसि मे
 निहारं निहंराणि ते स्वाहा ॥ ५० ॥
 ॥ १८८ ॥ (वा० य० ५।१८,३०)
 धुयांसि ध्रुवोऽयं यजमानो
 अस्मिन्नायतने प्रजयां पशुभिर्भूयात् ।
 घृतेन चावापृथिवी पूर्व्यां
 इन्द्रस्य छेदिरसि विश्वजुनस्यं ज्ञया ॥ २८ ॥
 इन्द्रस्य स्पूरसोन्द्रस्य ध्रुवोऽसि ।
 ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ॥ ३० ॥
 ॥ १८९ ॥ (वा० य० ७।४,१४-१५,२५)
 उपयामर्गृहीतोऽस्यन्तयच्छ मघवन् पाहि सोमम् ।
 उरुष्य राय ऽ पर्यो यजस्व ॥ ४ ॥

आर्चिञ्जस्य ते देव सोम
 सुवीर्यस्य रायस्पोर्पस्य ददितारः स्याम ।
 सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्वर्वा
 स प्रथमो वरुणो मित्रो ऽ अग्निः ॥ १४ ॥
 स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वान्
 तस्मा ऽ इन्द्राय सुतमाहुहोत स्वाहा ।
 तृस्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा
 याः सुप्रीताः सुहता यत्स्वाहायाड्भीत् ॥ १५ ॥
 ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनेयामि ।
 अथां न ऽ इन्द्र इदृशी
 असपत्नाः समनसुस्करत् ॥ २५ ॥
 ॥ २९० ॥ (वा० य० ८।२२,२६)
 मही धौः पृथिवी च न इमं युजं मिमिक्षताम् ।
 पिपूतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥
 यस्मान्न जातः परो ऽ अन्यो ऽ अस्ति
 य ऽ आविवेश भुवनानि विश्वा ।
 प्रजापतिः प्रजयां सररराणः
 त्रीणि ज्योतींश्चि सचते स वोड्डी ॥ ३६ ॥
 ॥ २९१ ॥ (वा० य० १९।६६)
 निवेशनः संगमनो वसुनां
 विश्वा रूपाभिर्वाष्ट्रे शर्वाभिः ।
 देव ऽ इव सविता सत्यधर्म
 इन्द्रो न तस्यौ समरे पंथीनाम् ॥ ६६ ॥
 ॥ २९२ ॥ (वा० य० १३।१४)
 अग्निमूर्धा दिवः क्रुत् पतिः पृथिव्या ऽ अयम् ।
 अणारं रेतारसि जिन्यति ॥ १४ ॥
 ॥ २९३ ॥ (वा० य० १७।२३,३६,४४-४५,५१,६३)
 वाचस्पतिं विश्वकर्माणमृतयं
 मनोजुवं वाजे ऽ अद्या हुवेम ।
 स नो विद्वान्नि हर्वनानि जोपद्
 विद्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥ २३ ॥

वृहस्पते परिदीया स्थेन
 रक्षोहामित्रौ २ऽत्रपवाधमानः ।
 प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमूणो युधा जयन्
 ब्रह्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ ३६ ॥
 अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती
 गृह्णाणाङ्गान्ये परेहि ।
 अभि प्रेहि निर्देह हन्सु शोकैः
 बन्धेनामिग्राम्नमसा मचन्ताम् ॥ ४४ ॥
 अयस्रुषा परापतु शरव्ये ब्रह्मस्रुषिते ।
 गच्छामित्रान्प्रपद्यस्व मामीषां कञ्जनोच्छ्रियः ॥ ४५ ॥
 इन्द्रेमं प्रतरां नय सजातानामसदृशी ।
 मर्मैने वचसा सृज देवानां भागदाऽअसत् ॥ ५१ ॥
 याजस्य मा प्रसृच उद्गामेणोद्गमभीत् ।
 अथां मृगनानिन्द्रो मे निग्राभेणाधरौ २ अकः ॥ ६३ ॥

॥ २७४ ॥ (घा० य० १९।३९, ८०-९५)

सुगयन्तं धदिपदं सुवारं
 यत्र २ दिग्यन्ति महिषा नमोभिः ।
 दधानाः सोमं द्विवि देवतासु
 मदेमेन्द्रं यजमानाः म्यथाः ॥ ३२ ॥
 मीमेतं तन्त्रं मनसा मनीषिणं
 उणासुप्रेण कृपयां ययन्ति ।
 अभिनां यत्र २ संविता सरस्वती
 इन्द्रस्य रूपं यरूपो भियज्यन्
 ॥ ८० ॥
 तदस्य रूपममृतं शचीभिः
 त्रिषां देवदेवताः नररुणाः ।
 सोमोति शर्षादेवता न मोक्षमग्निः
 स्वर्गस्य मां शर्मतपुत्र लजाः
 ॥ ८१ ॥
 तदभिवनां निरजां रुद्रधन्ती
 सरस्वती वयति पेदा २ अर्नरम् ।
 अर्नरं मृगानं भार्गवः
 वारोतेषु शरुते गवां स्वयि ॥ ८२ ॥

सरस्वती मनसा पेशलं वसु
 नासत्याभ्यां वयति दर्शते वपुः ।
 रसं परिस्रुता न रोहितं
 नद्रहुर्धोरस्तसरं न वेमं ॥ ८३ ॥
 पर्यसा शुक्रममृतं जनित्रं
 सुर्या मूत्राजनयन्त रतः ।
 अपामतिं दुर्मतिं वाधमाना
 ऊर्ध्वं वातं स्रुच्युं तदारान् ॥ ८४ ॥
 इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं
 पुरोडाशेन सविता जजान ।
 यद्वत् क्लोमानं वरुणो भियज्यन्
 मर्तस्ने वायव्यैने मिनाति पित्तम् ॥ ८५ ॥
 आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना
 गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः ।
 श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिः
 आसन्दी नाभिर्दरं न माता ॥ ८६ ॥
 कुम्भो वनिषुज्जिता शचीभिः
 यस्मिन्मये योन्यां गर्भो २ अन्तः ।
 प्लाशिव्यैक्तः शतधारं २ उत्सो
 दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥ ८७ ॥
 मुरा २ सदैस्य शिर २ इत् सतेन
 जिह्वा पवित्रमभियनासन्त्सरस्वती ।
 चय्यं न प्रायुर्भिर्गस्य धार्यो
 घस्तिनं शेषो हरस्ता तरुवी ॥ ८८ ॥
 अभिव्यां चक्षुमृतं प्रहोभ्यां
 छागेन तेजो हृदियां दूतेन ।
 परमाणि गोधूमैः कुर्यदेकतानि
 पेदा न शुक्रमर्गिनं यमाते ॥ ८९ ॥
 अविने मेरो नमि वीर्याय
 प्राणस्य पन्था २ धूमतो प्रहोभ्याम् ।
 सरस्वत्युपाधर्यां
 नम्यानि धदिचरं जजान ॥ ९० ॥
 (१७४८)

इन्द्रस्य रूपमृगभो यत्नोय
 कर्णोभ्यां श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम् ।
 यवा न वहिर्भुवि केसरणि
 कर्कशु जग्ने मधु सारयं मुग्धात् ॥ ९१ ॥
 आत्मघुपस्थे न वृकस्य लोम
 मुये श्मश्रूणि न व्यात्रलोम ।
 केशा न शीर्षन्यशमे ध्रिये शिर्गा
 सिंरुहम्य लोम त्विर्विरिन्द्रियाणि ॥ ९२ ॥
 अह्नान्यात्मन् भिपजा तदध्विजा
 आत्मानमह्नैः समधात् सरस्वती ।
 इन्द्रस्य रूपं शतमानमार्युः
 चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः ॥ ९३ ॥
 सरस्वती योन्यां गर्भमन्तः
 अध्विभ्यां पत्नी सुकृतं विभर्ति ।
 अपां रमेन यरणो न सास्त्रा
 इन्द्रं ध्रिये जनयत्रपुत्र राजा ॥ ९४ ॥
 तेजः पदानां हविरिन्द्रियावत्
 परिभ्रुता पर्यसा सारयं मधु ।
 अध्विभ्यां दुग्धं भिपजा सरस्वत्या
 सुतासुताभ्याममृतः सोमः ॥ ९५ ॥
 ॥ ९५ ॥ (वा० य० २०३१, ७१-७७, ८०, ९०)
 अध्वयोऽ अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्रं ऽ आनय ।
 पुनाहीन्द्राय पार्तये ॥ ३१ ॥
 सविता यरणो दधद् यजमानाय दाधुर्ये ।
 आर्दत्त नमुयेधुं सुश्रामा यलमिन्द्रियम् ॥ ७१ ॥
 यरणः ध्रुवमिन्द्रियं भर्गेन सविता ध्रियम् ।
 सुश्रामा यदाग्ना यलं दधाना यजमानात् ॥ ७२ ॥
 अध्विना गोभिरिन्द्रियं-मदयैमिधुं यलम् ।
 हविरेन्द्रं सरस्वती यजमानमयधयन् ॥ ७३ ॥
 ता नामेत्या सुपेशात् दिरंण्यवर्तनी नरा ।
 सरस्वती हविष्मती-न्द्र कर्मसु नोऽपत् ॥ ७४ ॥

ता भिपजा मुकर्मणा सा सुदुद्या सरस्वती ।
 स वृन्हा शनकतु-रिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ७५ ॥
 युवः सुरागमध्विना नमुचायासुरे सर्वा ।
 विपियानाः सरस्वती-न्द्रं कर्मभ्यावत् ॥ ७६ ॥
 पुत्रमिव पितरावध्विना
 उभेन्द्राययुः काव्यैर्दं सनाभिः ।
 यत्सुरामं ध्यापयः शर्वाभिः
 सरस्वती त्वा मघयन्नभिष्णक् ॥ ७७ ॥
 अध्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती धार्यम् ।
 याचेन्द्रो यलेने-न्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ८० ॥
 अध्विना पियतां मधु सरस्वत्या मुजोर्गमा ।
 इन्द्रः सुश्रामा वृन्हा जुयन्तां ९ सोम्यं मधुं ॥ ९० ॥
 ॥ ९९ ॥ (वा० य० २६३-१, २०)
 इन्द्र गोमहिहा यादि पिवा सोमं शतक्रतो ।
 विचद्विर्वावभिः सुतम् ॥ ४ ॥
 इन्द्रा यादि वृत्रहृन् पिवा सोमं शतक्रतो ।
 गोमद्विर्वावभिः सुतम् ॥ ५ ॥
 महारः ऽ इन्द्रो वज्रहस्तः पौडरी शर्म यच्छतु ।
 हन्तुं पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्यं ॥ १० ॥
 ॥ ९७ ॥ वा० य० २९५७)
 आमूर्ज प्रत्यावर्तयमाः केतुमर्दन्तुभिर्वावदीति ।
 समध्वयणांश्चरन्ति नो नरो
 अस्मार्कमिन्द्र र्थिनो जयन्तु ॥ ५७ ॥
 ॥ ९८ ॥ (वा० य० २३१७, ७८-७२, ९०)
 कुन्स्वरमिन्द्र मादिनः सभेको यापि सन्पते
 किं नः ऽ इग्या ।
 सं पृच्छमे समराणः दुमाश्रयोचेन्नरो
 हरिवा यने ऽ अग्ने ॥ २७ ॥
 प्रहाणि मे मृतयः शर सुतासुः
 दुष्पं ऽ इयति प्रभृतो मे ऽ अद्रिः ।
 आ शान्ते प्रनि हयन्त्युपयेमा
 हर्गं यदहम्ना नो ऽ अच्छे ॥ ७८ ॥

॥ ३०९ ॥ (साम० ४३८, १७६८, ४४४-४६४, १११३-१५)

३१ ३ १ ३ ३ ३
 २ ३ १ २ ३ ३ ३
 इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥ ४३८ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३
 उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः
 १ २ ३ ३ १ २
 पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥ ४४४ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
 अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्को आ
 २ २ ३ २ ३ ३ १ २ २
 स्तोमति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥ ४४५ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३
 प्र च इन्द्राय वृत्रहन्तमाय
 १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
 विप्राय गाथं गायत यं जुजोपते ॥ ४४६ ॥

॥ ३१० ॥ (साम० ४४९; ४५३, ४५६, १७७०)

२ ३ १ ३ २ ३ २
 भगो प्र चित्रो अग्निः
 ३ २ ३ १ २ ३ १ २
 महोनां दधाति रत्नम् ॥ ४४९ ॥

३ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
 वि श्रुतयो यथा पथा
 ३ १ २ ३ १ २
 इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥ ४५३ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २
 इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥ ४५६ ॥

॥ ३११ ॥ साम० १८८)

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
 यस्येदमा रजायुज-स्तुजे जने धनं स्वः ।
 १ ० ३ १ २ ३ २
 इन्द्रस्य र्नयं वृहत् ॥ ५८८ ॥

॥ ३१२ ॥ (साम० ६२३-६२५)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
 हरी त इन्द्र इमश्रू-ण्युतो ते हरितौ हरी ।
 १ २ ३ १ २ ३ १ २
 ते त्वा स्तुवन्ति कवयः
 ३ १ २ ३ १ २
 पुरुपासो वनर्गवः ॥ ६२३ ॥

२ ३ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ २
 यद्गर्चो हिरण्यस्य यद्गा घर्चो गवामुत ।
 ३ २ ३ १ २ ३ १ २
 सत्यस्य ब्रह्मणो घर्चः
 १ २ ३ १ २
 तेन मा संख्जामसि ॥ ६२४ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २
 सहस्तन्न इन्द्र दक्षयाज
 ३ ३ २ ३ १ २
 ईशो ह्यस्य महतो चिरप्शान् ।
 २ ३ १ ३ १ २ २ ३ १ २
 क्रतुं न नृष्णं स्थविरं च वाजं
 ३ २ ३ १ २ ३ १ २
 वृत्रेषु शन्नूत्सहना कृधी नः ॥ ६२५ ॥

॥ ३१३ ॥ (साम० ९५२-९५४)

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
 इन्द्र जुपस्व प्र वहा याहि शूर हरिह ।
 १ २ ३ १ २ ३ १
 पिवा सुतस्य मतिर्न

२ २ ३ १ २ ३ १ २
 मधोश्चकानश्चारुमदाय ॥ ९५२ ॥
 १ २ ३ १ २ ३ १ २
 इन्द्र जठरं नव्यं न
 ३ २ ३ १ २ ३ २

पुणस्व मधोर्दियो न ।
 ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
 अस्य सुतस्य स्वाश्नोप
 ३ १ २ ३ १ २
 त्वा मदाः सुवाचो अश्व्युः ॥ ९५३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २
 इन्द्रस्तुरापाणिमग्नो न
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 जघान वृत्रं यतिर्न ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 विमेद वले भृगुर्न
 २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 ससाहे शन्नूमदे सोमस्य ॥ ९५४ ॥

॥ ३१४ ॥ (साम० १८६९)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 इन्द्रस्य वाह स्थविरौ युवानौ
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 अनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
 तौ युज्जीत प्रथमो योग आगते
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 याभ्यां जितमसुराणां सहो महत् ॥ १८६९ ॥

॥ ३१५ ॥ (साम० १८७१)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 अन्धा अमित्रा भवता-शीर्षाणोऽहय इव ।
 १ २ ३ १ २ ३ १ २
 तेषां चो अग्निनुशानां
 १ २ ३ १ २ ३ १ २
 इन्द्रो हन्तु वरवरम् ॥ १८७१ ॥

इन्द्रसहचारी-देवगणः ।

(१) इन्द्राग्नी ।

॥ ३१६ ॥ (ऋ० १।११।१-६)

मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

इहेन्द्राग्नी उषं ह्वये तयोरित् स्तोममुद्मसि ।
 ता सोमं सोमपातमा ॥ १ ॥
 ता यज्ञेषु प्र शसते-न्द्राग्नी शुम्भता नरः ।
 ता गायत्रेषु गायत ॥ २ ॥
 ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे ।
 सोमपा सोमपातये ॥ ३ ॥
 उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सर्वनं सुतम् ।
 इन्द्राग्नी पृह गच्छताम् ॥ ४ ॥
 ता महान्ता सवस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उज्जतम् ।
 अग्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥ ५ ॥
 तेन सत्येन जागृत-मधि प्रचेतुर्ने पदे ।
 इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ६ ॥
 ॥ ३१७ ॥ (ऋ० १।१०।१-१३)
 वृक्ष आगिरसः । त्रिष्टुप ।
 य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वां
 अग्नि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।
 तेना यात मरुथं तस्थिवांसा
 अथा सोमस्य पिवतं सुतस्यं ॥ १ ॥
 यार्वदिदं भुवने विश्वमस्ति
 उग्रयचां वरिमतां गभीरम् ।
 तायां अयं पातये सोमो अस्तु
 अरमिन्द्राग्नी मनसे युधभ्याम् ॥ २ ॥
 चमाम्हे हि सुध्युङ्नामं भुद्रे
 मंभीत्याना वृषहणा उत म्यः ।
 तार्थिन्द्राग्नी स्वर्ष्यज्ञा निपया
 वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषभाम् ॥ ३ ॥

समिद्धेष्वग्निष्वानजाना

यत्सुं चा वर्द्धिं तिस्तिराणा ।
 तीव्रैः सोमैः परिपिकेभिरवांग्
 इन्द्राग्नी सोमनसाय यातम् ॥ ४ ॥
 यानीन्द्राग्नी चक्रधुर्वीर्याणि
 यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
 या वा प्रत्नानि सख्या शिवाणि
 तेभिः सोमस्य पिवतं सुतस्यं ॥ ५ ॥
 यदग्रवं प्रथमं वा वृष्णानोऽ
 अयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः ।
 तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातं
 अथा सोमस्य पिवतं सुतस्यं ॥ ६ ॥
 यदिन्द्राग्नी मर्दथः स्वे दुरोणे
 यद् ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा ।
 अतः परि वृषणावा हि यातं
 अथा सोमस्य पिवतं सुतस्यं ॥ ७ ॥
 यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु
 यद् द्रुह्युष्वनुषु पुरुषु स्थः ।
 अतः परि वृषणावा हि यातं
 अथा सोमस्य पिवतं सुतस्यं ॥ ८ ॥
 यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां
 मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः ।
 अतः परि वृषणावा हि यातं
 अथा सोमस्य पिवतं सुतस्यं ॥ ९ ॥
 यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां
 मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।
 अतः परि वृषणावा हि यातं
 अथा सोमस्य पिवतं सुतस्यं ॥ १० ॥
 यदिन्द्राग्नी दिवि शो यत् पृथिव्यां
 यत् पर्वतेषोर्पथीष्वनु ।
 अतः परि वृषणावा हि यातं
 अथा सोमस्य पिवतं सुतस्यं ॥ ११ ॥

यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य
मर्घ्यं दिवः स्वधया मादयेथे ।
अतः परि वृषणाया हि यातं
अथा सोमस्य पितरं सुतस्य
प्वेन्द्राग्नी पपिवांसां सुतस्य
विश्वास्वभ्यं नं जयतं धनानि ।
तत्रो मित्रो वरुणो मामहन्तां
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः
॥ ३१८ ॥ (ऋ० १।१०९।१-८)

वि ह्यस्यं मनसा चस्य इच्छन्
इन्द्राग्नी ज्ञास उत वां सज्जाताम् ।
नान्या युवत् प्रमतिरस्ति मह्यं
स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम्
अथर्वं हि भूरिदायं चत्पा वां
विजां मातुस्त वां घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयंती युवभ्यां
इन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम्
मा च्छेन्न रुद्रमीरिति नार्धमानाः
पितृणां शक्तीरनुयच्छमानाः ।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति
ता ह्यर्द्रा धिपणाया उपस्यं
युवाभ्यां देवी धिपणा मदाय
इन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी
आ धावतं मर्घुना पूङ्गुमप्सु
युधामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे
तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
तावासद्यां वर्हिषि यज्ञे अस्मिन्
प्र चर्षणी मादयेयां सुतस्य
प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु
प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।

प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा
प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥ ६ ॥
आ भरतं दिक्षतं वज्रवाह
असाँ इन्द्राग्नी अवतं शर्चाभिः ।
इमे तु ते रुद्रमयः सूर्यस्य
येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥ ७ ॥
पुरंदरु शिक्षतं वज्रहस्ता
असाँ इन्द्राग्नी अवतं भरैषु ।
तत्रो मित्रो वरुणो मामहन्तां
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥
॥ ३१९ ॥ (ऋ० १।१२९।२)
परच्छेपो देवेदासिः । अयष्टिः ।
दध्यङ् ह मे जुनुपं पूर्वा अङ्गिराः
प्रियमैधुः कण्वो अग्निर्मनुर्विदुः
ते मे पूर्वं मनुर्विदुः ।
तेषां देवेभ्यार्यति रसाकं तेषु नाभयः ।
तेषां पदेन मह्या नमे गिरा
इन्द्राग्नी आ नमे गिरा ॥ ९ ॥
॥ २०० ॥ (ऋ० ३।१२।१-९)
गाथिनो विश्वामित्रः । गायत्री ।
इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिनभ्यो वरेण्यम् ।
अस्य पातं धियेपिता ॥ १ ॥
इन्द्राग्नी जरितुः सचा युज्ञो जिगाति चेतनः ।
अथा पातमिमं सुतम् ॥ २ ॥
इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जुत्या वृणे ।
ता सोमस्येह तृण्यताम् ॥ ३ ॥
तोशा वृत्रहणा हुवे सुजित्वानापराजिता ।
इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ ४ ॥
प्र वामर्चन्त्युनिधिनो नीथाविदो जरितारः ।
इन्द्राग्नी इप आ वृणे ॥ ५ ॥
इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधुनुतम् ।
साकमेकेन कर्मणा ॥ ६ ॥

इन्द्राग्नी अर्पसस्पर्धुं—प प्र यन्ति धीतयः ।
 ऋतस्य पय्याः अर्तु ॥ ७ ॥
 इन्द्राग्नी तविपाणिं वां सधस्थानि प्रयांसि च ।
 युवोरप्युद्यं हितम् ॥ ८ ॥
 इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूपथः ।
 तद् वां चेति प्र धीर्यम् ॥ ९ ॥
 ॥ ३०१ ॥ (ऋ० ५.१७.७६)
 श्रेष्ठस्वस्वस्वस्व, पौष्टस्वस्वस्वस्व, मरुतोऽध्वमेध राजान.
 (अग्निर्भौम इति केचिद्) । अनुष्टुप् ।
 इन्द्राग्नी शतदान्य—ध्वमेधे सुधीर्यम् ।
 क्षत्रं धारयतं वृहद् दिवि सूर्यमिवाजरम् ॥ ६ ॥
 ॥ ३०० ॥ (ऋ० ५.१८.११-६)
 भौमोऽग्निः । अनुष्टुप्, ६ विराट्पूर्वा ।
 इन्द्राग्नी यमवयं उभा वाजेषु मर्त्यम् ।
 हृद्धा चित् स प्र भेदति घृष्टा वाणीरिव त्रितः १
 या पृतनानु दृष्टरा या वाजेषु श्रयाग्या ।
 या पञ्च चर्षणीरग्नीन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ २ ॥
 तपोरिदमंरुच्छव्यं—स्निग्धा दिव्युन्मघोनोः ।
 प्रति द्रुणा गमस्यो—गर्वा वृत्रघ्न एपते ॥ ३ ॥
 ता घामेपे रथाना—मिन्द्राग्नी हवामहे ।
 पतीं तुरस्य राधमो रिढांसा गिर्वणस्तमा ॥ ४ ॥
 ता युधन्तायनु घ्नन् मर्तीय देवावृदभा ।
 धर्म्ना चित् पुरो द्रुधे—ऽशौच देवायवैते ॥ ५ ॥
 एवेन्द्राग्निभ्यामहायि हृष्यं
 शूर्यं पूतं न पूतमद्रिभिः ।
 ता मूर्ध्नि धर्यो वृहद्
 रयि गुणसु दिघ्नन्—मिर्षे गुणसु दिघ्नतम् ॥ ६ ॥
 ॥ ३०३ ॥ (ऋ० ६.१९.१२-२०)
 वाङ्मय दे आदाः ॥ १९.१, ७-१० अनुष्टुप् ।
 प्र नु धांचा मुनेषु वां धीयोः यानि चमभुः ।
 हतामो वां वितरां देयनीवृ
 इन्द्राग्नी जीर्षयो युवम् ॥ १ ॥

वदित्वा महिमा वां इन्द्राग्नी पर्निष्ट आ ।
 समानो धौ जनिता भारतरा युवं
 यमाविहेहमातरा ॥ २ ॥
 ओक्त्रिवांसां सुते सचां अश्वा सतीं ह्वादेने ।
 इन्द्रा न्वग्नी अयंसह वृजिणां
 वयं देवा हवामहे ॥ ३ ॥
 य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत् तेष्वृतावृषा ।
 जोषवाकं वदतः पञ्जहोपिणा
 न देवा भूसर्यश्चन ॥ ४ ॥
 इन्द्राग्नी को अस्य वां देवो मर्तेश्चिकेतति ।
 विपूर्वो अश्वान युयुजान ईयत्
 एकः समान आ रथे ॥ ५ ॥
 इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात् पृहतीभ्यः ।
 द्विती शिरो जिह्वया वावदध्वरत्
 त्रिंशत् पदा न्यंक्रमीत् ॥ ६ ॥
 इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि वाहोः ।
 मा नो अस्मिन् महाधने परां वक्तं गार्धितेषु ॥ ७ ॥
 इन्द्राग्नी तर्पन्ति मा—ऽघा अयो अरांतयः ।
 अप देपस्यां कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥ ८ ॥
 इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा ।
 आ न हृद् प्र यच्छतं रयि विश्वायुपोपसम् ॥ ९ ॥
 इन्द्राग्नी उपथयाहसा स्तोमंभिर्द्वयनधुता ।
 विश्वाभिर्गाभिरा गत—मस्य सोमस्य पीतये १०
 ॥ ३१४ ॥ (ऋ० ६.१६.०११-१५)
 गायत्री, १-३, १३ त्रिष्टुप्, १४ पृथ्वी, १५ अनुष्टुप् ।
 शर्यद् युप्रमुत संनोति याजं
 इन्द्रा यो धृती सहरा सपुयान् ।
 इत्यगन्तां पत्यस्य भूरेः
 सदर्भन्मा सदर्भन्मा पाङ्गयन्ता ॥ १ ॥

ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नुनं
अपः स्वरूपसौ अन्न ऊब्हाः ।
दिशः स्वरूपसं इन्द्र चित्रा
अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥ २ ॥
आ वृत्रहणा वृत्रहमिः शुभैः
इन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक ।
युवं राधोभिरकवोभिरिन्द्रा - ऽग्ने
अस्मे भवतमुत्तमोभिः ॥ ३ ॥
ता हुवे ययोरिदं पुरे विश्वं पुरा कृतम् ।
इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ ४ ॥
उग्रा विश्वनिना मूर्ध इन्द्राग्नी हवामहे ।
ता नो मृच्छत ईहरो ॥ ५ ॥
हतो वृत्राण्यायो हतो दासानि सत्पती ।
हतो विश्वा अप द्विपः ॥ ६ ॥
इन्द्राग्नी युवामिमं ऽभि स्तोमां अनूपत ।
पियंतं शंभुवा सुतम् ॥ ७ ॥
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुयै नरा ।
इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥ ८ ॥
ताभिरा गच्छतं नरो-पेदे सर्वनं सुतम् ।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ९ ॥
तमीळिष्व यो अञ्चिया वना विश्वां परिष्वजत् ।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १० ॥
य इन्द्र आविवांसति सुन्नमिन्द्रस्य मर्त्यैः ।
द्युन्नार्यं सुतरां अपः ॥ ११ ॥
ता नो वाजं वतीरिषं आदून् पिपृतमर्धतः ।
इन्द्रमग्निं च वोब्धहे ॥ १२ ॥
उमा वांमिन्द्राग्नी आहुवध्यां
उमा राधंसः सुह माद्वयध्वं ।
उमा दातारविषां रथीणां
उमा वाजस्य सातर्यं हुवे वाम् ॥ १३ ॥
आ नो गव्येभिररध्वैः वसव्यैर्दुर्षं गच्छतम् ।

सखाद्यौ देवौ सत्यायं शंभुवं
इन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ १४ ॥
इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः ।
वीतं हव्यान्या गतं पियंतं सोम्यं मधु ॥ १५ ॥
॥ ३५ ॥ (ऋ० ७।९।१-८)
मेत्रावहणिवसिष्ठः । विष्टुप ।
शुचि तु स्तोमं नर्धजातमद्य
इन्द्राग्नी वृत्रहणा जुपेथाम् ।
उमा हि वां सुहवा जोहवीमि
ता वाजं सद्य उंशते धेष्टा ॥ १ ॥
ता सान्नीसी शंभसाना हि भूतं
सांकुवृथा शवसा शशुवांसा ।
क्षयन्तो रायो यवसस्य भूरैः
पूङ्कं वाजस्य स्वाविरस्य वृध्वैः ॥ २ ॥
उपो ह यद् विदथं वाजिनो गुः
धीभिर्विप्राः प्रमंतिमिच्छमानाः ।
अथन्तो न काष्टां नक्षमाणा
इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥ ३ ॥
गीर्भोर्विप्रः प्रमंतिमिच्छमानं
ईदं रयि यदासं पूर्वभाजम् ।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा
प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥ ४ ॥
सं यन्मही मियती स्पर्धमाने
तनुश्चा शरसाता यतैत ।
अद्वयं विदथे देवयुभिः
सत्रा हंत सोमसुता जनेन ॥ ५ ॥
इमामु पु सोमसुतिमुपं न
पन्द्राग्नी सौमननार्यं यातम् ।
नू चिद्धि परिमघार्थं भ्रगमान्
आ वां शश्विर्द्विपृथीय वाजैः

सो अंग्र एना नमसा समिद्धो
 वच्छा मित्रं वरुणमिन्द्रं वोचेः ।
 यत् सोमार्गश्चहृमा तत् सु मृच्छ
 तदर्थमादितिः शिश्नयन्तु ॥ ७ ॥
 एता अंग्र आशयाणालं इष्टी
 युधोः सत्राभ्यर्चयाम वाजान् ।
 मन्द्रो नो विष्णुमरुतः परं रयन्
 ययं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥
 ॥ १०६ ॥ (ऋ० ७।१४.१-१०)
 गायत्री, १२ अक्षरम् ।
 इयं घोमस्य मग्मन् इन्द्राग्नी पुन्यस्तुतिः ।
 अघ्राद् वृष्टिर्गवाजनि ॥ १ ॥
 दृणुतं अरितुर्ह्य-मिन्द्राग्नी वनंत गिरः ।
 इशाना पिब्यते धियः ॥ २ ॥
 मा पापन्यायं नो नरे-न्द्राग्नी माभिर्शस्तये ।
 मा नो रिरधन्त जिदे ॥ ३ ॥
 इन्द्रं अघ्रा नमो बृहत् सुमुक्तिमेरयामहे ।
 प्रिया धेना अघ्न्यरः ॥ ४ ॥
 ता हि दाम्यन्त इच्छन् इत्या निमास ऊतये ।
 सुयाधो पाजंसातये ॥ ५ ॥
 ता र्था गोभिर्विपन्यधुः प्रयम्यन्तो हवामहे ।
 मेधमाता सतिर्यवः ॥ ६ ॥
 इन्द्राग्नी धरुता गत-मग्मभ्यं चरुणीमहा ।
 मा नो दृष्टोमं इनात ॥ ७ ॥
 मा चर्यं नो धारुणो धृतिः प्रणह्मस्वम्य ।
 इन्द्राग्नी शमं यच्छतम् ॥ ८ ॥
 गोमुद्धिरं ययद् धनु यद् धामभ्यां युद्धीमहे ।
 इन्द्राग्नी तद् वनेमदि ॥ ९ ॥
 यम् रंसा भा सुते नर इन्द्राग्नी धर्जोहयुः ।
 सतीषन्ता सपुत्रं ॥ १० ॥

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्वाना चिदा गिरा ।
 आङ्गुरैराविवांसतः ॥ ११ ॥
 ताविद् दुःशंसं मर्यं दुर्विहांसं रक्षस्विनम् ।
 आभोगं हन्मना हत-सुवृधि हन्मना हतम् ॥ १२ ॥
 ॥ ३२७ ॥ (ऋ० ८।१८।१-१०)
 श्यावाश्व आश्रय । गायत्री ।
 यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु ।
 इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ १ ॥
 तोशासां रथयाधाना वृत्रहणापरजिता ।
 इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ २ ॥
 इदं वा मदिरं मध्व-धुञ्जन्नद्रिभिर्नरः ।
 इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ ३ ॥
 जुपेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती ।
 इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ४ ॥
 इमा जुपेथां सर्वता येभिर्हव्यान्युहयुः ।
 इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ५ ॥
 इमां गायत्रवर्तनि जुपेथां सुपुतिं मम ।
 इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ६ ॥
 प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसु ।
 इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ७ ॥
 श्यावाभ्यस्य सुन्वतो ऽग्नीणां दृणुतं हव्यम् ।
 इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ८ ॥
 एया घोमह ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः ।
 इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ९ ॥
 आतं वरुण्यनीवतो-रिन्द्राग्नोरयो वृणे ।
 याभ्यां गायत्रमूचयते ॥ १० ॥
 ॥ ३०८ ॥ (ऋ० ८।४०।१-११)
 नामाहा वाप १ महापात्र, २ वात्री, १२ विष्टम् ।
 इन्द्राग्नी युवं सु नः सहन्ता दाम्यो रुधिम ।
 येनं हृच्छा इमाग्या योऽनु रित् साहित्यमदि
 अगिरवेनैव पात इ-प्रमोनामग्यवे नमं ॥ १ ॥
 (१६९)

नहि वा वृत्रयामहे ऽथेन्द्रमिद् यजामहे
 शर्विष्ठं नृणां नरम् ।
 स नः क्रुदा चिद्वैता गमदा वाजसातये
 गमदा मेघसातये नमन्तामन्यके संमे ॥ २ ॥
 ता हि मध्यं भराणा—मिन्द्राग्नी अधिक्षितः ।
 ता उं कवित्वना कवी पृच्छयमाना सखीयते
 सं धीतमंश्रुतं नरा नमन्तामन्यके संमे ॥ ३ ॥
 अभ्यर्चं नभाकृच—दिन्द्राग्नी यजसां गिरा ।
 ययोर्विभ्रमिदं जगं—दियं द्यौः पृथिवी महि
 उ० पृथ्वी विभ्रतो वसु नमन्तामन्यके संमे ॥ ४ ॥
 प्र ब्रह्माणि नभाकृच—दिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत ।
 या सप्तवृधमर्णवं जिह्वारमपोर्णत
 इन्द्र ईशान ओजसा नमन्तामन्यके संमे ॥ ५ ॥
 अपि वृश्च पुराणघद् व्रततेरिव गुण्णितं
 ओजो द्वासस्यं दम्भय ।
 वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि मंजेमहि
 नमन्तामन्यके संमे ॥ ६ ॥
 यदिन्द्राग्नी जना इमे विह्वयन्ते तना गिरा ।
 असाकैभिर्नृभिर्वयं सांसहामं पृतन्यतो
 वंनुयामं वनुष्यतो नमन्तामन्यके संमे ॥ ७ ॥
 या नु श्वेताववो दिव उचरत उ० द्युभिः ।
 इन्द्रान्योरनु व्रत—मुहाना यन्ति सिन्धवो
 यान्सां वंधादमुञ्चतां नमन्तामन्यके संमे ॥ ८ ॥
 पूर्वोष्टं इन्द्रोपमातयः पूर्वोहृत प्रशस्तयः
 सूनो हिन्वस्य हरिवः ।
 यस्वो वीरस्यापृचो या नु साधन्त नो धियो
 नमन्तामन्यके संमे ॥ ९ ॥
 तं शिशीता सुवृक्तिभि—स्त्वेषं सत्वानमृत्विर्यम् ।
 उतो नु चिद् य ओजसा शुष्णस्याण्डानि भेदति
 जेष्व स्ववैतीरपो नमन्तामन्यके संमे ॥ १० ॥

तं शिशीता स्वध्वरं सुत्यं सत्वानमृत्विर्यम् ।
 उतो नु चिद् य ओहृत आण्डा शुष्णस्य भेदति
 अजैः स्ववैतीरपो नमन्तामन्यके संमे ॥ ११ ॥
 एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो
 मन्धातुवर्द्धिस्वर्द्धवाचि ।
 त्रिधातुना शर्मणा पातमुसान्
 वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १२ ॥
 ॥ ३०९ ॥ (ऋ० १०।१६।११-५)
 प्राजापत्यो यश्मनाशनः, राजयश्मनं वा । त्रिष्टुप्, ५ अद्युप् ।
 मुञ्चामि त्या हविषा जीवनाय कं
 अशातयश्मादुत राजयश्मात् ।
 प्राहिजेप्राह यदि वैतर्देने
 तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ १ ॥
 यदि क्षितायुर्दि वा परेतो
 यदि मृतोरन्तिकं नीत एव ।
 तमा हरामि निष्कृतेरुपस्थाद्
 अस्परिमेने शतशारदाय ॥ २ ॥
 सहस्राक्षेण शतशारदेन
 शतायुषा हविषाहापिमेनम् ।
 शतं यथेमे शरदो नयाति
 इन्द्रो विव्रस्व्य दुरितस्य पारम् ॥ ३ ॥
 शतं जीव शरदो वर्धमानः
 शतं हेमंताञ्छतमु यसंताम् ।
 शतमिन्द्राग्नी संविता वृहस्पतिः
 शतायुषा हविषेणं पुनर्दुः ॥ ४ ॥
 आहापं त्वार्धिदं त्या पुनरागाः पुनर्नव ।
 सर्वोहू सर्वे ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽचिदम् ॥ ५ ॥
 ॥ ३३० ॥ (वा० य० १३।११)
 इन्द्राग्नी अय्ययमाना—मिष्टकां दृष्टन्तं युयम् ।
 पृष्टेन चावापृथिवी अंतरिक्षे च विवाचमे ॥ ११ ॥

॥ ३३१ ॥ (घा० य० १७६४)

उद्गमं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अर्वावृधन् ।
अर्धा सुपत्नानिद्राग्नी मे विपुचीनान्दस्यताम् ६४

॥ ३३२ ॥ (अथर्व० ७१७१-८)

अथवा । त्रिष्टुप्, ५ त्रिपदायां भुरिग्गायत्री, ६ त्रिपदा
प्राजापत्या बृहती, ७ त्रिपदा सामी भुरिग्गायत्री,
८ उपरिष्ठाद्बृहती ।

यदद्य त्वां प्रयति यज्ञे अस्मिन्
होतृश्चिकित्स्वृषणीमहीह ।

ध्रुवमयो ध्रुवमुता शविष्ठ
प्रविद्वान् यज्ञमुप याहि सोमम्

समिन्द्र नो मनसा नेप गोभिः
सं सूरिभिर्हरिवन्त्सं स्वस्त्या ।

सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति
सं देवानां सुमतौ यज्ञिणानाम्

यानावह उशतो देव देवान्
तान् प्रेरय स्वे अग्ने सुधस्यै ।

जज्ञिवांसः पपिवांसो मधूनि
असै धंस वसवो वसूनि

सृगा वीं देवाः सदर्ना अकर्म
य आजग्म सर्वने मा जुषाणाः ।

वर्हमाना भरमाणाः स्वा वसूनि
वसुं धर्मं दिवमा रंहतातुं

यस्य यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ ।
स्वां योनिं गच्छ स्वाहां

एष ते यज्ञो यज्ञपते सहस्रकवाकः ।
सुवीर्यः स्वाहां

वपद्भुतेभ्यो वपद्भुतेभ्यः ।
देवां गानुविदो गानुं पित्वा गानुमित

मनसम्पत इमं नो द्विधि देवेषु यज्ञम् ।
म्वहां द्विधि म्वहां पृथियां

स्वादान्तरिक्षे स्वाहा वाते धां स्वाहा

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ३३३ ॥ (अथर्व० ६।१०४।१-३)

प्रवाचनः । ३ वीम इन्द्रश्च । अनुष्टुप् ।

आदानेन सुदानेना-ऽमित्राना घामानि ।

अपाना ये चैषां प्राणा असुनासुन्त्समच्छिदन् १

इदमादानमकरं तपमेन्द्रेण संशितम् ।

अमित्रा येऽत्र नः मन्ति तानेन आ घा त्वम् २

ऐनान्द्यतामिन्द्राग्नी सोमो राजा च मेदिनी ।

इन्द्रे मरुत्वानादानं-ममित्रैभ्यः कृणोतु नः ३

॥ ३३४ ॥ (अथर्व० ७।१०।१-३)

स्युः । १ गायत्री, २ त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ।

अग्न इन्द्रश्च दाशुषं हतो वृषापर्यप्रति ।

उमा हि वृत्रहन्तमा

याभ्यामजयन्स्वः प्रपुत्रं पुत्र

यावात्स्थतुर्भुवनानि विश्वा ।

प्रचर्षणी वृषणा वज्रवाह

अग्निमिन्द्रं वृत्रहणां हुवेऽहम्

उप त्वा देवो अग्रभी-अमसेन वृहस्पतिः ।

इन्द्रं गोभिर्ने आ विशा यजमानाय सुन्वते ३ ॥

(२) इन्द्रावरुणौ !

॥ ३३५ ॥ (ऋ० १।१७।१-९)

मेधातिथिः काण्वः । गायत्री, ४-५ पादनिचुत् ।

(५ हसीयमी वा) गायत्री ।

इन्द्रावरुणयोरहं सन्नाजोऽख आ वृणे ।

ता नो मृच्छात ईदशे

गन्तारु हि स्योऽवसे हवं विप्रस्य मायतः ।

धर्तारां चर्षणीनाम्

अनुकामं तपेयेथा-मिन्द्रावरुण राय आ ।

ता धां नेदिष्टमिहे

युवाकु हि शचीनां युवाकुं सुमतीनाम् ।

सुयामं वाजुदाताम्

इन्द्रं सहस्रदातां वरुणः शंस्यानाम् ।

ऋतुर्भयत्युक्थ्यः

॥ ५ ॥

(३३३८)

तयोदिदधंसा वयं सनेम नि च धीमहि ।

स्यादुत प्रेरचनम् ॥ ६ ॥

इन्द्रावरुण वामदं हुवे चित्राय राधसे ।

अस्मान्सु जिग्युषस्सहत्म् ॥ ७ ॥

इन्द्रावरुण नू नु वां सिर्षामन्तीषु श्रीष्या ।

अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

प्र वामश्रोतु सुपुति-रिन्द्रावरुण यां हुवे ।

यामुधायै स्रधस्त्वितिम् ॥ ९ ॥

॥ ३३६ ॥ (ऋ० ३।६।११-३)

मामिने विद्यावेत्तः । १-२ विष्णुः ।

इमा उं वां भूमयो मर्त्यमाना

युवावने न तुज्या अभूवन् ।

कः त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां

येन स्मा सिनं भरयः ससिभ्यः ॥ १ ॥

अयमुं वां पुरुतमो रथीयन्

शभ्यत्तममवसे जोहवीति ।

सजोपाधिन्द्रावरुणा मरुद्भिः

दिवा पृथिव्या शृणुत हर्षं मे

अस्मे तदिन्द्रावरुणा चतुं प्यात् ॥ २ ॥

अस्मे रथिर्मरुतः सर्ववीरः ।

अस्मान् वरुवीः शरुणैरवन्तु

अस्मान् द्वौवा भारती दक्षिणामिः ॥ ३ ॥

॥ ३३७ ॥ (ऋ० ३।७।११-११)

वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुभः ।

इन्द्रा को वां वरुणा सुस्रमाप

स्तोमो हविष्मो अमृतो न होता ।

यो वां हृदि कतुमां अस्सदुक्तः

पस्पर्शीदिन्द्रावरुणा नर्मस्यान् ॥ १ ॥

इन्द्रो ह यो वरुणा नृक आपो

देवो मर्तः सख्यायु प्रयस्वान् ।

स हन्ति वृथा संमिथेपु शयुन्

अवोभिवा महद्भिः स प्र शृण्वे

॥ २ ॥

इन्द्रो ह रतं वरुणा धेपु

इत्या नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता ।

यदी सखाया सख्याय सोमैः

सुतेभिः सुप्रयसां मादयंते ॥ ३ ॥

इन्द्रो युवं वरुणा द्विद्युमस्मिन्

ओजिष्ठमुद्रा नि वंधियं वज्रम् ।

यो नो दुरेवो वृकतिर्दमीतिः

तासेन् मिमाथाममिभुत्योजैः ॥ ४ ॥

इन्द्रो युवं वरुणा भूतमस्या

धियः प्रतारार् वृषभेवं धेनोः ।

सा नो दुहीयद् यवंसेव गृत्वी

सहस्रधारा पर्यसा मही गाः ॥ ५ ॥

तोके हिते तनय उर्वरासु

सुरो दशीके वृषणश्च पाँस्वै ।

इन्द्रो नो अय वरुणा स्यातां

अवोभिर्दस्मा परितन्म्यायाम् ॥ ६ ॥

युयामिद्धयवंसे पृथ्याय

परि प्रभृती गविषः स्वापी ।

वृणीमहे सख्याय त्रियाय

दरा महिष्ठा पितरेव शंभू ॥ ७ ॥

ता वां धियोऽधंसे याजयन्तीः

आजि न जग्मुयुवयूः सुदान् ।

ध्रिये न गाव उप सोममस्थुः

इन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥ ८ ॥

इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा

अग्मद्रुप द्रविणमिच्छमानाः ।

उपैमस्थुजोशरं इव यम्यो

रथीरिध अयमो मिश्रमाणः ॥ ९ ॥

अश्व्यम्य तमना रथ्यम्य पुंपुः

नित्यस्य गायः पत्नयः म्याम ।

ता चक्राणा ऊनिमिनंश्यामीनिः

धग्मया राथो नियुनैः मचन्ताम् ॥ १० ॥

आ नो बृहन्ता बृहतीभिर्भूती
इन्द्रं यातं वरुणं वाजस्रसतौ ।
यद् दिद्यवः पृतनासु प्रकीळान्
तस्य वां स्याम सनितारं आज्ञेः

॥ ३१८ ॥ (ऋ० ४।३१।७-१०)

प्रमदस्यः पारुडस्यः । त्रिष्टुप ।

विदुष्टे विश्वा भुव्नानि तस्य
ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः ।
त्वं घृताणि दृण्णिपे जघनान्
त्वं घृतां धरिणा इन्द्र सिन्धून्
असाक्मरं पितरस्त आसन्
मन ऋषयो दार्गहे व्यमानि ।
त आर्यजन्त प्रसदस्युमस्या
इन्द्रं न घृन्तुरमर्धदेवम्
पुरुकुमानी दि वामदाशत्
हृष्येभिर्गिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
यथा राजानं प्रसदस्युमस्या
घृप्रहर्षं ददधुरधदेवम्
राया पयं मंसवांसौ मदेम
हृष्येन देवा यवसेन गार्वः ।
तां धेनुभिर्गिन्द्रावरुणा युवं नो
पिभादा धनुमनेपरुहन्तीम्

॥ ११ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

ता गृणीहि नमस्यैभिः श्रुपैः
सुन्नेभिरिन्द्रावरुणा चक्राना ।
वज्रेणान्यः शर्वसा हन्ति वृद्धं
सिपन्त्यन्यो वृजनेपु विप्रः

॥ ३ ॥

ग्राश्च यज्ञरश्च वावृधन्तु
विश्वे देवासो नरां स्वगूर्ताः ।
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा
द्यौश्च पृथिवि भूतमूर्ध्वी

॥ ४ ॥

स इत् सुदानुः स्वर्धो ऋतावा
इन्द्रा यो वा वरुण दार्शति तमन् ।

इपा स द्विपस्तेद् दास्वान्
वसद् रयि रयिवतश्च जनान्

॥ ५ ॥

यं युवं दार्वध्वराय देवा
रयि धृत्यो वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।

अस्मे स इन्द्रावरुणावपि प्यात्
प्र यो भनाक्ते वनुषामशस्तीः

॥ ६ ॥

उत नः सुश्रात्रो देवगोपाः
सुरिभ्य इन्द्रावरुणा रयिः प्यात् ।

येषां श्रुष्मः पृतनासु साक्षान्
प्र सद्यो घृष्ठा तिरते तनुरिः

॥ ७ ॥

नू न इन्द्रावरुणा गृणाना
पुङ्गं रयिं सौध्वयसाय देवा ।

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य
वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेयाम् ।

इदं वामग्धः परिपिक्तमस्ये

आसद्यासिन् यर्हिपि मात्रेयथाम् ॥ ११ ॥

॥ ३४० ॥ (ऋ० ७।८२।१-२०)

मेघावरुणवैमित्रः । जगती ।

इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो

विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।

दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति

वयं जयेम प्रतनासु वृष्ट्यः

॥ १ ॥

सन्नाह्न्यः स्वराह्न्य उच्यते वां

महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू ।

विश्वे देवास्तः परमे व्योमनि

सं वामोर्जो वृषणा सं वलं दधुः

॥ २ ॥

अन्वपां खान्यवन्तमोजसा

सूर्यमेरयते द्विपि प्रभुम् ।

इन्द्रावरुणा मर्दे अस्य मायिनो

अपिन्वतमपितः पिन्वते धियः

॥ ३ ॥

युयामिद् युत्सु प्रतनासु वहयो

युवां क्षेमस्य प्रसवे मितश्ववः ।

ईशाना वस्य उभयस्य कारय

इन्द्रावरुणा सुहवां हवामहे

॥ ४ ॥

इन्द्रावरुणा यद्रिमानि चक्रधुः

विश्वो जातानि भुवनस्य मृगमना ।

क्षेमैण मित्रो वरुणं दुवम्यति

मृसद्भ्रुप्रः शुभमन्य ईयते

॥ ५ ॥

महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष

ओर्जो मिमाते ध्रुवमस्य यत् स्वम् ।

अजाभिमुन्यः श्वथयन्तमातिरद्

दधेभिन्त्यः प्र वृणोति भूर्यमः

॥ ६ ॥

न तमहो न दुस्तिानि मन्य

इन्द्रावरुणा न तपः कृतश्चन ।

यस्य देवा गच्छथो वीथो अच्यरं

न तं मर्तस्य नशते परिहृतिः

॥ ७ ॥

अर्थाङ्गरा देव्येनावृसा गतं

शृणुतं हवं यदि मे जुजोपथः ।

युवोहिं सुरयमुत वा यदायं

मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम्

॥ ८ ॥

अस्माकमिन्द्रावरुणा भरेभरे

पुरोयोधा भवतं कृष्योजसा ।

यद् वां हवन्त उभये अर्धं स्पृधि

नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु

॥ ९ ॥

असे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा

द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।

अवधं ज्योतिरदितेऋतावृधौ

देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे

॥ १० ॥

॥ ३४१ ॥ (ऋ० ७।८३।१-२०)

युवां नरा पश्यमानान् आय्यं

प्राचा गन्वन्तः पृथुपशीवो ययुः ।

दासां च वृत्रा हृतभार्याणि च

सुदासमिन्द्रावरुणायेसावतम्

॥ १ ॥

यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो

यसिप्राजा भवति किं चन प्रियम् ।

यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्हृदाः

तत्रा न इन्द्रावरुणाधिं वोचतम्

॥ २ ॥

सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अहहृत

इन्द्रावरुणा द्विवि गोष आरुहत् ।

अस्थुजनानामुप मामरातयो

अवागवसा ह्वयनधृता गतम्

॥ ३ ॥

इन्द्रावरुणा वृधनाभिरप्रति

भेदे वृन्वन्ता प्र सुदासमावतम् ।

ब्रह्माण्येयां शृणुतं हर्षामनि

सत्या वृत्त्याममपन् पुरोहितिः

॥ ४ ॥

इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति
 माघान्ययीं वनपामरतयः ।
 युवं हि वस्व उभयस्य राजधो
 अर्धं स्मा नोऽवतं पायै दिवि
 युवां हवन्त उभयांसा आजिपु
 इन्द्रं च वस्वो वरुणं च स्नातये ।
 यत्र राजभिर्दशभिर्निर्वाधितं
 प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह
 दश राजानः समिता अयज्यवः
 सुदासमिन्द्रावरुणा न युपुधुः ।
 सत्या नृणामद्भसशामुपस्तुतिः
 देवा पंपामभवन् देवहृतिपु
 दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः
 सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।
 श्रित्यज्ञो यत्र नमसा कपर्दिनौ
 धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः
 वृत्राण्यन्यः समियेषु जिघ्रते
 वतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।
 हवामहे वां वृषणा सुवृत्किभिः
 असे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम्
 असे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्थमा
 धुन्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
 अवधं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधौ
 देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ।

॥ ३४० ॥ (ऋ० ७।८।१-५) त्रिष्टुप् ।

आ धौ राजानावधरे वृत्त्यां
 हृष्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
 प्र यां घृतायीं यादोर्दधाना
 परि त्मना विपुरुषा जिपाति
 युधो राष्ट्रं बृहद्विन्वति धौः
 यौ सतृभिररज्जुभिः सिनीधः ।

परि नो हेन्द्रो वरुणस्य वृष्या
 उरुं न इन्द्रः वृषणयदु लोकम्
 कृतं नो युधं विदधैषु चारुं
 कृतं ब्रह्माणि सृग्धिं प्रदास्ता ।
 उपौ रयिदैवजुतो न णतु
 प्र णः स्पाहाभिरुतिभिस्तिरेनम्
 असे इन्द्रावरुणा विश्ववारं
 रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुशुम् ।
 प्र य आदित्यो अनृता मिनाति
 अमिता शूरो दयते वरुणि
 ह्यमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः
 प्रावत् तोके तनये तृत्तुजाना ।
 सुरज्ञासो देवधीति गमेम
 युधं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ३४३ ॥ (ऋ० ७।८।१-५)

पुनीवे वामरक्षसं मनीषां
 सोममिन्द्राय वरुणाय जुद्धत् ।
 घृतप्रतीकामुपसं न देवी
 ता नो यामंशुरुष्यतामभीके
 स्पर्धन्ते वा उ देवहृये अत्र
 येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति ।
 युवं तां इन्द्रावरुणावमित्रान्
 हतं पराचः शर्वा विपूचः
 आपश्चिद्धि स्वयंशसः सदैःसु
 देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः ।
 कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता
 वृत्राण्यन्यो अंप्रतीनं हन्ति
 स सुक्रतुर्ऋतचिदैस्तु होता
 य आदित्य शर्वसा वां नमस्वान् ।
 आवचर्तदवसे वां हविष्मान्
 असदित् स सुविताय प्रयस्वान्

॥ ४ ॥
 (३१००)

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः
 प्रार्थत् तोक्रे तनये त्रुतुजाना ।
 सुरक्षांसो देवर्थाति गमेम
 युयं पात स्वस्तिभिः सर्दा नः
 ॥ ३४४ ॥ (अ० ८।५९।१-७)
 उपर्णः ऋषिः । जगती ।

इमानि वां भागधेयानि सिञ्चत
 इन्द्रावरुणा प्र महे सुतेषु वाम् ।
 यज्ञेयहे ह सर्वना भुरण्यथो
 यत् सुन्वते यजमानाय शिक्षथः
 निष्पिध्वरीरोपधीरापं आस्तां
 इन्द्रावरुणा महिमानमाशत ।
 या सिञ्चतु रजसः पारे अध्वनो
 ययोः शमुनेकिरादेव ओहते
 सुत्यं तदिन्द्रावरुणा कुरास्यं वां
 मध्ये जुर्मिं दुहते सुत वाणीः ।
 तामिर्धाभ्यांसमवतं शुभस्पती
 यो वामदंष्ट्रो अभि पाति चित्तिभिः
 घृतप्रुयः सौम्यां जीरदानवः
 सुत स्वसांरः सर्देन ऋतस्यं ।
 या ह वामिन्द्रावरुणा घृतधृतः
 तामिर्धत्तं यजमानाय शिक्षतम्
 अर्वाचाम महते सामंगाय
 सुत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिन्द्रियम् ।
 अस्मान् त्विन्द्रावरुणा घृतधृतः
 त्रिभिः सातोभिरयतं शुभस्पती
 इन्द्रावरुणा यदपिभ्यो मनीषां
 याचो मति धृतमदत्तमम्रे ।
 यानि म्यानांन्यसृजन्त धीरां
 युसं तन्यानास्तर्पसाभ्यर्पयम्
 इन्द्रावरुणा सोमनसमदत्तं
 सुयस्योयं यजमानेषु धत्तम् ।

प्रजां पुष्टि भूतिमस्माहः धत्तं
 दीर्घायुत्याय प्र तिरते न आयुः ॥ ७ ॥
 ॥ ३४५ ॥ (वा० य० ८।३७) त्रिष्टुप् यजुन्ता ।
 ॥ ५ ॥ इन्द्रश्च सुम्राड् वरुणश्च राज्ञा
 तौ ते मध्वं चक्रतुरग्रंस्पृतम् ।
 तयोः सहमनुं भक्षं मंथयामि वान्देवी
 जुपाणा सोमस्य तृप्यत सह प्राणेन स्वाहा ॥३७॥

(३) इन्द्र-वायू ।

॥ १ ॥ ॥ ३४६ ॥ (अ० १।५।४-६)
 मधुच्छन्दा वैशामित्रः । गायत्री ।
 इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम् ।
 इन्द्रयो वामुशान्ति हि ॥ ४ ॥
 ॥ २ ॥ वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीयस् ।
 तावा यांतमुपं द्रुवत् ॥ ५ ॥
 वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यांतमुपं निष्कृतम् ।
 ॥ ३ ॥ महिवदुत्था धिया नरा ॥ ६ ॥
 ॥ ३४७ ॥ (अ० १।२।१-३)
 मेधातिथिः कणः । गायत्री ।
 उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे ।
 अस्य सोमस्य पीतये ॥ २ ॥
 इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा द्यन्त जुतये ।
 सहस्राक्षा धियस्पती ॥ ३ ॥
 ॥ ५ ॥ ॥ ३४८ ॥ (अ० १।२।५।४-८)
 परशुमे देवोदाधि । अत्यष्टि, ७-८ अष्टिः ।
 आ यां रथो नियुत्वान् यक्षदर्यते
 अभि प्रयोमि सुधितानि वीतये
 वार्यो हव्यानि पीतये ।
 ॥ ६ ॥ पियं मथ्यो अन्धसः पूर्वपेयं दि यो हितम् ।
 वायवा चन्द्रेण राघसा गतं
 इन्द्रश्च राघमा गतम् ॥ ४ ॥

आ वां धियो वच्युरध्वरो उष इमिन्दु मर्जन्त वाजिनै आशुमत्यं न वाजिनम् । तेषां पिवतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या । इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युधम् ॥ ५ ॥ इमे वां सोमां अप्स्वा सुता इह अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वार्यो शुक्रा अयंसत । एते वामभ्यस्तक्षत तिरः पवित्रमाशवः । युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमांसो अत्यव्यया अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र प्रावा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् । वि सूनृता ददृशे रीर्यते घृतम् आ पुर्णया नियुता याथो अध्वरं इन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥ अत्राह तद् वहेथे मध्व आहुतिं यमभ्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवो अस्मे ते संन्तु जायवः । साकं गायः सुधेते पच्येते यवो न ते वायु उषं दस्यन्ति धेनवो नार्षं दस्यन्ति धेनवः ॥ ८ ॥ ॥ ३४९ ॥ (ऋ० २।४१।३) श्वत्समदः शौनकः । गायत्री । नुक्रस्याद्य गवांशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः । आ यातं पियतं नरा ॥ ३ ॥ ॥ ६५० ॥ (ऋ० ४।४३।९-७) वामदेवो गौतमः । गायत्री । नुतेनां नो अभिर्षिभिर्नियुत्वो इन्द्रसारथिः । वार्यो सुनस्यं नृम्पतम् ॥ २ ॥	आ वां सुदस्यं हरय इन्द्रवायू अमि प्रयः । वहन्तु सोमपीतये ॥ ३ ॥ रथं हिरण्यवच्युर—मिन्द्रवायू स्वध्वरम् । आ हि म्याथो दिविस्पृशम् ॥ ४ ॥ रथेन पृथुपार्जसा दाभ्वांसुमुषं गच्छतम् । इन्द्रवायू इहा गतम् ॥ ५ ॥ इन्द्रवायू अयं सुत—स्तं देवेभिः सजोपसा । पियतं दाशुषो गृहे ॥ ६ ॥ इह प्रयाणमस्तु वा—मिन्द्रवायू विमोचनम् । इह वां सोमपीतये ॥ ७ ॥ ॥ ३५१ ॥ (ऋ० ४।४७।९-४) अत्रुष्टुप । इन्द्रश्च वायवेपां सोमानां पीतिर्मह्यः । युवां हि यन्तीन्द्रवो निम्नमापो न सुध्वर्यक् ॥ २ ॥ वायुचिन्द्रश्च शुष्मिणां सूर्यं शवसस्पती । नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥ ३ ॥ या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । अस्मे ता यज्ञवाहसे—न्द्रवायू नि रच्छतम् ॥ ४ ॥ ॥ ३५२ ॥ (ऋ० ५।११।४, ६-७) श्वस्त्यात्रेयः । गायत्री; (६, ७) वणिकः । अयं सोमश्चमू सुतो ऽमत्रे परि पिच्यते । प्रिय इन्द्राय चायवे ॥ ४ ॥ इन्द्रश्च वायवेपां सुतानां पीतिर्मह्यः । ताञ्जुपेयामरेपसावमि प्रयः ॥ ६ ॥ सुता इन्द्राय वायवे सोमांसो दध्याशिरः । निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽमि प्रयः ॥ ७ ॥ ॥ ३५३ ॥ (ऋ० ७।९०।१-७) मैत्रावर्षिर्बसिष्ठः । त्रिष्टुप । ते सत्येन मनसा दीर्घान्ताः स्वेन युक्तासुः क्रतुना वहन्ति । इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वां ईशानयोराभि पृक्षः सचन्ते ॥ ५ ॥
--	---

इशानासो ये दधते स्वर्णो
 गोभिरथैर्भिर्यसुभिर्हिरण्यैः ।
 इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुः
 अर्थेद्भिर्वीरैः पृतनासु सद्युः
 अर्थेन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा
 इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
 वाजयन्तः स्वर्षसे ह्येवम
 युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः
 ॥ ३५४ ॥ (ऋ० ७।९।१२, ४-७)
 उशन्तां दृता न दमाय गोपा
 मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वाः ।
 इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वीमियाना
 माडीकमींष्ट्रे सुवितं च न चर्व्यम्
 यावत् तरस्तन्थोऽु यावदोजो
 यावन्नरश्चक्षसा दीर्घ्यानाः ।
 शुचि सोमं शुचिपा पातमस्मे
 इन्द्रवायु सदैतं वहिरेदम्
 नियुवाना नियतः स्पर्हवीरा
 इन्द्रवायू सूरथं यातमर्वाक् ।
 इदं हि वां प्रभृतं मघो अग्रं
 अर्थे प्रीणाना वि मुमुक्षुमस्मे
 या वां शतं नियतो याः सहस्रं
 इन्द्रवायू विश्ववीराः सचन्ते ।
 आभिर्यातं सुविदत्रामिर्वाक्
 पातं नरा प्रतभृतस्य मघ्यः
 अर्थेन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा
 इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
 वाजयन्तः स्वर्षसे ह्येवम
 युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः
 ॥ ३५५ ॥ (ऋ० ७।९।१२, ४)
 प्र सोतां जीरो अयुरेवम्यात्
 सोममिन्द्राय धायवे पियर्ष्ये ।

प्र यद् वां मघो अग्रियं भरन्ति
 अध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः
 ॥ २ ॥
 ये वायवं इन्द्रमार्दनासु
 ॥ ६ ॥
 आर्देवासो नितोशनासो अयः ।
 घ्नन्तो वृत्राणि सुरिभिः प्याम
 सासद्वांसो युधा नृभिरमिश्रान्
 ॥ ४ ॥
 ॥ ३५६ ॥ (वा० य० ३३।८६)
 ॥ ७ ॥
 इन्द्रवायू सुसुन्दशा सुहवेह हवामहे ।
 यथा नः सर्व इज्जनोऽनमीवः
 सुहमे सुमनाऽअसत्
 ॥ ८६ ॥
 ॥ ३५७ ॥ (अथर्व० ३।२०।६) वसिष्ठः । पय्यापृक्तिः ।
 ॥ २ ॥
 इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे ।
 यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असद्
 दानकामश्च नो भुवत्
 ॥ ६ ॥
 (४) इन्द्र-मरुतश्च ।
 ॥ ४ ॥
 ॥ ३५८ ॥ (ऋ० १।६।५, ७)
 मघुच्छन्दा वैशामिनः । गायत्री ।
 वीळु चिदारजत्तुमि-गुंदां चिदिन्द्र वदिभिः ।
 अविन्द उन्निया अमुं
 ॥ ५ ॥
 ॥ ५ ॥
 इन्द्रेण सं हि दक्षसे संजग्मानो अविभ्युपा ।
 मन्दु संमानवर्चसा
 ॥ ७ ॥
 (५) मरुत्वानिन्द्रः ।
 ॥ ६ ॥
 ॥ ३५९ ॥ (ऋ० १।६।३-३)
 मेघालिपिः काशः । गायत्री ।
 मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये ।
 सज्गुणैर्न वम्पनु
 ॥ ७ ॥
 ॥ ७ ॥
 इन्द्रज्येष्ठा मरुद्रणा देवांसुः पूररातयः ।
 विभ्ये मम धुता हव्यम्
 ॥ ८ ॥
 हत वृत्रं सुदानय इन्द्रेण सदैसा युजा ।
 मा नो दुन्दोसं रदान
 ॥ ९ ॥
 (३६०)

॥ ३६० ॥ (ऋ० ११६५।१-१५)

इन्द्रः, ३, ५, ७, ९ मरुतः, १३-१५ अगस्त्यो
मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

कया शुभा सर्वयसुः सर्नीळाः
समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः ।
कया मती कुत एतास एते
अर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसुया
कस्य ब्रह्माणि जुजुपुर्युवानः
को अघ्वरे मरुत आ ववर्त ।
श्येनाँ इव धजंतो अन्तरिक्षे
केन महा मनसा रीरमाम
कुतस्त्वमिन्द्र माहिन्ः सन्
एको यासि सत्पते किं त इत्या ।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैः
घोचेस्तत्रो हरिखो यत् तं अस्मे
ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासुः
शुष्मं इयति प्रभृतो मे अद्रिः ।
या शासते प्रति हर्यन्युक्था
इमा हरीं घहतस्ता नो अच्छे
अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः
स्वक्षेत्रेभिस्तन्युः शुभ्रमाणाः ।
महोभिरेतौ उप युग्महे नु
इन्द्रं स्वधामनु दि नो वभूय
कः न्या यो मरुतः स्वधासीद्
यन्मामेवं समधत्तादित्ये ।
अहं तु प्रमर्षिपरस्तुर्विष्मान्
विभ्यंस्य शशोर्नमं यध्ननः
भूरि चकधं युज्येभिरग्ने
मंमानेभिर्युग्म पाँस्वैभिः ।
भूर्गीणि दि कृणवांमा शयिष्ठ
इन्द्र प्रत्या मरुतो यद् यशां

वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण
स्वेन भाभेन तयिषो वंभुवान् ।
अहमेता मनवे विश्वश्रन्द्राः
सुगा अपश्रंकर वज्रवाहुः ॥ ८ ॥
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्तुं
न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।
॥ १ ॥ न जायमानो नशते न जातो
यानि करिष्या रुणुहि प्रवृद्ध
॥ ९ ॥ एकस्य चिन्मे विभ्वः स्वोजो
या नु दधृष्वान् कृण्वै मनीषा ।
॥ २ ॥ अहं ह्युग्रो मरुतो विदानो
यानि च्यवमिन्द्र इदाँश एषाम् ॥ १० ॥
अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र
यन्मै नरः श्रुत्यं प्रहो चक्र ।
॥ ३ ॥ इन्द्राय वृष्णे सुमंखाय महं
सत्ये सपायस्तन्वै तनूमिः ॥ ११ ॥
पूवेदेते प्रति मा रोचमाना
अनेद्यः श्रव एषो वर्धनाः ।
॥ ४ ॥ संन्नश्या मरुतश्चन्द्रवर्णा
अच्छान्त मे छुदयाथा च नुनम् ॥ १२ ॥
को न्वत्र मरुतो मामहे वः
प्र यातन सखीरच्छा सपायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त
॥ ५ ॥ एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥ १३ ॥
आ यद् दुषस्याद् दुवसे न कारः
अस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेघा ।
ओ पु वचं मरुतो विप्रमच्छ
॥ ६ ॥ इमा ब्रह्माणि जरिता घो अर्चत्
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीः
मान्द्वार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा याँसीष्ट तन्वै ययां
॥ ७ ॥ विद्यामेपं पूजनं जीरदाँनुम् ॥ १५ ॥
(११६४)

॥ ३२१ ॥ (ऋ० १।१७।३-६)

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

स्तुतासौ नो मरुतो मृळयन्तु
उत स्तुतो मधवा शर्मविष्टः ।
ऊर्ध्वा नः सन्तु क्रोम्या वनानि
अहानि विश्वा मरुतो जिगीषा
असादृहं तंविषादीर्षमाण
इन्द्राद् भिया मरुतो रेजमानः ।
युष्मभ्यं हृष्या निर्दिशान्यासन्
तान्यारे चक्रुमा मृळता नः
येन मानासक्षितयन्त उन्ना
व्युष्टिषु शर्षसा शर्षतीनाम् ।
स नो मरुद्विर्वृषम् श्रवो धा
उग्र उप्रेभिः स्यधिरः सहोदाः
त्वं पाहीन्द्र सहोयसो नृन्
मवा मरुद्विरर्षयातहेष्ठाः ।
सुप्रक्तेभिः सासदिर्धानो
विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम्

(६) इन्द्रामरुतो ।

॥ ३६२ ॥ (ऋ० ८।९६।१४)

भिरधीराङ्गिरसो, वृतानो वा मातः । त्रिष्टुप् ।

दृप्समपदयं विपुणे चरन्तं
उपहरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नमो न कृष्णमघतस्थिवांसं
इष्यामि घो वृषणो युष्यताजा

(७) इन्द्रामोमौ ।

॥ ३६३ ॥ (ऋ० ९।३०।६)

गृधमदः शोनकः । त्रिष्टुप् ।

प्र हि कर्तुं पृहयो यं वन्तुघो
रुधस्यं स्थो यजमानस्य घोदी ।

इन्द्रासोमा युवमसाँ अविष्टं
असिन् भयस्यं कृणुतमु लोँकम्

॥ ६ ॥

॥ ३६४ ॥ (ऋ० ६।७२।१-५)

बाहंस्यो मद्राजः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रासोमा महि तद् वाँ महित्वं
युवं महानि प्रथमानि चक्रयुः ।
युवं सूर्यं विविदयुषुचं स्वः
विभ्या तमाँस्यहतं तिदश्च

॥ ३ ॥

॥ १ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

इन्द्रासोमा वासयथ उपासं
उत् सूर्यं नययो ज्योतिषा सुह ।
उप धां स्कम्भयुः स्कम्भनेन
अप्रथतं पृथिर्वीं मातरं वि

॥ २ ॥

इन्द्रासोमावाहिमपः परिष्टां
हृथो वृत्रमनुं वां धौरमन्यत ।
प्राणीँस्यैरयतं नदीनां
आ संमुद्राणि पप्रथुः पुरूणि

॥ ३ ॥

इन्द्रासोमा पृकामास्वन्तः
नि गवामिद् दधयुर्वक्षणासु ।
जगुमयुरनपिनद्रमासु
रुशंसिप्रासु जगतीष्यन्तः

॥ ४ ॥

इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरयं
अपत्यसाचं श्रुत्वं रराधे ।
युचं शुष्पं नयं चरपिभ्यः
सं विव्ययुः पृतनापार्हमप्रा

॥ ५ ॥

॥ ३६५ ॥ (ऋ० १०।८९।५)

रेजुर्वेषामेजः । त्रिष्टुप् ।

आपान्तमन्युस्तूपलप्रममाँ
धुनिः शिमीवाञ्जलमौ ऋजीपी ।
सोमो विश्वान्यतमा वनानि
नावाँगिन्द्रं प्रतिमानानि देसुः

॥ ५ ॥

॥ ३६६ ॥ (ऋ० १०।१२४।९)
 अमिः (ओमिन्द्रो) । त्रिष्टुप् ।

वीभत्सुनां सुयुजं हंसमाहुः

अपां दिव्यानां सुत्ये चरन्तम् ।

अनुष्टुभमनु चर्चर्यमाणं

इन्द्रं नि चिन्त्युः कथयौ मनीषा

॥ ९ ॥

॥ ३६७ ॥ (अथर्व० ८।४।१-२५)

चातनः । अथर्वो, ८-१४, १६-१७, १९, २२, २४ त्रिष्टुप्,
 २०, २३ भुरिक्; २५ अनुष्टुप् ।

इन्द्रांसोमा तपतं रक्षं उञ्जतं

न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।

परं शूणीतमचितो न्योपितं

हृतं नुदेयां नि शिशीतमत्विर्णः

॥ १ ॥

इन्द्रांसोमा समघर्शंसमभ्युद्यं

तपुर्षयस्तु चक्रुस्त्रिमां इव ।

प्रदाद्विषं क्रव्यादं घोरचक्षसे

द्वेषो घत्तमनयायं किमीदिने

॥ २ ॥

इन्द्रांसोमा दुष्कृतो वप्रे अन्तः

अनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।

यतो नैषां पुनरेकंश्चनोदयत्

तजामस्तु सहसे मन्युमच्छर्वः

॥ ३ ॥

इन्द्रांसोमा घृतयंतं दिवो वधं

सं पृथिन्या अघर्शामाय तर्हणम् ।

उत्तंक्षतं स्ययं पर्वतेभ्यो

येन रक्षो वायुपानं निजूर्वधः

॥ ४ ॥

इन्द्रांसोमा घृतयंतं दिवस्परि

अश्रितमेनिषुंघमदमं हन्मनिः ।

तपुर्षधेमिर्जरेभिस्त्रिणो

नि पर्शानि विष्यन्ते यन्तु निस्सुरम्

॥ ५ ॥

इन्द्रांसोमा परिं वां भूतु विभ्वर्त

इयं मतिः वृश्याभ्येव याजिनां ।

यां यां होरा परिहिनोमि मेधया

इमा प्रदाणि नृपती इय जिन्यतम्

॥ ६ ॥

प्रति स्मरेथां तुजयद्विरेवैः

हृतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।

इन्द्रांसोमा दुष्कृते मा सुगं भुद्यो

मा कदा चिदभिदासति द्रुहुः

॥ ७ ॥

यो मा पाकेन मनसा चरन्तं

अभिचप्रे अनृतेभिर्वचोभिः ।

आप इव काशिना संगृभीता

असन्नस्वासत इन्द्र वक्ता

॥ ८ ॥

ये पाकशंसं विहरन्तं पवैः

ये वा भुद्रं दृषयन्ति स्वधामिः ।

अहये वा तान्प्रददातु सोम

आ वा दधातु निश्चुतेरुपस्यं

॥ ९ ॥

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने

अश्वानां गवां यस्तनूनाम् ।

रिपु स्तेन स्तेयकृद्भ्रमेतु

नि प हीयतां तन्वां तु तनां च

॥ १० ॥

परः सो अस्तु तन्वां तु तनां च

तिघ्नः पृथिवीरयो अस्तु विश्वाः ।

प्रति शुप्यतु यदो अस्य देवा

यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम्

॥ ११ ॥

सुविपानं चिंक्रितुषु जनाय

सचासंघं वचसी पस्पृधाते ।

तयोर्यत्सत्यं यंतरदजीयः

तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत्

॥ १२ ॥

न वा उ सोमो वृजिनं हिंनोति

न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।

हन्ति रक्षो हन्त्यासुददन्तं

उमाविन्द्रस्य प्रसिंता शयाते

॥ १३ ॥

यदिं घाहमनृतदयो अरिम्

मोर्षं या देवां अण्युहे अग्ने ।

किमस्मभ्यं जातयेदो एणीषे

द्रोणयान्स्ते निश्चुद्यं संचन्ताम्

॥ १४ ॥

(२९६)

अथा मुनीय यदि यातुधानो अस्मि
यदि वायुस्तप पूरुषस्य ।
अथा स धीरैर्दशमिर्वि यूया यो
मा मोघं यातुधानेत्याह
यो मायातुं यातुधानेत्याह
यो वा रुधाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता धेनु
विश्वस्य जन्तोरेधमस्यदीष्ट
प्र या जिगाति खर्गलेधु नक्तं
अपं द्रुहुस्तन्यं गृहमाना ।
व्यमनन्तमव सा पदीष्ट
प्रावाणो प्रन्तु रक्षसं उपवैः
वि तिष्ठध्वं मरुतो विश्वीकुच्छतं
गृभायतं रक्षसः सं पिनष्टन ।
धयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तमिः
ये वा रिपो दधिरे देवे अच्यरे
प्र धर्तय दिवोऽदमानमिन्द्र
सोमंशितं मधवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तो अपाक्तो अधराहुदक्तोऽ
अभि जेहि रक्षसः पथैतेन
एत उ ह्ये पतयन्ति श्वयातव
इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं
नुनं खजदशानि यातुमद्भ्यः
इन्द्रो यातुनामभवत्पराशरो
हविर्मथीनामभ्याकुविवांसताम् ।
अमीहुं शक्रः परदार्यया वनं
पार्थिव मिन्द्रन्स्तत पंतु रक्षसः
उल्कयातुं शुशुल्कयातुं
जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णायातुमुत गृध्रयातुं
हृपदैव प्र मृण रक्ष इन्द्र

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

॥ १९ ॥

॥ २० ॥

॥ २१ ॥

॥ २२ ॥

मा नो रक्षो अभि नञ्यातुमावत्
अपोच्छन्तु मिथुना ये किमीदिनः ।

पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसो

अन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान्

इन्द्रं जहि पुमानं यातुधानं

उत खियं मायया शार्शदानाम् ।

विभीवासो मूर्देवा ऋदन्तु

मा ते इशन्तुसूर्यमृचरन्तम्

प्रति चक्ष्वि चक्ष्वेन्द्र—अ सोम जागृतम् ।

रक्षोभ्यो वधमस्यत—मशानि यातुमद्भ्यः ॥ २५ ॥

(८) इन्द्राविष्णू ।

॥ ३६८ ॥ (ऋ० १।१५।१-३)

दीर्घमा औचथ्य । जगती ।

प्र वः पान्तमन्धसो धियायते

महे शूराय विष्ण्वि चार्चत ।

या सानुनि पर्वतानामदाभ्या

महस्तस्यतुस्वैतेव साधुना

त्वेपमित्या समरणं शिर्मायतोः

इन्द्राविष्णु सुतपा वामुदयति ।

या मत्याय प्रतिधीयमानमित्

कृदानोस्तुरसनामुदयथः

ता ई वर्धन्ति मह्यस्य पांस्यं

नि मातरां नयति रेतने भुजे ।

दधाति पृथोऽधरं परं पितुः

नामं तृतीयमर्धं रोचने दिवः

॥ ३६९ ॥ (ऋ० ६।३९।१-८)

वर्धस्त्वो मरदात्रः । प्रिष्टप् ।

सं धां कर्मणा समिग हिन्दोमि

इन्द्राविष्णु अपसस्पारे व्रस्य ।

जुपेयां यसं द्रविणं च धत्तं

अरिपैनः पथिभिः पारयन्ता

॥ १ ॥

(३३०६)

या विश्वासां जनितारा मतीनां
 इन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना ।
 प्र वां गिरः शस्यमाना अबन्तु
 प्र स्तोमासो गीयमानासो अकः
 इन्द्राविष्णू मदपती मदानां
 आ सोमै यातं द्रविणो दधाना ।
 सं वामञ्जन्वक्तुभिर्मतीनां
 सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः
 आ वामश्वासो अभिमातिपाह
 इन्द्राविष्णू सधमादो वदन्तु ।
 जुपेथां विश्वा हवना मतीनां
 उप ब्रह्माणि शृणुतं गिरौ मे
 इन्द्राविष्णू तत् पनयाव्यं वां
 सोमस्य मदं उरु चक्रमाथे ।
 अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयो
 अप्रथतं जीवसे नो रजांसि
 इन्द्राविष्णू हविषा वावृधाना
 अप्राहाना नमसा रातहृत्वा ।
 घृतासुती द्रविणं घत्तमस्मे
 संमुद्रः स्यः कलशः सोमधानः
 इन्द्राविष्णू पिवतं मध्वो अस्य
 सोमस्य दद्या जुष्टं पूणेत्याम् ।
 आ वामश्वासि मदिरार्यगम्
 उप ब्रह्माणि शृणुतं हयं मे
 उमा जियैर्युर्न परां जयेथे
 न परां जिये कतरञ्चनैर्नोः ।
 इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृशेथां
 त्रेधा सहस्रं वि तदैर्येत्याम्

॥ १७० ॥ (ऋ० ७ ११४-६)

मैत्रायणवैश्विष्टः । त्रिष्टुप् ।

उरुं यज्ञायं चक्रथुगं लोकं
 जनयन्ता मूर्धम्याममंतिम् ।

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

दामस्य चिद् घृणानिप्रस्यं माया
 जुगर्थुर्नरा पृतनाज्येषु
 इन्द्राविष्णू दंहिताः शर्मरस्य
 नव पुरो नवति च श्रथिष्टम् ।
 शतं वसिनः सहस्रं च साकं
 हृयो अप्रत्यसुरस्य घोरान्
 इयं मनीषा वृहती वृहन्तं
 उरुक्रमा तवसां वर्धयन्ती ।
 ररे वां स्तोमै विदथेषु विष्णो
 पिवन्तमिषो वृजनैपिन्द्र

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

(९) इन्द्रावृहस्पती ।

॥ ३७१ ॥ (ऋ० ४।४२।१-६)

वामदेवो गौतमः । गायत्री ।

इदं वामास्ये हविः प्रियामिन्द्रावृहस्पती ।
 उक्थं मदश्च शस्यते
 अयं वां परि पिच्यते सोमं इन्द्रावृहस्पती ।
 चारमवाय पीतये
 आ न इन्द्रावृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
 सोमपा सोमपीतये
 अस्मे इन्द्रावृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम् ।
 अश्वावन्तं सहस्रिणाम्
 इन्द्रावृहस्पती वयं सुते गीभिर्दिवामहे ।
 अस्य सोमस्य पीतये
 सोममिन्द्रावृहस्पती पिवतं दाशुषो गृहे ।
 मादयेथां तदोक्ता

॥ ३७२ ॥ (ऋ० ४।५०।१०-११)

त्रिष्टुप्, १० जगती ।

इन्द्रश्च सोमं पिवतं वृहस्पते
 अस्मिन् युगे मन्दसाना वृषण्यसू ।
 वा वां विशन्तिवन्दवः स्वामुषो
 अस्मे रयिं सर्वथोरं नि यच्छतम्

॥ १० ॥

(३२१९)

वृहस्पत इन्द्र वर्धत नः
 सचा सा वा सुमतिर्भूत्वस्मे ।
 अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः
 जजस्तमयो वनुपामरातीः ॥ ११ ॥
 ॥ ३७३ ॥ (ऋ० ७, ९७-९८।१०, २)
 मैत्रावरुणिवंशियः । त्रिष्टुप् ।

वृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्रो
 दिव्यस्येदाथे उत पार्थिवस्य ।
 धत्तं एयं स्तुवते कीर्यं चिद्
 युयं पात स्वास्तभिः सर्दा नः ॥ ७ ॥
 ॥ ३७४ ॥ (ऋ० ८।९६।१५)
 तिरश्चाराङ्गिरशो, युतानो वा मातः । त्रिष्टुप् ।

अधं द्रष्टो अंशुमत्या उपस्ये
 अधारयत् तर्भ्वं तित्विपाणः ।
 विशो अदेधीरभ्याश्चरन्तीः
 वृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ १५ ॥

(१०) देव-भूमि-वृहस्पतीन्द्राः ।

॥ ३७५ ॥ (ऋ० ६।४७।२०) गर्गो मारुद्वाजः । त्रिष्टुप् ।
 अगव्युति क्षेत्रमार्गन्म देवा
 उवीं सती भूमिरह्रणाभूत् ।
 वृहस्पते प्र चिकित्सा गर्विष्ठा
 इत्या सते जरित्र इन्द्र पन्याम् ॥ २० ॥
 ॥ ३६६ ॥ (अथर्व० ७।५।११) अजिराः । त्रिष्टुप् ।

वृहस्पतिर्नः पारं पातु पश्चात्
 उतोत्तरस्मादधरादघ्रायोः ।
 इन्द्रः पुरस्तादुत मंग्यनो नः
 सर्गा सर्गिभ्यो परीयः कृणोतु ॥ १ ॥
 ॥ ३७७ ॥ (अथर्व० १०।१३।१) अगनी ।

इन्द्रश्च सोमं पियतं वृहस्पते
 असिन्युगे मन्दसाना वृषण्वस् ।
 वा वां विशान्विन्द्रवः स्यामुयोऽस्मे
 रपि सर्ववीरं नि र्यच्छतम् ॥ ३३ ॥

(११) इन्द्रापूपणौ ।

॥ ३७८ ॥ (ऋ० ६।७७।१-६)
 वाईस्पसो मारुद्वाजः । गायत्री ।

इन्द्रा नु पूपणा वयं सुरयार्य स्वस्तये ।
 हुधेम चार्जसातये ॥ १ ॥
 सोममम्य उपांसदत् पातये च्चव्वाः सुतम् ।
 करम्मम्य इच्छति ॥ २ ॥
 अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य संभृता ।
 ताभ्यां वृत्राणि जिघ्रते ॥ ३ ॥

यदिन्द्रो अनेयद्रितो महीरूपो वृषन्तमः ।
 तत्र पूपामवत् सचा ॥ ४ ॥
 तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वृयामिव ।
 इन्द्रस्य चा रमाग्दे ॥ ५ ॥
 उत् पूष्णं युवामहे ऽभीर्दूरिव सारथिः ।
 महा इन्द्रं स्वस्तये ॥ ६ ॥

॥ ३७९ ॥ (अथर्व० ६।३।१)
 अपवा । पथ्या वृती ।

पात न इन्द्रापूपणा—ऽदितिः पान्तुं मदनः ।
 अपां नपात्सिन्धवः सप्त पान्तु
 पान्तु नो विष्णुंरुत धीः ॥ १ ॥

(१२) ऋणं च येन्द्रा ।

॥ ३८० ॥ (ऋ० ७।३०।१०-१५)
 वृत्राण्डः । त्रिष्टुप् ।

मद्रमिदं रुजनी अत्रे अरुत्
 गर्वा च्चवति इदं वः सद्वा ।
 ऋणं च येन्द्रा नृयानि
 अन्वयन्तु नृदमम्य नृनाम् ।
 सुवर्णं च येन्द्रा सुवन्दम्यं
 गर्वा सद्वा रुजनीयो अत्रे ।
 इन्द्रा इन्द्रममनतुः सुवर्णं
 अन्वयन्तु पतिदमनतुः

औच्छत् सा रात्री परितम्भ्या याँ
 ऋणंचये राजनि रुशमानाम् ।
 अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो
 यभुञ्चत्वार्थसनत् सहस्राँ
 चतुः सहस्रं गव्यस्य पश्वः
 प्रत्यग्रभीष्म रुशमेवघ्रे ।
 घर्मश्चित्त ततः प्रवृजे य आसीत्
 अयस्यस्तम्बाद्रामं चिप्राः

(१३) इन्द्र ऋभवश्च ।

॥ ३८१ ॥ (ऋ० ३।६०।५-७)
 विश्वामित्रो गाधिन । जगती ।

इन्द्रं ऋभुमिर्वाजवाद्भिः समुक्षितं
 सुतं सोममा वृषस्त्वा गमस्त्योः ।
 धियोपितो मधवन् दाशुर्षो गृहे
 सौधन्वनेभिः सह मत्स्या नृभिः
 इन्द्रं ऋमुमान् वाजवान् मत्स्येह नो
 अस्मिन् त्सर्वेने शक्या पुरुषुत ।
 इमानि तुभ्यं स्वसंराणि येभिरे
 वृता देवानां मनुष्यश्च धर्मीभिः
 इन्द्रं ऋभुमिर्वाजिमिर्वाजर्यद्भिह
 स्तोमं जरितुरुषं याहि यक्षियम् ।
 शतं केतेभिरेपिरेभिराययं
 सहस्राणीयो अध्वरस्य होमनि

॥ ३८२ ॥ (ऋ० ८।९३।३४)
 गृच्छ आङ्गिरसः । गायत्री ।

इन्द्रं इपे ददातु न ऋभुक्षणमूमं रयिम् ।
 याजी ददातु याजिनम्

(१४) इन्द्रोपसौ ।

॥ ३८३ ॥ (ऋ० ४।३०।९-११)
 वामदेवो गौतमः । गायत्री ।

द्विषधिद् या दुहितरं मुदान मदीयमानाम् ।
 उपासीमिन्द्रं सं पिणक्

अपोपा अनसः सरत् संपिशादहं विभ्युपी ।
 नि यत् सीं शिश्वयद् वृषाँ ॥ १० ॥
 एतदस्या अनः शये सुसंपिष्टं विपादया ।
 ससारं सीं परायतः ॥ ११ ॥

(१५) इन्द्राश्वौ ।

॥ ३८४ ॥ (ऋ० ४।३५।२३-२४)
 वामदेवो गौतमः । गायत्री ।

कनोनिकेवं विद्रुधे नवं द्रुपदे अर्मिके ।
 यभू यामेषु शोमेते ॥ २३ ॥
 अरं म उज्वाम्णे ऽरमुनुंखयाम्णे ।
 यभू यामेष्विधिधाँ ॥ २४ ॥

(१६) इन्द्रस्त्वष्टा ।

॥ ३८५ ॥ (ऋ० २।३१।२-३)
 गृत्समदः शौनकः । जगती ।

मा नो गुह्या रिपं आयोरहनं दभन्
 मा नं आभ्यो रीरयो दुच्छुनाभ्यः ।
 मा नो वि यौः सत्या विधि तस्य नः
 सुस्नायता मनसा तत् त्वमहे ॥ २ ॥
 अहेल्लता मनसा धुष्टिमा वह्
 दुहानां धेनुं पिप्युपीमसश्चतम् ।
 पद्याभिसुशुं वचसा च वाजिनं
 त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहाँ ॥ ३ ॥

(१७) इन्द्रो गावश्च ।

॥ ३८६ ॥ (ऋ० ६।१८।२, ८)
 मरदाशो बाहंस्यसः । जगती, ८ अनुष्टुप् ।

इन्द्रो यज्वने पूणते चं शिश्नति
 उपेद् ददाति न स्वं मुपायति ।
 भूयोभूयो रयिमिदस्य वधेयन्
 अग्निरे पिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥ २ ॥
 उपेदमुपपचैन-मासु गोपूषं पूच्यताम् ।
 उपं ऋपमस्य रेत-स्युपेन्द्र तव धीर्ये ॥ ८ ॥

(१८) इन्द्राकुत्सौ ।

॥ ३८७ ॥ (ऋ० १।३।१९)
अवस्युरात्रेयः । तिष्ठत् ।

इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेन
आ घामत्या अपि कर्णे वहन्तु ।
निः पीम्द्भ्यो धर्मयो निः पधस्यात्
मघोर्नो हृदो वरधस्तर्मांसि

॥ ९ ॥

(१९) इन्द्रवावापृथिव्यः ।

॥ ३८८ ॥ (ऋ० १०।५९।१०)

बन्धुःश्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गोपायनाः । त्रिष्टुप् (पंक्त्युत्तरा) ।

समिन्द्रेरय गार्मनद्वाहं
य आर्वहदुशीनराण्या अनः ।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रयो
भो यु ते किं चनामम्वत्

॥ १० ॥

(२०) इन्द्रापर्वतौ ।

॥ ३८९ ॥ (ऋ० ३।५।३१)
गाथिनो विधामित्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रापर्वता वृहता रथेन
घामीरिप आ वहतं सुवीराः ।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा
वर्षेथां गीर्भिरिळ्या मर्दन्ता

॥ १ ॥

(२१) इन्द्रः, सोमो,
ब्रह्मणस्पतिर्दक्षिणा च ।

॥ ३९० ॥ (ऋ० १।१८।४-५)
भेषातिथिः षाडशः । गायत्री ।

स घां वीरो न रिप्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।
सोमो हि नोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥
त्यं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् ।
दक्षिणा पावर्हंसः ॥ ५ ॥

(२२) इन्द्राब्रह्मणस्पती ।

॥ ३९१ ॥ (ऋ० २।१४।१२)
गुरुमदः गौनकः । त्रिष्टुप् ।

विश्वं सत्यं मघवाना युवोत्दि
आर्षञ्चन प्र मिनन्ति वृतं घाम् ।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हृथिनो
अञ्चं युजैव घाजिना जिगातम्

॥ १२ ॥

॥ ३९२ ॥ (ऋ० ७।१७।३, ९)
मैत्रावरुणवांसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

तमु ज्येष्ठं नमसा हृथिभिः
सुशोचं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।
इन्द्रं श्लोको महि देव्यः सिपकु
यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥ ३ ॥
इयं वा ब्रह्मणस्पते सुयुक्तिः
ब्रह्मेन्द्राय वृजिणे अकारि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः
जजस्तमयो वलुपामरतीः ॥ ९ ॥

॥ ९ ॥

(२३) दुन्दुभीन्द्रौ ।

॥ ३९३ ॥ (ऋ० ६।४७।३१) गणो भारद्वाजः । त्रिष्टुप् ।
आमूर्ज प्रत्यावर्तयेमाः

केतुमद् दुन्दुभिर्वायदीति ।

समर्भ्यपर्णाश्चरन्ति नो नरो

अस्कार्कमिन्द्र रुथिनो जयन्तु

॥ ३१ ॥

(२४) इन्द्रसूर्यादयः ।

॥ ३९४ ॥ (अथर्व० १९।७०।१) मद्रा । गायत्री ।

इन्द्र जीव स्य जीव देवा जीवां जीव्यासमहम् ।
सर्वमार्युर्जीव्यासम् ॥ १ ॥

॥ १ ॥

(२५) शत्रुसेनामोहनम् ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ३।१।५)

अथर्वी । इन्द्रः । विराट् पुर दग्धिम् ।

इन्द्र सेना मोहयामिर्नाणाम् ।

अत्रेवर्तस्य धाज्या तान् धिर्पुत्रो वि नाद्राय ॥ ५ ॥

(३१६४)

॥ २ ॥ (अथर्व० ३।१।४) अनुष्टुप् ।

व्याकृत्य पयामिताथो चिच्चानि मुह्यत ।

अथो यदृचैषां हृदि तदेषां परि निर्जहि ॥ ४ ॥

(२६) मायाभेदः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१७।१-३)

पठङ्ग. प्राजापत्यः । त्रिष्टुप् ; १ जगती ।

पतङ्गमकमसुरस्य मायया

हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः ।

समुद्रे अन्तः क्वयो वि चक्षते

मरीचीनां पदार्मिच्छन्ति वेधसः

पतङ्गो वाचं मनसा विभति

तां गन्धर्वोऽवदद्भे अन्तः ।

तां द्योतमानां स्वयं मनीषां

ऋतस्यं पदे क्वयो नि पान्ति

अपश्यं गोपामनिपद्यमानं

आ च परां च पथिभिश्चरन्तम् ।

स सुधीचीः स विपचीर्वसानं

आ वरीवति भुवंनेष्वन्तः

(२७) शत्रुनाशनम् ।

॥ १ ॥ (अथर्व० २।१३।१-५)

आपः । (एकावसानम्) १-४ त्रिचुद्विपमा गायत्री,
५ भुरिभिवषमा ।

आपो यद्वस्तपस्तेन तं प्रति तपत्

योऽस्मान् ठेष्टि यं वयं द्विपः

आपो यदो हस्तेन तं प्रति हरत्

योऽस्मान् ठेष्टि यं वयं द्विपः

आपो यदोऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्चत्

योऽस्मान् ठेष्टि यं वयं द्विपः

आपो यदो शोचिस्तेन तं प्रति शोचत्

योऽस्मान् ठेष्टि यं वयं द्विपः

आपो यदस्तेऽस्तेन तमतेजसं कृणुत्

योऽस्मान् ठेष्टि यं वयं द्विपः

॥ २ ॥ (अथर्व० ६।६।१-३)

(चन्द्रमाः), इन्द्रः, पराशरः । अनुष्टुप्, १ पथ्यापृक्किः ।

अव मन्युरवायताव वाह मनोयुजा ।

पराशर त्वं तेषां पराञ्चं शुष्ममर्दय

अथा नो रयिमा कृधि ॥ १ ॥

निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्तं यं देवाः शरुमस्यथ ।

घृश्रामि शत्रूणां वाहननेन हविषाऽहम् ॥ २ ॥

इन्द्रश्चकार प्रथमं नैर्हस्तमसुरेभ्यः ।

जयन्तु सत्वांनो मम स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना ॥ ३ ॥

॥ १ ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० ५।३।११)

बृहद्विषोऽथर्वा । इन्द्रः (विज्रवाय प्रार्थना) । त्रिष्टुप् ।

अर्वाञ्जमिन्द्रममुतो हवामहे

यो गोजिर्दनजिर्दश्वजिघः ।

॥ २ ॥

इमं नो यक्षं विह्वेषे शृणोतु

अस्माकमभूर्हयेश्व मेदी ॥ ११ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० २।१८।१-५)

चातनः । अग्निः । (द्विपद्यम्) शत्री बृहती ।

आतृव्यक्षर्यणमसि आतृव्यचातनं मे दाः स्वार्हा ॥ १ ॥

सपल्लक्षर्यणमसि सपल्लचातनं मे दाः स्वार्हा ॥ २ ॥

अरायक्षर्यणमस्यरायचातनं मे दाः स्वार्हा ॥ ३ ॥

पिशाचक्षर्यणमसि पिशाचचातनं मे दाः स्वार्हा ४

सदान्वाक्षर्यणमसि सदान्वाचातनं मे दाः स्वार्हा ५

॥ ३ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० ८।३।१५)

अग्निः । पञ्चपदा बृहतीगर्भा जगती ।

ये ते शूक्ले अजरं जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मशंसिते ।

ताभ्यां दुहार्दमग्निदासन्तं किमीदिनं

प्रत्यञ्जमर्चिषां जातवेदो वि निश्च ॥ २५ ॥

॥ ३ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० २।१८।१-८)

भद्रा । (भायुष्यम्) । पृक्किः ।

शेरंभक शेरंभ पुनर्यो यन्तु

यातयः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।

यस्य स्थ तमन्तु यो वः

प्राहेत् तमन्तु स्या मांसान्यस्त ॥ १ ॥

॥ ५ ॥

शेवृधक् शेवृध पुनर्वो यन्तु
यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।

यस्य स्थ तमन्त यो वः०

॥ २ ॥

भ्रोकालुंभ्रोक पुनर्वो यन्तु

यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।

यस्य स्थ तमन्त यो वः०

॥ ३ ॥

सपीरुंसर्प पुनर्वो यन्तु यातवः

पुनर्हेतिः किमीदिनः ।

यस्य स्थ तमन्त यो वः प्राहैत्०

॥ ४ ॥

जूर्णि पुनर्वो यन्तु यातवः

पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।

यस्य स्थ तमन्त यो वः प्राहैत्०

॥ ५ ॥

उपभ्दे पुनर्वो यन्तु यातवः

पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।

यस्य स्थ तमन्त यो वः प्राहैत्०

॥ ६ ॥

अर्जुनि पुनर्वो यन्तु यातवः

पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।

यस्य स्थ तमन्त यो वः प्राहैत्०

॥ ७ ॥

भरुजि पुनर्वो यन्तु यातवः

पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।

यस्य स्थ तमन्त यो वः प्राहैत्०

॥ ८ ॥

॥ ७ ॥ (अथर्व० १०।५। [६-७] ३६-५०)

महा । मंत्रोक्तः । ३६ मार्वो पञ्चपदातिशाकरामिजागत-
गर्माष्टिः, ३७ विराट् पुरस्ताद्बृहती; ३८ पुर चण्डि ।

३९, ४१ भार्यो गायत्री; ४० विराट् विषमा गायत्री ।

विहृष्यः । प्राजापत्या । प्राजापत्या अनुष्टुप् ;

४४ त्रिपदा गायत्रीगर्माऽनुष्टुप्; ५० त्रिष्टुप् ।

जितमसाकमुद्रिन्नमसाकं

अभ्युष्टां चिभ्याः पृतना अरतीः ।

इदमहमासुप्यायणस्यासुप्याः पुत्रस्य

वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि

र्षेष्टयामिदमेनमध्वरार्थं पादयामि

॥ ३६ ॥

सूर्यस्यावृतमन्वावर्तं दक्षिणामन्वावृतम् ।

सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३७

दिशो ज्योतिर्मतीन्भ्यावर्तं ।

ता मे द्रविणं यच्छन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३८

सप्तऋषीन्भ्यावर्तं ।

ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥३९॥

ब्रह्माभ्यावर्तं ।

तन्मे द्रविणं यच्छतु तन्मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ४० ॥

ब्राह्मणां अभ्यावर्तं ।

ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥४१॥

यं वयं मृगयामहे तं वधे स्तृणवामहे ।

व्यात्तं परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम् तम् ॥ ४२ ॥

वैश्वानरस्य दंप्रीभ्यां हेतिस्तं समधादामि ।

इयं तं प्लात्वाहुतिः समिद्देवी सहीयसी ॥ ४३ ॥

राहो वरुणस्य वृधोऽसि ।

सोऽऽसुमासुप्यायणमसुप्याः

पुत्रमन्नं प्राणे बंधान ॥ ४४ ॥

यत् ते अन्नं भुवस्पते आक्षिपति पृथिवीमनु ।

तस्य नस्त्वं भुवस्पते संप्रयच्छ प्रजापते ॥ ४५ ॥

अपो दिव्या अचायिपं रसेन समपृश्महि ।

पर्यस्वानन्न आगमं ते मा सं सृज वचसा ॥ ४६ ॥

सं मोक्षे वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।

विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सृष्ट ऋषिभिः ॥४७

यदन्ने अद्य मिथुना शपातो

यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेमाः ।

मन्योर्मनसः शरण्याः जायते या

तया विच्य हृदये यातुधानान् ॥ ४८ ॥

परं दृणीहि तपसा यातुधानान्

पराग्ने रक्षो हरसा दृणीहि ।

पराचिंगा मूर्देवां दृणीहि ॥ ४९ ॥

परासुतपुः सोऽनुचतः दृणीहि ॥ ४९ ॥ (३४०५)

अपामस्मै घञ्जं प्र हारामि
 चतुर्भृष्टि शीर्षभिर्घाय विठान् ।
 सो अस्याद्धानि प्र शृणोतु सर्वा
 तन्मै देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥ ५० ॥

॥ ८ ॥ (अथर्वं २।२७।१-७)

वपिजलः । १-५ वनस्पति, ६ रुद्रः, ७ इन्द्रः । अनुष्टुप् ।
 नेच्छन्नः प्राशं जयाति सहमानाभिभूरसि ।
 प्राशं प्रतिप्राशो जह्यस्मान् कृण्वोपधे ॥ १ ॥
 सुपूर्णस्त्वान्वयिन्दत् सूकुरस्त्वापनघ्नसा ।
 प्राशं प्रतिप्राशो जह्यस्मान् कृण्वोपधे ॥ २ ॥
 इन्द्रो ह चक्रे त्वा याहावसुरेभ्य स्तरीतव ।
 प्राशं प्रतिप्राशो जह्यस्मान् कृण्वोपधे ॥ ३ ॥
 पाटामिन्द्रो व्याश्रादसुरेभ्य स्तरीतवे ।
 प्राशं प्रतिप्राशो जह्यस्मान् कृण्वोपधे ॥ ४ ॥
 तयाऽहं शन्नस्ताश्च इन्द्रः सालावृका इव ।
 प्राशं प्रतिप्राशो जह्यस्मान् कृण्वोपधे ॥ ५ ॥
 रुद्र जलापमेपन्न नीलशिखण्डु कर्मकृत् ।
 प्राशं प्रतिप्राशो जह्यस्मान् कृण्वोपधे ॥ ६ ॥
 तस्य प्राशं त्वं जहि यो न इन्द्राभिदासति ।
 अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः प्राशि मामुत्तरं रुधि ॥ ७ ॥

॥ ९ ॥ (अथर्वं ७।९५।१-३)

गृध्राः । अनुष्टुप्, २-३ गुरिर् ।

उद्रस्य द्यावौ विथुरौ गृध्रौ धार्मिव पेततुः ।
 उच्छ्रोचनप्रशोचनावस्योच्छ्रोचनो हृदः ॥ १ ॥
 रुद्रमेनावुदतिष्ठिपं गावां श्रान्तसदाविव ।
 कर्कराधिव कृजन्तायुदयन्तौ घृकाधिव ॥ २ ॥
 आतोदिनो नितोदिनाययो संतोदिनावुत ।
 नोपि नहाम्यस्य मेद्वं य इतः स्त्री पुमान् जुभारं ॥ ३ ॥

॥ १० ॥ (अथर्वं ७।९६।१) वयः । अनुष्टुप् ।

असदन् गायः सद्रनेऽपतद्वसति वयः ।
 आभ्याने पर्यता अम्युः म्याधिं वृधार्वतिष्ठिपम् ॥ १ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्वं ३।६।१-८)

अगहोत्रं पुराः । वानस्पत्योऽध्वर्यवः । अनुष्टुप् ।

पुमान् पुंसः परिजातोऽध्वर्यवः रगदिरादधि ।
 स हन्तु शश्रून् मामकान्
 यानहं द्वेप्सि ये च माम् ॥ १ ॥
 तानध्वर्य निः शृणीहि शश्रून् वैयाध्रदोधतः ।
 इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरुणेन च ॥ २ ॥
 यथाऽध्वर्य निरर्मनोऽन्तर्महत्सु णिवे ।
 पूवा तान्त्सर्धान् निर्मड्ग्धि
 यानहं द्वेप्सि ये च माम् ॥ ३ ॥
 यः सहमानश्चरसि सासहान इव ऋपमः ।
 तेनाध्वर्य त्वया वयं सुपत्नान्सहिपीमहि ॥ ४ ॥
 सिनात्वैनान् निरर्कतिर्मृत्योः पाशैरमोन्यैः ।
 अध्वर्य शश्रून् मामकान्
 यानहं द्वेप्सि ये च माम् ॥ ५ ॥
 यथाऽध्वर्य वानस्पत्यानारोहन् कृणुयेऽध्वरान् ।
 पूवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वगिभन्दि सहस्र च ॥ ६ ॥
 तेऽध्वराञ्चः प्र भ्रवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
 न वैयाध्रप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥ ७ ॥
 प्रैर्णान् नुदे मर्नसा प्र चित्तेनोत ब्रह्मणा ।
 प्रैर्णान् वृक्षस्य शाखयाऽध्वर्यस्व नुदामहे ॥ ८ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्वं ४।४०।२, ४.७-८)

शुक्रः । २ वयः, ४ वामः, ७ सूर्यः, ८ दिशः । २ अगतीः, ४, ७ त्रिष्टुप्, ८ पुरोऽतिशङ्करी पादयुजगती ।

ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो
 दक्षिणाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
 यममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां
 प्रत्यर्गनान् प्रतिसरेण हन्मि ॥ २ ॥
 य उत्तरतो जुह्वति जातवेद
 उदीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
 सोममृत्वा ते पराञ्चो ॥ ४ ॥

य उपरिष्ठाञ्जुद्धति जातवेद
 ऊर्ध्वायां दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
 सूर्यमन्वा ते पराञ्चो ॥ ७ ॥
 ये दिशामन्तर्देशेभ्यो जुद्धति जातवेदः
 सर्वाभ्यो दिग्भ्योऽभिदासन्त्यस्मान् । ब्रह्मर्त्वा ते ० ८
 ॥ १३ ॥ (अथर्वं ६।१३४।१-३)
 वज्रः । १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ मुरिक् त्रिपदा गायत्री
 अयं वज्रस्तर्पयतामृतस्य
 अर्वास्य राष्ट्रमर्प हन्तु जीघितम् ।
 शृणातुं श्रीवाः प्र शृणातुं णिहा
 वृत्रस्यैव शचीपतिः ॥ १ ॥
 अर्धरोऽधर उत्तरेभ्यो गृहः पृथिव्या मोत्सृपत् ।
 वज्रेणार्बहतः शयाम् ॥ २ ॥
 यो जिनाति तमन्विच्छु यो जिनाति तमिज्जहि ।
 जिनतो वज्रं त्वं सीमन्तमन्वञ्जमनु पातय ॥ ३ ॥
 ॥ १४ ॥ (अथर्वं ७।१०।१-३)
 अङ्गिराः । मन्त्रोवाः । १ गायत्री, २ विगाद् पुरस्ताद्बृहती,
 ३ श्वशाना पश्चिमा मुरिग्जगती ।
 अपि वृश्च पुराणवद्बृहतीरिव गुणितम् ।
 ओजो दास्यस्य दम्भय ॥ १ ॥
 वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भंजामहे ।
 म्यापयामि भ्रजः शिभ्रं वरुणस्य व्रतेन ते ॥ २ ॥
 यथा शेषो अपायति स्त्रीषु चासुदनावयाः ।
 अवस्थस्यं फनदीर्घतः शाङ्करस्यं नितोदिर्नः ।
 यदाततमव्र तत् तनु यदुत्तं नि तत् तनु ॥ ३ ॥
 ॥ १५ ॥ (अथर्वं ० ८।१।१-१४)
 मूत्रवृण्णः । इन्द्रः, वनस्पतिः, परमेनाहननं च । अनुष्टुप् ;
 २, ८-१०, २२ नगरीषाद्बृहती, ३ विराद्बृहती, ४ बृहती
 पुरस्तात्प्रस्तापृक्किः, ६ आस्तापृक्किः, ७ विपरीत
 पादलक्ष्मा चतुष्पदातिजगती, ११ पथ्याबृहती, १२ मुरिक् ;
 १९ पुरस्ताद्दिग्बृहती, २० पुरस्तात्त्रिष्टुद्बृहती, २१ त्रिष्टुप् ;
 २२ चतुष्पदा शकरी, २४ श्वशाना त्रिष्टुप्णिगर्मा
 पाराशकरी पश्चिमा जगती ।

पुतिरञ्जुद्धमानो पूर्ति मेनां कृणोत्वमूम् ।
 धूममार्शं परादृश्यामिजां हृस्वा द्रधतां भयम् ॥ २ ॥
 अमूनंभ्वत्थ निः शृणोहि खादामूनं गेदिराजिरम् ।
 ताजङ्ग इव भज्यन्तां
 हन्त्वेनान् वधको वधैः ॥ ३ ॥
 पर्याणमूनं परुषाहः कृणोतु
 हन्त्वेनान् वधको वधैः ।
 क्षिमं शर इव भज्यन्तां
 बृहज्जालेन संदिताः ॥ ४ ॥
 अन्तरिक्षं जालमासीञ्जालदण्डा दिशो महीः ।
 तेनाभिधाय दस्यूनां शक्रः सेनामर्पावपत् ॥ ५ ॥
 बृहद्भि जालं बृहतः शक्रस्यं वाजिर्नवितः ।
 तेन शत्रूनाभि सर्धानं न्युञ्जु
 यथा न मुच्यति कर्ममन्त्रेणाम् ॥ ६ ॥
 बृहत् ते जालं बृहत इन्द्र शर
 सहस्रावस्यं शतवीर्यस्य ।
 तेन शतं सहस्रमयुतं न्युञ्जुदं
 जघानं शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया ॥ ७ ॥
 अयं लोको जालमासीच्छक्रस्यं महतो महान् ।
 तेनाहमिन्द्रजालेन
 अमूस्तमसाभि रंधामि सर्वान् ॥ ८ ॥
 सेदिहप्रा व्युऽद्रिपार्तिश्चानपवाचनम् ।
 धर्मस्तुन्द्रीश्च मोदंश्च तैरमूनभि रंधामि सर्वान् ॥ ९ ॥
 मृत्यवेऽमूनं प्र यच्छामि मृत्युपाशौष्मी सिताः ।
 मृत्योर्ये अघला वृताः
 तेभ्यं पनान् प्राति नयामि वृद्ध्या ॥ १० ॥
 नयतामूनं मृत्युवृता यमवृता अपोभमत ।
 परःसहस्रा हन्यन्तां
 तूणेद्वेनान् मृत्यं सुवस्यं ॥ ११ ॥
 माध्या एकं जालदण्डमघर्षं यन्त्योजसा ।
 गृहा एकं वस्यं एकमाद्रिदैरेक उर्धतः ॥ १२ ॥
 (३४७०)

इन्द्रो मन्यतु मन्थिता शक्रः शरः पुरंदरः ।
 यथा हर्नामं सेनां अभिर्नाणां सहस्रदाः ॥ १ ॥

विभ्वै देवा उपरिष्टादृजन्तो यन्वो जसा ।
 मध्येन घ्नन्तो यन्तु सेनामङ्गिस्तो महीम् ॥ १३ ॥
 वनस्पतीन् वानस्पत्यानोपधीरुत धीरुधं ।
 द्विपाचतुष्पादिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥ १४ ॥
 गन्धर्वोप्वरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितृन् ।
 हृष्टानहृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥ १५ ॥
 इम उसा मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे ।
 अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूर्तं सहस्रशः ॥ १६ ॥
 धर्मं समिद्धो अग्निनाऽय होमं सहस्रहः ।
 भवश्च पृश्निराहश्च शर्वं सेनाममूं हतम् ॥ १७ ॥
 मूलोरापमा पंचन्तां क्षुत्रं सेदिं वधं भयम् ।
 इन्द्राक्षुजालाभ्या शर्वं सेनाममूं हतम् ॥ १८ ॥
 पराजिताः प्र त्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा ।
 गृहस्पतिप्रणुत्तानां माऽमीषीं मौचि कश्चन ॥ १९ ॥
 अयं पद्यन्तामेपामायुधानि मा शकन प्रतिधामिषुम् ।
 अथैषां बहु विभ्यन्तामिषवो घ्नन्तु मर्मणि ॥ २० ॥
 स क्रौशतामेनान् घावाणुयिषीं
 समन्तरिक्ष सह देवताभिः ।
 मा क्षातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त
 मियो विघ्नाना उपं यन्तु मृत्युम् ॥ २१ ॥
 दिशश्चतस्रोऽश्वतरो देवस्थस्यं
 पुरोडाशाः शफा अन्तरिक्षमुद्दिः ।
 घावाणुयिषी पक्ष्सी ऋतवोऽमीशवः
 अन्तर्देशा किंकरा वाक् परिरथ्यम् ॥ २२ ॥
 संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थः
 विराडीपात्री रथमुपम् ।
 इन्द्रः सध्यष्टाश्चन्द्रमा सारथिः ॥ २३ ॥
 इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा ।
 इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यं ।
 नीललोहितेनामनभ्यवतनोमि ॥ २४ ॥

॥ १६ ॥ (अथर्वं ११.१०१-२०)

त्रिपथि । अनुष्टुप्, १ विराट् पद्यावृहती, २ त्रयसप्तता
 पट्पदा त्रिष्टुप्भातिजगती, ३ विराटास्तारपट्कि, ४ विराट्
 ८ विराट् त्रिष्टुप्, ९ पुरोविराट् पुरस्ताज्जयोतित्रिष्टुप्
 १२ पञ्चपदा पायापाकि, १३ पट्पदा जगती, १६ त्रयसप्तता
 पट्पदा कृष्णमखनुष्टुप्त्रिष्टुप्भाती शङ्करी, १७ पद्यापकि,
 २१ त्रिपदा गायत्री; २२ विराट्पुरस्ताद्वृहती, २५ कृष्ण
 २६ प्रस्तापाकिः ।

उत्तिष्ठतु सं नहाय्यमुदाराः केतुभिः सह ।
 सर्पा इतरंजना रक्षांस्यमिथाननु धावत ॥ १ ॥
 ईशां वो वेदु राज्यं
 त्रिपथे अरुणः केतुभिः सह ।
 ये अन्तरिक्षे ये द्विधि पृथिव्यां ये च मानवाः ।
 त्रिपथेस्ते चेतांसि दुर्णामान् उपासताम् ॥ २ ॥
 अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकट्कृतीमुखाः ।
 क्रुत्यादो वार्तरंहस
 आ संजन्त्वमिथान् वज्रेण त्रिपथिना ॥ ३ ॥
 अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु ।
 त्रिपथेरियं सेना सुहितास्तु मे वरी ॥ ४ ॥
 उत्तिष्ठ त्वं देवजनायुदे सेनया सह ।
 अयं वृत्थिं आहुतस्त्रिपथेराहुतिः प्रिया ॥ ५ ॥
 शितिपदी सं घतु शरव्येभ्यं चतुष्पदी ।
 रुयेऽमित्रेभ्यो भव त्रिपथेः सह सेनया ॥ ६ ॥
 धृमाक्षी सं पततु रुधुकर्णी च क्रौशतु ।
 त्रिपथेः सेनया जिते अरुणा संन्तु केतवः ॥ ७ ॥
 अवायन्तां पक्षिणो ये वयांसि
 अन्तरिक्षे द्विधि ये चरन्ति ।
 श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तां
 आमादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ॥ ८ ॥
 यामिन्द्रेण संघां समर्धथा
 ब्रह्मणा च बृहस्पते ।
 तयाऽहमिन्द्रसधया
 सर्वान् देवानिह ह्यं इतो जयत मामुतः ॥ ९ ॥

बृहस्पतिराहिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः ।
 असुरक्षयणं वधं निषेधि दिव्याश्रयन् ॥ १० ॥
 येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः ।
 निषेधि देवा अमज्जतो जसे च बलाय च ॥ ११ ॥
 सर्वाँल्लोकान्त्समंजयन् देवा आहृत्या नया ।
 बृहस्पतिराहिरसो वज्रं
 यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥ १२ ॥
 बृहस्पतिराहिरसो वज्रं
 यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ।
 तेनाहममं सेनां नि लिङ्गामि
 बृहस्पतेऽमित्रान् हन्त्योजसा ॥ १३ ॥
 सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अन्नन्ति वषट् कृतम् ।
 इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मासुतः ॥ १४ ॥
 सर्वे देवा अत्यायन्तु निषेधेराहुतिः प्रिया ।
 रुंधां महतीं रक्षत यथाप्रे असुरा जिताः ॥ १५ ॥
 वायुरमित्राणामिष्वप्राण्याञ्चतु ।
 इन्द्रं पयां शाहन प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
 आदित्य पंपामुलं वि नाशयतु
 चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् ॥ १६ ॥
 यदि प्रेषुद्धपुत्रा ब्रह्म धर्माणि चक्रिरे ।
 तनुपानं परिपाणं कृष्णाना
 यदुपोचिरे सर्वे तदरसं हृदि ॥ १७ ॥
 क्रुज्यादानुवर्तयन्मृत्युना च पुरोहितम् ।
 निषेधे प्रति सेनया ज्यामिशान् प्र पथन्व ॥ १८ ॥
 निषेधे तमसा त्यममिशान् परि वारय ।
 पृषदाज्यप्रणुत्तानां माऽमीषां मोचि वञ्चन ॥ १९ ॥
 दातिपदी सं पतत्यमित्राणाममः सिचः ।
 सुरान्वेषामः सेनां अमित्राणां न्यसुदे ॥ २० ॥
 मुदा अमित्रां न्यसुदे जतेषां वर्यरम् ।
 अनया जहि सेनेया ॥ २१ ॥

यश्च कथञ्चि यश्चाकञ्चोऽमित्रो यश्चात्मनि ।
 ज्यापादोः क्वचपादोऽर्त्तनाऽमिहतः शयाम् ॥ २२ ॥
 ये धर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च धर्मिणः ।
 सर्वाँस्तो अर्थुदे हतांश्वानोऽवन्तु भूम्याम् ॥ २३ ॥
 ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः ।
 सर्वाँनदन्तु तान् हतान्
 गृत्राः द्येनाः पतत्रिणः ॥ २४ ॥
 सहस्रकृणपा शेतामामित्री सेनां समरे वधानाम् ।
 विविद्धा ककजाहता ॥ २५ ॥
 मर्माविधं रोधतं सुपर्णं रदन्तु
 दुश्चितं मृदित शयानम् ।
 य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति ॥ २६ ॥
 यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति निरार्थनम् ।
 तथेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण निषेधिना ॥ २७ ॥
 ॥ १७ ॥ (ऋ० ७।११३।१-०)
 भागव । वृष्टिका । १ विराडनुष्टुप् । २ चतुर्मा, षट्पदा
 मुरिगुणिक् ।
 वृष्टिके वृष्टवन्दन उदमं छिन्धि वृष्टिके ।
 यथा हतद्विष्टासोऽमुष्मं शेष्यावते ॥ १ ॥
 वृष्टासि वृष्टिका त्रिपा त्रिपातम्यसि ।
 परिवृक्ता यथासंस्पृशमस्यं वशोर्न ॥ २ ॥
 ॥ १८ ॥ (ऋ० ११।१।१-२६)
 काश्यायन । अर्षुदि । अनुष्टुप्, १ सप्तपदा विराट् शकरो
 षवसाना, २ पुरोमिण्क्; ४ षवसाना सप्तम्वृहतीगर्भा
 पराभिष्टुप् पश्यदातिव्रगनी, ९, ११, १४, २३, २६ पञ्चा-
 पक्, १५, २२, २४-२५ षवसाना सप्तपदा शकरो,
 १६ षवसाना सप्तपदा विराडुपरिष्टाज्योति-
 त्रिष्टुप्; १० त्रिपदा गायत्रा ।
 ये शादयो या इषयो धन्वनां शीयांणि च ।
 अमिन् परेशानार्थं चित्ताकृतं च यद्गदि ।
 सर्वे तदर्थुदे त्यममित्रेभ्यो
 हशो कृन्दासांश्च प्र दर्शय ॥ १ ॥

तेषां सर्वेषामीदाना उत्तिष्ठत
सं नहाध्वं मित्रा देवजना युयम् ।
इमं संप्रामं सृजित्य यथा लोकं वि तिष्ठध्वम् ॥२६॥

॥ १९ ॥ (अथर्वं १०।५।१-१४)

सिन्धुद्रावः । आपः, चन्द्रमाः (वित्रयप्राप्तिः) अतुष्टुः ।
१-५ त्रिपदा पुरोभिहृतिक्कुम्भतीर्गमा पञ्क्तिः, ६ चतुष्टुपदा
अगतीर्गमा अगतीः, ७-१४ त्र्यवसाना पञ्चपदा विपरीतपाद-
लक्ष्मा वृद्धी (११, १४ पय्यापञ्क्तिः); १५-२१ चतुर्वसाना
दशपदा त्रैष्टुभर्गमातिधृतिः (१९, २० इति., २४ त्रिपदा
विराड् गायत्री)

इन्द्रस्यौज स्येन्द्रस्य सह स्येन्द्रस्य चलं म्य
इन्द्रस्य वीर्यं, स्येन्द्रस्य नृगणं स्य ।
जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वी युनजिम ॥ १ ॥
इन्द्रस्यौज स्येन्द्रस्य सह स्येन्द्रस्य० ।
जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वी युनजिम ॥ २ ॥
इन्द्रस्यौज स्येन्द्रस्य सह स्येन्द्रस्य० ।
जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वी युनजिम ॥ ३ ॥
इन्द्रस्यौज स्येन्द्रस्य सह स्येन्द्रस्य० ।
जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वी युनजिम ॥ ४ ॥
इन्द्रस्यौज स्येन्द्रस्य सह स्येन्द्रस्य० ।
जिष्णवे योगायानुयोगैर्वी युनजिम ॥ ५ ॥
इन्द्रस्यौज स्येन्द्रस्य सह स्येन्द्रस्य चलं म्य
इन्द्रस्य वीर्यं, स्येन्द्रस्य नृगणं स्ये ।
जिष्णवे योगाय विभ्वानि
मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता म आप स्य ॥ ६ ॥
अग्नेर्भाग स्य ।
अपां शुक्रमापो देवीर्वचो अस्मातु धत् ।
प्रजापतेर्वो धाम्नासै लोकार्य सादये ॥ ७ ॥
इन्द्रस्य भाग स्य । अपां शुक्रमापो देवीर्वचो ।
प्रजापतेर्वो धाम्नासै लोकार्य सादये ॥ ८ ॥
सोमस्य भाग स्य । अपां शुक्रमापो देवीर्वचो ।
प्रजापतेर्वो धाम्नासै लोकार्य सादये ॥ ९ ॥

वरुणस्य भाग स्य । अपां शुक्रमापो देवीर्वचो ।
प्रजापतेर्वो धाम्नासै लोकार्य सादये ॥ १० ॥
मित्रावरुणयोर्भाग स्य ।
अपां शुक्रमापो देवीर्वचो ।
प्रजापतेर्वो धाम्नासै लोकार्य० ॥ ११ ॥
यमस्य भाग स्य । अपां शुक्रमापो देवीर्वचो ।
प्रजापतेर्वो धाम्नासै लोकार्य सादये ॥ १२ ॥
पितृणां भाग स्य । अपां शुक्रमापो देवीर्वचो ।
प्रजापतेर्वो धाम्नासै लोकार्य सादये ॥ १३ ॥
देवस्य सवितुर्भाग स्य ।
अपां शुक्रमापो देवीर्वचो ।
प्रजापतेर्वो धाम्नासै लोकार्य० ॥ १४ ॥
यो व आपोऽपां भागोऽ
अप्यन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमर्ति सृजामि तं माभ्यर्वनिक्षि ।
तेन तमभ्यर्तिसृजामो
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृणीयानेन
ब्रह्मणाऽनेन कर्मणाऽनया मेन्या ॥ १५ ॥
यो व आपोऽपामृमिण्यन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं० । तेन० । तं वधेयं तं स्तृणी० ॥ १६ ॥
यो व आपोऽपां वृषमोऽ
अप्यन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं० । तेन० । तं वधेयं तं० ॥ १७ ॥
यो व आपोऽपां वृषमोऽ
अप्यन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं० । तेन० । तं वधेयं तं० ॥ १८ ॥
यो व आपोऽपां हिरेण्यगमोऽ
अप्यन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं० । तेन० । तं वधेयं० ॥ १९ ॥

यो वं आपोऽपामश्मा पृथिवीज्योः
 अथ्वन्तर्यज्योः देवयजनाः ।
 इदं० । तेन० । तं वधेयं० ॥ २० ॥
 ये वं आपोऽपामद्रयोऽप्स्वन्तर्यज्योः देवयजनाः ।
 इदं तानति सृजामि तान्माभ्यर्चयानिधि ।
 तैस्तमभ्यर्चयति सृजामो० ।
 तं वधेयं तं स्तृपीयानेन ब्रह्मणाऽनेन
 कर्मणाऽनया मेन्या० ॥ २१ ॥

यदेसांचीनेन प्रेहायुणादचृतं किं चोदिम ।
 आपो मा तस्मान् सर्वैसाहरितात् पान्त्यंहसः २२
 समुद्रं यः प्र हिणोमि स्यां योनिमपीतन ।
 अरिष्टाः स्वयंहायसो मा चं नः किं चनाममत् २३
 अरिष्टा आपो अपं रिप्रमस्त ।
 प्रासदेनो दुरितं सुप्रतीकाः
 प्र दृष्यन्त्यं प्र मलं यदन्तु ॥ २४ ॥

(२८) श्रेयःप्राप्तिः ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ३।१।१-५)

८४ । श्वारुणम् । १ अनुषदा विशाट् गावयो,
 २-५ विशा परोणिह, ४ विगालिष्ठमया निवृत् ।

दृष्या दृग्निगि हेत्या हेतिरेमि मेन्या मेनिर्गति ।
 धान्नुदि धेर्वागमति समं ब्राम ॥ १ ॥
 अरुणोऽगि प्रतिमरोऽगि प्रत्यभिरर्णोऽगि ।
 धान्नुदि धेर्वागमति समं ब्राम ॥ २ ॥
 प्रति ममभि चैर योऽस्मान् हेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
 धान्नुदि धेर्वागमति समं ब्राम ॥ ३ ॥
 एतिरेमि वग्गोधा धनि मनुषानोऽगि ।
 धान्नुदि धेर्वागमति समं ब्राम ॥ ४ ॥
 दृष्योऽगि धामोऽगि वृष्णिगि उपोतिवति ।
 धान्नुदि धेर्वागमति समं ब्राम ॥ ५ ॥

(२९) बलप्राप्तिः ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ६।१३।१-३)

वज्रः । अनुष्टुप् ।

यदशामि बलं कुर्व इत्यं वज्रमा ददे ।
 स्कन्धानमुष्यं शातयन् वृत्रस्यैव शचीपतिः ॥ १ ॥
 यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपियः ।
 प्राणानमुष्यं संपाय सं पिबामो अमुं वयम् ॥ २ ॥
 यद्रिषामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः ।
 प्राणानमुष्यं संगीर्यं सं गिरामो अमुं वयम् ॥ ३ ॥

(३०) वर्चःप्राप्तिः ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ६।५।१-३)

अथर्वो । १ अमि, २ इन्द्रः, ३ अमि, धेमः, ब्रह्मणस्पतिः ।
 अनुष्टुप्, २ भुरिक् ।

उदेनमुत्तरं नयाज्ञे घृतेनाहुत ।
 समेते वचैसा सृज प्रजया च वृष्टं कृधि ॥ १ ॥
 इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सज्जानानामसद्ग्री ।
 शयस्पोषेण सं सृज जीवातये जस्त्रै नय ॥ २ ॥
 यस्यं कृण्मो हृदिगुदे तमज्ञे यधेया त्वम् ।
 तस्मै सोमो अग्निं प्रददयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥

(३१) ऊर्जःप्राप्तिः ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ६।७१।१-३)

वशानम । गावयो, ३ विशदा प्रात्रावला गावथा ।

अयं नो नमस्तस्पतिः संप्रजानो अग्नि रक्षतु ।
 वसमाति गृहेषु नः ॥ १ ॥
 त्वं नो नमस्तस्पत ऊर्जे गृहेषु धारय ।
 सा पुष्टमंया वरुं ॥ २ ॥
 देवं संस्मृतान सत्स्राणोयभ्यर्चयिषे ।
 तस्यं नो तस्य तस्यं नो धेदि
 तस्यं ते मतिर्चायोः क्याम ॥ ३ ॥

(३२) विश्वजित् ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ६।१०७।१-४)

अन्तानि । अन्तप्रप ।

विश्वजित् त्रायमाणायै मा परि देहि ।

त्रायमाणे द्विपाञ्च सर्वे नो रक्ष

चतुष्पाद्यच्च नः स्वम्

॥ १ ॥

त्रायमाणे विश्वजिते मा परि देहि ।

विश्वजिद् द्विपाञ्च सर्वे नो रक्ष

चतुष्पाद्यच्च नः स्वम्

॥ २ ॥

विश्वजित् कल्याण्यै मा परि देहि ।

कल्याणि द्विपाञ्च सर्वे नो रक्ष

चतुष्पाद्यच्च नः स्वम्

॥ ३ ॥

कल्याणि सर्वविदे मा परि देहि ।

सर्वविद् द्विपाञ्च सर्वे नो रक्ष

चतुष्पाद्यच्च नः स्वम्

॥ ४ ॥

(३३) राष्ट्रसभा ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ७।१२।१-३)

शौनकः । १-२ समा, पितरः, ३ इन्द्र । अनुष्टुप् ।

१ गुरिक् त्रिष्टुप् ।

सभा च मा समितिश्चावतां

प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने ।

येनां संगच्छ उर्प मा स शिक्षात्

चारुं वदानि पितरः संगतेषु

॥ १ ॥

द्विभ्र तै सभे नाम नरिष्ठा नाम वा अंसि ।

ये ते के च समासदस्ते मे सन्तु सर्वाचसः ॥ २ ॥

एषामहं समासीनानां चर्षो विज्ञानमा ददे ।

अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र मगिनै कृणु ३

(३४) अश्वः ।

॥ १ ॥ (अ० १।१६०।१-२२)

शेषेणमा औच्यथः । त्रिष्टुप्, ३-६ जगतां ।

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमाऽऽयुः

इन्द्रं ऋमुक्षा मरुतः परि रयन् ।

यद्वाजिनो देवजातस्य सतेः

प्रवक्ष्यामो विदधे वीर्याणि

॥ १ ॥

यन्निर्णिजा रेकर्णासा प्रावृतस्य

रुतिं गृमीतां मुञ्चतो नयन्ति ।

सुप्राङ्जो मेम्यद्विभ्यरूप

इन्द्रापुष्पोः प्रियमव्येति पाथः

॥ २ ॥

एष छागः पुरो अश्वेन वाजिनां

पुष्पो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।

अभिप्रियं यत् पुंरोब्बाशमर्वता

त्वष्ट्रेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति

॥ ३ ॥

यद्विष्यंमृतुशो देवयानं

निर्मानुपाः पर्यश्वं नयन्ति ।

अत्रा पुष्णः प्रथमो भाग पति

यद्वां देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः

॥ ४ ॥

होताऽश्वर्युराथया अग्निमिन्धो

प्रावग्राम उत शंस्ता सुचिप्रः ।

तेन यज्ञेन स्वरं कृतेन

स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम्

॥ ५ ॥

युपत्रस्का उत ये यूपवाहाः

चपाहं ये अश्वयुपाय तर्हति ।

ये चार्धते पचनं सुमरन्ति

उतो तेषामभिगूर्तिनं इचतु

॥ ६ ॥

उप प्रागात् सुमन्मेऽघायि मन्मं

देवानामाशा उर्प वीतपृष्ठः ।

अश्वेनं विप्रा ऋर्षयो मदन्ति

देवानां पुष्टे चरुमा सुवधुम्

॥ ७ ॥

यद्वाजिनो दामं संदानमर्वतो

या शीपुण्यां रक्षाना रज्जुरस्य ।

यद्वां शस्य प्रभृतमास्येऽतृणं

सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु

॥ ८ ॥

यदध्वस्य क्रविषो मक्षिकाऽऽशु
 यद्वा स्वरो स्वधितौ रिममस्ति ।
 यद्वस्तयोः समितुयंनयेषु
 सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु
 यदूर्वध्यमुदरस्यापवाति
 य आमस्यं क्रविषो गन्धो अस्ति ।
 सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तु
 उत मेधं शृतपाकं पचन्तु
 यत् ते गात्राद्भिना पच्यमानाद्
 अभि शूलं निहतस्यायुधावति ।
 मा तद्भ्यामा श्रिण्ममा तृणेषु
 देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु
 ये वाजिनं परिपद्यन्ति पकं
 य ईमाहुः सुरभिर्निहरेति ।
 ये चार्धतो मांसमिश्रामपासत
 उतो तेषामभिगार्तेन इन्वतु
 यन्नीक्षंणं मांस्पचंन्या उखाया
 या पात्राणि युष्ण आसेचनानि ।
 ऊष्मण्याऽपिधानां चरुणां
 अद्वाः सुनाः परि भूपन्त्यध्वम् ॥ १३ ॥
 निक्रमणं निपदनं विवर्तनं यच्च पङ्क्तिंशमवैतः ।
 यच्च पपौ यच्च यासि जघास
 सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ १४ ॥
 मा त्वाऽग्निर्ध्वनयीद् धुमगन्धिः
 मोखा भ्राजन्त्यभि विक्क जग्धिः ।
 इष्टं धीतमभिगूतं चर्पट्कृतं
 तं देवासुः प्रीतिं शृण्वन्त्यध्वम् ॥ १५ ॥
 यदर्थाय चासं उपस्तृणन्ति
 अधीचानं या द्विरण्यान्यस्मै ।
 मृदानमर्धन्तं पङ्क्तिंशं
 म्रिया देवेषु वा मयन्ति ॥ १६ ॥

यत् ते सुदे महसा शूलतम्यु
 पाण्ण्यां वा कशया या तुतोद ।
 शुचेय ता हविषो अच्यरेषु
 सर्वा ता ते ब्रह्मणा सद्यामि ॥ १७ ॥
 चतुस्त्रिंशद् वाजिनो देवयन्धोः
 वङ्गीरध्वस्य स्वधितिः समेति ।
 अर्चिच्छद्रा गात्रां ययुना कृणोत
 परंष्परनुयुष्या वि शंस्त ॥ १८ ॥
 एकस्त्वपुरध्वस्या विद्वास्ता
 द्वा यन्तारां भवतस्तथं श्रुतः ।
 या ते गात्राणामृतुया कृणोमि
 ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥ १९ ॥
 मा त्वां तपत् प्रिय आत्माऽपियन्तं
 मा स्वधितिस्तन्वु वा तिष्ठिपत् ते ।
 मा तं गृचुरविशस्ताऽतिहार्यं
 छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ २० ॥
 न वा उं एतन्धियसे न रिण्यसि
 देवां इदैपि पृथिभिः सुगेभिः ।
 हरीं ते युजा पृपती अभूतां
 उपास्याद् वाजी धुरि रासंभस्य ॥ २१ ॥
 सुगर्भ्यं नो वाजी स्वद्वयं पुंसः
 पुत्रां उत विश्वापुषं रयिम् ।
 अनाणास्त्वं नो अर्दितिः कृणोतु
 क्षत्रं नो अर्दो वनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥
 ॥ २ ॥ (अ० १।१६३।-१३) विष्टु ।
 यदक्रन्दः प्रथमं जायमान
 उच्यन्समुद्रादुत वा पुरीयात् ।
 श्येनस्यं पक्षा हरिणस्यं बाहू
 उपस्तुत्यं महिं जातं तं अर्धम् ॥ १ ॥
 (३५८१)

यमेन दत्तं त्रित पञ्चमायुनक्
इन्द्रं पणं प्रथमो अध्यातिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्
सृगादश्वं वसवो निरतष्ट
असिं यमो अस्यादित्यो अर्ध्वन्
असिं त्रितो गुह्येन द्यतेन ।
असिं सोमैः समया विपृक्क
आहुस्ते व्रीणि दिवि वन्धनानि
व्रीणि त आहुर्विवि वन्धनानि
व्रीण्यन्तु व्रीण्यन्तः संमुद्रे ।
उतेवं मे वरुणदृष्टन्स्यर्वन्
यत्रा त आहुः परमं जनित्रम्
इमा तं वाजिन्नवमार्जनानी
इमा शफानां सनितुर्निधानां ।
अत्रा ते भद्रा रशना अंपश्यं
ऋतस्य या अमिररन्ति गोपाः
आत्मानै ते मर्नसाऽऽत्तद्वजानां
अवो दिवा पतर्यन्तं पतद्गम् ।
शितौ अपश्यं पथिभिः सुगोभिः
अरेणुमिजैर्हमानं पतन्नि
अत्रा ते रूपमुत्तममंपश्यं
जिगीषमाणमिय आ पदे गोः ।
यदा ते मतो अनु भोगमानद्
आदिद् त्रसिष्टु ओपंधीरजीगः
अनु त्वा रथो अनु मयो अर्ध्वन्
अनु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासुस्तव्यं सत्यमोयुः
अनु देवा ममिरे वीर्ये ते
हिरण्यशूहोऽयो अस्य पादा
मनोजया अरु इन्द्रं आसीत् ।
देवा इदस्य ह्यिररघमायन्
यो अर्ध्वन्तं प्रथमो अध्यातिष्ठत्

ईमान्तासुः सिलिकमध्यमासुः
सं शरणासो दिव्यासो अत्याः ।
हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते
॥ २ ५ ॥ यदाक्षिपुर्दिव्यमज्जमश्वानः ॥ १० ॥
तव शरीरं पतयिष्येर्वन्
तव चित्तं वारं इव धर्जीमान् ।
तव शूहाणि विष्टिता पुह्ना
॥ ३ ॥ अरण्येषु जम्बूराणा चरन्ति ॥ ११ ॥
उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा
देवद्रीक्षा मर्नसा दीर्घानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्य
॥ ४ ॥ अनु पश्चात् कुर्वयो यन्ति रेभाः ॥ १२ ॥
उप प्रागात् परमं यत् सधस्यं
अर्वा अञ्जं पितरं मातरं च ।
अथा देवान्नुष्टेमो हि गम्या
॥ ५ ॥ अथा शास्ते दाशुपे वार्षाणि ॥ १३ ॥
॥ ३ ॥ (ऋ० ७।३८।७-८)
मेनावकणिर्वेष्ठि । वाजिन । त्रिष्टुप् ।
शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु
देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
॥ ६ ॥ जम्भयन्तोऽहिं वृक् रश्नासि
सनेभ्यस्सद्युयवन्नमीवाः ॥ ७ ॥
वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो
धनेषु विप्रा अमृता ऋतवाः ।
॥ ७ ॥ अस्य मध्वः पिवत मादयध्वं
तुसा यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ८ ॥
॥ ४ ॥ (वा० य० ७।४७)
यमार्यं त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतं चर्मशीय
॥ ८ ॥ हयो दात्र पथि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥
॥ ५ ॥ (वा० य० ८।१०)
यस्ते अश्वसर्निर्भक्षो यो गोसनिः
तस्यं त इष्टयन्नुप स्तुतस्तोमस्य
॥ ९ ॥ शस्तोक्यस्वोपहृतस्वोपहृतो भक्षयामि ॥ १२ ॥

॥ ६ ॥ (घा० य० ९।६-९.१३ । वत्सार्थ) , -१५, १९)

अप्सुन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत
प्रदास्तिष्वश्व भवत वाजिनः ।
देवीरापो यो व ऊर्मिः प्रतीतिः
ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाज५ सेत् ॥ ६ ॥

घातौ वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविंशतिः ।
ते अग्नेऽध्वमयुञ्जस्ते अस्मिन्नयमा दधुः ॥ ७ ॥

वातरंश्वा भव वाजिन् युज्यमान
इन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि ।

युञ्जन्तु त्वा मरुतो विदध्वेदस
आ ते त्वष्टां पत्सु ज्वं दधातु ॥ ८ ॥

जघो यस्ते वाजिनिर्हितो गुहा
यः श्येने परीत्तो अचरच्च घातौ ।

तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन
वाजजिञ्च भव समने च पारयिष्णुः ।

वाजिनो वाजजितो वाज५ सरिष्यन्तो
वृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥ ९ ॥

वाजिनो वाजजितोऽध्वान् स्कञ्चुवन्तो
योजना मिमानाः काष्ठां गच्छत

एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति
श्रीवार्यां वद्धो अपिकृश्न आसनि ।

कर्तुं दधिका धनुं सु५सनिष्यदत्
पथामङ्गा५स्यन्वापनीफणत् स्वाहा

उत सास्य द्रवतस्तुरण्यतः
पृषे न वेरनुवाति प्रगर्धिनः ।

श्येनस्यैव ध्रजतो अद्सं परि
दधिक्राणाः सुहोर्जा तरिन्नतः स्वाहा

आ मा वाजस्य प्रसयो जंगम्याद्
पमे घायापृथिनी विदधरूपे ।

आ मा गन्तां पितरां मातरा च
आ मा सोमो अमुतत्त्वेन गम्यात् ।

वाजिनो वाजजितो वाज५ मग्नयाश्नो
वृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥ १० ॥

॥ ७ ॥ (घा० य० ११।१९, १५, १८-२२, २४, २६)
प्रतुं वाजिना द्रव्यं चरिष्णामनु संवतम् ।

दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे
तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥ १२ ॥

प्रतुर्वेदेष्वयं कामप्रदास्ती
गृद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरोहि ।

उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगन्त्युतिः
अभयानि कृण्वन् पूष्णा सुयुजां सुह ॥ १५ ॥

आगत्यं वाज्यध्वानंश्च सर्वा मूषो वि धृनुते ।
अग्निंश्चसधस्यं महति चक्षुषा नि चिकीपते ॥ १८ ॥

आक्रम्यं वाजिन् पृथिवीमग्निर्मिच्छु कृत्वा त्वम् ।
भूम्यां वृत्वार्यं नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् १९

घौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्यं
आत्माऽन्तरिक्षंश्च समुद्रो योनिः ।

विख्याय चक्षुषा त्वमभि तेषु पृतन्यतः ॥ २० ॥
उत्क्राम महते सौमगाय

असादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् ।
वयंश्च स्याम सुमतौ पृथिव्या

अग्निं खनेन्त उपस्ये अस्याः ॥ २१ ॥
उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यवाकः

सुलोकंश्च सुकृतं पृथिव्याम् ।
ततः खनेम सुप्रतीकमग्निं

स्यो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् ॥ २२ ॥
स्थिरो भव वीड्वङ्ग आशुभैव वाज्यवर्च ।

पृथुर्भव सुपदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥ ४४ ॥
प्रेतुं वाजी कर्निकदन्धानंदद्रासंभुः पत्वा ।

भरंश्चाग्निं पुरीष्युं मा पाद्यायुपः पुरा ।
घृपाऽग्निं घृषणं भरंश्चापां गर्भंश्च समुद्रियम् ।

अग्न आ वीहि वीतये ॥ ४६ ॥
(३६१५)

॥ ८ ॥ वा० य० २१३-२.१९)

अभिधा असि भुवनमसि यन्ताऽसि धृता ।
स त्वमग्निं वैश्वानरं, सप्रथसं गच्छ स्वाहाऽरुतः ३
स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये
ब्रह्मन्नश्च भुन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये
तेन राध्यासम् ।

तं यधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राघ्नुहि ॥ ४ ॥

विभूमांघ्रा प्रभूः पित्राऽश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि
मयोऽस्यर्घोऽमि सतिरसि वाज्यासि
वृषाऽसि नमणा असि ।

ययुर्नामाऽसि शिशुर्नामाऽसि
आदित्यानां पत्न्याऽन्विहि ।

देवा आशापाला पतं देवेभ्योऽश्वं मेघाय
प्रोक्षितं रजत इह रन्ति-रिह रमता-
मिह धृति-रिह स्वधृतिः स्वाहा ॥ १९ ॥

॥ ९ ॥ (वा० य० २३१-७, १४-१७, २०-२१, ३४-३७
३९-४४)

युञ्जन्ति यधर्मरुपं चरन्ते पारं तस्युपः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ५ ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपद्मसा रथे ।
शोणां धृष्णु नृवाहसा ॥ ६ ॥

यहातो अपो अगनीगन् प्रियामिन्द्रस्य तन्वम् ।
एतं, स्तौतृत्वेने पथा पुनरश्रुमावर्तयासि नः ७

संश्रितो रुदिमना रथः संश्रितो रुदिमना हर्यः
संश्रितो अन्वसृजा ब्रह्मा सोमपुत्रो गवः ॥ १४ ॥

स्ययं वाजिस्तन्वं कल्पयस्व
स्ययं यजस्व स्वयं जुपस्व ।
महिमा तेऽन्येन न सुघ्नशे ॥ १५ ॥

न वा उ एतन्त्रियसे न रिप्यासि
देवाँर इदं पि पथिभिः सुगोभिः ।

यथासंते सुहृतो यत् ते युयुः
तत्रं त्या देवः संघिता दधातु ॥ १६ ॥

अग्निः पशुरासीत् तेनायजन्तु
स एतल्लोककर्मजयद्यस्मिन्नग्निः
स ते लोको भविष्यति

तं जैष्यसि पिवैता अपः ।
वायुः पशुरासीत् तेनायजन्तु
स एतल्लोककर्मजयद्यस्मिन् वायुः
स ते लोको भविष्यति

तं जैष्यसि पिवैता अपः ।
सूर्यः पशुरासीत् तेनायजन्तु
स एतल्लोककर्मजयद्यस्मिन्सूर्यः
स ते लोको भविष्यति

तं जैष्यसि पिवैता अपः ॥ १७ ॥

ता उमौ चतुरः पदः सुप्रसारयाव
स्युर्गे लोके प्रोर्णवायां
वृषां वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥ २० ॥

उत्संख्या अथ गुदं धेहि समग्निं चारया वृषन् ।
य स्त्रीणां जीवमोर्जनः ॥ २१ ॥

द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च पदपदाः ।
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः
सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३४ ॥

महानाम्यो रेवत्यो विद्या आशाः प्रमूर्चरीः ।
मैथीविद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३५ ॥

नार्यस्ते पत्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषयां ।
देवानां पत्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३६ ॥

रजता हरिणीः सोसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः ।
अश्वस्य वाजिनस्तचि
सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥ ३७ ॥

कस्त्वा छयति कस्त्वा विशास्ति
कस्ते गात्राणि शम्यति ।
क उ ते शमिता क्विः ॥ ३९ ॥

(३६१९)

श्रुतवस्तु श्रुतुथा पथं शमितान्ते वि शासतु ।

संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ४० ॥

अर्धमासाः परंशुपि ते मासा

आ च्छर्यन्तु शम्यन्तः ।

अहोरात्राणि मरुतो विरिष्टं, सूदयन्तु ते ॥ ४१ ॥

दैव्या अध्वर्यवस्त्वा च्छर्यन्तु वि चं शासतु ।

गात्राणि परंशस्ते सिमाः कृष्वन्तु शम्यन्तीः ४२

धौत्सै पृथिव्यन्तरिक्षं वायुद्विन्द्रं पृणातु ते ।

सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु सायुया ॥ ४३ ॥

शं ते परंभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्वपरंभ्यः ।

शमस्त्वभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तर्व ॥ ४४ ॥

॥ १० ॥ (वा० य० १९।४४)

तीमान् घोषान् कृष्वते वृषपाणयः

अध्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।

अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान्

क्षिणन्ति शत्रून् ररनपव्ययन्तः ॥ ४४ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ६।९।१३)

अथर्वो । त्रिष्टुप् ।

तनूष्टै वाजिन् तन्वं नयन्ती

वाममसभ्यं धार्वतु शर्म तुभ्यम् ।

अहुतो महो धरुणाय देवो

दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयात् ॥ ३ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० ११।२५।१)

गोपयः । अनुष्टुप् ।

अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनक्ति प्रथमस्य च ।

उत्कूलमुद्गहो भयोदुह्य प्रति धावतात् ॥ १ ॥

॥ १३ ॥ (सा० ४३५)

ऋण-अथदस्यु । पुर उष्णिक् ।

आधिमया आ वाज वाजिनो

अमं देवस्य सवितुः सवम् ।

स्वर्गो अर्चन्तो जयत

॥ ९ ॥

(३५) दधिष्ठा ।

॥ १ ॥ (श्र० ४।१।१-१०)

वाग्देवो गोतमः । त्रिष्टुप् ।

उत वाजिनं पुरगिन्धिर्यानि

दधिष्ठां दधुर्धुर्धुर्धुर्धुम् ।

श्रुतियं श्येनं प्रुपिनपनुमानं

धुर्धुर्धुर्धुर्धुर्धुर्धुर्धुम्

यं सीमनु प्रयनेय द्रप्यन्

विभ्यः पुरमर्दति हर्षमाणः ।

पुद्मिर्गुर्ध्वन्तं मेधुयं न शूरं

रथतुरं धातमिय धजन्तम्

यः स्मार्कधानो गध्यां समत्सु

सनुतरध्वरति गोपु गच्छन् ।

अविश्रंजीको विदया निचिर्ष्यत्

तिरो अर्दति पर्याप आयोः

उत सैनं वल्लमथि न त्रायुं

अनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ।

नीचार्यमानं जसुरि न श्येनं

श्रवश्चाच्छा पशुमघं युथम्

उत सासु प्रथमः सरिष्यन्

नि वैवेति श्रेणिमी रथानाम् ।

अज्ञं कृष्वानो जन्वो न शुभ्वा

रेणुं रेरेहत् किरणं दध्वान्

उत स्य वाजी सहुरिर्कृतावा

शुश्रूषमाणस्तन्वां समये ।

तुरं यतीपुं तुरयंभ्रुजिष्यो

अधि ध्रुवोः किरते रेणुमज्जन्

उत सास्य तन्युतोर्ध्व घोः

ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।

यदा सहस्रमभि पीमयोधीद्

दुर्वर्तुः सा भवति भीम ऋञ्जन्

॥ ८ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

(३६४८)

उत सांस्य पनयन्ति जनां
जुतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।

उतैर्नमाहुः समिधे वियन्तः

परां दधिका अंसरत् सहस्रैः

॥ ९ ॥

आ दधिकाः शर्वसा पञ्च कृष्टीः

सूर्ये इव ज्योतिषाऽपस्ततान् ।

सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा

पूणकु मध्या समिमा वचांसि

॥ १० ॥

॥ १० ॥ / क्र० ४।२९।(६) त्रिष्टुप्, ६ अक्षरम् ।

आशुं दधिकां तमु नु प्रवाम

दिवस्पृथिव्या उत चीकिराम ।

उच्चन्तीर्मासुपसः सुदयन्तु

अति विश्वानि हरितानि पर्यन्

॥ १ ॥

महर्ष्यैर्भ्यैतः क्रतुप्रा

दधिकावर्णः पुस्वारस्य वृष्णाः ।

यं पुरुष्यो दीदिवान्तं नाग्नि

दुदर्युमिवावरुणा ततुरिम्

॥ २ ॥

यो अदरस्य दधिकावर्णो अकारिष्व

समिधे अग्रा उपसो ध्युष्टौ ।

अनागसं तमादितिः कृणोतु

स मित्रेण वरुणेना सजोपाः

॥ ३ ॥

दधिकावर्णं ह्य ऊजो महो यत्

अमन्महि महतां नाम भुद्रम् ।

स्वस्तये वरुणं मित्रमग्नि

हर्षामह इन्द्रं वज्रवाहुम्

॥ ४ ॥

इन्द्रमिवेदुभये वि हयन्त

उदीरणा यशमुपप्रयन्तः ।

दधिकामु सूदनं मर्त्याय

दुदर्युमिवावरुणा नो अर्ध्वम्

॥ ५ ॥

दधिकावर्णो अकारिष्व

जिष्णोरर्ध्वस्य वाजिनः ।

सुरभि नो मुखी करद्

प्र ण आवृषि तारिपत्

॥ ६ ॥

॥ ६ ॥ (क्र० ४।४०।१-४) १ त्रिष्टुप्, २-४ अगती ।

दधिकावर्ण इदु नु चीकिराम

विश्व्वा इन्मामुपसः सुदयन्तु ।

अपामग्नेरुपसः सूर्यस्य

वृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः

॥ १ ॥

सत्यां भरिषो गविषो दुधन्वसत्

श्रवस्यादिप उपसस्तुरण्यसत् ।

सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो

दधिकावेषुमूर्ज स्वर्जनत्

॥ २ ॥

उत सांस्य द्रवतस्तुरण्यतः

पुणं न वेरन्तु वासि प्रगार्धिनः ।

श्येनस्यैव धजततो अङ्गसं परि

दधिकावर्णः सहोर्जा तरिष्रतः

॥ ३ ॥

उत स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति

श्रीवायां वज्रो अंपिकृश आसनि ।

फरुतं दधिका अलु संतवीत्वत्

पयामङ्गास्यन्वापनीफणत्

॥ ४ ॥

॥ ४ ॥ (क्र० ७।४३।१-५)

मेधावहाणैर्विष्टः । अविष्टः, १ अविष्टः, २ अविष्टः, ३ अविष्टः, ४ अविष्टः, ५ अविष्टः ।

विष्णुपुत्रमन्त्रेण विष्णुपुत्रमन्त्रेण ।

१ अन्तः, २ अन्तः, ३ अन्तः ।

दधिनावाणं बुबुधानो अग्नि
उपं ब्रुव उपसं सूर्यं गाम् ।
ब्रध्नं मंश्चतोर्वरणस्य वधु
ते विश्वास्मद्दुरिता याधयन्तु
दधिकारवां प्रथमो वान्यर्वा
ऽग्ने रथानां भवति प्रजानन् ।
संविदान उपसा सूर्येण
आदित्येभिर्वसुभिःराज्ञैरोभिः
आ नो दधिकाः पृथ्यामनक्तु
ऋतस्य पन्थामन्वेतवा उं ।
शृणोतु नो दैव्यं शार्धो अग्निः
शृण्वन्तु विश्वे महिषा अमूराः
॥ ५ ॥ (वा० य० ३४।३९)

समंध्यरायोपसौ नमन्त
दधिकारैव शुचये पदार्यं ।
अयोजीने वंसुविदं मगं नो
र्यमिवाश्वा वाजिन आ चहन्तु

(३६) हरिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।९६।१-१३)

॥ १ ॥ (ऋ० १०।९६।१-१३)

प्र ते महे विदथे शंसिपं हरी
प्र ते वन्ये वनुषो ह्येतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चाह सेचत
आ त्वा विशन्तु हरिर्वपसं गिरः
हरिं हि योर्निमिभे ये सुमस्वरन्
हिन्यन्ते हरीं दिव्यं यथा सद्गः ।
आ यं पणन्ति हरिर्मिने धेनव
इन्द्राय द्रुपं हरिवन्तमचत
सो अंस्य वज्रो हरितो य आयसो
हरिर्निकामो हरिरा गर्गस्त्वोः ।
पुष्पी मुदिप्रो हरिमन्युसायक
इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ३९ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो
विष्यच्छज्जो हरितो न रथा ।
तुददहिं हरिंशिप्रो य आयसः
सहस्ररोका अमवद्धरिंमरः
त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः
पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेशु यज्यभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुपय्यं ।
असामि राधो हरिजात हर्यतम्
ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद
इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूष्यस्मै सर्वनानि हर्यत
इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे
अरं कामाय हरयो दधन्विरे
स्थिराय हिन्यन् हरयो हरीं तुरा ।
अर्वद्विष्यो हरिभिर्जापमीयते
सो अंस्य कामं हरिवन्तमानशे
हरिंश्मशारुर्हरिकेश आयसः
तुरस्पये यो हरिपा अचर्धत ।
अर्वद्विष्यो हरिर्भिर्वाजिनीवसुः
अति विदवां दुरिता पार्येद्धरी
सुवैव यस्य हरिणी विपेततुः
शिप्रै वाजाय हरिणी दर्विष्वतः ।
प्र यत् कृते चमसे मर्जुद्धरी
पित्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः
उत स्म सन्नं हर्यतस्य पस्त्वोः
अत्यो न वाजं हरिवो अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिपणाऽहर्यदोजसा
बृहद्वयो दधिपे हर्यतश्चिदा
आ रोदंती हर्यमाणो महिक्त्वा
नय्येनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्वमसुर हर्यतं गोः
आविष्ठाधि हरये सूर्याय

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

(३६७७)

आ त्वा हृर्यन्तं प्रयुञ्जो जनानां

रथे बहन्तु हरिंशिप्रमिन्द्र ।

पिवा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो

हृर्यन् यज्ञं संध्रमादे दशौणिम्

अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानां

अथो इदं सर्वानं केवलं ते ।

ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र

सत्रा वृषज्जडरं आ वृषस्व

॥ २ ॥ (चा० य० ८।१३)

उपयामर्गृहीतोऽसि हरिंरसि

हारियोऽनो हरिभ्यां त्वा ।

हयोघाना स्य सहसोमा इन्द्राय

(३७) रथः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ६।४।१६-१८)

गर्भो भारद्वाजः । २६ त्रिष्टुप्, २७ जगतां ।

वनस्पते वीद्धृहो हि भुया

असत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।

गोभिः सन्नद्धो असि वीळ्यस्व

आस्थाता ते जयतु जेतवानि

दिवस्पृथिव्याः पर्योऽज उद्धृतं

वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहैः ।

अपामोऽमानं परि गोभिराभृतं

इन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज

इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं

मित्रस्य गर्भो घर्षणस्य नारिः ।

सेमां नो हृव्यदातिं जुषाणो

देव रथ प्रति हृव्या गृभाय

॥ २ ॥ (४-५) (चा० य० ९।५)

इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसास्त्वयायं वाजर सेत् ५

॥ ३ ॥ (चा० य० १०।०१)

इन्द्रस्य वज्रोऽसि

मिश्राघर्षणयोस्त्वा प्रशाखोः प्रशिषा युनग्मि ।

अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वा

अरिष्टो अर्जो मरुतां प्रसवेन जुया

अपाम मनसा समिन्द्रियेण

॥ २१ ॥

(३८) रथाङ्गानि ।

॥ १ ॥ (ऋ० ३।५३।१७-२०)

विद्यामित्रो गाभिनः । त्रिष्टुप्, १८ बृहती, २० अनुष्टुप् ।

स्थिरौ गावौ भवतां वीळुरक्षो

मेपा वि बर्हि मा युगं विशारि ।

इन्द्रः पातल्यं ददतां शरितोः

अरिष्टनेमे अभि नः सचस्व

॥ १७ ॥

वलं धेहि तनूपुं नो वलमिन्द्रानळुस्तु नः ।

वलं तोकाय तर्नयाय जीवसे

त्वं हि वलदा असि

अभि व्ययस्व खदिरस्य सारं

ओजो धेहि स्पन्दने विशापायाम् ।

अक्षं वीळो वीळित वीळ्यस्व

मा यामादस्मादयं जीहिपो नः

॥ १९ ॥

अयमस्मान् वनस्पतिः

मा च हा मा च रीरिपत् ।

स्वत्या गृहेभ्य आऽवसा आ विमोचनात् ॥ २० ॥

(३९) दुन्दुभिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ६।४।१९-३१)

गर्भो भारद्वाजः । (३१ दुन्दुभिः) । त्रिष्टुप् ।

उपं श्वासय पृथिवीमुत यां

पुंरुत्रा ते मनुतां विष्टितं जगत् ।

स दुन्दुभे सुजूरिन्द्रेण देवैः

दूराद् दर्वीयो अपं सेध शत्रून्

आ क्रन्दय वलमोजो न आ धा

निः प्रनिहि दुरिता वार्धमानः ।

अपं प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत

इन्द्रस्य मुष्टिरंसि वीळ्यस्व

॥ ३० ॥

(३६९६)

आमूर्ज प्रत्यावर्तयेमाः

केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति ।

समश्वपर्णाश्वरन्ति नो नरो

अस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु

॥ ३१ ॥

॥ २ ॥ [४-५] (वा० य० १।११-१२)

वृहस्पते वाजं जय वृहस्पतये वाचं वदत

वृहस्पतिं वाजं जापयत ।

इन्द्र वाजं जयेन्द्राय वाचं वदत

इन्द्रं वाजं जापयत

॥ ११ ॥

एषा वः सा सत्या संवार्गमूद्

यया वृहस्पतिं वाजमर्जीजपत

अर्जीजपत वृहस्पतिं वाजं

वर्नस्पतयो विमुच्यध्वम् ।

एषा वः सा सत्या संवार्गमूद्

ययेन्द्रं वाजमर्जीजपत

अर्जीजपतेन्द्रं वाजं वर्नस्पतयो विमुच्यध्वम् ॥ १२ ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० ५।२०।१-१२)

ब्रह्मा । वनस्पतिः, दुन्दुभिः । मिष्टुप्, १ जगती ।

उच्चोपो दुन्दुभिः सत्वनायन्

वानस्पत्यः संभृत उश्रियामिः ।

वाचं क्षुण्वानो दमयन्सपत्नान्

सिंह इष जेष्यन्नभि तैस्तनीदि

मिंह इवास्तानीद् दृषयो विर्यदः

अभिग्रन्दध्रुमो वासितामिच ।

वृषा त्वं यध्वयस्ते सपत्नां

पेन्द्रन्ने शुष्मां अभिमातिपाहः

वृषेय युथे महसा विदानो

गुयन्नभि रथ संघनाजित् ।

शुचा विध्य हृदयं परेपां

दित्या ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शश्रवः

॥ ३ ॥

संजयन् पृतेना ऊर्ध्वमायुः

गृष्टा गृह्णानो यद्गृधा वि चध्व ।

देवो वाचं दुन्दुम् आ गुरुस्व

वेधाः शश्रूणामुप भरस्व वेदः

दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तां

आदाण्यती नाथिता घोषयुद्धा ।

नारी पुत्रं धावतु हस्तगृहा

अभिप्रो भीता समरे वधानाम्

पूर्वो दुन्दुमे प्र वंदासि वाचं

भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः ।

अमित्रसेनामभिजज्ञमानो

शुमद् वद दुन्दुमे सुनुतावत्

अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु

पृथक् ते ध्वनयो यन्तु शोभम् ।

अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः

श्लोकहन्मित्रतूयीय स्वर्धो

धीभिः कृतः प्र वंदाति वाचं

उर्ध्वेय सत्वनामायुधानि ।

इन्द्रमेदी सत्यनो नि ह्यस्व

मिन्दैरमित्रां अयं जड्यनीहिं

संक्रन्दनः प्रवदो धृष्णपेणः

प्रवेदकृद् यद्गृधा ग्रामघोषो ।

श्रेयो वन्वानो वयुनानि विद्वान्

कीर्तिं बृहभ्यो वि हर द्विराजे

श्रेयःकेतो वसुजित् सहीयान्

संग्रामजित् संशितो ब्रह्मणाऽसि ।

अंशूर्निव त्रावाऽधिपवणे

अद्विगन्वन् दुन्दुभेऽधि नृत्य वेदः

शुनुपाप्नीपाडभिमातिपाहो

गवेर्पणः सहमान उद्वित् ।

धाम्नीध मन्त्रं प्र भरस्व वाचं

सांग्रामजित्वायेपमुद् वदेह

॥ ११ ॥

(३७०५)

अच्युतच्युत् सुमदो गर्मिष्ठो
 मृधो जेता पुरपताऽयोधः ।
 इन्द्रेण गुप्तो विदथा निचिस्यद्
 हृद्योतेनो ह्रिपतां याहि शीमम् ॥ १२ ॥
 ॥ ४ ॥ (अथर्व० ५।२।१-१)
 अतृष्टु १, ४-५ पथ्यापत्रकिः १ जगती ।
 विहृदयं चैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे ।
 विद्वेषं कदमशं मयमामित्रेषु
 नि दंघ्नस्ययैनात् दुन्दुभे जहि ॥ १ ॥
 उद्वेषमाना मर्नसा चक्षुषा हृदयेन च ।
 धावन्तु विभ्यतोऽमित्राः प्रज्ञसेनाज्ये हृते ॥ २ ॥
 धानस्पत्यः संभृत उच्चिर्यामिर्विश्वगोत्र्यः ।
 प्रत्रानममित्रैर्म्यो वदाज्यैनामिघोरितः ॥ ३ ॥
 यथा मृगाः संविजन्त आरण्याः पुरुषादधि ।
 एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रान्नि क्रन्द ॥ ४ ॥
 प्र त्रासयार्यो चित्तानि मोहय ॥ ४ ॥
 यथा वृकादजावयो धावन्ति बहु विभ्यतीः ।
 एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रान्नि क्रन्द प्र० ॥ ५ ॥
 यथा श्येनात् पतत्रिणः संविजन्ते
 अहर्दिवि सिहस्यं स्तनयोर्यथा ।
 एवा त्वं दुन्दुभे० ॥ ६ ॥
 पराऽमित्रान् दुन्दुभिना हरिणस्याजिनैन च ।
 सर्वे देवा अतिव्रसन् वे संप्रामस्येशते ॥ ७ ॥
 यैरिन्द्रः प्रकीडते पक्षैपैद्वयायया सह ।
 तैरमित्रास्त्रसन्तु नोऽमी ये यन्त्यनीकदाः ॥ ८ ॥
 ज्यायोपा दुन्दुभयोऽभि क्रौशन्तु या दिशः ।
 सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकदाः ॥ ९ ॥

(४०) द्रुघण, इन्द्रो वा ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१०१।२-२२)

मुद्रलो भार्गवः । निष्पृ १, ३, १२ वृहती ।

प्र ते रथं मिथुहृत - मिन्द्रोऽवतु धृष्णुया ।
 अस्मिन्नाजौ पुरुहृत श्रवाय्यं धनभक्षेषु नोऽथ ॥ १ ॥

उत् स्म वातो वहति वासो अस्या
 अधिरथं यदजयत् सहस्रम् ।
 रथीरभून्मुद्रलानी गर्विष्ठौ
 भरे हृतं व्यचेदिन्द्रसेना ॥ २ ॥
 अन्तर्यच्छ जिघांसतो वज्रमिन्द्रमिदासतः ।
 दासस्य वा मघवन्नायस्य वा
 सनुतयैवया वधम् ॥ ३ ॥
 उद्रो हृदमपिवज्रहोपाणः
 कृष्टं स तृहदभिमातिमेति ।
 प्र मुष्कमारः श्रवं इच्छमानो
 अजिरं याह अमरत् सियासन् ॥ ४ ॥
 न्यक्रन्दयक्षुपयन्तं पत्नं
 अमेहयन् वृपमं मर्च्यं आज्ञेः ।
 तेन सूर्मवं शतवत् सहस्रं
 गवां मुद्रलः प्रधने जिगाय ॥ ५ ॥
 कर्कद्वे वृपमो युक्त आसीद्
 अवावचीत् सारथिरस्य केशी ।
 दुर्धैर्युक्तस्य द्रवतः सहानस
 ऋच्छन्ति प्मा निष्पदौ मुद्रलानीम् ॥ ६ ॥
 उत प्रधिसुदहस्य विद्वान्
 उपायुनग्वंसंगमत्र शिर्शन् ।
 इन्द्र उदावत् पतिमन्व्यानां
 अरहत पद्याभिः क्रुत्रान् ॥ ७ ॥
 शुनमं प्राण्यचरत् कपर्दी
 धरत्रायां दार्वानहमानः ।
 नृभ्यानि कृण्वन् बृहद्ये जनाय
 गाः पंस्यशानस्ताविपीरधत् ॥ ८ ॥
 इमं तं पश्य वृपमस्य युञ्जं
 काष्ठाया मर्च्ये द्रुघणं शर्यान्म् ।
 येन जिगाय शतवत् सहस्रं
 गवां मुद्रलः पृतनाज्येषु ॥ ९ ॥

आरे अथा को न्विदुत्था ददशो
 यं युञ्जन्ति तन्वा स्थापयन्ति ।
 नास्मै तृणं नोदकमा भून्ति
 उत्तरो धुरो बहति प्रदेदिशत् ॥ १० ॥
 परिवृन्तेव पतिविद्यमानन्
 पीप्याना कृचक्रेणेष सिञ्चन् ।
 एपैर्प्या चिद्रथ्या जयेम
 सुमद्गलं सिनवदस्तु सातम् ॥ ११ ॥
 त्वं विश्वस्य जगत—श्चक्षुरिन्द्रासि चक्षुषः ।
 घृणा यदाजिं वृषणा सिपाससि
 चोदयन् वधिणा युजा ॥ २० ॥

(४१) सङ्ग्रामाशिपः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ६।७।११-१९)

पाशुमोद्वाजः । १ वर्म, २ धनुः, ३ उवा, ४ आरानो,
 ५ इपुधिः, ६ (पूर्वाधस्य) सारयिः, ६ (उत्तराधस्य) रश्मयः,
 ७ अथाः, ८ रथः, ९ रथगोपा, १० ब्राह्मण-पितृ-सोम-
 पाशाशुषिको-पूषाणः, ११-१२ १५-१६ इषवः, १३ प्रतोदः,
 १४ इन्द्रा, १७ युद्धभूमि-व्यव-प्रदानरथत्यादयः,
 १८ वर्म-सोम-वपनाः, १९ देवप्रदालि । त्रिष्टुप्,
 ६-१० अगर्गः, १२, १३ १५, १६, १९ अनुष्टुप्; १७ पङ्क्तिः।
 जीमूर्तस्येव भवति प्रतीकं
 यद्दमो याति सुमदासुपस्यै ।
 अनायिञ्जया तन्वा जप त्वं
 स त्वा यमैणो महिमा विपत्तुं ॥ १ ॥
 धन्यता गा धन्यनाजि जयेम
 धन्यना तीमाः सुमदो जयेम ।
 धनुः शशोरपकामं कृणोति
 धन्यना सर्पोः प्रदिदो जयेम ॥ २ ॥
 परयन्तीपेदा र्गनीगन्ति कर्णे
 नियं सर्गायं परिपम्यज्ञाना ।
 योरेव शिष्टे विन्याधि धन्यन्
 उवा इयं संगते पारयन्ती ॥ ३ ॥

ते आचरन्ती समनेव योपा
 मातेव पुत्रं विभृतामुपस्यै ।
 अप शत्रून् विध्यतां संविदाने
 आर्त्ता इमे विष्फुरन्ती अभिमान् ॥ ४ ॥
 वृद्धीनां पिता बृहिरस्य पुत्रः
 चिश्वा कृणोति समनावगत्य ।
 इपुधिः सङ्गाः पृतनाश्च सर्वाः
 पुष्टे निनदो जयति प्रसृतः ॥ ५ ॥
 रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरो
 यत्रयत्र कामयते सुपाशुधिः ।
 अभीशूनां महिमानं पनायत्
 मनः पश्चादपुं यच्छन्ति रश्मयः ॥ ६ ॥
 तीवान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयो
 अभ्या रथैभिः सह वाजयन्तः ।
 अवकामन्तः प्रपदैरभिमान्
 क्षिणन्ति शत्रून्पदव्ययन्तः ॥ ७ ॥
 रथवाहनं हविरस्य नाम
 यत्रायुधं निहितमस्य यमै ।
 तत्रा रथमुप श्रमं संदेम
 विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥ ८ ॥
 स्वातुपंसदः पितरो वयोधाः
 कृच्छ्रेधितः शर्कीयन्तो र्गभीराः ।
 चित्रसेना इपुयला अमृधाः
 सतोपीरा उरवो घातसाहाः ॥ ९ ॥
 ग्राह्मणासः पितरः सोम्यासः
 शिवे नो धार्यापृथिवी भेदेहसां ।
 पूषा नः पातु दुरिताहतायुधो
 रथा मार्किनो अघशौम ईशत ॥ १० ॥
 सुपर्णं पंत्ने मुणो धम्या दन्तो
 गोभिः संनडा पतति प्रमृता ।
 यत्रा नरः सं स्य वि स्य द्रथन्ति
 तत्रासाभ्यमिर्षयः शर्मो धमन् ॥ ११ ॥

ऋजीति परिं वृष्टिं नो ऽदमां भवतु नस्तनूः ।
 सोमो अर्थिं ब्रवीतु नो ऽदितिः शर्मं यच्छतु ॥१२॥
 आ जट्यन्ति सान्विपां जघनां उपे जिघ्रते ।
 अर्धाजनि प्रचेत्सो ऽर्धान्त्सुमत्सुं चोदय ॥१३॥
 अर्हिरिव भोगैः पर्वति वाहुं
 ज्यायां हेति परियाधमानः ।
 हस्तघ्नो विश्वां व्युनाति विद्वान्
 पुमान् पुमांसं परिं पातु विश्वतः ॥ १४ ॥
 आर्लाक्ता या रुदशीर्ष्णा
 अथो यस्या अथो मुसम् ।
 इदं पर्जन्यरेतसु इष्यं देव्यै बृहन्नमः ॥ १५ ॥
 अर्बसुप्रा परां पतु शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
 गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व
 माऽमीपां कं चनोच्छ्रियः ॥ १६ ॥
 यत्रे वाणाः सुपतन्ति कुमार विंशिष्वा इव ।
 तत्रां नो ब्रह्मणस्पति—रदितिः शर्मं यच्छतु
 विश्वाहा शर्मं यच्छतु ॥ १७ ॥
 मर्माणि ते वर्मणा द्यादयामि
 सोमस्त्वा राजामृतेनानुं वस्ताम् ।
 उरोर्धरीयो वरुणस्ते कृणोतु
 जयन्तं त्वाऽनुं देवा मंदन्तु ॥ १८ ॥
 यो नः स्यो अरणो यश्च निष्टयो जिघांसति ।
 देवास्तं सर्वे धूयन्तु ब्रह्म वर्मं ममान्तरम् ॥१९॥

॥ २ ॥ (सा० १८६४-६५, १८७१) त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३
 कङ्काः सुपर्णा अनु यन्वेनान्
 १ २ ३ १ २ ३ १ २
 गृध्राणामभ्रमसावस्तु सना ।
 १ २ ३ १ २ ३
 मैपां मोच्यवहारश्च नेन्द्र
 १ २ ३ १ २ ३ १ २
 वयांस्येनाननुसंयन्तु सर्वांश्च ॥ १ ॥
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
 अमित्रसेनां मघवन्नसां छत्रयतीमभि ।
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
 उमौ तामिन्द्र घ्नन्नमिश्च दहतं प्रति ॥ २ ॥

अन्या अमित्रा भवताशीर्ष्णाऽहय इव ।
 तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरवरम् ॥ ३ ॥

(४२) राजा ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०१७७३।१-६)

ध्रुव आङ्गिरसः । अनुष्टुप् ।

आ त्वाऽहार्पमन्तरैधि ध्रुवस्तिष्ठार्थिचाचलिः ।
 विशस्त्वा सर्वां वान्छन्तु
 मा त्वन्नाष्टमधिं भ्रशत् ॥ १ ॥
 इहैवधिं मापं च्योष्टाः पर्वत इवाविचाचलिः ।
 इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठे—ह राष्ट्रमु धारय ॥ २ ॥
 इममिन्द्रो अदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषां ।
 तस्मै सोमो अर्थिं ब्रवत् तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः ३
 ध्रुवा द्यौरुधा पृथिवी ध्रुवास्तः पर्वता इमे ।
 ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ४
 ध्रुवं ते राजा वरणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
 ध्रुवं त इन्द्रश्चामिश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥५॥
 ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ऽभि सोमं मृशामसि ।
 अयो त इन्द्रः केवली—विशो बलिहृतस्करत् ॥६॥

॥ २ ॥ (ऋ० १०१७७३।१-५)

अभीवर्ते आङ्गिरसः । अनुष्टुप् ।

अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवापुते ।
 तेनास्मान् ब्रह्मणस्पते ऽभि राष्ट्रायं वतैय ॥ १ ॥
 अग्निवृत्यं सुपत्ना—नमि या नो अरातयः ।
 अभि पृतन्यन्तं तिष्ठा—मि यो न इरस्यति ॥ २ ॥
 अभि त्वां देवः संविता ऽभि सोमो अवीवृतत् ।
 अभि त्वा विश्वां भूतानि अभीवर्ते यथाऽसंसि ॥३॥
 येनेन्द्रो हविषा कृत्य—मघद् शुम्न्युत्तमः ।
 इदं तदकिं देवा असपत्नः किलाभुवम् ॥ ४ ॥

असपत्नः सपत्नहा ऽभिराष्ट्रो विपासुहिः ।
यथाऽहमेपां भुतानां विराजानि जनस्य च ॥५॥

॥ ३ ॥ (ऋ० ६।१७।८)

भरद्वाजे वाहस्पत्यः । चायमानो राजा । त्रिष्टुप् ।

द्वयौ अग्ने रथिनो विशतिं गा
धूमतो मधवा मह्यं सत्राद् ।
अभ्यावर्तौ चायमानो ददाति
दृणाशयं दक्षिणा पार्थिवानाम् ॥ ८ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० ४।११।१-७)

वशिष्ठ, अथर्वो वा । सत्रियो राजा, इन्द्रश्च । त्रिष्टुप् ।

इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं
विशामेकवृष कृणु त्वम् ।
निरमित्रानक्षुण्णस्य सर्वास्तान्
रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु ॥ १ ॥

एवं भञ्ज ग्रामे अश्वेषु गोषु
निष्टं भञ्ज यो अमित्रो अस्य ।

वर्षं क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र
शत्रुं रन्धय सर्वमस्मै
अयमस्तु धनेपतिर्धनानां ॥ २ ॥

अय विशां विशपतिरस्तु राजा ।

अस्मिन्निन्द्र महि वचसि धेहि
अयर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य ॥ ३ ॥

अस्मै द्यावापृथिवी भूरे धामं
मुंहायां घर्मदुर्घे इव धेनु ।

अय राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात्
प्रियो गवामोर्धनानां पशुनाम् ॥ ४ ॥

युनक्ति त उच्चरायन्तमिन्द्रं
येन जयन्ति न पराजयन्ते ।
यस्त्वा करदेकवृषं जनानां
उत राशामुत्तमं मानवानाम् ॥ ५ ॥

उत्तरस्यमधरे ते सपत्ना
ये के च राजान् प्रतिशत्रयस्ते ।
एकवृष इन्द्रसया जिगीवान्
शत्रूयतामा भ्राज भोजनानि ॥ ६ ॥

सिंहप्रतीको विशां अद्धि सर्वा
व्याघ्रप्रतीकोऽचं धाधस्व शत्रून् ।
एकवृष इन्द्रसया जिगीवां
शत्रूयतामा विदा भोजनानि ॥ ७ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० ६।८८।३)

अथर्वो । त्रिष्टुप् ।

ध्रुवोऽच्युतः प्र मृणीहि शत्रून्
शत्रूयतोऽधरान् पादयस्व ।
सर्वा दिशः समनसः सुधीचीः
ध्रुवार्यं ते सामितिः कल्पतामिह ॥ ३ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० ७।१४।१)

सोम (राजा) । अनुष्टुप् ।

ध्रुव ध्रुवेण हविषाऽद्य सोमं नयामसि ।
यथा न इन्द्रः केवलीर्विशः समनसस्करत् ॥ १ ॥

(१७७०)

विष्णुः (उपेन्द्रः)

॥ १ ॥ (ऋ० १।१२।१६-२१)

मेघातिथिः काण्वः । विष्णुः । गायत्री ।

अतो देवा अंघन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
 पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १६ ॥
 इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
 समूह्लमस्य पांसुरे ॥ १७ ॥
 श्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
 अतो धर्माणि धारयन् ॥ १८ ॥
 विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो ब्रतानि पश्यथे ।
 इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १९ ॥
 तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सुरयः ।
 दिवीव चक्षुराततम् ॥ २० ॥
 तद्विष्णोः विपन्यथो जागृवांसः समिन्धते ।
 विष्णोर्वैतपरमं पदम् ॥ २१ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।१५।१-६)

दांपतमा ओबय्यः । विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वीचं
 यः पार्थिवानि वि ममे रजांसि ।
 यो अस्कंभाप्यदुत्तरं सुघस्यं
 विचक्रमाणस्त्रेधोर्धगायः ॥ १ ॥

प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण
 मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
 यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषु
 अधिक्षिपन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २ ॥
 प्र विष्णोर्वै-शूपमेतु मन्मं
 गिरिक्षितं उरुगायाय वृष्णे ।
 य इदं दीर्घं प्रयतं सुघस्यं
 एको विममे त्रिमिरित् पदेभिः ॥ ३ ॥
 यस्य श्री पूर्णा मधुना पदानि
 अक्षीयमाणा स्वघया मर्दन्ति ।
 य उं त्रिधातुं पृथिवीमुत्त धां
 एको दाधार भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥
 तदस्य त्रियमभि पाथो अस्यां
 नरो यत्र देवयथो मर्दन्ति ।
 उरुकमस्य स हि कर्धुरिथा
 विष्णोः पदे परमे मध्व उत्तः ॥ ५ ॥
 ता धां धास्तं न्युश्मसि गर्मथ्यं
 यत्र गाधो भूरिद्रंगा अयासः ।
 अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णाः ।
 परमं पदमथं भाति भूरि ॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ (अ० १।१५।१-६)

दीर्घनामा औचक्यः । विष्णुः, १-३ इन्द्राविष्णु । जगती ।

प्र वृः पांतमन्धसो धियायते
महे शूरापि विष्णवे चार्चत ।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या
महस्तस्यतुरर्षतेव साधुना
त्येपमित्या समरणं शिमीधतोः
इन्द्राविष्णु सुतपा वासुरुष्यति ।

॥ १ ॥

या मल्यीय प्रतिध्रीयमानमित्
शूशानोरस्तुरसनामुक्यथः
ता ई वर्धन्ति महास्य पौंस्यं
नि मातरां नयति रेतसे भुजे ।

॥ २ ॥

दधाति पुत्रोऽर्वरं परं पितुः
नामं तृतीयमधि रोचने द्विवः
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि
इनस्यं प्रातुर्युकस्यं मीळहृषः ।
यः पार्थिवानि त्रिभिदिद् विगामाभिः

॥ ३ ॥

उरु क्रमिद्रोगायाय जीवसे
दे इदस्य क्रमणे स्वर्दशो
गमिष्याय मल्यो भुरष्यति ।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्गति
पर्यधन पतयन्तः पतत्रिणाः
शुतुभिः स्त्राकं नयति च नार्यभिः

॥ ४ ॥

धुमां न पुत्तं ध्यतीरयीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमानं श्रुधर्मिः
पुयार्धुमारः प्रत्येत्पाह्वयम्

॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ (अ० १।१५।१-५)

दीर्घनामा औचक्यः । विष्णुः । जगती ।

भयां मित्रो न शेष्यो धुनासुतिः
विभ्रंतपुम्न पयया उं सुप्रधाः ।
धपां मे विष्णो पिदुर्गा चिदर्थ्यः
भ्नेमां युद्धश्च राष्यो ह्यिपर्ता

॥ १ ॥

यः पुर्व्याय वेधसे नवीयसे
सुमजानये विष्णवे ददांशति ।
यो जातमस्य महतो महि ब्रधत्

॥ २ ॥

सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत्
तमुं स्तोतारः पुर्व्यं यथा विदः
श्रुतस्य र्षं जनुषां पिपतेज ।

आस्यं जानन्तो नामं चिद् विधक्तन
महस्ते विष्णो सुमतिं भंजामहे

॥ ३ ॥

तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना
कृतं सचन्त मार्सतस्य वेधसः ।

दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं

मजं च विष्णुः सखिवां अपोर्णते

॥ ४ ॥

आ यो विवायं सचथाय वैव्यं

इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः ।

वेधा अजिन्वत् त्रिपधस्य आर्थं

श्रुतस्यं भागे यजमानमार्भजत्

॥ ५ ॥

॥ ५ ॥ (अ० ५।१।३)

श्रुतिः-बधुत आश्रयः । महदुदविष्णवः । विष्णु ।

तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त

रुद्र यत्ते जनिम चार्क चित्रम् ।

पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि

तेनं पासि गुह्यं नाम गोनाम्

॥ ३ ॥

॥ ६ ॥ (अ० ६।१५।१-८)

महस्यलो भरहाजः । इन्द्राविष्णु । त्रिपुष् ।

सं यां कर्मणा समिया दिन्तोमि

इन्द्राविष्णु अपसस्पादे अस्य ।

जुपेयो मसं द्रविणं च धत्तं

अरिरेनेः पृथिभिः पारयन्ता

॥ १ ॥

या विश्वासां जनितारं मतीनां

इन्द्राविष्णु कलशां सोमधानां ।

प्र यां गिरः शस्यमाना धयन्तु

प्र स्तोमांसो गीयमानासो अर्कः

॥ २ ॥

(१०१६)

इन्द्राविष्णु मद्पती मदानां
आ सोमं यातं द्रविणो दधाना ।
सं वामञ्जन्वक्तुर्मिर्मतीनां
सं स्तोमांसः शस्यमानास उन्धैः

॥ ३ ॥

आ वामभ्वासो अभिमातिपाह
इन्द्राविष्णु सधमादो वहन्तु ।
जुपेयां विभ्वा हर्चना मतीनां
उप ब्रह्माणि शृणुतं गिरौ मे
इन्द्राविष्णु तत् पनुयार्यं वां
सोमस्य मद् उरु चक्रमाये ।

॥ ४ ॥

अर्हणुतमन्तरिक्षं वरीयो
अप्रथतं जीवसे नो रजांसि

॥ ५ ॥

इन्द्राविष्णु हविषा वावृधाना
अग्राद्धाना नमसा रातहव्या ।
घृतासुती द्रविणं धत्तमसे
संमुद्रः श्यः कलशः सोमधानः

॥ ६ ॥

इन्द्राविष्णु पिबतं मर्षो अस्य
सोमस्य दक्षा जडरं पृणेत्याम् ।
आ वामभ्वासि मदिराण्यग्मन्
उप ब्रह्माणि शृणुतं हर्व मे

॥ ७ ॥

उभा जिग्यथुर्न परां जयेथे
न परां जिग्ये कतुरश्चनैर्नोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां
त्रेधा सहस्रं वि तदस्येत्याम्

॥ ८ ॥

॥ ७ ॥ (अ० ७।१९।१-७)

मंत्रावहणिविष्टः । विष्णुः, ४-६ इन्द्राविष्णु । त्रिष्टुप् ।

परो मात्रया तुन्वा वृधान
न तं महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
उभे तं विद्म रजसी पृथिव्या
विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से

॥ १ ॥

न ते विष्णो जायमानो न जातो
देवं महिम्नः परमन्तमाप ।
उदस्तभ्ना नाकमूषं वृहन्तं
दाघर्यं प्राचीं ककुमं पृथिव्याः

॥ २ ॥

इरावती धेनुमती हि भूतं
स्यवसिनी मनुषे दशस्या ।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते
दाघर्यं पृथिवीमभितो मयूखैः
उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं
जनयन्ता सूर्यमुपासमग्निम् ।

॥ ३ ॥

दासस्य चिद् वृषाग्निप्रस्यं माया
जृध्नयुर्नरा पृतनाज्येषु

॥ ४ ॥

इन्द्राविष्णु दंदिताः शम्बरस्य
नव पुरो नयातं च आधिष्टम् ।
शतं वचिनः सहस्रं च साकं
हयो अंप्रत्यसुरस्य वीरान्

॥ ५ ॥

इयं मनीषा बृहती बृहन्ता
उरुक्रमा तवसा वर्धयन्ती ।
रे वां स्तोमं विदर्येषु विष्णो
पिन्वतमिषो वृजनेधिन्द्र

॥ ६ ॥

वपन्ते ते विष्णुघ्नास आ कृणोमि
तन्मे जुपस्व शिपिविष्ट ह्यन्म् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरां मे
युयं पातं स्व्यस्तिभिः सदां नः

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥ (अ० ७।१०।१-६)

मंत्रावहणिविष्टः । विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

नू मतो दयते सन्निप्यन्
यो विष्णव उरगायाय दाशत् ।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात
प्रातारन्तं नर्यामाविवासात्

॥ १ ॥

त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्त्यां
अप्रयुतामेवयायो मतिं दाः ।

पत्नीं यथा नः सुवितस्य भूरेः
अर्थावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः

त्रिदिवः पृथिवीमेप पतां
वि चक्रमे शतचैसं महित्वा ।

प्र विष्णुरस्तु त्वसस्तधीयान्
त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नामं

वि चक्रमे पृथिवीमेप पतां
क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।

ध्रुवास्तौ अस्य कौरयो जनांस
उरुक्षितिं सृ जनिमा चकार

प्र तत् तै अद्य शिपिविष्ट नाम्
अर्यः शैसाभि वयुनानि विद्वान् ।

तं त्वां शृणामि त्वसस्तमव्यान्
क्षयन्तमस्य रजसः पराके

किमित् तै विष्णो परिचर्यं भुत्
प्र यद् ध्रुवक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।

मा वर्षो असदप गृह पतद्
यदन्यरूपः समिथे वभूयं

घर्षत् ते विष्णवांस आ कृणोमि
तन्मे जुपस्व शिपिविष्ट ह्वयम् ।

वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ९ ॥ (अ० १०१८४११)

त्वष्टा, गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्य । १ विष्णु-त्वष्ट-
प्रजापति-घातारः, २ गिनीवाली सरस्वत्यश्विनः,
३ अश्विनौ । अनुष्टुप् ।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वर्षां रूपाणि पिशातु ।

आ सिंचतु प्रजापति-र्याता गर्भे दधातु ते ॥ १ ॥

॥ १० ॥ (अथर्व० ३।१०।४,७)

वशिष्ठः । ४ सोमा, अग्निः, आदित्यः, विष्णुः, ब्रह्मा, बृहस्पतिः,
७ अथर्वा, बृहस्पतिः इन्द्रः, घातः, विष्णुः, गरुडग्री, षडिति,
वाभोः । अनुष्टुप् ।

॥ २ ॥

सोमं राजानमर्थसेऽग्निं ग्रीभिर्दयामदे ।

आविसं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ ४ ॥

अयमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चादय ।

घातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च याजिनम् ॥ ७ ॥

॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ३।१७।५)

अथर्वा । विष्णुः, ब्रह्मापमौवो, वीरुषः । भूरिकृ ।

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः

कल्माषेभ्रीवो रक्षिता वीरुष इयवः ।

॥ ४ ॥

तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो

रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम पर्यो अस्तु ।

योऽस्मान्द्रेष्टि यं वयं द्विष्मः

तं यो जम्भे दधमः ॥ ५ ॥

॥ ५ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० ५।२६।७)

ब्रह्मा । विष्णुः । द्विपदा प्राजापत्या बृहती ।

विष्णुयुनक्तु बहुधा तपोस्यस्मिन्ब्रह्मे सुयुजः स्वाहा ७

॥ १३ ॥ (अथर्व० ६।३।१)

अथर्वा । इन्द्रापूषणो, अदितिः, महतः, अर्वा नपात्, शिन्धवा,
विष्णुः, योः । पथ्याबृहती ।

॥ ६ ॥

पातं न इन्द्रापूषणार्दितिः पान्तुं मरुतैः ।

अर्पो नपात्सिन्धवः सप्त पातन्

पान्तुं नो विष्णुस्त द्यौः ॥ १ ॥

॥ ७ ॥

॥ १४ ॥ (अथर्व० ७।१७।४)

सृष्टः । अग्निः, त्वष्टा, विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

घाता सतिः संवितेदं जुपन्तां

प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः ।

त्वष्टा विष्णुः प्रजयां संरराणो

यजमानाय द्रविणं दधातु ॥ ४ ॥

(१८१३)

<p>॥ १५ (अथयं ० ७।१५।१-०) मेधातिथिः । विष्णुः, वरुणः । त्रिदश ।</p>	<p>श्रीणि पदा वि चक्रमे इतो धर्माणि धारयन् विष्णोः कर्माणि पश्यत इन्द्रस्य युज्यः सर्गा तद्विष्णोः परमं पुदं दिवीच चभ्रुवार्ततम् दिवो विष्ण उत वां पृथिव्याः महो विष्ण उरोरन्तारिस्ताव । दस्तां पृणस्य पृष्टुभिर्वृमर्ष्यः आप्रयेच्छु दक्षिणादोत सत्यान्</p>	<p>विष्णुर्गोपा मदाभ्यः । ॥ ५ ॥ यतो यतानि परपदो । ॥ ६ ॥ मदां पश्यन्ति सूर्यः । ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥</p>	
<p>ययोरोजसा स्वमिता रजांसि यो धीर्यधीरर्तमा शविष्ठा । यो पर्यते अप्रतीतौ सद्दोभिः विष्णुमगन्वर्षणं पृथ्वीतिः यस्येदं प्रादिशि यद्विरोचते प्र चानति वि च चप्रे शचीभिः । पुरा देवस्य धर्मेणा सद्दोभिः विष्णुमगन्वर्षणं पृथ्वीतिः</p>	<p>॥ १ ॥ ॥ २ ॥</p>	<p>॥ १ ॥ ॥ २ ॥</p>	
<p>॥ १६ ॥ (अथयं ० ७।१६।१-८) मेधातिथिः । विष्णुः । १ त्रिदश, ० त्रिदश विराट्पापयो १ श्ववमाना पश्यदा विराट् शकरी ।</p>	<p>॥ १७ ॥ (अथयं ० ७।१७।१, ०) मेधातिथिः । अमाविष्णुः । विष्णुः ।</p>	<p>॥ १७ ॥</p>	
<p>विष्णोनुं कुं प्रा योचं धीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि । यो अस्त्रभायुदुत्तरं सुषस्यं विचक्रामाण्येधोरेगायः प्र तद्विष्णु स्तपने धीर्याणि मृगो न भीमः कुचुरो निरिष्ठाः । प्राचयत मा जंगम्यात्परस्याः</p>	<p>॥ १ ॥ ॥ २ ॥</p>	<p>अमाविष्णु महि तदां महित्वं पायो धृतस्य गुहास्य नाम । दमेदमे सत रत्ना वधानी प्रतिं यां जिज्ञा धृतमा चरण्यात् अमाविष्णु महि धामं प्रियं वां धीयो धृतस्य गुहां जुराणां । दमेदमे सुपुत्या पांपृथानां प्रतिं यां जिज्ञा धृतमुषरण्यात्</p>	<p>॥ १ ॥ ॥ २ ॥</p>
<p>यस्योगुरुं त्रिषु विप्रमणेषु अधिभ्रियन्ति भुयंनानि विभ्यां उग्र विष्णो वि क्रमस्य उग्र क्षयाय नरुहधि । धृतं धृतयोनि विषु प्रप्रं युमर्पनि निर इदं विष्णुयि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदा । समूदमया पांगुणे</p>	<p>॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥</p>	<p>॥ १८ ॥ (अथयं ० ७।१८।१) प्रथमः । इन्द्रविष्णुः । गुरेद विष्णुः । उमा त्रिगणुनि परा जगधे न परा त्रिगधे बभ्रुवर्चनेनयोः । इन्द्रं च विष्णो यदपंगुधेधां त्रेधा नृदह्ये वि नदंशेगाम</p>	<p>॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥</p>

रुद्रदेवता ।

॥ १ ॥ (क्र० १।४३।१-२, ४-६)

कथो घोरः । गायत्री ।

कद् रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे ।

येचेम शंतमं हृदे

॥ १ ॥

यथा नो अर्दितिः कर्त्तु पथे नृभ्यो यथा गवे ।

यथा तोकाय रुद्रियम्

॥ २ ॥

गायपति मेघपति रुद्रं जलापभेजम् ।

तच्छ्रयोः सुस्रमीमहे

॥ ४ ॥

यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते ।

श्रेष्ठो देवानां घनुः

॥ ५ ॥

शं नः कल्पयते सुगं मेयाय मेप्ये ।

नृभ्यो नारिभ्यो गवे

॥ ६ ॥

॥ २ ॥ (क्र० १।११४।१-११)

पुत्र अक्षिरव । जगती, १०-११ त्रिष्टुप् ।

इमा रुद्राय नयने कपर्दिने

क्षयर्हीराय प्र भंरामहे मृतीः ।

यथा शमसद् द्विपदे घतुं पदे

विभ्यै पुष्टं घामै अस्त्रिर्नानात्तुम्

मृत्ता नो रश्रोत नो मयस्त्रिध

क्षयर्हीराय नमस्ता विपेम मे ।

यच्छं च योद्ध गनुं रायेजे पिना

तवस्याम तपं रुद्र प्रणीतिषु

॥ १ ॥

॥ २ ॥

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया

क्षयर्हीरस्य तव रुद्र मीद्वः ।

सुस्रायधिद् विशो अस्माकमा चर

अरिष्टवीरा जुहवाम ते हविः

॥ ३ ॥

त्वेपं वयं रुद्रं यज्ञसाधं

घुं क्विमवसे नि हयामहे ।

आरे असद् दैव्यं हेळो अस्यतु

सुमतिमिद् वयमस्या वृणीमहे

॥ ४ ॥

द्विघो वराहमरुपं कपर्दिने

त्वेपं रूपं नमस्ता नि हयामहे ।

दस्ते विभ्रद् मेपजा वार्षीणि

शमं घमं च्छर्दिस्सभ्यं यंसत्

॥ ५ ॥

इदं पिपे मयतामुच्यते घवः

स्यादोः स्वादीयो रुद्राय घर्धनम् ।

रास्यां च नो अमृत मतेमोजनं

रमने तोकाय तनयाय मृत्

॥ ६ ॥

मा नो मदान्तमुत मा नो अश्रकं

मा न उक्षन्तमुत मा न उश्रितम् ।

मा नो घधीः पितरं मोन मातरं

मा नः द्वियास्तुग्यो रुद्र रीरियः

॥ ७ ॥

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोपु मा नो अश्वेषु रीरिपः । वीरान् मा नो रुद्र भासितो बंधीः हृदिष्मन्तः सदा मित् त्वा हवामहे उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकरं रास्वां पितर्मरुतां सुस्रमस्त्रे । भद्रा हि ते सुमतिर्मृलयत्तम अर्था वयमव इत् ते वृणीमहे आरे ते गोघ्नमुत पूरुपत्रं क्षयंहीर सुस्रमस्त्रे ते अस्तु । मूढा च नो भार्धे च ब्रूहि देव अर्धा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हीः अर्धोचाम् नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् । तन्नो मित्रो बरुणो मामहन्तां अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः	॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥	मा त्वा रुद्र चुकुधामा नमोभिः मा दुष्टुती वृषभ मा सहती । उन्नो वीरौ अर्पय भेषजेभिः मिपक्तं त्वा मिपजां शृणोमि हृदीमभिर्हवते यो हृदिभिः अव स्तोमेभी रुद्रं दिपिय । ऋदुदरः सुहवो मा नो अस्वै बभ्रुः सुशिप्रौ रीरधन्नायं उन्मां ममन्द वृषभो मरुत्वान् त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् । घृणीव च्छायामरुपा अशीय आ विवासेयं रुद्रस्य सुस्रम् कः स्य ते रुद्र मूढयाकुः हस्तो यो अस्ति भेषजो जलापः । अपभर्ता रपसो वैव्यस्य अमी तु मा वृषभ चक्षमीथाः प्र बभ्रवें वृषभार्यं श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि । नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिः शृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नामं स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूपं उग्रो वभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः । ईशानादस्य भुवनस्य भूरेः न वा उं योपद् रुद्रादसुर्यम् अर्हन् विभार्षि सार्यकानि धन्य अर्हन् निष्कं यज्ञतं विश्वरूपम् । अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्यं न वा ओर्जीयो रुद्र त्वदस्ति स्तुहि श्रुतं गतिसदं युवानं मृगं न भीमसुपहृत्सुमृगम् । मूढा जरिने रुद्रं स्तवानो अन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः	॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥
॥ ३ ॥ (ऋ० २।३।१-१५) शसमद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) मार्गषः शौनकः । त्रिष्टुप् । आ ते पितर्मरुतां सुस्रमेतु मा नः सूर्यस्य संदशौ युयोथाः । अभि नो वीरो अर्धति क्षमेतु प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः शतं हिमां अशीय भेषजेभिः । व्यस्रमद् द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्या विपूचीः श्रेष्ठो जातस्यं रुद्र श्रियासि तघस्तमस्तवसां चक्रवाहो । परिं णः पारमर्हसः स्वस्ति विभ्नां अर्मीती रपसो युयोधि	॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥		॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥

कुमारश्चित् पितरं वन्दमानं
 प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।
 भूरर्दीतारं सत्पतिं गृणीये
 स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यसे
 या वी भेषजा मरुतः शुचीनि
 या शतमा वृषणो या मयोभु ।
 यानि मनुर्वृणीता पिता नः
 ता शं च योश्च रुद्रस्य वदिम
 परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः
 परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् ।
 अवं स्थिरा मघवंद्गयस्तनुष्व
 मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ
 पूवा वंभ्रो वृषभ चेकितान्
 यथा देव न हृणीपे न हंसि ।
 हवनशुभ्रो रुद्रेह वीधि
 वृहद् वंदेम विदथे सुवीराः
 ॥ ४ ॥ (क्र० ७३६।१-४)
 मैत्रावरुणिवंसिष्ठः । अगती, ४ त्रिष्टुप् ।
 इमा रुद्रार्यं स्थिरधन्वने गिरः ।
 क्षिप्रैपवे देवार्यं स्वधाते ।
 अपाल्हाय सहमानाय वेधसे
 तिग्मार्युधाय भरता शृणोतु नः
 स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः
 साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ।
 अयन्नयन्तीरुपं नो दुर्ध्वरा
 अनमीयो रुद्र जासु नो भव
 या ते दिशुदयस्युष्टा दिवस्परिं
 क्षमया चरति परि सा वृणक्तु नः ।
 सद्दक्षं ते स्वपिवात भेषजा
 मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिपः
 मा नो वधी रुद्र मा परां दू
 मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य ।

आ नो भज घटिपि जीपशंसे
 ययं पात स्युस्तिधिः सदा नः ॥ ४ ॥

॥ ५ ॥ (क्र० ७३५।११)

॥ १२ ॥ मैत्रावरुणिवंसिष्ठः रुद्रः (१५५६६) (गुरुविमोचनी ऋद्) ।
 अनुष्टुप् ।

इयंम्यकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
 उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ १२ ॥

॥ १३ ॥ ॥ ६ ॥ (पा० य० ३।५७-६३)

एष ते रुद्र भागः सह स्वर्गाम्यिकया तं जुषस्य
 स्वाह्यै तं रुद्र भाग आपुस्ते पशुः ॥ ५७ ॥

॥ १४ ॥ अवं रुद्रमदीमहायं देवं इयंम्यकम् ।
 यथा नो वस्यसस्करद् यथा नः श्रेयसस्करद्
 यथा नो व्ययसाययात् ॥ ५८ ॥

भेषजमसि भेषजं गवेऽर्वायं पुरुषाय भेषजम् ।
 सुखं मेपार्यं मेय्यै ॥ ५९ ॥

॥ १५ ॥ इयंम्यकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं ।
 उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।

इयंम्यकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनं ।
 उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामृतेः ॥ ६० ॥
 एतत् ते रुद्रावसं तेन परो मूर्जवतोऽतीहि ।

॥ १ ॥ अर्चततधन्वा पिनाकावसुः
 कृत्तिवासा अहिंशसन्नः शिवोऽतीहि ॥ ६१ ॥

त्र्यायुषं जमदग्नेः कृश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
 यद् देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ ६२ ॥

॥ २ ॥ शिवो नामासि स्वर्धितिस्ते पिता
 नमस्ते अस्तु मा मां हिंसीः ।

निर्वन्तैयाम्यार्युषेऽघ्राद्याय प्रजर्जनाय
 रायस्पोपाय सुप्रजास्त्वायं सुवीर्याय ॥ ६३ ॥

॥ ३ ॥ ॥ ७ ॥ (पा० य० १०।१०)
 रुद्र यत् ते क्विचि परं नाम
 तस्मिन् हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥ २० ॥
 (३८८०)

॥ ८ ॥ (वा० य० ११।५४)

रुद्राः स्रष्टुःस्रज्यं पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे ।
तेषां मानुरजंश्च इच्छुको देवेषु रोचते ॥ ५४ ॥

॥ ९ ॥ (वा० य० १६।१-६६)

नमस्ते रुद्र मन्यवं उतो त इषवे नमः ।

शाहुभ्यामुत ते नमः ॥ १ ॥

या ते रुद्र शिवा तनूर शोरार्पापकाशिनी ।

तयां नस्तन्वा शन्तमया

गिरिशन्ताभिचाकशाहि ॥ २ ॥

यामिषु गिरिशन्त हस्ते विभर्ग्यस्तवे ।

शिवां गिरिश्च तां कुरु मा

हिंश्रीः पुरुषं जगत् ॥ ३ ॥

शिवेन वर्चसा त्वा गिरिशाच्छां वदामसि ।

यथा नः सर्वमिज्जगद यश्मश्च सुमना असत् ॥ ४ ॥

अर्घ्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यां निपक् ।

अहोश्च सर्वांश्चम्ययन्सर्वांश्च

यातुघ्नान्योऽधराचीः परासुव ॥ ५ ॥

असौ यस्ताम्रो अरुण उत यधुः सुमङ्गलः ।

ये चैनश्च रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः

सहस्रयोऽवैषाश्च हेड ईमहे ॥ ६ ॥

असौ योऽवसर्पति नीलप्रीवो विलोहितः ।

उतैनं गोपा अहश्चअहश्चदुहाय्यः

स हृष्टो मृडयाति नः ॥ ७ ॥

नमोऽस्तु नीलप्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।

अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः ॥ ८ ॥

प्रमुञ्च धन्वंनस्त्वमु भयोरात्योर्ज्याम् ।

याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप ॥ ९ ॥

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशाल्यो वारणवो २ उत ।

अनेशत्रस्य या इषव आभुरस्य निपङ्गभिः ॥ १० ॥

या ते हेतिमीदुष्टम् हस्ते यभूव ते धनुः ।

नयासान् विभवत्स्वर्म यश्मया परिभुज ॥ ११ ॥

परि ते धन्वनो हेतिरस्मान् वृणक्तु विभवतः ।

अथो य इषुधित्तवारे अस्मन्निर्घेहि तम् ॥ १२ ॥

अवतत्य धनुष्यश्च सहस्राक्ष शर्तेषुधे ।

निशीर्य शल्यानां मुखां शिवो नः सुमना भव १३

नमस्तु आयुध्याया नातताय धूर्णवे ।

उभाभ्यामुत ते नमो शाहुभ्यां तव धन्वने ॥ १४ ॥

मा नो महान्तमुत मा नो अमकं

मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।

मा नो वधीः पितरं मोत मातरं

मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिपः ॥ १५ ॥

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि

मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिपः ।

मा नो वीरान् रुद्र अभिनो वधीः

हृदिष्मन्तः सद्मित् त्वां हवामहे ॥ १६ ॥

नमो हिरण्यवाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो

नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो

नमः शृण्पिर्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो

नमो हरिकेशायोपवीतिनें पुष्टानां पतये नमः १७

नमो बभ्रुशायं व्याधिनेऽघ्नानां पतये नमो

नमो भवस्य हेत्ये जगतां पतये नमो

नमो रुद्रायततायिने क्षेत्राणां पतये नमो

नमः सूतायाहन्ये वनानां पतये नमः ॥ १८ ॥

नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो

नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो

नमो मन्दिगे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो

नम उच्चैर्घोषायारुन्दयते पत्नीनां पतये नमः ॥ १९ ॥

नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो

नमः सहमानाय निव्याधिर्न आव्याधिर्नीनां

पतये नमो

नमो निपङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो

नमो निचेरवे परिचुरायारण्यानां पतये नमः २०

नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायुनां पतये नमो
 नमो निपङ्क्तिं श्पुधिमते तस्कराणां पतये नमो
 नमः सुक्याभ्यो जिघांशुसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो
 नमोऽस्त्रिमद्भ्यो नक्तञ्चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये
 नमः ॥ २१ ॥
 नम उष्णीपिणे गिरिचरार्य कुलुञ्जानां पतये नमो
 नम इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो
 नम आतन्वाभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो
 नम आयच्छद्भ्योऽस्यद्भ्यश्च वो नमः ॥ २२ ॥
 नमो विसृजद्भ्यो विध्वद्भ्यश्च वो नमो
 नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो
 नमः शयनेभ्य आसीनेभ्यश्च वो नमो
 नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमः ॥ २३ ॥
 नमः सुभाभ्यः सुभापतिभ्यश्च वो नमो
 नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो
 नम आख्याधिनीभ्यो विविध्वन्तीभ्यश्च वो नमो
 नम उगणाभ्यस्तृहृतीभ्यश्च वो नमः ॥ २४ ॥
 नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो
 नमो द्रातेभ्यो द्रातपतिभ्यश्च वो नमो
 नमो गृत्सेभ्यो गृत्सेपतिभ्यश्च वो नमो
 नमो विरूपेभ्यो विध्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥ २५ ॥
 नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो
 नमो रुधिभ्यो धरुधेभ्यश्च वो नमो
 नमः क्षतृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो
 नमो मुहद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः ॥ २६ ॥
 नमस्तर्क्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो
 नमः कुलाभ्यः कर्मारंभ्यश्च वो नमो
 नमो निगादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो
 नमः द्यनिभ्यो मृगपुण्येभ्यश्च वो नमः ॥ २७ ॥
 नमः द्यभ्यः द्यपतिभ्यश्च वो नमो
 नमो भुवार्य च रुद्रार्य च

नमः शर्वार्य च पशुपतये च
 नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥ २८ ॥
 नमः कपर्दिने च द्युत्तकेशाय च
 नमः सहस्राक्षार्य च शतधन्वने च
 नमो गिरिशार्य च शिपिविष्टार्य च
 नमो मीढुष्टमाय चेपुमते च ॥ २९ ॥
 नमो ह्रस्वार्य च वामनार्य च
 नमो बृहते च वर्षीयसे च
 नमो वृद्धार्य च सुवृधे च
 नमोऽग्न्यार्य च प्रथमार्य च ॥ ३० ॥
 नम आशवे चाजिरार्य च
 नमः शीघ्र्यार्य च शीभ्यार्य च
 नम ऊर्म्यार्य चावस्वन्वार्य च
 नमो नादेयार्य च ह्रीप्यार्य च ॥ ३१ ॥
 नमो ज्येष्ठार्य च कनिष्ठार्य च
 नमः पूषे जाये चापरजाये च
 नमो मध्यमार्य चापगन्धार्य च
 नमो जघन्यार्य च बुध्न्यार्य च ॥ ३२ ॥
 नमः सोभ्यार्य च प्रतिस्वर्ण्यार्य च
 नमो याम्यार्य च क्षेम्यार्य च
 नमः श्लोक्यार्य चावसान्यार्य च
 नम उर्वर्यार्य च खल्यार्य च ॥ ३३ ॥
 नमो वन्यार्य च कश्यार्य च
 नमः श्रवार्य च प्रतिध्रवार्य च
 नम शाशुर्पणाय चाशुरंधाय च
 नमः शूराय चाधमेदिने च ॥ ३४ ॥
 नमो विदिमने च कश्चिने च
 नमो धर्मिणे च घरुधिने च
 नमः ध्रुतार्य च ध्रुतसेनार्य च
 नमो दुन्दुभ्यार्य चाहन्यार्य च ॥ ३५ ॥

नमो ध्रुव्याय च प्रमथाय च
 नमो निपङ्क्तिने त्रेषुधिमते च
 नमस्तीक्ष्णोपवे चायुधिने च
 नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च ॥ ३६ ॥
 नमः स्रुत्याय च पथ्याय च
 नमः काट्याय च नीप्याय च
 नमः कुल्याय च सरस्याय च
 नमो नादेयाय च वैशन्तार्य च ॥ ३७ ॥
 नमः कृप्याय चावट्याय च
 नमो वीष्ण्याय चातप्याय च
 नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च
 नमो घर्ष्याय चावर्ष्याय च ॥ ३८ ॥
 नमो घात्याय च रेप्याय च
 नमो वास्तव्याय च वास्तुपार्य च
 नमः सोमाय च रुद्राय च
 नमस्ताम्राय चारुणाय च ॥ ३९ ॥
 नमः शङ्खवे च पशुपतये च
 नम उग्राय च भीमाय च
 नमोऽग्नेयधाय च दूरेवधाय च
 नमो हन्त्रे च हनीयसे च
 नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ॥ ४० ॥
 नमः शम्भुवार्य च मयोभुवार्य च
 नमः शङ्कराय च मयस्कराय च
 नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ ४१ ॥
 नमः पार्यय चावार्यय च
 नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च
 नमस्तीर्थ्याय च कुल्याय च
 नमः शण्याय च फेन्याय च ॥ ४२ ॥
 नमः सिकत्याय च प्रवाहाय च
 नमः किंशिलाय च क्षयणाय च

नमः कपर्दिने च पुलस्तये च
 नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च ॥ ४३ ॥
 नमो वज्र्याय च गोष्ठ्याय च
 नमस्तल्प्याय च गेहाय च
 नमो हृदय्याय च निवेप्याय च
 नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ॥ ४४ ॥
 नमः शुष्प्याय च हरित्याय च
 नमः पांशुसव्याय च रजस्याय च
 नमो लोप्याय चोलप्याय च
 नम ऊर्ध्याय च सूर्ध्याय च ॥ ४५ ॥
 नमः पूर्णाय च पर्णशदाय च
 नम उद्गुरमाणाय चामिध्नते च
 नम आखिदते च प्रखिदते च
 नम इषुकुद्रयो धनुष्कृद्भ्यश्च नमो
 नमो वः किरिकेभ्यो देवानां हृदयेभ्यो
 नमो विचिन्वत्केभ्यो ॥ ४६ ॥
 नमो विक्षिन्वत्केभ्यो नम आनिर्द्वेतेभ्यः ॥ ४६ ॥
 द्रापे अन्धसस्पते द्रविद्र नीललोहित ।
 आस्तां प्रजानामिषां पदानां
 मा मेमां रोड्मो च नः किञ्चिनाममत् ॥ ४७ ॥
 इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने
 क्षयदीराय प्रभरामहे मतीः
 यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे
 विभ्वै पुष्टं प्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ ४८ ॥
 या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहां भेयजी ।
 शिवा स्तस्य भेयजी तया नो मृड जीवसे ॥ ४९ ॥
 परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणन्तु
 परि त्वेपस्य दुर्मतिरवायोः ।
 अब स्थिरा मन्त्रवद्रथस्तनुष्व
 भीद्वस्तोकाय तनयाय मृड ॥ ५० ॥

॥ १३ ॥ (अथर्व० २१७७६)

कपिलः । अनुष्टुप ।

रुद्र जलापमेपज्ज नीलाशिषण्ड कर्मकृत् ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्य-रुसन् कृण्वोपधे ॥ ६ ॥

॥ १४ ॥ (अथर्व० ७१८७१)

अथर्वा । जगती ।

यो असौ रुद्रो यो अस्त्वन्तः
य ओषधीर्वीरुधे आविवेश ।
य इमा विश्वा भुव्नानि चान्म्लये
तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥ १ ॥

॥ १५ ॥ (अथर्व० १५१५१-१६)

१ त्रिपदा समविषमा गायत्री; २ त्रिपदा सुरिगार्वा त्रिष्टुप्;
३, ६, ९, १२, १५, १८, २१ द्विपदा प्राजापत्याऽनुष्टुप्;
४ त्रिपदा खराट् प्राजापत्या पङ्क्तिः; ५, ८, ११, १४
त्रिपदा ब्राह्मी गायत्री; ७, १०, १६ त्रिपदा ऋक्पु;
१३, १९ सुरिगु विषमा गायत्री, १४ निचृटाह्मी
गायत्री; २० त्रिराट्;

तस्मैः प्राच्यां दिशो अन्तर्देशाद्
भवामिष्वासमनुष्टातारमकुर्वन् ॥ १ ॥
भुध एनमिष्वासः प्राच्यां दिशो
अन्तर्देशाद्नुष्टातानुं तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥
नास्यं पशून् संमानान् हिंनस्ति य एवं वेदं ॥ ३ ॥
तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशात्
शर्वमिष्वासमनुष्टातारमकुर्वन् ॥ ४ ॥
शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो
अन्तर्देशाद्नुष्टातानुं तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।
नास्यं पशून् संमानान् हिंनस्ति य एवं वेदं ॥ ५ ॥
तस्मै प्रतीच्यां दिशो अन्तर्देशात्
पशुपतिमिष्वासमनुष्टातारमकुर्वन् ॥ ६ ॥
पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्यां दिशो
अन्तर्देशाद्नुष्टातानुं तिष्ठति ।

नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।
नास्यं पशून् संमानान् हिंनस्ति य एवं वेदं ॥ ७ ॥
तस्मा उर्धीच्या दिशो अन्तर्देशात्
उग्रं देवमिष्वासमनुष्टातारमकुर्वन् ॥ ८ ॥
उग्र एनं देव इष्वास उर्धीच्या दिशो
अन्तर्देशाद्नुष्टातानुं तिष्ठति ।
नैनं शर्वो व भवो नेशानः ।
नास्यं पशून् संमानान् हिंनस्ति य एवं वेदं ॥ ९ ॥
तस्मै ध्रुवायां दिशो अन्तर्देशाद्
रुद्रमिष्वासमनुष्टातारमकुर्वन् ॥ १० ॥
रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवायां दिशो
अन्तर्देशाद्नुष्टातानुं तिष्ठति ।
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।
नास्यं पशून् संमानान् हिंनस्ति य एवं वेदं ॥ ११ ॥
तस्मा ऊर्ध्वायां दिशो अन्तर्देशात्
महादेवमिष्वासमनुष्टातारमकुर्वन् ॥ १२ ॥
महादेव एनमिष्वास ऊर्ध्वायां दिशो
अन्तर्देशाद्नुष्टातानुं तिष्ठति ।
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।
नास्यं पशून् संमानान् हिंनस्ति य एवं वेदं ॥ १३ ॥
तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य
ईशानमिष्वासमनुष्टातारमकुर्वन् ॥ १४ ॥
ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो
अन्तर्देशेभ्योऽनुष्टातानुं तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ १५ ॥
नास्यं पशून् न संमानान् हिंनस्ति य एवं वेदं १६
॥ १६ ॥ (अथर्व० १२११८१३) आर्च्यनुष्टुप् ।
सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु ।
ये मांघ्रायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासाव् ॥ ३ ॥
(१९७९)

रुद्र-सहचारी देवगणः ।

(१) रुद्रः मित्रावरुणौ च ।

॥ १७ ॥ (ऋ० १।४३।३)

कण्ठो घोरः । गायत्री ।

यथा नो मित्रो यरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति ।

यथा विश्वे सजोपसः ॥ ३ ॥

(२) रुद्रः, दिशः ।

॥ १८ ॥ (अथर्व० ३।१६।१-६)

अथर्वा । दिशः, रुद्रः, १ सामग्र्यो हेतयः, २ सकामा अविध्यन्, ३ वैराजः, ४ सनाताः प्रविध्यन्तः, ५ सौषधिकानि मिलिम्वा, ६ बृहस्पतियुता अवसन्तः । त्रिष्टुप्, २, ५-६ जगती; ३-४ सुरिक्; १-६ पद्यपदा विपरीतपादलक्ष्मा ।

येकुडस्यां स्थ प्राचर्यां दिशि
हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निरिषवः ।

ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत
तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ १ ॥

येकुडस्यां स्थ दक्षिणायां दिशि
अविष्यवो नाम देवास्तेषां वः काम इषवः ।

ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत
तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ २ ॥

येकुडस्यां स्थ प्रतीच्यां दिशि
वैराजा नाम देवास्तेषां वः आप इषवः ।

ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत
तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ३ ॥

येकुडस्यां स्थोदीच्यां दिशि
प्रविष्यन्तो नाम देवास्तेषां वो घात इषवः ।

ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत
तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ४ ॥

येकुडस्यां स्थ ध्रुवार्थां दिशि
निदिग्वा नाम देवास्तेषां वः ओषधीरिषवः ।

ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत
तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ५ ॥

येकुडस्यां स्थोर्ध्वार्थां दिशि
अयस्वन्तो नाम देवास्तेषां वो वृहस्पतिरिषवः ।

ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत
तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ६ ॥

॥ १९ ॥ (अथर्व० ३।१७।१-६)

दिशः, रुद्रः, १ अग्निः अतित, आदिरया; २ इन्द्रः, तिरधी-
राजी, पितरः, ३ वरुणः, युदाङ्कः, अश्वः ४ सोमः, स्वप्नः,
अशानिः, ५ विष्णुः, कल्पापमोवो घोरघः, ६ बृहस्पतिः,
शिवं, वर्षम् । १-६ पद्यपदा कङ्कमतीगर्माऽष्टि,
(२ अत्यष्टि, ५ सुरिक्)

प्राची दिग्भिरधिपतिरसितो
रक्षितादित्या इषवः ।

तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो
रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम परभ्यो अस्तु ।

योकुडस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः
तं वो जम्भे दध्मः ॥ १ ॥

दक्षिणा दिग्भिरधिपतिस्तिरश्चिराजी
रक्षिता पितर इषवः ।

तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो
रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम परभ्यो अस्तु ।

योकुडस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः
तं वो जम्भे दध्मः ॥ २ ॥

प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः
पृदाक् रक्षितात्समिषवः ।

तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो
रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम परभ्यो अस्तु ।

योकुडस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः
तं वो जम्भे दध्मः ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य शर्मांसि । तं त्वा प्र पद्ये तं
 त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
 सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥ १२ ॥
 इन्द्रस्य वर्मांसि । तं त्वा प्र पद्ये तं
 त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
 सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥ १३ ॥
 इन्द्रस्य वरुथमांसि । तं त्वा प्र पद्ये तं
 त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
 सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ॥ १४ ॥

(५) भव-शर्व-रुद्राः ।

॥ २२ ॥ (अथर्वं ११।१।२-३१)

त्रिष्टुप् ; १ पराजतिजगता विराड्जगती; २ अनुष्टुप्गर्मा
 पञ्चपदा पथ्याजगती, ३ चतुष्टुपदा खराड्गणिक् ;
 ४-५, ७, १३, १५-१६, २१ अनुष्टुप्, ६ आपीं गायत्री;
 ८ महाबृहता, ९ आपीं, १० पुरोक्कृति त्रिपदा विराट् ;
 ११ पञ्चपदा विराड्जगतीगर्मा शकरी, १२ भुक्तिक,
 १४, १७-१९, २३, २६-२७ विराड्गायत्री; २० भुरिग्गायत्रा,
 २२ विपमयादलक्ष्मा त्रिपदा महाबृहती; २४, २९ जगती,
 २५ पञ्चपदाऽतिशकरी, ३० चतुष्टुपदा लणिक् ;
 ३१ ऋषयाना विपरीतयादलक्ष्मा पञ्चपदा (जगती ?) ।

भयादावीं मृडतं माभि यातं
 भूतपती पनुपती नमो वाम् ।
 प्रतिहितामार्यातां मा वि स्नाष्टं
 मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्टुपदः ॥ १ ॥
 नूनं श्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिङ्गवेभ्यो गृध्रेभ्यो
 ये च कृष्णा अविष्यवः ।
 मक्षिकास्ते पशुपते घर्मांसि
 हे यिप्रसे मा विदन्त ॥ २ ॥
 इन्द्राय ते प्राणाय याध्वं ने भव तोषयः ।
 नमस्ते रुद्र एणमः सहस्राक्षार्यामस्य ॥ ३ ॥
 गुरुस्तात् ते नमः कृणम उत्तरादधरादुत ।
 अमीयगाद् त्रियम्पर्यन्तरिंशाय ते नमः ॥ ४ ॥

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षुषि ते भव ।
 त्वञ्चे रूपाय संदशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥ ५ ॥
 अङ्गभ्यस्त उदराय जिह्वायां आस्याय ते ।
 दृग्भयो गन्धाय ते नमः ॥ ६ ॥
 अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।
 रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥ ७ ॥
 स नो भवः परिं वृणक्तु विश्वत
 आपं ह्वाग्निः परिं वृणक्तु नो भवः ।
 मा नोऽभि मौस्तु नमो अस्त्वसौ ॥ ८ ॥
 चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय
 दश कृत्वः पशुपते नमस्ते ।
 तवेमे पञ्च पशवो विमक्ता
 गावो अश्वाः पुरुषा अजावयवः ॥ ९ ॥
 तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौः
 तव पृथिवी तवेदमुप्रोवेऽन्तरिक्षम् ।
 तवेदं सर्वमात्मन्वद यत् प्राणत् पृथिवीमनु
 उरुः कोशो वसुधानस्तवाय
 यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः ।
 स नो मृड पशुपते नमस्ते
 परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः
 परो यन्त्वघ्रुदो विकेदयः ॥ ११ ॥
 धनुर्विभर्षि हरितं हिरण्यं
 सहस्रमि शतवर्धं शिगण्डिनम् ।
 रुद्रस्येपुश्चरति देवद्वेतिः
 तस्यै नमो यतमस्यां दिशीकुतः ॥ १२ ॥
 योऽभिर्वातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
 पश्चादनुप्रयुङ्क्षे ते विरुस्यं पदनीरिव ॥ १३ ॥
 भवारुद्रो स्युजा संयिदानौ
 उभापुत्री चरतो वीर्याय ।
 ताम्यां नमो यतमस्यां दिशीकुतः ॥ १४ ॥

नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
 नमस्ते रुद्र तिष्ठन् आसीनायते ते नमः ॥ १५ ॥
 नमः सायं नमः प्रातः नमो राज्या नमो दिवा ।
 भवार्यं च शर्वार्यं चो—भार्यामकरं नमः ॥ १६ ॥
 सहस्राक्षमतिपद्मं पुरस्ताद्
 रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् ।
 मोषाराम जिह्वयेयमानम् । ॥ १७ ॥
 श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं
 भीमं रथं केशिनः पादयन्तम् ।
 पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥ १८ ॥
 मा नोऽभि स्ना मृत्युं देवहेति
 मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते ।
 अन्यत्रास्वद् दिव्यां शाखां वि श्रुतु
 मा नो हिंसीरधि नो ब्रुहि
 परि णो वृद्धिश्च मा क्रुधः ।
 मा त्वया समरामहि ॥ २० ॥
 मा नो गोपु पुरुषेषु मा श्रुधो अजाविषु ।
 अन्यत्रोत्र वि वर्तय पियारुणां प्रजां जहि ॥ २१ ॥
 यस्य तस्मा कासिका हेतिरेकं
 अर्धस्येद्य वृषणः क्रन्द पति ।
 अभिपुधं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥ २२ ॥
 योऽन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टमितो
 अयञ्जनः प्रमृणन् देवपीयून् ।
 तस्मै नमो दशभिः शकरीभिः ॥ २३ ॥
 तुभ्यमारुण्याः पशवो मृगा वने
 हिता हंसाः सुपूर्णाः शकुना घयांसि ।
 तव यक्षे पशुपते अस्त्वन्तः
 तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या भाषो वृधे ॥ २४ ॥
 सिन्धुमारो अजगराः पुरीकया
 जया मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।
 न ते रुद्रं न परिघ्रासि ते

भव सद्यः सर्वान् परि पश्यसि
 भूमिं पूर्वसाङ्गस्युत्तरस्मिन्समुद्रे ॥ २५ ॥
 मा नो रुद्र तन्मना मा विषण
 मा नः स्त्र्या दिव्येनाग्निना ।
 अन्यत्रास्वद् विद्युत् पातयेताम् ॥ २६ ॥
 भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या
 भव आ पत्र इवन्तरिक्षम् ।
 तस्मै नमो यतमस्यां दिशीकुतः ॥ २७ ॥
 भव राजन् यजमानाय मृड
 पशुनां हि पशुपतिर्बभूय ।
 यः श्रद्धाति सन्ति देवा इति
 चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड ॥ २८ ॥
 मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं
 मा नो वहन्तमुत मा नो वध्यतः ।
 मा नो हिंसीः पितरं मातरं च
 स्वां तन्व्यं रुद्र मा रीरियो नः ॥ २९ ॥
 रुद्रस्यैलवमुरार्यो—ऽसंख्युक्तगिरेभ्यः ।
 इदं महास्येभ्यः श्वार्यो अकरं नमः ॥ ३० ॥
 नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः ।
 नमो नमस्कृताभ्यो नमः संभुजतीभ्यः ।
 नमस्ते देव सेनाभ्यः
 स्वस्ति नो अर्भयं च नः ॥ ३१ ॥
 ॥ ३३ ॥ (अथर्व० ६।३।१-२)
 शन्ताति । रुद्र १ यो नृपुत्रः शर्वः, २ मत्वा, शर्वः । शिष्टुप् ।
 यमो मृत्युर्घमरो निष्कृतो
 वृधुः शर्वोऽस्ता नीलशिरण्डः ।
 देवजनाः सेनयोत्तस्थिवांसः
 ते अस्माकं परि वृजन्तु वीरान् ॥ १ ॥
 मन्सा होमहेस्ता घृतेन
 शर्वायास्त्र उत रात्रे भवार्यं ।
 नमस्योभ्यो नमं पथ्यः
 कृणोम्यन्यत्रास्वदुघर्षिणा नयन्तु ॥ २ ॥

(६) रुद्रः, व्याघ्रः ।

॥ १४ ॥ (अथर्व० ४।३।१-७)

अथर्वा । अनुष्टुप्, १ पद्यापहक्ति, ३ गायत्री

७ बहुमतीगर्भोपरिष्ठाद्वृद्धती ।

उदितस्त्रयो अक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः ।

हिरण्यि यन्ति सिन्धवो

हिरण्यं देवो घनस्पतिर्हिरण्यमन्तु शत्रवः ॥ १ ॥

परंणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः ।

परंण दत्वती रज्जुः परंणाघायुरंरपतु ॥ २ ॥

अक्ष्यौ च ते सुयै च ते व्याघ्र जम्भयामसि ।

आत् सर्वान् विशति नृपान् ॥ ३ ॥

व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि ।

आहुं ऐनमथो आहिं यातुधानमथो वृकम् ॥ ४ ॥

यो अद्य स्तेन आर्यति स संपिद्यो अपार्यति ।

पथामप-प्रसनेति-न्द्रो वज्रेण हन्तु तम् ॥ ५ ॥

पूर्णां मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः ।

निष्कै गोधा भवतु नीचार्यच्छशयुर्मृगः ॥ ६ ॥

यत् संयमो न वि र्यमो वि र्यमो यन्न संयमः ।

इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भेनम् ॥ ७ ॥

(७) रुद्रः (आग्निः) ।

॥ १५ ॥ (ऋ० ४।३।१)

आग्नेदेवो गौतमः । रुद्रः । शिष्टुप् ।

आ षो राजानमध्वरसं रुद्रं

होतारं सत्ययज्ञं रोदस्योः ।

आग्निं पुरा तनयित्नोरश्चित्तात्

दिरण्यरूपमर्पसे शृणुष्वम्

॥ १६ ॥ (ऋ० १०।१।१-४)

शंङ्गुशो वाषावनः । मृगुः । शिष्टुप् ।

परं मृग्यो अनु परं हि पश्यां

गम्ने म्य इतरो देपयानात् ।

परुष्पाने दृणुते तं प्रथमि

मा नः प्रजां रीशियो मोत धीरान्

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत
द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।

आप्यार्यमानाः प्रजया घनैर्न

शुद्धाः पुता भवत यज्ञियासः

इमे जीवा वि मृतैरायवृत्रन्

अभूद् भद्रा देवहितिनो अद्य ।

प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय

द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः

इमं जीवेभ्यः परिधि दधामि

भैषां नु गादपरो अर्धमेतम् ।

शतं जीवन्तु शरदः पुरुचीः

अन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन

॥ १७ ॥ (अथर्व० ६।१।१-३)

अथर्वा (स्वस्वयनकामः) । मृगुः । अनुष्टुप् ।

नमो देववधेभ्यो नमो राजवधेभ्यः ।

अथो ये विद्धानां वधाः

तेभ्यो मृत्यो नमोऽस्तु ते

नमस्ते अधिवाकार्य परावाकार्य ते नमः ।

सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै तं इदं नमः ॥ २ ॥

नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेपजेभ्यः ।

नमस्ते मृत्यो मूलैभ्यो ब्राह्मणेभ्य इदं नमः ॥ ३ ॥

॥ १८ ॥ (अथर्व० ४।३।१-७)

प्रजापति । अतिमृगुः । शिष्टुप्, ३ अतिरजगती ।

यमोदंनं प्रथमजा ऋतस्य

प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत् ।

यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेपात्

तेनादनेनाति तराणि मृत्युम्

येनातंरन् भूतशतोऽति मृत्युं

यमन्यधिन्दन् तपसा श्रमेण ।

यं पपाचं ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं

तेनादनेनाति तराणि मृत्युम्

यो द्वाधारं पृथिवीं विश्वमोजसं
 यो अन्तरिक्षमापृणाद् रसेन ।
 यो अस्तंभ्राद् दिवमूर्ध्वं महिम्ना
 तेनोद्दनेनार्तिं तराणि मृत्युम्
 यस्मान्मासा निर्मितार्क्षिशदराः
 संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः ।
 अहोरात्रा यं परियन्तो नापुः
 तेनोद्दनेनार्तिं तराणि मृत्युम्
 यः प्राणद् प्राणदवान् घृभूष
 यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति ।
 ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वाः
 तेनोद्दनेनार्तिं तराणि मृत्युम्
 यस्मात् पकाद्मृतं संवभूष
 यो गायत्र्या अर्घिपतिवैभूष ।
 यस्मिन् वेदा निर्हिता विश्वरूपाः
 तेनोद्दनेनार्तिं तराणि मृत्युम्
 अथ वाधे द्विपन्तं देवपीयुं
 सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु ।

ब्रह्मोद्दनें विश्वजितं पचामि
 दृष्वन्तु मे श्रद्धानस्य देवाः ॥ ७ ॥

॥ ३ ॥

॥ २९ ॥ (अथर्व० ७।२०।१)

याथापृथिवी, अन्तरिक्षम्, मृत्युः । विराद् पुरस्ताद्ब्रह्महती ।

नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्याम् अन्तरिक्षाय मृत्यवे ।
 मेक्षाम्यूर्ध्वंस्तिष्ठन्मा मां हिसिपुरीश्वराः ॥ १ ॥

॥ ४ ॥

॥ ३० ॥ (अथर्व० ६।३।२-३)

द्रुहणः । २ यमः, ३ मृत्युः । २ अतिजगतोपर्मा, ३ जगती ।

नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजो

॥ ५ ॥

अयस्मान् वि चृता बन्धपाशान् ।

यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति

तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥ २ ॥

॥ ६ ॥

अयस्मर्थे द्रुपदे वैधिप इह

अभिहितो मृत्युमिथे सहस्रम् ।

यमेन त्वं पितृभिः संविदान

उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ३ ॥

(२०५७)

मरुदेवता

॥ १ ॥ (ऋ० १।१।४,६,८,९)

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । गायत्री ।

भादहं स्वधामनु पुनर्गर्भैत्वमैरिरे ।

दधाना नाम यशिर्यम् ॥ ४ ॥

देव्यन्तो यथा मतिमच्छा विद्वत्सु गिरः ।

मदामनूपत श्रुतम् ॥ ६ ॥

धनवद्यैरभिष्टुभिर्मखः सहस्वदर्चति ।

गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥

अतः परिजमुद्रा गहि दिवो वा रोचनादधि ।

समस्मिन्नजते गिरः ॥ ९ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।१५।१)

मेघातिथिः वाण्य । गायत्री ।

मरुत पिबत ऋतुना पोत्राद् यक्षं पुनीतन ।

युयं हि द्या सुदानवः ॥ २ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १।३७।१-१५)

वृषो वीरः । गायत्री ।

क्रीळं यः शर्षो मारुतमनर्वाणं रथेजुर्मम् ।

वृषो अग्निं प्र गायत ॥ १ ॥

ये पृथ्वीभिर्भ्रष्टिभिः साकं वाशीभिरुज्जिभिः ।

अजायन्त स्वमानवः ॥ २ ॥

इदेषं दृष्य पपां वशा हस्नेषु यद् यदान् ।

नि यामंश्चित्रमृजते ॥ ३ ॥

प्र वः शर्षीयं चृष्वये त्वेषदुंज्ञाय शुष्मिणे ।

देवत्तं ब्रह्मं गायत ॥ ४ ॥

प्र शसा गोष्वन्थं क्रीळं यच्छर्षो मारुतम् ।

जग्मे रसंस्य वावृधे ॥ ५ ॥

को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च गमश्च धृतयः ।

यत् सीमन्तं न धूनुथ ॥ ६ ॥

नि घो यामाय मानुषो दध्र उत्राय मन्यवे ।

जिहीति पर्वतो गिरिः ॥ ७ ॥

येपामर्जेपु पृथिवी जुर्जुवा इव विश्वपतिः ।

मिया यामेषु रेजते ॥ ८ ॥

स्थिरं हि जानेमपां वयो मानुर्निरेतवे ।

यत् सीमनु द्विता शवः ॥ ९ ॥

उदु त्वे सुनद्यो गिरः काष्ठा अज्मेष्वजत ।

वाध्या अभिष्ठु यातये ॥ १० ॥

त्यं चिद् द्या दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृधम् ।

प्र र्चावयन्ति यामभिः ॥ ११ ॥

मरुतो यद् वो वलं जनों अचुच्यवीतन ।

गिरिरेचुच्यवीतन ॥ १२ ॥

यद् यान्ति मरुतः गं हं मुचतेऽभुना ।

दृणोति कश्चिदेपाम् ॥ १३ ॥

प्र यात शीर्षमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुर्वः ।
तत्रो पु माद्रयाध्वे ॥ १४ ॥
अस्ति हि ष्मा मद्राय वः ससिं ष्मा व्यर्मेयाम् ।
विश्वं चिद्रायुर्जावसे ॥ १५ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १।३।१-१५)

कव्दं नूनं कंधाप्रियः पिता पुत्रं न हस्तायोः ।
दधिष्वे वृक्तवर्हिषः ॥ १ ॥
कं नूनं कद्वं वो अर्थं गन्तां दिवो न पृथिव्याः ।
कं वो गावो न रण्यन्ति ॥ २ ॥
कं वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः कं सुविता ।
कवोऽधु विश्वानि सारंगाम् ॥ ३ ॥
यद् युयं पृथिमातरो मर्तांसः स्यातन ।
स्तोता वो अमृतः स्यात् । ॥ ४ ॥
मा वो मृगो न यवसे जरिता भुदजोऽप्यः ।
पथा यमस्य गाहुषं ॥ ५ ॥
मो पु णः परांपरा निर्रुद्धतिर्वुह्णो वधीत् ।
पद्भीष्टं वृष्ण्या सह ॥ ६ ॥
सत्यं त्वेया अमवन्तो धन्यञ्चिदा रुद्रियांसः ।
मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥ ७ ॥
वाश्रेयं वियुन्मिमाति वृत्सं न माता सिपकि ।
यदेपां वृष्टिरसंजि ॥ ८ ॥
दियां चित् तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन ।
यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥ ९ ॥
अर्थं स्वनान्मरुतां विश्वमा सन्न पाधिषम् ।
अरेजन्त प्र मानुषाः ॥ १० ॥
मरुतो वीळुपाणिभि—क्षिप्रा रोधंस्वतीरुन् ।
यातेमर्षिद्रयामभिः ॥ ११ ॥
स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम् ।
सुसैस्त्रता अमीशवः ॥ १२ ॥
अच्छो यद्वा तनां गिरा जराये ब्रह्मणस्पतिम् ।
अग्निं मित्रं न दर्शतम् ॥ १३ ॥

मिमीहि श्लोकमास्त्र्यं पर्जन्यं इव ततनः ।
गायं गायत्रमुक्थ्यम् ॥ १४ ॥
वन्दस्व मरुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम् ।
असे वृद्धा असाग्निह ॥ १५ ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० १।३।१-१०)

(प्रणयः = (विपना) वृद्धा, (समा) सतो वृद्धा ।)

प्र यदित्या परावतः शोचिर्न मानमस्यथ ।
कस्य कत्वा मरुतः कस्य वर्षसा
कं याथ कं हं धृतयः ॥ १ ॥
स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे
वीळु उत प्रतिष्कर्मे ।
युष्माकमस्तु तर्धिषी पर्नीयसी
मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २ ॥
परां ह यत् स्थिरं हृथ नरो वर्तयथा गुरु ।
वि याथन वनिर्नः पृथिव्या
व्याशाः पर्यतानाम् ॥ ३ ॥
नहि वः शत्रुर्विदिदे अधि चवि
न भूम्यां रिशादसः ।
युष्माकमस्तु तर्धिषी तनां युजा
वृद्वांसो नू चिद्राधृषं ॥ ४ ॥
प्र वेषयन्ति पर्यतान् वि विश्वन्ति वनस्पतीन् ।
प्रो अरुत मरुतो दुर्मदा इध
देवांसः सर्वथा विशा ॥ ५ ॥
उपो रथेषु पृषतीरयुग्धं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
आ वो यामाय पृथिवी चिद्रथोत्
अवीमयन्त मानुषाः ॥ ६ ॥
आ वो मरुद् तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे ।
गन्तां नूनं नोऽवसा यथा पुरा
इथा कण्वाय विभ्युषं ॥ ७ ॥
युष्मेपितो मरुतो मर्त्यपित
आ यो नो अभ्य ईपते ।
वि तं युयोतु शर्वसा व्योजसा
वि युष्माकाभिरुतिभिः ॥ ८ ॥

असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिः		आ नो रयि मरुच्युतं पुरुशुं विभ्यधायमम् ।	
गन्ता वृष्टि न विद्युतः	॥ ९ ॥	इयतां मरुतो दिवः	॥ १३ ॥
असाम्योजो विभृथा सुदानवो		अधीय यद् गिरीणां यामं शुभ्रा अचिध्वम् ।	
असामि धृतयः शर्वः ।		सुयानैर्मैन्द्रध्व इन्दुभिः	॥ १४ ॥
ऋषिद्विपै मरुतः परिमून्यव		पूतावतश्चिदेपां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः ।	
इपुं न खृजत द्विपम्	॥ १० ॥	अदाभ्यस्य मन्मभिः	॥ १५ ॥
॥ ६ ॥ (ऋ० ८।७।१-३६)		ये द्रुप्ता इव रोदसी धमन्त्यनु वृष्टिभिः ।	
पुनर्वरुषः वाण्वः । गायत्री ।		उत्सं दुहन्तो अक्षितम्	॥ १६ ॥
प्र यद् वस्त्रिपुभमिपं मरुतो विप्रो अक्षरत् ।		उदुं स्वानेभिरीरत् उद् रयैरदुं वायुभिः ।	
वि पर्वतेषु राजथ	॥ १ ॥	उत् स्तोमैः पृश्निमातरः	॥ १७ ॥
यद्ग तंविपीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम् ।		येनाव तुर्वशां यदुं येन कर्षं धनस्पृतम् ।	
नि पर्वता अहासत	॥ २ ॥	राये सु तस्य धीमहि	॥ १८ ॥
उदीरयन्त वायुभिर्वीथासुः पृश्निमातरः ।		इमा उ वः सुदानवो घृतं न पिप्युपीरिपः ।	
धुक्षन्त पिप्युपीमिपम्	॥ ३ ॥	यधीन् काण्वस्य मन्मभिः	॥ १९ ॥
वर्षन्ति मरुतो मिहं प्र वैपयन्ति पर्वतान् ।		कं नूनं सुदानवो मदथा वृक्तवर्हिपः ।	
यद् यामं यान्ति वायुभिः	॥ ४ ॥	ग्रहा को वः सपर्यति	॥ २० ॥
नि यद् यामाय धो गिरिनि सिन्धवो विधर्मणे ।		नहि ष्म यद् वः पुरा स्तोमैर्भिवृक्तवर्हिपः ।	
महे शुष्माय येमिरे	॥ ५ ॥	शर्धो ऋतस्य जिन्वथ	॥ २१ ॥
युष्मा उ नक्तमृतये युष्मान् दिवा हवामहे ।		समु त्वे मंहतीरुपः सं क्षोणी समु सूर्यम् ।	
युष्मान् प्रयत्यध्वरे	॥ ६ ॥	सं वज्रं पर्वशो दधुः	॥ २२ ॥
उदृ त्वे अरुणप्सवश्चिप्रा यामेभिरीरते ।		वि वृत्रं पर्वशोर्ययुर्वि पर्वतां अराजिनः ।	
धाथा अधि ण्णुनां दिवः	॥ ७ ॥	चक्राणा वृष्णि पौंस्यम्	॥ २३ ॥
सृजन्ति रुदिममोजला पन्थां सूर्याय यातवे ।		अनुं त्रितस्य युध्यतः शुष्ममावस्रुत क्रतुम् ।	
ते मानुमिर्वि तस्थिरे	॥ ८ ॥	अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये	॥ २४ ॥
इमां मे मरुतो गिरि मिमं स्तोमंरुभुक्षणः ।		विद्युदस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन् हिरेण्ययीः ।	
इमं मे घनता हवम्	॥ ९ ॥	शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये	॥ २५ ॥
शीणि सरासि पृश्नयो दुदहे वज्रिणे मधु ।		उशना यत् परावत उक्ष्णो रन्ध्रमर्यातन ।	
उत्तं कर्षन्धमुद्रिणम्	॥ १० ॥	घौरं चक्रदद् भिया	॥ २६ ॥
मरुतो यद् धो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे ।		आ नो मूखस्यं हावने ऽश्वैर्हिरेण्यपाणिभिः ।	
आ तू न उप गन्तन	॥ ११ ॥	देवासु उप गन्तन	॥ २७ ॥
य्यं हि एा सुदानवो ग्द्रां षड्भुक्ष्णो वमं ।		यदेपां पृपती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः ।	
उत प्रचैतसो मदे	॥ १२ ॥	यान्ति शुभ्रा रिणद्रुपः	॥ २८ ॥

सुपोमै शयणाव—त्यार्जिके पुस्त्यावति ।
ययुर्निचक्रया नरः ॥ २९ ॥
कदा गच्छाय मरुत इत्या धिप्रं हर्षमानम् ।
माडीकेभिर्नाथमानम् ॥ ३० ॥
कञ्च नुनं कंधप्रियो यदिन्द्रमजहातन ।
को वः सखित्व औहते ॥ ३१ ॥
सहो पु णो वज्रहस्तैः कण्वासो अग्नि मरुद्भिः ।
स्तूपे हिरण्यवाशीभिः ॥ ३२ ॥
ओ पु वृष्णः प्रयज्यु—ना नव्यसे सुवितार्य ।
ववृत्त्यां चित्रवाजान् ॥ ३३ ॥
गिर्यश्चिन्नि जिहते पशीनासो मन्यमानाः ।
पर्यताश्चिन्नि यैमिरे ॥ ३४ ॥
आक्ष्णयावानो वह—न्यन्तरिक्षेण पततः ।
धातारः स्तुवते चर्यः ॥ ३५ ॥
अग्निहिं जानि पृथ्वी—दृष्टन्तो न सूरौ अचिर्षा ।
ते भानुभिविं तस्मिरे ॥ ३६ ॥

॥ ७ ॥ (अ० ८।१०।१-१६)

शोभरिः काणः । प्रगायः= (विपमा कङ्कप्, समा सतोवृहती) ;
१४ सतो विराट् ।

आ गन्ता मा रिंपपयत्
प्रस्थोवानो मापं स्याता समन्यवः ।
स्थिरा चित्रमयिष्णवः ॥ १ ॥
धीळुपाविर्मिर्मरुत श्रुभुक्षण
आ रुद्रासः सुदीतिभिः ।
इया नो अद्या गता पुरुस्पृहो
यसमा सोमपिषवः ॥ २ ॥
विष्णा हि रुद्रिषाणां
शुष्मंमुश्रं मरुतां शिमीवताम् ।
धिष्णोपिषस्य मीळुपाम् ॥ ३ ॥
धि ङ्रीपालि पारपतन् तिष्ठद् दुच्छ्रुना
उभे युञ्जन्त रोदसी ।

प्र धन्यान्धैरत शुभ्रखादयो
यदेजथ स्वमानवः ॥ ४ ॥
अच्युता चिद् वो अजमन्ना
नानदति पर्यतासो वनस्पतिः ।
भूमियामेपु रेजते ॥ ५ ॥
अमाय वो मरुतो यातवे द्यौः
जिहीत उत्तरा वृहत् ।
यथा नरो देदिशते तनूपु
आ त्वग्नांसि द्याह्वोजसः ॥ ६ ॥
स्वधामनु धियं नरो
महिं त्वेषा अमवन्तो वृषस्तवः ।
वहन्ते अहुतप्तवः ॥ ७ ॥
गोभिर्वाणो अज्यते सोमरीणां
रथे कोशे हिरण्यये ।
गोवन्धवः सुजातास इपे भुजे
महान्तो नः स्परसे नु ॥ ८ ॥
प्रति वो वृषदज्यो वृष्णे
शर्षाय मारुताय भरस्वम् ।
हृव्या वृषप्रयाण्ये ॥ ९ ॥
वृष्णभवेन मरुतो वृषन्सुना रथेन वृषनामिना ।
आ श्येनासो न पक्षिणो वृथा नरो
हृव्या नो वीतये गत ॥ १० ॥
समानमन्ज्येपां
वि भ्राजन्ते रुफमासो अधि वाहुयुं ।
द्विद्युतस्युष्टयः ॥ ११ ॥
त उमासो वृषण उप्रवाहयो
नकिष्टनूपुं येतिरे ।
स्थिरा धन्यान्यायुधा रथेषु वो
अनीकेष्वधि धियः ॥ १२ ॥
येपामणो न सप्रयो
जाम त्वेयं शर्षतामेकमिद् भुजे ।
ययो न पिष्यं सर्दः ॥ १३ ॥

तान् वन्दस्व मरुतस्तौ उप स्तुहि
तेषां हि धुनीनाम् ।

अराणां च चरमस्तदैषां

दाना म्हा तदैषाम्

॥ १४ ॥

सुभगः स व ऊतिपु

आसु पूर्वैसु मरुतो व्युष्टिषु ।

यो वा नूनमुतासति

॥ १५ ॥

यस्य वा युयं प्रति वाजिनो नर

आ हृव्या वीतये गथ

अभि प धृञ्जेरुत वाजंसातिभिः

सुहा वा धूतयो नशत्

॥ १६ ॥

यथा रुद्रस्य सूनवो

दिवो वशन्यसुरस्य वेधसः ।

युवानस्तथैदं सत्

॥ १७ ॥

ये चाहन्ति मरुतः सुदानवः

स्मग्मीळुपश्चरन्ति ये ।

अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा

युवान् आ ववृध्वम्

॥ १८ ॥

यून ऊ पु नविष्टया

वृष्णाः पावकां अभि सोभरे गिरा ।

गाय गा इष चक्रेपत्

॥ १९ ॥

साहा ये सन्ति मुष्टिहेष हव्यो

विश्वान्सु पृत्सु होरुषु ।

वृष्णाश्चन्द्रान् सुश्रवस्तमान् गिरा

यन्दस्य मरुतो अहं

॥ २० ॥

गार्वाक्षिद् घा समन्यवः

सजात्येन मरुतः सर्वध्ववः ।

रिष्टे ककुभो मिथः

॥ २१ ॥

मर्तेधिद् यो नृतयो रुक्मवक्षसु

उपं भ्रातृत्वमार्यति ।

अधि नो गात मरुतः सदा हि वं

भापित्यमस्ति निर्धुयि

॥ २२ ॥

मरुतो मारुतस्य न

आ भैपजस्य वहता सुदानवः ।

युयं संपायः सतयः

॥ २३ ॥

यामिः सिन्धुमवथ यामिस्तुर्वथ

यामिर्दशस्यथा फिर्विम् ।

मर्यो नो भूतोतिभिर्मयोभुयः

शिवाभिरसचद्विपः

॥ २४ ॥

यत् सिन्धौ यदसिन्धुयां

यत् संमुद्रेषु मरुतः सुवर्हिपः ।

यत् पर्वतेषु भेपजम्

॥ २५ ॥

विश्वं पश्यन्तो विभूथा तनूष्वा

तेना नो अधि वोचत ।

क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न

इष्कर्ता विहुतं पुनः

॥ २६ ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० १।६४ १-१५)

नोधा गीतमः । अगती, १५ त्रिष्टुप् ।

वृष्णे शर्षपु सुर्मखाय वेधसे

नोधेः सुवृत्किं प्र भरा मरुद्भवः ।

अपो न धीरो मनसा सुहृत्स्यो

गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः

॥ १ ॥

ते जज्ञिरे दिव ऋष्वारस उक्ष्णो

रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।

पावकासुः शुच्ययः सूर्या इव

सत्वानो न द्रष्टिनो घोरवर्षसः

॥ २ ॥

युवानो रुद्रा अजरा अभोग्धनो

ववक्षुरधिगायः पर्वता इष ।

हृब्धा चिद् विश्वा भुवन्तानि पार्थिवा

प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मजमना

॥ ३ ॥

चित्रैरजिनिविषुषे व्यञ्जते

यक्षःसु रुक्मां अधि येतिरे शुभे ।

अंसैष्वेषां नि मिमृक्षुर्गृह्यः

साकं जज्ञिरे स्वर्धया दिवो नरः

॥ ४ ॥

ईशानकृतो धुनयो विशादसो
 यातान् विद्युतस्तर्विपीभिरकृत ।
 दुहन्त्यूर्धादिव्यानि धूर्तयो
 भूमि पिन्वन्ति पर्यसा परित्रयः
 पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानन्वः
 पर्यो घृतवद् विदयेन्नाभुवः ।
 अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनं
 उत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम्
 महिषासो मायिनश्चित्रभानवो
 गिरयो न स्वतंचसो रघुप्यदः ।
 मृगा इव हस्तिनः खादथा घना
 यदारुणीषु तविपीरयुग्ध्वम्
 सिंहा इव नानदति प्रचेतसः
 पिशा इव सुपिशां विश्वेदसः ।
 क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्मुष्टिभिः
 सामिन् सवाधः शवसादिमन्पवः
 रोदसी आ वंदता गणधियो
 नृपाचः शराः शवसादिमन्पवः ।
 आ घुर्धुरेण्वमतिर्न दंशता
 विद्युन्न तस्यो मरुतो रथेषु वः
 विश्वेदसो रयिभिः समौकसः
 संमिश्रास्तर्विपीभिर्विरुधिनः ।
 अस्तारु इषुं दधिरे गर्मस्त्योः
 अनन्तनुष्मा घृष्यादयो नरः
 हिरण्यैभिः पविभिः पयोनुधु
 उज्जिग्रन्त आपय्योडे न पर्येताम् ।
 मृगा अयासः स्युर्दतो धुष्युतो
 दुधुर्दतो मरुतो भाजरेष्टयः
 घृषुं पायकं घनिनं विचर्यणि
 रुद्रस्यं सुनुं ह्यसा गृणीमसि ।
 रजस्तारं तपसं मारुतं गणं
 ऋजीपिणं घृषणं मद्यत धिये

प्र नू स मरुतः शर्वसा जनां अति
 तस्यौ वं ऊती मरुतो यमावत ।
 अर्वाङ्घ्रिर्वाजं भरते घना नृभिः
 ॥ ५ ॥ अपृच्छयं क्रतुमा शैति पुष्यति ॥ १३ ॥
 चरुंल्यं मरुतः पृस्तु दुष्टं
 द्युमन्तं शुष्मं मघवंत्सु घत्तन ।
 धनस्पृर्तमुन्त्यं विश्वचर्पणि
 ॥ ६ ॥ ताकं पुष्येम् तनयं शतं हिमाः ॥ १४ ॥
 नू शिरं मरुतो शीरवन्तं
 ऋतीपाहं रयिमस्मासुं घत्त ।
 सुहन्निणं शतितं शशुवांसं
 ॥ ७ ॥ श्रातमिक्षु धियावंसुर्जगम्यात् ॥ १५ ॥
 ॥ ९ ॥ (ऋ० १।८।१-१०)
 गोतमो राहृगणः । जगतोः ५, १२ विद्युत् ।
 ॥ ८ ॥ प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सतयो
 यामन् रुद्रस्यं सुनयः सुदंसनः ।
 रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे घृधे
 मर्दन्ति शीरा विदयेषु घृष्ययः ॥ १ ॥
 ॥ ९ ॥ त उज्जितासो महिमानमाशत
 दिचि रुद्रसो अधि चक्रिरे सद्दः ।
 अचैन्तो अकं जूनयन्त इन्द्रियं
 मधि धियों दधिरे पृश्निमातरः ॥ २ ॥
 ॥ १० ॥ गोमातरो यच्छुमयन्ते अश्रिभिः
 तनूपं शुभा दधिरे विरुग्मतः ।
 बायन्ते विश्वमभिमातिनमप
 ॥ ११ ॥ घर्मन्पेपामनुं रीपते घनम् ॥ ३ ॥
 यि ये भार्जन्ते सुर्मपाम ऋष्टिभिः
 प्रच्यापर्यन्तो अच्युता चिदोर्जमा ।
 मनोनुयो यन्मरुतो रथेप्या
 ॥ १२ ॥ घृषमातासुः पृषतीर्युग्ध्वम् ॥ ४ ॥

प्र यद् रथेषु पृषतीर्युग्ध्वं
 याजे अद्रि मरुतो रंहयन्तः ।
 उतारुपस्य वि ध्यन्ति धाराः
 चर्मैवोदभिव्यन्दन्ति भूमं
 आ वो वहन्तु सप्तयो रघुप्यदो
 रघुपत्वानः प्र जिगात वाहुभिः ।
 सीदता वर्हिस्व वः सदस्कृतं
 मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः
 तैऽवधन्त स्वतवसो महित्वना
 नाकं तस्थुरु चक्रिरे सदः ।
 विष्णुर्यद्वावद् वृषणं मद्रच्युतं
 ययो न सीदन्नाधि वर्हिषि प्रिये
 शरा इवेद् युयुधयो न जगमयः
 श्रवस्यथो न पृतनासु येतिरे ।
 भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्गयो
 राजान इव त्वेपसदशो नरः
 त्वष्टा यद् वज्रं सुकृतं हिरण्ययं
 मुहूर्त्तमृष्टिं स्वप्ना अवर्तयत् ।
 धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तव्ये
 अर्हन् वृत्रं निरपामोन्जदणवम्
 ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवृतं त ओजसा
 दादृष्टाणं चिद् विभिदुर्वि पर्वतम् ।
 धमन्तो घाणं मरुतः सुदानवो
 मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे
 जिह्वं नुनुद्रेऽवृतं तया दिशा
 अस्मिन्नप्रत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
 आ गच्छन्तीमर्षसा चिप्रमानवः
 कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः
 या यः शर्मं शत्रुमानाय सन्ति
 शिघान्ति दाशुर्पे यच्छ्रुताधि ।
 अगमभ्यं नानि मरुतो वि यन्त
 रपि नो धत्त वृषणः सुपीरम्

॥ १० ॥ (ऋ० १।८६।१-१०) गायत्री ।
 मरुतो यस्य हि क्षयं प्राथा दिवो विमहसः ।
 स सुगोपातमो जनः ॥ १ ॥
 यज्ञैर्वी यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् ।
 मरुतः शृणुता हवम् ॥ २ ॥
 उत वा यस्य वाजिनो ऽनु विप्रमर्तक्षत ।
 स गन्ता गोमर्ति व्रजे ॥ ३ ॥
 अस्य वीरस्य वर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टियु ।
 उपयं मदश्च शस्यते ॥ ४ ॥
 अस्य श्रौपन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरामि ।
 सूरं चित् सक्षुपीरिपः ॥ ५ ॥
 पूर्वाभिर्हि ददाशिम शरद्रिर्मरुतो वयम् ।
 अर्वाभिश्चर्षणीनाम् ॥ ६ ॥
 सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यैः ।
 यस्य प्रयांसि पर्पथ ॥ ७ ॥
 शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य संत्यशवसः ।
 विदा कामस्य वेनतः ॥ ८ ॥
 यूयं तत् संत्यशवस आविष्कृतं महित्वना ।
 विध्यता विद्युता रक्षः ॥ ९ ॥
 गृहता गृह्यं तमो वि यात विश्वमन्त्रिणम् ।
 ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥ १० ॥
 ॥ ११ ॥ (ऋ० १।८७।१-६) जगती ।
 प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरुग्निनो
 अनानता अविधुरा श्रुजीपिणः ।
 जुष्टमासो नृत्मासो अग्निभिः
 व्यानजे के चिदुक्षा इव स्तुभिः ॥ १ ॥
 उपद्वरेषु यदचिध्वं युयि
 धयं इव मरुतः केन चित् पथा ।
 द्योतन्ति कोशा उप घो रयेध्या
 घृतमुक्षता मधुपर्णमर्चते ॥ २ ॥

प्रेयामज्जेषु विद्युरेवं रेजते
भूमिर्यामेषु यद्दं युञ्जते शुभे ।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदप्रयः
स्वयं महित्वं पनयन्त घृतयः

॥ ३ ॥

स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवां गणोऽं
अया ईशानस्तविपीमिरावृतः ।
असि सत्य ऋणयावानेद्यो
अस्या धियः प्राविताथा वृषां गुणः

॥ ४ ॥

पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि
सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।
यदीमिन्द्रं शम्यकाण आशत
आदिन्नामानि यक्षियानि दधिरे

॥ ५ ॥

धियस्ते कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे
ते रदिममिस्त ऋकभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इप्सिणो अर्भोरवो
विदे प्रियस्य मारुतस्य धान्नः

॥ ६ ॥

॥ १२ ॥ (ऋ० १।८।१-६)

(विष्टुप. १, ९ प्रस्तावपंक्तिः, ५ विराड्भवा) ।

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वकैः
रथैर्भिर्यात ऋष्टिमद्भिरेवंपणैः ।
आ वीर्येष्टया न हृषा
वयो न पतता सुमायाः

॥ १ ॥

तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः
शुभे कं यान्ति रथतृभिरेवैः ।
रुस्मो न चित्रः स्वधितीवान्
पृष्या रथस्य जङ्घनन्त भूर्म

॥ २ ॥

ध्रिये कं द्यो अर्धि तनुपु वादीः
मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा ।
युष्मभ्यं कं मरुतः सुजाताः
तुविद्युन्नासां घनयन्ते अद्रिम

॥ ३ ॥

अहानि गृध्राः पर्या व आरुः
इमां धियं वाकीर्यां च देवीम् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अकैः
ऊर्ध्वं लुनुद्र उत्साधिं पिवञ्चै

॥ ४ ॥

पुतत् त्यन्न योजनमचेति
सुस्वहं यन्मरुतो गोतमो वः ।
पद्भ्यन् हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्
विधावतो वराहान्

॥ ५ ॥

एषा स्या वो मरुतोऽनुमञ्जी
प्रति प्रोमति वाधतो न धाणी ।
अस्तोभयद् वृथासा मनु स्वधां गर्भस्त्योः ॥ ६ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० १।२३।८)

परच्छेयो देवोदासिः । अलक्षिः ।

मो पु वो अस्मद्भि तानि पौंस्या
सना भूयन् दुस्मानि मोत जाँरिपुः
अस्वत् पुरोत जाँरिपुः ।

॥ ६ ॥

यद् वक्षिन्नं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।
असासु तन्मरुतो यच्च दुष्टं
दिधृता यच्च दुष्टम्

॥ ८ ॥

॥ १४ ॥ (ऋ० १।१६।१-१५)

अगरुतो मैत्रावरुणिः । अगतो, १४-१५ विष्टुर् ।

तद्यु वीचाम रभसाय जन्मते
पूर्वं महित्वं धृपमस्य केतवै ।
पेधेव यामन् मरुतस्तुविष्यणो
युधेवै शकास्तविपारिणि कर्तन

॥ १ ॥

नित्यं न सुनुं मधु विध्रत उप
क्रीळन्ति क्रीळा विदथैपु घृष्ययः ।
नक्षन्ति रुद्रा अवंसा नमस्विनं
न मंधन्ति स्वतवसा द्येष्टिर्तम्

॥ २ ॥

यस्मा ऊर्मासो अमृता अरांसत
रायस्पोषं च हृषिषां द्वाशुषं ।
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता ईच
पुरु रजांसि पर्यसा मयोभुवः

॥ ३ ॥

आ ये रजांसि तर्विपीभिरव्यत
 प्र व पवासुः स्वयतासो अघजन ।
 भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या
 चित्रो वो यामः प्रयतास्वष्टिपु
 यत् त्वेपर्यामा नदर्यन्त पर्वतान्
 द्विवो यो पृष्टं नर्या अर्च्यवुः ।
 विश्वो वो अजमन् भयते वनस्पती
 रथीयन्तीषु प्र जिहीत ओर्पधिः
 युयं न उग्रा मरुतः सुचेतुना
 अरिष्टप्रामाः सुमति पिपतन ।
 यमा वो द्विद्यद् रदति किचिर्दती
 रिणाति पश्वः सुधिंतेव वर्हणा
 प्र स्कम्भेदेणा अनवभ्रराधसो
 अलातृणासो विदथेपु सुष्टुताः ।
 अर्चन्त्यकं मंदिरस्य पीतये
 विदुर्षारस्य प्रथमानि पौस्या
 दातभुजिभिस्तमभिहुतेरघात्
 पूर्मी रक्षता मरुतो यमावत ।
 जनं यमुग्रास्तयसो विरशिनः
 प्रायना शंसात् तनयस्य पुष्टिपु
 विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो
 मिथस्त्वृष्येव तद्विपाण्याहिता ।
 शंतेष्या वः प्रपेषु ग्रादयो
 धक्षो पशुप्रा समया वि पावृते
 भूरीणि भद्रा नर्येषु ग्राह्यु
 पशुःसु शयमा रमस्तासो अजयः ।
 शंतेष्येनाः पविपु क्षुरा अधि
 पशो न पशान् व्यन धिर्वो धिरे
 मदाग्नो मदा विग्ना विभृतयो
 दृष्टन्तो ये द्विरया इष नृनिः ।
 मद्राः सुजिहाः श्वरितार धानभिः
 नमिक्ता इन्द्रं मरुतः परिपुर्मः

तद् वः सुजाता मरुतो महित्वं
 दीर्घं वो दात्रमहितेरिव वृतम् ।
 इन्द्रश्च न त्यजसा वि हुणाति तत्
 जनाय यस्यै सुकृते अराध्वम् ॥ ४ ॥
 तद् वो जामित्वं मरुतः परं युगे
 पुरु यच्छंसमस्तुतासु आचत ।
 अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या
 साकं नरो दुंसनेरा चिकित्रिरे ॥ ५ ॥
 येन दीर्घं मरुतः शूशवांम
 युष्माकेन परीणसा तुरासः ।
 आ यत् ततनन् वृजने जनास
 एभिर्यज्ञेभिस्तदमीष्टिमश्याम् ॥ ६ ॥
 एष वः स्तोमो मरुत इयं गीः
 मान्वार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
 एषा यांसीष्ट तन्वे वया
 विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ ७ ॥
 ॥ १५ ॥ (ऋ० १।१६।७।१-११)
 त्रिष्टुपः ; (१० पुरस्ताज्योतिः) ।
 ॥ ८ ॥
 आ नोऽर्वाभिर्मरुतो यान्त्वच्छा
 ज्येष्टैर्भिर्वा बृहदिवैः सुमायाः ।
 अध यदैवां नियतः परमाः
 संमुद्रस्ये चिद् धनयन्त पारे ॥ ९ ॥
 मिथयक्ष येषु सुधिता घृताची
 हिरण्यनिर्णिगुपेषु न श्रुष्टिः ।
 गुहा चरन्ती मनुषो न योषां
 सभायती विद्वथ्येव सं.पाक् ॥ १० ॥
 परां गुहा अयासो युव्या
 सांधारण्येयं मरुतो मिमिक्षुः ।
 न तैक्षी अप नुदन्त घोरा
 ज्वान् नृषं सुसवार्य देवाः ॥ ११ ॥

जोष्व् यदीमसुर्यां सूचये
 विपितस्तुका रोदसी नमणाः ।
 आ सूयेव विधृतो रथे गात्
 त्वेपप्रतीका नमसो नेत्या
 आस्थापयन्त युवति युवानः
 शुभे निर्मिश्रां विदथेषु पजाम् ।
 अको यद् वीं मरुतो हविष्मान्
 गायद् गाथं सुतसोमो दुवस्यन्
 प्र तं विवक्मि वकस्यो य एपां
 मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।
 सचा यदीं घृषमणा अह्युः
 स्थिरा चिजतीवहते सुभागाः
 पान्ति मित्रावरुणावघद्यात्
 चर्यत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।
 उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि
 वाबुध ईं मरुतो दातिवारः
 नही नु वीं मरुतो अन्त्यसे
 आरात्ताञ्चिच्छयसो अन्तमापुः ।
 ते धृष्णुना शवसा दशवांसो
 अणो न हेपो धृपता परि ष्टुः
 घयमयेन्द्रस्य प्रेषां वयं श्वो वींचेमहि समर्थे ।
 वयं पुरा महिं च नो अनु घ्नन्
 तन्न ऋमुक्षा नरामनु प्यात्
 एष वः स्तोमो मरुत इयं गीः
 मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
 एषा यासीष्ट तुन्वे वयां -
 विद्यामेयं वृजनं जीरदानुम्

॥ १६ ॥ (ऋ० १।१६८,१-१०)
 अमर्ता; ८-१० तिष्ठत् ।

यसायंशा वः समना तुतुवणिः
 धियंधियं चो देवया उं दधिष्वे ।

आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योः
 महे वृत्रव्यामवसे सुयुक्तिभिः ॥ १ ॥
 वृत्रासो न ये स्वजाः स्वतवसु
 ॥ ५ ॥ इपं स्वरभिजायन्त धृतयः ।
 सहस्रिय्यासो अपां नोमर्यं
 आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥ २ ॥
 सोमासो न ये सुतास्तृतांशवो
 ॥ ६ ॥ हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।
 ऐषामसेषु रभिमर्णाव रारभे
 हस्तेषु खादिश्वं कृतिश्च सं दधे ॥ ३ ॥
 अयं स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुः
 ॥ ७ ॥ अमर्त्याः कशया चोदत् तमना ।
 अरेणवस्तुविज्ञाता अच्युच्यवुः
 हळहानि चिगमरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ४ ॥
 को वोऽन्तमैरुत ऋष्टिवियुतो
 ॥ ८ ॥ रेजति तमना हन्वेव त्रिहयां ।
 धन्यच्युत इपां न यामनि
 पुरुपैरां अह्न्योः नैतदाः ॥ ५ ॥
 के स्विदस्य रजसो महस्परं
 ॥ ९ ॥ कावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।
 यच्छ्यावयथ वियुरेव संहितं
 व्यद्रेणा पतथ त्वेगमर्णवम् ॥ ६ ॥
 सातिनं वोऽमथती स्वथती
 त्वेपा विपाका मरुतः पिपिप्यती ।
 मद्रा वीं रातिः पृणतो न दक्षिणा
 ॥ ११ ॥ पृथुजयी असुर्येव जज्ञती ॥ ७ ॥
 प्रति द्योमन्ति सिन्धवः पविभ्यो
 यद्भियां वाचमुदीरयन्ति ।
 अयं सयन्त विद्युतः पृथिव्यां
 यदीं घृतं मरुतः मुष्णयन्ति ॥ ८ ॥

अस्तु पृथ्वीर्मते रणाय
 त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
 ते संस्तरासौऽजनयन्ताभ्यं
 आदित् स्वधामिपिरां पर्यपश्यन् ॥ ९ ॥
 एष वः स्तोमो मरुत इयं गीः
 मान्द्रार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
 एषा यासीष्ट तन्वै वयां
 विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥
 ॥ १७ ॥ (ऋ० १।१७।१-२) त्रिष्टुप् ।

प्रति व पुना नर्मसाहमेमि
 सुक्तेनं भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।
 रराणतां मरुतो वेषामिः
 नि हेळीं धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥ १ ॥
 एष वः स्तोमो मरुतो नर्मस्वान्
 दृदा तष्टे मर्नसा धायि देवाः ।
 उपेमा यांत मर्नसा जुषाणा
 युयं हि द्या नर्मस् इद् वृषांसः ॥ २ ॥
 ॥ १८ ॥ (ऋ० १।१७२।१-३) गायत्री ।

चित्रो वौऽस्तु याम्—श्चित्रं ज्ञती सुदानवः ।
 मरुतो अर्दिमानवः ॥ १ ॥
 धारे सा यः सुदानवो मरुतं ऋज्जती शरः ।
 धारे अदमा यमस्यथ ॥ २ ॥
 तृणस्करन्दस्य तु विद्राः परिं वृक्क सुदानवः ।
 ऊर्ष्यान् नः कर्नं जीवमे ॥ ३ ॥

॥ १९ ॥ (ऋ० १।३०।११)

पृथमदः (आत्रिः(यः शोभोद्यः पथाः३ भार्गवः)
 शोभकः । जपती ।

तं पः शर्ये मार्कते सुम्नयुगित
 उपं द्रुये नर्मसा देर्यं जर्नम् ।
 एषा रयिं एर्येपारं नशांमदा
 अपय्यासां धुर्यं हिपेदिं ॥ ११ ॥

॥ २० ॥ (ऋ० १।३०।१-१५)

जपती; १५ त्रिष्टुप् ।

धारावरा मरुतो ध्रुण्वौजसो
 मृगा न भीमास्तविपीभिरुचिनः ।
 अन्नयो न शूशाचाना ऋजीपिणो
 भूमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥ १ ॥
 धावो न स्तुर्मिश्चितयन्त खादिनो
 व्युभ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः ।
 रुद्रो यद् वौ मरुतो खमवक्षसो
 वृषार्जनि पृष्ट्याः शुक ऊर्धनि ॥ २ ॥
 उक्षन्ते अश्वौ अस्यां इवाजिषु
 नदस्य कर्णस्तुरयन्त आशुभिः ।
 हिरण्यशिप्रा मरुतो दर्विध्वतः
 पृक्षं याथ पृपतीभिः समन्यवः ॥ ३ ॥
 पृक्षे ता विश्वा भुर्धना ववक्षिरे
 मित्राय वा सदमा जीरदानवः ।
 पृपदश्यासो अनवधराधस
 ऋजिप्यासो न वयुनेषु ध्रुपदः ॥ ४ ॥
 इन्धन्वभिधेनुमीं रण्शद्वधभिः
 अध्वसाभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।
 आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन
 मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥ ५ ॥
 आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो
 नरां न शंसः सर्वनानि गन्तन ।
 अश्यामिव पिप्यत धेनुमूर्धनि
 कर्ता धियं जरिथे वाजनेपदासम् ॥ ६ ॥
 तं नो दात मरुतो घ्राजिनं रधं
 आपानं ब्रह्मं चितयद् द्विषेदिंवे ।
 इयं स्तोतृभ्यो वृजनंषु कारयै
 मनि मेधामरिंदिं दुष्टं मर्तः ॥ ७ ॥

यद् युञ्जते मरुतो रुमवक्ष्णसो
 अश्वान् रथेषु भग आ सुदानवः ।
 धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते
 जनाय रातहविषे महीभिर्षम्
 यो नो मरुतो वृकताति मर्यो
 रिपुर्दधे वंसवो रक्षता रिपः ।
 वर्तयत तर्पुषा चक्रियाभि तं
 अयं रुद्रा अशसो हन्तना वधः
 चित्रं तद् वो मरुतो याम् चेकिते
 पृथ्या यद्घरभ्यापर्यो दुहुः ।
 यद् वा निदे नवमानस्य रुद्रियाः
 विते जराय जुरतामदाभ्याः
 तान् वो महो मरुतं पययाज्ञो
 विष्णोरेपस्यं प्रभुधे हवामहे ।
 हिरण्यवर्णान् ककुहान् यत्सुचो
 ह्रस्वण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे
 ते दशान्वाः प्रथमा युष्मद्दिदे
 ते नो हिन्वन्तुपसो व्युष्टिषु ।
 उषा न समीरंरुणैरपोर्णुते
 महो ज्योतिषा शुचता गोवर्णसा
 ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिमी
 रुद्रा ऋतस्य सवनेषु वावृधुः ।
 निमेघमाना अत्येन पाजसा
 सुख्यन्द् वणी दधिरे सुपेशसम्
 तौ ईयानो महि वरुधमतय
 उषं घेदेना नर्मसा गृणीमसि ।
 व्रितो न यान् पञ्च होतृनभिर्षय
 भाववर्तदवरा चक्रियावसे
 यया रभ्रं पारयथात्यंद्दो
 यया निदो मुख्यं यन्दितारम् ।
 अर्वाची सा मरुतो या व ऊतिः
 ओ धु आधेयं सुमतिर्जिगातु

॥ ८ ॥
 ॥ ९ ॥
 ॥ १० ॥
 ॥ ११ ॥
 ॥ १२ ॥
 ॥ १३ ॥
 ॥ १४ ॥
 ॥ १५ ॥

॥ २१ ॥ (ऋ० ३।२६।४-६)
 गायिनो विद्यामित्राः । जगती ।

प्र यन्तु वाजास्तविपीभिर्ऋयः
 शुभे संमिह्नाः पूर्णतीरयुक्षत ।
 बृहदुक्षो मरुतो विश्ववदसः
 प्र वैपयन्ति पर्वता अदाभ्याः
 अग्निश्चिर्यो मरुतो विश्वकृष्टयः
 आ त्वेपमुग्रमव ईमहे वयम् ।
 ते स्वानिनो रुद्रिया वृपनिर्णिजः
 सिंहा न ह्येपकृतवः सुदानवः
 व्रातैव्रातं गुणगणं सुशस्तिभिः
 अग्नेर्मां मरुतामोज ईमहे ।
 पृषदश्वासो अनवध्रपाधसो
 गन्तारो युष्मं विदथेषु धीराः

॥ २२ ॥ (ऋ० ५।१२।१-२७)

श्यावाश्व आश्रेयः । अवयुषुः ६, १६, १७ पङ्क्तिः ।
 प्र श्यावाश्व धृष्ण्या उर्वा मरुद्रिर्ऋकभिः ।
 ये अश्रोघर्मानुष्युधं श्रवो मरुदन्ति यशियाः ॥ १ ॥
 ते हि स्थिरस्य शर्वसः सखायः सन्ति धृष्ण्या ।
 ते यामन्ना घृषद्विनः तमना पान्ति शश्वतः ॥ २ ॥
 ते स्वन्द्रासो नोक्षणो ऽतिं प्कन्दन्ति शर्वरीः ।
 मरुतामघा महो द्विवि क्षमा चं मग्महे ॥ ३ ॥
 मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमि युष्मं चं धृष्ण्या ।
 विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्ये रिपः ॥ ४ ॥
 अहन्तो ये सुदानवो नरो असांमिशवसः ।
 प्र युष्मं यशिर्यभ्यो द्विवो अर्वा मरुद्वयः ॥ ५ ॥
 आ रुक्मैरा युधा नरं ऋध्या ऋष्टीरंरुक्षत ।
 अन्वेनां अहं विचुतो मरुतो जग्शतीरिव
 मानुरतं तमना द्विवः
 ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिह्ना आ ।
 वृजनं वा नदीनां सभस्वं वा महो द्वियः ॥ ७ ॥

शार्ङ्गो मारुतमुच्छंस सत्यशिवसम्भवंसम् ।
 उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ८
 उत स्म ते परेष्ण्या मूर्ध्ना वसत दुग्धवर्षः ।
 उत पृथ्या रथाना मर्दिं भिन्दन्त्योजसा ॥ ९ ॥
 आपथयो विपथयो ऽन्तस्पथा अनुपथाः ।
 पतेभिर्मह्यं नामभिर्ध्वं विप्रार ओहते ॥ १० ॥
 अधा नरो न्योहते ऽर्धा नियत ओहते ।
 अधा पारवता इति चित्रा रूपाणि दश्यां ॥ ११ ॥
 छन्दःस्तुभः कुम्भन्यव उत्समा कीरिणां नृतुः ।
 ते मे के चित्र ताववः
 ऊर्मा आसन् दृशि त्विये ॥ १२ ॥
 य ऋष्या ऋषिष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
 तमृपे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥ १३ ॥
 अच्छे ऋपे मारुतं गणं दाना मित्रं न योपणां ।
 द्वियो वा धृष्णव ओर्जसा
 स्तुता धीभिरिषण्यत ॥ १४ ॥
 नू मंयान पैयां देवाँ अच्छा न वृक्षणां ।
 शाना संचेत सुरिभिर्र्यामध्रुतेभिरञ्जिभिः ॥ १५ ॥
 प्र ये मे धन्येये गां योचन्त सुरयः
 पूर्तिर योचन्त मातरम् ।
 अर्धा पितरिभिर्मिणं यद्रं योचन्त शिफंसः ॥ १६ ॥
 मत्त मे मत्त श्राफिन एकमेका शला दंडुः ।
 यमुनांशामधि धृतमुद् राधो गव्यं मृजे
 नि राधो गव्यं मृजे ॥ १७ ॥
 ॥ १६ ॥ (क्र० ५१५३११-१६)
 १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १५८, १५९, १६०, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १७८, १७९, १८०, १८१, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १८९, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, १९९, २००, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५४, २५५, २५६, २५७, २५८, २५९, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७२, २७३, २७४, २७५, २७६, २७७, २७८, २७९, २८०, २८१, २८२, २८३, २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, २९८, २९९, ३००, ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०८, ३०९, ३१०, ३११, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३२८, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७, ३३८, ३३९, ३४०, ३४१, ३४२, ३४३, ३४४, ३४५, ३४६, ३४७, ३४८, ३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५३, ३५४, ३५५, ३५६, ३५७, ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३६४, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३६९, ३७०, ३७१, ३७२, ३७३, ३७४, ३७५, ३७६, ३७७, ३७८, ३७९, ३८०, ३८१, ३८२, ३८३, ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८८, ३८९, ३९०, ३९१, ३९२, ३९३, ३९४, ३९५, ३९६, ३९७, ३९८, ३९९, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०६, ४०७, ४०८, ४०९, ४१०, ४११, ४१२, ४१३, ४१४, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१, ४३२, ४३३, ४३४, ४३५, ४३६, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९, ४७०, ४७१, ४७२, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७, ४७८, ४७९, ४८०, ४८१, ४८२, ४८३, ४८४, ४८५, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९, ४९०, ४९१, ४९२, ४९३, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७, ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०५, ५०६, ५०७, ५०८, ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१, ५२२, ५२३, ५२४, ५२५, ५२६, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३७, ५३८, ५३९, ५४०, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५५१, ५५२, ५५३, ५५४, ५५५, ५५६, ५५७, ५५८, ५५९, ५६०, ५६१, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६६, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५८१, ५८२, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५८८, ५८९, ५९०, ५९१, ५९२, ५९३, ५९४, ५९५, ५९६, ५९७, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६०९, ६१०, ६११, ६१२, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६३८, ६३९, ६४०, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५७, ६५८, ६५९, ६६०, ६६१, ६६२, ६६३, ६६४, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२, ६७३, ६७४, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९, ६८०, ६८१, ६८२, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ६९६, ६९७, ६९८, ६९९, ७००, ७०१, ७०२, ७०३, ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०८, ७०९, ७१०, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१७, ७१८, ७१९, ७२०, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४, ७२५, ७२६, ७२७, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४, ७४५, ७४६, ७४७, ७४८, ७४९, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३, ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१, ७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६६, ७६७, ७६८, ७६९, ७७०, ७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७५, ७७६, ७७७, ७७८, ७७९, ७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६, ७८७, ७८८, ७८९, ७९०, ७९१, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५, ७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०१, ८०२, ८०३, ८०४, ८०५, ८०६, ८०७, ८०८, ८०९, ८१०, ८११, ८१२, ८१३, ८१४, ८१५, ८१६, ८१७, ८१८, ८१९, ८२०, ८२१, ८२२, ८२३, ८२४, ८२५, ८२६, ८२७, ८२८, ८२९, ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६, ८३७, ८३८, ८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४४, ८४५, ८४६, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८५८, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६८, ८६९, ८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७४, ८७५, ८७६, ८७७, ८७८, ८७९, ८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६, ८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३, ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९००, ९०१, ९०२, ९०३, ९०४, ९०५, ९०६, ९०७, ९०८, ९०९, ९१०, ९११, ९१२, ९१३, ९१४, ९१५, ९१६, ९१७, ९१८, ९१९, ९२०, ९२१, ९२२, ९२३, ९२४, ९२५, ९२६, ९२७, ९२८, ९२९, ९३०, ९३१, ९३२, ९३३, ९३४, ९३५, ९३६, ९३७, ९३८, ९३९, ९४०, ९४१, ९४२, ९४३, ९४४, ९४५, ९४६, ९४७, ९४८, ९४९, ९५०, ९५१, ९५२, ९५३, ९५४, ९५५, ९५६, ९५७, ९५८, ९५९, ९६०, ९६१, ९६२, ९६३, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, ९६८, ९६९, ९७०, ९७१, ९७२, ९७३, ९७४, ९७५, ९७६, ९७७, ९७८, ९७९, ९८०, ९८१, ९८२, ९८३, ९८४, ९८५, ९८६, ९८७, ९८८, ९८९, ९९०, ९९१, ९९२, ९९३, ९९४, ९९५, ९९६, ९९७, ९९८, ९९९, १०००)

पेतान् रथेषु तस्युपः कः शुश्राव कथा रथुः ।
 कसै सस्रुः सुदासे अन्वापय
 इळाभिवृष्टयः सह ॥ २ ॥
 ते म आहुर्य आंययु रूपं सुभिविभिर्मर्दे ।
 नरो मर्या अरेपस इमान् पश्यन्ति प्रुहि ॥ ३ ॥
 ये अक्षिपु ये वाशीपु स्वमानवः
 स्रक्षु रुन्मेषु खादिपु ।
 श्राया रथेषु धन्वसु ॥ ४ ॥
 युष्माकं स्मा रथो अनु
 मुदे दधे मरुतो जीरदानवः ।
 वृष्टी चावो यतीरिव ॥ ५ ॥
 आ यं नरः सुदानवो ददाशुपै
 दिवः कोशमचुच्यवुः ।
 वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु
 धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥ ६ ॥
 ततूदानाः सिन्धवः क्षोर्दसा रजः
 प्र संस्रुधेनवो यथा ।
 स्युष्मा अर्धा इवाध्वनो विमोचने
 वि यद् वर्तेन्त एन्यः ॥ ७ ॥
 आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षाद्मादुत ।
 माव स्यात परावर्तः ॥ ८ ॥
 मा यो रसानितभा कुम्भा कुमुः
 मा यः सिन्धुर्नि रीरमत ।
 मा यः परिं छात् सरयुः पुरीपिणि
 असो इत् सुस्रमस्तु यः ॥ ९ ॥
 तं यः शर्षे रथानां
 त्वेषं गणं मारुतं नव्यंस्तीनाम् ।
 अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥ १० ॥
 शर्षे शर्षे य एषां यानैमातं गणं गणं सुशस्तिभिः ।
 अनु त्रामेम धीतिभिः ॥ ११ ॥
 (४३०१)

कस्मा अद्य सुजाताय रातह्वयाय प्र ययुः ।

पुना यामिनं मरुतः ॥ १२ ॥

येन तोकाय तर्नयाय धान्यं ।

वीजं वदह्वे अक्षितम् ।

अस्मभ्यं तद् घञ्चन यद् घ ईमहे

राघो विश्वायु सौमगम् ॥ १३ ॥

अतीयाम निदस्त्रिः स्वस्तिभिः

हित्वावघमरातीः ।

वृष्टी शं योराप उन्नि मैपजं

स्याम मरुतः सह ॥ १४ ॥

सुदेयः संमहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः ।

ये प्रायध्वे स्याम ते ॥ १५ ॥

स्तुहि भोजान्स्तुवतो अस्य यामनि

रण्ण गावो न यवसे ।

पुतः पूर्धो इव सञ्चोत्नुं ह्य

गिरा गृणीहि कामिनः ॥ १६ ॥

॥ १४ ॥ (क्र० ५१५४१-१५) जगती, १४ निष्पृ ।

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव

इमां वार्चमनजा पर्यतच्युते ।

घर्मस्तुभे दिव आ पृष्टयज्वने

घुन्नभ्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥ १ ॥

प्र वो मरुतस्तविषा जेद्रन्यवो

वयोवृधो अश्वयुज परिरजयः ।

सं विद्युता दर्शति वारशति वितः

स्वररन्त्यापोऽघना परिरजयः ॥ २ ॥

विद्युन्महसो नरो अरुमदिघवो

वातत्विपो मरुतः पर्यतच्युतः ।

अभ्रया चिन्मुहुरा हाडुनीवृतः

स्तनपदमा रभसा उदौजसः ॥ ३ ॥

व्यक्त्वुं रुद्रा व्यहानि चिक्रसो

व्युन्तरिक्षं वि रजांसि धृतयः ।

वि यदज्ञां अजेथ नावं ई यथा
वि दुर्गाणि मरुतो नाहं रिप्यथ ॥ ४ ॥

तद् वीर्यं वो मरुतो महित्चनं
द्वीधे ततान सूर्यो न योजनम् ।

पता न यामे अर्गभीतशोत्रिपो
अनश्वदां यन्प्रयातना गिरिम् ॥ ५ ॥

अभ्राजि शर्धो मरुतो यदणंसं
मोपथा वृक्षं कपनेर्ष वेधसः ।

अधं स्मा नो अरुमतिं सजोप्लुः
चक्षुरिधु यन्तमनुं नेपथा सुगम् ॥ ६ ॥

न स जीयते मरुतो न हन्यते
न संधति न व्ययते न रिप्याति ।

नास्य राय उपं दस्यन्ति नोतय
श्रुपिं वा यं राजानं वा सुवृद्धय ॥ ७ ॥

नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरो
अर्यमणो न मरुतः कवन्धिनः ।

पिन्वन्त्युत्सं यद्विनालो अस्वरु
व्युन्दन्ति पृथिवीं मघ्नो अन्धंसा ॥ ८ ॥

प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भयः
प्रवत्वती धौर्भवति प्रयद्भयः ।

प्रवत्वतीः पृथ्या अन्तरिक्ष्याः
प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥ ९ ॥

यन्मरुतः समरसः स्वर्णः
सूर्य उदिते मर्दथा दिवो नरः ।

न वोऽश्वोः श्रययन्ताद् सिंघतः
सद्यो अस्वार्वनः पारमश्रुय ॥ १० ॥

असेषु व क्रुप्यः पत्सु क्षादयो
यक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुर्मः ।

अग्निभ्राजसो विद्युतो गर्भस्थोः
शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्यपीः ॥ ११ ॥

तं नाकमयौ अर्गभीतशोचिपं
 रश्व पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।
 समंच्यन्त वृजनातिव्विपन्त यत्
 स्वरन्ति घोपं विततमृतायधः ॥ १२ ॥
 युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो
 रायः स्याम रथ्योऽु वयस्वतः ।
 न यो युच्छति त्रिप्योऽु यथा दिवोऽु
 असे ररन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥ १३ ॥
 युयं रयिं मरुतः स्याहर्षीरं
 युयमृषिमवथ सारमिप्रम् ।
 युयमर्वन्तं भरताय वार्जे
 युयं घंथ्य राजानं ध्रुष्टिमन्तम् ॥ १४ ॥
 तद् वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो
 येना स्वर्णं तुतनाम नूरमि ।
 इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो
 यस्य तरं तरंसा शतं हिमाः ॥ १५ ॥
 ॥ १५ ॥ (ऋ० ५।५५।१-१०) अगतां, १० त्रिष्टुप् ।
 प्रयंजयो मरुतो भ्राजंष्टयो
 बृहद् वयो दधिरे रुन्मवक्षसः ।
 इयन्ते अश्वैः सुयमैभिराशुभिः
 शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ १ ॥
 स्ययं दधिभ्ये तविषीं यथा विद
 युहन्मदान्त उरिया वि राजय ।
 उतान्तरिक्षं ममिरे घ्योजसा
 शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ २ ॥
 गाकं जाताः सुभ्यः साकमुक्षिताः
 धिये विदा प्रतरं वापृधुर्नरः ।
 विगोविणः सूर्यस्येव रुमयः
 शुभं यातामनु रथा अवृत्सत
 धामेयेण्यं यो मरुतो मदित्युनं
 दिहरोण्यं सूर्यस्येव चक्षणम् ।

उतो अस्मां अमृतत्वे दधातनु
 शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ४ ॥
 उदीरयथा मरुतः समुद्रतो
 युयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।
 न वो दक्षा उपं दस्यन्ति धेनुवः
 शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ५ ॥
 यदश्वान् धूर्षु पृवतीरयुग्धं
 हिरण्ययान् प्रत्यक्तां अमुग्धम् ।
 विश्वा इत् स्पृधौ मरुतो व्यस्यथ
 शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ६ ॥
 न पर्वता न नद्यो वरन्त वो
 यत्राचिष्वं मरुतो गच्छयुद् तत् ।
 उत धावांपृथिवी याथना परि
 शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ७ ॥
 यत् पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं
 यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।
 विश्वस्य तस्य भवया नवैदसुः
 शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ८ ॥
 मूलतं नो मरुतो मा वधिष्टना
 अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन ।
 अधि स्तोत्रस्य सुख्यस्य गातनु
 शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ९ ॥
 युयमस्मान् नयत वस्यो अच्छा
 निरहृतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
 जुपध्वं नो हव्यदाति यजत्रा
 धयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १० ॥
 ॥ १६ ॥ (ऋ० ५।५६।१-९)
 धृती, १; ७ एतोवृती ।
 अतोः शर्धन्तमा गुणं विष्टं रुक्मेभिरुजिभिः ।
 विशो अद्य मरुतामव ह्ये
 दिवधित् रोचनादधि ॥ १ ॥

यथा विन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुःशसः ।
 ये ते नेदिष्ठं हर्षनान्यागमन्
 तान् वधे भीमसैदशः ॥ २ ॥
 मीळहृपतीव पृथिवी पराहता मर्दन्येत्यसदा ।
 श्चक्षो न वो मरुतः शिर्मावां अमो
 दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥ ३ ॥
 नि ये रिणन्योर्जसा वृथा गावो न दुधुरं ।
 अश्मानं चित् स्वयं पर्वतं गिरिं
 प्र च्यावयन्ति यार्मभिः ॥ ४ ॥
 उत् तिष्ठ नूनमेवां स्तोमैः समुक्षितानाम् ।
 मरुतां पुरुतममर्ष्यं गधां सर्गमिव ह्ये ॥ ५ ॥
 युङ्ग्ध्वं ह्यरंशे रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।
 युङ्ग्ध्वं हरीं अजिरा धुरि योळह्वे
 वहिष्ठा धुरि योळह्वे ॥ ६ ॥
 उत स्य वाज्यंरुपस्तुविष्वर्णिः
 इह स्म धायि दशतः ।
 मा यो यार्मेषु मरुताश्चिरं कर्त्
 प्र तं रथेषु चोदत ॥ ७ ॥
 रथं नु मारुतं वपं श्रवस्युमा हुवामहे ।
 आ यस्मिन् तुस्यौ सुरणानि विभ्रती
 सर्वा मरुतसु रोदसी ॥ ८ ॥
 तं वः शर्धे रथेशर्म त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
 यस्मिन्सुजाता सुमगां महीयते
 सर्वा मरुतसु मीळहुयी ॥ ९ ॥
 ॥ १० ॥ (ऋ० ५।५७।१-८ जगती, ७-८ त्रिष्टुप्)
 आ रुद्रास इन्द्रयन्तः सजोपसो
 हिरण्यरथाः सुधितार्यं गन्तन ।
 इयं धां अस्मत् प्रति ह्यते मतिः
 तूष्णजे न दिव उत्सां उदन्यवे ॥ १ ॥
 पार्शीमन्त श्चिन्मन्तो मनीषिणः
 सुघन्यान् इषुमन्तो निषकिणः ।

स्वधाः स्य सुरथाः पृश्निमातरः
 स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ॥ २ ॥
 धनुय धां पर्वतान् दाशुपे वसु
 नि वो वनां जिहते यार्मनो मिया ।
 कोपयय पृथिवीं पृश्निमातरः
 शुभे यदुग्राः पूर्पतीरयुग्ध्वम् ॥ ३ ॥
 घातत्विषो मरुतो वृपनिणिजो
 यमा इय सुसदशः सुपेशसः ।
 पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः
 प्रवक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥ ४ ॥
 पुरुद्रप्ता अङ्गिमन्तः सुदानवः
 त्वेपसैदशो अनवधराघसः ।
 सुजातासो जनुयां रुन्मवक्षसो
 दिवो अकां अमृतं नाम मेजिरे ॥ ५ ॥
 श्चुष्यो धो मरुतो अंसयोरधि
 सह ओजो वाहोवो वलं द्वितम् ।
 नृम्णा शीर्षस्वारुधा रथेषु वो
 विश्वा वः श्रीरधि तनूयु विपिशे ॥ ६ ॥
 गोमदश्वावद् रथवत् सुधीरं
 चन्द्रवद् राधो मरुतो ददा नः ।
 प्रशस्ति नः रुणुत रुद्रियासो
 मक्षीय वोऽवसो देव्यस्य ॥ ७ ॥
 ह्ये नये मरुतो मरुतां नः
 तुपीमघासो अमृता श्रुतयाः ।
 सत्यंश्रुतः कवयो युवानो
 बृहद्विरयो बृहदुक्षमाणाः ॥ ८ ॥
 ॥ १८ ॥ (ऋ० ५।५८।१-८) त्रिष्टुप् ।
 तमुं नूनं तविषीमन्तमेवां
 स्तुपे गणं मारुतं नन्यसीनाम् ।
 य आश्वभ्या अमवद् वहन्त
 उतेदिरे अमृतस्य स्वराजः ॥ १ ॥

त्वेषं गुणं तवसं खादिहस्तं
 धुनिव्रतं प्रायिनं दार्तिवारम् ।
 मयोभुवो ये अमिता महित्वा
 वन्देस्य विप्र तुविरार्थसो नून
 आ वो यन्तुद्वाहासो अद्य
 वृष्टि ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
 अयं यो अग्निमरुतः समिद्धः
 एतं जुषध्वं कवयो युवानः
 युयं राजानमियं जनाय
 विश्वतष्टं जनयथा यजथाः ।
 युपमर्दति मुष्टिहा याहुर्जतो
 युपमत् सदर्ध्वो मरुतः सुवीरः
 अरा इवेदचरमा अहेद्य
 प्रम्र जायन्ते अकथा महोभिः ।
 पृथैः पुत्रा उपमासो रमिष्ठाः
 स्वयां मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः
 यत् प्रायांसिष्ट पृपतीमिरथैः
 वीळुपविर्मिमद्यतो रथैभिः ।
 क्षोर्दन्त आपो रिणते घनानि
 अघोच्चियो वपमः क्रन्दतु धौः
 प्रथिष्ट यामनं पृथिवी चिदेयां
 भर्तयं गमं स्वमिच्छवो धुः ।
 यानान् एभ्वान् धुयामुयुञ्जे
 धुपं स्पेदं चक्रिरे रुद्रियांसः
 ह्ये नरो मरुतो मृळता नः
 तुयीमघानो अमृता ऋतशाः ।
 एन्यधुतः कर्षयो युयानो
 घूर्ध्रिरो यो घूर्ध्रुक्षमाणाः

उक्षन्ते अश्वान् तरुयन्त आ रजो
 अनु स्वं भानुं अथयन्ते अर्णवैः ॥ १ ॥
 अमादिपां भियसा भूमिरेजति
 नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्धेती ।
 वुरेदशो ये चितयन्त परमभिः
 अन्तमहे विदथे येतिरे नरः ॥ २ ॥
 गवांमिव भियसे शूङ्गमुत्तमं
 सूर्यो न चक्षु रजसो विसर्जने ।
 अत्या इव सुभ्वुश्चरं वः स्यन्
 मर्या इव भियसे चेतथा नरः ॥ ३ ॥
 को वो महान्ति महतामुदक्ष्वत्
 कस्काव्या मरुतः को ह पौस्या ।
 युयं ह भूमिं किरणं न रचथ
 प्र यद् अर्ध्वे सुवितायं द्वायने ॥ ४ ॥
 अश्वो इवेदरुपासः सर्वन्धवः
 शरा इव प्रयुधः प्रोत युयुधुः ।
 मर्या इव सुवृधो वावृधुर्नरः
 सूर्यस्य चक्षुः प्र मिनन्ति वृष्टिभिः ॥ ५ ॥
 ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदो
 अमध्यमासो महसा वि वावृधुः ।
 सुजातासो जनुपा पृथिमातरो
 दिवो मर्या आ नो अर्द्धा जिगातन ॥ ६ ॥
 घयो न ये श्रेणीः पन्तरोजसा
 अन्तान् दिवो बृहत्तः सानुनस्परि ।
 अश्वोस एपामुभये यथा विदुः
 प्र पर्वतस्य नभूर्नरच्युच्युः ॥ ७ ॥
 मिमांतु धौरदितिर्वीतये नः
 सं दानुचिया उपसो यतन्ताम् ।
 आनुच्युद्युर्दिव्यं कोक्षमेत
 अर्धे रुद्र्यं मरुतो गृणानाः ॥ ८ ॥

॥ ११ ॥ (अ० ५१११-८) जगती, ८ शिष्टम् ।

प्र याः स्पष्टप्रस्तुवितार्यं द्वायने
 अर्धो दिवे प्र पृथिव्या अतं अरे ।

॥ १० ॥ (ऋ० ५।६१।१-४, ११-१६) गायत्री, ३ निचृव
 के घ्रां नरः श्रेष्ठतमा य परकपक आयय ।
 परमस्याः परावतः ॥ १ ॥
 कृ० योऽभ्याः क्वा० भीशयः
 कथं शोक कथा यय ।
 पृष्ठे सद्रौ नसोर्यमः ॥ २ ॥
 जघने चोर्द प्यां वि सन्धानि नरौ यमुः ।
 पुत्ररुये न जनयः ॥ ३ ॥
 परां धीरास एतन् मर्यासो भद्रजानयः ।
 अमितपो यथासंय ॥ ४ ॥
 य ईं वदन्त आशुभिः पिवन्तो मद्रिरं मधु ।
 अत्र श्रवींसि दधिरे ॥ ११ ॥
 येषां धियाधि रोर्दसी विभ्राजन्ते रथेष्या ।
 दिवि रुक्म ईशोपरि ॥ १२ ॥
 युवा स मारुतो गुणस्त्वेपर्यो अर्नयः ।
 शुभ्रयावाप्रतिष्कृतः ॥ १३ ॥
 को चेंद नूनमैशं यश मर्दन्ति धूर्तयः ।
 श्रुतजाता अरेपसः ॥ १४ ॥
 युयं मते विपन्यवः प्रणेतारं इत्या धिया ।
 धोताये यामहतिषु ॥ १५ ॥
 ते नो यस्मिं काम्या पुरुश्चन्द्रा रिंशादसः ।
 धा यंसियासो यवृत्तन ॥ १६ ॥
 ॥ ११ ॥ (ऋ० ५।६७।१-९)
 एवमामरराशेयः । अतिप्रगती
 प्र पां मुदे मतयो यन्तु विष्णवे
 मरुन्वते गिरिजा एवयामरुत् ।
 प्र शार्धोय प्रयंजयये सुद्यादये
 त्वमे मन्द्रदिष्टये धुनिप्रताप शर्वमे ॥ १ ॥
 प्र ये जाना मदिना ये च नु स्यं
 प्र विघनां प्रयतं एवयामरुत् ।

क्रत्या तद् वीं मरुतो नाधुये शर्वो
 ज्ञाना मदा तर्देषा मर्धुशसो नार्द्रयः ॥ २ ॥
 प्र ये दिवो वृहतः शृण्विरे गिग
 सुशुक्रानः सुभ्यं एवयामरुत् ।
 न येषामिरीं सचस्य ईष्ट आं
 अग्रयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम् ३
 स चक्रमे महतो निरुक्कमः
 र्मानस्मात् सदर्स एवयामरुत् ।
 यदायुक् त्मना स्वादधि णुभिः
 विष्पंधसो विमहसो जिगांति शर्वधो नृभिः ॥ ४ ॥
 स्यनो न योऽमवान् रेजयद् वृषा
 त्वेयो ययित्स्त्रिय एवयामरुत् ।
 येना सहन्त श्रुजत स्वरोचिपः
 स्वार्दमानो द्विरण्ययाः न्वायुधासं इष्मिणः ५
 अपारो वीं महिमा वृद्धशरसः
 त्वेपं शर्वोऽयत्वेयामरुत् ।
 स्यातारो द्वि प्रसितां मंरशि व्यन
 ते न उरुप्यता निदः शुशुक्रांसो नाशयः ॥ ६ ॥
 ते रुद्रामः सुमन्या अग्रयो यथा
 तुविद्युसा अवन्त्वेयामरुत् ।
 द्विषं पृषु पंप्रये सन्न पार्थिवं
 येषामग्नेष्या महः शार्धोस्वर्द्धनैनाम् ॥ ७ ॥
 अद्रेपो नो मरुतो गातुमेतन्
 शोना हयं जनिनुरेवयामरुत् ।
 विष्णोर्महः र्मान्यगे युषोतनु
 मद् रथ्यो न इमना ऽप हेर्षामि सनुतः ८
 गन्तां नो यत्र यंजियाः सुदामि
 शोना हयंमरुत् एवयामरुत् ।
 ज्येष्ठांसो न परीतांसो ध्यामिनि
 युयं तस्यं प्रचेतसः स्यातं दुर्धनयो निदः ॥ ९ ॥

॥ ३२ ॥ (अ० ६।४८।११-१५, २०-२१)

शंभुर्बोहैस्वल्पः (तृणपाणिः) [१३-१५ लिङ्गोक्ता वा] ।
११ कङ्कप, १२ सतो बृहती, १३ पुरतष्णिक, १४ बृहती,
१५ अतिप्रगती, २० बृहती, २१ महाबृहती यवमध्या ।

आ संस्वायः सवर्द्धुधाँ

धेनुर्मजध्वमुप नव्यसा वचः ।

सृजध्वमर्नपस्फुराम्

॥ ११ ॥

या शर्धाय मारुताय स्वभानवे

श्रवोऽमृत्यु धुक्षत ।

या मृच्छीके मरुतां तुराणां या सुक्षैरेव्याघरी १२

भरुहाजायाव धुक्षत द्विता ।

धेनुं च विश्वदोहसु—मिपं च विश्वभोजसम् १३

तं व इन्द्रं न सुकृतं वरुणमिव मायिनम् ।

अर्यमणं न मन्द्रं सुप्रभोजसं

विष्णुं न स्तुप आदिशे

॥ १४ ॥

त्वेपं शर्षो न मारुतं तुविध्वणि

अनर्वाणं पुपुणं सं यथां शता ।

सं सहस्रा कारिपश्चरिणभ्य आँ

आविगोळ्हा वसू करत् सुवेदां नो वसू करत् १५

ग्रामी ग्रामस्य धृतयः प्रणीतिरस्तु सुनृतां ।

देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वा

इजानस्य प्रयज्यवः

॥ २० ॥

सृपश्चिद् यस्यं चर्कृतिः

पतिं चां देवो नैति सूर्यः ।

त्वेपं शर्षो दधिरे नामं यश्चिर्ष्य

मरुतां वृष्टदं शपो ज्येष्ठं वृष्टदं शवः ॥ २१ ॥

॥ ३३ ॥ (अ० ६।६६।१-११)

बहैस्वलो महाराजः । त्रिष्टुप् ।

यपुर्नू तथिवितुर्षे चिदस्तु

समानं नामं धेनु पर्यमानम् ।

मर्त्येण्यद् द्रोहमे पीपायं

सृष्ट्युष्ट्रं दुदुष्टे पृथिरुधः

॥ १ ॥

ये अग्नयो न शोशुचिभिधाना

द्विर्यत् मिर्मस्तो वावृधन्त ।

अरेणवो हिरण्ययांस एपां

साकं नृणैः पौंस्यैभिश्च भूवन्

॥ २ ॥

रुद्रस्य ये मीळ्हुपः सन्ति पुत्रा

यांश्चो नु दार्धृविर्भरैध्वै ।

विदे हि माता महो मदी पा

सेत् पृश्निः सुभ्वेक्षु गर्भमाधात्

॥ ३ ॥

न य ईपन्ते जनुपोऽया नु

अन्त सन्तोऽवद्यानि पुतानाः ।

निर्यद् दृहे शुचयोऽनु जोपं

अनुं श्रिया तन्वमुक्षमाणाः

॥ ४ ॥

मक्षु न येषु दोहसे चिद्वया

आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः ।

न ये स्तौना अयासो महा

नू चित् सुदानुरव यासदुग्रान्

॥ ५ ॥

त इदुग्राः शवसा धृष्णुपैणा

उमे युजन्त रोदसी सुमेके ।

अर्धं स्यैपु रोदसी स्वशोचिः

आमवस्तु तस्थो न रोकेः

॥ ६ ॥

अनेनो वो मरुतो यामो अस्तु

अनश्वाश्चिद् यमजत्परंधीः ।

अनवसो अनभीशु रजस्तुः

चि रोदसी पृथ्या याति सार्धन्

॥ ७ ॥

नास्यं धृतां न तंघृता न्वस्ति

मरुतो यमवंध याजसाती ।

तोके धा गोपु तनये यमप्लु

स प्रजं दतो पायं अघ घोः

॥ ८ ॥

प्र चिभ्रमुकं गृण्ते तुराय

मारुताय स्वर्तयसे भरध्वम् ।

ये सदांसि सदसा सदन्ते

रेजते अग्रे पृथिवी मगेभ्यः

॥ ९ ॥

त्विपीमन्तो अचरस्यैव द्विद्युत्
 सुपुच्यवसो जुहोतु नान्नेः ।
 अचैत्रयो धुर्जयो न वीरा
 भ्राजजन्मानो मरुतो अर्धृष्टाः
 तं घृघन्तं मारुतं भ्राजदृष्टि
 रुद्रस्य सुतुं हवसा विवासे ।
 द्वियः शर्धाय शुचयो मनीषा
 गिरयो नाप उग्रा अस्पृधन्

॥ ३४ ॥ (ऋ० ७/५३, १-२५)

मैत्रावरुणर्वशिष्ठः । त्रिष्टुप्, १-११ द्विपदा विराट् ।

क इ व्यक्ता नरः सर्नीळा
 रुद्रस्य मर्या अघा स्वर्धाः
 नकिर्यीयां जनुंषि वेद् ते
 अह विद्रे मियो जनिर्भम्
 अभि स्वयुर्मिर्मियो वपन्त
 यातस्वनसः स्येना अस्पृधन्
 पृतानि धीरो निष्या चिकेत
 पृथिव्यदृषो मही जुमारं
 सा विद् सुवीरां मरुद्रिरस्तु
 सनात् सहन्ती पुष्यन्ती नृमणम्
 यामं येष्टाः शुभा शोभिष्ठाः
 धिया संमिक्ता ओजोभिर्मुग्राः
 उग्रं च ओजः स्थिरा शयांसि
 अर्षां मरुद्रिर्गुणस्तुविष्मान्
 शुभ्रो वः शुष्मः कुम्भी मनांसि
 शुनिर्मुनिरिय शर्धस्य धृष्णोः
 सनेम्यसद् युयोतं त्रिष्टुं
 मा यो दुर्मतिरिद प्रपदन्ः
 प्रिया वो नामं हुये तुराणां
 भा यत् तपन्मरुतो धायशानाः
 स्यायुषामं इभिर्जः सुनिष्का
 इत स्वयं तन्यः शुम्भमानाः

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

शुचीं यो हव्या मरुतः शुचीनां
 शुचिं दिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।
 ऋतेन सत्यमृतसापं आयन्
 शुचिजन्मानः शुचयः पावकाः
 असेष्वा मरुतः सादर्यो यो
 वशःसु रुन्मा उपशिश्रियाणाः ।
 वि विद्युतो न घृष्टिर्भी रुचाना
 अतुं स्वधामावुधैर्यच्छमानाः
 प्र घृध्यां च इरते मदांसि
 प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरच्यम् ।
 सहस्रियं दम्यं भागमेतं
 गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम्
 यदि स्तुतस्यं मरुतो अधीय
 इत्या विप्रस्य याजिनो हवीमन् ।
 मधु रायः सुवीर्यस्य दातु
 नू चिद् यमन्य आदमदराया
 अत्यासो न ये मरुतः स्वज्ञो
 यन्नदृशो न शुमयन्त मर्याः ।
 ते हर्ष्येष्टाः शिर्धयो न शुभ्रा
 घत्तासो न प्रश्रीळिनः पयोधाः
 हशस्यन्तो नो मरुतो मृच्छन्तु
 परिवस्यन्तो रोदसी सुमेरुः ।
 आरे गोहा नदा यपो यो अस्तु
 सुक्षेत्रिस्मे वंसयो नमप्यम्
 आ यो दोतो जोदवीति स्रतः
 सप्रार्थो एति मरुतो गृणानः ।
 य इवतो यूपो अस्ति गोपाः
 सो मर्यायां दपते य उक्थयः
 इमे तुरं मरुतो रामयन्ति
 इमे सद्दः सटंम आ जमन्ति ।
 इमे शंसं वनुष्यन्तो नि पान्ति
 गुरु द्वेषो भरंरये दपन्ति

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

॥ १९ ॥

इमे रूधं चिन्मृगतो जुनन्ति
भूमिं चिद् यथा घस्यो जुवन्त ।
अप वाधध्वं वृषणस्तर्मांसि
धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे
मा वो क्षान्तमरुतो निरराम
मा पश्चाद् दध्म रथ्यो विभागे ।
आ नः स्प्राहे भंजतना घस्येकु
यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति
सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनांसः
शूरा यक्षीष्वोपधीषु विश्वु ।
अर्ध स्मा नो मरुतो रुद्रियासः
शातारो भूत पृतनास्वर्धः
भूरिं चक्र मरुतः पित्र्याणि
उक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित् ।
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साब्ढा
मरुद्भिरित् सनिता वाजमयी
असे वीरो मरुतः शुष्यस्तु
जनानां यो असुरो विधर्ता ।
अपो येन सुक्षितये तरेम
अथ स्वमोको अमि वः स्याम
तद् इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निः
आप ओषधीर्वनिनो जुवन्त ।
शर्मन्स्याम मरुतामुपस्थे
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ३५ ॥ (ऋ० ७।५७।१-७) त्रिष्टुप् ।

मर्धो वो नाम मरुतं यजत्राः
प्र यज्ञेषु शर्वसा मदन्ति ।
ये रेजर्यन्ति रोदसी चिदुधीं
पिन्वन्नुसं यदयोसुग्रमाः
निचेतारो द्वि-मरुतो गृणन्त
प्रणेतारो यजमानस्य मन्म ।

॥ २० ॥

॥ २१ ॥

॥ २२ ॥

॥ २३ ॥

॥ २४ ॥

॥ २५ ॥

॥ १ ॥

असाकमघ विदधेपु यद्विः
आ धीतर्ये मदत पिप्रियाणाः
नैतार्यद्वये मरुतो यथेमे
भ्राजन्ते रुक्मैरार्युधेस्तुनृभिः ।
आ रोदसी विश्वपरीः पिशानाः
समानमन्व्यञ्जते शुभे कम्
ऋध्नु सा वो मरुतो द्विष्टुर्दस्तु
यद् घ आगः पुरुयता कराम ।
मा घस्तस्यांमपि भूमा यजत्रा
अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा
कृते चिदत्र मरुतो रणन्त
अनवद्यासः शुचयः पावकाः ।
प्र णोऽवत सुमतिर्मियजत्राः
प्र वाजेभिस्तिरत पृथ्यसे नः
उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु
विश्वेभिर्नोर्मभिर्नरो हवीषि ।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै
जिगत रायः सुनुतां महानि
आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती
अच्छा सुरीन्सर्वताता जिगात ।
ये नस्मना शतिनो वृधयन्ति
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः
॥ ३६ ॥ (ऋ० ७।५८।१-६)

प्र साकसुक्षे अर्चता गणाय
यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान् ।
उत क्षौदन्ति रोदसी महित्वा
नक्षन्ते नाकं निरुतेस्वशात्
जनुश्चिद् वो मरुतस्वेव्येण
भीमांसस्तुविमन्यवोऽयांसः ।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति
विश्वो वो यामन् भयते स्वर्हक्

॥ २ ॥

(४४३४)

बृहत् षयो मृधयन्मृधो दधात्
 जुजौपद्मिन्मरुतः सुषुतिं नः ।
 गतो नाध्या वि तिराति जुन्तुं
 प्र णः स्पार्हाभिर्भ्रुतिभिस्तिरत
 ॥ ३ ॥
 युष्मोतो धिप्रो मरुतः शतस्त्री
 युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्त्री ।
 युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं
 प्र तद् यो अस्तु धृतयो देष्णाम्
 तां आ रुद्रस्य मीळुप्यो विवासे
 कृचिन्नसन्ते मरुतः पुनर्नः ।
 यत् सस्वती जिहीद्विरे यद्वाचिः
 अत्र तदेन ईमहे तुराणाम्
 ॥ ५ ॥
 प्र सा वाचि सुषुतिर्मघोनां
 इदं सुक्तं मरुतो जुपन्त ।
 आराश्वि वृषो वृषणो युयोत
 यूयं पात स्वस्तिभिः सर्दा नः
 ॥ ६ ॥
 ॥ ३७ ॥ (ऋ० ७।५९।१-११)
 (प्रगाथः- (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), ५-८ श्रिष्टुप्,
 १-११ गायत्री ।)
 यं त्रायंभ्य इदमिदं देघासो यं च नयंथ ।
 तस्मा अग्ने वरुण मिश्रार्थमन्
 मरुतः शर्म यच्छत
 ॥ १ ॥
 युष्माकं देवा अयसाहनि प्रिय
 ईजानस्तरति द्विपः ।
 प्र स क्षयं तिरते वि महीरियो
 यो वो घराय दारोति
 ॥ २ ॥
 नहि वंश्चरमं चन यस्मिष्ठः परिमंसते ।
 अस्माकमथ मरुतः सुते सखा
 विश्वे पिबत कामिनः
 ॥ ३ ॥
 नहि वं ऊतिः पूर्तनासु मर्धति
 यस्मा मराश्वं नरः ।

अग्नि च आर्वत् सुमतिर्नवीयसी
 त्वयं यात पिपीपयः ॥ ४ ॥
 ओ पु घृष्विराधसो यातनान्ध्रांसि पीतये ।
 इमा घो हृव्या मरुतो ररे हि कं
 मो प्वुच्यत्र गन्तन ॥ ५ ॥
 आ चं नो यर्हिः सदताविता चं नः
 स्पार्हाणि दातये वसुं ।
 अर्क्षन्तो मरुतः सोम्ये मधौ
 स्वाहेद मादयाध्वै ॥ ६ ॥
 सस्वश्चिद्वि तन्वयुः शुग्ममाना
 आ हुंसासो नीलपृष्ठा अपसन् ।
 विश्वं शर्षो अभितो मा नि पेंद
 नरो न रष्वाः सर्वने मर्दन्तः ॥ ७ ॥
 यो नो मरुतो अग्नि वृहणायुः
 तिरश्चित्तानि वसयो जिघांसति ।
 द्रुदः पाशान् प्रति स मुचीष्ट
 तपिष्टेन हर्मना हन्तना तम् ॥ ८ ॥
 सान्तपना इदं द्वि मरुतस्तज्जुष्टुष्टन ।
 युष्माकोती रिशादसः ॥ ९ ॥
 इहमेधासु आ गत मरुतो मापं भूतन ।
 युष्माकोती सुदानवः ॥ १० ॥
 इहेह वः स्वतवसुः कर्षयः सूर्यत्वचः ।
 यन्नं मरुत आ वृणे ॥ ११ ॥
 ॥ ३८ ॥ (ऋ० ७।१०४।१८) जगती ।
 वि तिष्टुष्वं मरुतो विश्विषुच्छत
 गृभ्रायतं रक्षसुः सं पिनष्टन ।
 चयो ये भृत्वी पतयन्ति नक्तभिः
 ये वा रिपो दधिरे देवे अष्वरे ॥ १८ ॥
 ॥ ३९ ॥ (ऋ० ८।१४।१-१२)
 विन्दुः पूतदशो वा आकिगरथः । गायत्री ।
 गौर्धयति मरुतो अयस्युमोता मघोनाम् ।
 युक्ता वञ्जी रथानाम् ॥ १ ॥
 (५२।१८)

यस्यां देवा उपस्थे मृता विश्वे धारयन्ते ।
 सूर्यामासां दृशो कम् ॥ २ ॥
 तत् सु नो विश्वे अर्थे आ सदां गृणन्ति कार्व्यः ।
 मरुतः सोमपीतये ॥ ३ ॥
 अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।
 उत स्वराजो अभिना ॥ ४ ॥
 पिबन्ति मित्रो अर्थमा तनां पुतस्य वरुणः ।
 त्रिपथस्यस्य जावतः ॥ ५ ॥
 उतो स्वस्य जोपमा इन्द्रः सुतस्य गोमंतः ।
 प्रातर्होतैव मत्सति ॥ ६ ॥
 कर्दत्विपन्त सूर्यं स्तिर आपं इव स्निधः ।
 अपैन्ति पुतदक्षसः ॥ ७ ॥
 कर्दो अद्य महानां देवानामवो वृणे ।
 रमनां च वृस्मवर्चसाम् ॥ ८ ॥
 आ ये विश्वा पार्थिवानि पप्रथन् रोचना दिवः ।
 मरुतः सोमपीतये ॥ ९ ॥
 त्वान् नु पुतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे ।
 अस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥
 त्वान् नु ये वि रोदसी तस्तभुर्मरुतो हुवे ।
 अस्य सोमस्य पीतये ॥ ११ ॥
 त्वं नु मारुतं गणं गिरिणां वृषणं हुवे ।
 अस्य सोमस्य पीतये ॥ १२ ॥
 ॥ ४० ॥ (ऋ० १०।७।१-८)
 स्यमरुदिमभोगैवः । त्रिष्टुप्, ५ अगती ।
 धम्रमुपो न वाचा प्रुपा वसुं
 द्रविष्मन्तो न यक्षा विजानुपः ।
 सुमारुतं न द्रह्माणमर्हसै
 गणमस्ताप्येषां न शोमसै ॥ १ ॥
 धिये मर्यासो भूर्जीरदृग्धत
 सुमारुतं न पृथीरति क्षपः ।
 दिवस्प्रास पत्ता न रैतिर
 आदित्याग्वस्ते भक्ता न वावृधुः ॥ २ ॥

प्र ये दिवः पृथिव्या न वृहणा
 रमनां रिरिञ्जे अभ्रान्न सूर्यः ।
 पाजस्वन्तो न धीराः पनस्यधो
 रिशादसो न मर्यां अभिर्चयः ॥ ३ ॥
 युष्माकं वृधे अपां न यामनि
 विथुर्यति न मही श्रथुर्यति ।
 विश्वप्सुर्यशो अर्वागयं सु वः
 प्रयस्वन्तो न सत्राच्च आ गत ॥ ४ ॥
 यूयं धूर्यु प्रयुजो न रदिमभिः
 ज्योतिष्मन्तो न भासा व्युष्टिषु ।
 श्येनासो न स्वयंशसो रिशादसः
 प्रवासो न प्रसितासः परिप्रुपः ॥ ५ ॥
 प्र यद् वहध्वे मरुतः पराकाद्
 यूयं महः संवरणस्य वस्वः ।
 विदानासो वसयो राध्यस्य
 आराश्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोत ॥ ६ ॥
 य उदचिं यज्ञे अश्वरेष्टा
 मरुद्गणो न मानुषो ददांशत् ।
 रैवत् स वयो दधते सुवीरं
 स देवानामपि गोपीये अस्तु ॥ ७ ॥
 ते हि युशेषु यज्ञियांस उमा
 आदित्येन नाम्ना शंभविष्टाः ।
 ते नोऽवन्तु रथत्वर्मेनीपां
 महश्च यामन्नश्वरे चक्रानाः ॥ ८ ॥
 ॥ ४१ ॥ (ऋ० १०।७।१-८) त्रिष्टुप्, २, ५-७ अगती ।
 धिप्रासो न मर्मभिः स्वाध्यो
 देवाव्योक्तुं न यज्ञैः स्वर्मसः ।
 राजानो न चित्राः सुसंदशः
 क्षितीनां न मर्यां अरेपसः ॥ १ ॥

अग्निर्न ये भ्राजसा रुन्मवक्षसो
यातासो न स्वयुजः सुधक्ततयः ।
प्रजातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः
सुशर्माणो न सोमो ऋते यते
यातासो न ये धुनयो जिगत्तवो
अग्नीनां न जिह्वा विरोकिर्णः ।
वर्मण्वन्तो न योधाः शिर्मावन्तः
पितृणां न शंसाः सुरतयः
रथानां न येषुराः सर्नामयो
जिगीर्षासो न शरां अभिर्घयः ।
वरेयघो न मर्या घृतप्रपो
अभिस्यर्तारो अर्कं न सुद्रुमः
अश्वसो न ये ज्येष्ठास आशवो
विधिपवो न रथ्यः सुदानवः ।
आपो न निघ्नैरुदमिजिगत्तवो
विश्वरूपा अङ्गिरसो न सामभिः
प्रावाणो न सुरयः सिन्धुमातर
आदङ्गिरसो अर्द्रयो न विश्वर्हा ।
दिशाला न श्रीर्ष्यः सुमातरौ
महाग्रामो न यामद्भुत त्विषा
उपसां न केतवोऽध्वरुधियः
शुभयघो नाङ्गिमिर्व्यभितन् ।
सिन्धघो यथियो भ्राजदृष्टयः
परावतो न योजनानि ममिरे
सुभागात्रो देवाः कृणुता सुरत्तान्
अस्मान्स्तोतन् मरुतो वावृधानाः ।
अधि स्तोत्रस्य सत्यस्य गात
सुनादि यो रत्नधेयानि सन्ति
॥ ४१ ॥ (य० ३।४४)
प्रधासिनो हवामहे मरुतश्च रिशार्दसः ।
करम्भेण सजोर्पसः ॥ ४४ ॥

॥ ४३ ॥ (य० ७।३६)
उपयामर्गृहीतोऽसिन्द्राय त्वा मरुवते
एष ते योनिन्द्राय त्वा मरुवते ।
॥ २ ॥ उपयामर्गृहीतोऽसि मरुतां त्वौजसे ॥ ३६ ॥
॥ ४४ ॥ (य० १७।८४-८६)
ईदृक्षास पतादृक्षास ऊ पु णः
सदृक्षासः प्रतिदृक्षास पतन ।
॥ ३ ॥ मितासश्च सम्मितासो नो अथ
समरसो मरुतो यशे अस्मिन् ॥ ८४ ॥
स्वतवाँश्च प्रधासो च सान्तपनश्च गृहमेधी च ।
श्रीडी च शाकी चोऽजेपी ॥ ८५ ॥
॥ ४ ॥ इन्द्रं देवीविशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्
ययेन्द्रं देवीविशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन् ।
एवमिमं यजमानं देवीश्च विशो
मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥ ८६ ॥
॥ ४५ ॥ (य० १५।१०)
पृषदश्व मरुतः पृश्निमातरः
शुभंयार्थानो विदथेषु जगमयः ।
॥ ६ ॥ अग्निजिह्वा मरुतः सुरचक्षसो
विश्वे नो देवा अवसागमश्निह ॥ २० ॥
॥ ४६ ॥ (साम० ३५६) इयावाश्व आत्रेयः । अतुष्टुप ।
३ ३ १ १ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा ।
॥ ७ ॥ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३
पिबन्तो मदिरे मधु तत्र अवांसि कृपवते ॥ ५ ॥
॥ ४७ ॥ (अथर्व० १।१६।३-४)
महा । ३ गायत्रो, ४ एकादशाना पादनिचृत् ।
॥ ८ ॥ युयं नः प्रवतो नपामरुतः सूर्यत्वचसः ।
शर्म यच्छाथ सुप्रथाः ॥ ३ ॥
सुपुदतं मुडतं मुडया
नस्तन्भ्यो मर्यस्तोकैर्भ्यस्कृधि ॥ ४ ॥

॥ ४८ ॥ (अथर्वं ० ५।२६।५) द्विपदायां वर्णिक् ।
 छन्दांसि युञ्जे मरुतः स्वाहा
 मातेर्वं पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ॥ ५ ॥
 ॥ ४९ ॥ (अथर्वं ० १३।१।३) अगती ।
 युयमुग्रा मरुतः पृश्निमातरः
 इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
 आ घो रोहितः शृणवत् सुदानवः
 त्रिपत्नासौ मरुतः स्वादुसमुदः ॥ ३ ॥
 ॥ ५० ॥ (अथर्वं ० ३।१।२)
 अथर्वा । विराड्गर्भा भुरिक् ।
 युयमुग्रा मरुत ईहरो
 स्थाभि प्रेत मृणत् सहध्वम् ।
 अमीमृणन् वंसयो नाथिता इमे
 अशिहोपां वृतः प्रत्येतु विद्वान् ॥ २ ॥
 ॥ ५१ ॥ (अथर्वं ० ३।२।६) त्रिष्टुप् ।
 असौ या सेनां मरुतः परेषां
 अस्मानैत्यभ्योर्जसा स्पर्धमाना ।
 तां विध्यत् तमसापव्रतेन
 यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ॥ ६ ॥
 ॥ ५२ ॥ (अथर्वं ० ५।२४।६) चतुष्पदातिशकरी ।
 मरुतः पर्येतानामधिपतयस्ते मावन्तु ।
 अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां
 पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
 चित्यामस्यामाकृत्यामस्यामाशिष्यस्यां
 देवहृत्यां स्वाहा ॥ ६ ॥
 ॥ ५३ ॥ (अथर्वं ० ४।१३।४)
 संतातिः । अगृष्टुप् ।
 प्रायन्तामिमं देवायान्तां मरुतां गुणाः ।
 प्रायन्तां विभ्यां भूतानि यथायमरुपा असत् ॥ ४ ॥
 ॥ ५४ ॥ (अथर्वं ० ६।१२।२-३)
 चतुष्पदा भुरिगगती, ३ त्रिष्टुप् ।
 पर्यस्यतीः कृणुथाप ओर्षधीः शिवा
 पदेजया मरुतो रश्मयक्षसः ।

ऊर्जे च तत्र सुमति च पिन्यत्
 यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मर्तु ॥ २ ॥
 उदप्रतो मरुतस्तां ईर्यते
 दृष्टियां चिद्यां नियतस्पृणाति ।
 पर्जाति ग्लहा कन्ये घतुथा
 परं तुन्दाना पर्येव जाया ॥ ३ ॥
 ॥ ५५ ॥ (अथर्वं ० ४।२७।१-७)
 मृगारः । त्रिष्टुप् ।
 मरुतां मन्ये अधि मे द्रुघन्तु
 प्रेमं धाजं याजसाते भवन्तु ।
 आशुनिव सुयमानह ऊतये
 ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १ ॥
 उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदा
 य असिञ्चन्ति रसमोर्षधीषु ।
 पुरो देधे मरुतः पृश्निमातृन्
 ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २ ॥
 पर्यो धेनुनां रसमोर्षधीनां
 जवमर्वतां कवयो य इन्वंध ।
 शग्मा भवन्तु मरुतां नः स्योनाः
 ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ३ ॥
 अपः समुद्राद् दिवमुद्रहन्ति
 दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति ।
 ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति
 ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ४ ॥
 ये कीलालेन तर्षयन्ति ये घृतेन
 ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति ।
 ये अद्भिरीशाना मरुतां वर्षयन्ति
 ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ५ ॥
 यदीदिवं मरुतो मार्क्षतेन
 यदि देवा दैव्येनेहगारं ।
 युयमीशिष्ये वसयस्तस्य निष्कृतेः
 ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ६ ॥

तिग्ममनीके विदितं सहस्र्वन्

मरुतं शश्वेः पृतनासुग्रम् ।

स्तौमि मरुतो नाथितो जौहवीमि

ते नो मुञ्चन्वहंसः

॥ ७ ॥

॥ ५६ ॥ (अथर्व० ७।७७ [८२] १३)

अविगराः । जगती ।

संवत्सरीणां मरुतः स्यर्का

उरुश्रयाः सर्गणा मानुपासः ।

ते अस्वत् पाशात् प्र मुञ्चन्त्येनसः

सांतपना मत्सरा मादयिष्णवः

॥ ३ ॥

मरुतसहचारी देवगणः ।

(१) मरुद्रुद्रविष्णवः ।

॥ ५७ ॥ (ऋ० ५।३।३)

वसुधत आश्रयः । त्रिष्टुप् ।

तव श्रिये मरुतो मर्जयन्तु

रुद्र यत् ते जनिम् चारु चित्रम् ।

पदं यद् विष्णोरुपमं लिधायि

तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम्

॥ ३ ॥

(२) मरुतोऽभामरुतौ वा ।

॥ ५८ ॥ (ऋ० ५।३।१-८)

शशाश्रु आश्रयः । त्रिष्टुप्, ७-८ जगती ।

ईळे अग्निं स्वर्वसं नमोमिः

इह प्रसूतो वि चयत् कृतं नः ।

रथैरिव प्र भरे वाज्रपद्भिः

प्रदक्षिणिन्मुहतां स्तोमंनृष्याम्

॥ १ ॥

आ ये तस्थुः पृपतीषु श्रुतासुं

सुखेषु रुद्रा मुहतां रथेषु ।

वनां चिदुग्रा जिहते नि वी भिया

पृथिवी चिद् रेजते पर्वतश्चित्

॥ २ ॥

पर्वतश्चिन्महिं वृक्षो विभाय

द्विवश्चित् सानुं रेजत स्वने वः ।

यत् क्रीळय मरुत ऋष्टिमन्तु

आप इव सुभयञ्जो धवश्वे

॥ ३ ॥

घरा इवेद् रैवतासो हिरण्यैः

अभि स्वधार्भिस्तन्वः पिपिधे ।

श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु

सुश्र मद्वांसि चक्रिरे तनुपुं

॥ ४ ॥

अज्येष्टासो अकनिष्ठास पते

सं धातरी वावृशुः सौमगाय ।

युवां पिता स्वपां रुद्र पपां

सुदुद्या पृश्निः सुदिनां मरुद्रयः

॥ ५ ॥

यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा

यद् वावमे सुभगासो द्विविष्ट ।

अतो नो रुद्रा उत वा न्वस्य

अग्नें विच्छाद्विषो यद् यजाम

॥ ६ ॥

अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो

द्वियो वहश्च उत्तगृदधि ष्णुभिः ।

ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो

वामं धत्त यजमानाय सुन्वते

॥ ७ ॥

अग्नें मरुद्भिः शुभयद्विष्कृतिः

सोमं पिव मन्दसानो गणश्रिभिः ।

पायकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिः

वैश्वानर प्रदिवां केतुनां सृजः

॥ ८ ॥

(३) सोमः मरुतः ।

॥ ५९ ॥ (अथर्व० १।१०।१) अथर्व । त्रिष्टुप् ।

अदारुचद् भवतु देव सोम

अस्मिन् यज्ञे मरुतो मूडतां नः ।

मा नो विदद्भिमा मो अशांस्तः

मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या

॥ १ ॥

(३५३३)

(४) मरुत्पर्जन्यौ ।

॥ ६० ॥ (अथर्व० ४।१।५।४) विराट्पुरस्ताद्बृहती ।

गुणास्त्वोर्षं गायन्तु मार्कताः

पर्जन्यं योषिणः पर्यक् ।

सर्गां वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥ ४ ॥

(५) मरुत आपः ।

॥ ६१ ॥ (अथर्व० ४।१।५।५-१०)

(५ विराट् जगती, ७ अनुष्टुप्, ६, ८ त्रिष्टुप्, ९ पद्या
पंक्तिः, १० भुरिक् ।)

उदीरयत मरुतः समुद्रतः

त्वेषो अर्को नम् उत्पातयाथ ।

महश्नुपभस्य नर्दतो नर्भस्वतो

वाग्ना आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥ ५ ॥

अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधि

भूमिं पर्जन्यं पर्यसा समहि ।

त्वयां सृष्टं बहूलमैतुं वर्षं

आशादैषी कृशागुरेत्वस्तम् ॥ ६ ॥

सं योऽवन्तु सुदानं उत्सां अजगरा उत ।

मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ॥ ७ ॥

आशामाशां वि द्यौततां वातां वान्तु दिशोदिशः ।

मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु ॥ ८ ॥

आपो विद्युवभ्रं वर्षं

सं योऽवन्तु सुदानं उत्सां अजगरा उत ।

मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ॥ ९ ॥

अपामग्निस्तनूभिः संविदानो

य ओषधीनामधिपा बभूव ।

स नो वर्षं वन्तुतां ज्ञातवेदाः

प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि ॥ १० ॥

(४५२०)



आरोग्य-मंत्रो

अश्विनौ-देवता ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।३।१-३)

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

अश्विना यज्वरीरियो द्रवत्पाणो शुर्मस्पती ।
 पुर्कभुजा चनस्यतम् ॥ १ ॥
 अश्विना पुर्कदंसला नरा शर्वीरया धिया ।
 धिण्या चनतं गिरः ॥ २ ॥
 दक्षा युवाकवः सुता नार्सत्या वृक्तर्वाहिपः ।
 आ यातं रुद्रवर्तनी ॥ ३ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।१५।११)

मेघातिथिः काण्वः । (ऋद्रसहितैः) । गायत्री ।

अश्विना पिवतं मधु दीर्घग्री शुचिप्रता ।
 ऋतुना यज्वाहसा ॥ १ ॥

॥ ३ ॥ (१।२१।१-४)

प्रातर्युजा वि बोधया अश्विनावेह गच्छताम् ।
 अस्य सोमस्य पीतये ॥ १ ॥
 या सुरथा रथीर्तमो मा देवा दिविस्पृशा ।
 अश्विना ता हवामहे ॥ २ ॥
 या वां कशा मधुमत्य अश्विना सुमृतावती ।
 तथा यजं मिमिक्षतम् ॥ ३ ॥
 नदि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः ।
 अश्विना सोमिनो गृहम् ॥ ४ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १।३०।१७-१९)

शुन.शेष आर्जोर्गतिः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः ।

आश्विनावभवावत्ये पा यातं शर्वीरया ।
 गोमद् दक्षा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥
 समानयोजनो द्वि वां रथो दक्षावर्मत्यः ।
 समुद्रे अश्विनेयते ॥ १८ ॥
 न्युज्यस्य मुर्धनिं सुक्रं रथस्य येमधुः ।
 परि धामन्यदीयते ॥ १९ ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० १।३४।१-१२)

हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । वयतीः ९, १२ त्रिष्टुप् ।

त्रिध्विन् नो अथा र्भवतं नवेदसा
 विभुर्वा याम उत रातिरश्विना ।
 युवोर्हि युत्रं हिम्येष वाससो
 भभ्यायसेन्यां भयतं मनीषिभिः ॥ १ ॥
 त्रयः पवयो मधुवाहने रथे
 सोमस्य वेनामनु चिद्व इद् विदुः ।
 त्रयः स्कम्मासः स्कमितास आरभे
 त्रिनसं याथकिर्विश्विना दिवा ॥ २ ॥

(१३)

समाने अहन् त्रिरं च यो गहना
त्रिरं यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।
त्रिर्वाजयतीरियो अदिवना युव
द्वोषा असभ्यमुपसंश्च पिन्वतम्
त्रिर्धर्तिर्यौत त्रिरनुव्रते जने
त्रिः सुप्राग्वै त्रेधेवं शिक्षतम् ।
त्रिर्नान्त्यं वहतमदिवना युव
त्रिः पक्षो असे अक्षरैव पिन्वतम्
त्रिर्नो रथिं वहतमदिवना युव
त्रिर्देवताता त्रिरुतावंत धिर्यः ।
त्रिः सौमगत्वं त्रिरत श्रवांसि नः
त्रिष्ठं वां सुरं दुहिता रुहद् रथम्
त्रिर्नो अदिवना दिव्यानि भेषजा
त्रिः पार्थिवानि त्रिदं दत्तमङ्गयः ।
भोमानं शंयोर्ममकाय सुनवे
त्रिघातु शर्मं वहतं शुमस्पती
त्रिर्नो अदिवना यजता द्विवेदिधे
परिं त्रिघातुं पृथिवीमंशायतम् ।
त्रिघो नासत्या रथ्या परावतं
धात्मेयं घातः स्वसंराणि गच्छतम्
त्रिरदिवना सिन्धुभिः सप्तमातृभिः
त्रयं आद्यायात्रेधा हविष्कृतम् ।
त्रिघ्नः वृषिधीरुपरिं प्रया द्वियो
नाकं रथेधे पुमिरनुमिहितम्
३ । त्री चमा त्रिवृता रथस्य
४ । त्रयो युधुरो ये सनीळाः ।
५ । योगो घाजिनो रासमस्य
येनं युधं नासत्योपयायः
आ नासत्या गच्छतं दृषते हविः
मर्ष्यः पिबतं मधुपेरिमात्मभिः ।
युधोर्हि पूर्वं न्विनोवग्नो रथं
ऋतायं चित्रं धनवंतुमिष्यन्ति

आ नासत्या त्रिभिरैकादशैरिह
देवेभिर्यातं मधुपेयमदिवना ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं
सेधतं द्वेषो भवंतं सचाभुवां ॥ ११ ॥
आ नो अदिवना त्रिवृता रथेन
अर्वाञ्च रथिं वहतं सुवीरम् ।
शृण्वन्तां वामर्यसे जोहवीमि
वृधे च नो भवत वाजंसातौ ॥ १२ ॥
॥ ६ ॥ (ऋ० १।४६।१-१५)
प्रहृष्टव्यं काण्व । गायत्री ।
पूपो उपा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिव ।
स्तुपे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥
या दक्षा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् ।
धिया देवा वसुविदा ॥ २ ॥
घ्न्यन्ते वां ककुद्दासो जुर्णायामधि विप्रपि ।
यद् वां रथो विभिष्पतात् ॥ ३ ॥
हविषा जारो अपां पिपतिं पयुरिर्नरा ।
पिता कुट्टस्य चर्षणिः ॥ ४ ॥
आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा ।
पातं सोमस्य धृष्णुया ॥ ५ ॥
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।
तामसे रासाथामिपम् ॥ ६ ॥
आ नो नाया मतीनां यातं पाराय गन्तवे ।
युजाथामश्विना रथम् ॥ ७ ॥
अरिष्यं वां दिवस्पृष्य सीधे सिन्धूनां रथः ।
धिया युयुञ्ज इन्द्रवः ॥ ८ ॥
दिवस्कृण्वासु इन्द्रयो यसु सिन्धूनां पदे ।
स्व पमि कुट्टं धितस्यः ॥ ९ ॥
अभूदुः मा उं अंशये हिरण्यं प्रति सूर्यैः ।
रथ्यञ्जिहयासितः ॥ १० ॥
अभूदुः पारमेतये पग्धा ऋतस्यं साधुया ।
अदतिं वि धृतिर्दिव । ॥ ११ ॥

तत् तद्विद्वदश्विनोर्यो जरिता प्रति भूपति ।
मद्रे सोमस्य पिप्रतोः ॥ १२ ॥
वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा ।
मनुष्यच्छम् आ गतम् ॥ १३ ॥
युवोरुया अनु श्रियं परिज्जनोरुपाचरत् ।
ऋता चनयो अकुभिः ॥ १४ ॥
उमा पिचतमद्विनो मा नः शर्म यच्छतम् ।
अविद्रियार्भिरुतिभिः ॥ १५ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० १।४७।१-१०)
प्रगाथः = (विपमा) बृहती, (समा) सती बृहती ।
अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमं ऋतावृधा ।
तमद्विना पिचतं तिरोब्रह्मं
घत्तं रत्नानि दाशुपे ॥ १ ॥
त्रिवन्धुरेण श्रिवृता सुपेशसा
रथेना यांतमद्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्मं कृष्णन्त्यध्वरे
तेषां सु-ऋणुतं हवम् ॥ २ ॥
अद्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दक्षा वसु विभ्रता रथे
दाश्वानसमुप गच्छतम् ॥ ३ ॥
त्रिपधस्ये वहिपिं विश्ववेदसा
मर्घ्या यज्ञं मिमिक्षतम् ।
कण्वासो वां सुतसौमा अभिद्यवो
युवां हचन्ते अद्विना ॥ ४ ॥
याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्राचतं युवमद्विना ।
ताभिः च्वरुस्मौ अचतं शुमस्पती
पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥
सुदासे दक्षा यसु विभ्रता रथे
पृक्षो बहतमद्विना ।
रयिं समुद्रादुत वां दिवस्पति
अस्मे धंसं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

यवांसत्या पयवति यद् वा स्यो अर्धि तुर्धशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं
साकं सूर्यस्य रुदिमभिः ॥ ७ ॥
अर्वाञ्जा वां सतयोऽध्वरुश्रियो
बहन्तु सवनेदुप ।
इपं पृञ्चन्तां सुकृते सुदानव
ज्ञा वहिः सीदतं नरा ॥ ८ ॥
तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।
येन दाश्वद्वह्युर्दाशुपे वसु
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥
उकथेभिर्वागवसे पुरुवस्
अकेश्व नि हयामहे ।
शश्वत् कण्वानां सर्दसि मिये हि कं
सोमं पपधुरद्विना ॥ १० ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० १।२१।१६-१८)
गोतमो राहगणः । अष्णिक् ।
अद्विना वर्तिरुमदा गोमद्व दक्षा हिरण्यवत् ।
अर्वाप्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥ १६ ॥
यावित्या श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रयुः ।
आ न उजै बहतमद्विना युवम् ॥ १७ ॥
पह देवा मयोभुवां दक्षा हिरण्यवर्तनी ।
उपयुधो बहन्तु सोमपीतये ॥ १८ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० १।११।१-२५)
इत्स आश्रिखः । १ (आथपादस्य) धावापुषिव्यौ,
१ (द्वितीयपादस्य) अग्निः, १ (उत्तरार्धस्य) अश्विनौ,
२-२५ अश्विनौ । अगती; २४-२५ शिशुपृ ।
ईळे धावापृथिवी पूर्वचित्तये
अग्निं धमं सुहवं याम्रिष्टिये ।
यामिर्मरं कारमंशायां जिन्वंधः
तामिरु पु ऊतिभिरद्विना गतम् ॥ ११ ॥

युवोर्दानाय सुभरा असञ्चतो रथमा तस्थुर्वचस न मन्तवे । याभिर्विधयोऽवथः कर्मनिष्ठये ताभिर्ऋ पु क्रुतिभिरद्विना गंतम्	॥ २ ॥	याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिर्ऋ पु क्रुतिभिरश्विना गंतम् याभिर्विद्वेषलां धनसामथुर्व्यं सहस्रमीच्छ आजावजिन्धतम् । याभिर्वशमद्वयं प्रेणिमावतं ताभिर्ऋ पु क्रुतिभिरश्विना गंतम्	॥ १ ॥ ॥ २० ॥
युव तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मृज्मना । यामिर्घुञ्जमस्वं । पिन्वथो नरा ताभिर्ऋ पु क्रुतिभिरद्विना गंतम्	॥ ३ ॥	याभिः सुदानू औशिजायं वणिजं दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् । कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिर्ऋ पु क्रुतिभिरश्विना गंतम्	॥ ११ ॥
यामिः परिष्मा तनेयस्य मृज्मना दिमाता तुषु तरणिविभूपति । यामिस्त्रिमन्तरभवद् विचक्षणः ताभिर्ऋ पु क्रुतिभिरद्विना गंतम्	॥ ४ ॥	याभी रसां क्षोदसोद्गः पिपिन्वथुः अनश्वं यामी रथमावतं जिपे । यामिस्त्रिशोकं उस्त्रिया उदाजत ताभिर्ऋ पु क्रुतिभिरश्विना गंतम्	॥ १२ ॥
यामी रेभं निवृत्तं स्तितमद्रथः उद् वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे । यामिः कण्वं प्र सिपासन्तमावतं ताभिर्ऋ पु क्रुतिभिरद्विना गंतम्	॥ ५ ॥	यामिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षेत्रपत्येष्वावतम् । यामिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिर्ऋ पु क्रुतिभिरश्विना गंतम्	॥ १३ ॥
यामिरन्तकं जसमानमारणे मुञ्चुं यामिरव्यथिभिर्जिन्वथुः । यामिः कर्कशुं घट्यं च जिन्वथुः ताभिर्ऋ पु क्रुतिभिरद्विना गंतम्	॥ ६ ॥	यामिर्महामतिशिवं कशोजुयं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम् । यामिः पूभिर्घे ब्रसदस्थुमावतं ताभिर्ऋ पु क्रुतिभिरश्विना गंतम्	॥ १४ ॥
यामिः द्वाचन्ति धनसां सुपसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तुमप्रये । यामिः पृथ्विं पुद्गुत्समावतं ताभिर्ऋ पु क्रुतिभिरद्विना गंतम्	॥ ७ ॥	यामिर्वघ्नं विपिपानमुपस्तुत कृति यामिर्विक्तजानि दुयस्यथः । यामिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिर्ऋ पु क्रुतिभिरश्विना गंतम्	॥ १५ ॥
यामिः दन्तीमिषुपणा परावृजं भान्धं ध्रोणं चरुं वतये कृष्यः । यामिर्पानिनां प्रविताममुश्रुतं ताभिर्ऋ पु क्रुतिभिरद्विना गंतम्	॥ ८ ॥	यामिर्नरा शयये यामिरप्रये यामिः पुरा मनये गातुमीपथुः । यामिः शारीराजतं स्युर्मरदमये ताभिर्ऋ पु क्रुतिभिरद्विना गंतम्	॥ १६ ॥

<p>याभिः पठर्वा जठरस्य मृज्मना अश्विनां दीदित्त इहो अज्मना । याभिः शर्यातमर्बथो महाधने ताभिः पु ऊतिभिरश्विना गतम् याभिरङ्गिये मर्नसा निरण्यथः अग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः । याभिर्मनुं शूरमिपा समवर्तं ताभिः पु ऊतिभिरश्विना गतम् याभिः पत्नीर्विमदायं न्युहयुः आ र्घं वा याभिररुणीरशिक्षतम् । याभिः सुवास ऊहयुः सुदेव्यं ताभिः पु ऊतिभिरश्विना गतम् याभिः शंताती भवथो द्वाशुपै भुज्यं याभिरवथो याभिरभिगुम् । ओम्यावती सुमरामृतस्तुभ्रं ताभिः पु ऊतिभिरश्विना गतम् याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो ज्वे याभिर्युनो अर्वातमावतम् । मधुं प्रियं भरथो यत् सरङ्भ्यः ताभिः पु ऊतिभिरश्विना गतम् याभिर्नरं गोपुयुधं नृपाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः । यात्री रयां अर्बथो याभिरवैतः ताभिः पु ऊतिभिरश्विना गतम् याभिः कुरसमाज्जेनेयं शतक्रतु प्र तूर्वाति प्र चं दुभीतिमावतम् । याभिर्ध्वसन्ति पुरुपन्तिमावतं ताभिः पु ऊतिभिरश्विना गतम् अमस्वतीमश्विना वाचमसे कृतं नो दक्षा वृषणा मनीषाम् । अद्युत्येऽवसे नि ह्ये वां वृषे चं नो भवतं वाजसातौ</p>	<p>युभिरक्तुभिः परि पातमसान् अरिष्टभिरश्विना सौमर्गोभिः । तर्त्रो मित्रो वरुणो मामहन्तां ॥ १७ ॥ अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २५ ॥ ॥ १० ॥ (ऋ० १।१३६।१-२५) कक्षावान् देवतमस ओशिश्रः । त्रिष्टुप् । नासत्याभ्यां युहिरिव प्र वृञ्जे स्तोमा इयम्यभ्रियैव वातः । यावर्भगाय विमदायं जायां सेनाजुवा न्युहतु रथेन ॥ १ ॥ वीळपर्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जुतिभिः शाशादाना । तद् रासमो नासत्या सहस्रं आजा यमस्यं प्रधने जिगाय ॥ २ ॥ तुग्रो ह भुज्यमश्विनोदमेघे रथि न कश्चिन्ममवां अवाहाः । तमूहयुर्नाभिरात्मन्वतीभिः अन्तरिक्षमुद्रिरपोदकाभिः ॥ ३ ॥ ॥ २१ ॥ तिस्रः क्षपश्चिरहातिवर्जद्विः नासत्या भुज्युमूहयुः पतङ्गैः । समुद्रस्य धन्वर्वाद्स्यं गारे त्रिमी रथैः शतपङ्क्तिः पळ्धैः ॥ ४ ॥ ॥ २२ ॥ अनारम्भणे तद्दीरयेयां अनास्थाने अग्रभणे संमुद्रे । यदश्विना ऊहयुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥ ५ ॥ यमश्विना द्दयुः श्वेतमश्वं अघाश्याय शश्वदित् स्वस्ति । तद् वां दात्रं महिं कीर्तेन्वं भूत् ॥ २४ ॥ पैदो वाजी सदभिद्वयो अर्थः ॥ ६ ॥</p>
--	--

युवं नरा स्तुवते पञ्चियाय कक्षीवते शरदत्तं पुरंधिम् । कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भं असिञ्चतं सुरायाः हिमेनाग्निं ध्रंसमवारयेथां पितृमतीमूर्ध्निमस्मा अथक्षम् । श्रुयीसे अग्निमश्विनारवनीतं उन्निन्यथुः सर्वेगणं स्वस्ति परावतं नासत्यानुदेयां उच्चारुध्रं चक्रथुजिज्ञावारम् । क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृप्यते गोतमस्य जुजुरुषो नासत्योत वामि प्रामुञ्चतं ज्ञापिमिद्य च्यवानात् । प्रातिरतं जह्रितस्यायुर्वेसाद् इत् पतिमरुणुतं कुनीनाम् तद् यो नरा शंस्यं राधै च अभिष्टिमन्नासत्या वरुथम् । यद् विष्ठांसां निधिमिवापंगूळ्हे उद् दंशतादुपधुर्वन्दनाय तद् यो नरा सूनये देसे उग्रं अश्विष्टेगोभि तन्वतुनं वृष्टिम् । वृष्यद् इ यन्मर्धाधर्वणो धां ध्रुम्यन्त्रीर्णां प्र यदीमुवाच अज्ञोदयीप्राप्तव्या करा यो गदे यामन् पुरुभुजा पुरंधिः । धृतं नच्छासुर्मिय घग्निमत्या हिरण्यदहनमभिवनापदक्षम ध्वनो वृषरस्य यतिं वामनीये युवं नरा नागव्यामुगुलम् ।	॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥	उतो कवि पुरुभुजा युवं ह रूपमाणमरुणुतं विचक्षे चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णं आजा खेलस्य परितफ्मयायाम् । सद्यो जङ्घामार्यसां विद्वपलायै धने ह्रिते सतेवे प्रत्यधत्तम् शतं मेपान् वृष्ये चक्षदानं श्रुञ्जाश्वं ते पितान्धं चकार । तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आचरन्तं दस्त्रा भिपजावनर्वन् आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्पमेवातिष्ठदर्वता जयन्ती । विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृष्टिः समु श्रिया नासत्या सचेथे यदयातं दिवोदासाय यतिः भ्रुद्धाजायाश्विना हयन्ता । रेवदुवाह सच्चनो रथो वां धूपभश्च शिशुमारश्च युक्ता रयि सुक्षत्रं स्वपत्यमार्युः सुधीर्ये नासत्या वहन्ता । आ जुद्धार्यो समनसोप वाजेः विरद्धो भागं दधतीमयातम् परिविष्टं जाहृपं विद्वयतः सां सुगेभिर्नक्तमूहथु रजोभिः । विभिग्दुना नासत्या रथेन यि पर्येतां अजस्य अयातम् पक्स्या यस्तोरपयतं रणाय यशमश्विना सूनये सहस्रां । निरदतं बुच्छुना इन्द्रयन्ता पृगुधर्यसां वृषणापरतीः	॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥
--	---	--	--

शरस्य चिदार्चकस्यावतादा
नीचादुच्चा चक्रयुः पातये वाः ।

शयवे चिन्नासत्या शचीभिः

जसुरये स्तुयै पिप्यथुर्गाम्
अवस्यते स्तुवते कृष्णिण्यार्य
ऋजुयते नासत्या शचीभिः ।

पशुं न नष्टमिघ दशनाय
विष्णाप्यं ददयुर्विद्वकाय
दश रात्रीरशिवेना नव घ्न
अर्वनद्धं श्रयितमप्स्वदन्तः ।

विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तं
उक्षिन्यथुः सोममिव स्रुघेणं
म वां देसांस्यशिवनाववोचं
अस्य पतिः स्यां सुगवंः सुवीरः ।

उत पदयन्नश्रुवन् द्वाभ्रमायुः
अस्तमिघेज्जिरिमाणं जगम्याम्

॥ ११ ॥ (ऋ० १।११।१-२५)

मघ्वः सोमस्याश्विना मदाय
प्रतो होता विवासते वाम् ।
यद्विष्मती रातिविश्रिता गीः
इषा यातं नासत्योप वाजैः
यो धामश्विना मर्नसो जर्वीयान्
रथः स्वश्वो विशां आजिगाति ।
येन गच्छथः सुकृतौ दुरोणं
तेन नय वतिरस्मभ्यं यातम्
ऋषिं नरावहंसुः पाञ्चजन्यं
ऋषीसादत्रिं मुञ्चथो गुणेन ।
मिनन्ता दस्योपशिवस्य माया
अनुपुधं वृषणा चोदयन्ता
अश्वं न गृह्णन्मश्विना दुरेवैः
ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।

॥ २२ ॥

॥ २३ ॥

॥ २४ ॥

॥ २५ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिः

न वां जूर्यन्ति पुष्यां कृतानि ॥ ४ ॥

सुपुष्यासं न निरुहतेरुपस्थे
सूर्यं न दंष्ट्रा तमसि क्षियन्तम् ।

शुभे रुमं न दशतं निखातं
उदूपयुराश्विना वन्दनाय ॥ ५ ॥

तद् वां नरा शंस्यं पत्रियेणं
कशीवता नासत्या परिज्मन् ।

शफादश्वस्य वाजिनो जनाय
शतं कुम्भां अंसिञ्जतं मधूनाम् ॥ ६ ॥

युधं नरा स्तुवते कृष्णिण्यार्य
विष्णाप्यं ददयुर्विद्वकाय ।

योपायै चित् पितृपदे दुरोणे
पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥ ७ ॥

युधं श्यावाय रुशतीमदत्तं
महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।

प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वां
यत्रापदाय श्रवो अच्यधत्तम् ॥ ८ ॥

पुरू वपांस्यश्विना दधाना
नि पेदवं ऊहयुराश्रुमश्वम् ।

सहस्रसां वाजिनमप्रतीतं
अद्विहनं श्रचस्यं दुतरुचम् ॥ ९ ॥

एतानि वां श्रवस्यां सुदानु
ब्रह्माहुपं सदेतं रोदस्योः ।

यद् वां पञ्जासो अश्विना हवन्ते
यातमिया च विदुपं च वाजम् ॥ १० ॥

सुनोमार्तेनाश्विना गृणाना
वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।

अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना
सं विद्वलां नासत्यारिणीतम् ॥ ११ ॥

कुह यान्ता सुप्रति काव्यस्य
 दिवो नपाता वृषणा शयुजा ।
 हिरण्यस्वेष कलशं निखातं
 उदूपथुर्दशमे अश्विनाह्न
 युधं च्यवानमश्विना जरन्तं
 पुनर्युवानं चक्रधुः शचीभिः ।
 युवो रथं दुहिता सूर्यस्य
 सह श्रिया नास्त्यावृणीत ।
 युधं तुप्राय पुर्व्यभिरैवैः
 पुनर्मन्यावर्भवतं युवाना ।
 युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद्
 विभिरुहधुर्दशभिर्दशैः
 अजौहवीदश्विना तौग्यो वां
 प्रोब्धः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।
 निष्टमूहधुः सुयुजा रथेन
 मनोजवसा वृषणा स्वस्ति
 अजौहवीदश्विना वर्तिका वां
 आस्रनो यत् सीममुञ्जतं वृकस्य ।
 वि जुषुषां ययधुः सान्वेद्रेः
 जातं विष्वार्चो अहतं विषेणं
 शतं मेयान् वृष्ये मामहानं
 तमः प्रणीतमश्विनेन पित्रा ।
 आक्षी म्रुजादथै अश्विनायधत्तं
 ज्योतिरुपायं चक्र्याविविचक्षे
 शूनमन्धाय मरमद्वयत् सा
 पुकीरश्विना वृषणा नरेति ।
 जारः कुनीन इय चक्षदान
 म्रुजादथैः शतमेकं च मेयान्
 मही पाम्निरश्विना मयोभूः
 इत ग्रामं पिष्प्या सं रिणीथः ।

अर्धा युवामिदं ह्ययत् पुरैषिः
 आगच्छतं सीं वृषणावर्षोभिः ॥ १९ ॥
 अर्धेनुं दक्षा स्तय्य विपक्तां
 ॥ १२ ॥ अर्धेन्वतं शयवै अश्विना गाम् ।
 युवं शचीभिर्विमदाय जायां
 न्यूहधुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥ २० ॥
 यवं वृकैणाश्विना वपन्त
 ॥ १३ ॥ इपं दुहन्ता मनुपाय दक्षा ।
 अभि दस्युं वकुरेणा धमन्त
 ऊरु ज्योतिश्चक्रयुरायीय ॥ २१ ॥
 आथर्वणायश्विना दधीचे
 अह्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
 स वां मधु प्र वोचदतायन्
 त्वाष्टं यद् दक्षावपिकृष्यै वाम् ॥ २२ ॥
 सदा कधी समुतिमा चके वां
 विश्वा धियो अश्विना प्रार्वतं मे ।
 ॥ १५ ॥ अस्मे रुयि नास्तत्या बृहन्तै
 अपत्यसाञ्चं श्रुत्यै रराशाम् ॥ २३ ॥
 हिरण्यहस्तमश्विना रराणा
 पुत्रं नरा वधिमत्या अदत्तम् ।
 ॥ १६ ॥ त्रिधा ह श्यावर्मश्विना विकस्तं
 उज्जीवसं पेरयतं सुदान् ॥ २४ ॥
 प्रतानि वामश्विना वीष्यैणि
 प्र पृष्याण्यायवोऽवोचन् ।
 ॥ १७ ॥ ग्रहा कृष्णन्तो वृषणा युवभ्यां
 सुवीरसो विदथमा वंदेम ॥ २६ ॥
 ॥ १९ ॥ (ऋ० १।१२८।१-११)
 आ वां रथौ अश्विना श्वेनपत्या
 ॥ १८ ॥ समृत्नीकः स्वर्षो यात्वर्षोऽह् ।
 यो मर्त्यस्य मर्णसो जवीयान्
 त्रियन्धुरो वृषणा धातरंहाः ॥ १ ॥
 (१२७)

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन
त्रिचक्रैर्ण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वातो नो
वर्धयतमश्विना वीरमसे
॥ २ ॥
प्रवर्धामना सुवृता रथेन
दस्त्राधिर्मं शृणुतं श्लोकमर्द्रः ।
किमङ्ग वां प्रत्यर्वातिं गर्भिष्ठा
आहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः
॥ ३ ॥
आ वां श्येनासौ अश्विना घहन्तु
रथे युक्तासं आदावः पतङ्गाः ।
ये अन्तुरो दिव्यासो न गृध्रा
अभि प्रयो नासत्या वहन्ति
आ वां रथं युवतिस्तिप्रद्वं
जुष्टी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुपः पतङ्गा
वयो वहन्त्वश्वना अमीके
उद् वन्दनमैरतं दंसनाभिः
उद्रेमं दस्त्रा वृषणा शर्वाभिः ।
निष्टौग्न्यं पारयथः समुद्रात्
पुनश्च्यवानं चक्रयुर्यवानम्
युवमत्रयेऽवर्नीताय तप्तं
ऊर्जमोमानमश्विनावधत्सम् ।
युवं कण्वायापिपिताय चक्षुः
प्रत्यघत्तं सुपुतिं जुञ्जुषाणा
युवं धेनुं शायवं नाधिताय
अपिन्वतमश्विना पृथ्वार्यं ।
अमुञ्चतं वार्तिकामहंसो निः
प्रति जह्नां विदपलाया अधत्सम्
युवं श्वेतं पेद्व्य इन्द्रञ्जतं
अहिहर्नमश्विनादत्तमश्वम् ।

जोह्वमयो अभिभूतिमुग्रं
सहस्रां वृषणं वीङ्गम्
॥ ९ ॥
ता वां नरा स्वर्से सुजाता
हवामहे अश्विना नार्धमानाः ।
आ न उप वसुमता रथेन
गिरो जुषाणा सुधिताय यातम्
॥ १० ॥
आ श्येनस्य जर्वसा नूतनेन
असे यातं नासत्या सुजोपाः ।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः
शश्वत्तमाया उपसो व्युष्टौ
॥ ११ ॥
॥ १३ ॥ (ऋ० १।१११।१-१०) अगतौ ।
॥ ४ ॥
आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं
जीराश्वं युजियं जीवसे हुवे ।
सहस्रकेतुं वनिनं शतहंसुं
शुष्टीघानं वरिष्ठोधामभि प्रयः
॥ १ ॥
ऊर्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयांमनि
॥ ५ ॥
अधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।
स्वदाभि घर्म प्रति यन्त्युतय
आ वामूर्जोनी रथमश्विनारुहत्
॥ २ ॥
सं यग्मिथः पस्पृधानासो अगमत्
॥ ६ ॥
शुमे मखा अमिता जायवो रणे ।
युवोरहं प्रयणे वैकिते रयो
यदश्विना वहथः सुरिमा वरम्
॥ ३ ॥
युवं भुव्युं भुरमाणं विभिर्गतं
॥ ७ ॥
स्वयुकिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।
यासिष्टं धतिर्वृषणा विजेत्यं ।
दिवोदासाय महिं चेति वामवः
॥ ४ ॥
युवोरश्विना वपुपे युवायुजं
॥ ८ ॥
रथं वाणीं येमतुरस्य शश्व्यम् ।
आ वां पतित्वं सख्यायं जग्मुषी
योपावृणीत जेन्या युवां पती
॥ ५ ॥

युवं रेभं परिपूतेयद्यथो
हिमेन घर्मं परितप्तमध्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गन्धि
प्रदीर्घेण चन्दनस्तार्यायुपा
युवं चन्दनं निरुद्धं जल्पय्या
रथं न दस्त्रा कर्णा समिन्वथः ।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया
प्र यामत्रं विधते दंसना भुवत्
अगच्छतं रूपमाणं परावति
पितुः स्वस्य त्यजसा निवाधितम् ।
स्वर्धतीरित ऊतीर्युवोरहं
चित्रा अभीकै अभवप्रभिष्टयः
उत स्या वां मधुमन्मार्क्षिकारपुन
मदे सोमस्यौशिजो हुवन्व्यति ।
युवं दधीचो मन आ विवास्तथो
अथा शिरः प्रतिं यामश्वर्यं वदत्
युवं पेद्वे पुरुवारमश्विना
स्पृधां श्वेतं तंरुतारं दुवस्यथः ।
शर्यैरभियुं पृतनासु दुष्टरं
चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्पणीसहम् ॥ १० ॥
॥ १४ ॥ (ऋ० १।१२०।१-१२)
(१२ दुःखप्रनाशनम्) । १ गावत्रा, २ कङ्क, ३ का-विराट्,
४ नष्टरूपी, ५ तनुशिरा, ६ उष्णिक, ७ विष्टार-बृहती,
८ हृतिः, ९ विराट्, १०-१२ गावत्री ।
का राघ्वसौत्राश्विना वां को वां जोप उभयोः ।
कथा विधात्यप्रचेताः ॥ १ ॥
विद्वांसानिवद् दुरः पृच्छेद्
अविद्वानित्यापरो अचेताः ।
नू चिन्नु मते अक्रौ ॥ २ ॥
ता विद्वासा हवामहे वां
ता नो विद्वासा मन्म वोचेतमथ ।
प्राथद् दर्यमानो युवाकुः ॥ ३ ॥

वि पृच्छामि पाक्याः न वेयान्
पर्यद्रुतम्याद्रुतस्य दत्ता ।
पातं च सर्दासो युवं च रभ्यसो नः ॥ ४ ॥
प्र या घोपे भृगयाणे न शोमे
यया वाचा यजति पप्रियो याम् ।
प्रेपयुनं विद्वान् ॥ ५ ॥
धृतं गायत्रं तर्कवानस्य
अहं चादि रिरेभाश्विना याम् ।
आक्षी शुभस्पती दन् ॥ ६ ॥
युवं ह्यास्तं महो रन् युवं या यशिरतंतंसतम् ।
ता नो वस् सुगोपा स्यातं
पातं नो वृकादघायोः ॥ ७ ॥
मा कसै धातमभ्यमिध्रिणे नो
माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो शुः ।
स्तनाभुजो अशिदवीः ॥ ८ ॥
दुहीयन् मित्रधितये युवाकुं
राये च नो मिमीतं याजवत्यै ।
इपे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥ ९ ॥
अश्विनोरसनं रथं मनश्च वाजिनीवतोः ।
तेनाहं भूरि चाकन ॥ १० ॥
अयं संमह मा तनु ह्याते जनां जनु ।
सोमपेयं सुखो रथः ॥ ११ ॥
अथ स्वमस्य निर्विदे ऽभुञ्जतश्च रेवतः ।
उभा ता बक्षि नश्यतः ॥ १२ ॥
॥ १५ ॥ (ऋ० १।१३९।३-५)
परुच्छेपो देवोदासिः । असाष्टि, ५ बृहती ।
युवां स्तोमैभिदैवयन्तो अश्विना
आध्रावयन्त इव श्लोकमायवो
युवां हव्याभ्याः युवः ।
युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा ।
मुपायन्ते वां पवयो हिरण्ये
रथे दत्ता हिरण्ये ॥ ३ ॥

अचैति दन्ना व्युनाकमृण्ययो
युज्जते वां रथयुजो दिविष्टिपु
अध्वसानो दिविष्टिपु ।
अधि वां स्वामं वृन्धुदे रथे दन्ना हिरण्यये ।
पृथेव यन्तावनुशासता रजो
अर्क्षसा शासता रजः ॥ ४ ॥
शचीभिर्नः शचीवसु दिद्या नक्तं दशस्यतम् ।
मा वां रातिरुपं दसत् कदा चन
असद् रातिः कदा चन ॥ ५ ॥

॥ १६ ॥ (ऋ० १।१५।७।१-६)

दीर्घतमा औबध्यः । जगती, ५-६ त्रिष्टुप् ।

अयोभ्यग्निर्म उदेति स्यो
व्युपाश्चन्द्रा महावो अर्चिषा ।
आयुस्तातामश्विना यातवे रथं
प्रासावीद् देवः संविता जगत् पृथक् ॥ १ ॥
यद् युजाये वृषणमश्विना रथं
घृतेन नो मधुना अयमुक्षतम् ।
असाकं ब्रह्म पूतनासु जिन्वतं
ययं घना शूरसाता भजेमहि
अर्थाह् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो
जीराभ्यो अश्विनौयातु सुष्टुतः ।
श्रियन्धुरो मयवां विश्वसौमगः
शं न आ रक्षद् द्विपदे चतुष्पदे
आ न ऊर्जे षहत्माश्विना युवं
मधुमत्या नः कश्या मिमिक्षतम् ।
प्रायुस्तारिष्टुं नी रपांसि मृक्षतं
सेर्षतं द्वेयो मयतं सन्नाभुवा
युयं ह गर्भे जगतीषु धत्यो
युयं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
युयमग्निं च वृषणाप्रपद्य
वनस्पतीरश्विनायेरपेयाम् ॥ २ ॥

युध ह स्यो मियजा मेपजेभिः
अयो ह स्यो रथ्याहु राथ्येभिः ।
अयो ह अत्रमधि धत्य उत्रा
यो वां हविष्मान् मनसा दृदाश ॥ ६ ॥
॥ १७ ॥ (ऋ० १।१५।८।१-६) त्रिष्टुप्, ६ अनुष्टुप् ।
यसु दृदा पुंसमन्तं वृधन्तो
दशस्यते नो वृषणावभिष्टौ ।
दन्ना ह यद् रेफणं औच्ययो वां
प्र यद् सन्नाथे अकवाभिरूती ॥ १ ॥
को वां दाशत् सुमतये चिदस्यै
वसु यद् धेये नमसा पूदे गोः ।
जिगतमस्मे देवतीः पुरंधीः
कामयेनेव मनसा चरन्ता ॥ २ ॥
युक्तो ह यद् वां तौन्यार्य पेवः
वि मध्ये अर्णसो धार्यि पजः ।
उपं धामवः शरणं गमेयं
शूरो नाज्मं पतयाद्विरेवैः ॥ ३ ॥
उपस्तुतिरौच्यमुंरथ्येत्
मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् ।
मा मामेयो दशतयश्चितो धारु
प्र यद् वां यदस्मनि धादति क्षाम् ॥ ४ ॥
न मां गरन् नद्यो मातृतमा
दासा यदीं सुसंमुन्धमवार्युः ।
दिरो यदस्य प्रेतनो वितक्षत्
स्युयं दास उरो अंलावर्षिं ग्य ॥ ५ ॥
दीर्घतमा मामतेयो जुजुवान् दंशमे युगे ।
अपामथे यतीनां प्रह्ना भवति सारथिः ॥ ६ ॥
॥ १८ ॥ (ऋ० १।१८।१-२०)
अगस्त्यो मैत्रावशिनिः । त्रिष्टुप् ।
युयो रजांसि सुयमांसो भक्ष्ता
रथो यद् वां पर्येपांसि दीर्यत् ।
हिरण्यया वां पयवः प्रुगायन्
मभ्यः पियन्ता उपमः सचेधे ॥ १ ॥

युवमत्यस्याव नक्षथो
 यद् विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः ।
 स्वसा यद् वां विश्वगूर्ती भराति
 वाजायेहे मधुपायिपे च
 युवं पर्य उस्त्रियायामघत्तं
 पकमायामव पूर्व्य गोः ।
 अन्तर्यद् वनिनो वामृतप्सु
 ह्यारो न शुचिर्यजते हविष्मान्
 युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रये
 अपो न क्षोदोऽवृणीतमेपे ।
 तद् वां नरावश्विना पश्वंइष्टी
 रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः
 आ वां दानाय वधृतीय दक्षा
 गोरोहेण तौग्न्यो न जिद्विः ।
 अपः क्षोणी संचते माहिना वां
 जुर्णो वामभ्रुरंहसो यजत्रा
 नि यद् युवेथे नियुतः सुदानु
 उप स्वधाभिः सृजथः पुरंधिम् ।
 प्रेपद् वेपद् वातो न सूरिः
 आ महे ददे सुम्रतो न वाजम्
 घ्यं चिद्वि वां जरितारः सत्या
 विपन्यामहे वि पणिहिंतावान् ।
 अघां चिद्वि प्मांश्विनावनिन्ध्या
 पाथो हि प्मां वृपणावन्तिदेवम्
 युयां चिद्वि प्मांश्विनावनु घ्न
 विरुद्रस्य प्रध्वणस्य सातो ।
 अगस्त्यो नरां न्यु प्रशस्तः
 काराशुनीव चित्तयत् सृदत्रैः
 प्र यद् पहेथे महिना रथस्य
 प्र स्रग्ना याथो मनुषो न दोता ।

ध्रुत् सुरिभ्य उत घा स्वदश्यं
 नासत्या रयिपाचः स्याम ॥ १ ॥
 तं घां रथं वयमघा हुधेम
 ॥ २ ॥ स्तोमैरदिवना सुविताय नव्यम् ।
 अरिष्टनेमि परि घामियानं
 विघामेपं वृजनं जीरदाजुम् ॥ १० ॥
 ॥ १९ ॥ (ऋ० १।१८१।१-९)
 कदु प्रेष्ठाविपां रयीणां
 अध्वर्यन्ता यदुभिनीयो अपाम् ।
 अयं वां यक्षो अरुत प्रशस्ति
 वसुधिती अर्वितारा जनानाम् ॥ १ ॥
 आ वामश्वसः शुचयः पयस्पा
 वातरंहसो दिव्यासो अत्याः ।
 मनोजुधो वृषणो धीतपृष्ठा
 पद् स्वराजो अश्विना वहन्तु ॥ २ ॥
 आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्
 स्रमवन्धुरः सुविताय गम्याः ।
 वृष्णः स्थातार मनसो जवीयान्
 अहंपुर्वो यजतो धिष्या यः ॥ ३ ॥
 इहेह जाता समवावशीतां
 अरेपसां तन्वाधु नामभिः स्वैः ।
 जिष्णुर्वामन्यः सुमंखस्य सूरिः
 दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥ ४ ॥
 प्र वां निचेरुः ककुहो वशां अनुं
 ॥ ७ ॥ पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।
 हरीं अन्यस्य पीपर्यन्त वाजैः
 मध्या रजांस्यदिवना वि घोपैः ॥ ५ ॥
 प्र वां शरुदान् वृषमो न निष्पाट्
 ॥ ८ ॥ पूर्वोरिपञ्चरति मध्वं इष्णान् ।
 पर्यैरन्यस्य पीपर्यन्त वाजैः
 वेपन्तीरुध्वां नघो न आशुः ॥ ६ ॥
 (१९०)

युवां गोतमः पुरुमीळो अग्निः
 दक्षा हचतेऽयसे हविष्मान् ।
 दिशं न दिशामृजयेथ यन्ता
 मे हवै नासत्योप यातम्
 अतारिष्म तमसस्फारमस्य
 प्रतिं वां स्तोमो अभिनावधायि ।
 एह यातं पृथिभिद्वेषयानैः
 विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम्
 ॥ २२ ॥ (ऋ० १।१८४।१-६)

ता वामथ तावपरं हुवेम्
 उच्छ्रान्त्यामुपसि वाहेरुक्थैः ।
 नासत्या कुहे चित् सन्तावयो
 दिवो नपाता सुदास्तराय
 असे ऊ पु वृपणा मादयेथां
 उत् पूर्णाहितमूर्म्या मदन्ता ।
 श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनां
 पृष्ठां नरा निचेतारा च कर्णैः
 श्रिये पूषन्निपुष्टतैव देवा
 नासत्या वहतुं सुर्यायाः ।
 वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता
 युगा जुणैव वरुणस्य भूरैः
 अस्मे सा वा माध्वी रातिरस्तु
 स्तोमं दिनोतं मान्यस्यं कारोः ।
 अनु यद् वां श्रवस्यां सुदानू
 सूवीर्याय चरणेषो मदन्ति
 एष वां स्तोमो अभिनावकारि
 मानैभिर्मघयाना सुवृक्ति ।
 यातं प्रतिस्तनयाय त्मने च
 धगस्यै नासत्या मदन्ता
 यतारिष्म तमसस्फारमस्य
 प्रतिं वां स्तोमो अभिनावधायि ।

एह यातं पृथिभिद्वेषयानैः
 विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

॥ २३ ॥ (ऋ० २।३७।५)

॥ ५ ॥
 एषमदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पथाद्) भागवः शौनकः ।
 (ऋतुवहितौ) । जगती ।

सर्वाञ्चमथ यत्थं नृवाहणं
 रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम् ।
 ॥ ६ ॥
 पृष्टपते हृषीपि मधुना हि कै गतं
 अथा सोमं पितृतं वाजिनीवस् ॥ ५ ॥

॥ २४ ॥ (ऋ० २।३९।१-८) त्रिष्टुप् ।

प्रावाणेव तदिदथै जरेथे
 गुर्धेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।
 ॥ १ ॥
 ब्रह्माणेव विदथं उक्थशासा
 दृतेव हव्या जन्म्या पुरुत्रा ॥ १ ॥
 प्रातयोवाणा रथ्येव वीरा
 अजेवं यमा वरमा संचेथे ।
 ॥ २ ॥
 मेने इव तन्वाहुं शुम्भमाने
 दम्पतीव क्रतुविदा जनेपु ॥ २ ॥
 शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक्
 शफाविं च जभुराणा तरौभिः ।
 ॥ ३ ॥
 चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुखा
 अर्वाञ्च यातं रथ्येव शक्वा ॥ ३ ॥
 नावेवं नः पारयतं युगेव
 नभ्येव न उपधीवं प्रधीवं ।
 ॥ ४ ॥
 श्वानेव नो अरिपण्या तनूनां
 खृगलेव विस्त्रसः पातमसान् ॥ ४ ॥
 वातैवाजुर्वा नचेव रीतिः
 ॥ ५ ॥
 अक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक् ।
 हस्ताविव तन्वे । शर्मयिष्टा
 पार्थेव नो नयतं वस्यो अच्छे ॥ ५ ॥

ओष्ठाविव मध्यान्ने वदन्ता
स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः ।

नासेव नस्तन्वो रक्षितारु

कर्णाविव सुश्रुता भूतमसे

॥ ६ ॥

हस्तेव शक्तिमभि सैददी नः

क्षामैव नः समजतं रजांसि ।

इमा गिरौ अश्विना युष्मयन्तीः

क्षोत्रेणैव स्वर्धिति सं दिशीतम्

॥ ७ ॥

एतानि वामाश्विना वर्धनानि

ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासौ अक्रुत् ।

तानि नरा जुहुवाणोप यातं

पृहद् वदेम विदये सुवीराः

॥ ८ ॥

॥ २५ ॥ (ऋ० १।४१।७-९) गायत्री

गोमदू पु नासत्या ऽश्वायद् यातमश्विना ।

वृती च्छेद्रा नृपाय्यम्

॥ ७ ॥

न यत् परे नान्तर आदुर्घर्द् वृषण्यम् ।

दुःशंसो मर्त्यो रिपुः

॥ ८ ॥

ता न आ बोद्धमश्विना रथि पिशङ्गसंहारम् ।

धिष्ण्यां घरिवोविदम्

॥ ९ ॥

॥ २६ ॥ (ऋ० १।५।१-९)

गाथिनो विद्याभिः । शिष्टम् ।

धेनुः भूतस्य काम्यं दुर्हाना

अन्तः पुत्रधरति दक्षिणायाः ।

आ घौतनि बहति शुभ्रयाम्

उपसः स्तोमो अश्विनावजीगः

सुयुग्ं बहन्ति प्रति वामूतेन

ऊर्ष्यां भवन्ति पितरैव भेषाः ।

जरैषामसद् वि पुणेर्मनीयां

युवोरयं ब्रह्ममा यातमर्वाक्

सुयुग्मरदयैः सुयुता रथेन

दस्त्रायिमं शृणुतं शोकमर्द्रैः ।

॥ १ ॥

॥ २ ॥

किमद् वं प्रत्यवति गर्मिष्णु

आहृषिमासो अश्विना पुराजाः

॥ ३ ॥

आ मन्येथामा गतं कश्चिदेवैः

विद्वेः जनासो अश्विना हवन्ते ।

इमा हि त्वां गोश्रुजीका मधूनि

प्र मित्रासो न द्दुहन्तो अत्रै

॥ ४ ॥

तिरः पुरु चिदाश्विना रजांसि

आहृषो वां मघवाना जनैषु ।

पद् यातं पयिभिर्देवयानैः

दस्त्रायिमे वां निथयो मधूनाम्

॥ ५ ॥

पुरुणमोकः सूर्यं शिवं वां

युवोर्नरा द्रविणं जुहाव्याम् ।

पुनः कृप्यानाः सूर्या शिवानि

मघवां मदेम सह नू संमानाः

॥ ६ ॥

अश्विना चापुनां युवं सुदक्षा

नियुद्भिश्च सजोर्पसा युवाना ।

नासत्या तिरोब्रह्मयं जुषाणा

सोमं पियतमस्त्रिधां सुदानू

॥ ७ ॥

अश्विना परि वामिपः पुरुचीः

इयुर्गाभिर्यतमाना अमृषाः ।

रथो ह वामृतजा अद्रिजुतः

परि धावापृथिवी याति मृद्यः

॥ ८ ॥

अश्विना मधुयुत्तमो युवाकः

मोमस्तं पातमा गतं डुरोणं ।

रथो ह वं मूरि वपुः कार्दकन्

मुतावतो निष्कृतमार्गमिष्टः

॥ ९ ॥

॥ २७ ॥ (ऋ० ४।१।२-१०)

वाग्देवो गैतवः । गायत्री ।

एष वां देवावश्विना कुमारः माहदेव्यः ।

श्रीर्वापुस्सु सोमकः

॥ ९ ॥

नं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम् ।

श्रीर्वापुपं कृणोतन

॥ १० ॥

॥ ७८ ॥ (क्र० ४१७५१-७) अगती, त्रिष्टुप् ।

पुप स्य मानुर्देयति युज्यते
 रथः परिष्मा दिवो अस्य सानवि ।
 पृक्षामो अस्मिन् मियुना अधि प्रयो
 दतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्दाते
 उद् वा पृक्षामो मधुमन्त ईरते
 रथा अदवास उपसो व्युष्टिपु ।
 अयोणवन्तस्तम आ परीवृतं
 स्वणे शुक्रं तन्वन्त आ रजः
 मर्ष्यः पिपत मधुपेभरासभिः
 उत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम् ।
 आ परेनि मधुना जिन्वथस्पो
 दति वद्रे मधुमन्तमादिवना
 हंसामो ये वा मधुमन्तो अक्षिधो
 द्विरपपणा उरुयं उपरुधः ।
 उदप्रतां मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो
 मर्ष्यो न मक्षः सथनानि गच्छथः
 स्यापरामो मधुमन्तो अश्रयं

कस्येमां देवीममृतैषु प्रेषां
 हृदि श्रेयाम सुपुतिं सुहृव्याम् ॥ १ ॥
 को मृञ्जाति कतम आगमिष्ठो
 देवानामु कतमः शंभविष्ठः ।
 ॥ १ ॥ रथं कमाहृद्रवदश्वमाशुं
 यं सूर्यस्य दुहितावृणीत ॥ २ ॥
 मक्ष हि प्मा गच्छथ ईवंतो धून्
 इन्द्रो न शक्ति परितकम्यायाम् ।
 ॥ २ ॥ दिव आजाता दिव्या सुपर्णा
 कया शचीनां भवथः शुचिष्ठा ॥ ३ ॥
 का वा भुदुपमातिः कया न
 आदिवना गमथो ह्यमाना ।
 ॥ ३ ॥ को वा महश्चित् त्यजसो अभीकं
 उरुप्यते माध्वी दक्षा न ऊती ॥ ४ ॥
 उरु वां रथः परि नक्षति वां
 आ यत् समुद्रादभि घर्तते याम् ।
 ॥ ४ ॥ मर्ष्या माध्वी मधुं वां मुपायन्

युवं श्रियमश्विना देवता तां
दिवो नपाता वनयः शचीभिः ।

युवोर्बपुंसि पृक्षः सचन्ते
वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम्
को वामद्या करते रतहृद्य
ऊतये वा सुतपेयाय वाकैः ।

श्रुतस्य वा वनुपे पुर्व्याय
नमो येमानो अश्विना ववर्तत्
हिरण्ययेन पुरुभू रथेन
इमं यज्ञं नासत्यापं यातम् ।

पिवाय इन्मधुनः सोम्यस्य
दधयो रक्षे विद्यते जनाय
आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या
हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।

मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः
सं यद् द्वे नामिः पुर्व्या वाम्
नू नो रथे पुर्वीरं वृहन्ते
दद्या मिमांथामुभयेष्वस्मे ।

नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्
सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अगमन्
इहेह यद् वां समना पंपृक्षे
सेपमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।

उरुष्यते जरितारं युवं हं
धितः कामो नासत्या युवद्रिक्
॥ ३१ ॥ (ऋ० ५।७।३१-१०)
पौर आत्रेयः । अत्रुष्टम् ।

यद्द्य स्यः पुरावति यद्वर्षवर्षश्विना ।
यद् वां पुरु पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् १
इह त्या पुरुभूतमा पुरु दंसांसि विभ्रता ।
वृत्त्या याम्वाध्रिग् हुवे तुविष्टमा भुजे ॥ २ ॥
ईमान्यद् वपुपे वपुध्रकं रथस्य येमयुः ।
पर्यन्या नाहुवा युगा मद्वा रजांसि दीयथः ॥ ३ ॥

तद् पु वामेना कृतं विश्वा यद् वामन् एषे ।
नानां जातावरेपसा समस्मे वन्द्युमेययुः ॥ ४ ॥
आ यद् वां सूर्या रथं तिष्ठद् रघुप्यदं सदा ।
॥ २ ॥ पौरं वामरुपा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥ ५ ॥

युवोरत्रैश्विकेतति नरा सुप्तेन चेतसा ।
धर्मं यद् वामरेपसं नासत्यान्वा भुरण्यति ॥ ६ ॥
उग्रो वां ककुहो ययिः द्रुण्वे यामेपु संतनिः ।
॥ ३ ॥ यद् वां दंसांभिरश्विना अत्रिर्नराववर्तति ॥ ७ ॥

मध्वं ऊपु मधुयुवा रुद्रा सिर्पकि पिप्युर्षी ।
यत् संमुद्राति पर्ययः पकाः पृक्षो भरन्त वाम् ८
सत्यमिद् वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।
॥ ४ ॥ ता यामेन यामहृतमा यामन्ना मृळ्यत्तमा ॥ ९ ॥

इमा ब्रह्माणि वर्धेना ऽश्विभ्यां सन्तु शंतमा ।
या तक्षाम रथो इवा ऽवोचाम वृहन्नमः ॥ १० ॥
॥ ३२ ॥ (ऋ० ५।७।३१-१०) अत्रुष्टम्, ८ निचुत् ।

कृष्टो देवाश्विना ऽद्या दिवो मनावसु ।
तच्छत्रयो वृषण्वसु अत्रिर्गोमा वित्रासति ॥ १ ॥
कुह त्या कुह तु श्रुता दिवि देवा नासत्या ।
कस्मिन्ना यंतथो जने को वां नदीनां सर्चा ॥ २ ॥

कं यायुः कं हं गच्छथुः कमच्छा युजाथे रथम् ।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥ ३ ॥
पौरं चिद्धपुंद्रमुतं पौरं पौराय जिन्यथः ।
यदी गृभीतर्तातये सिद्धमिव द्रुहस्पदे ॥ ४ ॥

प्र च्यवानानुजुषयो वृत्रिमर्कं न मुञ्चथः ।
युवा यदी कृत्यः पुनरा काममृण्ये वध्वः ॥ ५ ॥
अस्ति हि वामिह स्तोता स्मांसि वां संटादीं श्रिये ।
न श्रुतं म आ गतं मर्वाभिरवाजिनीवसु ॥ ६ ॥

को वामद्य पुरुणा—मा वधे मर्त्यानाम् ।
को विप्रो विप्रवाहसा को युधैर्वाजिनीवसु ॥ ७ ॥
आ वां रथो रथानां येष्टो यात्वश्विना ।
पुरु चिद्धस्मयुस्तिर भाङ्गो मर्त्येषा ॥ ८ ॥

शम पु वां मधुयुवा ऽस्माकमस्तु चकृतिः ।
 अर्वाचीना विंचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥९॥
 अश्विना यद्द कर्हि विच्छुश्रुयातमिमं हवम् ।
 यस्वीरु पु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥१०॥

॥ ३३ ॥ (ऋ० ५।७।१-९)

अवस्युराश्रयः । पृच्छिः ।

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
 स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमनं प्रति भूपति
 माष्वी ममं श्रुतं हवम् ॥ १ ॥

अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
 दक्षा हिरण्यवर्तनी सुपुम्ना सिन्धुवाहसा
 माष्वी ममं श्रुतं हवम् ॥ २ ॥

आ नो रत्नानि विभ्रता—वश्विना गच्छतं युवम् ।
 रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुपाणा वाजिनीवसु
 माष्वी ममं श्रुतं हवम् ॥ ३ ॥

सुपुमो वां वृषणवसु रथं वाणीच्याहिता ।
 उत वां ककुद्वा मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो
 माष्वी ममं श्रुतं हवम् ॥ ४ ॥

योधिन्मनसा रथ्ये—पिरा हवनश्रुता ।
 विमिदच्यवानमश्विना नि याथो अहयाविनं
 माष्वी ममं श्रुतं हवम् ॥ ५ ॥

आ वां नरा मनोयुजो ऽश्यासः प्रुपितर्षवः ।
 ययों पदगुत पीतर्ये सह सुस्रेभिरश्विना
 माष्वी ममं श्रुतं हवम् ॥ ६ ॥

अश्विनापेद गच्छन्तं नासत्या मा वि घेनतम् ।
 तिरिद्विदयंया परिं एतिर्यातमदाभ्या
 माष्वी ममं श्रुतं हवम् ॥ ७ ॥

असिन यणे अदाभ्या जरितारं नृमस्पती ।
 अयस्युर्मश्विना युधं गृणन्तमुप भूपथो
 माष्वी ममं श्रुतं हवम् ॥ ८ ॥

अमृदुपा रुशत् पशु—राश्रिरघाय्यत्विर्यः ।
 अयोजि वां वृषणवसु रथो दक्षावर्मर्यो
 माष्वी ममं श्रुतं हवम् ॥ ९ ॥

॥ ३४ ॥ (ऋ० ५।७।१-५)

भौमोऽग्निः । शिष्टवृत् ।

आ भात्यग्निरूपसामनीकं
 उद् विप्रोणां देव्या वाचो अस्थुः ।
 अर्वाञ्चो नूनं रथ्येह यातं
 पीपिवांसमश्विना धर्ममच्छे ॥ १ ॥

न सैस्कृतं प्र मिमीतो गमिग्रा
 अन्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
 दिवाभिपिस्वेऽवसागमिग्रा
 प्रत्यवर्ति दाशुषे शंमविग्रा ॥ २ ॥

उता यातं संगवे प्रातरहो
 मध्यदिन उदिता सूर्यस्य ।
 दिवा नक्तमर्वासा शतमेन
 नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥ ३ ॥

इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोर्कं
 इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् ।
 आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा
 अद्गयो यातमिपमूर्जं वहन्ता ॥ ४ ॥

समश्विनोरर्वासा नूतनेन
 मयोभुवां सुप्रणीती गमेम ।
 आ नो रथि बहदतमोत धीरान्
 आ विद्वान्यमृता सौमगानि ॥ ५ ॥

॥ ३५ ॥ (ऋ० ५।७।१-५)

प्रातर्यावाणा प्रथमा रजध्वं
 पुरा गृधादररुणः पिबातः ।
 प्रातरि यन्नमदियना दधाते
 प्र शंसन्ति कवयः पूवं भाजः ॥ १ ॥

प्रातर्यजध्वमश्विनां हिजोत्
न सायमस्ति देव्या अजुष्टम् ।
उतान्यो असद् यजते वि चावः
पूर्वः पूर्वो यजमानो वर्नीयान्
द्विरप्यत्यङ्गाधुवणो घृतस्तुः
पृक्षो बहुना रथो वर्तते चाम् ।
मनोजवा अश्विना वारतरंहा
येनातियायो दुर्गतानि विश्वा
यो भूरियुष्टं नासत्यान्यां विवेप
चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे ।
स लोकमस्य पीपरच्छमीभिः
अनूर्ध्वमासुः सदमिव तुतुर्यात्
समश्विनोरर्ध्वसा नूर्तनेन
मयोभवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रथे बहत्तमोत योरान्
आ विश्वान्यसृता सौभगाणि

॥ ३६ ॥ (ऋ० ५।७।१-९)

सप्तत्रिंशत्तमः । (५-९ गर्भश्रावण्युपावेशम्) । अतुष्टुम् ।
१-३ ऋग्, ४ त्रिष्टुम् ।

अश्विनायेह गच्छतं नासत्या मा वि वैनतम् ।
हंसाधिव पततमा सुता उर्प ॥ १ ॥
अश्विना हरिणाविच गौराश्विवानु ययसम् ।
हंसाधिव पततमा सुता उर्प ॥ २ ॥
अश्विना वाजिनीवसु जुपेयां यज्ञमिष्ट्ये ।
हंसाधिव पततमा सुता उर्प ॥ ३ ॥
अत्रियद् वामघरोहंश्रुयसं
अजोहवीन्नाथमानेव योपा ।
श्येनस्य चिज्वयसा नूर्तनेन
आगच्छतमश्विना शतैभन ॥ ४ ॥
वि जिहीष्य वनस्पते योनिः सूर्यन्त्या इव ।
भूतं मे अश्विना हवै सतर्वधि च मुञ्चतम् ॥ ५ ॥

भीताय नार्धमानाय ऋपये-सतर्वधये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचयः ॥६॥
यथा वार्तः पुष्करिणीं समिह्यति सूर्यतः ।
॥ २ ॥ एवा ते गर्भे एजतु निरैतु दशमास्यः ॥ ७ ॥
यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावैहि जुरायुणा ॥ ८ ॥
दश मासाञ्छशयानः कुमारे अधि मातरं ।
॥ ३ ॥ निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥९॥

॥ ३७ ॥ (ऋ० ६।६।१-११)

बाईस्पत्यो मरदात्रः । त्रिष्टुम् ।

स्तुपे नरो द्विवो अस्य प्रसन्ता
अश्विना हुवे जरमाणो अकैः ।
या सद्य उन्ना व्युपि ज्मो अन्तान्
युयुपतः पर्युक्त वरांसि ॥ १ ॥
ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा
रथस्य भानुं रुक्चू रजोभिः ।
पुरु वसंस्यामिता मिमाता
अपो धन्वान्यति याथो अजान् ॥ २ ॥
ता ह त्यद् वृत्तियेदरधमुग्रा
इत्या धिय ऊहयुः शश्वदध्वैः ।
मनोजवोभिरिपरैः शयथै
परि व्यर्थिदांशुपो मर्त्यस्य ॥ ३ ॥
ता नद्यसो जरमाणस्य मन्य
उर्प भूपतो युयुजानसती ।
शुभं पृश्नमिपमूजं वहन्ता
होता यक्षत् प्रजो अश्रुम् युवांना ॥ ४ ॥
ता वल्गु दक्षा पुंसुशाकतमा
प्रता नव्यसा वचसा विवासे ।
या शंसते स्तुयते शर्मविप्रा
वभुवतुर्गृणते चित्राती ॥ ५ ॥

ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्

तुग्रस्य सुनुमूहथु रजोभिः ।

अरेणुभियोजनेभिर्मुजन्ता

पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात्

॥ ६ ॥

वि ज्युपां रथ्या यातमर्द्धिं

श्रुतं हर्वं वृपणा वधिमत्याः ।

दशस्यन्तां शयवै पिप्यथुर्गा

इति च्यवाना सुमतिं शुरण्यू

॥ ७ ॥

यद् रोदसी प्रदियो अस्ति भूमा

हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा ।

तदादित्या वसयो रुद्रियासो

रक्षोयजे तपुध्वं दधात

॥ ८ ॥

य ईं राजानावृतथा विदधद्

रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।

गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य

द्रोघोय चिद् वचस आनवाय

॥ ९ ॥

अन्तरैश्चक्रेस्तनयाय यतिः

धृमता यातं न्यता रथेन ।

सनुत्येन त्यजेसा मर्त्यस्य

यनुष्यतामपि शीर्षा वधृक्कम्

॥ १० ॥

आ परमार्मिरुत मंघ्यमाभिः

नियुर्द्रियान्तमयमाभिरवाक् ।

दृढस्ये चिद् गोमंतो वि धृजस्य

दुचे पते शृणते चित्रराती

॥ ११ ॥

॥ १८ ॥ (अ० ६।६३।१-११)

पिशुप्, १ विशाद्, ११ एकपदा त्रिष्टुप् ।

क. स्या वन्यु पुरुदृताय

दुतो न स्नोमोऽपिदृत्तमस्यान् ।

आ यो धर्षाद् नामत्या वपतं

प्रेष्टा धातयो भस्य भग्मन्

॥ १ ॥

अरं मे गन्तं हर्वनायासै

गृणाना यथा पिवायो अन्धः ।

परि हृ त्यद् वर्तिर्योथो रियो

न यत् परो नान्तरस्तुतुर्यात्

॥ २ ॥

अकारि वामन्धसो वरीमन्

अस्तारि शर्हिः सुंप्रायणतमम् ।

उत्तानहस्तो युवयुर्वेवन्द

आ वां नक्षन्तो अद्रय आजन्

॥ ३ ॥

ऊर्ध्वो वामश्रिभ्वरेष्वस्थात्

प्र रातिरेति जुर्णिनी घृताची

प्र होता गुर्तमना उरणो

अयुक्त यो नासत्या हवीमन्

॥ ४ ॥

अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य

रथं तस्थौ पुरुभुजा शनोतिम् ।

प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र

नरा नृत्तु जनिमन् युधिर्यानाम्

॥ ५ ॥

युवं श्रीभिर्वेशेताभिराभिः

शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः ।

प्र वां वयो वपुषेऽनु पसन्

नक्षद् वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम्

॥ ६ ॥

आ वां वयोऽध्वासो वहिष्ठा

अभि प्रयो नासत्या वहन्तु ।

प्र वां रथो मनोजवा असर्जि

इपः पृक्ष इविधो अनु पूर्वाः

॥ ७ ॥

पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं

धेनुं न इपं पिन्वतमसंक्राम् ।

स्तुतश्च वां माघ्वी सुष्टुतिश्च

रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन्

॥ ८ ॥

उत मं ऋजे पुरयस्य रथी

सुमीळो शतं पैदके च पक्षा ।

शाण्डो दाक्षिरणिनः स्मर्हिष्ठीन्

ददा वशासो अभिपाचं ऋष्यान्

॥ ९ ॥

(११४)

सं वां शता नासत्या सद्भ्या
अश्वानां पुरुषर्था गिरे दात् ।
मृच्छाजाय वीर नू गिरे दात्
दृता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः
आ वां सुस्रे वरिमन्सुारिभिः प्याम्
॥ १९ ॥ (ऋ० ७।६।७।१-१०)

मेरावदणिवंसिष्टः । त्रिष्टुप् ।

प्रति वां रथं नृपती जुरध्वै
द्विधर्मता मनसा यद्वियेन ।
यो वां दृतो न धिष्ण्यावर्जीगः
अच्छां सुनुर्न पितरां विवन्मि
अशौच्यग्निः संमिधानो अस्मे
उपो अदधन् तमसध्विदन्ताः ।
अचेति केतुस्वसः पुरस्तात्
धिये दिवो दुहितुर्जायमानः
अभि वां नूनमश्विना सुहोता
स्तोमैः सिपकि नासत्या विवृक्वान् ।
पूर्वाभिर्यातं पय्याभिरवाक्
स्वर्विदा वसुमता रथेन
अवोवी नूनमश्विना युवाकुः
हुवे यद् वां सुते मांघी वसूयुः ।
आ वां बहन्तु स्यधिरासो अश्व्याः
पिवाथो असे सुर्पता मधुनि
प्रार्थीसु देवादिवना धियं मे
अमृधां सातर्ये कृतं वसूधुम् ।
विश्वार् अविष्टं धाज् आ पुरधीः
ता नः शकं शचीपती शचीभिः
अविष्टं धीर्ष्वदिवना न आसु
प्रजायद् रेतो अह्यं नो अस्तु ।
आ वां तोके तनये तूतुजानाः
सुरक्षासो देवधीति गमेम

एष स्य वां पूर्वगन्धेव सख्ये
निधिहितो मांघी रातो अस्मे ।
अहंलता मनसा यातमर्वाग्
अश्वन्तां हृष्ये मानुपीपु विभु ॥ ७ ॥
एकस्मिन् योगे मुरणा समाने
परि वां सुत स्रवतो रथो गात् ।
न वायन्ति सुभ्यो देवयुक्ता
ये वां धूपु तरणयो धहन्ति ॥ ८ ॥
असञ्चता मघवद्भ्यो हि भूतं
ये राया मघदेयं जुनन्ति ।
प्र ये वन्धुं सुनुताभिस्तिरन्ते
गव्यां पृञ्चन्ता अरुयां मथानि ॥ ९ ॥
नू मे हवमा श्येणुतं युवाना
यासिष्टं वृतिरश्विनाविरावत् ।
धत्सं रत्नानि जरतं च सूरिन्
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥
॥ ४० ॥ (ऋ० ७।६।८।१-९) त्रिष्टुप् ।
आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्व
गिरौ द्रक्षा जुजुषाणा युवाकौः ।
हृष्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ॥ १ ॥
प्र वामन्वांसि मद्यान्वस्थुः
अरं गन्तं हविषो वीतर्ये मे ।
तिरो अयो हर्वनानि धृतं नः ॥ २ ॥
प्र वां रथो मनोजवा इयति
तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।
असभ्यं स्यावसु इयानः ॥ ३ ॥
अयं ह यद् वां देवया उ अद्रिः
ऊर्ध्वो विवक्ति सोमसुद् युवभ्याम् ।
आ वलू विप्रो ववृतीत हृष्यैः ॥ ४ ॥
चित्रं ह यद् वां भोजनं न्वस्ति
न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम् ।
यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ॥ ५ ॥

उत त्यद् वां जुते अश्विना भूत्
च्यवानाया प्रतीत्यै हविर्दे ।

अधि यद् वर्ष इतःकृति घृत्यः

उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो

मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे ।

निरीं पर्पदरांवा यो युवाकुः

वृकाय विज्जसमानाय शकं

उत श्रुतं शयवे ह्युमाना ।

यावन्न्यामपिन्वतमपो न

स्तथै चिच्छक्त्याश्विना शचीभिः

पप स्य कारुजैरते सुकैः

अग्ने वृधान उपसां सुमन्मा ।

इपा तं वर्धेद्रज्या पर्याभिः

युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ४१ ॥ (ऋ० ७।६९।१-८) त्रिष्टुप् ।

आ वां रथो रोदेसी बद्धधाने

हिरण्ययो वर्षभिर्यात्वद्वैः ।

वृतवर्तनिः पविर्भां रुचान

इपां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान्

स पप्रयानो अभि पञ्च भूमा

त्रिवन्पुरो मनसा यातु युक्तः ।

विशो येन गच्छेधो देवयन्तीः

कुत्रां विद् याममश्विना दधाना

न्वदवां युशसा यातमवर्गम्

दन्त्रां निधि मधुमन्तं पिवाथः ।

वि वां रथो वृध्यादुयादमानो

अन्तान् दिवो याधते वर्तनिभ्याम्

युयोः धियं परि योर्गवृणीत

गुरों वृहिता परितकम्यायाम् ।

यद् देवयन्तमर्थः शचीभिः

परि ध्रुममोमनां वां पर्यां गात्

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

यो ह स्य वां रथिरा घस्त उन्ना

रथो युजानः परियाति वृतिः ।

तेन नः शं योरुपसो व्युष्टौ

न्यश्विना वहतं यशे असिन्

॥ ५ ॥

नरो गौरेवं विद्युतं वृषाणा

अस्माकमद्य सवनोप यातम् ।

पुत्रा द्वि वां मतिभिर्हवन्ते

मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः

॥ ६ ॥

युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र

उद्दहथुरणसो अश्विधानैः ।

पतत्रिभिरध्रमैरेव्यथिभिः

दंसनाभिरश्विना पारयन्ता

॥ ७ ॥

नू मे हवमा ऋणुतं युवाना

यासिष्टं वृतिरश्विनाविरावत् ।

धत्तं रत्नानि जरतं च सुरीन्

युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ८ ॥

॥ ४२ ॥ (ऋ० ७।७०।१-७)

आ विद्वधाराश्विना गतं नः

प्र तत् स्थानमवाचि वां पृथिव्याम् ।

अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थाद्

था यत् सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम्

॥ १ ॥

सिपन्ति सा वां समुतिश्चनिष्ठा

अतापि धर्मो मनुष्यो दुरोणे ।

यो वां समुद्रान्त्सरितः पिपति

पतम्वा विन्न सुयुजां युजानः

॥ २ ॥

यानि स्थानान्यश्विना वृधार्थे

दिवो वृहीप्योर्गधीषु विवृत् ।

नि पर्वतस्य मुर्धनि सदन्ता

इयं जनाय दाशुये यदन्ता

॥ ३ ॥

(२५६)

चानिष्टं देवा ओषधीष्वप्यनु
यद् योग्या अश्रवण्ये ऋषीणाम् ।
पुरुणि रत्ना दधती न्यसुसे
अनु पूर्वाणि चरयथुयुगानि
शुश्रुवासां चिदश्विना पुरुणि
अभि ब्रह्माणि चक्षथे ऋषीणाम् ।
प्रति प्र यातं वरमा जनाय
असे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा
यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान्
कृतब्रह्मा समर्थोऽु भवति ।
उप प्र यातं वरमा वसिष्ठे
इमा ब्रह्माण्यवृच्यन्ते युवभ्याम्
इयं मनीषा इयमश्विना गीः
इमां सुवृत्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः
॥ ४३ ॥ (ऋ० ७।७।१-६)

अप स्वसुंरुपसो नरिजहीते
रिणक्तिं कृष्णीररुपाय पन्थाम् ।
अश्वामद्या गोमघा वां हुवेम
दिवा नन्तं शरुमसद् युयोतम्
उपायातं दाशुषे मर्त्याय
रथेन चाममश्विना बहन्ता ।
युयुतमसदनिरामर्मावां
दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः
आ वां रथमयमस्यां व्युष्टौ
सुमनायवो वृषणो वर्तयन्तु ।
स्यूमगमस्तिमृतयुग्भिरश्वैः
आश्विना वसुमन्तं घहेथाम्
यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्ढा
त्रिवन्धुरो वसुमां उरुवामा ।

आ नं पना नासत्योषं यात
अभि यद् वां विश्वस्स्यो जिगाति ॥ ४ ॥
युयं च्यवानि जरसांऽमुमुस्तं
॥ ४ ॥ नि पेद्व ऊदधुराशुमथम् ।
निरंहसस्तमंसः स्वर्तमात्रि
नि जाहुपं शिथिरे घातमन्तः ॥ ५ ॥
इयं मनीषा इयमश्विना गीः
॥ ५ ॥ इमां सुवृत्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥
॥ ४४ ॥ (ऋ० ७।७।१-५)
॥ ६ ॥ आ गोमता नासत्या रथेन
अशवावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।
अभि वां विश्वां नियतः सचन्ते
स्पाहेयां श्रिया तन्वां शुभाना ॥ १ ॥
॥ ७ ॥ आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक्
सजोपसा नासत्या रथेन ।
युधोर्हि नः सख्या पित्र्याणि
समानो वन्धुदत् तस्यं वित्तम् ॥ २ ॥
उदु स्तोमांसो अश्विनोरैरुग्रन्
॥ १ ॥ जामि ब्रह्माण्युपसंश्च देवीः ।
आविवांसुन् रोदसी धिष्णुमे
अच्छा विप्रो नासत्या धिषक्ति ॥ ३ ॥
वि चेदुच्छन्त्याश्विना उपासुः
॥ २ ॥ प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।
ऊर्ध्वं भानुं भविता देवो अश्वेद्
बृहदग्रयः सुमिथां जरन्ते ॥ ४ ॥
आ पश्चातांघ्रासत्या पुरस्ताद्
॥ ३ ॥ आश्विना यातमधुरादुदृक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

॥ ४५ ॥ (ऋ० ७।७३।१-५)

अतारिष्म तर्मसस्फारमस्य
प्रति स्तोमं देवयन्त्रो दधानाः ।

पुरुदंसा पुरुतमा पुराजा
अर्मत्या हवते अश्विना गीः

न्यु प्रियो मनुषः सादि होता
नासत्या यो यजते वन्दते च ।

अश्रीतं मर्षो अश्विना उपाके
आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान्

अहम युशं पथामुराणा
इमां सुवृक्तिं वृपणा जुपथाम् ।

शुश्रीवेव प्रेषितो वामवोधि
प्रति स्तोमैर्जर्ममाणो वसिष्ठः

उप ह्या वही गमतो विशं नो
रक्षोहणा संभृता वीळुपाणी ।

समन्धोस्यमत मत्सुराणि
मा नो मधिष्टमा गतं शिवेर्न

आ पश्चातात्रासत्या पुरस्ताद्
आश्विना यातमधुराडुदंकात् ।

आ विद्रवतः पाञ्चजन्येन राया
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ४६ ॥ (ऋ० ७।७४।१-६)

प्रगाथ. = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)

इमा उं वां दिविष्टय उस्त्रा हवन्ते अश्विना ।

अयं धामहेऽवंसे शचीवसू

विशंविशं हि गच्छथः ॥ १ ॥
युवं चिप्रे ददथुमोर्जनं नरा चोद्रेधां सुनृतावते ।

अवाग् रथे समनसा नि यच्छतं

पियतं स्तोम्यं मधु ॥ २ ॥
आ यातमुप भूपतं मध्वः पियतमश्विना ।

दुग्धं पर्यो वृपणा जेन्वायसू

मा नो मधिष्टमा गतम् ॥ ३ ॥

अश्वानो ये यामुप दाशुषो गृहं

युवां दीर्यन्ति विघ्नतः ।

मक्षुषुभिर्नरा हयैभिरश्विना

आदेवा यातमस्मयू ॥ ४ ॥

॥ १ ॥

अधा ह यन्तो अश्विना पृक्षः सचन्त सुरर्यः ।

ता यंसतो मध्ववद्गघो धुवं यशः

छुर्दिरस्मभ्यं नासत्या ॥ ५ ॥

॥ २ ॥

प्र ये युयुर्युकासो रथा इव नृपातारो जर्नानाम् ।

उत स्येन शवसा शशुषुर्नरं

उत क्षियन्ति सुक्षितिम् ॥ ६ ॥

॥ ४७ ॥ (ऋ० ८।५।१-३७)

ब्रह्मातिथिः काण्वः । (३७ पृथिविः) । गायत्री; ३७ बृहती ।

॥ ३ ॥

दुरादिदेव यत् स—त्यंरुणप्सुरशिभितत् ।

वि भानुं विश्वधातनत् ॥ १ ॥

नूवद् दंसा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा ।

सचैथे अश्विनोपसम् ॥ २ ॥

॥ ४ ॥

युवाभ्यां वाजिनीवसु प्रति स्तोमां अदक्षत ।

वाचं द्रुतो यथोहिषे ॥ ३ ॥

पुष्टप्रिया णं ऊतये पुरुमन्द्रा पुरुवसं ।

स्तुपे कर्णासो अश्विना ॥ ४ ॥

मंहिष्ठा वाजसातमे—पर्यन्ता शुभस्पती ।

गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ५ ॥

ता सुदेवायं दाशुषे सुमेधामवितारिणीम् ।

घृतैर्गन्वृतिमुक्षतम् ॥ ६ ॥

आ नः स्तोममुप द्रवत् तूयं श्येनेभिराशुभिः ।

यातमश्वैभिरश्विना ॥ ७ ॥

योभेस्तिन्नः परायतो द्वियो विद्वानि रोचना ।

श्रीरफन्तु परिदीर्यथः ॥ ८ ॥

उत नो गोमतीरिप उत सातीरहविदा ।

वि पथः सातये सितम् ॥ ९ ॥

आ नो गोमन्तमश्विना सुधीरं सुरथं रयिम् ।
 वोल्हमदवावतीरिषः ॥ १० ॥
 वावृधाना शुभस्पती दक्षा हिरण्यवर्तनी ।
 पिबतं सोम्यं मधुं ॥ ११ ॥
 अस्मभ्यं वाजिनीवसु मघवद्भ्रघश्च सप्रथः ।
 छर्दिर्यन्तमदाम्यम् ॥ १२ ॥
 नि पु ब्रह्म जनानां याविष्टं त्वयमा गतम् ।
 मो ष्वान्यां उपास्तम् ॥ १३ ॥
 अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः ।
 मघ्वो रातस्य धिण्या ॥ १४ ॥
 असे आ वहते रयिं शतवन्तं सहस्रिणम् ।
 पुरुक्षुं विदधथायसम् ॥ १५ ॥
 पुरुवा चिद्धि वां नरा विद्वयन्ते मनीषिणः ।
 वाघद्विरश्विना गतम् ॥ १६ ॥
 जनांसो वृकर्यर्दिपो हविष्मन्तो अरुदतः ।
 युवां हवन्ते अश्विना ॥ १७ ॥
 अस्माकमघ वाभयं स्तोमो वादिष्टो अन्तमः ।
 युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १८ ॥
 यो ह वां मधुनो हति—राहितो रयुचर्षणे ।
 ततः पिबतमश्विना ॥ १९ ॥
 तेन नो वाजिनीवसु पद्वे तोकाम्यं शं गवे ।
 यद्वतं पीवरीरिषः ॥ २० ॥
 उत नो दिव्या इषं उत सिन्धूरुद्विदा ।
 अप द्वारैव षर्षथः ॥ २१ ॥
 कदा वां तौशयो विधत् समुद्रे जहितो नरा ।
 यद् वां रयो विभिष्यताव् ॥ २२ ॥
 युवं कण्वाय नासत्या ऽपिरिताय हस्ये ।
 शश्वद्वृतीर्दशस्यथः ॥ २३ ॥
 तामिरा यातमतिमि—नैव्यंसीमिः सुशस्तिमिः ।
 यद् वां वृषण्वसु हुवे ॥ २४ ॥

यथा चित् कण्वमावतं प्रियमैधमुपस्तुतम् ।
 आत्रं शिञ्जारमश्विना ॥ २५ ॥
 यथोत कृत्ये धने—ऽशु गोष्वगस्त्यम् ।
 यथा वाजेषु सोमैरिम् ॥ २६ ॥
 पतावद् वां वृषण्वसु अतो वा भूयो अश्विना ।
 गुणन्तः सुम्नर्माहे ॥ २७ ॥
 रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्यामीशुमश्विना ।
 आ हि स्थायो दिविस्पृशाम् ॥ २८ ॥
 हिरण्ययीं वां रभि—रीपा अशो हिरण्ययः ।
 उभा चक्रा हिरण्ययी ॥ २९ ॥
 तेन नो वाजिनीवसु परावतश्चिदा गतम् ।
 उपेमां सुष्टुति मम ॥ ३० ॥
 आ वहथे पराकात् पूर्वीरक्षन्तांवाश्विना ।
 इयो दासीरमत्या ॥ ३१ ॥
 आ नो घुम्नैरा अर्वाभि—रा राया यातमश्विना ।
 पुरुश्चन्द्रा नासत्या ॥ ३२ ॥
 पद वां प्रुपितर्षयो वयो वहन्तु पर्णिनः ।
 अच्छा स्वध्वरं जनम् ॥ ३३ ॥
 रथं वामनुगायसुं य इपा वर्तते सह ।
 न चक्रममि वाधते ॥ ३४ ॥
 हिरण्ययै न रथे न द्रुवत्पाणिभिरश्वैः ।
 धीर्जचना नासत्या ॥ ३५ ॥
 युवं मृगं जागुवांसु स्वर्दयो वा वृषण्वसु ।
 ता नः पृक्कमिषा रयिम् ॥ ३६ ॥
 ता मे अश्विना सनीनां
 विद्यात नवानाम् । (पूर्वाधः) ॥ ३७ ॥
 ॥ ४८ ॥ (ऋ० ८।८।१-२३)
 सर्वसः काण्वः । अत्रुष्टुम् ।
 आ नो विश्वामिहृतिभिः
 अश्विना गच्छतं युषम् ।
 दक्षा हिरण्यवर्तनी पिबतं सोम्यं मधु ॥ १ ॥
 (४९०)

आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा ।
 भुञ्जी हिरण्यपेशसा कवी गम्भीरचेतसा ॥ २ ॥
 आ यातं नहुपस्पर्षा ऽऽन्तरिक्षात् सुवृक्तिभिः ।
 पिवाथो अश्विना मधु कपर्षानां सर्वेने सुतम् ॥ ३ ॥
 आ नो यातं दिवस्पर्षा ऽन्तरिक्षादधप्रिया ।
 पुत्रः कर्ष्वस्य वामिह सुपायं सोम्यं मधु ॥ ४ ॥
 आ नो यातमुपश्रु—त्यश्विना सोमपीतये ।
 स्वा ह स्तोमस्य वर्धना प्रकवी धीतिभिर्नरा ॥ ५ ॥
 यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहुरेऽर्वसे नरा ।
 आ यातमश्विना गत—सुपेमां सुष्टुतिं मम ॥ ६ ॥
 दिवश्चिद् रोचनाद—ध्या नो गन्तं स्वविदा ।
 धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमैर्भिर्हृद्यनश्रुता ॥ ७ ॥
 किमन्ये पर्यासते ऽस्मत् स्तोमैर्भिरश्विनां ।
 पुत्रः कर्ष्वस्यः वामृषि—गीर्भिवत्सो अवीवृधत् ॥ ८ ॥
 आ वां विप्र इहावसे ऽह्वत् स्तोमैर्भिरश्विना ।
 अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभवा ॥ ९ ॥
 आ यद् वां योषणा रथ—मर्तिष्ठद् वाजिनीवस् ।
 विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम् ॥ १० ॥
 अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ।
 वत्सो वां मधुमद् वचो ऽर्षसीत् काव्यः कृविः ११
 पुरमन्द्रा पुरुवस् मनोतरा रथीणाम् ।
 स्तोमै म् अश्विनाविम—मभि वद्धीं अनुपाताम् १२
 आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राध्यांश्र्यह्या ।
 कृतं न श्रुत्वियावतो मा नो रीरघत् तिदे ॥ १३ ॥
 यप्रांसत्या परावति यद् वा स्यो अश्वम्वरे ।
 अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ॥ १४ ॥
 यो वां नासत्यावृषि—गीर्भिवत्सो अवीवृधत् ।
 तसै सहस्रनिर्णिज—मिषं धत्तं घृतश्चुर्तम् ॥ १५ ॥
 प्रास्मा ऊर्जे घृतश्चुत्—मश्विना यच्छतं युवम् ।
 यो वां सुमन्यां तुष्यव् वसुयाद् दानुनस्पती १६

आ नो गन्तं रिदादसे—मं स्तोमं पुरुभुजा ।
 कृतं नः सुश्रियो नरे—मा दातमभिष्टये ॥ १७ ॥
 आ वां दिश्वोभिरुतिभिः प्रियमैधा अहपत ।
 राजन्तावध्वराणा—मश्विना यामहतिपु ॥ १८ ॥
 आ नो गन्तं मयोभुवा ऽश्विना शंभुयां युवम् ।
 यो वां विपन्यू धीतिभि—गीर्भिवत्सो अवीवृधत् १९
 याभिः कर्ष्वं मेधातिप्रि याभिर्वशं दशत्रजम् ।
 याभिर्गोर्शर्यामवतं तामिनोऽवतं नरा ॥ २० ॥
 याभिर्नरा वृसदस्यु—मवतं कृत्ये धने ।
 ताभिः प्वःसां अश्विना प्राधत्तं घाजंसातये २१
 प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिते वर्धन्त्वश्विना ।
 पुरुत्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा ॥ २२ ॥
 श्रीणि पदान्यश्विनो—राविः सान्ति गुहां परः ।
 कवी श्रुतस्य पत्नभि—रवांग् जीवेभ्यस्परि ॥ २३ ॥

॥ ४१ ॥ (क्र० ८।१।१-२१)

शशकणं क्षणव. । अनुष्टुप् ; १, ५, ६ १४-१५, वृहती ;
 २-३, २०-२१ गायत्री, ५ कङ्कपु ; १० त्रिष्टुप् ।
 ११ विराट् ; १२ जगती ।

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्यं गन्तमवसे ।
 प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छुर्दिः
 युयुतं या अरांतयः ॥ १ ॥
 यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषे अनु ।
 नृगणं तद् धत्तमश्विना ॥ २ ॥
 ये वां दंसांस्यश्विना विप्रांसः परिमामृशुः ।
 एवेत् काण्वस्यं बोधतम् ॥ ३ ॥
 अयं वां घृमो अश्विना स्तोमैर्न परि पिच्यते ।
 अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसु
 येन वृत्रं चिकेतयः ॥ ४ ॥
 यदप्सु यद् वनस्पतौ
 यदोषधीपु पुरुदंससा कृतम् ।
 तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥

यन्नासत्या भुरण्ययो यद् वा देव भिपज्यर्थः ।
 अयं वा वत्सो मतिभिर्न विन्धते
 हविर्मान्तं हि गच्छथः ॥ ६ ॥
 आ नूनमश्विनोऽश्विः स्तोमं चिकेत यामया ।
 आ सोमं मर्धुमत्तमं धमं सिञ्जादथर्वणि ॥ ७ ॥
 आ नूनं रघुवर्तनि रथं तिग्राथो अश्विना ।
 आ वा स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ८ ॥
 यद्वा वा वाणीभिरश्विना
 इवेत् काण्वस्यं बोधतम् ॥ ९ ॥
 यद् वा कक्षीवा उत यद् व्यथ्य
 ऋषियद् वा दीघेतमा जुहाव ।
 पृथी यद् वा वैन्यः सादनेषु
 अवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥ १० ॥
 यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा
 भूतं जगत्पा उत नस्तनुपा ।
 वृतिस्तोकाय तर्नयाय यातम् ॥ ११ ॥
 यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना
 यद् वा थायना भवथः समोकसा ।
 यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोपसा
 यद् वा विष्णोर्विकर्मणेषु तिष्ठथः ॥ १२ ॥
 यद्वा अश्विनावहं हुयेय वाजंसातये ।
 यत् पृत्सु तुवर्णे सह स्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥ १३ ॥
 आ नूनं यातमश्विने मा हव्यानि वां हिता ।
 इमे सोमासो भार्थे तुवरो यदौ
 इमे कर्णेषु वामथं ॥ १४ ॥
 यन्नासत्या परके अर्वाके अस्ति मेपजम् ।
 तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा
 छर्दिषस्तायं यच्छतम् ॥ १५ ॥
 अमुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
 स्यादश्विन्या मति वि शक्ति मर्त्येभ्यः ॥ १६ ॥

प्र बोधयोपो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।
 प्र यज्ञहोतरानुपक् प्र मदाय अथो वृहत् ॥ १७ ॥
 यद्वापो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
 आ हायमाश्विनो रथो वृत्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ १८ ॥
 यदापीतासो अंशवो गावो न दुह ऊर्धभिः ।
 यद् वा वाणीरनूपत प्र देवयन्तो अश्विना ॥ १९ ॥
 प्र धुम्नाय प्र शवसे प्र नृपाहाय शर्मणे ।
 प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ २० ॥
 यद्वा नं श्रीभिरश्विना पितृयोना निपीदथः ।
 यद् वा सुम्नेभिरस्यया ॥ २१ ॥
 ॥ ५० ॥ (अ० ८१०१-६)
 प्रगाथो (धोरः) कण्वः । १ वृहती, २ मधेय्योतिः,
 ३ अश्विपु, (विगळमतेन-शंङ्कमती) ४ आन्ता-
 रपक्षिः, ५-६ प्रगाथः = (५ वृहती +
 ६ सतीवृहती)
 यत् स्थो दीर्घप्रसन्ननि
 यद् वादो वैचने दिवः ।
 यद् वा समुद्रे अघ्याहंते गृहे
 अत वा यातमश्विना ॥ २ ॥
 यद् वा यज्ञं मनये संमिमिश्रयुः
 पूवेत् काण्वस्यं बोधनम् ।
 वृहस्पतिं विश्वान् देवां अहं हुवे
 इन्द्राविष्णुं अश्विनोवासाहुदेपसा ॥ २ ॥
 त्या न्वदश्विना हुवे सुदेसंसा गुमे कृता ।
 ययोरस्ति प्र णः सूर्यं देवेष्वध्याप्यम् ॥ ३ ॥
 ययोरधि प्र यत्रा असुरे सन्ति सरथः ।
 ता यज्ञस्यांघ्रस्य प्रचेतसा
 स्वधामियां पिबतः सोम्यं मधु ॥ ४ ॥
 यद्वा अश्विनायपाम् यत् प्राक् स्थो यांजिनीवसु ।
 यद् द्रुधव्यनवि तुवरो यदौ
 हुवे यामथ मा गतम् ॥ ५ ॥

यदन्तरिक्षे पतयः पुरुभुजा
 यद् वेमे रोदसी अनु ।
 यद् वा स्वधाभिरधितिष्ठयो रथं
 अत आ यातमश्विना ॥ ६ ॥
 ॥ ५१ ॥ (ऋ० ८।१८।८)
 हरिभिषडि काण्व । उष्णिक् ।
 उत त्या दैव्या भिपजा श नः करतो अश्विना ।
 युयुयातामितो रथो अप स्त्रिधः ॥ ८ ॥
 ॥ ५२ ॥ (ऋ० ८।२१।१-१८)
 सोमरिः काण्व । १-६ प्रगाथ = (विषमा वृहती+समा
 ससोवृहती), ७ वृहती, ८ अनुष्टुप्, ११ ककुप्, १२
 मधेऽशोति, प्रगाथ. = (९, १३, १५, १७,
 ककुप् ; १०, १४, १६, १८ सतीवृहती)
 ओ स्वमह आ रथे—मृधा दंसिष्ठमुतये ।
 यर्मदिजना सुहवा रुद्रवर्तनी
 आ सुर्याये तुस्थुः ॥ १ ॥
 पूर्वापुर्पे सुहवे पुरुस्पृहं मुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ।
 सचनार्वन्तं सुमतिभिः सोमरे
 विद्वेषसमनेहसम् ॥ २ ॥
 इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना ।
 अर्याचीना स्ववंसे करामहे
 गन्तारा शाशुयो गृहम् ॥ ३ ॥
 युयो रथस्य परि चक्रर्मायत
 इमान्यद् यामिपण्यति ।
 अस्मा अच्छा सुमतिर्वी शुभस्पती
 आ धेनुरिष धावतु ॥ ४ ॥
 रथो यो यां शिषन्धुरो हिरण्यामीशुरश्विना ।
 परि धावापृथिव्या भूर्यति धृतः
 तेन नामत्या गतम् ॥ ५ ॥
 इन्द्राम्यन्ता मनये पूर्व्यं शिषि यधं वृकेण कर्षयः ।
 ता याम्य स्रुमतिभिः शुभस्पती
 अश्विना प्र स्नुवीमदि ॥ ६ ॥

उप नो वाजिनीवसू यातमृतस्य पृथिभिः ।
 येभिस्तृक्षि वृषणा त्रासदस्ययं
 महे क्षत्राय जिन्वथः ॥ ७ ॥
 अयं वामद्विभिः सुतः सोमो नरा धृपण्यसू ।
 आ यातं सोमपीतये पियतं दाशुयो गृहे ॥ ८ ॥
 आ हि रुहतेमश्विना
 रथे कोदो हिरण्यये वृपण्यसू ।
 युञ्जाथां पीवरीरिपः ॥ ९ ॥
 याभिः एकथमवयो यामिरध्रिगुं
 यामिर्वेधुं विजोपसम् ।
 तामिनो मक्षू तुर्यमश्विना गतं
 भिपज्यतं यदातुरम् ॥ १० ॥
 यदध्रिगावो अध्रिगू
 इदा चिदहो अश्विना हवामहे ।
 वयं गीभिर्विपन्यवः ॥ ११ ॥
 तामिरा यात वृषणोप मे हव
 विश्वस्तु विश्ववर्षम् ।
 इपा महिष्ठा पुरुभूतमा नरा
 याभिः किरिं वावृधुस्ताभिरा गतम् ॥ १२ ॥
 ताविदा चिदहानां
 तावश्विना वन्दमान उप ह्रुवे ।
 ता ऊ नमोभिरिमहे ॥ १३ ॥
 ताविद दोषा ता उपसिं शुभस्पती
 ता यामेन् रुद्रवर्तनी ।
 मा नो मताय रिपवे वाजिनीवसू
 पुरो रुद्रायति ख्यतम् ॥ १४ ॥
 आ सुग्म्याय सुग्म्यं
 प्राता रथेनाश्विना वा सुक्षणी ।
 ह्ये पितेय सोमरी ॥ १५ ॥

मनोजवसा वृषणा मदच्युता
 मङ्गुगमार्मिरुतिभिः ।
 आरात्ताश्चिद् भूतमस्मे अवसे
 पूर्वाभिः पुरुमोजसा ॥ १६ ॥
 आ नो अश्वावदश्विना
 वृत्तियांसिधे मधुपातमा नरा ।
 गोमद् दक्षा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥
 सुप्रावगे सुवीर्ये सुष्टु वार्य—मनाधृष्टं रक्षस्विना ।
 अस्मिन्ना वामायाने वाजिनीवसू
 विश्वा वामानि धोमहि ॥ १८ ॥
 ॥ ५३ ॥ (ऋ० ८।२६।१-१९)
 विश्वमना वयसः, अश्वो वाङ्मनसः । उष्णः, १६-१९ गायत्रो ।
 युवोऽहं पूर्यं हुये सुधस्तुत्याय सुरियु ।
 अर्तुतदक्षा वृषणा वृषणवसू ॥ १ ॥
 युवं वरो सुपाम्णे महे तने नासत्या ।
 अवोभियायो वृषणा वृषणवसू ॥ २ ॥
 ता वामंय हवामहे ह्वयेभिर्वाजिनीवसू ।
 पूर्वोरिप इपर्यन्तावर्ति क्षपः ॥ ३ ॥
 आ वां चाहिष्ठो अश्विना रथो यातु श्रुतो नरा ।
 उप स्तोमान् तुरस्यं दर्शयः श्रिये ॥ ४ ॥
 जुहुराणा चिदश्विना ऽऽमन्येयां वृषणवसू ।
 युवं हि कद्रा पर्ययो अति द्विपः ॥ ५ ॥
 दक्षा हि विश्वमानुषङ् मक्षुभिः परिदीर्यथः ।
 धिर्यजिन्या मधुवर्णा शुभस्पर्ती ॥ ६ ॥
 उप नो यातमश्विना राया विश्वपुपां सह ।
 मघवांना सुवीरावनपच्युता ॥ ७ ॥
 आ मे अस्य प्रतीव्युः—मिन्द्रनासत्या गतम् ।
 देवा देवेभिर्य सचनस्तमा ॥ ८ ॥
 वयं हि वां हवामहे उक्षण्यन्तो व्यश्ववत् ।
 सुमतिभिरुपं विप्राविहा गतम् ॥ ९ ॥

अश्विना स्वूपे स्तुहि कुवित् ते श्रवतो हवम् ।
 नेदीयसः कृत्वातः पूर्णोऽहं ॥ १० ॥
 वैयश्वस्यं श्रुतं नरो—तो मे अस्य वेदयः ।
 सजोपसा वरणो मित्रो अर्थमा ॥ ११ ॥
 युवादत्तस्य धिण्या युवानीतस्य सुरिभिः ।
 अहरहर्वृषा मह्यं शिक्षतम् ॥ १२ ॥
 यो वां यज्ञेभिरावृतो ऽधिवस्त्रा वधूरिव ।
 सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना ॥ १३ ॥
 यो वामुरुच्यवस्तमं चिकेतति नृपाय्यम् ।
 वृत्तिरश्विना परि यातमस्मयू ॥ १४ ॥
 अस्मभ्यं सु वृषणवसू याते वृत्तिनृपाय्यम् ।
 विपुद्रुह्ये यन्मूहयुगिरा ॥ १५ ॥
 वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो वृतो हुवन्नरा ।
 युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १६ ॥
 यददो दिवो अणय इपो वा मर्दथो गृहे ।
 श्रुतमिन्ने अमर्त्या ॥ १७ ॥
 उत स्या श्वेतयावरी वाहिष्ठो वां नदीनाम् ।
 सिन्धुहिरण्यवर्तनिः ॥ १८ ॥
 सदेतया सुकीर्त्या ऽश्विना श्वेतया धिया ।
 वहेथे शुभ्रयावाना ॥ १९ ॥
 ॥ ५४ ॥ (ऋ० ८।३५।१-४४)
 शशवाद्य आजयः । अतिशयश्रुति (निष्टृ), २०
 २४ पञ्चिक, २३ मह वृहती ।
 अग्निनेन्द्रेण वरणेन विष्णुना
 आद्रित्वे रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
 सजोपसा उपसा सूर्येण च
 सोमं पिबतमश्विना ॥ १ ॥
 विश्वाभिर्धोमिभुर्धनेन वाजिना
 दिवा पृथिव्याद्रिभिः सचाभुवा ।
 सजोपसा उपसा सूर्येण च
 सोमं पिबतमश्विना ॥ २ ॥

विश्वैर्वैश्विभिरैकादशैरिह अद्रिमसद्रिधृगुभिः सचाभुवा । सजोपसा उपसा सूर्येण च सोमं पितृमदशिवना	॥ ३ ॥	जयंत च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् । सजोपसा उपसा सूर्येण च ऊर्जे नो धत्तमदशिवना	॥ ११ ॥
जुपेथां युक्न बोधतं हवस्य मे विदवेह देवौ सवनावं गच्छतम् । सजोपसा उपसा सूर्येण च इपं नो वोळ्हमदशिवना	॥ ४ ॥	इतं च शश्रुन् यतंतं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् । सजोपसा उपसा सूर्येण च ऊर्जे नो धत्तमदशिवना	॥ १२ ॥
स्तोमं जुपेथां युवशेर्व कन्यनां विदवेह देवौ सवनावं गच्छतम् । सजोपसा उपसा सूर्येण च इपं नो वोळ्हमदशिवना	॥ ५ ॥	मित्रावरुणघन्ता उत धर्मघन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् । सजोपसा उपसा सूर्येण च आदित्यैर्यौतमदशिवना	॥ १३ ॥
गिरो जुपेथामध्वरं जुपेथां विश्वेह देवौ सवनावं गच्छतम् । सजोपसा उपसा सूर्येण च इपं नो वोळ्हमदशिवना	॥ ६ ॥	अङ्गिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् । सजोपसा उपसा सूर्येण च आदित्यैर्यौतमदशिवना	॥ १४ ॥
हारिद्रवेवं पतथो चनेदुप सोमं सुतं महिपेवावं गच्छतम् । सजोपसा उपसा सूर्येण च प्रियंतिर्यौतमदशिवना	॥ ७ ॥	श्रुभुमन्ता वृषणा वार्जवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् । सजोपसा उपसा सूर्येण च आदित्यैर्यौतमदशिवना	॥ १५ ॥
हंसाविष पतथो अध्वगाविष सोमं सुतं महिपेवावं गच्छतम् । सजोपसा उपसा सूर्येण च प्रियंतिर्यौतमदशिवना	॥ ८ ॥	अर्द्धं जिन्वतमुत जिन्वतं धियो इतं रक्षांसि सेधंतममीवाः । सजोपसा उपसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अदशिवना	॥ १६ ॥
इयेनाविष पतथो हृद्यदातये सोमं सुतं महिपेवावं गच्छतम् । सजोपसा उपसा सूर्येण च प्रियंतिर्यौतमदशिवना	॥ ९ ॥	क्षयं जिन्वतमुत जिन्वतं ननु इतं रक्षांसि सेधंतममीवाः । सजोपसा उपसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अदशिवना	॥ १७ ॥
पियंनं च मृशुतं चा चं गच्छत प्रजा च धत्तं द्रविणं च धत्तम् । सजोपसा उपसा सूर्येण च ऊर्जे नो धत्तमदशिवना	॥ १० ॥	धेनुर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशो इतं रक्षांसि सेधंतममीवाः । सजोपसा उपसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अदशिवना	॥ १८ ॥

मन्त्रैरिव ऋणतं पुर्व्यस्तुतिं
 श्यावाश्वस्य सुन्वतो मंदच्युता ।
 सजोर्पसा उपसा सूर्येण च
 अश्विना त्रिरोमह्वयम् ॥ १९ ॥

सर्गो इव सृजतं सुपुतीरुपं
 श्यावाश्वस्य सुन्वतो मंदच्युता ।
 सजोर्पसा उपसा सूर्येण च
 अश्विना त्रिरोमह्वयम् ॥ २० ॥

रुदमीरिव यच्छतमध्वर्यो उपं
 श्यावाश्वस्य सुन्वतो मंदच्युता ।
 सजोर्पसा उपसा सूर्येण च
 अश्विना त्रिरोमह्वयम् ॥ २१ ॥

अर्वाग् रथं नि यच्छतं
 पिबतं सोम्यं मधुं ।
 आ यातमश्विना गंतमवस्युर्वामहं हुवे
 धत्तं रत्नानि दाशुपे ॥ २२ ॥

नमोवाके प्रस्थिते अश्वरे नरा
 विवक्षणस्य पीतर्ये ।
 आ यातमश्विना गंतमवस्युर्वामहं हुवे
 धत्तं रत्नानि दाशुपे ॥ २३ ॥

स्वाहाकृतस्य तुम्पतं
 सुतस्य देवावन्धसः ।
 आ यातमश्विना गंतमवस्युर्वामहं हुवे
 धत्तं रत्नानि दाशुपे ॥ २४ ॥

॥ ५१ ॥ (ऋ० ८।४१।४-६)

नामाकः काश्वः, अश्विनाना अश्विनो वा । वसुष्टुप ।
 आ वां आर्वाणो अश्विना
 धीभिर्विप्रां अबुच्युवुः ।
 नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके संसे ॥ ४ ॥
 यथां वामश्विरश्विना गीभिर्विप्रो अजोहवीत् ।
 नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके संसे ॥ ५ ॥

एवा वामह ऊनये यथाहुवन्त मेधिराः ।
 नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके संसे ॥ ६ ॥
 ॥ ५६ ॥ (ऋ० ८।५७। [९ बाल०] १-४)
 मध्यः काश्वः । त्रिष्टुप् ।
 युधं दैवा ऋतुना पुर्व्येण
 युक्ता रथेन तविपं यजत्रा ।
 आगच्छतं नासत्या शर्चीभिः
 इदं तृतीयं सर्वनं पिवाधः ॥ १ ॥
 युवां देवास्त्रयं एकादशासः
 सत्याः सत्यस्ये ददुशे पुरस्तात् ।
 अस्माकं यज्ञं सर्वने जुपाणा
 पातं सोममश्विना दीर्घम्री ॥ २ ॥
 पुनास्यं तदश्विना कृतं वां
 धुपमो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
 सहस्रं शंसा उत ये गर्विष्टा
 सर्वा इत् तां उपं याता पिबन्धै ॥ ३ ॥
 अयं वां भागो निहितो यजत्रा
 इमा गिरौ नासत्योपं यातम् ।
 पिबतं सोमं मधुमन्तमस्मे
 प्र दादवांसमवतं शर्चीभिः ॥ ४ ॥
 ॥ ५७ ॥ (ऋ० ८।७३।१-१८)
 गोपवन आश्विनः सप्तविध्रवां । गायत्री ।
 उदीराथामृतायते युजाथामश्विना रथम् ।
 अन्ति पद्भूत वामवः ॥ १ ॥
 निमिर्पश्चिज्जर्वीयसा रथेना यातमश्विना ।
 अन्ति पद्भूत वामवः ॥ २ ॥
 उपं स्तृणीतमत्रये हिमेन धर्ममश्विना ।
 अन्ति पद्भूत वामवः ॥ ३ ॥
 कुहं स्थः कुहं जग्मथुः कुहं श्येनेवं पेतथुः ।
 अन्ति पद्भूत वामवः ॥ ४ ॥
 (५४९)

यद्य कर्हि कर्हि चि—कृश्रुयात्तमिमं हवम् ।	
अन्ति पद्भृतु वामवः	॥ ५ ॥
अश्विना यामहर्तमा नेदिष्ठं याम्याप्यम् ।	
अन्ति पद्भृतु वामवः	॥ ६ ॥
अवन्तमत्रैये गृहं कृणुतं युधमदियना ।	
अन्ति पद्भृतु वामवः	॥ ७ ॥
वरैये अग्निमातपो वदते ध्रुवध्रये ।	
अन्ति पद्भृतु वामवः	॥ ८ ॥
प्र सप्तर्षिधराशासा धारामग्नेरशायत ।	
अन्ति पद्भृतु वामवः	॥ ९ ॥
इहा गतं वृषण्वस् शृणुतं म इमं हवम् ।	
अन्ति पद्भृतु वामवः	॥ १० ॥
किमिदं वा पुराणव—ज्जरतोरिव शस्यते ।	
अन्ति पद्भृतु वामवः	॥ ११ ॥
समानं वा सजात्यं समानो बन्धुरदिवना ।	
अन्ति पद्भृतु वामवः	॥ १२ ॥
यो वां रजांस्यदिवना रथो धियाति रोदसी ।	
अन्ति पद्भृतु वामवः	॥ १३ ॥
आ नो गव्यैभिरद्वयैः सहस्रैरुप गच्छतम् ।	
अन्ति पद्भृतु वामवः	॥ १४ ॥
मा नो गव्यैभिरद्वयैः सहस्रैभिरति ह्यतम् ।	
अन्ति पद्भृतु वामवः	॥ १५ ॥
अरण्यत्सुखा अम्—दक्षज्योतिर्श्रुतावरी ।	
अन्ति पद्भृतु वामवः	॥ १६ ॥
अदिवना सु विचाकशद् वृक्ष परशुमो इव ।	
अन्ति पद्भृतु वामवः	॥ १७ ॥
पुरं न घृण्णावा रुज कृण्णया धाधितो विशा ।	
अन्ति पद्भृतु वामवः	॥ १८ ॥
॥ ५८ ॥ (ऋ० ८।८५।१-९)	
कृष्ण आग्निरे. । माधवी ।	
धा मे हयं नामत्या ऽश्विना गच्छतं युधम् ।	
मध्यः सोमस्य पीतये	॥ १ ॥

इमं मे स्तोममदियने—मं मे शृणुतं हवम् ।	
मध्यः सोमस्य पीतये	॥ २ ॥
वयं वां कृष्णां अदिवना हयते पाजिनीषम् ।	
मध्यः सोमस्य पीतये	॥ ३ ॥
शृणुतं जरितुर्द्वयं कृष्णस्य स्तुघतो नरा ।	
मध्यः सोमस्य पीतये	॥ ४ ॥
छुर्द्विन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुघते नरा ।	
मध्यः सोमस्य पीतये	॥ ५ ॥
गच्छतं दाशुषो गृह—मित्था स्तुघतो अदिवना ।	
मध्यः सोमस्य पीतये	॥ ६ ॥
युजाथां रासमं रथे वाङ्मने घृषण्वस् ।	
मध्यः सोमस्य पीतये	॥ ७ ॥
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेना यातमश्विना ।	
मध्यः सोमस्य पीतये	॥ ८ ॥
नू मे गिरौ नास्त्या ऽश्विना प्रार्वतं युधम् ।	
मध्यः सोमस्य पीतये	॥ ९ ॥

॥ ५९ ॥ (ऋ० ८।८६।१-५)

कृष्ण आग्निरे. , विश्वको वा कर्णि । जगती ।

उभा हि दक्षा सिपजा मयोभुवा	
उभा दक्षस्य वचसो बभुवयुः ।	
ता वां विश्वको हयते तनूकृथे	
मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोर्चतम्	॥ १ ॥
कथा नूनं वां विमना उप स्तवद्	
युवं धियं ददयुर्वस्यैरुपये ।	
ता वां विश्वको हयते तनूकृथे	
मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोर्चतम्	॥ २ ॥
युवं हि ध्मा पुदमुजेममेषुतु	
विष्णाप्ये ददयुर्वस्यैरुपये ।	
ता वां विश्वको हयते तनूकृथे	
मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोर्चतम्	॥ ३ ॥

उत त्वं वीरं घनसामृज्जीपिणं
दूरे चित् सन्तमवसे हवामहे ।
यस्य स्वादिष्टा सुमतिः पितुर्यया
मा नो वि यौष्टं सत्या मुमोचतम् ॥ ४ ॥
ऋतेन देवः संविता शमायत
ऋतस्य ऋक्मुर्विया वि पंप्रथे ।
ऋतं सासाह महिं चित् पृतन्यतो
मा नो वि यौष्टं सत्या मुमोचतम् ॥ ५ ॥
॥ ६० ॥ (ऋ० ८।८७।१-६)

कृष्ण आश्लोको वाशिष्ठो वा शुश्रीकः, प्रियमेव आश्लिखो
वा । प्रगाथः = (विषया बृहती + समा धतो बृहती)

शुश्री वां स्तोमो अश्विना
क्रिर्विर्न सेक आ गंतम् ।
मर्धः सुतस्य स द्विवि प्रियो नरा
पातं गौराविधेरिणे ॥ १ ॥
पिबंतं घर्मं मधुमन्तमश्विना
आ बहिः सीदतं नरा ।
ता मन्दसाना मरुपो दुरोणे आ
नि पातं वेदसा वयः ॥ २ ॥
आ वां विश्वामिभ्रुतिभिः प्रियमेधा अह्वयत ।
ता वतिर्यातमुपं वृन्तवहिपो
जुष्टं यृङ् द्विविष्टियु ॥ ३ ॥

पिबंतं सोमं मधुमन्तमश्विना
आ बहिः सीदतं सुमत् ।
ता वावृधाना उर्पं सुप्रतिं द्विवो
गन्तं गौराविधेरिणम् ॥ ४ ॥
आ नूनं यातमश्विना ऽश्वैभिः प्रुषितप्सुभिः ।
दक्षा हिरण्यवर्तनी शुभस्पती
पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥
वयं हि वां हवामहे विपन्यवो
विप्रासो वाजसातये ।

ता बलू वृन्ना पुंरुदंसेसा ध्रिया
अश्विना श्रुष्टया गंतम् ॥ ६ ॥

॥ ६१ ॥ (ऋ० ८।१०१।७-८)

जमदग्निर्भागवः । प्रगाथः = (विषया बृहती, समा
धतो बृहती) ।

आ मे वचांस्युद्यता धूमर्त्तमानि कर्त्या ।
उमा यातं नासत्या सजापसा
प्रतिं हव्यानि वीतये ॥ ७ ॥
वतिं यद् वामरक्षसं हवामहे
युवान्यां वाजिनीवसू ।
प्राचीं होत्रां प्रतिरन्तावितं नरा
शृणाना जमदग्निना ॥ ८ ॥

॥ ६२ ॥ (ऋ० १०।२४।४-६)

ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुको वसुहृदा । अनुष्टुप् ।

युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थतम् ।
विमदेन यदीष्टिता नासत्या निरमन्थतम् ॥ ४ ॥
विश्वे देवा अंरुपन्त समीच्योर्निष्पतन्त्योः ।
नासत्यावश्रुयन् देवाः पुनरा बहतादिति ॥ ५ ॥
मधुमन्मे पुरार्यणं मधुमत् पुनरार्यनम् ।
ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम् ॥ ६ ॥

॥ ६३ ॥ (ऋ० १०।३९।१-१४)

वाक्षीवती घोषा । जगती, १४ अष्टुप् ।

यो वां परिज्मा सुबृदश्विना रथो
दोपामुपासो हव्यो हविर्पता ।
शश्वत्तमासस्तमुं वामिदं वयं
पितुर्न नाम सुहव्यं हवामहे ॥ १ ॥
चोदयतं सूनुताः पिन्वतं धिय
उत् पुरंधीरीरयतं तर्तुद्रमसि ।
यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना
सोमं न चारं मधवत्सु नस्कृतम् ॥ २ ॥

अमाजुरश्चिद् भवथो युधं भगो
 अनाशोश्चिद्वितारापमस्यं चित् ।
 अन्धस्यं चिन्नासत्या कृदास्यं चिद्
 युवामिदाहुर्भिपजां रुतस्यं चित् ॥ ३ ॥
 युवं च्यवानं सुनयं यथा रथं
 पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः ।
 निष्प्रैश्यमूहधुरन्ध्रस्यस्परि
 विश्वेत् ता वां सर्वनेपु प्रवाच्यां
 पुराणा वां वीर्यां प्र ब्रवा जने
 अथो हासथुर्भिपजां मयोभुयां ।
 ता वां तु नव्याववसे करामहे
 अयं नासत्या श्रद्धरिथ्या दधत्
 इयं वामहे शृणुत मे अश्विना
 पुत्रायैव पितरा मह्यं शिक्षतम् ।
 अनापिरुद्धा असज्जात्यामतिः
 पुरा तस्यां अभिशस्तेर्यं स्पृतम्
 युव रथेन विमदायं शुन्ध्युचं
 न्यूहथुः पुरुमिप्रस्यं योपणाम् ।
 युधं हयं वधिमस्या अगच्छतं
 युवं सुपुतिं चक्रथुः पुरंध्रये
 युय विप्रस्य जरणामुपेयुपः
 पुनः कलेरकृणुतं युवद् वयं ।
 युधं वन्दनमृश्यदादुद्रुपथुः
 युवं सद्यो विशपलाभेतेवे कथः
 युधं हं रेभ वृपणा शुहां हितं
 उदैरयतं ममूवांसमदिवना ।
 युयमूवीसंमुत तत्तमत्रयं
 भोमन्वन्तं चक्रथुः सतर्वध्रये
 युधं श्वेत पेद्वैऽश्विनाश्वै
 नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम् ।

पृथुत्यं ददशुद्राययत्तत्
 भगं न नभ्यो हयं मयोभुयं ॥ १० ॥
 न त रंजानाषदिते कुन्धुन
 नांदां अश्रोनि दुरितं नार्थोभयम् ।
 यमदिवना सुहया यद्रथतनी
 पुरोरथं कृणुथः पत्न्यां सुह ॥ ११ ॥
 आ तेनं यातं मनसो जर्षीयसा
 रथं यं यामभवच्छुर्ददिवना ।
 यस्य योगे दृष्टिता जायते द्विय
 उभे अहनी सुदिने वियस्यतः ॥ १२ ॥
 ता पतिर्यातं जयुषा यि पर्यंतं
 अपिन्वतं शयवे धेनुमदिवना ।
 वृकस्य चिद् घातिकांमन्तरास्याद्
 युधं शचीभिर्गसिताममुञ्जतम् ॥ १३ ॥
 पतं घां स्तोममदिवनायकर्म
 अतक्षाम भृगवो न रथम् ।
 न्यमृक्षाम योपणां न मयं
 नित्यं न सुनुं तनयं दधानाः ॥ १४ ॥
 ॥ ६४ ॥ (अ० १०१०१-१४)
 रथं यान्तं कुह को हं वां नरा
 प्रतिं द्युमन्तं सुवितार्यं भूपति ।
 प्रातर्यावाणं विभवं विशेविंशे
 वस्तोर्विस्तोर्वहमानं धिया शर्मि ॥ १ ॥
 कुहं स्विद् नोपा कुह वस्तोरदिवना
 कुहाभिपित्यं करतः कुहोपतुः ।
 को वां शयुत्रा विधवेव देवरं
 मयं न योपां कृणुते सुधस्थ आ ॥ २ ॥
 प्रातर्जैरथे जरणेव कार्या
 वस्तोर्विस्तोर्यजता गच्छथो गृहम् ।
 कस्यं ध्वन्ना भवथुः कस्यं वा नरा
 राजपुत्रैव सवनायं गच्छथः ॥ ३ ॥
 (५९८)

युवां मूर्ध्ने चारणा मृगुण्यवो
 दोषा वस्तोर्दिविया नि हयामहे ।
 युवं होत्रामृतथा लुहते नरा
 इयं जनाय वहयः शुभस्पती
 युवां ह घोषा पर्यध्विना यती
 राक्ष ऊचे दुहिता पृच्छे वां नरा ।
 भूतं मे अहं उत भूतमकवे
 अद्यावते रथिनें शक्तमर्षते
 युवं कृवीष्टः पर्यध्विना रथं
 विशो न कुस्तो जरितुर्नदायथः ।
 युवोर्ह मञ्जा पर्यध्विना मधु
 आसा भरत निष्कृतं न योषणा
 युवं हं भुज्यं युवमध्विना यशो
 युवं शिञ्जारमृशानामुपारथुः ।
 युवो ररावा परीं सख्यमासते
 युवोरहमवसा सुन्नमा चके
 युवं हं कृदां युवमध्विना शपुं
 युवं विघ्नतं विधवांमुख्यथः ।
 युवं सनिभ्यः स्तनयन्तमध्विना
 अपं प्रजमृषुंथः सतास्यम्
 जनिष्ट योषां पतयत् कनीनको
 वि चारहन् पीरुघो दंसना अनु ।
 आरुमै रीपन्ते निघनेय सिन्धवो
 असा अर्धे भयति तत् पतित्यनम्
 जीवं कदन्ति वि मयन्ते अप्यरे
 दीर्घामनु प्रभिति दीधिपुनरः ।
 यामं पितृभ्यो य इदं संमरिरे
 मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे
 न तस्यं विष्णु तद् पु प्र योचत
 युवां ह यद् युवत्याः क्षेति योनिषु ।
 प्रियोक्षिपस्य वृषमस्यं रेतिनो
 वृहं गमेमादियना तर्दुरमसि

॥ ४ ॥
 ॥ ५ ॥
 ॥ ६ ॥
 ॥ ७ ॥
 ॥ ८ ॥
 ॥ ९ ॥
 ॥ १० ॥
 ॥ ११ ॥

आ वामगन्सुमतिर्वाजिनीयसु
 न्यधिवना हृत्सु कामा अयंसत ।
 अभूतं गोषा मिथुना शुभस्पती
 प्रिया अयंणो दुष्यां अशीमहि
 ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ
 धृतं रथिं सहवीरं वचस्वये ।
 कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती
 स्याणुं पयोषामपं दुर्मतिं हतम्
 कं स्विदद्य कंतमास्यधिवना
 विश्व दृन्ना मादयेते शुभस्पती ।
 क ईं नि यैमे कतमस्यं जगमतुः
 विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहम्
 ॥ ६५ ॥ (अ० १०।४।१-३)
 इहस्त्वो योषेवः । जगती ।
 समनमु एवं पुरद्वृतमुष्यं
 रथं विचक्रं सर्वना गानेगमतम् ।
 परिज्मानं विदुष्यं सुयुक्तिभिः
 वयं व्युष्टा उपसो हयामहे
 प्रातयुजे नासुत्याधि तिष्ठथः
 प्रातयोवाणं मधुवाहनं रथम् ।
 विशो येन गच्छेथो यज्वरीनरा
 कीरोधेद् यत् होतुंमन्तमध्विना
 अच्युयं वा मधुपाणिं सुहस्त्वं
 अभिधं या धृतवक्षं दमूनसम् ।
 विप्रस्य वा यत् सर्वनाति गच्छथो
 अत आ यातं मधुपेयमादियना
 ॥ ६६ ॥ (अ० १०।१०।१-११)
 भृशः कस्तः । विदुः ।
 उभा उं नूनं तदिदंयये
 पि तन्वाये पिथो वरुणपनेव ।
 मधीचीना यानवे प्रेमजीगः
 सुदिनेय वृक्ष आ तसयधे

॥ १२ ॥
 ॥ १३ ॥
 ॥ १४ ॥
 ॥ १ ॥
 ॥ २ ॥
 ॥ ३ ॥
 ॥ १ ॥
 (६१५)

उष्टरैव फर्वरेषु ध्रयेथे
 प्रायोगेव भ्राज्या शासुरेथः ।
 दुतेव हि षो यशसा जनैषु
 मार्ष स्यातं महिषेवावपानात् ॥ २ ॥

साकंयुजा शकुनस्यैव पक्षा
 पश्वेव चित्रा यजुरा गमिष्टम् ।
 अग्निरेव देवयोर्द्विषांसा
 परिज्मानेव यजथः पुरुषा ॥ ३ ॥

आपी वो अस्मे पितरेव पुत्रः
 अश्वेव रुचा नृपतीव तुष्ये ।
 इयैव पुष्ट्यै किरणैव भुज्यै
 श्रुष्टीवानैव हवमा गमिष्टम्

वंसंगेव पूषयीं शिम्वातां
 मित्रेव ऋता शतरा शार्तपन्ता ।
 वाजैधोच्चा वयसा घम्येष्टा
 मेरेवेवा संपर्याकुं पुरीपा
 सृण्यैव जर्भरीं तुर्फरीत्
 नैतोशेव तुर्फरीं पर्फरीकां ।
 उदन्यजेव जेमना मदेरु
 ता मे जराय्वजरै मरायुं

पञ्चेव चर्चरं जारै मरायु
 क्षत्रेवाथेषु तर्तरीथ उत्रा ।
 ऋभू नापत् परमज्जा खरज्जुः
 धायुर्न पर्फरत् क्षयद् रयीणाम्

घमैव मधुं जठरैं सनेरु
 भनेविता तुर्फरीं फारिवारम् ।
 पत्तरेव चक्षरा चन्द्रनिर्णिङ्
 मनःश्रुजा मनन्याकुं न जग्मीं
 वृहन्तैव गम्भरेषु प्रतिष्ठां
 पाद्रेव गाधं तरते विदाथः ।

कणैषु शासुरेण हि स्मराथः
 अंशैषु नो भजतं चित्रपामः ॥ १ ॥

भारङ्गरेव मध्येरयेथे
 सारधेव गथि नीचीनंधारे ।
 कीनारैव श्वेदमामिष्विद्वाना
 क्षामेयोर्जा स्युषसात् संचिथे ॥ १० ॥

ऋष्याम् स्तोमं सनुयाम याजं
 आं नो मन्थं स्रथेद्योर्प यातम् ।
 यशो न पृक्तं मधु गोष्यन्तः
 आ भूतांशो अभिनोः काममप्राः ॥ ११ ॥

॥ ६७ ॥ (ऋ० १०।१३।४-५)

सुकीर्तिः काशीवतः । ४ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।

॥ ४ ॥

युयं सुराममश्विना नमुंचायासुरे सचां ।
 विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ४ ॥

पुत्रामैव पितरावश्विनोभा
 इन्द्रावधुः कान्यैर्दंसनाभिः ।
 यत् सुरामं व्यर्षिवः शर्चीभिः
 सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ५ ॥

॥ ६८ ॥ (ऋ० १०।१४।१-६)

अग्निः सांख्य. । अनुष्टुप् ।

॥ ६ ॥

त्यं चिदत्रिमृतज्ज्वरमर्थमश्वं न यातये ।
 कक्षीवन्ते यदी पुता रथं न क्रेणुथो नवम् ॥ १ ॥

त्यं चिदश्वं न वाजिनं मरेणवो यमत्नत ।
 हृळ्हं श्रान्थ न वि प्यतमत्रिं यर्विष्टमा रजः ॥ २ ॥

नरा वंसिष्टावन्थे शुभ्रा सिपांसतं धियः ।
 अथा हि वां द्वियो नरा पुनः स्तोमो न विशसै ३
 चिते तद् वां सुराधसा रातिः सुमतिरश्विना ।
 आ यन्नः सवने पृथौ समने पर्वथो नरा ॥ ४ ॥

युयं भुज्युं संमृद्र आ रजंसः पारः ईद्विखतम् ।
 यातमच्छा पतत्रिसिनासत्या स्यातये कृतम् ॥ ५ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

आ वाँ सुस्रैः शंयु ईवु मंहिष्ठा विश्ववेदसा ।
समस्मे भूपतं नरोत्सं न पिप्युषीरिप्यः ॥ ६ ॥

॥ ६९ ॥ (ऋ० १०।१८३।३)

त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । अनुष्टुप् ।

द्विरण्ययी अरणी यं निर्मग्न्यतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दशमं मासि सृत्वे ॥ ३ ॥

॥ ७० ॥ (वा० य० १४।१-५)

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवांसि
ध्रुवं योनिमासीद साधुया ।

उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाण
अश्विनाध्वर्युं सादयतामिह त्वां ॥ १ ॥

कुलायिनी घृतवती पुराग्निः
स्योने सीद सदाने पृथिव्याः ।

अग्नि त्वां रुद्रा वसवो गृणन्तु
इमा ब्रह्म पीपिहि सौमगाय ॥ २ ॥

अश्विनाध्वर्युं सादयतामिह त्वां
स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद

देवानां सुभे बृहते रणाय ।
पितेर्वधि सुनवऽवा सुशेर्वा

स्वावेशा तुन्या संविदास्व
अश्विनाध्वर्युं सादयतामिह त्वां ॥ ३ ॥

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम
तां त्वा विश्वेऽअभिगृणन्तु देवाः ।

स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद
प्रजावदस्मे द्रविणार्यजस्व

अश्विनाध्वर्युं सादयतामिह त्वां ॥ ४ ॥
अदित्यास्त्या पृष्टे सादयाम्यन्तरिक्षस्य

धृयी विष्टम्मर्नी दिशामधिपतीं भुयनानाम् ।
ऊर्मिर्द्वृप्सोऽअपामसि विश्वकर्मो

तऽश्वपिरश्विनाध्वर्युं सादयतामिह त्वां ॥ ५ ॥

॥ ७१ ॥ (वा० य० ३८।१०,१३)

विश्व्याऽआशां दक्षिणसद् विश्वान् देवानयाद्भिह ।
स्वाहाकृतस्य धर्मस्य मर्षोः पिवतमश्विना ॥ १० ॥

अपातामश्विनां धर्ममनु यावापृथिवीऽधर्मस्ताताम् ।
इहैव रातर्यः सन्तु ॥ १३ ॥

॥ ७२ ॥ (साम० ३०५)

अश्विनो वैवस्वतो । बृहती ।

कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्यः ।
प्रता वामश्वमया क्षयमाणोऽशुनेत्यमु आद्वग्यथा ३

॥ ७३ ॥ (अथर्व २।२९।६) अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

शिवार्भिष्टे हृदयं तर्पयामि
अनमीवो मीदिपीष्ठाः सुवर्चाः ।

सुवासिनो पिवतां मन्थमेतं
अश्विनो रूपं परिधाय मायाम् ॥ ६ ॥

॥ ७४ ॥ (अथर्व ६।५०।१-३)

अथर्वा (अमयकामः) । १ विराट् जगती,

२-३ पध्यापवृत्तिः ।

हृतं तर्दं संमङ्गमाशुमश्विना
द्विन्व शिरो अपि पृष्ठाः शृणीतम् ।

यवानेददानपि नह्यतं मुषं
अथामयं कृणुतं धान्याय ॥ १ ॥

तर्दं है पतङ्ग है जभ्य हा उपकस ।
ब्रह्मेवासंस्थितं द्विचिरन्दन्त

इमान्ययानर्हि सन्तो अपोदित ॥ २ ॥
तर्दोपते धर्धोपते तृष्टेजम्भा आ शृणोत मे ।

य आऽप्या व्यहृरा ये के च म्य
व्यहृरास्तान्सर्वान् जम्भयामसि ॥ ३ ॥

॥ ७५ ॥ (अथर्व २।३०।१) प्रजापातः । अनुष्टुप् ।

सं चेत्रयाथो अश्विना
कामिना सं च वक्ष्यथः ।

मं वां भगांसो अग्नतु
सं विचानि समु प्रता ॥ २ ॥

॥ ७६ ॥ (अथर्वं ६।१०२।१-३)

जमदग्निः । अनुष्टुप्

यथायं वाहो अश्विना सुमैति सं च वर्तते ।
 एवा मामभि ते मनः सुमैतु सं च वर्तताम् १
 आहं खिद्रामि ते मनो राजाश्वः पृष्टधामिव ।
 रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः ॥२॥

आर्जनस्य मदुर्घस्य कुष्ठस्य नलदस्य च ।
 तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद्गरे ॥ ३ ॥

॥ ७७ ॥ (अथर्वं ६।१४१।१-३) विधामित्रः । अनुष्टुप् ।

वायुरेनाः सुमाकर्तु त्वष्टा पोपाय ध्रियताम् ।
 इन्द्रं आभ्यो अधि ब्रवद् रुद्रो भुञ्जे चिकित्सतु १
 लोहितेन स्वर्धितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि ।
 अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥ २ ॥

यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनूष्या उत ।
 एवा संहस्रपोपायं कृणुतं लक्षमाश्विना ॥ ३ ॥

अश्विसहचारी-देवगणः ।

(१) अश्विसरस्वतीन्द्राः ।

॥ ७८ ॥ (वा० य० १९।३३-३५)

यस्ते रसः सम्भृतऽओपधीपु
 सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्यै ।
 तेन जिन्य यजमानं मदेन
 सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥ ३३ ॥

यमश्विना नमुचेरासुरादधि
 सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियार्यं ।

इमं त५ शुक्रं मधुमन्तुमिन्दु५
 सोम५ राजानमिह भक्षयामि ॥ ३४ ॥

यदत्र रिप्त५ रसिनः सुतस्य
 यदिन्द्रोऽभपिच्यच्छीभिः ।

अहं तदस्य मनस्ता शिवेन
 सोम५ राजानमिह भक्षयामि ॥ ३५ ॥

॥ ७९ ॥ (वा० य० २०।६७-६९)

अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती ।

आ शुक्रमासुरादधु मघमिन्द्राय जधिरे ॥ ६७ ॥

यमश्विना सरस्वती हवियेन्द्रमवर्धयन् ।

स विभेद घृलं मयं नमुचावासुरे सचा ॥ ६८ ॥

तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती ।

दर्धानाऽअभ्यनूपत हविषा यष्टऽइन्द्रियैः ॥ ६९ ॥

॥ ८० ॥ (वा० य० २१।४८-५८)

देवं युहिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रंऽअश्विना ।

तेजो न चक्षुर्क्षयोर्बहिषा दधुरिन्द्रियं

वसुधने वसुधेयस्य व्यन्तु यजं ॥ ४८ ॥

देवीर्द्वारोऽअश्विना भिपजेन्द्रे सरस्वती ।

प्राणं न वीर्यं नसि द्वारौ दधुरिन्द्रियं

वसुधने वसुधेयस्य व्यन्तु यजं ॥ ४९ ॥

देवीऽऽउपास्ताश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती ।

बलं न वार्चमास्यऽऽउपाभ्यां दधुरिन्द्रियं

वसुधने वसुधेयस्य व्यन्तु यजं ॥ ५० ॥

देवी जोषी सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन् ।

श्रोत्रं न कर्णयोर्देशो जोषीभ्यां दधुरिन्द्रियं

वसुधने वसुधेयस्य व्यन्तु यजं ॥ ५१ ॥

देवीऽऽऊर्जाहुती दुर्घे सुदुधेन्द्रे

सरस्वत्यश्विना भिपजावतः ।

शुक्रं न ज्योति स्तनयोराहुती धत्तऽइन्द्रियं

वसुधने वसुधेयस्य व्यन्तु यजं ॥ ५२ ॥

देवा देवानां भिपजा होताराविन्द्रमश्विना ।

घप्टकारैः सरस्वती त्विषिं न

हृदये मति५ होतृभ्यां दधुरिन्द्रियं

वसुधने वसुधेयस्य व्यन्तु यजं ॥ ५३ ॥

देवीस्तिष्ठस्तिष्ठो देवीरश्विनेहा सरस्वती ।

शपं न मध्ये नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं

वसुधने वसुधेयस्य व्यन्तु यजं ॥ ५४ ॥

द्वेऽइन्द्रो नराशरसन्निरुथः
सरस्वत्याश्विन्यामीयते रथः ।

रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय
त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि
यसुवनें वसुधेर्यस्य व्यन्तु यजं

॥ ५५ ॥

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपणोऽ अश्विन्या
सरस्वत्या सुपिप्पलऽइन्द्राय पच्यते मधु ।

भोजो न जतिर्ऋषभो न भामं
यनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि
यसुवनें वसुधेर्यस्य व्यन्तु यजं

॥ ५६ ॥

देवं बर्हिर्घोरितीनामश्वरे स्तीर्णमश्विन्यामूर्णप्रदाः
सरस्वत्या स्योनमिन्द्र ते सदर्ः ।

ईशार्यै मन्युर राजानं बर्हिषां दधुरिन्द्रियं
यसुवनें वसुधेर्यस्य व्यन्तु यजं

॥ ५७ ॥

देवोऽअग्निः स्विष्टकृद् देवान् यक्षद् यथायथं
होताऽश्विन्द्रमश्विनो वाचा वाचुर सरस्वती
अग्निं सोमं स्विष्टकृत् स्विष्टऽइन्द्रः

सुवामां सविता वरुणो

मिपगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवाऽआज्यपाः
स्विष्टोऽअग्निरग्निना होता ह्ये स्विष्टकृद्
यज्ञो न दधदिन्द्रियमूर्जमर्षचितिः स्वघां
वंसुवनें वसुधेर्यस्य व्यन्तु यजं

॥ ५८ ॥

(२) अश्विसूर्यादयः ।

॥ ८१ ॥ (वा० य० ३८।११)

अश्विना घर्म पातर हार्द्वानमर्हद्वियाभिरुतिभिः ।
तन्त्रायिणे नमो धारवापृथिवीभ्याम्

॥ १२ ॥

(३) अश्विनौ, बृहस्पतिः ।

॥ ८१ ॥ (अथर्व० ५।२६।१०)

ब्रह्मा । परातिशक्ती चतुष्पदा गावशः ।

अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ
यपत्कारेण यमं वर्धयन्ती ।

बृहस्पते ब्रह्मणा यातमर्वाङ्

यज्ञो अयं स्वर्गिदं यजमानाय स्वाहा

॥ १२ ॥

(६७०)

(४) इयेनः, अश्विनौ ।

॥ ८३ ॥ (अथर्व० ३।३।४) अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

इयेनो हृद्यं नयत्वा परंसाद्
 अन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम् ।
 अश्विना पन्थां कणुतां सुगं तं
 इमं संजाता अभिसंविशध्वम्

॥ ४ ॥

(५) अश्विनौ, द्यौष्पिता ।

॥ ८४ ॥ (अथर्व० ६।४।३) त्रिपदा विराड् गायत्री ।

द्यिये समदिवना प्रावतं तं
 उरुष्या णं उरुज्मघप्रयुच्छन् ।
 द्यौष्पितर्यावयं दुच्छुना या

॥ ५ ॥

(६) बृहस्पतिः, अश्विनौ ।

॥ ८५ ॥ (अथर्व० ६।६९।१-३) अतुष्टुप् ।

गिरावर्गाराटेपु हिरण्ये गोषु यद्यशः ।

सुरायां सिच्यमानायां क्रीलाले मधु तन्मयि १
 आदिवना सारघेण मा मधुनाङ्गं शुभस्पती ।
 यथा भर्गोस्वतीं वाचं मावदानि जना अतु ॥ २ ॥
 मयि वचो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत् पर्यः ।
 तन्मयि प्रजापतिं दिवि धामिव इंहतु ॥ ३ ॥

(७) सांमनस्यं, अश्विनौ ।

॥ ८६ ॥ (अथर्व० ७।५१।१-२)

कङ्कमल्लतुष्टुप्, २ जगती ।

संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः ।
 संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम् ॥ १ ॥
 सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा
 मा युष्महि मनसा दैव्येन ।
 मा घोषा उत्स्युर्बहुले विनिर्हते
 मेधुः पतदिन्द्रस्याहन्यागते

॥ २ ॥

(६७७)

(८) घर्मः, अश्विनौ ।

॥ ८७ ॥ (अघर्षं ७।७३।१-५।८)

अगती, २ पद्यावृहतां, ३,५,८ त्रिष्टुप् ।

समिद्धो अग्निर्वृषणा रथो विवः

ततो घर्मो दुहते वामिपे मधु ।

वयं हि यो पुरुदमासो अश्विना

दधामहे सधमादेषु कारधः

समिद्धो अग्निरश्विना ततो

यो घर्म आ गतम् ।

दुहन्ते नूनं वृषणेह धेनवो

दध्ना मदन्ति वेधसः

स्वाहाऋतः शुचिदैवेषु यज्ञो

यो अश्विनोश्चमसो देवपानः ।

तमु विभ्वं अमृतासो जुषाणा

गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति

यदुश्रियास्वाहुतं घृतं पयोऽयं

स वामश्विना माग वा गतम् ।

माध्वी घर्तारा विदधस्य सत्पती

ततं घर्मं पिबतं रोचने दिवः

ततो यो घर्मो नक्षतु स्वर्होता

प्र वामध्ययुश्चरतु पर्यस्यान् ।

मघोदुग्धस्याश्विना तनाया

वीते पातं पर्यस उश्रियावाः

॥ ५ ॥

दिङ्गुपती वसुपत्नी वसूनां

यत्समिच्छन्ती मर्नसा न्यागन् ।

दुहामाश्विन्यां पर्यो अघ्येयं

सा वर्धतां महते सौमगाय

॥ ८ ॥

(९) मधु, अश्विनौ ।

॥ ८८ ॥ (अघर्षं ९।१।११, १६-१७, १९)

अनुष्टुप्, १७ चण्डिकादिपाद् वृहतां ।

यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्मर्चति प्रियः ।

एवा मे अश्विना वर्चं आत्मनि धियताम् ॥११॥

यथा मधुं मधुऋतः संमरन्ति मधावधि ।

एवा मे अश्विना वर्चं आत्मनि धियताम् ॥१६॥

यथा मघा इदं मधुं न्यजन्ति मधावधि ।

एवा मे अश्विना वर्चः

तेजो बलमोजश्च धियताम्

॥ १७ ॥

अश्विना साधेर्ण मा मधुनाङ्गं शुमस्पती ।

यथा वर्चस्वतीं धार्वं—माघदानि जनां अनुं ॥१९॥

(१०) सिनीवालीसरस्वत्वाश्विनः ।

॥ ८९ ॥ (ऋ० १०।१८३।१)

त्वष्टा घर्मकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । अनुष्टुप् ।

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।

गर्भं ते अश्विनौ देवा—वा घर्त्तां पुष्करस्रजा ॥२॥

(६८८)



आयुर्वेद-प्रकरणम्

दीर्घायुष्यम् ।

॥ १ ॥ (अथर्वे ० २१८१-५)

शम्भुः । १, ३ जरिमा, आयुः; २ मित्रावरुणौ; ३-५ यावा-
प्रथिम्यादयो देवाः । त्रिष्टुप्, १ जगती, ५ सुरिङ् ।

तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयं
मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये ।

मातेर्व पुत्रं प्रमना उपस्थे

मित्र पत्नं मित्रियात् पात्वंहंसः

मित्र पत्नं वर्धणे वा रिशादां

अरामृत्युं कृणुतां संविदानौ ।

तद्रामिहोतां वयुर्नानि विहात्

विश्वो देवाना जनिमा विवाकि

त्वर्माशिषे पशूनां पार्थिवानां

ये जाता उत वा ये जनित्राः ।

मेम प्राणो हासिन्मो अपानो

मेम मित्रा वधिषुर्मा अमित्राः

सौर्षा पिता पृथिवी माता

अरामृत्युं कृणुतां संविदानौ ।

यथा जीया अदितेरुपस्थे

प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः

इममम आयुषे वर्धने नय

मियं रेतो वरुण मित्रराजन् ।

मातेर्वास्मा अदिते शर्म यच्छु

विद्वे देवा अरद्विष्यासत्

॥ २ ॥ (अथर्वे ० ८११-२१)

मद्गा । आयुः । त्रिष्टुप्; १ पुरोवृहती त्रिष्टुप्;

२-३, १७-२१ अशुभु; ४, ९, १५-१६ पस्तारपक्षिः;

७ त्रिपदा विराड्गायत्री; ८ विराट्पव्यवृहती; १२ त्र्यवसाना

पञ्चपदा जगती; १३ त्रिगद्सुरिकमहावृहती; १४ एकवक्षाना

त्रिपदा साम्री सुरिवृहती

॥ १ ॥ अन्तकाय मृत्यये नमः

प्राणा अपाना इह तै रमन्ताम् ।

इहायमस्तु पुरुषः सहासुना

सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके

॥ १ ॥

॥ २ ॥ उदेनं भर्गो अग्रमीदुदेनं सोमो अंशुमान् ।

उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्रास्त्री स्त्रस्तये

॥ २ ॥

इह तेऽसुरिह प्राण इहापुंरिह ते मनः ।

उत् त्वा निष्कृत्याः पानोभ्यो

दैव्या धावा भगमसि

॥ ३ ॥

उत् क्रामतेः पुरुष मायं पत्या

मृत्योः पृथ्वीशमयमुञ्जमानः ।

मा चिञ्ज्या अस्माहोकादग्नेः सूर्यस्य मन्दराः ॥ ४ ॥

तुभ्यं पातः पयतां मातुरिदया

तुभ्यं वर्धन्वमृताग्यापः ।

सूर्यस्ते तन्वेऽं शं तपाति

॥ ५ ॥ त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्टाः

॥ ५ ॥

उद्यानं ते पुरुष नाव्यानं
 जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
 आ हि रोहेमममृतं सुखं रथं
 अथ जिर्विर्विदथमा वंदासि ॥ ६ ॥
 मा ते मनस्तत्रं गांन्मा तिरो भूत्
 मा जीवेभ्यः प्र मंदो मातुं गाः पितृन् ।
 विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ॥ ७ ॥
 मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
 आ रोह तमसो ज्योति
 पद्मा ते हस्तौ रभामहे
 श्यामश्च त्वा मा श्वलश्च प्रेषितौ
 यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
 अर्वाङ्गेहि मा वि दीधयो
 मात्रं तिष्ठः पराङ्मनाः ॥ ९ ॥
 मैतं पन्थामतुं गा भीम प्य
 येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।
 तमं पतत् पुरुष मा प्र पंथा
 भयं परस्तादमयं ते अर्वाक् ॥ १० ॥
 रक्षन्तु त्वाग्रयो ये अप्सवन्ता
 रक्षन्तु त्वा मनुष्याः यमिन्धते ।
 वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा
 दिव्यस्त्वा मा प्र धांय विद्युता सह ॥ ११ ॥
 मा त्वा क्रव्यादभि मैस्तारात् संकसुकाश्चर ।
 रक्षन्तु त्वा यौ रक्षन्तु पृथिवी
 सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च ।
 अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः ॥ १२ ॥
 योधश्च त्वा प्रतीयोधश्च रक्षतां
 अस्म्यश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम् ।
 गोपायश्च त्वा जारुविश्च रक्षताम् ॥ १३ ॥
 ने त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु
 तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा ॥ १४ ॥

जीवेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो
 धाता दधातु सविता प्रथमाणः ।
 मा त्वा प्राणो बलं दासीदसुं तेऽनुं हवामसि १५
 मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विद्रत्
 मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः ।
 उत् त्वादिस्था वसयो भरन्तृदिन्द्राग्नी स्वस्तये १६
 उत् त्वा घौरुत् पृथिव्युत् प्रजापतिरग्रनीत् ।
 उत् त्वा मृत्योरोपधयः सोमराक्षीरपीपरन् ॥ १७ ॥
 अयं देवा इहैवास्वयं मामुत्रं गादितः ।
 इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि ॥ १८ ॥
 उत् त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः ।
 मा त्वा व्यस्तकेश्योऽनु मा त्वाघरुदो रुदन् ॥ १९ ॥
 आहार्षिमावेदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
 सर्वोङ्ग सर्वे ते चक्षुः सर्वमार्युश्च तेऽविदम् ॥ २० ॥
 व्यवात् ते ज्योतिरभुदप त्वत् तमो अक्रमीत् ।
 अप त्वन्मृत्युं निरर्क्षतिमप यक्षं नि दधमसि ॥ २१ ॥
 ॥ ३ ॥ (अथर्व० ८।१।१-२८)
 ऋक्षा । आयुः । ध्रिष्टुः । १-२, ७ सुरिकः । ३, २१ आस्तार-
 पृष्किः, ४ प्रस्तारपृष्किः, ६, १५ पथ्यापृष्किः, ८ पुरस्ता-
 ज्योतिष्मती जगती; ९ पञ्चपदा जगती; ११ विष्टारपृष्किः,
 १२, २२, २८ पुरस्ताद्बृहती; १४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती;
 १९ उपरिष्टाद्बृहती; २१ सतः पृष्किः; ५, १०, १६-१८, २०,
 २३-२५, २७ अनुष्टुप् (१७ त्रिपाद्) ।
 आ रभस्वेमाममृतस्य क्षुष्टि
 अर्चिष्ठधमाना जुरदष्टिरस्तु ते ।
 अस्तु त आयुः पुनरा भंरामि
 रजस्तमो मोषं गा मा प्र मैष्ठाः ॥ १ ॥
 जीवतां ज्योतिरभ्येहार्वाङ्
 आ त्वा हरामि शतशोरदाय ।
 अयमुञ्चन मृत्युपादानशीति
 द्राधीय आयुः प्रतरं तं दधामि ॥ २ ॥

चातात् ते प्राणमविदुं सूर्याचक्षुरहं तव ।
यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि
सं चित्स्वाह्वैर्देदं जिह्वयालंपन् ॥ ३ ॥
प्राणेनं त्वा द्विपदां चतुष्पदां
अशिमिव ज्ञातमभि स धंमामि ।
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणायं तेऽकरम् ॥ ४ ॥
अयं जीवतु मा मृतं समीरयामसि ।
कृणोम्यस्मै भेयजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ॥ ५ ॥
जीवतां नंधारिणां जीविन्तीमोर्षधीमहम् ।
त्रायमाणं सहमानां सहैस्वतीं
इह हृद्येऽस्मा अरिप्रतातये ॥ ६ ॥
अधि ब्रह्मि मा रमथाः सृजेमं
तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु ।
मवांशवां मुडतं शर्म यच्छतं
अपस्त्रिष्यं दुरितं धंतुमार्युः ॥ ७ ॥
अस्मै मृत्यो अत्रिं ब्रह्मीमं दयस्वोदितोऽयमेतु ।
अरिप्रः सर्वोक्तः सुश्रुज्जरासां
शतहायन आत्मना भुजंमश्रुताम् ॥ ८ ॥
देवानां हेतिः परिं त्वा वृणक्तु
पारयामि त्वा रजसु उत् त्वा मृत्योरपीपरम् ।
आराद्रिं क्रव्यादं निरूहं
जीवार्तवे ते परिधिं दधामि ॥ ९ ॥
यत् तं नियानं रजसं मृत्यो अनवधुर्ष्यम् ।
पथ इमं तस्माद् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वमं कृण्मासि १०
कृणोमिं ते प्राणापानौ
जरां मृत्युं दीर्घमार्युः स्यस्ति ।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदृतान्
चरतोऽपं सेधामि सर्वान् ॥ ११ ॥
आरादरातिं निश्चैतिं परो
ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ।
रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तमं इवापं हन्मसि १२

अग्नेः प्राणममृतादार्युष्मतो वन्द्ये ज्ञातवैदसः ।
यथा न रिप्यां अमृतः सज्जरसः
तत् तं कृणोमि तदुं ते समुष्यताम् ॥ १३ ॥
शिवे तं स्तां चावापृथिवी अंसंतापे अमिधिर्यो ।
शं ने सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे ।
शिवा अमि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पर्यस्वतीः १४
शिवास्तै सन्त्वोपधय उत
त्वांहार्यमर्धरस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।
तत्र त्वादित्वां रक्षतां सूर्याचन्द्रमसांबुमा ॥ १५ ॥
यत् ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुपे त्वम् ।
शिवं तं तन्वेऽु तत् कृण्मः
सस्पृशोऽद्रक्ष्णमस्तु ते ॥ १६ ॥
यत् क्षुरेणं मर्चयंता सुतेजसा
वसा वपासि केशदमश्रु ।
शुभं मुसं मा न आयुः प्र मोषीः ॥ १७ ॥
शिवो तं स्तां वीदियवा—वयल्लासाचंदोमथौ ।
पृतौ यक्षं वि वांधेते पृतौ मुञ्चतो अंहसः ॥१८॥
यद्दनासि यत् पियंसि धान्यं कृष्याः पर्यः ।
यदायं यदनायं सर्वं ते अन्नमयिषं कृणोमि १९
अहं च त्वा रात्र्ये चोभाभ्यां परिं ददासि ।
अरायैभ्यो जिघत्सुभ्यं इमं मे परिं रक्षत ॥२०॥
शतं तेऽयुतं हायनात्र डे युगे
श्रीणि चत्वारि कृण्मः ।
इन्द्राग्नी विश्वं देवास्तेऽनुं
मन्यन्तामहंणीयमानाः ॥ २१ ॥
शरदं त्वा हेमन्तार्यं यमन्तार्यं
श्रीष्माय परिं ददासि ।
यपाणि तुभ्यं स्योनानि येयु ययैणुं शोपं ॥ २२ ॥
मृत्युरीतिं द्विपदां मृत्युरीतिं अमृतमाम् ।
तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपयंस्त्रिपदां न न

सोऽरिष्टं न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा र्षिभः ।

न वै तत्रं म्रियन्ते नो रन्त्यधमं तमः ॥ २४ ॥

सर्वो वै तत्रं जीयति गौरभ्यः पुरुषः पशुः ।

यत्रेदं ब्रह्मं क्रियते परिधिर्जीर्घनाय कम् ॥ २५ ॥

परिं त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारत् सघनभुभ्यः ।

अमन्निर्भवामृतोऽतिजीयो

मा ते हासिपुरसंवः शरीरम् ॥ २६ ॥

ये मृत्युव एकशतं या नाष्टा अतितायाः ।

मुञ्चन्तु तस्मात् त्वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि ॥ २७ ॥

अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपन्नहा ।

अथो अमीवचातनः पतुद्रनामं भेषजम् ॥ २८ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० १.३०।१-४)

अथर्वा (आधुष्कामः) । विश्वे देवाः (१ वसवः, आदित्याः,
१-४ देवाः) । त्रिष्टुप्, ३ आक्षरगर्भा विराड्भगती ।

विश्वे देवा वसवो रक्षतेमं

उतादित्या जागृत युयमसिन् ।

मेमं सनाभिरुत वान्यनाभिः

मेमं प्रापत् पौरुषेयो वधो यः ॥ १ ॥

ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः

सचेतसो मे शृणुतेदमुक्तम् ।

सर्वेभ्यो वः परिं ददाभ्येतं

स्वस्त्येनं जरसें वहाथ ॥ २ ॥

ये देवा दिवि ष्ट ये पृथिव्यां

ये अन्तरिक्ष ओपधीपु पशुष्वप्स्वन्तः ।

ते कृणुत जरसमार्युस्मै

शतमन्यान् परिं कृणुतु मृत्युन् ॥ ३ ॥

येषां प्रयाजा उत धानुयाजा

हुतमागा अहृथादश्च देवाः ।

येषां यः पञ्च प्रदिनो विभक्तः

तान् वो अस्मं सत्रसदः कृणोमि ॥ ४ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० १.३।१-३)

अथर्वा (आधुष्कामः) शिरभ्यम्, इन्द्राग्नी, विश्वे देवाः ।

जगता, ४ अनुष्टुप्गर्भा वतुपदा त्रिष्टुप् ।

यदार्यधन् दाक्षायुणा हिरण्यं

शतानीकाय रुमनस्यमानाः ।

तत् ते यथाभ्यायुषे यन्नेसु चलाय

दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ १ ॥

नैनं रक्षांसि न पिंदाचाः संदन्ते

देवानामोर्जः प्रथमजं होतुतत् ।

यो विभर्ति दाक्षायुणं हिरण्यं

स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ २ ॥

अपां तेजो ज्योतिरोजो वलं च

घनस्पतीनामुत वीर्याणि ।

इन्द्रं इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो

असिन् तद् दक्षमाणो विभरद्विरण्यम् ॥ ३ ॥

समानां मासामृतभिष्या वयं

संवत्सरस्य पर्यसा पिपामि ।

इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनुं

मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥ ४ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० ६।४।१-३)

ब्रह्मा । चन्द्रमाः, २ सरस्वती, ३ देव्या ऋषयः । अनुष्टुप्,
१ युगिक, ३ त्रिष्टुप् ।

मनसे चेतसे धिय आकृतय उत चित्तये ।

मृत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ॥ १ ॥

अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे ।

सरस्वत्या उरुव्यचे विधेम हविषा वयम् ॥ २ ॥

मा नो हासिपुर्कृपयो दैव्या ये

तनुपा ये नस्तन्वस्तनुजाः ।

अमर्त्या मर्त्या अभि नः सचच्छं

आर्यधत्त प्रतर जीवसे नः ॥ ३ ॥

॥ ७ ॥ (अथर्वं २।१।१-६)

अथर्वा । (चन्द्रमा,) अङ्गुलिः । अनुष्टुप्, १ विराट्
प्रस्तावपङ्क्तिः ।

दीर्घायुत्वाय बृहते रणाय
अरिप्यन्तो दक्षमाणाः सदैव ।
मणिं विष्कन्धद्रूपं जङ्घिडं विभ्रमो वयम् ॥ १ ॥
जङ्घिडो जम्माद् विशराद्
विष्कन्धादभिरोचनात् ।

मणिः सहस्रवीर्यः परि णः पातु विश्वतः ॥ २ ॥
अयं विष्कन्धं सहते ऽयं वाधते अरिणः ।
अयं नो विश्वमेपजो जङ्घिडः पात्वहंसः ॥ ३ ॥
देवैर्देचेन मणिना जङ्घिडेन मयोमुवा ।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥ ४ ॥
शणश्च मा जङ्घिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम् ।
अरण्याद्वय आभृतः कृप्या अन्यो रसेभ्यः ॥ ५ ॥
कृत्याद्दूरिपर्यं मणिरथो वरातिदूरिः ।
अयो सहस्वान् जङ्घिडः प्र ण आयुषि तारिपत् ६

॥ ८ ॥ (अथर्वं ३।१।१-८)

मन्ना, भृगुवृत्तिः । इन्द्राग्नी, आयुष्यं, यक्षमाशनम् । मिष्टुप्,
४ शक्रोर्गर्मा अगती, ५-६ अनुष्टुप्, ७ उष्णिग्बृहतीगर्मा
पथ्यापङ्क्तिः, ८ च्यवसाना पद्पदा बृहतीगर्मा अगती ।

मुञ्जामिं त्वा हविषा जीवनाय कं
अज्ञातयक्षमादुत राजयक्षमात् ।
मार्दिज्जप्राह यद्येतदेनं
तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ १ ॥
यदिं क्षितायुष्यदिं वा परेतो
यदिं मूलोरन्तिकं नीत प्व ।
तमा हारामि निश्च्युतेरुपग्यात्
धस्पाशमेनं शतदारदाय ॥ २ ॥
सहस्राक्षेणं शतवीर्येण
शतायुषा हविषाहायमेनम् ।

इन्द्रो यथैने शरदो नपाति
अनि विभ्रस्य दुरितस्य पारम् ॥ ३ ॥
शत जीव शरदो वर्धमानः
शनं हेमन्तान् हृतमुं वसन्तान् ।
शनं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः
शतायुषा हविषाहायमेनम् ॥ ४ ॥
प्र विशतं प्राणापाना चन्द्राहाविव मजम् ।
व्युन्ये यन्तु मृत्यवो यानादुरितरान् हृतम् ॥ ५ ॥
इहैव स्तं प्राणापानो मापं गानमिनो युधम् ।
शरीरमस्याङ्गानि जरसें बहते पुनः ॥ ६ ॥
जरायै त्वा परि वदामि जरायै नि युवामि त्वा ।
जरा त्वा मद्रा नैष्ट व्युन्ये यन्तु
मृत्यवो यानादुरितरान् हृतम् ॥ ७ ॥
अग्निं त्वां जरिमाहितं गामुक्षणमिव रज्या ।
यस्त्वा मृत्युरभ्यक्षन्तं जायमानं सुपाशाय ।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुर्दमुञ्जद् बृहस्पतिः ॥ ८ ॥

॥ ९ ॥ (अथर्वं ३।१।१-९)

उषवृत्तिः । वनस्पतिः, यक्षमाशनम् । अनुष्टुप् १ विराट्
प्रस्तावपङ्क्तिः ।

दशैश्वर्यं मुञ्जेमं रथमो प्राणा
अधि यैनें जप्राह पर्येन ।
अयो एनं वनस्पते जीवानो लोकमुत्तरय ॥ १ ॥
आणादुर्दगादयं जीवानो वानमर्षगान् ।
अमुं दु पृथार्णा विदा नृनां च अगवत्तमः ॥ २ ॥
अर्थीनिर्गर्षयादयनं यि जीवपुत्र अंगन ।
गनें ह्येव निरुदः सुधर्ममृत् श्रीकथः ॥ ३ ॥
देवान् सुदितेविदुः प्रथार्णा उत्र इदं
उति ते निर्वै देवा अविदुः सुदिते ॥ ४ ॥
यश्चकार स निष्कृतं स एव निष्कृतं
स एव दुष्यं संप्रकारिं कृष्वेदं ॥ ५ ॥

॥ १० ॥ (अथर्वे० ६।११०।१-२)

अथवा । अग्निः । त्रिष्टुप्, १ पङ्क्तिः ।

प्रज्ञो हि कमीर्ज्यो भव्यरेषु
सुनासु होता नव्यश्च सरिस ।

स्यां चाग्ने तन्वेषु पिप्रायस्व
अस्मभ्यं च सौभगमा र्यजस्व
ज्येष्ठ्य्यां जातो विचृतोर्यमस्यं
मूलबर्हणात् परं पाहो नम् ।

अत्येने नेपद् दुरितानि विश्वा
दीर्घायुत्वार्य शतशारदाय
ध्याघ्रेऽहर्षजनिए धीरो
नेक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।

स मा र्धधीत् पितरं र्धमानो
मा मातरं प्र मिनीजनित्रीम्

॥ ११ ॥ (अथर्वे० ६।१७।१-२)

अहिः प्रचेता । १ अग्नि, २ विश्वे देवाः, ३ सुधन्वा ।
त्रिष्टुप् ।

अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान्
वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशीभूः ।

स नः पावको द्रविणे दधातु
आयुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम
विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मान्
अस्मिन् द्वितीये सर्वने न जह्युः ।

आयुष्मन्तः प्रियमेषां र्धदन्तो
स्यं देवानो सुमतौ स्याम
इदं तृतीयं सर्वने कवीनां
श्रुतेन ये चमसमैर्यन्त ।

ते सौधन्यनाः स्वराजानानाः
स्विष्टिं नो अग्निं षस्यो नयन्तु

॥ १२ ॥ (अथर्वे० ६।१९।१-७)

अथवा । १ अग्निः, सूर्यः, बृहस्पतिः, २ आतवेदाः उवितः,
३ इन्द्रः, ४-५ चावापृथिवी, विश्वे देवाः, मरुताः, आपः,
६ अश्विनो, ७ इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप्, ४ पराबृहती
त्रिष्टुप्प्रकारपङ्क्तिः ।

पार्थिवस्य रसें देधा भर्गस्य तन्वोषु यले ।

॥ १ ॥ आयुष्यमस्मा अग्निः सूर्यो

यत्तं आ धाद् बृहस्पतिः ॥ १ ॥

भायुरस्मै धेहि जातयेदः

प्रजां त्वष्टरधिनिधेष्टस्मै ।

॥ २ ॥ रायस्पोर्यं सवितरा सुवासी
शतं जीवाति शरदस्त्यायम् ॥ २ ॥

आशीर्णं ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं

दक्षं धत्तं द्रविणं सचेतसौ ।

॥ ३ ॥ जयं क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र
कृण्वानो अन्धानधरान्तसुपतनाम् ॥ ३ ॥

इन्द्रेण दत्तो ररुणेन शिष्टो

मरुद्भिरुग्रः प्रहितो न आगन् ।

एष वाँ छावापृथिवी उपस्थे

मा क्षुधन्मा तृपत् ॥ ४ ॥

ऊर्जमसा ऊर्जस्वती धत्तं

पर्यो अस्मै पयस्वती धत्तम् ।

॥ १ ॥ ऊर्जमस्मै छावापृथिवी अंधातां
विश्वे देवा मरुत ऊर्जमापः ॥ ५ ॥

शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयामि

अनमीवो मौद्विपीष्ठाः सुवर्चाः ।

॥ २ ॥ सवासिनौ पिबतां मन्थमेतं
अश्विनो रूपं परिधाय मायाम् ॥ ६ ॥

इन्द्रं एतां संसृजे विद्धो अग्रं

ऊर्जां स्वधामजरां सा तं एषा ।

तया त्वं जीव शरदः सुवर्चा

॥ ३ ॥ मा त आ सुष्टोद् शिपजस्ते अक्रन् ॥ ७ ॥

॥ १३ ॥ (अथर्व० ५।३०।१-१७)

उन्मोचनः (आग्नेयः) । आयुष्मत् । अनुष्टुप् ।
१ पय्यापृष्ठी, १ भुरिद्, १२ चतुष्पदा विराहजगती,
१४ विराहवराहपृष्ठी, १७ चतुष्पदा पटपदा जगती ।

आयतस्त आयतः परायतस्त आयतः ।
इहैव भवं मा तु गा मा पूर्वान्तुं गाः
पितृन्सुं वधामि ते हृदम् ॥ १ ॥
यत् त्वामिच्छेत् पुरुषः स्वां यदरंणो जनः ।
उन्मोचनप्रमोचने उमे वाचा वंदामि ते ॥ २ ॥
यद् दुरोहिंश्च शेषिणे स्त्रियं पुंसि अचित्या ।
उन्मोचनप्रमोचने उमे वाचा वंदामि ते ॥ ३ ॥
यदेतसो मातृकृता ऋषेः पितृकृताश्च यत् ।
उन्मोचनप्रमोचने उमे वाचा वंदामि ते ॥ ४ ॥
यत् तं माता यत् तं पिता जामिधर्मातां च सजैतः ।
प्रत्यक् संयस्व भेषजं जरदंष्ट्रिं कृणोमि त्वा ॥ ५ ॥
इहोहिं पुरुष सर्वेण मर्षसा सह ।
दुतौ यमस्य मातुं गा अर्थिं जीवपुरा इहि ॥ ६ ॥
अनुहृतः पुनरोहिं विद्वानुदयनं पयः ।
आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयं नम ॥ ७ ॥
मा धिमेने मरिष्यसि जरदंष्ट्रिं कृणोमि त्वा ।
निरयोचमहं यस्मिन् ह्येभ्यो अहज्वरं तथं ॥ ८ ॥
अहमेदो अहज्वरो यश्च ते हृदयामयः ।
यश्मः श्येन इव प्रापतद् वाचा साढः परंस्तराम् ९
ऋषीं बोधप्रतीबोधार्थं - स्वमो यश्च जायृषिः ।
तौ तं प्राणस्यं गोतारुं दिया नक्तं च जायृताम् १०
अयमग्निर्गुणमयं इह स्यं उदंतु ते ।
उदेहिं मृत्योर्गम्भीरात् कृष्णाञ्चिन्तमस्रस्परि ११
नमो यमाय नमो अस्तु मृत्युये
नमः पितृभ्यं उत ये नर्यन्ति ।
उत् पारंणस्य यो वेदु तमग्निं
पुरो दंघेऽस्मा अरिष्टतानये ॥ १२ ॥

पेतुं प्राणं पेतुं मनं पेतुं चक्षुरायो बलम् ।
शरीरमस्य सं विदां तत् पृष्ठायां प्रति तिष्ठतु १३
प्राणेनान्नि चक्षुषा सं संज्ञेमं
सर्मारय तन्वाङ्गु सं बलेन ।
वेत्यामृतस्य मा तु गा-न्मा तु भूमिग्रहो भुयत् १४
मा तं प्राण उपं दस्-न्मो अं पानोऽपि धायि ते ।
सूर्यस्वाधिपतिर्मृत्यो-रुदार्यच्छतु र्दिग्भिः ॥ १५ ॥
इयमन्वर्षेदति जिह्वा बद्धा पतिष्पदा ।
त्वया यस्मं निरयोचं ज्ञातं रोषीञ्च तुममनः ॥ १६ ॥
अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः ।
यस्मै त्वमिह मृत्यवं दिष्टः पुरुष जग्निषे
न च त्वानुं ह्यामसि मा पुरा जुरसो मृधाः १७
॥ १४ ॥ (अथर्व० १९।३१।१-४)
मघः । अग्निः (दीर्घानुष्टुप्) । अनुष्टुप् ।
अग्नें समिधमहार्पं वृहते जातवेदसे ।
स मे भ्रदां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु ॥ १ ॥
इभेने त्वा जातवेदः समिधा वधयामसि ।
तथा त्वमस्मान् वधय प्रजयां च धनेन च ॥ २ ॥
यदग्ने यानि कानि चि-दा ते दान्निं दध्मसि ।
सर्वं तदस्तु मे शिरं तज्जुपस्व यविष्ठय ॥ ३ ॥
पृतास्ते अग्ने समिध-स्वमिद्धः समिद्धय ।
आयूरस्मासुं घेद्य-मृत्यन्मर्वाचार्याय ॥ ४ ॥
॥ १५ ॥ (अथर्व० १९।३१।१-८)
महा । सूर्यः (दीर्घानुष्टुप्) । अत्रारत्वा षाषत्रो ।
पद्वेभं शरदः शतम् ॥ १ ॥
जीवेभं शरदः शतम् ॥ २ ॥
बुधेभं शरदः शतम् ॥ ३ ॥
रोहेभं शरदः शतम् ॥ ४ ॥
पूर्वेभं शरदः शतम् ॥ ५ ॥
मवेभं शरदः शतम् ॥ ६ ॥
भूवेभं शरदः शतम् ॥ ७ ॥
भूर्यसीः शरदः शतम् ॥ ८ ॥

॥ १६ ॥ (अथर्व० ५।१८।१-१४)

अथर्वा । प्रिहन्, अग्नादयाः (दीर्घायुः) । प्रिभृत् ,
६ पथपदातिसाकरीः ७,९,१०,१२ कङ्कमल्लगुण्डम् ।
१३ पुरवणिकम् ।

नयं प्राणान् नृषमिः सं मिमीते
दीर्घायुत्वार्यं शतशारदाय ।

हरिते श्रीणि रजते श्रीणि
अयसि श्रीणि तपसाविष्टितानि

अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो
चौरन्तरिक्षं प्रदिशो दिशश्च ।

आर्तया ऋतुभिः संधिदाना
अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु

अयः पोषास्त्रिवृतिं श्रयन्तां
अनक्तं पूषा पर्यसा घृतेन ।

अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा
भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम्

इममादित्या वसुना समुक्षत
इममग्ने वर्धय वावृधानः ।

इममिन्द्र सं सृज दीर्येण
अस्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्यु

भूमिर्वा पातु हरितेन विश्वभृत्
अग्निः पिपत्स्वैर्यसा सजोषाः ।

धीराद्रिष्टे अर्जुनं संधिदानं
दक्षं दधातु सुमनस्यमानम्

श्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यं
अग्नेरेकं प्रियतमं बभूवु

सोमस्यैकं हिसितस्य परापतत् ।
अपामेकं वेधसां रेत आहुः

तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वार्युषे
त्र्यापुषं जमदग्नेः कृदपर्यस्य त्र्यामुपम् ।

येषामृतस्य चक्षुणं श्रीण्यायूषि तैःकरम्

अयः सुपर्णास्त्रिवृता यदार्यन्
पपाक्षारगमिसंभूयं श्रमताः ।

प्रत्योदन् मृत्युममूर्तेन स्थाः
अन्तर्दधाना दुरितानि विभ्यां

द्विघस्त्वां पातु हरितं मर्ष्यात् तथा पान्वृतेनम् ।
भूम्या अयस्मर्यं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम् ९

इमास्त्रिधो देवपुरा—स्तास्त्वा रक्षन्तु सूर्यतः ।
तास्यं विभ्रदं पच्ये—स्युत्तरो द्विपतां मय ॥ १० ॥

पुरं देवानोममृतं हिरण्यं
य आयेधे प्रथमो देवा अग्ने ।

तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोमि
अनु मन्यतां त्रिवृदार्यधे मे

आ त्वां चृतत्वय्यमा पूषा वृहस्पतिः ।
अर्हर्जितस्य यन्नाम तेन त्वार्तिं चृतामसि ॥ १२ ॥

ऋतुभिर्घातं वैरायुषे पच्यसे त्वा ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन संहन्तु कृणमसि ॥ १३ ॥

घृतादुल्लुप्तं मधुना समंक्तं
भूमिर्हृहमच्युतं पारयिष्यु ।

भिन्दत् स्वपत्नानधेरांश्च कृणवत्
आ मां रोह महते सौभगाय

॥ १७ ॥ (अथर्व० ७।३।११)
ब्रह्मा । आयु । अतुष्टुम् ।

उपं प्रियं पतिमृतं युवानमाहुतीवृधम् ।
अगन्म विभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ १ ॥

॥ १८ ॥ (अथर्व ७।३।१२)
ब्रह्मा । महता, पूषा, वृहस्पतिः, अग्निः, (दीर्घायुः) ।
पथ्यापङ्क्तिः ।

सं मां सिञ्चन्तु मृतः सं पूषा सं वृहस्पतिः ।
सं मायमग्निः सिञ्चतु प्रजयां च धनेन च

दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ १ ॥

॥ १९ ॥ (अथर्वं ७.५३।१-७)

ब्रह्मा । आयुः, वृहस्पतिः अश्विनौ च । त्रिष्टुप्, ३ भुक्ति
४ लक्ष्मणमार्गो पङ्क्तिः, ५-७ अनुष्टुप् ।

अमुत्रभूयादधि यद् यमस्य

वृहस्पतेरभिज्ञस्तेरमुञ्चः ।

प्रत्याहतामश्विना मृत्युमस्मद्

देवानामग्ने म्रियजा शर्चाभिः

सं फामतं मा जह्नीतं शरीरं

प्राणापानौ ते सयुजाधिह स्ताम् ।

शतं जीव शरदो वर्धमानो

अग्निष्टे गोपा अधिपा वलिष्टः

आयुर्यत् ते अतिहितं पराचैः

अपानः प्राणः पुनरा ताविताम् ।

अग्निष्टदाहानिर्ऋतेरुपस्थ्यात्

तदात्मनि पुनरा वैश्यामि ते

मेमं प्राणो हासिन्मोचहाय परां गात् ।

सतयिभ्यं एनं परि ददामि

त एनं स्वस्ति जस्तै वहन्तु

प्र विंशतं प्राणापाना—धनुद्वाहाधिच मृजम् ।

अयं जरिष्णः शैवधि—ररिष्ट इह वर्धताम् ॥ ५ ॥

आ ते प्राणं सुवामसि परा यश्मै सुवामि ते ।

आयुर्नो विश्वतो दध—द्वयमग्निर्वरेण्यः ॥ ६ ॥

उद्भयं तमसस्पति रोहन्तो नाकमुत्तमम् ।

देव देववा सूर्य—मगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ७ ॥

॥ २० ॥ (अथर्वं ६।७६।१-४)

इन्धः । सान्तपनामिः (आयुष्यम्) । अनुष्टुप्,
३ कटुम्मती ।

य एनं परिपीदन्ति समादधति चक्षसे ।

संप्रेक्षो अग्निर्जिह्वामि—रुदंतु हृदयादधि ॥ १ ॥

अग्नेः सान्तपनस्याह—मायुषे पदमा रंभि ।

अज्ञातियस्य पदयति धूममुचन्तमास्यत् ॥ २ ॥

यो अस्य समिधं वेदं क्षत्रियेण समाहिताम् ।

नाभिहारे पदं नि दधाति स मृत्यये ॥ ३ ॥

नेनं प्रन्ति पर्यायिणो न सत्रां अर्धं गच्छति ।

अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान् नाम गृह्णात्यायुषे ॥ ४ ॥

॥ २१ ॥ (अथर्वं १९।६३।१)

ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः (आयुर्वर्धनम्) । विराट्परिष्ठा इहृती ।

॥ १ ॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् युजेन वोधय ।

आयुः प्राण प्रजां पशन् कीर्ति यजमानं च वर्धय १

॥ २२ ॥ (अथर्वं १९।६१।१)

ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः (सर्वमायु) । विराट्परिष्ठा इहृती ।

॥ २ ॥

तनूस्त्वान्वा मे सहे वृतः सर्वमायुरशीय ।

स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पर्यमानः स्वर्गे ॥ २ ॥

॥ २३ ॥ (अथर्वं १२।७०।१)

ब्रह्मा । इन्द्रमूर्धादयः (सर्वमायुः) गायत्रोः ।

॥ ३ ॥

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् ।

सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥

अरिष्टानि अज्ञान ।

॥ २४ ॥ (अथर्वं १९।६०।१-२)

ब्रह्मा । वाक्, अज्ञानि च । १ पय्यावृती; २ कटुम्मती
पुरवणिक् ।

वाङ् मं आसप्रसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।

अपलिताः केदा अशोणा दन्ता वहु याहोर्वलम् ॥ १ ॥

ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जघः पादयोः ।

प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः ॥ २ ॥

सुमङ्गलो दन्तो ।

॥ २५ ॥ (अथर्वं ६।१४०।१-३)

अथर्वो । ब्रह्मणस्पतिः, दन्ताः । (अनुष्टुप् ?) १ उरोवृती,
२ उपरिष्ठा उपवोतिष्मती निष्पु, ३ आस्तापरपङ्क्तिः ।

यौ व्याघ्रावर्धरुदौ जिघत्सतः पिनरं मानरं च ।

यौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ रुणु जातयेदः ॥ १ ॥

द्वीद्विमत्तं यवमत्तमथो मापमथो तिलम् ।

पृष वां भागो निहितो रत्नधेयाय

दन्ती मा द्विसिष्ट पितरं मातरं च

॥ २ ॥

उपहृतौ सयुजौ स्थोनौ दन्तौ सुमङ्गलौ ।

अन्यत्र वां घोर तन्वः परैतु

दन्तौ मा द्विसिष्ट पितरं मातरं च

॥ ३ ॥

यक्षम-नाशनम् ।

॥ २६ ॥ (अ० १०१६३।१-६)

विश्वहा काश्यपः । यक्षमनाशनम् । अनुष्टुप् ।

अक्षीभ्यां ते नालिकाभ्यां कर्णाभ्यां लुबुकादधि ।

यक्षमं शीर्षण्यं मस्तिष्कात्

त्रिह्वाया वि वृहामि ते

॥ १ ॥

प्रीवाभ्यस्त उणिर्हाभ्यः कीकंसाभ्यो अनुक्यात् ।

यक्षमं दोषण्यमंसाभ्यां

वाहभ्यां वि वृहामि ते

॥ २ ॥

आन्ध्रेभ्यन्ते गुदाभ्यो यनिष्ठोर्हदयादधि ।

यक्षमं मर्तन्नाभ्यां यकनः

प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते

॥ ३ ॥

ऊरुभ्यां ते अष्टीयद्रपां पाणिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।

यक्षमं श्रोणिभ्यां भार्गवाद्

भंत्तलो वि वृहामि ते

॥ ४ ॥

मेहनाशनकरणा ह्योर्मग्यस्ते नृपोभ्यः ।

यक्षमं स्वर्धमादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥५॥

अर्धादङ्गुलीघ्रोत्तोघ्रो जानं पर्वणिपर्वणि ।

यक्षमं स्वर्धमादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥६॥

॥ २७ ॥ (अथयं ३।२।१-२)

अङ्गु । पापमहाः १ अमिः, २ शक, ३ पशुप, ४ वावा-
पृदिरी, ५ रथश, अमिः । इन्द्रः । देवाः, मूर्धः । ८-१० भागुः,
११ पशुः (यक्षमनाशनम्) । अनुष्टुप्, ४ गुरिः,
५ विश्वः प्र २५० वि ।

वि देवा अर्धमापृत्तन् वि स्वर्धमे अर्धात्वा ।

व्यहृष्टं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुपा ॥१॥

व्यात्यां पर्वमानो वि शक्रः पापकृत्यया ।

व्यहृष्टं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुपा ॥२॥

वि प्राभ्याः पशवं आरण्यैर्व्यां प्रस्तुर्णयासरत्न ।

व्यहृष्टं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुपा ॥३॥

वीक्षुमे घावापृथिवी इतो वि पन्थानो दिशदिशम् ।

व्यहृष्टं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुपा ॥४॥

त्वष्टां दुहित्रे बहृतुं युनक्ति

इतीदं विश्वं भुवन्ते वि याति ।

व्यहृष्टं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुपा ॥५॥

अग्निः प्राणान्त्सं दधाति चन्द्रः प्राणेन संहितः ।

व्यहृष्टं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुपा ॥ ६ ॥

प्राणेन विश्वतोवीर्यं देवाः सूर्यं समैरयन् ।

व्यहृष्टं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुपा ॥७॥

आयुष्मतामायुष्कृतौ प्राणेन जीव मा मृधाः ।

व्यहृष्टं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुपा ॥८॥

प्राणेन प्राणतां प्राणे ह्यैव भव मा मृधाः ।

व्यहृष्टं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुपा ॥९॥

उदायुपा समायुपो दोषधीनां रसेन ।

व्यहृष्टं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुपा ॥१०॥

आ पर्जन्यस्य वृष्टयो दस्थामामृता वयम् ।

व्यहृष्टं सर्वेण पाप्मना वि यक्षमेण समायुपा ॥११॥

॥ २८ ॥ (अथयं ० ६।२०।१-२)

सुवर्गाः । यक्षमनाशनम् । १ अगती, ३ ककुमतीपस्ता-

रपृष्णि, ३ घतः पृष्णि ।

अग्नेरिवास्य दहत पति शुष्मिणं

उतेयं मृत्तो विलुपप्रपायति ।

अन्यमस्मदिच्छतु कं चिदमृतः

तपुयंघाय नमो अस्तु तक्षमने ॥ १ ॥

नमो शत्राय नमो अस्तु तक्षमने

नमो रामे घरेणाय त्विरीमते ।

नमो त्रिषे नमः पृथिव्यै नम भोषधीभ्यः ॥ २ ॥

(८६८)

अयं यो अग्निशोचयिष्णुः
विश्वं रूपाणि हरिता कृणोषि ।
तस्मै तेऽरुणाय ब्रध्वे नमः
कृणोमि वन्याय त्वमर्ते ॥ ३ ॥

॥ २९ ॥ (अथर्व० ६।८।१-३)

अथर्वः । वनस्वतिः (यक्षनाशनम्) । अनुष्टुप् ।

घरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
यश्मो यो अग्निनाविष्टुस्तमु देवा अवीवरन् ॥१॥
इन्द्रस्य चर्चसा वयं मित्रस्य चरुणस्य च ।
देवानां सर्वेषां वाचा यश्मं ते वारयामहे ॥ २ ॥
यथा वृत्र इमा आर्पस्तुस्तमं विश्वर्धा यतीः ।
एवा तं अग्निना यश्मं वैश्वानरेण वारये ॥ ३ ॥

॥ ३० ॥ (अथर्व० ६।१२७।१-३)

सृष्टिक्रियाः । यक्षनाशनम्, वनस्वतिः । अनुष्टुप्,

३ ऋषिदाना पद्यदा जगती ।

विद्रघस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते ।
विसर्पकस्योपध्रे मोर्च्छपः पिशितं चन ॥ १ ॥
यौ ते बलासु तिष्ठतः कर्षे मुष्कावपधितौ ।
वेदाहे तस्य भेषजं चीपुर्दुग्मिचक्षणम् ॥ २ ॥
यो बह्व्यो यः कर्ण्यो यो अक्ष्योर्विसर्पकः ।
वि वृंहामो विसर्पकं विद्रधं हृदयाम्यम् ।
पणु तमर्षातं यश्मं-मघराजं सुवामसि ॥ ३ ॥

॥ ३१ ॥ (अथर्व० १।१२।१-३)

सृष्टिक्रियाः । यक्षनाशनम् । जगती (त्रिष्टुप् ?), अनुष्टुप् ।
जरायुजः प्रथम उच्चियो वृवा
वातभ्रजा स्तनयत्रेति वृष्टया ।
स नो मृडाति तन्व्यं ऋजुगो रुजन्
य एकमोजंखेधा विचक्रमे
अङ्गअङ्गे शोचिषा शिश्रियाणं
नमस्यन्तस्तथा हृषिषा विधेम ।
अद्धान्तसमद्धान् हृषिषा विधेम
यो अमर्षीत् पर्यास्या प्रभीता ॥ २ ॥

मुञ्च शीपिन्त्या उत कास पं
परुष्पहराविवेशा यो अंस्य ।
यो अंभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो
वनस्पतीन्सचत्तां पर्वतांश्च ॥ ३ ॥

शं मे परस्मै गात्राय शमस्ववराय मे ।
शं मे चतुर्भ्यो अङ्गैभ्यः शर्मस्तु तुन्वेऽं मम ॥४॥

॥ ३२ ॥ (अथर्व० ३।७।१-७)

सृष्टिक्रियाः । १-३ हरिणः, ४ तारके, ५ आपः,

६-७ यक्षनाशनम् । अनुष्टुप्, ६ सुरिक् ।

हरिणस्य रघुप्यदो-ऽधि शीपिणं भेषजम् ।
स क्षेत्रियं विषाणया विपचीनमनीनशत् ॥ १ ॥
अनु त्वा हरिणो वृषा पृच्छिस्तुर्भिरकमीत् ।
विषाणे वि ष्यं गुपितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि ॥२॥

अदो यद्वरोचते चतुष्पथमिव च्छदिः ।
तेनां ते सर्वे क्षेत्रिय-मङ्गैभ्यो नाशयामसि ॥ ३ ॥
अमू ये द्विवि सुभगं विचूर्तां नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्जता-मधमं पाशानुत्तमम् ॥ ४ ॥
आप इद् वा उं भेषजी-राषो अमीवचार्तनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीः

तास्वां मुञ्जन्तु क्षेत्रियात् ॥ ५ ॥
यदासुते क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वां व्यानो ।
वेदाहे तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ॥ ६ ॥
अप्यामे नक्षत्राणा-मप्याम उपमासुत ।
अपास्मन् सर्वे दुर्भुत-मपं क्षेत्रियमुञ्जन्तु ॥ ७ ॥

॥ ३३ ॥ (अथर्व० ६।९।१-३)

सृष्टिक्रियाः । यक्षनाशनम्, ३ आपः । अनुष्टुप् ।

इमं यवमश्रायोगैः पंडयोगैर्भिरचरुषुः ।
तेनां ते तुन्वोऽं रपो-ऽपचीनमपं व्यये ॥ १ ॥
न्युग्ं घातो घानि न्युक् तपति सूर्यैः ।
नीचीनमप्या दुहे न्युग्ं भवतु ते रपः ॥ २ ॥
आप इद् वा उं भेषजी-राषो अमीवचार्तनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजी-स्तास्ते कृष्यन्तु भेषजम् ३

॥ ३४ ॥ (अथर्व० १९।३८।१-३)

अथर्वा । गुल्गुलः (यक्षमनाशनम्) । अनुष्टुप् ; २ चतुष्टुपा
चण्डि, ३ एकावसाना प्राजापसानुष्टुप् ।

न ते यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अदनुते ।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरमिर्गन्धो अश्नुते ॥ १ ॥
विष्वञ्जस्तस्माद् यक्ष्मा मुगा अर्वा इवेरते ।
यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद् वाप्यासि समुद्रियम् २
उभयोरग्रभं नामा—स्मा अरिप्रतातये ॥ ३ ॥

॥ ३५ ॥ (अथर्व० १०।१६।६-१०)

यक्षमनाशनः । यक्षमनाशनम् । त्रिष्टुप् ; १० अनुष्टुप् ।
मुञ्जामि त्वा हविषा जीवनाय कं
अशातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।

प्राहिर्जप्राह यद्येतदेनं
तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुकमेनम् ॥ ६ ॥

यदि क्षितायुर्दि वा परेतो
यदि मृत्योरन्तिकं नीत्त एव ।
तमा हवामि निश्चैतेरुपस्थान्
अस्यांशमेने शतशारदाय ॥ ७ ॥

सदभ्राश्रेण शतवीर्येण
शतायुषा हविषाहापमेनम् ।

इन्द्रो यथेन शरदो नयाति
अति विभ्रम्य दुरितस्य पारम् ॥ ८ ॥

नाने जीय नान्द्रो यथैमानः
नाने ह्यमन्तान् एनमुं यमन्तान् ।

नाने तु इन्द्रो अग्निः संविता गृह्णपतिः
नानायुषा हविषाहापमेनम् ॥ ९ ॥

आहापमेविदं स्या पुनरागाः पुनर्णयः ।
सर्थाह सपे मे चक्षुः सर्वमायुध तेऽविदम् ॥ १० ॥

॥ ३६ ॥ (अथर्व० १०।१६।१३-१३)

विश्वाना । यक्षमनाशनम् । अनुष्टुप् ।
धृतीभ्यां मे नातिवाभ्यां कर्णाभ्यां सुयुक्तादधि ।
एभ्यं दोषैर्ध्यां मन्त्रिणात्
त्रिष्टाया वि वृहामि ते ॥ १७ ॥

श्रीवाभ्यस्त उणिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनुक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यु मंसाभ्यां

बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ १८ ॥
हृदयात् ते परि क्लोहो हलीक्ष्णात् पार्श्वार्थाभ्याम् ।

यक्ष्मं मतस्त्राभ्यां प्लोहो यक्ष्मस्ते वि वृहामसि १९
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठो हृदयादधि ।

यक्ष्मं कृक्षिभ्यां प्लोशे—नाभ्या वि वृहामि ते ॥ २० ॥
ऊरुभ्यां ते अष्ट्रिवद्भ्यां पार्श्वार्थाभ्यां प्रपदाभ्याम् ।

यक्ष्मं भसद्युं श्रोणिभ्यां
भासदं मंससो वि वृहामि ते ॥ २१ ॥

अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यां मङ्गुलिभ्यो

नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥ २२ ॥
अङ्गेअङ्गे लोमिलोमिन् यस्ते पर्वणिपर्वणि ।

यक्ष्मं त्वचस्यं ते व्यं
कदयपस्य वीवहेण विष्वञ्जं वि वृहामसि ॥ २३ ॥

॥ ३७ ॥ (अथर्व० ११।१।१-५५)

मृगः । अग्निः मन्त्रोक्ताः ; २१-३३ मृगः (यक्षमरागनाशनम्) । त्रिष्टुप् ; २, ५, १२-२०, ३४-३६ ; ३८-४१, ४३, ५१, ५४ अनुष्टुप (१६ ककुम्भती पराग्रहती, १८ निचूत, ४० पुरस्ताद्ग्रहमती) ; ३ आस्तापञ्चिक, ६ भुरिगाधी पञ्चिक, ७, ४५ जगती, ८, ४८-४९ भुरिगुं ; ९ अनुष्टुप्गर्मा विपरीत-पादलक्ष्मा पञ्चिक ; १७ पुरस्ताद्ग्रहती ; ४२ त्रिप० एकाव-भुरिगाधी गायत्री ; ४४ एकाव० द्विप० आची ग्रहती ; ४६ एका० द्विप० छात्री त्रिष्टुप् ; ४७ पञ्चपदा बाह्येतेराजगर्मा जगती ; ५० उपरिष्ठादिराद् ग्रहती, ५२ पुरस्तादिराद् ग्रहती ; ५५ ग्रहतीगर्मा ।

नडमा रोह न ते अत्र लोके
हृदं सीमं भागधेयं तु परि ।

यो गोषु यश्मः पुरीयेषु यश्मः
तेन त्वं साधमंधराद् परेहि ॥ १ ॥

अपदासुदुःशाराभ्यां कुरेणानुकरेण स ।
पस्यं स स्यं तेनेतो मयुं स निरजामसि ॥ २ ॥

निरितो मृत्युं निर्झति निररातिमजामसि ।

यो नो द्वेष्टि तमद्भयमे

अक्रव्यायमृं द्विष्मस्तमुं ते प्र सुवामसि ॥ ३ ॥

यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र

इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः ।

तं मायाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि

दूरं स गच्छन्वप्सुपदोऽप्यग्नीन् ॥ ४ ॥

यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुः—मन्युना पुण्ये मृते ।

सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोर्दीपयामसि ॥ ५ ॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः

पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्रे ।

पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद्

दीर्घायुत्वार्य शतशारदाय

यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेशो नो गृहं ॥ ६ ॥

इमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।

तं हरामि पितृयुवार्य दूरं

स धर्ममिन्धां परमे सचस्यै

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं

यमराक्षो गच्छतु रिप्रवाहः ।

इहायमितरो जातवेदा

देवो देवेभ्यो हृष्यं बहनु प्रजानन्

क्रव्यादमग्निमिपितो हरामि

जनान् दृहन्तं यज्ञेण मृत्युम् ।

नि तं शोस्मि गार्हपत्येन विद्वान्

पितृणां लोकेऽपि भागो अस्तु

क्रव्यादमग्निं शशमानमुपव्यं

प्र हिणोमि पृथिविः पितृयार्णः ।

मा देवयानैः पुनरा गा अत्र

पर्वधिं पितृषु जागृदि त्वम्

समिन्धने संकसुकं स्वस्वये

शुद्धा भवन्तः शुचयः पायकाः ।

जहाति विप्रमत्येनं पति

समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ॥ ११ ॥

देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्टान्यारहत् ।

मुच्यमानो निरेणसो—ऽमोंगस्मां अदास्त्याः ॥ १२ ॥

अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।

अभूम यमियाः शुद्धाः प्र ण आयुषि तारिपत् १३

संकसुको विकसुको निर्झयो यच्च निस्वरः ।

ते ते यदमं सर्वेदसो दूराद् दुरमनोनशन् ॥ १४ ॥

यो नो अर्धेषु वीरेषु यो नो गोर्ध्वजाविषु ।

क्रव्यादं निर्णदाममि यो अग्निर्जनयोपनः ॥ १५ ॥

अन्येभ्यस्त्वा पुर्णेष्व्यो गोभ्यो अर्धेभ्यस्त्वा ।

निः क्रव्यादं सुदामसि यो अग्निर्जीविनयोपनः १६

यस्मिन् देवा अमृजन् यस्मिन् मनुष्या उत ।

तस्मिन् वृतस्तायो मृदा त्वमग्ने दिवं रुह ॥ १७ ॥

समिद्धो अन्न आहुत स नो माम्यपंक्रमीः ।

अत्रैव दीदिदि द्यवि ज्योक् च सूर्ये दुरो ॥ १८ ॥

मीमे मृद्द्वयं नडे मृद्द्वयं

अग्नौ संकसुके च यत् ।

अयो अयो सुमार्या शीर्षकिमुपवर्हणे ॥ १९ ॥

सासे मर्लं सादयित्वा शीर्षकिमुपवर्हणे ।

अदामसिन्ध्यां मृदा शुद्धा भयत यमियाः ॥ २० ॥

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां

यस्तं एष इतरो देवयानात् ।

चक्षुष्मते दृग्जने तं ब्रवीमि

इदमे वीरा यद्वयो भगन्तु ॥ २१ ॥

इमे जीवा वि मूर्तराववृद्भन्

अभूद् मद्रा देवहृतिर्नो अथ ।

प्राज्ञो अगाम नृतये हस्ताप

सुयीरासो विदधामा वंदेम ॥ २२ ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि
 मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
 शतं जीवन्तः शरदः पुरुचीः
 तिमो मृत्युं दधतां पर्वतेन
 आ रोहतायुर्जरसं घृणाना
 अंनुपुषं यतमाना यति स्थ ।
 तान्यस्वष्टां सृजनिमा सृजोपाः
 सर्वमार्युर्नयतु जीवनाय
 यथाहान्यनुपुषं भवन्ति
 यथैतव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।
 यथा न पूर्वमपरो जहाति
 एवा धातरायुषि कल्पयैपाम्
 अदमन्वती रीयते सं रमध्वं
 यीरयध्वं प्र तरता सखायः ।
 अत्रां जहीत ये असन्दुरवा
 अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान्
 उत्तिष्ठता प्र तरता सखाय
 अदमन्वती नदी स्वन्दत इयम् ।
 अत्रां जहीत ये असप्रादीवाः
 दिवान्स्वोनानुत्तरेमाभि वाजान्
 ऐष्यदेवो घर्षतु आ रमध्वं
 श्रद्धा भवन्तः शुचयः पायकाः ।
 अतिप्रामन्नो दुरिता पुदानि
 नानं हिमाः सर्षवीरा मदेम
 उदीचीर्नः पशिनैषांयुमद्भिः
 अतिप्रामन्नोऽयंरान् परेभिः ।
 विः गान् एव्यं अर्षयः परेता
 मय्यं प्रत्याहन् पदपोषनेन
 मय्योः पुदं योपयन्तु वन्
 प्राणीषु भार्युः प्रतरं दधानाः ।
 धार्मीना मय्यं नुदता मध्वे
 धपं जीवागो विदग्धा धंदेम

॥ २३ ॥

॥ २४ ॥

॥ २५ ॥

॥ २६ ॥

॥ २७ ॥

॥ २८ ॥

॥ २९ ॥

॥ ३० ॥

इमा नारीरविध्रवाः सुपत्नीः
 आजनेन सर्पिणा सं स्पृशन्ताम् ।
 अनध्रवो अनमीवाः सुरन्ता
 आ रोहन्तु जनयो योनिमध्रे ॥ ३१ ॥
 व्याकरोमि हृदिपाहमेतौ
 तौ ब्रह्मेणा व्युहं कल्पयामि ।
 स्वधां पितृभ्यो अजरौ कृणोमि
 दीर्घेणार्युपा समिमान्स्वजाभि ॥ ३२ ॥
 यो नो अग्निः पितरो हृत्सु
 अन्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।
 मय्यहं तं परिं गृह्णामि देवं
 मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् ॥ ३३ ॥
 अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेतं दक्षिणा ।
 प्रियं पितृभ्यं आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियमृध
 द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यर्च्यो ।
 अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ३५
 यत् कृपते यद् वन्दते यच्च वस्नेन विन्दते ।
 सर्वं मर्त्यस्य तत्रास्ति क्रव्याद्येदनिराहितः ॥ ३६ ॥
 अयज्ञियो हृतवर्चा भवति नैनेन हविरस्तवे ।
 छिनसि कृप्या गोर्धनाद्यं क्रव्यादनुवर्तते ॥ ३७ ॥
 मुहुर्गृह्यैः प्र यदत्याति मर्त्यो नीत्ये ।
 क्रव्याधानग्निपन्तिकार्दनुविद्वान् यितापति ॥ ३८ ॥
 प्राह्यो गृह्णाः सं र्वज्यन्ते त्रिया यन्म्रियते पतिः ।
 प्रहोय विद्वानेप्योऽयः क्रव्यादं निरादधत् ॥ ३९ ॥
 यद् रिपं शर्मलं चकृम यच्च दुष्टृतम् ।
 आपो मा तस्मात्कृमन्त्युगोः संकमुकाश्च यत् ४०
 ता अघरादुदीचीरापवृत्रन्
 प्रजान्तीः पशिमैदेययानैः ।
 पर्वतम्य वृषभस्याधिं पृष्टे
 नवाभरन्ति सरितः पुराणीः ॥ ४१ ॥

अग्ने अक्रव्याप्तिः क्रव्यादं नृदा देवयजनं वह ॥४२॥
 इमं क्रव्यादा विवेशा—यं क्रव्यादमन्वगात् ।
 व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ॥४३॥
 अन्तर्धिर्देवानो परिधिर्मनुष्याणां
 अग्निर्गाहपत्य उभयानन्तरा धितः ॥ ४४ ॥
 जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने
 पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।
 सुगाहपत्यो वितपन्नरातिमुपासुपां श्रेयसां धेहस्यै ४५
 सर्वानग्ने सहमानः सप्तान्
 पयामूर्जे रयिमस्मासु धेहि ॥ ४६ ॥
 इममिन्द्रं वहि परिमन्वारंभध्वं
 स वो निर्वैश्वद् दुरिताद्वधात् ।
 तेनाप हतु शरुमापतन्तं
 तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥ ४७ ॥
 अनृद्वाहं प्लवमन्वारंभध्वं
 स वो निर्वैश्वद् दुरिताद्वधात् ।
 आ रोहत सवितुर्नावमेतां
 पृडभिरुर्वीभिरुर्गतिं तरेम ॥ ४८ ॥
 अहोपत्रे अन्वेपि विश्रत्
 क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः ।
 अनानुरान्तसुमनसस्तल्प विश्रत्
 ज्योगेव नः पुरुषगान्धिरधि ॥ ४९ ॥
 ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते प्रापं जीवन्ति सर्वदा ।
 क्रव्याद्यानां क्षरन्तिकार्दभ्वं इवानुवपते नडम् ॥५०॥
 येऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादां समासते ।
 ते वा अन्वेषां कुर्मा पर्यादधति सर्वदा ॥५१॥
 प्रेवं पिपतिपति मनसा मुहुरा वतंते पुनः ।
 क्रव्याद्यानां क्षरन्तिकार्दं—नुविद्वान् वितारंति ॥५२॥
 अविः कृष्णा भांगधेयं पशुनां
 सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं तं आहुः ।

मापाः पिष्टा भांगधेयं ते हृद्यं
 अरण्यान्या गह्वरं सचस्व ॥ ५३ ॥
 इपांकां जरतीमिष्टा तिलिपञ्चं दण्डनं नडम् ।
 तमिन्द्रं इमं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ॥ ५४ ॥
 प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा
 प्रविद्वान् पन्यां वि ह्या विवेशं ।
 परामीपामसुं दिदेशं
 दीधेणायुपा समिमान्सृजामि ॥ ५५ ॥
 ॥ ३८ ॥ (अथर्व० १८।१-२२)

मृगवहिराः । सर्वशोषामयाद्यकारणम् (यक्षनिवारणम्) ।
 अनुष्टुप् ; १२ अनुष्टुभगर्भो कङ्कमती अनुष्टुभगिण्क् ;
 १५ विराडनुष्टुप् ; २१ विराट् पठ्भाचृहती ;
 २२ पथ्यापठ्किः ।

शीर्षिकं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् ।
 सर्वं शीर्षण्यंते रोगं वह्निर्निर्मन्त्रयामहे ॥ १ ॥
 कर्णाभ्यां ते कङ्कूरेभ्यः कर्णशूलं विसर्पकम् ।
 सर्वं शीर्षण्यंते रोगं वह्निर्निर्मन्त्रयामहे ॥ २ ॥
 यस्य हेतोः प्रच्यवन्ते यक्ष्मः कर्णत आस्यतः ।
 सर्वं शीर्षण्यंते रोगं वह्निर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ३ ॥
 यः कृणोति प्रमोत—मन्धं कृणोति पूरुषम् ।
 सर्वं शीर्षण्यंते रोगं वह्निर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ४ ॥
 अहमेदमङ्ग्यरं विश्वाङ्ग्यं विसर्पकम् ।
 सर्वं शीर्षण्यंते रोगं वह्निर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ५ ॥
 यस्य म्रिमः प्रतीक्राश उद्धेपयति पूरुषम् ।
 तपमानं विश्वशारदं वह्निर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ६ ॥
 य ऊरु अंसुसर्पत्य—शो एति गवीर्निके ।
 यक्ष्मं ते अन्तरङ्गभ्यो वह्निर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ७ ॥
 यदि कामादपक्रामा—द्धेयाज्जायते परि ।
 हृदो यलासमर्कभ्यो वह्निर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ८ ॥

अश्वत्थे वीं निषर्दनं पुष्पं वीं वसतिप्लुता ।
 गोमात्र इत् किलांसय यत् सनर्वय पूरुपम् ॥५॥
 यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।
 विप्रः स उच्यते मियग् रक्षोहामीव्चातनः ॥६॥
 अश्वत्थती सौमावती—मूर्जयन्तीमुदोजसम् ।
 अविस्ति सर्वा औषधी—रस्मा अरिष्टतातये ॥७॥
 उच्छुष्मा औषधीनां गाथी गोष्ठादिवरते ।
 धनं सनिष्यन्तीना—मात्मानं तथं पूरुप ॥ ८ ॥
 इच्छतिर्नामं वो माता ऽथो ययं स्य निष्कृतीः ।
 सौराः पंतत्रिणीः स्यन् यदा मर्यति निष्कृथ ॥९॥
 अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव ब्रजमक्रमुः ।
 औषधीः प्राचुच्यवु—यत् किं च तन्वोऽु रपः १०
 यद्विमा वाजयद्रह—मोषधीर्हस्तं आनुधे ।
 आत्मा यस्मस्य नदयति पुरा जीवगृभो यथा ११
 यस्याौषधीः प्रसर्पथा—इमहं परेप्परः ।
 ततो यस्मं वि बाधध्व उग्रो मंध्यमदीरिव ॥१२॥
 साकं यक्ष्म प्र पंत चापेण किकिदीविना ।
 साकं वातस्य धाज्यां साकं नंदय निहाकया १३
 अन्या वीं अन्यामव—त्वन्यान्यस्या उपावत ।
 ताः सर्वाः संधिदाना इदं मे प्राचंता वचंः १४
 याः फलिनीयां अफला अणुप्पा याश्च पुष्पिणीः ।
 बृहस्पतिप्रसूता—स्ता नो मुञ्चन्त्वंहंसः ॥ १५ ॥
 मुञ्चन्तु मा शपथ्याऽु—दथो वरुण्यदुत ।
 अथो यमस्य पद्वीशात्
 सर्वेसाद् द्वेषकिल्विपात् ॥ १६ ॥
 अक्षपतन्तीरचदन् द्विष औषधयस्परि ।
 यं जीवमश्रवामहे न स रिप्याति पूरुपः ॥१७॥
 या औषधीः सोमराक्षी—शुद्धीः शतविचक्षणाः ।
 तासां त्वमस्युत्तमा—रं कामाय शो हृदे ॥ १८ ॥

या औषधीः सोमराक्षी—विष्टिनाः पृथिवीमनु ।
 बृहस्पतिप्रसूता अस्मै सं दंत वीर्यम् ॥ १९ ॥
 मा यो रिपत् खनिता यस्मै चाहं गनामि वः ।
 द्विपचतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ २० ॥
 याश्चेदसुपदृण्वन्ति याश्च दुरं परांगताः ।
 सर्वाः संगत्य वीरुधो ऽस्मै सं दंत वीर्यम् २१
 औषधयः सं वदन्ते सोमैत सह रामा ।
 यस्मै कृणोति ब्राह्मण—स्तं राजन् पारयामसि २२
 त्वमुत्तमास्योऽग्ने तथं वृक्षा उपस्तयः ।
 उपस्तिरस्तु सोऽुऽस्माकं
 यो अस्मां अमिदासति ॥ २३ ॥
 ॥ ४१ ॥ (अथर्वं ८।७।१-०८)

अथर्व । मेघजं, आयुष्मं, औषधयः । अणुपदृप् ; २ उपरिष्ठा-
 क्षुरिगृहती ; ३ पुर सधिग् ; ४ पथयदा परानुष्ठतिप्रगती ;
 ५-६, १०, २५ पथ्यापथ्युक्तिः (६ विराहगर्मा भुरिक्) ;
 ९ द्विपदार्थो भुरिगभुष्प ; १२ पथयदा विराहतिशब्दी ;
 १४ उपरिष्ठाक्षिबृहती ; २६ निवृत् ; २८ भुरिक् ।
 या वृध्वो याश्च शुक्रा
 रोहिणीकृत पृथ्वयः ।
 अस्तिनीः कृष्णा औषधीः
 सर्वा अच्छावदामसि ॥ १ ॥
 शर्यन्तामिमं पुरं
 यस्माद् देवेषितादधि ।
 यासां चौष्विता पृथिवी माता
 संमुद्रो मूलं वीरुधां वभूर्य ॥ २ ॥
 आपो अत्र दिव्या औषधयः
 तास्ते यस्ममेतस्य महांदहादनीनशान् ॥ ३ ॥
 प्रस्तृणती न्मभ्यिनीरेकशुद्गाः
 प्रतन्वतीरोषधीरा यंदामि ।
 अंशुमतीः काण्डिनीयो विराग्णा
 ह्यामि ते वीरुधो यंश्वदेवीरुध्राः पुंरुजीवनीः ॥४॥

हरिमाणं ते अङ्गेभ्यो—ऽप्यामन्तरोदरात् ।
 यक्ष्मोधामन्तरात्मनो वह्निर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ९ ॥
 आसौ बलासो भवतु मूर्धं भवत्वामपत् ।
 यक्ष्माणां सर्वेषां विपं निरवोचमहं त्वत् ॥ १० ॥
 वह्निर्विलं निद्रैवतु काहावाहं तवोदरात् ।
 यक्ष्माणां सर्वेषां विपं निरवोचमहं त्वत् ॥ ११ ॥
 उदरात् ते फलोन्नो नाभ्या हृदयादधि ।
 यक्ष्माणां सर्वेषां विपं निरवोचमहं त्वत् ॥ १२ ॥
 याः क्षीमानं विरुजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्पणीः ।
 अर्हिसन्तीरनामया निद्रैवन्तु वह्निर्विलम् ॥ १३ ॥
 या हृदयमुपपन्त्य—नुतन्वन्ति कर्कसाः ।
 अर्हिसन्तीरनामया निद्रैवन्तु वह्निर्विलम् ॥ १४ ॥
 याः पाश्वे उपपन्त्य—नुनिक्षन्ति पृष्ठीः ।
 अर्हिसन्तीरनामया निद्रैवन्तु वह्निर्विलम् ॥ १५ ॥
 यास्तिरर्ध्वोरुपपन्त्य—र्षणर्विक्षणासु ते ।
 अर्हिसन्तीरनामया निद्रैवन्तु वह्निर्विलम् ॥ १६ ॥
 या गुदां अनुसर्पन्त्या—न्त्राणि मोहयन्ति च ।
 अर्हिसन्तीरनामया निद्रैवन्तु वह्निर्विलम् ॥ १७ ॥
 या मज्जो निर्धर्यन्ति परुषि विरुजन्ति च ।
 अर्हिसन्तीरनामया निद्रैवन्तु वह्निर्विलम् ॥ १८ ॥
 ये अङ्गानि मर्दयन्ति यक्ष्मांसो रोपणास्तवे ।
 यक्ष्माणां सर्वेषां विपं निरवोचमहं त्वत् ॥ १९ ॥
 विसल्पस्यं विद्रुधस्यं वातीकारस्यं बालजेः ।
 यक्ष्माणां सर्वेषां विपं निरवोचमहं त्वत् ॥ २० ॥
 पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः ।
 धनूकादप्यर्णीरुष्णिहाभ्यः शीष्णो रोगमनीनशम् २१
 सं तं शीष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
 उद्यन्नादित्य रुदिमभिः
 शीष्णो रोगमनीनशोऽङ्गमेदमशिशमः ॥ २२ ॥

॥ १९ ॥ (अथघे० १।१३।१-७)

मदा । यक्ष्मविषहणं, चन्द्रमा, आयुधम् । अनुष्टुप्, ३
 वृद्धमता, ४ वृद्धपदा गुरिगुणित्, ५ उपरिष्टादि
 राह्युहता, ६ उष्णिगमर्मा निचुवगुष्ट्,

७ पथ्यावर्तितः ।

अश्रीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुटुकादधि ।
 यक्ष्मं शीर्षण्यंमस्तिष्का—जिह्वाया वि वृहामि ते १
 ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कर्कसाभ्यो धनूकयात् ।
 यक्ष्मं दोषण्यंमंसाभ्यां यादुभ्यां वि वृहामि ते २ ॥
 हृदयात् ते परि ह्योन्नो हर्लीक्षणात् पार्श्वभ्याम् ।
 यक्ष्मं मत्सनाभ्यां प्लीहो यकनस्ते वि वृहामसि ॥ ३ ॥
 आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
 यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशे—नाभ्या वि वृहामि ते ४ ॥
 ऊरुभ्यां अर्ध्विचन्द्र्यां पार्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
 यक्ष्मं भसत्सं श्रोणिभ्यां
 भासत्सं भसत्सो वि वृहामि ते ॥ ५ ॥
 अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो ध्रुमनिभ्यः ।
 यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ६
 अङ्गेभ्यो लोत्रिलोम्नि यस्ते पर्वणिपार्णि ।
 यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं
 कदयपस्य धीवहेण विव्वञ्चं वि वृहामसि ॥ ७ ॥

ओषधिवनस्पतयः ।

॥ ४० ॥ (अ० १०।९।१-२३)

आषधो भिषग् । ओषधय । अनुष्टुप् ।

या ओषधीः पूर्वा ज्ञाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
 मने नु वभ्रूणामहं शतं धामानि सत ॥ १ ॥
 शतं वो अम्य धामानि सहस्रमृत वो हहः ।
 अथा शतकत्वो युय—मिमं मे अगद कृत ॥ २ ॥
 ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रस्यं ती ।
 अथा इव सजित्वरी—धीरुधः पारयिष्णो ॥ ३ ॥
 ओषधीरिति मातर—स्तद वो देधीरुपं हृत् ॥ ४ ॥
 सनेयमभ्यं गां वासं आत्मानं तवं पूर्य ॥ ४ ॥

अथत्थे वो निषर्दनं पुषे वो वसतिष्कृता ।
 गोमाज इत् किलास्य यत् सनर्वय पूरुपम् ॥५॥
 यत्रोपधीः समग्मत राजानः समिताविष ।
 विप्रः स उच्यते मियग् रक्षोहार्मावचातनः ॥६॥
 अथावृती सोमावृती-मूर्जर्यन्तीमुदोजसम् ।
 अविस्ति सर्वा ओषधी-रस्मा अरिष्टतातये ॥७॥
 उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिघरेते ।
 धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुप ॥ ८ ॥
 इच्छतिर्नाम घो माता ऽथो ययं स्य निष्कृतीः ।
 सीराः पंतत्रिणीः स्यन् यदाभयति निष्कृय ॥९॥
 अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव ब्रजमक्रमुः ।
 ओषधीः प्राञ्च्ययु-यत् कि च तन्त्रोऽु रपः १०
 यद्रिमा वाजयद्ब्रह्म-मोषधीर्हस्तं आनुधे ।
 आत्मा यस्मस्य नदयति पुरा जीवगृमो यथा ११
 यस्यापधीः प्रसर्पथा-इमङ्क परेष्वरुः ।
 ततो यस्मं वि बाधध्व उग्रो मन्ध्यमशीरिव ॥१२॥
 साकं यस्म प्र पंत चापेण किकिदीविना ।
 साकं वातस्य धाज्या साकं नदय निहाकया १३
 अन्या वो अन्यामव-त्वन्यान्यस्या उपावत ।
 ताः सर्वाः संधिदाना इदं मे प्रायता वचः १४
 याः फलिनीया अंकला अंपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
 बृहस्पतिप्रसृता-स्ता नो मुञ्चन्वहंसः ॥ १५ ॥
 मुञ्चन्तु मा शपथ्याऽु-दधो वरुण्यदुत ।
 अथो यमस्य पड्वीशात्
 सर्वसाद् देवकिल्विपात् ॥ १६ ॥
 अथपतन्तीरयदन् द्विष ओषधयस्परि ।
 यं जीयमन्नवाग्महे न स रिष्याति पूरुपः ॥१७॥
 या ओषधीः सोमराक्षी-शुद्धीः शतविचक्षणाः ।
 तासां त्वयस्युत्तमा-रं कामाय शो हृदे ॥ १८ ॥

या ओषधीः सोमराक्षी-विष्टिनाः पृथिवीमनु ।
 बृहस्पतिप्रसृता अस्य सं दंत धीर्यम् ॥ १९ ॥
 मा वो रिपत् क्षनिता यस्मं चाहं गनामि यः ।
 द्विपद्यतुप्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ २० ॥
 याश्चेदमुपगृण्यन्ति याश्चं दुरं परांगताः ।
 सर्वाः संगत्य धीरुद्यो ऽस्य सं दंत धीर्यम् २१
 ओषधयः सं वदन्ते सोमं सह रामा ।
 यस्मं कृणोति ब्राह्मण-स्तं राजन् पारयामसि २२
 त्वमुत्तमास्योपधे तव वृथा उपस्तयः ।
 उपस्तिरस्तु सोऽुस्माकं
 यो अस्मां अमिदासति ॥ २३ ॥
 ॥४१॥ (अथर्वं ८।७।१-८)
 अथवा । मेघज्यं, आयुष्यं, ओषधयः । अतुष्टुः ; २ उपरिष्ठा-
 द्भुरिगृहीती ; ३ पुर अग्निः ; ४ पयपदा परानुष्ठुभतिप्रगती ;
 ५-६, १०, २५ पथ्यापक्षिः (६ विराड्गर्मा भुरिद्) ;
 ९ द्विपदार्थी भुरिगमुष्टुः ; १२ पयपदा विराड्भतिशकरी ;
 १४ उपरिष्ठाधिचुद्ब्रह्मी ; २६ निचृत् ; २८ भुरिक् ।
 या वृध्वो याश्चं शुक्रा
 रोहिणीकृत पृथ्वयः ।
 अस्तिनीः कृष्णा ओषधीः
 सर्वा अच्छावदामसि ॥ १ ॥
 श्रार्थन्तामिमं पुरं
 यस्माद् देवेषितादधि ।
 यासां दौषिप्ता पृथिवी माता
 संमुद्रो मूलं धीरुर्धा वभूय ॥ २ ॥
 आपो अग्रं दिव्या ओषधयः
 तास्ते यस्ममेतस्य मुमहादह्लादनीनशान् ॥ ३ ॥
 प्रस्नृणती न्तभ्यिनीरेकशुङ्गाः
 प्रतन्वतीरोषधीरा धंदाभि ।
 अंशुमतीः काण्डिनीयो विदांथा
 ह्यामि ते धीरुर्धो वैभ्यदेवीरग्राः पुंरुज्जीयनीः ॥४॥

यद् वः सहः सहमाना वीर्यं यच्च वो बलम् ।
 तेनेमस्माद् यस्मात् पुरुषं मुञ्चत
 ओपधीरथो कृणोमि भेषजम् ॥ ५ ॥
 जीवलां नधारिषां
 जीवन्तीमोपधीमहम् ।
 अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पां
 मधुमतीमिह ह्रुवेऽस्मा अरिष्टतातये ॥ ६ ॥
 इहा यन्तु प्रवेतसो, मेदिनीर्वचसो मम ।
 यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥ ७ ॥
 अग्नेर्घासो अर्पां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवाः ।
 ध्रुवाः सहस्रनाम्नी—भेषजीः सन्वाभृताः ॥ ८ ॥
 अयकौल्या उदकात्मान ओपधयः ।
 व्युत्पन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्ग्यः ॥ ९ ॥
 उन्मुञ्चन्तीर्विवरणा उग्रा या विपद्रुपणीः ।
 अर्धो बलासनाशानीः कृत्यादुपणीश्च
 यास्ता इहा यन्त्वोपधीः ॥ १० ॥
 अपकीताः सह्यायसी—वीरुधो या अभिष्टुताः ।
 त्रार्यन्तामस्मिन् त्रामे गामद्वं पुरुषं पुशुम् ॥ ११ ॥
 मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां
 मधुमन्मर्ष्यं वीरुधो यभूय ।
 मधुमत् पर्णं मधुमत् पुष्पमासां मधोः संभक्ता
 अमृतस्य भक्षो घृतमर्षं दुहतां गोपुंरोगवम् ॥ १२ ॥
 यावतीः किर्यतीध्रेमाः पृथिव्यामध्वोपधीः ।
 ता मां सहस्रपुष्पो मृत्योर्मुञ्चन्वर्हसः ॥ १३ ॥
 पर्याप्रो मणिर्वीरुधां त्रार्यमाणोऽभिदास्तित्पाः ।
 धर्मीयाः सर्वा रक्षांस्य—पं हन्त्यधि दूरमस्मत् ॥ १४ ॥
 विहस्यैव स्तनयोः सं विजन्ते
 अतारिष विजन्त आभृताभ्यः ।
 गवां यस्मः पुर्णगाणां वीरुधिः
 धर्निगुप्तां नाप्या प्तु श्रोत्याः ॥ १५ ॥

मुमुक्षाना ओपधयो—ऽग्नेर्वैश्वानरादधि ।
 भूमिं संतन्वतीरित् यासां राजा वनस्पतिः ॥ ६ ॥
 या रोहन्त्याङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च ।
 ता नः पर्यस्वतीः शिवा
 ओपधीः सन्तुः शं हृदे ॥ १७ ॥
 याश्चाहं वेदं वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा ।
 अज्ञाता जानीमश्च या यासु विद्य च संभृतम् ॥ १८ ॥
 सर्वाः समग्रा ओपधी—वोधन्तु वचसो मम ।
 यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥ १९ ॥
 अश्वत्यो द्रुमो वीरुधां सोमो राजामृतं ह्रुविः ।
 व्रीहियैवश्च भेषजो दिवस्पुत्रावर्मत्यौ ॥ २० ॥
 उज्जिहीध्वे स्तनर्यत्य—भिकन्दत्योपधीः ।
 यदा वः पृथिमातरः पर्जन्यो रेतसावति ॥ २१ ॥
 तस्यामृतस्येमं बलं पुरुषं पाययामसि ।
 अर्धो कृणोमि भेषजं यथासच्छतहायनः ॥ २२ ॥
 वराहो वेदं वीरुधं नकुलो वेदं भेषजीम् ।
 सर्पा गन्धर्वा या विदु—स्ता अस्मा अवसे हुवे २३
 याः सुपर्णा आङ्गिरसी—दिव्या या रघटां विदुः ।
 वयांसि हंसा या विदु—र्याश्च सर्वे पतध्रिणः ।
 मृगा या विदुरोपधी—ता अस्मा अवसे हुवे २४
 यावतीनामोपधीनां गावः
 प्राश्नन्त्यध्या यावतीनामजावयः ।
 तावतीस्तुभ्यमोपधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः ॥ २५ ॥
 यावतीषु मनुष्या भेषजं भिपजो विदुः ।
 तावतीर्विभेषजी—रा भंगामि त्वामभि ॥ २६ ॥
 पुष्पवतीः प्रसर्मतीः फलिनीरफला उत ।
 संमातरं श्व दुहाम—स्मा अरिष्टतातये ॥ २७ ॥
 उत त्पोहापं पञ्चशलाह—धो दशशलादुत ।
 अर्धो यमस्य पट्टीनाद्
 विभ्वस्माद् देवकिव्दिपात् ॥ २८ ॥

॥ ८१ ॥ (अथर्व ० ६।१६।१-३)

सृष्टिः । वनस्पतिः (चिकिद्वा), ३ शोमः । अनुष्टुप्,
३ त्रिपदा विराग्नाम गायत्री ।

या ओर्षधयः सोमराशी - वैहीः शतर्विचक्षणाः ।

वृहस्पतिप्रस्ता - स्ता नो मुञ्चन्वहंसः ॥ १ ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादुद - यो वरुण्यादुद ।

अथो यमस्य पर्द्वाशाद्

विभ्वस्माद् देवकिल्विगात् ॥ २ ॥

यद्यश्रुया मनसा यद्य वाचा

उपरिम जाप्रतो यत् स्वपन्तः ।

सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु ॥ ३ ॥

॥ ४३ ॥ (वा० य० ४।१; ५।४१; ६।१५)
(ओषधयः ।)

ओर्षधे प्रायम्व स्वधिते मैनेर द्विस्तीः ॥ १ ॥

॥ ४४ ॥ (वा० य० ११।४७-४८)
(ओषधयः ।)

ओर्षधयः प्रतिमोदध्वमाग्निमेतः

श्रियामान्तमभ्यर्ष युष्माः ॥ ४७ ॥

ओर्षधयः प्रतिगृष्णीत पुष्पवतीः सुपिपुलाः ।

अयं वो गर्भे ऽ ऋत्विष्यः

प्रत्नः सुधस्थमासदत् ॥ ४८ ॥

॥ ४५ ॥ (वा० य० ११।७३; ३।५४)
(ओषधिः ।)

अभ्यत्ये वो निपदनं पुणे चो यमतिष्ठता ।

गोमाज् ऽ इत्किलासथ यत् सनयथ पूरयम् ७२

॥ ४६ ॥ (वा० य० १८।१०-१४)
(अन्नम् ।)

पार्जो नः सत प्रदिश - धर्न्यो वा परायतः ।

पार्जो नो विर्वैदेव - धर्नमानाविदायतु ॥ ३२ ॥

पार्जो नो ऽ सप्य प्रतुवाति दानं

पार्जो देवांऽ ऋतुभिः कल्पयानि ।

पार्जो हि मा सर्वधीरं ज्ञानं

विभ्या ऽ आशा पार्जपतिर्जपयम् ॥ ३३ ॥

पार्जः पुरस्तादुत मभ्यतो नो
पार्जो देवान् हृषियां वर्धयति ।

पार्जो हि मा सर्वधीरं ज्ञानं

सर्वो ऽ आशा पार्जपतिर्जपयम् ॥ ३३ ॥

॥ ४७ ॥ (ऋ० १।१०।६)

गोतमो राहृणः । विश्वेदेवाः (वातकिन्वोयधवः) । गायत्री ।

मधु यातां ऋतायने मधुं अरन्ति सिन्धवः ।

माध्वीनिः सन्धोर्षधीः ॥ ६ ॥

॥ ०८ ॥ (ऋ० ३।५७।३)

गाधिनो विश्वमित्रः । विश्वे देवाः (ओषधयः पूर्वमरीचयो वा) ।
त्रिष्टुप् ।

या जामयो वृष्णं इच्छन्ति शक्तिं

नमस्यन्तीर्जानते गर्भमसिन् ।

अच्छां पुत्रं धेनुवो वावसाना

महश्चरन्ति विभ्रंतं चर्षुषि ॥ ३ ॥

॥ ४९ ॥ (अथर्व ० ३।१८।१-६)

अथर्वी । वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ अनुष्टुप्गमां वनुधया
उपिद्, ६ उःवागमां पथ्याभ्यः ।

इमां सनाभ्योर्षधिं वीहयां वर्धयत्तमाम् ।

यया सपन्तीं याधते यया संविन्दते पतिम् ॥ १ ॥

उत्तानपणे सुमगे देवजुने महस्यति ।

सपन्तीं मे परां णुद पतिं मे केवलं हृषि ॥ २ ॥

नदि ते नामं जुधाह नो अस्मिन् रमसे पती ।

परमिव परावर्त सपन्तीं गमयाममि ॥ ३ ॥

उत्तराहमुत्तं उत्तरेदुत्तराभ्यः ।

अथः सपन्तीं या ममा - धर्मं मार्षगभ्यः ॥ ४ ॥

अहमस्मि सदमाना - थो त्वमस्मि मामतिः ।

उने महस्यती भूत्वा सपन्तीं मे मदावर्त ॥ ५ ॥

अमि नऽद्यां सदमाना - मुपं तेऽद्यां महोपयन्तीम् ।

मामनु प्र ते मनो वर्यं गोर्विष थायतु

पथा पारिव धापतु ॥ ६ ॥

सत्यजितं शपथयार्थं सहमानां पुनःसुराम् ।
 सर्वाः समह्योर्षधी-रितो नः पार्यादिति ॥ २ ॥
 या शशाप शर्पनेन याचं मूरमात्रधे ।
 या रसस्य हरणाय ज्ञानमारेभे तोकमस्तु सा ३
 यां तै चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते ।
 आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः
 तयां कृत्याकृतौ जहि ॥ ४ ॥
 दौर्षप्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अश्चमराय्यः ।
 दुर्णाग्नीः सर्वा दुर्वाच-स्ता अस्मन्नाशयामसि ॥ ५ ॥
 क्षुधामारं वृष्णामारम्-गोतामनपत्यताम् ।
 अपामार्गं त्वया व्यं सर्वं तदपं मृज्महे ॥ ६ ॥
 तूष्णामारं क्षुधामारम्-थो अक्षपराज्यम् ।
 अपामार्गं त्वया व्यं सर्वं तदपं मृज्महे ॥ ७ ॥
 अपामार्गं ओर्षधीनां सर्वासामेक इद् वशी ।
 तेन ते मृज्म आस्थितम्-थ त्वमंगदक्षर ॥ ८ ॥

॥ ५७ ॥ (अथर्वे ० ११८१-८)
 शुकः । अपामार्गो वनस्वति । अनुष्टुप्, बृहतीगर्भो ।
 समं ज्योतिः स्येणा - द्वा रात्रीं समावती ।
 कृणोमि सत्यमृतये-ऽरसाः संस्तु कृन्वरीः ॥ १ ॥
 यो देवाः कृत्यां कृत्या हरादविदुयो गृहम् ।
 यत्सो धागरीव मातरं तं प्रत्यगुपं पचताम् ॥ २ ॥
 अमा कृत्या पाप्मानं यस्तैनान्यं जिघांसति ।
 अदर्मान्मन्स्यां दुग्धायां ॥ ३ ॥
 सहेन्द्रधामन् विदिमान् विप्रिंवां छायाया त्यम् ।
 प्रति स्म चक्रुरे कृत्यां मियां मियायते हर ॥ ४ ॥
 अनयादमोरष्या सर्वाः कृत्या अद्दुपम् ।
 यां क्षेत्रे चक्रुरो गोपु यां यां ते पुर्गेणु ॥ ५ ॥
 यक्षकारं न शशाकः कर्तुं शब्धे पादमद्गुर्मिम् ।
 चकारं भद्रमस्मभ्यमा-स्मने तपनं तु सः ॥ ६ ॥

अपामार्गोऽपं मार्तुं क्षेत्रियं शपथश्च यः ।
 अपाहं यातुधानीर-पु सर्वा अराय्यः ॥ ७ ॥
 अपमृज्यं यातुधानान-पु सर्वा अराय्यः ।
 अपामार्गं त्वया व्यं सर्वं तदपं मृज्महे ॥ ८ ॥
 ॥ ५८ ॥ (अथर्वे ० ११९१-८)
 शुकः । अपामार्गो वनस्वति । अनुष्टुप्, २ पद्यावृत्ति ।
 उतो अस्यवंधुरुदु-तो अलि नु जांमिहत् ।
 उतो कृत्याकृतः प्रजां
 नडमिवा क्षिप्रि चार्पिकम् ॥ १ ॥
 शाश्वणेन पर्युक्तानि कर्षेन नार्पेन ।
 सेनेवैपि त्विपीमनी न तत्र
 भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योपधे ॥ २ ॥
 अग्नेष्योर्षधीनां ज्योतिषेणामिदीपयन् ।
 उत प्रातासि पाकुस्या-थो हुन्तासि रूक्षसः ॥ ३ ॥
 यद्दो देवा अमुंसां-स्वयाग्ने निरकुंजत ।
 ततस्त्वमघ्योपधे-ऽपामार्गो अजायथाः ॥ ४ ॥

विमिन्दती शतशांवा
 विमिन्दन् नाम ते पिता ।
 प्रत्यग् वि भिन्नि त्वं तं
 यो अस्मां अभिद्रामति ॥ ५ ॥
 असद् भूम्याः सममगन्
 तद् यामेति मुहद् व्यचः ।
 तद् वै ततो विभ्रुपायन् प्रत्यक् कृतांरमृज्मत् ६
 प्रत्यद् दि संभ्रुविध प्रनीचोर्नफल्मम् ।
 सर्गान् मच्छ्रुप्यां अपि सर्गियो यावया बुधम् ७
 शनेन मा परिं पादि मद्रथेणामि र्दश मा ।
 इन्द्रंस्ने वीरुधां पत उग्र श्रोमानाम्मा दधन् ८
 ॥ ५९ ॥ (अथर्वे ० ७१६१-३)
 शुकः । अपामार्गो वनस्वति । अनुष्टुप् ।
 प्रनीचोर्नफलो हि न्यम-पामार्गं श्रोतेय ।
 सर्गान् मच्छ्रुप्यां अपि सर्गियो यावया इतः ॥ १ ॥

यद् दुष्कृतं यच्छर्मलं यद् वा चेरिम प्रापया
त्वया तद् विश्वतोमुखा—पामार्गार्पं मृज्महे ॥ २ ॥

श्यावदेता कुनखिना वण्डेन यत् सहासिम ।
अपामार्गं त्वया वयं सर्वं तदपं मृज्महे ॥ ३ ॥

॥ ६० ॥ (अथर्व० ६।५९।१-३)

अथर्वः । रुद्रः, अरुन्धती औषधिः । अनुष्टुप् ।

अनुडुद्गयस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति ।
अर्धेनये वयंसे शर्मं यच्छु चतुष्पदे ॥ १ ॥

शर्मं यच्छुत्वोषधिः सह देवीररुन्धति ।
करत् पर्यस्वन्तं गोष्ठमं—युष्मो उत पूरुषान् ॥ २ ॥

विश्वरूपां सुभगाम्—च्छावदामि जीवलाम् ।
सा नो रुद्रस्यास्तां हेति दूरं नयतु गोभ्यः ॥ ३ ॥

॥ ६१ ॥ (अथर्व० ६।९५।१-३)

भृगुत्रिः । वनस्पतिः (कुशोषधिः) । अनुष्टुप् ।

अश्वत्थो देवसद्वन—स्तुतीयस्यामितो दिवि ।
तन्नामृतस्य चक्षुषं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ १ ॥

द्विरण्ययी नौरत्वरु—द्विरण्यवन्धना दिवि ।
तन्नामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ २ ॥

गर्भो अस्थोपधीनां गर्भो द्विमर्घतामुत ।
गर्भो विश्वस्य भृतस्ये—मं मे अगदं वृधि ॥ ३ ॥

॥ ६२ ॥ (अथर्व० ६।१०९।१-३)

अथर्वः । पिपली-भेषजं, आयुः । अनुष्टुप् ।

विष्णुनी क्षिप्रभेषज्यु—तातिविज्भेषजी ।
तां देवाः समकल्पय—प्रियं जीवितया अलम् ॥ १ ॥

विष्णुन्युः स्वर्ग्यदन्ता—यतीर्जनतादधि ।
यं जीवमक्षवांमदं न न रिप्याति पूर्यः ॥ २ ॥

असुरारम्यान्त्यग्नान् देवास्तयोदयन् पुनः ।
घानीकृतम्य भेषजी—मयो क्षिप्रस्यं भेषजीम् ॥ ३ ॥

॥ ६३ ॥ (अथर्व० १।१५।१-५)

घाननः । वृद्धितर्गो वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ भुरिद् ।

शं नो देवी पृश्निपण्यं—शं निष्कृत्वा अकः ।
उमा हि कण्वजगती तामामहि नदस्वतीम् १

सहमानेयं प्रथमा पृश्निपण्यंजायत ।
तथाहं दुर्णासां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव ॥ २ ॥

अरायमसूक् पावानं यश्च स्फाति जिह्वीपति ।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपणिं सहस्व च ॥ ३ ॥

गिरिमेनां आ वेशय कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तांस्त्वं देवि पृश्निपण्यं—शिरिवानुदहन्निहि ॥ ४ ॥

परांच एनान् प्र णुद् कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तमोसि यत्र गच्छन्ति तत् कृव्यादौ अजीगमम् ५

॥ ६४ ॥ (अथर्व० ४।११।१-७)

श्रुगुः । रोहणी वनस्पतिः । अनुष्टुप्, १ त्रिपदा गायत्री,

त्रिपदा स्वमध्या भुरिग्गायत्री, ७ वृद्धती ।

रोहण्यसि रोहण्यस्त्रश्चिह्नस्य रोहणी ।
रोह्येदमरुन्धति ॥ १ ॥

यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्—मस्ति पेष्टं त आत्मनि ।
धाता तद् अद्रया पुनः सं दधत् पर्या परः २

सं ते मज्जा मज्जा भवतु समु ते पर्या परः ।
सं ते मांसस्य विस्रं—स्ते समस्थयपि रोहतु ॥ ३ ॥

मज्जा मज्जा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु ।
अख्क् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ४

लोम लोम्ना सं कल्पया
त्वचा सं कल्पया त्वचम् ।

अख्क् ते अस्थि रोहतु चिह्नं सं धेहोपधे ५

स उत् तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव्य
रथः सुचक्रः सुपयिः सुनाभिः ।

प्रति तिष्ठोर्ध्वः ॥ ६ ॥

यदि कर्नं पतित्या संशुधे
यदि पादमा प्रहतां जुघानं ।

श्रुगु रथस्येपाह्वानि सं दधत् पर्या परः ॥ ७ ॥

॥ ६५ ॥ (अथर्व० ५।५।१-२)

अथर्व। लाक्षा। अनुष्टुप्।

रात्रीं माता नमः पिता—यन्मा तं पितामहः ।
 सिलाची नाम वा असि
 सा देवानामसि स्वसा ॥ १ ॥
 यस्त्वा पैवंति जीवंति धार्यसे पुरुषं त्वम् ।
 भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्जनी ॥ २ ॥
 वृक्षं वृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कुन्वला ।
 जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्पर्णी नाम वा असि ३
 यद् वृण्डेन यद्विप्या यद् वारुहंरसा कृतम् ।
 तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पुरुषम् ४
 भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्य—श्वत्थात् खंदिराञ्जवात्।
 भद्राभ्यधोर्धात् पर्णात् सा न पहांरुचति ॥ ५ ॥
 हिरण्यवर्णे सुमंगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे ।
 रुतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतिनाम् वा असि ६
 हिरण्यवर्णे सुमंगे शुभे लोमशयक्षणे ।
 अपामसि स्वसा लाक्षे धातो ह्यात्मा यंभूय ते ७
 सिलाची नाम कानीनो—ऽजयधु पिता तव ।
 अभ्यो यमस्य यः श्याव—स्तस्य ह्यात्मास्युद्धिता ८
 अर्धस्यान्नः संपतित्वा सा वृक्षां अभि सिप्यदे ।
 सरा पतत्रिणी भूत्वा सा न पहांरुचति ॥ ९ ॥

॥ ६६ ॥ (अथर्व० ५।४।१-१०)

शुभविष्णोः । कुष्ठो, यस्मिनाशनम् (कुष्ठतस्मिनाशनम्) ।
 अनुष्टुप्, ५ गुरिरे, ६ गायत्री, १० उल्लिख्यमां निचूत् ।
 यो गिरिष्वजापया धीरुधां चलवत्तमः ।
 कुष्ठेहि तस्मिनाशन तस्मान्नै नाशयंत्रितः ॥ १ ॥
 सुपर्णसुवर्णे गिरौ जातं हिमवतस्परि ।
 धनैरभि भुत्वा यन्ति विदुर्हि तस्मिनाशनम् २
 अथत्यो देवमर्दन—मृत्योयस्यामितो दिवि ।
 तन्नामृतस्य चक्षणे देवाः कुष्ठमयन्वत ॥ ३ ॥

हिरण्ययी नौरचर—हिरण्यवन्धना दिवि ।
 तन्नामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमयन्वत ॥ ४ ॥
 हिरण्ययाः फन्यां आसु—धरित्राणि हिरण्यया ।
 नावो हिरण्ययीरासुन् यामिः कुष्ठं निरावहेन् ५
 इमं मे कुष्ठं पूर्युं तमा वंदे तं निष्कुरु ।
 तमुं मे अगदं कृधि ॥ ६ ॥
 देवेभ्यो अधि जातोऽसि
 सोमस्यासि सर्गा हितः ।
 स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै सुड ॥ ७ ॥
 उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम् ।
 तत्र कुष्ठस्य नामा—न्युत्तमानि वि भैजिरे ॥ ८ ॥
 उत्तमो नाम कुष्ठा—स्युत्तमो नाम ते पिता ।
 यस्मै च सर्वे नाशयं तस्मान्नै चारुसं कृधि ॥ ९ ॥
 शीर्षामयमुपहृत्वा—मस्योस्तन्योऽपु रपः ।
 कुष्ठस्तत् सर्वं निष्कुरु देवं समह वृषण्यम् १०

॥ ६७ ॥ (अथर्व० ११।१६।१-१०)

शुभविष्णोः । कुष्ठः (कुष्ठनाशनम्) । अनुष्टुप्; २, ३ ऋग-
 याना पद्यापाङ्कः; ४ पटुवदा जगती; ५ सप्तपदा शकरी,
 ६-८ आष्टिः (५-८ वज्रवमाना ।)
 पेतुं देवन्नार्यमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि ।
 तस्मान्नै सर्वे नाशयं सर्वाश्च यानुयान्युः ॥ १ ॥
 श्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिपः ।
 नद्यायं पुरुषो रियत् ।
 यस्मै परिध्रवीमि त्वा स्यांप्रातरथो दिवां ॥ २ ॥
 जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता ।
 नद्यायं पुरुषो रियत् ।
 यस्मै परिध्रवीमि त्वा स्यांप्रातरथो दिवां ॥ ३ ॥
 उत्तमो अस्योपधीनामनुद्धान्
 जर्गतामिव ध्याप्रः श्यपदामिव ।
 नद्यायं पुरुषो रियत् ।
 यस्मै परिध्रवीमि त्वा स्यांप्रातरथो दिवां ॥ ४ ॥

त्रिः शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्य - खिरात्रित्येभ्यस्परि ।

त्रिजातो विश्वभैषजः ।

स कुष्ठो विश्वभैषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।

तन्मानं सर्वं नाशय सर्वोश्च यातुधान्यः ॥५॥

अद्वयत्यो देवसर्दन - स्तृतीयस्यामितो द्विवि ।

तत्रामृतस्य चक्षुषं ततः कुष्ठो अजायत ।

स कुष्ठो विश्वभैषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।

तन्मानं सर्वं नाशय सर्वोश्च यातुधान्यः ॥ ६ ॥

द्विरण्ययी नौरंवर - द्विरण्यवधना द्विवि ।

तत्रामृतस्य चक्षुषं ततः कुष्ठो अजायत ।

स कुष्ठो विश्वभैषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।

तन्मानं सर्वं नाशय सर्वोश्च यातुधान्यः ॥ ७ ॥

यत्र नायप्रधदानं यत्र द्विमवतः शिरः ।

तत्रामृतस्य चक्षुषं ततः कुष्ठो अजायत ।

स कुष्ठो विश्वभैषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।

तन्मानं सर्वं नाशय सर्वोश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥

यं त्या घेद पूर्व इक्ष्वाको यं घां त्या कुष्ठ काम्यः ।

यं या यतो यमात्म्य - स्तेनासि विद्वभैषजः ॥९॥

प्रीपलांको नृतीर्यकः सदग्निर्द्वयं दायनः ।

तन्मानं पितृधायायां - धृताङ्गं परां सुय ॥१०॥

॥ ६८ ॥ (अथर्वं ६।११।१-३)

अथ निः । अग्निः । (केशवर्धनी औषधिः) । अनुष्टुप् ।

रमा यादितुप्रः पृथिवी - स्तायां ह मूर्तिरुत्तमा ।

मातामधि गृन्तो हृदं भैषजं रम्भुं अग्रमम् ॥११॥

धेष्टमवि भयजानां परिसंघं धीरधानाम् ।

शोभो नगं इव शोभेषु देवेषु परंजो यथा ॥ २ ॥

रंभुर्नानाभूयः गिरास्यः गिरासथ ।

उत स्य रंभुर्दंष्ट्री - र्भो ह वंभुवर्धनीः ॥ ३ ॥

॥ ६९ ॥ (अथर्वं ६।१३।१-३)

वातहव्यः । नितली वनस्पतिः (केशवर्धनम्) । अनुष्टुप् ।

२ एकावसाना द्विपदा सत्री बृहती ।

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योपधे ।

तां त्वां नितलिं केशोभ्यो दंष्ट्रणाय खनामसि १

दंष्ट्रं प्रतान् जनयाजातान्

जातानु वर्षीयसस्क्रुधि ॥ २ ॥

यस्ते केशोऽव्यपद्यते समूलो यश्च वृध्वते ।

इदं तं विद्वभैषज्या - भि विञ्जामि वीरुधां ॥ ३ ॥

॥ ७० ॥ (अथर्वं ६।१३।१-१)

वीतहव्यः । वनस्पति (केशवर्धनम्) । अनुष्टुप् ।

यां जुमदंशिरखनद् दुहित्रे केशवर्धनीम् ।

तां वीतहव्ये आमरं - दसितस्य गृहेभ्यः ॥ १ ॥

अभीष्टुना मेयां आसन् व्यामेनाजुमेयां ।

केशां नडा इव वर्धन्तां

शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥ २ ॥

दंष्ट्र मूलमात्रं यच्छ वि मध्यं यामयौपधे ।

केशां नडा इव वर्धन्तां

शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥ ३ ॥

॥ ७१ ॥ (अथर्वं ६।१६।१-५)

धौनकः । चन्द्रमाः, मन्त्रोक्तदेवताः (आक्षिरोपगोपत्रम्) ।

अनुष्टुप्, १ निचूरीशपदा गायत्रीः, ३ बृहतीगर्भा इन्द्रमाल-

वृष्टुप्, ४ त्रिपदा प्रतिष्ठा ।

आर्ययो अनाययो रसंस्त उग्र आययो ।

धा ते परम्भमंशति ॥ १ ॥

विदहो नाम ते पिता मदार्यती नाम ते माता ।

स दिनं त्यमंति य - म्यमात्मानमाययः ॥ २ ॥

तीर्विलिकेऽर्धेऽलया - पायमैलव पैलयीत् ।

बधुर्धं बधुर्धं धावैति निराल ॥ ३ ॥

शल्लवात्सि नृप्यो मिलाज्जात्याम्युस्तं ।

नीत्यामत्साल्या ॥ ४ ॥

(५५०)

॥ ७१ ॥ (अथर्वं ६।३०।१-३)

उपारिवध्रवः । शमी (पापशमनम्) । जगती, २ त्रिष्टुप्,
३ चतुष्पाच्छंङ्कमत्पनुष्टुप् ।

देवा इमं मर्धुना संयुतं यथं
सरस्वत्यामधि मृणावचक्रुषुः ।
इन्द्रं आसीत् सौरपतिः शतक्रतुः
कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः ॥ १ ॥
यस्ते मर्दाऽवकेशो विकेशो
येनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि ।

आराव् त्वदन्या वनानि वृश्चि
त्वं शमि शतवल्शा वि रोह ॥ २ ॥

वृहत्पलाशो सुमंगे वषट्पृञ्ज क्रतावदि ।
मातेर्व पुत्रेभ्यो मृडु केशेभ्यः शमि ॥ ३ ॥

॥ ७३ ॥ (क्र० १।१०।८)

गोतमो राष्ट्रगणः । विधे देवाः । (वनस्पतिस्वर्गावः) । गायत्री ।
मर्धुमाद्रो वनस्पतिर्मर्धुमाँ अस्तु सूर्यः ।
माध्वीर्गावो भवन्तु जः ॥ ८ ॥

॥ ७४ ॥ (क्र० १।०।५।१-४)

शामिश्रो सूर्या ऋषिः । सोमः । अनुष्टुप् ।

सोमेनादित्वा बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अयो नक्षत्राणामेपा सुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥
सोमं मन्यते पपिवान् यत् सौपिपन्त्योपधिम् ।
सोमं यं व्रक्षणाणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥ ३ ॥
आच्छद्विधानैर्गुपितो बर्हितः सोम रश्मितः ।
आव्यामिच्छूणवन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥ ४ ॥

॥ ७५ ॥ (क्र० १।११।६)

गोतमो राष्ट्रगणः । सोमवनस्पतिः । गायत्री ।

त्वं च सोम नो यदो जीवातुं न मत्तमहे ।
प्रियस्तोश्रो वनस्पतिः ॥ ६ ॥

॥ ७६ ॥ (अथर्वं १।३०।१-५)

अथर्वा । मनुवनस्पतिः (मनुविद्या) । अनुष्टुप् ।

इयं वीरुन्मर्धुजाता मर्धुना त्वा यन्नामसि ।
मयोऽधि प्रजातासि सा नो मर्धमत्ररूधि ॥ १ ॥

जिह्वाया अग्रे मर्धु मे जिह्वामुले मधूलकम् ।
ममेदद् क्रतावसो ममं चित्तमुपायसि ॥ २ ॥
मर्धुमन्मे निक्रमणं मर्धुमन्मे परारयणम् ।
वाचा वदामि मर्धुमद् भूयासं मर्धुसंदशः ॥ ३ ॥
मधौरस्मि मर्धुतरो मधुघामर्धुमत्तरः ।
मामिद् किल त्वं वनाः शाखां मर्धुमतीमिव ॥ ४ ॥
परिं त्वा परित्नुने क्षुणां गामविद्विषे ।
यथा मां कामिन्यसो यथा मघापंगा अतः ॥ ५ ॥

रोगचिकित्सा ।

॥ ७७ ॥ (अथर्वं ६।१४।१-३)

बभ्रुविह्वलः । बलासः (बलासनाशनम्) । अनुष्टुप् ।

अस्थिञ्जं सं परुञ्जं मास्थितं हृदयामयम् ।
बलासं सर्वे नाशया-ङ्गेषु यश्च पर्वसु ॥ १ ॥
निर्वलासं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा ।
छिनद्भयस्य वन्धनं मूलमुर्वावा इव ॥ २ ॥
निर्वलासेतः प्र पता-शुंगः शिशुको यथा ।
अयो इत् इव हायु-नोपं द्राहावरीरहा ॥ ३ ॥

॥ ७८ ॥ (अथर्वं ६।१०।५।१-३)

उन्मोचनः । वासा (वासशमनम्) । अनुष्टुप् ।

यथा मनो मनस्कैतैः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं काले प्र पत मनसोऽनु प्रवाय्यम् ॥ १ ॥
यथा वाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं काले प्र पत पृथिव्या अनु संवतम् ॥ २ ॥
यथा सूर्यस्य रुद्रमयः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं काले प्र पत समुद्रस्यानु विश्वरम् ॥ ३ ॥

॥ ७९ ॥ (अथर्वं १।१०।१-४)

ब्रह्म । सूर्यो, हरिमा हद्रोगध (हद्रोग-कामिला-नाशनम्) ।
अनुष्टुप् ।

अनु सूर्यमुदयतां हृद्योतो हरिमा च ते ।
गो रोहितस्य वर्षेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥ १ ॥
परिं त्वा रोहितैर्धेयैर्दीर्घायुव्यायं दध्मसि ।
यथायमप्रा अल-दयो अहरितो मुवत् ॥ २ ॥

या रोहिणीदेवत्याङ्गु गावो या उत रोहिणीः ।
रूपरूपं वयोवयं—स्ताभिष्ट्वा परि दध्मसि ॥ ३ ॥
शुकैषु ते हरिमाणं रोपणाकांसु दध्मसि ।

अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ॥ ४ ॥

॥ ८० ॥ (अथर्वं १८।१-५)

सुवहिराः । वनस्पतिः, यक्षनाशनम् (क्षेत्रियरोगनाशनम्) ।
अनुष्टुप्, ३ पद्यापङ्क्तिः, ४ विराट्, ५ निचुत्पद्यापङ्क्तिः ।
उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके ।

वि क्षेत्रियस्य मुञ्चता—मध्रमं पाशमुत्तमम् ॥ १ ॥

अपेयं रायुच्छत्व—पौच्छन्त्वभिकृत्वंरीः ।

वीरुत् क्षेत्रियनाश—न्यपं क्षेत्रियमुच्छतु ॥ २ ॥

वधोरजुनकाण्डस्य यवस्य

ते पलाल्या तिलस्य तिलपिञ्ज्या ।

वीरुत् क्षेत्रियनाश—न्यपं क्षेत्रियमुच्छतु ॥ ३ ॥

नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नम ईपायुगेभ्यः ।

वीरुत् क्षेत्रियनाश—न्यपं क्षेत्रियमुच्छतु ॥ ४ ॥

नमः सनिस्त्रसाक्षेभ्यो नमः संदेश्येभ्यः ।

नमः क्षेत्रस्य पतये वीरुत्

क्षेत्रियनाशन्यपं क्षेत्रियमुच्छतु ॥ ५ ॥

॥ ८१ ॥ (अथर्वं ६।१३८।१-५)

अथवा । वनस्पतिः (श्लोकत्वम्) । अनुष्टुप्, ३ पद्यापङ्क्तिः ।

त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमा—मिश्रुतास्योपधे ।

इमं मे अद्य पूरुपं क्लीवमौपाशिनं कृधि ॥ १ ॥

ह्रीं वं कृधोपाशिन—मथो कुरीरिणं कृधि ।

अथास्येन्द्रो ब्राह्मभ्या—मुभे भिनस्याण्ड्यौ ॥ २ ॥

ह्रीं वं क्लीं त्वाकरं वध्रे वधिं त्वाकरं

अरसात्सं त्वाकरम् ।

कुरीरमस्य शीर्षणि कुर्व्यं चाधिनिदध्मसि ॥ ३ ॥

ये ते नाज्यौ देघर्त्ते ययोस्तिष्ठति वृष्ण्यम् ।

ते ते भिनन्ति शर्म्यया—मुप्या अर्धे मुष्कयोः ॥ ४ ॥

यथा नडं कृदिपुने स्त्रियो भिन्दन्त्यश्मना ।

प्या भिननास ते शेषो—ऽमुप्या अर्धे मुष्कयोः ॥ ५ ॥

॥ ८२ ॥ (अथर्वं ७।७५।१-४)

अथवाहिराः । मन्त्रोक्ताः, ४ जातवेदाः (गण्डमाला-
विकिरा) । अनुष्टुप् ।

अपचितं लोहिनीनां कृष्णा मातेति शुधुम ।

मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम् ॥ १ ॥

विध्याम्यासां प्रथमां विध्याम्युत मध्यमाम् ।

इदं जघन्यामासांमा चिच्छनन्ति स्तुकांमिव ॥ २ ॥

त्याष्ट्रेणाहं वचसा वि तं ह्यर्पाममीमदम् ।

अथो यो मनुयुष्टे पते तमुं ते शमयामसि ॥ ३ ॥

यतेन त्वं व्रतपते समक्तो

विश्वाहा सुमना दीदिहीह ।

तं त्वां वयं जातवेदः समिद्धं

प्रजायन्त उपं सदेम् सर्वं ॥ ४ ॥

॥ ८३ ॥ (अथर्वं ७।७६।१-६)

अथवा । १, २ अपविद्भेष्यं, ३-६ जायान्यः, इन्द्रः,
(गण्डमालाविकिरा) । अनुष्टुप्, १ विराट्, २
परोष्णिक्, ४ त्रिष्टुप्, ५ सुरिगनुष्टुप् ।

आ सुस्त्रसः सुस्त्रसो अर्सतीभ्यो अर्सत्तराः ।

सेहोररसतरा लवणाद् विक्रेदीयसीः ॥ १ ॥

या त्रैव्या अपचितो—ऽथो या उपपश्याः ।

विजान्ति या अपचितः स्वयंस्त्रसः ॥ २ ॥

यः कीकसाः प्रशृणाति तलीद्यमवतिष्ठति ।

निर्हास्तं सर्वं जायान्यं यः कश्च ककुर्दि ध्रितः ॥ ३ ॥

पक्षी जायान्यः पतति स आ विंशति पूरुपम् ।

तदक्षितस्य भेषज—मुभयोः सुक्षतस्य च ॥ ४ ॥

विप्र वै ते जायान्य जानं यतो जायान्य जायसे ।

कथं ह तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहे ॥ ५ ॥

धूपत् पिब कलशे सोममिन्द्र

वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।

माध्यन्दिने सर्वत आ धूपस्व

रयिष्ठानो रयिमसासु धेदि ॥ ६ ॥

॥ ८४ ॥ (अथर्वं ६।८२।१-४)

मगः । १ सूर्यः चन्द्रमाः, २ रोहिणी, ३ रामायणी
(भैषज्यम्) । अनुष्टुप्, ४ एकावसाना द्विपदा
निचृदाचर्वतुष्टुप् ।

अपंचिनः प्र पंतत सुपणो वंसतेरिव ।
सूर्यः कृणोतु भैपजं चन्द्रमा वोऽपौच्छतु ॥ १ ॥
एन्येका श्येन्येका कृष्णेका रोहिणी द्वे ।
सर्वीसामग्रमं नामा—वीरञ्जीरपेतन ॥ २ ॥
असृत्तिका रामाय—प्युपचित् प्र पंतिप्यति ।
ग्लौरितः प्र पंतिप्यति स गलुन्तो नंशिप्यति ॥ ३ ॥
वीहि स्वामाहुति जुपाणो
मनसा स्वाहा मर्नसा यदिदं जुहोमि ॥ ४ ॥

॥ ८५ ॥ (अथर्वं १।२३।१-४)

अथर्वा । वनस्पतिः [आधेकिः] (श्वेतकुष्ठनाशनम्) ।
अनुष्टुप् ।

नक्तंजातास्योपथे रामे कृष्णे अंसिफिन च ।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ॥ १ ॥
किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत् ।
आ त्या स्वो विंशतां वर्षः परां शुद्धानि पातय ॥ २ ॥
असितं ते प्रलयन—मास्थानमसितं तव ।
असिफन्यस्योपथे निरितो नाशया पृषत् ॥ ३ ॥
अस्थिजस्यं किलासंस्य तनुजस्यं च यत् त्वाचि ।
दूप्यां कृतस्य प्रद्वंणा लक्ष्मं श्वेतमनीनशम् ॥ ४ ॥

॥ ८६ ॥ (अथर्वं १।२४।१-४)

मद्गा । आधुरी वनस्पतिः (श्वेतकुष्ठनाशनम्) । अनुष्टुप्,
२ निचृदपथावणक्तिः ।

सुपणो जातः प्रथम—स्तस्य त्वं पित्तमांसिय ।
तदांसुरी युधा जिता रूपं चक्रे धनुस्पतीन् ॥ १ ॥
आसुरी चक्रे प्रथुमेदं
किलासमेपजमिदं किलासुनारानम् ।
अनीनदात् किलासं सरूपामकर्त् त्वचर्म ॥ २ ॥

सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता ।
सरूपकृत् त्वमौपथे सा सरूपमिदं कृधि ॥ ३ ॥
श्यामा सरूपंकरणी पृथिव्या अच्युद्धृता ।
इदमु पु प्र सांधय पुनां रूपार्णि कल्पय ॥ ४ ॥

॥ ८७ ॥ (अथर्वं १।२५।१-४)

शुक्लशिराः । यक्षमनाशनोऽग्निः (तक्षम-नाशनम्) । त्रिष्टुप्,
२-३ विराड्गर्मा, ४ पुरोऽनुष्टुप् ।

यदशिरापो अददहत् प्रविश्य
यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नमोसि ।
तत्र त आहुः परमं जनित्रं
स नः संविद्वान् परिं वृङ्ग्धि तन्मन् ॥ १ ॥
यद्यच्चिरेदि वासिं शोचिः
शकल्पेपि यदि वा ते जनित्रम् ।
हूडुर्नामांसि हरितस्य देव
स नः संविद्वान् परिं वृङ्ग्धि तन्मन् ॥ २ ॥
यदि शोको यदि वाभिशोको
यदि वा रानो वरुणस्यासि पुत्रः ।
हूडुर्नामांसि हरितस्य देव
स नः संविद्वान् परिं वृङ्ग्धि तन्मन् ॥ ३ ॥
नमः शीतार्यं तफमने नमो
रुरार्यं शोचिरे कृणोमि ।
यो अन्येद्युर्भयद्युरभ्येति
तृतीयकायं नमो अस्तु तन्मने ॥ ४ ॥

॥ ८८ ॥ (अथर्वं ७।११६।१-२)

अथर्वाशिराः । चन्द्रमाः (चक्र-नाशनम्) । १ पुरोणिक्,
२ एकावसाना द्विपदा आत्यंयुष्टुप् ।

नमो रुरार्यं च्यवनाय नोदनाय धृष्णवे ।
नमः शीतार्यं पूर्वकामकृत्यने ॥ १ ॥
या अन्येद्युर्भयद्युरभ्येतीमं मण्डूकमभ्येत्यमृतः २
(६१८)

॥ ८३ ॥ (अथर्व० ५।२।३-१४)

भृशधिग्राः । तक्मनाशनः । अनुष्टुप्, १ भुरिक्, २ त्रिष्टुप्,
५ विराट् पध्यावृहती ।

अग्निस्तक्मानमर्षं याधतामितिः

सोमो प्राया वरणः पुतर्दक्षाः ।

वेदिविहिः समिधः शोशुचाना

अप द्वेषास्यमुया भवन्तु

॥ १ ॥

अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोषि

उच्छोचयन्नग्निरिवाभिदुन्वन् ।

अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया

अधा न्यङ्घ्रराड् वा परेहि

॥ २ ॥

यः परुषः पारुषेयोऽवध्वस इवारुणः ।

तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्जं परां सुव ॥ ३ ॥

अधराञ्जं प्र हिणोमि नमः कृत्वा तक्मनै ।

शकृभरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृपान् ॥ ४ ॥

ओको अस्य मूर्जवन्तु ओको अस्य महावृपाः ।

यावज्जातस्तंस्तंस्तावा नसि बलिहकेपु न्योचुरः ५

तक्मन् व्याल वि गद व्यङ्ग भूरि याधय ।

दासीं निष्टकरीमिच्छ ता वज्रेण समर्षय ॥ ६ ॥

तक्मन् मूर्जवतो गच्छ बलिहकान् वा परस्तराम् ।

शुद्रामिच्छ प्रफुर्व्यु तां तक्मन् वीच धनुहि ७

महावृपान् मूर्जवतो वन्धाद्धि परेत्यं ।

प्रेतानि तक्मनं ब्रूमो अन्यक्षेत्राणि वा इमा ॥ ८ ॥

अन्यक्षेत्रे न रमसे वशी सन्मृडयासि नः ।

अमृदु प्राथैस्तक्मा स गमिष्यति बलिहकान् ९

यत् त्वं शीतोऽथो रुरः सह कासाथैपयः ।

भीमास्ते तक्मन् हेतयः

ताभिः स्म परि वृड्भिध नः

॥ १० ॥

मा स्मैतान्सर्षीन् कुरथा यलासै कासमुद्युगम् ।

मा स्मातोऽर्वाडेः पुनस्तत्त्वा तक्मन्मर्षं सुवे ११

तक्मन् धात्रा यलासैन् स्वघ्ना कारिषया मृद ।

प्राप्ता धातृव्येण मृद गच्छामुमरणं जनम् १२

तृतीयकं धितृतीयं संदन्दिमुत शारदम् ।

तक्मानं शीतं कुरं प्रैष्मं नाशय धारिषकम् १३

गन्धारिष्यो मूर्जपद्मयोऽङ्गेष्यो मृगधेभ्यः ।

प्रैष्यन् जनमिव शेषधिं तक्मानं परि दद्यासि १४

॥ ९० ॥ (ऋ० १।५०।११-१३)

प्रश्नः काण्वः । सूर्यः (रोगज्य वपनिपदा, १३ अन्लोऽर्षवः

द्विपद्मथ) । अनुष्टुप् ।

उद्यन्नद्य मित्रमद आरोहद्रुचरां दिवम् ।

हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ ११ ॥

शुकैषु मे हरिमाणं रोपणाकालु दध्मसि ।

अथो हारिद्रिधेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ॥ १२ ॥

उदगाद्वयमादित्यो विश्वेन सहसा सृद ।

द्विपन्तं महौ रुन्धयन् मो अहं द्विपते रधम् १३

॥ ९१ ॥ (अथर्व० ४।१३।१-७)

शन्तातिः । चन्द्रमाः, त्रिधे देवाः, १ देवाः, २-३ वातः,

४ मरुता, ६-७ हस्ताः, (रोगनिवारणम्) । अनुष्टुप् ।

उत देवा अर्घहितं देवा उन्नयथा पुनः ।

उतागंश्चकुर्यं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥ १ ॥

द्वायिमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावर्तः ।

दक्षं ते अन्य आवातु व्युन्यो वातु यद् रपः २

आ वात वाहि भेपजं वि वात वाहि यद् रपः ।

त्वं हि विश्वभेपज देवानां द्रुत ईयसे ॥ ३ ॥

त्रायन्तामिमं देवाः—स्त्रायन्तां मरुतां गणाः ।

त्रायन्तां विश्वां भूतानि यथायमरुपा अस्त ४

आ त्वांगमं शंतातिभिः—रथो अरिष्टतातिभिः ।

दक्षं त उग्रमार्मारियं परा यक्षं सुवामि ते ॥ ५ ॥

अयं मे हस्तो भगवा—नयं मे भगवत्तरः ।

अयं मे विश्वभेपजो—ऽयं शिवाभिमर्शनः ॥ ६ ॥

(६४१)

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगाथी ।
अनामथित्नुभ्यां हस्ताभ्यां
ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ॥ ७ ॥

॥ ९२ ॥ (अथर्वं ११३।१-४)

ब्रह्मा । योषितः घमन्मथ (कथिरक्षावनिवृत्तये घमनीबन्धनम्) ।
अनुष्टुप्, १ सुविगुष्टुप्, ४ त्रिषदाथो गायत्री ।

अमूर्यां यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः ।
अभ्रातर इव जामय-स्तिष्ठन्तु हतर्वचंसः ॥ १ ॥
तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे ।
कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिज्जमर्निर्मही ॥ २ ॥
शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणां ।
अस्थरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत ॥ ३ ॥
परि चः सिकंतावती धनुर्वहृत्य कमीत् ।
तिष्ठतेल्यता सु कम् ॥ ४ ॥

॥ ९३ ॥ (अथर्वं ६।४४।१-३)

विश्वामित्रः । वनस्थितिः (रोगनाशनम्) । अनुष्टुप्, ३ त्रिषदा
महावृद्धी ।

अस्याद् घोरस्यात् पृथिवी
अस्याद् विश्वमिदं जगत् ।
अस्यवृक्षा ऊर्ध्वस्वप्ना-स्तिष्ठाद् रोगो अयं तवं ।
शतं या भैपजानि ते सहस्रं संगतानि च ।
श्रेष्ठमास्त्रावभेपजं वसिष्ठे रोगनाशनम् ॥ २ ॥
रुद्रस्य मूर्धमस्यमूर्तस्य नामिः ।
विषाणका नाम वा असि
पितृणां मूलाद्दिवता वातीकृतनाशनी ॥ ३ ॥
॥ ९४ ॥ (अथर्वं ६।५२।१-३)

मागलिः । १ सूर्यः, २ गात्रः, ३ भेषजम् । अनुष्टुप् ।

उत् सूर्यो दिव पति पुरो रक्षांसि निजूर्ध्व ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वहृद्यो अहृष्टहा ॥ १ ॥
नि गायो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।
न्युर्ध्वयो नदीनां न्युष्ट्या अलिप्सत ॥ २ ॥

आयुर्वेदं विपश्चितं धृतां कर्णस्य वीर्यम् ।
आमारिषं विश्वभैपजीम-स्याहृष्टान् नि शमयत् ३

॥ ९५ ॥ (अथर्वं २।३।१-६)

अजिराः । भैपज्यं, आयुः, चन्दन्तरिः, (आश्रावस्य भेषजम्) ।
अनुष्टुप्, ६ त्रिषदा स्वराडुपरिष्ठानमहावृद्धी ।

अदो यद्वधाव-त्यवत्कमाधि पर्वतात् ।
तत् ते कृणोमि भैपजं सुभैपजं यथासंसि ॥ १ ॥
आदङ्गा कुविदङ्गा शतं या भैपजानि ते ।
तेषामसि त्वमुत्तम-मर्नास्त्रावभरौगणम् ॥ २ ॥
नीचैः घनन्त्यसुरा अहृष्टार्णमिदं महत् ।
तदास्त्रावस्यं भैपजं तद्दु रोगमनीनशत् ॥ ३ ॥
उपजीका उद् मरन्ति समुद्रादधि भैपजम् ।
तदास्त्रावस्यं भैपजं तद्दु रोगमशीशामत् ॥ ४ ॥
अहृष्टार्णमिदं महत् पृथिव्या अयुद्धतम् ।
तदास्त्रावस्यं भैपजं तद्दु रोगमनीनशत् ॥ ५ ॥

शं नो भवन्त्युप ओषधयः शिवाः ।
इन्द्रस्य वज्रो अप हन्तु रक्षसं
आराद् विरुष्टा इषवः पतन्तु रक्षसाम् ॥ ६ ॥

॥ ९६ ॥ (अथर्वं १।३।१-९)

अथर्वी । १ पत्रन्त्यः, २ मित्रः, ३ वरुणः, ४ चन्द्रः, ५ सूर्यः,
(मूनभेषजम्) । अनुष्टुप्, १-५ पद्यापठ्युक्तिः ।

विद्या शरस्य पितरं पुर्जन्यं शतवृण्यम् ।
तेनां ते तन्वेद्दु शं करं
पृथिव्यां तं निपेचनं वहिष्ठे अस्तु यालिति ॥ १ ॥
विद्या शरस्य पितरं मित्रं शतवृण्यम् ।
तेनां ते तन्वेद्दु शं करं
पृथिव्यां तं निपेचनं वहिष्ठे अस्तु यालिति ॥ २ ॥
विद्या शरस्य पितरं वरुणं शतवृण्यम् ।
तेनां ते तन्वेद्दु शं करं
पृथिव्यां तं निपेचनं वहिष्ठे अस्तु यालिति ॥ ३ ॥

विद्या शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृण्यम् ।

तेनां ते तन्वेकुं शं करं
पृथिव्यां तै निपेचनं वहिष्टे अस्तु बालिति ॥ ४ ॥

विद्या शरस्य पितरं सूर्यं शतवृण्यम् ।
तेनां ते तन्वेकुं शं करं

पृथिव्यां तै निपेचनं वहिष्टे अस्तु बालिति ॥ ५ ॥
यदान्त्रेषु गवीन्योर्य—द्रस्तावधि संश्रुतम् ।

पृथा ते मूर्खं मुच्यतां वहिर्वालिति सर्वकम् ॥ ६ ॥
प्र तै भिनद्धि मेहंनं वधं वेशन्त्या इव ।

पृथा ते मूर्खं मुच्यतां वहिर्वालिति सर्वकम् ॥ ७ ॥
विपितं ते यस्तिविलं समुद्रस्योदधेरिव ।

पृथा ते मूर्खं मुच्यतां वहिर्वालिति सर्वकम् ॥ ८ ॥
यथैपुका पुरापत—द्वयस्रष्टाधि धन्वनः ।

पृथा ते मूर्खं मुच्यतां वहिर्वालिति सर्वकम् ॥ ९ ॥
॥ ९७ ॥ (अथर्वं ४।१९।१-१०)

मृगः । त्रैधाइदाअन्नम् । अनुष्टुप्, २ ककुम्भती,
३ पद्यापञ्क्तिः ।

पादं जीवं प्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम् ।
विभ्वैभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् ॥ १ ॥

परिपाणं पुरुपाणां परिपाणं गवांसि ।
अर्वाणामर्वाणां परिपाणांय तस्यै ॥ २ ॥

उतायि परिपाणं यातुजर्मनमाञ्जन ।
उतामूर्तस्य त्वं पेशार्थो अलि

जीवगोर्जनमर्वा हरितभेषजम् ॥ ३ ॥
यस्याञ्जनं प्रणयं—स्यङ्गमङ्गं परंपरः ।

नतो यस्मै वि पाधस्य उमो गंथमूर्तीरिय ॥ ४ ॥
जैनं प्राभेति दाम्प्यो न पृथ्या नाभिज्ञोचनम् ।

जैनं विष्वग्धमक्षतं यस्या विमैत्याञ्जन ॥ ५ ॥
धगमन्त्राद् दुःपय्याद् दुष्टनाप्टमलादुल ।

दुहाइभ्युपां पौराय तर्जाय पाद्याञ्जन ॥ ६ ॥

इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।

स्नेयमश्वं गामह—मात्मानं तव पूरुष ॥ ७ ॥
त्रयो दासा आजनस्य तुक्मा वलास आदहिः ।

वर्षेष्टुः पर्वतानां त्रिकुक्चामे ते पिता ॥ ८ ॥
यदाञ्जनं त्रैकुकुदं जातं हिमवतस्परि ।

यातुश्च सर्वोञ्जमयत् सर्वोश्च यातुधान्यः ॥ ९ ॥
यदि वालिं त्रैकुकुदं यदि यामुनमुच्यसे ।

उभे तै भद्रे नास्ती ताभ्यां नः पाद्याञ्जन ॥ १० ॥
॥ ९८ ॥ (अथर्वं ७।३०।१)

मृगशिराः । यावापृथिवी, मित्रं, ब्रह्मणस्पतिं, सविता च
(अञ्जनम्) । पृथ्वी ।

स्वाक्तं मे घावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम् ।
स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत् ॥ ११ ॥

॥ ९९ ॥ (अथर्वं ७।३६।१)
अथर्वा । अलि, मनः (अञ्जनम्) । अनुष्टुप् ।

अश्वौ नौ मधुसंकाशे अनर्कं नौ समञ्जनम् ।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इदो सहासति ॥ ११ ॥

॥ १०० ॥ (अथर्वं १९।४५।१-१०)
मृग । आअन्नम्, मन्त्रोक्तदेवताः । १-२ अनुष्टुप् ; ३,
५ त्रिष्टुप् ; ६-१० एकावसाना महापृथ्वी (६ विराट्,
७-१० मित्रम्) ।

भ्रुणाहणमिच्यं स्तनयन् हृत्सां कृत्याकृतो गृहम् ।
चक्षुर्मन्त्रस्य हृदीर्दुः पृथीरविं शृणाञ्जन ॥ १ ॥

यद्स्मास्तु दुःप्यन्त्यं यद् गोपु यद्यं नो गृहे ।
अनामगसं च दुर्दार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥ २ ॥

अपामूर्जं भोजनीं वापृधानं
अपेज्जातमधि जातयेदमः ।

यतुपीरं पर्यनीयं यदाञ्जनं
विदां प्रदिशोः वरुदिकृष्टुयास्तं

॥ ३ ॥
(६८९)

चतुर्वीरं वध्यत आञ्जनं ते
 सर्वा दिशो अर्भयास्ते भवन्तु ।
 ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्यै
 इमा दिशो अभि हर्षन्तु ते वलिम् ॥ ४ ॥
 आश्वैकं मणिमेकं कृणुष्व
 स्नाद्येकेना पिवैकमेपाम् ।
 चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो
 प्राह्यां वन्देभ्यः परिं पात्वस्मान् ॥ ५ ॥
 अग्निर्माग्निर्नावतु प्राणार्यापानायार्युपे
 वचसे ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभृतये स्वाहा ॥ ६ ॥
 इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणार्यापानायार्युपे
 वचसे ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभृतये स्वाहा ॥ ७ ॥
 सोमो मा सौम्येनावतु प्राणार्यापानायार्युपे
 वचसे ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभृतये स्वाहा ॥ ८ ॥
 भर्गो मा भर्गेनावतु प्राणार्यापानायार्युपे
 वचसे ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभृतये स्वाहा ॥ ९ ॥
 मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणार्यापानायार्युपे
 वचसे ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभृतये स्वाहा १०
 ॥ १०१ ॥ (अथर्वे १९।४४।१-१०)
 मृगः । आञ्जनम्, ८-९ वरुणः (भेषज्यम्) । अनुष्टुप् ;
 ४ वदुष्पदा शंङ्गमती अथिगक, ५ निचुद्विपमा त्रिपदा
 गायत्री ।

आर्युपोऽसि प्रतरणं विप्रं मेपजमुच्यसे ।
 तदाञ्जनं त्वं शतानि शमापो अर्भयं कृतम् ॥ १ ॥
 यो हरिमा ज्ञायान्यो-ङ्गमेदो विसल्पकः ।
 सर्वे ते यश्ममङ्गभ्यो वह्निर्निहन्त्वाञ्जनम् ॥ २ ॥
 आञ्जनं पृथिव्यां ज्ञातं मद्रं पुंरुजीर्वनम् ।
 कृणोत्वप्रमायुकं रथंजतिमनागसम् ॥ ३ ॥
 प्राणं प्राणं श्रायस्वा-सो अस्वे मृड ।
 निर्ऋते निर्ऋत्या नः पारोभ्यो मुञ्च ॥ ४ ॥

सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम् ।
 वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्विवस्पर्यः ॥ ५ ॥
 देवाञ्जनं वैककुद्ं परिं मा पाहि विश्वतः ।
 न त्वा तरन्त्योर्पथयो वाह्याः पर्वतीया उत ॥ ६ ॥
 धीक्षुदं मध्यमवाचपद् रक्षोहार्मीवचार्तनः ।
 अर्मीवाः सर्वाश्चातरयन् नाशयदभिमा इतः ॥ ७ ॥
 यद्दीक्षुदं राजन् वरुणा-नृतमाह पूरुषः ।
 तस्मात् सहस्रवीर्यं मुञ्च नः पर्यहंसः ॥ ८ ॥
 यदापो अच्यया इति वरुणेति यद्विम् ।
 तस्मात् सहस्रवीर्यं मुञ्च नः पर्यहंसः ॥ ९ ॥
 मित्रश्च त्वा वरुण-श्चानुप्रेर्यतुराजन ।
 तौ त्वानुगत्यं दूरं मोगाय पुनरोहतुः ॥ १० ॥
 ॥ १०० ॥ (वा ० य ० ४।३)
 (अथनम् ।)
 घृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दोऽसि चक्षुर्मं देहि ३
 ॥ १०१ ॥ (अथर्वे ० ४।५।१-७)
 ब्रह्मा । स्थापनं, वृषभः । अनुष्टुप्, २ धुरिद्,
 ७ पुरस्ताज्ज्योतिषिष्टुप ।
 सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्राद्दुदाचरत् ।
 तेनां सहस्येना वयं नि जनान्स्वापयामसि १
 न भूमिं वातो अतिं वाति नातिं पश्यति कश्चन ।
 स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरेन् २
 प्रोष्ट्रेणुयास्तल्पेणुया नारीर्या बह्वशीर्वरीः ।
 स्त्रियो याः पुण्यगन्धय-स्ताः सर्वाः स्वापयामसि ३
 एजदेजदजग्रमं चक्षुः प्राणमजग्रमम् ।
 अज्ञान्यजग्रमं सर्वा रारीणामतिशर्वरे ॥ ४ ॥
 य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति ।
 तेषां सं दम्नो अक्षीणि यथेदं हस्यं तया ॥ ५ ॥
 स्वस्तु माता स्वस्तु पिता स्वस्तु भ्रातृस्वस्तु विदपतिः ।
 स्वर्पन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः ॥ ६ ॥

विद्या शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृण्यम् ।
तेनां ते तन्वेक्षु शं करं
पृथिव्यां ते निषेचनं वहिष्टे अस्तु चालिति ॥ ४ ॥

विद्या शरस्य पितरं सूर्यं शतवृण्यम् ।
तेनां ते तन्वेक्षु शं करं
पृथिव्यां ते निषेचनं वहिष्टे अस्तु चालिति ॥ ५ ॥

यदान्त्रेषु गवीन्योर्य—द्रस्तावधि संश्रुतम् ।
एवा ते मूर्त्रं मुच्यतां वहिर्व्यालिति सर्वकम् ॥ ६ ॥
प्र ते भिनन्नि मेहनं वत्रं वेशुन्या इव ।

एवा ते मूर्त्रं मुच्यतां वहिर्व्यालिति सर्वकम् ॥ ७ ॥
विपितं ते वस्तिविलं समुद्रस्योद्धेरेव ।
एवा ते मूर्त्रं मुच्यतां वहिर्व्यालिति सर्वकम् ॥ ८ ॥

यथेपुका परापत—दवसुष्टाधि धन्वनः ।
एवा ते मूर्त्रं मुच्यतां वहिर्व्यालिति सर्वकम् ॥ ९ ॥
॥ ९७ ॥ (अथर्वं ४।११-१०)

शुभः । श्रेष्ठादाप्त्रनम् । अनुष्टुप्, २ कटुम्मी,
३ पथ्यापङ्क्तिः ।

पदि जीवं श्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम् ।
विभ्वंभिद्वेदंत्तं परिधिजीवनाय कम् ॥ १ ॥
परिपाणं पुरंपाणां परिपाणं गवांमनि ।
अर्थात्तामर्वतां परिपाणाय तस्थिये ॥ २ ॥

उतामि परिपाणं यातुजर्मनमाजन ।
उतामृतेस्य त्वं येत्रथार्थो भावि
जीवमोर्जनमथो हरितभेषजम् ॥ ३ ॥

गम्यांजन प्रमर्षं—श्रयङ्गमङ्गं परंणयः ।
गतो यमं वि वाप्यय उभो गंधमदीरिव ॥ ४ ॥
जैनं प्राप्नोति दृग्गो न शृण्वा नागीतोचनम् ।
जैनं विष्वंभमभूतं यस्त्वा विमर्त्यांजन ॥ ५ ॥

क्षतम्न्याद् दुःखत्वाद् दुष्टताच्छर्मलादुत्त ।
दृढादभ्यासो पांशुम् तस्मात्तः पाथाञ्जन ॥ ६ ॥

इदं विद्वानांजन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।
सुनेयमश्वं गाम्ह—मात्मानं तव पूरुप ॥ ७ ॥
प्रयो दासा आज्ञनस्य त्वमा वलास आदहिः ।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुधाम ते पिता ॥ ८ ॥

यदाज्ञं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि ।
यातृश्च सर्वाञ्जमयत् सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ९ ॥
यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे ।
उभे ते भद्रे नास्ती तार्भ्यां नः पाह्याञ्जन ॥ १० ॥

॥ ९८ ॥ (अथर्वं ७।३०।१)

शुभङ्गिराः । चावापृथिवी, मित्रः, ब्रह्मणस्पतिः, सविता च
(अञ्जनम्) । गृहती ।

स्वाकं मे चावापृथिवी स्वाकं मित्रो अकरयम् ।
स्वाकं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाकं सविता कर्त् ॥ १ ॥
॥ ९९ ॥ (अथर्वं ७।३६।१)

अथर्वा । अधि, मनः (अजनम्) । अनुष्टुप् ।

अश्वौ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम् ।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नो सदासति ॥ १ ॥
॥ १०० ॥ (अथर्वं १९।४५।१-१०)

शुभः । आञ्जनम्, मन्त्रोक्तदेवताः । १-२ अनुष्टुप् ; ३,
५ त्रिष्टुप् ; १-१० एकावसाना महाश्रुता (६ विराट्,
७-१० निचृत्) ।

शुणाहृणमिच संनयन् कृत्यां कृत्याकृतौ गृहम् ।
चक्षुर्मन्त्रम्य दृष्टीः पृष्टीरवि शृणाञ्जन ॥ १ ॥
यदस्मात्तु दुःख्यं यद् गोषु यथं नो गृहे ।
अनामगन्तं च दृष्टीः प्रियः प्रति गुञ्जताम् ॥ २ ॥

अपामुजं भोजनो वायुधानं
अज्ञेजातमधि जातवदसः ।
अनुवीरं पर्यतीयं यदाञ्जनं
दिदाः प्रदिदाः कर्दिष्टिष्टुवारं

चतुर्वीरं वध्यत आज्ञनं ते
 सर्वा दिशो अर्भयास्ते भवन्तु ।
 ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्यं
 इमा दिशो अग्निं हरन्तु ते वल्लिम् ॥ ४ ॥
 आह्वैकं मणिमेकं कृणुष्व
 स्नाहोकेना पियैकमेवाम् ।
 चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो
 ग्राह्यां वन्देभ्यः पारिं पाल्वस्मान् ॥ ५ ॥
 अग्निर्माग्निर्नावतु प्राणार्यापानायार्युपे
 वचसि ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ६ ॥
 इन्द्रो मेन्द्रियेर्नावतु प्राणार्यापानायार्युपे
 वचसि ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ७ ॥
 सोमो मा सौम्येर्नावतु प्राणार्यापानायार्युपे
 वचसि ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ८ ॥
 भगो मा भगेर्नावतु प्राणार्यापानायार्युपे
 वचसि ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ९ ॥
 मरुतो मा गुणैर्वन्तु प्राणार्यापानायार्युपे
 वचसि ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ १० ॥
 ॥ १०१ ॥ (अथर्वं १९।१४।१-१०)
 मृगः । आञ्जनम्, ८-९ बहगः (भेषज्यम्) । अतुष्टुपः
 ४ वदुष्टपदा शङ्कमती वणिक्कः ५ निचुद्विपमा त्रिपदा
 गायत्री ।
 आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे ।
 तदाञ्जन त्वं शैताते शमापो अर्भयं कृतम् ॥ १ ॥
 यो हरिमा जायान्यो ह्मेशेो विसल्पकः ।
 सर्वे ते यश्ममह्मभ्यो वह्निर्निहन्त्याञ्जनम् ॥ २ ॥
 आञ्जनं पृथिव्यां जातं मद्रं पुरुषजीवनम् ।
 कृणोत्वप्रमायुकं रयञ्जतिमनागसम् ॥ ३ ॥
 प्राणं प्राणं प्रायस्वा सो अस्वे मृड ।
 निऋते निऋत्या नः पारोभ्यो मुञ्च ॥ ४ ॥

सिन्धोर्गमोऽसि विद्युतां पुष्पम् ।
 घातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्विष्वस्यः ॥ ५ ॥
 देवाञ्जन वैककुद्दं परिं मा पाहि विश्वतः ।
 न त्वा तरुन्योर्यधयो याहाः पर्वतीया उत ॥ ६ ॥
 वीदुदं मध्यमवांसुपद् रश्मोहामीय्चार्तनः ।
 अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिमा इतः ॥ ७ ॥
 यद्दीदुदं राजन् वरुणा नृतमाह पूरुषः ।
 तस्मात् सहस्रवीर्यं मुञ्च नः पर्यहंसः ॥ ८ ॥
 यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदृचिमि ।
 तस्मात् सहस्रवीर्यं मुञ्च नः पर्यहंसः ॥ ९ ॥
 मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुमेर्यसुराञ्जन ।
 तां त्वानुगत्यं दूरं भोगाय पुनरोहेतुः ॥ १० ॥
 ॥ १०२ ॥ (वा० य० ४।३)
 (अञ्जनम् ।)
 वृत्रस्यासि कर्नानकश्चक्षुर्दा ऽ अंसि चक्षुर्मे देहि ३
 ॥ १०३ ॥ (अथर्वं १०।५।१-७)
 नदा । स्वपनं, हृपमः । अतुष्टुपः, २ सुरिह्, ७
 पुस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप ।
 सहस्रंशुभो वृपमो यः संमुद्रादुदार्वरत् ।
 तेना सहस्येना वयं नि जर्नान्स्वापयामसि १
 न भूमिं घातो अतिं वाति नातिं पश्यति कश्चन ।
 स्त्रियंश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेद्रं सखा चरन् २
 प्रोष्टेश्याल्लेषेश्या नारीर्यां वहुशीर्वरीः ।
 स्त्रियो याः पुण्यं गत्रयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि ३
 पर्जदेजदजग्रमं चक्षुः प्राणमंजग्रमम् ।
 अज्ञान्यजग्रमं सर्वा रात्रीणामतिशयरे ॥ ४ ॥
 य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपदरति ।
 तेषां सं दम्भो अशीणि यथेदं हृम्यं तया ॥ ५ ॥
 स्वम्भु माता स्वम्भु पिता स्वम्भु भ्वा स्वम्भु विपदरतिः ।
 स्वपन्त्यस्यै ज्ञातयः स्वपन्त्यमभितो जर्नः ॥ ६ ॥
 (३०६)

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति ।
पृथा दुःष्वप्न्यं सर्वं द्विपते सं नयामसि ॥ ३ ॥

॥ ११० ॥ (अथर्वं ७।१००।१)

यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

पर्यावर्ते दुःष्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्याद्भूत्याः ।
ब्रह्माहमन्तरं कृष्वे परा स्वप्नमुक्ताः शुचः ॥११॥

॥ १११ ॥ (अथर्वं ७।१०१।१)

यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

तत् स्वप्ने अर्धमश्रामि न प्रातरधिगम्यते ।
सर्वं तद्वस्तु मे शिवं नहि तद् दृश्यते दिवा ॥११॥

॥ ११२ ॥ (अथर्वं ७।१०२।१)

शन्तातिः । सुखम् । पथ्यापशुक्तिः ।

शं नो चार्तो घातु शं नस्तपतु सूर्यः ।
अहानि शं भयन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां
शमपा नो व्युच्छतु ॥ १ ॥

॥ ११३ ॥ (अथर्वं ६।१३।१-३)

भुवङ्गिराः (परस्परचित्तैकीकरणकामः) । मन्थुशमनम् ।
अनुष्टुप् ।

अयं दूर्मो विर्मन्युकः स्वाय चारणाय च ।
मन्योविर्मन्युकस्यायं मन्थुशमन उच्यते ॥ १ ॥

अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति ।
दूर्मः पृथिव्या उत्थितो मन्थुशमन उच्यते ॥ २ ॥

वि ते हनव्यां शरणं वि ते मुप्यां नयामसि ।
यथायदो न वार्दिपो मर्म चित्तमुपायसि ॥ ३ ॥

॥ ११४ ॥ (अथर्वं ५।१६।१-११)

विश्वामित्रः । पृथक्पथः (दूरपरिपथमनम्) । एकावसानं
द्वैपदम् । १,४,५,७-१० साम्नां शणिङ् । २,३,
६ आश्वरी अनुष्टुप् । ११ आश्वरी गायत्री ।

यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ १ ॥

यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ २ ॥

यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ३ ॥

४९ अ

यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ४ ॥

यदि पञ्चवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ५ ॥

यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ६ ॥

यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ७ ॥

यद्यष्टवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ८ ॥

यदि नववृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ९ ॥

यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ १० ॥

यद्येकादशोऽसि सौऽसोऽसि ॥ ११ ॥

॥ ११५ ॥ (अथर्वं ५।१५।१-११)

विश्वामित्रः । मधुला वनसतिः (रोगोपशमनम्) । अनुष्टुप्,
४ प्रस्ताद्वृद्धताः ५,७-९ गुरिङ् ।

एकां च मे दशं च मेऽपवकारं ओपधे ।

ऋतंजातं ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ १ ॥

द्वे च मे विश्वतिथं मेऽपवकारं ओपधे ।

ऋतंजातं ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ २ ॥

त्रिंशच्च मे त्रिंशच्च मेऽपवकारं ओपधे ।

ऋतंजातं ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ३ ॥

चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवकारं ओपधे ।

ऋतंजातं ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ४ ॥

पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपवकारं ओपधे ।

ऋतंजातं ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ५ ॥

षट् च मे षष्टिश्च मेऽपवकारं ओपधे ।

ऋतंजातं ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ६ ॥

सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपवकारं ओपधे ।

ऋतंजातं ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ७ ॥

अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपवकारं ओपधे ।

ऋतंजातं ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ८ ॥

नवं च मे नवतिश्च मेऽपवकारं ओपधे ।

ऋतंजातं ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ९ ॥

स्वप्नं स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि र्वापया जनम् ।

श्रोत्सुर्यमन्यान्स्वापयाव्युपं

जागृताद्दृष्टमिन्द्रं इवारिंशो अक्षितः ॥ ७ ॥

॥ १०४ ॥ (अथर्वं ६।१०।१-३)

अथर्वा । इः (इयुनिष्ठासनम्) । अनुष्टुप्, ३ अर्था
शुरिगुणिक ।

यां तै रुद्र इपुमास्य दङ्गभ्यो हृदयाय च ।

इदं ताम्य त्वद् वयं विपूर्वा वि वृहामसि ॥ १ ॥

यास्तै शतं धमनयो ऽहान्यनु विष्टिताः ।

तासां ते सर्वासां वयं निर्विपाणि ह्ययामसि ॥ २ ॥

नमस्ते रुद्रास्यते नमः प्रतैहितायै ।

नमो विसृज्यमानायै नमो निर्पातितायै ॥ ३ ॥

॥ १०५ ॥ (ऋग १।१२०।१२)

अश्विनान् देवतमश्व औशित्रः । अधिनो (दुःश्वप्ननाशनम्) ।
गययी ।

अथ स्वप्नस्य निर्विन्दे ऽभुञ्जतश्च रेवतः ।

उमा ता यद्वि नश्यतः ॥ १२ ॥

॥ १०६ ॥ (ऋग १।१०।१०)

पूर्वो गार्हमदे। रुचमदे। वा । वरणः (दुःश्वप्ननाशिनी) ।
त्रिष्टुप् ।

यो मे राजन् युग्वो वा सर्गा वा

व्यप्ये भयं भीम्ये मरुमाहै ।

स्तेनो वा यो दिव्यति नो पूर्वो वा

स्य तसाद् वरण पात्रस्मान् ॥ १० ॥

॥ १०७ ॥ (ऋग १०।१६४।१-२)

अवेन अश्विनाया । दुःश्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्,
५ वशांता ।

धरेदि मनसस्वप्ने ऽथ काम पुच्छार ।

दुगे निश्चरया आ चरथ वरुधा जीर्षतो मनः ।

भुञ्जे वे वरि वृत्ते भुञ्जे वृत्तित् दक्षिणम् ।

भुञ्जे वैवस्वते वरु-वरुधा जीर्षतो मनः ॥ २ ॥

यदाशसां निःशसांभिशसो

पारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।

अग्निर्विश्वाण्यर्षं दुष्टृतानि

अञ्जुष्टान्यारे अस्मद् दधातु ॥ ३ ॥

यदिन्द्रं ब्रह्मणस्पते ऽभिद्रोहं चरामसि ।

प्रचेता न आङ्गिरसो द्विपतां पात्वंहंसः ॥ ४ ॥

अज्ञैभ्याद्यासनाम् चा ऽभुमानांगसो वयम् ।

जाग्रत्स्वप्नः संकल्पः

पापो यं द्विमस्तं स ऋच्छतु

यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ॥ ५ ॥

॥ १०८ ॥ (अथर्वं ६।४५।१-३)

अङ्गिराः प्रचेता यमथ । दुःश्वप्ननाशनम् । १ पथ्यापशक्तिः,
२ शुरिक त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ।

पुरोऽपेहि मनस्वाप् किमशस्तानि शंसासि ।

परेहि न त्वा कामये वृक्षां घनानि

सं चर गृहेषु गोषु मे मनः ॥ १ ॥

अथशसां निःशसा यत् पराशसा

उपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।

अग्निर्विश्वाण्यर्षं दुष्टृतानि

अञ्जुष्टान्यारे अस्मद् दधातु ॥ २ ॥

यदिन्द्रं ब्रह्मणस्पते ऽपि मया चरामसि ।

प्रचेता न आङ्गिरसो हुरितात् पात्वंहंसः ॥ ३ ॥

॥ १०९ ॥ (अथर्वं ६।४६।१-३)

अश्विनाः प्रचेता यमथ । दुःश्वप्ननाशनम् । १ शिष्टारपशक्तिः,
२ उववशाना वाक्श्रीगो पशवदा अगती, ३ अनुष्टुप् ।

यो न जीवोऽसि न मृतो

द्वेषानाममृतगर्भोऽसि स्व्यन् ।

वरुणानो तं माना यमः वितारंरुनांमासि ॥ १ ॥

विश्वं तं स्व्यन् जनित्तं देवजामीनां

पृथोऽसि यमस्य करणः ।

धर्मकोऽसि मृत्युरसि ।

तं त्वां स्व्यन् तन्ना सं विश्व

त नः स्व्यन् दुःप्यज्याम् पादि ॥ २ ॥

यथा कलां यथा शकं यथर्णं संनयन्ति ।
पुधा दुःष्वप्स्यं सर्वं द्विपते सं नयामसि ॥ ३ ॥

॥ ११० ॥ (अथर्व० ७।१००।१)

यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

पर्यावर्ते दुःष्वप्स्यात् प्रापात् स्वप्स्यादभूत्याः ।
ब्रह्माहमन्तरं कृष्ये परा स्वप्नंमुखाः शुचः ॥१॥

॥ १११ ॥ (अथर्व० ७।१०१।१)

यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

तत् स्वप्ने अक्षमश्चामि न प्रातरधिगम्यते ।
सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद् हृदयते दिवा ॥१॥

॥ ११२ ॥ (अथर्व० ७।१०२।१)

शान्तातिः । सुसाम् । पद्यापचकितः ।

शं नो वार्तो वातु शं नस्तपतु सूर्यः ।
अहानि शं भयन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां
शमुपा नो व्युच्छतु ॥ १ ॥

॥ ११३ ॥ (अथर्व० ६।१३३।१-३)

भृगवज्जिवाः (परश्वरचित्तैकीकरणकामः) । मनुशमनम् ।
अनुष्टुप् ।

अयं द्रमो विमन्युकः स्वाय चारणाय च ।
मन्योधिर्मन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते ॥ १ ॥

अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिर्द्रति ।
द्रमः पृथिव्या उल्लिखितो मन्युशमन उच्यते ॥ २ ॥

वि ते हनव्यां शरणं वि ते मुखा नयामसि ।
यथावशो न वार्दिपो मम विस्रमपायसि ॥ ३ ॥

॥ ११४ ॥ (अथर्व० ५।१६।१-११)

विश्वामित्रः । एचदपः (वृषरोपशमनम्) । एकावसानं
द्वैपद्यम्, १, ४, ५, ७-१० सामां तप्यिह, ३, ३,
६ आश्रमं अनुष्टुप्, ११ आश्रमं गामत्री ।

यदेकवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ १ ॥

यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ २ ॥

यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ३ ॥

यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ४ ॥

यदि पञ्चवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ५ ॥

यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ६ ॥

यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ७ ॥

यद्यष्टवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ८ ॥

यदि नववृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ ९ ॥

यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ १० ॥

यद्येकादशोऽसि सोऽसोऽसि ॥ ११ ॥

॥ ११५ ॥ (अथर्व० ५।१५।१-११)

विश्वामित्रः । मधुला वनरसतिः (रोमोपशमनम्) । अनुष्टुप्,
४ गुरस्ताद्वृहती; ५, ७-९ मुतिह् ।

एकां च मे दशं च मेऽपवृकारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ १ ॥

द्वे च मे विश्वतिश्वं मेऽपवृकारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ २ ॥

त्रिंशच्च मे विश्वं मेऽपवृकारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ३ ॥

चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवृकारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ४ ॥

पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपवृकारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ५ ॥

षट् च मे षड्विंशच्च मेऽपवृकारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ६ ॥

सप्त च मे सप्तविंशच्च मेऽपवृकारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ७ ॥

अष्ट च मे अष्टाविंशच्च मेऽपवृकारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ८ ॥

नव च मे नवविंशच्च मेऽपवृकारं ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥ ९ ॥

दशं च मे शतं च मे—ऽप्यकारं ओपधे ।

ऋतंजात ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥१०॥

शतं च मे सहस्रं चा—प्यकारं ओपधे ।

ऋतंजात ऋतावरि मधुं मे मधुला करः ॥११॥

॥ ११६ ॥ (अथर्व० १।१।१-४)

अथर्वा । पर्जन्यः, (१, ४ पृथिवी, ३ इन्द्रः, [चन्द्रमास्य])
(रोमोपशमनम्) । अनुष्टुप्, ३ त्रिपदा विराणाम गायत्री ।

विद्वा शूरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।

विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्षसम् ॥ १ ॥

ज्याके परिरं णो नृमा—श्मानं तन्वं कृधि ।

वीडुर्वरीयोऽराती—रप द्वेपांस्या कृधि ॥ २ ॥

वृक्षं यद् गावंः परिपस्यजाना

अनुस्फुरं शरमर्चन्त्युभुम् ।

शरमस्सर्वावय दिद्युमिन्द्र ॥ ३ ॥

यथा धां चं पृथिवीं चान्तास्तिष्ठति तेर्जनम् ।

एवा रोगं चास्त्रावं चान्तास्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥ ४ ॥

॥ ११७ ॥ (अथर्व० २।७।१-५)

अथर्वा । भैषज्ये, भायुः, वनस्पतिः (शापमोचनम्) ।

अनुष्टुप्, १ मुरिक्, * विराडुपरिष्टाद् बृहती ।

अथद्विष्टा देवजाता वीरच्छपथयोर्पनी ।

आपो मलयमिव प्राणैश्शान्तु

सर्गान् मच्छपथो अधि ॥ १ ॥

यश्च सापत्नः शपथो जाग्याः शपथश्च यः ।

ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात् सर्वं तन्नो अघस्पदम् २

दियो मूलमवततं पृथिन्या अप्युचंतम् ।

तेन महर्षेःकाण्डेन परिरं णः पाहि विभ्वतः ॥३॥

परि मां परिरं मे ब्रजां परिरं णः पाहि यद्वनम् ।

धरोतिन्नो मा तारिन्मा नेस्तारिपुरमिमातयः ॥४॥

शानारमेतु शपथो यः सुहावं तेन नः सह ।

बध्नामन्त्रस्य हुदादौः पृष्टारपि शृणीमासि ॥ ५ ॥

॥ ११८ ॥ (अथर्व० १।१८।१-४)

द्विणोदा । १ विनायकः, (२ सविता, वरुणः, मित्रा,
अर्यमा, देवाः, ३ सविता) (अलक्ष्मीनाशनम्)

१ विराडुपरिष्टाद् बृहती, २ निचृज्गतां,

३ विराडास्तारपट्टिक्छिष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।

निर्लक्ष्म्यं ललाम्यं निररतिं सुयामसि ।

अथ या मुद्रा तानि नः

प्रजाया अरतिं नयामसि ॥ १ ॥

निररणिं सविता साविपक्

पदोर्निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा ।

निरस्मभ्यमनुमती रराणा

प्रेमां देवा असाविपुः सौभगाय ॥ २ ॥

यत् तं आत्मनि तन्वां घोरमस्ति

यद् वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा ।

सर्वं तद्वाचापं हन्मो वयं

देवस्त्वा सविता सुदयतु ॥ ३ ॥

रिदयपदीं वृषदतीं गोपेधां विध्रमासुत ।

विलीढ्यं ललाम्यं ता असन्नाशयामसि ॥ ४ ॥

॥ ११९ ॥ (अथर्व० ६।१३।१-५)

अथर्वा वनस्पतिः (धौमाग्यवर्धनम्) । अनुष्टुप्, १ त्र्यवधाना
पट्टपदा निराड् जयती ।

न्यस्तिका हरोहिथ सुमंगकरणी मम ।

शतं तव प्रतानास्त्रयस्त्रिशन्नितानाः ।

तया सहस्रपुण्या हृदयं शोपयामि ते ॥ १ ॥

शुष्यंतु मरियं ते हृदयं मर्यो शुष्यत्यास्यम् ।

अथो नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर २

संयननी समुप्ला वधु कल्याणि सं जुद ।

अम् च मां च सं जुद समानं हृदयं कृधि ॥३॥

यथोदकमर्पणोऽप्यशुष्यत्यास्यम् ।

एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ४

यथा नकुलो विच्छिद्यं सुदधात्वाहि पुनः ।

एवा कामस्य विच्छिद्यं सं धेहि धीर्यावति ॥५॥

॥ ११० ॥ (अथर्वं ३।१८।१-३)

अथर्वा । ईर्ष्याविनाशनम् । अनुष्टुप् ।

ईर्ष्याया धार्जिं प्रथमां प्रथमस्या उतापरात् ।

अग्निं हृदय्यं शोकं तं ते निर्वापयामसि ॥ १ ॥

यथा भूमिर्भूतमना मृतामृतमनस्तथा ।

यथोत मन्त्रयो मनं पृथेर्ष्याभितं मनः ॥ २ ॥

अदो यत् ते हृदि धितं मनस्कं पतयिष्णुकम् ।

ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि निरुष्माणं हर्तेरिव ॥ ३ ॥

॥ १११ ॥ (अथर्वं ७।७५।१-२)

प्रसङ्गः, २ अथर्वा । ईर्ष्यानिवर्तनं, भेषजम् । अनुष्टुप् ।

जनाद् विश्वजनीनात् सिन्धुतस्पर्याभृतम् ।

दूरात् त्यां मन्य उद्धृत मीर्ष्याया नामं भेषजम् ।

अग्नेरिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक् ।

पुतामेतस्वेर्ष्यां मुद्राग्निमिव शमय ॥ २ ॥

॥ ११२ ॥ (अथर्वं ६।११।१-४)

अथर्वा । अग्निः (जन्मतत्तामोचनम्) । अनुष्टुप् ।

१ पराष्टुप् त्रिष्टुप् ।

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुक्षि

अयं यो बद्धः सुयतो लालपीति ।

अतोऽग्निं ते कृणवद् भागधेयं

यदानुंमदितोऽसति ॥ १ ॥

अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्धृतम् ।

कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुंमदितोऽससि २

देवैनसादुर्मदितुं मुग्मं च रक्षंसस्परि ।

कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुंमदितोऽसति ॥ ३ ॥

पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्मर्गः ।

पुनस्त्वा दुर्विभ्यं देवा यदानुंमदितोऽससि ४

किमिनाशनम् ।

॥ ११३ ॥ (अथर्वं २।३१।१-५)

काण्वः । मही, चन्द्रमाः (किमिज्जमनम्) । अनुष्टुप् ;

२, ४ उपरिष्ठादिरेव वृत्ता, ३, ५ आषां त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य या मही हृपत् किमेर्विभ्यस्य तर्हणी ।

तया पिनाप्सि सं किमीन् हृपदा खल्वी इव ।

हृष्टमहृष्टमहृष्टमयो कुरुहमहृष्टम् ।

अल्गण्डुन्तसर्वान् अल्लुनान् किमीन्

वर्चसा जम्भयामसि

॥ २ ॥

अल्गण्डुन् हग्मि महता वृधेन

दूना अदूना असा बभूवन् ।

शिष्टानशिष्टान् नि तिरामि वाचा

यथा किमीणां नकिंरुच्छिपति ॥ ३ ॥

अन्वान्यं शीर्षण्यं मयो पाष्ट्यं किमीन् ।

अवस्कव व्यध्वरं किमीन् वर्चसा जम्भयामसि ४

ये किमयः पर्वतेषु घनेषु

ओपधीषु पदुष्वस्वन्तः ।

ये असाकं तन्यु माविदिशुः

सर्वे तदग्निं जनिम किमीणाम् ॥ ५ ॥

॥ ११४ ॥ (अथर्वं ५।१३।१-१३)

काण्वः । इन्द्रः (किमेजम्) । अनुष्टुप्, १३ विराट् ।

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।

ओतां मे इन्द्रश्चाग्निश्च किमिं जम्भयतामिति १

अस्येन्द्रं कुमास्य किमीन् घनपते जहि ।

हता विश्वा अरातय उग्रेण वर्चसा मम ॥ २ ॥

यो अह्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति ।

दृतां यो मर्ष्यं गच्छति तं किमिं जम्भयामसि ३

सर्ष्यां द्वौ विरूपां द्वौ कृणो द्वौ रोहतां द्वौ ।

वभ्रुश्च यभ्रुर्कणश्च गृध्रः कौकश्च ते हताः ॥ ४ ॥

ये किमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः ।

ये के च विश्वरूपास्तान् किमीन् जम्भयामसि ५

उत् पुरस्तात् सूर्यं पति विश्वरूपां अहृष्टम् ।

हृष्टाश्च अहृष्टाश्च सर्वाश्च प्रमूणन् किमीन् ६

येषांपासः कर्कपास एज्जत्काः शिपयितुकाः ।

हृष्टश्च हन्यतां किमिं रुताहृष्टश्च हन्यताम् ॥ ७ ॥

हतो येषापः किमीणां हतो नदनिमोत ।

सर्वान् नि मभ्याकारं हृपदा खल्वी इव ॥ ८ ॥

त्रिशोषाणं त्रिकुण्डं किमिं सारङ्गमर्जुनम् ।
 शृणाम्यस्य पृष्ठी—रपिं वृधामि यच्छिरः ॥ ९ ॥
 अत्रिवद् वः किमयो हग्नि कण्ववज्जमदश्रिवत् ।
 अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिंनम्ब्यहं किमीन् ॥ १० ॥
 हतो राजा किमीणा—मुतैषां स्थपतिर्हतः ।
 हतो हतमाता किमिं—हंतभ्राता हतस्वसा ॥ ११ ॥
 हतासौ अस्य वेशसौ हतासुः परिवेशसः ।
 अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते किमयो हताः ॥ १२ ॥
 सर्वेषां च किमीणां सर्वासां च किमीणाम् ।
 भिनन्न्यश्मना शिरो दहाम्यश्रिना मुखम् ॥ १३ ॥
 ॥ १२५ ॥ (अथर्व० २।३२।१।६)
 काण्वः । आदित्यः (किमिनाशनम्) । अनुष्टुप, १ त्रिपदा
 भुरिगायत्री, ६ चतुष्पदा निचृद्विणिक् ।
 उद्यन्नादित्यः किमीन् हन्तु
 निन्नोचन् हन्तु रश्मिभिः ।
 ये अन्तः किमयो गवि ॥ १ ॥
 विश्वरूपं चतुरक्षं किमिं सारङ्गमर्जुनम् ।
 शृणाम्यस्य पृष्ठी—रपिं वृधामि यच्छिरः ॥ २ ॥
 अत्रिवद् वः किमयो हग्नि कण्ववज्जमदश्रिवत् ।
 अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिंनम्ब्यहं किमीन् ॥ ३ ॥
 हतो राजा किमीणा—मुतैषां स्थपतिर्हतः ।
 हतो हतमाता किमिं—हंतभ्राता हतस्वसा ॥ ४ ॥
 हतासौ अस्य वेशसौ हतासुः परिवेशसः ।
 अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते किमयो हताः ॥ ५ ॥
 प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि ।
 भिनन्ति ते कुपुम्भं यस्तं विपुधानः ॥ ६ ॥
 ॥ १२५ ॥ (अथर्व० ४।२७।१-१२)
 वादागमिः । अत्रगृहीः । अस्परघः, १-२, ६, १० औपवी
 अत्रधृहीः, ३-५ अस्परघः, ७-१२ गन्धर्वास्परघः (हृमि-
 नाशनम्) । अतद्वद्, ३ ऋषवनाता पटपदा त्रिष्टुप, ५
 प्रस्तापञ्जलि, ७ परेष्णिङ्, ११ पटपदा अगती, १२ निचृद्वि ।
 त्वया पूर्वमर्थव्याणो जपन् रक्षांस्योपधे ।
 त्वया जघान कृदप्य—स्तयया कण्वो अगस्त्यः १

त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वाश्चातयामहे ।
 अर्जशृङ्गयज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय ॥ २ ॥
 नदीं यन्वप्सरसो—ऽपां तारमवश्वसम् ।
 गुल्गुलूः पीला नन्द्यौ—क्षगन्धिः प्रमन्नी ।
 तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ३ ॥
 यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः दिक्षुण्डिनः ।
 तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ४ ॥
 यत्र वः प्रेङ्गया हरिता अर्जुना
 उत यत्रावाटाः कर्कर्युः संवदन्ति ।
 तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥
 पयमग्नोर्पधीनां वीरुथं वीर्यावती ।
 अजशृङ्गयराट्की तीक्ष्णशृङ्गी व्युपतु ॥ ६ ॥
 आनृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरपतेः ।
 भिनन्ति मुष्कावापि यामि शेषः ॥ ७ ॥
 भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीर्यस्ययीः ।
 तामिर्हिविरदान् गन्धर्वा—नवकादान् व्युपतु ८
 भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीर्हिरण्ययीः ।
 तामिर्हिविरदान् गन्धर्वा—नवकादान् व्युपतु ९
 अवकादानभिश्चोचा—नृषु ज्योतय मामकान् ।
 पिशाचान्सर्वानोपधे प्र मृणीहि सहस्र च १०
 श्वैकैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः ।
 प्रियो हृश इव भूत्वा गन्धर्वः संवते स्त्रियः
 तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्याविता ॥ ११ ॥
 जाया इद् वीं अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो युयम् ।
 अपे धावतामत्या मत्यान् मा संचध्वम् ॥ १२ ॥
 ॥ १२७ ॥ (अथर्व० १।२।१-४)
 चातनः । १-२ मृद्वगति, अमीयोमौ च; ३-४ अमिः [चात-
 वेदाः] (यात्रवाननाशनम्) । १-३ अनुष्टुप, ४ बाह्वैतयमां
 त्रिष्टुप ।
 इदं हृविर्यातुधानान् नदी फेनमिधा वद्वत् ।
 य इदं ह्री पुमानक—रिह स स्तुघतां जनः ॥ ११ ॥
 (८१५)

अयं स्तुवान् आगमं द्विमं स्मृ प्रति हर्षत ।
 बृहस्पते चशे लब्ध्वा श्रीपोमा वि विध्यतम् ॥२॥
 यातुधानस्य सोमप जुहि प्रजां नयस्व च ।
 नि स्तुवानस्य पातय परमस्युतावरम् ॥ ३ ॥
 यत्रैपामग्ने जनिमानि वेत्थ
 गुहां सतामत्त्रिणां जातवेदः ।
 तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जुहोषां शततर्हमग्ने ४

॥ १२८ ॥ (अथर्व० ६।३७।१-३)

चातनः, ३ अथर्वो, १ अग्निः, २ रुद्रः, ३ मित्रावरुणौ
 (यातुधानक्षयणम्) । त्रिष्टुप्, २ प्रस्तारपञ्चकः ।

अन्तर्दावे जुहुता स्वेतुतद्
 यातुधानक्षयणं घृतेन ।
 आराद् रक्षांसि प्रति दह त्वमग्ने
 न नो गृह्णामुपं तीतपासि ॥ १ ॥
 रुद्रो वो श्रीवा अशरैत् पिशाचाः
 पृथीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः ।
 श्रीरुद् वो विश्वतोवीर्या यमेत् समजीगमत् ॥ २ ॥
 अमयं मित्रावरुणाविहास्तुं
 नोऽर्चिपात्त्रिणां जुदतं प्रतीचः ।
 मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त
 मियो विज्जाना उपं यन्तु मृत्युम् ॥ ३ ॥

॥ १२९ ॥ (अथर्व० १।१८।१-४)

चातनः । १-२ अग्निः, ३-४ यातुधानाः (रक्षोत्रम्) ।
 अनुष्टुप्, ३ विराट्पथ्याद्बृहती, ४ पथ्यापञ्चकः ।

उप प्रागाद् देवो अग्नी रक्षोहार्मावचातनः ।
 दहन्नर्पं द्रयाविनो यातुधानान् किमीदिनः ॥१५॥
 प्रति दह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः ।
 प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः ॥ २ ॥
 या शशाप शपनेन याधे सूरमादधे ।
 या रसस्यु हरणाय जातमरिभे लोकमन्तु सा ३

पुत्रमन्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्युम् ।
 अघ्रां मियो विकेदयोः
 वि प्रतां यातुधान्योः वि वृहन्तामरुय्यः ॥ ४ ॥
 ॥ १३० ॥ (अथर्व० ५।१९।१-१५)
 चातनः । जातवेदाः, मन्त्रोष्ठाः (रक्षोत्रम्) । त्रिष्टुप्; ३
 त्रिपदा विष्णोष्ठा गायत्री; ५ पुरोऽसिजगती विराड्जगती;
 १२-१५ अनुष्टुप् (१२ सुरिरः; १४ चतुष्पदा परावृहती
 ककुन्मती) ।

पुरस्ताद् युक्तो बह जातवेदो
 अग्नें विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।
 त्वं मियग् मैपजस्र्यांसि कृतां
 त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम ॥ १ ॥
 तथा तदग्ने कृणु जातवेदो
 विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ।
 यो नो दिदेवं यतमो जुधासु
 यथा सो अस्य परिधिप्पताति ॥ २ ॥
 यथा सो अस्य परिधिप्पताति
 यथा तदग्ने कृणु जातवेदः ।
 विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ॥ ३ ॥
 अक्ष्योः नि विच्य हृदयं नि विच्य
 जिह्वां नि वृन्धि प्र वतो मृणीहि ।
 पिशाचो अस्य यतमो जुधास
 अग्नें यधिष्ट प्रति तं शृणीहि ॥ ४ ॥
 यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतं
 आत्मनो जुधे यतमत् पिशाचैः ।
 तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं
 शरीरं मांसममुमेरियामः ॥ ५ ॥
 आमे सुपके शयले विपन्त्रे
 यो मां पिशाचो अशने द्दम्भ ।
 तदात्मना प्रजया पिशाचा
 वि यातयन्तामगदाः यमस्तु ॥ ६ ॥

क्षीरे मां मन्थे यत्तमो ददमम
 अङ्गप्रपञ्चे अशने धान्येऽङ्गु यः ।
 तदात्मना प्रजया पिशाचा
 वि यातयन्तामगदोऽङ्गु यमस्तु ॥ ७ ॥
 अपां मां पाने यत्तमो ददमम
 क्रव्याद् यातुनां शयने शयानम् ।
 तदात्मना प्रजया पिशाचा
 वि यातयन्तामगदोऽङ्गु यमस्तु
 दिवां मां नक्तं यत्तमो ददमम
 क्रव्याद् यातुनां शयने शयानम् ।
 तदात्मना प्रजया पिशाचा
 वि यातयन्तामगदोऽङ्गु यमस्तु
 क्रव्यादमग्रे रुधिरं पिशाचं
 मनोहनं जहि जातवेदः ।
 तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु
 च्छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः ॥ १० ॥
 सुनादग्रे मृणसि यातुधानान्
 न त्वा रक्षसि पृतनासु जिग्युः ।
 सहस्राननुं दह क्रव्यादो
 मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥ ११ ॥
 सुमाहर जातवेदो यद्धृतं यत् पराभृतम् ।
 गात्राण्यस्य वर्धन्ता—मंशुरिवा प्यायतामयम् १२
 सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम् ।
 अग्रे विराग्निं मेघ्यं—मयक्षं हं गु जीर्वतु ॥ १३ ॥
 एतास्ते अग्रे समिधः पिशाचजम्भेनोः ।
 तास्व्यं जुयस्य प्रति चैना गृहाण जातवेदः ॥ १४ ॥
 तार्णधीरग्रे समिधः प्रति गृहाह्यर्चिषां ।
 जहानु क्रव्याद् रूपं यो अस्य मांस जिह्वीपति १५
 ॥ १३१ ॥ (या० य० ५।१२)
 (श्लोम १)
 इदमदृश रक्षसां ग्रीया ऽ अपिहन्तामि ॥ २२ ॥

॥ १३१ ॥ (अथर्व० ४।२०।१-९)

मातृनामा । मातृनामा (पिशाचक्षयणम्) । अनुष्टुप् ।
 १ खराट्, १ भुरिक् ।

॥ ७ ॥ आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति ।
 दिवमन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति १
 तिस्रो दिवस्तिष्ठः पृथिवीः
 पट् चेमाः प्रदिशः पृथक् ।
 ॥ ८ ॥ त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योगधे ॥ २ ॥
 दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका ।
 सा भूमिमा हरोहिथ वह्य भ्रान्ता वधूरिव ॥ ३ ॥
 तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत् ।
 ॥ ९ ॥ तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यैः ॥ ४ ॥
 आविष्कण्य रूपानि मात्मानमप गूहया ।
 अथो सहस्रक्षो त्व प्रति पश्याः किमीदिनः ५
 दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः ।
 पिशाचान्सर्वान् दर्शयेति त्वा रम ओपधे ॥ ६ ॥
 कश्यपस्य चक्षुरसि शून्याश्च चतुरक्षयाः ।
 वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्त मा पिशाचं तिरस्करः ७
 उदग्रम परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम् ।
 तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ॥ ८ ॥
 यो अन्तरिक्षेण पतति दिव यश्चातिसर्पति ।
 भूमिं यो मन्यते नाथं ते पिशाच प्र दर्शय ॥ ९ ॥

॥ १३३ ॥ (अथर्व० ६।७।१-३)

अथवा । सोम, अदिति, ३ देवा (अष्टरक्षयणम्) । गायत्री,
 १ निचृत् ।

येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः ।
 तेना नोऽवृसा गहि ॥ १ ॥
 येन सोम साहन्त्या—सुरान् रुन्धयांसि नः ।
 तेना नो अर्धि वोचत ॥ २ ॥
 येन देवा असुराणां—मोजांस्यजुणाधिष्वम् ।
 तेना नः शर्म यच्छत ॥ ३ ॥
 (८५१)

॥ १३४ ॥ (अधर्वं ० १९।३६।१)

महा । जातवेदाः सर्वो वज्रध (असुरक्षयणम्) । अतित्रगता ।
अर्योञ्जाला असुरा मायिनो
अयस्स्यैः पादौरङ्गिनो ये चरन्ति ।
तांस्तै रन्धयामि हरसा जातवेदः
सहस्रंशुष्टिः सप्तानां प्रमृणन् पाहि वज्रः ॥ १ ॥

॥ १३५ ॥ (अधर्वं ० १।७।१-७)

षातनः । अग्निः (जातवेदा), ३ अग्नीन्द्रो (यातुधाननाशनम्) । अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।

स्तुवानमग्ने आ वह यातुधानं किमीदिनेम् ।
त्यं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्धुम्विथ ॥ १ ॥
आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनुवशिन् ।
अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय २
वि लपन्तु यातुधाना अत्रिणो ये किमीदिनः ।
अधेदमग्ने नो ह्वि-रिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥ ३ ॥
अग्निः पूर्वं आ रमतां मेन्द्रो नुदत बाहुमान् ।
प्रवीतु सर्वो यातुमानयमसीत्येव ॥ ४ ॥
पश्याम ते वीर्यं जातवेदः
प्र णो ब्रूहि यातुधानान् नृचक्षः ।
त्वया सर्वं परितप्ताः पुरस्तात्
त आ रन्तु प्रमुवाणा उपेदम् ॥ ५ ॥
आ रमस्व जातवेदो-ऽसाकार्योय जक्षिषे ।
दूतो नो अग्ने भूत्या यातुधानान् वि लापय ६
त्वमग्ने यातुधाना-नुपयद्वा इहा वह ।
अर्यैषामिन्द्रो वज्रेणा-पि शीर्षाणि वृधतु ॥ ७ ॥
विपनाशनम् ।

॥ १३६ ॥ (श्रौ ० १।१९।१।२-१६)

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अप्ठमन्याः (विप्रमोपनिषद्) ।
अनुष्टुप्; १०-१२ महावृष्णिः, १३ महावृहती ।

कद्रतो न कद्रतो ऽर्यो सतीनकद्रतः ।
हाविति प्लुयी इति न्युष्ट्या अलिप्सत ॥ १ ॥

अदृष्टान् हन्त्याय-त्यथो हन्ति परायती ।
अर्यो अयघ्नती ह-न्यर्यो पिनष्टि पिपृती ॥ २ ॥
श्राप्सः कुशरासो दुर्मांसः सर्वा उत ।
मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ३
नि गार्धो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनानां न्युष्ट्या अलिप्सत ॥ ४ ॥
पत उ त्वे प्रत्यदधन् प्रदोपं तस्करा इव ।
अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अमृतन ॥ ५ ॥
द्यौर्वैः पिता पृथिवी माता
सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।
अदृष्टा विश्वदृष्टा-स्तिष्ठतेत्यता सु कम् ॥ ६ ॥
ये अस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकृताः ।
अदृष्टाः किं चुनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ७
उत् पुरस्तात् सूर्यं पति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
अदृष्टान्तसर्वाङ्गमय-न्तसर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥
उदपत्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जर्धन् ।
आदित्यः पर्यतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥ ९ ॥
सूर्यं विपमा संजामि हतिं सुरावतो गृहे ।
सो चिद् न मरति नो वयं मरामाऽऽरे अस्य ।
योजनं हरिष्ठा मधुं त्वा मधुला चकार ॥ १० ॥
इयत्सिका शकुन्तिका सका जघास ते विपम् ।
सो चिद् न मरति नो वयं मरामाऽऽरे अस्य
योजनं हरिष्ठा मधुं त्वा मधुला चकार ॥ ११ ॥
त्रिः सप्त विंशुलिङ्गका विपस्य पुष्पमक्षन् ।
ताश्चिद् न मरन्ति नो वयं मरामाऽऽरे अस्य
योजनं हरिष्ठा मधुं त्वा मधुला चकार ॥ १२ ॥
नवानां नवतीनां विपस्य रोपुषीणाम् ।
सर्वोत्तामग्रमं नामा-ऽऽरे अस्य योजनं
हरिष्ठा मधुं त्वा मधुला चकार ॥ १३ ॥
त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रयः ।
तास्तै विपं वि जधिर उदकं कुम्भनीरिय १४

इयत्तकः कुपुम्भक—स्तकं भिन्नद्वयदर्शना ।

ततो विपं प्र वाचते पराचरितुं संवतः ॥ १५ ॥

कुपुम्भकस्तद्ग्रधीद् गिरेः प्रवर्तमानकः ।

वृश्चिकस्यारसं विप—मंसं वृश्चिक ते विपम् ॥ १६ ॥

॥ १३७ ॥ (अथर्व० ४।६।१-८)

गह्रमान् । तक्षकः, १ ब्राह्मणः, २ बावापृथिवी, सप्तसिन्धवः,
३ सुपर्णः, ४-८ विपम् (विषमम्) । अनुष्टुप् ।

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीघ्रो दशास्यः ।

न सोमं प्रथमः पशौ स चकारारसं विपम् ॥ ११ ॥

यार्चती चार्चापृथिवी र्विष्मिणा

यार्चत् सप्त सिन्धवो वितष्टिरे ।

याचं विपस्य दूपर्णां तामितो निरवादिपम् ॥ २२ ॥

सुपर्णस्त्वां गृह्णामान् विपं प्रथममाचयत् ।

नार्मीमदो नारूरुप उतासां भभवः पितुः ॥ ३ ॥

यस्त आस्यत् पञ्चाङ्गुरि—यंकाशिदधि धन्वनः ।

अपस्कम्भर्यं शल्या—निरवोचमहं विपम् ॥ ४ ॥

शल्याद् विपं निरवोचं—प्राञ्जनादुत पर्णधेः ।

अपाष्टाच्छ्रुत्वात् कुरमला—निरवोचमहं विपम् ॥ ५ ॥

अरस्तस्य इपो शल्यो—ऽयो ते अरसं विपम् ।

उतारसस्यं वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम् ॥ ६ ॥

ये अपीपन् ये अर्दिहन् य आस्यन् ये अयावृजन् ।

नये ते यध्रयः कृता यध्रिर्विपगिरिः कृतः ॥ ७ ॥

यध्रयस्ते यनितारो यध्रिस्त्वयमस्योपधे ।

यध्रिः स पर्वतो गिरि—यतो जातमिदं विपम् ॥ ८ ॥

॥ १३८ ॥ (अथर्व० ४।७।१-७)

गह्रमान् । यक्षर्यन् (विपनाशनम्) । अनुष्टुप्, ४ मत्तम् ।

पारिद् पार्याते परणार्यत्यामधि ।

अत्रामृतस्यापित्तः तेनां ते पारये विपम् ॥ १ ॥

अरसं प्राच्यं विप—मंसं यदुदीच्यम् ।

अधेरमपराच्यं कर्मणेण वि बन्धते ॥ २ ॥

करम्भं कृत्वा तिर्यं पीयस्याकमुदारथिम् ।

क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्स न रूरुपः ३

वि ते मदे मदावति शरमिव पातयामसि ।

प्र त्वां चरमिव येपन्तं वचसा स्थापयामसि ॥ ४ ॥

परि आममिवाचितं वचसा स्थापयामसि ।

तिष्ठो वृक्ष इव स्थाम्य—अधिखाते न रूरुपः ॥ ५ ॥

पयस्तैस्त्वा पर्यकीणन् दुरोभिरजिनैरुत ।

प्रकीरसि त्वमोपधे—ऽअधिखाते न रूरुपः ॥ ६ ॥

अनात्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।

वीरान् नो अत्र मा दमन्

तद् वं एतत् पुरो दधे ॥ ७ ॥

॥ १३९ ॥ (अथर्व० ६।१०।१-३)

गह्रमान् । वनस्पतिः (विषद्वयम्) । अनुष्टुप् ।

देवा अंदुः सूर्यो अदाद् द्यौरदात् पृथिव्यादात् ।

तिस्रः सरस्वतीरदुः सचित्ता विपदूर्पणम् ॥ १ ॥

यद् वो देवा उपजीका आसिञ्चन् धन्वन्युदकम् ।

तेन देवप्रसूतेने—दं दूपयता विपम् ॥ २ ॥

अलुंराणां दुहितसि देवानामसि स्वसा ।

द्विचस्पृथिव्याः संमृता सा चर्करासं विपम् ३

॥ १४० ॥ (अथर्व० १०।४।१-२६)

गह्रमान् । तक्षक (सर्पविषद्वारकरणम्) । अनुष्टुप्, १ पद्या-
पठिक, २ त्रिपदा यवमध्या गायत्री, ३-४ पद्यावृहती, ८

अणिगर्मा परा त्रिष्टुप्, १२ सुरिगायत्री, १६ त्रिपदा प्रतिष्ठा

गायत्री, २१ इदममती, २२ त्रिष्टुप्, २६ त्र्यवधाना पद्यदा

वृहतीगर्मा इकुमती सुरिक् त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो

परणस्य तृतीय इत् ।

अहीनामपमा रथं स्थानुमारुद्वार्यत् ॥ १ ॥

दुर्मः दोक्षिस्तरुणक—मर्षस्य धारः परुपस्य धारः ।

रथस्य पशुंरुम् ॥ २ ॥

अप इयेत पदा जति पूर्वेषु चार्पणेण च ।

उदप्लुतमिव दार्यहीना—मंसं विपं वाहमम् ॥ ३ ॥

अरुच्यो निमज्यो न्मज्य पुनरवधीत् ।
उदप्लुतमिध दावर्हीना मरुसं विपं चारुग्रम् ॥४॥
पैदो हन्ति कसणीलं पैदः श्वित्रमृतासितम् ।
पैदो रंयव्याः शिरः सं विमेद पृदाक्काः ॥५॥
पैद प्रेहिं प्रथमोऽर्जु त्वा वयमेमसि ।
अहीन व्युस्यतात् प्यो येन सा वयमेमसि ६
इदं पैदो अजायते द्रमस्य परायणम् ।
इमान्यवतः पदा-हिच्यो धाजिनीवतः ॥७॥
संयतं न वि परद् व्याप्तं न सं यमत् ।
अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही
श्री च पुमाश्च तावुभावरसा ॥८॥
अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दुरके ।
घनेन हग्निं वृश्चिक्र-महिं दण्डेनागतम् ॥९॥
अद्याभ्यस्येदं भेषज-मुमयोः स्वजस्यं च ।
इन्द्रो मेऽहिंमरुधयन्त-महिं पैदो अरन्धयत् १०
पैदस्यं मन्हे वयं स्थिरस्यं स्थिरधान्नः ।
इमे पृथा पृदाकवः प्रदीर्घ्यत आसते ॥११॥
नृष्टासवोःतुष्टेर्विया-हता इन्द्रेण वज्रिणा ।
जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम् ॥१२॥
हतास्तिरश्चिराजयो निपिंष्टासः पृदाकवः ।
दर्वि करिंरतं श्वित्रं द्रमंघंसितं जहि ॥१३॥
कैरातिका कुमारिका सुका संनति भेषजम् ।
हिरण्ययीमिरश्मि-गिरीणामुप सानुषु ॥१४॥
आयमंगन युवां भिषक् पृश्निहापरजातः ।
स वै स्वजस्यं जग्मन उमयोवृश्चिकस्य च १५
इन्द्रो मेऽहिंमरुधय-न्मिप्रश्च वरुणश्च ।
यातापुत्रेभ्योऽु मा ॥१६॥
इन्द्रो मेऽहिंमरुधयत् पृदाकुं च पृदाकम् ।
स्वजं तिरश्चिराजि कसणीलं दशानसिम् ॥१७॥

इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव ।
तेषामु तृद्यमापानां
कः स्वित् तेषामसद् रसः ॥१८॥
सं हि शीर्षाण्यग्रमं पौञ्जिष्ठ इय कर्षणम् ।
सिन्धोर्मर्ष्य परेत्य व्युनिजमहेविपम् ॥१९॥
अहीनां सर्वेषां विपं परा वहन्तु सिन्धवः ।
हतास्तिरश्चिराजयो निपिंष्टासः पृदाकवः ॥२०॥
ओपधीनामहं वृण उर्वरीरिय साधुया ।
नयाम्यधैतीरिया-हे निरैतुं ते विपम् ॥२१॥
यद्गौ सूर्यं विपं पृथिव्यामोपधीषु यत् ।
कान्द्राविपं कनक्तं निरैत्वैतुं ते विपम् ॥२२॥
ये अग्निजा ओपधिजा अहीनां
ये अप्सुजा विद्युतं आयभुवुः ।
येषां जातानि बहुधा महान्ति
तेभ्यः सपेभ्यो नमसा विधेम ॥२३॥
तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा अस्ति ।
अधस्पदेनं ते पद-मा ददे विपदूर्पणम् ॥२४॥
अद्वादद्वात् प्र च्यावय हृदयं प्रिरं वर्जय ।
अर्धा विपस्य यत् तेजो-ऽवाचीनं तदेतुं ते २५
क्षारे अभूद् विपमरौद् विपे विपमप्रामाये ।
अग्निविपमहे निरघात् सोमो निरणयात् ।
दंष्ट्रामन्ववाद् विपमहिरमृत ॥२६॥
॥ १४१ ॥ (अथयं ५१३१-११)
गङ्गात् । तप्तक (सर्पविषनाशनम्) । जगती, २ आस्ता (प-
हृत्किः, ४, ७-८ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप्, ६ पद्यापञ्क्तिः,
९ भुरिक्, १०-११ निवृत्तपद्योः ।
दुदिहिं महं चरुणो द्विवः क्विः
वचोभिर्गन्निं रिणामि ते विपम् ।
ग्यातमग्यातमुत् सक्तमग्रमं
इर्यं धन्यं नि जंजास ने विपम् ॥१॥

यत् ते अपौदकं विपं तत् तं पतास्वग्रभम् ।
 गृहामि ते मध्यमसुत्तमं रसं
 उताव्रमं मियसां नेशदाहुं ते ॥ २ ॥
 चृपां मे खो नभसा न तन्त्युः
 उग्रेण ते वचसा वाध आहुं ते ।
 ब्रह्म तमस्य नृभिरग्रमं रसं
 तमस इव ज्योतिरुदेतु सूर्यः ॥ ३ ॥
 चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विपेण हन्मि ते विपम् ।
 अहं द्वियस्य मा, जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विपम् ४
 कैरांत पृथ उर्पत्पुण्य यश्च
 आ मे शृणुतासिता अलीकाः ।
 मा मे सख्युः स्तामान्मापि
 छाताध्रावयन्तो नि विपे रमध्वम् ॥ ५ ॥
 असितस्य तैमातस्य वधोरपौदकस्य च ।
 सासासाहस्याहं मन्योख ज्यामिष धन्वन्तो
 वि मुञ्चामि रथौ इव ॥ ६ ॥
 आलिगी च विलिगी च पिता च माता च ।
 विप्र वः सर्वतो बन्ध्व-रसाः किं करिष्यथ ॥ ७ ॥
 उरुगुल्यां दुहिता ज्ञाता दास्यसिक्न्या ।
 प्रतर्हं दृष्टुपीणां सर्वासागरसं विपम् ॥ ८ ॥
 पूर्णा भ्यावित् तद्व्रवीद् गिरेरयचरन्तिकः ।
 याः काश्चेमाः र्गनिग्निमा-स्तासामरसतमं विपम् ९
 तावुपं न तावुपं न घेत् त्यमसि तावुपम् ।
 तावुर्वनारसं विपम् ॥ १० ॥
 तन्तुपं न तन्तुपं न घेत् त्यमसि तन्तुपम् ।
 तन्तुर्वनारसं विपम् ॥ ११ ॥

॥ १४१ ॥ (अथर्व० ७।८८।१)
 गणमान् । एषः (सर्वाविपनिवारणम्) । न्यवसाना वृत्ती ।
 शपेष्टारिरभ्ययिषो अस्ति ।
 विपे विपमं पृथया विपमिद् या शपृथथाः ।
 अहिमेपावपेदि मं जति ॥ १ ॥

॥ १४२ ॥ (अथर्व० ६।१९।१-३)
 गणमान् । तक्षकः (सर्वाविपनिवारणम्) । अनुष्टुप् ।
 परि द्यामिष सूयो-ऽहीनां जनिमागमम् ।
 रात्री जगदिवान्यद्वंसात् तेनां ते वारये विपम् १
 यद् ब्रह्मभिर्वदपिभि-यद् द्वेषैर्विदितं पुरा ।
 यद् भूतं भव्यमालुन्वत् तेनां ते वारये विपम् २
 मध्वा पृथ्वे नचक्षुः पर्वता गिरयो मधु ।
 मधु परेष्णी शीपांला शमास्ने अस्तु शं हृदे ३
 ॥ १४४ ॥ (अथर्व० ६।५६।१-३)
 शान्तातिः । १ विश्वे देवाः, २-३ वदः (सर्वभ्यो रक्षणम्) ।
 १ लक्षणगर्भो पद्म्यावृक्ता, २ अनुष्टुप्, ३ निचृत्
 मा नो देवा अहिर्वधीत् सतोकात्सहपुरुषान् ।
 संयतं न वि ष्वरद् व्यात्तं
 न सं यमग्रमो देवजनेभ्यः ॥ १ ॥
 नमोऽस्त्वसिताय नमस्तिरश्चिराजये ।
 स्वजायं बध्वे नमो नमो देवजनेभ्यः ॥ २ ॥
 सं तै हन्मि दृता दृतः समु ते हन्वा हन्तुं ।
 सं तै जिह्वया जिह्वां सम्वाह्नाह आस्याम् ॥ ३ ॥

॥ १४५ ॥ (अथर्व० ७।५६।१-८)
 अथवा । वृषिहादवा, २ वनस्पतिः, ४ ब्रह्मणस्पतिः (विषमे-
 यज्यम्) । अनुष्टुप्, ४ विराट्प्रस्ताववृक्ताः
 तिरश्चिराजेरसितात् पृदाकोः परि संभृतम् ।
 तत् कृद्गर्षणो विप-मिषं वीरुर्दनीनशत् ॥ १ ॥
 इयं वीरुर्नमुजता मधुश्चुर्नमुला मधुः ।
 सा विहुतस्य भेष-ज्यथो मशकजर्मनी ॥ २ ॥
 यतीं वृष्टं यतीं धीतं ततस्ते निर्द्वयामसि ।
 अर्भस्य वृष्टदिनीं मशकस्यारसं विपम् ॥ ३ ॥
 धयं यो घृको विपंरुष्यो ह्यो
 मुखानि यत्रा वृजिना कृणोपि ।
 तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इपीकामिय त्वं नमः ॥ ४ ॥
 अरुमभ्यं नाकोटस्य नीचीनभ्योपसर्पता ।
 विपं हावृष्यादिष्यथो एनमजीजभम् ॥ ५ ॥

न ते याद्वोर्ध्वलमस्ति न शीर्षे नोत मध्यतः ।
 अथ किं पापयामुया पुच्छै विमर्ष्यभ्रमकम् ॥ ६ ॥
 अदन्ति त्या पिपीलिका वि वृञ्चन्ति मयुर्युः ।
 सर्वे भल व्रवाथ शाकौदमरसं विपम् ॥ ७ ॥
 य उभाभ्यां प्रहरसि पुच्छै न चास्ये न च ।
 आस्ये न ते विपं किमु ते पुच्छघावसत् ॥ ८ ॥

जलचिकित्सा ।

॥ १४६ ॥ (अथर्व० ६।५७।१-३)

शन्तातिः । द्रवः । १-२ अनुष्टुप्, ३ पद्यावृहती ।

इदमिद् वा उं भेपज—मिदं रुद्रस्य भेपजम् ।
 येनेपुमेकतेजनां शतशल्यामपग्रवत् ॥ १ ॥
 जालापेणाभि पिञ्चत जालापेणोप सिञ्चत ।
 जालापमुग्रं भेपजं तेन नो मृड जीवसे ॥ २ ॥
 शं च नो मयश्च नो मा च नः किं चनाममत् ।
 क्षमा रपो विश्वं नो अस्तु भेपजं
 सर्वे नो अस्तु भेपजम् ॥ ३ ॥

॥ १४७ ॥ (अ० १।०३।१६-२३)

मेवातिथिः कान्तः आपः, २३ आपः अग्निश्च । १६-१८ गायत्री,
 १९ पुर वृष्णिक्, २१ प्रतिष्ठा । २०, २२-
 २३ अनुष्टुप् ।

अभ्रवो यन्त्यर्ध्वभिर्जाभयो अच्वरीयताम् ।
 पुञ्चतीर्मधुना पर्यः ॥ १६ ॥
 अमूया उप सूर्ये यामिवा सूर्यः सह ।
 ता नो हिन्यन्त्वध्वरम् ॥ १७ ॥
 आपो देवीरुपं ह्ये यत्र गावः पियन्ति नः ।
 सिन्धुम्यः कर्त्वि हविः ॥ १८ ॥
 अप्स्यङ्तरमृतमस्तु भेपजं मयामुत प्रशस्तये ।
 देवा भवत वाजिनः ॥ १९ ॥
 अप्सु मे सोमो अग्रयो दन्तविभ्रानि भेपजा ।
 अग्निं च विश्वशंभुव मापश्च विश्वभेपजीः ॥ २० ॥

आपः पृणीत भेपजं वरुथं तन्वे कु मर्म ।
 ज्योक् च सूर्ये हृशे ॥ २१ ॥
 इदमापः प्र वंहतु यत् किं च दुरितं मयि ।
 यद् बाहर्मभिवुद्रोह यद् वा शेष उतानृतम् ॥ २२ ॥
 आपो अद्यान्वचारिपे रसेन समगस्महि ।
 पर्यस्वानग्न आ गहि तं मा सं र्छज वरिषा ॥ २३ ॥

॥ १४८ ॥ (अ० ७।१७।१-४)

विशिष्टो मैत्रावरुणिः । आपः । त्रिष्टुप् ।

आपो यं वः प्रथमं देवयन्तं
 इन्द्रपानमूमिमरुणवतेलः ।
 तं वो वयं शुचिमतिप्रमथ
 घृतमुपं मधुमन्तं वनेम ॥ १ ॥
 तमुर्मिमापो मधुमन्तं वो
 अपां नपादवत्वाशुहेमां ।
 यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादवाते
 तमश्याम देवयन्तो वो अथ ॥ २ ॥
 शतपथिवाः स्वधया मर्दन्तीः
 देवीदेवानामपि यन्ति पार्थः ।
 ता इन्द्रस्य न मिनन्ति घृतानि
 सिन्धुम्यो हृद्यं घृतवज्जुहोत ॥ ३ ॥
 याः सूर्यो रुद्रिभिराततान्
 याभ्य इन्द्रो अरदत् गातुमुर्मिम ।
 ते सिन्धवो वरियो घातना नो
 ययं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥
 ॥ १४९ ॥ (अ० ७।१९।१-४)
 विशिष्टो मैत्रावरुणिः । आपः । त्रिष्टुप् ।
 समुद्रज्यैष्ठाः सलिलस्य मध्यात्
 पुनाना यन्त्यानिविशमानाः ।
 इन्द्रो या यज्ञी वृषभो रराद्
 ता आपो देवीरिदं मामगन्तु ॥ १ ॥

यन्नियानं न्ययनं संज्ञानं यत् परायणम् ।
 आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं ह्रुवे ॥ ४ ॥
 य उदानं ह्ययनं न उदानं परायणम् ।
 आवर्तनं निवर्तनं—मपि गोपा नि वर्तताम् ॥ ५ ॥
 आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि ।
 जीवाभिर्मनजामहै ॥ ६ ॥
 परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पर्यसा ।
 ये देवाः के च यन्निया—स्ते रय्या सं सृजन्तु नः ७ ।
 आ निवर्तनं वर्तय नि निवर्तनं वर्तय ।
 भूम्याश्चर्तस्रः प्रदिश—स्ताभ्यं पना नि वर्तय ॥ ८ ॥

॥ १५३ ॥ (क्र० १०३०१-१५)

कवय ऐक्ष्यः । आपः, अपा नपाद वा । विश्वुप् ।

प्र देव्या ब्रह्मणे गातुरेत
 अपो अच्छा मनसो न प्रयुक्ति ।
 महीं मित्रस्य वरुणस्य ध्रासिं
 पृथुजयसे रीरधा सुवृक्तिम्
 अर्धयवो हविर्मन्तो हि भूत
 अच्छाप इतोशतीशान्तः ।
 अय याश्चर्षे अरुणः सुपुर्णः
 तमास्यध्वमूर्धिमया सुदस्ताः
 अर्धयवोऽप इता समुद्रं
 अपां नपातं हविषा यजध्वम् ।
 स वो ददद्भूमिमया सूर्पतं
 तस्मै सोमं मधुमन्तं सुनोत
 यो अनिष्मो दीर्घयदुप्स्वन्तः
 यं विप्रांसु ईक्षते अश्वरेपु ।
 अपां नपांमधुमतीरपो दा
 यामिरिन्द्रो वावधे धीर्याय
 यामिः सोमो मोदते हर्षते च
 कल्याणीभिर्धुवतिभिर्न मयैः ।

ता अन्वयो अपो अच्छा परेहि
 यदासिञ्जा औपधीमिः पुनीतात् ॥ ५ ॥
 प्वेद्युर्न युवतयो नमन्त
 यदीमुशानुशतीरेत्यच्छे ।
 सं जानते मनसा सं चिकित्त्रे
 अध्वर्यवो श्रियणापश्च देवीः ॥ ६ ॥
 यो चो वृताभ्यो अहृणोडु लोकं
 यो चो मृता अभिशस्त्रेमुञ्जत् ।
 तस्मा इन्द्राय मधुमन्तमुमि
 देवमादन् प्र हिणोतनापः ॥ ७ ॥
 प्रास्मै हिनोत मधुमन्तमुमि
 गर्भो यो वः सिन्धवो मध्व उत्सः ।
 घृतपृष्टमीर्ध्वमध्वरेपु
 आपो रेवतीः शृणुता हयै मे ॥ ८ ॥
 तं सिन्धवो मत्सरमिन्द्रपानं
 ऊमि प्र हतं य उभे इयति ।
 मद्रच्युतेमैशानं नमोजां
 परि नितन्तु विचरन्तुमुत्सम् ॥ ९ ॥
 आवर्ततीरघु नु द्विघारा
 गोपुपुधो न नियवं चरन्तीः ।
 ऋषे जनिर्गर्भुर्वनस्य पर्णीः
 अपो वन्दस्व सुवृधः सयोनीः ॥ १० ॥
 हिनोता नो अघरं देवयज्या
 हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम् ।
 क्रुतस्य योगे वि प्यध्वमूर्धः
 श्रुष्टीवरीभूतनास्मभ्यमापः ॥ ११ ॥
 आपो रेवतीः शरय्या हि वस्यः
 क्रतुं च भद्रं विमृयामनं च ।
 रायश्च स्य स्वंपत्यस्य पत्नीः
 सरस्यती तद् गृणते ययो धात् ॥ १२ ॥

॥ १५७ ॥ (अथर्व० १२।१।१-५)

सिन्धुदीपः । आपः । अतुष्टु ।

शं त आपो ह्यैमवतीः शमु ते सन्तुत्याः ।
 शं तै सनिप्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्णाः । १
 शं त आपो धन्वत्याः शं तै सन्वन्त्याः ।
 शं तै खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेमिराभृताः २
 अनध्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।
 मिपग्भ्यो मिपक्तप आपो अच्छा वदामसि ॥३॥
 अपामहं द्विव्याना—मपां स्रोतस्यानाम् ।
 अपामहं प्रणैजने—ऽश्वा भवथ घाजिनः ॥ ४ ॥
 ता अपः शिवा अपो—ऽयंक्षंकरणीरुपः ।
 यथैव लृप्यते मयस्ता—स्त आ दत्त भेपजीः ॥५॥

॥ १५८ ॥ (अथर्व० १२।६९।१-४)

ब्रह्मा । आपः । १ आनुषंतुष्टुः । २ धाम्न्यनुष्टुप् । ३ आगुरी
 गायत्रीः । ४ धाम्न्युणिक् ।
 जीवा स्य जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥
 उपजीवा स्थोर्प जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् २
 संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ३
 जीवला स्य जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ४ ॥

॥ १५९ ॥ (घा० य० १।१२-१३, २१, ३१)

(आपः ।)

सवितुर्वैः प्रसव उत्पुनामि
 अर्चिच्छ्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रुदिमभिः ।
 देवीरापो अग्नेगुघो अग्नेपुषोऽर्भ
 इममय यशं नयतात्रे यशपतिः
 सुधातुं यशपतिं देवयुर्वम् ॥ १२ ॥
 युष्मा इन्द्रोऽवृषीत वृत्रव्यू
 युयमिन्द्रमवृणीपरं वृत्रव्यूं प्रोक्षिता स्य ॥ १३ ॥
 समाप भोर्पधीभिः समोर्पधयो रसेन ।

स रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताः
 सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥ २१ ॥

सवितुर्वैः प्रसव उत्पुनामि
 अर्चिच्छ्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रुदिमभिः ॥ ३१ ॥

॥ १६० ॥ (वा० य० २।२, ३४)

(आपः ।)

अदित्यै व्युन्दनमसि ॥ २ ॥
 ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पर्यः कीलालं परिभ्रुतम् ।
 स्वधा स्य तर्पयत मे पितृन् ॥ ३४ ॥

॥ १६१ ॥ (वा० य० ४।१, ११)

(आपः ।)

इमा आपः शमु मे सन्तु देवीः ॥ १ ॥
 भ्रात्राः पीता भवत युयमापो
 अस्कारमन्तरुदरे सुशेवाः ।
 ता असभ्यमयक्ष्मा अनमीया अनागसः
 स्वदन्तु देवीरमृता ऋतावर्धः ॥ १२ ॥

॥ १६२ ॥ (घा० य० ५।११)

(आपः ।)

इदमहं तप्तं वार्यहिर्धा यज्ञानिः सृजामि ॥ ११ ॥

॥ १६३ ॥ (वा० य० ६।१०, १२, ३०-३१)

(आपः ।)

आपो देवीः स्वदन्तु स्यात्तं चित्सद् देवहविः १०
 देवीरापः शुद्धा वौद्वयः सुपर्तिविष्टा
 देवेषु सुपर्तिविष्टा धुयं पतिविष्टार्त्तं भूयास ॥ १३ ॥
 निग्राभ्या स्य देवध्रुतस्तर्पयत मा ॥ ३० ॥
 मनो मे तर्पयत वार्चं मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत
 चक्षुं मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयतान्मानं मे तर्पयत
 प्रजां मे तर्पयत पदान् मे तर्पयत
 गुणान् मे तर्पयत गुणा मे मा विष्टुपन् ॥ ३१ ॥

॥ १६३ ॥ (घ० य० ६।१७, २१, २४, २७-२८)

(भाष ।)

इदमापः प्रवहता—वृद्यं च मलं च यत् ।
 यच्चाभिदुद्रोदानृतं यच्च शेषे अमीरणम् ।
 आपो मा तस्मादेनसः—पर्वमानश्च मुञ्चतु ॥ १७ ॥
 मापो मोर्षधीर्हिंसीः ।
 सुमिश्रिया न आप ओर्षधयः सन्तु ।
 योऽस्मान् हेष्टि यं चं वयं द्विष्यः ॥ २२ ॥
 अग्नेर्गोऽर्षघ्नस्य सर्दसि सादयामि
 इन्द्रान्योर्भागधेयीं स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयीं स्थ
 रिभ्येषां देवानां भागधेयीं स्थ ।
 धर्म्या उप सूर्ये यामिर्जा सूर्यैः सह ।
 ता नो दिव्यन्त्यध्वरम् ॥ २४ ॥
 देवीरापो अर्षा नपाधो यं ऊर्मिः
 दृषिष्य इन्द्रियावान् मदिन्तमः ।
 नं द्येष्यो देवया दंज
 नृकपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वादां ॥ २७ ॥
 समुद्रस्य त्या क्षित्या उर्षयामि ।
 समार्षो अग्निर्गमत् समोर्षधीमितोर्षधीः ॥ २८ ॥
 ॥ १६५ ॥ (घा० य० ८।१६)

यदि वृक्षाद्भ्यर्षत्तत् फलं तद्
 यद्यन्तरिक्षात् स उं घायुरेव ।
 यत्रास्पृक्षत् तन्वोऽं यच्च वासंस
 आपो जुदन्तु निर्रक्तिं पराचैः ॥ २ ॥
 अभ्यङ्गनं सुरभि सा समृद्धिः
 हिरण्यं वचस्तदुं पुत्रिममेव ।
 सर्षो पवित्रा वितताध्यस्तत्
 तन्मा तारिषिर्भ्रतिर्मा अरतिः ॥ ३ ॥

॥ १६ ॥ (अथर्व० ७।७।८१।१-४)

सिन्धुर्द्वीपः । अग्निः (दिव्या भाषः) । अनुष्टुप् । ४ विपदा
 निवृत्त परोणिक् ।

अपो दिव्या अन्चापिपं रसेन समपृक्षमहि ।
 पयस्वानग्ना आगमं तं मा सं सृज्ज यचैसा ॥ १ ॥
 सं माग्ने यचैसा सृज्ज सं प्रजया समायुषा ।
 विद्युमो अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः २
 इदमापः प्र वहता—वृद्यं च मलं च यत् ।
 यच्चाभिदुद्रोदानृतं यच्च शेषे अमीरणम् ॥ ३ ॥
 एषोऽस्वेषिपीय सुमिर्दसि समधिपीय ।
 तेजोऽसि तेजो मर्ये धेदि ॥ ४ ॥

॥ १७० ॥ (अथर्व० ६।७०।१-३)

शन्तातिः । १ आदिलारमिः । २-३ मरुतः (भैषज्यम्) ।
त्रिष्टुप्, २ चतुष्टुप् भुविभजपती ।

कृष्णं नियान्नं हरयः सुपर्णा
अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति ।

त आर्यवृन्सर्वनादृतस्य
आदिद् घृतेन पृथिवी व्युत्तुः
पर्यस्वतीः कृणुयाप ओर्षधीः
शिवा यदेर्जथा मरुतो रुमवक्षसः ।

ऊर्जे च तत्र सुमतिं च पिन्वतु
यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधुं
उदमुतो मरुतस्तो इयंत
घृष्टिया विभ्यां निघतस्पृणान्ति ।
पजाति ग्लहां कन्येषुच तुशा
परं तुन्दाना पत्येव जाया

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ १७१ ॥ (अथर्व० ६।७१।१-३)

शन्तातिः । आप (अर्गं भैषज्यम्) । १ अनुष्टुप्,
२ त्रिष्टुप् गायत्री, ३ परोष्णिक् ।

सुस्रुपीस्तदुपसो दिवा नक्तं च सुस्रुपीः ।

वरेण्यक्तुर्हृद—मपो देवीरुपं हये ॥ १ ॥
ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्यतः प्रणीतये ।

सद्यः कृण्वन्त्येतवे ॥ २ ॥

देवस्य सधितुः सद्ये कर्म कृण्वन्तु मानुषाः ।

शं नो भवन्त्यप ओर्षधीः शिवाः ॥ ३ ॥

॥ १७२ ॥ (अथर्व० ६।७२।१-३)

शन्ताति । अपः (अर्गं भैषज्यम्) । अनुष्टुप् ।

हिमघतः प्र संघन्ति सिन्धुं समह संगमः ।

आपो ह मह्यं तद् देवीः दर्दनं हृदयोतमपजम् १

यन्मं अह्योराद्रियो—त पाण्योः प्रपदोश्च यन् ।

आपस्तन् सद्ये निष्करन् सिपजां सुभिपकमाः २

मिन्धुपत्नीः सिन्धुपत्नीः सर्वो या नद्यु स्पनं ।

इत् नस्तस्य भैपजं तेनां यो भुनजामहे ॥ ३ ॥

॥ १७३ ॥ (अ० ७।८३।१-१०)

मौमोडरि । परत्रयः । त्रिष्टुप्, २-४ जगती, १ अनुष्टुप् ।

अच्छां वद त्वसं गीर्भिराभिः

स्तुद्धि पृजन्त्यं नमसा विवास ।

कर्त्तिकदद् वृषभो जीरदान्

रेतो दघ्रास्योर्षधीषु गर्भम् ॥ १ ॥

वि घृक्षान् हृन्त्युत हृग्नि रुक्षसां

विभ्वं विभाय भुवनं महावघात् ।

उतानांगा ईपते वृण्ण्यावतो

यत् पृजन्त्यः स्तनयन् हन्ति दुष्टतः ॥ २ ॥

रथीघ कदायाभ्यां अभिक्षिपन्

आविदुतान् कृणुते वृष्योः अहं ।

दुरात् सिंहस्य स्तनया उदीरते

यत् पृजन्त्यः कृणुते वृष्योः नमः ॥ ३ ॥

प्र याता यान्ति पतर्यन्ति त्रिद्युत

उदोर्षधीर्जिह्वते पिन्वते स्वः ।

इरा विभ्वस्मै भुवनाय जायते

यत् पृजन्त्यः पृथिवीं रेतुसार्वति ॥ ४ ॥

यस्य द्रते पृथिवी ननमीति

यस्य द्रते शफयज्जर्भुरीति ।

यस्य द्रत ओर्षधीविभ्वरूपाः

स नः पृजन्त्य मदि शर्मं यच्छ ॥ ५ ॥

द्रियो नो घृष्टि मरुतो ररीचुं

प्र पिन्वत वृष्णो अर्धस्य धाराः ।

अयांङ्ङितेन स्तनयित्नुनेदि

अपो निविञ्चप्रसुतः पिता नः ॥ ६ ॥

अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा घां

उद्व्यता परि दीया रथेन ।

दति सु फर्षे विरितं न्यञ्जं

सुमा मयन्तुर्दतो निपादाः ॥ ७ ॥

महान्तं कोशमुदंचा नि विञ्च
स्पर्शान्तां कुल्या विविताः पुरस्तात् ।

युतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि
सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः

॥ ८ ॥

यत् पर्जन्य कर्त्तिकदत्
स्तनयन् हंसिं दुष्कृतः ।

प्रतीदं विश्वं मोदते

यत् किं वं पृथिव्यामधि

॥ ९ ॥

अवर्षीर्वर्षमुदु पृ गृभ्याय
अकूर्धन्वान्यस्यैतवा उ ।

अर्जीजन ओषधीर्भोजनाय

कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषां

॥ १० ॥

॥ १७४ ॥ (ऋ० १०।१७।१६)

ऐन्द्रो वधुक । इन्द्रः (पर्जन्यः) । त्रिष्टुप् ।

दशानामेकं कपिलं समानं
तं हिन्वन्ति क्रतये पार्ष्णीय ।

गर्भं माता सुधितं वक्षणासु

अयनन्त नृपर्यन्ती विभर्ति

॥ १६ ॥

॥ १७५ ॥ (ऋ० ७।१०।११-६)

मैत्रावरुणिवंसिष्ठः (वृष्टिकामः), कुमार आमेयो वा ।

पर्जन्यः । त्रिष्टुप् ।

तिस्रो वाचः प्र वंद ज्योतिरग्रा
या एतद् दृष्टे मधुदोघमूर्धः ।

न घृतं कृण्वन् गर्भमोषधीनां

सृष्टो ज्ञानो गृपमो रोरवीति

॥ १ ॥

यो पथेन ओषधीनां यो अपां
यो विदग्म्य जगतो देय ईदो ।

न त्रिधानं दारणं शर्म यंमत्

त्रिपत्तु ज्योतिः म्यग्निष्टयसो

॥ २ ॥

स्तरीरं त्वद् भवति सूर्य उ त्वद्
यथावशं तन्व्यं चक्र एवः ।

पितुः पयः प्रतिं शुभ्णाति माता

तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः

॥ ३ ॥

यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः

तिस्रो द्यावेच्छेधा सस्त्ररापेः ।

त्रयः कोशास उपसेचनानसो

मध्वः श्रोतन्त्यभितो विरप्शाम्

॥ ४ ॥

इदं वचंः पर्जन्याय स्वराजे

हृदो अस्वन्तरं तज्जुजोपत् ।

मयोभुवो वृष्टयः सन्त्वसे

सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः

॥ ५ ॥

स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां

तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुषश्च ।

तन्मं ऋतं पातु शतशोरदाय

युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ६ ॥

॥ १७६ ॥ (ऋ० ७।१०।११-३)

मैत्रावरुणिवंसिष्ठः (वृष्टिकामः), कुमार आमेयो वा । पर्जन्यः ।
गायत्री, २ पादनिचृत् ।

पर्जन्याय प्र गांयत दिवस्पुत्राय मीळुष्ये ।

स नो यवंसमिच्छतु

॥ १ ॥

यो गर्भमोषधीनां गर्वा कृणोत्यर्धताम् ।

पर्जन्यः पुरुषीणाम्

॥ २ ॥

तस्मा इदास्यै हविर्जुहोता मधुमत्तमम् ।

इळां नः सयतं करत्

॥ ३ ॥

॥ १७७ ॥ (ऋ० ७।१०।११-१०)

मैत्रावरुणिवंसिष्ठः । मण्डूकाः (पर्जन्यः) । त्रिष्टुप्, १
अनुष्टुप् ।

भ्रवत्सुरं शशयाना प्राहणा यतचारिणः ।

याचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डुकां अयादिपुः ॥१॥

(१०८९)

दिव्या आपो अमि यदेनमायन्
 हति न शुष्कं सरसी शयानम् ।
 गवामह न मायुर्वत्सिनीनां
 मण्डूकाना वग्गुरा समेति
 यदीमेनां उशतो अम्यवर्षात्
 तृप्यावतः प्रावृष्यागतायाम् ।
 अन्प्रलीहत्यां पिनरं न पुत्रो
 अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति
 अन्यो अन्यमनुं गृणाल्येतोः
 अपां प्रसंगे यदमन्त्रिपाताम् ।
 मण्डूको यदमिष्टुः कनिष्कन्
 शुश्रिः संपृष्टके हारितेन वाचम्
 यदेपामन्यो अन्यस्य वाचं
 शाक्तस्यैव वदति शिक्षमाणः ।
 सत्रं तदेपां समृधैव परं
 यत् सुवाचो वदथनाप्यप्सु
 गोमायुरेको अजमायुरेकः
 पृश्निरेको हरितं परं एषाम् ।
 समानं नाम विश्रतो विरूपाः
 पुरुषा वाचं पिपिशुर्दन्तः
 प्राहणासो अतिरात्रे न मोमे
 सरो न पूर्णममितो वदन्तः ।
 संवत्सरस्य तदहः परं ह्य
 यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं यभूव
 प्राहणासः मोमिनो वाचमजत
 प्रहं कृण्वन्तः परिवत्सरोणम् ।
 अभ्युर्ववो धामेणः सिपिदाना
 आपिमैरन्ति गुहा न के चित्
 देवादिति जगुपर्णद्वस्यं
 ऋतुं नरो न प्र विनन्त्येते ।

संवसरे प्रावृष्यागतायां
 तप्ता घृमा अंश्रुवते विसर्गम् ॥ १ ॥
 गोमायुरदाद्जमायुग्दात्
 पृश्निरेदाद्धरितो नो वसुनि । ॥ २ ॥
 गवां मण्डूका ददतः शतानि
 सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥ १० ॥
 ॥ १७८ ॥ (अथर्वे ० ४१५१-१६)
 ॥ ३ ॥ अथवा । १ दिश, २-३ वीधवा, ४ मध्यवर्षी, ५-१०
 मरुतः आप, ११ प्रजापति रतनवित्तु, १२ वध, १३-१५ मण्डूकाः पितरथ, १६ वाय. (कृष्टिः) । त्रिष्टुप् ;
 १-२, ५ विराट् जगती, ४ रिशट् पुरस्ताद्बृहती, ७-१३
 अनुष्टुप्, ९ पथ्यापलाकि, १० भुविह्, १२ पथ्यदानुष्टुप्सर्मा
 ॥ ४ ॥ भासिक, १५ अक्षुमलानुष्टुप् ।
 समुत्पतन्तु प्रदिशो नर्मम्वतीः
 समध्राणि वातजृतानि यन्तु ।
 महभ्रुपमस्य नदतो नर्मस्यतो
 वाधा आपः पृथिवी तर्पयन्तु ॥ १ ॥
 समीक्षयन्तु तत्रियाः सुदानयः
 अपां रमा ओषधीभिः सचन्ताम् ।
 धर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमि
 पृथग् जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः ॥ २ ॥
 समीक्षयस्य गायतो नर्मापि
 अपां वेगांसः पृथग्नु विजन्ताम् ।
 धर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमि
 पृथग् जायन्तां धीरुर्वो विदरूपाः ॥ ३ ॥
 ॥ ७ ॥ गुणास्त्वोषं गायन्तु मारुताः
 पर्जन्य घोषिणः पृथक् ।
 सर्गा धर्षस्य धर्षतो धर्षन्तु पृथि शमन्तु ॥ ४ ॥
 उदीरयत मरुतः समुद्रतः
 ॥ ८ ॥ रवेपो रूको नम उम् पांतयाथ ।
 महभ्रुपमस्य नदतो नर्मम्वतो
 वाधा आपः पृथिवी तर्पयन्तु ॥ ५ ॥

अग्निं क्रन्द स्तनयादयोर्दधि
 भूमिं पर्जन्यं पर्यसा समङ्ग्धि ।
 त्वया सृष्टं बहुलमैतुं वर्प
 आशारैपी कृशगुरेत्त्वस्ताम् ॥ ६ ॥
 सं वौऽवन्तु सुदानं व उत्सा अजगरा उत ।
 मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनुं ॥ ७ ॥
 आशामाशां वि द्यौततां वाता वान्तु दिशोदिशाः ।
 मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनुं ॥ ८ ॥
 आपो विद्युदभ्रं वर्प सं वौऽवन्तु
 सुदानं व उत्सा अजगरा उत ।
 मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनुं ॥ ९ ॥
 अपामग्निस्तनूभिः संविदानो
 य ओषधीनामधिपा वभूर्व ।
 स नो वर्प वन्तुतां जातवेदाः
 प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्पतिं ॥ १० ॥
 प्रजार्पतिः सलिलादा संमुद्राद्
 आप ईरयन्नृद्धिमर्दयाति ।
 प्र प्यायता वृष्णो अश्वस्य रेतः
 अयोडितेन स्तनयित्नुनेहिं ॥ ११ ॥
 अपो निपिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु
 गर्गरा अपां चरुणाव नीचीरपः सृज ।
 वर्धन्तु पृथिव्याहयो मण्डूका इरिणानुं ॥ १२ ॥
 संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
 पाचं पर्जन्यंजिन्वितां प्र मण्डूकां अवादिपुः १३
 उपप्रवद मण्डूकिः धर्ममा धेद तादुरि ।
 मर्त्ये हृदम्यं प्रवस्य विगृह्यं चतुरः पदः ॥ १४ ॥
 मण्यग्रा३५ वैमग्रा३५ मर्त्ये तदुरि ।
 धर्मं धनुष्यं पितरो मरुतां मनं हृच्छत ॥ १५ ॥
 मदानं कोशमुदच्यामि पिञ्च
 नपिपुतं भयत यातु पातः ।

तन्वतां युधं यद्दुधा विसृष्टा
 आनग्निनीरोषधयो भयन्तु ॥ १६ ॥
 ॥ १७ ॥ (अथर्व० ७।१८।१-९)
 अथवा । पृथिवी, पर्जन्यः (शृष्टिः) । १ चतुष्पदा गुरिगुणिक,
 २ त्रिष्टुप् ।
 प्र नभस्य पृथिवि भिन्दी बुद्धं दिव्यं नमः ।
 उद्भो दिव्यस्य नो धातु—रीशानो वि प्या दतिम् १
 न व्रत्ताताप न हिमो जघान
 प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः ।
 आपञ्चिदसौ घृतमित् क्षरन्ति
 यत्र सोमः सद्रमित् तत्र भद्रम् ॥ २ ॥
 ॥ १८० ॥ (ऋ० ३।३३।१-१३)
 गाधिनो विश्वामित्रः ४,६,८,१० नया ऋषिणाः १ नया,
 ४,६,१० विश्वामित्रः ६,७ इन्द्र । त्रिष्टुप्, १३ अतुष्टुप् ।
 प्र पर्वतानामुशती उपस्थाद्
 अश्वे इव विपिते हासमाने ।
 गावेषु शुभ्रे मातरां रिहणे
 विपाद्द्युतुद्री पर्यसा जवेते ॥ १ ॥
 इन्द्रेपिते प्रसूवं भिक्षमाने
 अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।
 समारणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने
 अन्या वामन्यामन्येति शुभ्रे ॥ २ ॥
 अच्छा सिन्धुं मावृतमामयासं
 विपाशामुयीं सुभगांमगन्म ।
 वत्समिव मातरां संरिहणे
 संमान योनिमनुं संचरन्ती ॥ ३ ॥
 एना वयं पर्यसा पिन्वमाना
 अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
 न वर्तये प्रसूवः सर्गातक्तः
 क्रियुषिमां नद्यो जोहवीति ॥ ४ ॥
 (२०१३)

रमध्वं मे वचसे सोम्याय
 ऋतावरीरुपं मुहुतेमेवैः ।
 प्र सिन्धुमच्छो बृहती मनीषा
 अवस्युरहे कुशिकसां सुनुः
 इन्द्रो अस्मां अरदुद् वज्रवाहुः
 अर्पाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
 देवोऽनयत् सविता सुपाणिः
 तस्य वयं प्रसवे याम उर्वोः
 प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं तद्
 इन्द्रस्य कर्म यदहिं विवश्चत् ।
 वि वज्रैण परिपदो जघान
 आयन्नापोऽयंनमिच्छमानाः
 एतद् वचो जरितमोषि मृष्टा
 आ यत् ते घोपानुसंरा युगानि ।
 उपयेयुं कारो प्रति नो जुपस्व
 मा नो नि कः पुरुषा नमस्ते
 ओ पु स्वंसारः कार्वे शृणोत
 ययौ वो दुरादनसा रथेन ।
 नि पू नमध्वं भवता सुपारा
 अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः
 आ ते कारो शृणवामा वचोसि
 ययार्थं दुरादनसा रथेन ।
 नि ते नसे पीप्यानेव योया
 मयीयेव कन्यां शश्वचे ते
 यदङ्ग त्वां भक्ताः संतरैयुः
 गन्धन् ग्रामं इषित इन्द्रजूनः ।
 अर्पादहं प्रसवः सर्गतक्त
 आ वो वृषे सुमतिं युग्नियानाम्
 अर्तारिपुर्भक्ता गन्धवः सं
 अभक्त धिप्रः सुमतिं नदीनाम् ।

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराध्रा
 आ वृक्षणाः पृणध्वं यात शीर्षम् ॥ १२ ॥
 उद् वं ऊर्मिः शम्यां हन्तु
 आपो योन्नाणि मुञ्चत ।
 मादुःकृतौ ध्येनसा ऽध्यौ शनमारताम् ॥ १३ ॥
 ॥ १८१ ॥ (श्लो ७/१०४)
 मैत्रावरुणिवैशिष्टः । नयः । अतिव्रयती शकरी वा ।
 याः प्रवतो निवत उद्वतं
 उद्वन्वतीरनुदकाश्च याः ।
 ता अस्मभ्यं पर्यसा पिन्वमानाः
 शिवा देवीरेशिपदा भवन्तु
 सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु ॥ ४ ॥
 ॥ १८२ ॥ (श्लो १०/७५१-९)
 सिन्धुक्षित् प्रैयमेवः । नयः । जगती ।
 प्र सु र्ध आपो महिमार्नमुत्तमं
 कारुर्वोचाति सदेने विवस्वतः ।
 प्र सप्तसंत व्रेधा हि चक्रुः
 प्र सृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा ॥ १ ॥
 प्र तंऽरदुद् वरुणो यातवे पृथः
 सिन्धो यद् वाजो अभ्यद्रवस्त्वम् ।
 भूम्या अधि प्रवतो पासि सातुंल
 यदेपामप्रं जर्गतामिज्यासिं ॥ २ ॥
 द्विवि स्वनो यतते भूम्योपरि
 अनन्तं शुष्ममुदिद्यति मानुनां ।
 अधादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः
 सिन्धुर्यदेति वृषमो न रोरुवत् ॥ ३ ॥
 अभि त्वां सिन्धो शिशुमिध्र मातरौ
 द्याध्रा अर्पन्ति पर्यसेव धेनवः ।
 राजेव युधां नयसि त्वमिन् सिञ्चौ
 यदांतामघं प्रवतामिनक्षसि ॥ ४ ॥

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति
 शुतुद्रि स्तोमं सचता पुरुण्या ।
 अस्मिन्त्या मरुद्वधे वितस्तया
 धार्जीकीये शृणुह्या सुयोमया
 तृष्टामया प्रथमं यातवे सृजः
 सुमत्वी रसया श्वेत्या त्या ।
 त्वं सिन्धो कुमया गोमतीं क्रुमुं
 मेदन्त्या सरथ यामिरीयसे
 ऋजीत्येनी रुशती महित्वा
 परि जयसि भरते रजांसि ।
 अर्दग्धा सिन्धुरपसांमपस्तम
 अश्या न चिशा वपुषीव दशता
 स्वश्या सिन्धुः सुरथा सुवासां
 हिरण्ययी मुरुता वाजिनीवती ।
 ऊर्णावती युवतिः सीलमावति
 उताधि वस्ते सुमगां मधुवर्धम्
 सुगं रथं युयुजे सिन्धुरभिवन्
 तेन वाजं तनिपदस्मिप्राजी ।
 मदान् हांस्य महिमा पनस्यते
 अर्दधस्य स्वयंदासो विरुपिदानः

॥ १८३ ॥ (ऋ० ७।१५।३)

मंत्रावर्णिभिषिः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

न वापुषे नयो योषणासु
 पूया शिर्मुकुम्भो युषियासु ।
 न पात्रिर्न मयवद्भयो दधानि
 वि सानये तन्म्यं माग्जीति

॥ १८४ ॥ (ऋ० ७।१६।४-६)

मंत्रावर्णिभिषिः । सरस्वती । वायवी ।

ऊर्णावन्तो स्वधेयः पुत्रीयग्नः सुदानेयः ।
 सार्वध्वजं हवामहे

॥ ४ ॥

ये तै सरस्व ऊर्मथो मधुमन्तो घृतश्रुतः ।
 तेभिर्नोऽविता भव ॥ ५ ॥
 पीपिधांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वर्दशतः ।
 भक्षीमहिं प्रजामिषम् ॥ ६ ॥

॥ १८५ ॥ (अथर्व० ७।४०।१-२)

प्रश्नः । सरस्वती । १ भुरिक, २ त्रिष्टुप् ।

॥ ६ ॥ यस्यं व्रतं पशवो यन्ति सर्वे
 यस्यं व्रत उंपतिष्टन्त आपः ।
 यस्यं व्रते पुष्टपतिर्निविष्टः
 तं सरस्वन्तमवसे हवामहे ॥ १ ॥
 ॥ ७ ॥ आ प्रत्यञ्चं दाशुपे दाश्वंसं
 सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम् ।

रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना
 इह हुवेम सदेनं रयोणाम् ॥ २ ॥

॥ १८६ ॥ (ऋ० १।३।१०-१२)

मधुश्चन्दावैशामित्रः । सरस्वती । वायवी ।

॥ ९ ॥ पावका नः सरस्वती वाजिभिर्याजिनीवती ।
 यज्ञं यष्टु धियावसुः ॥ १० ॥

चोदयिषी सुनुतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
 यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥

महो अणः सरस्वती प्र चेतयति केतुनां ।
 धियो विश्वा वि रजति ॥ १२ ॥

॥ १८७ ॥ (ऋ० १।१६।४९)

दीपंतमा ओषध्य । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

यस्ते ग्नः दानो यो मयोमः
 येन विद्या पुष्यति धार्यणि ।
 यो रेतुधा यमविद् यः सुदुः
 सरस्वति तमिह धामये वः ॥ ४९ ॥
 (१०४९)

॥ १८८ ॥ (ऋ० १।२०।८ [पूर्वाधः])
 गृहसमदः (आदित्यः शौनहोत्रः पथाद् मार्गवः) शौनकः ।
 सरस्वती । त्रिष्टुप् ।
 सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि
 मरुत्वंती धृपती जैपि शर्वन् ॥ ८ ॥
 ॥ १८९ ॥ (ऋ० २।४१।१६-१८)
 गृहसमदः (आदित्यः शौनहोत्रः पथाद् मार्गवः) शौनकः ।
 सरस्वती । अनुष्टुप्, १८ बृहती ।
 अग्निमतमे नर्दातमे देवितमे सरस्वति ।
 अप्रशास्ता इव स्मसि प्रशास्तिमग्न्य नस्कृधि १६
 त्वे विश्वाँ सरस्वति धितायुँपि देव्याम् ।
 शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजाँ देवि दिदिड्ढि नः १७
 इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्यं वाजिनीवति ।
 या ते मर्म गृहसमदा ऋतावरि
 प्रिया देवेषु जुह्वति ॥ १८ ॥
 ॥ १९० ॥ (ऋ० ६।६१।१-१४)
 बार्हस्पत्यो मरद्वाजः । सरस्वती । गायत्री, १-१, १३ अगती,
 १४ त्रिष्टुप् ।
 इयमद्वाद् रभसमृणच्युतं
 दिवोदासं घघ्न्यश्वार्यं द्राक्षुपे ।
 या शश्वन्तमाच्ययादावसं पूर्णि
 ता तै द्वात्राणि तविषा सरस्वति ॥ १ ॥
 इयं शुष्मेभिर्विसृपा इवाचरुत्
 सातुं गिरीणां तविषेभिर्हूमिभिः ।
 पारावतप्रोमवसे सुवृक्तिभिः
 सरस्वतीमा धिवासेम भीतिभिः ॥ २ ॥
 सरस्वति देवनिद्रो नि बर्हय
 प्रजाँ विश्वस्य वृसंस्य मायिनः ।
 उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्द्रो
 विप्रर्मभ्यो अन्नयो वाजिनीवति ॥ ३ ॥

प्र णीं देवी सरस्वती वाजिभिर्वाजिनीवती ।
 धीनामविश्वयवतु ॥ ४ ॥
 यस्याँ देवि सरस्वत्युपयुते धने हिते ।
 इन्द्रं न वृत्रत्यै ॥ ५ ॥
 त्वं देवि सरस्वत्या वाजेषु याजिनि ।
 रदाँ पुषेवं नः सनिम् ॥ ६ ॥
 उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः ।
 वृत्रघ्नी वंष्टि सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥
 यस्याँ अनन्तो अहुतस्वेपश्चरिण्युरणवः ।
 अमश्चरति रोहवत् ॥ ८ ॥
 सा नो विश्वा अति द्विपः स्वसूरन्या ऋतावरी ।
 अतन्नहैव सूर्यः ॥ ९ ॥
 उत नः प्रिया प्रियासु सतस्यसा सुजुष्टा ।
 सरस्वती स्तोम्याँ भूत् ॥ १० ॥
 आपुप्रो पार्थिवाँ च्युः रजो अन्तरिक्षम् ।
 सरस्वती निदस्पातु ॥ ११ ॥
 त्रिपथस्याँ सतधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती ।
 वाजैवाजे हव्याँ भूत् ॥ १२ ॥
 प्र या मंहिन्ना मंहिनासु चेकिते
 चुष्तेभिर्न्या अपसामुपस्तमा ।
 रयं इव बृहती विभ्वने कृता
 उपस्तुत्याँ चिक्रितुषा सरस्वती ॥ १३ ॥
 सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो
 मार्प स्फरीः पर्यसा मा न आ धक् ।
 जुषस्यं नः सुत्या वेदयाँ च
 मा त्वत् क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥ १४ ॥
 ॥ १९१ ॥ (ऋ० ७।९५।१-२, ४-६)
 मेधावगणिवोविष्टः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।
 प्र क्षोदसा धार्यसा सन्न एषा
 सरस्वती घृणमार्पसाँ पूः ।
 प्रवार्यधाना रथ्यैव याति
 विश्वाँ अपो मंहिना मिन्युर्न्याः ॥ १ ॥

एकाचित्तत् सरस्वती नदीनां
शुचिर्वती गिरिभ्यु आ संमुद्रात् ।
रायधेतन्ती भुवन्स्य भूरैः
घृतं पयो दुदुष्टे नार्हपाय

॥ २ ॥

उत स्या नः सरस्वती ज्ञुपाणा
उपे श्रवत् सुभगां यज्ञे अस्मिन् ।
मितह्नुभिर्नमस्यैरियाना
राया युजा चिदुत्तरा सविभ्यः

॥ ४ ॥

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः
प्रति स्तोमै सरस्वति जुपस्व ।
तद्य शर्मन् प्रियतमे दधाना
उपे स्थेयाम शरणं न वृक्षम्

॥ ५ ॥

अयमुं ते सरस्वति वसिष्ठो
द्वारावृतस्य सुभगे ध्यावः ।
वर्धे शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्
युयं पात स्वस्तिभिः सदां नः

॥ ६ ॥

॥ १९९ ॥ (ऋ० ७।९६।१-३)

मेत्रावरुणिवसिष्ठः । सरस्वती । १-२ प्रगाथः- (१ बृहती,
२ घतो बृहती), ३ प्रस्तरपङ्क्तिः ।

बृहदुं गायिषे वचोः सुसुर्या नदीनाम् ।
सरस्वतीमिन्द्रया सुवृत्किभिः
स्तोमैर्वसिष्ठु रोदसी

॥ १ ॥

उमे यत् तं महिना शुभ्रे अर्धसी
अधिक्षियन्ति पूर्यः ।

सा नो वोष्यवित्री मरुत्सखा
चोद राधो मघोनाम्

॥ २ ॥

अद्रमिद् अद्रा कृणवत् सरस्वति
अकवारो चेतति वाजिनीवती ।

गृणाना जेमदग्निवत् स्तुयाना च वसिष्ठवत् ३

॥ १९१ ॥ (ऋ० १०।१७।१-१,७-९)

देवधवा वामावनः । १-२ गण्ड्यू, ७-९ सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

त्वष्टा दुहित्रे पदतुं कृणोति
इतीदं विश्वं भुवन्नं समेति ।

यमस्य माता पर्युष्टामाना

महो जाया विर्यस्यतो ननाश

॥ १ ॥

अपांगहृत्प्रतां मर्त्येभ्यः

कृत्वी सर्वणामदुदिविच्यन्ते ।

उतादियनायमर्द् यत् तदानीद्

अजहादु द्वा मिधुना सरण्युः

॥ २ ॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते

सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।

सरस्वतीं सुकृती अहयन्त

सरस्वतीं दाशुषे धार्यं दात्

॥ ७ ॥

सरस्वति या सरथं ययार्थं

स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।

असद्यास्मिन् घर्हिषि मादयस्व

अनमीवा इप आ धेह्यस्मे

॥ ८ ॥

सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते

दक्षिणा यक्षमिन्नक्षमाणाः ।

सहस्रायमिलो अत्र भागं

रायस्वोपं यजमानेषु धेहि

॥ ९ ॥

॥ १९४ ॥ (अथर्व० ७।१०।१)

शोचकः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

यस्ते स्तनः शशयुयो मयोभूः

यः सुस्रयुः सुहवो यः सुदन्नः ।

येन विश्वा पुष्यसि वार्योणि

सरस्वति तमिह धातवे कः

॥ १ ॥

॥ १९५ ॥ (अथर्व० ७।११।१)

शोचकः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

यस्तं पृथु स्तनयित्नुयं क्रुष्वो

दैवः केतुर्विश्वमाभूपतीदम् ।

मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं

मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य

॥ १ ॥

(२०७)

॥ १९६ ॥ (अथर्व० ७।१७।१-२)

वामदेवः । सरस्वती । जपती ।

यदाशसा वर्द्धतो मे विचक्षुभे
यद् यार्चमानस्य चरतो जना अर्जु ।

यदात्मनि तन्वोमे विरिष्टं
सरस्वती तदा पृणद् घृतेन
सुप्त क्षरन्ति दिशश्चे मरुत्वते
पित्रे पुत्रास्तो अर्प्यवीवृतन्नतानि ।

उमे इदस्योमे अंस्य राजत
उमे यतेते उमे अंस्य पुष्यतः

॥ १९७ ॥ (अथर्व० ७।६८।१-३)

शन्तालिः । सरस्वती । १ अगुष्टुप्, २ त्रिष्टुप्, ३ गायत्री ।

सरस्वति वृतेषु ते द्विव्येषु देवि धामसु ।

जुपस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥ १ ॥

इदं ते हव्यं घृतवत् सरस्वति

इदं पितृणां हविरास्यं । यत् ।

इमानि त जदिता शंतमानि

तेभिर्धियं मधुमन्तः स्याम

शिवा नः शंतमा भव सुसृडीका सरस्वति ।

मा ते युयोम संदशः

॥ १९८ ॥ (चा० य० १०।१-४, १९)

(भाषा ।)

अपो देवा मधुमतीरघृभ्णन्

ऊर्जस्वती राजम्बुध्वितानाः ।

यामिर्मिन्नावर्कणावभ्यपिञ्जन्

यामिरिन्द्रमनयप्रत्यरातीः

वृष्णं ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा

वृष्णं ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि

वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा

वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि

अयेतं स्य राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

अयेतं स्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त

ओर्जस्वती स्य राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

ओर्जस्वती स्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त

आर्पः परिवाहिणी स्य राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

आर्पः परिवाहिणी स्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त

अपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा

अपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि

अपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा

अपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ ३ ॥

सूर्यत्वचस स्य राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

सूर्यत्वचस स्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त

सूर्यवचस स्य राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

सूर्यवचस स्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त

मान्दा स्य राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

मान्दा स्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त

वृजक्षितं स्य राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

वृजक्षितं स्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त

वाशा स्य राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

वाशा स्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त

शर्विष्ठा स्य राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

शर्विष्ठा स्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त

शन्वरी स्य राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

शन्वरी स्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त

जनमृतं स्य राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

जनमृतं स्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त

विश्वमृतं स्य राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

विश्वमृतं स्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त

आर्पः स्यराजं स्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।

मधुमतीर्मधुमतीभिः पृथन्तां

महिं क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वाना

अनाघृष्टाः सीदत सहोर्जसो

महिं क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः

॥ ४ ॥

(२०८४)

सन्निवृत्तः प्रसूच उर्युनामि
 अन्निद्रेण प्रथिनेण सूर्यस्य रुदिमभिः ।
 अर्निभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः
 सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजसूयः ॥ ६ ॥
 प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठात्
 नावञ्चरन्ति स्वसिचं इयानाः ।
 ता आर्यवृत्रघ्नधरागुर्दका
 अर्हि बुष्ण्यमनु रीयमाणाः ॥ १९ ॥
 ॥ १९९ ॥ (या० य० १११३८)
 (आप १)

अपो देवीरुपसृज मधुमतीरयहमार्य प्रजाभ्यः ।
 तासामाप्यानादुज्जिहता मोर्षधयः सुपिप्पलाः ३८
 ॥ २०० ॥ (या० य० १११३५, ५५)
 (आप १)

आपो देवीः प्रतिगृणीत भस्मैतत्
 स्योने कृणुष्वर सुरमा उं लोके ।
 तस्यै नमन्तां जनयः सुपत्नीः
 मानेयं पुत्रं विभृताप्सुनत् ॥ ३५ ॥
 ता अस्य सूददाहसः सोमैर श्रीणन्ति पृक्षयः ।
 जन्मन् देवानां विदा-त्रिष्या रौचने द्विषः ॥ ५५ ॥
 ॥ २०१ ॥ (या० य० १४१८)
 (आप १)

धपः विन्यांरंधीजिन्य त्रिपार्श्व
 पतुंणाम् पादि द्वियो वृष्टिमेर्य ॥ ८ ॥
 ॥ २०२ ॥ (या० य० २०११८-२०, ११२-२३)
 (आप १)

यदापो धृष्या इति धृष्येति
 शपोमहे ततो यज्ञ नो मुञ्च ।
 धर्षभृष निचुम्बुल निचैर्यमि निचुम्बुणः ।
 धर्ष देवैर्वर्षतमनोऽप्यवपु
 मर्षमेर्येह पुराणतो देव त्रिपस्यादि ॥ १८ ॥
 रामदे ते हर्षयन्ववुम्बुम्,
 वा र्वा विभृतापंधीजाः ।

सुमित्रिया न आप ओर्षधयः सन्तु
 दुर्मित्रियास्तस्यै सन्तु
 योऽस्मान् द्वेष्टि यं च व्यं द्विष्मः ॥ १९ ॥
 हुपुदारिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ।
 पुतं पवित्रेणैवाज्य-मापः शुन्धन्तु मैर्नसः ॥ २० ॥
 अपो अध्यान्वचारिपु रसेन समसृक्षमहि ।
 पर्यस्वानग्न आगमं तं मा स२ सृज
 वसंसा प्रजयां च धनेन च ॥ २२ ॥
 पधोऽस्येधिपीमर्हि समिदासि
 तेजोऽसि तेजो मरिं धेदि ॥ २३ ॥
 अघ्रादिकम् ।

॥ २०३ ॥ (अ० ११८७११-११)
 अगस्त्यो मैशवदणिः । अग्न १ अनुष्णुग्मर्मा उगिण् ।
 ३, ५-७, ११ अनुष्णुपुः (११ बृहती वा) । २, ४, ८-१०
 गावती ।

पितुं तु स्तोत्रं महो धर्माणं तविपीम् ।
 यस्य त्रितो व्योजसा धृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ १ ॥
 स्रादौ पितो मधो पितो ययं त्वां वयमहे ।
 अस्माकमविता भय ॥ २ ॥
 उपं नः पितृवा चरं निव. शिवाभिरुतिभिः ।
 मयोभुर्द्विपेण्यः सर्वा सुशोयो अर्द्रयाः ॥ ३ ॥
 तय स्ये पितो रमा रजांस्यनु विष्टिताः ।
 द्विपि याता इय धिताः ॥ ४ ॥
 तय स्ये पितो ददन्त-स्तव स्याद्विष्टु ते पितो ।
 प्र स्यान्नातो रसानां तुविशिया इयेरने ॥ ५ ॥
 स्ये पितो मदानां देवानां मनो हितम् ।
 अर्वादि चार्द वेतुना तयाभिमर्षव्यावधीत् ॥ ६ ॥
 यददो पितो अज्ञगन् विवस्व पर्वतानाम् ।
 अर्वा विष्टो मधो पितो ऽर्भृक्षाय गम्याः ॥ ७ ॥
 यदपामोर्षधीनां परिशामादिशामहे ।
 यातोपै वीव इत् भय ॥ ८ ॥
 (११०१)

यत् तै सोम गवांशिरो यवांशिरो भजांमहे ।
 वातापे पीव इद् भव ॥ ९ ॥
 क्रस्म औपधे भव पीवो वृक्ष उदारधिः ।
 वातापे पीव इद् भव ॥ १० ॥
 तं त्वा व्यं पितो वचोभिः
 गात्रो न हृद्या सुपुदिम ।
 देवेभ्यस्त्वा सध्मादं
 अस्मभ्यं त्वा सध्मादंम् ॥ ११ ॥
 ॥ १०४ ॥ (अथर्वं ६।७१।१-३)
 ब्रह्मा । अग्निः, ३ वैश्वानरः, देवाः (अन्नम्) । जगती,
 ३ त्रिष्टुप् ।
 यदध्ममिन्नं बहुधा विरूपं
 हिरण्यमश्वमुत गामजामविम् ।
 यदेव किं च प्रतिजप्रहाहं
 अग्निष्ट्रज्ञोता सुहृतं कृणोतु ॥ १ ॥
 यन्मा हुतमहुतमाजगामं
 उत्तं पितृभिरुत्तं मनुष्यैः ।
 यस्मान्मे मन उदिव ररंजीति
 अग्निष्ट्रज्ञोता सुहृतं कृणोतु ॥ २ ॥
 यदध्ममदस्यनृतेन देवा
 दास्यन्नदोस्यभुत संगुणामि ।
 वैश्वानरस्यं महतो मंहिष्ठा
 शिवं महं मधुमदस्त्वन्नम् ॥ ३ ॥
 ॥ १०५ ॥ (अथर्वं ७।१८।१-२)
 वीश्वभिः । इन्द्रावरुणौ (अन्नम्) । १ जगती, २ त्रिष्टुप् ।
 इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं
 सोमं पियतं मयं धृतव्रता ।
 युवो रथो अप्यरा देववीतये
 प्रति स्वसंरमुपं यातु पीतये ॥ १ ॥
 इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः
 सोमस्य वृष्णा वृषेथाम् ।
 इदं धामन्यः परिरिक्तमासद्य
 अस्मिन् यद्विधिं मादयेथाम् ॥ २ ॥

॥ १०६ ॥ (अथर्वं ६।१४।१-३)
 विद्यामित्रः । वायुः (अन्नस्यवादिः) । अनुष्टुप् ।
 उच्छ्रयस्व वृद्धमेव स्वेन महंसा यव ।
 मृणीहि विश्वा पात्राणि
 मा त्वा दिव्याशानिर्वधीत् ॥ १ ॥
 आदृष्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छ्रवदामसि ।
 तदुच्छ्रयस्व चौरिव समुद्र इवैध्यक्षिनः ॥ २ ॥
 अक्षितास्त उपसदो-ऽक्षिताः सन्तु राशयः ।
 पूणन्तो अक्षिताः सन्त्व-चारः सन्वक्षिताः ॥ ३ ॥
 ॥ १०७ ॥ (अथर्वं ११।१।१-५६)
 [प्रथमः पयोमः । १-३१]
 अथवा । ओदनः (बाईसलौदनः) ।
 १, १४ आङ्गरी गायत्री, २ त्रिपदा समविषमा गायत्री, ३,
 ६, १० आङ्गरी पङ्क्तिः, ४, ८ साम्यनुष्टुप्; ५, १३, १५, २५
 साम्युष्णिक्; ७, १९-२२ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ९, १७-१८
 आभ्यनुष्टुप्; ११ भुरेगार्च्यनुष्टुप्; १२ याजुषी जगती,
 १६, २३ आङ्गरी वृहती; २४ त्रिपदा प्राजापत्या वृहती;
 २६ आन्युष्णिक्; २७-२९ सामी वृहती (२८-२९
 मुरिक्); ३० याजुषी त्रिष्टुप्; ३१ अस्वराः
 पञ्चकृत याजुषी ।
 तस्योद्गनस्य वृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुनंम् ॥ १ ॥
 यावापृथिवी धोत्रं स्याचन्द्रमसावक्षिणी
 सप्तभूपयः प्राणापानाः ॥ २ ॥
 चक्षुर्मुसलं काम उल्लुखलम् ॥ ३ ॥
 दितिः शर्पमर्दितिः शर्पम्राही वातोऽपायिनक् ॥ ४ ॥
 अश्याः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुपाः ॥ ५ ॥
 कर्षुं फलीकर्णाः शरोऽधम् ॥ ६ ॥
 श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥ ७ ॥
 प्रपु मस्म हारितं घणः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ८ ॥
 खलः पात्रं स्फयावंसावीपे अंनुक्ये ॥ ९ ॥
 आन्त्राणि जत्रयो गुदां वरप्राः ॥ १० ॥
 इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति
 राच्यमानस्योद्गनस्य चौरपिधानम् ॥ ११ ॥
 (११५५)

सीताः पशैवः सिकता उर्यध्यम्	॥ १२ ॥
ऋतं हस्तायनेर्जनं कुलयोपसेचनम्	॥ १३ ॥
ऋचा कुम्भयर्धितार्त्विज्यं प्रेषिता	॥ १४ ॥
ब्रह्मणा परिगृहीता साक्षा पर्यूढा	॥ १५ ॥
बृहदायवर्नं रथन्तरं दर्विः	॥ १६ ॥
ऋतवः पक्कारं आर्तवाः सर्मिन्धते	॥ १७ ॥
चरं पञ्चबिलमुखं घर्मोर्भूमिन्धे	॥ १८ ॥
ओदनेनं यन्नवचः सर्वे लोकाः समाप्याः	॥ १९ ॥
यस्मिन्समुद्रो घौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं धिताः	॥ २० ॥
यस्यं देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे पडंशीतयः	॥ २१ ॥
तं त्वौदनस्यं पृच्छामि यो अस्य महिमा महान्	२२
स य औदनस्यं महिमानं विधात्	॥ २३ ॥
नाल्प इति ब्रूयाननुपसेचन	
इति नेदं च किं चेति	॥ २४ ॥
यावद् द्वाताभिमानस्येत तन्नाति वदेत्	॥ २५ ॥
ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं	
प्राशीः प्रत्यञ्चाश्मिति	॥ २६ ॥
त्वमोदनं प्राशीःस्वामोदना इति	॥ २७ ॥
पराञ्चं चैनं प्राशीः प्राणास्त्वा	
हास्यन्तीत्येनमाह	॥ २८ ॥
प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा	
हास्यन्तीत्येनमाह	॥ २९ ॥
नैवाहमोदनं न मामोदनः	॥ ३० ॥
ओदन एवोदनं प्राशीत्	॥ ३१ ॥

[द्वितीयः पद्यैः । ३१-४९]

मन्त्रोक्ताः । ३१, ३८, ४१ (प्रथमा), ३२-४९ (पञ्चमी)
साश्री शिष्टपुः ३२, ३५, ४२ (द्वितीया), ३३-४९ (तृतीया),
३३-३४, ४८-४८ (पञ्चमी) एकपदाऽऽश्री गायत्रीः ३२,
४१, ४३, ४७ देवी जगतीः ३८, ४४, ४६ (द्वि०) ३२, ३५-
४३, ४९ (पञ्चमी) एकपदाऽऽश्र्वयंशुष्टुः ३२-४९ (षष्ठी)
षान्पवशुष्टुः ३३-४९ (प्र०) आश्र्वयंशुष्टुः ३७ (प्र०)
षाम्नी पञ्क्तिः ३३, ३६, ४०, ४७-४८ (द्वि०) आश्र्वरी

जगताः ३४, ३७, ४१, ४३, ४५ (द्वि०) आश्र्वरी पञ्क्तिः ३४	
(चतुर्थी) आश्र्वरी शिष्टपुः ३५, ४६, ४८ (च०) वाश्र्वरी	
गायत्रीः ३६-३७-४० (च०) देवी पञ्क्तिः ३८-३९	
(च०) प्राजापत्या गायत्रीः ३९ (द्वि०) आश्र्वयंशुष्टुः ४२,	
४५, ४९ (चतुर्थी) देवी शिष्टपुः ४९ (द्वि०) एकपदा	
भुरिक्शाम्नी बृहती ।	
ततश्चैनमन्येनं शीर्ष्णां प्राशीर्येनं	
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्र्वन्	॥ १ ॥
ज्येष्ठतस्तं प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
बृहस्पतिना शीर्ष्णां	॥ ४ ॥
तेनैनं प्राशिपं तेनैनमजीगमम्	॥ ५ ॥
एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वैपरुः सर्वैतनूः	॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वैपरुः सर्वैतनूः	
सं भवति य एवं वेदं	॥ ७ ॥ ३२
ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां	
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्र्वन्	॥ १ ॥
बृधरो भविष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम्	॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिपं ताभ्यामेनमजीगमम्	॥ ५ ॥
एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वैपरुः सर्वैतनूः	॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वैपरुः सर्वैतनूः	
सं भवति य एवं वेदं	॥ ७ ॥ ३३
ततश्चैनमन्याभ्यां मक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां	
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्र्वन्	॥ १ ॥
अन्धो भविष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
सूर्यान्मृत्सुसाभ्यामक्षीभ्याम्	॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिपं ताभ्यामेनमजीगमम्	॥ ५ ॥
एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वैपरुः सर्वैतनूः	॥ ६ ॥

सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः		प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह	॥ २ ॥
सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३४	ते वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन		मत्परिभिः प्राणापानैः	॥ ४ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्रार्थन्	॥ १ ॥	तेरेन प्राशीपं तेरेनमजीगमम्	॥ ५ ॥
मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥	एव वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः	॥ ६ ॥
ते वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः	
प्रहणा मुखेन	॥ ४ ॥	सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३८
तेरेन प्राशीपं तेरेनमजीगमम्	॥ ५ ॥	ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन	
एव वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः	॥ ६ ॥	चैतं पूर्वं ऋषयः प्रार्थन्	॥ १ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः		राजयश्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥
सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३५	ते वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
ततश्चैनमन्यया जिहया प्राशीर्यया		अन्तरिक्षेण व्यचसा	॥ ४ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्रार्थन्	॥ १ ॥	तेरेन प्राशीपं तेरेनमजीगमम्	॥ ५ ॥
जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥	एव वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः	॥ ६ ॥
ते वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः	
अग्नेजिहया	॥ ४ ॥	सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३९
तथेन प्राशीपं तथेनमजीगमम्	॥ ५ ॥	ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन	
एव वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः	॥ ६ ॥	चैतं पूर्वं ऋषयः प्रार्थन्	॥ १ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः		विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥
सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३६	ते वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्येनैतं		दिवा पृष्ठेन	॥ ४ ॥
पूर्वं ऋषयः प्रार्थन्	॥ १ ॥	तेरेन प्राशीपं तेरेनमजीगमम्	॥ ५ ॥
दन्तास्ते शास्यन्तीत्येनमाह	॥ २ ॥	एव वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः	॥ ६ ॥
ते वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः	
ऋतुभिर्दन्तैः	॥ ४ ॥	सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ४०
तेरेन प्राशीपं तेरेनमजीगमम्	॥ ५ ॥	ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन	
एव वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः	॥ ६ ॥	चैतं पूर्वं ऋषयः प्रार्थन्	॥ १ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः		कृप्या न रास्यसीत्येनमाह	॥ २ ॥
सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३७	ते वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्येनैतं		पृथिव्योरसा	॥ ४ ॥
पूर्वं ऋषयः प्रार्थन्	॥ १ ॥	तेरेन प्राशीपं तेरेनमजीगमम्	॥ ५ ॥

एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥	ततश्चैनमन्याभ्यामष्टीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां
सर्वाङ्ग एव सर्वपङ्कः सर्वतनूः	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सं भवति य एव वेदं ॥ ७ ॥ ४१	सामो भविष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येनं	तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥	त्वष्टुरष्टीवद्भ्याम् ॥ ४ ॥
उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥	ताभ्यामेनं प्राशिपं ताभ्यामेनजीगमम् ॥ ५ ॥
त वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥	एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
सृत्येनोदरेण ॥ ४ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपङ्कः सर्वतनूः
तेनैनं प्राशिपं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥	सं भवति य एव वेदं ॥ ७ ॥ ४५
एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥	ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां
सर्वाङ्ग एव सर्वपङ्कः सर्वतनूः	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सं भवति य एव वेदं ॥ ७ ॥ ४२	बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
ततश्चैनमन्येनं वस्तिना प्राशीर्येनं	तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥	अश्विनोः पादाभ्याम् ॥ ४ ॥
अप्यु मरिष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥	ताभ्यामेनं प्राशिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥	एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
समुद्रेण वस्तिना ॥ ४ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपङ्कः सर्वतनूः
तेनैनं प्राशिपं तेनैनमजीगमम् ॥ ५ ॥	सं भवति य एव वेदं ॥ ७ ॥ ४६
एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥	ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां
सर्वाङ्ग एव सर्वपङ्कः सर्वतनूः	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सं भवति य एव वेदं ॥ ७ ॥ ४३	सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यामरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां	त वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥	सवितुः प्रपदाभ्याम् ॥ ४ ॥
ऊरु ते मरिष्यत इत्येनमाह ॥ २ ॥	ताभ्यामेनं प्राशिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥	एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥
मिश्रायकणयोरुभ्याम् ॥ ४ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपङ्कः सर्वतनूः
ताभ्यामेनं प्राशिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥	सं भवति य एव वेदं ॥ ७ ॥ ४७
एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपङ्कः सर्वतनूः ॥ ६ ॥	ततश्चैनमन्याभ्यां दस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां
सर्वाङ्ग एव सर्वपङ्कः सर्वतनूः	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सं भवति य एव वेदं ॥ ७ ॥ ४४	

ब्राह्मणं हनिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
 तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
 ऋतस्य हस्ताभ्याम् ॥ ४ ॥
 ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
 एव वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥
 सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः
 सं भवति य एवं वेदं ॥ ७ ॥ ४८

तर्तश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया
 चैतं पृथं ऋषयः प्राश्रन् ॥ १ ॥
 अप्रतिष्ठानोऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह ॥ २ ॥
 तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥ ३ ॥
 सत्ये प्रतिष्ठायं ॥ ४ ॥
 तयैनें प्राशिषं तयैनेमजीगमम् ॥ ५ ॥
 एव वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥
 सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः
 सं भवति य एवं वेदं ॥ ७ ॥ ४९

[तृतीयाः पर्यायः । ५०-५६]

मन्त्रोक्ताः । ५० आयुर्वेदपुः ५१ आर्च्युष्णिक् ५२ त्रिपदा
 भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप् ५३ आसुरी बृहती ५४ द्विपदा भुरिक्
 साम्नी बृहती ५५ साम्नुष्णिक् ५६ प्राजापत्या बृहती ।
 एतद् वै ब्रह्मस्य विष्टयं यदौदनः ॥ ५० ॥
 ब्रह्मलौको भवति ब्रह्मस्य विष्टयि श्रयते
 य एवं वेदं ॥ ५१ ॥
 एतस्माद् वा औदनात् त्रयस्त्रिंशत्
 लोकान् निर्दिशति प्रजापतिः ॥ ५२ ॥
 तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमैच्छत
 ॥ ५३ ॥
 स य एवं विदुषं उपद्रष्टा भवति प्राणं हणद्धि ५४
 न च प्राणं हणद्धि सर्वज्यानि जीयते ॥ ५५ ॥
 न च सर्वज्यानि जीयते
 पुरैर्न जरसः प्राणो जहाति ॥ ५६ ॥

॥ २०८ ॥ (अथर्वे ० ११११-३८)
 मृगुः । पद्योदनेऽजः मन्त्रोक्ताः । त्रिष्टुप् ३ चतुःपदा पुरोऽ-
 तिशकरी जगती ४, १० जगती १४, १७, २७-३० अनुष्टुप्
 (३० ककुम्भती) १६ त्रिपदाऽनुष्टुप् १८, ३७ त्रिपदा
 विराड् गायत्री २३ पुर उष्णिक् २४ पञ्चपदाऽनुष्टुप्
 भौपरिष्टाद्विराड् जगती २०-२२, २६ पञ्चपदाऽनुष्टुप्
 भौपरिष्टाद्वाहता भुरिक् ३१ सप्तपदाऽङ्घ्रिः ३२-३५ दशपदा
 प्रकृतिः ३६ दशपदाऽङ्घ्रिः ३८ एकवचाना द्विपदा साम्नी
 त्रिष्टुप् ।

आ नयैतमा रमस्व सुकृतां
 लोकमपि गच्छतु प्रजानन् ।
 तीर्त्वा तर्मांसि बहुधा महान्ति
 अजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ १ ॥
 इन्द्राय आगं परिं त्वा नयामि
 अस्मिन् यज्ञे यजमानाय सुरिम् ।
 ये नो ह्यिषन्त्यनु तान् रमस्व
 अनागसो यजमानस्य शिराः ॥ २ ॥
 प्र पदोऽयं नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चारं
 शुद्धैः शफैरा क्रमतां प्रजानन् ।
 तीर्त्वा तर्मांसि बहुधा विपश्यन्
 अजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ ३ ॥
 अतुं च्यय इयामेन त्वचमेतां
 विश्वस्तयथापूर्वसिन्ना मामि मँस्थाः ।
 मामि द्रुहः पशुः कल्पयैनं
 तृतीये नाके अधि वि श्रयेनम् ॥ ४ ॥
 ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या
 सिञ्चोदकमव धेहेनम् ।
 पूर्वाधत्ताग्निनां शमितारः
 शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥ ५ ॥
 उव क्रामातः परि चेदततः
 त्नाशुरोरधि नाकं तृतीयम् ।
 अग्रेरशिरधि सं यभूयिथ
 ज्योतिष्मन्तममि लोकं जयैतम् ॥ ६ ॥

अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुः
अजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः ।

अजस्तमांस्यपं हन्ति दुरं
अस्मिह्लोके अद्धानेन दत्तः

पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतां
आक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि ।

ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं
तृतीये नार्के अधि वि श्रेयस्व

अजा रौह सुकृतां यत्र लोकः
शरभो न चक्षोऽति दुर्भाष्येपः ।

पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानः
स दातारं तृप्त्या तर्पयाति

अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे
नार्कस्य पृष्ठे ददिवान्सं दधाति ।

पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो
विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका

एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं
पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।

अजस्तमांस्यपं हन्ति दुरं
अस्मिह्लोके अद्धानेन दत्तः

ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन्
पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।

स व्याप्तिमभि लोकं जयंतं
शियोऽसुमभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु

अजो हाग्नेरजनिष्ट शोकाद्
विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चित् ।

इष्टं पृतममिपूर्तं वपदकृतं
तद् देवा ऋतुशः कल्पयन्तु

अमीनं घातो दद्याद्दिरण्यमपि दक्षिणाम् ।
तथा लोकान्तसमाप्नोति

ये दिव्या ये च पार्थिवाः

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

एतास्त्वजोपं यन्तु धाराः

सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुक्षुतः ।

स्तमान पृथिवीमुत द्यां

नार्कस्य पृष्ठेऽधि सप्तर्दमौ

अजोऽस्यजं स्वर्गोऽसि त्वया

लोकमङ्गिरसः प्राजानन् ।

तं लोकं पुण्यं प्र ह्येपम्

येनां सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् ।

तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्गैवेपु गन्तवे ॥ १७ ॥

अजः पकः स्वर्गे लोके दधाति

पञ्चौदनो निर्व्रतिं वाचमानः ।

तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम

यं ब्राह्मणे निदधे यं च विश्व

या विप्रपं ओदनानामजस्यं ।

सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके

जानीतान्नः संगमने पथीनाम्

अजो वा इदमग्ने व्यक्रमत

तस्यारं ह्यममवद् द्यौः पृष्ठम् ।

अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे संमृशौ कुशी ॥ २० ॥

सत्यं चतं च चक्षुषी विश्वं

सत्यं अद्धा प्राणो विराद् शिरः ।

पृष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ॥ २१ ॥

अपरिमितमेव यज्ञमाप्तोत्यपरिमितं लोकमव हन्धे ।

योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिपं ददाति ॥ २२ ॥

नास्यास्थीनि भिन्त्यान्न मज्जो निर्धयेत् ।

सर्वमेनं समादाये—दमिदं प्र वैशयेत् ॥ २३ ॥

इदमिदमेवास्यं रूपं भवति तेनेनं सं गमयति ।

इपं मह ऊर्जमसौ हृष्टे

योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिपं ददाति ॥ २४ ॥

पञ्चं रुफमा पञ्च नवानि घखा

पञ्चास्मै धेनुवः कामदुघा भवन्ति ।

योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिपं ददाति ॥ २५ ॥

पञ्च कृन्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति
धर्मं वासांसि तन्वे भवन्ति ।
स्वर्गे लोकमश्नुते
योऽंजं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २६ ॥
या पूर्वे पतिं वित्वा यान्यं विन्दतेऽपरम् ।
पञ्चोदनं च तावजं ददातो न वि योपतः २७
समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः ।
योऽंजं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति २८
अनुपूर्ववत्सां धेनुमनुद्गाहमुपवर्हणम् ।
वासां हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् २९
आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् ।
जायां जनित्रां मातरं ये प्रियास्तानुप ह्ये ॥३०॥
यो वै नैदायं नामतु वेदं ।
एष वै नैदायो नामतुर्यद्वजः पञ्चोदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽंजं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३१ ॥
यो वै कुर्यन्तं नामतु वेदं ।
कुर्यतांकुर्यतामिवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै कुर्यन्नामतुर्यद्वजः पञ्चोदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽंजं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३२ ॥
यो वै संयन्तं नामतु वेदं ।
संयतोसंयतामिवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै संयन्नामतुर्यद्वजः पञ्चोदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽंजं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३३ ॥
यो वै पिन्वन्तं नामतु वेदं ।

पिन्वतोपिन्वतामिवाप्रियस्य
भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै पिन्वन्नामतुर्यद्वजः पञ्चोदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽंजं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३४ ॥
यो वा उद्यन्तं नामतु वेदं ।
उद्यतोमुद्यतामिवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वा उद्यन्नामतुर्यद्वजः पञ्चोदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽंजं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३५ ॥
यो वा अमिभुवं नामतु वेदं ।
अमिभवन्तामिभवन्तामिवाप्रियस्य
भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वा अमिभूर्नामतुर्यद्वजः पञ्चोदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽंजं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३६ ॥
अजं च पचत पञ्चं चोदनाम् ॥
सर्वा दिशः संमेनसः सधीचीः
सान्तेदशाः प्रति गृह्णन्त त एतम् ॥ ३७ ॥
तास्तै रक्षन्त तपु सुभ्यमेतं
ताभ्य आज्यं हविरिदं जुहोमि ॥ ३८ ॥
॥ २०९ ॥ (अथर्वे ० ४।३४।१-८)
अथवा । अन्नोदनम् । विष्टुप्, * वसता मुरिक्, ५ अथ-
सान्ता अतपदा इतिः; ६ पञ्चपदातिशक्ती, ७ मुरिक्
शक्ती, ८ अगती ।
अक्षास्य शीर्षं घृहर्दस्य पृष्ठं
वामदेव्यमुदरमोदनस्य
छन्दोसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं
विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः ॥ १ ॥

अनस्थाः पूताः पर्वनेन शुद्धाः
 शुच्यः शुचिमपि यन्ति लोकम् ।
 नैर्षां शिश्रं प्र दहति जातवेदाः
 स्वर्गे लोके बहु खैर्णमेवाम्
 विप्रारिणमोदनं ये पचन्ति
 नैर्णानवर्तिः सचते कदा चन ।
 आसैं यम उप याति देवान्
 सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः
 विप्रारिणमोदनं ये पचन्ति
 नैर्णान् यमः परि मुष्णाति रेतः ।
 रथी ह भूत्वा रथयान इयते
 पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति
 एष यज्ञानां विर्ततो बहिष्प्रो
 विप्रारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश ।
 आण्डीकं कुमुदं सं तनोति
 विसैं शालुकं शफको मुलाली ।
 एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः
 स्वर्गे लोके मधुमत् पित्र्यमानाः
 उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः
 घृतहृदा मधुकूलाः सुरैदकाः
 क्षीरेण पूर्णा उदकेन दग्धा ।
 एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः
 स्वर्गे लोके मधुमत् पित्र्यमानाः
 उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः
 शतुरैः कुम्भार्थतुर्धा ददामि
 क्षीरेण पूर्णा उदकेन दग्धा ।
 एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः
 स्वर्गे लोके मधुमत् पित्र्यमानाः
 उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः
 इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेभ्यु
 विप्रारिणं लोकजितं स्वर्गम् ।

स मे मा क्षेष्ट स्वधया पित्र्यमानो
 विध्वरूपा धेनुः कामदुर्घा मे अस्तु ॥ ८ ॥
 ॥ १२० ॥ (अथर्वं ११।१।१-३७)
 ॥ २ ॥
 ब्रह्मा । ओदनः (ब्रह्मादनम्) । त्रिष्टुप् ; १ अनुष्टुप्सर्गमो भुरि
 कपवृक्कः । २ बृहतीगर्भा विराट् । ३ चतुष्पदा शाकरगर्भा
 जगती ; ४, १५-१६, २९, ३१ भुरिक् ; ५ बृहतीगर्भा, विराट् ;
 ६ ऋग्णिक् ; ८ विराट् गायत्री ; ९ शाकरातिजागतगर्भा जगती ;
 १० विराट् पुरोऽतिजगती विराट्जगती ; ११ जगती ; १७, २१,
 २४-२६, ३७ विराट् जगती ; १८ अतिजागतगर्भा परातिजा-
 गता विराट्जगती ; २० अतिजागतगर्भा परा शाकरा चतुष्पदा
 भुरिजगती ; २७ अतिजागतगर्भा जगती ; ३५ चतुष्पदा कृष्ण-
 र्गुणिक् ; ३६ पुरोविराट् (व्याघ्रादिष्ववगन्तव्या)
 ॥ ४ ॥
 अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं
 ब्रह्मोदनं पचति पुत्रकामा ।
 सप्तऋषयो भूतकृतस्ते
 त्वां मन्थन्तु प्रजयां सुहेह ॥ १ ॥
 कृणुत धूमं वृषणः सखायः
 अद्रौघाविता वाचमच्छ ।
 अयमग्निः प्रतनापाद् सुवीरो
 येन देवा असंहन्त दस्यून ॥ २ ॥
 अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय
 ब्रह्मोदनाय पक्त्वे जातवेदः ।
 सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वांजीजनन्
 अस्वै रथि सर्वैर्वीरं नि यच्छ ॥ ३ ॥
 समिद्धो अग्ने समिधा समिष्यस्व
 विद्वान् देवान् यज्ञियो पृह वक्षः ।
 तेभ्यो हविः श्रपयं जातवेद
 उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥
 प्रेषा भागो निहितो यः पुरा घो
 देवानां पितृणां मर्यानाम् ।
 अंशान् जानीष्यं धि भंजामि तान् घो
 यो देवानां स इमां पार्याति ॥ ५ ॥
 (१११५)

अग्ने सहस्वानभिभूरभीर्दसि
नीचो न्युञ्जतिपतः सप्तान् ।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च
सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु
साकं संजातैः पर्यसा सहैधि
उर्दुञ्जैनां महते वीर्यां जय ।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपै
स्युर्गो लोक इति यं चर्दन्ति
इयं मही प्रतिं गृह्णातु चर्म
पृथिवी देवी सुमनस्यमाना ।
अर्थ गच्छेम सुकृतस्य लोकम्
प्रातौ प्राचाणौ स्युर्जा युद्धि चर्मणि
निर्मिन्ध्यंश्च यजमानाय साधु ।
अवञ्चती नि जहि य इमां पृतन्यधं
ऊर्ध्वं प्रजामुद्रन्त्युद्दह
गृह्णाण प्राचाणौ सुकृतौ वीर हस्त
आ ते देवा यक्षियां यज्ञमगुः ।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृषीणे
तास्ते समृद्धिरिह राधयामि
इयं ते धीतिरिदमुं ते जनिर्
गृह्णातु त्वामादितिः शरंपुत्रा ।
परां पुनोहि य इमां पृतन्यधो
अस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ
उपश्वसे द्रुवये सीदता युयं
वि विच्यध्वं यक्षियासस्तुपैः ।
धिया संमानानति सर्वांन्स्थाम
अधस्पदं द्विपतस्पादयामि
परं हि नारि पुनरेहिं क्षिप्रं
अपां त्वां गोष्ठोऽध्वरक्षद् भराय ।
तासां गृह्णीताद् यतमा यक्षिया असेन
विभाज्य धीरीतरा जहीतात्

॥ ६ ॥
॥ ७ ॥
॥ ८ ॥
॥ ९ ॥
॥ १० ॥
॥ ११ ॥
॥ १२ ॥
॥ १३ ॥

एमा अयुषोपितः शुभंमाना
उत्तिष्ठ नारि तवसे रमस्व ।
सुपत्नी पत्न्यां प्रजयां प्रजावृष्या
त्वांग् यज्ञः प्रतिं कुम्भं गृभाय
ऊर्जो भागो निर्हितो यः पुरा वः
ऋषिप्रशिष्टाप आ भरेताः ।
अयं यज्ञो गंतुविघ्नार्थवित्
प्रजाविदुषः पशुविद् वीरविद् वीं अस्तु
अग्ने चर्यक्षियुस्त्वाध्वरक्षत्
शुचित्पिष्टस्तर्पसा तपैन्म ।
आप्या देवा अभिसंगत्य भागं
इमं तपिष्टा ऋतुभिस्तपन्तु
शुद्धाः पूता योपितो यक्षिया इमा
आपश्चरुमव सपन्तु शुभ्राः ।
अर्धुः प्रजां बहुलान् पशून् नः
पत्नोदनस्य सुकृतमितु लोकम्
ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन
सोमस्यांशवत्तण्डुला यक्षिया इमे ।
अपः प्र विशत प्रतिं गृह्णातु यदचरुः
इमं पक्त्वा सुकृतमितु लोकम्
उरुः प्रथस्व महता महिम्ना
सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।
पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं
पुक्ता पञ्चदशस्तै अस्मि
सहस्रपृष्ठः शतधारी अक्षितो
ब्रह्मोदो देवयानः स्वर्गः ।
अमूंस्त आ वधामि प्रजयां रेपयान्
बलिहाराय मृडतान्महामेव
उदेहि वेदिं प्रजयां वर्धयेनां
नुदस्व रक्षः प्रतरं धेहेनाम् ।
धिया संमानानति सर्वांन्स्थाम
अधस्पदं द्विपतस्पादयामि

॥ १४ ॥
॥ १५ ॥
॥ १६ ॥
॥ १७ ॥
॥ १८ ॥
॥ १९ ॥
॥ २० ॥
॥ २१ ॥

अभ्यायवैस्व पशुभिः सहैनां
प्रत्यङ्नां देवताभिः सहैधि ।

मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः
स्वे क्षेत्रे अनमीवा धि राज

॥ २२ ॥

ऋतेन तद्या मनसा हितैषा
ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरत्रे ।

अंसद्रो शुद्धामुप धेहि नारि
तत्रौदन सादय देवानाम्

॥ २३ ॥

अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्विनीयां
सप्तऋषयो भूतऋतो यामकृष्वन् ।

सा गात्राणि विदुष्योदनस्य
दर्विवेशामर्धेन चिनोतु

॥ २४ ॥

शूतं त्वा हव्यमुप सीदन्तु देवा
निःस्रुप्याग्नेः पुनरेतान् प्र सीद ।

सोमैर्न पूतो जडरै सीद
ब्रह्मणामापेयास्ते मा रिपन् प्राशितारः

॥ २५ ॥

सोमं राजन्संज्ञानमा वपैभ्यः
सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।

ऋषीनापेयांस्तपसोऽधि जातान्
ब्रह्मौदने सुहर्वा जोहवीमि

॥ २६ ॥

शुद्धाः पूता योपितो यज्ञिया इमा
ब्रह्मणो हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।

यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहं
इन्द्रो मरत्वान्स ददाद्विदं मे

॥ २७ ॥

इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं
पकं क्षेत्रात् कामदुर्वा म प्या ।

इदं धने नि दधे ब्राह्मणेषु
कृष्ये पन्थां पितृषु यः स्वर्गः

॥ २८ ॥

अग्नौ तुपाना वप जातवदसि
परः कम्बुकां अप मृड्ढि दुरम् ।

पुतं शुश्रुम गृहराजस्य भागं
अथो विद्वा निश्रुतेर्भागधेयम्

॥ २९ ॥

श्राम्यतः पचतो विधि सुव्यतः
पन्थां स्वर्गमधि रोहयन्म् ।

येन रोहात् परमापद्य यद् वयः
उत्तमं नाकं परमं द्योम

॥ ३० ॥

यधेरुष्ययो मुग्मेतद् वि मृड्ढि
आज्याय लोकं कृणुहि प्रविहान् ।

घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि
कृष्ये पन्थां पितृषु यः स्वर्गः

॥ ३१ ॥

वध्रे रक्षः समद्रमा वपैभ्यो
अब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।

पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्ताद्
आपेयास्ते मा रिपन् प्राशितारः

॥ ३२ ॥

आपेयेषु नि दध ओदन त्वा
नानापेयाणामप्यस्त्वत्रं ।

अग्निं गोप्ता मरुतश्च सर्वे
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पन्वम्

॥ ३३ ॥

यक्षं दुहानं सद्रमित् प्रपीनं
पुमांसं धेनुं सदनं रथीणाम् ।

प्रजामृतत्वमुत दीर्घमार्यु
रायश्च पौषैरुप त्वा सदेम

॥ ३४ ॥

वृषभोऽसि स्वर्गं ऋषीनापेयान् मच्छ ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ सस्कृतम्

॥ ३५ ॥

समाचिनुष्वानुसप्रयाह्ये
पृथः कल्पय देवयानान् ।

पतैः सुकृतैरनु गच्छेम यक्षं
नाके तिष्ठन्तुमधि सप्तरश्मौ

॥ ३६ ॥

येन देवा ज्योतिषा चामुद्रायन्
ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्यं लोकम् ।

तेन गेष्म सुकृतस्यं लोकं
स्वरापोहन्तो अग्नि नाकमुत्तमम्

॥ ३७ ॥

॥ २११ ॥ (अथर्वं ६।२६६।१-३)

आटिकायनः । विवस्वान् (मधुमदक्षम्) । जगती, २ त्रिष्टप

यद् याम् चक्षुर्निखनन्तो अग्ने
कार्पावणा अन्नविदो न विचर्या ।

वैवस्वते राजनि तज्जुहोमि
अर्य यक्षियं मधुमदस्तु नोऽन्नम्

॥ १ ॥

वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं
मधुभागो मधुना सं सृजति ।

मातुर्यदेनं शपितं न आगन्
यद् वां पितापराद्धो जिहीडे

॥ २ ॥

यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः
परि भ्रातुः पुत्राश्चेत्स एन आगन् ।

यावन्तो अस्मान् पितरः सर्वन्ते
तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः

॥ ३ ॥

॥ २१२ ॥ (अथर्वं ७।३।१)

अथर्वो । वास । अनुष्टुप् ।

अभि त्वा मनुजातेन दर्शामि मम वाससा ।

यथासो मम केवलौ नाग्यासां कीर्तियाश्चन ॥१॥

॥ २१३ ॥ (वा० य० ४।२, १०)

(वा० ।)

दीक्षातपसांस्तनूरसि तां त्वां शिवाः

शग्मां परिदधे भद्रं वर्णं पुष्यन् ॥ २ ॥

विष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य

योर्निरसि सुसत्याः कृपीरूक्षि ॥ १० ॥

॥ २१४ ॥ (अथर्वं ११।३।१-६०)

यमः । स्वर्गः, ओदनः, आग्निः (स्वर्गोदनः) । त्रिष्टुप्, १,

४२-४३, ४७ भुरिक्; ८, १२, २१-२२, २४ जगती; १३, १७

स्वराहायां पाङ्क्तिः; ३४ विराट्गर्भा; ३९ अनुष्टुप्गर्भा, ४४

पराबृहती; ५५-६० व्यवसाना सप्तपदा शबुक्कुमल्यतिजागतशा-

हरातिष्ठाक्वरवाल्गर्मातिष्ठतिः (५५, ५७-६० कृतिः, ५६

विषाद् कृतिः) ।

पुमान् पुंसोऽधिं तिष्ठ चर्मैहि

तत्र ह्यस्व यतमा प्रिया तं ।

यावन्तावत्रे प्रथमं समेययुः

तद् वां चर्यो यमराज्ये समानम् ॥ १ ॥

तावद् वां चक्षुस्तति धीर्याणि

तावत् तेर्जस्ततिधा यार्जिनानि ।

अग्निः शरीरं सचते यदैधो

अर्धां पुक्कान्मिथुना स भवाथः ॥ २ ॥

समसिंहोके समु देव्याने

सं सां समेतं यमराज्येषु ।

पुतौ पवित्रैरुप तर्ज्वर्येयां

यद्यद् रेतो अधि वां संयभूव ॥ ३ ॥

आपस्पुत्रासो अग्नि सं विशध्वं

ह्रमं जीषं जीषधन्याः समेत्यं ।

तासां भजध्वममृतं यमाहुः

यमोदनं पर्वति वां जनित्री ॥ ४ ॥

यं वां पिता पर्वति यं च माता

रिप्राग्निमुक्त्वै शर्मलाच वाचः ।

स अद्विनः शतधारः स्वर्ग

उमे व्याप्पु नर्मसी महित्वा ॥ ५ ॥

उमे नर्मसी उमयाश्च लोकान्

ये यज्वनामभिर्जिताः स्वर्गाः ।

तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्ने

तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रेयेथाम् ॥ ६ ॥

प्राचीं प्राचीं प्रदिशाम् रभेयां

एतं लोकं ध्रुवर्जानाः सचन्ते ।

यद् वां पुक्कं परिविष्टमग्नां

तस्य गुप्तये दंपती सं श्रेयेथाम् ॥ ७ ॥

दक्षिणां दिशामग्नि नक्षमाणौ

पुर्यावर्तयामग्नि पात्रमेतत् ।

तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः

पुकाय शर्म बहुलं नि यच्छाव् ॥ ८ ॥

प्रतीचीं दिशामियमिद् वरं
 यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च ।
 तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथां
 अथा पक्वान्मिथुना सं भवाथः
 उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद्
 दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम् ।
 पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव
 विश्वैर्विश्वार्कैः सह सं भवेम
 ध्रुवेयं विराणमो अस्त्वस्यै
 शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु ।
 सा नो देव्यदिते विश्ववार
 इयं इव गोपा अभि रक्ष पक्वम्
 पितेयं पुत्रानभि सं स्वजस्व नः
 शिवा नो धाता इव वान्तु भूमौ ।
 यमोदनं पचतो देवते इह
 तं नस्तपं उत सत्यं च वेत्तु
 यद्यत् कृष्णः शकुन पद् गत्वा
 त्तरन् विपक्वं विलं आससाद ।
 यद् वा दास्यादुर्द्ध्वस्ता समङ्ग
 उदरालं मुसलं शुम्भतापः
 अप्यं प्रायां पृथुवृधो वयोधाः
 पूतः पृथिवैरपं हन्तु रक्षः ।
 धा रोह चमं महि शर्म यच्छु
 मा दंपती पीत्रमयं नि गाताम्
 धनस्पतिः सह देयेन आगन्
 रक्षः पित्राणां भूप्रार्थमानः ।
 स उच्छ्रयानि प्र यदाति याचं
 मेने लोचो अभि सयान् जयेम
 इत मेधान् पुराणः पयंपृहन्
 य र्षो ज्योतिषां उत पश्यदी ।

त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्त्सचन्ते
 स नः स्वर्गमभि नैप लोकम् ॥ १६ ॥
 स्वर्गं लोकमभि नो नयासि
 सं जायया सह पुत्रैः स्याम । ॥ १७ ॥
 गृहामि हस्तमनु मैत्वत्र
 मा नस्तावीभिर्ऋतिमो अरातिः ॥ १७ ॥
 ग्राहं पाप्मानमति तां अयाम्
 तमो व्यस्य प्र वदासि बल्यु ।
 वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिहीसीः
 मा तण्डुलं वि शरीदेवयन्तम् ॥ १८ ॥
 विश्वव्यं चा घृतपृष्ठां भविष्यन्
 सयोनिलोकमुप याह्येतम् ।
 वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं
 तुपं पलावानप तद् विनक्तु ॥ १९ ॥
 प्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन
 द्यौरेवासौ पृथिव्यन्तारक्षम् । ॥ २० ॥
 अंशन् शमीत्वान्यारभेथां
 आ प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥ २० ॥
 पृथग् रूपाणि बहुधा पशुनां
 एकरूपो भवसि सं समृद्धया । ॥ २३ ॥
 एतां त्यचं लोहिनीं तां तुदस्य
 प्रायां शुम्भमाति मलग्ग इव घत्रां ॥ २१ ॥
 पृथिवीं त्वां पृथिव्यामा वैश्यायामि
 तन्न संमानी विरुता त एषा ।
 यद्यद् घृचं विहितमर्षणेन
 तेन मा सुघ्नोयंशणापि तद् यषामि ॥ २२ ॥
 जनित्रीव प्रति हयांसि सतुं
 सं त्वां दधामि पृथिवीं पृथिव्या । ॥ २५ ॥
 उता कुम्भी येषां मा र्व्यधिष्ठा
 यहापुषराज्येनातिपता ॥ २३ ॥

अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्ताद्
 इन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान् ।
 वरुणस्त्वा दंदाद्दरुणे प्रतीच्या
 उत्तरात् त्वा सोमः सं ददातै ॥ २४ ॥
 पूताः पवित्रैः पचन्ते अध्याद्
 दिव्यं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।
 ता जीवला जीवधन्याः प्रतिप्राः
 पात्र आसिंस्ताः पर्यग्निरिन्धाम् ॥ २५ ॥
 आ यन्ति दिवः पृथिवीं संचन्ते
 भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम् ।
 शुद्धाः सतीस्ता उ शुभ्रमन्त एव
 ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु ॥ २६ ॥
 उतेवं प्रभवीरुत संमितास
 उत शुक्राः शुच्यश्चासृतासः ।
 ता आदिनं दंपतिभ्यां प्राक्षिष्टा
 आपः शिश्नन्ताः पचता सुनाथाः ॥ २७ ॥
 संस्थाता स्तोकाः पृथिवीं संचन्ते
 प्राणापानैः संमिता ओपधीभिः ।
 असंस्थाता ओप्यमानाः सुवर्णाः
 सर्वे व्यापुः शुच्यः शुचित्वम् ॥ २८ ॥
 उद्योधन्त्यभि वलान्ति तप्ताः
 फेनेमस्यन्ति बहुलाश्च विन्दून् ।
 योपैव हृष्ट्या पतिमूर्तिवयाय
 पतैस्तण्डुलैर्मैवता समापः ॥ २९ ॥
 उत्थापय सीदतो युध्न पनान्
 अग्निपुत्मानमभि सं स्पृशन्ताम् ।
 अमांसि पार्श्वेदकं यदेतत्
 मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥ ३० ॥
 प्र यच्छ पदो त्वरया हरौप
 आदिसन्त ओपधीदान्तु पर्यन् ।

॥ २४ ॥
 ॥ २५ ॥
 ॥ २६ ॥
 ॥ २७ ॥
 ॥ २८ ॥
 ॥ २९ ॥
 ॥ ३० ॥

यासां सोमः परिं सान्यं बभूव
 अमन्युता नो धीरुधौ भवन्तु ॥ ३१ ॥
 नव्यं वहिरोदनायं स्तृणीत
 प्रियं हृदश्चक्षुषो बलव्यस्तु ।
 तस्मिन् देवाः सह देवीषिंशन्तु
 इमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निपद्यं ॥ ३२ ॥
 वनस्पते स्तीर्णमा सीद वहिः
 अग्निप्रोमैः संमितो देवताभिः ।
 त्वष्ट्रं रूपं सुहृतं स्वधित्या
 एना पहाः परि पाथे ददश्राम् ॥ ३३ ॥
 पृष्ट्यां शरत्सु निधिपा अमीच्छ्यात्
 स्वः पन्वेनाम्यश्रवातै ।
 उपेनं जीवान् पितरंश्च पुत्रा
 एतं स्वर्गं गमयान्तंमग्नेः ॥ ३४ ॥
 धृतां ध्रियस्व धरणं पृथिव्या
 अच्युतं त्वा देवतादच्यावयन्तु ।
 तं त्वा दंपती जीवन्तौ जीवपुत्रौ
 उद् वांसयातः पर्यग्निधानात् ॥ ३५ ॥
 सर्वान्त्सुमार्गा अभिजित्वा लोकान्
 याधन्तः कामाः समतीतुपस्ताव ।
 वि गार्हियामायधनं च दधिः
 एकस्मिन् पात्रे अद्युर्दरैमम् ॥ ३६ ॥
 उपं स्तृणीहि प्रययं पुरस्ताद्
 घृतेन पात्रमभि धारयैतत् ।
 वाश्रेवोक्षा तरुणं स्तनस्युं
 इमं देवासो अभिदिडकृणोत ॥ ३७ ॥
 उपास्तपिरकरो लोकमेतं
 उरुः प्रयतामसमं स्वर्गः ।
 तस्मिंमद्युयै महिपः सुपुणो
 देवा एनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥ ३८ ॥

यद्यज्जाया पचति त्वत् परःपरः
पतिर्या जाये त्वत् तिरः ।

सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु
संपादयन्तो सह लोकमेकम्

यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते
असत् पुत्राः परि ये संवभूवुः ।

सर्वास्ता उप पात्रे ह्येथां
नाभिं जानानाः शिर्शवः सुमायान्

वसोर्या धारा मधुना प्रपीना
घृतेन मिथा अमृतस्य नामयः ।

सर्वास्ता अर्धं रुधे स्वर्गः
पृथ्वां शरत्सु निधिपा अभीच्छात्

निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छाद्
धनीध्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये ।

अस्माभिर्देवो निहितः स्वर्गः
प्रिभिः षण्डैस्त्रैस्त्रैर्गान्कृशत्

अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं
श्रुत्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।

नुदामं पन्नमपं रुधो ह्यसद्
आदित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम्

आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मष्यिदं
घृतेन मिध्रे प्रति घेदयामि ।

शुद्धहस्तौ प्राह्मणस्यानिहत्य
पतं स्वर्गं सुहृतावपीतम्

इदं प्रापमुत्तमं षण्डैस्त्रैस्त्रै
यस्माद्गोषाम् परमेष्ठी सुमार्यं ।

मा मिश्रं सर्पिर्घृतयत् रमद्भ्य
एव भागो अङ्गिरसो नो ध्रुवं

सुमार्यं च तर्पणे देवताभ्यो
निधिं दीपाधिं परि दध एतम् ।

॥ ३९ ॥

॥ ४० ॥

॥ ४१ ॥

॥ ४२ ॥

॥ ४३ ॥

॥ ४४ ॥

॥ ४५ ॥

मा नो घृतेऽर्धं गाग्मा समित्यां

मा स्मान्यस्मा उत् सृजता पुरा मत् ॥ ४६ ॥

अहं पंचाम्यहं ददामि
ममेदु कर्मन् कुरुषेऽधि जाया ।

कौमारो लोको अजानिष्ट पुत्रोऽु
अन्वारभेथां वयं उत्तरावत्

न किह्विषमत्र नाधारो अस्ति
न यन्मित्रैः समममान् एति ।

अनूनं पात्रं निहितं न एतत्
पुकारं पक्वः पुनरा विंशाति

प्रियं प्रियाणां कृणवाम
तमस्ते यन्तु यत्तमे द्विपन्ति ।

धेनुरनड्वान् वयोवय आयद्
एव पौरुषेयमर्षं मृत्युं नुदन्तु

समग्रयो विदुरन्यो अन्यं
य ओर्पधीः सचते यश्च सिन्धून ।

यावन्तो देवा दिव्याऽुतपन्ति
हिरण्यं ज्योतिः पचतो धम्व

एषा त्वचां पुरेये सं वभूव
अनेष्ठाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।

क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथो
अमेतं वासो मुर्षामेदुनस्य

यदक्षेषु यदा यत् समित्यां
यद् वा यदा अनृतं पिच्छकाम्या ।

समानं तन्तुमभि संघसानां
तस्मिन्सर्वं शर्मन् सादयायः

सर्वं संनुष्यापि गच्छ देवान्
त्यचो धूमं पयुत् पातयामि ।

विभर्ष्याचा घृतघृष्टो भविष्यन्
सर्वोनिर्लोषगुपं याहोतम्

॥ ४७ ॥

॥ ४८ ॥

॥ ४९ ॥

॥ ५० ॥

॥ ५१ ॥

॥ ५२ ॥

॥ ५३ ॥

(१४१०)

तन्व्यं स्वर्गो बहूधा वि चंजे
 यथा विद् आत्मन्न्यवर्णाम् ।
 अपजैत् कृष्णां हसतीं पुनानो
 या लोहिनीं तां तं अशौ जुहोमि ॥ ५४ ॥
 प्राच्यं त्वा दिशोऽध्वयेऽधिपतये
 असितार्यं रक्षित्रे आदित्यायेपुमते ।
 एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
 दिष्टं नो अत्र जरसे नि नैपञ्जरा मृत्यये
 परि णो ददात्वयं पकेन सह सं भवेम ॥ ५५ ॥
 दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायधिपतये
 तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेपुमते ।
 एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
 दिष्टं नो अत्र जरसे नि नैपञ्जरा मृत्यये
 परि णो ददात्वयं पकेन सह सं भवेम ॥ ५६ ॥
 प्रतीच्यं त्वा दिशे वरुणायाधिपतये
 पृदाकवे रक्षित्रेऽध्यायेपुमते ।
 एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
 दिष्टं नो अत्र जरसे नि नैपञ्जरा मृत्यये
 परि णो ददात्वयं पकेन सह सं भवेम ॥ ५७ ॥
 उदीच्यं त्वा दिशे सोमायाधिपतये
 स्वजायं रक्षित्रेऽदाभ्या इपुमत्यै ।
 एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
 दिष्टं नो अत्र जरसे नि नैपञ्जरा मृत्यये
 परि णो ददात्वयं पकेन सह सं भवेम ॥ ५८ ॥
 ध्रुवार्यं त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये
 कल्माषीवाय रक्षित्रे ओषधीभ्य इपुमतीभ्यः ।
 एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
 दिष्टं नो अत्र जरसे नि नैपञ्जरा मृत्यये
 परि णो ददात्वयं पकेन सह सं भवेम ॥ ५९ ॥
 ऊर्ध्वार्यं त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये
 शिवार्यं रक्षित्रे एषार्यपुमते ।

एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
 दिष्टं नो अत्र जरसे नि नैपञ्जरा मृत्यये
 परि णो ददात्वयं पकेन सह सं भवेम ॥ ६० ॥
 वाजीकरणम् ।
 ॥ २१५ ॥ (अथर्वं ४।३।१-८)
 अथर्वी । वनस्पतिः; १-२ सूर्यः, प्रभापतिः; ४ इन्द्रः;
 ५ आपः, मीमः; ६ अग्निः परस्वती, वज्रगस्पतिः
 (वाशोहरणम्) । अनुष्टुप्, ४ पुर उष्णिक्,
 ६-७ मुष्टिक् ।
 यां त्वा गन्धर्वा अरुणंद् वरुणाय मृतभ्रजे ।
 तां त्वा ययं खनामस्योषधिं शेषुदेषणीम् ॥ १ ॥
 उदुपा उदु सूर्य उदिदं मांमकं वचः ।
 उद्वैजतु प्रजापतिर्वृषा शुभेण वाजिनां ॥ २ ॥
 यथा स ते विरोहतेऽभिततमिधानति ।
 ततस्ते शुभं वचरमियं कुणोत्वोपधिः ॥ ३ ॥
 उच्छुष्मींरधीनां सारं क्रुपमाणाम् ।
 सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यं मुसिनधेदि तनूयदिन ॥ ४ ॥
 अपां रसं प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम् ।
 उत सोमस्य धातास्युतारामिनि वृष्ण्यम् ॥ ५ ॥
 अध्यात्रं अद्य संवितरथ देवि सरस्वति ।
 अध्यास्य ब्रह्मणस्पते घनुंरिया तानया पसं ॥ ६ ॥
 आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामियं घन्वनि ।
 क्रमस्वरी इव रोहितमनवगलायता सदां ॥ ७ ॥
 अर्धस्याभ्यतरस्यान्जस्य पेल्यस्य च ।
 अयं क्रुपभस्य ये वाजाः
 तानस्मिन् धेदि तनूयदिन ॥ ८ ॥
 ॥ २१६ ॥ (अथर्वं ६।३।१-३)
 अथर्वीतिः । शेषोऽहं (वाशोहरणम्) । १ अग्निः,
 २ अनुष्टुप्, ३ मुष्टिक् ।
 यथामितः प्रथयन्ते घनां अनु
 ययंषि कृष्णप्रसुरस्य माययां ।
 एया ते दायः सट्टेमायमूक्तो
 अङ्गेनाहं संसंमकं कृष्णानु ॥ १ ॥

यथा पसेस्तायादरं वार्तेन स्थूलमे कृतम् ।
यावत् परस्वतः पस्-स्तावत् ते वर्धतां पसः ॥२॥
यावदङ्गीनं पारस्वतं द्वास्तिनं गार्धैभं च यत् ।
यावदभ्वस्य वाजिन-स्तावत् ते वर्धतां पसः ॥३॥

॥ २१७ ॥ (अथर्व० ६।१०।१-३)

अथर्वाङ्गिराः । ब्रह्मणस्पतिः (वाजीकरणम्) । अनुष्टुप् ।

आ वृषायस्व भवसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च ।
यथाङ्गं वर्धतां शेष-स्तेन योषितमिज्जहि ॥ १ ॥
येनं कृशं वाजयन्ति येनं हिन्यन्त्यातुस्म ।
तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुर्निवा तानया पसः ॥ २ ॥
आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिद्य धन्वनि ।
कमस्वरी इव रोहित-मनवगलायता सदा ॥ ३ ॥

गर्माधानम् ।

॥ २१८ ॥ (अथर्व० ५।२५।१-३)

ब्रह्मा । योनिर्गर्मा, पृथिव्यादयो देवताः । अनुष्टुप्,

१३ विराट्पुरस्ताद्बृहती ।

पर्वताद् द्वियो योने-रङ्गाद्गात् सुमामृतम् ।
शेषो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पूर्णमिया दधत् ॥ १ ॥
यथेयं पृथिवी मदी भूतानां गर्भमादधे ।
एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामर्षसे ह्ये ॥ २ ॥
गर्भं धेहि मिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते श्रिधियोमा धत्तां पुष्करञ्जजा ॥ ३ ॥
गर्भं ते मिश्रायरेणौ गर्भं देवो वृहस्पतिः ।
गर्भं त् इन्द्रेभ्यातिथ्य गर्भं धाता दधातु ते ॥ ४ ॥
पिष्णुयोनं कल्पयतु त्वर्षां रूपाणि पिशतु ।
आ पिशतु प्रजापति-धाता गर्भं दधातु ते ॥ ५ ॥
यद् येन राजा परंजो यद् पां देवी सरस्वती ।
यदिन्द्रो वृत्रा यद् नद् गर्भकरणं पिय ॥ ६ ॥
गर्भो वृत्रोपधानां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो धीरे गर्भमेह धाः ॥ ७ ॥

अधि स्कन्द वीर्यस्व गर्भमा धेहि योन्वाम् ।
वृषासि वृष्ण्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ॥ ८ ॥
वि जिह्वीष्य बार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम् ।
अदुष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयाविनम् ॥ ९ ॥
धातुः श्रेष्ठेन रूपेणा-स्या नार्यां गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतये ॥ १० ॥
त्वष्टुः श्रेष्ठेन रूपेणा-स्या नार्यां गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतये ॥ ११ ॥
सवितुः श्रेष्ठेन रूपेणा-स्या नार्यां गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतये ॥ १२ ॥
प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणा-स्या नार्यां गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतये ॥ १३ ॥

॥ २१९ ॥ (अथर्व० ६।८१।१-३)

अथर्वा । आदित्यः, ३ त्वष्टा (गर्माधानम्) । अनुष्टुप् ।

यन्तासि यच्छसे हस्त-वपु रक्षांसि सेधसि ।
प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो बभूदयम् ॥ १ ॥
परिहस्त वि धारय योनिं गर्भीय धातये ।
मर्यादे पुत्रमा धेहि ते त्वमा गमयागमे ॥ २ ॥
यं परिहस्तमविभ-रदितिः पुत्रकाभ्या ।
त्वष्टा तमस्या आ यन्ताद् यथा पुत्रं जनादिति ३

॥ २२० ॥ (अथर्व० ६।१७।१-४)

अथर्वा । गर्भदेहणम्, पृथिवी । अनुष्टुप् ।

यथेयं पृथिवी मदी भूतानां गर्भमादधे ।
एवा तं भ्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितये ॥ १ ॥
यथेयं पृथिवी मदी वाधारेमान वनस्पतीन् ।
एवा तं भ्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितये ॥ २ ॥
यथेयं पृथिवी मदी वाधार पर्वतान् गिरीन् ।
एवा तं भ्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितये ॥ ३ ॥
यथेयं पृथिवी मदी वाधार विहितं जगत् ।
एवा तं भ्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितये ॥ ४ ॥

॥ २११ ॥ (अथर्व० ७।१११-११)

ब्रह्म । वृषभः (आत्मा) । परावृद्धी विष्टु ।

इन्द्रस्य कुक्षिरसि सोमधार्न
आत्मा देवानामुत मानुषाणाम् ।
इह प्रजा जनय यास्त आसु
या अन्यत्रेह तास्तै रमन्ताम्

॥ १ ॥

॥ २१२ ॥ (अथर्व० ८।११-२६)

मातृनामा । मन्त्रोक्ताः, मातृनामा, १५ ब्रह्मणस्त्वितिः (गर्म-
दोषनिवारणम्) । अनुष्टुप् । १ सुरस्ताद्वृद्धी; १० व्यव-
साना वृद्धदा जगती; ११-१२, १४, १६, पयसा-
पङ्क्तिः; १५ व्यवसाना सप्तपदा सङ्गीतः; १७
व्यवसाना सप्तपदा जगती ।

यौ ते मातोन्मार्जं ज्ञातायाः पतिवेदनी ।
दुर्णामा तत्र मा गृध्र-दलितं उत वृत्सर्पः ॥ १ ॥
पलालानुपलालौ शकुं कौकं मलिम्लुचं पलाजकम् ।
आध्रेयं वधियांससूक्ष्मश्रीवं प्रमीलिनम् ॥ २ ॥
मा सं धृतो मोषं स्रप ऊरु माव्यं स्रपोऽन्तरा ।
हृणोभ्यस्यै भेषजं वृजं दुर्णामचातनम् ॥ ३ ॥
दुर्णामा च सुनामा चो-मा संधृतमिच्छतः ।
अरायानपं हन्मः सुनामा खैणमिच्छताम् ॥ ४ ॥
यः हृणः केदयसुर स्तभुज उत तुण्डिकः ।
अरायानस्या मुष्काभ्यां भंससोपं हन्मसि ॥ ५ ॥
अनुजिघ्रं प्रमदान्तं क्रुव्यादमुत येरिहम् ।
अरायां वृक्किफिणो वृजः पिहो अनीनशत् ॥ ६ ॥
यस्त्वा स्वभे निपद्यते धाता भृत्वा पितेव च ।
वृजस्तान्तसंहतामितः ह्यियरूपोस्तिरीदिनः ॥ ७ ॥
यस्त्वां स्रपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाप्रतीम् ।
ह्यायामिव प्र तान्त्युयैः परिकामन्ननोनशत् ॥ ८ ॥
यः हृणोति भूतवत्सा-मवतोकामिमां खिर्यम् ।
तमोपधे त्वं नाशया-स्याः कमलेमखिर्यम् ॥ ९ ॥
ये शालाः परिन्त्यन्ति सायं गेदभनादिनः ।
कुसुला ये च कुक्षिलाः ककुमाः कृष्माः क्षिमाः ।
तानोपधे त्वं गधेन विपुचीनान् वि नाशय ॥ १० ॥

ये कुकुम्बाः कुकूमाः कृष्माः क्षिमाः विभ्रति ।
क्रीया इव प्रनृत्यन्ते
घने ये कुर्वते घोषं तानितो नाशयामसि ॥ ११ ॥
ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः ।
अरायान् वस्तवासिनो
दुर्गन्धिलोहितास्यान् मर्ककान् नाशयामसि ॥ १२ ॥
य आत्मानंमतिमात्र-मंसं आघाय विभ्रति ।
खीणां श्रोणिप्रतोदित इन्द्र रक्षांसि नाशय ॥ १३ ॥
ये पूर्वं वधोक्तुं यन्ति हस्ते शृङ्गाणि विभ्रतः ।
आपाकैष्टाः प्रहासिनं
स्तभ्ये ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशयामसि ॥ १४ ॥
येषां पृथात् प्रपदानि पुरः पाष्णीः पुरो मुखा ।
खलजाः शकभूमजा उरुण्डा ये च मद्मृष्टाः
कुम्भमुष्का अयाशवः ।
तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीवोधेन नाशय ॥ १५ ॥
पर्यसाक्षा अभ्रचन्द्रा अख्णैणाः संन्तु पण्डगाः ।
अथ भेषज पाद्य य इमां
संविष्टुस्त्यपतिः स्वपतिं खिर्यम् ॥ १६ ॥
उज्जुपिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमशम् ।
उपेपन्तमुदुम्बलं तण्डेलेमुत शालुडम्
पदा प्र विष्य पाष्ण्यां स्थालीं गौरिव स्पन्दना १७
यस्ते गर्भं प्रतिमृशात् जातं वां मारयाति ते ।
पिहस्तमुप्रधन्वा हृणोतु हृदयाविधम् ॥ १८ ॥
ये अज्ञो ज्ञानान् मारयन्ति सृत्तिका अनुदोरते ।
खीनांगान् पिहो गन्ध्रयान् वातो अभ्रमिवाजतु १९
परिच्छुटं धारयतु यजितं मायं पाद्वि तत् ।
गर्भं त उग्रो रक्षतां भेषजो नीविमायो ॥ २० ॥
पवीनसात् तद्गुल्याधु-च्छायकादुत नक्रकात् ।
प्रजायं पत्यै त्या पिहः परि पातु किमीदिनः ॥ २१ ॥
द्या स्याच्चतुरक्षात् पञ्चपादादनहुरेः ।
धृन्तादभि प्रसपतः परि पादि घरीवृतात् ॥ २२ ॥

य आमं मांसमदन्ति पौकैवेयं च ये ऋविः ।
 गर्भान् सार्दन्ति केशवा—स्तानितो नाशयामसि २३
 ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेयुः श्वशुरादधि ।
 वज्रश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् ॥२४
 पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रम ।

श्राण्डादो गर्भान् मा दंभन्
 वार्धस्वेतः किमीदिनः ॥२५॥

अप्रज्ञास्त्वं मारतवत्सुमा—द् रोदमघमावयम् ।
 वृक्षादिव स्रजं कृत्वा—प्रिये प्रति मुञ्च तत् ॥२६॥

॥ २२३ ॥ (अथर्वं २०।२६।११-१६)
 रक्षोहा । गर्भसंसावः । अनुष्टुप् ।

ब्रह्मणाग्निः सैविदानो रक्षोहा वाधतामितः ।
 अर्मावा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशयै ॥११॥

यस्ते गर्भमर्मावा दुर्णामा योनिमाशयै ।
 अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्कृष्यादमनीनशत् ॥१२॥

यस्ते हन्ति पतर्यन्तं निपत्सुं यः संरीसुपम् ।
 जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१३॥

यस्तं ऊरु विहरत्यन्तरा दस्पती शयै ।
 योनिं यो अन्तरोद्विहति तमितो नाशयामसि ॥१४॥

यस्या भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
 प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१५॥

यस्या स्पर्शनं तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
 प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१६॥

॥ २२४ ॥ (अथर्व ५।७२।१-९)

अथर्वप्रश्नः । अग्निः (गर्भसंसावः) । अनुष्टुप् ।
 वि जिहीष्य घनस्पते योनिः सूर्यगत्या इव ।
 धुनें मे अभियन्ता हयं समर्थाभि च मुञ्चतम् ॥५॥

मीनाय नार्धमानाय श्रुपये समवप्रये ।
 मायागिरभियना सुयं पृशं से च वि सान्धः ॥६॥

यथा यानः पुष्पिर्णा समिद्रथति सुपतः ।
 यथा ते गर्भं पञ्च निरन्तु दशमारयः ॥७॥

यथा यातो यथा वनं तथा समुद्र पृजति ।
 एवा त्वं दशमास्य सहोर्वेहि जरायुणा ॥ ८ ॥

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अर्धं मातरि ।
 निरैतं जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अर्धं ॥९॥

॥ २२५ ॥ (अथर्व २।७४।५)

कक्षीवान् दैपतमसः । पवमानः सोमः (अदितेर्गर्भः) ।
 अगती ।

अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणां
 देवाव्यं मुनेपे पिन्वति त्वचम् ।

दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ
 येनं तोकं च तनये च धामहे ॥ ५ ॥

॥ २२६ ॥ (अथर्वं १।११।१-६)

अथर्वः । पूषा, अर्यमा, वेधाः, दिशः, देवाः (नारी-
 मुखप्रसूतिः) । १ पञ्चकिः, २ अनुष्टुप्, ३ चतुष्पदो-
 षिण्गर्भः कङ्कमलानुष्टुप्, ४-६ पद्यापञ्चकिः ।

वपट् ते पूषसिन्सूतौ
 अर्यमा होता कृणोत वेधाः ।

सिन्तौ नार्यतप्रजाता
 वि पवीणि जिहतां सूतवा उं ॥ १ ॥

चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत ।
 देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतये ॥ २ ॥

सुषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि ।
 ध्रुवया सूपणे रघमय त्वं विष्कले सृज ॥ ३ ॥

नेयं मांसे न पीवसि नेयं मृज्जस्वाहृतम् ।
 अयंतु पृथ्नि शेवलं शुने

जराय्वत्तयेऽयं जरायु पचताम् ॥ ४ ॥
 वि ते भिनद्भि मेहनं वि योनिं वि गयीनिवेः ।

वि मातरं च पुत्रं च
 वि कुमारं जरायुणाय जरायु पचताम् ॥ ५ ॥

यथा यातो यथा मनो यथा पतन्ति पृक्षिणः ।
 एषा त्वं दशमास्य साकं
 जरायुणा पतार्य जरायु पचताम् ॥ ६ ॥

॥ २०७ ॥ (अथर्वं १९।३०।१-४)

ब्रह्मा । बृहस्पति, विवेकेनाथ (मेघा) । १ पराऽनुष्टुप्
त्रिष्टुप्, २ पुर ऋक्मन्त्रपुरशिक्षादृष्टतां, ३ बृहतीगर्भा,
४ त्रिपदाऽऽयां गायत्री ।

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाच
सरस्वती मन्त्रुमन्तं जगाम ।
विश्वैस्तद् देवैः सह सविदानः
सं दधातु बृहस्पतिः ॥ १ ॥
मा न आपो मेघां मा ब्रह्म प्र मयिष्टन ।
सुष्यद्रा युयं स्पन्दध्वं
उर्षहृतोऽहं सुमेघां वचस्वी ॥ २ ॥
मा नो मेघां मा नो दीक्षां
मा नो हिंसिष्टं यत् तपः ।
शिवा नः शं सुन्त्यायुषे शिवा मयन्तु मातरः ३
या नः पीपरदाभ्यिना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।
तामुस्मे रसतामिषम् ॥ ४ ॥

॥ २०८ ॥ (अथर्वं १।१।१-४)

अथर्व । वाचस्पति. (मेघाव्रतनम्) । अनुष्टुप्, ४ चतुःपदा
दिष्टोऽवृहती ।

ये त्रिपत्ता. परिपान्ति निभ्वां रूपाणि निभ्रत. ।
वाचस्पतिर्षला तेषां तन्वोऽद्य दधातु मे ॥ १ ॥
पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनस्ता सह ।
वसोऽप्यते नि रमय मय्येसास्तु मयि धृतम् ॥ २ ॥
इहेवाभि वि तनूमे आनीं इय ज्ययां ।
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येसास्तु मयि धृतम् ३
उर्षहृतो वाचस्पति-रूपास्मान् वाचस्पतिर्हयताम् ।
सं ध्रुतेनं गमेमहि मा ध्रुतेन वि राधिपि ॥ ४ ॥

॥ २०९ ॥ (अथर्वं ६।१०८।१-५)

शौनद । मेघा, ४ असि (मेघावर्धनम्) । अनुष्टुप्,
२ उरोऽवृहता, ३ पश्य बृहती ।

त्व नो मेघे प्रथमा गोमिर्भवेमिरा गति ।
त्वं सूर्यस्य रुदिमसि-स्त्वं नो असि पृथिया ॥ १ ॥

मेघामहं प्रथमा ब्रह्मण्यती ब्रह्मज्जलानुविष्टताम् ।
प्रथितां ब्रह्मचारिभि-र्देवानामयसे ह्ये ॥ २ ॥
यां मेघाममृगो विदु-र्या मेघामसुरा विदुः ।
ऋषयो मुद्रां मेघां यां विदुः
तां मन्या वैशयामसि ॥ ३ ॥
यासूर्ययो भूतकृतां मेघां मेघाग्निनीं विदुः ।
तया मामद्य मेघ-यात्रं मेघाग्निं कृणु ॥ ४ ॥
मेघां सूर्यं मेघां प्रात-मेघां मध्यंदिनं परि ।
मेघां सूर्यस्य रुदिमसि-वैशसा वैशयामहे ॥ ५ ॥
मणिघारणम् ।

॥ २१० ॥ (अथर्वं ४।१०।१-७)

अथर्व । बृहस्पतिः, वृषभ । अनुष्टुप्, ६ पद्याः, ७ पञ्चपदा पराऽनुष्टुप्-ऋती ।

वाताज्जातो धन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिष्परि ।
स नो हिरण्यजा. शङ्ख-वृशनः पार्वहंसः १
यो अग्रतो रौचनानां समुद्रादधि जगिये ।
शङ्खेन हत्वा रक्षा-स्यत्विणो नि पद्दामहे ॥ २ ॥
शङ्खेनामीवाममाति शङ्खेनोत सुदान्वाः ।
शङ्खो नो विश्वभेषज. वृशनः पार्वहंसः ॥ ३ ॥
दिनि जातः समुद्रज सिन्धुतस्यस्यार्धृतः ।
स नो हिरण्यजाः शङ्ख-आयुष्परणो मणि. ४
समुद्राज्जातो मणि-वृषाज्जातो दिवाः ।
सो अस्मान्सुरते-पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ॥ ५ ॥
हिरण्यानामेकैऽसि सोमात् त्वमधि जगिये ।
रथे त्वमसि वृशत इपुधा रौचनस्यं
प्र ण आयुषि तारिपत् ॥ ६ ॥

देवानामस्य वृशनं यमृ
तदात्मन्वर्धत्यन्वृन्तः ।
तत् तै यद्भान्यायुषे वर्धमे यदाय
दीघायुत्वार्यं शानशाखाय काशनस्त्रामि रसतु ७
(२५६६)

॥ २३१ ॥ (अथर्धं ८ ८।५।१-२)

शुक । कृत्वा दपण, मन्त्रोक्ताः (प्रतिघरो मणि) । अमुष्दृप् ।
१, ६ उपरिष्ठाद्बृहदा, २ त्रिपदा विराड् गायत्री, ३ चतुष्पदा
मुनिजगती, ५ सुरिक्फस्तारपङ्क्ति, ७-८ षड्भ्रमती, ९
पुरस्कृतिर्जगता, १० त्रिष्टुप्, ११ पश्चात्पङ्क्ति । १४ त्र्यव
साना षट्पदा जगती, १५ पुरस्ताद्बृहती, १६ जगतीगर्भा
त्रिष्टुप्, २० विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्क्ति, २१ विराट् त्रिष्टुप् ।
२२ त्र्यवसाना सप्तपदा विराड्गर्भा सुरिक्फाकरी ।

अयं प्रतिस्वरो मणि—वीरो वीरायं वध्यते ।

वीर्यवान् सपत्नहा शूरवीरः परिपूर्णः सुमङ्गलः १

अथ मणिः सपत्नहा सुवीर.

सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।

प्रत्यक् कृत्वा दूपयन्नेति वीरः ॥ २ ॥

अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्

अनेनासुरान् पराभाषयन्मनीषी ।

अनेनाजयद् धावापृथिवी उभे इमे

अनेनाजयत् प्रदिशश्चतस्रः ॥ ३ ॥

अयं स्यान्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिस्वरः ।

ओजस्वान् विमूधो वृशी

सो अस्मान् पातु सर्वतः ॥ ४ ॥

तदग्निराह तदु सोमं आह

वृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ।

ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीर्षीः

कृत्वाः प्रतिस्वरैर्जन्तु ॥ ५ ॥

अन्तर्द्धे धावापृथिवी उताहंरुत सूर्यम् ।

ते मे देवाः पुरोहिताः

प्रतीर्षीः कृत्वा, प्रतिस्वरैर्जन्तु ॥ ६ ॥

वे स्यात्स्यं मणिं जना घर्माणि कृण्वते ।

स्यं इषु दिव्यम्राण्य वि कृत्वा घाधते वृशी ॥ ७ ॥

ग्राफयेन मणिन् ऋषिणेय मनीषिणा ।

धर्मायं सयाः घृतां वि मृधो हन्मि रक्षसे ॥ ८ ॥

याः कृत्वा आङ्गिस्वीर्याः कृत्वा आसुरीः

याः कृत्वाः स्वयं कृता या उ चान्येभिराभृताः ।

उभयस्तिताः परा यन्तु

परावर्तो नवर्ति नाच्याः अति ॥ ९ ॥

अस्मै मणिं घर्मं वधन्तु देवा

इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।

प्रजापतिः परमेष्ठी विराड्

वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥ १० ॥

उत्तमो अस्थोर्पधीनामनुडवान्

जगतामिव व्याघ्र. श्वर्पदामिव ।

यमेच्छामाविंशाम् तं प्रतिस्पर्शनमन्तितम् ॥ ११ ॥

स इद् व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा ।

अथो सपत्नकर्शो नो यो विभर्तमं मणिम् ॥ १२ ॥

नैनं ग्न्यत्पस्वरो न गन्धर्वा न मर्याः ।

सर्वा दिशो वि राजति यो विभर्तमं मणिम् ॥ १३ ॥

कश्यपस्त्वामं सृजत कश्यपस्त्वा समैरयत् ।

अविमस्वेन्द्रो मानुषे विभ्रत् सन्नेपिणेऽजयत् ।

मणिं सहस्रवीर्यं घर्मं देवा अकृण्वत् ॥ १४ ॥

यस्त्वा कृत्वाभिर्यस्त्वा वीक्षाभि

र्यनैर्यस्या जिघांसति ।

प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥ १५ ॥

अयमिद् वै प्रतीवर्त ओजस्वान् संजयो मणिः ।

प्रजां घनं च रक्षतु परिपूर्णः सुमङ्गलः ॥ १६ ॥

असपत्नं नो अधरा दसपत्नं न उत्तरात् ।

इन्द्रोसपत्नं न. पश्चा ज्योतिः शर पुरस्कृधि १७

घर्मं मे धावापृथिवी घर्माहुर्वर्मं सूर्यः ।

घर्मं मे इन्द्रेद्याग्निश्च घर्मं धाता दधातु मे ॥ १८ ॥

पेन्द्राग्निं घर्मं बहुल यदुग्रं

विश्वे देवा नाति विध्वान्ति सर्वे ।

तन्मे तन्यं प्रायतां सर्वतो वृहद्

आर्युष्मां जूरदृष्टिर्यथात्वाति ॥ १९ ॥

आ मारुक्षद् देवमणिं मन्वा अरिष्टतातये ।
 इमं मेथिमंभिसंविशध्वं
 तनूपानं त्रिवह्यमोजसे ॥ २० ॥
 अस्मिन्नद्रो नि दधातु नृभ्यं
 इमं देवासो अभिसंविशध्वम् ।
 दीर्घायुत्वायं शतदारद्राय
 आयुष्मान् जरदप्रियंथासत् ॥ २१ ॥
 स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
 इन्द्रो यम्रातु ते मणिं
 जैगीवां अर्पराजितः सोमपा अमयंकरो वृषा ।
 स त्वां रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः २२
 ॥ २३२ ॥ (अथर्व० १।३।१-२५)
 अथर्वो । (सपत्नक्षयणो), वरणमणिः, वनस्पतिः, चन्द्रमाः ।
 अनुष्टुप् ; २-३, ६ सुरिक् शिष्टपुः ८, १३-१४
 पद्यशक्तिः ; ११, १६ मुरिद् १५, १७-२५
 पद्यदा जगती ।
 अयं मे वरणो मणिः संपत्नक्षयणो वृषा ।
 तेना रमस्य त्वं शत्रुन् प्र मृणीहि डुरस्यतः ॥ १ ॥
 प्रैणान्मृणीहि प्र मृणा रमस्य
 मणिस्ते अस्तु पुरस्ता पुरस्तात् ।
 अवारयन्त वरणेन देवा
 अग्याचारमसुराणां भ्यः भ्यः ॥ २ ॥
 अयं मणिर्वरणो विश्वमेपजः
 सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः ।
 स ते शत्रुनर्षयन् पादयाति
 पूर्वस्तान् दंष्ट्रिं ये त्वां हियन्ति ॥ ३ ॥
 अयं ते हृत्यां धितंतां पौरुषेयाद्यं भूयात् ।
 अयं त्वा सर्वसात् प्रापाद् वरणो वारयिष्यते ॥ ४ ॥
 वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
 यद्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥ ५ ॥
 स्वप्नं सुप्त्वा यदि पदयासि पापं
 मृगः सति यतिं घायादहंशाम् ।

परिक्षवाच्छुनेनः पापयादाद्
 अयं मणिर्वरणो वारयिष्यते ॥ ६ ॥
 अरात्यास्त्वा निर्वृत्या अभिचारादर्थो भूयात् ।
 मृत्योरोर्जायसो वधाद् वरणो वारयिष्यते ॥ ७ ॥
 यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरौ
 यत्त्वं मे स्वा यदेनश्चक्रुमा धयम् ।
 ततो नो वारयिष्यते इयं देवो वनस्पतिः ॥ ८ ॥
 वरणेन प्रव्ययिता भ्रातृव्या मे सर्वन्धवः ।
 असूते रजो अयंगुस्ते यन्वधमं तमः ॥ ९ ॥
 अरिष्टोऽहमरिष्टु रायुष्मान्त्सर्वपूरुषः ।
 तं मायं वरणो मणिः परिं पातु दिशोदिशः ॥ १० ॥
 अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः
 स मे शत्रुन् वि वाधता मिन्द्रो दस्युनिवासुरान् ११
 इमं विममि वरणमायुष्मान्शतदारदः ।
 स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशुजोक्ष मे दधत् ॥ १२ ॥
 यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् मनुस्योर्जसा ।
 एवा सुपत्नान् मे भङ्गिध
 पूर्वान् ज्ञातां उतापरात् वरणस्याभि रक्षतु ॥ १३ ॥
 यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान् प्लातो वनस्पतीन् ।
 एवा सुपत्नान् मे प्लाहि
 पूर्वान् ज्ञातां उतापरात् वरणस्याभि रक्षतु ॥ १४ ॥
 यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्युपिताः ।
 एवा सुपत्नान्स्त्वं मम प्र क्षिणीहि न्यापय
 पूर्वान् ज्ञातां उतापरात् वरणस्याभि रक्षतु ॥ १५ ॥
 तांस्त्वं प्र ङिञ्चि वरण पुरा दिशात् पुरायुषः ।
 य एनं पशुपु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रिण्ययः १६
 यथा सूर्यो अतिमाति यथाभिन्नु तेज आर्हितम् ।
 एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं मूर्तिं नि रच्छतु
 तेजसा मा समुक्षतु यदासा समनकु मा ॥ १७ ॥
 (१५६५)

यथा यशश्चन्द्रम—स्यादित्यं च नृचक्षसि ।
 एवा मे वरणो मणिः कीर्ति भूति नि यच्छतु
 तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ १८ ॥
 यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिन् ज्ञातवैदसि ।
 एवा मे वरणो मणिः कीर्ति भूति नि यच्छतु
 तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ १९ ॥
 यथा यशः कन्यायां यथास्मिन्संभृते रथे ।
 एवा मे वरणो मणिः कीर्ति भूति नि यच्छतु
 तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २० ॥
 यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।
 एवा मे वरणो मणिः कीर्ति भूति नि यच्छतु
 तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २१ ॥
 यथा यशोऽग्निहोत्रे वपदकारे यथा यशः ।
 एवा मे वरणो मणिः कीर्ति भूति नि यच्छतु
 तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २२ ॥
 यथा यशो यज्ञमाने यथास्मिन् युञ्ज आहितम् ।
 एवा मे वरणो मणिः कीर्ति भूति नि यच्छतु
 तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २३ ॥
 यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि ।
 एवा मे वरणो मणिः कीर्ति भूति नि यच्छतु
 तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २४ ॥
 यथा देवेष्वमृतं यथैषु सुख्यमाहितम् ।
 एवा मे वरणो मणिः कीर्ति भूति नि यच्छतु
 तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २५ ॥
 ॥ २३३ ॥ (अथर्वं १०।६।१-३५)
 बृहस्पति । फालमणि, वनस्पति, ३ आपः (मणिबन्धनम्) ।
 अनुष्टुप्, १, ४, २१ गायत्री; ५ पदपदा जगती; ६ सप्तपदा
 विराट् शकरी; ७-१० त्र्यवसाना अष्टपदाऽष्टि- (१० नवपदा
 भृति), ११, २०, २३-२७ पद्योपलक्षिता; १२-१७ त्र्यव-
 साना पद्यपदा शकरी, १९ त्र्यवसाना पद्यपदा जगती, ३५ पद्य-
 पदा त्र्यनुष्टुप्गमि जगती ।
 यत्प्राप्तयोर्धार्तृण्यस्य दुर्हादौ द्विपतः शिरः ।
 धर्षिं घृष्टाम्योजसा ॥ १ ॥

वर्म महाभयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति ।
 पूर्णो मन्वेन मार्गमद् रसेन सह वर्चसा ॥ २ ॥
 यत् त्वां शिषः परार्थधीत् तथा दस्तेन वास्या ।
 आपस्त्वा तसांज्जीवलाः पुनस्तु शुचयः शुचिम् ३
 हिरण्यमग्नयं मणिः ध्रुवां यशं महो दधत् ।
 गृहे वसतु नौतिथिः ॥ ४ ॥
 तस्मै घृतं सुरां मध्यममघ्नं क्षदामहे ।
 स नः पितेवं पुत्रेभ्यः श्रेयः श्रेयाश्चिकित्सतु
 भूयोभ्यः श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरत्यं ॥ ५ ॥
 यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं
 फालं घृतश्रुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
 तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्य
 भूयोभ्यः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ ६ ॥
 यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं
 फालं घृतश्रुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
 तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतोजसे वीर्याय कम् ।
 सो अस्मै बलमिद् दुहे
 भूयोभ्यः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ ७ ॥
 यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं
 फालं घृतश्रुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
 तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे ।
 सो अस्मै वर्च इद् दुहे
 भूयोभ्यः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ ८ ॥
 यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं
 फालं घृतश्रुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
 तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः ।
 सो अस्मै भूतिमिद् दुहे
 भूयोभ्यः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ ९ ॥
 (२८९)

यमर्वणाद् बृहस्पतिर्मणिं
 फालं घृतञ्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
 तं विभ्रतन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोऽजयद्
 दानवानां हिरण्ययाः ।
 सो अस्मै श्रियमिद् दुहे
 भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १० ॥
 यमर्वणाद् बृहस्पति—र्वाताय मणिमाशये ।
 सो अस्मै वाजिनं दुहे
 भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ ११ ॥
 यमर्वणाद् बृहस्पति—र्वाताय मणिमाशये ।
 तेनेमां मणिनां कृपि—मृथिनांविभि रक्षतः ।
 स मिपग्भ्यां महौ दुहे
 भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १२ ॥
 यमर्वणाद् बृहस्पति—र्वाताय मणिमाशये ।
 तं विभ्रत् सविता मणिं तेनेदमजयत् स्वः ।
 सो अस्मै सुनृतां दुहे
 भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १३ ॥
 यमर्वणाद् बृहस्पति—र्वाताय मणिमाशये ।
 तमापो विभ्रतीमणिं सदा धावन्त्याक्षिताः ।
 स आभ्योऽमृतमिद् दुहे
 भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १४ ॥
 यमर्वणाद् बृहस्पति—र्वाताय मणिमाशये ।
 तं राजा वर्णेणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवर्म ।
 सो अस्मै सत्यमिद् दुहे
 भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १५ ॥
 यमर्वणाद् बृहस्पति—र्वाताय मणिमाशये ।
 तं देवा विभ्रतो मणिं सर्वोल्लोकान् युधाजयन् ।
 स रभ्यो जितिमिद् दुहे
 भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १६ ॥
 यमर्वणाद् बृहस्पति—र्वाताय मणिमाशये ।
 तमिमं देवतां मणिं प्रत्यमुञ्चन्त शंभुवर्म ।

स आभ्यो विश्वमिद् दुहे
 भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १७ ॥
 ऋतुवस्तमवधत्ता—तवास्तमवधत् ।
 संवत्सरस्तं वद्भ्या सर्वं भूतं वि रक्षति ॥ १८ ॥
 अन्तर्देशा अवधत्त प्रदिशस्तमवधत्त ।
 प्रजापतिसृष्टो मणिद्विपतो मेऽधरौ अकः ॥ १९ ॥
 अर्थवाणो अवधत्ताथर्वणा अवधत्त ।
 तैर्मदिनो अहिरसो दस्यूनां
 विभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ २० ॥
 तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्यकल्पयत् ।
 तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ २१ ॥
 यमर्वणाद् बृहस्पति—द्वेभ्यो असुरक्षितिम् ।
 स मायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा ॥ २२ ॥
 यमर्वणाद् बृहस्पति—द्वेभ्यो असुरक्षितिम् ।
 स मायं मणिरागमत्
 सह गोभिरजाविभिरत्रेन प्रजया सह ॥ २३ ॥
 यमर्वणाद् बृहस्पति—द्वेभ्यो असुरक्षितिम् ।
 स मायं मणिरागमत्
 सह ग्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह ॥ २४ ॥
 यमर्वणाद् बृहस्पति—द्वेभ्यो असुरक्षितिम् ।
 स मायं मणिरागमत्
 मर्षोद्युतस्य धारया कालालेन मणिः सह ॥ २५ ॥
 यमर्वणाद् बृहस्पति—द्वेभ्यो असुरक्षितिम् ।
 स मायं मणिरागमद्
 ऊर्जया पर्यसा सह द्रविणेन श्रिया सह ॥ २६ ॥
 यमर्वणाद् बृहस्पति—द्वेभ्यो असुरक्षितिम् ।
 स मायं मणिरागमत्
 तेजसा त्विष्या सह यशसा क्रीर्या सह ॥ २७ ॥
 यमर्वणाद् बृहस्पति—द्वेभ्यो असुरक्षितिम् ।
 स मायं मणिरागमन् सर्वोभिर्भूतिभिः सह ॥ २८ ॥

तस्मिन् देवतां मणिं मह्यं ददतु पुष्टये ।
 अस्मिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदर्शनं मणिम् ॥ २९ ॥
 ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम् ।
 असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेऽर्धरां अकः ३०
 उत्तरं द्विपतो मामयं मणिः कृणोतु देवजाः ।
 यस्य लोका इमे त्रयः पर्यां दुग्धमुपासते ।
 स मायमधि रोहतु मणिः श्रेष्ठयाय मूर्धतः ३१
 यं देवाः पितरो मनुष्याः उपजीवन्ति सर्वदा ।
 स मायमधि रोहतु मणिः श्रेष्ठयाय मूर्धतः ३२
 यथा वीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति ।
 एवा मयि प्रजा पशवोऽश्वमनुं वि रोहतु ३३
 यस्यै त्वा यश्ववर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम् ।
 तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रेष्ठयाय जिन्वतात् ३४
 एतस्मिन् समहितं
 जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः ।
 तस्मिन् विदेम सुमति स्वस्ति प्रजां चक्षुः
 पशन्समिद्धे जातयेदसि ब्रह्मणा ॥ ३५ ॥
 ॥ ३३४ ॥ (अथर्व० १९।१८।१-१०)
 ऋद्धा (सपत्नउपहासः) । दर्भमणि. मन्त्रोपास । अत्रुष्ट्व ।
 इमं यज्जामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे ।
 इमं सपत्नदर्शनं द्विपतस्पर्शनं दृढः ॥ १ ॥
 द्विपतस्तापयन् दृढः शत्रूणां तापयन् मनः ।
 दुर्हादः मर्थास्त्र्यं दर्भं धमं र्वाभित्संतापयन् २
 धमं र्वाभित्सपन् दर्भं द्विपतो नितपन् मणे ।
 दृढः सपत्नानां गिन्दी—ग्रद इय विरुजं बलम् ३
 गिन्दि दर्भं सपत्नानां हृदयं द्विपतां मणे ।
 उद्यन् स्वर्गमिय भूम्याः निरं एषां वि पातय ४
 गिन्दि दर्भं सपत्नान् मे गिन्दि मे पृतनायतः ।
 गिन्दि मे सर्वान् दुर्हादो
 गिन्दि मे द्विपतो मणे ॥ ५ ॥

छिन्दि दर्भं सपत्नान् मे छिन्दि मे पृतनायतः ।
 छिन्दि मे सर्वान् दुर्हादो
 छिन्दि मे द्विपतो मणे ॥ ६ ॥
 वृश्च दर्भं सपत्नान् मे वृश्च मे पृतनायतः ।
 वृश्च मे सर्वान् दुर्हादो वृश्च मे द्विपतो मणे ७
 कृन्त दर्भं सपत्नान् मे कृन्त मे पृतनायतः ।
 कृन्त मे सर्वान् दुर्हादो कृन्त मे द्विपतो मणे ८
 पिश दर्भं सपत्नान् मे पिश मे पृतनायतः ।
 पिश मे सर्वान् दुर्हादो पिश मे द्विपतो मणे ९
 विष्यं दर्भं सपत्नान् मे विष्यं मे पृतनायतः ।
 विष्यं मे सर्वान् दुर्हादो
 विष्यं मे द्विपतो मणे ॥ १० ॥

॥ १३५ ॥ (अथर्व० १९।१९।१-९)

ब्रह्मा । दर्भमणिः । अत्रुष्ट्व ।

निक्षं दर्भं सपत्नान् मे निक्षं मे पृतनायतः ।
 निक्षं मे सर्वान् दुर्हादो निक्षं मे द्विपतो मणे १
 तुन्दि दर्भं सपत्नान् मे तुन्दि मे पृतनायतः ।
 तुन्दि मे सर्वान् दुर्हादो तुन्दि मे द्विपतो मणे २
 रुन्दि दर्भं सपत्नान् मे रुन्दि मे पृतनायतः ।
 रुन्दि मे सर्वान् दुर्हादो
 रुन्दि मे द्विपतो मणे ॥ ३ ॥
 मूण दर्भं सपत्नान् मे मूण मे पृतनायतः ।
 मूण मे सर्वान् दुर्हादो मूण मे द्विपतो मणे ४
 मर्धं दर्भं सपत्नान् मे मर्धं मे पृतनायतः ।
 मर्धं मे सर्वान् दुर्हादो मर्धं मे द्विपतो मणे ५
 पिण्डिदर्भं सपत्नान् मे पिण्डिदर्भं मे पृतनायतः ।
 पिण्डिदर्भं मे सर्वान् दुर्हादो
 पिण्डिदर्भं मे द्विपतो मणे ॥ ६ ॥
 भोर्षं दर्भं सपत्नान् मे भोर्षं मे पृतनायतः ।
 भोर्षं मे सर्वान् दुर्हादो भोर्षं मे द्विपतो मणे ७
 दर्भं दर्भं सपत्नान् मे दर्भं मे पृतनायतः ।
 दर्भं मे सर्वान् दुर्हादो दर्भं मे द्विपतो मणे ८

जहिर्दर्मसपत्नान् मे जहि मे पृतनापतः ।
जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विपतो मणे ९

॥ १३६ ॥ (अथर्वं ११।१०।१-५)

प्रभा । दर्शमणिः । अनुष्टुप् ।

यत् ते दर्म जराभृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते ।
तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नीं जहि वीर्यैः ॥ १ ॥
शतं ते दर्म वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते ।

तमसै विश्वे त्वां देवा जरसे भतेवा अद्भुः ॥२॥
त्वामाहुर्देववर्मं त्वां दर्मं ब्रह्मणस्पतिम् ।

त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्मं त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥ ३ ॥
सपत्नक्षयणं दर्मं द्विपतस्तपनं हृदः ।

मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनुपानं कृणोमि ते ॥ ४ ॥
यत् संमुद्रो अम्यकन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।

ततो हिष्णययो विन्दुस्ततो द्रुमो अजायत ॥५॥
॥ १३७ ॥ (अथर्वं ११।३।१-१४)

सविता (पुष्टिकापः) । औदुम्बरमणिः । अनुष्टुप् ; ५, १२
त्रिष्टुप् ; ६ विराट् प्रस्तापञ्चिकः ; ११, १३ पञ्चमदा चकरी ;
१४ विराडास्त्रापञ्चिकः ।

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसां
पशानां सर्वेषां स्फूर्ति गोष्ठे मे सविता करत् १

यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत् ।
औदुम्बरो वृषा मणिः स मां सृजतु पुष्टया २

कृतीपिणो फलवती स्वधामिरी च नो गृहे ।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥३॥

यद् द्विपाश्च चतुष्पाश्च यान्यत्रानि ये रसाः ।
गृहेऽहं त्वेषां भूमानं विश्वशौदुम्बरं मणिम् ॥४॥

पुष्टिं पशूनां परि जप्रभाहं
चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्याम् ।

पर्यः पशूनां रसमोपधीनां
गृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥ ५ ॥

अहं पशूनामधिपा असानि
मरियं पुष्टं पुष्टपतिदधातु ।

महामौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥ ६ ॥

उप मौदुम्बरो मणिः प्रजयां च धनेन च ।
इन्द्रेण जिन्वितो मणिः—रा मांगस्तह वर्चसा ७

देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये ।
पशोरर्षस्य भूमानं गवां स्फूर्ति नि यच्छतु ८

यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्टया सह जमिपे ।
पृथा धनस्य मे स्फूर्ति—मा दधातु सरस्वती ९

आ मे धनं सरस्वती पर्यस्फूर्ति च धान्यम् ।
सिनीवाल्युपां वहा—द्वयं चौदुम्बरो मणिः ॥१०॥

त्वं मणीनामधिपा वृषांसि
त्वयिं पुष्टं पुष्टपतिर्जजान ।

त्वयोमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः
स त्वमस्तत् संहस्वारादरातिममति क्षुधं च ॥११॥

ग्रामणीरसि ग्रामणोस्तथाय
अभिपिक्लोऽमि मां सिञ्च वर्चसा ।

तेजोऽसि तेजो मरियं धारय
अधि रायिरसि रयिं मे धेहि ॥ १२ ॥

पुष्टिरसि पुष्टया मा समङ्ग्धि
गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु ।

औदुम्बरः स त्वमस्मानुं धेहि
रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ ।

रायस्पोपायं प्रति मुञ्जे अहं त्वाम् ॥ १३ ॥
अथमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीरायं कथ्यते ।

सः नः सानि मधुमतीं कृणोतु
रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् ॥ १४ ॥

॥ १३८ ॥ (अथर्वं ११।३।१-१०)

अहिराः । वनस्पतिः, शिमोष्ठाः (अश्विभमणिः) । अनुष्टुप् ।

जङ्घिडोऽसि जङ्घिडो राक्षतासि जङ्घिडः ।
द्विपाश्चतुष्पादस्माकं सर्वे रक्षतु जाटिगडः ॥ १ ॥

या गृहस्थंक्षिपञ्जारीः शतं हृत्याहृतश्च ये ।
सर्वान् विनक्तु तेजसो—ऽरसां जङ्घिडस्करत् ॥२॥

अरुसं कृत्रिमं नाद—मरुताः सुप्त विभ्रंसः ।
 अपेतो जङ्घिडामति—मिपुमस्तेव शातय ॥ ३ ॥
 कृत्यादूर्पण एवाय—मर्यो अरातिदूर्पणः ।
 अयो सहैस्वान् जङ्घिडः प्र ण आर्युपि तारिपत् ४
 स जङ्घिडस्य महिमा परि णः पातु विद्वतः ।
 विष्कन्धे येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ॥ ५ ॥
 त्रिपूर्वा देवा अंजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि ।
 तमु त्वाङ्गिर इति ब्राह्मणाः पूर्या विदुः ॥ ६ ॥
 न न्या पूर्वा ओर्षधयो न त्वा तरन्ति या नवाः ।
 वियाध उग्रो जङ्घिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ ७ ॥
 अयोपदान भगवो जङ्घिडामितवीर्य ।
 पुरा तं उग्रा ग्रंसत् उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥ ८ ॥
 उग्र इत् तं वनस्पत इन्द्रं ओजमानमा दधौ ।
 अमीवाः सर्वोश्चातयं जहि रक्षोस्योपधे ॥ ९ ॥
 आदासीकं विशरीकं यत्सासं पृष्टवामयम् ।
 तन्मानं विश्वशास्त्रं—मरुसां जङ्घिडस्करत् ॥ १० ॥

॥ ४३९ ॥ (अथर्व० १९।३६।१-५)

अङ्घिडः । वनस्पति (जङ्घिडः) । अनुष्टुप् । ३ पद्यपदाः ।
 ✕ निचुर विष्टुप् ।

इन्द्रस्य नामं गृह्णन् ऋषयो जङ्घिडं दंडुः ।
 देवा यं चक्रुर्भोज—मर्ये विष्कन्धदूर्पणम् ॥ १ ॥
 य नो रक्षतु जङ्घिडो धनपातो धनेय ।
 देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणंमरानिद्रम् ॥ २ ॥
 दुर्गादेः संगेरे चतुः पापृष्टव्यांनमार्गमम् ।
 तांरव्यं संदग्रयशो प्रनीयोधेने नाशय
 परिपाणोऽसि जङ्घिडः ॥ ३ ॥
 परि मा द्विषः परि मा पृथिव्याः ।
 परिमर्तराणाम् परि मा धीमन्त्रयोः ।
 परि मा मृतान् परि मोल अघ्याम्
 द्विदोर्दितां जङ्घिडः परिपुमान् ॥ ४ ॥

य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः ।
 सर्वास्तान् विश्वभेपजो—ऽरुसां जङ्घिडस्करत् ॥ ५ ॥

॥ ४४० ॥ (अथर्व० १९।३६।१-६)

ब्रह्मा । शतवारो मणिः । अनुष्टुप् ।

शतवारो अनीनशद् यश्मान् रक्षांसि तेजसा ।
 आरोहन् वर्षसा सह मणिर्दुर्णाम्चार्तनः ॥ १ ॥
 शृङ्गाभ्यां रक्षो लुदते मूलैर्न यातुघ्नान्युः ।
 मध्येन यश्मं वाधते नैनं पाप्मार्ति तत्रति ॥ २ ॥
 ये यश्मासो अर्भका महान्तो ये च शधिनः ।
 सर्वा दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥ ३ ॥
 शतं वीरानंजनयच्छतं यश्मानर्पावपत् ।
 दुर्णासुः सर्वांन् हत्वा—व रक्षांसि धूनुते ॥ ४ ॥
 हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शतवारो अयं मणिः ।
 दुर्णासुः सर्वास्तुड्हुत्वा—व रक्षांस्यकमीत् ॥ ५ ॥
 शतमहं दुर्णासूनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् ।
 शतं शश्वन्वर्तानां शतवारिण वारये ॥ ६ ॥

॥ ४४१ ॥ (अथर्व० १९।४६।१-७)

प्रजापतिः । अस्तुतमणिः । त्रिष्टुप् । १ पद्यपदा उद्योतिष्मती
 त्रिष्टुप् ; २ पद्यपदा मुक्तिकशकरी ; ३, ७ पद्यपदा पथ्या-
 पथ्याः ; ४ पद्यपदा ; ५ पद्यपदा अतिशकरी ; ६
 पद्यपदोष्णिगमर्भो विराड्जगती ।

प्रजापतिष्टया वध्नात् प्रथममस्त्वतं वीर्याय कम् ।
 तत् तं यन्नाभ्यायुषं धर्षसे भोजसे च
 यत्वाय चास्त्वतस्त्वाभि रक्षतु ॥ १ ॥
 उभयोस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्त्वतेमं
 मा त्वा दग्न् पणयो यातुधानाः ।
 इन्द्रं इव दस्युनयं धूनुष्य वृतन्यतः
 सर्वांलपुन पि दंस्वास्त्वतस्त्वाभि रक्षतु ॥ २ ॥
 शतं च न प्रदरेन्तो निगन्तो न तस्मिन्ने ।
 तस्मिन्निन्द्रः पथेदथ चतुः
 प्राणमथो यत्नमन्वतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो
यो देवानामधि राजो वभूर्व ।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वे
अस्तृतस्त्वाभि रक्षतु

॥ ४ ॥

अस्मिन् मणायिकेशतं वीर्याणि
सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तते ।
व्याघ्रः शत्रूनाभि तिष्ठ सर्वान्
यस्त्वा पृथुन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ५

घृतादुहृतो मधुमान् पर्यस्वान्
सहस्रप्राणः शतयोर्निर्वयोधाः ।
शंभुश्च मयोभूध्वोजैस्वांश्च
पर्यस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु

॥ ६ ॥

यथा त्वमुत्तरोऽसौ असपन्नः सपन्नहा ।
सज्जातानामसद् वशी
तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु

॥ ७ ॥

अरिघनाशनम् ।

॥ २४१ ॥ (अथर्वं ६।२७।१-३)

मृगुः । यमः, निर्ऋतिः (अरिष्टक्षयणम्) । जगती, त्रिष्टुप् ।

देवाः कपोत इपितो यदिच्छन्
दूतो निर्ऋत्या इदमजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृण्वाम निष्कृतिं
शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे

॥ १ ॥

शिवः कपोत इपितो नो अस्तु
अनागा देवाः शकुनो गृहं नः ।
अशिहिं चिप्रो जुपतां हविर्नः
परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु

॥ २ ॥

हेतिः पक्षिणी न दभायस्मान्
आप्री पदं कृणुते अग्निधाने ।
शिवो गोभ्य उत पुक्षेभ्यो नो अस्तु
मा नो देवा इह हिंसीत् कपोतः

॥ ३ ॥

॥ २४३ ॥ (अथर्वं ६।२८।१-२)

मृगुः । यमः, निर्ऋतिः (अरिष्टक्षयणम्) । १ त्रिष्टुप्,
२ अनुष्टुप्, ३ जगती ।

श्रुचा कपोतै लुदत मृणोदं
इपं मर्दन्तुः परि गां नयामः ।
संलोभयन्तो दुरिता पदानि
दित्वा न ऊर्जे प्र पदान् पथिष्ठः

॥ १ ॥

परिमेतुं श्रिमर्षत परिमे गार्मनेपत ।
देवेष्वकृत शत्रुः क इमां आ दधर्षति

॥ २ ॥

यः प्रथमः प्रवर्तमाससादं
यद्भुभ्यः पन्थामनुपस्पशानः ।
योऽस्येदो द्विपदे यश्चतुष्पदः
तस्य यमाय नमो अस्तु मूल्ये

॥ ३ ॥

॥ २४४ ॥ (अथर्वं ६।२९।१-३)

मृगुः । यमः, निर्ऋतिः (अरिष्टक्षयणम्) । (वृहती) १-२
विाणाम गायत्री, ३ ऋक्शाना सप्तपदा विराहष्टिः ।

अमून् हेतिः पतत्रिणी न्येतु
यदुल्लको वर्दति मोघमेतत् ।
यद् वा कपोतः पदमग्नौ कृणोति

॥ १ ॥

यौ ते दूतौ निर्ऋत इदमेतो
अप्रहितौ प्रहितौ वा गृहं नः ।
कपोतोलुकाभ्यामपदं तदस्तु

॥ २ ॥

अवैरहत्यायेदमा पपत्यात्
सुवीरताया इदमा संसघात् ।
पराडेव परा वद् पराचीमनु संवर्तम् ।
यथा यमस्य त्वा गृहेऽरसं प्रतिचारकशान्

॥ ३ ॥

आमर्कं प्रतिचारकशान्
॥ २४५ ॥ (अथर्वं ६।२९।१-३)
अथर्वं । चन्द्रमः (अरिष्टक्षयणम्) । १ मुरिक्, २ अनुष्टुप्,
३ प्रस्तावपङ्क्तिः ।

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूताव्चारकशान् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेनो ते हविषा विधेम १

अरसं कृत्रिमं नाद-मरसाः सप्त विस्त्रसः ।
 अपेतो जङ्घिडामति-मिपुमस्तैव शातय ॥ ३ ॥
 कृत्यादूर्पण एवाय-मयो अरातिदूर्पणः ।
 अथो सहैस्वान् जङ्घिडः प्र ण आर्युपि तारिपत् ४
 स जङ्घिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।
 विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज्ज् ओजसा ॥ ५ ॥
 त्रिपूर्वा देवा अजनयन् निर्घृते भूम्यामधि ।
 तमु त्वाङ्घ्रिगु इति ब्राह्मणाः पुढ्या विदुः ॥ ६ ॥
 न त्वा पूर्वा ओपधयो न त्वा तरन्ति या नर्वाः ।
 विद्याध उग्रो जङ्घिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ ७ ॥
 अयौपदान भगवो जङ्घिडामितवीर्य ।
 पुरा त उग्रा प्रसत् उपेन्द्रो वीर्यो ददौ ॥ ८ ॥
 उग्र इत् त वनस्पत इन्द्र ओजमानमा दधौ ।
 अर्मावाः सर्वाश्चातयं जहि रक्षास्थोपधे ॥ ९ ॥
 आशरीकं विशरीकं वलासं पृष्णामयम् ।
 तन्मानं विश्वशारद-मरसां जङ्घिडस्करत् ॥ १० ॥

॥ २३९ ॥ (अथर्व० १९।३।११-४)

अङ्घ्रिः । वनस्पति (जङ्घिडः) । अनुष्टुप् । ३ पद्यपदाङ्कः ;
 ४ निचुर त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य नाम गृहन्त ऋषयो जङ्घिडं दंतुः ।
 देवा यं चक्रुर्भेषज-मयं विष्कन्धदूर्पणम् ॥ १ ॥
 स नो रक्षतु जङ्घिडो धनपालो धनेव ।
 देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् ॥ २ ॥
 दुर्दंतुः संयोर् चक्रुः पापकृत्वानामार्गमम् ।
 तांस्वयं संदध्चक्षो प्रतीयोधेनं नाशय
 परिपाणोऽसि जङ्घिडः ॥ ३ ॥
 परि मा द्विपः परि मा पृथिन्याः
 पर्यन्तारिक्षात् परि मा धोरुद्रयः ।
 परि मा भूतान् परि मोत भव्याद्
 द्विशोदिशो जङ्घिडः पार्यस्मान् ॥ ४ ॥

य ऋष्णयो देवकृता य उतो वयुतेऽन्यः ।
 सर्वास्तान् विश्वभेषजो-ऽरसां जङ्घिडस्करत् ॥ ५ ॥

॥ १४० ॥ (अथर्व० १९।३।१२-६)

ब्रह्मा । शातवारो मणिः । अनुष्टुप् ।

शतवारो अनीनशद् यश्मान् रक्षांसि तेजसा ।
 आरोहन् वचसा सह मणिर्दुर्णामचार्तनः ॥ १ ॥
 शृङ्गाभ्यां रक्षां नुदते मूलैर्न यातुधान्यः ।
 मध्येन यश्मं वाधते नैनं पाप्मातिं तत्रति ॥ २ ॥
 ये यश्मांसो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः ।
 सर्वा दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥ ३ ॥
 शतं वीरानंजनय-च्छतं यश्मानपावपत् ।
 दुर्णांसि सर्वांन् हत्वा-व रक्षांसि ध्रुवते ॥ ४ ॥
 हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः ।
 दुर्णांसि सर्वांस्तुड्ढ्वा-व रक्षांस्यकर्मव ॥ ५ ॥
 शतमहं दुर्णांसीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् ।
 शतं शश्वन्वतीनां शतवारैण वारये ॥ ६ ॥

॥ २४२ ॥ (अथर्व० १९।४।१-७)

प्रजापतिः । अस्तुतमणिः । त्रिष्टुप् । १ पद्यपदा ज्योतिष्मती
 त्रिष्टुप् ; २ पद्यपदा सुरिकशकरी ; ३, ७ पद्यपदा पद्या-
 पङ्क्तिः ; ४ चतुष्पदा ; ५ पञ्चपदा अतिशकरी ; ६
 पञ्चपदोष्णिगर्गां विराड्जगती ।

प्रजापतिपूर्वा यध्नात् प्रथममस्तुतं वीर्यायु कम् ।
 तत् तै बध्नाम्यायुषे वचसे ओजसे च
 बलाय चास्तुतस्व्याभि रक्षतु ॥ १ ॥
 ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तुतैमं
 मा त्वा दमन् पुण्यो यातुधानाः ।
 इन्द्र इव दस्युनर्व ध्रुव्य घृतन्यतः
 सर्वांश्चक्रुन् वि पंढस्वास्तुतस्व्याभि रक्षतु ॥ २ ॥
 शतं च न प्रहरन्तो निम्नन्तो न तस्तिरे ।
 तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्रुः
 प्राणमधो बलमस्तुतस्व्याभि रक्षतु ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य त्वा चर्मणा परि धापयामो
 यो देवानामधिरोजो वभूव ।
 पुनस्तथा देवाः प्र णयन्तु सर्वे
 अस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ४ ॥
 अस्मिन् मणावेकेशतं वीर्याणि
 सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते ।
 व्याघ्रः शत्रूनाभि तिष्ठ सर्वात्र
 यस्तवा पृथ्व्यादधरः सो अस्तवस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ५
 घृतादुल्लसो मधुमान् पर्यस्वान्
 सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः ।
 शंभुश्च मयोभूश्चोजैस्वाश्च
 पर्यस्वाश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ६ ॥
 यथा त्वमुत्तरोऽसौ असपन्नः संपत्नहा ।
 सज्जातानामसद् वृशी
 तथा त्वा सविता कर्दस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ७ ॥

अरिष्टनाशनम् ।

॥ १४१ ॥ (अथर्वं ६।१७।१-३)

मृगः । यमः, निश्चयः (अरिष्टक्षयणम्) । जगती, त्रिष्टुप् ।

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन्
 द्रुतो निश्कृत्या इदमाजगाम ।
 तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं
 शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥
 शिवः कपोत इषितो नो अस्तु
 अनागा देवाः शकूनो गृहं नः ।
 अशिक्षिं विप्रो जुपतां हविर्नः
 परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥ २ ॥
 हेतिः पक्षिणी न दमात्पस्मान्
 आष्टी पदं शृणुने अशिक्षाने ।
 शिवा गोभ्य उत पुदरेभ्यो नो अस्तु
 मा नो देवा इह हिंसीत् कपोतः ॥ ३ ॥

॥ १४२ ॥ (अथर्वं ६।१८।१-३)

मृगः । यमः, निश्चयः (अरिष्टक्षयणम्) । १ त्रिष्टुप्,
 २ अनुष्टुप्, ३ जगती ।

श्रुचा कपोतं लुदत प्रणोदं
 इपं मदन्तुः परि गां नयामः ।
 संलोभयन्तो दुरिता पदानि
 हित्वा न ऊर्जं प्र पंशत् पथिष्ठः ॥ १ ॥
 परीमेक्षुमिर्मपत् परीमे गार्मनेपत ।
 देवेष्वकत श्रवः क इमां आ दधर्षति ॥ २ ॥
 यः प्रथमः प्रवर्तमाससाद्
 बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानः ।
 योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः
 तस्मै यमाप्य नमो अस्तु मूल्यये ॥ ३ ॥

॥ १४४ ॥ (अथर्वं ६।१९।१-३)

मृगः । यमः, निश्चयः (अरिष्टक्षयणम्) । (वृहती) १-२
 विराण्याम गायत्री, ३ त्र्यवधाना सप्तपदा विराहाष्टिः ।

अमुन् हेतिः पतत्रिणी न्येऽनु
 यदुल्लको वदति मोघमेतत् ।
 यद् वा कपोतः पदमग्नौ कुणोति ॥ १ ॥
 यो ते द्रुतो निश्कृत इदमेतो
 अप्रहितौ प्रहितौ वा गृहं नः ।
 कपोतोल्लुकाभ्यामपदं तदस्तु ॥ २ ॥
 अचैरहत्यायेदमा पपत्यात्
 सुवीरताया इदमा संसचात् ।
 परां देव परां वद् परांचीमनु संयतम् ।
 यथा यमस्य त्वा गृहेऽसं प्रतिचारकशान्
 आभूकं प्रतिचारकशान् ॥ ३ ॥

॥ १४५ ॥ (अथर्वं ६।२०।१-३)

अपकां । चन्द्रमाः (अरिष्टक्षयणम्) । १ मुरिक्, २ अनुष्टुप्,
 ३ प्रत्यापश्चिकिः ।

अन्तरिक्षेण पतति विश्वां भूतावचारकशात् ।
 शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेनां ते ह्यिषां विधेम १

ये त्रयः कालकाञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः ।
 तान्त्सर्वानिह कृतये—ऽसा अरिष्टताये ॥ २ ॥
 अप्सु ते जन्म दिवि तै सधस्थं
 समुद्रे जन्तर्महिमा तै पृथिव्याम् ।
 शुनो दिव्यस्य यन्मह—स्तेनां ते हविषा विधेम ३
 कृत्याङ्गणम् ।

॥ २४६ ॥ (अथर्व० ५।१४।१-१३)

शुक्रः । वनस्पतिः, कृत्वापरिहरणम् । अनुष्टुप् । ३, ५, १२ भुरिक् ;
 ८ त्रिपदा विराट् ; १० निचृद्बृहती, ११ त्रिपदा सामी त्रिष्टुप् ;
 १३ खराट् ।

सुपूर्णस्त्वान्विन्दत् सूकरस्त्वान्नस्रा ।
 दिप्सोपधे त्वं दिप्सन्त—मवं कृत्याकृतं जहि ॥ १ ॥
 अवं जहि यातुधाना—नवं कृत्याकृतं जहि ।
 अयो यो अस्मान् दिप्सति तमु त्वं जहोपधे २
 रिदयस्येव परीशासं परिकृत्य परि त्वचः ।
 कृत्यां कृत्याकृतं देवा निष्कर्मिव प्रति मुञ्चत ३
 पुनः कृत्यां कृत्याकृतं हस्तगृह्य परां णय ।
 समश्रमस्मा आ भेहि यथा कृत्याकृतं हन्त ४
 कृत्याः सन्तु कृत्याकृतं शपथः शपथीयते ।
 सुयो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥ ५ ॥
 यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकारं प्राप्मने ।
 तामु तस्यै नयामस्य—श्रमिवाश्रामिधान्या ॥ ६ ॥
 यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता ।
 तां त्वा पुनर्णयामसी—न्द्रेण सयुजां वयम् ॥ ७ ॥
 अग्ने पृतनायाद् पृतनाः सहस्र ।
 पुनः कृत्यां कृत्याकृतं प्रतिहरणेन हरामसि ॥ ८ ॥
 कृतप्यधनि विप्यं तं यश्चकार तमिज्जहि ।
 न त्वामचक्रुपे ध्यं ध्याय सं शिशीमहि ॥ ९ ॥
 पुत्र इय पितरं गच्छ स्वज इवाभिष्टितो दश ।
 यन्धर्मियापत्रामो गच्छ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः १०
 उद्रेणीयं यारण्यमिस्त्रकन्दं मृगीयं ।
 कृत्या कृत्यां रमृच्छत ॥ ११ ॥

इष्या ऋजीयः पततु धार्यापृथिवी तं प्रति ।
 सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्या कृत्याकृतं पुनः १२
 अग्निरिवेतु प्रतिकूलं—मनुकूलमियोदकम् ।
 सुयो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः १३
 ॥ १४७ ॥ (अथर्व० ५।३।१-१९)

शुक्र । कृत्वाङ्गणम् (कृत्वापरिहरणम्) । अनुष्टुप् ;

११ पृथ्वीगर्भाऽनुष्टुप् ; १२ पृथ्याबृहती ।

यां तं चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये ।
 आमे मासे कृत्यां यां चक्रुः
 पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ १ ॥
 यां तं चक्रुः कृकृवाकां—यजे वा यां कुरीरिणि ।
 अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः
 पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ २ ॥
 यां तं चक्रुरेकशफे पशुनामुभयादति ।
 गर्दमे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ३
 यां तं चक्रुरमूलायां बलंगं वा नराच्याम् ।
 क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ४
 यां तं चक्रुर्गाईपत्ये पूर्वाद्रावुत दुश्चित्तः ।
 शालायां कृत्यां यां चक्रुः
 पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ ५ ॥
 यां तं चक्रुः समायां यां चक्रुरधिदेवने ।
 अक्षेपु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ६
 यां तं चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्यायुधे ।
 दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः
 पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ ७ ॥
 यां तं कृत्यां कूपेऽवदुधुः श्मशाने वा निचष्टुः ।
 सर्पनि कृत्यां यां चक्रुः
 पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ ८ ॥
 यां तं चक्रुः पुंरुयास्थे अग्नौ संकसुके च याम् ।
 श्लोकं निर्दाहं क्रुव्याद् पुनः प्रति हरामि ताम् ९
 अपथेना जमौरिषां तां पथेतः प्र हिंमसि ।
 अर्धीरो मयांधीरैभ्यः सं जमारचिस्त्वा ॥ १० ॥

यश्चकार न शाशक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
 चकार भद्रमस्मभ्यं—ममगो मगवद्भयः ॥ ११ ॥
 कृत्याकृतं चलगिनं मुलिनं शपयेय्यम् ।
 इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्घ्यत्वस्तया १२
 ॥ १४८ ॥ (अथर्व० १०।१।१-३२)

प्रत्यङ्गिरसः । कृत्वाद्यणम् । अनुष्टुप् ; १ महावृद्धती; २ विरा-
 ष्णाम गायत्री; ९ पय्यापङ्क्तिः; १३ उरोवृद्धती; १५ चतुष्पदा
 विराट्त्रगती, १७, २०, २४ प्रस्वारपङ्क्तिः (२० विराट्);
 १६, १८ त्रिष्टुप्; १९ चतुष्पदा जगती; २२ एकावसाना
 द्विपदाऽऽर्धो उष्णिक्, २३ त्रिपदा मुरिभिवपमा गायत्री,
 २८ त्रिपदा गायत्री; २९ मध्ये ज्योतिष्मती जगती;
 ३२ द्वयष्टुष्पदा पञ्चपदाऽतित्रगती ।

यां कल्पयन्ति बहवो वधूर्मिव
 विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सयः ।
 सारादेत्वर्षं जुदाम पनाम् ॥ १ ॥
 शीर्षेणवतीं नस्वतीं कुर्णिनीं
 कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
 सारादेत्वर्षं जुदाम पनाम् ॥ २ ॥
 शुद्धकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता ।
 जाया पत्यां नुचेयं कर्तारं चम्बुच्छतु ॥ ३ ॥
 अनयाहमोर्षया सर्वाः कृत्या अद्भुतपम् ।
 यां क्षेत्रे चक्रुर्वा गोपु यां वां ते पुरुषेषु ॥ ४ ॥
 मधर्मस्ववचकृते शपयः शपथीयते ।
 प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनन् ॥ ५ ॥
 प्रतीचीनं माङ्गिरसो—ऽप्यक्षो नः पुरोहितः ।
 प्रतीचीः कृत्या ब्राह्मत्या—मून कृत्याकृतो जदि ६
 यस्तुवावाच परेदीतिं प्रतिकूलमुदाय्यम् ।
 तं कृत्येऽग्निनिवर्तस्व मासानिच्छो अनामसः ७
 यस्ते परेषु संदधौ रयस्तेयमुर्धिया ।
 तं गच्छ तत्र तेऽयन्त—मर्जातस्तेऽप्यं जनः ॥ ८ ॥
 ये त्वां कृत्यालैभिरे विद्वला भभिचारिणः ।

शंभ्योऽदं कृत्यादूर्पणं प्रतिवर्त्म
 पुनःसरं तेन त्वा स्तपयामसि ॥ ९ ॥
 यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम ।
 अपतु सर्वं मत् प्रापं द्रविणं मोर्षं तिष्ठतु ॥ १० ॥
 यत् ते पितृभ्यो वदतो यज्ञे वा नाम जगुहुः ।
 संदेस्यात्तु सर्वस्मात् प्रापात्
 इमा मुञ्चन्तु त्वौपधीः ॥ ११ ॥
 देवैनसात् पित्र्यांन्नामग्राहात्
 संदेस्यादग्निनिष्कृतात् ।
 मुञ्चन्तु त्वा वीरुषो वीर्येण
 ब्रह्मण ऋग्निमः पर्यसु ऋषीणाम् ॥ १२ ॥
 यथा वार्तं च्यावयति भूम्यां
 रेणुमन्तरिक्षाच्चाध्रम् ।
 एवा मत् सर्वं दुर्मतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥ १३ ॥
 अपं कामं नानन्दती धिनद्धा गर्दमीयं ।
 कर्तृन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्याऽविता १४
 अयं पन्थाः कृत्येति त्वा नयामो
 अभिप्रहितान् प्रति त्वा प्र हिण्मः ।
 तेनाभि याहि भजत्यनस्वतीव
 वाहिनीं विश्वरूपा कुरुदिनीं ॥ १५ ॥
 पराक् ते ज्योतिरपर्यं ते अर्वाक्
 अन्यत्रासदयना कृणुष्व ।
 परेणेहि नयति नाव्याऽनु अतिं
 दुर्गाः स्रोत्या मा क्षभिष्टाः परेहि ॥ १६ ॥
 वार्तं इव वृक्षान् नि मृणोहि पादय
 मा गामभ्यं पुरुषमुच्छिष्य पयाम् ।
 कर्तृन् निवृत्त्येवः कृत्ये—ऽप्रजास्वार्थं बोधय १७
 यां तं बहिषि यां दमशाने
 क्षेत्रं कृत्यां बल्लगं वा निचच्छुः ।
 क्षमो वा त्वा गार्हपत्येऽग्निचेरः
 पाक् सन्तं धीरतरा अनागसम् ॥ १८ ॥

उपाहृतमर्तुवृद्धं निपातं
 वैरं त्सार्यन्वाधिदाम् कर्मम् ।
 तदेतु यत् आभृतं तत्रार्थं इव
 वि वर्तनां हन्तुं कृत्याकृतः प्रजाम् ॥ १९ ॥
 स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे
 विन्ना तै कृत्ये यतिधा परूपि ।
 उत्सिष्टैव परेहीतो ऽज्ञाते किमिहेच्छसि ॥ २० ॥
 ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कत्स्यामि निर्द्रव ।
 इन्द्राग्नी अस्मान रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती २१
 सोमो राजाधिपा भृङ्गिता च
 भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥ २२ ॥
 भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते ।
 दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥ २३ ॥
 यद्येयथं द्विपती चतुष्पदी
 कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
 सेतोऽशुभ्रपदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥ २४ ॥
 अभ्युक्ताका स्व्रं कृता सर्वे भरन्ती दुरितं परेहि ।
 जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥ २५ ॥
 परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्वस्वैव पदं नय ।
 मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति ॥ २६ ॥
 उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापरं इष्वां ।
 उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥ २७ ॥
 एतादि द्रुणु मे वचो ऽर्थेहि यत् प्रयथं ।
 यस्तथा चकार तं प्रति ॥ २८ ॥
 अनागोहृत्वा ये भीमा हृरये
 मा नो गामभ्यं पुरं वधीः ।
 यत्रयत्रासि निर्दिता तत्तस्त्वा
 उर्यापयामसि पूर्णाहृर्वापसी भय ॥ २९ ॥
 यत्रि स्थ तमसावृता जालेनाभिर्दिता इय ।
 सयोः संलुप्येतः कृत्याः
 पुनः वत्रे प्र दिग्मरि ॥ ३० ॥

कृत्याकृतो बलगिनो ऽभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।
 मृणीहि कृत्ये मोक्षिष्ठुः
 अमून कृत्याकृतो जहि ॥ ३१ ॥
 यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्पति
 रात्रिं जहात्युपसंश्च केतून् ।
 एवाहं सर्वं दुर्भूतं कत्रे कृत्याकृता
 कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥ ३२ ॥
 दस्युनाशनम् ।
 ॥ १४९ ॥ (अथर्वं २।१४।१-६)
 वातनः । शालामिदेवत्यं (दस्युनाशनम्) । अत्रुष्टुप्, २
 भुरिक्, ४ चपरिष्ठाद्विराड्बृहती ।
 निःसालां ध्रुणं धिपणं—मेकवाचां जिघत्स्वाम् ।
 सर्वाश्चण्डस्य नन्यो नारायामः सदान्वाः ॥ १ ॥
 निर्वो गोष्ठादंजामसि निरक्षाशिरुपानसात् ।
 निर्वो मशुन्धा दुहितरो गृहेभ्यश्चातयामहे ॥ २ ॥
 असौ यो अधंराद् गृहस्तत्र सन्वराय्यः ।
 तत्र सेदिन्युच्यत सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ३ ॥
 भूतपतिर्निरज—तिवन्द्रश्चेतः सदान्वाः ।
 गृहस्य युध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधि तिष्ठतु ४
 यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरुपेपिताः ।
 यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वाः ॥ ५ ॥
 परि धामान्यासा—माशुर्गाष्ठांमिवासरन् ।
 अजैयं सर्वांनान्जिन्वो नश्यतेतः सदान्वाः ॥ ६ ॥
 पापादिनाशनम् ।
 ॥ १५० ॥ (अथर्वं १।१०।१-४)
 अथर्वा । अशुरो वरुणः (पाश-विमोचनम्) त्रिष्टुप् ।
 ३ ककुम्मलानुष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।
 अयं देवानामसुरो वि राजति
 वशा दि सत्या वरुणस्य राज्ञः ।
 तत्स्पतिं वरुणाणां शारादान
 उग्रस्य मन्योरदिमं नयामि ॥ १ ॥

नमस्ते राजन् घटनास्तु मन्वये
विभ्वं हु प्र निविकैपे द्रुग्धम् ।

सहस्रमन्यान् प्र सुवामि साकं
शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥ २ ॥

यदुवकथानृतं जिह्वया वृजिनं यद्दु ।
रात्रस्त्या सत्यर्षेणो मुञ्चामि वरुणाद्बृहम् ॥ ३ ॥

मुञ्चामि त्वा वैश्वानरा दणधान्महत्स्परि ।
सजातानुद्ग्रेहा वंद ब्रह्म चार्यं चिकीहि नः ॥ ४ ॥

॥ २५१ ॥ (अथर्वं १।३।११-४)

महा । आशापालाः, [बासोपातिः] (पाद्यमोचनम्) ।
अवष्टुप्, १ विशद्विष्टुप् । ४ पराऽवष्टुप् विष्टुप् ।

आशानामाशापालेभ्यः—श्चतुर्भ्यो अमूर्तेभ्यः ।
इदं भूतस्यार्ष्यक्षेभ्यो विधेमं हविषा वयम् ॥ १ ॥

य आशानामाशापाला—श्चत्वारः स्यन् देवाः ।
ते नो निश्कृत्याः पार्श्वेभ्यो मुञ्चतांहंसोभंसः ॥ २ ॥

अर्धामस्ता हविषा यजामि
अर्धेणस्त्या घृतेन जुहोमि ।

य आशानामाशापालस्तुरीयो
देवः स नः सुभूतमेह वैश्वत् ॥ ३ ॥

स्यस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु
स्यस्ति गोभ्यो जगते पुर्वेभ्यः ।

विभ्वं सुभूतं सुविद्वं नो अस्तु
ज्योगेय ईशेभ्यः सूर्यम् ॥ ४ ॥

॥ २५२ ॥ (अथर्वं १।३।११-८)

सुभ्रित्वाः । १-८ आशापृषिवी, महा; २ अमि, आपः;
कोवषयः, घोमः; ३ वातः, दिष्; ४-८ वातपत्नीः,
सूर्यः, वरुण, निश्कृतिः (पाद्यमोचनम्) । १ विष्टुप्;
१ घमपशाऽधिः; १-५, ७-८ घमपदा वृतिः;
१ घमपशाऽधिः, ८ (१-२) द्वौ पादौ
उचिह्ये ।

धेत्रियात् त्वा निश्कृत्या जामिशांसाद्
द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् ।

अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि
शिवे ते घावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ १ ॥

शं तं अग्निः सहाश्रिरेस्तु
शं सोमः सहोर्पथोभिः ।

एवाहं त्वां धैत्रियाश्रिर्कृत्या जामिशांसाद्
द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् ॥ अना० ॥ २ ॥

शं तं वातो अन्तरिक्षे यथो धात्
शं तं भवन्तु प्रदिशाश्चतस्रः । एवाहं० । अना० ॥ ३ ॥

इमा या देवीः प्रदिशाश्चतस्रो
वातपत्नीरुभि सूर्यो विचष्टे । एवाहं० । अना० ॥ ४ ॥

तासु त्वान्तर्जरस्या दधामि
प्र यस्मं प्तु निश्कृतिः पराचैः । एवाहं० । अना० ५

अमुक्या यस्माद् दुरितादवृथाद्
द्रुहः पाशाद् ब्राह्मणोदमुक्याः । एवाहं० । अना० ६

अहा अरातिमविदः स्थोनमपि
अमूर्ते सुकृतस्य लोके । एवाहं० । अना० ॥ ७ ॥

सूर्यमृतं तमसो प्राह्या अर्धि
देवा मुञ्चन्तो अर्जुभिरेणसः ।

एवाहं त्वां धैत्रियाश्रिर्कृत्या जामिशांसाद्
द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् ।

अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि
शिवे ते घावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ ८ ॥

॥ २५३ ॥ (अथर्वं ६।११।११-३)

अथर्वो । अग्निः (पाद्यमोचनम्) विष्टुप् ।

मा ज्येष्ठं यधीदयमग्न एषां
मूल्यर्हणात् परि पाद्येनम् ।

स ब्राह्मः पाशान् वि चृतं प्रजानन्
तुभ्य देवा अनु जानन्तु विभ्ये ॥ १ ॥

उन्मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां
त्रयस्त्रिमिदत्सता येभिरासन् ।

स ब्राह्मः पाशान् वि चृतं प्रजानन्
पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सपरान् ॥ २ ॥

येभिः पाशैः परिविचो विमुञ्चो
 अङ्गैरङ्गु अपिंतु उत्सितश्च ।
 वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति
 भ्रूणमि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥ ३ ॥
 ॥ २५४ ॥ (अथर्व० ६।१११।१-३)

कौशिकः । वेधानरोऽमि । [आनुष्पम्] (पाशमोचनम्) ।
 त्रिष्टुप् ।

यद्दीव्यभ्रूणमहं कृणोमि
 अदास्यन्न उत सङ्गणामि ।
 वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ
 उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥ १ ॥
 वैश्वानराय प्रति वेदयामि
 यद्गुणं सङ्गरो देवतासु ।
 स एतान् पाशान् विचरतं वेदं सर्वान्
 अथ पुकेनं सृष्ट सं भवेम ॥ २ ॥
 वैश्वानरः पविता मां पुनातु
 यत् सङ्गरमभिधाव्याशाम् ।
 अनाजानुन् मनसा यार्चमानो
 यत् तत्रैवो अप तत् सुवामि ॥ ३ ॥
 ॥ २५५ ॥ (अथर्व० ७।८३।१-४)

शुन.शेषः । वरुणः (पाशमोचनम्) । १ अनुष्टुप् २ पथ्यापङ्क्तिः ;
 ३ त्रिष्टुप्, ४ इतीगमां त्रिष्टुप् ।

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः ।
 ततो धृतमनो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥ १ ॥
 धामनो धामनो राज प्रितो वरुण मुञ्च नः ।
 यदापो अण्ण्या इति वरुणेति
 यद्द्विम ततो वरुण मुञ्च नः ॥ २ ॥
 उद्दुत्तमं वरुण पाशोमसाद्
 अवापुमं वि मरुयमं श्रयाय ।
 अर्धा पुषमादित्य मते
 तयानामतो अर्दितये स्वाम ॥ ३ ॥

प्रासात् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान्
 य उन्नुमा अंध्रमा वाग्णया ये ।
 दुष्यन्त्यं दुरितं नि घ्यासाद्
 अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ ४ ॥
 ॥ २५६ ॥ (अथर्व० ७।७८।१-५)

अथर्वा । अमिः (मन्धमोचनम्) । १ परोष्णिप्, २ त्रिष्टुप् ।

वि ते मुञ्चामि रथानां वि योषुं वि नियोजनम् ।
 इहैव त्वमर्जन्न पथ्यसे ॥ १ ॥
 अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमसे
 युनर्जिम त्वा ब्रह्मणा देव्येन ।
 दीद्विह्युसभ्यं द्रविणेह भद्रं
 प्रेमं वोचो हविर्दा देवतासु ॥ २ ॥
 ॥ २५७ ॥ (अथर्व० ६।२५।१-३)

शुनःशेषः । मन्वादिनाशनम् । अनुष्टुप् ।

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अमि ।
 इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥ १ ॥
 सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति त्रैव्या अमि ।
 इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥ २ ॥
 नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अमि ।
 इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥ ३ ॥
 ॥ २५८ ॥ (अथर्व० ४।२३।१-७)

मृगारः । प्रवेता अमिः (पाप-मोचनम्) । त्रिष्टुप्, ३ पुरस्ता-
 उच्येतिःश्रमती, ४ अनुष्टुप्, ६ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

अग्नेर्मन्ये प्रथमस्य प्रचेतसुः
 पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते ।
 विशोविशः प्रविशित्वांसमीमहे
 स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ १ ॥
 यथा हृद्यं वहसि जातवेदो
 यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानम् ।
 एवा देवेभ्यः सुमति न मा वह
 स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ २ ॥
 (२७८१)

यार्मन्यामन्नपयुक्तं वहिष्ठं
 कर्मकर्मभ्रामगम् ।
 अग्निमीडि रक्षोद्वर्णं यन्नवृषं घृताहुतं
 स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ३ ॥
 सुजातं जातवेदस मग्निं वैश्वानरं विभुम् ।
 हृद्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ४ ॥
 येन ऋषयो घृलमर्चोतयन् युजा
 येनासुराणामयुवन्त मायाः ।
 येनाग्निना पूर्णानिन्द्रो जिगाय
 स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ५ ॥
 येन देवा अमृतमन्वाविन्दन्
 येनौपधीर्मधुमतीरकृण्वन् ।
 येन देवाः स्वराभरन्तस नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ६ ॥
 यस्येदं प्रतिशि यद् विरोचते
 यज्ञातं जनिद्व्यं च केवलम् ।
 स्तौम्यग्निं नायितो जोहवीमि
 स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ७ ॥

॥ २५९ ॥ (अथर्व० ४।२७।१-७)

मृगारः । इन्द्रः (पापमोचनम्) । त्रिष्टुप्, १ श्राकरी-
 गर्मां पुरःशक्वरी ।

इन्द्रस्य मन्महे द्वाश्वदिदस्य मन्महे
 वृषभ स्तोमा उप मेम आगुः ।
 यो दासुषः सुरतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः १
 म उग्नीणांमुद्रवाह्येषुः
 यो दानवानां घलमारुरोज ।
 येन जिताः सिन्धवो येन गावः
 स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ २ ॥
 यक्षपणिप्रो वृषभः स्वविद्
 यस्मै प्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम् ।
 यस्याभूरः सप्तहोता माद्विष्टः
 स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ३ ॥

यस्य वशासं ऋपमास उक्षणो
 यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वविद्वे ।
 यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः
 स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ४ ॥
 यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते
 यं हयन्त इयुमन्तं गविष्टौ ।
 यस्मिन्नकः दिश्रिये यस्मिन्नोजः
 स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ५ ॥
 यः प्रथमः कर्मरुत्याय जज्ञे
 यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुवृद्धम् ।
 येनोद्यतो वज्रोऽभ्यायताहि
 स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ६ ॥
 यः संग्रामान्नयति सं युधे वृशी
 यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि ।
 स्तौमीन्द्रं नायितो जोहवीमि
 स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ७ ॥

॥ २६० ॥ (अथर्व० ४।२५।१-७)

मृगारः । श्विता, वायुः (पापमोचनम्) । त्रिष्टुप्, १ अति-
 शक्वरी, ७ पथ्यावृहती ।

वायोः सवितुर्विदयानि मन्महे
 यावात्मन्वद् विदायो यौ च रक्षथः ।
 यौ विश्वस्य परिभू र्वभुवयुः
 तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ १ ॥
 ययोः संख्याता वरिमा पार्थिवानि
 याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे ।
 ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन
 तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ २ ॥
 तयं वृते नि धिरान्ते जनासः
 त्वस्युदिते प्रेरिते चित्रमानो ।
 युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथुः
 तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ ३ ॥

अपेतो यातो सविता च दुष्कृतं
अप रक्षांसि शिर्मिदां च सेधतम् ।

सं ह्युर्जयां सृजयः सं बलेन
तौ नो मुञ्चतमहंसः

॥ ४ ॥

रथि मे पोपे सवितोत प्रायुः
तनू दक्षमा सुवतां सुशेवम् ।

अयक्षमतांति मह इद घत्तं
तौ नो मुञ्चतमहंसः

॥ ५ ॥

प्र सुमतिं सधितर्वाय ऊतये
महस्वन्तं मत्सुरं मादयाथः ।

धर्वाग् धामस्य प्रयतो नि यञ्छतं
तौ नो मुञ्चतमहंसः

॥ ६ ॥

उप धेष्ठां न ज्ञाशिषो देवयोर्धामन्नस्थिरन् ।
स्नामि देवं सधितारं च यार्थं

तौ नो मुञ्चतमहंसः

॥ ७ ॥

॥ २६१ ॥ (अथर्व० ४।२६।१-७)

मृगाः । पावाशुषिषी (पापमोचनम्) । त्रिष्टुप्, १ अष्टि,
१-१ जगती, ७ द्वाह्वरगर्भातिमप्येगोतिः ।

द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने
ते नो मुञ्चतमहंसः

॥ ४ ॥

ये उच्छ्रियां विभ्रयो ये वनस्पतीन्
ययोर्वा विभ्र्या भुवनान्यन्तः ।

द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने
ते नो मुञ्चतमहंसः

॥ ५ ॥

ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन
याभ्यामृते न किं चन शक्नुवन्ति ।

द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने
ते नो मुञ्चतमहंसः

॥ ६ ॥

यन्मेदमभिशोचति येनयेन
या हृतं पौर्येयान्न दैवात् ।

स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोह्वीमि
ते नो मुञ्चतमहंसः

॥ ७ ॥

॥ २६१ ॥ (अथर्व० ४।२८।१-७)

मृगारोऽयर्वा वा । मवाद्यवौ इशे वा । (पापमोचनम्) ।
त्रिष्टुप्, १ अतिश्रागतगर्भा मुरिह् ।

ययोर्विधाद्यापपद्यते कञ्चनान्तर्देवेषु मानुषेषु ।
 यावस्वेषाथे० ।
 यः कृत्याकृन्मूलरुद् यातुधानो
 नि तस्मिन् धत्तं वज्रमग्नौ ।
 यावस्वेषाथे० । ॥ ६ ॥
 अधि नो द्यूतं पृतनासुधौ
 सं वज्रेण सृजतं यः किमीदी ।
 स्तौमि भवाश्वीं नाथितो जौहवीमि
 तौ नो मुञ्चतमहंसः ॥ ७ ॥
 ॥ २६७ ॥ (अथर्वं ४।१९।१-७)
 मृगारः । मित्रावरुणो (पापमोचनम्) । त्रिशू, ७
 षष्ठीगर्माऽतिव्रतौ ।
 मन्वे वा मित्रावरुणावृतावृथौ
 सचेतसौ द्रुहणो यौ नुदेथे ।
 प्र सत्यावानमवथो भरेषु
 तौ नो मुञ्चतमहंसः
 सचेतसौ द्रुहणो यौ नुदेथे
 प्र सत्यावानमवथो भरेषु ।
 यौ गच्छथो नृचक्षसो वधुणां सृतं
 तौ नो मुञ्चतमहंसः
 यावर्गिरसमथो यावर्गस्ति
 मित्रावरुणा जमदग्निमग्निम् ।
 यौ कृदपमवथो यौ वसिष्ठं
 तौ नो मुञ्चतमहंसः
 यौ द्यावाभ्यमवथो वधुयभं
 मित्रावरुणा पुरुमीढमग्निम् ।
 यौ विमदमवथः सप्तवाधिं
 तौ नो मुञ्चतमहंसः
 यौ भरद्वाजमवथो यौ गृथिष्ठिरं
 विभ्वामेतं वरण मित्र कुत्सेम् ।
 यौ कक्षीयन्तमवथः प्रोत कण्वं
 तौ नो मुञ्चतमहंसः

यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं
 मित्रावरुणावृथानो क्राव्यं यौ ।
 यौ गोर्तमवथयुः प्रोत मुह्लं
 तौ नो मुञ्चतमहंसः ॥ ६ ॥
 ययो रथः सत्यवर्तमर्जुरदिमः
 मिथुया चरन्तमग्नियार्तिं वृषयन् ।
 स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जौहवीमि
 तौ नो मुञ्चतमहंसः ॥ ७ ॥
 ॥ २६५ ॥ (अथर्वं ६।११।१-३)
 मृगा । विधेदेवाः (पापमोचनम्) । ऋष्यशृ ।
 यद् विद्वांसो यद्विद्वांसं पनांसि चक्रमा वृषम् ।
 युयं नस्तसान्मुञ्चत विधे देवाः सजोपसः ॥ १ ॥
 यदि जाप्रद् यदि स्वपत्रे न पत्नस्योऽकरम् ।
 भुतं मा तस्माद् मन्यं च द्रुषदादिव मुञ्चताम् २
 द्रुषदादिव मुमुचानः स्वित्तः स्नात्वा मलादिव ।
 पृतं पवित्रेणैवायं विधे शुभमन्तु मेनंसः ॥ ३ ॥
 ॥ २६६ ॥ (अथर्वं ७।११।१-२)
 प्रकृषः । सोमाह्वी (पापमोचनम्) । त्रिशू ।
 सोमारुद्रा चि वृहत् विपूर्वा
 अमीवा या नो गर्वमायिथेरा ।
 वार्धेयां दूरं निश्चीतिं परचैः
 कृतं चिदेतः प्र मुमृकमम्वन् ॥ १ ॥
 सोमारुद्रा युवमेतान्यम्वद्
 विभ्वां तनूपं भेवजानि धलन् ।
 अयं स्वतं मुञ्चन् यशो अर्धन्
 तनूपं यत् कृतमेतौ अन्वन् ॥ २ ॥
 ॥ २६७ ॥ (अथर्वं ७।११।१-३)
 यमः । शत्रुः, अन्तः, अन्तः (पापमोचनम्) । १ मुनि-
 कृतं चिदेतः प्र मुमृकमम्वन् ।
 इदं यद् कृतं मुञ्चन् यमिनिपयत्कृतं यत्
 अमीं मा तस्माद् मन्यं कदाद्
 इति यद् कृतं यमिनिपयत्कृतं यत्

॥ ५ ॥

इदं यत् कृष्णः शुकुनि—रवामृशभिर्भृते ते मुनेन ।
अग्निर्मा तस्मादेतसो गार्हपत्यः प्र मुञ्चतु ॥२॥

॥ २६८ ॥ (अथर्वं ११३।१-२३)

गन्तातिः । अग्निः । अग्नेः । (पापमोचनम्) । अगुष्टः ।
२३ पृथोगर्भः ।

अग्निं द्रुमो घनस्पती—नोपधीकृत् वीरुधः ।
इन्द्रं वृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्वहंसः ॥ १ ॥

द्रुमो राजानं वरुणं मिश्रं विष्णुमथो भर्गम् ।
अंशं विवस्वन्तं द्रुम—स्ते नो मुञ्चन्वहंसः ॥ २ ॥

द्रुमो देवं सवितारं धातारंमुत पूषणम् ।
त्वष्टारमग्रियं द्रुम—स्ते नो मुञ्चन्वहंसः ॥ ३ ॥

गन्धर्वाप्सरसो द्रुमो अश्विना ब्रह्माणस्पतिम् ।
अर्यमा नाम यो देव—स्ते नो मुञ्चन्वहंसः ॥ ४ ॥

अहोरात्रे इदं द्रुमः सूर्याचन्द्रमसांबुभा ।
विश्वानादित्यान् द्रुम—स्ते नो मुञ्चन्वहंसः ॥ ५ ॥

घातं द्रुमः पर्जन्य—मन्तरिक्षमथो दिशः ।
आशाश्च सर्वा द्रुम—स्ते नो मुञ्चन्वहंसः ॥ ६ ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्या—दहोरात्रे अथो उषाः ।
सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥ ७ ॥

पार्थिवा दिव्याः पशवं आरण्या उत ये मृगाः ।
शकुन्तान् पक्षिणो द्रुम—स्ते नो मुञ्चन्वहंसः ८

भवाशर्वाविदं द्रुमो रद्रं पशुपतिश्च यः ।
इपूर्वा र्पयां संविद्य ता नः सन्तु सदा शिवाः ९

दिवं द्रुमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो वेदान्ता—स्ते नो मुञ्चन्वहंसः १०

सप्तर्षीन् वा इदं द्रुमो—ऽपो देवीः प्रजापतिम् ।
पितृन् यमत्रेष्टान् द्रुम—स्ते नो मुञ्चन्वहंसः ११

ये देवा दिविपदो अन्तरिक्षसदश्च ये ।
पृथिव्यां शका ये धिता—स्ते नो मुञ्चन्वहंसः १२

आदित्या रुद्रा चस्यो द्विवि देवा अर्धवाणः ।
अङ्गिरसो मनीषिण—स्ते नो मुञ्चन्वहंसः ॥ १३ ॥

यत्तं द्रुमो यजमान—गृह्यः स्वामानि भेदजा ।
यजुषि होत्रां द्रुम—स्ते नो मुञ्चन्वहंसः ॥ १४ ॥

पञ्च राज्यानि वीरुधो सोमध्रष्टानि द्रुमः ।
द्रुमो भृशो ययः सह—स्ते नो मुञ्चन्वहंसः ॥ १५ ॥

धरायान् द्रुमो रक्षाभि
सर्पान् पुण्यजनान् पितृन् ।
मृत्यूनेकदातं द्रुम—स्ते नो मुञ्चन्वहंसः ॥ १६ ॥

श्रुतन् द्रुम श्रुतुपती—नातयानुत द्रायनान् ।
समाः संयत्तरान् मामां—स्ते नो मुञ्चन्वहंसः १७

एतं देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत ।
पुरस्तादुत्तराच्छुक्रा पिभ्ये देवाः समेत्य

ते नो मुञ्चन्वहंसः ॥ १८ ॥

विश्वान् देवानिदं द्रुमः सत्यसंधानृतावृधः ।
विश्वामिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्वहंसः १९

सर्वान् देवानिदं द्रुमः सत्यसंधानृतावृधः ।
सर्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्वहंसः ॥ २० ॥

भूतं द्रुमो भूतपतिं भूतानामुत यो वृशी ।
भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्वहंसः ॥ २१ ॥

या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशतैवः ।
संवत्सरस्य ये वष्ट्रा—स्ते नः सन्तु सदा शिवाः २२

यन्मातली रथक्रीत—ममृतं वेदं भेपजम् ।
तद्विद्रो अस्तु प्रावेशयत् तदापो दत्त भेपजम् २३

॥ २६९ ॥ (अथर्वं ४।३३।१-८; क्र० १।९।१-८)
अग्निः

ब्रह्मा । पाप्मनाशनोऽग्निः (पाप-नाशनम्) । गार्भो ।
अपं नः शोशुचद्वध—मग्ने शुकुन्ध्या इयिम् ।

अपं नः शोशुचद्वधम् ॥ १ ॥
सुक्षेत्रिया सुगातुया वंसूया च यजामहे ।

अपं नः शोशुचद्वधम् ॥ २ ॥
प्र यद् भविद्यैष एषां प्रास्माकांसश्च सूरयः ।

अपं नः शोशुचद्वधम् ॥ ३ ॥
(१९५४)

प्र यत् ते अग्ने सुरयो जार्येमहि प्र ते वयम् ।
 अर्प नः शोशुचदधम् ॥ ४ ॥
 प्र यद्ग्नोः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः ।
 अर्प नः शोशुचदधम् ॥ ५ ॥
 त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
 अर्प नः शोशुचदधम् ॥ ६ ॥
 द्विषो नो विश्वतोमुखा—ति न्नावेवं पारय ।
 अर्प नः शोशुचदधम् ॥ ७ ॥
 स नः सिन्धुमिव नावा—ति पर्पा स्वस्तये ।
 अर्प नः शोशुचदधम् ॥ ८ ॥
 ॥ २७० ॥ (अथर्व० ६।११३।१-३)

अथर्वा । पूषा (पापनाशनम्) । त्रिष्टुप्, ३ पङ्क्तिः ।

त्रिते देवा अमृतजैतदेनः
 अित पंनमनुष्येषु ममृजे ।
 ततो यदि त्वा आर्हिरानुशो
 तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥ १ ॥
 मरीचीधुमान् प्र विशानुं पाप्मन्
 उदारान् गच्छोत वा नीहारान् ।
 नदीनां फेनां अनु तान् धि नश्य
 भूणभि पूपन् दुरितानि मृक्ष्व ॥ २ ॥
 द्वादशधा निहितं त्रितस्या—पमृष्टं मनुष्यैनुसानि ।
 ततो यदि त्वा आर्हिरानुशो
 तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥ ३ ॥
 ॥ २७१ ॥ (अथर्व० ७।१११।१-२)

वरुणः । आपा, वरुणश्च (पापनाशनम्) । १ मुक्तिः,
 २ अनुष्टुप् ।

शुम्भनी द्यावापृथिवी अर्णितसुक्ष्मे महिद्यते ।
 आपः सप्त सुसुधुर्देवी—स्ता नो मुञ्चन्वंहसः ॥ १ ॥
 मुञ्चन्तु मा शपथ्याः—दयो वरुण्यादुत ।
 अथो यमस्य पद्वीशाद्
 विश्वंसाद् देवकिलिपात् ॥ २ ॥

(पापलक्षणनाशनम्)

॥ २७२ ॥ (अथर्व० ७।११५।१-३)
 ॥ २७३ ॥ (अथर्व० ६।२६।१-३)
 ब्रह्मा । पाप्मा (पापनाशनम्) । अनुष्टुप् ।
 अथ मा पाप्मन्सुज वृशी सन् मृडयासि नः ।
 आं मां मद्रस्य लोके पाप्मन् धेधाविहितम् ॥ १ ॥
 यो नः पाप्मन् न जहासि
 तसु त्वा जहिमो वयम् ।
 पथामनुं व्यावर्तने—न्य पाप्मानुं पद्यताम् ॥ २ ॥
 अय्यत्रासन्ग्युच्यत सहस्राक्षो अर्मत्यः ।
 यं हेपाम् तमृच्छतु यमुं द्विप्मस्तमिजाहि ॥ ३ ॥
 ॥ २७४ ॥ (अथर्व० ६।३७।१-३)

अथर्वा । (स्वस्वयपनकामः) । चन्द्रमाः (शपनाशनम्)
 अनुष्टुप् ।

उप प्रागात् सहस्राक्षो युक्त्या शपथो रथम् ।
 शतारमन्विच्छन् मम वृक इवाविमतो गृहम् ॥ १ ॥
 परि णो वृद्धिश्च शपथ हृदमग्निरेवा दर्हन् ।
 शतारमत्र नो जहि दिवो वृक्षमिवाशानिः ॥ २ ॥
 यो नः शपादशपतः शर्पतो यश्च नः शर्पात् ।
 शुने पेष्टमिवावशामं तं प्रत्यस्यामि मृत्यये ॥ ३ ॥

॥ २७५ ॥ (अथर्व० ७।५१।१)

बादरायणिः । अरिनाशनम् (शप-मोचनम्) । अनुष्टुप् ।
 यो नः शपादशपतः शर्पतो यश्च नः शर्पात् ।
 वृक्ष ईध विद्युतां हत आ मूलादनुं गुप्यतु ॥ १ ॥

॥ २७६ ॥ (अथर्व० ७।५१।१-१०)

त्रयवा । अनुदेवत्वम् ; १-३, ६-१० अरातयः ; ४-५ सरलतो
 (अरातिनाशनम्) । अनुष्टुप् ; १ विराट्गर्मा प्रस्तारपङ्क्तिः ;
 ४ पथ्यावृहती ; ६ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

आ नो भर मा परि द्या अराते
 मा नो रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम् ।
 नमो वीर्ताया असमृद्ये नमो अन्वरातये १
 (१९७२)

यमराते पुरोधस्ते पुरुषं परिराषिणम् ।
 नमस्ते तस्मै कृणो मा धनिं व्यथयीमम ॥ २ ॥
 प्र णो धनिर्देवकृता दिक्षा नक्तं च कल्पताम् ।
 अरातिमनुप्रेमो धयं नमो अस्यरातये ॥ ३ ॥
 सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे ।
 याचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहृतिषु ४
 यं याचोम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा ।
 श्रद्धा तमय विन्दतु दत्ता सोमैर्न वधुणा ॥ ५ ॥
 मा धनि मा याचं नो धीत्सीः
 उमाविन्दन्नामी आ भस्तां नो वधुनि ।
 सर्वे नो अद्य दित्सन्तो—ऽरातिं प्रति हयंत ॥ ६ ॥
 पुरोऽपेहासमृद्धे वि तं हेति नयामसि ।
 येदं त्वाहं निमीवंतो नितुदन्तीमराते ॥ ७ ॥
 उत नम्रा योभुयती स्वप्नया संचसे जनम् ।
 अरातिं चिचं धीत्सं—न्याकृतिं पुरेपस्य च ॥ ८ ॥
 या महेती महोन्माना विश्वा आशां व्यानरो ।
 तस्यं हिरण्यकेदये निर्भृत्या अकरं नमः ॥ ९ ॥
 हिरण्ययणां सुभगा हिरण्यकशिपुर्मदी ।
 तस्यै हिरण्यद्रापये—ऽरात्या अकरं नमः ॥ १० ॥
 ॥ १७७ ॥ (अथर्वं ६।५१।१-३)
 कन्तातिः । आपः, १ वरुणः (एवोनाशनम्) । १ मावती,
 ३ त्रिष्टुप्, ३ जगती ।
 वायोः पूतः पृथिव्येण प्रत्यह् स्तोमो अतिं हुतः ।
 इन्द्रं द्यु यज्युः सदा ॥ १ ॥
 नापां असान् मातरः एदयन्तु
 पूतेन नो पूतव्यः पूनन्तु ।
 विश्वे दि रिं प्रवर्तन्ति देवाः
 अदिवाग्यः सुधिया पूत यमि ॥ २ ॥
 यम् कि सुदं वरुण देव्ये जनं
 अनिद्रोदं मनुष्याध्वरिणि ।
 अकिरावा वसु मधु धर्मां पुषोभिम्
 मा नूनमस्मद्देनेशां देव रीरिषिः ॥ ३ ॥

॥ १७८ ॥ (अथर्वं ६।८७।१-४)
 मगः । निर्ऋतिः (निर्ऋतिमोचनम्) । १ भुरिभ्रजती,
 २ त्रिपदाशी बृहती; ३ जगती; ४ भुरिक् त्रिष्टुप (जगती) ।
 यस्यास्त आसनि घोरे जुहोमि
 एषां वज्रानामवसर्जनाय कम् ।
 भूमिरिति त्वाभिप्रमंभवते जना
 निर्ऋतिरिति त्वाहं परिं वेद सर्वतः ॥ १ ॥
 भूतं हविर्भती भवै—प तं भगो यो असासु ।
 मुञ्चेमानमूनेनसुः स्वाहा ॥ २ ॥
 एवो ष्वं—स्मर्त्तिर्ऋतेऽनेहा त्वं
 अयस्मयान् चि चृता यन्धपाशान् ।
 यमो मह्यं पुनरित् त्वां दंदाति
 तस्मै यमाय नमो अस्तु मूल्यये ॥ ३ ॥
 अयस्मये दुपदे वैधिप इह
 अभिहितो मूल्यभिये सहस्रम् ।
 यमेन त्वं पितृभिः संविदानः
 उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥

॥ १७९ ॥ (अथर्वं ६।११४।१-३)
 मग्ना । विश्वेदेवाः (सन्मोचनम्) । अदुष्टम् ।
 यद् देवा देवदेडं देवासध्वरुमा ययम् ।
 आदित्यास्तस्मातो यय—मृतस्यतेनं मुञ्चत ॥ १ ॥
 अतस्यतेनोवित्या यजया मुञ्चतेद नः ।
 यञ्चं यद् यञ्चयादसुः शिक्षन्तो नोर्पशेकिम् ॥ २ ॥
 मेदस्यता यजमानाः शुचाग्यानि जुह्वतः ।
 अवामा विश्वे यो देवाः शिक्षन्तो नोर्पशेविम ३
 सुरितनाशनम् ।
 ॥ १८१ ॥ (अथर्वं ३।१२।१-५)
 वावदेवः । वावाशेवी, देवाः (दुःखनाशनम्) । अदुष्टम् ।
 ५ चतुष्पा निवृत्तती, ६ भुरिष्ट ।
 अनापेय्य विनागरय धांः पित्ता पृथिवी म्नात् ।
 यथाभिष्टुदः देवा—स्वभापं कृणुता पुनीः ॥ १ ॥
 (१९१९)

अश्रेष्माणो अघारयन् तथा तन्मनुना कृतम् ।
 कृणोमि वध्नि विष्कन्धं मुष्कावहो गवांमिव २
 पिशाङ्गे सूत्रे सृगलं तदा वध्नन्ति वेधसः ।
 श्रवस्यं शुष्मं काव्यं वध्निं कृण्वन्तु घन्धुरः ॥३॥
 येनां श्रवस्यवध्नरथ देवा ईवासुरमायया ।
 शुनां कृषिरिव दूपणो घन्धुरा काव्यस्य च ४
 दुष्टये हि त्वां भुस्त्यामिं दूपयिष्यामिं काव्यम् ।
 उदाशयो रथा इव शूपयैमिः सरिष्यथ ॥ ५ ॥
 परकशतं विष्कन्धानि विधित्ता पृथिवीमनु ।
 तेषां त्वामग्र उज्जह—रुर्णि विष्कन्धदूपणम् ॥६॥

प्रथमः पर्यायः ।

॥ २८१ ॥ (अथर्वं १६।१।१-१३)

अथर्वः । प्रजापतिः (दुःसमोचनम्) । १,३ द्विपदा सात्री
 वृहती; २,१० वाजुषी त्रिष्टुप्; ४ आत्री गायत्री; ५,८ सात्री
 परुष्णः (५ द्विपदा); ९ सात्री अनुष्टुप्, ७ त्रिष्टुप् विराट्
 गायत्री; ९ आत्री परुष्णः; ११ साम्नुष्णिहः; १२-१३
 आर्च्यनुष्टुप् ।

अतिच्छष्टो अषां वृषमो—ऽतिच्छष्टा अमयो दिव्याः १
 रुजन् परिरुजन् मूणन् प्रमूणन् ॥ २ ॥
 श्लोको मंजोहा सुनो निर्दाह आत्मदूर्पिस्तनुदूर्पिः ३
 इदं तमतिं सृजामि तं माभ्यर्चानिषि ॥ ४ ॥
 तेन तमभ्यर्तिसृजामो ॥ ५ ॥
 योऽस्मान् द्वेषि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥
 अपामप्रमसि समुद्रं योऽभ्यवृच्छजामि ॥ ६ ॥
 योऽप्यग्निरति तं सृजामि ॥ ७ ॥
 श्लोकं यानि तनुदूर्पिम् ॥ ७ ॥
 यो र्व आपोऽग्निराविशेत् ॥ ८ ॥
 स एव यद् वीं घोरं तदेतत् ॥ ८ ॥
 इन्द्रस्य च इन्द्रियेणामि पिन्चेत् ॥ ९ ॥
 अदिषा आपो अर्पं रिप्रमस्मत् ॥ १० ॥
 प्रास्मेदेनो यदन्तु प्र दुष्यन्त्यं यदन्तु ॥ ११ ॥

दिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः
 शिवयां तन्योपं स्पृशत त्वचं मे ॥ १२ ॥
 शिवानुशीनंस्पृशदां हवामहे
 मरियं सुत्रं वचं आ धंस देवीः ॥ १३ ॥
 द्वितीयः पर्यायः ।
 ॥ २८३ ॥ (अथर्वं १६।१।१-६)
 अथर्वः । वाहू १ आसुर्वेनुष्टुप्; २ आसुर्वेष्णिहः; ३ साम्नु-
 ष्णिहः; ४ द्विपदा सात्री वृहती; ५ आर्च्यनुष्टुप्; ६ त्रिष्टुप्
 विराहायत्री ।
 निर्दुरमण्यं ऊजां मधुमतीं वाक् ॥ १ ॥
 मधुमतीं स्व मधुमतीं वाचंसुदेथम् ॥ २ ॥
 उपहृतो मे गोपा उपहृतो गोपीथः ॥ ३ ॥
 सुधृतो कर्णो मद्रुधृतो कर्णो ॥ ४ ॥
 मद्रं श्लोकं ध्यासम् ॥ ४ ॥
 सुधृतिस्रं मोर्षधृतिस्रं मा हांसिष्टां ॥ ५ ॥
 सौर्षणं चक्षुरजं ज्योतिः ॥ ५ ॥
 ऋषीणां प्रस्तरोऽसि धर्मोऽस्तु
 देवाय प्रस्तुराय ॥ ६ ॥

तृतीयः पर्यायः ।

॥ २८४ ॥ (अथर्वं १६।१।१-६)

मन्ना । आदिलः । १ आत्री गायत्री; २-३ आर्च्यनुष्टुप् ।
 ४ प्राजापत्या त्रिष्टुप्; ५ साम्नुष्णिहः; ६ द्विपदा
 साम्नी त्रिष्टुप् ।
 मुर्धाहं रयीणां मुर्धा संमानानां भूयासम् ॥ १ ॥
 रुजश्च मा येनश्च मा हांसिष्टां ॥ २ ॥
 मुर्धा च मा विधमां च मा हांसिष्टाम् ॥ २ ॥
 उर्वश्च मा चमसश्च मा हांसिष्टां ॥ ३ ॥
 धृतां च मा धर्यणश्च मा हांसिष्टाम् ॥ ३ ॥
 विमोक्षश्च माद्रैर्षविश्च मा हांसिष्टां ॥ ४ ॥
 आर्द्रदानुश्च मा मातरिभ्यां च मा हांसिष्टाम् ॥ ४ ॥
 वृहस्पतिर्म आत्मा नमजा नाम हर्षः ॥ ५ ॥
 असंतापं मे हृदयमुर्धा गच्छतिः ॥ ६ ॥
 समुद्रो अस्मि विधर्मजा ॥ ६ ॥

धर्नागमिष्यतो वरानविंशतिः
 संकल्पानमुच्यते ब्रुहः पाशान् ॥ १० ॥
 तदमुष्मां अग्ने देवाः परां वहन्तु
 घमिष्यथासुद् विधुरो न साधुः ॥ ११ ॥

सप्तमः पर्यायः ।

॥ १८८ ॥ (अथर्वं १६।७।१-१३)

यमः । १ ध्वजनाशनम्, २ पृष्णिः, ३ साम्ब्यनुष्टुप् ;
 ३ आद्युष्णिक्, ४ प्राजापत्या गायत्री, ५ आच्युष्णिक् ।
 ६, ९, ११ साम्नी बृहती, ७ यानुमी गायत्री, ८ प्राजा-
 पत्या बृहती, १० साम्नी गायत्री, १२ सुरिक् प्राजा
 पत्यानुष्टुप् ; १३ आसुरी त्रिष्टुप् ।

तेनैतं विष्याम्यर्मत्यैतं विष्यामि
 निर्भृत्यैतं विष्यामि
 पराभृत्यैतं विष्यामि
 आहैनं विष्यामि तमसैनं विष्यामि ॥ १ ॥
 देवानामेनं घोरेः क्रुरैः प्रैर्वैरिभिरेष्यामि ॥ २ ॥
 वैश्वानरस्यैतं दंप्र्योरपि दधामि ॥ ३ ॥
 एवानेवाय सा गंरत् ॥ ४ ॥
 योऽस्मान् द्वेषि तमात्मा द्वेषु
 यं चयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेषु ॥ ५ ॥
 निद्विषन्तं द्वियो निः पृथिव्या
 निरन्तरिंसाद् भजाम ॥ ६ ॥
 सुयामंश्चाक्षुष ॥ ७ ॥
 इदमदमामुष्प्यायणेऽमुष्प्याः पुत्रे दुष्वर्ण्यं मृजे ॥ ८ ॥
 यद्दोर्ब्रदो अभ्यगच्छन्
 पद् द्रोया यत् पूर्वां रात्रिम् ॥ ९ ॥
 यज्ञाद् यत् सुतो यद् दिया यत्तकम् ॥ १० ॥
 यद्दहंरदरमिगच्छामि तस्मादेनमयं दये ॥ ११ ॥
 तं अंष्टि तेनं मन्वस्य तस्यं पृथीरपि ष्टपीदि ॥ १२ ॥
 स मा जीवीत् तं प्राणो जैदातु ॥ १३ ॥

अष्टमः पर्यायः ।

॥ १८९ ॥ (अथर्वं १६।८।१-२७)

यमः । १ ध्वजनाशनम् ११-२७ (प्रथमा) एकपदा यजुर्माह्व-
 ष्टुप् ; १-२७ (द्वितीया) त्रिपदा निचुद्रायत्री, १ (तृतीया)
 प्राजापत्या गायत्री, १-२७ (चतुर्थी) त्रिपदा प्राजापत्या
 त्रिष्टुप् ; २-४, ९, १७, १९, २४ (तृतीया) आसुरी जगती ;
 ५ ७-८, १०-११, १३, १८ (तृतीया) आसुरी त्रिष्टुप् ;
 ६, १२, १४-१६, २०-२३, २७ (तृतीया) आसुरी पृष्णि ;
 २५-२६ (तृतीया) आसुरी बृहती ।

जितमस्माकमुर्दिघ्नमस्माकमुतमस्माकं
 तेऽतोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर्गस्माकं
 यतोऽस्माकं पशवोऽस्माकं
 प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥ १ ॥ ॥ १ ॥
 तस्माद्वसुं निर्भजामोऽमुर्माष्प्यायणं
 अमुष्प्याः पुत्रमसौ यः ॥ २ ॥ ॥ २ ॥
 स प्राह्याः पाशान्मा मौचि ॥ ३ ॥ ॥ ३ ॥
 तस्येदं वर्धस्तेजः प्राणमायुर्नि वैष्ट्यामि
 इदमैतमध्वराञ्च पदयामि ॥ ४ ॥ १ ॥ ॥ ४ ॥
 जितम० । स निर्भृत्याः पाशान्मा मौचि ।
 तस्येदं ॥ १-४ ॥ २ । ॥ ५ ॥
 जितम० । सोऽर्भत्याः पाशान्मा मौचि ।
 तस्येदं ॥ १-४ ॥ ३ । ॥ ६ ॥
 जितम० । स निर्भृत्याः पाशान्मा मौचि ।
 तस्येदं ॥ १-४ ॥ ४ । ॥ ७ ॥
 जितम० । स पराभृत्याः पाशान्मा मौचि ।
 तस्येदं ॥ १-४ ॥ ५ । ॥ ८ ॥
 जितम० । स दैवजामीनां पाशान्मा मौचि ।
 तस्येदं ॥ १-४ ॥ ६ । ॥ ९ ॥
 जितम० । स बृहस्पतेः पाशान्मा मौचि ।
 तस्येदं ॥ १-४ ॥ ७ । ॥ १० ॥
 जितम० । स प्रजापतेः पाशान्मा मौचि ।
 तस्येदं ॥ १-४ ॥ ८ । ॥ ११ ॥

चतुर्थाः पर्यायाः ।

॥ १८५ ॥ (अधर्ष० १६।४।१-७)

ब्रह्मा । आदित्यः । १, ३ धाम्न्यनुष्टुप् ; २ धाम्न्यनुष्टुप् ;

४ त्रिपदाऽनुष्टुप्, ५ आधुरी गायत्री ; ६ आर्च्युष्णिक् ;

७ त्रिपदा विराट्गर्भाऽनुष्टुप् ।

नाभिर्दहं रंथीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥ १ ॥

स्यासर्दसि स्यात् अमृतो मर्त्येष्वाम् ॥ २ ॥

मा मां प्राणो हासीत्

मो अत्रानोऽवहाय परां गात् ॥ ३ ॥

सूर्यो माहः पाल्यभिः पृथिव्या घ्रायुरन्तरिक्षाद्

यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥ ४ ॥

प्राणापानौ मा मां हासिष्टं मा जने प्र मोष ॥ ५ ॥

स्वस्त्युद्योपसो द्योपसंश्च सर्वं

आपः सर्वगणो अशीय ॥ ६ ॥

शर्करी स्थ पुरात्रो मोषं स्थेषुः

मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ॥७॥

पञ्चमः पर्यायाः ।

॥ १८६ ॥ (अधर्ष० १६।५।१-१०)

यमः । दुःस्वप्ननाशनम् । १-६ (प्रथमा) विराट् गायत्री

[५ (प्रथमा) भुरिक् ; ६ (प्रथमा) स्वरट्], १-६

(द्वितीया) प्राजापत्या गायत्री ; १-६ (द्वितीया)

प्राजापत्या गायत्री ; १-६ (तृतीया) त्रिपदा

धाम्नी बृहती ।

विद्य तै स्वप्न जनित्रं प्राह्याः

पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥ २ ॥

तं त्वां स्वप्न तथा सं विद्म

स नः स्वप्न दुष्वन्यात् पाहि ॥ ३ ॥

विद्य तै स्वप्न जनित्रं निर्र्थित्याः

पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥

अन्त० ० १ २ ३ ४ ॥

विद्य तै स्वप्न जनित्रमभूत्याः

पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥

अन्त० ० १ २ ३ ४ ॥

विद्य तै स्वप्न जनित्रं निर्भ्रत्याः

पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥

अन्त० ० १ २ ३ ४ ॥

विद्य तै स्वप्न जनित्रं परामृत्याः

पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥

अन्त० ० १ २ ३ ४ ॥

विद्य तै स्वप्न जनित्रं देवजामीनां

पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥ २ ॥

तं त्वां स्वप्न तथा सं विद्म

स नः स्वप्न दुष्वन्यात् पाहि ॥ १० ॥

षष्ठः पर्यायाः ।

॥ १८७ ॥ (अधर्ष० १६।६।१-११)

यमः । दुःस्वप्ननाशनं, स्या । १-४ प्राजापत्याऽनुष्टुप् ; ५

धाम्ना पृष्किः ; ६ त्रिचूराधी बृहती, ७ त्रिपदा धाम्नी

बृहती ; ८ आधुरी अगती ; ९ आधुरी बृहती ; १०

आर्च्युष्णिक् ; ११ त्रिपदा यमध्या गायत्री वा

आर्च्यनुष्टुप् ।

अजैष्माद्यासनामाद्या भूमानांगसो वयम् ॥ १ ॥

उपो यसाद् दुष्वन्या दभैष्माप तदुच्छतु ॥ २ ॥

द्विपते तत् परां वह शपते तत् परां वह ॥ ३ ॥

यं द्विष्मो यच्च नो द्वेषि

तस्मां एनद् गमयामः ॥ ४ ॥

उपा देवी याचा संविदाना

चाग् देव्युपसां संविदाना ॥ ५ ॥

उपस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो

याचस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानः ॥ ६ ॥

तेऽमुष्मै परां वहन्वरायान् वृणांस्तः सदान्ताः ॥७॥

कुम्भीकां दुपीकाः पीयकाञ्च ॥ ८ ॥

जाग्रदुष्वन्यं स्वप्नेदुष्वन्यम् ॥ ९ ॥

(१०४८)

धनागमिष्यतो वरानवित्तेः

संकल्पानमुंच्या द्रुहः पार्शान् ॥ १० ॥

तद्मुष्मां अग्ने देवाः परां वहन्तु

वधिर्यथासद् विर्युरो न साधुः ॥ ११ ॥

सप्तमः पर्यायः ।

॥ २८८ ॥ (अथर्व० १६।७।१-१३)

यमः । दुःस्वप्ननाशनं, टपा । १ पर्वाङ्कः; २ साम्यवृष्ट्युः
३ आसुर्युष्णिक्; ४ प्राजापत्या गायत्री; ५ आसुर्युष्णिक्;
६, ९, ११ साम्नी वृहती; ७ आसुरी गायत्री; ८ प्राजा-
पत्या वृहती; १० साम्नी गायत्री; १२ सुरिक् प्राजा
पत्यावृष्ट्युः; १३ आसुरी त्रिष्टुप् ।

तेनैनं विष्याम्यमृत्यैनं विष्यामि

निर्मृत्यैनं विष्यामि

परमृत्यैनं विष्यामि

ग्राह्येन विष्यामि तमसैनं विष्यामि ॥ १ ॥

देवानामेनं घोरेः क्रुरैः प्रैवैरभिप्रेष्यामि ॥ २ ॥

धैश्वानस्स्यैनं दंष्ट्र्योरपि दधामि ॥ ३ ॥

एवानेवाव सा गंरत् ॥ ४ ॥

योऽस्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु

यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥ ५ ॥

निर्द्विषन्तं द्विवो निः पृथिव्या

निरन्तरिक्षाद् मजाम ॥ ६ ॥

सुर्यामंश्चाभुप ॥ ७ ॥

इदमदमांमुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे द्रुष्वन्त्यं मृजे ॥ ८ ॥

यद्दोर्भदो अभ्यगच्छन्

पद् सोपा यत् पूर्वां रात्रिम् ॥ ९ ॥

यज्जाभद् यत् सुतो यद् दिवा यप्रकम् ॥ १० ॥

यद्दरदरमिगच्छामि तस्मादेनमवं श्ये ॥ ११ ॥

तं जेष्टि तेनं मन्दस्व तस्यं पृष्टीरपि शृणीहि ॥ १२ ॥

स मा जीवीत् तं प्राणो जहात ॥ १३ ॥

अष्टमः पर्यायः ।

॥ २८९ ॥ (अथर्व० १६।८।१-२७)

यमः । दुःस्वप्ननाशनम् १-२७ (प्रथमा) एकपदा यजुर्गोह्य-
वृष्ट्युः; १-२७ (द्वितीया) त्रिपदा निचृद्गायत्री; १ (तृतीया)
प्राजापत्या गायत्री; १-२७ (चतुर्थी) त्रिपदा प्राजापत्या
त्रिष्टुप्; २-४, ९, १७, १९, २४ (तृतीया) आसुरी जगती;
५५-८, १०-११, १३, १८ (तृतीया) आसुरी त्रिष्टुप्;
६, १२, १४-१६, २०-२३, २७ (तृतीया) आसुरी पङ्क्तिः;
२५-२६ (तृतीया) आसुरी वृहती ।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकंमृतमस्माकं

तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वप्नस्माकं

यमोऽस्माकं पशवोऽस्माकं

प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥ १ ॥ ॥ १ ॥

तस्मादमुं निर्भेजामोऽमुमांमुष्यायुणं

अमुष्याः पुत्रमसौ यः ॥ २ ॥ ॥ २ ॥

स ग्राह्याः पाशान्मा मौचि ॥ ३ ॥ ॥ ३ ॥

तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वैष्टयामि

इदमेनमधराञ्च पादयामि ॥ ४ ॥ १ ॥ ॥ ४ ॥

जितम० । स निर्भेत्याः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं० ॥ १-४ ॥ २ । ॥ ५ ॥

जितम० । सोऽमृत्याः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं० ॥ १-४ ॥ ३ । ॥ ६ ॥

जितम० । स निर्भेत्याः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं० ॥ १-४ ॥ ४ । ॥ ७ ॥

जितम० । स परामृत्याः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं० ॥ १-४ ॥ ५ । ॥ ८ ॥

जितम० । स देवजामीनां पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं० ॥ १-४ ॥ ६ । ॥ ९ ॥

जितम० । स वृहस्पतेः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं० ॥ १-४ ॥ ७ । ॥ १० ॥

जितम० । स प्रजापतेः पाशान्मा मौचि ।

तस्येदं० ॥ १-४ ॥ ८ । ॥ ११ ॥

जितम् । स ऋषीणां पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ ९ ।	॥ १२ ॥
जितम् । स आर्वेयाणां पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ १० ।	॥ १३ ॥
जितम् । सोऽङ्गिरसानां पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ ११ ।	॥ १४ ॥
जितम् । स आङ्गिरसानां पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ १२ ।	॥ १५ ॥
जितम् । सोऽर्ध्वणां पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ १४ ।	॥ १६ ॥
जितम् । स आर्ध्वणानां पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ १४ ।	॥ १७ ॥
जितम् । स वनस्पतीनां पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ १५ ।	॥ १८ ॥
जितम् । स वानस्पत्यानां पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ १६ ।	॥ १९ ॥
जितम् । स ऋतुनां पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ १७ ।	॥ २० ॥
जितम् । स आर्तिधानां पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ १८ ।	॥ २१ ॥
जितम् । स मासानां पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ १९ ।	॥ २२ ॥
जितम् । सोऽर्धमासानां पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ २० ।	॥ २३ ॥
जितम् । सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ २१ ।	॥ २४ ॥
जितम् । सोऽहोः संयतोः पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ २२ ।	॥ २५ ॥
जितम् । स धावापृथिव्योः पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ २३ ।	॥ २६ ॥

जितम् । स इन्द्राग्नयोः पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ २४ ।	॥ २७ ॥
जितम् । स मित्रापर्यणयोः पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ २५ ।	॥ २८ ॥
जितम् । स रामो पर्यणस्य पाशान्मा मौचि । तस्येदं ॥१-४॥ २६ ।	॥ २९ ॥
जितमसाकमुद्दिधमसाकं मृतमसाकं तेजोऽसाकं प्रहासमाकं स्वर्गसाकं यज्ञोऽसाकं पदायोऽसाकं प्रजा असाकं धीरा असाकं ॥१॥	॥ ३० ॥
तस्माद्गमं निर्भजामोऽमुर्माभ्याणं अमुभ्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥	॥ ३१ ॥
स मृतयोः पदवीशात् पाशान्मा मौचि । ३ ।	॥ ३२ ॥
तस्येदं धर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि येष्यामि इदमेनमधुराच्यं पादयामि ॥४॥ २७ ।	॥ ३३ ॥

नवमः पर्यायः ।

॥ २९० ॥ (अथर्वं १६।९।१-४)

यमः । १ प्राजापति, २ आग्नि, घोम, पूषा, ३-४ रुद्र ।
१ प्राजापत्या आच्यंनुष्टुप्, २ आच्युर्निष्टुप्, ३ धाम्नी
पञ्चि, ४ परोष्णिक् ।

जितमस्माकमुद्दिधमस्माकं अभ्यष्टुं विश्वाः पृतना अरतीः तदग्निराह तदु सोमं आह पुषा मा धात् सुहृतस्य लोके अग्नं स्वः स्वर्गान्म सं सूर्यस्य ज्योतिषाग्नम् वृष्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिपीय वसुमात्र भूयासं वसु मरिष्ये धेहि ॥ १९१ ॥ (अथर्वं ७।२३।१) यम । दुष्पन्ननाशनम् । अनुष्टुप् । द्वौष्वन्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्यमराच्यः । दुणीञ्जीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥ १ ॥	॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥
--	----------------------------------

॥ १९२ ॥ (अथर्वं १९।५३।१-६)

यमः । दुःखजननाशनम् । त्रिष्टुप् ।

यमस्य लोकाद्भ्या बभूविद्य
 प्रमदा मत्यान् प्र युनक्ति धीरः ।
 एकाकिना सुरथं यासि विद्वान्
 स्वप्नं मिमानो अर्सुरस्य योनीं
 ॥ १ ॥ वन्धस्त्वार्त्रे विश्वर्चया अपदयत्
 पुरा रात्र्या जनितीरेके अह्नि ।
 ततः स्वप्नेदमध्या बभूविद्य
 मिपग्न्यो रूपमपगृहमानः
 शृङ्गावासुरेभ्योऽधि देवान्
 उपावर्तत महिमानमिच्छन् ।
 तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं
 प्रयास्त्रिशसः स्वुरानशानाः
 ॥ २ ॥ नैतां विदुः पितये नोत देवा
 येषां जल्पिध्वरत्यन्तरेदम् ।
 त्रिते स्वप्नमधुराप्तये नर
 आर्दित्यासो वर्णेनानुशिष्टाः
 ॥ ४ ॥ यस्य क्रूरमर्मजन्त दुःकृतो
 अस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमारुः ।
 स्वप्नेदसि परमेणं वन्धुना
 तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे
 ॥ ५ ॥ विश्व ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद्
 विश्व स्वप्न यो अंधिपा इहा तै ।
 यशस्विर्नो नो यदीसिद् पाहि
 आराद् द्विपेसिर्षं याहि दुस्म्
 ॥ ६ ॥

॥ १९३ ॥ (अथर्वं १९।५७।१-५)
 यमः । दुःखजननाशनम् । १ अनुष्टुप् ; २-३ त्रिष्टुप्,
 (अथवसाना) ; ४ षड्शदा लप्तिभुहतीगर्मा विराद्
 शकरी ; ५ अथवसानाथवशदा परशाकरीतिजगती ।
 यथा कलां यथा शफं यथुणं सुनर्यन्ति ।
 एवा दुष्यन्त्यं सर्वं मप्रियं सं नयामसि ॥ १ ॥

सं राजानो अगुः समुणान्यगुः
 सं कुप्रा अगुः सं कला अगुः ।
 समस्मासु यद् दुष्यन्त्यं
 निर्द्विपते दुष्यन्त्यं सुवाम ॥ २ ॥
 देवानां पत्नीनां गर्भं यमस्य कर् यो भद्रः स्वप्न ।
 ॥ १ ॥ स मम यः पापस्तद् द्विपते प्र हिंमः ।
 मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥ ३ ॥
 तं त्वां स्वप्न तथा सं विश्व
 स त्वं स्वप्नाश्वं इव कायमश्वं इव नीनाहम् ।
 ॥ २ ॥ अनास्माकं देवपीयुं पियारं
 वप यद्स्मासु दुष्यन्त्यं यद् गोपु यद्यं नो गृहे ॥ ४ ॥
 अनास्माकस्तद् देवपीयुः पियारः
 ॥ ३ ॥ तिष्कर्मिव प्रतं मुञ्चताम् ।
 नवारत्नीनर्पमया अस्माकं ततः परि ।
 दुष्यन्त्यं सर्वं द्विपते निर्दयामसि ॥ ५ ॥
 यथादिकम् ।
 ॥ १९५ ॥ (अथर्वं ७।७३।६-७, ११)
 अथर्वं । यमः, अथिनो । ६ जगती ; ७, ११ त्रिष्टुप् ।
 उपं द्रव पर्यसा गोधुगोपमा
 धर्मं सिञ्च पर्य उञ्चिपायाः ।
 ॥ ५ ॥ धि नार्कमव्यत् सविता वरेण्यो
 अनुप्रयाणमुपसो वि राजति ॥ ६ ॥
 उपं ह्ये सुदुर्घां धेनुमेतां
 सुहस्तां गोधुगत दौहदेनाम् ।
 श्रेष्ठं सुवं सविता साविपश्रो
 अमीशो धर्मस्तद् पु प्र यौचत् ॥ ७ ॥
 सुयवसाद् भगवती हि भूया
 अर्षा ध्यं भगवन्तः स्याम ।
 अद्धि तृणमज्ये विश्वदात्री
 पियं शुद्धसुदकमाचरन्ती ॥ ११ ॥

॥ २९६ ॥ (अथर्व० ७.६१।१-९)

अथर्वा । अग्निः (तपः) । अनुष्टुप् ।

यदग्ने तर्पसा तर्प उपतप्यामहे तर्पः ।

प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः ॥ १ ॥

अग्ने तर्पस्तप्यामह उर्प तप्यामहे तर्पः ।

श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः ॥ २ ॥

॥ २९७ ॥ (अथर्व० १९।३२।१-१०)

भृगुः (आनुष्कामः) । दर्मः । अनुष्टुप् ; ८ पुरस्ताद्बृहती ;

९ त्रिष्टुप् ; १० अगती ।

शतकाण्डो दुश्चयवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः ।

दुर्मो य उग्र ओर्षधिस्तं तं बध्नाम्यायुषे ॥ १ ॥

नास्य केशान् प्र वर्षन्ति नोर्षसि ताडमा व्रते ।

यस्मा अचिच्छपर्णेन दुर्भेण शर्म यच्छति ॥ २ ॥

दिवि ते तूल्मोपधे पृथिव्यामसि निष्ठितः ।

त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥ ३ ॥

तिन्नो दिवो अत्यतृणत् तिल इमाः पृथिवीरुत ।

त्वयाह दुर्हादो जिह्वा नि तृणमि वर्चोसि ॥ ४ ॥

त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्रान् ।

उर्मो सहस्रन्तौ भूत्वा सपनान्तसहिषीवहि ॥ ५ ॥

सहस्य नो अभिमाति सहस्य पृतनायतः ।

सहस्य सर्षेण दुर्हादो सुहादो मे वृहन् कृधि ॥ ६ ॥

दुर्भेण देवजातेन दिवि प्रभेन शश्वदित् ।

तेनाह शश्वतो जना असंनं सनयानि च ॥ ७ ॥

प्रियं मां दर्मं कृणु

प्रहाराज्ज्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।

यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपदयते ॥ ८ ॥

यो जायमानः पृथिवीमददद्

यो अस्तेभ्रातृन्तरिक्षं दिव्यं च ।

यं विभ्रंतं ननु पाप्मा विवेद

स नोऽयं दुर्मो यरुणो दिवा कः ॥ ९ ॥

सपनदा शतकाण्डः सहस्रान्

ओर्षधीनां प्रथमः सं वर्ण्य ।

स नोऽयं दुर्मो परि पातु विश्वतः

तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः ॥ १० ॥

॥ २९९ ॥ (अथर्व० १९।३३।१-५)

भृगुः । दर्मः । १ अगती ; २, ५ त्रिष्टुप् ; ३ आर्षो
पङ्क्तिः ; ४ आस्तारपङ्क्तिः ।

सहस्रार्घः शतकाण्डः पर्यस्वान्

अपामग्निर्वीरुधो राजसूयम् ।

स नोऽयं दुर्मो परि पातु विश्वतो

देवो मणिरायुषा सं खजाति नः ॥ १ ॥

घृतादुल्लो मधुमान् पर्यस्वान्

भूमिर्होऽच्युतश्चयावधिष्णुः ।

नुदन्सपत्नानघरांश्च कृण्वन्

दुर्मो रोह महतामिन्द्रियेण ॥ २ ॥

त्वं भूमित्येष्योर्जसा

त्वं वेधो सीदसि चारुस्वरे ।

त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त

त्वं पुनीहि दुरितान्यसत् ॥ ३ ॥

तीक्ष्णो राजा विपासही रक्षोहा विश्ववर्षणिः ।

ओर्जो देवानां बलमुग्रमेतत्

तं तं बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥ ४ ॥

दुर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याणि

दुर्मो विभ्रंशारमना मा व्यधिष्ठाः ।

अतिष्ठाया वर्चसाधान्यान्

सूर्य इया भादि प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५ ॥

॥ २९९ ॥ (अथर्व० ५।२६।१-४, ६-९, ११)

महा । वास्तोपतिः, २ घविता, ३, ११ इन्द्र, ४ निविदः, ५
अदितिः, ७ विष्णुः, ८ श्वधा, ९ भगः, (नवशास्त्राणां पृत-
होमः) । ३, ५, ६-८, ११ दिवदा प्राजापत्या बृहती ; ३ त्रिनदा
विराट् गायत्री, ९ विपदा विपतिरुमभ्या पुर अणिष्टः । (वर्षो
एकावधानः) ।

युनक्तुः देवः संयिता म्रजानन्

असिन् युक्ते अद्वियः स्यादा ॥ २ ॥

इन्द्रं उक्त्वा मदान्यस्मिन् युधे
 प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ३ ॥
 प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा
 शिष्टाः पर्त्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥ ४ ॥
 पयर्मगन् वहिषा प्रोक्षणीभिः
 यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ॥ ६ ॥
 विष्णुर्युनक्तु बहुधा तर्पांसि
 अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ७ ॥
 त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा
 अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ८ ॥
 भर्गा युनक्त्वाशिपो न्वस्रा अस्मिन् युधे
 प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ९ ॥
 इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याणि
 अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ११ ॥

॥ ३०० ॥ (ऋ० १०।१।७-१४)

धंक्रमुक्ते यामायनः । ७-१४ पितृमेघः; १४ प्रजापतिर्वा ।
 त्रिष्टुप्, ११ प्रस्तारपदार्कः, १३ जगती, १४ अनुष्टुप् ।

इमा नारीरविधियाः सुपत्नीः
 आजनेन सर्पिषा सं विशन्तु ।
 अनथर्धोऽनमीवाः सुरक्षा
 आ रोहन्तु जर्णयो योनिमग्रे ॥ ७ ॥
 उदीर्ष्य नार्याभि जीघ्रलोकं
 गतासुमेतमुपं शेषं परिहृ ।
 हस्तप्रामस्य दिधिपोस्तोदं
 पत्युर्जनित्वमभि सं वंमूथ ॥ ८ ॥
 धनुर्हस्तादादानो मृतस्य
 अस्मे भत्राय वचसे घर्षाय ।
 भत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा
 विभ्याः स्पृधो भूमिमातीर्जयेम ॥ ९ ॥
 उर्षं सर्षं मातरं भूमिमेताम्
 उद्व्यवसं पृथिवीं सुदोषाम् ।

ऊर्णप्रदा युवतिर्दक्षिणावत
 एषा त्वां पातु निष्क्रेतेरुपस्थात् ॥ १० ॥
 उच्छ्रुञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः
 सृपायनास्मै भव स्रपवञ्जना ।
 माता पुत्रं यथा सिचा
 अग्न्येन भूम ऊर्णहि ॥ ११ ॥
 उच्छ्रुञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु
 सहस्रं मितु उप हि श्रयन्ताम् । ॥ ७ ॥
 ते गृहासो घृतक्षुतो भवन्तु
 विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वयं ॥ १२ ॥
 उक्ते स्तभ्रामि पृथिवी त्वत् परि
 इमं लोमं निदधन्मो अहं रिपम् ।
 एतां स्थूर्णां पितरो धारयन्तु
 तेऽत्रा यमः सादना ते मिनेतु ॥ १३ ॥

प्रतीचीने मामहनीर्ष्याः पूर्णमिवा दधुः ।
 प्रतीचीं जप्रमा वाचमर्ष्यं रश्नर्या यथा ॥ १४ ॥

॥ ३०१ ॥ (ऋ० १०।१०।१-१४)

नवमीवर्ष्यानामयुष्मा पष्ठपाथ वैवस्ततो यमी ऋषिका । यमः ।
 षष्ठीवर्ष्यानां युष्मा भवम्याथ वैवस्ततो यमः ऋषिः । यमी ।
 त्रिष्टुप्, १३ विराट्स्थाना ।
 ओ चित् सखायं सत्या वञ्चत्यां
 तिरः पुरु चिद्वर्णवं जगन्वान् ।
 पितुर्नपातमा दधीत वेधा
 अधि क्षमि प्रतरं दीर्घानः ॥ १ ॥
 न ते सखां सत्यं वंष्ट्रेतत्
 सलक्ष्मा यद् विपुरूपा भवति ।
 मदस्युशालो असुरस्य घोर
 द्विपो धृतरं उर्विया परि स्यन् ॥ २ ॥
 उशन्ति घा ते अमृतांस एतत्
 एकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य ।
 नि ते मनो मर्नमि घाय्यसे
 जन्तुः पतिस्त्वन्वमा विविद्याः ॥ ३ ॥

न यत् पुरा चेकृमा कञ्च नूनम्
 श्रुता वदन्तो अनृतं रपेम ।
 गन्धर्वो अस्वप्या च योषा
 सा नो नार्भिः परमं जामि तर्षीं
 गमं नु नौ जनिता दंपती कः
 देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
 नकिरस्य प्र भिनन्ति प्रतान्ति
 वेदं नावस्य पृथिवी उत धौः
 को अस्य वेदं प्रथमस्याहः
 क ई ददर्श क इह प्र वौचत् ।
 बृहन्मिथस्य वरणस्य धाम
 कर्तुं भ्रय आह्नो वीक्ष्या नृन्
 यमस्य मा यम्यं काम आगन्
 समाने योनौ सहशेर्याय ।
 जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्छां
 वि त्तिद् बृहेश्च रथ्येव चक्रा
 न तिष्ठन्ति न नि मिपन्त्येते
 देवानां स्पर्श इह ये चरन्ति ।
 अन्येन मदाह्नो याहि त्वं
 तेन वि बृह् रथ्येव चक्रा
 रात्रीभिरस्मा अहर्भिर्दशस्येत्
 सूर्यस्य चक्षुर्मुहुर्गभिर्मयात् ।
 दिवा पृथिन्या मिथुना सर्वभ्यु
 यमीर्यमस्य विभृयाद्जामि
 भा धा ता गच्छन्नुत्तरा युगानि
 यत्र जामयः शृणयत्रजामि ।
 उप बर्षेदि शृणुभार्यं शाह
 मन्यमिच्छस्य सुभगे पतिं मत्
 किं आतामद् पदनाथं भर्षाति
 विमु ह्यस्ता यत्रिर्भ्रतिर्निगच्छात् ।

काममृता बद्धेऽतद् रपामि
 तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि ॥ ११ ॥
 न वा उं ते तन्वा तन्वं सं पृपृच्यां
 पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
 अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्य
 न ते भ्राता सुभगे वष्टयेतत् ॥ १२ ॥
 यतो बंतासि यम नैव ते
 मनो हृदयं चाविदाम ।
 अन्या किल त्वां कश्येव युक्तं
 परिं प्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ॥ १३ ॥
 अन्यम् पु त्वं यम्यन् उ त्वां
 परिं प्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ।
 तस्यां वा त्व मनं इच्छा स वा तव
 अथां कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥ १४ ॥
 ॥ १०२ ॥ (अ० १०।१४।१-५, ७-९, १३-१६)
 वैश्वतो यमः । यमः, ७-९, किञ्चोका, पितरो वा । मिथुः,
 १३-१४, १६ अनुष्टुप, १५ बृहती ।
 परेषिवांसं प्रवतो महीरन्तुं
 बृहभ्यः पर्यामनुपपशानम् ।
 वैवस्वतं संगमंतं जनानां
 यमं राजानं हविषां दुवस्य ॥ १५ ॥
 यमो नो गातुं प्रथमो विवेद
 नैवा गव्यतिरपमंतेवा उं ।
 यत्रां नः पूर्वे पितरः परेषुः
 एना जज्ञानोः पृथ्यां अनु स्वाः ॥ १६ ॥
 मातंटी वृथ्येयमो अङ्गिरोमिः
 बृहस्पतिर्भ्रंभ्रिर्वावृधानः ।
 योश्च देवा वायुधुये च देवान्
 स्वाहान्ये स्यधयान्ये मंदिन्ति ॥ १७ ॥
 (१११५)

इमं यम प्रस्तरमा हि सीद
 अङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
 आ त्या मन्त्राः कविनास्ता बंहन्तु
 पुना राजन् हविषा मादयस्व
 अङ्गिरोभिरा गंहि यक्षिभ्योभिः
 यमं वैरुपैरिह मादयस्व ।
 विवस्वन्तं हुषे यः पिता ते
 अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषर्धं
 प्रेहि प्रेहि पथिभिः पृथ्व्येभिः
 यथा नः पूर्वं पितरः परेयुः ।
 उभा राजाना स्वधया मर्दन्ता
 यमं पश्यसि वरुणं च देवम्
 सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन
 इष्टापुतेन परमे व्योमन् ।
 द्वित्वार्यावधं पुनरस्तमेहि
 सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः
 अपेतं वीतं वि चं सर्पतातो
 अस्मा पतं पितरौ लोकमक्रन् ।
 अहोभिरङ्गिरक्तुमिर्व्यक्तं
 यमो दंदात्यवसानमस्मै
 यमाय सोमं सुनुत यमार्यं जुहुता हविः ।
 यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निर्दूतो अरुतः ॥ १३ ॥
 यमार्यं घृतवद्भविर्जुहोत प्र चं तिष्ठत ।
 स नो देवेष्वाम यमद् दीर्घमायुः प्र जीयसे ॥ १४ ॥
 यमाय मधुमत्तमं राहो हव्यं जुहोतन ।
 इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः
 पूर्वैभ्यः पथिरुन्नर्यः ॥ १५ ॥
 त्रिकटुकैभिः पतति पल्लवैरेकमिदं पृहत् ।
 त्रिप्लव् गायत्री छन्दोसि
 सर्वा ता यम आर्दता ॥ १६ ॥

॥ ३०३ ॥ (ऋ० १०।१३।१-७)

कुमारो यामायनः । यमः । अनुष्टुप् ।

यस्मिन् युक्षे सुपलाशे देवैः संपिपेने यमः ।
 अथा नो विदपतिः पिता पुराणां अनु वेनति ॥ १ ॥
 पुराणां अनुवेनन्तं चरन्तं पापर्यामुया ।
 असुयद्भ्रम्यं चाकशं तस्मा अस्पृह्यं पुनः ॥ २ ॥
 यं कुमारं नवं रथं मचक्रं मनसारुणोः ।
 पक्षपं विभवतः प्राञ्च मपश्यन्नाधि तिष्ठसि ॥ ३ ॥
 यं कुमारं प्रार्थयौ रथं विप्रैभ्यस्परि ।
 तं सामानु प्रार्थत समितो नाभ्यार्दितम् ॥ ४ ॥
 कः कुमारमंजनयद् रथं को निरवर्तयत् ।
 कः स्वित् तदद्य नो ब्रूयादनुदेयी यथामभवत् ॥ ५ ॥
 यथामवदनुदेयी ततो अप्रमजायत ।
 पुरस्ताद् बुध्न आर्ततः पश्चात्त्रिर्येणं कृतम् ॥ ६ ॥
 इदं यमस्य सार्दनं देवमानं यदुच्यते ।
 इयमस्य धम्यते नालीः
 अयं गीर्भिः परिष्कृतः ॥ ७ ॥

॥ ३०४ ॥ (ऋ० १०।१५।१-१४)

राहो यामायनः । पितरः । त्रिष्टुप्, ११ जगती ।

उदीरतामवर् उत् परास
 उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
 असुं य इयुर्युका ऋतुदाः
 ते नोऽयन्तु पितरो हवेषु ॥ १ ॥
 इदं पितृभ्यो नमो अस्वघ
 ये पूर्वोक्ते य उपरास इयुः ।
 ये पार्थिवे रजस्या निपला
 ये यां नूनं सुवृजनासु विशु ॥ २ ॥
 आहं पितृन्सुविदत्रो अपित्सि
 नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
 शहिपदो ये स्वधया सुतस्य
 भर्जन्त पित्वस्व इदागमिष्ठाः ॥ ३ ॥

(३१८४)

वहिषदः पितर ऊत्युर्ध्वम्
 इमा वो हव्या चक्रमा जुपयम् ।
 त आ गतावसा शंतमेन
 अथा नः शं योररपो दधात
 उपहृताः पितरः सोम्यासः
 वहिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
 त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु
 अधि ब्रुवन्तु तैऽवन्त्वस्मान्
 आच्या जानु दक्षिणतो निपद्य
 इमं यक्षमभि गृणीत विश्वे ।
 मा हिंसिष्ट पितरः केन चित्रो
 यद् य आगः पुरुषता कराम
 आसीनासो अरुणीनामुपस्थे
 रयि घंत दानुषे मर्याय ।
 पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः
 प्र यच्छत त इहोजै दधात
 ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासो
 अनूहिरै सोमपीथं वसिष्ठाः ।
 तेभिर्यमः संरपाणो हवीषि
 उशशुद्राङ्गिः प्रतिकाममन्तु
 ये तातपुदैवना जेहमाना
 होत्राविदः स्तोमंतष्टासो अकैः ।
 आमे याहि सुविदत्रेभिरवोह
 सुत्यैः कल्पैः पितृभिर्धर्मसाङ्गिः
 ये सुत्यासो दधिरदो हविष्या
 इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः ।
 आमे याहि सहस्रं देवबन्दैः
 परैः पूथैः पितृभिर्धर्मसाङ्गिः
 अग्निष्यासाः पितर पद गच्छत
 सदर्ःसदः सदत सुप्रणीतया ।

अत्ता हवीषि प्रयतानि वहिषि
 अथा रयि सर्वधीरं दधातन ॥ ११ ॥
 त्वमग्न ईडितो जातवेदो
 अवाङ्दृच्यानि सुरभीणि हृत्वी ।
 प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्
 अदि त्वं देव प्रयता हवीषि ॥ १२ ॥
 ये चेह पितरो ये च नेह
 याँश्च विषा याँ उ च न प्रविश ।
 त्वं वैत्य यति ते जातवेदः
 स्वधामिर्धर्मं सुकृतं जुपस्व ॥ १३ ॥
 ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा
 मध्ये दिवः स्वधया प्रादर्यन्ते ।
 तेभिः स्वराळसुनीतिभेतां
 यथावशे तन्वं कल्पयस्व ॥ १४ ॥
 ॥ ३०५ ॥ (अथर्वे १८।१।६, १३-१४, १७, २९-४९, ५१-
 ५४, ५७-६१)
 अथवा । यमः, मन्त्रोष्णः, ४० रुद्रः, ४१-४३ सरस्वती, ४४-
 ४६, ५१-५२ पितरः (विद्युपः) । विद्युपः, ३४, ४९ अरिष्टि ।
 ५७, ६१ अनुष्टुप् ; ५९ पुरोब्रह्मती ।
 को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य
 शिर्मावतो भामिनो दुर्हणायून् ।
 आसत्रिपून् हस्वसो मयोभून्
 य पेयो भूत्यामूणघत् स जीवात् ॥ ६ ॥
 न ते नाथं यम्यन्नाहमस्मि
 न ते तन् तन्वाकु सं पपृचयाम् ।
 अन्येन मत् प्रसुदः कल्पयस्य
 न ते भ्राता सुभगे वष्टेयत् ॥ १३ ॥
 न वा उ ते तन् तन्वाकु सं पपृच्यां
 पापमाहुयैः स्वसारं निगच्छात् ।
 असैयदेतन्मनसो हृदो मे
 भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥ १४ ॥
 (३१९८)

श्रीणि च्छन्दोसि क्वयो वि येतिरे
 पुरुषं दर्शतं विभ्रवक्षणात् ।
 आपो वाता ओषधयस्तानि
 पकस्मिन् भुवंत आर्पितानि
 स्तेगो न क्षामत्येपि पृथिवीं
 मही नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
 मित्रो नो अत्र चरुणो युज्यमानो
 अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम्
 स्तुहि श्रुतं गतंसदं जनानां
 राजानं भीममुपहृत्तमुग्रम् ।
 मूढा जरीवे रुद्र स्तवानो
 क्षन्यमसात् ते नि वपन्तु सेन्यम्
 सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते
 सरस्वतीमध्वरे त्वायमाने ।
 सरस्वतीं सुहृतो हवन्ते
 सरस्वतीं दाशुपे वार्यं दात्
 सरस्वतीं पितरो हवन्ते
 दक्षिणा युष्मन्मिनर्क्षमाणाः ।
 आसद्यास्मिन् योर्हिषे मादयध्वं
 अनमीवा इप आ धेह्यस्मे
 सरस्वति या सरधं ययाय
 उक्थैः स्वधामिदेवि पितृभिर्मदन्ती ।
 सहस्रार्धमिडो अथ भागं
 शयस्पोषे यजमानाय धेहि
 उदीरतामवरं उव परास
 उन्मध्यमाः पितरः सौम्यासः ।
 असुं य इयुरवृका ऋतशाः
 ते नोऽवन्तु पितरो हवैषु
 आहं पितृन्सुविदशो अघिरिस
 नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।

॥ १७ ॥

॥ ३९ ॥

॥ ४० ॥

॥ ४१ ॥

॥ ४२ ॥

॥ ४३ ॥

॥ ४४ ॥

बर्हिपदो ये स्वधया सुतस्य
 भर्जन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः
 इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य
 ये पूर्वोसो ये अपरास इयुः ।
 ये पार्थिवे रजस्या निरपत्ता
 ये वा नुनं सुवृजनासु दिक्षु
 मातली कन्वैर्यमो अङ्गिरोभिः
 बृहस्पतिर्भ्रुकमिर्वावृधानः ।
 यांश्च देवा वावृषुयं च देवां
 ते नोऽवन्तु पितरो हवैषु
 स्वादुष्किलायं मधुमां उतायं
 तीव्रः किलायं रसंघां उतायम् ।
 उतो न्वस्य पंपिवांसमिन्द्रं
 न कश्चन संहत आह्वेषु
 परेषिवांसं प्रवतो महीरिति
 बृहभ्यः पर्यामनुपस्पशानम् ।
 वैश्वस्यतं संगमनं जनानां
 यमं राजानं हविषा सपर्यत
 बर्हिपदः पितर ऊत्युर्वाग्
 इमा वो हव्या चरुमा जुपध्वम् ।
 न आ गतावसा शतमेन
 अघा नः शो योररूपो दधात
 आच्या जानुं दक्षिणतो निपद्य
 इदं नो हविरभि मृणन्तु विश्वे ।
 मा हिंसिष्ट पितरः केन चित्रो
 यद् घ आगः पुरुयता कराम
 त्वर्षा दुहित्रे वंहतुं कृणोति
 तेनेदं विश्वं भुवनं समैति ।
 यमस्य माता पर्युहमाना
 महो जाया विष्वस्यतो ननाश

॥ ४५ ॥

॥ ४६ ॥

॥ ४७ ॥

॥ ४८ ॥

॥ ४९ ॥

॥ ५१ ॥

॥ ५२ ॥

॥ ५३ ॥

(११११)

प्रेक्षि प्रेक्षि पृथिविः पुर्याणैः
 येनां ते पूर्वं पितरः परेताः ।
 उभा राजानौ स्वधया मर्दन्तौ
 यमं पदयासि चरणं च देवम् ॥ ५४ ॥
 धुमन्तस्त्वेषीमदि धुमन्तः समिधीमदि ।
 धुमान् धुमत आ बह्वं पितृन् हृषिये अस्तये ५७
 अङ्गिरसो नः पितरो नवंग्वा
 अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
 तेषां धृयं सुमत्तौ यक्षिर्यानां
 आपि भद्रे सौमनसे स्वाम ॥ ५८ ॥
 अङ्गिरोभिर्यक्षियैरा गद्दीह
 यमं वैरूपैरिह मादयस्व ।
 विवस्वन्तं हुवे यः पिता
 तेऽस्मिन् वृद्धिष्या निपद्य ॥ ५९ ॥
 इमं यमं प्रस्तरमा हि रोह
 अङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
 आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता बह्वन्तु
 पूना राजन् हृषियौ मादयस्व ॥ ६० ॥
 इत एत उदाकहन द्विवस्पृष्टान्याकहन ।
 प्र भूर्जयो यथा पृथा घामङ्गिरसो ययुः ॥ ६१ ॥
 ॥ ३०६ ॥ (अथर्वा ० १८।१।१-६०)
 अथर्वा । यमः, मन्त्रोक्ताः, ४, ३४ अग्निः, ५ आतवेदाः, २९
 पितरः (पितृमेधः) । त्रिष्टुप् ; १-३, ६; १४-१८, २०, २२-
 २३, २५, ३०, ३४, ३६, ४६, ४८, ५०-५२, ५६ अजुष्टुप् ।
 ४, ७, ९, १३ अगतीः, ५, २६, ४९, ५७ भुक्तिः । १९ त्रिप-
 दाऽऽयी गायत्री; २४ त्रिपदा समविषमाऽऽयी गायत्री, ३७
 विराह जगती; ३८-४० आयी गायत्री; (४०, ४२-४४
 भुक्तिः) ४५ कङ्कमती अजुष्टुप् ।
 यमाय सोमः पयते यमार्यं क्रियते हृषिः ।
 यमं ह्यं यज्ञो गच्छत्य-सिद्धतो अरकतः ॥ १ ॥
 यमाय मर्चमत्तमं जुहोता प्र चं तिष्ठत ।

इदं नम ऋषिभ्यः पुर्यजेभ्यः
 पुर्यभ्यः पयिष्टद्रव्यः ॥ २ ॥
 यमार्यं धृतयत् पयो रासे हृषिर्होमन ।
 स नो जीवेत्या यमेद् शर्षमायुः प्र जीयते ॥ ३ ॥
 मिनमत्ते वि बहो मामि नृशुचो
 मास्य त्वचं चिक्षिषो मा शरीरम् ।
 शृतं यदा करसि जातयेदो
 अथेमेनं प्र दिणुतात् पितृर्ष्य ॥ ४ ॥
 यदा शृतं हृणयो जातयेदो
 अथेमेनं परं दत्तात् पितृर्ष्यः ।
 यदो गच्छत्यसुनीतिमेतां
 अथ देवानां पशुनीर्भवाति ॥ ५ ॥
 त्रिकद्रुकेभिः पयते पडुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
 त्रिष्टुप् गांयत्री छन्दांसि
 सर्वा ता यम आपिता ॥ ६ ॥
 सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना
 दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः ।
 अपो वां गच्छ यदि तत्र ते हितं
 ओषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥ ७ ॥
 अजो भागस्तर्पस्तं तपस्य
 तं ते शोचिस्तपु तं ते अर्चिः ।
 यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदः
 ताग्निवैदं सुकृताम् लोकम् ॥ ८ ॥
 यास्तं शोचयो र्हयो जातवेदो
 याभिरापृणासि दिवंमन्तरिक्षम् ।
 अजं यन्तमनु ताः समृण्वतां
 अयेतराभिः शिवतंमामिः शृतं कृषि ॥ ९ ॥
 अयं रज्जु पुनरज्ञे पितृभ्यो
 यस्त आहुतश्चरति स्वधावान् ।
 आयुर्वसान् उषं यातु शेषः
 सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ १० ॥
 (३२२९)

अति द्रव श्वानो सारमेयो
 चतुरक्षो शयलो साधुना पथा ।
 अर्धा पितृन्सुविदत्रा अर्षादि
 यमेन ये संधमादं मदन्ति ॥ ११ ॥
 यो ते श्वानो यम रक्षितारो
 चतुरक्षो पथिपदी नचक्षसा ।
 ताभ्यां राजन् परि धेहो नं
 स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेदि ॥ १२ ॥
 उरुणसावसुतृपाबुदुम्बलौ
 यमस्य दूतो चरतो जना अनु ।
 तावसम्य दृशये सूर्याय
 पुनर्दातामसुमयेह सुद्रम् ॥ १३ ॥
 सोम एकैभ्यः पयते घनमेक उपासते ।
 येभ्यो मयुं प्रधावन्ति तांश्चिदेवापि गच्छतात् १४
 ये चित् पूर्वं ऋतसाता ऋतर्जता ऋतावृथः ।
 ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजां अपि गच्छतात् १५
 तपसा ये अनाधुप्या स्तपसा ये स्वयंयुः ।
 तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् १६
 ये युष्यन्ते प्रधनेषु शरसा ये तनुत्यजः ।
 ये धां सहस्रदधिणा स्तांश्चिदेवापि गच्छतात् १७
 सहस्रनीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
 ऋषीन् तपस्वतो यम
 तपोजां अपि गच्छतात् ॥ १८ ॥
 स्योनासै मय पृथिव्यनुक्षरा निवेदानी ।
 यच्छास्मै शर्म सुप्रधाः ॥ १९ ॥
 अतंघाधे पृथिव्या उरो लोके नि धीयस्व ।
 स्वधा धार्शकूपे जीवन् तास्ते सन्तु मधुञ्जतः २०
 हयामि ते मरुसा मरुं हहेमान्
 गृहो उर्ष जुह्वण पादि ।
 सं गच्छस्य पितृभिः सं यमेनं
 स्योनास्या पाता उर्ष वान्तु शग्माः ॥ २१ ॥

उत् त्वां वहन्तु मृतं उदघाहा उदमृतः ।
 अजेन कृण्वन्तः श्रितं वपेणोक्षन्तु बालिति ॥ २२ ॥
 उदहमायुरायुषे कृत्वे दक्षाय जीवसे ।
 स्वान् गच्छन्तु ते मनो अर्धा पितृरुपं द्रव ॥ २३ ॥
 मा ते मनो मासो माहानां मा रसस्य ते ।
 मा ते हास्त तन्वः किं चनेह ॥ २४ ॥
 मा त्वां वृक्षः सं वाधिष्ट मा देवी पृथिवी मदी ।
 लोकं पितृषु विस्वैर्धस्य यमराजसु ॥ २५ ॥
 यत् ते अहमतिहितं पराचैः
 अपानः प्राणो य उ वा ते परेतः ।
 तत् तं संगत्य पितरः सर्नीटा
 घासाद् घासं पुनरा वेशयन्तु ॥ २६ ॥
 अपेमं जीवा अरुघन् गृहेभ्यः
 तं निर्वहत् परि श्रामादितः ।
 मृत्युर्यमस्यासीद् द्रुतः प्रचेता
 असन् पितृभ्यो गमयां चकार ॥ २७ ॥
 ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा
 ज्ञातिमुखा बहुतादृश्वरन्ति ।
 परापुरो निपुरो ये मरन्ति
 अग्निधानसात् प्र धमाति युजात् ॥ २८ ॥
 सं विदशन्विद् पितरः स्या नः
 स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः ।
 तेभ्यः शकेम हविषा नशमाणा
 ज्योग् जीयन्तः शरदः पुरुचीः ॥ २९ ॥
 यां तं धेनं निष्णामि यमुं ते शीर ओदनम् ।
 तेना जनस्यासो मुतां योऽत्रासुदजीयनः ॥ ३० ॥
 अर्धावर्ता प्र तर या सुरेय
 अर्शाकं वा प्रनरं नर्षायः ।
 यस्त्यां जघान ययः सो मंस्तु
 मा सो भग्मद् विद्वत् भागधेयम् ॥ ३१ ॥

यमः परोऽधरो विष्वान्
 ततः परं नाति पयामि किं चन ।
 यमे अश्वरो अर्धे मे निर्विद्यो
 भुवो विष्वान्वाततान ॥ ३२ ॥
 अपांगूहन्मृतं मर्त्येभ्यः
 कृत्या सर्वणामदधुर्विष्वते ।
 उताश्विनाधभरद् यत् तदालीद्
 अजंहाद् द्वा मिथुना संरुप्युः ॥ ३३ ॥
 ये निस्तीता ये परीता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
 सर्वास्तान्म आ यद्द पितृन् हविषे अत्तवे ॥ ३४ ॥
 ये अग्निदग्धा ये अनीग्निदग्धा
 मर्त्ये दिवः स्वधयां मादयन्ते ।
 त्वं तान् वैत्य यदि ते जातवेदः
 स्वधयां यज्ञं स्वर्धिति जुषन्ताम् ॥ ३५ ॥
 शं तेषु मार्ति तपो अग्ने मा तुन्वन्तु तपः ।
 वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यजदरः ॥ ३६ ॥
 दवाभ्यसा भवसानमेतद्
 य पप आग्न मम चेदभूदिह ।
 यमश्चिकित्वान् प्रत्येतदाह
 ममैष राय उप तिष्ठतामिह ॥ ३७ ॥
 इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति ।
 शते शरत्सु नो पुरा ॥ ३८ ॥
 प्रेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति ।
 शते शरत्सु नो पुरा ॥ ३९ ॥
 अपेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति ।
 शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४० ॥
 धीमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति ।
 शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४१ ॥
 निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति ।
 शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४२ ॥
 उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति ।

शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४३ ॥
 ससिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासाति ।
 शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४४ ॥
 अमालि मात्रां स्वर्गा मायुमान् भूयासम् ।
 यथापरं न मासाति शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४५ ॥
 प्राणो अपानो ध्यान आयु—अशुद्धं दायं सूर्योप ।
 अवरिपरेण पृथा यमराक्षः पितृन् गच्छ ॥ ४६ ॥
 ये अमरवः दशमानाः परेषुः
 हित्या द्वेषास्वर्नपत्यवतः ।
 ते घामुदित्याविदन्त लोकं
 नाकस्य पूषे अधि दीर्घानाः ॥ ४७ ॥
 उदन्वती घौरधमा पीलुमतीति मप्यमा ।
 तृतीया ह प्रचौरिति यस्यां पितर आसते ॥ ४८ ॥
 ये नः पितुः पितरो ये पितामहा
 य आविद्विशुक्वन्तारिक्षम् ।
 य आश्रियन्ति पृथिवीमुत् घां
 तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ॥ ४९ ॥
 इदमिद् वा उ नापरं दिवि पंथसि सूर्यम् ।
 माता पुत्रं यथा सिचाभ्ये न भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥
 इदमिद् वा उ नापरं जरस्यन्यद्वितोऽपरम् ।
 जाया पतिमिव वाससाभ्ये न भूम ऊर्णुहि ५१
 अग्नि त्वोणोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया ।
 जीवेयुं भद्रं तन्मर्यं स्वधा पितृषु सा त्वर्यि ॥ ५२ ॥
 अग्नीषोमा पथिहता स्थानं
 देवेभ्यो रत्नं दधयुर्वि लोकम् ।
 उप प्रेष्यन्त पुषण यो वहाति
 अजोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम् ॥ ५३ ॥
 पृथा त्वेतद्व्यावयतु प्र विद्वान्
 अनेष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
 स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्यो
 अग्निदेवेभ्यः सुधिदत्रियेभ्यः ॥ ५४ ॥
 (३९३)

आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा
 पुषा त्वां पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
 यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुः
 तत्र त्वा देवः संविता देधातु ॥ ५५ ॥
 इमौ युनक्ति ते बद्धी असुनीताय चोदधे ।
 ताम्यां यमस्य सार्दनं समितीश्चाव गच्छतात् ५६
 एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्
 अपैतद्देहं यद्विहायिमः पुरा ।
 इष्टापुर्तमनुसंक्राम विद्वान्
 यत्र ते दत्तं बहुधा विचन्द्र्युषु ॥ ५७ ॥
 अग्नेर्वमं परि गोभिर्वयस्य
 सं प्रोर्णेष्व मेदसा पार्वसा च ।
 नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जहपाणो
 दधुग् विधक्षन् परीहृन्धयाते ॥ ५८ ॥
 वण्डं हस्तादाददानो गुतासौः
 सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन ।
 अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरु
 विश्वा मूर्धो अभिमातीर्जयेम ॥ ५९ ॥
 धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य
 सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
 समार्यमाय वसु भूरिं पुष्टं
 अर्वाङ् त्वमेहुपे जीवलोकम् ॥ ६० ॥

इयं नारी पतिलोकं वृणाना
 नि पद्यत उप त्वा मर्त्ये प्रेतम् ।
 धर्मे पुराणमनुपालयन्ती
 तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥ १ ॥
 अपदयं युवति नीयमानां
 जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।
 अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत्
 प्राक्तो अपाचीमनयं तदनाम् ॥ ३ ॥
 प्रज्ञानत्युच्ये जीवलोकं
 देवानां पन्थामनुसंहरन्ती ।
 अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व
 स्वर्ग लोकमधि रोहयेनम् ॥ ४ ॥
 उप घामुप वेतसमवचरो नदीनाम् ।
 अग्ने पितृमयामसि ॥ ५ ॥
 यं त्वमग्ने सुमर्दहस्तमु निर्वापया पुनः ।
 क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ॥ ६ ॥
 इदं तु एकं पुर ऊं त एकं
 तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
 संवेशने तुन्वाङ् चारुरोधि
 प्रियो देवानां परमे सधस्यं ॥ ७ ॥
 उव त्रिष्टु मेहि प्र इवाकः
 कृणुष्व सलिले सधस्ये ।
 तत्र त्वं पितृभिः संविदानः
 सं सोमेन मर्दस्य सं स्वघार्भिः ॥ ८ ॥
 प्र च्यवस्व तुन्वं सं भरस्व
 मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
 मनो निर्विष्टमनुसंविदास्व
 यत्र मूर्धेजुपसे तत्र गच्छ ॥ ९ ॥
 वर्चसा मां पितरः सोम्यासो
 अर्जन्तु देवा मर्धना घृतेन ।
 चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो
 अरसे मा अरदधि वर्धन्तु ॥ १० ॥

॥ ३०७ ॥ (अथर्ववेद १८।१।१, ३-४९, ५२, ५४, ५६, ५८-६६, ६८-७३)

अथर्वानां १ वमः, ४४, ४६ मन्त्रोक्ताः, ५-६ अमिः, ५४ इन्द्रः, ५६ आपः (वितृषेभः) । त्रिष्टुप्, ४, ८, ११, २३ घटा पञ्चिकाः, ५ त्रिदपा त्रिचक्रायत्रोः, ६, ५६, ६८, ७०-७२ अजु-द्वुप (५६ आर्षा) ; १८; २५-२९, ४४, ४६ अगती (१८ अरिक्, २९ विराट्) ; ३० अथवाऽतिप्रगती; ३१ विराट् अक्षती; ३२-३५, ४७, ४९, ५२ अरिक्; ३६ एकावधानाऽऽ-मुनेन्द्रुप; ३७ एकावधानाऽऽमूर्धा गायत्री; ३९ परा त्रिष्टुप् पञ्चिकाः, ५४ योऽजुद्वुप, ५८ विराट्; ६० अथवाऽना अथवा अगती; ६४ अरिक् पञ्चापञ्चिकाः; ६९, ७१ उपरिष्टाद् बहती ।

यच्चैसा मां समनकत्वग्निः
 मेधां मे विष्णुर्न्यनकत्वास्त्रम् ।
 रथि मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः
 स्थोना मापः पथेनैः पुनन्तु
 मित्रावरुणा परि मामंधातां
 आदित्या मा स्वरवो धर्धयन्तु ।
 षर्षो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोः
 जरदधि मा सयिता कृणोतु
 यो ममारं प्रथमो मर्त्यानां
 यः प्रेयार्यं प्रथमो लोकमेतम् ।
 वैवस्वते संगमनं जनानां
 यमं राजानं हविषो सपर्यंत
 परां यात पितर आ चं यात
 अयं वो यज्ञो मधुना समक्तः ।
 दत्तो अस्मभ्यं द्रविणह भद्रं
 रथि च नः सर्ववीरं दधात
 कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः
 श्यावाश्वः सोमयज्ञानानाः ।
 विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरग्निः
 अयन्तु नः कश्यपो वामदेवः
 विश्वामित्र जमदग्ने षसिष्ठ
 भरद्वाज गोतम वामदेव ।
 शर्विनी अत्रिरप्रभीन्नमौनिः
 सुसंशासुः पितरो मृडतां नः
 क्रस्ये मृजाना अति यन्ति सिप्रं
 आयुर्देधानाः प्रतरं नवीयः ।
 आप्यार्यमानाः प्रजया धनेन
 अयं स्याम सुरभयो गृहेषु
 अज्रते व्यज्रते समज्रते
 क्रतुं रिदन्ति मधुनाभ्यज्रते ।

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

सिन्धोमच्छ्रयासे पतर्यन्तमुक्षणं
 दिरण्यपायाः पशुमांसु गृहते
 ॥ १८ ॥
 यद् वो मुद्रं पितरः सोम्यं च
 तेजो सचष्यं स्वयंशासो हि भुत ।
 ते अर्वाणः कवय आ दृणोत
 सुविदम्रा विदर्थे ह्यमीनाः
 ॥ १९ ॥
 ये अत्रयो अद्भिरसो नयग्वा
 इष्टयन्तो रातिपाचो दधानाः ।
 दक्षिणावन्तः सुरुतो य उ स्थ
 आसद्यास्मिन् परिधिपि मादयधम्
 ॥ २० ॥
 अधा यथा नः पितरः परांसः
 प्रजासो अग्र ऋतमांशशानाः ।
 शुचीदयन् दीर्घत उफ्यशासः
 क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरपे वन्
 ॥ २१ ॥
 सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो
 अयो न देवा जनिम्रा धर्मन्तः ।
 शुचन्तो अग्निं वावृधन्त इन्द्रं
 उर्वी गव्यां परिपदे नो अक्रन्
 ॥ २२ ॥
 आ युथेव क्षुमतिं पश्वो
 अरुधद् देवानां जनिमान्पुम्रः ।
 मतीसिध्रुवर्षशरिर्कृप्रन्
 वृधे चिद्वयं उपरस्यायोः
 ॥ २३ ॥
 अकर्म ते स्वपंसो अभूम
 ऋतमवस्त्रुपसो विभातीः ।
 विश्वं तद् भद्रं यदधन्ति देवा
 बृहद् वदेम विदर्थे सुवीराः
 ॥ २४ ॥
 इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्यां दिशः
 पातु बाहुच्युतां पृथिवी घामिषोपरि ।
 लोककृतेः पथिकृते यजामहे
 ये देवानां हुतमांगा इह स्थ
 ॥ २५ ॥
 (१९०१)

धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पातु
 बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे
 ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २६ ॥

अदितिर्मादित्यैः प्रतीच्यां दिशः पातु
 बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे
 ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २७ ॥

सोमो मा विश्वैर्देवैरुदीच्या दिशः पातु
 बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे
 ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २८ ॥

धृता इ त्वा धरुणो धारयाता
 ऊर्ध्वं भानुं संविता धामिबोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे
 ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २९ ॥

प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः
 स्वधायामा दधामि
 बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे
 ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३० ॥

दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृतः
 स्वधायामा दधामि
 बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे
 ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३१ ॥

प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः
 स्वधायामा दधामि
 बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे
 ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३२ ॥

उदीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः
 स्वधायामा दधामि
 बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे
 ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३३ ॥

ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा संवृतः
 स्वधायामा दधामि
 बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे
 ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३४ ॥

ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा संवृतः
 स्वधायामा दधामि
 बाहुच्युता पृथिवी धामिबोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे
 ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३५ ॥

धृतांसि धरुणोऽसि धंसंगोऽसि ॥ ३६ ॥
 उदपूर्सि मधुपूर्सि वातपूर्सि ॥ ३७ ॥
 इतश्च मासुतध्यावतां युमे इष यत्तमाने यद्वैतम् ।
 प्र यां भरन् मानुषा देवयन्तो ॥ ३८ ॥
 आ सीदतां स्वर्गं लोकं विदोने ॥ ३९ ॥
 स्वासंस्थे मवतमिन्देय नो युजे
 धां ब्रह्मं पुष्यं नमोभिः ।
 वि श्लोकं पति पृथ्येऽव सूरिः
 शृण्वन्तु विश्वं अमृतं स पतत् ॥ ३९ ॥
 श्रीर्षि पदानि रूपो अन्वरोहत्
 चतुर्गण्डोमन्वैतद् धृतेन ।
 अक्षरेण प्रति मिमीते अक्षं
 श्रुतस्य नामाधमि सं पुनाति ॥ ४० ॥

द्वेषेभ्यः कामघृणीत मृशुं
 प्रजायै किमगृत्तुं नाघृणीत ।
 घृहस्पतिर्वेदमंतनुत ऋषिः
 प्रियां यमस्तन्युमा रिरिच
 त्वमंग्र इदितो जातयेदो
 अवाद्ब्रह्म्यानि सुरभीणि कृत्वा ।
 प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षर
 अस्ति त्वं देव प्रयता हवींषि
 आसीनासो अरुणीनामुपस्थे
 रयि धत्त दाशुपे मत्याय ।
 पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः
 प्र यच्छत त इहोर्जे दधात
 धर्मिष्वासाः पितर एह गच्छत
 सदांसदः सदत सुप्रणीतयः ।
 असो हवींषि प्रयतानि धर्हिषि
 रयि च नः सर्ववीरं दधात
 उर्षहता नः पितरः सोभ्यासो
 वर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
 त आ गमन्तु त इह भुवन्तु
 अर्थि भुवन्तु तेऽवन्त्यस्मान्
 ये नः पितुः पितरो ये पितामहा
 अन्जहिरे सोमपीथ वसिष्ठाः ।
 तेभिर्यमः संरानो हवींषि
 उशन्नशक्तिः प्रतिकाममन्तु
 ये तातुपुद्वेवत्रा जेहमाना
 होत्राविदः स्तोमंतघासो अकैः ।
 आग्ने याहि सहस्रं देववन्देः
 सत्यैः कृविभिर्ऋषिभिर्घर्मसक्तिः
 ये सत्यासो हविरदो हविष्पा
 इन्द्रेण देवैः सरथै तुरेण ।

धार्तं याहि सुदिद्वंभिर्याद्
 परं पूर्णं विनिर्गमंतकिः ॥ ४८ ॥
 उर्ष मर्षं मातरं भूमिमेता
 ॥ ४१ ॥ उरुप्यचंतं पृथिवीं सुदोषाम् ।
 उर्णघदाः पृथिवीं दक्षिणापत
 एषा त्यां पातु प्रपथे पुरस्तात् ॥ ४२ ॥
 उत्तं तं स्तभ्रामि पृथिवीं त्यत् पर्णमं
 ॥ ४२ ॥ लोमं निदधन्मो धृष्टं रिरयम् ।
 एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति
 ते तत्र यमः सादेना ते कृणोतु ॥ ४२ ॥
 अर्षपां पूर्णं चमसं यमिन्द्राय
 ॥ ४३ ॥ अविमयांजिनीयते ।
 तस्मिन् कृणोति सुकृतस्यं भक्षं
 तस्मिन्दुः पयते विष्यदानीम् ॥ ४४ ॥
 पर्यस्वतीरोपधयः पर्यस्वन्मामकं पर्यः ।
 अपां पर्यसो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ५६
 ॥ ४४ ॥ सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन
 इष्टापुतेन परमे ध्योमन् ।
 द्वित्वायुधं पुनरस्तमेहि
 ॥ ४५ ॥ सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ ५८ ॥
 ये नः पितुः पितरो ये पितामहा
 य आविविशुशुर्वं न्तरिक्षम् ।
 तेभ्यः स्वराडसुनीतिनो अद्य
 यथावशं तन्वाः कल्पयाति ॥ ५९ ॥
 शं तं नीह्योरो भवतु शं तं प्रुष्यावं शीयताम् ।
 शीतिके शीतिकावति हार्दिके हार्दिकावति ।
 मण्डुक्युपुशु शं भुव इमं स्वमुग्निं शमय ॥ ६० ॥
 विवस्वान्नो अभयं कृणोतु
 ॥ ४७ ॥ यः सूत्रामां जीरदातुः सुदातुः ।
 इहेमे वीरा बहुवीं भवन्तु
 गोमदश्वं वन्मथ्यंस्तु पृष्टम् ॥ ६१ ॥

विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु
परंतु मृत्युमृतं न पेतु ।
इमान् रक्षतु पुंरुपाना जर्मिणो
मो ष्वेपामसंबो यमं गुः
॥ ६२ ॥
यो दधे अन्तरिक्षे न मद्रा
पितृणां कृचिः प्रमर्तिर्मतीनाम् ।
तर्मचत विश्वमित्रा हविर्मिः
स नो यमः प्रतरं जीवसे धात्
॥ ६३ ॥
आ रोहत दिग्मुत्तमां
श्रुपयो मा विभीतन ।
सोमपाः सोमपायिन इदं वः
क्रियते हविरगमं ज्योतिरुत्तमम्
॥ ६४ ॥
प्र केतुना बृहता मात्यग्निः
आ रोदसी वृपभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानद्
अपामुपस्थे महिपो ववर्ध
॥ ६५ ॥
नाके सुपूर्णमुप यत् परन्तं
हुदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य द्रुतं
यमस्य योनौ शकुनें मुरण्युम्
॥ ६६ ॥
अपूपारिहितान् कुम्भान् यांस्तै देवा अधारयन् ।
ते तै सन्तु स्वधार्वन्तो मधुमन्तो घृतश्रुतः ६८
यास्तै प्राणा अनुकिराते
त्रिलमित्राः स्वधार्वतीः ।
तास्तै सन्तु विग्धीः प्रग्धीः
तास्तै यमो राजानुं मन्यताम्
॥ ६९ ॥
पुनर्देहि वनस्पते य एप निर्हितस्त्वयि ।
यथा यमस्य सार्दन आसति विद्या वर्दन ७०
आ रमस्य जातपेद्-स्तेजस्यदरो अस्तु ते ।
शरीरमस्य सं द्वायै-नं धेहि सृष्टानु लोके ७१

ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।
तेभ्यो घृतस्य कल्पयितु शतधारा व्युन्ती ७२
पूतदा रोह वयं उन्मृजानः
स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।
अमि मोहि मध्यतो मार्ष हास्याः
पितृणां लोके प्रथमो यो अत्र ॥ ७३ ॥

॥ ३०८ ॥ (अथर्व ० १८०१-८९)

अथर्व । यमः, मन्त्रोक्ताः, ८१ पितरः, ८८ अमिः, ८९ चन्द्रमाः । त्रिष्टुप्, १,४,७,१४,२६,६० भुरिक्; २,५,११ २९,५०-५१,५८ अगती, ३ पञ्चपदा सुरिगतिअगती; ६,९, १३ पञ्चपदा शकरो (९ भुरिक्, १३ ऋवसाना); ८ पञ्चपदाऽतिशकरो, १२ महाबृहती; १६-२४ त्रिपदा सुरि- छमहाबृहती; २६,३३,४३ अग्निष्टाद्बृहती (२६ विराट्); २७ याजुषी गायत्री; २५, ३१-३२,३८,४१-४२,५५-५७, ५९, ६१ अनुष्टुप् (५६ ककुम्भती); ३९,६२-६३ आस्ता- रपञ्क्तिः; (३९ पुरोविराट्, ६२ भुरिक्, ६३ खराट्); ४९ अनुष्टुपगमां त्रिष्टुप्; ५३ पुरोविराट् घतः पञ्क्तिः; ६६ त्रिपदा स्वराट् गायत्री; ६७ त्रिपदाऽऽर्च्यनुष्टुप्; ६८,७१ आशुमेनुष्टुप्; ७२-७४,७९ आसुरी पञ्क्तिः; ७५ आसुरी गायत्री, ७६ आसुरीपञ्क्तिः; ७७ देवी अगती; ७८ आसुरी त्रिष्टुप्, ८० आसुरी अगती; ८१ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ८२ साम्नी बृहती; ८३-८४ साम्नी त्रिष्टुप्, ८५ आसुरी बृहती; (६७-६८- ७१-८६ एहावसाना); ८९-८७ अनुष्टुपा सम्पिक्; (८६ ककुम्भती, ८७ शकृमती); ८८ ऋवसाना पध्यापञ्क्तिः; ८९ पञ्चपदा पध्यापञ्क्तिः ।

आ रोहतः जनित्रो जातवेदसः
पितृयाणः सं य आ रोहयामि ।
अयाद्द्व्येपितो ह्यव्यवाह
ईजानं युक्ताः सृष्टतां धत्त लोके ॥ १ ॥
देवा यन्नमृतयः कल्पयन्ति
हविः पुरीडाशं सुचो यन्नायुधानि ।
तेभिर्वाहि पृथिभिर्देवयानैः
यैरीजानाः स्युर्गं यन्ति लोकम् ॥ २ ॥

ऋतस्य पन्थामनु पश्य साधु
 अङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति ।
 तेभिर्वाहि पृथिवीः स्वर्गं यत्रादित्या
 मधुं भक्षयन्ति तृतीये नाकं अग्निं वि धीयस्य ॥३॥
 प्रयः सुपूर्णा उर्परस्य मायू
 नाकस्य पृष्ठे अग्निं विष्टिपिं श्रिताः ।
 स्वर्गा लोका अमृतैर्न विष्टा
 इपमूर्जे यजमानाय दुहाम् ॥ ४ ॥
 जुह्वदाधार चामुपभृदन्तरिक्षं
 ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम् ।
 प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गोः
 कामैकामं यजमानाय दुहाम् ॥ ५ ॥
 ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसं
 अन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्य ।
 जुहु चां गच्छ यजमानेन साकं
 स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः
 सर्वा ध्रुवाहणीयमानः ॥ ६ ॥
 तीर्थस्तेरन्ति प्रवतो महीरिति
 यल्लकृतः सुकृतो येन यन्ति ।
 अत्रादधुर्यजमानाय लोकं
 दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥ ७ ॥
 अङ्गिरस्तामर्यनं पूर्वो अग्निरादित्यानामर्यनं गार्हपत्यो
 दक्षिणानामर्यनं दक्षिणाग्निः ।
 महिमानमग्नेर्विद्वितस्य ब्रह्मणा
 समेहः सर्वं उर्प याहि शग्मः ॥ ८ ॥
 पूर्वो अग्निर्वा तपतु शं पुस्त्यात्
 शं पश्चात् तपतु गार्हपत्यः ।
 दक्षिणाग्निर्पे तपतु शमं चमोत्तरतो
 मभ्यतो अन्तरिक्षाद् दिशोर्दिशो
 अग्ने परि पाहि घोरात् ॥ ९ ॥

ययमग्ने शंतेमाभिस्तन्मिः
 ईजानमग्नि लोकं स्वर्गम् ।
 अग्नां भूत्वा पृष्टिवाहो यदाप्
 यत्र वैवेः संध्रमादं मर्दन्ति ॥ १० ॥
 शमग्ने पश्चात् तप शं पुस्त्यात्
 शमुत्तराच्छमंधरात् तपेनम् ।
 एकलोधा विहितो जातवेदः
 सम्पगेनं धेहि सुकृतांमु लोकः ॥ ११ ॥
 शमग्रयः समिन्ना आ रभन्तां
 प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
 शूतं कृण्वन्तं इह मार्चं चिक्षिपन् ॥ १२ ॥
 यद्द पतिं विततः कल्पमानः
 ईजानमग्नि लोकं स्वर्गम् ।
 तमग्रयः सर्वहुतं जुपन्तां
 प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
 शूतं कृण्वन्तं इह मार्चं चिक्षिपन् ॥ १३ ॥
 ईजानश्चित्तमारक्षन्मि
 नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत् पतिष्यन् ।
 तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्
 स्वर्गः पन्थाः सुकृते वेवपानः ॥ १४ ॥
 अग्निर्दोताभ्वर्युष्टे बृहस्पतिः
 इन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु ।
 हुतोऽयं संस्थितो यद्द पतिं
 यत्र पूर्वमर्यनं हुतानाम् ॥ १५ ॥
 अपूपवान् क्षीरवांश्चरहेह सीदतु ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे
 ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १६ ॥
 अपूपवान् दधिवांश्चरहेह सीदतु ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ १७ ॥
 अपूपवान् प्रत्तवांश्चरहेह सीदतु ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० ॥ १८ ॥

अपूपवान् घृतवांश्चरुहे सीदतु ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये०
 अपूपवान् मांसवांश्चरुहे सीदतु ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये०
 अपूपवान् प्रवांश्चरुहे सीदतु ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये०
 अपूपवान् मधुमांश्चरुहे सीदतु ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये०
 अपूपवान् रसवांश्चरुहे सीदतु ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये०
 अपूपवान् पर्ववांश्चरुहे सीदतु ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये०
 अपूपवापिहितान् कुम्भान् यांस्तै देवा अधारयन् ।
 ते तै सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतक्षुतः ॥२५॥
 यास्तै धाना अनुकिरामि
 तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
 तास्तै सन्तुदग्धीः प्रग्धीस्ताः
 तै यमो राजानु मन्यताम् ॥ २६ ॥
 अक्षिति भूयसीम् ॥ २७ ॥
 द्रुपसर्धस्कन्द पृथिवीमनु धां
 इमं च योनिमनु यक्ष पूर्वः ।
 समानं योनिमनु संचरन्तं
 द्रुपं जुहोम्यनु सप्त दोषाः ॥ २८ ॥
 शतधारं घायुमकं स्वर्चिदं
 नृचक्षुस्ते अभि वंशते रापिम् ।
 ये पूषन्ति प्र नृ चक्षन्ति सर्वदा
 ते दुहते दक्षिणां सप्तमातरम्
 कोशं दुहन्ति कुलानं चतुर्विहं
 इडां धेनुं मधुमतीं स्पृशयै ।
 ऊर्जं मदन्तीमादति जनेषु
 अग्रे मा हिंसीः परमे प्योमन् ॥ ३० ॥

पूतत् तै देवः संपिता वासो ददाति मर्तये ।
 तत् त्वं यमस्य राज्ये वासानस्ताप्यं चर ॥३१॥
 धाना धेनुरभयद् यत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।
 तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥ ३२ ॥
 पूतास्ते असौ धेनवः कामदुर्घा भवन्तु ।
 पनीः श्येनीः सरूपा विरूपाः
 तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु स्वार्त्रं ॥ ३३ ॥
 पनीर्धाना हरिणाः श्येनीरस्य
 कृष्णा धाना रोहिणीधेनवस्ते ।
 तिलवत्सा ऊर्जमस्मं दुहाना
 विश्वाहा सन्त्यनपस्फुरन्तीः ॥ ३४ ॥
 चैवानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्समम् ।
 स विभति पितरं पितामहान्
 प्रपितामहान् विभति पित्र्यमानः ॥ ३५ ॥
 सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं
 व्यच्यमानं सलिलस्यं पृष्टे ।
 ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तं
 उपासते पितरः स्वधाभिः ॥ ३६ ॥
 इदं कसाम्बु चयनेन चितं
 तत् संजाता अवं पदयतेतं ।
 मर्त्याऽयममृतत्वमेति तस्मै
 गृहान् हृणुत यावत्सपयंभु ॥ ३७ ॥
 इद्वैधि धनसनि रिद्विचि स इहमनुः ।
 इद्वैधि नीर्यचत्तरो वयोधा शर्पादतः ॥ ३८ ॥
 पुत्रं पौत्रमभितपयन्ती रापो मधुमतीरिमाः ।
 स्वधां पियुभ्यो अमृतं दुहाना
 आपो देवीकृम्यान्मपयन्तु ॥ ३९ ॥
 आपो अग्निं प्र हिणुत विनैरु
 इमं यमं पितरं मे दुग्न्तान् ।
 आर्मीनामुत्तु यं सर्वान्
 ते नो भुवि मर्दन्ति नि र्यच्छान् ॥ ३० ॥

समिन्धते अमर्त्यं हृद्यवाहं घृत्प्रियम् ।
 स वैद निहिताग्निधीन् पितृन् परायतो गतान् ४१
 यं ते मन्थं यमोदुनं यन्नासं निपुणामि ते ।
 ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्रुतः ॥४२॥
 यास्ते धाना अनुकिरामि
 तिलमिधाः स्वधावनीः ।
 तास्ते सन्तुदुग्धीः प्रग्धीः
 तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥ ४३ ॥
 इदं पूर्वमपरं नियानु
 येनां ते पूर्वं पितरः परैताः ।
 पुरोगवा ये अग्निशाचो अस्य
 ते त्वां वहन्ति सृकृतामु लोकम् ॥ ४४ ॥
 सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते
 सरस्वतीमध्वरे तायमानि ।
 सरस्वतीं सृकृतो हवन्ते
 सरस्वतीं दाशुपे वार्यै दातु ॥ ४५ ॥
 सरस्वतीं पितरो हवन्ते
 दक्षिणा यक्षमभिनक्षमाणाः ।
 आसपास्मिन् वहिषि मादयष्यं
 धनमीवा इप आ चैह्यसे ॥ ४६ ॥
 सरस्वति या सरथं ययाद्य
 उषयैः स्वधामिदैवि पितृभिर्मदेन्ती ।
 सहस्राधमिदो अत्र भागं
 रायस्पोपं यजमानाय धेदि ॥ ४७ ॥
 पृथिवीं त्वां पृथिव्यामा चैशयामि
 देवो नो धाता प्र तिसृतायुः ।
 परापरंता ययुविद् धो अस्तु
 अथा मृताः पितृषुः सं मपन्तु ॥ ४८ ॥
 आ प्र ष्यंषेधामप तन्मृजेपां
 पद् पांमग्निभा भक्षोषुः ।

अस्मादेतमभ्युतो तद् वशीयो
 दातुः पितृष्विहभोजनो मम ॥ ४९ ॥
 पयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो
 अनेन दत्ता सुदुर्घा वयोधाः ।
 यौवने जीवानुपपृञ्जती जरा
 पितृभ्य उषसंपरणयादिमान् ॥ ५० ॥
 इदं पितृभ्यः प्र भंरामि वहिः
 जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि ।
 तदा रोह पुरुष मेध्या भवन्
 प्रति त्वा जानन्तु पितरः परैतम् ॥ ५१ ॥
 पदं वहिंसदो मेध्याऽभुः
 प्रति त्वा जानन्तु पितरः परैतम् ।
 यथापर तन्वं सं भंरस्व
 गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ॥ ५२ ॥
 पूर्णो राजाविधानं चरुणं
 ऊर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
 आयुर्जीवेभ्यो विदधद्
 दीर्घायुत्वार्यं शतशारदाय ॥ ५३ ॥
 ऊर्जो भागो य इमं जजान
 अस्माद्यानामाधिपत्यं जगाम ।
 तमर्चत विश्वमिथा हविभिः
 स नो यमः प्रतरं जीवसे धातु ॥ ५४ ॥
 यथा यमार्यं हृष्यं—मवपन् पञ्च मानवाः ।
 पया वपामि हृष्यं यथा मे भूरयोऽस्त ॥ ५५ ॥
 इदं दिरण्यं विश्वदि यत् ते पिताविभः पुरा ।
 स्यगं यतः पितुर्दस्तं निर्मृष्टि दक्षिणम् ॥ ५६ ॥
 ये च जीया ये च मृता
 ये ज्ञाता ये च युधिवाः ।
 तेभ्यो घृतस्यं वृज्यैतु मधुधारा ध्युमृती ५७
 (१४०९)

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः
 स्रो अर्हा प्रतरितोपसां दिवः ।
 प्राणः सिन्धूनां कलशां अधिकवद्
 इन्द्रस्य हादिमाविशन् मनीषया ॥ ५८ ॥
 त्वेपस्ते धुम ऊर्णोतु द्विधि पञ्चकृत् आततः ।
 स्रो न हि घृता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥५९॥
 प्र वा पुतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं
 सखा सप्युन प्र रिनाति संगिरः ।
 मर्ये इव योषाः समर्पले
 सोमः कलशे शतरामना पृथा ॥ ६० ॥
 अश्वत्थमीमदन्त ह्यर्च प्रियां अंधूपत ।
 अस्तौपत स्वमानयो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥६१॥
 आ यात पितरः सोम्यासौ
 गम्भीरैः पृथिभिः पितृषाणः ।
 आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च
 रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥ ६२ ॥
 परां यात पितरः सोम्यासौ
 गम्भीरैः पृथिभिः पृषाणः ।
 अर्धा मासि पुनरा यात नो गृहान्
 हविरत्तं सुप्रजसः सुवीराः ॥ ६३ ॥
 यद् यौ अशिरर्जहादेकमर्कं
 पितृलोकं गमयं जातवेदाः ।
 तद् यं पतत् पुनरा प्याययामि
 साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ॥ ६४ ॥
 अर्भुद् दूतः प्रहितो जातवेदाः
 सायं न्यङ्गं उपवन्त्यो नृभिः ।
 प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अङ्गन्
 अदि त्वं देव प्रयता हवीर्षि ॥ ६५ ॥
 असौ हा इह ते मनः कर्कुत्सलमिव जामयः ।
 मग्येन भूम ऊर्णदि ॥ ६६ ॥

शुम्भन्तां लोकाः पितृपदना
 पितृपदने त्वा लोक आ सादयामि ॥ ६७ ॥
 येऽस्माकं पितरस्तेषां वर्हिरसि ॥ ६८ ॥
 उदुत्तमं वरुण० ॥ ६९ ॥
 प्रासत् वाशान् वरुण मुञ्च सर्धान्
 यैः संमामे वृष्यते येर्व्यामि ।
 अर्धा जीवेम शरदं शतानि
 त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणाः ॥ ७० ॥
 अन्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥ ७१ ॥
 सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७२ ॥
 पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः ॥ ७३ ॥
 यामाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७४ ॥
 पतत् तं प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७५ ॥
 पतत् तं ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७६ ॥
 पतत् तं तत स्वधा ॥ ७७ ॥
 स्वधा पितृभ्यः पृथिविपद्भ्यः ॥ ७८ ॥
 स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥ ७९ ॥
 स्वधा पितृभ्यो दिविपद्भ्यः ॥ ८० ॥
 नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय ॥ ८१ ॥
 नमो वः पितरो भार्माय ॥ ८२ ॥
 नमो वः पितरो मन्यवे ॥ ८२ ॥
 नमो वः पितरो यद् घोरं तस्मै
 नमो वः पितरो यत् दुरं तस्मै ॥ ८३ ॥
 नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै
 नमो वः पितरो यत् स्योनें तस्मै ॥ ८४ ॥
 नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः ॥ ८५ ॥
 येऽत्र पितरः पितरो येऽत्र यूयं स्य
 युष्मांस्तेऽनु यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्य ॥ ८६ ॥
 य इह पितरो जीवा इह वृयं संः ।
 अस्मांस्तेऽनु वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म ॥ ८७ ॥

आ त्वांश्च इधीमहि धूमन्तं देवाजर्म् ।
 यद् घ सा ते पर्नीयसां समिद् दीदर्यति धर्यि ।
 इयं स्तोत्रभ्य आ भर ॥ ८८ ॥
 चन्द्रमा अस्त्वन्तरा सुपणों धावते द्विवि ।
 न वों हिरण्यनेमयः पदं विध्वन्ति विद्युतो
 वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ८९ ॥

॥ ३०९ ॥ (ऋ० ८।३।१-४)

मनुर्वैवस्वतः । यशः, यजमानश्च । गायत्री ।

यो यजाति यजात इत् सुनर्वञ्च पचाति च ।
 ग्रहोदिन्द्रस्य चाकनत् ॥ १ ॥
 पुरोळाशं यो अस्मै सोम ररत आशिरम् ।
 पादित् तं शक्रो अंहसः ॥ २ ॥
 तस्यं धूमो अंसुद् रथो देवजुतः स शंशुवत् ।
 विश्वा धन्वन्मित्रिया ॥ ३ ॥
 अस्यं प्रजावती गृहे ऽसञ्चन्ती दिवेदिवे ।
 इला धेनुमती दुहे ॥ ४ ॥

॥ ३१० ॥ (ऋ० १०।१८।१-२)

प्रजावान प्राजापत्यः । १ यजमानः २ यजमानपत्नी । मिश्रः ।

अर्पश्यं त्वा मर्नसा चेक्रितानं
 तर्पसो ज्ञातं तर्पसो विश्रुतम् ।
 इह प्रजामिह रयि रराणः
 प्र जायस्व प्रजया पुत्रकाम ॥ १ ॥
 अर्पश्यं त्वा मर्नसा दीर्घानां
 स्वायां तनू अद्वये नार्धमानाम् ।
 उप मामुच्चा युवतिर्वभूयाः
 प्र जायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥ २ ॥

॥ ३११ ॥ (अथर्व० ७।९।१-८) [यज्ञः]

॥ ३१२ ॥ (अथर्व० १९।१।१-३)

मदा । यशः, चन्द्रमाद्यः । १-२ यथावृष्टी, ३ पृष्णि ।

तं नं प्रैवन्तु नृपः । सं घाताः सं पतत्रिणः ।
 यद्मिमं वर्धयता गिरः
 संस्त्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ १ ॥

इम होमा यद्ममव-तेमं संस्त्रावणा उत ।
 यद्मिमं वर्धयता गिरः
 संस्त्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ २ ॥
 रूपंरूप वयोवयः संरभ्यंनं परं पजजे ।
 यद्मिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु
 संस्त्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥
 ॥ ३१३ ॥ (अथर्व० १९।५८।१-६)
 मदा । यशः, बहुदेवत्वम् । त्रिष्टुप्, २ पुरोऽनुष्टुप्; ३ षट्
 षडाऽतिशक्ती, ५ भुरिक् ।

घृतस्यं जूतिः समना सदेवा
 संघत्सुरं हविषा वर्धयन्ती ।
 श्रोत्रं चक्षुः प्राणोच्छिन्नो नो
 अस्त्वच्छिन्ना वयमार्युषो वचसः ॥ १ ॥
 उपासान् प्राणो ह्ययता-मुप वयं प्राणं हवामहे ।
 वचो जग्राह पृथिव्यन्तरिक्षं
 वचः सोमो बृहस्पतिर्विद्युत् ॥ २ ॥
 वचसो धावापृथिवी संग्रहणी बभूवधुः
 वचो गृहीत्वा पृथिवीमनु स चरेम ।
 यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीः
 यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम ॥ ३ ॥
 द्रजं कृणुध्वं स हि यो नृपाणो
 धर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथुर्नि ।
 पुरः कृणुध्वमार्यसीरधृष्टा
 मा वः सुखोद्यमसो देहता तम् ॥ ४ ॥
 यद्मस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च
 घाचा श्रोत्रेण मर्नसा जुहोमि ।
 इमं यद्मं धिततं विश्वकर्मणा
 देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥ ५ ॥
 ये देवानामृत्विजो ये च यक्षिया
 येभ्यो हृष्यं क्रियते भागधेयम् ।
 इमं यद्मं सद्द पदीभिरेत्य
 यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥ ६ ॥

॥ ३१४ ॥ (अथर्वं १९।५९।१)

प्रगा। अग्निः (यज्ञः) । त्रिष्टुप् ।

यद् वीं वृयं प्रमिनामं व्रतानि

विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।

अग्निष्टद् विश्वादा पृणातु विद्वान्

सोमस्य यो ब्राह्मणा आविवेशं

॥ २ ॥

॥ ३१५ ॥ (अथर्वं ७।९९।१)

अथर्वा । वेदी । सुरिक् त्रिष्टुप् ।

परिं स्तृणीहि परिं धेहि वींदि

मा जामि मौपीरमुया शयानाम् ।

होतृपदंनं हरितं हिरण्ययं

निष्का एते यजमानस्य लोके

॥ १ ॥

॥ ३१६ ॥ (ऋ० १।३६।३-१४)

कृन्वो घोः । (अग्निः) वृयः । प्रगायः [विषमा बृहती+
समा सतोद्दृहति] (१३ उपरिष्टाद्बृहती । ऐ. मा. १।२
वरणच्छेदः) ।

ऊर्ध्वं ऊ पु णं ऊनये तिष्ठां देवो न संविता ।

ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता

यदाग्निर्मिर्वावाग्निर्विद्विष्यामहे

॥ १३ ॥

ऊर्ध्वो नः पाह्यहंसो नि केतुना

विभ्यं समग्रिणं दह ।

कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे

विदा देवेषु नो दुर्वः

॥ १४ ॥

॥ ३१७ ॥ (ऋ० ३।८।१-१०)

गायिनो विश्वामित्रः । वृयः, ६-१० वृयाः, ८ विधे देवा
वा । त्रिष्टुप्; ३, ५ अनुष्टुप् ।

अञ्जान्ति त्वामर्घ्ये देवयन्तो

वनेस्पते मधुना देव्येन ।

यदुर्ध्वेस्तिष्ठा द्रविणेह धंसाद्

यद् वा क्षयौ मातुरस्या उपस्थं

॥ १ ॥

सामिदस्य धर्यमाणः पुरस्ताद्

ब्रह्म वन्धानो अजरं सुवीरम् ।

आरे अस्वदर्मातिं वार्धमान

उच्छ्रयस्व महेते सोमगाय

॥ २ ॥

उच्छ्रयस्व वनस्पते घर्षेन् पृथिव्या अधि ।

सुमिती मीयमानो वर्यो धा यज्ञवाहसे ॥ ३ ॥

युवां सुवासाः परिवीत आगात्

स उ श्रेयान् भवति जायमानः ।

तं धीरांसः क्वय उन्नयन्ति

स्वाभ्योऽु मनसा देवयन्तः

॥ ४ ॥

जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां

समर्थ आ विद्ये वर्धमानः ।

पुनन्ति धीरां अपसौ मनीषा

देव्या विप्र उद्वियतिं वार्धम्

॥ ५ ॥

यान् वो नरो देवयन्तो निमिष्युः

घनस्पते स्वर्धितिया ततश्च ।

ते देवासः स्वरवस्तास्थियांसः

प्रजावदसे दिधिपन्तु रत्नम्

॥ ६ ॥

ये वृष्णासो अधि क्षमि निर्मितसो यतस्तुचः ।

ते नो व्यन्तु वार्यं देवना क्षेपुसाधसः ॥ ७ ॥

आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा

द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।

सजोपसो यज्ञमवन्तु देवा

ऊर्ध्वं कृण्वन्वध्वस्यं केतुम्

॥ ८ ॥

हंसा इव श्रेणिशो यतानाः

शुक्रा वसानाः स्वरवो न आर्गुः ।

उत्तरीयमानाः कृविभिः पुरस्ताद्

देवा देवानामपि यान्ति पार्थः

॥ ९ ॥

शृङ्गाणीवेच्छुक्रिणां सं दृष्ट्रे

चपालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम् ।

वाघद्विर्वा विह्वे श्रोत्रमाणा

असौ भवन्तु पृतनाज्येयु

॥ १० ॥

॥ ३१८ ॥ (वा० य० ६।९-३, ६)
(यूपः ।)

अग्नेरिंसि स्वावेश उञ्जेतुणां
पतस्यं चित्तादधि त्वा स्थास्यति
देवस्त्वा सविता मध्वानकतु
सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः ।

धामग्नेणारूपक्षु भान्तरिक्षं
मर्धेनाप्राः पृथिवीमुपरिणाहृहीः
या ते धामान्युदमसि गर्मधै
यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुङ्गायस्य विष्णोः
परमं पदमर्चमारि भूरि ।

ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं रायस्पोपवनिं पर्युहामि ।
ब्रह्मं हृहृ क्षत्रं हृहृहायुहृहृ प्रजां हृहृ ॥ ३ ॥

पृथिवीरिंसि परिं त्वा दैवीविंशो व्ययन्तां
परीमं यजमानं रायो मनुष्याणाम् ।
द्विषः सुनुरस्येप ते पृथिव्यांल्लोक
आरण्यत्सं पन्तुः

॥ ३१९ ॥ (वा० य० ११।४६)
(यूपः ।)

होतां यद् यद् यन्नस्पतिमभि हि
विष्टतमया रमिष्टया रक्षनयाधितं ।
यत्राभिनोदउगस्य हविषः प्रिया धामानि
यत्र परम्यत्या मेपम्यं हविषः प्रिया धामानि
यत्रेन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि
यत्रागोः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि
यत्रेन्द्रस्य सुशाम्नाः प्रिया धामानि
यत्रं सवितुः प्रिया धामानि
यत्र परमस्य प्रिया धामानि
यत्र यन्नस्पतिः प्रिया धामानि
यत्रं देवानामाग्यपानां प्रिया धामानि

यत्राग्नेहोतुः प्रिया धामानि
तत्रैतान् प्रस्तुत्यैवोपस्तुत्यैवोपावस्यद्
रभीयस इव कृत्वी करद्
एवं देवो यन्नस्पतिर्जुपतां हविर्होतयजं ॥ ४६ ॥

॥ ३२० ॥ (वा० य० १८।१०)
(यूपः ।)

देवो देवैर्वन्नस्पतिर्हिरण्यपणो मधुशायः
सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत् ।
दिवमग्नेणारूपक्षुदान्तरिक्षं पृथिवीर्महृहीद्
वसुवने वसुधेयस्य वेतु यजं ॥ २० ॥

॥ ३२१ ॥ (अथर्व० ७।१८।१)

अथवा । इन्द्रः, विश्वे देवाः (हविः) । विशद् विश्वम् ।

सं वृद्धिरक्तं हविषो घृतेन
समिन्द्रेण वसुना सं मर्धाङ्गः ।
सं देवैर्विश्वदैवेभिरक्तं
इन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा ॥ १५ ॥

॥ ३२२ ॥ (श्र० १०।१३।१-५)

आहिर्देविधानः विवस्त्रानादित्यो वा । हविधानो । त्रिष्टुप्,
५ जगती ।

युजे वां ब्रह्मं पूष्यं नमोभिः
चि श्लोकं पतु पुष्यं च सुरैः ।
शुण्वन्तु विभ्यं अमृतस्य पुत्रा
आ ये धामानि द्विष्यानि तस्युः ॥ १ ॥
यमे इयं यतमाने यदैतं
म यो भवन् मानुषा देववन्तः ।
आ सीदते स्वमु लोके चिदाने
स्वामुभ्ये भयतामिन्द्रैवे नः ॥ २ ॥
पञ्चं पुदानि रूपो अर्धरोहं
चतुष्पत्नीमर्धेभि प्रतेनं ।
अक्षरं प्रति मिम पतां
श्रुतस्य नाम्नाधि सं पुनामि ॥ ३ ॥

देवेभ्यः कर्मवृणीत मृत्युं
प्रजापे कर्ममृतं नावृणीत ।
वृहस्पतिं यक्षमंरुणवल ऋषिं
मियां यमस्तन्वं प्रारिरेचीत् ॥ ४ ॥
सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते
पित्रे पुत्रासौ अयंवीयतद्रुतम् ।
उमे इदस्योमयस्य राजत
उमे यतेते उमयस्य पुष्यतः ॥ ५ ॥

॥ ३०३ ॥ (क्र० १०८१५-८)

आत्रीगर्तः शुनःशेषः ष ढ्रिनिने वैद्यमिधो देवरातः । ५-
६ उल्लखलं, ७-८ उल्लखलमुषले । ५-६ अत्रुपु, ७-
८ गायत्री ।

यश्चिद्धि त्वं गृहेगृह उल्लखलक युज्यसे ।
इह धुमत्तमं वद जयतामिच दुन्दुभिः ॥ ५ ॥
उत सं ते वनस्पते वातो वि वात्यप्रमित् ।
अथो इन्द्राय पार्तधे सुनु सोममुल्लखल ॥ ६ ॥
आयजी वाजसातमा ता ह्युश्वा विजर्मतः ।
हरौ इवान्धोसि वपसता ॥ ७ ॥
ता नो अथ वनस्पती ऋष्याच्युषेभिः सोतुभिः ।
इन्द्राय मधुमत् सुतम् ॥ ८ ॥

॥ ३०४ ॥ (क्र० ७१०४१७)

मैत्रावहणिकोदितः । प्राञ्जणः । विष्टुप ।

प्र या जिगाति सुगलेय नस्तं
अपं दुहा तन्वं गृहमाना ।
ववां अन्तौ अव सा पदीष्ट
प्रावाणो प्रन्तु रश्नं उपदैः ॥ १७ ॥
॥ ३०५ ॥ (क्र० १०१५६११-८)
सर्पेराजनी जहती । प्राञ्जणः । अगती ।

आ वं ऋजस ऊर्जा व्युष्टिषु
इन्द्रं मरुतो रोदसी अनक्तन ।
उमे यथा नो बहनी सचामुवा
सर्दःसदो वरिवस्यात उद्रिदा ॥ १ ॥
तदु श्रेष्ठे सर्वनं सुनोतन
अथो न हस्तयतो अद्रिः सोतर् ।

विद्वद्युयो अभिमृति पांस्यं
महो राये चित् तरते यद्वयतः ॥ २ ॥
तद्विद्वयस्य सर्वनं विवेरपो
यथा पुरा मनवे गातुमथेत् ।
गोअणोसि त्वाप्रे अश्वनिणिजि
प्रेमयरेष्वध्वरो अशिश्रयुः ॥ ३ ॥
अपं इत रक्षसो भङ्गुरावतः
स्कमायत निष्कृति सेधतामतिम् ।
आ नो रायि सर्ववीरं सुनोतन
देवाय्यं भरत श्लोकमद्रयः ॥ ४ ॥
दिवश्चिदा वोऽमवचरेभ्यो
विभ्वना चिदाभ्वस्तरेभ्यः ।
वायोश्चिदा सोमरमस्तरेभ्यो
अग्नेश्चिदन्नं पितृरुचरेभ्यः ॥ ५ ॥
मुण्णु नो युशसुः सोत्वग्धसो
प्रावाणो वाचा दिविता दिवित्मता ।
नरो यत्र दुहते काम्यं मधुं
आघोपयन्तो अभिर्तो मिथस्तुरः ॥ ६ ॥
सुन्वन्ति सोमं रथिरासो अद्रयो
निरस्य रसं गविषो दुहन्ति ते ।
दुहन्यूर्ध्वपसेवनाय कं
नरो हव्या न मर्जयन्त आसभिः ॥ ७ ॥
एते नरः स्वपसो अमृतन
य इन्द्राय सुनुथ सोममद्रयः ।
वामवामं वो दिव्याय धात्रे
वसुसु वः पार्यिणाय सुन्वते ॥ ८ ॥

॥ ३०६ ॥ (क्र० १०१५११-१४)

अर्जुनः कश्यपः यथा । प्राञ्जणः । अगतीः । ५, ७, १८ विष्टुप ।
प्रेते यदन्तु प्र वयं वदाम
प्राथम्यो वाचं यदता यदन्नयः ।
यदद्रयः परताः साकमादावः
श्लोकं घोपं मरुथेन्द्राय मोमिनः ॥ १ ॥

पते वंदन्ति शतवत्स शहस्रवद्
 अभि क्रन्दन्ति हारितेभिरासभिः ।
 विष्ट्वी प्रावाणः सुकृतः सुख्यया
 होतुंश्चित् पूर्वं हविरद्यमाशत
 पते वदन्त्यविदघ्नना मधु
 न्युदखयन्ते अधि पक्व आमिपि ।
 वृक्षस्य शाखामरुणस्य वत्सतः
 ते सुभर्वा वृषभाः प्रेमराविपुः
 बृहद् वदन्ति मदिरेण मन्दिना
 इन्द्रं क्रोशन्तोऽविदघ्नना मधु ।
 संरभ्या धीराः स्वस्त्यभिरनतिपुः
 आयोपर्यन्तः पृथिवीमुपन्दिभिः
 सूपूर्णा वाचमक्रतोप चावि
 आपरे कृष्णा इपिरा अनतिपुः ।
 न्युद्वनि यन्त्युपरस्य निष्कृतं
 पुरु रेतो दधिरे सूर्यभित्तः
 उग्रा इव प्रवहन्तः सुमार्यमुः
 साकं युक्ता वृषणो विध्रतो धुरः ।
 यच्छ्रवमन्तो जगत्साना अराविपुः
 शृण्व परां प्रोथथो अर्वातमिष
 दशाचनिभ्यो दशकश्येभ्यो
 दशायोक्त्रेभ्यो दशायोजनेभ्यः ।
 दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो
 दश धुरो दश युक्ता वर्हज्यः
 ते अद्रयो दशयन्प्रास आशयुः
 नेषाम्प्राप्तं पर्येति ह्यन्तम् ।
 न उः सुतस्य गोभ्यस्यार्धमः
 धंसाः पीयूषं प्रथमस्य भेजिरे
 ने सोमादां हरि इन्द्रस्य निस्तः
 धंसां दुहन्तो अर्वापरते चापि ।
 मेभिर्दुग्धं पविशाम्गोमं मधु
 इन्द्रो वर्धते प्रथंते वृषापरं

वृषा वो अंशुर्न किला रिपाथन
 इळावन्तः सवमित् स्थनाशिताः ।
 रैवत्येव महसा चारवः स्थान
 ॥ २ ॥ यस्य प्रावाणो अजुषध्वमध्वरम् ॥ १० ॥
 तद्विला अर्हदिलासो अद्रयो
 अधमणा अशृथिता अमृत्यवः ।
 अनातुरा अजराः स्यामविष्णवः
 ॥ ३ ॥ सुपीवसो अर्तृपिता अर्तृणजः ॥ ११ ॥
 ध्रुवा एव वः पितरो युगेयुगे
 क्षेमकामासुः सद्रसो न युञ्जते ।
 अजुर्यासौ हरिपाचो हरिद्रव
 ॥ ४ ॥ आ चां र्वेण पृथिवीमंशुश्रुः ॥ १२ ॥
 तदिद् वदन्त्यद्रयो विमोचने
 यामन्नञ्जसा इव घेदुपन्दिभिः ।
 वर्पन्तो बीजमिष धान्याकृतः
 ॥ ५ ॥ पूञ्जन्ति सोमं न मिनन्ति वत्सतः ॥ १३ ॥
 सुते अश्वरे अधि वाचमक्रत
 आ श्रीळ्यो न मातरं तुदन्तः ।
 ॥ ६ ॥ वि पू मुञ्जा सुपुषुषो मनीषां ॥ १४ ॥
 वि वर्तन्तामद्रयध्वार्यमानाः

॥ ३७७ ॥ (क्र० १०१७५।१-४)

ऊषध्रावा चर्ष आशुषिः । प्रावाणः । गावत्री ।

॥ ७ ॥ प्र यो प्रावाणः सयिता देवः सुवतु धर्मणा ।
 धुषु युज्यष्वं मुनुत ॥ १ ॥
 प्रावाणो अर्ष दुच्छुना मर्षं सेधत दुर्मतिम् ।
 ॥ ८ ॥ उग्राः कर्तन भेषजम् ॥ २ ॥
 प्रावाण उपरेष्या महीयन्ते सजोपसः ।
 ॥ ९ ॥ वृषे वर्धते वृष्यम् ॥ ३ ॥
 प्रावाणः सयिता तु यो देवः सुवतु धर्मणा ।
 ॥ १० ॥ यजमानाय सुग्यने ॥ ४ ॥

॥ ३२८ ॥ (श्रु० १०।११७।१-९)

मिच्छाङ्गिणः । घनाङ्गदानम् । विशुद्ध्, १-२ जगती ।

न वा उ देवाः क्षुधुमिद्वधं वदुः
उताशितमुप गच्छन्ति मृत्ययः ।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यति
उतापृणन् मर्दितारं न विन्दते
य आधाय चकमानाय पित्वो
अन्नवान्सन् रक्षितार्योपज्ञमुपे ।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरा
उतो चित् स मर्दितारं न विन्दते
स इन्द्रो जो यो गृह्वे ददाति
अन्नकामाय चरते कृशाय ।
अरमसै भवति यामहृता
उतापरीयु कृणुते सखायम्
न स सखा यो न ददाति सरये
सञ्चाभुये सर्वमानाय पित्वः ।
अपास्मात् प्रेवान्न तदोक्तो अस्ति
पुणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत्
पूर्णायादिन्नायमानाय त्वयान्
द्रार्थीयांसुमनु पदयेत् पन्थाम् ।
ओ हि वर्तन्ते रथैव चक्रा
अन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः
मोघमर्धे विन्दते अप्रचेताः
सुत्यं व्रवीमि वध इत् स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सत्यां
केवल्लाघो भवति केवलादी
कृपश्चित् फाल आशितं कृणोति
यन्नर्धानुमर्ष वृद्धके चरित्रः ।
वर्दन् प्रद्वार्यदतो वर्नीयान्
पुणन्नापिरपृणन्तमि प्यात्
पर्कपाद् भूर्यो द्विपत्रो वि चक्रमे
द्विपात् त्रिपार्दमभ्येति पद्यात् ।

चतुष्पादेति द्विपदांमिस्वरे

संपदयन् पङ्कीरुपतिष्टमानः

॥ ८ ॥

समौ चिद्वस्तौ न समं विविष्टः

संमातरां चित्र समं दृढाते ।

यमयोश्चित्र समा वीर्योणि

॥ १ ॥ श्वाती चित् सन्तौ न समं पृणीतः

॥ ९ ॥

॥ ३२९ ॥ (अथर्व० ३।१४।१-६)

ब्रह्मा । गोष्ठः, अहः, २ अर्यमा, पूषा, वृत्स्यति, इन्द्रः;
१-६ गावः, ५ गोष्ठ्य । अनुष्टुप्, ६ आर्या विशुष्ट् ।

सं वो गोष्ठेन सुपद्वा सं रय्या सं सुर्मत्या ।

॥ २ ॥ अहर्जातस्य यन्नाम तेना वः सं सृजामसि ॥१॥

सं वः सृजत्वयमा सं पूषा सं वृहस्पतिः ।

समिन्द्रो यो धनंजयो मरिष्य पुष्यत् यद् वसुं ॥२॥

संजमाना अविभ्युग्री रस्मिन् गोष्ठे करिषिर्णाः ।

॥ ३ ॥ विध्रतीः सोम्यं मध्वं नमीवा उपेतन ॥ ३ ॥

इहैव गाव पतन्ते हो शकैव पुष्यत् ।

इहैवोत् प्र जायध्वं मरिष्य संज्ञानमस्तु वः ॥ ४ ॥

शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिदाकैव पुष्यत् ।

॥ ५ ॥ इहैवोत् प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि ॥ ५ ॥

मया गावो गोपतिना सचध्वं

अयं वो गोष्ठ इह पौपपिण्डुः ।

रायस्पोषेण बहुला भवन्तीः

॥ ५ ॥ जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम ॥ ६ ॥

॥ ३३० ॥ (अथर्व० ६।४९।३)

गायः । अग्निः (अग्निस्वयः) । विराद् जगती ।

सुपर्णा वाचमरुतोप चावि

आसरे कृष्णा इषिरा अनर्तिपुः ।

॥ ६ ॥ नि यन्नियन्त्युपरस्य निष्क्रीत

पुरू रेतो दधिरे सूर्यधितः

॥ ३ ॥

इत्येकोनार्धशति (१९) मन्त्राः तत्तद्विषये संप्रामाणाः ।

॥ ३३१ ॥ (चा० य० १२।१००)

दांशुष्पम् ।

दीर्घायुस्त ओपधे यनिता यस्मै च त्वा यनाम्यहम् ।

अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवर्षंशा यिरिहतात् ॥१००

(३५२२)

॥ ३३२ ॥ (वा० य० ३४।५०-५१) दीर्घावुष्यम् ।
 आयुष्यं वर्चस्वयं रायस्वोपमौद्भिदम् ।
 इदं हिरण्यं वर्चस्व-ज्जैत्रायाविंशतादु माम् ५०
 न तद् रक्षारंति न पिशाचास्तरन्ति
 देवानामोर्जः प्रथमज ५१ ह्येतत् ।
 यो विभीतिं दाक्षायणं हिरण्यं
 स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः
 स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ ५१ ॥
 यदावध्न दाक्षायणा हिरण्यं
 शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।
 तन्म आ वध्नामि शतशारदाय
 आयुष्माञ्जरदप्रियथासम् ॥ ५२ ॥
 ॥ ३३३ ॥ (अथर्व० २।१३।१-५)
 अथवां । अग्नि, २-३ वृहस्पति, ४-५ विश्वे देवा (दीर्घावुः
 प्रातिः) । त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप्, ६ विराहजगती ।
 आयुर्दी अग्ने जरसं वृणो नो
 घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने ।
 घृतं पित्वा मधु चारु गव्यं
 पितेव पुत्रान्मि रक्षतादिमम्
 परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं
 जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
 वृहस्पतिः प्रायच्छद् वासं पृतत्
 सोमोयं रात्रे परिधातुवा उं
 परीदं वासो अधिथाः स्वस्तये
 अमृष्टीनामभिशस्तिपा उं ।
 शतं च जीवं शरदः पुरुची
 रायश्च पोषमपुसन्वयस्व
 ॥ ३ ॥
 पहादमानमा तिष्ठादमा भवतु ते तनूः ।
 कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम् ॥ ४ ॥
 यस्यं ते वासः प्रथमवास्वयं
 हारामस्तं त्वा विश्वेऽयन्तु देवाः ।
 सं त्वा धातरः सुवृधा वर्धमानं
 अतुं जायतां वृहयः सुजातम् ॥ ५ ॥

॥ ३३४ ॥ (ऋ० १०।८५।३१)
 सावित्री सूर्या ऋषिः । दम्परत्योवैश्वनाशनम् । अनुष्टुप् ।
 ये धर्म्यश्चन्द्रं र्वहुतुं यक्ष्मा यन्ति जनादतुं ।
 पुनस्तान् यक्षियां देवा नयन्तु यत् आरताः ॥ ३१ ॥
 ॥ ३३५ ॥ (ऋ० १०।१५५।१, ४)
 शिरिभिडो भारद्वाजः । अलक्ष्मोमम् । अनुष्टुप् ।
 अराधि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्ते ।
 शिरिभियठस्य सत्वमि-स्तेभिपूवा चातयामसि ॥ १ ॥
 यद्वा प्राचीरजगन्तो-रौ मण्डूरधणिकीः ।
 हता इन्द्रस्य शरवः सर्वे सुहृदयाशवः ॥ ४ ॥
 ॥ ३३६ ॥ (ऋ० १०।१४५।४, ६)
 इन्द्राणी । सपरनोवाधनम् (उपनिषत्) । ४ अनुष्टुप्,
 ६ पृष्ठीकः ।
 नहस्या नामं गुणामि नो अस्मिन् रमते जने ।
 परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥ ४ ॥
 उपं तेऽधां सहमाना-ममि त्वाधां सहयसा ।
 मामनु प्र ते मनो वृत्सं गौरिव धावतु
 पथा वारिव धावतु ॥ ६ ॥
 ॥ ३३७ ॥ (ऋ० १०।१६६।१-५)
 ऋषयो वैराज, ऋषयोः शाकरो वा । सपत्नम् ।
 अनुष्टुप्, ५ महापृष्ठीकः ।
 ऋपमं मा समानानां सपत्नानां विपासहिम् ।
 हुन्तारं शरूणां रुधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥ १ ॥
 अहमसि सपत्नहे-न्द्र इवारिष्टो अक्षतः ।
 अधः सपत्ना मे पदो-रिमे सर्वे अभिष्टिताः ॥ २ ॥
 अत्रैव वोऽपि नह्या-भ्युभे आत्नीं इव ज्यया ।
 वाचस्पते नि पैंधेमान् यथा मदधरं वदान् ॥ ३ ॥
 अस्मिन्महामागमं विश्वकर्मण धात्रा ।
 आ र्धश्चित्तमा वो हत-मा वोऽहं समिति ददे ४
 योगक्षेमं च आदाया-ऽहं भूयासमुत्तम
 आ वो मूर्धानमकमीम् ।
 अथस्पदान्म उद्वदत मण्डूका इयोदकान्
 मण्डूका उद्वददिय ॥ ५ ॥



औपधीनां राजा

सोमः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ९।१।१-१०)

मनुजन्ता वैशामिनः । गायत्री ।

स्वादिष्टया मदिष्टया पवस्व सोम धारया ।
 इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥
 रक्षोदा विश्वर्षणि रभि योनिमर्योहतम् ।
 द्रुणां सधस्थुमासदत् ॥ २ ॥
 यरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः ।
 परि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥
 अर्भ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा ।
 अभि वाजेमुत श्रवः ॥ ४ ॥
 त्वामच्छां चरामसि तदिदर्थं द्विवेदेवे ।
 इन्द्रो त्वे न आशसः ॥ ५ ॥
 पुनार्तिं ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता ।
 धारैण शश्वता तनां ॥ ६ ॥
 तमीमण्वीः समर्यं वा गृभ्णन्ति योषणो दश ।
 स्वसाः पार्ये द्विधि ॥ ७ ॥
 तमीं द्विग्वन्त्यप्रुवो धमन्ति याकुरं दतिम् ।
 त्रिधातुं धारणं मधु ॥ ८ ॥

अमीं ममच्या उत श्रीणन्ति घेनवः शिशुम् ।
 सोममिन्द्राय पातवे ॥ ९ ॥
 अस्येदिन्द्रो मदेष्या विश्वा वृत्राणि जिप्रते ।
 शूरो मया च मंहते ॥ १० ॥

॥ २ ॥ (ऋ० ९।१।१-१०)

मेवातिथिः काण्डः ।

पवस्व देववीरते पवित्रं सोम रक्षां ।
 इन्द्रमिन्द्रो वृषा विश ॥ १ ॥
 आ चंच्यस्व महि पुरो वृषेन्दो घृन्नयन्तमः ।
 आ योनिं धर्णसिः संदः ॥ २ ॥
 अशुक्षत प्रियं मधु धारां सुतस्यं घेषसः ।
 अपो वंसिष्ट सुकतुः ॥ ३ ॥
 महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्यन्ति सिन्धवः ।
 यद्रोभिर्वांसयिष्यसे ॥ ४ ॥
 समुद्रो अस्तु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।
 सोमः पवित्रं अस्मयुः ॥ ५ ॥
 अचिक्रदद् वृषा हरिं महान् मित्रो न दर्शतः ।
 सं सूर्येण रोचते ॥ ६ ॥
 गिरस्त इन्द्र ओजसा मर्मज्यन्ते अपस्युवः ।
 यामिर्मदायं शुम्भसे ॥ ७ ॥

देवो देवाय धारयेन्द्राय पवते सुतः ।
 पयो यदस्य पीपर्यत् ॥ ७ ॥
 आत्मा यज्ञस्य रंछा सुध्याणः पवते सुतः ।
 प्रहं नि पाति काव्याम् ॥ ८ ॥
 पथा पुनान इन्द्रयु-मदै मदिष्ठ यीतर्यै ।
 गुह्यो चिद् दधिपे गिरः ॥ ९ ॥

॥ ६ ॥ (ऋ० ९।७।१-९)

असृष्टमिन्द्रवः पथा धर्मैर्भूतस्य सुधियः ।
 विद्वाना अस्य योजनम् ॥ १ ॥
 प्र धारा मध्वो अप्रियो महीरपो वि गाहते ।
 हविर्हविष्णु वन्द्यः ॥ २ ॥
 प्र युजो वाचो अप्रियो वृषाव चक्रद् वने ।
 सप्राभि सृत्यो अश्वरः ॥ ३ ॥
 परि यत् काव्या क्वि-नुम्णा वसानो अपैति ।
 स्वर्वाजी सिपासति ॥ ४ ॥
 पर्यमानो अग्नि स्पृधो विशो राजैव सीदति ।
 यदीमण्वन्ति वेधसः ॥ ५ ॥
 अग्न्यो वारे परि प्रियो हरिवनेषु सीदति ।
 रेभो बन्नुप्यते मती ॥ ६ ॥
 स वायुमिन्द्रमश्विनां साकं मदेन गच्छति ।
 रणा यो अस्य धर्मभिः ॥ ७ ॥
 आ मित्रावरुणा मपं मध्वः पवन्त ऊर्मयः ।
 विद्वाना अस्य शर्मभिः ॥ ८ ॥
 अस्मभ्यं रोदसी रयि मध्वो वार्जस्य सातर्यै ।
 अयो वसन्ति सं जितम् ॥ ९ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० ९।८।१-९)

पूते सोमा अग्नि प्रिय-मिन्द्रस्य काममक्षरन् ।
 यधेन्तो अस्य धीर्यम् । ॥ १ ॥
 पुनानासंधमपदो गच्छन्तो वायुमश्विनां ।
 ते नो धान्तु सुधीर्यम् ॥ २ ॥

इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय ।
 ऋतस्य योनिमासदम् ॥ ३ ॥
 मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिवन्ति सप्त धीतर्यः ।
 अनु विप्रा अमादिपुः ॥ ४ ॥
 वेवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेप्यः ।
 सं गोभिवांसियामसि ॥ ५ ॥
 पुनानः कुलशेष्या वस्त्राण्यस्यो हरिः ।
 परि गव्यान्यव्यत ॥ ६ ॥
 मद्योन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विपः ।
 इन्द्रो सखायमा विश ॥ ७ ॥
 वृष्टि दिवः परि स्रय धुम्नं पृथिव्या अधि ।
 सहो नः सोम पृसु धाः ॥ ८ ॥
 नृचक्षंसं त्वा ध्य-मिन्द्रपीतं स्वर्विदम् ।
 भृश्रीमहि प्रजामिपम् ॥ ९ ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० ९।९।१-९)

परि प्रिया दिवः क्वि-र्वयोसि नृप्योहितः ।
 सुधानो याति क्विष्कृतः ॥ १ ॥
 प्रम ह्यायं पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहे ।
 वीत्यर्षं चर्निष्ठया ॥ २ ॥
 स सूनुर्मातर शुचि-जातो जाते अरोचयत् ।
 महार मही ऋतावृधा ॥ ३ ॥
 स सप्त धीतिभिर्हितो नृपो अजिन्यदद्रुहः ।
 या एकमक्षि वावृषुः ॥ ४ ॥
 ता अग्नि सन्तमस्वतं महे युवानमा दधुः ।
 इन्दुमिन्द्र तयं मते ॥ ५ ॥
 अग्नि वहिरमर्त्याः सप्त पदयति धारुहिः ।
 किर्विद्वीरतरपयत् ॥ ६ ॥
 अना कल्पेषु नः पुम-स्तमांसि सोम योध्याः ।
 तानि पुनान जह्यनः ॥ ७ ॥
 नू नव्यसे नवीयसे सूक्तार्यं साधया पृथः ।
 प्रतनवद् रांचया रचः ॥ ८ ॥

पर्वमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत् ।
सना मेधां सना स्वः ॥ ९ ॥

॥ ९ ॥ (अ० ९।१०।१-९)

प्र स्वानासो रथा इवा—ऽर्वन्तो न श्रवस्वयवः ।
सोमासो राये अक्रुः ॥ १ ॥
हिन्यानसो रथा इव दधन्विरे गर्भस्त्योः ।
भरांसः कारिणामिव ॥ २ ॥
राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते ।
यज्ञो न सत धातुभिः ॥ ३ ॥
परि सुवानास इन्द्वो मदाय वर्हणा गिरा ।
सुता अर्पन्ति धारया ॥ ४ ॥
धापानासो विवस्वतो जनन्त उपसो भगम् ।
सुरा अप्यं वि तन्वते ॥ ५ ॥
अप द्वारं मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः ।
घृष्णो हरस आयवः ॥ ६ ॥
समीचीनास आसते होतारः सतजामयः ।
पद्भेकस्य पिप्रतः ॥ ७ ॥
नामा नाभि न आ ददे चक्षुश्चित् स्ये सचा ।
कृचेरपत्यमा दुंदे ॥ ८ ॥
अभि प्रिया दिवस्पदा—मंघ्र्युभिर्गुहाहितम् ।
सूरः पश्यति चक्षसा ॥ ९ ॥

॥ १० ॥ (अ० ९।११।१-९)

उपास्मै गायता नरः पर्वमानायेन्द्वे ।
अभि देवो हर्यशते ॥ १ ॥
अभि ते मधुना पयो ऽर्धवाणो अशिध्रयुः ।
देयं देयार्थं देव्यु ॥ २ ॥
ए नः पयस्य सं गये सं जनायु शमयते ।
सं राज्ञोर्वाधीन्यः ॥ ३ ॥
दध्रेव तु त्वमपमे ऽकृणार्थं दिविरपृदी ।
सोमाय गाधमंचित ॥ ४ ॥

हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन ।
मघावा धावता मधु ॥ ५ ॥
नमसेदुपं सीदत दध्रेदभि श्रीणीतन ।
इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥ ६ ॥
अमित्रहा विचर्षणिः पर्वस्व सोमं शं गवे ।
देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥ ७ ॥
इन्द्राय सोमं पातवे मदाय परि पिच्यसे ।
मन्श्चिन्मनसस्पतिः ॥ ८ ॥
पर्वमान सुवीर्ये रयि सोमं रिरीहि नः ।
इन्द्विन्द्रेण नो युजा ॥ ९ ॥

॥ ११ ॥ (अ० ९।११।१-९)

सोमां अस्तुमिन्द्ववः सुता ऋतस्य सादने ।
इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥
अभि विप्रां अनूपत गावो वत्सं न मातरः ।
इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ २ ॥
मदच्युत् क्षेति सादने सिन्धोरुर्मा विपश्चित् ।
सोमो गौरी अधि श्रितः ॥ ३ ॥
दिवो नामां विचक्षणो ऽव्यो वारिं महीपते ।
सोमो यः सुकृतुः कृचिः ॥ ४ ॥
यः सोमः कृलशेष्यो अन्तः पवित्र आर्हितः ।
तमिन्द्रः परि पस्वजे ॥ ५ ॥
प्र याचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टरि ।
जिन्यन् कोशं मधुश्रुतम् ॥ ६ ॥
नित्यस्तोत्रो वनस्पति—धीनामन्तः संवदुर्धः ।
हिन्यानो मानुषा युगा ॥ ७ ॥
अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्यानो अर्पति ।
विप्रस्य धारया कृचिः ॥ ८ ॥
आ पर्वमान धारय रयि सहस्रपचंसम् ।
असो इन्दो स्याग्धुपम् ॥ ९ ॥

(॥ १२ ॥ क्र० ९।१२।१-९)

सोमं पुना॒नो अ॒पति॒ सह॒स्र॒पा॒रो अ॒त्य॒धिः ।
 वा॒यो॒रिन्द्र॑स्य निष्कृतम् ॥ १ ॥
 प॒र्व॒मा॒न॒म॒व॒स्य॒द्यो वि॒प्र॒म॒भि प्र॒ गा॒यत॑ ।
 सु॒ष्या॒णं दे॒व॒वी॒तये ॥ २ ॥
 प॒र्व॒न्ते वा॒ज॒सा॒तये॒ सोमा॑ः सह॒स्र॒पा॒जसः॑ ।
 गु॒णा॒ना दे॒व॒वी॒तये ॥ ३ ॥
 उ॒त नो॑ वा॒ज॒सा॒तये॒ प॒र्व॒स्य॒ वृ॒ह॒ती॒रि॒प्यः ।
 सु॒मा॒दि॒न्द्रो सु॒वी॒र्य॑म् ॥ ४ ॥
 ते नः॑ स॒हा॒स्र॒णं र॒षिं प॒र्व॒न्ता॒मा सु॒वी॒र्य॑म् ।
 सु॒वा॒ना दे॒वासु॑ इन्द्र॒वः ॥ ५ ॥
 अ॒त्या॒ हि॒या॒ना न हे॒तु॒भि र॒स्रु॒भ्रं वा॒ज॒सा॒तये॑ ।
 वि वा॒र॒म॒र्ष्य॑मा॒श॒वः ॥ ६ ॥
 वा॒ध्रा अ॒प॒न्ती॒न्द्र॒द्यो ऽभि घ॒त्सं न धे॒न॒वः ।
 द॒ध॒न्वि॒रे ग॒र्भ॒स्त्वोः ॥ ७ ॥
 छु॒ष्टु इन्द्रा॑य मत्सरः प॒र्व॒मा॒न॒ क॒र्निक॑दत् ।
 वि॒श्व॒ा अ॒प॒ द्वि॒र्यो ज॒हि ॥ ८ ॥
 अ॒प॒घ्न॒न्तो अ॒रा॒ण्यः प॒र्व॒मा॒नाः स्व॒र्दे॒शः ।
 यो॒ना॒वृ॒तस्य॑ सी॒दत ॥ ९ ॥

॥ १३ ॥ (क्र० ९।१३।१-८)

प॒रि प्रा॒सि॒प्य॒दत् क॒विः सि॒न्धो॒र्वी॒रु॒मा॒वधि॑ श्रितः ।
 का॒रं वि॒भ्र॒व् पुरु॑स्पर्ह॒म् ॥ १ ॥
 गि॒रा यदी॑ स॒र्य॒ध्र॒वः प॒ञ्च वा॒ता॒ अप॒स्य॒वः ।
 प॒रि॒ष्कृ॒ण्वन्ति॑ ध॒र्ष॒सि॒म् ॥ २ ॥
 आ॒र्द्र॒स्य शु॒भि॒णो र॒से वि॒श्वे॑ दे॒वा अ॒म॒त्स॒त ।
 यदी॑ गो॒भिर्व॑सा॒यते॑ ॥ ३ ॥
 नि॒रि॒णानो॑ वि धा॒वति॑ ज॒हृ॒च्छ॒र्या॒णि ता॒न्या ।
 अ॒त्रा सं जै॒घ्रते॑ यु॒जा ॥ ४ ॥
 न॒ती॒भिर्यो॑ वि॒यस्व॑तः शु॒भ्रो न मा॑मृ॒जे यु॒वा ।
 गाः कृ॒ण्वानो॑ न नि॒र्णि॒जम् ॥ ५ ॥

अति॑ श्रि॒ती ति॒र॒स्रता॑ गु॒न्या जि॒गा॒त्य॒ण्य्या ।
 ध॒नु॒मि॒यति॑ यं वि॒दे ॥ ६ ॥
 अ॒भि क्षि॒पः स॒म॒ग्मत॑ म॒र्ज॒य॒न्ती॒रि॒प॒स्पति॑म् ।
 पू॒ष्टा गृ॒णत॑ वा॒जिनः॑ ॥ ७ ॥
 प॒रि॒ वि॒व्या॒नि म॒र्ष्य॒श॒द् वि॒श्वानि॑ सो॒म पा॒थि॒वा ।
 व॒स॒नि या॒हा॒स्म॒युः ॥ ८ ॥

॥ १४ ॥ (क्र० ९।१५।१-८)

ए॒ष धि॒या या॒त्य॒ण्य्या श॒रो र॒थै॒मि॒रा॒शु॒भिः ।
 ग॒च्छ॒न्निन्द्र॑स्य निष्कृतम् ॥ १ ॥
 ए॒ष पु॒रु धि॒या॒यते॑ वृ॒ह॒ते दे॒वता॑तये ।
 य॒न्ना॒मृ॒ता॒सु आ॒स॒ते ॥ २ ॥
 ए॒ष हि॒तो वि॒ नी॒यते॑ ऽन्तः शु॒भ्रा॒व॒ता प॒था ।
 यदी॑ तु॒ज॒न्ति॑ भू॒र्णयः॑ ॥ ३ ॥
 ए॒ष शृ॒ङ्गा॒णि दो॒ष्य॒व॒च्छि॒र॒ति॑ यु॒थ्यो॒ऽवृ॒षा ।
 नृ॒ष्णा द॒घान॑ ओ॒ज॒सा ॥ ४ ॥
 ए॒ष रु॒मि॒भिरी॑यते वा॒जी शु॒भ्रे॒भिर्शु॒भिः ।
 प॒तिः सि॒न्ध॒नां भ॒वन् ॥ ५ ॥
 ए॒ष व॒स॒नि पि॒न्द्र॒ना प॒रु॒षा य॒यि॒वाँ अ॒ति॑ ।
 अ॒थ शार्दे॑षु गच्छति ॥ ६ ॥

ए॒तं मृ॒ज॒न्ति॑ म॒र्य॒मु॒प॒ द्रो॒णे॒ष्वाय॑वः ।
 प्र॒च॒क्र॒णं म॒ही॒रि॒प्यः ॥ ७ ॥
 ए॒तमु॒ त्वं द॒श क्षि॒पो मृ॒ज॒न्ति॑ स॒त धी॒तयः॑ ।
 स्वा॒यु॒धं म॒धि॒न्त॑मम् ॥ ८ ॥

॥ १५ ॥ (क्र० ९।१६।१-८)

प्र ते॑ सो॒तारं॑ ओ॒ण्यो॒ऽवृ॒ र॒सं म॒दा॒यु वृ॒ष्वे॒य ।
 स॒गो॑ न त॒स्ये॒त॒शः ॥ १ ॥
 क्र॒त्वा द॒क्ष॒स्य॑ र॒थ्य॒म॒पो व॒सा॒न॒म॒ग्ध॒सा ।
 गो॒पा॒म॒र्ष्ये॒षु स॒ध्वि॒म ॥ २ ॥
 अ॒न॒स॒म॒स्तु दु॒ष्टं सो॒मं प॒वि॒त्र आ॒रु॒ज ।
 पु॒नी॒ह्नि॒न्द्रा॒य पा॒त॒थे ॥ ३ ॥

प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्पति ।
 क्रत्वा सुप्रस्थमासदत् ॥ ४ ॥
 प्र त्या नमोमिन्द्रिन्दव इन्द्र सोमां असृक्षत ।
 महे भराय कारिणः ॥ ५ ॥
 पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्पन्नाभि धियः ।
 शरो न गोर्षु तिष्ठति ॥ ६ ॥
 द्वियो न सानु पिप्युषी धारां सुतस्य वेधसः ।
 वृषां पवित्रे अर्पति ॥ ७ ॥
 त्वं सोम विपश्चितं तनां पुनान आयुषु ।
 अव्यो वारं वि धावसि ॥ ८ ॥
 ॥ १६ ॥ (ऋ० १।१७।१-८)

प्र निम्नेनेव सिन्धयो इन्तो वृत्राणि भूर्णयः ।
 सोमा असृग्रमाशयः ॥ १ ॥
 इमि सुवानास इन्द्रो वृष्टयः पृथिवीमिव ।
 इन्द्रे सोमासो अक्षरन् ॥ २ ॥
 अर्षुर्मिर्मरुतो मदः सोमः पवित्रे अर्पति ।
 विष्णन् रक्षांसि देव्युः ॥ ३ ॥
 आ कुलशेषु धावति पवित्रे परि विच्यते ।
 उक्थैर्यज्ञेषु बधते ॥ ४ ॥
 अति प्री सोम रोचना रोदन् न भ्राजसे दिवम् ।
 इष्णन्स्य न चोदयः ॥ ५ ॥
 इमि विप्रा धनूपत मूधन् यज्ञस्य कारवः ।
 दधानाश्चक्षुषि म्रियम् ॥ ६ ॥
 तमु त्वा याजिनं नरो धीमिर्विप्रा अयस्यवः ।
 मुज्जन्त देयतांतये ॥ ७ ॥
 मयोर्धारागनुं क्षर तोमः सुप्रस्थमासदः ।
 पारश्रुताय दीनये ॥ ८ ॥

॥ १७ ॥ (ऋ० १।१८।१-७)

परि सुपानो गिरिष्ठाः पवित्रे नोमो अक्षाः ।
 मदेपु सवंधा भति ॥ १ ॥

त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र ज्ञातमन्धसः ।
 मदेपु सर्वधा असि ॥ २ ॥
 तव विश्वे सुजोर्पसो देवासः पातिमाशत ।
 मदेपु सर्वधा असि ॥ ३ ॥
 आ यो विश्वानि वार्या वसूनि हस्तयोर्द्वे ।
 मदेपु सर्वधा असि ॥ ४ ॥
 य इमे रोदसी मही सं मातरैव दोहते ।
 मदेपु सर्वधा असि ॥ ५ ॥
 परि यो रोदसी उभे सुयो वाजेभिरर्पति ।
 मदेपु सर्वधा असि ॥ ६ ॥
 स शुष्मी कुलशेषा पुनानो अचिक्रदत् ।
 मदेपु सर्वधा असि ॥ ७ ॥

॥ १८ ॥ (ऋ० १।१९।१-७)

यत् सोम चित्रमुन्धयं दिव्यं पार्थिवं वसु ।
 तन्नः पुनान आ भर ॥ १ ॥
 युधं हि स्वः स्वर्पती इन्द्रश्च सोम गोपती ।
 ईशाना विप्यतं धियः ॥ २ ॥
 वृषां पुनान आयुषु स्तनयश्चधि बर्हिषि ।
 हरिः सन् योनिमासदत् ॥ ३ ॥
 अवार्यशान्त धीतयो वृषमस्याधि रेतसि ।
 सुनोर्वत्सस्य मातरः ॥ ४ ॥
 कुचिद् वृष्ण्यन्तर्भ्यः पुनानो गर्भमादधत् ।
 याः शुक्रं दुहते पर्यः ॥ ५ ॥
 उपं शिक्षापतस्युषो म्रियसुमा धेहि शत्रुपु ।
 पवंमान विदा रुयिम् ॥ ६ ॥
 नि शत्रोः सोम वृष्ण्यं नि शुभं नि धर्यस्तिर ।
 दूरे वा सतो अन्ति या ॥ ७ ॥

॥ १९ ॥ (ऋ० १।२०।१-७)

प्र कविर्देवर्षीतये ऽव्यो यारैभिरर्पति ।
 सादान् विभ्यां इमि वृषः ॥ १ ॥

स द्वि प्मा जरितुभ्य आ वाजं गोर्मन्तमिन्वति ।
 पर्वमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥
 परि विश्वानि चेतसा मृशसे पर्वसे मती ।
 स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥
 अर्भ्यपं बृहद् यशो मधवद्भयो ध्रुवं रयिम् ।
 इपं स्तोतुभ्य आ भंर ॥ ४ ॥
 त्वं राजेव सुमतो गिरः सोमा विवेदिथ ।
 पुनानो वंदे अद्भुत ॥ ५ ॥
 स वाहिरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गर्भस्थोः ।
 सोमश्चमूयुं सीदति ॥ ६ ॥
 श्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।
 दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥

॥ १० ॥ (क्र० ९।१२।१-७)

पृते धाञ्चन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय घृष्वपः ।
 मत्सुरासः स्वविदः ॥ १ ॥
 प्रवृष्वन्तो अभियुजः सुष्वये वरिष्वोविदः ।
 स्वयं स्तोत्रे वयस्करतः ॥ २ ॥
 वृषा क्रीळन्त इन्दवः सधस्यमभ्येकमिस् ।
 सिन्धोरुर्मा व्यक्षरन् ॥ ३ ॥
 पृते विश्वानि धार्या पर्वमानास आशत ।
 हिता न सप्तयो रथे ॥ ४ ॥
 आस्मिन् पिशङ्गमिन्दवो दधाता वेनमादिशे ।
 यो असभ्यमरावा ॥ ५ ॥
 श्शुभुने रथ्ये नवं दधाता केतमादिशे ।
 शुक्राः पवच्छर्मणसा ॥ ६ ॥
 पृत उ त्पे अंधीवशन् काष्ठां घाजिनो अकत ।
 सतः प्रासाविपुमंतिम् ॥ ७ ॥

॥ ११ ॥ (क्र० ९।१२।१-७)

पृते सोमास आशवो रथा इच प्र घाजिनः ।
 सर्गाः सुष्टा अहेपत ॥ १ ॥

पृते वार्ता इवोरवः पृजन्यस्थेव वृष्टयः ।
 अग्नोरैव अमा वृथा ॥ २ ॥
 पृते पुता विपश्चितः सोमांसो दध्याशिरः ।
 क्षिपा व्यानशुधिग्यः ॥ ३ ॥
 पृते मृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शश्रमुः ।
 इयंसन्तः पथो रजः ॥ ४ ॥
 पृते पृष्टानि रोदंसो विप्रयन्तो व्यानशुः ।
 उतेदमुत्तमं रजः ॥ ५ ॥
 तन्तुं तन्वानमुत्तमं मनुं प्रवत आशत ।
 उतेदमुत्तमाय्यम् ॥ ६ ॥
 त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गद्यानि धारय ।
 ततं तन्तुमचिक्रदः ॥ ७ ॥

॥ १२ ॥ (क्र० ९।१२।१-७)

सोमा असुप्रमाशवो मधोर्मिदस्य धारया ।
 अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥
 अतुं प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः ।
 रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ २ ॥
 आ पवमान नो भयाऽयी अदाशुपो गर्पम् ।
 कृधि प्रजावतीरिपः ॥ ३ ॥
 अभि सोमास आयवः पर्वन्ते मद्यं मदम् ।
 अभि कौशं मधुक्षुतेम् ॥ ४ ॥
 सोमो अर्पति धर्णासि—र्दधान इन्द्रियं रसम् ।
 सुवीरो अभिशस्तिपाः ॥ ५ ॥
 इन्द्राय सोम पवसे देवेभ्यः सधमाद्यः ।
 इन्द्रो वाजं सिपाससि ॥ ६ ॥
 अस्य पीत्वा मदाना—मिन्द्रो वृत्राप्यंप्रति ।
 जघान जघनश्च सु ॥ ७ ॥

॥ १३ ॥ (क्र० ९।१२।१-७)

प्र सोमांसो अधन्विपुः पर्वमानास इन्दवः ।
 भीषाना अप्सु मृज्वत ॥ १ ॥

अभि गावो अधन्विषु—रापो न प्रयता यतीः ।
 पुनाना इन्द्रमाशत ॥ २ ॥
 प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय पातवे ।
 नृमिर्व्यतो वि नीयसे ॥ ३ ॥
 त्वं सोम नुमार्दनः पर्वस्व चपणोसहे ।
 सस्त्रियो अनुमार्चः ॥ ४ ॥
 इन्द्रो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधार्चसि ।
 अरुमिन्द्रस्य धार्चं ॥ ५ ॥
 पर्वस्व वृत्रहन्तमो—कथेभिरनुमार्चः ।
 शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥
 शुचिः पावक उच्यते सोमं सुतस्य मध्वः ।
 वेवावीरंघशंसुहा ॥ ७ ॥
 (॥ २४ ॥ क्र० १।२५।१-६)
 दृढश्च्युत आगस्त्य ।
 पर्वस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
 मरुद्गयो वायवे मर्दः ॥ १ ॥
 पर्वमान धिया हितोऽभि योनिं कर्निकदत् ।
 धर्मणा वायुमा विश ॥ २ ॥
 सं देवैः शोभते वृषा कवियोनावधिं प्रियः ।
 वृत्रहा देववीरतमः ॥ ३ ॥
 विश्वा रूपाण्याविशान् पुनानो याति हर्षतः ।
 यत्रामृतासु आसते ॥ ४ ॥
 अरुपो जनपदं गिरः सोमः पवत आयुपक् ।
 इन्द्रं गच्छन् कविकर्तुः ॥ ५ ॥
 आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे ।
 अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥
 ॥ २६ ॥ (क्र० १।२६।१-६)
 इषयाहो पावंच्युत ।
 तममृशन्त वाजिनं—मुपस्थे अद्रितेरधिं ।
 विप्रसो अण्व्या धिया ॥ १ ॥
 त गावो अर्भ्यनूपत सहध्वंधारमर्क्षितम् ।
 इन्दुं प्रतीरमा दिषः ॥ २ ॥

तं वेधां मेघयांस्तान् पर्वमानमधि धार्यि ।
 धूर्णसि भूरिंधायसम् ॥ ३ ॥
 तमैतान् भुरिर्जोषिया संघस्तानं विघस्यत ।
 पतिं याचो अदाभ्यम् ॥ ४ ॥
 तं सानावधिं जामयो हरिं दिन्वन्त्यद्रिभिः ।
 हर्षतं भूरिचक्षसम् ॥ ५ ॥
 तं त्वां दिन्वन्ति वेधसुः पर्वमान गिरावृषम् ।
 इन्द्रविन्द्राय मत्सरोम् ॥ ६ ॥
 ॥ २६ ॥ (क्र० १।२७।१-६)
 प्रियेभ आत्रिष ।
 एष कविभिर्पुतः पवित्रे अधि तोशते ।
 पुनानो प्रथप क्षिधं ॥ १ ॥
 एष इन्द्राय चायवे स्वर्जित् परि पिच्यते ।
 पवित्रे दक्षसाधनं ॥ २ ॥
 एष नृमिर्वि नीयते दिवो मुर्धा वृषा सुत ।
 सोमो वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥
 एष गुन्युरचिकदत् पर्वमानो हिरण्ययुः ।
 इन्दुं सत्राजिदस्वृतः ॥ ४ ॥
 एष सूर्येण हासते पर्वमानो अधि धार्यि ।
 पवित्रे मत्सरो मर्दं ॥ ५ ॥
 एष शुष्प्यांसिष्यद—दन्तरिक्षे वृषा हरिः ।
 पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ६ ॥
 ॥ २७ ॥ (क्र० १।२८।१-६)
 प्रियेभ आत्रिष ।
 एष वाजी हितो नृभि—र्विश्वविन्मनसुस्पतिः ।
 अब्यो वार वि धावति ॥ १ ॥
 एष पवित्रे अक्षरत् सोमो देवेभ्यः सुतः ।
 विश्वा धामान्याविशान् ॥ २ ॥
 एष देवः शुभायते—ऽधि योनावमर्त्यः ।
 वृत्रहा देववीरतमः ॥ ३ ॥
 एष वृषा कर्निकदद् दशभिर्जामिर्भिर्यतः ।
 अभि प्रोणानि धावति ॥ ४ ॥

एष सूर्यमरोचयत् पर्वमानो विचर्षणिः ।
 विश्वा धामानि विश्ववित् ॥ ५ ॥
 एष शुष्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्पति ।
 देवावीर्यशंसहा ॥ ६ ॥
 ॥ १८ ॥ (ऋ० ९।१९।१-६)
 वृषेध आङ्गिरसः ।
 प्रास्य धारा अक्षरन् वृष्णः सुतस्यार्जसा ।
 देवा अनु प्रभूपतः ॥ १ ॥
 सति मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा ।
 ज्योतिर्ज्ञानमुन्मथ्यम् ॥ २ ॥
 सुपदा सोम तानि ते पुनानाय प्रभवसो ।
 वर्धो समुद्रमुक्थ्यम् ॥ ३ ॥
 विश्वा वसन्ति संजयन् पर्वस्य सोम धारया ।
 इतु देवांसि स्रथ्यक् ॥ ४ ॥
 रक्षा सु नो अरुणः स्वनातु संमस्य कस्य चित् ।
 निद्रो यत्र मुमुच्यहे ॥ ५ ॥
 पन्द्रो पार्थिवं रयि दिव्यं पवस्य धारया ।
 घुमन्तं शुष्ममा भर ॥ ६ ॥
 ॥ १९ ॥ (ऋ० ९।३०।१-६)
 विन्दुराङ्गिरसः ।
 प्र धारा अस्य शुष्मिणो यथा पवित्रे अक्षरन् ।
 पुनानो चार्चमिष्यति ॥ १ ॥
 इन्दुर्दियानः सोत्सि मृज्यमानः कनिफदत् ।
 इयति यममिन्द्रियम् ॥ २ ॥
 आ नः शुष्मं नृपाद्यं वीर्यन्तं पुरुस्पृहम् ।
 पर्वस्य सोम धारया ॥ ३ ॥
 प्र सोमो अति धारया पर्वमानो असिष्यदत् ।
 अमि द्रोणान्यासदम् ॥ ४ ॥
 अन्तु त्या मर्धुमत्तमं हारिं हिन्वत्यद्रिभिः ।
 इन्दयिन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥
 सुनोता मर्धुमत्तमं सोममिन्द्राय वृष्णिषे ।
 चारुं शर्षीय मत्सरम् ॥ ६ ॥

॥ ३० ॥ (ऋ० ९।३१।१-६)
 गोतमो राष्ट्रगणः ।
 प्र सोमांसः स्वाध्यः पर्वमानासो अक्रमुः ।
 रयि शृण्वन्ति चैतनम् ॥ १ ॥
 दिवस्पृथिच्या अधि भवेन्दो युञ्जवर्धनः ।
 भवा चार्जानां पतिः ॥ २ ॥
 तुभ्यं वाता अभिप्रिय—स्तुभ्यमर्पन्ति सिन्धवः ।
 सोमं वर्धन्ति ते महः ॥ ३ ॥
 आ प्यायस्य समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
 भवा चार्जस्य संगये ॥ ४ ॥
 तुभ्यं गार्वा घृतं पयो यधो दुदुहे अक्षितम् ।
 वरिष्ठे अधि सान्वि ॥ ५ ॥
 स्वायुधस्य ते सतो भुवन्नस्य पते ध्यम् ।
 इन्द्रो सपितृवमुद्रमासि ॥ ६ ॥
 ॥ ३१ ॥ (ऋ० ९।३१।१-६)
 दयावाथ आशेयः ।
 प्र सोमांसो मदच्युतः श्रवसे नो मुघोर्नः ।
 सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥
 आदो व्रितस्य योषणो हारिं हिन्वत्यद्रिभिः ।
 इन्द्रमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥
 आदो हंसो यथा गुणं विश्वस्यावीषशन्मतिम् ।
 अयो न गोभिरज्यते ॥ ३ ॥
 उमे सौमायचाकंशन मुगो न तुक्तो अर्पसि ।
 सौदंश्रुतस्य योनिमा ॥ ४ ॥
 अभि गार्वा अनूपत योरा जारमिय प्रियम् ।
 अर्गप्राजि यथा हितम् ॥ ५ ॥
 असे धेहि घुमद् यशो मघर्षद्वपथ्य मद्यं च ।
 सनि मेधामुत धयः ॥ ६ ॥
 ॥ ३२ ॥ (ऋ० ९।३२।१-६)
 प्रित आत्स ।
 प्र सोमांसो विपश्चितो ऽपां न यन्पुमर्गः ।
 यनानि महिषा इय ॥ १ ॥
 (३०२०)

अभि द्रोणानि वध्नवः शुक्रा ऋतस्य धारया ।
 याजं गोमन्तमक्षरन् ॥ २ ॥
 सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्गणः ।
 सोमो अर्पन्ति विष्णवे ॥ ३ ॥
 तिष्ठो वाच उदीरते गार्धो मिमन्ति धेनवः ।
 हरिरेति कनिक्कदत् ॥ ४ ॥
 अभि ब्रह्मीरनुपत यद्दीर्घुतस्य मातरः ।
 मर्मज्यन्ते दिवः शिशुम् ॥ ५ ॥
 रायः समुद्रांश्चतुरो ऽसभ्यं सोम विश्वतः ।
 आ पवस्व सहस्रिणः ॥ ६ ॥
 ॥ ३३ ॥ (ऋ० ९/३४।१-६)
 प्र सुवानो धारया तनेन्दुहिन्वानो अर्पति ।
 रुजद् दृळ्हा व्योजसा ॥ १ ॥
 सुत इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्गणः ।
 सोमो अर्पति विष्णवे ॥ २ ॥
 वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः ।
 दुहन्ति शकमना पर्यः ॥ ३ ॥
 भुवत् त्रितस्य मज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः ।
 सं रूपैरज्यते हरिः ॥ ४ ॥
 अभीमूतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः ।
 चार्धं प्रियतमं हविः ॥ ५ ॥
 समेनमहुता इमा गिरो अर्पन्ति स्रुतः ।
 धेनुर्घात्रो अवीवशत् ॥ ६ ॥
 ॥ ३४ ॥ (ऋ० ९/३५।१-६)
 प्रभुवधराञ्जिरस ।
 था नः पवस्व धारया पर्वमान रुयि पृथुम् ।
 यया ज्योतिर्विदासि नः ॥ १ ॥
 इन्द्रो समुद्रमीहय पर्वस्व विश्वमेजय ।
 रायो भूतो न ओजसा ॥ २ ॥
 त्वया धीरेण धीरवो ऽभि ध्याम पृतन्यतः ।
 शरा णो अभि धार्यम् ॥ ३ ॥

प्र याजमिन्दुरिष्यति तिपासन् याजसा ऋषिः ।
 दृता विद्वान आयुधा ॥ ४ ॥
 तं गीर्भिर्यौचमीदृश्यं पुनानं वास्यामसि ।
 सोमं जनस्य गोपतिम् ॥ ५ ॥
 विश्वो यस्य दृते जने वाघार धर्मणस्पर्तैः ।
 पुनानस्य प्रभुधंसोः ॥ ६ ॥
 ॥ ३५ ॥ (ऋ० ९/३६।१-६)
 अर्सजिं रथ्यो यथा पवित्रं चभ्योः सुता ।
 कार्पेन् वाजी न्यक्रमीत् ॥ १ ॥
 स घट्टिः सोम जागृषिः पर्वस्व देवधीरति ।
 अभि कोशं मघुश्चुतम् ॥ २ ॥
 स नो ज्योतीपि पूव्यं पर्वमान वि रोचय ।
 कृत्वे दक्षाय नो हिनु ॥ ३ ॥
 शुभमानं ऋतायुभिर्मज्यमानो गर्भस्थोः ।
 पर्वते वारं अव्ययं ॥ ४ ॥
 स विश्वा दाशुपे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा ।
 पर्वतामान्तरिक्ष्या ॥ ५ ॥
 आ दिवस्पृष्टमभ्युगैर्गन्धयुः सोम रोहसि ।
 धीर्युः शवसस्पते ॥ ६ ॥
 ॥ ३६ ॥ (ऋ० ९/३७।१-६)
 हाहण आङ्गिरस ।
 स सुतः धीतये वृषा सोमः पवित्रं अर्पति ।
 विभ्रन् रक्षोसि देव्युः ॥ १ ॥
 स पवित्रं विचक्ष्णो हरिरर्पति धर्णसि ।
 अभि योनिं कनिक्कदत् ॥ २ ॥
 स वाजी रोचन दिवः पर्वमानो वि धावति ।
 रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ ३ ॥
 स त्रितस्याधि सानवि पर्वमानो अरोचयत् ।
 जामिभिः सूर्ये सह ॥ ४ ॥
 स वृत्रहा वृषा सुतो वरिष्ठोविददाभ्यः ।
 सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥
 (३८१०)

स देवः कृविर्नैपितोऽमुं ॥ १ ॥
 इन्द्रिन्द्राय मंहनां ॥ ६ ॥
 ॥ ३७ ॥ (ऋ० १।१८।१-६)
 एष उ स्य वृषा रथो ऽव्यो चारैर्भिरपति ।
 गच्छन् वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥
 पुनं त्रितस्य योषणो हारिं हिन्वन्त्याद्रिभिः ।
 इन्द्रुमिन्द्राय पीतयै ॥ २ ॥
 पतं त्यं हरितो दशं मर्मज्यन्तं अपस्युचः ।
 यामिर्मर्दाय शुभ्रमंते ॥ ३ ॥
 एष स्य मानुषोपया श्येनो न विश्वु सीदति ।
 गच्छञ्ज्जारो न योपितम् ॥ ४ ॥
 एष स्य मद्यो रसो ऽयं चष्टे द्वियः शिशुः ।
 य इन्द्रुर्वारुमाविंशत् ॥ ५ ॥
 एष स्य पीतयै सुतो हरिंरपति घणंसिः ।
 क्रन्दन् योर्निममि प्रियम् ॥ ६ ॥
 ॥ ३८ ॥ (ऋ० १।३९।१-६)
 बृहन्मतिरात्रिसः ।
 आशुरंयं बृहन्मते परिं प्रियेण घाञ्जा ।
 यत्र देवा इति त्रयं ॥ १ ॥
 परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निर्घः ।
 वृष्टिं द्वियः परिं स्रव ॥ २ ॥
 सुतं पतिं पवित्रं आ त्वियं दधानं ओजंसा ।
 विचक्ष्णाणो विरोचयन् ॥ ३ ॥
 ध्रयं स यो द्विषस्परिं रघुयामां पवित्रं आ ।
 सिन्धोर्कामा व्यधेरत् ॥ ४ ॥
 आविवांसन् परायतो अयो अयंवतः सुतः ।
 इन्द्राय सिच्यते मधुं ॥ ५ ॥
 समीचीना भनूपत् हारिं हिन्वन्त्याद्रिभिः ।
 योनापूतस्यं सीदत् ॥ ६ ॥
 ॥ ३९ ॥ (ऋ० १।४०।१-६)
 पुनानो अंशमीदृमि विश्वा मधो विचंरणिः ।
 शुभ्रमन्ति विप्रं घीतिभिः ॥ १ ॥

आ योर्निमरुणो कृद्द् गमदिन्द्रं वृषां सुतः ।
 ध्रुवे सदांसि सीदति ॥ २ ॥
 न नो रथं महामिन्द्रो ऽस्वभ्यं सोम विश्वतः ।
 आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥
 विश्वां सोम पवमानं शुम्नानीन्द्र्या भरं ।
 विदाः सहस्रिणीरिपः ॥ ४ ॥
 स नः पुनान आ भरं रथं स्तोत्रे सुवीर्यम् ।
 जरितुर्वैधिया गिरः ॥ ५ ॥
 पुनान इन्द्र्या भरं सोमं द्वियर्हंसं रथिम् ।
 वृषंक्षिन्द्रो न उन्त्यम् ॥ ६ ॥
 ॥ ४० ॥ (ऋ० १।४१।१-६)
 मध्यातिथिः काण्वः ।
 प्र ये गावो न भूर्णयस्त्वेपा अयासो अक्रंसुः ।
 प्रन्तः कृष्णामप त्वचंम् ॥ १ ॥
 सुधितस्यं मनामदे ऽति सेतुं उराच्यम् ।
 साहामो दस्युमप्रतम् ॥ २ ॥
 दृष्ये वृष्टेरियं स्यनः पवमानस्य शुष्मिणः ।
 चरन्ति विद्युतो द्विवि ॥ ३ ॥
 आ पवस्व महीमिणं गोमदिन्द्रो हिरण्ययत् ।
 अश्वान्वाद् वाजयत् सुतः ॥ ४ ॥
 स पवस्व विचरणं आ मही रोदसी पृण ।
 उपाः स्यो न रुदिमभिः ॥ ५ ॥
 परिं णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।
 सरां रुमेयं विष्टपम् ॥ ६ ॥
 ॥ ४१ ॥ (ऋ० १।४२।१-६)
 जनयन् रोचना द्वियो जनयंद्रप्सु स्यंम् ।
 यसानो गा अपो हारिः ॥ १ ॥
 एष प्रनेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परिं ।
 धारया पवते सुतः ॥ २ ॥
 यावृधानाय त्वेयं पयंते याजंमातये ।
 सोमाः सदृक्षपाजसः ॥ ३ ॥

दुहानः प्रक्षामित् पर्यः पवित्रे परि विच्यते ।
 क्रन्दन् देवाँ अजीजनत् ॥ ४ ॥
 अग्नि विश्वान्ति वार्याः ऽग्नि देवाँ ऋतावृधः ।
 सोमः पुनानो अर्पति ॥ ५ ॥
 गोमघ्नः सोम धारयद् दश्यावद् वाजयत् सुतः ।
 पर्वस्व बृहतीरिपः ॥ ६ ॥
 ॥ ४९ ॥ (ऋ० १।४३।१-६)
 यो अत्यं इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्षतः ।
 तं गीर्भिवीसयामसि ॥ १ ॥
 तं नो विश्वाँ अवस्युवो गिरः शुभन्ति पूर्वथा ।
 इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥
 पुनानो याति हर्षतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः ।
 विप्रस्य मेघ्वातिथेः ॥ ३ ॥
 पर्वमान विदा रयि मस्मभ्यं सोम सुधिर्यम् ।
 इन्द्रो सुहस्रवर्चसम् ॥ ४ ॥
 इन्दुरत्यो न वाजसुत् कर्निकन्ति पवित्र आ ।
 यदक्षारति देवयुः ॥ ५ ॥
 पर्वस्य वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे ।
 सोम रास्व सुधीर्यम् ॥ ६ ॥
 (॥ ४३ ॥ ऋ० १।४४।१-६)
 अयास्य आङ्गिरसः ।
 प्र णं इन्द्रो महे तनं ऊर्मि न विश्रद्वर्षसि ।
 अग्नि देवाँ अयास्यः ॥ १ ॥
 मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति ।
 विप्रस्य धारया क्विः ॥ २ ॥
 अयं देवेपु जागृविः सुत पति पवित्र आ ।
 सोमो याति विवर्षणिः ॥ ३ ॥
 स नः पयस्व वाजयुश्चक्राणश्चारुमध्वरम् ।
 वृदिष्मो आ दिवास्तति ॥ ४ ॥
 स नो भगाय धायये विप्रवीरः सदावृधः ।
 सोमो देवेभ्य र्यमत् ॥ ५ ॥

स नो अद्य पतुत्तये क्रतुविद् गातुविक्षमः ।
 वाजं जेपि श्रयो बृहत् ॥ ६ ॥
 ॥ ४४ ॥ (ऋ० १।४५।१-६)
 स पर्वस्व मदाय कं नृचक्षा देयधीतये ।
 इन्द्रविन्द्राय पीतये ॥ १ ॥
 स नो अर्षामि वृत्यं त्वमिन्द्राय तोशसे ।
 देवान्सपरिभ्य आ वरम् ॥ २ ॥
 उत त्वामरणं वयं गोभिरजमो मदाय कम् ।
 वि नो राये तुरो वृधि ॥ ३ ॥
 अत्यं पवित्रमकमीद् वाजी धुरं न यामनि ।
 इन्दुदेवेषु पत्यते ॥ ४ ॥
 समी सखायो अस्वरन् वने क्रीळन्मर्त्यविम् ।
 इन्द्रं नावा अनूपत ॥ ५ ॥
 तया पयस्व धारया यया पीतो विचक्षते ।
 इन्द्रो स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ६ ॥
 ॥ ४५ ॥ (ऋ० १।४६।१-६)
 अर्धग्रन् देवर्षीतये ऽत्यासः कृत्या इव ।
 क्षरन्तः पर्वतावृधः ॥ १ ॥
 परिष्कृतास इन्द्रो योषेव पित्र्यावती ।
 वायुं सोमा असृक्षत ॥ २ ॥
 एते सोमास इन्द्रवः प्रयस्वन्तश्चम् सुताः ।
 इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभिः ॥ ३ ॥
 आ धावता सुहस्यः शुक्रा गृणीत मन्थिना ।
 गोभिः श्रीणीत मत्सरम् ॥ ४ ॥
 स पर्वस्व धनंजय प्रयन्ता राघसो महः ।
 अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥ ५ ॥
 एतं मृजन्ति मज्यं पर्वमानं दश क्षिपः ।
 इन्द्राय मत्सरं मदम् ॥ ६ ॥
 ॥ ४६ ॥ (ऋ० १।४७।१-५)
 कविर्मागवः ।
 अया सोमः सुकृत्यया महश्चिदभ्यवर्धत ।
 मन्वान उद् धृपायते ॥ १ ॥

कृतानीदस्य कर्त्वा चेतन्ते दस्युतर्हणा ।
 ऋणा च धृणुश्चयते ॥ २ ॥
 आत् सोमं इन्द्रियो रसो यज्ञः सहस्रसा भुवत् ।
 उपयं यदस्य जायते ॥ ३ ॥
 स्वयं कृषिर्विघर्तरि विप्राय रत्नमिच्छति ।
 यदी मर्मज्यते धियः ॥ ४ ॥
 सिपासनं रयीणां वाजेष्वर्धतामिव ।
 मरेषु जिग्युषामसि ॥ ५ ॥

॥ ४७ ॥ (ऋ० ९।४८।१-५)

तं त्वा नृग्नानि विघ्नतं सुधस्येषु महो द्विवः ।
 चार्धं सुकृत्यपेभदे ॥ १ ॥
 संबृक्तधृष्णमुक्थ्यं महामहिवतं मर्दम् ।
 शतं पुरो रुद्रक्षणिम् ॥ २ ॥
 अतस्त्वा रथिमभि राजानं सुकतो द्विवः ।
 सुपणो अन्वथिर्मरत् ॥ ३ ॥
 विभ्वंस्मा इत् स्वईशे साधारणं रजस्तुरम् ।
 गोपामृतस्य धिर्मरत् ॥ ४ ॥
 अर्धा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे ।
 अमिष्टिकृद् विचर्षणिः ॥ ५ ॥

॥ ४८ ॥ (ऋ० ९।४९।१-५)

पर्वस्व वृष्टिमा सु नो ऽपामूर्धं द्विघरपरिं ।
 अयश्मा वृहतीरिपः ॥ १ ॥
 तयो पवस्व धारया यया गावं इहागमन् ।
 जन्यासु उपं नो गृहम् ॥ २ ॥
 घृतं पवस्व धारया येषु देघवीतमः ।
 अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३ ॥
 स नं ऊजं व्यव्ययं पवित्रं घावु धारया ।
 देवासः क्षणयन् हि कम् ॥ ४ ॥
 पर्वमानो अक्षिप्यद्द रक्षस्यपजङ्गन्त् ।
 प्रजुपद् रोचयन् रचः ॥ ५ ॥

॥ ४९ ॥ (ऋ० ९।५०।१-५)

वच्य आश्रितः ।

उत् ते शुष्मास ईरते सिन्धौरुमैरिव स्वनः ।
 घ्राणस्य चोदया पविम् ॥ १ ॥
 प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मलस्युवः ।
 यदव्यु पपि सानवि ॥ २ ॥
 अघ्यो वारे परिं प्रियं हरिं हिन्वन्त्याद्रिमिः ।
 पर्वमानं मधुक्षुतम् ॥ ३ ॥
 आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे ।
 अर्कस्य योनिमासर्दम् ॥ ४ ॥
 स पवस्व मदिन्तम गोभिर्ज्ञानो अस्तुभिः ।
 इन्द्रविन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥

॥ ५० ॥ (ऋ० ९।५१।१-५)

अध्वेयो अद्रिमिः सुतं सोमं पवित्रं वा खंज ।
 पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥
 द्विवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वृजिर्णे ।
 सुनोता मधुमत्तमम् ॥ २ ॥
 तद्यु त्य इन्द्रो अन्धसो देवा मधोर्ध्वंक्षते ।
 पर्वमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥
 त्वं हि सोम वर्धयन्त्सुतो मदाय भूर्णये ।
 वृषन्त्सुतोतारंमृतये ॥ ४ ॥
 अर्भयं विचक्षण पवित्रं धारया सुतः ।
 अमि वाजंमृत श्रवः ॥ ५ ॥

॥ ५१ ॥ (ऋ० ९।५१।१-५)

परिं वृक्षः सनद्रयिर्मद्राजं नो अन्धसा ।
 सुवानो अर्षं पवित्रं वा ॥ १ ॥
 तर्वं प्रतेमिर्ध्वमि रव्यो वारे परिं प्रियः ।
 सहस्रधारो यात् तना ॥ २ ॥
 चरुं यस्तमीडस्येन्द्रो न दानमीह्वय ।
 वधैर्वधस्त्रवीड्वय ॥ ३ ॥
 नि शुष्ममिन्देपां पुरंहत जनानाम् ।
 यो अस्मां आदिर्देशति ॥ ४ ॥

शतं न इन्द्र ऊतिभिः सहस्रं वा शुचीनाम् ।

पर्वस्व मंहयद्रयिः ॥ ५ ॥

॥ ५२ ॥ (ऋ० ९।५३।१-४)

अवरवारः कारयपः ।

उत् ते शुष्मांसो अस्थु रक्षो भिन्दन्तो अद्रिघः ।

नुदस्व याः परिस्पृधः ॥ १ ॥

अया निजग्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते ।

स्तया अविभ्रुया हृदा ॥ २ ॥

अस्य व्रतानि नाधुपे पर्वमानस्य दृढ्या ।

रुज यस्त्वो पृतन्यति ॥ ३ ॥

तं हिन्वान्ति मद्रुच्युतं हरिं नदीपुं वाजिनम् ।

इन्द्रुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ ४ ॥

॥ ५३ ॥ (ऋ० ६।५४।१-४)

अस्य प्रतामनु द्युतं शुक्रं दुदुष्टे अहयः ।

पर्यः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥

अयं सूर्य इवोपट् गयं सरांसि धावति ।

सप्त प्रवत् आ दिवंम् ॥ २ ॥

अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवंनोपरि ।

सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥

परि णो देवधीतये वाजो अर्पसि गोमंतः ।

पुनान इन्द्रयिन्द्रयुः ॥ ४ ॥

॥ ५४ ॥ (ऋ० ९।५५।१-४)

यथैपयं नो अन्धंसा पुष्टं पुष्टं परि स्रव ।

सोम विश्वां च सोमंगा ॥ १ ॥

इन्द्रो यथा तप स्तयो यथा ते जातमन्धसः ।

नि पृदिभिं प्रिये संदः ॥ २ ॥

उन नो गोविदंश्रयित् पयंस्य सोमान्धंसा ।

मधूर्तमभिरुदंभिः ॥ ३ ॥

यो जिनानि न जीयंते दग्निं शशुंभीत्यं ।

स पयस्य सहस्रजित् ॥ ४ ॥

॥ ५५ ॥ (ऋ० ९।५६।१-४)

परि सोमं श्रुतं बृहद्वाशुः पवित्रे अर्पति ।

विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥

यत् सोमो वाजमर्पति शतं धारा अप्सुयुवः ।

इन्द्रस्य सख्यमाविशान् ॥ २ ॥

अभि त्वा योपणो दर्शं जारं न कन्यानूपत ।

मृज्यसे सोम सातये ॥ ३ ॥

त्वमिन्द्राय विष्णवे स्वादुरिन्द्रो परि स्रव ।

नृन्स्तोतृन् पाहंहंसः ॥ ४ ॥

॥ ५६ ॥ (ऋ० ९।५७।१-४)

प्र ते धारा असञ्चतो द्विवो न रन्ति वृष्टयः ।

अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥

अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्पति ।

हरिस्तुजान आयुधा ॥ २ ॥

स मर्मृजान आयुभि रिमो राजेय सुव्रतः ।

श्येनो न वंसु पीदति ॥ ३ ॥

स नो विश्वा द्विवो वसुतो पृथिव्या अधि ।

पुनान इन्द्रवा भर ॥ ४ ॥

॥ ५७ ॥ (ऋ० ९।५८।१-४)

तत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।

तत् स मन्दी धावति ॥ १ ॥

उन्ना वेदं चसुनां मर्तस्य देवयवसः ।

तत् स मन्दी धावति ॥ २ ॥

ध्वस्तयोः पुरुषन्त्यो रा सहस्राणि दक्षदे ।

तत् स मन्दी धावति ॥ ३ ॥

आ योर्लिशतं तनां सहस्राणि च दक्षदे ।

तत् स मन्दी धावति ॥ ४ ॥

॥ ५८ ॥ (ऋ० ९।५९।१-४)

पर्वस्व गोजिदंश्रजिद् विश्वजित् सोम ण्यजित् ।

प्रजावद् रत्नमा भर ॥ १ ॥

पर्वस्याद्भयो अदाभ्युः पयस्वीपधीभ्यः ।

पर्वस्य धिपर्णाभ्यः ॥ २ ॥

त्वं सौम पर्वमानो विश्वानि दुरिता तर । कृषिः सौम नि वर्द्धिषि ॥ ३ ॥	समिन्त्रेणोत वायुना सुत पति पवित्र आ । सं सूर्यस्य रदिमभिः ॥ ८ ॥
पर्वमान स्वर्विन्दो जायमानोऽभवो महान् । इन्द्रो विश्वोऽब्रवीदसि ॥ ४ ॥	स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुमित्रे वरुणे च ॥ ९ ॥
॥ ५२ ॥ (ऋ० १।६०।१-४) गायत्री, ३ पुराणिक ।	उद्या तं ज्ञातमर्घसो द्विवि पद्म्या ददे । उग्रं शर्म महि ध्रुवः ॥ १० ॥
प्र गायत्रेण गायत पर्वमानं विचर्षणिम् । इन्द्रुं सहस्रचक्षसम् ॥ १ ॥	पूना विश्वान्यर्य आ धुम्नानि मानुषाणाम् । सिपांसन्तो वनामहे ॥ ११ ॥
तं त्वा सहस्रचक्षस मथो सहस्रमर्णसम् । अति वारमपाविपुः ॥ २ ॥	स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भयः । वरिवोवित् परिं स्रव ॥ १२ ॥
अति वारान् पर्वमानो असिप्यदत् कलशौ अभि धावति । इन्द्रस्य हार्द्याविशन् ॥ ३ ॥	उपो पु ज्ञातमन्तरं गोभिर्मङ्गं परिभृत्तम् । इन्द्रुं देवा अयासिपुः ॥ १३ ॥
इन्द्रस्य सोम राधसे शं पवस्व विचर्षणे । प्रजावद् रेत आ भर ॥ ४ ॥	तमिद् बर्धन्तु नो गिरां वत्सं संशिव्भरीरिव । य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥ १४ ॥
॥ ६० ॥ (ऋ० १।६१।१-३०) अमहीयुक्तिः (४) ।	अर्षो णः सोम शं गवै धुक्षस्व पिपुषीमिषम् । वर्षा समुद्रमुत्थपम् ॥ १५ ॥
अथा वीतो परिं स्रव यस्तं इन्द्रो मदेष्वा । सहवान् नवतीर्नव ॥ १ ॥	पर्वमानो अजीजनद् द्विविध्रियं न तन्युत्तुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं वृहत् ॥ १६ ॥
पुरः स्रव इन्धाधिपे दिवोदासाय शश्वरम् । अथ त्वं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥	पर्वमानस्य ते रसो मर्दो राजन्नदुच्छुनः । वि वारमर्घमर्पति ॥ १७ ॥
परिं णो अश्वमश्वविद् गोमादिन्द्रो हिरण्यवत् । क्षरां सहस्रिणीरियः ॥ ३ ॥	पर्वमान रसस्तव दक्षो वि राजति धुमान् । ज्योतिर्विश्वे स्वर्दृशे ॥ १८ ॥
पर्वमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्वृतः । स्रित्वमा वृणीमहे ॥ ४ ॥	यस्ते मद्रो वरेण्यस्तेना पवस्वानर्घसा । देवावीर्यशंसहा ॥ १९ ॥
ये तं पवित्रमूर्धयोऽमिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृद्य ॥ ५ ॥	जग्निर्वृत्रममिषियं सस्तिर्वाजं दिवेदिवे । गोया उं अश्वसा असि ॥ २० ॥
स नः पुनान वा भर रयिं वीरवतीमिषम् । ईशानः सोम विश्वतः ॥ ६ ॥	संमिश्रो अहो भव स्रपस्थाभिर्न धेनुभिः । सीदंशुयेनो न योनिमा ॥ २१ ॥
पुतमु त्वं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् । समादित्येभिरेष्यत ॥ ७ ॥	स पवस्व य आविधेन्द्रं वृत्राय हन्तये । वद्विवांसं महोरपः ॥ २२ ॥

सुवीरसो वयं धना जयैम सोम मीद्वः ।	सो अयंन्द्राय वीतये त्तिरो रोमाण्यप्यया ।
पुनानो वंधं नो गिरः ॥ २३ ॥	सीदन् योनाघनेष्या ॥ ८ ॥
त्वोतासुस्तवाधंसा स्पामं वच्यन्ते आमुरः ।	त्वामेन्द्रो परिं स्रव स्वादिष्टो अङ्गिरोभ्यः ।
सोमं वृतेषु जागृद्दि ॥ २४ ॥	घरिवोविद् घृतं पर्यः ॥ ९ ॥
अपघ्नन् पवते मृधो ऽप सोमो अराण्यः ।	अयं विचर्षणिहितः पवंमानः स चेतति ।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ २५ ॥	हिन्यान आय्यं बृहत् ॥ १० ॥
महो नो राय आ भर पवंमान जही मृधः ।	एष वृषा वृषयतः पवंमानो अशस्तिहा ।
रास्वेन्दो वीरवद् यशः ॥ २६ ॥	करद् चसन्नि दाशुपे ॥ ११ ॥
न त्वा शतं चन हुतो राधो दित्सन्तुमा भिनन् ।	आ पवस्व सहस्त्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् ।
यत् पुनानो मखस्पसे ॥ २७ ॥	पुरुध्न्द्रं पुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥
पवंस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।	एष स्य परिं पिच्यते मर्मज्यमानं आयुभिः ।
विश्व्वा अप द्विषो जहि ॥ २८ ॥	उदगायः कृषिःस्तुः ॥ १३ ॥
अस्य ते सख्ये वयं तयैन्दो युञ्ज उचमे ।	सहस्रोतिः शतामधो विमानो रजसः कविः ।
सासुह्यामं पृतन्यतः ॥ २९ ॥	इन्द्राय पवते मदः ॥ १४ ॥
या तं भीमान्यायुधा तिममानि सन्ति धूर्षणे ।	गिरा जात इह स्तुत इन्द्रुन्द्राय धीयते ।
रक्षां समस्य नो निदः ॥ ३० ॥	वियोनो वसुताविं ॥ १५ ॥
॥ ६१ ॥ (अ० ९, ६२, १-३०)	
जमदग्निर्गर्गवः ।	
पृते अस्त्रमिन्द्रव-स्तिरः पवित्रंमाशर्षः ।	पवंमानः सुतो नृभिः सोमो वाजमिवासरत् ।
विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥	स्रूपु शकर्मनासदम् ॥ १६ ॥
विघ्नन्तो दुग्ितापुष सुगा तोकार्यं वाजिनः ।	तं त्रिपुष्टे त्रिबन्धुरे रथे युञ्जन्ति यातवे ।
तनां कृण्वन्तो अर्षेते ॥ २ ॥	अर्षिणां सप्त धीतिभिः ॥ १७ ॥
कृण्वन्तो वीरिवो गवे ऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।	तं सौतारो धनस्पृतं-माशुं वाजाय यातवे ।
इळांससभ्यं संयतम् ॥ ३ ॥	हरिं हिनोत वाजिनम् ॥ १८ ॥
असाव्यंशुर्मदाया-ऽपु दक्षो गिरिष्ठाः ।	आविशन् कलशं सुतो विश्वा अर्षन्मि श्रियः ।
श्येनो न योनिमासदत् ॥ ४ ॥	शूरो न गोयुं तिष्ठति ॥ १९ ॥
दुध्रमन्धो देववातं-माशु धुतो नृभिः सुतः ।	आ तं इन्द्रो मदाय कं पर्यो दुहन्यायवः ।
स्वदन्ति गावः पर्योभिः ॥ ५ ॥	देवा देवेभ्यो मधुं ॥ २० ॥
आदीमभ्यं न हेतारो ऽशशुभ्रमृताय ।	आ नः सोमै पवित्रं वा सृजता मधुमत्तमम् ।
मण्यो रयै सधमादे ॥ ६ ॥	देवेभ्यो देवधुत्तमम् ॥ २१ ॥
यास्ते धारा मधुधुतो ऽर्यमिन्द्र ऊतय ।	पृते सोमा अस्त्रत गृणानाः अर्षसे मदे ।
ताभिः पवित्रमासदः ॥ ७ ॥	मदिन्तमस्य धारया ॥ २२ ॥

अभि गव्यानि वीतर्ये	नृम्णा पुनानो अर्षसि ।	अयुक्त सूर पतशं	पर्वमानो मुनावधि ।
सनद्वाजः परिं स्रव	॥ २३ ॥	अन्तरिक्षेण यातवे	॥ ८ ॥
उत नो गोर्मतीरियो	विश्वान् अर्षं परिष्टुमः ।	उत त्या हरितो दश	सूर्यो अयुक्त यातवे ।
गुणानो जमर्दग्निना	॥ २४ ॥	इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन्	॥ ९ ॥
पर्वस्व वाचो अग्निः	सोमं विद्याभिर्हृतिभिः ।	परीतो वायवे सुतं	गिर इन्द्राय मत्सुरम् ।
अभि विश्वानि काव्या	॥ २५ ॥	अग्न्यो वारेषु सिञ्चत	॥ १० ॥
त्वं समुद्रिया अर्षो	ऽग्निषो वाचं ईर्यन् ।	पर्वमान विदा रयि	मस्मभ्यं सोम दुष्टरम् ।
पर्वस्व विश्वमेजय	॥ २६ ॥	यो दूणाशो वनुष्यता	॥ ११ ॥
तुभ्येमा भुवंना कवे	महिन्ने सोमं तस्थिरे ।	अभ्येय सहस्रिणं	रयिं गोमन्तमभिवनेम् ।
तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः	॥ २७ ॥	अभि वाजमुत ध्रुवः	॥ १२ ॥
प्र ते दिवो न वृष्टयो	धारां यन्त्यसुञ्चतः ।	सोमो देवो न सूर्यो	ऽद्विभिः पवते सुतः ।
अभि शुक्रार्मुपस्तिरम्	॥ २८ ॥	दधानः कलशे रसम्	॥ १३ ॥
इन्द्रायेन्दुं पुनीतनो	प्रं दशाय सार्धनम् ।	एते धामान्यायी	नुक्ता ऋतस्य धारया ।
ईशानं वीतिराधसम्	॥ २९ ॥	वाजं गोमन्तमक्षरन्	॥ १४ ॥
पर्वमान ऋतः क्वचिः	सोमः पवित्रमासदत् ।	सुता इन्द्राय धञ्जिणे	सोमसो दध्यादारः ।
दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम्	॥ ३० ॥	पवित्रमत्वंक्षरन्	॥ १५ ॥
॥ ६१ ॥ (ऋ० ९।६३।१-३०)		प्र सोमं मधुमत्तमो	राये अर्षं पवित्र आ ।
निधुविः काश्वपा ।		मदो यो देववीतमः	॥ १६ ॥
आ पर्वस्व सहस्रिणं	रयिं सोमं सुवीर्यम् ।	तमो मृजन्त्याययो	हरिं नदीषु वाजिनम् ।
असे भर्वासि धारय	॥ १ ॥	इन्दुमिन्द्राय मत्सुरम्	॥ १७ ॥
इपमूर्जे च पिन्वसु	इन्द्राय मत्सुरिन्तमः ।	आ पर्वस्व हिरण्यव	दध्वावत् सोम धीरवत् ।
चमूष्वा नि पीदसि	॥ २ ॥	वाजं गोमन्तुमा भर	॥ १८ ॥
सुत इन्द्राय विष्णवे	सोमः कलशे अक्षरत् ।	परि वाजे न वाज्यु	मग्न्यो वारेषु सिञ्चत ।
मधुमो अस्तु वायवे	॥ ३ ॥	इन्द्राय मधुमत्तमम्	॥ १९ ॥
एते अंशुप्रमाशवो	ऽति हरांसि वध्रवः ।	क्वचि मृजन्ति मर्ष्यं	धीभिर्विमा अरुस्यवः ।
सोमो ऋतस्य धारया	॥ ४ ॥	वृषा कर्निकदपति	॥ २० ॥
इन्द्रं वधन्तो अप्तुरः	शृण्वन्तो विश्वमार्षम् ।	वृषणं धीमिप्सुरं	सोममृतस्य धारया ।
अपन्नतो अरावणः	॥ ५ ॥	मृतो विप्राः समन्वरन्	॥ २१ ॥
सुता मनु स्यमा रजो	ऽभ्यर्षन्ति वध्रवः ।	पर्वन्व देवायुष	गिन्द्रं गच्छतु ते मर्दः ।
इन्द्रं गच्छन्तु इन्द्रवः	॥ ६ ॥	वायुमा रीट् धर्मणा	॥ २२ ॥
अवा पर्वस्य धारया	यया सूर्यमरोचयः ।		
द्विन्यानो मानुषीरपः	॥ ७ ॥		

पर्वमानं नि तौशसे रयिं सोमं ध्रुवावर्धम् ।
 प्रियः समुद्रमा विशा ॥ २३ ॥
 अपमन्नं पर्वसे मूर्धः प्रतुवित् सोमं मत्सुरः ।
 नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ २४ ॥
 पर्वमाना अखक्षत सोमाः शुक्रास इन्द्रयः ।
 अभि विश्वानि काव्या ॥ २५ ॥
 पर्वमानास आशयः शुभ्रा असृप्रमिन्द्रयः ।
 इन्तो विश्वा अप द्विपः ॥ २६ ॥
 पर्वमाना दिवस्प-यन्तरिक्षादखक्षत ।
 युधिष्ठा अधि सानवि ॥ २७ ॥
 पुनानः सोमं धारये-न्दो विश्वा अप स्त्रिधः ।
 जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥ २८ ॥
 अपमन्नसोमं रक्षसो ऽभ्यर्षं कनिक्कदत् ।
 धुमन्तं शुष्मन्सुत्तमम् ॥ २९ ॥
 असे वसूनि धारयु सोमं दिव्यानि पार्थिवा ।
 इन्दो विश्वानि वार्या ॥ ३० ॥

॥ ६३ ॥ (ऋ० १५६४।१-३०)

३३५० मारोब ।

वृषां सोमं धूमो अंसि वृषां देव वृषप्रतः ।
 वृषा धर्माणि दधिपे ॥ १ ॥
 वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मर्दः ।
 सत्यं वृषन् वृषेदंसि ॥ २ ॥
 अभ्यो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्षतः ।
 वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥
 असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमांसो अथ्या ।
 शुक्रासो वीरयाशयः ॥ ४ ॥
 शुम्भमाना ऋतायुभि-मृज्यमाना गर्भस्त्योः ।
 पर्यन्ते धारं अथ्ययं ॥ ५ ॥
 ते विश्वा दाशुपे घसु सोमां दिव्यानि पार्थिवा ।
 पर्वन्तामान्तरिक्षया ॥ ६ ॥

पर्वमानस्य विश्वयित् प्र ते रगो अखक्षत ।
 सूर्येयेषु न रदमपः ॥ ७ ॥
 फेनुं कृण्वन् दिवस्पदि विश्वा कृपाभ्यर्षति ।
 समुद्राः सोमं पिग्वसे ॥ ८ ॥
 दिव्यानां पार्त्वमिप्यनि पर्वमानं विश्वमणि ।
 अक्रान् देवो न सूर्यः ॥ ९ ॥
 इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कधीनां मृती ।
 सृजदस्यं रथीरिव ॥ १० ॥
 ऊर्मियस्ते पवित्र आ देवाधीः पर्यक्षत् ।
 सीर्दद्भ्रतस्य योनिमा ॥ ११ ॥
 स नो अर्ष पवित्र आ मदो यो देववीतमः ।
 इन्द्रचिन्द्राय पीतयं ॥ १२ ॥
 इपे पर्वस्य धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
 इन्दो कृवाभि गा इहि ॥ १३ ॥
 पुनानो वरिवस्त्रभ्यू-जं जनाय गिर्वणः ।
 हरं सृजान आशिरम् ॥ १४ ॥
 पुनानो देववीतप इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।
 युतानो वाजिर्मिषितः ॥ १५ ॥
 प्र दिव्यानास इन्द्रवो ऽच्छां समुद्रमाशयः ।
 धिया जुता अखक्षत ॥ १६ ॥
 मर्मजानास आयवो वृथा समुद्रमिन्द्रयः ।
 अग्नद्भ्रतस्य योनिमा ॥ १७ ॥
 परिं णो याह्यस्यु-विश्वो घसुभ्योर्जसा ।
 पाहि नः शर्म धारवत् ॥ १८ ॥
 मिमाति वह्निरेतशः पदं युजान ऋकभिः ।
 प्र यत् संमुद्र आहितः ॥ १९ ॥
 आ यद् योनिं हिरण्ययं-माशुर्भ्रतस्य सीर्दति ।
 जहात्यमचेतसः ॥ २० ॥
 अभि वेना अनूपते-यक्षन्ति प्रचेतसः ।
 मज्जन्यविचेतसः ॥ २१ ॥

इन्द्रायेन्द्रो महत्वंते पर्वस्व मधुमत्तमः ।
 ऋतस्य योनिमासदम् ॥ २२ ॥
 तं त्या विप्रां वचोविदः परिंरुण्वन्ति वेधसः ।
 सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २३ ॥
 रसं ते मित्रो अर्थमा पिबन्ति धरुणः कवे ।
 पर्वमानस्य मृततः ॥ २४ ॥
 त्वं सोम विपृथ्वितं पुनानो वार्चामिप्यसि ।
 इन्द्रो सहस्रमर्णसम् ॥ २५ ॥
 उतो सहस्रमर्णसं वाचं सोम मखस्वुवम् ।
 पुनान इन्द्रया भर ॥ २६ ॥
 पुनान इन्द्रयेणं पुरंहृत जनानाम् ।
 प्रियः संमुद्रमा विश ॥ २७ ॥
 दर्विद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या रुपा ।
 सोमाः शुक्ता गवांशिरः ॥ २८ ॥
 हिन्वानो हेवमिर्पित वा धार्जं घ्राज्यंक्रमीत् ।
 सोदन्तो वनुषो यथा ॥ २९ ॥
 ऋधक् सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवः कविः ।
 पर्वस्व सूर्यो हरो ॥ ३० ॥
 ॥ ६४ ॥ (ऋ० ९।६५।१-३०)
 सृगुर्वाहभिर्जमदाभिर्मर्गवो वा ।
 हिन्वन्ति सूरमुर्ध्वयः स्वसारो जामपस्वर्षतिम् ।
 महामिन्द्रं महीयुवः ॥ १ ॥
 पर्वमान रुचांश्चा देवो देवेभ्यस्परि ।
 विभ्या वसुन्या विश ॥ २ ॥
 मा पर्वमान सुष्टुति वृष्टि देवेभ्यो दुषः ।
 इपे पर्वस्व संवतम् ॥ ३ ॥
 घृया द्यसिं भानुनां घुमन्तं त्वा हवामहे ।
 पर्वमान स्वाध्वयः ॥ ४ ॥
 वा पर्वस्व सुवीर्यं मर्दमानः स्वायुध ।
 इदो पिन्त्या गदि ॥ ५ ॥

यद्भिः परिपिच्यसे मृज्यमानो गमस्त्योः ।
 दुर्णां सुधस्यमश्रुपे ॥ ६ ॥
 प्र सोमाय व्यश्ववत् पर्वमानाय गायत ।
 महे सहस्रं चक्षसे ॥ ७ ॥
 यस्य वर्णं मधुश्रुतं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
 इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ८ ॥
 तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।
 सखित्वमा वृणीमहे ॥ ९ ॥
 वृषा पवस्व धारया मरुन्वते च मत्सुरः ।
 विश्वा दर्धानं ओजसा ॥ १० ॥
 तं त्वा धर्तारिमोण्योः पर्वमान स्वर्दशम् ।
 हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥ ११ ॥
 अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया ।
 युजं वाजेषु चोदय ॥ १२ ॥
 आ न इन्द्रो महीमिपं पर्वस्व विश्वदर्शतः ।
 अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥ १३ ॥
 आ कलशा अनूपतेन्द्रो धारोभिरोजसा ।
 पन्द्रस्य पीतये विश ॥ १४ ॥
 यस्य ते मद्यं रसं तीयं दुहन्त्यद्रिभिः ।
 स पर्वस्वामिमातिहा ॥ १५ ॥
 राजां मेधाभिरायते पर्वमानो मनायधि ।
 अन्तरिक्षेण यातवे ॥ १६ ॥
 आ न इन्द्रो शतृग्विभं गवां पोषं स्वर्दशम् ।
 यद्वा भर्गसिमुतये ॥ १७ ॥
 वा नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर ।
 सृष्याणो देवधीतये ॥ १८ ॥
 अर्षां सोम घुमसंमो ऽभि द्रोणानि रोर्षवत् ।
 सोदंच्छेपेनो न योनिमा ॥ १९ ॥
 अप्सा इन्द्राय वायवे वर्णाय मरुद्भयः ।
 सोमो अर्थति विष्यये ॥ २० ॥

इयं तोकार्यं नो दधं—दुसभ्यं सोम विध्वतः ।

आ पवस्व सहृदिणाम् ॥ २१ ॥

ये सोमांसः परावति ये अर्वावति सुमिरे ।

ये वादः शर्यणावति ॥ २२ ॥

य आर्जोकेपु कृत्वसु ये मध्यं पस्त्यानाम् ।

ये वा जनैषु पञ्चसु ॥ २३ ॥

ते नो वृष्टिं दिवस्पदि पवंतामा सुवीर्यम् ।

सुवाना देवास इन्दवः ॥ २४ ॥

पवंते ह्यतो हरिं—गृणानो जमदग्निना ।

हिन्यानो गोरधिं त्वधि ॥ २५ ॥

प्र शुक्रासो वयोञ्जवो हिन्यानासो न सतयः ।

श्रीणाना अप्सु मृजत ॥ २६ ॥

तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिमिरे देवतातये ।

स पवस्वानया हृचा ॥ २७ ॥

आ ते दक्षं मयोभुवं वाहिमद्या वृणीमहे ।

पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २८ ॥

आ मन्द्रमा चरैष्य—मा विप्रमा मनीषिणाम् ।

पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २९ ॥

आ र्यिमा सुचेतुन—मा सुकतो तनूष्या ।

पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ ३० ॥

॥ ६५ ॥ (क्र० ९।६६।१-३०)

शतं वैशानसाः । १९-२१ अभि. पवमानः । गायत्री, १८
अनुष्टुप् ।

पर्वस्य विध्वचपणे ऽभि विश्वानि काव्यां ।

सखा सरिभ्य ईज्यः ॥ १ ॥

ताभ्यां विद्वस्य राजसि ये पवमान धार्मनी ।

प्रतीची सोम तस्यतुः ॥ २ ॥

परि धामानि यानि ते त्वं सोमासि विद्वतः ।

पर्वमान भ्रतुभिः कवे ॥ ३ ॥

पर्वस्य जनयत्रिणे ऽभि विद्वानि चार्यां ।

नप्रा सरिभ्य ऊतये ॥ ४ ॥

तव्यं शुक्रासो अर्चयो दिवस्पृष्टे वि तन्वते ।

पुविश्रं सोम धामनिः ॥ ५ ॥

तयेमे सुत सिन्धवः प्रशिपं सोम मिरते ।

तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ६ ॥

प्र सोम याहि धारया सुत इन्द्राय मत्तरः ।

दधानो अक्षिति श्रवः ॥ ७ ॥

समु त्वा धीभिरस्वरन् हिन्वतीः सुत जामयः ।

विप्रमाजा विवस्वतः ॥ ८ ॥

मृजन्ति त्वा समग्रवो ऽव्यं जीरावधि ध्वणि ।

रेभो यद्व्यसे वने ॥ ९ ॥

पर्वमानस्य ते कवे वाजिन्तसर्गा अरुक्षत ।

अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥ १० ॥

अच्छा कोशं मधुधृत—मर्धधं वारं अव्यये ।

अर्वावशान्त धीतयः ॥ ११ ॥

अच्छा समुद्रमिन्द्वो ऽस्तं गावो न धेनवः ।

अगमक्षृतस्य योनिमा ॥ १२ ॥

प्र ण इन्दो महे रण आपो अर्पन्ति सिन्धवः ।

यद् गोभिर्वासयिष्यसे ॥ १३ ॥

अस्य ते सुख्ये व्यय—मियक्षन्तस्त्वोतयः ।

इन्दो सखित्वमुद्रमसि ॥ १४ ॥

आ पवस्व गविष्टये महे सोम नृचक्षसे ।

पन्द्रस्य जडैरं विशा ॥ १५ ॥

महो असि सोम ज्येष्ठ उग्रानामिन्द्र ओजिष्ठः ।

युष्वा सन्ध्रवज्जिगेथ ॥ १६ ॥

य उग्रेभ्यश्चिदोर्जीया—ञ्चूरैर्यश्चिञ्चूरैतरः ।

भूरिदाभ्यश्चिन्महीयान् ॥ १७ ॥

त्वं सोम स्र पयं—स्तोकस्य साता तनूनाम् ।

वृणीमहे सत्याय वृणीमहे युज्याय ॥ १८ ॥

अग्न आर्यैपि पवस आ सुवोर्जमिपं च नः ।

आरे वोधस्य दुचन्दुनाम् ॥ १९ ॥

अग्निर्होषिः पर्वमानः पार्श्वजन्यः पुरोहितः ।
 तर्मा महे महागयम् ॥ २० ॥
 अग्ने पर्वस्व स्वपा अस्य वचैः सुवीर्यम् ।
 दधत् रयि मयि पोषम् ॥ २१ ॥
 पर्वमानो अति चिधो ऽभ्यर्पति सुष्टुतिम् ।
 स्रो न विश्वदर्शतः ॥ २२ ॥
 स मर्मज्ञान आयुभिः प्रयस्वान् प्रयसे हितः ।
 इन्दुरत्यो विचक्षणः ॥ २३ ॥
 पर्वमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत् ।
 कृष्णा तर्मासि जङ्घनत् ॥ २४ ॥
 पर्वमानस्य जङ्घतो हरेश्चन्द्रा अरुक्षत ।
 जीरा अञ्जिरशोचिपः ॥ २५ ॥
 पर्वमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ।
 हरेश्चन्द्रो मृद्व्रणः ॥ २६ ॥
 पर्वमानो व्यश्रवद् रुदिमर्भिर्वाजस्तातमः ।
 दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ २७ ॥
 प्र सुवान इन्दुरक्षाः पवित्रमत्यव्ययम् ।
 पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ २८ ॥
 एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीडत्यद्रिभिः ।
 इन्द्रं मदाय जोहुवत् ॥ २९ ॥
 यस्य ते घृक्षन्त् पयः पर्वमानामृतं दिवः ।
 तेन नो मृळ जीवसे ॥ ३० ॥
 ॥ ६६ ॥ (आ० १।६।११-३२)
 १-३ भरदाशो बार्हस्पत्या, ४-६ बृहस्परो मारीचः, ७-९
 गोतमो राह्वगः, १०-१२ अत्रिर्माषः, १३-१५ विश्वामिश्रो
 माधिनः, १६-१८ अषदमिर्माषवः, १९-२१ वाधिशो मैत्रा-
 वदणिः, २२-३२ पवित्र आङ्गिरशो वा बधिशो वा रभो वा। पर्वमानः
 सोमः १०-१२ पर्वमान. पूषा वा, २३-२७ पर्वमानोऽग्निः, २५
 पर्वमानः बधिता वा, २६ पर्वमानामिषद्विगारः, २७ विषे देश
 वा, ३१-३२ वावमान्यभेता । गायत्री, १६-१८ नित्याद्रिपदा
 गयत्री, ३० पुरजोगह, २७, ३१, ३२, अन्नपू ।
 त्वं सोमाति धारयु—सुन्द्र ओजिष्ठो अपरे ।
 पर्वस्व मह्यद्रयिः ॥ १ ॥

त्वं सुतो नृमार्दनो दधन्वान् मंसुरिन्तमः ।
 इन्द्राय सुरिरन्धसा ॥ २ ॥
 त्वं सुध्वाणो अद्रिमि—रन्धर्यं कर्निकदत् ।
 शुभन्तं शुष्मसुक्तम् ॥ ३ ॥
 इन्द्रो हिन्वानो अर्पति तिरो धाराण्यव्यया ।
 हरिर्वाजमचिक्रदत् ॥ ४ ॥
 इन्द्रो व्यव्यमर्पसि वि श्रवांसि वि सौमगा ।
 वि वाजान्तसोम गोमतः ॥ ५ ॥
 आ न इन्द्रो शतग्विर्न रयि गोमन्तमभिवर्तम् ।
 भरां सोम सहस्रिणाम् ॥ ६ ॥
 पर्वमानासु इन्द्रव—स्तिरः पवित्रमाशयः ।
 इन्द्रं यामेभिराशत ॥ ७ ॥
 ककुहः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूष्यः ।
 आयुः पंचत आययै ॥ ८ ॥
 द्विन्यन्ति सूरमुन्नयः पर्वमानं मधुश्रुतम् ।
 अग्नि गिरा समस्वरन् ॥ ९ ॥
 अविता नो अजाश्वः पूषा यामनि यामनि ।
 आ भक्षत् कन्यासु नः ॥ १० ॥
 अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पयते मधु ।
 आ भक्षत् कन्यासु नः ॥ ११ ॥
 अयं तं आघृणे सुतो घृतं न पयते शुचि ।
 आ भक्षत् कन्यासु नः ॥ १२ ॥
 धाचो जन्तुः कपीनां पर्वस्व सोम धारया ।
 देवेषु रत्नधा असि ॥ १३ ॥
 आ कृलशेषु धावति द्येनो घर्मं वि गादते ।
 अग्नि द्रोणा कर्निकदत् ॥ १४ ॥
 परि प्र सोम ते रसो ऽसंजि कृलशेषु सुतः ।
 द्येनो न तन्नो अर्पति ॥ १५ ॥
 पर्वस्व सोम मन्दय—त्रिन्द्राय मधुमत्तमः ॥ १६ ॥
 अरुद्रन् द्वेषवीतये धाज्यन्तो रथा इय ॥ १७ ॥
 ते सुतासो मुदिन्तमाः शुभा धायुर्मरुक्षन् ॥ १८ ॥

प्राध्यानां तुष्टो अभिप्रुतः पवित्रं सोम गच्छसि ।
 दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ १९ ॥
 एष तुष्टो अभिप्रुतः पवित्रमतिं गाहते ।
 रक्षोहा वारमच्ययम् ॥ २० ॥
 यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह ।
 पर्वमानु वि तर्जहि ॥ २१ ॥
 पर्वमानुः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः ।
 यः पोता स पुनातु नः ॥ २२ ॥
 यत् तं पवित्रमचिप्य-श्रे चितंतमन्तरा ।
 ब्रह्म तेन पुनीहि नः ॥ २३ ॥
 यत् तं पवित्रमचिप्य-दश्रे तेन पुनीहि नः ।
 ब्रह्मसवैः पुनीहि नः ॥ २४ ॥
 उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेनं च ।
 मां पुनीहि विवर्षतः ॥ २५ ॥
 त्रिभिर्दु देव सवित-र्षाषैः सोम धामभिः ।
 अग्ने दक्षः पुनीहि नः ॥ २६ ॥
 पुनन्तु मां दैवजनाः पुनन्तु वसवो धिया ।
 विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मां २७
 प्र व्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
 देवेभ्यं उत्तमं हविः ॥ २८ ॥
 उषं मियं पर्निप्रतं युवानमाहुतीबुधम् ।
 आगन्तु विध्रोतो नमः ॥ २९ ॥
 अलातयस्य परश्रुर्ननाश त-मा पवस्व देव सोम ।
 क्षारुं विदेव देव सोम ॥ ३० ॥
 यः पापमानीरप्ये-त्यृषिभिः संभ्रुतं रसम् ।
 सयुं स पुतमंश्चाति म्वदितं मातरिभ्यना ॥ ३१ ॥
 पापमानीर्यो अप्ये-त्यृषिभिः संभ्रुतं रसम् ।
 तस्मै सर्वस्यती दुष्टे धीरं सर्षिमर्षुदृक् ॥ ३२ ॥
 ६७ ॥ (अ० १, ६८, १-२०)
 वागाविर्मातरदनः । अगती, १० त्रिभुप ।
 प्र देवमच्छा मर्षुमन्त इन्दुयो
 आतिप्यदन्तु गाव आ न धेनवः ।

वहिषदो वचनावन्त ऊर्धभिः
 परिस्रुतं मुक्षियां निर्णिजं धिरे ॥ १ ॥
 स रोहवद्गभि पूर्वा अचिक्रदद्
 उपाकहः श्रथयन्त्स्वादते हरिः ।
 तिरः पवित्रं परियन्तु जयो
 नि शर्याणि दधते द्वेष आ वरम् ॥ २ ॥
 वि यो ममे यस्यां संयती मर्दः
 साकंबुधा पर्यसा पिन्वदक्षिता ।
 मही अपारे रजसी विवेविदद्
 अभिवज्जाक्षितं पाज आ ददे ॥ ३ ॥
 स मातरां विचरेन् वाजयंशपः
 प्र मेधिरः स्वधयां पिन्वते पदम् ।
 अंशुयैवैन पिपिशे यतो नृभिः
 सं जामिभिर्नसते रक्षते शिरः ॥ ४ ॥
 सं दक्षेण मनसा जायते कविः
 श्रुतस्य गर्भो निहितो यमा परः ।
 यूनां ह सन्तां प्रथमं वि जज्ञतुः
 शुद्धां हितं जनिं नेममुद्यतम् ॥ ५ ॥
 मन्द्रस्यं रूपं विविदुर्मेनीपिर्णः
 श्येनो यदन्धो अर्भरत् परावर्तः ।
 तं मर्जयन्त सुवृधं नदीध्वां
 उशन्तंमंशुं परियन्तमृग्मिर्षम् ॥ ६ ॥
 त्वां मृजन्ति दश योषणः सुतं
 सोम ऋषिभिर्मतिमिर्धीतिमिर्हितम् ।
 अय्यो चारंभियत देवहतिभिः
 नृभियुतो वाजुमा दीपिं सातयं ॥ ७ ॥
 परिप्रयन्तं पर्ययं सुपुंसदं
 सोमं मनीषा शर्म्यन्पूत स्तुमः ।
 यो धारया मर्षुमां ऊर्मिणां द्विय
 इयतिं पाचं रयिवाळमर्त्यः ॥ ८ ॥
 (४४४)

अये द्विच इयति विश्वमा रजः
 सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ।
 अङ्घ्रिगोभिर्मृज्यते अङ्घ्रिभिः सुतः
 पुनान इन्दुर्वोरिवो विदत् प्रियम्
 एया नः सोम पतिपिच्यमानो
 ययो द्युधिप्रतमं पयस्य ।
 अह्ये चावापृथिवी हुवेम
 देवां घृत् रयिमस्ते सुवीरम्

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

(॥ ६८ ॥ अ० ९।६९।१-२०)

द्विरप्यत्प आश्रितः । ऋषी, १-१० शिष्टम् ।

इपुर्न धन्वन् प्रति धीयते मतिः
 एत्नो न मातुर्गर्प सुर्ज्यूर्धनि ।
 उरुधारेय हुहे अम्रं आयति
 यस्य मतेस्पपि सोमं इप्यते
 उषो मतिः पृच्यते मिच्यते मधुं
 मन्द्रार्जनी चोदते अन्तरासनि ।
 पर्यमानः संतनिः प्रंजतामिध
 मर्षुमान् हृत्सः परि पारमरति
 अर्ज्यं यधुयुः पवते परि त्याचि
 धंप्नोते नभीरदितेभुनं यते ।
 हरिरक्रान् यजुतः संपनो मर्दो
 नृणा शिरानो महिषो न शौमले
 उशा मिमानि प्रति वन्ति धेनवो
 देयस्य देवीर्गर्गं यन्ति निष्कृतम् ।
 अर्धमासीदुर्जने पारमप्ययं
 धरुं न निगं परि सोमो अन्वत
 अर्गुनान् गर्दाता पारमता हरिः
 अमर्त्यो निर्गिज्ञानः परि ध्यत ।
 द्विपपुष्टं वदन्तां निर्गिज्ञे एत
 उपगन्तं धुग्गोभिर्भुज्ययम्
 मर्षुम्येव हृत्सयो द्रावयितयो
 मन्सरासः प्रतुर्पः एतन्वीरने ।

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

तन्तुं ततं परि सर्गाम आरायो
 नेन्द्राहते पवते धाम किं चन
 मिर्घोरिय प्रवृषे निन्न आरायो
 घृष्युता मर्दानो गातुमांरात ।
 शं नो निवेदो द्विपदे चतुस्पदे
 अस्मे वाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्यः
 आ नः पयस्य चसुमदिरण्यवद्
 अर्धावद् गोमद् यवमत् सुवीर्यम् ।
 ययं हि सोम पितरो मम म्वनं
 द्विवो मूर्धानः प्रमिता ययमृत्नः
 एते सोमाः पर्यमानाम् एदं
 रथा इय प्र ययुः मातिमच्छं ।
 सुताः पविप्रमतिं यन्त्यर्थं
 द्वित्वी यनि हरिर्नो पृथिमच्छं
 इन्द्राधिन्द्राय वृहते पयस्य
 सुमृष्टीको अन्वयो रिशार्दाः ।
 मर्षा चन्द्राणि वृणते यमृनि
 देवर्षोपापृथिवी प्रायतं नः

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ६९ ॥ (अ० ९।७०।१-२०)

देवैश्चाभितः । ऋषी, १० शिष्टम् ।

त्रिरंमं सन धेनवो दुदुदो
 सुत्यामाशिरं पूज्यं ध्योमनि ।
 एत्यायंस्या भुयंनानि निर्गिज्ञ
 चारुणि चहे यद्वर्नरयधेन
 न निशमाणो समुत्तम्य चारुण
 उने चावा वारुणो पि शोधये ।
 भोऽज्ञा मपो मेहता परि ध्यत
 यदां देयस्य धर्यता मर्दो द्विदुः
 ते अम्य मन्तु वेत्तरोऽमृगयो
 अर्धमागो जनुर्गी उने धनुं ।
 वेर्मिन्मता र्वं देव्यां प पुनत
 आशिरं शरानि मन्तां अगृण्यत

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

स मूज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः
 प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सत्वा ।
 वृत्तानि पानो अमृतस्य चारुण
 उमे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ
 स ममैजान इन्द्रियाय धार्यसु
 ओमे अन्ता रोदसी हृषेते हितः ।
 वृषा शुष्मेण वाधते वि दुर्मतीः
 आदेदिशानः शयहेव शुरुवः
 स मातरा न दृशान उच्रियो
 नानन्ददेति मुस्तामिव स्वनः ।
 ज्ञानव्रतं प्रथमं यत् स्वर्णर
 प्रशस्तये कर्मवृणीत सुकर्तुः
 ह्यति श्रीमो वृषभस्तविष्यया
 शृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षणः ।
 आ योनि सोमः सुरतं नि पीदति
 गव्ययी त्वग् भवति निर्णिगव्ययी
 शोचिः पुनानस्तन्वमरेपसु
 अथे हरिन्येधाविष्ट सानवि ।
 जुष्टा मित्राय चरुणाय चायथे
 त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः
 पयन्व सोम द्वेषयतेय वृषा
 इन्द्रस्य दाई सोमधानमा विदा ।
 पुरा नो वाधाद् दुरिताति पारय
 क्षत्रविदि दिदा आहा विष्टुत्तने
 द्विनो न सतिरमि याजमर्ष
 इन्द्रभ्येन्दो जुष्टरमा पयस्य ।
 नापा न सिन्धुमति पपि विह्वान्
 रागे न धुष्यथ्य नो निदः स्वः

॥ ३० ॥ (२० • ३१ (१-९)

अथो देवा मता । अथो, • १२५ । ।

आ ददिना गृज्यते नाप्यात्सु
 पति हृष्टा दक्षयः पति आर्यविः ।

हरिरोपशं कृणुते नभस्पय
 उपस्तिरे चम्योऽुर्ब्रह्म निर्णिजे ॥ १ ॥
 प्र कृष्टिदेवं शप एति रोहवद्
 असुर्यु वृषा नि रिणीते अस्य तम् ।
 जहाति वधि पितुरेति निष्कृतं
 उपपुतं कृणुते निर्णिजं तना ॥ २ ॥
 अद्रिभिः सुतः पवते गभस्तयोः
 वृषायते नभसा वेपते मती ।
 स मोदते नलते साधते गिरा
 नैतिके अन्सु यजेते परीमणि ॥ ३ ॥
 परि युक्षं सहस्र पर्वतावृधं
 मध्वः सिञ्चन्ति हृम्यस्य सक्षणिम् ।
 आ यस्मिन् गावः सुहुताद् ऊधनि
 मूर्धच्छीणन्त्यग्निं घरीमभिः ॥ ४ ॥
 समी रथं न भुरिजोरहेपत
 दश स्वसापो आदेतेरुपस्य आ ।
 जिगादुप जयति गोरपीच्यै
 पदं यदस्य मत्तथा अजीजनन् ॥ ५ ॥
 ह्येनो न योनि सदनं धिया हृतं
 हिरण्ययमासदं देव प्रपति ।
 ए रिणन्ति यद्विपिं प्रियं गिरा
 अथो न द्वेषो अप्येति यदियः ॥ ६ ॥
 परा ध्वक्ते अरुपरे द्वियः कृविः
 धृषा त्रिपुष्टो अनविष्ट गा अभि ।
 सुहृषणीतिर्यतिः परायती
 रोमो न पूर्थाकृतो वि राजति ॥ ७ ॥
 त्येपं रूपं वृणुते यणो धस्य स
 यथादीयत् समता रोधति त्रिषा ।
 धृष्या याति स्वध्या देव्यं जनुं
 नं सुपृती नगते सं गोभ्रमया ॥ ८ ॥

उक्षेव युथा परियर्त्रावादीद्
अधि त्विपरिचित् सूर्यस्य ।
दिव्यः सुपर्णोऽथ चक्षत धां
सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः

॥ ७१ ॥ (ऋ० ९।७२।१-९)

हरिमन्त आत्रिरसाः । जगती ।

हरिं मृजन्त्यरुयो न युज्यते
सं ध्रेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।

उद् वाचमीर्यति हिन्यते मती
पुरुपुतस्य कति चित् परिप्रियः

साकं धंदन्ति बहवो मनीषिण
इन्द्रस्य सोमं जउरे यदादुहुः ।

यदा मृजन्ति सुगमस्तयो नरः
सनीळामिदंशभिः काम्ये मधु

अरममाणो अत्येति गा अमि
सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम् ।

अन्वस्मै जोषमभरद् विनंगुसः
सं हृयीमिः स्वसृमिः क्षेति जामिभिः

नृधृतो अद्रिपुतो वर्हिषि प्रियः
पतिर्गवां प्रदिष इन्दुकृत्तियः ।

पुरंधिवान् मनुषो यद्गसाधनुः
शुचिंधिया पवते सोमं इन्द्र ते

न्याहुभ्यां चोदितो धारया सुतो
अनुष्वधं पवते सोमं इन्द्र ते ।

आप्राः क्रतुन्समजैरध्वरे मतीः
वेर्न द्रुपच्यम्वोऽरासंदर्द्धारिः

अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं
कयि कययोऽपसो मनीषिणः ।

समी गावो मतयो यन्ति संयतं
श्रुतस्य योना सदाने पुनर्भुवः

नामा पृथिव्या धरुणो महो दिवोऽ
अपामूर्मो सिन्धुध्वन्तंक्षितः ।

इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभ्रवंसुः
सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः

स त् पवस्य परि पार्थिवं रजः
स्तोत्रे शिक्षन्नाध्वन्वते च सुक्रतो ।

मा नो निर्माग् वंसुनः सादानस्वृशो
रयि पिशङ्गं बहुलं वंसीमहि

आ तू न इन्दो शतश्रावश्यं
सहस्रंदातु पशुमक्षिरण्यवत् ।

उप मास्य वृहती रेवतीरियो
अधि स्तोत्रस्य पवमान नो गहि

॥ ७२ ॥ (ऋ० ९।७३।१-९)
पवित्र आत्रिरसः ।

अस्ये द्रप्सस्य धर्मतः समस्वरन्
क्रुतस्य योना समरन्त नाभयः ।

त्रीन्स मुधो असुरश्चक्र धारभै
सत्यस्य नावः सुहृतमपीपरन्

सम्यक् सम्यजो महिषा अहेपत्
सिन्धोरुर्मावधि वेना अवीविपन् ।

मघोषारोभिर्जनयन्तो अकमिक्
प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन्

पुविश्रचन्तः परि वाचमासते
पितैर्पां प्रतो अमि रक्षति द्रुतम् ।

महः संमुद्रं वरुणस्तिरो दधे
धीरा इच्छेकुर्धरेण्यारमम्

सहस्रंधारेऽव ते समस्वरन्
दिवो नाके मधुजिह्वा असध्वतः ।

अस्य स्पशो न नि मियन्ति भूर्णयः
पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतयः

॥ ९ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

पितृमातुरध्या ये समस्वरन्
ऋचा शोचन्तः सुदहन्तो अग्रतान् ।

इन्द्रद्विष्टामपं धमन्ति मायया
त्वचमालैर्नी भूमनो विघसपरि
प्रत्नान्मानाद्भ्या ये समस्वरन्
श्लोकयन्नासो रभसस्य मन्तवः ।

अपानक्षासो वधिरा अहासत
ऋतस्य पन्था न तरन्ति दुष्कृतः
सहस्रघारे चितते पवित्र आ
वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।

रुद्रासं पपामिपिरासो अद्रुहः
स्पशः स्वज्ञः सुदृशो नृचक्षसः
ऋतस्य गोपा न दभाय सुकृतुः
प्री प पवित्रां हृद्यन्तरा दधे ।

विद्वान्स विश्वा भुवनाभि पश्यति
अवाञ्छुष्टान् विध्यति कर्तं अग्रतान्
ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ
जिह्वाया अग्रे बर्हणस्य मायया ।

धीराश्चित् तत् सुमिनेक्षन्त आश्रत
अत्रा कर्तमर्षं पद्मात्यप्रमुः

॥ ७३ ॥ (ऋ० ९।७४।१-९)

कर्षावान् द्वैतमस । जगती, ८ त्रिष्टुप् ।

शिगुर्न जातोऽर्षं चक्रुद्द वने
स्वर्षुर्षद् वाज्यरुपः सिपासति ।

द्वियो रेतसा सचते पयोवृधा
तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः

द्वियो यः स्क्रम्भो धरुणः स्वातत
आपुर्णो अंशुः पर्यति विश्वतः ।

समे मदी रोर्दसी यक्षद्रावृता
समीचीने दाधार समिपः कविः

मदि पसरः सुकृतं सोम्यं मधु
उर्धो गव्यतिरार्दितेश्रुतं यते ।

ईशो यो वृष्टेरित अचियो वृषा

अपां नेता य इतऊतिःश्रुमिग्यः

॥ ३ ॥

आत्मन्वप्रभो दुष्टते घृतं पर्यः

ऋतस्य नाभिरमृतं धि जायते ।

॥ ५ ॥

सुमीचीनाः सुदानयः प्रीणन्ति तं

नरो हितमर्षं मेहन्ति परेयः

॥ ४ ॥

अरवीदुद्गुः सचमान ऊर्मिणां

देवाण्यं मनुषे पिन्वति त्वचम् ।

॥ ६ ॥

दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ

येन लोकं च तनयं च धामहे

॥ ५ ॥

सहस्रघारेऽव ता असधतः

तृतीयं सन्तु रजसि प्रजावतीः ।

॥ ७ ॥

चतस्रो नाभो निहिता अयो द्विवो

हृचिभैरन्त्येमृतं घृतश्चुतः

॥ ६ ॥

श्वेतं रूपं कृणुते यत् सिपासति

सोमो मीद्वो असुरो वेद् भूमनः ।

॥ ८ ॥

धिया शर्मा सचते सममि प्रवद्

विचस्कर्वन्धमर्षं दर्पदुद्रिणम्

॥ ७ ॥

अर्षं श्वेतं कलशं गोभिरकं

कार्पमघा वाज्यक्रमीत् ससवान् ।

॥ ९ ॥

आ हिंन्विरे मनसा देवयन्तः

कक्षीयते शतहिमाय गोनाम्

॥ ८ ॥

अङ्गिः सोम पपुचानस्य ते रसो

अव्यो वारं वि पयमान धावति ।

॥ १ ॥

स मृज्यमानः कविभिर्मद्विन्तम्

स्वदस्वेद्गाय पवमान पीतये

॥ ९ ॥

॥ ७४ ॥ (ऋ० ९।७५।१-५)

कविर्भोग । जगती ।

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो

नामानि युद्धो अधि येपु धधैते ।

॥ २ ॥

आ सूर्यस्य वृहतो बुधन्नधि

रथं विष्यञ्जमरुद् विचक्षणः

॥ १ ॥

इन्द्राय सोम परि पिच्यसे नृभिः
 नृचक्षा ऊर्मिः कृविरज्यसे धर्मे ।
 पुर्धाहिं ते स्रुतयः सन्ति यातये
 सहस्रमभ्या हरयध्वमूपदः

॥ २ ॥

समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणं
 आसीना अन्तरभिः सोममक्षरन् ।
 ता इ हिन्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणि
 याचन्ते सुम्नं पर्वमानमक्षितम्

॥ ३ ॥

गोजिघ्रः सोमो रथजिद्धिरण्यजित्
 स्वजिद्धिजित् पवते सहस्रजित् ।
 यं देवासश्चक्रे पीतये मदे
 स्वादिष्टं द्रुप्तमरुणं मंयोभुवम्

॥ ४ ॥

पतानि सोम पर्वमानो अस्मयुः
 सत्यानि कृण्वन् द्रविणान्यर्पसि ।
 जहि शत्रुमान्तिके दूरके च य
 उर्वी गव्यूतिमभयं च नस्कधि

॥ ५ ॥

। ७८ ॥ (अ० २।७।१-५)

अचोदसो नो धन्वन्तिवन्द्यः
 प्र सुवानासो बृहदिदेषु हरयः ।
 वि च नशन् न इपो अरातयो
 अयो नशन्त सनिपन्त नो धियः

॥ १ ॥

प्र णो धन्वन्तिवन्द्यो मदच्युतो
 धना वा येभिरर्वतो जुनीमसि ।
 तिरो मर्तस्य कस्य चित् परिद्धति
 वयं धनानि विश्वधा भरेमहि

॥ २ ॥

उत स्वस्या अरात्या अरिहिं पः
 उतान्यस्या अरात्या वृको हि पः ।
 धन्यन् न वृणा समरीत तां अभि
 सोमं जहि पर्वमान दुरार्यः

॥ ३ ॥

दियि ते नामा परमो य आददे
 पृथिव्यास्ते रगहुः सानपि क्षिपः
 अद्रपस्था घृणति गोरधि त्यचि
 अमुत्तु त्या हस्तेदुदुहमेनीपिणः

॥ ४ ॥

पया त इन्दो सुभ्यं सुपेरांसं
 रसें तुञ्जति प्रयमा भमिधियः ।
 निर्दनिदं पयमान नि तारिय
 आपिस्ते शुष्मी भपतु त्रियो मर्दः

॥ ५ ॥

॥ ७९ ॥ (अ० १।८०।१-५)

वधुमारदाजः ।

सोमस्य धारा पवते नृचक्षसः
 श्रुतेन देवान हवते दिवस्पति ।
 बृहस्पते र्वयेना वि दिद्युते
 समुद्रासो न सर्वनानि विव्यचुः
 यं त्वा वाजिघृण्यो अभ्यनूत
 अयोहत्तं योनिमा रोहसि शुमान् ।

॥ १ ॥

मघोनामार्युः प्रतिरन् महि श्वः
 इन्द्राय सोम पवसे वृषा मर्दः

॥ २ ॥

एद्रस्य कृक्षा पवते मदिन्तम
 ऊर्जे वसानः श्रवसे सुमङ्गलः ।
 प्रत्यङ् स विश्वा भुवनाभि पप्रथे
 क्रीळन् हरिरत्यः स्यन्दते वृषा

॥ ३ ॥

तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं नरः
 सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः ।
 नृभिः सोम प्रच्युतो प्रार्वभिः सुतो
 विश्वान् देवां आ पवस्वा सहस्रजित्

॥ ४ ॥

तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तमाद्रिभिः
 दुहन्त्यप्सु वृषमं दश क्षिपः ।
 इन्द्रं सोम मादयन् दैव्यं जनं
 सिन्धोरिधोर्मिः पर्वमानो अर्पसि

॥ ५ ॥

(४२३५)

॥ ८० ॥ (क्र० ९।८१।१-५)

जगती, ५ त्रिष्टुप् ।

प्र सोमस्य पर्वमानस्योर्मयः

इन्द्रस्य यन्ति जुठरं सुपेशसः ।

वृष्णा यदीमुञ्जीता यशसा गवां

दानाय शरमुदमन्दिपुः सुताः

अच्छा हि सोमः कलशां अर्सिप्यद्व

अत्यो न घोळ्हां रघुवर्तनिर्घृपां ।

अथा देवानामुभयस्य जन्मनो

विद्धां अश्रोत्यमुत इतश्च यत्

आ नः सोम पर्वमानः किय वसु

इन्दो भवं मघवा राधसो मूहः ।

शिक्षां वयोधो वसवे सु चेतुना

मा नो गर्गमारे अस्सत् परां सिचः

आ नः पूषा पर्वमानः सुरातयो

मिश्रो गच्छन्तु वरुणः सजोर्पसः ।

इद्वस्पतिर्मघतो वायुरश्विना

त्वष्टां सविता सुयमा सरस्वती

उभे द्यावापृथिवी विश्वमिन्वे

अर्थमा देवो अदितिर्विधाता ।

मगो नृशंस उर्ध्वान्तरिक्षं

विश्वे देवाः पर्वमान जुपन्त

॥ ८१ ॥ (क्र० ९।८१।१-५)

जगती ।

असावि सोमो अह्यो वृषा हरी

राजैव वस्मो अमि गा अचिरुदत् ।

पुनानो वाटं पर्येत्यव्ययं

इयेनो न योर्न घृतवन्तमासदम्

कविर्घ्नस्या पर्येपि माहिर्नं

अत्यो न मृष्टो अमि वाजमर्पसि ।

अपसेघन् दुरिता सोम मृळय

घृतं वसानः परि यासि निर्णिजम्

पर्जन्यः पिता महिपस्य पर्णिनो

नामां पृथिव्या गिरिपु क्षयं दधे ।

स्वसारु आपो अमि गा उतासन्

सं त्रावमिर्नसते वीते अश्वरे

॥ ३ ॥

जायेव पत्यावधि शेषं मंहले

पजाया गर्भं शृणुहि धर्षामि ते ।

अन्तर्वाणीपु प्र चंप सु जीवसे

अनिन्यो वृजनं सोम जागृहि

॥ ४ ॥

यथा पूर्वैभ्यः शतसा अमृधः

सहस्रसाः पर्यया वार्जमिन्दो ।

पृवा पवस्व सुधिताय नव्यसे

तव द्रुतमन्वार्यः सचन्ते

॥ ५ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ८१ ॥ (क्र० ९।८१।१-५)

पर्वत्र आत्रसः ।

पृथिर्न ते विततं ब्रह्मणस्पते

प्रभुगात्राणि पर्येपि विश्वतः ।

अतस्तनूनं तद्रामो अश्रुते

शूतास इद् वदन्तस्तत् समाशत

॥ १ ॥

तपोष्पृथिर्न विततं दिवस्पदे

शोचन्तो अस्य तन्त्वो व्यस्थिरन् ।

अयन्त्यस्य पक्षीतारमाशवो

दिवस्पृष्टमधि तिष्ठन्ति चेतसा

॥ २ ॥

अरुदचदुपसुः पृश्निरप्रियः

उक्षा विमतिं मुबनानि वाजपुः ।

मायाविनो ममिरे अस्य मायया

नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः

॥ ३ ॥

गन्धर्व इत्या पदमस्य रक्षति

पाति देवानां जानिमान्यद्भुतः ।

गृभ्णाति रिपुं निघया निघार्यतिः

सुकृत्तमा मधुनो भुक्षमाशत

॥ ४ ॥

हृविर्हृविष्मो महि सद्य देव्यं
नमो वसानः परि यास्यध्वरम् ।
राजां पुविर्त्रयो चाज्जमरुहः
सहस्रभृष्टिर्जयसि ध्रुवो बृहत्
॥ ८३ ॥ (ऋ० १।८४।१-५)
वाच्यः प्रजापतिः ।

पर्वस्व देवमार्दनो विचर्षणिः
अप्सा इन्द्राय चरुणाय वायवे ।
कृधी नो अद्य चरिवः स्वस्तिमद्
उरुक्षितौ गृणीहि देव्यं जनम्
आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो
विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति ।
कृण्वन्संचूर्तं विचूर्तमभिष्टय
इन्दुः सिपक्तयुपसं न सूर्यः
आ यो गोभिः सृज्यत ओर्षधीष्या
देवानां सुम्न इपयन्नपावसुः ।
आ विद्युतां पवते धारया सुतः
इन्द्रं सोमो मादयन् देव्यं जनम्
एष स्य सोमः पवते सहस्रजिद्
द्विभ्वानो वाचमिदिरामुर्बुधम् ।
इन्दुः समुद्रमुदिरति वायुभिः
पन्द्रस्य द्वादं कलशेषु सीदति
अभि त्यं गावः पर्यसा पयोवृधं
सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम् ।
धनंजयः पवते कृत्स्नो रसो
विप्रः कृषिः काव्येना स्वर्चनः

॥ ८४ ॥ (ऋ० १।८५।१-११)

बेनो आगवः । अगती, ११-१२ शिष्टम् ।

इन्द्राय सोमं सुपुतः परि स्रय
अपामीवा भवतु रक्षसा सह ।
मा ते रक्षस्य मत्सत ह्ययाविनो
द्रधिणम्वन्त इह सन्तिवन्दयः

क्षस्मान्तस्मये पयमान चोदय
वक्षो देवानामसि हि प्रियो मर्दः ।
जृहि शरैरभ्या भन्दनायतः
॥ ५ ॥ पियेन्द्र सोममयं नो मृधो जदि
अर्दस्य इन्दो पयसे मदिन्तम
धात्मेन्दस्य भवसि धासिर्दत्तम ।
अभि स्वरन्ति पदयो मनीषिणो
राजानमस्य भुर्धनस्य निसते
॥ ३ ॥ सहस्रणीयः शतधरो अद्भूतः
इन्द्रायेन्दुः पवते काम्यं मधुं ।
जयन् क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप
उरं नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः
॥ ४ ॥ कनिक्दत् कलशे गोभिरज्यसे
व्युद्ययं समया चारमर्षसि ।
मर्मज्यमानो अत्यो न सानसिः
इन्द्रस्य सोमं जठरे समशरः
॥ ५ ॥ स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने
स्वादुरिन्द्राय सहवीतुनाम्ने ।
स्वादुर्मित्राय चरुणाय वायवे
बृहस्पतेयं मधुमां अदाभ्यः
॥ ६ ॥ अत्यं सृजन्ति कलशे दश शिपः
प्र विप्राणां मृतयो वाच ईरते ।
पर्वमाना अभ्यर्षन्ति सुपुतिं
पन्द्रं विशन्ति मदिरास इन्दवः
॥ ७ ॥ पर्वमानो अभ्यर्षा सुधीयं
उर्वी गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः ।
माकिनो अस्य परिपूतिरीशतं
इन्दो जयेत् त्वया धनं धनम्
॥ ८ ॥ अधि चामस्थाद् वृषभो विचक्षुणो
अरुचद् वि दिवो रोचना कृषिः ।
राजां पुविभ्रमत्यति रोक्ष्वद्
॥ १ ॥ दिवः पीयूषं वुहते नूचक्षंसः
॥ ९ ॥ (४२६४)

दिवो नाके मधुजिह्वा असुध्वतो
 येना वृहन्पुश्रणं गिरिग्राम् ।
 अप्सु द्रप्सं वावृधानं संमुद्र आ
 सिन्धोर्ह्रमा मधुमन्तं पवित्र आ
 नाके सुपूर्णमुपपत्तिवांसं
 गितो धेनानामरुपन्त पुर्वीः ।
 शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्लतं
 हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्याम्
 ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थाद्
 विश्वा रूपा प्रतिचक्ष्णाणो अस्य ।
 मानुः शुक्रेण शोचिषा व्यष्टीत्
 प्रारुरुचद् रोदसी मातरा शुचिः

॥ ८५ ॥ (ऋ० १।८३।१-४८)

१-१० अष्टया मापाः, ११-२० धिक्ता निवावयी, २१-
 २० शुभ्रियोऽत्राः, २१-४० अष्टयाम पादयत्रयः, ४१-
 ४५ भौमोऽत्रिः, ४६-४८ गृध्रमदः, धौनकः ।
 अगती ।

प्र तं आशवः पवमान धीजवो
 मदा अयन्ति रघुजा इध तमना ।
 दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्द्रवो
 मादिन्तमासुः परि कोशमासते
 प्र ते मदासो मदिरासं आशवो
 अस्तस्रत् रथ्यासो यथा पुर्यक् ।
 धेनुर्न घत्सं पर्यसाभि वृज्जिणं
 इन्द्रमिन्द्रवो मधुमन्त ऊर्मयः
 अत्यो न द्वियानो अमि वाजमयं
 स्वर्धित् कोशं दिवो अद्रिमातरम् ।
 वृषा पवित्रे अधि सानो अघ्यये
 सोमः पुनान इन्द्रियाय धार्यसे
 प्र त आश्विनीः पवमान धीजुर्वो
 दिव्या अस्तप्रन् पर्यसा घरीमणि ।

प्रान्तर्कुर्ययः स्याविररसृक्षत
 ये त्वा मृजन्त्यृपिपाण वेधसः ॥ ४ ॥
 विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वंसः
 प्रभोस्ते सतः परि यन्ति केतवः ।
 व्यानशिः पवसे सोम धर्ममिः
 पतिर्विश्वस्य भुवनस राजसि ॥ ५ ॥
 उमयतः पवमानस्य रश्मयो
 ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
 यदा पवित्रे अधि मृज्यते हरिः
 सत्ता नि योनां कलशेषु सीदति ॥ ६ ॥
 यक्षस्य केतुः पवने म्यध्वरः
 सोमो देवानामुप याति निष्कृतम् ।
 सहस्रेधारः परि कोशमपति
 वृषा पवित्रमत्येति रोहवत् ॥ ७ ॥
 राजा समुद्रं नद्योऽ वि गाहते
 अपामुमि संचते सिन्धुपु श्रितः ।
 अर्घ्यस्थात् सानु पवमानो अग्रयं
 नामा पृथिव्या धरुणो महो दिवः ॥ ८ ॥
 दिवो न सानु स्तनयधचिकदद्
 दौक्ष यस्य पृथिवी च धर्ममिः ।
 इन्द्रस्य स्रयं पवते विधेविदत्
 सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ॥ ९ ॥
 ज्योतिर्यक्षस्य पयते मधु मियं
 पिता देवानां जनिता विभुर्वसुः ।
 दधाति रत्नं स्वधर्योरपीच्यं
 मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥ १० ॥
 अमिफ्रन्दं कलशं वाज्यपति
 पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
 हरिर्मिवस्य सदानेषु सीदति
 मर्षुजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥ ११ ॥

अग्ने सिन्धुनां पर्वमानो अर्पति
 अग्ने वाचो अग्निषो गोषु गच्छति ।
 अग्ने वाजस्य भजते महाधनं
 स्वायुधः स्रोतुभिः पूयते वृषां
 ध्रुवं मृतवाञ्छकुनो यथा हितो
 अर्घ्ये समार पर्वमान ऊर्मिणा ।
 तद्य क्रत्या रोदसी अन्तरा क्वे
 नुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते
 द्रापि यमानो यजतो दिविस्पृशे
 मन्तरिह्यमा भुयनेष्यर्षितः ।
 स्वर्जमानो नमसाभ्यर्कमीत्
 प्रलमस्य पितरमा धियामति
 सो धंस्य पिशे महि शर्म यच्छति
 यो धंस्य धामं प्रधुमं ध्यानशे ।
 पदं यदस्य परमे ध्यामन्
 यतो विधां धामि नं याति संयतः
 धो धंपादीदिन्द्रुसिन्द्रस्य निष्कृतं

प्राणा सिन्धुनां कलशौ अवीवशद्
 इन्द्रस्य हाशीविशन् मनीषिभिः ॥ १९ ॥
 मनीषिभिः पवते पुर्व्यः कृविः
 नृभिर्द्यतः परि कोशौ अचिक्रदत् ।
 त्रितस्य नामं जनयन् मधुं क्षरद्
 इन्द्रस्य चायोः सुख्याय कर्तवे ॥ २० ॥
 अयं पुनान उपसो वि रौचयद्
 अयं सिन्धुभ्यो अभयदु लोककृत् ।
 अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं
 सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ २१ ॥
 पथस्व सोम दिव्येषु धामंसु
 सृजान इन्दो कलशौ पृथिग्र आ ।
 सीतुभिन्द्रस्य जठरे कर्तिस्रदद्
 नृभिर्द्यतः सूर्यमारोहयो दिवि ॥ २२ ॥
 अर्द्रिभिः सुतः पयसे पृथिग्र आं
 इन्द्रपिन्द्रस्य जठरेप्यापिशान् ।
 त्वं नृचक्षां अभयो विचक्षण

असञ्चतः शतघोरा अमिश्रियो
हरिं नचन्तेऽव ता उदन्त्यवः ।
क्षिपौ मृजन्ति परि गोभिरावृतं
तृतीयं पृष्ठे अधि रोचने द्विवः
तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतसुः
त्वं विश्वस्य भुवन्स्य राजसि ।
अथेदं विश्वं पवमान ते वशे
त्वमिन्द्रो प्रथमो धामघा असि
त्वं समुद्रो असि विश्ववित् कवे
तवेमाः पञ्च प्रदिशो विधर्मणि ।
त्वं घां चं पृथिवीं चाति जश्रिपे
तव ज्योतींषि पवमान सूर्यः
त्वं पृथिवे रजसो विधर्मणि
वेधेभ्यः सोम पवमान पूयसे ।
त्वामुद्दिजः प्रथमा अग्भृणत
तुभ्येमा विश्वा भुवन्तानि येमिरे
प्र रेम पत्यति वारमव्ययं
घृणा वनेष्वव चरुदुद्धरिः ।
सं धीतर्यो वावशाना अनूपत
शिष्टं रिहन्ति मतयः पर्निप्रतम्
स सूर्यस्य रुद्रमिः परि व्यत
तन्तुं तन्वानल्लिवृतं यथा विदे ।
नर्यप्रतस्यं प्रदिपो नर्धायसीः
पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम्
राजा सिन्धूनां पयते पतिर्दिव
श्रुतस्यं याति पथिमिः कर्नरुदत् ।
सहस्रधारः परि पिच्यते हरिः
पुतानो वाचं जनयद्रुपावसुः
पवमान महर्षो वि धावसि
स्ये न चित्रो अय्यायानि पय्या ।

॥ २७ ॥

॥ २८ ॥

॥ २९ ॥

॥ ३० ॥

॥ ३१ ॥

॥ ३२ ॥

॥ ३३ ॥

गमस्तिपूतो नुभिरट्टिमिः सुतो
महे वाजाय घन्नाय घन्वसि ॥ ३४ ॥
इपमूर्जे पवमानाभ्यर्षसि
इयेनो न वंसु कलशेषु सीदसि ।
इन्द्राय मद्वा मद्यो मद्रः सुतो
दिवो विप्रुम्म उपमो विचक्षणः ॥ ३५ ॥
सस स्वसारो अमि मातरः शिशुं
नयं जहानं जेन्यं विपश्चितम् ।
अपां गन्धर्व दिव्यं नृचक्षंसं
सोमं विश्वस्य भुवन्स्य राजसे ॥ ३६ ॥
ईशान इमा भुवन्तानि वीयसे
युजान इन्द्रो हरितः सुपुण्यः ।
तास्ते शरन्तु मधुमद् घृत पयः
तव प्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥ ३७ ॥
त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः
पवमान वृषम् ता वि धावसि ।
स नः पवस्व वसुमद्विरण्यवद्
धयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥ ३८ ॥
गोवित् पवस्व चसुषिद्विरण्यविद्
रतोघा इन्द्रो भुवनेष्वर्षितः ।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्
तं त्वा विश्वा उप गिरेम आसते ॥ ३९ ॥
उन्मव्यं ऊर्मिधनना अतिष्ठिपद्
अपो घसानो महिपो वि गाहते ।
राजा पविर्भरयो वाजमारुहत्
सहस्रमृष्टिर्जयति श्रयो वृहत् ॥ ४० ॥
स भन्द्रना उदियति प्रजावतीः
विश्वायुविश्वाः सुमरा अर्हादिवि ।
ब्रह्मं प्रजावद् रयिभ्यवपस्यं
पीत इन्द्रविष्टमसभ्यं याचतात् ॥ ४१ ॥

सो अग्ने अद्वां हरिर्हर्यतो मद्रः
 प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः ।
 द्वा जनां यातर्यप्रन्तरिपते
 नरां च शंसं दैव्यं च धर्तरि
 अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते
 क्रतुं रिदन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
 सिन्धोरुच्छ्रयासे पुनर्यन्तमुक्षणै
 हिरण्यपायाः पशुमांसु गृभ्णते
 विपश्चिने पर्यमानाय गायत
 मदी न धारात्यन्धो अयति ।
 यादृनं जुषामति सपति त्वचं
 अन्यो न प्रीच्छिन्नसरद् वृषा हरिः
 अग्नेगो राजाप्यस्तपिष्यते
 यिमानो भद्रां भुयंतेर्यपितः ।
 हरिपुत्रस्तुः सुदशीको अणयो
 ज्योतीर्यः पयने राय भोग्यः
 अतीर्जि स्वग्मो दिप उच्यते मद्रः
 गरिं त्रिषातुभुयंनान्ययति ।
 भंशुं रिदन्ति मत्पः पतिन्तते

॥ ४२ ॥

॥ ४३ ॥

॥ ४४ ॥

॥ ४५ ॥

अभ्वं न त्वां वाजिनं मूर्जयन्तो
 अच्छो बर्हो रक्षानाभिर्नयन्ति
 स्वायुधः पषते द्वेव इन्दुः
 अशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः ।
 पिता देवानां जनिता सुदक्षो
 विष्टम्भो द्विवो धरणः पृथिव्याः
 ऋषिभिर्भ्रः पुरपता जनानां
 ऋमूर्धोर उराना काच्येन ।
 स चिद् विवेद निहितं यदासां
 अपीच्यं गुह्यं नाम गोनाम्
 पृथ स्य ते मधुमो इन्द्र सोमो
 वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः ।
 सहस्रसाः शतसा भूरिदाया
 शभ्यन्तमं घाहिरा घ्राज्यस्थात्
 एते सोमो आभि गृव्या सहस्रा
 मृदे याजायामृताय धर्यासि ।
 पवित्रेभिः पर्यमाना अरुमन्
 धयस्यधो न पृतनाजो अत्याः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

उत स्म सृशि परिं यासि गोनां
इन्द्रेण सोम सुरर्थं पुनानः ।

पूर्वोरिपो बृहतीर्जाँरदानो

शिक्षो शचीवस्तव ता उंपपुत्

॥ ८७ ॥ (ऋ० १।८८।१-८)

अयं सोमं इन्द्र तुभ्यं सुन्वे

तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।

त्वं ह यं चकृपे त्वं बवृप

इन्द्रुं मदाय युज्याय सोमम्

स ई रथो न भूरिपाळ्योजि

महः पुरुणिं सातये वर्द्धनि ।

आदीं विश्वां नहुव्याणि ज्ञाता

स्वर्पाता वनं ऊर्ध्वा नवन्त

यायुर्न यो नियुत्वाँ इष्ट्यामा

नासत्येव हव आ शंभविष्टः ।

विश्ववारी द्रविणोद्वा ईव त्मन्

पुपेव घीजर्वनोऽसि सोम

इन्द्रो न यो महा कर्माणि चक्रिः

हन्ता वृत्राणामसि सोम पूर्मित् ।

पैत्रो न हि त्वमहिनाम्नां हन्ता

विश्वस्यासि सोम दस्योः

अग्निर्न यो वन आ सृज्यमानो

वृथा पाजांसि कृणुते नदीपु ।

जना न युष्वा महत उंपदिः

इयति सोमः पर्वमान ऊर्मिम्

पते सोमा अति वारुण्यव्या

विष्या न कोशासो अघ्रवर्षाः ।

वृथा समुद्रं सिन्धेयो न नीवीः

सुतासो अमि कुलशीं अस्तुप्रन्

शुष्मी शघो न मारुतं पवस्व

अर्नभिशस्ता विष्या यथा विट् ।

आपो न मक्षू सुमतिर्मेवा नः

सहस्राप्ताः पृतनापाणन युज्ञः

॥ ७ ॥

राज्ञो नु ते वरुणस्य दृतानि

बृहद्भीरं तव सोम धामं ।

॥ ९ ॥

शुचिद्रुमांसि प्रियो न मित्रो

वृक्षाव्यो अयमेवांसि सोम

॥ ८ ॥

॥ ८८ ॥ (ऋ० १।८९।१-७)

प्रो स्य वह्निः पृथ्याभिरस्यान्

दिवो न वृष्टिः पर्वमानो मक्षाः ।

॥ १ ॥

सहस्रधारो असद्रुभ्यमुसे

मातुरुपस्थे वन आ च सोमः

॥ १ ॥

राजा सिन्धूनामवसिष्ट वासं

ऋतस्य नावमारुहद् रजिष्ठाम् ।

॥ २ ॥

अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो

बुह ई पिता बुह ई पितुर्जाम्

॥ २ ॥

सिंहं नसन्त मर्षो अयासं

हरिमरुपं दिवो अस्य पतिम् ।

॥ ३ ॥

शूरो युस्तु प्रथमः पृच्छते गाः

अस्य चक्षसा परिं पात्युक्षा

॥ ३ ॥

मधुपुष्टं घोरमयासुमथं

रथे युञ्जन्त्युदृक्क श्रुष्वम् ।

॥ ४ ॥

स्वसार ई जामयो मर्जयन्ति

सनाभयो धाजिनमूर्जयन्ति

॥ ४ ॥

चतक ई घृतदुहैः सचन्ते

समाने अस्तर्धरणे निरपत्ताः ।

॥ ५ ॥

ता ईमपन्ति नमसा पुनानाः

ता ई विद्वतः परिं वन्ति पुर्वोः

॥ ५ ॥

विष्टम्नो विवो धरणः पृथिव्या

विश्वो उत क्षितयो हस्तै अस्य ।

॥ ६ ॥

असत् त उस्तो गृणते नियुत्वान्

मर्षो मंशुः पवत इन्द्रियायं

॥ ६ ॥

ध्रुवक्षवातो अग्नि देववीतिं
इन्द्राय सोम वृत्रहा पवस्य ।
शुग्धि महः पुंश्चन्द्रस्यै रायः
सुवीर्यस्य पतयः स्याम

॥ ८२ ॥ (ऋ० १।१०।१-६)
वसिष्ठो मंत्रावहणिः ।

प्र द्विग्वानो जनिता रोदस्यो
रथो न वाजै सनिप्यन्नयासीत् ।
इन्द्रं गच्छन्नार्युधा संशिशानो
विश्वे वासु हस्तयोरादधानः
अग्नि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधां
आङ्गुपाणांमघावदान्त वाणीः ।
वना वसानो धरुणो न सिन्धुन्
वि रत्नधा दयते धार्याणि
शूरप्रामः सर्ववीरः सदावान्
जेता पवस्य सनिता धनानि ।
तिग्मार्युधः क्षिप्रधन्वा समस्तु
अपाब्धः साहान् पर्वनास शश्रून्
उरुतप्युतिरभयानि कृष्णन्
समीचीनि आ पयस्या पुरीषी ।
अपः सिपासद्रूपसः स्वर्गुर्गाः
सं चिन्नादो महो अस्मभ्यं याजान्
मरिख सोम धरुणं मरिख मिधं
मत्सीम्रमिन्द्रो पयमान यिष्णुम् ।
मस्मि शप्यो मारुतं मरिख देवान्
मस्मि महामिन्द्रमिन्द्रो मदीय
पवा राजेव वक्तुंमां अमेन
यिश्वा परिप्रद् दृष्टिता पयाम् ।
इदो वृत्राय वरुणे पयो धा
पुपं पात वृत्तिभिः मदी नः

॥ ७ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ९० ॥ (ऋ० १।११।१-६)

इत्यथो मारीचः ।

असजिं वक्त्रा रथ्ये यथाजौ
धिया मनोतां प्रथमो मनीषी ।
दश स्वसारो अधि सानो अब्ये
अजन्ति वहिं सदेनान्यच्छं
वीती जनस्य दिव्यस्य कृष्यैः
अधि सुवानो नहुष्येभिरिन्दुः ।
प्र यो नृभिरमृतो मर्यैभिः
मर्मज्ञानोऽविभिर्गोभिरग्निः
वृषा वृष्णे रोहवदंशुरस्मै
पवमानो रशदीते पयो गोः ।
सहस्रमृक्का पथिभिर्वचोविद्
अध्वस्मभिः सरो अण्वं वि याति
रुजा दृळ्हा चिद् रक्षसः सदांसि
पुनान इन्द ऊर्णुहि वि वाजान् ।
वृष्णोपरिष्ठात् तुजता वधेन
ये अन्ति दुरादुपनापमेषाम्
स प्रन्ववन्नवसे विश्ववार
सुकार्य पथः कृणुहि प्राचः ।
ये दुष्यहांसो वनुषा वृहन्तः
तांस्तै अदयाम पुरुष्टत् पुरुशो
पथा पुनानो अपः स्वर्गुर्गा
अस्मभ्यं लोका तनयानि भूरि ।
शं नः क्षेप्रमुक् ज्योतीषि सोम
ज्योङ्गुनः सूर्ये दृदये रिरिदि
परि सुवानो हरिरंशुः पयिन्ने
रथो न सजिं सुनये दियान् ।
आपच्छयोर्कमिन्द्रियं पयमानः
प्रति देयो भक्षुपत् प्रयोभिः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ १ ॥

(४१५९)

अच्छा नृचक्षा असरत् पवित्रे नाम दर्धानः क्विरिंस्य योनी । सीदन् होतैव सदेने चमूयु उपैमग्मन्नययः सप्त विप्राः प्र सुमेधा गार्तुविद् विश्वदेवः सोमः पुनानः सदे पति नित्यम् । भुवद् विश्वेषु काव्येषु रता अनु जनान् यतते पञ्च धीरः तद्य तये सोम पवमान निप्ये विश्वे देवास्त्रय एकादशांसः । दश स्वधामिरधि सान्ता अग्ये मृजन्ति त्वा नयः सप्त यद्वाः तन्न सन्ये पवमानस्यास्तु यत्र विश्वे कारवः संनसन्त । ज्योतिर्यदद्वे अकृणोदु लोकं प्राच्यन्मनुं दस्यवे करुमीकम् परि सञ्चैव पशुमान्ति होता राजा न सत्यः समितीरियानः । सोमः पुनानः कलशां अयामीत् सीदन् मृगो न मंहिपो वनेषु ॥ १२ ॥ (ऋ० १०३१६-५) नोषा गो०न. । साकमुक्षो मजंयन्त स्वसारे दश धीरस्य धीतयो धनुशीः । हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननञ्जे अत्यो न चाजी सं मावभिर्न शिशुर्विज्ञानो वृषां दधन्वे पुरुवारो अत्रिः । मयो न योपामि निधुन्ते यन् सं गच्छते कलश उस्त्रियाभिः	उत प्र पिप्य ऊधरप्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः । मुर्धानं गावः पर्यसा चमूयु अभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निकैः स नो देवैभिः पवमान र्द इन्द्रो रयिमश्विनं वावज्ञानः । रयिरायतामुशती पुरंधिः अस्मद्युगा दावने वसनाम् नू नो रयिमुपं मास्व नुवन्तं पुनानो वाताप्यं विश्वञ्चन्द्रम् । प्र वन्दितुरिन्द्रो तार्यायुः प्रातर्मदू धियावसुर्जगम्यात् ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ६३ ॥ (ऋ० १०३१६-१) वृषा धीरः । अधि यदस्मिन् घ्राजिनींश्च शुभुः स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशाः । अपो वृणानः पंचते कवीयन् मृजं न पशुवर्धनाय मग्ने द्विजा व्युर्ध्वश्मृतस्य धामं स्वर्विदे मुर्वनाभि प्रयन्त । धियः पिन्वानाः स्वसरे न गावः ऋतायन्तीरुभि वावश्च इन्दुम् परि यत् क्विः काव्या भरते शरो न रयो भुर्वनानि विश्वा । देधेषु यशो मतोय भूपन् दक्षाय रायः पुंड्रमूयु नव्यः श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितुभ्यो दधाति । धियं वसाना अमृतत्वमायन् भवंति सत्या समिया मितर्द्रां	॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥
--	---	--

इपमूर्जेमभ्यर्षाश्वं गां
उरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।
विश्वानि हि सुपहा तानि तुभ्यं
पवमान् वार्धसे सोम शश्रून्
॥ १४ ॥ (ऋ० १.९.५१-५)

प्रकृष्यः काण्वः ।

कनिप्रन्ति हरिरा सृज्यमानः
मीदन् धनस्य जठरे पुनानः ।
नुभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा
धतो मतीर्जनयत स्वधार्भिः
हरिः सृजानः पर्यामृतस्य
इर्यतिं घार्चमरितेय नार्वम् ।
देवो देवानां गृह्यानि नाम
धापिष्णोति घृह्णिविं प्रयाचै
धपाभियेदुर्मयस्तनुराणाः
प्र मनीषा ईरते सोममच्छे ।
नमस्यन्तीरप च यन्ति सं च
आ चं पिताम्यनुत्तीरुदान्तम्
तं मर्मज्ञानं महिये न स्वानीं
धंशं तुष्टम्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।

समस्य हरिं हरयो मुजन्ति
अश्वहृयैरनिशितं नमोभिः ।
आ तिष्ठति रथमिन्द्रस्य सखा
विद्वां र्पना सुमतिं यात्यच्छे ॥ २ ॥
स नो देव देवताति पवस्व
महे सोम प्सरस इन्द्रपानः ।
कृण्वन्नपो वर्षयन् घामुतेमां
उरोरा नो वरिवस्या पुनानः ॥ ३ ॥
अर्जीतयेऽहृतये पवस्व
॥ १ ॥ स्वस्तये सर्वतातये बृहते ।
तदुशन्ति विश्व इमे सखायः
तदहं वंदिम पवमान सोम
॥ ४ ॥ सोमः पवते जनिता मतीनां
॥ २ ॥ जनिता दिघो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य
जनितेन्द्रस्य जनितात विष्णोः
॥ ५ ॥ प्रह्मा देवानां पदवीः कधीनां
॥ ३ ॥ श्रुषिषिप्राणां महिपो मृगाणाम् ।
दयेनो गृध्राणां स्वधिषिर्धनानां
॥ ६ ॥ सोमः पविश्रमत्येति रेभन्

स पुष्यो वसुविजायमानो
 मृजानो अप्सु दुन्दुहानो अद्रौ ।
 अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा
 विदद् गातुं ब्रह्मणे पुयमानः
 त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे
 कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
 चन्वन्नवातः परिधिरिपोषु
 वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः
 यथापवद्या मनवे घयोघा
 भमिन्नद्वा वरिवोविद्धविष्मान् ।
 पूवा पवस्व द्रविणं दधानं
 इन्द्रे सं तिष्ठ जनययुधानि
 पवस्व सोम मधुमौ ऋतावा
 अपो वसानो अधि सानो अय्ये ।
 अघ द्रोणानि घृतवान्ति सीद
 मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः
 वृष्टि दिवः शतधारः पवस्व
 सहस्रसा वाजयुदैवर्वातौ ।
 सं सिन्धुभिः कलशै वावशानः
 समुस्त्रियाभिः प्रतिरन् न आयुः
 एष स्य सोमो मतिभिः पुनानो
 अत्यो न वाजी तरतीदरातीः ।
 पयो न दुग्धमर्दितेरिपिरं
 उर्विव गातुः सुयमो न वोळ्ढां
 स्वापुधः सोतृभिः पूयमानो
 अभ्यर्षे गुह्यं चारु नाम ।
 अभि वाजं सतिरिव श्रवस्या
 अभि वायुमभि गा देव सोम
 शिशुं अहानं हयंतं मृजन्ति
 शुम्भन्ति वार्षं मरुतो गणेन ।

॥ १० ॥
 ॥ ११ ॥
 ॥ १२ ॥
 ॥ १३ ॥
 ॥ १४ ॥
 ॥ १५ ॥
 ॥ १६ ॥

कृदिगीभिः काव्येना कृदिः सन्
 सोमः पवित्रमस्येति रेभन् ॥ १७ ॥
 ऋषिमना य ऋषिरुत् स्वर्पाः
 सहस्रणीधः पदवीः कधीनाम् ।
 तृतीयं धामं महिपः सिपांसन्
 सोमो विराजमनुं राजति पुप् ॥ १८ ॥
 चमूपच्छयेनः शकुनो विभृत्वा
 गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि विभ्रत् ।
 अपामुभि सचमानः समुद्रं
 तुरीयं धामं महियो विवक्ति ॥ १९ ॥
 मयो न शुभ्रस्तन्वै मृजानो
 अत्यो न सृत्वां सुनये धनानाम् ।
 घृषेव यूथा परि कौशमर्षन्
 कर्निकदक्चन्द्रोऽरा विवेश ॥ २० ॥
 पवस्वेन्द्रो पवमानो महोभिः
 कर्निकदुत् परि वाराण्यपे ।
 क्रीळञ्जम्बोऽरा विश पुयमानं
 इन्द्रं ते रसो मद्दिरो ममस्तु ॥ २१ ॥
 प्रास्य धारां बृहतीरसृग्न
 अक्तो गोभिः कलशां आ विवेश ।
 सामं कृण्वन्त्सामिन्यो विपुश्चित्
 क्रन्दधेत्यभि सव्युर्न जामिम् ॥ २२ ॥
 अपन्नरैपि पवमान शत्रून्
 प्रियां न जारो अभिगीत इन्दुः ।
 सीदन् वनेषु शकुनो न पत्वा
 सोमः पुनानः कलशेषु सतां ॥ २३ ॥
 आ ते रुचः पवमानस्य सोम
 योपेव यन्ति सुदुघाः सुधाराः ।
 हरिरानीतः पुरुवारो अप्सु
 अचिक्रदक् कलशो देघयुनाम् ॥ २४ ॥

॥ १५ ॥ (अ० १।१७।१-५८)

१-३ मैत्रावरुणर्वसिष्ठ, ४-६ वासिष्ठ इन्द्रप्रमति, ७-९ वासिष्ठो वृषगण, १०-१२ वासिष्ठो मनुष्य, १३-१५ वासिष्ठ उषमन्नु, १६-१८ वासिष्ठो व्याघ्रवाद्, १९-२१ वासिष्ठ शक्ति, २२-२४ वासिष्ठो ऋषिभद्र, २५-२७ वासिष्ठो मूलीक, २८-३० वासिष्ठो वसुत्र, ३१-४४ पराशरः शत्रुघ्न ४५-५८ वृत्स आश्रितः ।

अस्य प्रेया हेमनां पृथमानो
देवो देवेभिः सर्वपन्न रसम् ।
सुत पवित्र पयैति रेभेन
भित्तेषु मयं पशुमान्ति होतां
भद्रा वखां समन्याः वसानो
मृष्टान् क्विर्निवर्त्तनानि शसन् ।
वा वंचयस्व चन्द्रोः पयमानो
विचक्षणो जागृथिर्देववाती
समुं द्वियो मृज्यते सानो अये
यशस्तेरो यदासां क्षेतौ अस्मे ।
अभि स्वर धन्वां पृथमानो
युयं पात स्वस्तिभिः मदां नः
प्र गायताभ्यर्चाम देवान्
सोमं दिनोत मरुते धनाय ।
म्यादुः पयाने अति धारमन्त्रं
आ मीदानि कच्छं देपुयुर्मः
इन्द्रं तातामपं सुग्यन्तायन
सुहस्रं धारः पयते मदाय ।
नमः सारानां अनु धाम पृष्टं
नगदिन्द्रं महते सोमगाय
सोमो राये हरिरयां पुतान
इन्द्रं मदां मच्छतु ते भगाय ।
देपयौदि सुभं रापो अक्षरौ
युयं पात स्वस्तिभिः मदां नः

॥ १ ॥
॥ २ ॥
॥ ३ ॥
॥ ४ ॥
॥ ५ ॥
॥ ६ ॥

प्र काव्यमुशनैव भुवाणो
देवो देवानां जनिमा विचकि ।
महिं व्रतः शुचिं वन्धुः पावकः
पदा वराहो अयैति रेभेन ॥ ७ ॥
प्र हसासस्तुपलं मनुष्यमच्छ
अमादस्ते वृषगणा अयासुः ।
थाङ्गुप्यं पयमानं सखायो
दुर्मथं साकं प्र वदन्ति वाणम् ॥ ८ ॥
स रहत उरुगायस्यं जति
पृथा क्रीलन्तं मिमते न गावः ।
परीणसं हेणुते तिग्मशृङ्गो
दिया हरिर्दंशे नक्तमूत्रः ॥ ९ ॥
इन्द्रुवाजी पयते गोन्यौघा
इन्द्रे सोमः सह इयुन मदाय ।
हन्ति रथो वाधते पर्यरातीः
वरिवः कृष्णवज्रं वृद्धनस्य राजा ॥ १० ॥
अथ धारया मध्वां पुतानः
तिरो रोमं पयते अद्रिदुग्धः ।
इन्द्रुन्द्रस्य सुतयं जुवाणो
देवो देवस्यं मत्सरो मदाय ॥ ११ ॥
अभि मियाणि पयते पुतानो
देवो देवान्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।
इन्द्रुधर्मीण्युतथा वसानो ॥ १२ ॥
दश क्षिपो अयत सानो अयै
पृथा दोषो अभिवाक्निद्रदुद् गा
नदथरेति पृथिवीसुत याम् ।
इन्द्रस्येय वसुरा शृण्व आजौ
प्रंचतयत्रपति वाचुममाम् ॥ १३ ॥
रसायः पर्यसा विप्रमानः
दुरयनेपि मधुमन्तमंशुम् ।
पर्यमानः संतनिमैपि कृष्यन्
रम्राय सोम परिपिच्यमानः ॥ १४ ॥

एवा पवस्व मद्विरो मद्राय
उदग्रामस्य नमयन् वधकैः ।
परि वर्णं भरमाणो दशन्तं
गन्धुर्नो अर्पं परि सोम निरुक्तः
जुष्ट्वी न इन्द्रो सुपया सुगानि
उरौ पवस्व वरिषामि कृण्वन्
घनेव विष्यग् दुरितानि विप्रन्
अधि ष्णुनां घन्व सानो अव्यै
वृष्टि नो अर्प दिव्यां जिगन्तुं
इच्छावतीं शंगर्यो जीरदांजुम् ।
स्तुकैव घीता घन्वा विचिन्वन्
वन्धूरिमां अवरो इन्द्रो वायून्
ग्रन्थि न वि ष्यं ग्रथितं पुनान
शुभ्रं च गातुं वृजिनं च सोम ।
अत्यो न क्रदो हरिरा र्वज्ञानो
मर्यो देव घन्व पुस्त्यावात्
जुष्टो मद्राय देवतात इन्द्रो
परि ष्णुनां घन्व सानो अव्यै ।
महस्रधारः सुरभिरदधः
परिं स्रव वाजसातौ नृपहै
अरदमानो यैऽरथा अयुक्ता
अत्यासो न संसृजानासं आजौ ।
एते शुक्रासौ घन्वन्ति सोमा
देवांसस्ता उप याता पिष्ये
एवा न इन्द्रो अग्नि देवर्षीति
परिं स्रव नमो अर्णश्चमूषु ।
सोमो अस्सभ्यं कार्भ्यं बृहन्तं
रयिं ददानु वीरवन्तमुग्रम्
तक्षद् यदीं मनसो वेनतो वाग्
ज्येष्ठस्य वा धर्माणि शोरनीके ।

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

॥ १८ ॥

॥ १९ ॥

॥ २० ॥

॥ २१ ॥

आदीमायन् वरमा वावशाना
जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम्
प्र दानुदो दिव्यो दानिपिन्व
ऋनमृताय पवते सुमेधाः ।
धर्मा भुवद् वृजन्वस्य राजा
प्र रदिमभिर्दशभिर्भाति भूमं
पवित्रैभिः पवमानो नृचक्षा
राजा देवानामुत मर्त्यानाम् ।
हिता भुवद् रयिपती रयीणां
श्रुतं भरत् सुभृतं चारिन्दुः
अर्वा इव ध्रुवसे सातिमच्छ
इन्द्रस्य वायोरग्नि शीतिमर्षे ।
स नः सहस्रा बृहतीरयो दा
भवां सोम द्रविणोवित् पुनानः
देवाव्यो नः परिपिच्यमानाः
क्षयं सुवीरं घन्वन्तु मोमाः ।
आयज्यवः सुमतिं विश्ववारा
होतारो न दिवियजो मन्द्रतमाः
एवा देव देवताते पवस्व
महे सोमं प्सरसे देवपानः ।
महश्चिद्धि प्ससिं हिताः संमयै
कृधि सुष्टुने रोदसी पुनानः
अश्वो न क्रदो वृषभिर्युजानः
सिंहो न भीमो मनसो जर्षीयान् ।
अर्वाचीनैः पथिभ्यं रजिष्ट्रा
आ पवस्व सोमनसं न इन्द्रो
शतं धारां देवजाता असृगन्
सहस्रमेनाः कवयो मृजन्ति ।
इन्द्रो सनित्रं दिव आ पवस्व
पुरपतासि महतो घनस्य

॥ २२ ॥

॥ २३ ॥

॥ २४ ॥

॥ २५ ॥

॥ २६ ॥

॥ २७ ॥

॥ २८ ॥

॥ २९ ॥

द्विधो न सर्गो असृष्टप्रमदां
 राजा न मित्रं प्रमिनति धीरः ।
 पितुर्न पुत्रः क्रतुर्मिर्यतान्
 आ पयस्व विशे ब्रह्मा अजीतिम् ॥ ३० ॥
 प्र ते धारा मधुमतीरसृष्टम्
 वारान् यत् पुतो अत्येध्वव्यान् ।
 पयमान् पयसे धाम गोर्ना
 जहानः सूर्यमपिन्वो अर्कः ॥ ३१ ॥
 कर्निकृद्दनु पन्थांमृतस्य
 शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम ।
 स इन्द्राय पयसे मत्सुरवान्
 दिन्वानो वाचं मतिभिः कधीनाम् ॥ ३२ ॥
 दिव्यः सुपणोऽध्वं चक्षि सोम
 पिन्वन् धाराः कर्मणा देवधीतौ ।
 पन्दो विश कलशं सोमधानं
 क्रन्दभिहि सुधेस्योर्षं रश्मिम् ॥ ३३ ॥
 तिष्ठो वाचं ईरयति प्र वहिः
 ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
 गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः
 सोमं यन्ति मृतयो वाचशानाः ॥ ३४ ॥
 सोमं गावो धेनवो वाचशानाः
 सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
 सोमः सुतः पूयते अज्यमानः
 सोमं अर्कास्त्रिष्टुम् सं नयन्ते ॥ ३५ ॥
 एषा नः सोम परिपिच्यमान
 भा पयस्य पूयमानः स्युस्ति ।
 इन्द्रमा विश बृहता रयेण
 यर्धया वाचं जनया परैधिम् ॥ ३६ ॥
 भा जारुषिर्षिर्भ्रुता मतीनां
 सोमः पुनानो भंसदृच्यमूर्धु ।

सर्पति यं मिथुनासो निकामा
 अध्वर्यवो रथिरासः सुदस्ताः ॥ ३७ ॥
 स पुनान उप सुरे न धाता
 उमे अग्रा रोवसी वि प आयः ।
 प्रिया चिद् यस्य प्रियसासं ऊती
 स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥ ३८ ॥
 स वर्धिता वर्धनः पूयमानः
 सोमो मीढवो अभि नो ज्योतिषायीत् ।
 येना नः पूर्वं पितरः पदद्वाः
 स्वर्धितो अभि गा अद्रिमृण्णन् ॥ ३९ ॥
 अक्रान्तसमुद्रः प्रथमे विधमेन्
 जनयन् प्रजा भुवनस्य राजा ।
 वृषां पवित्रे अधि सानो अव्ये
 बृहत् सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ॥ ४० ॥
 मृहत् तत् सोमो महिषश्चकार
 अपां यद् गर्भोऽवृणीत देवान् ।
 अर्द्धादिन्द्रे पयमान ओजो
 अजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ ४१ ॥
 मत्सि वायुमिष्टये राधसे च
 मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।
 मत्सि शशो भारुतं मत्सि देवान्
 मत्सि वावापृथिवी देव सोम ॥ ४२ ॥
 ऋजुः पयस्व वृजिनस्य हुन्ता
 अपामीषां वाधमानो मृधश्च ।
 अमिष्ठीणन् पयः पयसाभि गोनां
 इन्द्रस्य त्वं तव धयं सन्नायः ॥ ४३ ॥
 मध्यः सूदं पयस्य षस्य उरसं
 वीरं च न भा पयस्या भर्गं च ।
 स्वदस्येन्द्राय पयमान इन्दो
 शयिं च न भा पयस्वा समुद्रात् ॥ ४४ ॥

सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा
 सिन्धुर्न निघ्नमभि वाज्यंक्षाः
 आ योनिं धर्ममसदत् पुनानः
 समिन्द्रुर्गोभिरेसरत् समद्भिः
 एष स्य तै पवत इन्द्र सोमः
 चमपु धीरं उशते तर्वस्वान् ।
 स्ववेक्षा रथिरः सत्यशुम्भः
 कामो न यो देवयतामसर्जि
 एष प्रत्नेन चर्यसा पुनानः
 तिरो वर्षीसि उहितुर्दधानः ।
 वसानः शर्म त्रिवरुथमप्सु
 होतैव याति समनेपु रेभन्
 नू नस्त्यं रथिरो देव सोम
 परिं स्रव चम्बोः पूयमानः ।
 अप्सु स्वादिष्टो मधुमं श्रुतावा
 देवो न यः संविता सत्यमग्भा
 अभि वायुं वीत्यर्पा शृणानोऽ
 अभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
 अभी नरं धीजवनं रथेष्टां
 अभीन्द्रं वृषणं वर्जवाहुम्
 अभि वखां सुवसुनान्यर्पे
 अभि धेनुः सुदुर्घाः पूयमानः ।
 अभि चन्द्रा भर्तैवे नो हिरण्य
 अभ्यर्थांश्च रथिर्नो देव सोम
 अभी नो अर्पे दिव्या वसूनि
 अभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः
 अभि येन द्रविणमश्रवांम्
 अभ्यर्षियं जमदग्निवर्तः
 अया पवा पवस्वैना वसूनि
 माँक्षत्व इन्द्रो सरसि प्र धन्व ।

॥ ४५ ॥

॥ ४६ ॥

॥ ४७ ॥

॥ ४८ ॥

॥ ४९ ॥

॥ ५० ॥

॥ ५१ ॥

ब्रह्माश्चिदप्र वातो न जुतः
 पुरुमेर्धश्चित् तक्वे नरं दात्
 उत न एना पवया पवस्व
 अर्धि श्रुते श्रवाण्यस्य तीर्थे ।
 परिं सहस्रां नैगुतो वसूनि
 वृक्षं न पक्वं धूनवद् रणाय
 महीमे अस्य वृषनामं शूये
 माँक्षन्वे वा पृशने वा वर्धये ।
 अस्वापयान्निगृतः स्नेहयुच
 अपामित्रां अपाचितो अन्वेतः
 सं श्री पवित्रा विततान्येपि
 अन्वेकं धावसि पूयमानः ।
 असि भगो असि दात्रस्यं दाता
 असि मधवां मधवद्भय इन्द्रो
 एष विद्वचित् पवते मनीषी
 सोमो विद्वस्य भुवर्नस्य राजा ।
 द्रप्सां हरयन् विद्वथेष्विन्दुः
 वि वात्स्यं सुमयाति याति
 इन्द्रुं रिदन्ति महिया अर्दग्धाः
 पदे रेभन्ति कचयो न गुत्राः ।
 हिन्वन्ति धीरां दशभिः क्षिर्पाभिः
 समञ्जते रूपमपां रसेन
 त्वया वयं पर्वमानेन सोम
 भरें कृतं वि चिनुयाम् शश्वत् ।
 तत्रो मिश्रो वरुणो मामहन्तां
 अर्दितिः सिन्धुः पृथिवी उत घोः

॥ ५२ ॥

॥ ५३ ॥

॥ ५४ ॥

॥ ५५ ॥

॥ ५६ ॥

॥ ५७ ॥

॥ ५८ ॥

॥ २७ ॥ (अ० ११८०१-२२)

अन्वरुषो वार्धागिरः, ऋजिदा भारद्वाजथ ।
 अनुष्टुप्, ११ वृत्ती ।

अभि नो वाजुसातमं रथिर्मपं पुरुस्पृहम् ।
 इन्द्रो सहस्रमणोसं लुविघुञ्जे विभ्यासहम् ॥ १ ॥

परि प्य सुवानो अव्ययं रथे न घर्माव्यत ।
 इन्द्रुमि द्रुणां हितो हियानो धाराभिरक्षाः २
 परि प्य सुवानो अक्षा इन्द्रुरव्ये मदच्युतः ।
 धारा य ऊर्ध्वो अघ्वरे भ्राजा नैति गध्युः ३
 स हि त्वं देव शश्वते वसु मर्तीय दाशुषे ।
 इन्द्रो सहस्रिणं रथिं शतात्मानं विवाससि ॥४॥
 वयं ते अस्य वृत्रहन् वसो वस्वः पुरुषर्षभः ।
 नि नेदिष्ठतमा इपः स्याम सुस्रस्याधिगो ॥५॥
 द्वियं पञ्च स्वयंशसं स्वसापे अद्रिसंहतम् ।
 प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापर्यन्त्युर्मिणम् ॥ ६ ॥
 परि त्वं हर्यंतं हरिं वृधुं पुनन्ति वारेण ।
 यो देवान् विश्वा इत् परि मदेन सह गच्छति ७
 अस्य वो हवस्ता पान्तो दक्षसाधनम् ।
 यः सुरिषु श्रवो बृहद् वधे स्वर्गुणं हर्यतः ॥८॥
 स वा यद्येषु मानयो इन्द्रुर्जनिष्ट रोदसी ।
 देवो देवी गिरिष्ठा अक्षेधन् तं तुविष्वणि ॥ ९ ॥
 इन्द्राय सोमं पार्वे वृत्रघ्ने परि विच्यसे ।
 नरे च दक्षिणावते देवाय सदानासदे ॥ १० ॥
 ते प्रजासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रं अक्षरन् ।
 अप्रमोथन्तः सनुतर्हुरध्वितः
 मातस्तो अप्रचेतसः ॥ ११ ॥
 तं सन्वायः पुष्टेरुचं ययं ययं च सुरयः ।
 क्षदयाम याजगन्धं सनेम याजपस्त्यम् ॥ १२ ॥

॥ १८ ॥ (ऋ० ९।१९।१-८)

रेमएन् काश्यपो । अनुष्टुप्, १ इदती ।

आ हयंताय धृष्णये धनुस्तन्यन्ति पौरुष्यम् ।
 नुमां संपन्यसुराय निर्भिर्जं विपामर्षे मदीयुषः १
 अर्षं ह्यया परिष्कृतो याजो अभि प्र गाहते ।
 यदी विपस्यतो धियो हरिं हिष्यन्ति पार्वे २
 ताम्य मर्षपामसि मशे य इन्द्रुपारतमः ।
 यं गावं धास्तमिर्षुः पृग नूनं च सुरयः ॥३॥

तं गार्थया पुराप्या पुनानमभ्यनूपत ।
 उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम विभ्रतीः ४
 तमुक्षमाणमव्यये वारो पुनन्ति धर्णसिम् ।
 दूतं न पूर्वचित्तय आ शांस्ते मनीषिणः ॥ ५ ॥
 स पुनानो मदिन्तमः सोमश्चमूषु सीदति ।
 पशौ न रेत आदधत् पतिर्वचस्यते धियः ॥६॥
 स मृज्यते सुकर्मभिर्देवो देवेभ्यः सुतः ।
 विदे यदासु संदिर्महीरपो वि गाहते ॥ ७ ॥
 सुत इन्द्रो पवित्र आ नृभिर्यतो वि नीयसे ।
 इन्द्राय मत्सरिन्तमश्चमूष्वा नि पीदसि ॥ ८ ॥

॥ ९९ ॥ (ऋ० ९।१००।१-९)

रेमएन् काश्यपो । अनुष्टुप् ।

अमी नवन्ते अद्बुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
 वत्सं न पूर्व आर्युनि जातं रिदन्ति मातरः ॥१॥
 पुनान इन्द्रवा भर सोमं द्विवर्हसं रथिम् ।
 त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥ २ ॥
 त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः ।
 त्वं वसूनि पाथिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ३
 परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति ।
 रंहमाणा व्युष्ययं वारं याजीवं खानसिः ॥ ४ ॥
 क्रत्ये दक्षाय नः कथे पर्वस्य सोम धारया ।
 इन्द्राय पार्वे सुतो मित्राय परुणाय च ॥ ५ ॥
 पर्वस्य याजसार्तमः पवित्रे धारया सुतः ।
 इन्द्राय सोमं विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥ ६ ॥
 त्वां रिदन्ति मातरो हरिं पवित्रं अद्बुहः ।
 यस्तं जातं न धेनयः पर्वमान विधर्मणि ॥ ७ ॥
 पर्वमान महि धर्यं—क्षिभेर्मेयासि रुदिर्मभिः ।
 शर्धन् तमामि जिप्रसे विश्वानि दाशुषो गृहे ८
 त्वं चां चं महिमत पृथिवीं च्यति जधिरे ।
 प्रति प्रापिर्गमुश्याः पर्वमान महिर्यना ॥ ९ ॥

॥ १०० ॥ (ऋ० १।१०।१-१६)

अधीगुः श्यावाधिः, ४-६ यथातिर्नाहुप, ७-९ नहुयो मानवः,
१०-१२ मनुः शतरणः, १३-१६ वैशामिश्रो वाच्यो वा
प्रजापतिः । अतुष्टुप्, २-३ गायत्री ।

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादायित्रे ।
अप श्वानं श्रियेण सखायो दीर्घजिह्वयम् ॥१॥

यो धारया पायक्या परिप्रस्यन्दते सुतः ।
इन्द्ररथो न कृत्वयः ॥ २ ॥

तं दुरोपममी नरः सोमं विश्वाच्यां प्रिया ।
यद्दे हिन्वन्त्याद्रिमिः ॥ ३ ॥

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पुवित्रयन्तो अश्रन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ४

इन्द्रुरिन्द्राय पवत इति देवासो अनुचर ।
वाचस्पतिर्मखस्तते विश्वस्येशान् बोजसा ॥५॥

सहस्रधारः पयते समद्रो वाचमोडुखयः ।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य द्विवेदिषे ॥ ६ ॥

अयं पूवा रयिर्मागः सोमः पुनानो अर्पति ।
पतिविश्वस्य भूमनो व्यरयद् रोदसी उमे ॥७॥

सर्तु प्रिया अनूपत गाधो मदाय घृष्ययः ।
सोमांसः कृण्वते पथः पर्यमानासु इन्द्रयः ॥८॥

य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।
यः पञ्च चर्पणीरमि रयिं येन चनामहे ॥ ९ ॥

सोमाः पवन्त इन्द्रवो उसाभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः सुवाना अरेपसः स्वाध्व्यः स्वधिदः १०

सुष्वाण्णासो व्याद्रिमि श्विताना गोरधिं त्वधि ।
इषमसभ्यमभितः समस्वरन् वसुधिदः ॥ ११ ॥

एते पूता धिपुश्चितः सोमामो दध्याशिरः ।
सूर्यसो न दर्शतासो जिगत्रयो ध्रुवा युते १२

प्र सुन्वानस्यान्वसो मतो न वृत्त वद वरः ।
अप श्वानमसुधसं हृता मध्वं न वृत्रः १ १३ ।
आ जामिरत्के अश्वन मुत्रे न पुत्र उषिः ।
सरज्जरो न योषणां वृषं न वृत्रे न चरः १४

स वीरो वृक्षसार्धनो वि यस्तस्तम् रोदसी ।
हरिः पवित्रे अश्वत वेधा न योनिमासदाम् १५
अव्यो वारैमिः पवते सोमो गव्ये अर्धे श्वधि ।
कनिक्कद् वृषा हरि रिन्द्रस्याभ्येति निष्कतम्

॥ १०१ ॥ (ऋ० १।१०।१-८)

त्रित आप्तः । वणिक् ।

क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्तस्य दीर्घितम् ।
विश्वो परि प्रिया मुवदधे द्विता ॥ १ ॥

उप त्रितस्य पाण्योऽरमन्त यद् गुहा पदम् ।
यज्ञस्य सत धामभिरधं प्रियम् ॥ २ ॥

त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्टेचरेया रयिम् ।
मिमीते अस्य योजना वि सुकतुः ॥ ३ ॥

जमानं सत मातरौ वेधामशासत ध्रिये ।
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ॥ ४ ॥

अस्य व्रते सजोपसो विश्वे देवासो अद्रुहः ।
स्वाहा भवन्ति रन्तयो जुपन्त यत् ४५ ॥

यमी गर्भमृतावृषो इदो चाहमर्जाजनन् ।
कवि मंहिष्ठमध्वरे पुहस्पृहम् ॥ ६ ॥

समीचीने अमि त्मना यही श्रुतस्य मातरा ।
तन्वाना यज्ञमानुषा यद्वृते ॥ ७ ॥

कत्या शुकैर्मिच्छानि श्रुयोरपं व्रमं द्वियः ।
हिन्वन्तस्य दीर्घे च मध्वरे ४८ ६

॥ १०२ ॥ (ऋ० १।१०।१-६)

त्रित आप्तः ।

प्र इन्द्रो रोदसी सोमो न वृत्र उद्यन् ।
मुत्रे न पुत्र उषिः ।
एते वृषाण्यन्त गोमिन्दुने वृत्रे ।
अप श्वानमसुधसं हृता मध्वं न वृत्रः ।

अप श्वानमसुधसं हृता मध्वं न वृत्रः ।
अप श्वानमसुधसं हृता मध्वं न वृत्रः ।
अप श्वानमसुधसं हृता मध्वं न वृत्रः ।

अप श्वानमसुधसं हृता मध्वं न वृत्रः ।
अप श्वानमसुधसं हृता मध्वं न वृत्रः ।
अप श्वानमसुधसं हृता मध्वं न वृत्रः ।

परि देवीरनु स्वधा इन्द्रेण याहि सरथम् ।

पुनानो वाघद् वाघद्विरमर्त्यः ॥ ५ ॥

परि सत्तिर्न वाज्यु—र्वैवो देवेभ्यः सुतः ।

व्यानशिः पर्यमानो वि धावति ॥ ६ ॥

॥ १०३ ॥ (ऋ० ९।१०४।१-६)

पर्वतनारदौ काण्ठो, कश्यपो विश्विन्द्र्यावप्यसौ वा ।

सर्वाय आ नि पीदत पुनानाय प्र गांयत ।

शिशुं न युधैः परि भूपत ध्रिये ॥ १ ॥

समी वृत्सं न माहृभिः सृजता ग्यसाधनम् ।

देवाव्यं मर्दममि द्विदावसम् ॥ २ ॥

पुनार्ता दक्षसाधन यथा शर्षीय वीतर्ये ।

यथा मित्राय घर्षणाय शतैम ॥ ३ ॥

अस्मभ्यं त्वा वसुविदे ममि वाणीरनूपत ।

गोभिष्टे वर्णमभि धांसयामसि ॥ ४ ॥

म नो मदानां पत् इदो देवत्सरा असि ।

सर्वेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥ ५ ॥

सर्तमि वृष्युसदा रक्षसं कं चिद्विर्णिमम् ।

अपार्देयं ह्युमंहेो युयोधि नः ॥ ६ ॥

॥ १०४ ॥ (ऋ० ९।१०५।१-६)

तं यः सखायो मदाय पुनानममि गांयत ।

शिशुं न युधैः स्वदयन्त गृतिभिः ॥ १ ॥

मं पत्स रथ माहृभिः—रिन्दुर्हिन्द्यानो अज्यते ।

देवापीमर्दो मतिमि परिष्पृतः ॥ २ ॥

अयं दक्षाय साधनेो ऽयं शर्षीय वीतर्ये ।

अयं देवेभ्यो मधुमस्तमः सुतः ॥ ३ ॥

गोमत्र इदो अम्यवत् सुतः सुदक्ष धग्य ।

गुर्वि ते वणमग्नि गोषु दीधरम् ॥ ४ ॥

म नो हरीणां पत् इदो देवत्सरस्तमः ।

सर्वेव सख्ये नयो रथे मय ॥ ५ ॥

सर्तमि स्वमस्तदां भर्देयं कं चिद्विर्णिमम् ।

गृहो इदो परि बाधो अयं ह्युयम् ॥ ६ ॥

॥ १०५ ॥ (ऋ० ९।१०६।१-१४)

१-३, १०-१४ अमिथाक्षुषा, ४-६ बक्षुमानवाः ७-९ मनुराप्सवः ।

इन्द्रमच्छं सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।

श्रुष्टी जातासु इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥

अयं भराय सानसि—रिन्द्राय पयते सुतः ।

सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥

अस्येविन्द्रो मदेप्या आभं गृभीत सानसिम् ।

वञ्चं च वृषणं भवत् समस्तुजित् ॥ ३ ॥

प्र धन्या सोमं जार्युधि—रिन्द्रायेन्द्रो परि ऋष ।

द्युमन्तं शुष्ममा भरा स्वर्विदम् ॥ ४ ॥

इन्द्राय वृषणं मदं पर्वस्य विश्वदर्शतः ।

सदृक्षयामा पथिकृद् विचक्षणः ॥ ५ ॥

अस्मभ्यं गातुवित्तमो देवेभ्यो मधुमस्तमः ।

सदृक्षं याहि पथिमिः कर्तिक्रदत् ॥ ६ ॥

पर्वस्य देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।

आ कलसो मधुमान्सोम नः सदः ॥ ७ ॥

तयं वृप्सा उद्व्रत इन्द्रं मदाय घावृषुः ।

त्वा देवासो अमृताय कं पंपुः ॥ ८ ॥

आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता ययिम् ।

यष्टिषावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ९ ॥

सोमः पुनान ऊर्मिणा ऽव्यो पारं वि धावति ।

अग्नें वाचः पर्यमानः कर्तिक्रदत् ॥ १० ॥

धीभिर्हिन्वन्ति घाजिनं यने श्रीर्लन्तमत्ययिम् ।

अभि त्रिपुष्टं मतयः समस्वरत्न ॥ ११ ॥

अमर्जे कलसो अभि मीळ्हे सत्तिर्न पाज्यु' ।

पुनानो वार्यं जनयप्रसिप्यदत् ॥ १२ ॥

पर्यते ह्यंतो हरि—रति हरारि रंता ।

अयपर्यमस्तो गृभ्यो धीरयुद् यतो ॥ १३ ॥

अया पर्यस्य देवयु—मंधोधारां अगृक्षत ।

रेमन् पवित्रं पर्येति विश्वतः ॥ १४ ॥

॥ १०६ ॥ (ऋ० ११०७।१-२६)

सप्तर्षयः (१ मरदाजो बार्हस्पत्यः, २ वदयो मारिचः, ३
गोतमो शतृगणः, ४ मौमोऽग्निः, ५ विश्वामित्रो गायिनः, ६
जमदग्निर्मर्गवः, ७ मैत्रावरुणिवंसिष्टः) । प्रगायः = (१, ४,
६, ८-१०, १२, १४, १७ वृहती; ३, ५, ७, ११, १३,
१५, १८ सतोवृहती); ३, १६ द्विपदा विराट्; १९-२६
प्रगायः = (विपदा वृहता, समा सतोवृहती) ।

परितो पिञ्चता सुतं सोमो य उच्चमं हविः ।

दधन्वाँ यो नर्यो अष्वदन्तरा

सुपाव सोममद्रिभिः

॥ १ ॥

नुनं पुनानोऽविभिः परि स्रव

अदन्धः सुरमितरः ।

सुते चित् त्वाप्सु मंदासो अन्धसा

श्रीणन्तो गोमिहर्त्तरम्

॥ २ ॥

परि सुवानक्षसे देवमार्दानुः

ऋतुरिदुर्विचक्षणः

॥ ३ ॥

पुनानः सोम धारया ऽपो वसानो अर्षमि ।

आ रक्ष्णा योनिमृतस्य सीदसि

उत्सो देव हिरण्ययः

॥ ४ ॥

बुहान ऊर्ध्वदिव्यं मधु प्रियं

प्रक्षं सधस्थमासदव ।

आपृच्छयै धरुणं वाज्यर्षपति

चर्मिर्धुतो विचक्षणः

॥ ५ ॥

पुनानः सोम जागृषि-रव्यो वारे परि प्रियः ।

त्वं विप्रो अमवोऽङ्गिरस्तमो

मघ्वां यक्षं मिमिक्ष नः

॥ ६ ॥

सोमो मीह्वान् पवते गातुषिसंम

ऋषिर्ध्रिप्रो विचक्षणः ।

त्वं क्विर्वरभयो देवधीतम्

आ सूर्यं रोहयो दिवि

॥ ७ ॥

सोमं उ पुवाणः सोतृभि-रधि णुभिरवीनाम् ।

अर्धयेव हरिता याति धारया

मन्द्रयां याति धारया

॥ ८ ॥

अनुपे गोमान् गोरिरक्षाः सोमो दुग्धामिरक्षाः ।

समुद्रं न संवरणान्यग्मन्

॥ ९ ॥

आ सोम सुधानो मद्रिभि-स्तिरो धाराण्यव्यया ।

जलो न, पुरि चर्मोर्विशदरिः

सदो वनेषु दधिपे

॥ १० ॥

स मामृजे तिरो अर्णानि मेप्यो

मीळहे सप्तिर्न वाज्युः ।

अनुमाद्यः पर्वमानो मनीषिभिः

सोमो विप्रैर्विभ्रैःकभिः

॥ ११ ॥

प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।

अंशोः पर्यसा मदिरो न जागृषिः

अच्छा कोशी मधुञ्जुतम्

॥ १२ ॥

आ ह्येतो अजुने अक्के अव्यत

प्रियः सुनुर्न मज्यः ।

तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं

नदीष्व गमस्तयोः

॥ १३ ॥

अभि सोमास आयवः पर्वन्ते मद्यं मद्रम् ।

समुद्रस्यार्थि विष्टर्षि मनीषिणो

मत्सरासः स्वर्विदः

॥ १४ ॥

तरत् समुद्रं पर्वमान ऊर्मिणा

राजा देव ऋतं बृहत् ।

अर्षन्मिन्नस्य वरुणस्य धर्मणा

प्र हिन्वान् ऋतं बृहत्

॥ १५ ॥

नर्मियमानो ह्येतो विचक्षणो

राजा देवः संमुद्रियः

॥ १६ ॥

इन्द्राय पवते मद्रः सोमो मरुवते सुतः ।

सहर्षधाव्ये अत्यव्यमर्षति

तमीं मृजन्त्यायवः

॥ १७ ॥

पुनानश्चम् जनयन् मति क्विः

सोमो देवेषु रण्यति ।

अपो वसानः परि गोमिहर्त्तरः

सीदन् वनेष्वव्यत

॥ १८ ॥

तवाहं सोम रारण सुख्य इन्द्रो द्विवेदिषे ।

पुरूणि वञ्चो नि चरन्ति मामयं
परिधीरति ताँ इहि

॥ १९ ॥

उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा
सुख्यार्यं वञ्च ऊर्धनि ।

घृणा तपन्तमति सूर्यं परः
शकुना इव पत्तिम

॥ २० ॥

मुज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे घाचमिन्वसि ।

रयिं पिशङ्गं बहूलं पुरुस्पृहं पवमानाम्यर्षसि ॥२१॥

मूजानो धारे पवमानो अद्यये
वृषावं चक्रदो धने ।

देवानाँ सोम पवमान निष्कृतं
गोभिरञ्जानो अर्षसि

॥ २२ ॥

पवस्व वाजसातये ऽभि विभ्वानि काव्या ।

त्वं संमुद्रं प्रथमो वि धारयो

देवेभ्यः सोम मत्सुरः

॥ २३ ॥

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो
दिव्या च सोम धर्मभिः ।

त्वां विप्रासो मतिभिर्विचक्षण
शुभ्रं दिन्यन्ति धीतिभिः

॥ २४ ॥

पर्यमाना अरुक्षत पविप्रमति धारया ।

मरुत्यन्तो मत्सुरा इन्द्रिया द्या
मेधामभि प्रयासि च

॥ २५ ॥

अपो यसानः परि कोशमर्षनि
इर्गुर्दिषानः सोमभिः ।

जनपञ्चपोर्तिर्मन्दनां अयीयशद्
गाः शृण्वानो न निर्जिजम्

॥ २६ ॥

॥ १०७ ॥ (श्र० ११०८१-१६)

१-२ गौरिवांतिः शाक्यः, ३, १४-१६ शक्तिवांति, ४-५ ऊरुवांतिरसः, ६-७ ऋषिश्वा भारद्वाज, ८-९ ऊर्ध्वसदा भागि-
रसः, १०-११ कृतयुजा भागिरसः, १२-१३ ऋणंशयो रात्रिभिः
काकुभः प्रगाथ. = (विपमा ककुप, समा सतोबुद्धी), १३
यवमथ्या गाथयी ।

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम मत्तुविर्त्तमो मर्दः ।
महिं द्युक्षतमो मर्दः ॥ १ ॥

यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायते
अस्य पीता स्वर्दिदः ।

स सुप्रकतो अभ्यक्रमीदियो
अच्छा वाजं नैतशः ॥ २ ॥

त्वं ह्यङ्ग देव्या पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
अमृतत्वार्यं घोषयः ॥ ३ ॥

येना नवंग्वो दध्यङ्ङपोर्णते
येन विप्रास आपिरे ।

देवानाँ सुभ्रे अमृतस्य चारुणो
येन श्रवास्यानुशुः ॥ ४ ॥

एष स्य धारया सुतो
अव्यो धारैभिः पवते मदिन्तमः ।

क्रीळ्भूमिरपामिव ॥ ५ ॥
य उन्निया अप्या अन्तरहमनो
निर्गा अहन्तदोजसा ।

अभि म्रजं तन्निये गव्यमद्वयं
वर्माव घृष्णवा रुज ॥ ६ ॥

आ सोता परि पिञ्जता
अभ्वं न स्तोममन्तुरं रजस्तुरम् ।

पनक्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ७ ॥
सदसंधारं घृषमं पयोवृधं
प्रियं वेयाप जन्मने ।

श्रुतेन व श्रुतजातो यियापृधे
राजा देय श्रुतं बृहत् ॥ ८ ॥

अभि सुभ्रं बृहद् यश इपस्पते दिदीहि देव देव्युः । वि कोशं मध्यमं युव आ वंच्यस्व सुदक्ष चण्वोः सुतो विशां वद्विर्न विदपतिः । घृष्टं दिवः पवस्व रीतिमुपां जिन्वा गर्विष्ट्ये धियः एतमु त्वं मंदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः । विश्वा वसन्ति विभ्रतम् घृषा वि जडे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः । स सुप्रुतः कविभिर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वस्य दंससा स सुन्वे यो वसन्तं यो ययामानेता य इळानाम् । सोमो यः सुंक्षितीनाम् यस्य न इन्द्रः पिवाद् यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः । आ येन मित्रावरुणा करामह पन्द्रमर्षसे महे ॥१४॥ इन्द्राय सोम पातये नुर्मिर्यतः स्वयुधो मदिन्तमः । पवस्व मधुमत्तमः इन्द्रस्य हार्दिं सोमधानमा विश समुद्रमिय सिन्धवः । जुष्टो मित्राय चरुणाय वायवे त्रियो विष्टम्भ उत्तमः ॥ १०८ ॥ (ऋ० १:१०९:१-२९) अमयो विष्म्या ऐश्वरयः । त्रिपदा विवाद् । परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वाहुर्मित्राय पूष्णे भगाय इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयाः ऋत्ये दक्षाय विभ्ये च देवाः	एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः पर्वस्व सोम महासमुद्रः पिता देवानां विश्वाभि ध्रामं शुक्रः पर्वस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं चं प्रजायै दिवो धृतासिं शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन् वाजी पवस्व पर्वस्व सोम शुभ्री सुधारो महामर्षानामनु पृथ्व्यः नुर्मिर्षमानो जज्ञानः पृतः श्रद् विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित् इन्दुः पुनानः प्रजामुंरणः कद् विश्वानि दविणानि नः पर्वस्व सोम ऋत्ये दक्षाय अश्वो न निकतो वाजी घनाय तं तै सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे युष्णाय शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् इन्दुः पविष्टे चारुमर्दाय अपामुपस्थे कविर्भगाय यिर्मतिं चाविन्द्रस्य नाम येन विश्वानि युषा जधानं पिर्वन्त्यस्य विभ्ये देवासो गोभिः धीतस्य नुभिः सुतस्य प्र सुंषानो अंशाः सहस्रधारः तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् स वान्वेभ्याः सहस्ररेता अन्निर्मृजानो गोभिः धीणानः	॥ ३ ॥ ॥ ९ ॥ ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥
--	--	--

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।
 देवा आदित्या ये सप्त
 तेभिः सोमामि रक्ष न इन्द्रायेन्द्रो परि स्रव ॥ ३ ॥
 यत् ते राजऋते हविस्तेन सोमामि रक्ष नः ।
 अरातीवा मा नस्तारीत्
 मो चे नः किं चनाभेम दिन्द्रोयेन्द्रो परि स्रव ॥ ४ ॥
 ॥ ११४ ॥ (ऋ० १।४३।७-९)
 ऋषो घौरः । गायत्री, ९ अष्टश्लो ।
 अस्मे सोमं क्षिपमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् ।
 महि श्रवस्तुविनुग्णम् ॥ ७ ॥
 मा नः सोमपरियाधो मारांतयो जुहुरन्त ।
 आ न इन्द्रो वाजे भज ॥ ८ ॥
 यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामंनृतस्य ।
 मूर्धा नामा सोम वेन आभूयन्तीः सोम वेदः ॥ ९ ॥
 ॥ ११५ ॥ (ऋ० १।९।१-२३)
 गोतमो राहुणः । त्रिष्टुप्, ५-१६ गायत्री, १० अष्टश्लो ।
 त्वं सोमं प्र चिकितो मनीषा
 त्वं रजिष्ठमर्तुं नेषि पन्थाम् ।
 तय प्रणीति पितरो न इन्द्रो
 देवेषु रत्नममजन्त धीराः ॥ १ ॥
 त्वं सोमं क्रतुभिः सुक्रतुभूः
 त्वं दक्षः सुदक्षो विश्ववेदाः ।
 त्वं घृषां घृपत्येभिर्महित्वा
 घृप्तेभिर्घृम्यमयो नृचक्षाः ॥ २ ॥
 रात्रो नु ते परंणस्य प्रतानि
 घृहद् गमीरं तयं सोमं धाम ।
 नुचिप्यमंसि म्रियो न मिश्रो
 दक्षार्यो भयमेवांसि सोम ॥ ३ ॥
 पा ते धामानि द्विवि या पृथिव्यां
 या पर्वतेष्वोपधीष्यन्तु ।
 नेभिर्नो विभ्यैः सुमना भेदंलून
 राजंममोम प्राति दृष्या गृमाय ॥ ४ ॥

त्वं सोमसि सत्पति—सत्वं राजोत वृषद्वा ।
 त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ ५ ॥
 त्वं च सोम नो वशो जीघातुं न मरामहे ।
 प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ ६ ॥
 त्वं सोमं महे भगं त्वं यूनं ऋतायते ।
 दक्षं दधासि जीवसे ॥ ७ ॥
 त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः ।
 न रिष्येत् त्वावतः सर्वा ॥ ८ ॥
 सोम यास्ते मयोभुवं ऊतयः सन्ति दासुर्यै ।
 तामिर्नोऽविता भव ॥ ९ ॥
 इमं यद्दामिदं वचो जुजुषाण उपागहि ।
 सोम त्वं नो वृधे भव ॥ १० ॥
 सोमं गीर्भिर्घ्वा वयं वृधयामो वचोविदः ।
 सुमूळीको न वा विश ॥ ११ ॥
 गयस्फानो अमीवद्वा वसुवित् पुण्ड्रिधनः ।
 सुमित्रः सोम नो भय ॥ १२ ॥
 सोमं ररन्धि नो हृदि गाधो न यवसेष्या ।
 मयं इव स्व शोक्ये ॥ १३ ॥
 यः सोमं सुख्ये तयं रारणद् देव मर्यैः ।
 तं दक्षः सचते क्विः ॥ १४ ॥
 उरुष्या णो अभिशस्तेः सोमं नि पाण्डंसः ।
 सर्वा सुशेष पधि नः ॥ १५ ॥
 आ प्यायस्य समेतु ते विश्वतः सोमं घृण्यम् ।
 भया वाजस्य संगथे ॥ १६ ॥
 आ प्यायस्य मदन्तम सोमं विश्वेभिर्नुदामिः ।
 भया नः सुश्रयस्तमः सर्वा घृधे ॥ १७ ॥
 सं ते पर्यांसि समु यन्तु वाजाः
 सं घृण्यान्यभिमातिपाहः ।
 धाप्यायमानो भमृताय सोम
 द्विवि श्रयांस्युत्तमानि धिय ॥ १८ ॥
 (४१५८)

या ते धामानि द्विष्या यजन्ति
ता ते विभ्वा परिमूर्स्तु यश्म ।

गुयस्फानः प्रतरणः सुर्वाये
अर्धिरहा प्र चरा सोम दुर्वाय

सोमो धेनुं सोमो अर्ध्वन्तमारुं
सोमो वीरं कर्मण्य ददाति ।

सादस्यं विद्वश्यं सुमेयं
पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै

अपाब्धं युत्सु पृतनासु पभिं
स्वर्पामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।

भुरेपुजां साक्षितं सुश्रवसं
जयन्तं त्वामनुं मदेम सोम

त्वमिमा ओपधीः सोम विभ्वाः
त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।

त्वमा तंतन्योर्वेनुन्तारिहं
त्वं ज्योतिषां वि तमो ववर्ध

देवेन नो मनसा देव सोम
रापो भागं सहसावश्रमि युष्य ।

मा त्वा तंतनीडिणे वीर्यस्य
उमयेभ्यः प्र चिकित्सा गर्विष्टौ

॥ ११६ ॥ (ऋ० ३।६१।१३-१५)

गायिनो विद्यामित्रः । गानशी ।

सोमो जिगाति गातुविद् देवानामेति निष्कृतम् ।

ऋतस्य योर्निमासदम् ॥ १३ ॥

सोमो असम्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवं ।

धनमीवा इपस्करत् ॥ १४ ॥

अस्माकमार्युर्वर्धयं भूमिमातीः सहमानः ।

सोमः सुधस्यमासदत् ॥ १५ ॥

॥ ११७ ॥ (ऋ० ६।४७।१-५)

नगो मासहाजः । मिथुष् ।

स्वादुक्किलायं मधुमौ उतायं

सावः किलायं रसवां उतायम् ।

उतो न्युस्य पपिवांसमिन्द्रं
न कश्चन सहत आहवेयुं

॥ १ ॥

अयं स्वादुरिह मर्दिष्ट आस
यस्येन्द्रो वृत्रहृत्स्ये ममाद् ।

पुरुणि यश्च्योक्ता शम्बरस्य
वि नवति नव च वेहोः ह्व

॥ २ ॥

अयं मे पीत उर्दियति वाचं
अयं मनीषामनुन्तीर्मजागः ।

अयं पल्लुर्वीरमिमीत धीरो
न याम्यो भुवं न कञ्चनारे

॥ ३ ॥

अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या
वर्ष्माणं द्विवो अरुणेदयं सः ।

अयं पीयूषं तिस्र्युं प्रवत्सु
सोमो दाघायेर्वनुन्तारिधम्

॥ ४ ॥

अयं विद्वच्चित्रदशीकर्मणः
शुक्रसंघनामुपसामनीके ।

अयं महान् महता स्कर्मन्तेन
उद् धामस्तध्नाद् वृषमो भुवत्वान्

॥ ५ ॥

॥ ११८ ॥ (ऋ० ७।१०४।१, १२-१३)

मैत्रावहाणिविष्टः ।

ये पाकशंसं विहरन्तु पवैः

ये वा भुद्रं दृषयन्ति स्वधार्मिः ।

अहये वा तान् प्रददातु सोम
आ वा दघातु निर्रुतेरुषस्यं

॥ ९ ॥

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय
सद्यासंघ वचंसी परपृघाते ।

तयोपेत सत्यं यंतरदजीयः
तदित् सोमोऽवति हन्यासत्

॥ १२ ॥

न वा उ सोमो वृजिनं हिंनोति
न क्षत्रियं मियुया घारयन्तम् ।

हन्ति रक्षो हन्यासद् वदन्तं
उमाविन्द्रस्य प्रसितौ शपाते

॥ १४ ॥

(४६५४)

॥ ११९ ॥ (ऋ० ८।४८।१-१५)

प्रगाथो घोरः कात्वः । त्रिष्टुप्, ५ जगती ।

म्यादोरमस्त्रि वषसः सुमेधा
 स्वाध्यां वरिवोविचरस्य ।
 विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो
 मयुं द्रुवन्तो अग्निं सुचरन्ति
 अन्तश्च प्राणा अर्द्धिर्निर्वासि
 अवयाता हरसो देव्यन्त्य ।
 इन्द्रविन्द्रं न्य सुख्यं जुषाणः
 श्रीष्टीं च धुरमनुं राय ऋष्याः
 अर्षाम् सोमममृतां अमम
 अगन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
 किं नूनमस्मान् रुणयदरातिः
 किमु धृतिरमृत मर्त्यस्य
 दा नो भय हृद् वा पीत इन्द्रो
 पिनेर्ष सोम सृनये सुशोषैः ।

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

अलति दक्ष उत मन्युरिन्द्रो
 मा नो अयों अनुकामं परो दाः ॥ ८ ॥
 त्वं हि नस्तन्वः सोम गोपा
 गात्रैगात्रे निपसर्था नृचक्षाः ।
 यत् ते वयं प्रमिनाम व्रतानि
 स नो मृळ सुपखा देव वस्यः ॥ ९ ॥
 ऋदूदरेण सख्यां सचेय
 यो मा न रिष्येद्वर्यश्व पीतः ।
 अयं यः सोमो न्वधाव्यस्मे
 तस्मा इन्द्रं प्रतिरेमेभ्यार्युः ॥ १० ॥
 अप त्या अस्थुरनिरा अमीवा
 निरत्रसन् तमिपीचीरभैपुः ।
 आ सोमो अस्मा अरुहद् विद्याया
 अगन्म यत्र प्रतिरन्त आर्युः ॥ ११ ॥
 यो न इन्द्रः पितरो हन्त पीतो

॥ ११० ॥ (ऋ० ८।७९।१-९)

कृतुर्मागवः । गायत्री, ९ अनुष्टुप् ।

अयं कृतुरर्षमीतो विश्वजिदुद्भिदित् सोमः ।
 ऋषिर्विप्रः कार्व्येन ॥ १ ॥
 अम्यूर्णोति यद्गङ्गं भिपक्ति विश्वं यत् तुरम् ।
 प्रेमन्धः ख्यन्ति श्रोणो भूत् ॥ २ ॥
 त्वं सोम तनूकृद्भयो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः ।
 उरु यन्तासि वरुधम् ॥ ३ ॥
 त्वं चिच्ची तव दक्षैर्दिव आ पृथिव्या ऋजीपिन् ।
 याधीरघस्यं चिद् द्वेषः ॥ ४ ॥
 अर्थिनो यन्ति चेदर्थं गच्छानिद् ददुषो रातिम् ।
 घवृज्युस्तृप्यतः कार्मम् ॥ ५ ॥
 विदद् यत् पुष्यं नृप—मुदीमृतायुमीरयत् ।
 प्रेमायुस्तारिदतीणम् ॥ ६ ॥
 सुशेषो नो मृळ्याकु—रहसक्रतुरवातः ।
 भवां नः सोम शं हृदे ॥ ७ ॥
 मा नः सोम सं धीविजो मा वि धीमिपथा राजन् ।
 मा नो ह्यदिं त्विपा वधीः ॥ ८ ॥
 अय यत् स्वे सुधस्थे देवानां दुर्मतीरीक्षे ।
 राजन्नप द्विपः सेध मीह्वो अप द्विधः सेध ॥ ९ ॥

॥ १११ ॥ (ऋ० ८।१०१।१४)

जमदग्निर्मागवः । विशुप् ।

प्रजा हं तिष्ठो अत्यार्यमीयुः
 न्यून्या अर्कमभितो विविधे ।
 घृहृदं तस्थौ भुयनेष्वन्तः
 पर्वमानो हरित आ विवेश ॥ १ ॥
 ॥ १२१ ॥ (ऋ० १०।१५।१-११)
 ऐन्द्रो विपदः, प्राजापत्यो वा, वायुको वसुकृदा ।
 आस्वारपक्षिः ।
 मद्रं नो अपि चातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
 अर्धा ते सख्ये अर्धसो वि वो मदे
 रणन् गावो न यवसे विवक्षसे ॥ १ ॥

हृदिस्पृशस्त आसते विश्वेषु सोम धामसु ।
 अथा कामा इमे मम वि वो मदे
 वि तिष्ठन्ते वसुयवो विवक्षसे ॥ २ ॥
 उत वृतानि सोम ते प्राहं मिनामि पाक्या ।
 अर्धा पितेवं सुनवे वि वो मदे
 मृळा नो अभि चिद् वधाद् विवक्षसे ॥ ३ ॥
 समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवतां इव ।
 क्रतुं नः सोम जीवसे वि वो मदे
 धारयां चमसां इव विवक्षसे ॥ ४ ॥
 तव त्वे सोम शक्तिमि—निर्कामासो व्यृषिवरे ।
 गृत्सस्य धीरास्तवसो वि वो मदे
 वृजं गोमन्तमश्विनं विवक्षसे ॥ ५ ॥
 पशुं नः सोम रक्षसि पुरुत्रा विष्टितं जगत् ।
 समाकृणोपि जीवसे वि वो मदे
 विश्वां संपश्यन् भुवना विवक्षसे ॥ ६ ॥
 त्वं नः सोम विश्वतो गोपा अदाभ्यो भव ।
 सेधं राजन्नप द्विपो वि वो मदे
 मा नो दुःशंसं ईशाना विवक्षसे ॥ ७ ॥
 त्वं नः सोम सुक्रतु—वैयोधेयाय जागृहि ।
 श्रेयवित्तरो मनुषो वि वो मदे
 द्रुहो नः पाह्यंसो विवक्षसे ॥ ८ ॥
 त्वं नो वृत्रहन्तमे—न्द्रस्येन्द्रो शिवः सखा ।
 यत् सां हवन्ते समिधे वि वो मदे
 युष्यमानास्तोकसाती विवक्षसे ॥ ९ ॥
 अयं घ स तुरो मद् इन्द्रस्य वधेत म्रियः ।
 अयं कक्षीर्वतो महो वि वो मदे
 मतिं विप्रस्य वधयद् विवक्षसे ॥ १० ॥
 अयं विप्राय दाशुपे धाजो इयति गोमतः ।
 अयं सप्तभ्य वा घरे वि वो मदे
 प्राग्धं श्रोणं च तारिपद् विवक्षसे ॥ ११ ॥

॥ १३० ॥ (वा० य० ६।८१।१)

अथर्वा । अनुष्टुप् ।

इदं यत् प्रेष्यः शिरो वृत्तं सोमेन वृष्ण्यम् ।
ततः परि प्रजातेन हार्द्रं ते शौचयामसि ॥ १ ॥

॥ १३१ ॥ (वा० य० ४।१६ उच्चराधः, २४, २७)

रास्वेयत् सोमा भूयो भर देवो
नः सविता वसोर्द्राता वस्यदात् ॥ १६ ॥

एव ते गायत्रो भाग इति मे सोमाय वृतात्
एव ते वैश्वभो भाग इति मे सोमाय वृतात्
एव ते जागतो भाग इति मे सोमाय वृतात्
छन्दोनामानां सान्नाज्यं गच्छेति मे सोमाय वृतात्
अस्माकोऽसि शुक्रस्ते प्रहो विचितस्तया
विचिन्वन्तु ॥ २४ ॥

मित्रो न पट्टि सुमिप्रथ इन्द्रस्योरुमाविश
वक्षिणमुशुभान्तं स्योनः स्योनम् ।
स्वान् भ्राजाङ्घारे यमारे हस्तु सुहस्तु
रुशानयेते यः सोमकर्यणस्तान् ।
रक्षध्वं मा यो दमन् ॥ २७ ॥

॥ १३० ॥ (वा० य० ५।७)

अथंशुर्दंशुप्रे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकघनविदं
आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्यमिन्द्राय प्यायस्य ।
आप्याययासान्तस्वीन्सत्या
मेघया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामरीय ।
पशु रायः प्रेये भगाय
श्रुतमृतयादिभ्यो नमो घायापृथिवीभ्याम् ॥ ७ ॥

॥ १३३ ॥ (वा० य० ६।१५-२६, ३२-३३, ३५-३६)

हृदे त्या मर्नसे त्या द्विषे त्या सूर्याय त्या ।
ऊर्ध्वमिममेष्वरं द्विषे देवेषु होत्रां यच्छ ॥ २५ ॥
सोमं राजन् विभ्यास्त्वं प्रजा
उपायरोह विभ्यास्त्वां प्रजा उपायरोहन्तु ।

शृणोत्वग्निः समिधा हव्यं मे
शृण्वन्वापो धिपर्णाश्च देवीः ।
श्रोतां प्रावाणो विदुषो न युषं
शृणोतु देवः सविता हव्यं मे स्वाहा ॥ २६ ॥

इन्द्राय त्वा वसुंमते इन्द्रवत इन्द्राय
त्वादित्यवत इन्द्राय त्वाभिमातिमे ।
श्येनाय त्वा सोमभृतेऽन्नयं त्वा रायस्पोपदे ॥ ३२ ॥

यत् ते सोम द्विवि ज्योतिः
यत् पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे ।
तेनास्मै यजमानायोरु राये
रुष्यधि दात्रे वौचः ॥ ३३ ॥

मा भेर्मा संविकथा ऊर्जे धत्स्व
धिर्पणे वीड्वी सती वीडयेयामूर्जे दधायाम् ।

पाप्मा हतो न सोमः ॥ ३५ ॥

प्रागपाशुर्दगधराक् सर्वतस्त्वा दिश आधापन्तु ।
अभ्य निरर्परं समरीधिदाम् ॥ ३६ ॥

॥ १३४ ॥ (वा० य० ७।१४)

अच्छेत्प्रस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य
रायस्पोपस्य ददितारः स्याम ।
सा प्रथमा संस्कृतिविभवाणु
स प्रथमो चरणो मित्रो अग्निः ॥ १४ ॥

॥ १३५ ॥ (वा० य० ८।१, २, २५-२६, ४८-५०)

उपयामर्षुहीतोऽस्यादित्येभ्यस्तया ।
विष्णं उरुगायं त्वा सोमस्तथ
रक्षस्व मा त्वा दमन् ॥ १ ॥

उपयामर्षुहीतोऽसि बृहस्पतिस्तुतम्य देव सोम त
इन्द्रोऽपिन्द्रियार्थतः पत्नीयितो प्रहोऽर ऋष्यासम् ।

अहं परस्ताद्दमयस्ताद्
यदन्तरिक्षं तर्तु मे पिताभूत् ।
अहं सूर्यमुभयतो ददन्
अहं देवानो परमं गुहा यत् ॥ २ ॥

समुद्रे ते हृदयमप्युत्सृजतः ।
सं त्वा विशन्त्वोर्षधीःस्तपः ।
यदास्यं त्वा यशपते सुकोत्तौ
नमोवाके विधेम यत् स्वाहा

॥ २५ ॥

देवीराप पप यो गर्भीस्तथ
सुप्रीतथ सुभृतं विभृत ।
देयं सोमैप तं लोकस्तस्मिन्
शं च वक्ष्य परि च वक्ष्य

॥ २६ ॥

वेशीनां त्वा पत्न्यार्धनोमि
कुक्कुतानां त्वा पत्न्यार्धनोमि
भन्दनानां त्वा पत्न्यार्धनोमि
मदिन्तमानां त्वा पत्न्यार्धनोमि
मधुन्तमानां त्वा पत्न्यार्धनोमि
शुक्रं त्वा शुक्र आर्धनोमि
अहौ रूपे सूर्यस्य रुदिमर्षु

॥ ४८ ॥

ककुभथ रूपं वृषभस्यं रोचते
बृहच्छुक्रः शुक्रस्यं पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः ।
यत् तं सोमादाभ्यं नाम जागृवितस्मै त्वा गृहामि
तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा

॥ ४९ ॥

उशिक् त्वं देव सोमग्रेः प्रियं पाथोऽपीहि
वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपीहि
असत्सखा त्वं देव सोम विश्वैपां
देवानां प्रियं पाथोऽपीहि

॥ ५० ॥

॥ १३६ ॥ (वा० य० १९।७९)

सोमो राजामूर्तथ सुत ऋजीपेणाजहान्मृत्युम् ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानंथ शुक्रमन्धस
इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु

॥ ७२ ॥

॥ १३७ ॥ (वा० य० १०।१९)

समुद्रे ते हृदयमप्युत्सृजतः
सं त्वा विशन्त्वोर्षधीःस्तपः ।

सुमित्रिया नु धानु शोरपथयः सस्तु
सुमित्रियात्सर्गं सस्तु
योऽस्मान् छेष्टि यं च ययं द्विष्वाः

॥ १९ ॥

॥ १३८ ॥ (साम० ११००-११०१)

पायमानीः म्यग्ययनीः
सुदुया हि पतदयुतः ।
श्रुपिभिः संभृतौ रत्नो

प्राक्षणेप्यमृतं हितम् ॥ ३ ॥ ॥ १३०० ॥

पायमानीदधन्तु न
इमं लोकमथा अमम् ।

फामान्त्समर्धयन्तु नो
देवीदेवाः समाहताः ॥ ४ ॥ ॥ १३०१ ॥

येन देवाः पवित्रण
आत्मानं पुनते सदा ।

तेन सहस्रधारेण
पावमानीः पुनन्तु नः ॥ ५ ॥ ॥ १३०२ ॥

पावमानी स्वस्वयनीः
ताभिर्गच्छति नाद्वनम् ।

पुण्याश्च भक्षान् भक्षयति
अमृतत्वं च गच्छति ॥ ६ ॥ ॥ १३०३ ॥

॥ १३९ ॥ (अ० १०।१९४।६)

अग्नि-वरुण-सोमः । शिष्टम् ।

इदं स्वर्दिदिमिदांस वामं
अयं प्रकाश उर्ध्वन्तरिक्षम् ।
हनाय वृत्रं निरोहिं सोम
द्विष्ट्या सन्तं द्विषा यजाम

॥ ९ ॥
(४७५५)

सोमसहचारी देवगणः ।

(१) सूर्यरोदसीमित्रवरुणरुद्रैर्द्राग्न्ययमभगसोमाः ।

॥ १४० ॥ (ऋ० १।१३६।६)

पृच्छतेो देवोदासिः । अग्रयिः ।

नमो द्विवे बृहते रोदसीभ्यां

मित्रार्यं योचं वरुणाय मीळहुपै

सुमृळीकार्यं मीळहुपै ।

इन्द्रमग्निमुपं स्तुहि युक्षमयमणं भगम् ।

ज्योग जीवन्तः प्रजया सचेमहि

सोमस्योती संचेमहि

॥ ६ ॥

(२) सोमापूपणौ, ६ (अन्त्योऽर्धचस्य) अदितिः ।

॥ १४१ ॥ (ऋ० २।३०।१-६)

गृधमद (आङ्गिरसः शोणशोत्रः पश्वाद्) भार्गवः

शोणकः । त्रिशुप् ।

सोमापूपणा जर्नना रथीणां

जर्नना द्विवो जर्नना पृथिव्याः ।

जातो विश्वस्य भुवनस्य गोपौ

देवा अङ्गणवन्नमृतस्य नाभिम्

इमौ देवौ जार्यमानौ जुपन्त

इमौ तमोसि गृहतामजुष्टा ।

आभ्यामिन्द्रः एकमामास्वन्तः

सोमापूपभ्यां जनदुस्त्रियांसु

सोमापूपणा रज्जसो विमाने

सुतचक्रं रथमविश्वामिन्वम् ।

विपृवृतं मनसा युज्यमानं

तं जिन्वथो वृपणा पञ्चरश्मिम्

दिव्यान्यः सदेनं चक्र उरुचा

पृथिव्यामन्यो अप्यन्तारिक्षे ।

तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुशुं

रायस्पोषं वि प्र्यतां नाभिमस्मे

विश्वान्यन्यो भुवनं जुजान

विश्वमन्यो अभिचक्ष्णो पति ।

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

सोमापूपणावचनं धियं मे

युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम

॥ ५ ॥

धियं पुषा जिन्वतु विश्वमिन्वो

रथिं सोमो रथिपतिर्दधातु ।

अवतु देव्यर्द्धितिरनवा

बृहद् वंदेम विदथे सुवीराः

॥ ६ ॥

(३) सोमारुद्रौ ।

॥ १४२ ॥ (ऋ० ६।७४।१-४)

मार्द्रात्रो वाहेस्पत्यः । त्रिशुप् ।

सोमारुद्रा धारयैयामसुर्यु

प्र वामिथ्योऽरमद्भवन्तु ।

दमेदमे सुत रत्ना दर्शना

शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे

॥ १ ॥

सोमारुद्रा वि बृहत् विपृञ्चो

अर्मावा या नो गर्गमाधिवेशी ।

आरे वाधेयां निर्रिहातिं पशुचैः

अस्मे भद्रा सौथ्रवसानि सन्तु

॥ २ ॥

सोमारुद्रा युचमेतान्यस्मे

विश्वं तनूषु मेयजानि धत्तम् ।

अव स्यतं मुञ्जतं यक्षो आसिं

तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्वत्

॥ ३ ॥

तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशोवौ

सोमारुद्राविह सु मृळतं नः ।

प्र नो मुञ्जतं वरुणस्य पाशाद्

गोपायतं नः सुमनस्यमाना

॥ ४ ॥

(४) ग्राहण-पितृ-सोम-द्यायापृथिवी-पूपाणः ।

॥ १४३ ॥ (ऋ० ६।७५।१०)

पाशुमोद्रात्रः । अगती ।

ग्राहणासुः पितरः सोम्यासः

दिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।

पुषा नः पातु उरितादृतायुधौ

रक्षा मार्किनो अघशंस ईशत

॥ १० ॥

(५) धर्म-सोम-घरुणाः ।

॥ १४४ ॥ (अ० ६।७५।१८)

पापुर्मांरदात्रः । त्रिष्टुप् ।

मर्माणि ते वर्मणा छाद्यामि
सोमस्त्वा राजामृतेनानुं वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो घरुणस्ते रुणोतु
जयन्तं त्वानुं देवा मंदन्तु

॥ १८ ॥

(६) अग्नीध्रमित्राघरुणाश्विभगपूपद्मद्वहणस्पतिसोम-
कद्राः ।

॥ १४५ ॥ (अ० ७।४१।१)

मैत्रावरुणिवैधृषः । जगती ।

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विनां ।
प्रातर्भगं पूषणं अक्षेणस्पतिं
प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम

॥ १ ॥

(७) अङ्गिरःपित्रथर्वभृगुसोमाः ।

॥ १४६ ॥ (अ० १०।१४।६)

वैवस्वतो यमः । त्रिष्टुप् ।

अङ्गिरसो नः पितरो नर्वग्वा
अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमत्तौ यधियानां
अपि मूद्रे सोमनसे स्याम

॥ १ ॥

(८) आपः सोमो या ।

॥ १४७ ॥ (अ० १०।१७।१-१३)

दंश्रवा यामावनः । त्रिष्टुप्, १३ अनुष्टुप्, पुरस्ताद्बृहती वा ।
द्रुप्तश्चैस्कन्द प्रथमो अनु द्यून्
इमं च योनिमनु यद्य् पुर्यैः ।
समानं योनिमनुं संचरन्तं
द्रुप्तं जुहोम्यनुं सत क्षोत्राः
यत्नं द्रुप्तः स्कन्दति यत्नं अंशुः
पाहृच्युतो श्रियणाया उपम्यात् ।

॥ ११ ॥

अभ्ययोर्यां परिं छा यः पयिन्नात्
तं तै जुहोमि मनसा चर्पट्कृतम्

॥ १२ ॥

यत्नं द्रुप्तः स्कन्दो यत्नं अंशुः

अचक्ष यः परः सुचा ।

अयं देवो यदृस्पतिः सं तं सिञ्चतु राधसे ॥१३॥

(९) अग्नीषोमौ ।

॥ १४८ ॥ (अ० १०।१९।१ उत्तरार्धः)

मथितो यामावनः, भृगुवांशुनिर्वा, भार्गवद्वयवने वा । अनुष्टुप् ।

अग्नीषोमा पुनर्वसु अस्मे धारयन्तं रयिम् ॥ १ ॥

॥ १४९ ॥ (अथर्व० २।३६।३)

पतिवेदनः । त्रिष्टुप् ।

इयमग्ने नारी पतिं विदेष्टु

सोमो हि राजा सुभगां कृणोति ।

सुवार्ना पुत्रान् महिषी भवाति

गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु

॥ २ ॥

(१०) निर्धृतिसोमौ ।

॥ १५० ॥ (अ० १०।५९।४)

बभ्रुः श्रुतबभ्रुर्विषबभ्रुर्गौपायनाः । त्रिष्टुप् ।

मो पु णः सोम मूलवे परा द्राः

पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।

द्युभिर्हितो जैरिमा स नो अस्तु

परातरं सु निर्धृतिर्जिहीताम्

॥ ३ ॥

(११) पृथिवीद्वयन्तरिक्षसोमपूपपथ्यास्वस्तयः ।

॥ १५१ ॥ (अ० १०।५९।७)

बभ्रुः श्रुतबभ्रुर्विषबभ्रुर्गौपायनाः । त्रिष्टुप् ।

पुनर्नो अस्तु पृथिवी वंदातु

पुनर्यौदेधी पुनरन्तरिक्षम् ।

पुनर्नः सोमस्तुर्न्यं ददातु

पुनः पूषा पृथ्यां तु या स्वस्तिः

॥ ७ ॥

(४७७७)

(१२) सोमाकौ ।

॥ १५३ ॥ (ऋ० १०८११८)
सुगं चावित्री ऋषिः । जगती ।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ
शिदु क्रीळन्तौ परि यातो अध्वरम् ।
विश्वान्यन्यो भुवंनामिचष्टं
शुतूरन्यो विदधेजायते पुनः ॥ १८ ॥

(१३) सोम-चरुण-बृहस्पति-अनुमति-मघवत्-धातु-
विधातारः ।

॥ १५३ ॥ (ऋ० १०११६७३)
विश्वामित्र-जमदग्नी । जगती ।

सोमस्य राज्ञो चरुणस्य धर्मणि
बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्मणि ।
तवाहमद्य मघवद्रुपस्तुतौ
धातुर्विधातः कुलशौ अभक्षयम् ॥ ३ ॥

(१४) बृहस्पतिः, अग्नीषोमौ च ।

॥ १५४ ॥ (अथर्व० १८१-२)
वातनः । अनुष्टुप् ।

इदं हृषियौतुधानान् नदी केनमिया बहत् ।
य इदं स्त्री पुमानक-रिह स स्तुवतां जनः ॥ १ ॥
अयं स्तुवान आगम-दिमं स्म प्रति हयंत ।
बृहस्पते चरो लभ्या ऽग्नीषोमा वि विध्वतम् ॥२॥

(१५) अग्निः, आपः, ओषधयः, सोमः ।

॥ १५५ ॥ (अथर्व० १११०१२)
भृगुः । चतुष्टुप् ।

शं ते अग्निः सुहाङ्गिरस्तु शं सोमः सुद्वीपधीभिः ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्
निर्भृत्त्या जामिशासाद् द्रुहो
मुञ्चामि चरुणस्य पाशात् ।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि
शिवे ते धावांपृषिवी उभे स्ताम् ॥ २ ॥

(१६) सोमः, अर्यमा, धाता ।

॥ १५६ ॥ (अथर्व० ३१३६१)
पतिवेदनः । अनुष्टुप् ।

सोमंजुष्टं ब्रह्मंजुष्टं-मर्युष्णा संभृते मगम् ।
धातुर्देवस्य सत्येनं कृणोमि पतिवेदनम् ॥ २ ॥

(१७) चरुणः, सोमः, इन्द्रः ।

॥ १५७ ॥ (अथर्व० ३१३१३)
अर्षा । चतुष्टुप् ।

अद्भ्यस्त्वा राजा चरुणो ह्ययत्
सोमस्त्वा ह्ययत् पर्यतेभ्यः ।
इन्द्रस्त्वा ह्ययत् विद्भ्य आभ्यः
इयेनो भूत्वा विश आ पतेमाः ॥ ३ ॥

(१८) सोमः, सचिता, आदित्यः, अग्निः ।

॥ १५८ ॥ (अथर्व० ३१८१३)
विष्टुप् ।

हुवे सोमं सचितारं नमोमिः
विश्वानादित्यौ अहमुत्तरत्वे ।
अयमग्निर्दीदायव् दीर्घमेव
संजातरिन्द्रोऽप्रतिब्रुवाद्भिः ॥ ३ ॥

(१९) सोमः, स्वजा, अशानिः ।

॥ १५९ ॥ (अथर्व० ३१९७४)
पञ्चदा ककुप्मतीगमोऽधिः ।

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः
स्यजो रक्षिताशनिरिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो
रक्षितभ्यो नम इयुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽस्मान् देष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्मे दधमः ४

(२०) आपः, सोमः ।

॥ १६० ॥ (अथर्व० ४१६१५) अनुष्टुप् ।

अर्षा रसः प्रथमजो ऽयो वनस्पतीनाम् ।
उत सोमस्य भ्राता ऽस्युतार्शमसि वृष्णम् ॥५॥

(२१) सोमः, पनस्पतिः ।

॥ १६१ ॥ (अथर्व० ६।२।१-१) परीणिष् ।

इन्द्राय सोमंमृत्विजः सुनोता च धायत ।
स्तोतुर्यो वचः शृणुयद्भवे च मे ॥ १ ॥

आ यं विशन्तीन्दद्यो वयो न वृक्षमग्धसः ।
विराष्टिन् वि मृषो जहि रक्षस्विनीः ॥ २ ॥

(२२) द्यावापृथिवी, प्राधा, सोमः, सरस्वती, अग्निः ।
॥ १६२ ॥ (अथर्व० ६।३।१) जगती ।

पातां नो द्यावापृथिवी अग्निष्टये
पातु प्राधा पातु सोमो नो अंहेसः ।

पातु नो देवी सुभगा सरस्वती
पात्वग्निः शिवा ये अस्य प्रायवः ॥ २ ॥

(२३) सोमः, अदितिः ।

॥ १६३ ॥ (अथर्व० ६।७।१-१) १ निवृत्, २ गायत्री ।
येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्बुहः ।
तेना नोऽवसा गहि ॥ १ ॥

येन सोम साहन्त्या सुरान् रन्धयासि नः ।
तेना नो अर्धे वोचत ॥ २ ॥

(३४) द्यावापृथिवी, सोमः, सविता, अन्तरिक्षं,
सप्तऋषयः ।

॥ १६४ ॥ (अथर्व० ६।४०।१) जगती ।

अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नो
अभयं सोमः सविता नः कृणोतु ।

अभयं नोऽस्तूर्ध्वंन्तरिक्षं
सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु ॥ १ ॥

(२५) अग्निः, इन्द्रः, सोमः ।

॥ १६५ ॥ (अथर्व० ६।५८।३) अनुष्टुप् ।

यदा इन्द्रो युशा अग्नि-यशाः सोमो अजायत ।
यदा विश्वस्य भूतस्या-हमसि युशास्तमः ॥ ३ ॥

(२६) सविता, सोमः, वरुणः ।

॥ १६६ ॥ (अथर्व० ६।६८।३) अतिजगतांगमां त्रिष्टुप् ।

येनायपत् सविता क्षुरेण
सोमैभ्य राज्ञां वरुणस्य विद्वान् ।

तेन प्रधाणो यपतेदमरुध
गोमान्भयवानयमस्तु प्रजायान् ॥ ३ ॥

(२७) सांमनस्यम्, वरुणमोमोऽग्निवृहस्पतिवमथः ।
॥ १६७ ॥ (अथर्व० ६।७१।१-१)
१ भुरिक् २ त्रिष्टुप् ।

पद यातु वरुणः सोमो अग्निः
वृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु ।

अस्य ध्रियमुपसंयातु सर्वं
उग्रस्यं चेतुः संमनसः सजाताः ॥ १ ॥

यो वः शुभ्रो हृदयेष्वन्तः
आकृतिर्यो वो मनसि प्रविष्टा ।

तान्सीवयामि हविषा घृतेन
मयि सजाता र्मतिवो अस्तु ॥ २ ॥

(२८) इन्द्रः, सोमः, सविता च ।

॥ १६८ ॥ (अथर्व० ६।९९।१-३)
अनुष्टुप्, ३ भुरिभृहती ।

अभि त्वेन्द्र वरिमतः पुरा त्वाहरणाहुवे ।
ह्याम्युग्रं चेतारं पुरुणांमानमेकजम् ॥ १ ॥

यो अद्य सेन्यो वधो जिवांस्र उदीरते ।
इन्द्रस्य तत्र वाह संमन्तं परि ददाः ॥ २ ॥

परि दद्य इन्द्रस्य वाह संमन्तं ज्ञातुस्त्रायतां नः ।
देवं सवितः सोमं राजन्
सुमनसं मा कृणु स्वस्तये ॥ ३ ॥

(२९) द्यौः, पृथिवी, शुक्रः, सोमः, अग्निः, वायुः,
सविता ।

॥ १६९ ॥ (अथर्व० ६।१३।१)
बृहच्छुक्रः । जगती ।

द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ
शुक्रो बृहन् दक्षिणया विपतुं ।
अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निः

वायुनैः पातु सविता भार्गव ॥ १ ॥



अन्नम् ।

॥ १ ॥ (घा० य० १८।११-३४)

वाजो नः सत प्रदिश—श्चतस्रो वा परावतः ।
वाजो नो विश्वेर्देवैर्धर्ममाताविद्वावंतु ॥ ३२ ॥

वाजो नो ऽ अद्य प्रसुवाति दानं
वाजो देवाँरऽ ऋतुभिः कल्पयाति ।
वाजो हि मा सर्ववीरं उजानु
विभ्या ऽ आशा वाजपतिर्जपेयम् ॥ ३३ ॥

वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो
वाजो देवान् दृषिषां वर्धयाति ।
वाजो हि मा सर्ववीरं चकार
सर्वा ऽ आशा वाजपतिर्भवेयम् ॥ ३४ ॥

॥ २ ॥ (श्र० १।१८७।१-११)

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अक्षं । १ अनुद्वन्द्वमर्भा उभिनः ।
१, ५-७, ११ अनुद्वुः ; (११ ऋती वा) २, ४, ८-१०
गायत्री ।

पितुं नु स्तोत्रं महो धर्माणं तर्धिषीम् ।
यस्य श्रितो ध्योर्जमा पृथं विपर्यमर्दयत् ॥ १ ॥
स्वादेो पितो मधो पितो धयं त्वां यधुमहे ।
असाकमपिता भव ॥ २ ॥

उपं नः पितृवा चर शिष्यः शिष्याभिरुतिभिः ।
मयोभुरद्विपेण्यः सर्वा सुशोभो अक्षयाः ॥ ३ ॥
तव त्वे पितो रसा रजांस्यनु विष्टिताः ।

त्रिधि वार्ता इव श्रिताः ॥ ४ ॥
तव त्वे पितो ददत्तस्तर्ष स्वादिष्ट ते पितो ।

प्र स्वाद्धानो रसानां तुविश्रीवा इवेरते ॥ ५ ॥
त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम् ।

अकारि चार्द केतुना तवाहिमर्वसायधीत् ॥ ६ ॥
यद्दो पितो अजगन् विवस्य पर्यतानाम् ।

अत्रां चिशो मधो पितो ऽर्दं भक्षार्यं गम्याः ॥ ७ ॥
यद्रूपामोर्पधीनां परिशामारिशामहे ।

वातापि पीव इद् भव ॥ ८ ॥
यत् नै सोम गवांशितो ययांशितो भजामहे ।

वातापि पीव इद् भव ॥ ९ ॥
कुरुम भौपधे मय पीषीं पुषः उद्धारुधिः ।

वातापि पीव इद् भव ॥ १० ॥
तं त्वां वृयं पितो वचोभिः

गावो न हृष्या सुवृदिम ।
देवेभ्यस्स्या सधुमादं

असभ्यं त्वा सधुमादं ॥ ११ ॥
(२८१५)

॥ ३ ॥ (अथर्व० ६।७।१-३)

मद्गा । अग्नि, ३ वैश्वानरः, देवाः (अन्नम्) । जगती,
३ त्रिष्टुप् ।यदन्नमग्निं बहुधा विरूपं
हिरण्यमश्वंमुत गामजामविम् ।

यदेव किं च प्रतिजग्रह्राहं

अग्निप्रद्वोता सुहृते कृणोतु

यन्मा हुतमहुतमाज्जगामं

दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।

यस्मान्मे मन उदिव रारजीति

अग्निप्रद्वोता सुहृते कृणोतु

यदन्नमदभ्यन्तेन देवा

दास्यन्नदास्यस्युत संगुणामिं ।

वैश्वानरस्य महतो महिस्रा

शिघं महं मधुमदस्त्वधम्

॥ ४ ॥ (अथर्व० ७।५८।१-२)

कौहणयि । इन्द्रावरुणौ (अन्नम्) । १ जगती, २ त्रिष्टुप् ।

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं

सोमं पियतं मर्चं धृतप्रती ।

युयो रथो अघ्वरो देववीतये

प्रति स्वर्मरमुप यातु पीतये

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य घृष्णाः

सोमस्य घृष्णा घृषेधाम् ।

इदं घामग्न्यः परिपिक्तमासद्य

अग्निन् यद्विपिं मादयेधाम्

॥ ५ ॥ (अथर्व० ६।१४।१-३)

विशामित्रः । वायुः (अन्नम्) । अतुष्टुप् ।

उत्प्रेयस्य यद्वर्षेण स्येन महत्या यय ।

मृणीदि विदवा पात्राणि

मा र्यां विद्यादानिर्नयेधीन्

आदाणपत्तं पथं देयं यत्रं त्याच्छायदीमामि ।

तदुच्छायस्य पात्राणि तमुद्रं ईष्येपासितः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राशयः ।

पुणन्तो अक्षिताः सन्त्व-सार्ः सन्त्वाक्षिताः ॥३॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० ११।१।१-१६)

[प्रथमः पर्यायः । १-३१]

अथर्वा । ओदनः (भार्गवस्योदनः) ।

१, १४ आसुरी गायत्री, २ त्रिपदा समविषमा गायत्री; ३,

६, १० आसुरी पङ्क्तिः; ४, ८ साम्ब्यनुष्टुप्; ५, १३, १५, २५

साम्ब्युष्णिक्; ७, १९-२२ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ९, १७-१८

आसुर्यनुष्टुप्; ११ भुरिगार्ग्यनुष्टुप्; १२ याजुषी जगती,

१६, २३ आसुरी बृहती; २४ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती;

२६ आसुर्युष्णिक्; २७-२९ साम्नी बृहती (२८-२९

भुरिक्); ३० याजुषी त्रिष्टुप्; ३१ अरराशः

पङ्क्तिरुत याजुषी ।

तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् ॥ १ ॥

द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी

सप्तऋषयः प्राणापानाः ॥ २ ॥

चक्षुर्मुखं कामं उल्लखलम् ॥ ३ ॥

दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही खातोऽपाविनक् ॥ ४ ॥

अश्व्याः कणा गावस्ताण्डुला मशकास्तुर्पाः ॥ ५ ॥

कम्बु फलीकरणाः शरोऽध्रम् ॥ ६ ॥

श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥ ७ ॥

त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ८ ॥

गलः पात्रं स्फमावंसाक्षीये अन्नकये ॥ ९ ॥

आन्त्राणि जत्रयो गुदा वत्राः ॥ १० ॥

इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति

राशयमानस्यौदनस्य घौरपिधानम् ॥ ११ ॥

सीताः पर्शवः सिकता ऊर्ध्वयम् ॥ १२ ॥

श्रुते हस्तापनेजनं कुट्योपसेचनम् ॥ १३ ॥

श्रुचा कुम्भ्यधिदित्तारिजयेन प्रेषिता ॥ १४ ॥

प्रद्वोता परिश्रुतीता साक्षा पर्युढा ॥ १५ ॥

बृहदाययनं रथन्तरं हविः ॥ १६ ॥

श्रुतयैः पुनार आतपाः समिग्धते ॥ १७ ॥

श्रुतं अक्षियलमुग्धं पामोर्भाषि ॥ १८ ॥

ओद्दनेन यद्भवचः सर्वे लोकाः संमाप्याः ॥ १९ ॥
यस्मिन्समुद्रो द्यौर्भूमिर्लव्योऽचरपरं धिताः ॥ २० ॥
यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे पडंशीतयः ॥ २१ ॥
तं त्वोद्दनेस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् २२
स य ओद्दनेस्य महिमानं विधात् ॥ २३ ॥
नाल्य इति द्रुपानानुपसेचन
इति नेदं च किं चेति ॥ २४ ॥
यावद् द्वाताभिर्मनस्येत तन्नार्तिं यदेत् ॥ २५ ॥
ब्रह्मवादिनो ब्रह्मन्ति पराञ्जमोद्दनें
प्राशीः प्रत्यञ्जामिति ॥ २६ ॥
त्वमोद्दनें प्राशीःस्त्वामोद्दनाः इति
पराञ्जं चैनं प्राशीः प्राणास्त्या
द्वास्यन्तीत्येनमाह ॥ २८ ॥
प्रत्यञ्जं चैनं प्राशीरपानास्त्या
द्वास्यन्तीत्येनमाह ॥ २९ ॥
नैवाहमोद्दनें न मामोद्दनेः ॥ ३० ॥
ओद्दने एवोद्दनें प्राशीत् ॥ ३१ ॥

[द्वितीयः पर्यायः । ३२-४९]

मन्त्रोक्ताः । ३२, ३८, ४१ (प्रथमा), ३२-४९ (सप्तमी)
वात्री त्रिष्टुप् ; ३२, ३५, ४२ (द्वितीया), ३२-४९ (तृतीया),
३३-३४, ४४-४८ (पञ्चमी) एकपदाऽऽसुरी गायत्री, ३२,
४१, ४३, ४७ देवी जगती, ३८, ४४, ४६ (द्वि०) ३२, ३५-
४३, ४९ (पञ्चमी) एकपदाऽऽसुर्युत्तुष्टु ; ३२-४९ (षष्ठी)
साम्ययुष्टुप्, ३३-४९ (प्र०) आर्च्युत्तुष्टु । ३७ (प्र०)
घाम्नी पञ्चकिः ; ३३, ३६, ४०, ४७-४८ (द्वि०) आसुरी
जगती, ३४, ३७, ४१, ४३, ४५ (द्वि०) आसुरी पञ्चकिः ; ३४
(चतुर्थी) आसुरी त्रिष्टुप् ; ३५, ४६, ४८ (च०) याजुषी
गायत्री ; ३६-३७-४० (च०) देवी पञ्चकिः ; ३८-३९
(च०) प्राजापत्या गायत्री ; ३९ (द्वि०) आसुर्युत्तुष्टु ; ४२
४५, ४९ (चतुर्थी) देवी त्रिष्टुप् ; ४९ (द्वि०) एकपदा
सुरिक्राम्नी वृहती ।

ततश्चैनमन्येनं शीर्ष्णा प्राशीर्येनं
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
ज्येष्ठतस्तं प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥

तं वा अहं नार्वाञ्जं न पराञ्जं न प्रत्यञ्जम् ॥ ३ ॥
वृहस्पतिना शीर्ष्णा ॥ ४ ॥
तेनेनं प्राशिपं तेनेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एव वा ओद्दनेः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः
सं भवति य एवं वेदं ॥ ७ ॥ ३२
ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
यद्यिरो भविष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्जं न पराञ्जं न प्रत्यञ्जम् ॥ ३ ॥
घावापयिषीभ्यां श्रोत्राभ्याम् ॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एव वा ओद्दनेः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः
सं भवति य एवं वेदं ॥ ७ ॥ ३३
ततश्चैनमन्याभ्यांमक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
अन्यो भविष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्जं न पराञ्जं न प्रत्यञ्जम् ॥ ३ ॥
सुर्याचन्द्रमसाभ्यांमक्षीभ्याम् ॥ ४ ॥
ताभ्यामेनं प्राशिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एव वा ओद्दनेः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः ॥ ६ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः
सं भवति य एवं वेदं ॥ ७ ॥ ३४
ततश्चैनमन्येनं मुखेन प्राशीर्येनं
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
मुखतस्तं प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्जं न पराञ्जं न प्रत्यञ्जम् ॥ ३ ॥
ब्रह्मणा मुखेन ॥ ४ ॥
तेनेनं प्राशिपं तेनेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
एव वा ओद्दनेः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः ॥ ६ ॥

सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः		राजयुद्धमस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥
स भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३५	तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
ततश्चैनमन्यया जिहया प्राशीर्यया		अन्तरिक्षेण व्यचसा	॥ ४ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥	तेनैतं प्राशिपं तेनैनमजीगमम्	॥ ५ ॥
जिह्वा तै ररिष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥	एव वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः	॥ ६ ॥
त वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः	
अग्नेजिह्वया	॥ ४ ॥	सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३९
तयैतं प्राशिपं तयैनमजीगमम्	॥ ५ ॥	ततश्चैनमन्येन पुष्टेन प्राशीयेन	
एव वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः	॥ ६ ॥	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः		विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥
सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३६	तं वा अहं नार्वाञ्चं व पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
ततश्चैनमन्यैर्वन्तैः प्राशीयेञ्चैतं		दिवा पुष्टेन	॥ ४ ॥
पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥	तेनैतं प्राशिपं तेनैनमजीगमम्	॥ ५ ॥
दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह	॥ २ ॥	एव वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः	॥ ६ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः	
ऋतुभिर्दन्तैः	॥ ४ ॥	सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ४०
तैरेतं प्राशिपं तैरेनमजीगमम्	॥ ५ ॥	ततश्चैनमन्येनोरस्ता प्राशीयेन	
एव वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः	॥ ६ ॥	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः		हृष्या न रत्स्यसीत्येनमाह	॥ २ ॥
सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३७	तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीयेञ्चैतं		पृथिव्योरस्ता	॥ ४ ॥
पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥	तेनैतं प्राशिपं तेनैनमजीगमम्	॥ ५ ॥
प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह	॥ २ ॥	एव वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः	॥ ६ ॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः	
सप्तपिभिः प्राणापानैः	॥ ४ ॥	सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ४१
तैरेतं प्राशिपं तैरेनमजीगमम्	॥ ५ ॥	ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीयेन	
एव वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनुः	॥ ६ ॥	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनुः		उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह	॥ २ ॥
सं भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ३८	तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्	॥ ३ ॥
ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीयेन		सत्येनोदरेण	॥ ४ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन्	॥ १ ॥	तेनैतं प्राशिपं तेनैनमजीगमम्	॥ ५ ॥

एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥	ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां
सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सं भवति य एव वेदं ॥ ७ ॥ ४२	बहुचारी भविष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन	तं वा अहं नावाञ्जं न पराञ्जं न प्रत्यञ्जम् ॥ ३ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥	अश्विनोः पादाभ्याम् ॥ ४ ॥
अप्सु मरिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥	ताभ्यामेतं प्रादिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
तं वा अहं नावाञ्जं न पराञ्जं न प्रत्यञ्जम् ॥ ३ ॥	एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥
समुद्रेण वस्तिना ॥ ४ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः
तेनैतं प्रादिपं तेनैतमजीगमम् ॥ ५ ॥	सं भवति य एव वेदं ॥ ७ ॥ ४६
एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥	ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां
सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सं भवति य एव वेदं ॥ ७ ॥ ४३	सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यामुदभ्यां प्राशीर्याभ्यां	तं वा अहं नावाञ्जं न प्रत्यञ्जम् ॥ ३ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥	सवितुः प्रपदाभ्याम् ॥ ४ ॥
ऊरु तै मरिष्यत इत्येनमाह ॥ २ ॥	ताभ्यामेतं प्रादिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
तं वा अहं नावाञ्जं न पराञ्जं न प्रत्यञ्जम् ॥ ३ ॥	एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥
मिन्नावर्षणयोरोरुभ्याम् ॥ ४ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः
ताभ्यामेतं प्रादिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥	सं भवति य एव वेदं ॥ ७ ॥ ४७
एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥	ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां
सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सं भवति य एव वेदः ॥ ७ ॥ ४४	ब्राह्मणं हनिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यामष्टौघञ्यां प्राशीर्याभ्यां	तं वा अहं नावाञ्जं न पराञ्जं न प्रत्यञ्जम् ॥ ३ ॥
चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥	ऋतस्य हस्ताभ्याम् ॥ ४ ॥
आमो भविष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥	ताभ्यामेतं प्रादिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥
तं वा अहं नावाञ्जं न पराञ्जं न प्रत्यञ्जम् ॥ ३ ॥	एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥
त्वष्टुरष्टौघञ्याम् ॥ ४ ॥	सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः
ताभ्यामेतं प्रादिपं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥ ५ ॥	सं भवति य एव वेदं ॥ ७ ॥ ४८
एष वा औदनः सर्वाङ्गः सर्वपदः सर्वतनुः ॥ ६ ॥	चैतं पूर्वं ऋषयः प्राश्नन् ॥ १ ॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपदः सर्वतनुः	अग्निदानोऽनायतनो मरिष्यतीत्येनमाह ॥ २ ॥
सं भवति य एव वेदं ॥ ७ ॥ ४५	तं वा अहं नावाञ्जं न पराञ्जं न प्रत्यञ्जम् ॥ ३ ॥
	न्ये प्रतिश्रायं

तथैनं प्राशिपं तथैनमजीगमम् ॥ ५ ॥	ये नो द्विपन्त्यनु तान् रभन्त्य
एव वा औदनः सर्वोङ्गः सर्वपद्मः सर्वतनुः ॥ ६ ॥	अनागस्तो यजमानस्य धीराः ॥ २ ॥
सर्वोङ्ग एव सर्वपद्मः सर्वतनुः सं भवति य एषं वेदं ॥ ७ ॥ ४९	प्र पदोऽर्थं नेनिग्धि दुर्धरितं यच्चारं शुद्धैः शोफरा क्रमतां प्रजानन् । तीर्त्या तर्मांसि बहुधा विपद्यन् अजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ ३ ॥
[तृतीयः पर्यायः । ५०-५६]	अनुं च्छय इयामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापर्वसिना मामि मंस्थाः । मामि द्रुहः पद्मशः कल्पयैनं तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम् ॥ ४ ॥
मन्त्रोक्ताः । ५० आसुर्यवृष्ट्युः ५१ आसुर्युष्णिक् ५२ त्रिपदा भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप् ५३ आसुरी बृहती ५४ द्विपदा भुरिक् साम्नी बृहती ५५ साम्युष्णिक् ५६ प्राजापत्या बृहती ।	शुचा कुम्भीमध्यसौ श्रयाम्या सिञ्चोत्कमव्यं धेह्येनम् । पर्याधंत्ताग्निनां शमितारः शूतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥ ५ ॥
एतद् वै ब्रह्मस्य विष्टपं यदौदनः ॥ ५० ॥	उत् फ्रामातः परि चेदतप्तः तप्ताश्चरोरधि नाकं तृतीयम् । अग्नेरग्निरधि सं बभूविथ ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम् ॥ ६ ॥
ब्रह्मलोको भवति ब्रह्मस्य विष्टपि श्रयते य एवं वेदं ॥ ५१ ॥	अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुः अजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः । अजस्तमोस्यर्षं हन्ति दूरं अस्मिद्धोके श्रद्धानेन वृत्तः ॥ ७ ॥
एतस्माद् वा औदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान् निरन्मिमीत प्रजापतिः ॥ ५२ ॥	पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतां आक्रंस्यमान्स्त्रीणि ज्योतीषि । इजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि वि श्रयैस्व ॥ ८ ॥
तेषां ब्रह्मनाय युद्धमस्त्वजत ॥ ५३ ॥	अजा रोह सुकृतां यत्र लोकः शरभो न च्छोऽति दुर्गण्यैषः । पञ्चौदनो ब्रह्मणं दीयमानः स दातारं तृप्त्या तर्पयति ॥ ९ ॥
स य एवं विदुषं उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणाद्धि ५४ न च प्राणं रुणाद्धि सर्वज्यानि जीयते ॥ ५५ ॥	
न च सर्वज्यानि जीयते पुरैर्न जुरसः प्राणो जहाति ॥ ५६ ॥	
॥ ७ ॥ (अथर्व ० ९।५।१-३८)	
भृगुः । पशौदनोऽजः मन्त्रोक्ताः । त्रिष्टुप् । ३ चतुष्पदा पुरोऽ तिशकरी जगती ४, १४ जगती, १४, १७, २७-३० अतुष्टुप् (३० ककुम्भती) । १६ त्रिपदाऽतुष्टुप् १८, ३७ त्रिपदा विराद् गायत्री २३ गुर उष्णिक् २४ पद्यपदाऽतुष्टुष्णिक्पद्य- मौपरिष्ठाद्विराद् जगती २०-२२, २६ पञ्चपदाऽतुष्टुष्णिक्पद्य- मौपरिष्ठादाहंता भुरिक् ३१ धतपदाऽष्टिः ३२-३५ दशपदा प्रकृतिः ३६ दशपदाऽऽकृतिः ३८ एकादशाना द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् ।	
आ नयेतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन् । तीर्त्या तर्मांसि बहुधा मृहान्ति अजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ १ ॥	
इन्द्राय भ्रानं परि त्या नयामि अस्मिन् यत्ते यजमानाय सुरिम् ।	

अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे
 नाकस्य पृष्ठे दद्विवांसं दधाति ।
 पञ्चाँदनो ब्रह्मणे वीर्यमानो
 विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येकां
 ॥ १० ॥ एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं
 पञ्चाँदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।
 अजस्तमांस्यपं हन्ति दूरं
 अस्मिल्लोके अर्धधानेन दत्तः
 ॥ ११ ॥ इंजानानां सुकृतां लोकमीप्सन्
 पञ्चाँदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।
 स व्याप्तिमभि लोकं जयैतं
 शिषोऽस्यभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु
 ॥ १२ ॥ अजो ह्यग्नेरजनिपु शोकाद्
 विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चिव ।
 इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वर्षदकृतं
 तद् देवा ऋतुशः कल्पयन्तु
 ॥ १३ ॥ अमोतं वासां दद्याद्विरण्यमपि दक्षिणाम् ।
 तथा लोकान्सर्वाभोति
 ये दिव्या ये च पार्थिवाः
 ॥ १४ ॥ एतास्त्वाजोपं यन्तु धाराः
 सोम्या देवीयंतपृष्ठा मधुश्रुतः ।
 स्तमान पृथिवीमुत घां
 नाकस्य पृष्ठेऽधि सतरदमौ
 ॥ १५ ॥ अजोऽस्यजं स्वर्गोऽसि त्वया
 लोकमक्षिरसः प्राजान् ।
 तं लोकं पुण्यं प्र ह्येपम्
 ॥ १६ ॥ येनां सइच्छं वहंसि येनाग्ने सर्ववेदमम् ।
 तेनेमं यद्धं नो वह् स्वर्देवेषु गन्तवे
 ॥ १७ ॥ अजः पृकः स्वर्गे लोके दधाति
 पञ्चाँदनो निश्कृतिं धार्धमानः ।
 तेन लोकान्सर्वयतो जयेम
 ॥ १८ ॥

यं ब्राह्मणे निदधे यं च विद्म
 या विप्रपं ओदनानामजस्य ।
 सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके
 ॥ १० ॥ जानीतारः संगमने पथीनाम् ॥ ११ ॥
 अजो वा इदमग्ने व्युक्रमत
 तस्योर इपरममवद् द्यौः पृष्ठम् ।
 अन्तारिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे संमुद्रौ कुक्षी ॥ २० ॥
 सत्यं चतं च चक्षुरी विश्वं
 सत्यं ध्रुवा माणो विराद् शिरः ।
 एष वा अर्परिमितो यद्यो यद्दजः पञ्चाँदनः ॥ २१ ॥
 अर्परिमितमेव यद्दमात्परिमितं लोकमव रन्धे ।
 ॥ १२ ॥ योऽजं पञ्चाँदनं दक्षिणाज्योतिपं ददाति ॥ २२ ॥
 नास्यास्थीनि भिन्व्यान्न मज्जो निर्धयेत् ।
 सर्वमेतं समादायेदमिदं प्र वेशयेत् ॥ २३ ॥
 इदमिदमेवास्यं रूपं भवति तेनेन सं गमयति ।
 इपं मह ऊर्जमस्मै दुहे
 योऽजं पञ्चाँदनं दक्षिणाज्योतिपं ददाति ॥ २४ ॥
 पञ्चं रुक्मा पञ्च नवानि ब्रह्मा
 पञ्चास्मै धेनुवः कामदुघा भवन्ति ।
 योऽजं पञ्चाँदनं दक्षिणाज्योतिपं ददाति ॥ २५ ॥
 पञ्चं रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति
 वर्म वासांसि तुन्वे भवन्ति ।
 स्वर्गं लोकमश्नुते
 योऽजं पञ्चाँदनं दक्षिणाज्योतिपं ददाति ॥ २६ ॥
 या पूर्वं पातं विच्वाथान्यं विन्दतेऽपरम् ।
 पञ्चाँदनं च तायजं ददातो न वि योपतः २७
 समानलोको भवति पुनर्मुवापरः पातः ।
 योऽजं पञ्चाँदनं दक्षिणाज्योतिपं ददाति २८
 अनुपूर्ववत्सां धेनुमनुद्गर्हमुप्यर्हणम् ।
 वासां द्विरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् २९
 ॥ १८ ॥

आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् ।
 ज्ञायां जनैर्नीं मातरं ये प्रियास्तानुपं ह्ये ॥ ३० ॥
 यो वै नैदाघं नामर्तुं वेद ।
 एष वै नैदाघो नामर्तुर्यद्वजः पञ्चौदनः ।
 निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
 धियं दहति भवंत्यात्मना ।
 योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३१ ॥
 यो वै कुर्वन्तं नामर्तुं वेद ।
 कुर्वन्तीकुर्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य धियमा दत्ते ।
 एष वै कुर्वन्नामर्तुर्यद्वजः पञ्चौदनः ।
 निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
 धियं दहति भवंत्यात्मना ।
 योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३२ ॥
 यो वै संयन्तं नामर्तुं वेद ।
 संयन्तीसंयतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य धियमा दत्ते ।
 एष वै संयन्नामर्तुर्यद्वजः पञ्चौदनः ।
 निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
 धियं दहति भवंत्यात्मना ।
 योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३३ ॥
 यो वै पिन्वन्तं नामर्तुं वेद ।
 पिन्वन्तीपिन्वतीमेवाप्रियस्य
 भ्रातृव्यस्य धियमा दत्ते ।
 एष वै पिन्वन्नामर्तुर्यद्वजः पञ्चौदनः ।
 निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
 धियं दहति भवंत्यात्मना ।
 योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३४ ॥
 यो वा उघन्तं नामर्तुं वेद ।
 उघन्तीमुघतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य धियमा दत्ते ।
 एष वा उघन्नामर्तुर्यद्वजः पञ्चौदनः ।
 निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य

धियं दहति भवंत्यात्मना ।
 योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३५ ॥
 यो वा अभिभुवं नामर्तुं वेद ।
 अभिभवन्तीमभिमयन्तीमेवाप्रियस्य
 भ्रातृव्यस्य धियमा दत्ते ।
 एष वा अभिभूनामर्तुर्यद्वजः पञ्चौदनः ।
 निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य
 धियं दहति भवंत्यात्मना ।
 योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३६ ॥
 अजं च पचन्तं पञ्चं चौदनान् ।
 सर्वा दिव्याः संमनसः सन्धीचीः
 सान्तर्देशाः प्रति गृह्णन्तु त एतम् ॥ ३७ ॥
 तास्तं रक्षन्तु तद्य तुभ्यमेतं
 ताम्य आज्यं हविरेदं जुहोमि ॥ ३८ ॥
 ॥ ८ ॥ (अथर्ववेद ४।३४।१-८)
 अथर्वी । मन्त्रोदनम् । त्रिष्टुप्, ४ उक्तमा भुरिक्, ५ षष्-
 षाना सप्तपदा कृतिः, ६ पञ्चपदातिशकरी, ७ भुरिक्
 शकरी, ८ जगती ।
 ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं
 धामदेव्यमुदरमौदनस्य
 छन्दांसि पृश्नौ मुखमस्य सत्यं
 विष्टुरी जातस्तपसोऽग्नि यशः ॥ १ ॥
 अनस्थाः पुताः पर्वनेन शुद्धाः
 शुच्यः शुचिमापि यन्ति लोकम् ।
 नैपां शिश्रं प्र दहति जातवेदाः
 स्वर्गे लोके षड् खैर्णमेवाम् ॥ २ ॥
 विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति
 नैनानर्षतिः सचते कदा खन ।
 आस्तं यम उपं याति वेद्यान्
 सं गन्धर्वमंदते सोम्येभिः ॥ ३ ॥
 (५०१८)

इयं मही प्रतिं गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्योना । अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् पुतौ प्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि निर्मिथ्यंशून् यजमानाय साधु । अवचन्ती नि जह्नि य इमां पृतन्यवं ऊर्ध्वं प्रजामुद्गरन्त्युदूह गृह्णाण प्रावाणौ सुकृतौ वीर हस्त आ तै देवा यक्षिया यक्षमगुः । त्रयो वरा यतमास्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह रांधयामि इयं तै धीतिरिदमुं ते जनित्रं गृह्णातु त्वामादेतिः शरपुत्रा । परां पुनीहि य इमां पृतन्यवो अस्यै रयि सर्ववीरं नि यच्छ उपभ्यसे दुष्ये सौदता युयं यि विच्यध्वं यक्षियासुस्तुपैः । धिया समानानति सर्वान्त्स्याम अधम्यदं द्विपतस्पादयामि परंदि नारि पुनरेहिं द्विप्रं अपां त्यां गोष्टोऽर्धयक्षद् भराय । नासां गृह्णीताद् यतमा यक्षिया असेन विमाज्यं धीरीतरा जहीतात् पमा अंगुयोपितुः शुर्गमाता उनिष्ट नारि सुयसं रमस्य । सुपत्नी पायां प्रजयां प्रजापत्या त्वांग्नु पृशः प्रतिं कुम्भे गृभाय उजो भागो निदित्रो यः पुत्रा वः अपिप्रशिषाय आ मरेताः । अपं युञ्जे मातृपितृपुत्रिणम् अज्ञाविदुः पद्माविद् वीरुविद् यो अस्तु	॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥	अग्ने चरुयक्षियस्त्वाध्वरुक्षत् शुचिस्तपिष्टस्तपसा तपेनम् । आपया देवा अभिसंगत्यं भागं इमं तपिष्टा ऋतुभिस्तपन्तु शुद्धाः पुता योपितो यक्षिया इमा आपश्चरुमवं सर्पन्तु शुभाः । अदुः प्रजां बहुलान् पृशन् नः प्रकौदनस्यं सुकृतमितु लोकम् ब्रह्मणा शुद्धा उत पुता घृतेन सोमस्यांशर्वस्तण्डुला यक्षिया इमे । अपः प्र विशत प्रतिं गृह्णातु वध्वरुः इमं पक्त्वा सुकृतमितु लोकम् उरुः प्रथस्व महता मंहिन्ना सहस्रपृष्टः सुकृतस्यं लोके । पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्तं अस्मि सहस्रपृष्टः शतधारो अक्षितो ब्रह्मोदनो देवयानः स्वर्गः । अमुंस्तु आ दधामि प्रजयां रेपयैतान् यलिहारायं मृडतामहामेव उदेहि योर्दं प्रजयां वर्धयनां नुदस्य रक्षेः प्रतरं धेक्षेनाम् । धिया समानानति सर्वान्त्स्याम अधम्यदं द्विपतस्पादयामि अभ्यार्पतस्व पशुभिः सदेनां प्रत्यदेनां देवताभिः सहैधि । मा त्यां प्रापच्छुपथो माभिर्जाराः स्ये क्षेत्रे अनमीया यि राज अतरेन तृष्टा मर्गता द्वितीया प्रहोदनस्य यिद्विता येद्विस्ते । अंगुर्द्रीं दाशामुपं धेदि नारि तर्थादुनं मादय देवानाम्	॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥
--	--	--	--

अदितेर्हस्तां सुचमेतां द्वितीयां
सप्तश्रुपयो मृतकृता यामरुण्यन् ।

सा गात्राणि विदुष्यादन्नस्य
दर्विवैद्यामर्धेन चिनोतु

॥ २४ ॥

शूतं त्यां हृद्यमुषं सीदन्तु देवा
निःस्रप्याग्नेः पुनरेनान् प्र सीद ।

सोमंन पूतो जृष्टै सीद

ब्रह्मणामार्षयास्ते मा रिपन् प्राशितारः

॥ २५ ॥

सोमं राजन्त्संज्ञानमा वंपेभ्यः

सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।

श्रुर्षीनापेयास्तपसोऽधि जातान्

ब्रह्मौदने सुहर्वा जोष्टवीमि

॥ २६ ॥

शुद्धाः पूता योपितो यद्विया इमा

ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।

यत्काम इदमभिषिञ्चामि घोऽहं

इन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिवं मे

इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं

पुंक्षेत्रात् कामदुर्घा म एषा ।

इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु

कृण्वे पन्यां पितृषु यः स्वर्गः

अग्नौ तुषाना यं ज्ञातवेदसि

परः कृषूकां अप मृड्ढि दुरम् ।

एतं शूक्ष्म गृह्णराजस्य भागं

अथो विद्म निश्रुतेर्मागधेयम्

धाम्यतः पर्वतो विद्धि सुन्वतः

पन्यां स्वर्गमधि रोहयैनम् ।

येन रोहात् परंमापद्य यद् धर्यः

उत्तमं नाकं परमं व्योम

यधेरप्ययो मुरामेतद् वि मृड्ढि

भाज्याय लोकं रुणुदि प्रविहान् ।

॥ २७ ॥

॥ २८ ॥

॥ २९ ॥

॥ ३० ॥

धृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि

कृण्वे पन्यां पितृषु यः स्वर्गः

॥ ३१ ॥

यध्रे रक्षः समद्रमा वंपेभ्यो

अब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।

पुरीषिणः प्रयमानाः पुरस्ताद्

आपेयास्ते मा रिपन् प्राशितारः

॥ ३२ ॥

आपेयेषु नि दध बोदन त्या

नानापेयाणामप्यस्त्वयं ।

अग्निमे गोता मरुतश्च सधे

विध्वे देवा अमि रक्षन्तु पद्भ्यम्

॥ ३३ ॥

यधं दुहानं सधमित् प्रपिन्

पुरांस धेनुं सदनं रयीणाम् ।

प्रजामृतत्वमुत वीर्धमार्यु

रायश्च पोपैरुप त्या सदेम

॥ ३४ ॥

वृषमोऽसि स्वर्गं श्रुर्षीनापेयान् गच्छ ।

सुरुतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ॥ ३५ ॥

सुमार्चिनुष्वानुसंप्रयाह्यग्रे

पृथः कल्पय देवयानान् ।

एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यधं

नाके तिष्ठन्तमधि सुत्तरदमौ

॥ ३६ ॥

येन देवा ज्योतिषा घामुदायन्

ब्रह्मौदने पस्त्वा सुकृतस्य लोकम् ।

तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं

स्वरारोहन्तो अमि नाकमुत्तमम्

॥ ३७ ॥

॥ १० ॥ (अथर्वे ६।११६।१-३)

आटिकायन । विरहान् (मधुपदबन्धम्) । अगनी, २ त्रिदृग् ।

यद् यामं व्यक्रुर्निग्नन्तो अग्ने

कार्षीयणा अन्नधिदो न विद्यया ।

येयस्यते राजनि तज्जुहोमि

अपं यमियं मधुमदस्तु नोऽन्नम्

॥ १ ॥

(५०३१)

वैद्यस्वतः कृणवद् भागधेयं
मधुभागो मधुना सं सृजाति ।

मातुर्यदेन इपितं न आगन्
यद् वा पितापराद्धो जिहीडे
यदीदं मातुर्योदे वा पितुर्नः
परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् ।
यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते
तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मृत्युः

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्वं ११।३।१-६०)

यमः । स्वर्गः, ओदनः, अग्निः, (खगौदनः) । त्रिष्टुप्, १,
४२-४३, ४७ सुरिक, ८, १२, २१-२२, २४ जगती; १३, १७
स्वराकार्या, पङ्क्तिः; ३४ विराड्गर्भाः; ३९ अणुष्टुप्गर्भाः; ४४
पराबृहती; ५५-५० श्यबसाना सप्तपदा शबकुमल्यतिजागतशा-
करातिशाक्वरधाल्यर्भातिपतिः (५५, ५७-६० कृतिः, ५६
विराट् कृतिः) ।

पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मैहि
तत्र ह्यस्व यतमा प्रिया तै ।
यावन्तावत्रे प्रथमं समेयथुः
तद् वां वयो यमराज्ये समानम्
तावद् वां चक्षुस्ताति धीर्याऽणि
तावद् तेजस्ततिधा धार्जिनाभि ।
अग्निः शरीरं सचते यदैधो
अर्धा पृकान्मिथुना सं भवाथः
सर्मासिहोके समु देवयाने
सं सां समेतं यमराज्येषु ।
पुत्रो पृथिवैरुप तद्भवयेथां
यद्द रेतो अधि वां संयुम्भ
आपस्पुत्रासो अग्नि सं विशभ्यं
इमं ज्ञीयं जीवधन्याः समेत्यं ।
तासां भजभ्यममृतं यमाहुः
यमोदनं पचति थां जनित्री

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

यं वां पिता पचति यं च माता
रिप्राभिरुफत्ये शर्मलाद्य वाचः ।

स ओदनः शतधारः स्वर्ग
उभे व्यापि नर्मसी महित्वा
उभे नर्मसी उभयार्थं लोकान्
ये यज्यन्तामभिक्षिताः स्वर्गाः ।
तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्ने
तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम्

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

प्राचीं प्राचीं प्रदिशामा रभेथां
एतं लोकं श्रद्धांनाः सचन्ते ।
यद् वां पक्कं परिविष्टमग्नौ
तस्य गुप्तये दंपती सं श्रयेथाम्
दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ
पुर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत् ।
तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः
पृकाय शर्म बहुलं नि यच्छात्
प्रतीचीं दिशामियमिद् वरं
यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च ।
तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथां
अर्धा पृकान्मिथुना सं भवाथः
उत्तरं राष्ट्रं प्रजयौत्तरावद्
दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम् ।
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव
विश्वैर्विश्वान्नेः सह सं भवेम
ध्रुवेयं विराणमो अस्त्यस्यै
शिवा पुत्रेभ्य उत महामस्तु ।
सा नो देव्यदिते विश्ववात्
इयं इव गोपा अग्नि रक्ष पक्कम्
वितेयं पुत्रानभि सं स्यजस्य नः
शिवा नो वाता इव वान्तु भूमौ ।
यमोदनं पचतो देवते इह
तं नस्तप उत सत्यं च धेत्

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

(५०८५)

यद्यत् कृष्णः शकुन पद्म गृत्वा
त्सरन् विपंस्तं विलं आसृसाद ।
यद् वा दास्याद्द्रवहेस्ता समृक्ता
उत्सृखलं मुसलं शुभ्रमतापः
अयं प्रावां पृथुयुध्नो धयोधाः
पुतः पवित्रैरपं हन्तु रक्षः ।
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ
मा दंपती पोत्रमुघं नि गाताम्
वनस्पतिः सह देवैर्न आगन्
रक्षः पिशाचां अपघारमानः ।
स उच्छ्रयाते प्र यदाति वाचं
तेन लोकां अभि सर्वान् जयेम
सन्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन्
य पर्यां ज्योतिष्मां उत यक्षकरी ।
भ्रयंभिराद् देवतास्तान्संचन्ते
स नः स्वर्गमभि नैप लोकम्
स्वर्गं लोकमभि नो नयासि
सं जायया सह पुत्रैः स्याम ।
गृहामि हस्तमनु मैत्र्य
मा नस्तापिभिर्भृतिमो अरातिः
प्रादिं पाप्मानमति तां अयाम्
तमो व्यस्य प्र यदासि यन्तु ।
घानस्वत्य उद्यतो मा जिहिंसीः
मा तण्डुले वि शरीदैवयन्तम्
विभव्यंचा घृतपृष्ठो भविष्यन्
सयोनिलोकमुपं याष्टोतम् ।
पर्यवृद्धमुपं यच्छ शूर्पं
तुयं पलाघानप तद् धिनक्तु
प्रयो लोकाः संमिता प्राहणेन
पीरेयासी पृथिव्यंन्तारिक्षम् ।

अंशून् वृषीत्वान्वारंभेथां
आ प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥ २० ॥
पृथग् रूपाणि बहुधा पशुनां
॥ २३ ॥ परकरूपो भवसि सं समृद्धया ।
एतां त्वचं लोहिर्निं तां नुदस्य
प्रावां शुभ्रमाति मलग इव वज्रा ॥ २१ ॥
पृथिवीं त्वां पृथिव्यामा वेशयामि
॥ २४ ॥ तनुः समानी विहृता त एवा ।
यद्यद् घुत्तं लिखितमर्पणेन
तेन मा सुलोम्रेहणापि तद् वषामि ॥ २२ ॥
जनित्रीव प्रति हयासि स्रुतुं
॥ २५ ॥ सं त्वां वषामि पृथिवीं पृथिव्या ।
उवा कुम्भी वेषां मा व्यपिष्टा
यथापृथैराज्येनातिपका ॥ २३ ॥
अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्ताद्
॥ २६ ॥ इन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्यान् ।
वरुणस्त्वा दंहाङ्गणे प्रतीच्या
उत्तरात् त्वा सोमः सं ददाते ॥ २४ ॥
पुताः पवित्रैः पयन्ते अभ्राद्
॥ २७ ॥ दिव्यं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।
ता जीविला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः
पात्र आसिभताः पर्यग्निरिन्धाम् ॥ २५ ॥
आ यन्ति त्रियः पृथिवीं संचन्ते
भूम्याः सचन्ते अप्यन्तारिक्षम् ।
॥ २८ ॥ शुद्धाः सुतीस्ता उ शुभ्रमन्त एव
ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु ॥ २६ ॥
उतेयं प्रम्वीएन संमितास
॥ २९ ॥ उत शुक्राः शुचंयश्चामृतांसः ।
ता अदिनं दंपतिभ्यां प्रदिष्टा
मापः शिशनीः पचता मुनायाः ॥ २७ ॥

संख्याता स्तोकाः पृथिवीं संचन्ते
 प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः ।
 असंख्याता ओष्यमानाः सुवर्णाः
 सर्वे व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ॥ २८ ॥
 उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तृप्ताः
 फेनमस्यान्ति बहुलांश्च विन्दून् ।
 योषेव हृष्ट्वा पतिमृत्विषयाय
 एतैस्तण्डुलैर्मवता समापः ॥ २९ ॥
 उत्थापय सीदतो वृध्न पनान्
 अङ्गिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम् ।
 अमांसि पात्रैरुदकं यदेतत्
 मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥ ३० ॥
 प्र यच्छ पशुं त्वरया ह्यौषं
 अर्हिसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
 यासां सोमः परि राज्यं ध्रुव
 अमन्युता नो धीरुर्धो भवन्तु ॥ ३१ ॥
 नयं बर्हिरोदनाय स्तृणीत
 मियं हृदब्धधृपो वल्वस्तु ।
 तस्मिन् देवाः सह द्वैवीर्विशन्तु
 इमं प्राश्रन्त्युत्भिर्निपद्यं ॥ ३२ ॥
 पनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिः
 अग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः ।
 त्वष्ट्रेष रूपं सुष्टं स्वधित्या
 पना एदाः परि पात्रे ददधाम् ॥ ३३ ॥
 एषां शरत्सु निधिषा अमीच्छात्
 स्युः पन्वेनान्युश्नयाते ।
 उपेनं जीवान् पितरंश्च पुत्रा
 एतं स्युं गमयान्तमग्नेः ॥ ३४ ॥
 धृतां प्रियस्य धरुणं पृथिव्या
 धत्तुं एषा देवताश्चाययन्तु ।

तं त्वा दंपती जीवन्ती जीवपुत्रौ
 उद् वासयातः पर्यश्रिधानात् ॥ ३५ ॥
 सर्वान्त्सुमार्गा अभिजित्यं लोकान्
 यावन्तः कामाः समतीतुपस्तान् ।
 धि गार्हियामायवनेन च दधिः
 एकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥ ३६ ॥
 उपं स्तृणीहि प्रथयं पुरस्ताद्
 घृतेन पात्रमभि धारयैतत् ।
 वाश्रेवोन्ना तरुणं स्तनस्युं
 इमं देवासो अभिहिङ्कृणोत ॥ ३७ ॥
 उपास्तरिरेकरो लोकमेतं
 उरुः प्रथतामसंमः स्वर्गः ।
 तस्मिच्छ्रयाते महिषः सुपर्णो
 देवाः पनं देवतोभ्यः प्र यच्छान् ॥ ३८ ॥
 यद्यज्जाया पवति त्वत् परःपरः
 पतिर्वा जाये त्वत् तिरः ।
 सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु
 संपादयन्तौ सह लोकमेकम् ॥ ३९ ॥
 यावन्तो अस्याः पृथिवीं संचन्ते
 अस्तु पुत्राः परि ये सैवभूयुः ।
 सर्वास्ता उप पात्रे ह्ययेथां
 नाभिं जानानाः शिदावः समारान् ॥ ४० ॥
 वसोर्यो धारा मधुना प्रपीना
 घृतेन मिथा अमृतस्य नामयः ।
 सर्वास्ता अयं रुन्धे स्वर्गः
 एषां शरत्सु निधिषा अमीच्छात् ॥ ४१ ॥
 निधिं निधिषा अध्येनमिच्छाद्
 अनीश्वरा अभितः सन्तु येकुन्धे ।
 अस्मानिर्दत्तो निर्हितः स्वर्गः
 त्रिभिः काण्डेस्त्रीन्म्युर्गानं गदात् ॥ ४२ ॥

अग्नी रक्षन्लपतु यद् विद्वेधं
क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।

नुदामं पनमर्षं रुष्मो अस्वद्
आदित्या पनमर्द्धिरसः सचन्ताम्

आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं
घृतेन मिश्रे प्रतिं वेदयामि ।

शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिद्रत्य
एतं स्वर्गं सुकृतावपीतम्

इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य
यसाहोकात् परमेष्ठी समर्ष ।

आ सिञ्च सपिंशुतवत् समृद्धिं
एष मागो अङ्गिरसो नो अन्नं

सत्यायं च तपसे देवताभ्यो
निधिं शैवाधिं परिं दन्न एतम् ।

मा नो घृतेऽयं गान्मा समिन्ध्यां
मा स्मान्यस्मा उत सृजता पुरा मत्

अहं पंचाम्यहं दंदाभि
ममेदु कर्मन् करणेऽधिं जाया ।

कौमारो लोको अजनिष्ट पुशोऽ
धन्वारभेभ्यो ययं उत्तरावत्

न किन्त्यमन्नं नाशारो अस्ति
न यन्मिथ्रेः समर्ममानं प्रति ।

अनूनं पात्रं निहितं न एतत्
एतारं पुष्यः पुनरा विंशति

मियं मियाणां कृणवाम्
तमस्ते संतु यतमे द्विपन्ति ।

धेनुर्नृण्ड्यान् घषोषय आयद्
एष वीर्येयुष्यं मय्यं नुदन्तु

ममप्रयो विदुरन्ध्यां धन्यं
य भोपधीः मन्ति गध्म सिन्धुम् ।

यावन्तो देवा दिव्याऽतपन्ति
हिरण्यं ज्योतिः पचतो वष्य

एषा त्वचां पुरुषे सं वभूव
अनग्नाः सर्वे पदावो ये वन्ये ।

अग्नेणात्मानं परिं धापयाथो
अमोतं वासो मुर्धमोदनस्यं

यदक्षेषु वदा यत् समित्यां
यद् वा वदा अनृतं वित्क्राम्या ।

समानं तन्तुमभि संवसानौ
तस्मिन्सर्वं शर्मलं सादयाथः

वपे वनुष्यापिं गच्छ देवान्
त्वचो धुमं पर्युत् पातयामि ।

धिभ्वर्चया घृतपृष्ठो भविष्यन्
सयोनिलोकमुप याहोतम्

तन्ध्यां स्वर्गो यद्दुषा वि चिरे
यथा विद् आत्मन्न्यवर्णाम् ।

अपजित् कृष्णां रुशतीं पुनानो
या लोहिनीं तां तं अग्नी जुहोमि

प्राच्यं त्या द्विदोऽभयेऽधिपतये
असितार्यं रत्निप्र आदित्यायेषुमने ।

एतं परिं ददस्त्वं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
द्विष्टं नो अन्नं जुरसे नि नैपज्जरा मन्यये

परिं नो ददात्वर्थं पुकेनं मद् मं मयेम ॥ ५५ ॥

दक्षिणायै त्वा द्विदा इन्द्रायाधिपतये
तिरधिगजये रत्निप्र यमायेषुमने ।

एतं परिं ददस्त्वं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
द्विष्टं नो अन्नं जुरसे नि नैपज्जरा मन्यये

परिं नो ददात्वर्थं पुकेनं मद् मं मयेम ॥ ५६ ॥
(५१०३)

प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये
पृदाकथे रक्षित्रेऽघ्नायेर्षुमते ।

एतं परिं दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।

दिष्टं नो अन्नं जूरसे नि नैपञ्जरा मृत्यये
परिं णो ददात्वर्थं पकेन सह सं भवेम ॥ ५७ ॥

उदीच्यै त्वा दिशे सोम्रायाधिपतये
स्वजाय रक्षित्रेऽशान्या इषुमत्यै ।

एतं परिं दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।

दिष्टं नो अन्नं जूरसे नि नैपञ्जरा मृत्यये
परिं णो ददात्वर्थं पकेन सह सं भवेम ॥ ५८ ॥

ध्रुवार्यै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये
कृत्माप्रीचाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः ।

एतं परिं दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।

दिष्टं नो अन्नं जूरसे नि नैपञ्जरा मृत्यये
परिं णो ददात्वर्थं पकेन सह सं भवेम ॥ ५९ ॥

ऊर्ध्वार्यै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये
श्वित्रार्य रक्षित्रे चर्पायेर्षुमते ।

एतं परिं दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।

दिष्टं नो अन्नं जूरसे नि नैपञ्जरा मृत्यये
परिं णो ददात्वर्थं पकेन सह सं भवेम ॥ ६० ॥

(५१३३)





गौः ।

॥ १ ॥ (अ० २।१०।१-८)

मरद्वाजो बार्हस्पत्यः । गावः, २, ८ इन्द्रो गावो वा । त्रिष्टुप्,
२-४ ऋगती, ८ अनुष्टुप् ।

आ गावो अगमद्भुत भद्रमकन्
सीर्दन्तु गोष्ठे रण्यन्त्वस्मे ।
प्रजार्वतीः पुरुरूपा इह स्युः
इन्द्राय पूर्वारूपसो दुहानाः
इन्द्रो यज्वने पृणते च शिश्रति
उपेर्ददाति न स्वं सुपायति ।
भूयोभूयो रथिमिर्दस्य वर्धयन्
धर्मिन्ने खिल्ये नि र्दधाति देव्युमु
न ता नशन्ति न र्दमाति तस्करो
नासामामित्रो व्यथिषा र्दधर्षति ।
देवोश्च यामिर्यजते ददाति च
ज्योगित् तामिः सचते गोर्षतिः सह
न ता अर्वा रेणुककाटो अश्रुते
न सस्वतप्रमुपं यन्ति ता धमि ।
उरुगायमर्मयं तस्य ता अनु
गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान्
गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनासु इन्द्र
इच्छामीद्भुवा मर्नसा चिदिन्द्रम्
युयं गावो मेदयथा कृशं चित्
अश्रिरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो
बृहद्वो वयं उच्यते समासु
प्रजार्वतीः सुयवसं रिशन्तीः
शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा र्वः स्तेन ईशतु माघशंसुः
परिं वो हृती रुद्रस्यं वृज्याः
उपेर्दमुपपचन मासु गोवृषं पृच्यताम् ।
उपं ऋपमस्य रेत स्युपेन्द्रं तव दीर्यं
माता रुद्राणां दुहिता वर्सतां
स्वसांऽऽवित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र जु योचं चिकितुषे जनाय
मा गामनां गामर्दिति धधिष्ट

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥ (अ० ८।१०।१।१५-१६)
जमदग्निर्गवः । त्रिष्टुप् ।

॥ १५ ॥
(५१४९)

युचोयिदं चार्चमुदीरयन्तीं
विश्वामिथीं निरुपतिष्टमानाम् ।
वेधीं वेयेभ्यः पर्ययुषीं मां
आ मांऽपृक्तु मत्स्यो दधचेताः

॥ ३ ॥ (भा० १०।१६९।१-४)

तामरः काक्षीवताः । शिष्टम् ।

मयोभूर्वातो अभि पातुस्त्रा
ऊर्जीस्वतीरोपधीरा रिशन्ताम् ।
पीवस्वतीर्जीवधेन्याः पियन्तु
भवसायं पद्धते रुद्र मृळ
याः सरूपा विरूपा एकरूपा

॥ १६ ॥

॥ १ ॥

यासांमग्निरिष्टया नामानि वेदं ।
या अङ्गिरस्तस्तपसेह चक्रुः
ताभ्यः पर्जन्य महि शमे यच्छ
या देवेषु तन्वमैर्यन्त
यासां सोमो विश्वा रूपाणि वेदं ।
ना अस्मभ्यं पर्यसा पित्रवमानाः
प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे तिरिहि
प्रजापतिर्महामेता रराणो
विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः ।
शिवाः सतीरुषं नो गोष्ठमाकः
तासां वयं प्रजया सं संदेम

॥ ४ ॥ (वा० य० १।४)

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः ।
इन्द्रस्य त्वा भागं सोमेनार्तनचिम्
यिष्णो हृदयं रक्ष

॥ २ ॥

॥ ४ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥ (वा० य० ३।१०-११, १७)

अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय महं स्थ
महो वो भक्षीय
ऊर्जं स्थोर्जं वो भक्षीय रायस्पोषं स्थ
रायस्पोषं वो भक्षीय

॥ २० ॥

नेयन्ती रमेभ्यमग्निन् योनायग्निन्

गोष्ठेऽग्निमांशोकेऽग्निन् शयं ।

इदयं ननु माऽयं गात

॥ २१ ॥

मधुद्विताऽसि विश्वरूप्युजां

मा ऽऽ यिंश गोपत्येनं ।

उप त्वाऽग्ने त्रिधेर्दिपे दोषापस्तद्विया पयम् ।

नमो भरन्तु णमसि

॥ २२ ॥

इदं ण्यदितं पदि काम्या पतं ।

मयि यः कामधरणं भूयात्

॥ २७ ॥

॥ ६ ॥ (वा० य० ४।१९-२१)

अनु त्वा माता मन्यतामनुं पिता

धनु भ्राता सगभ्योऽनु सग सयूथ्यः ।

सा देवि देवमच्छेद्दीन्द्राय सोमं

रुद्रस्त्वा ऽऽ वर्तयतु स्वस्ति सोमसया पुनरोदि २०

घस्यस्यादेतिरस्यादित्याऽसि

रुद्राऽसि चन्द्राऽसि ।

रुद्रस्पतिंश्चा सुप्ते रम्णातु रुद्रो वसुभिरा चके २१

॥ ७ ॥ (वा० य० ७।४७)

रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽस्तुत्वमशीय

प्राणो दात्र पंधि घयो मह्यं प्रतिम्रहीने ॥ ४७ ॥

॥ ८ ॥ (वा० य० ८।३१-४३, ५१ [पूर्वधं.])

आ जिंघ कलशं मह्या त्वा विश्वन्विन्दवः ।

पुनरूर्जा नि वर्तस्व सा नः सहस्रं धुष्व

उरुधारा पर्यस्वती पुनर्मा विशताद्रयिः ॥ ४२ ॥

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे

ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विधुति ।

एता ते अघ्ये नामानि

देवेभ्यो मा सुकृतं वृतात्

॥ ४३ ॥

इह रतिरिह रमध्वमिह

धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा

॥ ५१ ॥

(५१५८)

॥ १ ॥ (अथर्व० ६।७०।१-३)

काङ्कयिनः । अघ्न्या । जगती ।

यथा मांसं यथा सुरा यथाऽक्ष्णा व्रधिवेवने ।
 यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ॥
 एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥ १ ॥
 यथा हृस्ती हस्तिन्याः पदेन पदमुद्युजे ।
 यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ॥
 एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥ २ ॥
 यथा प्रधिर्यथोपधिर्यथा नभ्यं प्रधावधि ।
 यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ॥
 एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥ ३ ॥

॥ १० ॥ (अथर्व० ७।७।१२)

चगिषध्रधः । (अघ्न्या) । ऋष्यसाना मुरिक् पय्यापङ्क्तिः ।

पद्मशा स्थ रमतयः संहिता विश्वनाम्नी ।
 उप मा देवीदेवेभिरेतं ॥
 इमं गोष्ठमिदं सर्वो घृतेनास्मान्त्समुक्षत ॥ २ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ९।७।१-१६)

प्रज्ञा (एकः पर्यायः) । १ आर्चोवृहती; २ आर्च्युष्णिक्; ३, ५
 आर्च्युत्पुङ्गु; ४, १४-१६ साम्ना वृहती; ६, ८ आसुरी
 गायत्री; ७ त्रिपदा पिरोलिकमध्या निचूद्रायत्री; ९, १३ साम्ना
 गायत्री; १० पुर उष्णिक्; ११-१२, १७, २५ साम्नुष्णिक्;
 १८, २२ एकपदाऽऽसुरी जगती; १९ एकपदाऽऽसुरी पंक्तिः;
 २० याजुषी जगती; २१ आसुर्युत्पुङ्गु; २३ एकपदाऽऽसुरी
 वृहती; २४ साम्ना मुरिगृहती; २६ साम्ना त्रिपुङ्गु; (७,
 १८-१९; २२-२३ आभ्योऽनिरिणा द्विपदा) ।

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शूक्ते
 इन्द्रः शिरौ अभिल्लैलाटं यमः रुकाटम् ॥ १ ॥
 सोमो राजा मस्तिष्को यौः
 उंत्तरद्वनुः पृथिन्युधरद्वनुः ॥ २ ॥
 विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेधतीर्मावाः
 कृत्तिका स्क्रन्धा घर्मो वर्हः ॥ ३ ॥
 विश्वं घायुः स्वर्गो लोकः
 कृष्णं विधरणी निवेयः ॥ ४ ॥

इयेनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्वम् ।

वृहस्पतिः ककुद्धृहतीः कीर्कसाः ॥ ५ ॥

देवानां पत्नीः पृथय उपसद्ः पर्शवः ॥ ६ ॥

मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा च

अर्यमा च दोषणी महादेवो बाह ॥ ७ ॥

इन्द्राणी भसद्वायुः पुच्छं पवमानो बालाः ॥ ८ ॥

ब्रह्म च श्वं च श्रोणी बल्मरू ॥ ९ ॥

धाता च सविता चाष्टीवन्तौ जड्या गन्धर्वा

अंस्तरसः कुष्टिका अदितिः शफाः ॥ १० ॥

चेतो हृदयं यरुमेधा वृतं पुंसीतत् ॥ ११ ॥

ध्रुव कुक्षिरां वनिष्टुः पर्वताः प्लाशयः ॥ १२ ॥

कोषो वृकौ मनुयुरण्डो प्रजा शेषः ॥ १३ ॥

नदी सुप्री वर्यस्य पतय स्तना स्तनयित्नुर्धः १४

विदधर्व्यचाश्मोपधयो लोमानि

नक्षत्राणि रूपम् ॥ १५ ॥

देवजना गुदां मनुष्याः आन्त्राण्युग्रा उदरम् ॥ १६ ॥

रसांसि लोहितमितरजना जर्षध्वम् ॥ १७ ॥

अभ्रं पीवो मृज्जा तिघ्नम् ॥ १८ ॥

अभिरासीन उतथितोऽभिवना ॥ १९ ॥

इन्द्रः शङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥ २० ॥

प्रत्यङ् तिष्ठन् घातोद् द तिष्ठन्सविता ॥ २१ ॥

वृणानि प्रातः सोमो राजा ॥ २२ ॥

मित्र ईर्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥ २३ ॥

युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः

प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् ॥ २४ ॥

एतद्वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् ॥ २५ ॥

उपेनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः

पदावीस्तपन्ति य एयं धेदं ॥ २६ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० १०।९।१-२७)

अथर्वा । (शतौदना गौः) । अनुष्टुप् ; १ त्रिष्टुप्, १२
पद्यापदीकः ; २५ द्वयनुष्टुब्गर्भाऽनुष्टुप्, २६ पञ्चपदा
वृहत्सनुष्टुब्गभिर्गर्भा जगती ; २७ पञ्चपदातिजाग-
तानुष्टुब्गर्भा शकरी ।

अथायतामपि नह्या मुखानि
सपत्नैषु वज्रमर्पयैतम् ।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौर्दना
आतृष्यन्ती यजमानस्य गातुः ॥ १ ॥
वेदिष्टे चर्म भवतु वहिल्लोमानि यानि ते ।
पूया त्वां रशनाऽग्रमीद्
प्राचां त्वैपोऽधि नृत्यतु ॥ २ ॥
यालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं मर्द्दुष्ये ।
शुद्धा त्वं यशियां भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥
यः शतौर्दनां पचति कामप्रेण स कल्पते ।
प्रीता ह्युस्यत्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥ ४ ॥
स स्वर्गमा रौहति यन्नादस्त्रिदिवं दिवः ।
अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौर्दनाम् ॥ ५ ॥
स ताल्लोकान्त्सर्मान्नोति
ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।
द्विरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौर्दनाम् ॥ ६ ॥
ये तं देधि शमितारं पुनारो ये च ते जनाः ।
ते स्या सर्वे गोप्यन्ति मेभ्यो भैषीः शतौदने ॥ ७ ॥
यस्यस्तथा दक्षिणत उच्यन्मूर्तस्तथा ।
आदित्याः पृथ्वाग्नेयन्ति
साऽग्निष्टोममर्ति द्रय ॥ ८ ॥
देवाः पितरौ मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
ते स्या सर्वे गोप्यन्ति साऽतिरात्रमर्ति द्रय ॥ ९ ॥
अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान् मय्नो दिशः ।
एषाम्भर मयीनाप्नोति
यो ददाति शतौर्दनाम् ॥ १० ॥

घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति ।
पुनारमच्ये मा हिंसीदिवं प्रेहि शतौदने ॥ ११ ॥
ये देवा दिविपदां अन्तरिक्षसदश्च ये
ये चमे भूम्यामधि ।
तेभ्यस्त्वं शुश्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १२ ॥
यत् ते शिरो यत् ते मुखं यौ कर्णां ये च ते हनु ।
अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १३ ॥
यौ त ओष्ठी ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेऽक्षिणी ।
अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १४ ॥
यत् ते क्लोमा यद्वदयं पुरीतत्सहकण्ठिका ।
अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १५ ॥
यत् ते यकृद्ये मत्स्ने यदान्त्रं याश्च ते गुदाः ।
अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १६ ॥
यस्ते प्लाशियो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यश्च चर्म ते ।
अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १७ ॥
यत् ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यश्च लोहितम् ।
अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १८ ॥
यौ ते वाह्ये ये दोषणी यावसौ या च ते कुक्कुट ।
अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १९ ॥
यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च परीवः ।
अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २० ॥
यौ त ऊरू अष्टिवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत् ।
अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २१ ॥
यत् ते पुच्छं ये ते घाला यद्वृषो ये च ते स्तनाः ।
अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २२ ॥
यास्ते जङ्घा याः कुण्ठिका श्रुच्छरा ये च ते शूफाः ।
अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २३ ॥
यत् ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यच्ये ।
अमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४ ॥
श्रोणी तं स्तां पुरोडाशायाज्येनाभिघातिनी ।
तां पृशी देवि कृत्वा सा पुनार्त् दिवं यद् ॥ २५ ॥

उत्सृज्यते मुसले यश्च चर्मणि
 यो वा शूरे तण्डुलः कर्णः ।
 यं वा चातो मातुरिष्या पर्यमानो
 ममायाग्निप्रज्ञोता सुहृते कृणोतु ॥ २६ ॥
 अपो देवीर्मधुमतीधृतञ्चुतो
 प्रक्षणां हस्तेषु प्रपूयक सांदयामि ।
 यत् काम इदमभिपिञ्चामि वोऽहं
 तन्मे सर्वे सं पद्यतां
 ययं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ २७ ॥

॥ १३ ॥ (अथर्वं १०।१०।१-२४)

वदयपः । (वशा गौः) । अनुष्टुप् । १ ऊङ्ममती । ५ पञ्चपदा •
 २६-धोमीकी बृहती । १, ८, १० वि।।ह । २३ बृहती । २४ उप-
 रिष्ठाद्बृहती । २६ अस्तारपञ्चिका । २७ षंङ्ममती । २९ त्रिपदा
 विराह्णायत्री । ३१ उगिनगर्मा । ३२ विरट्पथ्याबृहती ।

नर्मस्ते जार्यमानायै जातार्या उत ते नर्मः ।
 यालेभ्यः शुफेर्या रूपायाण्ये ते नर्मः ॥ १ ॥
 यो विद्यात् सप्त प्रवतः सप्त विद्यात् परावतः ।
 शिरां यन्नस्य यो विद्यात्
 स यशां प्रति गृहीयात् ॥ २ ॥

वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः ।
 शिरां यन्नस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥३॥

यया सौर्या पृथिवी ययाऽपों गुपिता इमाः ।
 यशां सदन्नधारं प्रक्षणाऽच्छायं दामसि ॥ ४ ॥

शतं कंसाः शतं होग्धारः
 शतं गोत्तारो अपि पृष्ठे अस्याः ।
 ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते यशां विदुरेकृषा ॥ ५ ॥

यमपदीरक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका ।
 यशां पञ्जन्वपत्नी देवा अर्थेति प्रक्षणा ॥ ६ ॥

अनुं त्याऽग्निः प्राविशानुं सोमो यशे त्वा ।
 ऊर्ध्वे भद्रे पञ्जन्वो विपुतस्ते स्तनां यशे ॥ ७ ॥

अपस्त्वं पुंसे प्रयमा उर्वरा अपरा यशे ।
 तृतीयं राष्ट्रं पुंसेऽन्नं क्षीरं यशे त्वम् ॥ ८ ॥

यदादित्यैर्हृयमानोपातिष्ठ ऋतावरि ।
 इन्द्रः सदन्नं पात्रान्तसोमं त्वापाययदशे ॥ ९ ॥

यदनुचीन्द्रमरात्वं ऋषमोऽहं यत् ।
 तस्मात् ते वृत्रहा पर्यः क्षीरं कुक्षोऽहं रदशे ॥ १० ॥

यत् ते कुक्षो घनपतिरा क्षीरमहं रदशे ।
 इदं तदुद्य नार्कस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥ ११ ॥

त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्युहं रदशा ।
 अर्थया यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्तं हिरण्यये ॥ १२ ॥

सं हि सोमेनागत् सप्तु सर्वेण पृहता ।
 यशा संमुद्रमभ्यंष्टाद्रन्ध्रवः कलिभिः सह ॥ १३ ॥

सं हि चातेनागत् सप्तु सर्वैः पत्राभिः ।
 यशा संमुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि विध्रंती ॥ १४ ॥

सं हि सूर्येणागत् सप्तु सर्वेण चक्षुषा ।
 यशा संमुद्रमत्यंष्यदृद्रा ज्योतींषि विध्रंती ॥ १५ ॥

अमीर्वृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि ।
 अभ्यः समुद्रो भूत्वाऽर्ष्यस्कन्ददशे त्वा ॥ १६ ॥

तद्भद्राः समगच्छन्त यशा देष्टुपर्षां स्वधा ।
 अर्थया यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्तं हिरण्यये ॥ १७ ॥

यशा माता राज्ञ्यस्य यशा माता स्वधे तथ ।
 यशायां यन्न आयुधं तर्तश्चित्तमजायत ॥ १८ ॥

ऊर्ध्वो विन्दुस्त्रचरद्भ्रमणः कर्तुं शार्दधि ।
 ततस्त्वं जग्निषे यशे ततो होताऽजायत ॥ १९ ॥

आन्नस्ते गार्था अमयत्पुण्ड्राभ्यो यले यशे ।
 पाञ्जस्याऽन्नमे यश स्तनभ्यो रदमयत्सर्व ॥ २० ॥

ईमोभ्यामर्थेन जातं सार्कियभ्यां च यशे तथ ।
 आत्रेभ्यो जग्निरे भ्रथा उदरादधि धीर्यः ॥ २१ ॥
 यदुदरं यरनस्यानुप्राविशया यशे ।
 ततस्या प्रहोर्दृढयत् न हि नेत्रमयेत् तथ ॥ २२ ॥

सर्वे गर्भादेवेण्त् जायमानादसुस्यः ।
 सुसुव हि ताम्राहुर्वशेति
 ब्रह्मभिः फलतः स ह्यस्या यन्धुः ॥ २३ ॥
 युध एकः सं संजति यो अस्या एक इदृशी ।
 तरांसि यदा अभवन् तरसां चक्षुरभयदृशा ॥ २४ ॥
 वशा यक्ष प्रत्येगृह्णादृशा सूर्यमधारयत् ।
 वशायांमन्तरविशादेदनो ब्रह्मणां सुह ॥ २५ ॥
 वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते ।
 वशेदं सर्वमभवत्
 देवा मनुष्याश्च अरुंराः पितर ऋषयः ॥ २६ ॥
 य एवं विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ।
 तथा हि यज्ञः सर्वपादुहे द्राडेऽनपस्फुरन् ॥ २७ ॥
 तिन्नो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीधत्यासनि ।
 तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिब्रह्मा २८
 चतुर्धा रेतो अभवदृशायाः ।
 आपस्तुरीयममृतं तुरीयं
 यशस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥ २९ ॥
 वशा चौविंशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः ।
 वशायां दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥ ३० ॥
 वशायां दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये ।
 ते वै ब्रह्मस्य विष्टपि पर्यो अस्या उपासते ॥ ३१ ॥
 सोममेनामेकं दुहे घृतमेक उपासते ।
 य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ३२
 ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वास्त्रोक्तान्समश्नुते ।
 ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः ॥ ३३ ॥
 वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत ।
 वशेदं सर्वमभवद्यावत् सूर्यो विपश्यति ॥ ३४ ॥
 ॥ १३ ॥ (अथर्व० ११।३।१-५३)
 अत्र १५; ० अरिः; २० विशद; ३२ वशिष्ठवृहतीगर्भा;
 ५२ वृशतीगर्भा ।
 ददामीत्येव ग्रायादनुं चैनामभुत्सत ।
 वशां ब्रह्मभ्यो यार्चयन्स्तुत् प्रजावदपत्ययत् ॥ १ ॥

प्रजया स वि श्रीणीते पशुमिधोपं दस्यति ।
 य आर्षेभ्यो यार्चयन्तो देवानां गां न दित्सति २
 कृत्यास्य मं श्रीयन्ते त्रशेणयां काटमर्दति ।
 यण्डयां दहन्ते गृहाः क्राणयां दीयते स्वम् ॥ ३ ॥
 विलोहितो अग्निष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम् ।
 तथा वशायाः संविधं दुरदृष्टा गुण्यसे ॥ ४ ॥
 पदोरस्या अधिष्ठानाङ्किन्दुनामं विन्दति ।
 अनामनात् सं श्रीयन्ते या मुरेनोपजिघ्रति ॥ ५ ॥
 यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्ते ।
 लक्ष्मं कुर्य इति मन्यते कर्नायः कृणुते स्वम् ६
 यदस्याः कसं चिन्द्रोगाय
 बालान् कश्चित् प्रकृन्तति ।
 ततः किशोरा प्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ७
 यदस्यां गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिवत् ।
 ततः कुमारा प्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ८
 यदस्याः पल्पूलनं शकृद् दासी समस्यति ।
 ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्येप्यदेनसः ॥ ९ ॥
 जायमानाभि जायते देवान्सब्राह्मणान् वशा ।
 तसाद् ब्रह्मभ्यो देवैपा तदाहुः स्वस्य गोपनम् १०
 य र्णनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा ।
 ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य र्णनां निप्रियायते ॥ ११ ॥
 य आर्षेभ्यो यार्चयन्तो देवानां गां न दित्सति ।
 आ स देवेषु वृश्ते ब्राह्मणानां च मन्यते ॥ १२ ॥
 यो अस्य स्याद्दशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः ।
 हिस्ते अर्दत्ता पुरुषं याचितान् च न दित्सति ॥ १३ ॥
 यथा शेषाधिनिर्हितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।
 ताम्रेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ॥ १४ ॥
 स्वमेतदच्छायन्ति यद्दशां ब्राह्मणा अभि ।
 यथैनानन्यास्मिन् जिनीयादेवास्यां निरोधनम् १५
 चरदेवा प्रहायणादविशातगदा सुती ।
 वशां च विद्यान्तारद ब्राह्मणास्तहोष्याः ॥ १६ ॥

य एनामर्षशामाह देवानां निहितं निधिम् ।
 उभौ तस्मै भवाश्रयां परिक्रम्येपुमस्यतः ॥ १७ ॥
 यो अस्या ऊधो न वेदार्यो अस्या स्तर्नानुत ।
 उभयैनेवासौ दुहे दातुं चेदशरुद्रशाम् ॥ १८ ॥
 दुरदुधैनमा शये याचितां च न दित्सति ।
 नास्मै कामाः सभृष्यन्ते यामर्दत्त्वा चिकीर्षति १९
 देवा वशामयाचन् मुग्धं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
 तेषां सर्वेषामर्ददुहेडं न्येति मानुषः ॥ २० ॥
 हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽर्ददृशाम् ।
 देवानां निहितं भागं मर्यश्चेन्नप्रियायते ॥ २१ ॥
 यदन्ये शतं याचैयुग्राहणा गोपतिं वशाम् ।
 अर्थेनां देवा अंब्रवक्षेवं हं विदुषो वशा ॥ २२ ॥
 य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो दर्दृशाम् ।
 दुग्धा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥ २३ ॥
 देवा वशामयाचन् यस्मिन्मग्ने अजायत ।
 तामेतां विद्याभारदः सह देवैरुद्राजित ॥ २४ ॥
 अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
 ब्राह्मणैश्च याचितामर्थेनां निप्रियायते ॥ २५ ॥
 अग्नीपोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
 तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेषा वृक्षतेऽर्ददत् ॥ २६ ॥
 यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयाहवः स्वयम् ।
 चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् २७
 यो अस्या ऋचं उपश्रुत्याथ गोष्वर्चाचरत् ।
 आयुश्च तस्य मूर्तिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः २८
 वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।
 आविष्कणुष्व रूपाणि यदा स्याम जिघांसति ॥ २९ ॥
 आविष्टारामानं कृणुते यदा स्याम जिघांसति ।
 अर्थो ह ब्रह्मभ्यो वशा याञ्च्यार्यं कृणुते मनः ३०
 मर्नसा सं कल्पयति तद्वैवां अर्पि गच्छति ।
 ततो ह ब्रह्मणो वशामुपप्रयन्ति याचिनुम् ॥ ३१ ॥

स्वधाकारेण पिनुभ्यो यजेन देवताभ्यः ।
 दानेन राजन्यो वशार्या
 मातुर्दुहं न गच्छति ॥ ३२ ॥
 वशा माता राजन्यस्य तथा संमृतमग्रशः ।
 तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥ ३३ ॥
 यथाऽऽज्यं प्रष्टुहीतमालुम्पेत् कृचो अद्वयं ।
 पृथा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्र्य आ वृक्षतेऽर्ददत् ३४
 पुरोडाशवत्सा सुदुर्वा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति ।
 साऽस्मै सर्वान् कामान् वशा प्रदुष्ये दुहे ॥ ३५ ॥
 सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रदुष्ये दुहे ।
 अयांहूर्नारकं लोकं निरुन्धानस्यं याचिताम् ॥ ३६ ॥
 प्रथीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा ।
 वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पार्श्वेषु वच्यताम् ॥ ३७ ॥
 यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचेत वशाम् ।
 अप्यस्य पुत्रान् पौत्रांश्च याचयते वृहस्पतिः ॥ ३८ ॥
 महदेवार्यं तपति चरन्ती गोषु गौरार्षि ।
 अर्थो ह गोपतये वशादुदुषे विपं दुहे ॥ ३९ ॥
 प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।
 अर्थो वशायास्तद् प्रियं यद्वैवत्रा हविः स्यात् ॥ ४० ॥
 या वशा उदकल्पयन् देवा युवाद्देत्यं ।
 तासां विलिप्य मीमामुद्राकुलन नारदः ॥ ४१ ॥
 तां देवा अमीमांसन्त वशेयाश्मवशेति ।
 तामब्रवीन्नारद एषा वशानो वदात्मेति ॥ ४२ ॥
 कति नु वशा नरद यास्वं वेत्यं मनुष्यजाः ।
 तास्वा पृच्छामि विद्वांसं
 कस्या नाश्रीयाद्ब्राह्मणः ॥ ४३ ॥
 विलिप्या वृहस्पते या चं सुतवशा वशा ।
 तस्या नाश्रीयाद्ब्राह्मणो य आशंसित भृत्याम् ४४
 नर्मस्ते अस्तु नारदानुष्टु विदुषं वशा ।
 कृतमासां भौमर्तमा यामर्दत्त्वा परामर्षत् ॥ ४५ ॥

विलिप्ती या वृहस्पतेऽथो सुतर्षशा वृशा ।
 तस्या नाश्रीयाद्ब्राह्मणो य आशंसेत् भृत्याम् ॥४६
 व्रीणि वै वंशाज्जातानि विलिप्ती सुतर्षशा वृशा ।
 ताः प्र यंचलेद् ब्रह्मभ्यः
 सोऽनामस्कः प्रजापतौ ॥ ४७ ॥
 एतद्वो ब्राह्मणा द्विविरिति मन्वीत याचितः ।
 वृशां चेदेनं याच्युर्या भीमार्ददुपो गृहे ॥ ४८ ॥
 देवा वृशां पर्यवदन् न नोऽदादिति हीडिताः ।
 एताभिर्भृग्भिर्भेदे तस्माद्दे स पराऽभवत् ॥ ४९ ॥
 उत्तैर्न भेदो नार्दाद् वृशामिन्द्रेण याचितः ।
 तस्मात् तं देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे ॥ ५० ॥
 ये वृशाया अदानाय वदन्ति परिरापिर्णः ।
 इन्द्रस्य मन्यवै जात्मा आ वृश्चन्ते अचिस्या ॥५१॥
 ये गोपति पराणीयाथाहुर्मा वृदा इति ।
 रुद्रस्यास्तां ते हेति परि युन्यचिस्या ॥ ५२ ॥
 यदि हुतां यद्यहुताममा च पचते वृशाम् ।
 देवान्सब्राह्मणानुत्वा
 जिहो लोकाभिर्भृग्च्छति ॥ ५३ ॥
 ॥ १५ ॥ (अथर्व० ५।१८।१-१५)
 मयोभूः । ब्रह्मणो । अनुष्टुप् ; ४ भुक् त्रिष्टुप् ; ५, ८-९,
 १३ त्रिष्टुप् ।
 नैतां तै देवा अददुस्तुभ्यै नृपते अर्चवे ।
 मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाधाम् ॥ १ ॥
 अक्षदुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः ।
 स ब्राह्मणस्य गामघादय जीवानि मा श्वः ॥ २ ॥
 आविष्टिताऽघर्विपा पृदाकूरिव चर्मणा ।
 सा ब्राह्मणस्य राजन्य तृष्टेया गौरिनाया ॥ ३ ॥
 निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वचः
 अग्निश्चिारग्धो वि हुंनोति सर्वम् ।
 यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव
 स विपस्य पिपति तैमानस्य ॥ ४ ॥

य पनं हन्ति मृतुं मन्यमानो
 देवपीयुर्धनकामो न चित्तात् ।
 सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध
 उमे पन द्विष्टो नमस्वी चरन्तम् ॥ ५ ॥
 न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिव ।
 सोमो ह्यस्य दायाद् इन्द्रो अस्याभिदास्तिपाः ॥६॥
 शतापाघां नि गिरति तां न शकनोति निःपिदन् ।
 अन्नं यो ब्रह्मणां मव्यः स्वाहं व्रीति मन्यते ॥ ७ ॥
 जिह्वा ज्या भवति कुर्मलं वाक्
 नाडीका दन्तास्तपसाभिर्दिग्धाः ।
 तेभिर्ब्रह्मा विच्यति देवपीयून्
 इन्द्रलैर्धनुर्भिर्देवजुतैः ॥ ८ ॥
 तीक्ष्णेष्वो ब्राह्मणा हेतिमन्तां
 यामस्यन्ति शरव्यां न सा मृपां ।
 अनुहाय तपसा मनुनां च
 उत दुरादवं भिन्दन्त्येनेम् ॥ ९ ॥
 ये सहस्रमराजन्नासन् दशशता उत ।
 ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराऽभवन् १०
 गौरैव तान् हन्यमाना वैतहव्या अवातिरत् ।
 ये कसिरप्रावन्धायाश्चरमाजामपेचिरन् ॥ ११ ॥
 एकशतं ता जनता या भूमिर्व्यधुनुत ।
 प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराऽभवन् ॥१२॥
 देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीणो भवत्यस्थिभूयान् ।
 यो ब्राह्मणं देवघन्धुं दिनस्ति
 न स पितृयाणमप्येति लोकम् ॥ १३ ॥
 अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायाद् उच्यते ।
 हन्ताऽभिशास्तेन्द्रस्तथा तद्वेधसो विदुः ॥ १४ ॥
 इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकूरिव गोपते ।
 सा ब्राह्मणस्येषुर्धोरा तया विध्वति पीर्यतः ॥१५॥
 (५११७)

॥ १६ ॥ (अथर्वं ५।१९।१-१९)

अनुष्टुप्; २ विराट्पुरन्नाद्वृहती; ७ उपरिष्टाद्वृहती ।

अतिमात्रमवर्धन्तु नोर्दिव दिवमस्पृशन् ।
भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतह्वयाः पराऽभवन् ॥ १ ॥
ये बृहत्सामानमाह्निरसमार्षेयन् ब्राह्मणं जनाः ।
पेत्यस्तेपामुम्याद्भूमिस्तोकान्यावयत् ॥ २ ॥
ये ब्राह्मणं प्रत्यर्थावन् ये चाऽसिन्धुत्कर्मापिरे ।
अशस्ते मध्ये कुल्यायाः केशान् खादन्त आसते ३
ब्रह्मगवी पुच्यमाना यावत्साऽभि विजह्नेहे ।
तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ॥ ४ ॥
क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं पिशितमस्यते ।
धीरं यदस्याः पीयते तद्वै पितृषु किल्बिषम् ॥ ५ ॥
उग्रो राजा मर्यामानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति ।
परा तत् सिञ्चते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥ ६ ॥
अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः ।
व्याप्त्या द्विजिह्वा भुत्वा सा
राष्ट्रमव धृनुते ब्रह्मज्यस्य ॥ ७ ॥
तद्वै राष्ट्रमा स्त्रयति नार्वे भिन्नार्मिवोदकम् ।
ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना ॥ ८ ॥
तं वृक्षा अप सेधन्ति छायां नो मोर्षणा इति ।
यो ब्राह्मणस्य सङ्गनेमभि नारद् मर्याते ॥ ९ ॥
विपमेतद् देवहंतं राजा वर्णोऽप्रवीत् ।
न ब्राह्मणस्य गां जग्वा राष्ट्रे जांगार कश्चन ॥ १० ॥
नवैव ता नवतयो या भूमिर्च्यधृनुत ।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसेमर्थं पराऽभवन् ॥ ११ ॥
यां मृतायानुयमन्ति कूचुं पदयोपनीम् ।
तद्वै ब्रह्मज्य ते देवा र्जपस्तरणमयवन् ॥ १२ ॥
अर्थाणि रूपमाणस्य यानि जीतस्य धावतुः ।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागर्मधारयन् ॥ १३ ॥

येन मृतं स्तुपर्यन्ति इमर्थाणि येनोन्दते ।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागर्मधारयन् ॥ १४ ॥
न वर्षे मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति ।
नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वर्शम् ॥ १५ ॥

॥ १७ ॥ (अथर्वं ११।५।१-७२)

प्रथम पर्यायः ॥ १ ॥

(कथयः) अपर्वाच यः । [सतर्वायाः] १ प्रात्रात्राऽ
उष्टुप्; २ ६ सुरिकाम्मउष्टुप्; ३ चतुष्पदा स्वराड-
भिक; ४ आयुर्वेदुष्टुप्; ५ सामान्यपिकः ।

अभेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा चित्तं भ्रिता ॥ १ ॥
सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परिवृता ॥ २ ॥
स्वधया परिहृता धृदया पर्युदा दीक्षया गुता
युद्धे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥ ३ ॥
ब्रह्मं पदवायं ब्राह्मणोऽधिपतिः ॥ ४ ॥
तामाद्दानस्य ब्रह्मगवीं
जित्तो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥ ५ ॥
अपं कामति सूनृतां वीर्ये पुण्यां लक्ष्मीः ॥ ६ ॥
द्वितीयः पर्यायः ॥ २ ॥
आत्स्येदुष्टुप् (७ सुरिक); १० क.भिक;
(७-१० एकपदा); ११ आर्वा निचृत्यकः ।
भोजश्च तेजश्च सहश्च चलं च
वाक् चैन्द्रियं च शीश्च धर्मश्च ॥ ७ ॥
ब्रह्मं च क्षत्रं च राष्ट्रं च विराश्च
त्विषिश्च यदाश्च वचिश्च द्रविणं च ॥ ८ ॥
आयुश्च रूपं च नामं च कीर्तिश्च
प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥ ९ ॥
पर्यश्च रसश्चायं चापार्थं चतं च
सत्यं चेष्टं च पुतं च प्रजा च पशवश्च ॥ १० ॥
तानि सर्वाण्यपं कामानि
ब्रह्मगवीमाद्दानस्य जित्तो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥ ११ ॥

तृतीयः पद्यायः ॥ ३ ॥

विराट् विषमा गायत्री; १३ आसुर्यनुष्टुप्; १४, २६ साम्नी
वणिक्; १५ गायत्री; १६-१७, १९-२० प्राजापत्याऽनुष्टुप्;
१८ याज्ञुषी गायत्री; २१, २५ साम्नीनुष्टुप्; २२ साम्नी
बृहती, २३ याज्ञुषी त्रिष्टुप्; २४ आसुरी गायत्री; २७
आर्चुषिणक् ।

सैषा भीमा ब्रह्मगव्यमुधर्वैषा
साक्षात् कृत्या कृत्वज्जमावृता ॥ १२ ॥

सर्वाण्यस्यां घोरणि सर्वे च मृत्यवः ॥ १३ ॥

सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवृधाः ॥ १४ ॥

सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं
ब्रह्मगव्याऽदीयमाना मृत्योः पर्द्धींश्च वा घति १५

मेनिः शतवंधा हि सा
ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥ १६ ॥

तस्माद्ब्रै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षी विजानता ॥ १७ ॥

घञ्जो धावन्ती वैश्वानर उर्द्धीता ॥ १८ ॥

देतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवोक्तुऽपेक्षमाणा १९

क्षुरपविरिक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥ २० ॥

मृत्युर्हि कुरुष्वत्युप्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥ २१ ॥

सर्वज्यानिः कर्षो वरीवर्जयन्ती

राजयश्मो मेहन्ती ॥ २२ ॥

मेनिर्दुह्यमाना शीपेकिर्दुग्धा ॥ २३ ॥

सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोथोयोधः परामृष्टा ॥ २४ ॥

शरव्याऽमुं मुखैऽपिनह्यमानं ऋतिर्हिन्यमाना ॥ २५ ॥

अर्धावेषा निपतन्ती तमो निपतिता ॥ २६ ॥

अनुगच्छन्ती प्राणानुष दासयति

ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥ २७ ॥

चतुर्थः पद्यायः ॥ ३ ॥

२८ आसुरी गायत्री; २९, ३७ आसुर्यनुष्टुप्; ३० साम्नीनुष्टुप्;

३१ याज्ञुषी त्रिष्टुप्; ३२ साम्नी गायत्री; ३३-३४

साम्नी बृहती; ३५ आसुरी साम्नीनुष्टुप्; ३६

साम्नीनुष्टुप्; ३८ प्रतिष्ठा गायत्री ।

धैरं विहृत्यमाना पौत्राद्यं विभ्राज्यमाना ॥ २८ ॥

देवदेतिर्हि यमाणा व्युत्सिर्हता ॥ २९ ॥

पाप्माऽधिधीयमाना पादप्यमधधीयमाना ॥ ३० ॥

विपं प्रयस्यन्ती तन्मा प्रयस्ता ॥ ३१ ॥

अद्यं पच्यमाना दुष्यन्त्यै पूषा ॥ ३२ ॥

मूल्यहर्षणी पर्याक्रियमाना क्षितिः पर्याकृता ॥ ३३ ॥

असंज्ञा गन्धेन शुगुंक्षियमानाशीविष उद्धृता ३४

अभूतिरुपद्वियमाना पराभूतिरुपहता ॥ ३५ ॥

शर्यः क्रुद्धः पिष्यमाना शिर्मदा पिशिता ॥ ३६ ॥

अर्वातिरदयमाना निर्भ्रतिरदिता ॥ ३७ ॥

अशिता लोकाच्छिनन्ति

ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमसाशामुपमांश्च ॥ ३८ ॥

पद्यमः पद्यायः ॥ ५ ॥

३९ साम्नी वंकिः; ४० याज्ञुष्यनुष्टुप्; ४१, ४६ आसुरी साम्नी

नुष्टुप्; ४२ आसुरी बृहती; ४३ साम्नी बृहती; ४४

विपीलिकमभ्याऽनुष्टुप्; ४५ आर्चो बृहती ।

तस्या आहर्ननं कृत्या

मेनिराशसं वलग ऊर्ध्व्यम् ॥ ३९ ॥

अस्वगता परिहृता ॥ ४० ॥

अग्निः क्रुव्याद्भुत्वा

ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यान्ति ॥ ४१ ॥

सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥ ४२ ॥

छिनत्यस्य पितृवन्धु परा भावयति मातृवन्धु ४३

विवाहां ह्यतीन्सर्वानपि क्षापयति

ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य अत्रियेणापुनर्दीयमाना ॥ ४४ ॥

अवास्तुमेतमस्वंगमप्रजसं करोति

अपरापरणो भवति ह्यीयते ॥ ४५ ॥

य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य अत्रियो गामावृत्ते ॥ ४६ ॥

पद्यः पद्यायः ॥ ६ ॥

प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ४८ आर्चुष्यनुष्टुप्; ५० साम्नी बृहती।
५४-५५ प्राजापत्याणिक्; ५६ आसुरी गायत्री; ६० गायत्री ।

क्षिप्रं वै तस्याहर्नने गृध्राः कुर्वन्त येऽयम् ॥ ४७ ॥

क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशिनीः
 आप्तानाः पाणिनोरसि कुवाणाः पापमैल्यम् ४८
 क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृक्षाः कुर्वत पेल्लयम् ॥४९॥
 क्षिप्रं वै तस्यं पृच्छन्ति
 यत् तदासींश्चिदं नु ताश्चिदिति ॥ ५० ॥
 छिन्वया च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यापि क्षापय क्षापय ५१
 आददानमाहिरसि प्रहृज्यमुषं दामय ॥ ५२ ॥
 वैश्वेदेवी ह्युच्यसे कृत्वा कृत्वञ्जमायुता ॥ ५३ ॥
 ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥ ५४ ॥
 शुरपविर्मृत्युर्मृत्वा वि धावु त्वम् ॥ ५५ ॥
 आ दसे जिन्तां वचं इष्टं पुते चाशिर्यः ॥ ५६ ॥
 आदायं जीतं जीतायं
 लोकेऽमुष्मिन् प्र यच्छसि ॥ ५७ ॥
 अर्चये पदवीर्भैव ब्राह्मणस्याभिशास्या ॥ ५८ ॥
 मेनिः शंख्या भयाघादघोषा भय
 अर्चये प्र शिरो जहि ब्राह्मण्यस्य
 कृतागसो देवपीयोरंराघसः ॥ ६० ॥
 त्वया प्रमूर्णं मुदितमशिदं हतु दुश्चितम् ॥ ६१ ॥
 सप्तमः पर्वणः ॥ ७ ॥
 प्रात्रापत्याऽनुष्टुप्; ६५ गायत्री; ६७ प्रात्रापत्या गायत्री;
 ७१ आशुती वंकिः; ७२ प्रात्रापत्या त्रिष्टुप्; ७३
 आशुष्टुकिम् ।
 धृक्ष प्र धृक्ष सं धृक्ष दह प्र दह सं दह ॥ ६२ ॥
 प्रहृज्यं देव्यप्य आ मूलादनुसंदह ॥ ६३ ॥
 यथाऽयाचमसादनात् पापलोकान् पंतायतः ॥६४॥
 पूया त्वं देव्यप्ये प्रहृज्यस्य
 कृतागसो देवपीयोरंराघसः ॥ ६५ ॥
 वसेण शतपर्वणा तीरणेन शुरभृष्टिना ॥ ६६ ॥
 प्र स्क्रुणान् प्र शिरो जहि ॥ ६७ ॥
 लोमान्यस्य नं किन्धि त्यर्चमस्य वि येष्ट्य ॥६८॥

मांसायस्य शातय आवायस्य सं वृह ॥ ६९ ॥
 अर्थान्यस्य पीडय मुजानमस्य निर्जहि ॥ ७० ॥
 सर्वास्याहा पर्वणि वि श्रथय ॥ ७१ ॥
 अक्षिरं क्रव्यात् पृथिव्या जुदतां
 उदोपतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिष्णः ॥ ७२ ॥
 सूर्य एनं दिवः प्र पुदतां न्योपतु ॥ ७३ ॥
 ॥ १८ ॥ (अथर्वे ० ४।३८।१-७)
 शारायणिः । १-४ अथराः, ५-७ ऋषमः (वाजिनीयान्
 ऋषमः) । अनुष्टुप्, ३ पदपदा षवधाना ऋषती, ५ मुनि-
 गच्छः, ६ शिष्टुप्, ७ षवधाना पद्यदानुष्टुप्गमां
 पुरउपरिष्टाउज्योतिषती ऋषती ।
 उद्धिन्ती संजयन्तीमप्सरां सांधुदेविनीम् ।
 ग्लहे कृतानि कृष्णानामप्सरां तामिह हुवे ॥ १ ॥
 विचिन्तीमांकिरन्तीमप्सरां सांधुदेविनीम् ।
 ग्लहे कृतानि गृह्णानामप्सरां तामिह हुवे ॥ २ ॥
 यायैः परिनृत्याददाना कृतं ग्लहात् ।
 सा नः कृतानि सीपतां प्रहामांशोतु माययां ।
 सा नः पर्यस्यत्येतु मा नो जैपुरिदं धनम् ॥ ३ ॥
 या अक्षेपुं प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं न विभ्रंती ।
 आनन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुये ॥ ४ ॥
 सूर्यस्य रश्मीननु याः संचरन्ति
 मतीचीर्षा या अनुसंचरन्ति ।
 यासांमृगमो दूरतो वाजिनीयान्
 सद्यः सर्वाहोकात् पुयंति रथं न ।
 स न पेतु होममिमं हृषाणः
 अन्तरिक्षेण सह वाजिनीयान् ॥ ५ ॥
 अन्तरिक्षेण सह वाजिनीयान्
 कर्कां पुन्सामिह रथं वाजिन् ।
 इमे ते स्तोत्रा बहूला पृथुवाद्
 इयं ते कर्वाह ते मनोऽन्तु ॥ ६ ॥

अन्तरिक्षेण सृष्ट वाजिनीयन्
कृष्णीं वृत्सामिह रक्ष वाजिन् ।

अयं घ्रासो अयं यज इह घृत्सां नि यधीमः ।
यथानाम वं ईन्द्रमेह स्वाहा ॥ ७ ॥

॥ १९ ॥ (अथर्घ्यं १७११-१४)

ब्रह्मा । ऋषभः । त्रिष्टुप् ; ८ भुक्त् ; ९, १०, २४ अयतो ;
११-१७, १९-२०, २३ अनुष्टुप् ; १८ उपरिष्ठाद्
बृहती ; २१ आस्तारपंक्तिः ।

साहस्रस्त्येष ऋषभः पर्यस्वान्
विश्वान् रूपाणि वक्षणांसु विश्वत् ।

भद्रं दात्रे यजमानाय शिष्वन्
वाहस्पत्य उस्त्रियस्तन्तुमात्तान्
अपां यो अर्थे प्रतिमा बभूव
प्रभूः सर्वस्वै पृथिवीव देवी ।

पिता वृत्सानां पतिरध्वयानां
साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु
पुमानन्तर्वान्स्थविरः पर्यस्वान्
वसोः कथन्धमृपभो विभर्ति ।

तमिन्द्राय पृथिभिर्द्वयानैः
हुतमग्निर्वैहतु जातवैदाः
पिता वृत्सानां पतिरध्वयानां
अथो पिता महतां गर्गराणाम् ।

यस्तो जरायुं प्रतिधुक् पीयूषं
आमिक्षां घृतं तदस्य रेतः
देवानां भ्रातॄन्पनाह पयः
अपां रस ओषधीनां घृतस्य ।

सोमस्य भुक्षमघृणात् शक्रो
बृहन्नद्रिरमघच्छर्त्तैरम्
सोमैर्न पूर्णं कुलदां विभर्ति
त्यष्टां रूपाणां जनिता पशूनाम् ।

शिवास्ते सन्तु प्रजन्त्य इह या इमा
न्युत्सर्ग्यं स्यधिते यच्छ या भ्रमः

आज्यं विभर्ति घृतमस्य रेतः
साहस्रः पोपस्तुतु यद्यमाहुः ।

इन्द्रस्य रूपमृपभो वसानः
सो अस्मान् देवाः शिव पेतुं वृत्तः ॥ ७ ॥

इन्द्रस्यैजो घर्षणस्य याह
अध्विनोरसां मृत्तामियं ककुत् ।

बृहस्पतिं संभृतमेतमाहुः
ये धीरांसः कथयो ये मनीषिणः ॥ ८ ॥

देवीविंशः पर्यस्वाना तनोषि
त्वामिन्द्रे त्वान् सरस्वन्तमाहुः ।

सृष्ट्वं स एकमुया ददाति
यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥ ९ ॥

बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ
त्वर्षुर्धायोः पर्यात्मा त आभृतः ।

अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि
वाहिंष्टे चावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ १० ॥

य इन्द्र इष देवेषु गोभ्वेति विवावदत् ।
तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया ११

॥ ३ ॥ पाश्वे आस्तामर्तुमत्या भगस्यास्तामनुवृजौ ।
अग्निवन्तावमवीन्मित्रो ममैतौ केवल्लविति ॥ १२ ॥

मसदासीदादित्यानां श्रोणीं आस्तां बृहस्पतेः ।
पुच्छं चार्तस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः ॥ १३ ॥

॥ ४ ॥ शुद्धा आसन्तिस्त्रीणां वाऽयाः सूर्यायास्त्वचमनुवृजौ ।
उत्थातुरं वृष्यन् एद ऋषभं यदकल्पयन् ॥ १४ ॥

क्रोड आसीज्जामिंसस्य सोमस्य कुलशो धृतः ।
देवाः संगत्य यत् सर्वं ऋषभं व्यकल्पयन् ॥ १५ ॥

ते कुष्टिकाः सुरमांये कुमंभ्यो अदधुः शफान् ।
ऊर्ध्वमस्य क्रीतेभ्यः श्ववृतेभ्यो अधारयन् ॥ १६ ॥

शृङ्गाभ्यां रक्षं ऋषत्यविति हन्ति चक्षुषा ।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरध्वयः ॥ १७ ॥

॥ ६ ॥ (५४९९)

शतपाजं स रजते नैनं दुन्वन्त्यप्रयः ।
जिन्वन्ति विभ्ये तं देवा
यो ब्राह्मण ऋषमर्माजुहोतै ॥ १८ ॥
ब्राह्मणोभ्यं ऋषमं दत्त्वा धरीयः कृणुते मनः ।
पुष्टिं सो अघ्न्याजं स्वे गोष्ठेऽथ पश्यते ॥ १९ ॥
गार्थः सन्तु प्रजाः सन्त्ययीं अस्तु तनूयलम् ।
तत् सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषमदायिने ॥ २० ॥
अयं पिपां इन्द्र इन्द्रियं दधातु चेतनीम् ।
अयं धेनुं सुदुघां नित्यवत्सां
यदां दुहां विपश्चितं परो दिवः ॥ २१ ॥
पिशङ्करूपो नमसो ययोधा
पेन्द्रः शुभ्रो विभ्वरूपो न आऽगन् ।
आयुरसम्यं दधेत् प्रजां च
रायश्च पोषैरमि नः सचताम् ॥ २२ ॥
उपेदोर्षपर्चनासिन् गोष्ठे उषं पूञ्च नः ।
उषं ऋषमस्य यद्रेत उषेन्द्र तयं धीर्यम् ॥ २३ ॥
एतं धो युषानं प्रति दध्मो अत्र
तेन क्रीडन्तीश्चरत यशां अनु ।
मा नो दासिष्ट जनूपां सुभागा
रायश्च पोषैरमि नः सचध्वम् ॥ २४ ॥
॥ १० ॥ (अथर्व० ६।८६।१-१)
अयं । एषुव [वषधमना] । अत्रुष्टु ।
धृपेन्द्रस्य कृपां द्वियो कृपां पृथिव्या अयम् ।
यूपा विभ्वस्य भूतस्य त्वमेकयूपो मय ॥ १ ॥
समुद्र ईदो ह्यपतामिभिः पृथिव्या पृथी ।
चन्द्रमा नसत्राणामीदो त्वमेकयूपो मय ॥ २ ॥
सम्राट्स्यसुराणां कृकुर्मनुष्याणाम् ।
देवानामर्षभागसि त्वमेकयूपो मय ॥ ३ ॥
॥ ११ ॥ (साम० ५२१)
वामं देवो गोतमा । त्रिष्टु ।
सहर्षमाः सहपरसा उदेत
विभ्या रूपानि पिधन्तीद्र्याः ।

३१ ३२ ३३ ३४ ३५
उरुः पृथुरयं यो अस्तु लोक
३१ ३२ ३३ ३४ ३५
इमा आपः सुप्रपाणा इह स्त ॥ १२ ॥
॥ ११ ॥ (अथर्व० १।१६।१-५)
सविता । पशवः [पशुवंधनं] । त्रिष्टु, ३ वरिष्ठा-
दिगाह्वरी, ४ भुगिगुष्टु, ५ अत्रुष्टु ।
पह र्यन्तु पशवो ये परियुः
यायुर्येषां सदचारं जुजोषं ।
त्वष्टा येषां रूपधेयानि चेद्
असिन् तान गोष्ठे संधिता नि र्यच्छतु ॥ १ ॥
इमं गोष्ठे पशवः सं क्रवन्तु
पृद्वस्परितरा नयतु प्रजानन ।
सिनीवाली नयत्वाप्रमेपां
आजग्मुषो अनुमते नि र्यच्छ ॥ २ ॥
सं सं क्रवन्तु पशवः समभ्याः समु पूरुषाः ।
सं धान्यस्य या स्फातिः
शंक्राव्येण ह्यवियो जुहोमि ॥ ३ ॥
सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन घले रसम् ।
संसिक्ता अस्माकं धीरा
धुया गावो मयि गोपती ॥ ४ ॥
आ हरामि गवां क्षीरमादापं धान्यं रसम् ।
आहृता अस्माकं धीरा आ पनीदिदमस्तकम् ॥ ५ ॥
॥ ११ ॥ (अथर्व० ३।१८।१-६)
मदा । ममिनां [पशुगोवः] । अत्रुष्टु, १ अतिवृत्ती-
गवां अत्रुष्टुवतिवृत्ती, ४ वरमया । वराट् । अत्रुष्टु, ५ विराट्
अत्रुष्टु, ५ त्रिष्टु, ६ विराट्गवां वरत रवद्वेत् ।
एकैकयैया सृष्टया सं रभूय
यत्र गा अर्द्धजन्त भूवृत्ती विभ्वरूपाः ।
यत्रं यिजायते यमिन्यपृतुः
सा पृद्वन् क्षिणानि रिफुनी कर्तती ॥ १ ॥
एषा पृद्वन्सं क्षिणाति कृष्याकृत्या प्यर्दरी ।
उतेनां प्रक्षेपं दधात् तथा स्थोना त्रिया र्ण्यात् २

शिवा भव पुर्वेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा ।	भूतं भविष्यदुर्वना दुहान् ।
शिवाऽसौ सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न हृद्वैधि ॥ ३ ॥	सर्वा देवानां चरति यतानि ॥ २ ॥
इह पुष्टिरिह रसं इह सहस्रंसातमा भव ।	इन्द्रो जातो मनुष्येष्वप्यन्तः
पशून् यमिनि पोषय ॥ ४ ॥	धर्मस्ततश्चरति शोशुचानः ।
यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति	सुप्रजाः सन्तस उद्वारे न संयत्
विहाय रोगं तन्वः स्वार्थाः ।	यो नाश्रीयादनुडुहो विज्ञानन् ॥ ३ ॥
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव	अनुद्वान् दुहे सुकृतस्य लोके
सा नो मा हिंसीत् पुर्वपान् पशूश्च ॥ ५ ॥	पेनं प्याययति पर्वमानः पुरस्तात् ।
यत्रा सुहार्दी सुकृतामग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः ।	पर्जन्यो धारां मरुत ऊधो अस्य
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव	युधः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥ ४ ॥
सा नो मा हिंसीत् पुर्वपान् पशूश्च ॥ ६ ॥	यस्य नेत्रो यशपतिर्न युधो
॥ २४ ॥ [३१९-२१] (वा० य० ४।१३)	नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता ।
उन्नावेत् धूर्पाहो युज्येथामनुधू	यो विद्वजिद्विद्वश्चिद्विद्वक्कर्मा
अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ ।	धर्मं नो दूत यतमश्नुत्प्यात् ॥ ५ ॥
स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥ ३३ ॥	येन देवाः स्वरावरुहुः
॥ २५ ॥ (वा० य० ११।७३)	द्वित्वा शरीरममृतस्य नाभिम् ।
वि मुच्यभ्यमप्या देवयाना	तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं
अगन्म तमसस्पा रमस्य ।	धर्मस्य दूतेन तर्पसा यशस्यवः ॥ ६ ॥
ज्योतिरापाम ॥ ७३ ॥	इन्द्रो रूपेणाग्निवहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् ।
॥ २६ ॥ (वा० य० ३।५।१३)	विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानुडुहकमत ।
अनुद्वहामन्वारंभामहे सौरभेयस्यस्तये ।	सोऽहं हयत् सोऽधारयत ॥ ७ ॥
स न इन्द्र इव देवेभ्यो	मध्यमेतदनुडुहो यत्रैव वह आहितः ।
यदिः सन्तारणो भव ॥ १३ ॥	एतार्थदस्य प्राचीनं यावान् प्रत्यङ् समाहितः ॥ ८ ॥
॥ २७ ॥ (अथर्व० ४।११।१-१२)	यो वेदानुडुहो दोहान्सप्तसानुपदस्वतः ।
अनुद्वान् दाधार पृथिवीमुत धां	प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तश्रवयो विदुः ९
अनुद्वान् दाधारोर्ध्वं तरिक्षम् ।	पद्भिः सेदिमं वक्रामशिरां जङ्घामिद्विद्वन् ।
अनुद्वान् दाधार प्रदिशः पडुधीः	धर्मेणानुद्वान् कीलालं कीनार्शश्चाभि गच्छतः १०
अनुद्वान् विभ्यं भुयंनमा विवेदा	दादंश घा एता रात्रीर्मत्यां आहुः प्रजापतेः ।
अनुद्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चरे	तत्रोप ब्रह्म यो वेद तदा अनुडुहो दूतम् ॥ ११ ॥
त्रयां एतौ पि मिमीते धर्षनः ।	दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यंदिनं परि ।
	दोहा ये अस्य संयन्ति तान् विभानुपदस्वतः १२



पोषण-विभागः
पोषणमंत्री अन्नमंत्री च



॥ १ ॥ (ऋ० १।२३।१३-१५)

मेघातिथि कण्वः । गायत्री ।

आ पूषश्चित्रवर्हिपुमाघृणे धरुणं दिवः ।

आजां नष्टं यथां पशुम् ॥ १३ ॥

पुषा राजानमाघृणिरपगुल्हं गुहां हितम् ।

अर्विन्दाश्चित्रवर्हिपम् ॥ १४ ॥

उतो स मष्टामिन्दुभिः पङ्क्तुं युक्तां अनुसेपिधत् ।

गोभिर्यवं न चर्क्रेपत् ॥ १५ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।४२।१-१०)

कण्वो घोरः । गायत्री ।

सं पूषन्नर्घ्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात् ।

सर्वा देव प्र णस्फुरः ॥ १ ॥

यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेवं आदिवेशति ।

अर्प स्म तं पुयो जहि ॥ २ ॥

अप त्वं परिपन्थिनं सुपीवार्षं हुरक्षितम् ।

दुरमधिं सुतेरेज ॥ ३ ॥

त्वं तस्यं ह्ययामिनोऽर्घशंसस्य कस्यंचित् ।

पदाभि तित्पुं तपुं पिम् ॥ ४ ॥

आ तत् तं दन्न मन्तुमः पूषन्नघो वृणीमहे ।

येन पितृनचोदयः ॥ ५ ॥

अर्धा नो विश्वसौमगु हिरण्यवाशीमत्तम ।

धनानि सुपणां कृधि ॥ ६ ॥

अति नः सुध्रतो नय सुगा नः सुपथां कृणु ।

पूषश्चिह क्रतुं विदः ॥ ७ ॥

अभि सुयवंसं नय न नैवज्जारो अर्घ्वने ।

पूषश्चिह क्रतुं विदः ॥ ८ ॥

शान्धि पूधिं प्रयंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् ।

पूषश्चिह क्रतुं विदः ॥ ९ ॥

न पूषणं मेथामसि सुकैरभि गृणीमसि ।

वसूनि दस्मर्मीमहे ॥ १० ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १।८९।५)

गोतर्षा राट्टणः । अगती ।

तमीशानं जगतस्तस्युपस्पति

धियंजिन्वमर्षसे हूमहे व्ययम् ।

पुषा नो यथा वेदंस्त्रामसं ह्ये

रक्षिता प्रायुरदग्धः स्यस्तयं ॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ (अ० १।१०६।४)
कुम्भ आशिरसः । जगती ।

नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह
क्षयहीरं पूषणं सुमैर्रीमहे ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सु दानवो
विश्वंस्नाश्रो अहंसो निरिपपतन

॥ ५ ॥ (अ० १।१२८।१-४)
परच्छेवो देवादाधिः । अत्याधिः ।

प्रमं पूष्णस्तुघिजातरस्य शस्यते
मद्वित्वमस्य तवसो न तन्दते
स्तात्रमस्य न तन्दते ।
अर्चामि सुमन्यन्नहमन्वृति मयोभुवम् ।

विश्वस्य यो मन आयुयुवे मुखो
देव आयुयुवे मुखः
प्र हि त्वां पूषन्नजिरं न यामनि
स्तोमैभिः कृष्य ऋणवो यथा मृधः
उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।

हुये यत् त्वां मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यैः ।
असाकमांगुपान् शुम्भिनस्क्रुधि
वाजेषु शुम्भिनस्क्रुधि
यस्य ते पूषन् तस्यै विपन्ययः
प्रत्या चित्तगतोऽवसा युमुञ्जिरे
इति क्त्वां युमुञ्जिरे ।

तामनु त्वा नवीयसी नियुते राय रीमहे ।
अदंष्टमान उरुशंसु सर्वा भय
याजंयाजे सर्वा भय
अभ्या ऊ पु ण उर्य तातयं भूयो
अदंष्टमानो ररिवां अजाप्य
धयस्यतामजाप्य ।

धो पु र्वा यवृतीमहि
मोमिभिर्दस ताधुमिः ।
नदि र्वां पृषन्निमग्यं धापृणे
न नं त्वयमपगृह्ये

॥ ६ ॥ (अ० ३।६१।७-९)
गाथिनो विश्वामित्रः । गायत्री ।

इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी
अस्मामिस्तुभ्यं शस्यते ॥ ७ ॥
तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् ।

॥ ५ ॥
वधुयुरिव योर्यणाम् ॥ ८ ॥
यो विश्वामि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।
स नः पूषाविता भुवत् ॥ ९ ॥

॥ ७ ॥ (अ० ६।४८।१६-१९)

शंयुर्वाहंस्परयः (तृणवाणिः) । १६ ककुपः १७ शतोवृहती ।
१८ पर वणिक् १९ वृहती ।

आ मां पूषन्नुप द्रव
शंसिपं तु ते अपिकर्ण आघृणे ।
अघा अयौ अरांतयः ॥ १६ ॥
मा काकम्बीरमुद् वृहो वनस्पति
अशस्तीविं हि नीनशः ।

॥ १ ॥
मोत स्रो अहं एवा चन
श्रीना आदधते धेः ॥ १७ ॥
दतैरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् ।
अन्तिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥ १८ ॥
परो हि मर्त्यैरसिं समो देवैश्चत धिता ।
अभिर्यः पूषन् पृतनासु नस्त्यं
अर्वा नूनं यथा पुरा ॥ १९ ॥

॥ ८ ॥ (अ० ६।४९।८)
आशिरा भारद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

॥ ३ ॥
पथस्पथः परिपति घञस्या
कार्त्तनं कृते अभ्यान्कृत्वाम् ।
स नो रासच्छुषंश्चन्द्राम्ना
धियधियं सीवधाति प्र पूषा ॥ ८ ॥

॥ ९ ॥ अ० ६।५३।१-१०)
अहंस्वरो भारद्वाजः । गायत्री; ८ अतुष्टुप ।

पयमुं र्वा पथस्पते रथं न वाजसातये ।
॥ ४ ॥ धिये पृषन्नुजमदि ॥ १ ॥
(५४९४)

अमि नो नये वसु वीरं प्रयतदधिणम् ।
 वामं गृहर्षति नय ॥ २ ॥
 अदित्सन्तं त्रिदाघृणे पून दानाय चोदय ।
 पुणेक्षिद् वि घ्नदा मनः ॥ ३ ॥
 वि पयो वाजंसातये त्रिनुहि वि मृधो जहि ।
 सार्घन्तामुग्र नो धियः ॥ ४ ॥
 परिं तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे ।
 अयैमसम्यं रन्धय ॥ ५ ॥
 वि पूपत्रारया तुद पुणेरिच्छ हृदि प्रियम् ।
 अयैमसम्यं रन्धय ॥ ६ ॥
 आ रिंख किक्किरा कृणु पणीनां हृदया कवे ।
 अयैमसम्यं रन्धय ॥ ७ ॥
 यां पूपन् ब्रह्मचोर्दनीं—मारं विर्मर्ष्याघृणे ।
 तथां समस्य हृदय—मा रिंख किक्किरा कृणु ॥ ८ ॥
 या ते अग्रा गोर्भापुशा ऽऽघृणे पशुसार्घनी ।
 तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥ ९ ॥
 उत नो गोपणि धियमद्वसां वाजसामुत ।
 नृवत् कृणुहि वीतये ॥ १० ॥
 ॥ १० ॥ (श्र० ६।५।१-१०)
 बाह्वेस्पयो भारद्वाजः । गायत्री ।
 सं पूपन् विवृषां नय यो अंजंसानुशासति ।
 य एवेदमिति ध्रवंत् ॥ १ ॥
 समुं पुष्पा गमेमहि यो गृहो अंभिशासति ।
 इम एवेति च ध्रवंत् ॥ २ ॥
 पुष्पाङ्गं न रिप्यति न कोशोऽघं पघते
 नो अस्य व्ययते पधिः ॥ ३ ॥
 यो अंसं हृदिपाविघ्नत् तं पृषारि मृष्यते ।
 प्रधमो विन्दते घर्त् ॥ ४ ॥
 पूया गा अन्वेतु नः पूया रक्षत्वर्धतः ।
 पूया धार्जं सनोतु नः ॥ ५ ॥

पूषधनु प्र गा इहि यजेमानस्य सुन्युतः ।
 अस्माकं स्तुवतामुत ॥ ६ ॥
 मार्किंशन्मार्की रिपुन्मार्की सं शारि केवटे ।
 अयारिष्टामिरा गहि ॥ ७ ॥
 दूषवन्तं पूषणं ध्यमियंमनंष्टवेदसम् ।
 ईशानं राय ईमहे ॥ ८ ॥
 पूपन् तवं वृते वयं न रिप्येम कदा चन ।
 स्तोतारंस्त इह संसि ॥ ९ ॥
 परिं पूया पुरस्ता—द्वस्तं दधातु दक्षिणम् ।
 पुनर्नो नष्टमार्जतु ॥ १० ॥
 ॥ ११ ॥ (श्र० ६।५।१-६)
 बाह्वेस्पयो भारद्वाजः । गायत्री ।
 एहि वां विमृचो नया—दाघृणे सं संचावहे ।
 रयीर्धृतस्यं नो भव ॥ १ ॥
 रयीर्तमं कृपदिन्—मीशानं राधंसो मुहः ।
 रायः सखायमीमहे ॥ २ ॥
 रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व ।
 धीवतोधीवतः सखा ॥ ३ ॥
 पूषणं न्वृजाद्यमुषं स्तोयाम घाजिनम् ।
 स्वसुर्यो जार उच्यते ॥ ४ ॥
 मातुर्दिधिपुमत्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः ।
 भ्रातेर्द्रस्य सखा भम ॥ ५ ॥
 आजासः पूषणं रथं निशुग्मान्ते जंतुधियम् ।
 देवं बहन्तु पिधंतः ॥ ६ ॥
 ॥ ११ ॥ (श्र० ६।५।१-६)
 बाह्वेस्पयो भारद्वाजः । गायत्री । अतुष्टु ।
 य एनमादिर्देशति कर्मुमादिति पूषणम् ।
 न तेन द्वेष आदिर्ज्ञे ॥ १ ॥
 उत या स रथीर्तमः सग्या सरपतिर्गुजा ।
 इष्टो यत्राणि जिप्यते ॥ २ ॥

उतादः पृथ्वे गवि सूरश्चक्रं हिंरण्ययम् ।
 न्यैरयद् रथीतमः ॥ ३ ॥
 यद्यत् त्वां पुरुषुत्तु ब्रवांम दस्र मन्तुमः ।
 तत् सु नो मनम साधय ॥ ४ ॥
 इमं च नो गवेषणं सातये सीपधो गणम् ।
 आरात्पुष्यसि श्रुतः ॥ ५ ॥
 आ ते स्वस्तिमीमह आरे अघामुपाचसुम् ।
 अघा च सर्वतोतये श्वश्चै सर्वतोतये ॥ ६ ॥
 ॥ १३ ॥ (ऋ० ६।५८।१-४)
 बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । त्रिष्टुप् ; २ जगती ।
 शुक्रं ते अन्यत् यजतं ते अन्यत्
 विपुरुषे अहनीं शौरिवांसि ।
 विश्वा हि माया अवंसि स्वधावो
 भद्रा ते पूषसिह रातिरस्तु ॥ १ ॥
 अजाश्वः पशुपा वाजस्पत्यो
 धियंजिन्वो भुवने विश्वे अर्षितः ।
 अर्षी पूषा शिथिरामुद्धरीवृजत्
 संचक्षाणो भुवना देव ईषते
 यास्तं पूषावो अन्तः संमुद्धे
 हिंरण्यर्यास्तुरिक्षे चरन्ति ।
 तामिषांसि वृष्यां सूर्यस्य
 कामेन वृत्तं अयं इच्छमानः
 पूषा सुयन्धुर्विद्य आ वृषिदया
 इच्छस्पतिर्मघयां द्स्मर्वाचः ।
 यं देयासो अर्द्धुः सूर्यायै
 कामेन वृत्तं तयसं स्वर्धम् ॥ ४ ॥
 ॥ १४ ॥ (ऋ० १०।१७।१-५)
 देवधवा सागामनः । त्रिष्टुप् ।
 पूषा स्येन्द्ररुषाययत् प्र विष्टान्
 अनैष्टपनुर्भुवनेस्य गोपाः ।
 स स्यतेभ्यः परि ददन् विनुभ्यो
 जतिर्भुवनेभ्यः सुविनुत्रियेभ्यः ॥ ३ ॥

आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा
 पूषा त्वां पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
 यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुः
 तत्र त्वा देवः संविता दधातु ॥ ४ ॥
 पूषेमा आशा अतु वेद सर्वाः
 सो अस्मां अर्भयतमेन नेपत् ।
 स्वस्तिदा आघृणिः सर्वधीरो
 अर्षयुच्छन् पुर पंतु प्रजानन् ॥ ५ ॥
 प्रपथे पृथामजनिष्ट पूषा
 प्रपथे विवः प्रपथे पृथिव्याः ।
 उमे अमि प्रियतमे सुधस्ये
 आ च परा च चरति प्रजानन् ॥ ६ ॥

॥ १५ ॥ (ऋ० १०।२६।१-९)

ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुको वसुहृदा ।
 अनुष्टुप् ; १, ४ लणिक ।

प्र हाच्छां मनापाः स्पाहां यन्ति नियुतः ।
 प्र वृक्षा नियुदथः पूषा अविष्टु माहिनः ॥ १ ॥
 यस्य ह्यन्मदित्वं घाताप्यमयं जनः ।
 विप्र आ वंसद्धीतिमि—विश्वकैत सुष्टुतीनाम् ॥ २ ॥
 स वेद सुष्टुतीना—मिन्दुर्ने पूषा वृषा ।
 अमि प्सरः प्रुपायति मृजं न आ प्रुपायति ॥ ३ ॥
 मंसीमाहि त्वा घयमस्मार्कं देव पूषन् ।
 मतीनां च साधेनं विर्माणां चाध्रयम् ॥ ४ ॥
 प्रत्यधिर्घृष्टानां—मभ्यहयो रथानाम् ।
 अद्रयिः स यो मनुहिंते विमस्य यावयस्तुषः ॥ ५ ॥
 आधीर्पमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च ।
 यासोयायोऽवीना—मा यासांसि ममृजत् ॥ ६ ॥
 इतो यार्जानां पतिः—रिनः पुष्टानां सखा ।
 प्र इमधु हयते ईधोद वि वृथा यो अर्वाभ्यः ॥ ७ ॥
 आ ते रयस्य पूष—नजा भुरं पशुयुः ।
 विश्वस्याधिनाः सखां सन्नोजा अनपष्टपुतः ॥ ८ ॥

अस्माकंमूर्जा रथं पूषा अविष्टुः माहिः ।
 मुखद्वाजानां वृध इमं नः शृण्वद्भवम् ॥ ९ ॥
 ॥ १६ ॥ (यजु० १०३२)
 पूषा पंचाक्षरेण पंच दिश उदजयत्ता उज्जैयम् ३२
 ॥ १७ ॥ (यजु० १०१५)
 पूषो स्वाहा ॥ ५ ॥
 ॥ १८ ॥ (यजु० १११०)
 पूषो नरंभिप्राय स्वाहा ॥ २० ॥
 ॥ १९ ॥ (यजु० २५५, ७)
 पूषो नवमी ॥ ५ ॥
 पूषणं वनिष्ठुनां ॥ ७ ॥
 ॥ २० ॥ (यजु० १९१७)
 ब्राह्मणासुः पितरः सोम्यासुः
 शिवे नो धार्यापृथिवी अनेहसा ।
 पूषा नः पातु दुरितादृतावृषो
 रक्षा मार्किनो अघरांश्च ईशत ॥ ४७ ॥
 ॥ २१ ॥ (यजु० ३४११, ४२)
 पूषन् तव्यं व्रते ध्यं न रिष्येम कदाचन ।
 स्तोतारस्त इह संसि ॥ ४१ ॥
 पृथस्पृथः परिपाति वचस्या
 कामेन श्रुतो अभ्यानडकम् ।
 स नो रासच्छुष्यध्वन्द्राम्ना
 धिर्यधियच्छुसापधाति प्र पूषा ॥ ४२ ॥
 ॥ २२ ॥ (यजु० ३८३, १५)
 पूषाऽसि धर्मार्यं दीध्व ॥ ३ ॥
 स्वाहा पूषो शरंसे ॥ १५ ॥
 ॥ २३ ॥ (अथर्व० ६।११३।१-३)
 अथर्वी । शिष्टः । ३ वंशिः ।
 व्रिते देया अमृजतैतदेनः
 व्रित पनन्मनुष्येषु ममृजे ।
 ततो यदि त्या ब्राह्मिरानशे
 तां तं देया ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥ १ ॥

मरीचीर्धुमान् प्र विशानुं पाप्मन्
 उदारान् गच्छेत वा नीह्वान् ।
 नदीनां फेनां अनु तान्वि नश्य
 भूणमि पूषन्पुरितानि मृश्व ॥ २ ॥
 द्वादशधा निर्हितं त्रितस्य
 अर्षमृष्टं मनुष्यैरुसानि ।
 ततो यदि त्या ब्राह्मिरानशे
 तां तं देया ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥ ३ ॥
 ॥ २४ ॥ (अथर्व० ७।१।१-४)
 वरिषप्रदः । शिष्टः । ३ शिषदा आषो गाशरी, ४ अनुष्टुप्
 प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा
 प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
 उमे अभि प्रियतमे सुधस्ये
 आ च परां च चरति प्रजानन् ॥ १ ॥
 पूषेमा आशा अनु वेद सत्याः
 सो असां अमयतमेन नेपत् ।
 स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरः
 अमयुच्छन् पुर पंतु प्रजानन् ॥ २ ॥
 पूषन्तव्यं व्रते ध्यं न रिष्येम कदाचन ।
 स्तोतारस्त इह संसि ॥ ३ ॥
 परि पूषा पुरस्तादस्तं दधातु दक्षिणम् ।
 पुनर्नो नष्टमार्जतु सं नष्टेन गमेमदि ॥ ४ ॥
 ॥ २५ ॥ (अथर्व० १४।१।३९)
 सर्वाभाविकी । शिष्टः ।
 आस्यं ब्राह्मणाः स्नपनीर्हन्तु
 अवीरस्त्रीरुदजन्तवार्यः ।
 अर्यम्नो अग्निं पर्यंतु पूषन्
 प्रतीक्षन्ते भ्यदुरो देवर्यश्च ॥ ३९ ॥
 ॥ २६ ॥ (अथर्व० १४।१।३८)
 तां परंश्रियतमां मेर्यस्य
 यस्यां धीर्जं मनुष्यां वषन्ति ।
 या न ऊरु उदाती विध्रपाति
 यस्यांश्रान्तः प्रहरंशु शेषः ॥ ३८ ॥
 (५११)

सहचारी--देवगणः

(१) इन्द्रवायुवृहस्पतिमिश्राग्निपुष्यभगादित्यमरुतः ।

॥ १७ ॥ (ऋ० १।१४।३)

मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

इन्द्रवायु वृहस्पति मिश्राग्नि पुष्यं भगम् ।

आदित्यान् मरुतं गणम् ॥ ३ ॥

(२) इन्द्रमरुत्पुष्यभगाः

॥ १८ ॥ (ऋ० १।१०।४-५)

वि नः पथः सुवितारय चियन्विन्द्रो मरुतः ।

पुषा भगो चन्द्रांसः ॥ ४ ॥

(३) पुषन्विष्णु

उत नो धियो गोभ्रं प्राः पुषन् विष्णुवेवयावः ।

कर्ता नः स्वस्तिमरुतः ॥ ५ ॥

(४) त्वष्ट्रीलाभाभगवृहद्विचरोदसीपुष्यभग्भिनाः ।

॥ २९ ॥ (ऋ० २।३१।४)

शरवमदः (आगिरसः शौनहोत्रः पचात्) भार्गवः शौनकः ।
जगती ।

उत स्य देवो भुवंसस्य सक्षणिः

त्वष्ट्राग्नाभिः सजोषां जूजुवद् रथम् ।

इन्द्रा भगो वृहद्वियोत रोदसी

पुषा पुरंधिरभ्विनावधा पती ॥ ४ ॥

(५) ब्राह्मणपितृसोमधावापृथिवीपूषाणः ।

॥ ३० ॥ (ऋ० ६।७।१०)

पायुर्माहात्रः । जगती ।

ब्राह्मणासुः पितरः सोम्यांसः

शिवे नो धार्यापृथिवी अनेहसा ।

पुषा नः पातु दुरितादृतावृषो

रक्षा मार्किनो अघशंस ईशत ॥ १० ॥

(६) पृथिवीद्रपन्तरिक्षसोमपूषपथ्यास्यस्तयः ।

॥ ३१ ॥ (ऋ० १०।१९।७)

बन्धुः श्रुतबन्धुर्देवबन्धुर्गोपायनः । शिशुप् ।

पुनर्नो मर्तुं पृथिवी वंदातु

पुनर्पृथिवी पुनरगतर्दिक्षम् ।

पुनर्नः सोमस्तन्वै ददातु

पुनः पूषा पृथ्यां कुं या स्वस्तिः ॥ ७ ॥

(७) अर्यमा पूषा वृहस्पतिः ।

॥ ३१ ॥ (वा० य० ९।१९)

प्र नो यच्छतवर्षमा प्र पूषा प्र वृहस्पतिः ।

प्र चाग्देवी वंदातु नः स्वार्हा ॥ २९ ॥

(८) मिश्रवरुणेन्द्रपुष्यजोपधयः ।

॥ ३२ ॥ (वा० य० १२।७९)

कामं कामदुघे भुश्व मित्राय चरुणाय च ।

इन्द्रायाभ्विभ्यां पुष्णे प्रजाभ्य ओषधीभ्यः ॥ ७२ ॥

(९) उपःवायुपूषाणः ।

॥ ३३ ॥ (वा० य० ३३।४४, ४८, ४९)

प्र चावृजे सुप्रया वृहिरैषां

आ विस्पतीव् स्वीरिंट हयाते ।

विशामकोरुपसः पुर्वहृतौ

वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥ ४४ ॥

(१०) अग्नीन्द्रवरुणमिश्रमरुत्विष्णुरुद्रपूषाभग-

सरस्वत्यः ।

अम् इन्द्र चरुण मिश्र देवाः

शर्धेः प्र यन्त मरुतोत विष्णो ।

उभा नासत्या रुद्रो अंधं प्राः

पुषा भगः सरस्वती जुपन्त ॥ ४८ ॥

(११) इन्द्राग्निपूषावयः ।

इन्द्राग्नी मित्रावरुणाविति धं स्यः

पृथिवीं धां मरुतः पर्यतोर् अणः ।

हुये विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं

भगं जु शर्धेसं धं सवितारमृतये ॥ ४९ ॥

(५५७९)

(१२) घस्विन्द्रपूषन्वरुणमिभ्राग्न्यादित्यविश्वेदेवाः ।

॥ ३६ ॥ (अथर्वं १।९।१)

अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

अस्मिन्धसु घसंयो धारयन्तु

इन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः ।

इममादित्या उत विश्वे च देवाः

उत्तरस्मिन्व्योतिषि धारयन्तु

॥ १ ॥

(१३) पूषा, अर्यमा, घेघाः

॥ ३७ ॥ (अथर्वं १।११।१)

अथर्वा । षंकिः ।

धर्षट् ते पूषन्नस्मिन्सूतां

अर्यमा होतां रुणोतु घेघाः ।

सिर्षतां नार्यतप्रजाता

यि पर्षाणि जिहतां सूतया उं

॥ १ ॥

(१४) अर्यमा, पूषा, बृहस्पतिः, इन्द्रः ।

॥ ३८ ॥ (अथर्वं ३।१४।२)

मग्ना । अनुष्टुप् ।

सं घेः सृजत्वर्ष्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः ।

समिन्द्रो यो धनंजयो मरियं पुष्यतु तद्वसुं

॥ २ ॥

(१५) अर्यमन्पूषन्बृहस्पतयः ।

॥ ३९ ॥ (अथर्वं ५।१८।११)

अथर्वा । कृष्णमत्वनुष्टुप् ।

आ र्यां चृतत्वर्ष्यमा पूषा बृहस्पतिः ।

अर्हर्जातस्य यन्नाम तेन त्वारिं चृतामसि

॥ १२ ॥

(१६) इन्द्रापूषणौ, अदितिः, मरुतः, अपानपात्,

सिन्धधः, विष्णुः, घौः ।

॥ ४० ॥ (अथर्वं ६।३।१)

अथर्वा । पष्वाङ्गती ।

पातं न इन्द्रापूषणादितिः पातुं मूलः ।

अपानं नपात्सिन्धधः सुत पातन्

पातुं नो विष्णुं घत घौः

॥ १ ॥

(१७) सवितृघातपूषन्त्वष्टारः ।

॥ ४१ ॥ (अथर्वं ११।६।३)

शान्तातिः । अनुष्टुप् ।

ग्रमो देवं संवितारं घातारमुत पूषणम् ।

त्वष्टारमभियं ग्रमस्ते नो मुञ्चन्वर्हसः

॥ ३ ॥

(१८) पूषन्मरुद्घातुसवितारः ।

॥ ४२ ॥ (अथर्वं १४।१।३)

सूर्वा वा वित्री । त्रिष्टुप् ।

इमं गांघः प्रजया सं विंशाद्य

अयं देवानां न मिनति भागम् ।

अस्मै र्घः पूषा मरुतंश्च सर्वे

अस्मै र्घो घाता संविता सुपाति

॥ ३३ ॥

(१९) अग्निसोमपूषाणः ।

॥ ४३ ॥ (अथर्वं १६।९।२)

रमः । आर्वा उरुङ्कु ।

तदग्निर्वाहं तदु सोमं आह

पूषा मां घात् सुकृतस्यं लोके

॥ २ ॥

(२०) अदितिमरुद्विष्णुपूषाघाययः ।

॥ ४४ ॥ (अथर्वं १९।८।९)

विश्वः । त्रिष्टुप् ।

शं नो अदितिर्मपतु मृतेभिः

शं नो भवन्तु मरुतः स्वकाः ।

शं नो विष्णुः दामुं पूषा नो असु

शं नो भाषिषं शन्वस्तु यायुः

॥ ९ ॥

(२१) पूषा इन्द्राग्नी इति जानावेधताः ।

॥ ४५ ॥ (अथर्वं १९।०।१)

अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

अपु न्यधुः पौरुषेयं धुधं यं

इन्द्राग्नी घाता संविता बृहस्पतिः ।

सोमो राजा यदणो अभिधना

यमः पूषास्नापारिपातु मूलोः

॥ १ ॥



अर्थ-विभाग

अर्थमंत्री



भगः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।२४।४,५)

आर्जापतिः ह्यनः शेषः सः कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः ।
गायत्री ।

यश्चिच्छि तं हृत्था भगः शशमानः पुरा निदः ।

अद्वेषो हस्तयोर्वधे ॥ ४ ॥

भगमकस्य ते ध्यमुददेशेम् तवावसा ।

मूर्धानं राय आरभे ॥ ५ ॥

॥ १ ॥ (ऋ० ७।४१।२-६)

मैत्रावरुणवंसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

प्रातर्जितं भगमुग्रं हृद्येम्

घ्यं पुत्रमदित्यो विधर्ता ।

आधश्चिद् यं मन्यमानस्तुरक्षिद्

राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याहं ॥ २ ॥

भगः प्रणेतभग सत्यराधो

भगेमां धियमुदवा ददधः ।

भग प्र णो जनय गोमिख्यैः

भग प्र नृभिर्नृकर्तः स्याम्

उतेदानीं भगवन्तः स्याम्

उत प्रपित्य उत मप्ये अहाम् ।

उतोदिता मघयन्त्सर्वस्य

घ्यं देवानां नुमती स्याम्

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

भग एव भगवाँ अस्तु देवाः

तेनं घ्यं भगवन्तः स्याम् ।

तं त्वां भग सर्व इजोहवीति

स नो भग पुर पता भवेद् ॥ ५ ॥

समंभ्यरायोपसो नमन्त

दधिक्रावेषु नुच्यं पदाय ।

अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो

रयमिवाभ्यां वाजिन आ यदहन्तु ॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ (घा० य० १०।५)

भगाय स्वाहा

॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० २।३६।७)

पतिवेदनः । अनुष्टुप् ।

इदं हिरण्यं गुल्फुल्वयमौक्षो अथो भगः ।

पते पतिभ्यस्त्यामदुः प्रतिकामाय धेत्सवे ॥ ७ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० ५।१६।९)

महा । त्रिपदा विपीलिङ्ग मग्या पुर उष्णिक् ।

भगो युनक्त्याशियो न्वः।स्मा

अस्मिन्ध्ये प्रविद्धान्युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ९ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० ६।१२९।१-३)

अथर्वशिरोः । अनुष्टुप् ।

भगेन मा दांशपेनं साकमिन्द्रेण मेदिना ।

हृणोमि भगिनं मार्य द्रान्त्यरातयः ॥ १ ॥

(५५९।)

येन वृक्षाँ अभ्यर्ष्यो भगेन वर्चसा सह
 तेन मा भगिर्न कृण्वर्ष द्रान्त्वरारतयः ॥ २ ॥
 यो अन्धो यः पुनः सरो भगो वृक्षेष्वार्हितः ।
 तेन मा भगिर्न कृण्वर्ष द्रान्त्वरारतयः ॥ ३ ॥
 ॥ ७ ॥ (अथर्वं १९।४५।१)
 मृगः । एकावसाना महावृहती (निवृद्) ।
 भगो मा भगेनावतु प्राणार्यापानायार्युपे
 वर्चसु ओर्जसे तेजसे स्वस्तये सुभुतये स्वाहा ॥९॥

सहचारी--देवगणः

(१) सविता- उपसू- अभिन्- भग- अन्नयः ।
 ॥ ८ ॥ (ऋ० १।४३।८)
 प्ररुन्वः दान्वः । प्राणः=विपमा बृहसः, धमा एतोवृहस्यः ।

सवितारमुपसूमभिना भगो
 अग्नि व्युष्टिषु क्षपः ।
 कण्वासस्वा सुतसोमास इन्धते
 ह्य्यवाह स्वध्वर ॥ ८ ॥

(२) भगमिश्रादित्यर्षमन्वरुणसोमाभिनाद्यः ।
 ॥ ९ ॥ (ऋ० १।८९।३)
 गेतमो राहुगणः । अगती ।

तान् पूर्वेषा निधिदा ह्रमहे ध्यं
 भगं मित्रमर्दिति दक्षेमधिधम् ।
 अर्यमणं वरुणं सोममभिना
 सरस्वती नः सुभगा मर्यस्करत् ॥ ३ ॥

(३) मिश्रायमन्भगाः ।
 ॥ १० ॥ (ऋ० १।२७।१)
 वृषो गार्धमदो शरुमदो वा । त्रिपुत्र ।

इमा गिरि आदित्येभ्यो घृतस्नुः
 सनाद् राजभ्यो जुडां जुहोमि ।
 दूणोर्तु मिश्रो अर्यमा भगो नः
 सुयेजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥ १ ॥

(४) मिश्रायमन्सवितृभगाः ।

॥ ११ ॥ (छा० य० ३३।१०)

यदद्य सूर उवितेऽनांगा मिश्रो अर्यमा ।
 सुवाति सविता भगः ॥ २० ॥

(५) धावापृथिवी, इन्द्रावृहस्पती, भगः ।

॥ १२ ॥ (साम. पूर्वार्चिकः ६।३।१०)

शामदेवो गौतमः । महापंक्तिः ।

यशो मा धावापृथिवी यशो मेन्द्रवृहस्पती ।
 यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम् ।
 यशसाऽस्याः सः सदाऽहं प्रवदिता स्याम् ॥१०॥

(६) इन्द्रः, भगः, सविता ।

॥ ११ ॥ (अथर्वं १।२६।९)

मृगा । त्रिपदा एकावसाना धाम्नी त्रिपुत्र ।

सखासावस्मभ्यमस्तु यातिः ।
 सखेन्द्रो भगः सविता विवरार्याः ॥ २ ॥

(७) अर्यमा, भगः, वृहस्पतिः, देवीः ।

॥ १४ ॥ (अथर्वं ३।२०।३)

वशिष्ठः । अत्रुष्टु ।

प्र णो यच्छुत्वयेमा प्र भगः प्र वृहस्पतिः ।
 प्र देवीः प्रोत सुनुता रयि देवी दधातु मे ॥ ३ ॥

(८) अंशभगवरुणमिश्रायमप्रादितिमगतः ।

॥ १५ ॥ (अथर्वं ६।४।२)

अथर्वा । प्रतारपंक्तिः ।

अंशो भगो वरुणो मिश्रो
 अर्यमादितिः पालुं मरतः
 अप तस्य देवो गमेदमिदुतो
 यायच्छुभ्रुमन्तितम् ॥ २ ॥

(९) ब्रह्मणस्पतिर्भगः ।

॥ १६ ॥ (अथर्वं ६।७४।१)

अथर्वा । अनुष्टुप् ।

सं वः पूच्यन्तां तन्वः । सं मनांसि सप्तु मृता ।

सं धोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत् ॥ १ ॥

(१०) बृहस्पतिसवितृमित्रार्यमन्भगाश्विनाः ।

॥ १७ ॥ (अथर्वं ६।१०३।१)

उच्छोचनः । अनुष्टुप् ।

सुदानं वो बृहस्पतिः सुदानं सविताकरत् ।

सुदानं मित्रो अर्यमा सुदानं भगो अश्विना ॥ १ ॥

(११) भगसोममरुदिन्द्राग्नयः ।

॥ १८ ॥ (अथर्वं ८।१।१)

ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

उदैर्न भगो अग्रमीदुदैर्न सोमो अंशुमान् ।

उदैर्न मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥ २ ॥

(१२) वरुणमित्रविष्णुभगाः ।

॥ १९ ॥ (अथर्वं ११।६।१)

गन्तातिः । अनुष्टुप् ।

भ्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम् ।

अंशं विचस्वन्तं भ्रूमस्ते नो मुञ्चस्वंहंसः ॥ २ ॥

(१३) भगाश्विनः ।

॥ २० ॥ (अथर्वं १४।१।१०, १४, ५०, ५१, ५३-५४, ५९-६०)

एषांवावित्रो । १०, ५०, ५३, ५९ त्रिष्टुप्, ३४ प्रस्तरपंक्तिः, ५१ अनुष्टुप्, ५४ मुनिक् त्रिष्टुप्, ६० पदानुष्टुप् ।

भगस्त्वेषो नयतु हस्तगृह्य

षदियनो एषा प्रयहतां रथेन ।

गृहान् गच्छ गृहपती यथासौ

पदिनी त्वं विदधमा यदासि ॥ २० ॥

(१४) अर्यमा धाता भगः ।

अनूक्षरा ऋजयः सन्तु पन्यानः

येभिः सखायो यन्ति नो चरेयम् ।

सं भगेन समर्थेणा सं धाता सृजतु धर्षसा ॥ ३४ ॥

(१५) भगार्यमन्सवितृदेवाः ।

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं

मया पत्यां जरदृष्टिर्यथासः ।

भगो अर्यमा सविता पुरन्धिः

महीं त्वादुर्गाहपत्याय देवाः ॥ ५० ॥

(१६) भगसवितारौ ।

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।

पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्त्वं ॥ ५१ ॥

(१७) त्वष्टृबृहस्पतिभगसवितारः ।

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं

बृहस्पतेः प्रशिषां कथीनाम् ।

तेनेमां नारीं सविता भगश्च

सूर्यामिव परिधत्तां प्रजयां ॥ ५३ ॥

(१८) इन्द्राग्निद्यावापृथिविमातरिभ्यन्भगादयः ।

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिभ्यां

मित्रावरुणा भगो अदिवनोमा ।

बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोमं

इमां नारीं प्रजयां धर्षयन्तु ॥ ५४ ॥

(१९) धाता भगः ।

उर्धच्छभ्यमप रक्षो हनाथ

इमां नारीं सृष्टते दधात ।

धाता विपश्चित्यतिर्मस्यं विधेत्

भगो राजा पुर पंतु प्रज्ञानम् ॥ ५९ ॥

(५११५)

(२०) त्वष्टृमगौ ।

भर्गस्ततक्ष चतुरः पादान्
भर्गस्ततक्ष चत्वार्युर्षलानि ।
त्यष्टा विपेदा मध्यतोऽनु यधान्
सा नो अस्तु सुमंगली

॥ ६० ॥

(२१) अर्यमन्भगादिवग्प्रजापतयः ।

॥ ११ ॥ (अथर्वं १४।२।११) त्रिष्टुप् ।

शिवा नारीयमस्तुमार्गश्चिम्
घाता लोकमस्य दिदेश ।

तामर्यमा भर्गो अदिवन्नोभा
प्रजापतिः प्रजया यर्घयन्तु

॥ १३ ॥

(२२) अर्यमन्भगी ।

॥ ११ ॥ (अथर्वं १२।१।०१)

वशिष्टाः । त्रिष्टुप् ।

शं नो भगः शर्मु नः शंसो अस्तु
शं नः पुरन्धिः शर्मु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसुः
शं नो अर्यमा पुग्जातो अस्तु

॥ २ ॥

पणयः

॥ १ ॥ (आ० १०।१०।१,४,६,८,१०-११)

धरमा देवशुभे ऋषिषा । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य दुतीरिपिता चरामि
मह इच्छन्ती पणयो निधोन् धः ।
अतिष्करो मियसा तत्र भापत्
तथा रसाया अतरु ययांसि
नाहं तं येद दम्यं दमत् स
यस्येदं दुतीरसरं पराकात् ।
न तं गृहन्ति खयतो गभीरा
दृता इन्द्रेण पणयः शक्ये
असेन्या धः पणयो ययांसि
अनिदुवास्तुर्न्यः सन्तु पापीः ।

॥ २ ॥

॥ ४ ॥

अष्टौ य एतया अस्तु पणयो
बृहस्पतिर्वे उभया न मृजात्
एह गमपूर्ययः सोमशिता
अयास्यो अर्हिरसो नर्यवाः ।
त एतमुषे वि मंजन्त गोनाम्
अथैतद्वचः पणयो यमप्रित्
नाहं येद आतत्यं न स्वसृत्यं
इन्द्रो विदुरंगिरसश्च घोराः ।
गोकामा मे अच्छदयन्
यदायमपारं इत पणयो यरीयः
दुरमित पणयो यरीय
उत्रायो वन्तु मिनतीर्भतेन ।
बृहस्पतिर्या अर्यिन्दुभिर्गृह्णाः
सामो प्रावाण ऋषयश्च विमाः

॥ ६ ॥

॥ ८ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

(५१६)



उद्योग-मंत्री

विश्वकर्मा

॥ १ ॥ (ऋ० १०।८।१।१-५)

विश्वकर्मा भौवनः । त्रिष्टुप्, २ विराड्‌रूपा ।

य इमा विश्वा भुवनानि जुष्टत्
 ऋषिर्होता न्यसीदत् पिता नः ।
 स आशिषा द्रविणमिच्छमानः
 प्रथमच्छद्वरैः आ चिंवेद
 किं स्विदासीदधिष्ठानमारमणं
 कतमत् स्वित् कथासीत् ।
 यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा
 वि घामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः
 विश्वतंभक्षुरत् विश्वतौमुषो
 विश्वतौयाष्टुरत् विश्वतंस्पात् ।
 सं यादुभ्यां धर्मति सं पतत्रैः
 घापामूर्मी जनयन् देव एकः
 किं स्थिदन् क उ स युक्ष आस
 यतो घापांपृषिषी निष्टतक्षुः ।
 मनीषिणो मनेसा पूच्छतेदु तत्
 यदभ्यर्तितष्ट् मुर्यनानि धारयन्

या ते धामानि परमाणि यावमा
 या मंध्यमा विश्वकर्मास्तुतेमा ।
 शिक्षा सखिभ्यो हृषिषि स्वधावः
 स्वयं यजस्व तन्व्यं वृधानः

॥ ५ ॥

॥ १ ॥

विश्वकर्मान् हृषिषां वावृधानः
 स्वयं यजस्व पृथिवीमुत घाम् ।
 मुहान्त्वन्ये अभितो जनांसः
 इहासाकं मघवां सुरिरस्तु

॥ ६ ॥

॥ २ ॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये
 मनोजुवं वाजे अघा हुंवेम ।
 स नो विश्वानि हर्षनानि जोषद्
 विश्वशम्भुरवसे साधुकर्मा

॥ ७ ॥

॥ ३ ॥

॥ १ ॥ (ऋ० १०।८।१।१-७) शिष्टम् ।

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो
 घृतमेने अजनप्रसमाने ।
 यदेदन्ता अर्द्धदहन्त पूर्वं
 आदिद् घावांपृषिषी अंमघेताम्

॥ १ ॥

(५१११)

विश्वकर्मा विर्मना आद्विहाया धाता विधाता परमोत्त संदृक् । तेषामिष्टानि समिषा मन्दन्ति यत्रा सतश्रुयान् पर एकमाहुः यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रभं भुवना यन्त्यन्या त आर्यजन्त द्रविणं समस्मा श्रुयंयः पूर्वे जरितारो न भूना । असूते सूते रजसि निपते ये भूतानि समकृण्यन्निमानि पुरो दिवा पर एना पृथिव्या पुरो देवेभिरसुरैर्यदस्ति । कं स्विरुमै प्रथमं वध्न आपो यत्र देवाः समपदयन्त विश्वे तमिष्टमै प्रथमं वध्न आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे । भजस्य नामाप्येकमर्षितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्युः न तं विदाद्य य इमा जजान अन्येषुष्माकमन्तरं भयम् । नीहारेण प्राधृता जलया च असुहृषं उक्थशासंभरन्ति ॥ ३ ॥ (वा० य० ५१११) विश्वकर्मा त्वाऽऽदित्वैरुत्तरतः पातु ॥ ४ ॥ (वा० य० ८४३, ५४) विश्वकर्मेन् हृषिया वर्धनेन श्रुतारुमिन्द्रमरणोरुपभ्यम् । तस्मै पिशाः समनमन्त पूर्वीः अयमूषो विदश्यो यगाम्स्त ॥	उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मेण एव ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मेणे ॥ ४६ ॥ विश्वकर्मा कीक्षायाम् ॥ ५३ ॥ ॥ २ ॥ ॥ १ ॥ (वा० य० ११४३) विश्वकर्मेणे स्वार्हा ॥ ४३ ॥ ॥ ६ ॥ (वा० य० १४१९, १०, १४) विश्वकर्मा वर्यः परमेष्ठी छन्दः ॥ ९ ॥ ॥ ३ ॥ विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतां प्रथस्वतामन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृशं हान्तरिक्षं मा दिरसीः ॥ १२ ॥ विश्वकर्मा त्वा सादयतु ॥ ४ ॥ अन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ॥ १४ ॥ ॥ ७ ॥ (वा० य० १७१११) विश्वकर्मा हर्जनिए देव आदिद् गन्धर्वो अमवद् द्वितीयः । ॥ ५ ॥ तृतीयः पिता जनितापंधीनां अपां गर्भं व्यदधात् पुरुषा ॥ ३२ ॥ ॥ ८ ॥ (अथयं० १३५११-५) गी० ११ । त्रिष्टुप्, १ इहवीपमा, ४-५ गुरिक् । ॥ ६ ॥ ये भुक्षयन्तो न यस्न्यानुषुः यानुषयो अन्यतप्यन्त धिण्याः । या तेषामवया दुर्गिष्टिः ॥ ७ ॥ स्विष्टिं नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा यदपतिमृषं परंसाहुः निर्मकतं प्रजा अनुतप्यमानम् । मृषव्यान्स्तोकानपु यान् रराद्य सं नष्टेभिः सजतु विश्वकर्मा ॥ २ ॥ अदान्यान्स्तोमपान् मर्यमानो यदस्य पिद्धान्तर्मये न धीरः । यदेनद्वयान् यद एव तं विदयकमेन् प्र मुञ्जा म्यलर्चे ॥ ३ ॥
---	--



गृह-मंत्रो

वास्तोष्पतिः

॥ १ ॥ (श्रु० ७।१४।१-३)
मैत्रावरुणर्वैश्विष्ठः । त्रिष्टुप् ।

यास्तोष्पते प्रति जानीह्यसान्
स्वावेशो अर्नमीवो भया नः ।
यत्सेर्महे प्रति तन्नो जुपस्य
शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे
यास्तोष्पते प्रतरणो न पथि
गयस्कानो गोमिरदर्वैमिरन्दो ।
अजरांसस्ते सख्ये स्याम
पितेयं पुत्रान् प्रति नो जुपस्य
यास्तोष्पते क्षमया संसदां ते
सक्षीमहि रूण्यया गातुमत्यां ।
पाहि क्षेम उत योगे यदं नो
ययं पात स्वस्तिमिः सदां नः

॥ १ ॥ (श्रु० ७।५।११) गायत्री ।

अमीवृहा यास्तोष्पते यिदया रूपाण्याविशान् ।
सर्वा सुरोयं पथि नः

॥ ३ ॥ (श्रु० ८।१७।१३)

शिशिष्ठिः कामः । (इंदो वा) । वृहती ।

यास्तोष्पते ध्रुवा रघुणां—संभ्रं सोम्यानाम् ।
दृप्सो भेत्ता पुरां दारपतीनां
राश्रो मुनीनां सर्गा

६७

॥ १४ ॥

॥ ४ ॥ (या० य० ३।४१-४३)

गृहा मा विमीत मा वैपश्मूर्जे विधत् एमांसि ।

ऊर्जे विधत्तः सुमनाः सुमेधा

गृहानैमि भ्रनसा मोर्दमानः ॥ ४१ ॥

येषामुष्येति प्रयसन् येयुं सौमनसो गृहः ।

॥ १ ॥ गृहानुषं ह्यामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥ ४२ ॥

उपंहता इह गाव उपंहता अजावयः ।

अयो अर्धस्य कालाल उपंहतो गृहेयुं नः ।

क्षेमाय यः शान्त्यै प्रपद्ये

॥ २ ॥ शिष्यश्च क्षमश्च शोयोः शोयोः ॥ ४३ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० ३।१२।१-३)

महा । शान्ता, वास्तोष्पते । त्रिष्टुप्, २ शिष्य जगती, ३

वृहती, ४ वाहरीयमां जगती, ७ आपी अनुष्टुप्, ८

सुरिह, ९ अनुष्टुप् ।

इद्वेय ध्रुवां नि भिनोमि शालां

क्षेमं तिष्ठति घृतसुक्षमाणा ।

तां त्यां शाले सर्ववीर्यः सुवीर्यः

वरिष्ठवीर्य उष सं चरेम

॥ १ ॥

इद्वेय ध्रुवा प्रति तिष्ठ शाले

अद्वयवीर्यो गोमतीं सुवृतायनी ।

ऊर्जस्वती घृतपनीं पयस्वती

उच्छृण्वस्य महते सर्वांगाय

॥ २ ॥

(५६३८)

धृष्ट्याऽसि शाले वृहच्छन्दाः पूतिधान्या ।
 आ त्वा वृत्सो गमेदा कुमार
 आ धेनवः सायमास्पन्दमानाः ॥ ३ ॥
 इमां शालां सविता घायुरिन्द्रो
 वृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् ।
 उक्षन्तूद्रा मरुतो घृतेन
 भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु ॥ ४ ॥
 मानस्य पति शरणा स्योना
 देवी देवेभिर्निमितास्यत्रे ।
 तृणं वसाना सुमना असस्त्वं
 अथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः
 ऋतेन स्थूणामधि रोह वंश
 उग्रो विराजन्नप वृद्धश्च शत्रून् ।
 मा ते रिपन्नुपसत्तारो गृहाणां
 शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ॥ ६ ॥
 एमां कुमारस्तर्हण आ वृत्सो जगता सह ।
 एमां परिक्षितः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः ॥ ७ ॥
 पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं
 घृतस्य धाराममृतेन संभृताम् ।
 इमां पातूनमृतेना समङ्गिध
 इष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥ ८ ॥
 इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
 गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहानिना ॥ ९ ॥
 ॥ ६ ॥ (अथर्व० ५।१९।१-८)
 यास्तोषतिः, आरामा । १,५ देवी वृहतीः, २,६ देवी त्रिष्टुप् ;
 ३,४ देवी जगती; ७ विराडुष्णिग्बृहतीगर्भा पद्यपदा जगती,
 ८ पुरश्चतिभिष्टुब्बृहतीगर्भा, चतुष्पदा त्र्यवधाना जगती ।
 द्विये स्वाहा ॥ १ ॥
 पृथिव्यै स्वाहा ॥ २ ॥
 अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ३ ॥
 अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ४ ॥
 द्विये स्वाहा ॥ ५ ॥

पृथिव्यै स्वाहा ॥ ६ ॥
 सूर्यो मे चक्षुर्धातः प्राणोऽ
 अन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् ।
 अस्तुतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं नि वक्षे
 घावापृथिवीभ्यां गोपीधायं ॥ ७ ॥
 उदायुखलमुत्कृतमुत्कृत्यामुर्मनीपामुर्विन्द्रियम् ।
 आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ
 गोपा मे स्तं गोपायतं मा ।
 आत्मसदो मे स्तं मा मा द्विदिष्टम् ॥ ८ ॥
 ॥ ७ ॥ (अथर्व० ५।१०।१-८)
 यवमध्या त्रिपदा गायत्री; ७ यवमध्या वक्रुप्; ८ पुरोहित्यनु-
 ष्टुग्गर्भा पराष्टिश्च्यवधाना चतुष्पदातिजगती ।
 अश्मवर्म मेऽसि
 यो मा प्राच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
 एतत् स ऋच्छात् ॥ १ ॥
 अश्मवर्म मेऽसि
 यो मा दक्षिणाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
 एतत् स ऋच्छात् ॥ २ ॥
 अश्मवर्म मेऽसि
 यो मा प्रतीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
 एतत् स ऋच्छात् ॥ ३ ॥
 अश्मवर्म मेऽसि
 यो मोर्दीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
 एतत् स ऋच्छात् ॥ ४ ॥
 अश्मवर्म मेऽसि
 यो मा ध्रुवाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
 एतत् स ऋच्छात् ॥ ५ ॥
 अश्मवर्म मेऽसि
 यो मोर्च्याया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
 एतत् स ऋच्छात् ॥ ६ ॥

वृद्धमयमं मैऽसि
यो मां दिशामन्तदंशेभ्योऽव्यायुरंभिदासांत् ।
एतत् स ऋच्छात् ॥ ७ ॥
वृहता मन उर्ष ह्ये मातरिभ्यना प्राणापानौ ।
सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरिरेत् ।
नरस्त्रत्या वाचमुप ह्यामहे मनोयुजां ॥ ८ ॥
 ॥ ८ ॥ (अथर्व० ५।२६।१-१२)
 वास्तोष्पतिः, १ अग्निः, २ सविता, ३, ११ इन्द्रः, ४ मित्रिदः,
 ५ मघतः, ६ अदितिः, ७ विष्णुः, ८ तृष्टा, ९ मगः, १०
 सोमः, १२ अश्विनौ, वृहस्पतिः । १,५ द्विपदार्था उपनिष्टः;
 २, ४, ६, ७, ८, १०, ११ द्विपदा प्राजापत्या वृद्धताः; ३ त्रिपदा
 विराट् गायत्री; ९ त्रिपदा विपीलिहमप्या पुररभिष्टः (१-
 ११ पृष्टावधानाः) १२ परादिशक्वरो, वनुष्पदा गायत्री ।
यज्ञेषु यज्ञे समिधः स्वाहा
अग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु ॥ १ ॥
युनक्तु देवः सविता प्रजानन्
असिन् यज्ञे मंहिषः स्वाहा ॥ २ ॥
इन्द्रं उक्थामदान्यसिन् यज्ञे
प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ३ ॥
प्रेषा यज्ञे निधिदुः स्वाहा
शिष्टाः परनीभिर्घृहतेह युक्ताः ॥ ४ ॥
छन्दांसि यज्ञे मंस्तुः स्वाहा
मानेयं पुत्रं पिपुनेह युक्ताः ॥ ५ ॥
एयमंगन् शर्दिषा प्रोक्षणीभिः
यमं तन्वानादितिः स्वाहा ॥ ६ ॥
विष्णुंयुनक्तु बहुधा तपांसि
असिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ७ ॥
त्वष्टां युनक्तु बहुधा नु रूपा
असिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ८ ॥
मर्गा युनक्त्याशिषो न्वंसा
असिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तुः सुयुजः स्वाहा ॥ ९ ॥

सोमो युनक्तु बहुधा तपांसि
 असिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ १० ॥
 इन्द्रो युनक्तु बहुधा शीर्याणि
 असिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ११ ॥
 अश्विना ब्रह्मणा यातमवाञ्छीं
 वयत्कारेण यमं वर्धयन्तां ।
 वृहस्पते ब्रह्मणा याहावाद्
 यज्ञो अयं स्वर्गिदं यजमानाय स्वाहा ॥ १२ ॥
 ॥ ९ ॥ (अथर्व० ७।६०।१-९)
 गृहः, वाग्नाभिनः । वनुष्पद्, १ पराऽशुष्पद् विष्णुः ।
 ऊञ्ज विष्णुसुवर्गिः सुमेधा
 अर्चारेण चक्षुषा मित्रियेण ।
 गृहानैर्मि सुमना वन्दमानो
 रमन्धं मा विमीन मत् ॥ १ ॥
 इमे गृहा मयोमुव ऊञ्जस्वन्तः पर्यस्वन्तः ।
 पूर्णा वामेन तिष्ठन्स्ते नो जानन्त्यायतः ॥ २ ॥
 वेगामप्येति प्रवसन् येपुं सोमनसो बृहः ।
 गृहानुप ह्यामहे ते नो जानन्त्यायतः ॥ ३ ॥
 उपहृता भूरिधताः सर्गायः स्वादुर्ममुदाः ।
 अन्नप्या अन्नप्या स्त गृहा माऽसिद्धिमीतन ॥ ४ ॥
 उपहृता इह गाव उपहृता अत्रावयैः ।
 अगो अन्नस्य क्रीडाल उपहृतो गृहेषु नः ॥ ५ ॥
 सुनुवायन्तः सुमगा इरायन्तो हसामुदाः ।
 अन्नप्या अन्नप्या स्त गृहा माऽसिद्धिमीतन ॥ ६ ॥
 इदं स्त माऽनुं गात् विभ्यां रूपाणि पुष्यन् ।
 वेध्यामि अद्रेषां सह भूयांसो मयता मया ॥ ७ ॥
 ॥ १० ॥ (अथर्व० ६।१३।३)
 अयतां । सुरिद् ।
 इदं स्त मापं याताप्यस्त
 पूषा परस्तादपयं चः कृपोतु ।
 वास्तोष्पतिरनुं यो जोहवीतु
 मायै सजाता रमतिथं अम्नु ॥ ३ ॥

धृष्ट्या सि शाले वृहच्छन्दाः पूतिधान्या ।

आ त्वा वृत्सो गमिदा कुमार

आ धेनवः स्यामास्पन्दमानाः

इमां शालीं सविता घायुरिन्द्रो

वृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् ।

उक्षन्तद्वा मरुतो घृतेन

भगो नो राजा नि हृपि तनोतु

मानस्य पत्नि शरणा स्योना

देवी देवेभिर्निर्मितास्यग्रे ।

तृणं वसानी सुमना अस्रस्त्वं

अथास्मभ्यं सहवीरं रयि दाः

ऋतेन स्थूणामधि रोह घंशु

उग्रो विराजन्नप वृद्धश्च शत्रून् ।

मा ते रिपन्नपसुचारो गृहाणो

शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः

एमां कुमारस्तर्षण आ वृत्सो जगता सह ।

एमां परिश्रुतः कुम्भ आ वृध्नः कलशैरगुः

पूर्णं नीरि प्र भर कुम्भमेतं

घृतस्य धाराममृतेन संभृताम् ।

इमां पातृनमृतेना समङ्ग्धि

इष्टापूर्तमभि रक्षाल्येनाम्

इमा आपः प्र भंराम्ययक्षमा यक्षमनाशनीः ।

गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहान्निना

॥ ६ ॥ (अथर्व० ५।१०।१-८)

वास्तोष्पतिः, आत्मा । १,५ देवी वृहती; २,६ देवी त्रिष्टुपः

३,४ देवी जगती; ७ विराड्गण्यवृहतीगर्भा पञ्चपदा जगती,

८ पुरस्कृतिभिष्टुब्धहतीगर्भा, चतुष्पदा त्र्यवसाना जगती ।

दिवे स्यादा

पृथिव्यै स्यादा

अन्तरिक्षाय स्यादा

अन्तरिक्षाय स्यादा

दिवे स्यादा

पृथिव्यै स्यादा

सूर्यो मे चक्षुर्घातः प्राणोः

अन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् ।

शस्तुतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं नि वृधे

घावापृथिवीभ्यां गोपीधायं ॥ ७ ॥

उदायुरुद्धलमुत्कृतमुत्कृत्यामुर्मनीपामुर्विन्द्रियम् ।

आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ

गोपा मे स्तं गोपायते मा ।

आत्प्रसदां मे स्तं मा मा हिंसिष्टम् ॥ ८ ॥

॥ ५ ॥

॥ ७ ॥ (अथर्व० ५।१०।१-८)

यवमभ्या त्रिपदा गायत्री; ७ यवमभ्या वक्रुप; ८ पुरोष्ठित्यवृ-

ष्टुब्धगर्भा पराष्टिष्ट्यवसाना चतुष्पदातिजगती ।

अश्मवर्म मेऽसि

यो मा प्राच्यां दिशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥ १ ॥

अश्मवर्म मेऽसि

यो मा दक्षिणाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥ २ ॥

अश्मवर्म मेऽसि

यो मा प्रतीच्यां दिशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥ ३ ॥

अश्मवर्म मेऽसि

यो मोर्दीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥ ४ ॥

अश्मवर्म मेऽसि

यो मा ध्रुवाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥ ५ ॥

अश्मवर्म मेऽसि

यो मोर्ध्याया दिशोऽघायुरभिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥ ६ ॥

॥ ५ ॥

अश्मवर्म मैऽसि

यो मां दिशामन्तदेशेभ्योऽद्यायुर्भिदासात् ।

एतत् स ऋच्छात् ॥ ७ ॥

बृहता मन उप ह्ये मातरिर्ध्वना प्राणापानौ ।

सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छेत्रं पृथिव्याः शरीरम् ।

सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजां ॥ ८ ॥

॥ ८ ॥ (अथर्व० ५।१६।१-१२)

वास्तोष्पतिः, १ अग्नि, २ अविता, ३, ११ इन्द्र, ४ विविदः, ५ मरुतः, ६ अदितिः, ७ विष्णुः, ८ तृषा, ९ भगः, १० सोमः, १२ अश्विनौ, बृहस्पतिः । १, ५ द्विपदार्था उष्णिक्; २, ४, ६, ७, ८, १०, ११ द्विपदा प्राजापत्या बृहती; ३ द्विपदा विराह गायत्री; ९ त्रिपदा विपीलिकमप्या पुरठण्णिक्; (१-११ एकावसानाः) १२ परातिशक्वरी, चतुष्पदा गायत्री ।

यज्ञेपि यज्ञे समिधः स्वाहा

अग्निः प्रविद्वानिह यो युनक्तु ॥ १ ॥

युनक्तु देवः संविता प्रजानन्

अस्मिन् यज्ञे मंहिपः स्वाहा ॥ २ ॥

इन्द्रं उफयामदान्यस्मिन् यज्ञे

प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ३ ॥

प्रेषा यज्ञे निविदुः स्वाहा

शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥ ४ ॥

छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा

मातेर्व पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ॥ ५ ॥

प्रयमंगन् परिष्या प्रोक्षणीभिः

यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ॥ ६ ॥

विष्णुं युनक्तु बहुधा तपोसि

अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ७ ॥

त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा

अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ८ ॥

भगो युनक्त्यादिपो न्वसा

अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तुः सुयुजः स्वाहा ॥ ९ ॥

सोमो युनक्तु बहुधा तपोसि

अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ १० ॥

इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याणि

अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ११ ॥

अश्विना ब्रह्मणा यातमवाञ्छी

वपत्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ ।

बृहस्पते ब्रह्मणा याह्वर्वाङ्

यज्ञो अयं स्वर्गिदं यजमानाय स्वाहा ॥ १२ ॥

॥ ९ ॥ (अथर्व० ७।६०।१-७)

यद्वाः, वास्तोष्पतिः । अनुष्टुप्, १ पराऽनुष्टुप् शिष्टम् ।

ऊर्जं विभ्रद्सुवनिः सुमेधा

अघोरिण चक्षुषा मित्रियेण ।

गृह्णामि सुमना वन्दमानो

रमध्वं मा विभीतु मत् ॥ १ ॥

इमे गृहा मयोमुव ऊर्जस्वन्तः पर्यस्वन्तः ।

पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्यायतः ॥ २ ॥

येषामध्वोर्ते प्रवसन् येषु सोमनसो बृहः ।

गृह्णामि ह्वयामहे ते नो जानन्त्यायतः ॥ ३ ॥

उपहृता भूरिधनाः सपायः स्वादुसमुदः ।

अक्षुष्या अंतुष्या स्तु गृहा माऽस्मद्विभीतन ॥ ४ ॥

उपहृता इह गाव उपहता अजावर्यः ।

अयो अग्रस्य कीलाल उपहृतो गृहेषु नः ॥ ५ ॥

सुनृतावन्तः सुमगा इवावन्तो हसामुद्राः ।

अतुष्या अक्षुष्या स्तु गृहा माऽस्मद्विभीतन ॥ ६ ॥

इद्वैव स्तु माऽनु गात धिर्वा रूपाणि पुष्यत ।

पेष्यामि अद्रेणा सह भूयांसो भवता मयां ॥ ७ ॥

॥ १० ॥ (अथर्व० ६।१३।३)

अथवा । भुरिक् ।

इद्वैव स्तु मापं याताप्यस्तु

पूषा परस्तादपंधं वः हृणोतु ।

वास्तोष्पतिरनु यो जोहवीतु

मर्ये सजाता रमतिर्यो अस्तु ॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ६।१०१।१-३)

प्रमोचनः । दुर्वाशाला । अनुष्टुप् ।

आर्यने ते परार्यणे दूर्वा रोहतु पुष्पिणीः ।
उत्सो वा तत्र जायतां हृदो वा पुण्डरीकवान् ॥ १ ॥

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।
मध्ये हृदस्य नो गृहाः पराचीना मुखा कृधि ॥ २ ॥

हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि ।
शीतद्रुदा हि नो भुवोऽभिष्कृणोतु भेषजम् ॥ ३ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० ९।३।१-३१)

सूत्रज्ञिराः । शाला । अनुष्टुप् ; ६ पथ्यापक्विकिः ; ७ परोष्णिकुः ;
१५ श्रवणाना पञ्चदातिसक्तीः ; १७ प्रसारपक्विकिः ; २१
आस्तारपक्विकिः ; २५, ३१ त्रिपदा प्राजापत्या वृद्धीः ; २६
साम्नी त्रिष्टुप् ; २७-३० प्रतिष्ठानाम गायत्रीः ; (२५-३१
एकावसाना त्रिपदा) ।

उपमितां प्रतिमितामर्थो परिमितामृत ।
शालाया विश्ववाराया नृदानि वि चृतामसि ॥ १ ॥

यत् ते नृदं विश्ववारे पार्शो प्रन्थिश्च यः कृतः ।
बृहस्पतिरिवाहं धलं वाचा वि रक्षयामि तत् ॥ २ ॥

आ ययाम सं बंधं अर्थीश्चकार ते हृदान् ।
परुषि विद्रांछस्तेवेन्द्रेण वि चृतामसि ॥ ३ ॥

पुंशानां ते नहंनानां प्राणाहस्य तृणस्य च ।
पुक्षाणां विश्ववारे ते नृदानि वि चृतामसि ॥ ४ ॥

सुंदशानां पलदानां परिष्वज्ज्वस्य च ।
इदं मानस्य पत्न्यां नृदानि वि चृतामसि ॥ ५ ॥

यानि तेऽन्तः शिफयाऽन्याषेधु रण्याऽयु कम् ।
प्र ते तानि चृतामसि

शिया मानस्य पत्नीं न उद्वेता तन्वे भय ॥ ६ ॥
द्विर्धानंमिद्रिशालं पत्नीनां सर्वं सर्वं ।
सर्वो वेयानामसि वैधि शाले ॥ ७ ॥

अशुभोपशं पितरं सहस्राशं विपुयतिं ।
अर्पनक्षमिदितं द्रवणा वि चृतामसि ॥ ८ ॥

यस्यां शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मित्वा खम् ।
उभौ मानस्य पत्निं तौ जीवतां जरदृष्टी ॥ ९ ॥

अमुत्रैना गच्छताद् दृढा नृदा परिष्कृता ।
यस्यास्ते विच्रुतामस्यङ्गमङ्गं परुषरुः ॥ १० ॥

यस्यां शाले निमिमार्यं संजुभार वनस्पतीन् ।
प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ ११ ॥

नमस्तस्मै नामो दात्रे शालापतये च कृष्णः ।
नमोऽग्र्ये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ॥ १२ ॥

गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते ।
विजावति प्रजावति वि ते पार्शाश्चतामसि ॥ १३ ॥

अभिमुन्तदर्छादयसि पुरुषान् पशुभिः सह ।
विजावति प्रजावति वि ते पार्शाश्चतामसि ॥ १४ ॥

अन्तरा घां च पृथिवीं च यद् व्यचः
तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम् ।

यदन्तरिक्षं रजसो विमानं
तत् कृण्वेऽहमुदरं शेषधर्म्यः ।

तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥ १५ ॥
उर्जस्वती पर्यस्वती पृथिव्यां निमिता मित्वा ।

विश्वान्नं विश्वती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः १६
तृणैरावृता पलदाना वसाना

रात्रीव शाला जगती निवेशनी ।
मित्वा पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पृहती ॥ १७ ॥

इदस्य ते वि चृताम्यपिनक्षमपोर्णुवन ।
वरुणेन समुञ्जिता मित्रः प्रातर्व्युऽञ्जतु ॥ १८ ॥

ग्रहणा शालां निमितां क्विभिर्निमितां मिताम् ।
इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सौम्यं सर्वं ॥ १९ ॥

कुलायेऽधि कुलायं कोशे कोशः समुञ्जितः ।
तत्र मतो वि जायते यस्माद्विभ्यं प्रजायते ॥ २० ॥
या त्रिपक्षा चतुष्पक्षा पट्षक्षा या निमीयते ।
अष्टापक्षां दशपक्षां शालां
मानस्य परनीमिर्गमै ह्या शये ॥ २१ ॥

प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् ।	प्रतीच्या दिशः शालाया नमो	
अग्निहेन्तरापञ्चर्तस्य प्रथमा हाः ॥ २२ ॥	महिन्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ २७ ॥
हमा आपः प्र भराम्ययश्मा यक्ष्मनाशनीः ।	उदीच्या दिशः शालाया नमो	
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥ २३ ॥	महिन्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ २८ ॥
मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्मारो लघुर्भेष ।	ध्रुवाया दिशः शालाया नमो	
वधूर्मिष एवा शाले यत्रकामे भरामसि ॥ २४ ॥	महिन्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ २९ ॥
प्राच्या दिशः शालाया नमो	ऊर्ध्वाया दिशः शालाया नमो	
महिन्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः ॥ २५ ॥	महिन्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ ३० ॥
दक्षिणाया दिशः शालाया नमो	दिशोदिशः शालाया नमो	
महिन्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः ॥ २६ ॥	महिन्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ ३१ ॥



शस्त्रास्त्र निर्माण-मंत्रा



त्वष्टा

॥ १ ॥ (ऋ० १।१३।१०)

मेघातिथिः काण्व । गायत्री ।

इह त्वष्टारमग्निं विश्वरूपमुप ह्वये ।

अम्मारकमस्तु केवलः

॥ १० ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।१५।३)

अग्नि युधं गृणीहि नो माद्यो नेष्टः पियं ऋतुना ।

त्वं हि रत्नधा असि

॥ ३ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ. १।१४।१०)

धीर्पतमा औचप्य । अनुष्टुप् ।

तत्रस्तुरीपमद्भुतं पुरु वारं पुरु त्मना ।

त्वष्टा पोषाय विष्वेतु राये नामा नो अस्मयुः १०

॥ ४ ॥ (ऋ० १।१८।११ पूर्वाधं)

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

उत न इ त्वष्टा गन्तव्यच्छा

स्यन् शूरिभिरभिपिष्ये स्वतोषाः

॥ १ ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० १।१८।१९) गायत्रा ।

त्वष्टां रुपाणि हि प्रभु पृथ्वर विश्वोत्समानजे ।

तेषां नः वृत्तानिमा रथज

॥ ९ ॥

॥ ६ ॥ (ऋ० १।३।९)

श्वत्समद (आगिरस शौनदोत्रः पथाद्) मार्गवः शौनकः ।
त्रिष्टुप् ।

विशङ्करूपः सुभरो वयोधाः

श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।

प्रजां त्वष्टा वि प्येतु नाभिंमस्त्रे

अथा देवानामप्येतु पार्थः

॥ ९ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० १।३।३) अगती ।

अमेयं नः सुहया आ हि गन्तं

नि वृहियि सदतना रणिष्टन ।

अथा मन्दस्य जुष्टुपाणो अन्धसः

त्वष्टदेवेभिर्जेनेभिः सुमङ्गणः

॥ ३ ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० १।४।९)

गायिनो विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् ।

तत्रस्तुरीपमधं पोषयितु

देयं त्वष्टयि रंष्टाणः स्वस्य ।

यतो वीरः कर्मण्यः सुदशो

युनमाया जायते देवकामः

॥ ९ ॥

(५७५१)

॥ ९ ॥ (ऋ० ३।५।१९)

प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा । त्रिशुम् ।

देवस्त्वष्टां सविता विश्वरूपः

पुपोर्प प्रजाः पुरुधा जजान ।

इमा च विश्वा भुवर्नान्यस्य

महद्देवानामसुरत्वमेकम्

॥ १९ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० ५।५।९)

वसुधृत आश्रयः । गावत्रो ।

शिवस्त्वष्टरिहागाहि विमुः पोर्प उत तमना ।

यज्ञैर्यज्ञे न उद्वेव

॥ ९ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० ७।३६।१०-२६)

मैत्रावहीर्वाशिष्ठः । द्विषदा विराट् ।

आ यज्ञः पत्नीर्गमन्त्यच्छ्रा

त्वष्टां सुपाणिर्दधातु वीरान्

॥ २० ॥

श्रति नः स्तोमं त्वष्टां जुपेत

स्यादस्मे अरमतिवैसुयः

॥ २१ ॥

॥ १२ ॥ (ऋ० १०।१८।६)

संडुमुद्धे यामायनः । त्रिष्टुम् ।

आ रोहितायुर्जैरसं वृष्णाना

अनुपूर्धे यतमाना यति ष्ठ ।

इह त्वष्टां सुजनिमा सजोपां

वीर्यमायुः करति जीवसे चः

॥ ६ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० १०।७०।९)

सुमित्रो वाच्यः । त्रिष्टुम् ।

देवं त्वष्टर्यदं चारुत्वमानुः

यदंगिरस्सामभवः सचाभूः ।

स देवानां पाय उप प्र विद्वान्

उशान् यक्षि द्रविणोदः सुरतलः

॥ ९ ॥

॥ १४ ॥ (अथर्व० १०।११०।९)

अमदमिर्मांगशः, जामदग्न्यो रामो वा । त्रिशुम् ।

य इमे धावापृथिवी जनित्री

रूपैरपिशङ्कर्यनाति विश्वा ।

तमय हौतरिपितो यर्जीयान्

देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान्

॥ ९ ॥

॥ १५ ॥ (वा० य० २।१४)

सं वर्चसा पर्यसा सं तनुभिः

अगन्महि मनसा सथं शिवेन ।

त्वष्टां सुदत्रो विदघातु रायः

अनुमाष्टु तन्नो यद्विलिष्टम्

॥ २४ ॥

॥ १६ ॥ (वा० य० ६।७, २०)

उपवीरस्युपं देवान्देवीर्विशः

प्रायुर्हिशजो वद्वितमान् ।

देवं त्वष्टर्वसुं रम हव्या तं स्वदन्ताम्

॥ ७ ॥

देवं त्वष्टर्भूरिं ते सथं समेतु

सल्लेभ्मा यद्विपुरुषं भवाति ।

देवथा यन्तमवसे सधायः

अनु त्वा माता पितरौ मदन्तु

॥ २० ॥

॥ १७ ॥ (वा० य० २०।३४)

त्वष्टा इच्छुश्ममिन्द्राय वृष्णे

अपाको चिष्टुर्पशसें पुरुणि ।

वृषा यजन्वृषणं अरिरेता

मुधेन् यष्टस्य समेनक्तु देवान्

॥ ४४ ॥

॥ १८ ॥ (वा० य० २०।२०)

त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीयाय स्वाहा

त्वष्ट्रे पुरुर्पाय स्वाहा

॥ २० ॥

॥ १९ ॥ (वा० य० २४।४, २४)

प्रीहाकर्णः शुण्डाकर्णोऽप्यालोहकर्णस्ते त्याष्टाः ४

त्वष्ट्रे कौलीकान्गोयादीः

॥ २४ ॥

॥ २० ॥ (वा० य० २।५)

त्वष्टुर्दशमी

॥ ५ ॥

॥ २१ ॥ (घा० य० २६।२४)

अमेव नः सुहवा भा द्वि गन्तुं
नि वर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मदस्व जुजुषाणो अन्धमः
त्वष्ट्रैवेभिर्जनिभिः सुमद्रणः

॥ २४ ॥

॥ २२ ॥ (घा० य० २७।२०)

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुषु त्वष्टा सुवीर्यम् ।
रायस्पां विष्यतु नामिस्मे

॥ २० ॥

॥ २३ ॥ (घा० य० ३१।३, ३४)

त्वष्टा वीरं देवकामं जजानु
त्वष्टुर्वी जायत आशुर्ध्वः ।
त्वष्ट्रं विभ्वं भुवनं जजानु
यदोः कर्तारमिह यक्षि द्योतः
य इमे चावापृथिवी जनित्री
रूपैरपिंशद्भुयंतानि विश्वा
तमद्य द्योतरिपितो यर्जायान्
देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान्

॥ १९ ॥

॥ ३४ ॥

॥ २४ ॥ (अथर्व० ३।३१।५)

प्रश्ना । विनाद् प्रस्तारंकि ।

त्वष्टा दुहित्रे यद्वतुं युनक्ति
इतीदं विश्वं भुवनं वि याति ।
प्यद्वं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समारुपा ॥ ५ ॥

॥ २५ ॥ (अथर्व० ५।२५।११)

प्रश्ना । अनुष्टुप् ।

त्वष्टः धेष्टेन रूपेणास्या नार्यां गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दन्ने मासि सन्ते

॥ २१ ॥

॥ २६ ॥ (अथर्व० ५।२६।८)

प्रश्ना । त्रिपदा प्राक्प्रत्या वृहती ।

त्वष्टा पुनश्चतु यदुघा नु रूप
अग्निगुहं सुयज्ञः स्वार्ता

॥ ८ ॥

॥ २७ ॥ (अथर्व० ६।७८।३)

अथर्वी । अनुष्टुप् ।

त्वष्टा जायामर्जनयस्त्वष्टास्यै त्वां पतिम् ।
त्वष्टा सहस्रमार्युपि दीर्घमार्युः कृणोत वाम ॥३६

॥ २८ ॥ (अथर्व० ६।८१।३)

अथर्वी । अनुष्टुप् ।

यं परिहस्तमयिभरदितिः पुत्रकाम्या ।
त्वष्टा तमस्या आ बंध्नाद्यथा पुत्रं जनादिति ॥३७

॥ २९ ॥ (अथर्व० १८।१।५३)

अथर्वी । त्रिष्टुप् ।

त्वष्टा दुहित्रे बहंतुं कृणोति
तेनेदं विश्वं भुवनं समिति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना
महो जाया विवस्वतो ननाश ॥५३॥

सहचारी--देवगणः

(१) विष्णुत्वष्टप्रजापतिधातारः ।

॥ ३० ॥ (ऋ० १०।१८४।१)

विष्णुयोनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिशतु ।
आ सिंचतु प्रजापतिधाता गमै दधातु ते ॥ १ ॥

(२) धातुसवितृप्रजापत्याग्नित्वष्टृविष्णवः ।

॥ ३१ ॥ (घा० य० ८।१७)

धाता रातिः सवितेदं जुपन्तां
प्रजापतिर्निधिपा देवो अग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया सधरराणा
यजमानाय द्रविणं दधातु स्याहा ॥ १७ ॥

(३) सवितृत्वष्टृपूषादयः ।

॥ ३२ ॥ (घा० य० १०।३०)

सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या धावा
त्वष्टा रूपैः पूषा पुन्यभिरिन्द्रेणास्मे
यद्वस्वपतिना प्रहणा वरुणेनोर्जसा
अग्निना तेजसा सोमं राजा विष्णुना वसन्त्या
देवतया प्रगुः प्र र्मपौमि ॥ ३० ॥
(५०८।१)

(४) त्वष्ट्रेन्द्राग्नी ।

॥ ३३ ॥ (अथर्व ० २१।१०)

त्वष्टां तुरीपो अद्भुतं इन्द्राग्नीं पुष्टिवर्धना ।

द्विर्षदा छन्दं इन्द्रियमुक्षा गौने वर्यो दधुः ॥ २० ॥

(५) त्वष्टृपर्जन्यब्रह्मणस्पत्यदितयः ।

॥ ३४ ॥ (साम ० २९९)

त्वष्टा नो वैश्व्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।

पुत्रैर्भ्रातृभिरदितितुं पातु

नो दुष्टरं भ्रामणं वचः ॥ ७ ॥

(६) इन्द्रत्वष्टादीतिधातुसवितारः ।

॥ ३५ ॥ (अथर्व ० ३८।८०)

अथर्वा । अगती ।

धाता रातिः सवितेर्दं जुषन्तां

इन्द्रस्त्वष्टा प्रतिहर्यन्तु मे ध्वं वचः ।

हुये देवीमर्दिति शरपुत्रां

सजातानां मभ्यमेष्टा यथासांनि ॥ २ ॥

(७) धायुस्त्वष्टा

॥ ३६ ॥ (अथर्व ० ३।१०।१०)

वशिष्ठ । अजुष्टुप ।

गोसर्निं पाचमुदेयं घर्षसा माभ्युर्दिहि ।

आ कन्धां सर्वतो धायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥ १० ॥

(८) अश्विनाद्युपासानकापांनपास्त्वष्टा

॥ ३७ ॥ (अथर्व ० ६।३।३)

अथर्वा । अगती ।

पातां नो वेषाश्चिनां शुभस्पतीं

उपासानफतोत न उरुष्यताम् ।

भर्षा नपाद्भिर्हुतीं गार्गस्य चित्

देवं त्यष्ट्वर्ष्यं सर्वतातये ॥ ३ ॥

(९) मरुतः त्वष्टा

॥ ३८ ॥ (अथर्व ० ६।९।१।१)

अथर्वा । अगती ।

वातरंहा भव धाजिन् युज्यमानः

इन्द्रस्य याहि प्रसूये मनोजयाः ।

६८

युंजन्तु त्वा मरुतो विद्वर्षेदसुः

आ ते त्वष्टां पत्सु जुवं दधातु ॥ १ ॥

(१०) अग्निस्त्वष्टा विष्णुः ।

॥ ३९ ॥ (अथर्व ० ७।१७।४)

मृग । शिष्ट्य ।

धाता रातिः सवितेर्दं जुषन्तां

मजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः ।

त्वष्टा विष्णुः प्रजयां सं रराणो

यजमानाय द्रविणं दधातु ॥ ४ ॥

(११) त्वष्टृसवितारौ ।

॥ ४० ॥ (अथर्व ० १८।१।५)

अथर्वा । शिष्ट्य ।

गमं न नो जनिता दग्धर्ता कः

देवस्त्वष्टां सविता विद्वर्ष्यः ।

निकरस्य प्रमिनन्ति प्रतानि

वेदं नावस्य पृथिवी उत धौः ॥ ५ ॥

(१२) त्वष्टा, यमः ।

॥ ४१ ॥ (अथर्व ० १८।१।५)

अथर्वा । शिष्ट्य ।

त्वष्टां दुहिष्रे वंहतुं रुणोति

तेनेदं विद्वं भुवनं समैति ।

यमस्यं माता पृथुहार्माना

महो जाया विर्यस्वतो ननारा ॥ ५३ ॥

(१३) इन्द्रवस्वादित्यवरुणरुद्रत्वष्टृमनयः ।

॥ ४२ ॥ (अथर्व ० १९।१०।६)

वशिष्ठः । शिष्ट्य ।

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु

शार्मादित्येभिर्वरुणः सुतांसः ।

शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाप

श नस्यष्टा माभिर्दिह शृणोतु

॥ ६ ॥

(५७३१)



लघु उद्योग-मंत्री

ऋभवः

॥ १ ॥ (अ० १।१०।१-८)

मेधातिथि द्वाभ्यः । यागत्री ।

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रैर्मिरासया ।

अकारि रत्नघातमः

य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी ।

शर्माभिर्यज्ञमांशत

तक्षन् नासत्याभ्यां परिजमानं सुयं रथम् ।

नक्षन् धेनुं संवर्द्धयाम्

युजांना पितरा पुनः सत्यमैत्रा ऋजुयवः ।

ऋमयो विप्र्यप्रत

मे यो मद्रासो अमृतेन्द्रेण च मरुत्यता ।

आदित्येभिश्च राजभिः

उत त्वं चमसं नयं त्यदुद्वैयस्य निर्णतम् ।

अर्षतं घतुरः पुनः

ने त्री रानानि घत्तन् धिरा सात्तानि सुन्यते ।

गर्भमकं सुनुस्तिभिः

अर्षारयन्त यद्दयोऽभजन्त सुहृत्या ।

भाग देवेषु यद्विषम

॥ १ ॥ (अ० १।१०।१-९)

द्वय आदि (१) अ० १।१०।१-९ वि० १।१०।१-९

मम मे अयमर्षु मायते पुनः

स्वादिष्टा धीनिरुच्यथाय दास्यते ।

अयं समुद्र इह विश्वदैव्यः

स्वाहाकृतस्य समुं नृण्युत ऋभवः

आमो गयं प्र यद्विच्छन्त पेतन

अपाकाः प्राञ्चो मम के विंदापर्यः ।

सौधन्वनासश्चरितस्य भूमना

अगच्छत सचितुर्वाशुयो गृहम्

तत् सविता धौऽमृतत्वमाऽसुषुषत् ।

अगोहं यच्छुषयन्ते पेतन ।

स्यं विषमसमसुरस्य भक्षणं

एकं सन्तमकृणुता चतुर्वेपम्

विष्ठी शर्मा तरणित्वेन घाघतो

मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।

सौधन्वना ऋभवः सुरक्षसः

संयत्सुरे समपृच्यन्त धीतिभिः

क्षेत्रमिय यि ममस्तेजनेन

एकं पार्श्वमयो जेहमानम् ।

उपस्तुता उपमं नार्धमाना

अमत्वेपु धर्य इच्छमानाः

आ मनीषामगतरिक्षस्य नृभ्यः

सूचेयं घतं जुहवाम विघना ।

तरणित्या ये पितुरस्य सक्षिर

ऋमयो वाजमग्दन् दिवो रजः

॥ १ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

(५८०५)

ऋभुर्न इन्द्रः शर्वसा नर्षीयान्
ऋभुर्वाजोमिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।

युष्मार्कं देवा अवसाऽहनि प्रियेऽ
अभि तिरिष्टेन पृत्सुनीरसुन्वताम्

निधर्मण ऋभयो गार्गपिशत
सं वन्सेनासृजता मातरं पुनः ।

सौर्धन्वनासः स्वपस्यया नरो
जिमी युवांना पितराऽरुणोतन

वाजोभिर्नो वाजसातावधिऽ
ऋभुर्मा इन्द्र चित्रमा दीर्षि राधेः ।

तर्षो मित्रो वरुणो मामहन्ता
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत घौः

॥ ३ ॥ (ऋ० १।१११।१-५)
अणवो ५ विष्टर ।

तक्षन् रथं सुवृत्तं विघ्ननाऽपसः
तक्षन् हरीं इन्द्रयाहा वृषण्वसु ।

तक्षन् पितृभ्याममवो युवह्वयः
तक्षन् वत्सार्थं मातरं सचाभुर्वम्

आ नो युष्वायं तक्षत ऋभुमह्वयः
क्रत्ये दक्षांय सुप्रजावतीमिर्षम् ।

यथा क्षयाम सर्वेशीरया विशा
तक्षः शर्षाय धासत्या स्विन्द्रियम्

आ तक्षत सातिमस्त्रय्यममयः
साति रथाय सातिमर्वते नरः ।

साति नो जैश्रीं से महेत विभ्वहो
जामिमजांमि पृतनासु स्रक्षणिम्

ऋभुक्षणाभिन्द्रुमा ह्यु ऊनयं
ऋभून् वाजान् मुक्तः सोमपीतये ।

उमा मित्रावरुणा नूनमभिनान्
ते नो दिग्यन्तु सातर्ये धिये जिपे

॥ ७ ॥ ऋभुर्मर्षाय सं दिशातु सातिं
संमर्यजिद्वाजो अस्त्रां अविष्टु ।
तर्षो मित्रो वरुणो मामहन्तां
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत घौः ॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १।१२१।१-१४)

दीर्घवमा औषधः । १-१३ अणवो, १४ विष्टर ।

॥ ८ ॥ किमु ध्रेष्टुः किं यविष्टो न आऽजगन्
किमीयते द्रुत्वं कचदूजिम ।

न निन्दिम चमसं यो मंहाकुलो
अग्ने भ्रातृदुष्टेण इन्द्रुतिर्मुदिम ॥ १ ॥

॥ ९ ॥ एषं चमसं चतुरः रुणोतन
तर्षो देवा अमुवन् तद्व आऽगमम् ।

सौर्धन्वना यद्येवा करिष्यथ
साकं देवैर्यक्षियांसो भविष्यथ ॥ २ ॥

अग्निं द्रुतं प्रति यदग्र्योतन
अश्वः कर्त्वा रथं उतेह कर्त्तव्यः ।

॥ १ ॥ धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा ह्य
तानि भ्रातरन् वः कृत्वयेमांसि ॥ ३ ॥

॥ २ ॥ चरुवांसं ऋभवस्तर्दपृच्छत
केदमुघः स्य द्रुतो न आऽजगन् ।

यदाऽवार्यधमसाञ्जतुरः कृतान्
आदित् त्वष्टा मास्यन्तन्मानजे ॥ ४ ॥

दनामैनां इति त्वष्टा यदग्र्यीत्
चमसं ये देवपानमानिन्द्रिपुः ।

॥ ३ ॥ अन्या नामानि कृण्वते सुते सवां
अग्यरेनान् कन्याऽु नामभिः स्परन् ॥ ५ ॥

इन्द्रो हरीं युयुजे अघिनान् रथं
यहस्पतिर्विभ्वरुपानुपाजत ।

॥ ४ ॥ ऋभुर्विभ्वा वाजो देयां अगच्छन्
स्वर्षमो यक्षिर्व भागमनन ॥ ६ ॥

निश्चर्मणो गामरिणति धीतिभिः
 या जरन्ता युवशा ताऽहृणोतन ।
 सौधन्वना अश्वाद्भ्रमंतक्षत
 युक्त्वा रथमुप देवां अयातन
 इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतन
 इदं वा या पिबता मुञ्जनेर्जनम् ।
 सौधन्वना यदि तत्रैव हृष्यथ
 तृतीयं वा स्वर्गने मादयाप्यै
 आपो भूर्यिष्ठा इत्येको अग्रवीत्
 अग्निभूर्यिष्ठ इत्यन्यो अग्रवीत् ।
 पृथ्व्यन्तो गृह्य्यः प्रैको अग्रवीत्
 भ्रुता यदन्तश्चमसां प्रपिशात
 धोणामेकं उदकं गामयाजति
 मांसमेकं पिदाति मनयाऽऽभृतम् ।
 धा निष्प्रचः शकृदेको अपाभरत्
 किं स्त्रित् पुत्रेभ्यः पितरु उपापतुः
 उहृग्मसा शकृणोतना पूर्णं
 निषत्स्युपः स्वपस्यया नरः ।
 भर्गोद्यस्य यदमंस्तना गृहे
 तदघेदमयो नानुं गच्छथ
 संमील्य यद्गर्धना पुपंसेपु
 हं स्त्रित् तात्या पितरां य आगतुः ।
 धदापतु यः शरत्नं य आदुदे
 यः शार्धर्षीत् प्रो तरमां अप्रवीतन
 सुपुष्यात् अमवत्तर्दृष्टत्त
 भर्गोत्त य इदं नो अक्वुषत् ।
 भवान् शरतो बंधितारामप्रवीत्
 संवात्त इदमुदा स्वपयत
 दिवा पौष्टि मृच्छो भूषयाऽभिः
 अथ वानो अगर्दिशेण याति ।

अद्भिर्यीति वरुणः समुद्रैः
 युष्मो हृच्छन्तः शवसो नपातः ॥ १४ ॥

॥ ५ ॥ (अ० ३६०१-४)

विश्वामित्रो गायिनः । जगती ।

॥ ७ ॥

इहेह घो मनसा यन्धुतां नर
 उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा ।

याभिर्मायाभिः प्रतिजुतिवपसः

॥ ८ ॥

सौधन्वना यक्षिर्यं मागमानंश

॥ १ ॥

याभिः शर्चीभिश्चमसां अपिशात

यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।

येन हरी मनसा निरतक्षत

॥ ९ ॥

तेन देवत्वमभवः समानश

॥ २ ॥

इन्द्रस्य सुख्यमभवः समानशः

मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे ।

सौधन्वनासो अमृतयमेरिरे

॥ १० ॥

विधुी शर्मीभिः सुकृतः सुकृत्ययां

॥ ३ ॥

इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचां

अघो पदानां भवथा सह धिया ।

न यः प्रतिमै सुकृतानिं यापतः

॥ ११ ॥

सौधन्वना भ्रमयो दीर्याणि च

॥ ४ ॥

॥ ६ ॥ (अ० ४१११-११)

वामदेवो गीतमः । त्रिष्टुप् ।

॥ १२ ॥

प्र भ्रुभ्यो दूतभियं पार्चमिष्य

उपस्तिरे भ्यैर्नरी धेनुमीळे ।

ये पार्तज्जतास्तर्पिभिरेधैः

परि चां सुघो अपसो वसुतुः

॥ १ ॥

॥ १३ ॥

पुदात्मकं प्रमयः पितृणां

पारिविही वेणवां कुंजनाभिः ।

भादिदेवानामुपं सुषयमापुन

धीरासाः पुश्मिवदन् सुमार्थे

॥ ४ ॥

(५८१)

पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना
सना यूषेव जरणा शयाना ।
ते वाजो विभ्र्यां ऋभुरिन्द्रवन्तो
मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम्
यत् संवत्समभवो गामरक्षन्
यत् संवत्समभवो मा अर्षिषान् ।
यत् संवत्सममरन् भासो अस्याः
ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः
ज्येष्ठ आह चमसा द्वा कुरेति
कर्नीयान् व्रीन् कृणवामेत्याह ।
कनिष्ठ आह चतुरस्करेति
त्वष्टे ऋभयस्तत् पनयद्वचो वः
सत्यमूचुर्नरे एवा हि चक्रुः
अनु स्वधाममवो जग्मुरेताम् ।
विभ्राजमानांश्चमसां अहेव
अवेनत् त्वष्टां चतुरो ददृश्वान्
द्वादश घ्न यदगोहास्य
आतिथ्ये रणध्रुमवः सुसन्तः ।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धुन्
धन्वाऽतिष्ठसोऽधीनिन्ममार्पः
रथे ये चक्रुः सुवृत्तं नरेष्ठां
ये धेनुं विश्वजुर्व विश्वरूपाम् ।
त आ तक्षन्वमवो रथिं नः
स्वर्षसः स्वर्षसः सुहस्ताः
धपो ह्येषामर्जुपन्त देवा
अभि क्रत्वा मनसा वीर्यानाः ।
वाजो देवानामभवत् सुकर्मा
इन्द्रस्य ऋभुश्चा परेणस्य विभ्र्यां
ये हरी मेधयोपथा मरन्त
इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अर्वा ।

ते रायस्योयं द्रविणान्यसे
धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥ १० ॥
इदाहः पीतिमुत्सो मर्दा धः
॥ ३ ॥ न ऋते ध्रान्तस्य सख्यार्य देवाः ।
ते नूनमसे ऋभवो वसूनि
नृतीयं अस्मिन्सर्वने दधात ॥ ११ ॥
॥ ७ ॥ (ऋ० ४।३।१-११)
॥ ४ ॥ ऋभुर्विभ्र्या वाज इन्द्रो नो अच्छा
इमं यज्ञं रत्नधेयोप यात ।
इदा हि वो धिपणा देव्यद्वा
अर्धात् पीति सं मर्दा अगमता वः ॥ १ ॥
॥ ५ ॥ विद्वानासो जग्मनो वाजरत्ना
उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।
सं वो मदा अगमत् सं पुरंधिः
सुवीरामस्मे रथिमेरयध्वम् ॥ २ ॥
अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि
॥ ६ ॥ यमा मनुष्यत् प्रदियो वृधिष्वे ।
प्र योऽरुडां जुजुषाणासो अस्थुः
अमृतं विश्वे अप्रियोत वाजाः ॥ ३ ॥
अमृदु वो विधत्ते रत्नधेयं
॥ ७ ॥ इदा नरो दाशुरे मर्त्याय ।
पिबत वाजा ऋभवो वृदे यो
महिं तृतीयं सर्वनं मर्दाय ॥ ४ ॥
आ वाजा यातोप न ऋभुश्चा
॥ ८ ॥ महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।
आ वः पीतयोऽमिषित्वे अर्वा
इमा अस्तै नयत्वं इय गमन् ॥ ५ ॥
आ नपातः शयसो यातनोप
॥ ९ ॥ इमं यज्ञं नमसा ह्ययमानाः ।
मजोर्षसः सूरयो यन्व वं म्य
अर्भवः पात रत्नधा इन्द्रयन्तः ॥ ६ ॥

सुजोषा इन्द्र घर्षणेन सोमं
सुजोषाः पाणि गिर्घणो मृगङ्गिः ।

अग्नेपाभिर्ऋतुपाभिः सुजोषा
शास्पतीभी रत्नधाभिः सुजोषाः

॥ ७ ॥

सुजोषस आदित्यैर्मौदयध्वं
सुजोषस ऋभवः पर्यतेभिः ।

सुजोषसो दैव्येना सवित्रा
सुजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः

॥ ८ ॥

ये अश्विना ये पितरा य ऊती
धेनुं तंतश्चुर्भयो ये अर्वा ।

ये अंसत्रा य ऋध्रप्रोदंसी ये
विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः

॥ ९ ॥

ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं
रयिं धृथ वसुमन्तं पुरुभुम् ।

ने अग्नेपा ऋभवो मन्दसाना
असे धंस ये च राति गृणन्ति

॥ १० ॥

नापाभूत न वौऽतीतृषाम
अनिःशस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन् ।

समिन्द्रेण मर्दथ सं मृगङ्गिः
सं राजभी रत्नधेयाय देवाः

॥ ११ ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० ४।३५।१-९)

इहोप यात शवसो नपातः

सौधन्वना ऋभवो माऽर्ष भूत ।

अस्मिन् हि वः सर्वेने रत्नधेयं

गमन्त्वग्भ्रमनुं धो मदासः

आऽग्नभ्रूणाभिह रत्नधेयं

॥ १ ॥

अभूत् सोमस्य स्रुपतस्य पीतिः ।

सुकृत्वया यत् स्वपस्ययां च

एकं चिच्चक्रः चमसं चंतुर्धा

व्यंरुणोत चमसं चंतुर्धा

सप्रे वि शिक्षेत्यप्रधीत ।

॥ २ ॥

अर्धेन वाजा धर्मृतस्य पृथ्वीं

गुणं देवानामृतयः सुहृन्नाः

॥ ३ ॥

किमयः स्थिणामम एष आसु

यं कार्थ्येन घृतुरीं चिच्चक्रः ।

अथां सुनुष्यं सधेनं मदाय

पात ऋभवो मधुनः सोमपस्यं

॥ ४ ॥

शच्याकर्तं पितरा युषान्ना

शच्याकर्तं चमसं देवपानम् ।

शच्या हरी धनुतरायतष्ट

इन्द्रपादाष्टमयो वाजरत्नाः

॥ ५ ॥

यो धः सुनोत्यमिपित्ये अर्द्रा

तीमं वाजासुः सधेनं मदाय ।

तस्मै रयिमृभयः सधेवीरं

आ तक्षत घृणो मन्दसानाः

॥ ६ ॥

प्रातः सुतमपियो हर्यश्व

माध्यंदिनं सधेनं केवलं ते ।

समनुभिः पियस्य रत्नधेभिः

सखीयां इन्द्र चकृपे सुकृत्वा

॥ ७ ॥

ये देवासो अर्भवता सुकृत्वा

इयेना इवेदधि दिवि निपेद ।

ते रत्नं धात शवसो नपातः

सौधन्वना अमवतामृतासः

॥ ८ ॥

यत् तृतीयं सधेनं रत्नधेयं

अकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।

तदभवः परिपिकं घ पतत्

सं मदैभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम्

॥ ९ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० ४।३६।१-९)

जगतीः ९ त्रिष्टुप् ।

अनुभ्वो जातो अनभीशुकृत्थयोऽ

रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः ।

मदत् तद्वो देवस्य प्रवाचनं

धार्मभयः पृथिवीं यश पुष्यध

॥ १ ॥

(५८६९)

रयं ये चक्रुः सुवृत्तं सुचतस्रो
 अर्धिद्धरन्तं मर्नसुस्थरि ध्यया ।
 तां ऊ न्वस्य सर्वनस्य पिनय
 आ वा वाजा ऋभवो वेदयामसि
 तद्धौ वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं
 देवेषु विभ्वो अमवन्महित्वनम् ।
 जिज्ञी यत् सन्तां पितरां सनाञ्जरा
 पुनर्युवाना चरथाय तक्षय
 एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं
 निश्चर्मणो गामरिणीत धीनिभिः ।
 अथा देवेष्वमृतत्वमानश
 भुष्टा वाजा ऋभवस्तद्ध उक्थ्यम्
 ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो
 वाजंश्रुतासो यमजीजनन् नरः ।
 विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो
 यं देवासोऽर्चया स विचर्षणिः
 स वाज्यवां स ऋषिर्वचस्यया
 स शरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
 स रायस्पोयं स सुवीर्यं दधे
 यं वाजो विभ्वो ऋभवो यमाविषुः
 श्रेष्ठं वः पेदो अर्थि धायि द्दर्शतं
 स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
 धीरांसो हि षा कुवयो विपाश्चितः
 तान् वं पुना ब्रह्मणा वेदयामसि
 युयमसभ्यं धिपर्णाभ्यस्पर्ति
 विद्वांसो विभ्वा नर्याणि भोजना ।
 शुमन्तं वाजं वृषंशुष्ममुत्तमं
 आ नो रयिममवस्तश्रुता चर्यः
 इह प्रजामिह रयिं रराणा
 इह ध्रुवो धीरयत् तक्षता नः ।
 येन युयं चितयेमात्युन्यान्
 तं वाजं चिभ्रमृभवो ददा नः

॥ १० ॥ (ऋ० ४:३७:१-८)
 प्रिष्टुप; ५-८ अनुष्टुप ।
 उपं नो वाजा अश्चर्ममुश्रा
 देवां यात पथिर्मिद्वयानः । ॥ २ ॥
 यथा यज्ञं मनुषो विश्वाभुमु
 दधिष्वे रण्याः सुदिनेष्वह्नाम् ॥ २ ॥
 ते वा हृदे मर्नसे सन्तु यथा
 जुष्टामो अथ वृतनिर्णिजो गुः । ॥ ३ ॥
 प्र वः सुतासौ हरयन्त पूर्णाः
 ऋन्ने दक्षांय हर्षयन्त पीनाः ॥ २ ॥
 व्युदायं देवहित यथा वः
 स्तोमो वाजा ऋभुभ्रणो ददे यः । ॥ ४ ॥
 जुह्वे मनुष्वदुर्परसु विश्व
 यप्मे सचां गृहदिवेषु सोमम् ॥ ३ ॥
 पावोअवाः शुचद्रथा हि भूत
 अयः शिप्रा वाजिनः सुनिष्काः । ॥ ५ ॥
 इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातो
 अनु वक्षेत्यप्रियं मदाय ॥ ४ ॥
 ऋभुमृमुक्षणो रयिं वाजं वाजिन्तं युजम् ।
 इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममभिनम् ॥ ५ ॥
 सेहमयो यमवथ युयमिन्द्रश्च मर्षम् ।
 स धीमिरेस्तु मर्निता मेघसाता सो अर्षता ६
 वि नो वाजा ऋभुक्षणः पथश्चित्त यष्टवे ।
 असभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आदास्तरीणि ७
 न नो वाजा ऋभुभ्रण इन्द्र नामत्या रयिम् ।
 समभ्यं चर्षणिभ्य आ पुरु शंसन् मघस्ये ॥ ८ ॥
 ॥ ११ ॥ (ऋ० ७:१८:१-४)
 मेशावर्षेर्वेष्टि [५ बिधे देश वा] । प्रिष्टुप ।
 ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वं
 अस्मे नरो मघवानः सुतस्यं ।
 आ योऽथाचः कर्नयो न यातां
 विभ्वो रयं नयं यर्नयन्तु ॥ १ ॥
 (५८८०)

ऋमुर्भुभिर्मि वः स्वाम्
 विभ्वो विभुभिः शर्वसा शर्वांसि ।
 वाजो अस्मा अंवतु वाजसातो
 इन्द्रेण युजा तंरुपेम वृत्रम्
 ते सिद्धि पूर्वोरभि सन्ति शासा
 विभ्वो अर्य उपरताति वन्वन् ।
 इन्द्रो विभ्वो ऋभुशा वाजो अर्यः
 शत्रोर्मिद्यत्या कृणवन् वि नृणम्
 नू देवासो वरियः कर्तना नो
 भूत नो विभ्वेऽवसे सजोपाः ।
 समस्मे इयं वसवो ददीरन्
 युयं पात स्युस्तिभिः सदा नः
 ॥ १२ ॥ (ऋ० १०।१७६।१)
 सुवराभेवा । अनुष्टुप् ।
 प्र सुनयं ऋभूणां वृहन्न्यन्त घृजना ।

क्षामा ये विश्वधायसो ऽर्शन् धेजुं न मातरम् ॥१॥
 ॥ १३ ॥ (घा० य० १४।१६)
 ऋभूणां भागोऽसि ॥ २६ ॥
 ॥ २ ॥ ॥ १४ ॥ (घा० य० २१।२६)
 शारवेन ऋतुना देवा पंकविंश ऋभवं स्तुतः ।
 वैराजेन श्रिया श्रियं हविरिन्द्रे वयो द्युः ॥२६॥
 ॥ १५ ॥ (घा० य० ३०।१५)
 ऋभुभ्योऽजिनसन्धम् । ॥ १५ ॥
 ॥ १६ ॥ (घा० य० ३०।८)
 सवित्रे त्वं ऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा ॥८॥
 ॥ १७ ॥ (अथर्व० ९।१।११)
 अथर्वा । अनुष्टुप् ।
 यथा सोमस्तृतोये सर्वन ऋभूणां भवति प्रियः ।
 एवा मे ऋभवो वचं आत्मनि धियताम् ॥१३॥

ताक्ष्यः

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१७६।१-३)
 भरिष्टनेमिशास्यः । त्रिष्टुप् ।
 त्वम् पु याजिनं द्वेषजुं
 सदापानं तृतां रथानाम् ।
 भरिष्टनेमि पुनराजमादुं
 स्वल्पे तार्यमिहा हुवेम
 इन्द्रेभ्येव शक्तिमाजोदुपानाः
 स्वल्पे तार्यमिया इहम् ।
 उवीं न पृथीं चदंते गर्भीते
 मा कामेतां मा परेतां शियाम
 सप्तद्विधः शर्वसा पंचहृदीः
 एवं इव उपोतिवाऽपस्तनानं ।

सहस्रसाः शंतसा अस्य रंदिः
 न सां घरन्ते युयति न शयीम् ॥ ३ ॥
 सहचारी-देवगणः
 (१) इन्द्रपूयताभ्यं वृहस्पतया । ८
 ॥ १ ॥ (ऋ. १।८९।६)
 गोतमो शहस्रगणः । रितात् स्वाम् ।
 ॥ २ ॥
 स्वल्पि न इन्द्रो युयर्धवाः
 स्वल्पि नः पूवा विश्वयेऽशः ।
 स्वल्पि नलाशयो भरिष्टनेमिः
 स्वल्पि नो वृहस्पतिर्दधातु



सागर-विभाग

सागरमंत्री

वरुणः

॥ १ ॥ (अ० १।४।६-१५)

शुनःशेष आशोवर्तिः सः कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवराता ।
त्रिष्टुप ।

नदि ते क्षत्रं न सहो न मनुं
धर्यक्षनामी पतयन्त आपुः ।
नेमा आपो अनिमियं चरन्तीः
न ये घातस्य प्रमिनन्त्यर्भ्यम्
अयुध्ने राजा वरुणो घनस्य
ऊर्ध्वे स्तूर्ये ददते पुतदक्षः ।
मीचीनाः स्युरुपरि युध्न पंपां
अस्मै अन्तर्निहिताः कृतवः स्युः
उरुं हि राजा वरुणश्चकार
सूर्योप पन्यामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रति धातयेऽकः
उतापयुक्ता हृदयाविधेक्षित्
ज्ञातं ते राजन् मियजः सहस्रं
उयो गंभीरा सुमतिरे अस्तु ।

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

वार्यस्व वुरे निर्झृति पराचैः
कृतं चिदेनः प्र सुमुग्ध्यस्व
अमी य श्रुज्ञा निर्हितास उच्चा
नक्तं दद्रेषे कुहं विदिवैयुः ।
अर्दग्धानि घरुणस्य प्रतानि
विचाकेशचन्द्रमा नक्तमेति
तत्त्वां यामि ब्रह्मणा चन्दमानुः
तदा शास्ते यज्ञमानो हृविर्मिः ।
अहैलमानो वरुणेद शोधि
उरुंशंस मा न आयुः प्र मोयीः
तदिवक्तं तद् दिवा महामाहुः
तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।
शुनःशेषो हामहृद् गृहीतः
सो अस्मान् राजा वरुणो सुमोक्तु
शुनःशेषो ह्यहृद् गृहीतः
त्रिष्योदित्वं द्रुपदेयुं बद्धः ।
अयंनं राजा वरुणः ससृज्याद्
पिडो अर्दग्धो वि सुमोक्तु पाशान्

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

अवन्ते हेळौ वरुण नमोभिः
 अवं यज्ञेभिरीमहे हविभिः ।
 क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता
 राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि
 उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत्
 अवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
 अथां वयमादित्य वृते तव
 अनांगसो अदितये स्याम
 ॥ १४ ॥
 ॥ १५ ॥ (ऋ० १।१५।१-२१) गायत्री ।
 यच्चिच्छि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् ।
 मिनीमसि धर्विधवि ॥ १ ॥
 मा नो वधाय हृत्नवे जिहील्लानस्य रीरधः ।
 मा हृणानस्य मन्यवे ॥ २ ॥
 वि मृळीकार्यं ते मनो रथीरथं न संदितम् ।
 गीर्भिवर्देण सीमहि ॥ ३ ॥
 पय हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यद्दृष्टये ।
 वयो न वंसतीरुप ॥ ४ ॥
 कदा क्षत्रधियं नरमा वरुणं करामहे ।
 मृळीकार्योश्चक्षसम् ॥ ५ ॥
 तदिव समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः ।
 धृतमताय द्वाशुपे ॥ ६ ॥
 वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् ।
 वेद नायः संमुद्रियः ॥ ७ ॥
 वेद मासो धृतमतो द्वादश प्रजावतः ।
 वेदा य उपजायते ॥ ८ ॥
 वेद पातस्य पतेनिमुतोऽप्यस्य वृहत्तः ।
 वेदा ये अप्यासते ॥ ९ ॥
 नि वंसाद् धृतमतो वरुणः पुर्याकुस्वा ।
 साप्राज्याय सुमृतः ॥ १० ॥
 धनो विभ्याग्वृता विविथां अमि वंदयति ।
 एतानि वा च वर्या ॥ ११ ॥

स नो विभवाहा सुकृतु रावित्यः सुपर्या करत् ।
 प्र ण आर्युपि तारिपत् ॥ १२ ॥
 विश्वं द्रापि हिरेण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम् ।
 परि स्पशो नि वेदिरे ॥ १३ ॥
 न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम् ।
 न देवमभिमातयः ॥ १४ ॥
 उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे अस्मभ्या ।
 अस्माकमुदरेष्वा ॥ १५ ॥
 परां मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यतीरनु ।
 इच्छन्तीरुचक्षसम् ॥ १६ ॥
 सं नु वोचावहे पुनर्यतो मे मभवाभृतम् ।
 होतेव क्षदसे प्रियम् ॥ १७ ॥
 दर्श तु विश्वदर्शतं दर्श रथमधि क्षमि ।
 एता जुपत मे गिरः ॥ १८ ॥
 इमं मे वरुण क्षुधी हवमघा च मृळय ।
 त्वामवस्युरा चके ॥ १९ ॥
 त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च गमश्च राजसि ।
 स यामनि प्रति क्षुधि ॥ २० ॥
 उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यम वृत ।
 अवाधमानि जीवसे ॥ २१ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १।१८।१-११)

कूर्मो गार्धमदो, वृत्तमदो वा । (१० दुःस्वप्नशाखिनी) ।
त्रिष्टुप् ।

इदं कृषेरदित्यस्य स्वराजो
 विश्वानि सान्धयभ्यस्तु मद्रा ।
 अति यो मन्द्रो युजधाय देवः
 सुवीरिं मिध्रे परुणस्य भूरैः ॥ १ ॥
 तयं वृते सुमगासः स्याम
 स्याभ्यो वरुण तुष्टुपांसं ।
 उपार्यन उपसां गोमतीनां
 अग्नयो न जरमाणा अनु च्छ ॥ २ ॥

तव स्याम पुरुवीरस्य शर्मन्
 उरुशंसस्य वरुण प्रणेतः ।
 युयं नः पुत्रा अदितेरदग्धाः
 अमि क्षेमघ्नं युज्याय देवाः
 प्र सीमादित्यो अंसुजद् विधर्ताँ
 ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति ।
 न ध्राम्यन्ति न चि मुचन्त्येते
 वयो न पन्तू रघुया परेज्मन्
 वि मच्छ्रेथाय रानामिवागं
 ऋष्यामं ते वरुण खामृतस्यं ।
 मा तन्तुदछेदि वर्यतो धियं मे
 मा मात्रां शार्यपसंः पुर ऋतोः
 अपो सु ग्यक्ष वरुण मियलं
 मत् सज्जलतावोऽनुं मा गृमाय ।
 दामेव वत्साद् वि सुमुग्यर्हो
 नहि त्वद्वारे निमिर्षक्षनेशो
 मा नो वधैर्यरुण ये तं इष्टौ
 पर्नः हृण्यन्तमसुर श्रीणन्ति ।
 मा ज्योतिषः प्रवसुथानि गन्म
 वि पू मृधंः दिश्रयो जीवसे नः
 नमः पुरा तै वरुणोत नूनं
 उतापरं तुविजात प्रवाम ।
 त्वे हि कं पर्वते न धितानि
 अप्रच्युतानि दूळम व्रतानि
 परं ऋणा सावीरध मल्लतानि
 माऽहं राजध्न्यर्कृतेन भोजम् ।
 अव्युष्टा इह मृपसीरुयास
 आ नो जीधान् वरुण तासुं शाधि
 यो मे राजन् युज्यो या सखा या
 स्वप्ने भयं भीरवे महामाह ।

स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा
 त्वं तस्माद्वरुण पाह्यसान् ॥ १० ॥
 माऽहं मघोनो वरुण प्रियस्यं
 भूरिदाह आ विदुं शर्ममापेः ।
 मा रायो राजन्सुयमादव स्यां
 बृहद्वेदेम विदथै सुवीराः ॥ ११ ॥
 ॥ ४ ॥ (शु० ५।८।१-८)
 भाषिमाणः । विष्णुः ।
 प्र सज्जलं बृहद्वचां गर्भारं
 प्रहा प्रियं वरुणाय धुतायं ।
 वि यो जुधानं श्रमितेव चर्म
 उपस्तिरं पृथिवी सूर्याय ॥ १ ॥
 ॥ ५ ॥
 चनेषु व्यन्तारिक्षं ततान्
 धाजमवर्तुसु परं उक्षिपासु ।
 इत्सु क्रतुं वरुणो मृत्स्वभूमि
 विवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥ २ ॥
 ॥ ६ ॥
 नीचीनयारं वरुणः कव्यं
 प्र संसर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
 तेन विभ्वस्य भुवनस्य राजा
 ययं न वृष्टिर्गुनसि भूमं ॥ ३ ॥
 ॥ ७ ॥
 उनसि भूमि पृथिवीमुत धां
 यदा दुग्धं वरुणो वप्सादित् ।
 समध्रेणं वसतु पर्वतासः
 तविपीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥ ४ ॥
 ॥ ८ ॥
 इमाम् प्वासुरस्यं धृतस्यं
 मर्दो मायां वरुणस्य प्र योचम् ।
 मानेनेव तस्थिषाँ अन्तरिक्षे
 वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥ ५ ॥
 ॥ ९ ॥
 इमाम् नु कवितमस्यं मायां
 मर्दो देवस्य नक्रिषा दधयं ।
 एकं यदुहा न पुण्येयीः
 आसिञ्चन्तारिवनयः समुद्रम् ॥ ६ ॥

अर्थम्यं वरण मिथ्यं वा
सखायं वा सदमिद् भ्रातरं वा ।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा
यत् सीमार्गश्चक्रमा शिश्रथस्तत्
कितवासो यद्रिरिपुर्न द्वीवि
यद् वा वा सत्यमुत यन्न विश्व ।
सर्वा ता वि ध्वं शिथिरेवं देव
अर्धा ते स्याम वरण प्रियासः

॥ ५ ॥ (ऋ० ७८६।१-८)

मेनावरुणर्वासण । शिश्रुपू ।

धीरा त्वस्य महिना जनुंयि
वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्धी ।
प्र नाकमृष्वं जुनुदे वृहन्तं
द्विता नक्षत्रं पप्रथञ्च भूमं
उत स्वयां तन्वाहु सं वंदे तत्
कदा न्वनुतर्वरणे भुवानि ।
किं मे हृद्यमहृणानो जुपेत
कदा मृळीकं सुमनां अमि ख्यम्
पृच्छे तदेनो वरण दिहक्षु
उपो पमि चिकितुषो विपृच्छम् ।
सुमानमिमे क्वयश्चिदाहुः
अयं ह तुभ्यं वरणो हणीते
किमार्ग आस वरण ज्येष्ठं
यत् स्तोतारं जिघांससि सखायम् ।
प्र तन्मे वोचो दृळम स्वधावो
अयं त्वानेना नमसा नुर इयाम्
अयं हुग्धानि पित्र्यां सृजा नो
अयं या अयं चक्रमा तुनुभिः ।
अयं राजन् पशुतुपं न तापुं
सृजा वरसं न दासो वसिष्ठम्
न न स्यो दक्षो वरण धृतिः सा
सुरा मन्वृषिर्नादक्षो अयिषिः ।

अस्ति ज्यायान् कर्नायस उपारे

स्वप्नश्चनेदनुतस्य प्रयोता ॥ ६ ॥

अरं दासो न मीळ्हुये कराणि

॥ ७ ॥

अहं वेधाय भूण्येऽनागाः ।

अचेतयदचितो देवो अयो

गृसं राये क्वयितरो जुनाति ॥ ७ ॥

अयं सु तुभ्यं वरण स्वधावो

॥ ८ ॥

हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।

शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु

युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

॥ ६ ॥ (ऋ० ७८७।१-७)

रदत् पृथो वरणः सूर्योय

॥ १ ॥

प्राणींसि समुद्रियां नदीनाम् ।

सगो न सृष्टो अर्षतीर्हृतायन्

चकारं महीरवनीरहभ्यः ॥ १ ॥

आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत्

॥ २ ॥

पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससुवान् ।

अन्तर्मही वृहती रोदसीमे

विश्वा ते धाम वरण प्रियाणि ॥ २ ॥

परि स्पशो वरणस्य सादिष्टा

॥ ३ ॥

उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके ।

श्रुतावानः क्वयो यक्षधाराः

प्रचेतसो य इपर्यन्त मन्म ॥ ३ ॥

उवाच मे वरणो मेधिराय

॥ ४ ॥

त्रिः सप्त नामाख्या विभक्ति ।

विद्वान् पदस्य गुह्या न वोचत्

युगाय विप्र उपराय शिक्षन् ॥ ४ ॥

तिष्ठो धावो निहिता अन्तरस्मिन्

॥ ५ ॥

तिष्ठो भूर्मीरुपरुः पार्ङ्गिधानाः ।

गृसो राजा वरणद्यक्र पतं

विपि प्रेहं हिरण्ययं शुभे कम् ॥ ५ ॥

अथ सिन्धुं वरुणो घौरिव स्याद्
 द्रुप्सो न श्वेतो मृगस्तुधिष्मान् ।
 गम्भीरदांसो रजसो विमानः
 सुपारक्षत्रः सतो अस्थ राजा
 यो मृळ्याति वक्रुषे चिदागौ
 वयं स्याम वरुणे अर्नागाः ।
 अनु प्रतान्यदितेऋधन्तो
 युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ७ ॥ (श्र० ७।८।१-७) [पाठविमोचनी] ।

प्र शुन्धुं वरुणाय प्रेष्यं
 मति वसिष्ठ मीळुषे भरस्व ।
 य ईमर्धाञ्जं करते यजत्र
 सहस्रामधं वृषणं वृहन्तम्
 अधा न्वस्य सहशं जगन्वान्
 अग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि ।
 स्वयं दद्रमप्रधिपा उ अन्धो
 अमि मा वपुर्दृशये निनीयात्
 धा यदुहाय वरुणश्च नावं
 प्र यत् संमुद्रमीरयाय मध्यम् ।
 अपि यदयो स्तुमिध्वराव
 प्र प्रेह ईडरयावह शुभे कम्
 वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधात्
 ऋषि चकार स्वपा महोमिः ।
 स्तोतारं विप्रः सुदिनये अद्वां
 याद्वा धावस्ततनन यादुपासः
 वः स्यानि नो सुषया वम्व
 सचावहे यद्वृकं पुरा दित् ।
 वृहन्तं मानं यरण स्वधावः
 सहस्रवारं जगमा गृहं ते

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

य आपिनितयो वरुण मियः सन्
 त्वामागांसि हृणवत् सन्वा ते ।
 मा त एनस्वन्तो योक्षन् भुजेम
 यन्धि प्मा विप्रः स्तुवते वरुधम्
 ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो
 व्यसत् पाशं वरुणो मुमोचत् ।
 अथो वन्वाना अदितेरुपस्याद्
 युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥ (श्र० ७।८।१-२)

गयत्री, ५, जगती ।

मो पु वरुण मुन्मयं गृहं राजद्बृह गमम् ।

मृळा सुक्षत्र मृळ्यं ॥ १ ॥

यदेमि प्रस्फुरन्नेव हतिने प्मातो अद्रियः ।

मृळा सुक्षत्र मृळ्यं ॥ २ ॥

कत्वः समह दीनतां प्रतीपं जंगमा शुचे ।

मृळा सुक्षत्र मृळ्यं ॥ ३ ॥

अपां मध्यं तस्त्रियांसं वृष्णाविदुज्जितारम् ।

मृळा सुक्षत्र मृळ्यं ॥ ४ ॥

यत् किं चेदं वरुण देव्ये जने

अमिद्रोह मनुष्याश्चरामसि ।

अर्विन्ती यत् तय धर्मा युयोपिम

मा नस्तस्मादेनसो देव रीरियः ॥ ५ ॥

॥ ९ ॥ (श्र० ८।१।१-२०)

नामाः षाण् । महाशक्तिः ।

असा ऊ पु प्रभृतये वरुणाय मृळ्यो

अर्चा विदुष्टेभ्यः ।

यो धीता मारुपाणां पश्वो गार्हय रसति

नर्मन्तामन्यके संमे ॥ १ ॥

तम् पु संमना गिरा पितृणां च मर्गमिः ।

नामाकस्य प्रदीस्तिमि-र्व. सिग्धुतामुपेदये

सत्तत्संसा स मध्यमो नर्मन्तामन्यके संमे ॥ २ ॥

स क्षपः परि पत्यजे न्युक्तो मायया क्षे
 स विश्वं परि दर्शतः ।
 तस्य वेनीरनुं व्रत—मुपस्तिन्नो अयर्धयन्
 नभन्तामन्यके संभे ॥ ३ ॥
 यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शतः ।
 स मातां पृथ्व्यं पदं तद्वरणस्य सप्त्यं
 स हि गोपाह्वेयो नभन्तामन्यके संभे ॥ ४ ॥
 यो धर्ता भुवनानां य उन्नाणामपीच्या ३
 वेद नामानि गुह्यां ।
 स कविः काव्यां पुरु रूपं धौरिव पुष्यति
 नभन्तामन्यके संभे ॥ ५ ॥
 यस्मिन् विश्वानि काव्यां चक्रे नाभिरिव श्रिता ।
 त्रितं जुनी संपर्यत व्रजे गावो न संयुजे
 युजे अश्वान् अयुक्षत नभन्तामन्यके संभे ॥ ६ ॥
 य आस्वत्कं आशये विश्वां ज्ञातार्येवाम् ।
 परि धामानि मर्षुशद् वरणस्य पुरो गये
 विश्वे देवा अनु व्रतं नभन्तामन्यके संभे ॥ ७ ॥
 स संमुद्रो अपीच्यं—स्तुरो घामिव रोहति
 नि यदासु यजुर्देधे ।
 स माया अचिन्ता पदा ऽस्तृणात्राकमारुहत्
 नभन्तामन्यके संभे ॥ ८ ॥
 यस्य श्वेता विचक्षणा तिस्रो भूमीराधिक्षितः ।
 त्रिरुत्तराणि प्रप्रतु—वरुणस्य ध्रुवं सद्ः
 स सप्तानामिरज्यति नभन्तामन्यके संभे ॥ ९ ॥
 यः श्वेतो अर्धनिर्णिज—श्चक्रे कृष्णो अनु व्रता ।
 स धामं पृथ्व्यं ममे यः स्कम्भेन वि रोदसी
 अजो न घामधारय—नभन्तामन्यके संभे ॥ १० ॥
 ॥ १० ॥ (ऋ० ८।४१।१-३)
 नामाङ्कः काव्यः, अर्चना आश्रयो वा । त्रिष्टुप् ।
 अस्तृणाद् घामस्तुरो विश्ववेदा
 अर्भिमीत परिमाणं पृथिव्याः ।

आसीद्वद् विश्वा भुवनानि सुभ्राद्
 विश्वेत् तानि वरणस्य व्रतानि ॥ १ ॥
 एवा चन्दस्य वरणं बृहन्तं
 नमस्या धीरममृतस्य गोपाम् ।
 स नः शर्म त्रिवरुथं वि र्यसत्
 पातं नो घायापृथिवी उपस्थं ॥ २ ॥
 इमां धियं दिक्षमाणस्य देय
 क्रतुं दक्षं वरुण सं दिशाधि ।
 ययाति विश्वां दुरिता तरेम
 सुतर्माणमधि नावं वहेम ॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० ८।६१।११ उत्तरार्धस्य १२)

श्रियमेध आश्रितवः । पंक्तिः ।

वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूपत
 वत्सं संदिश्वरीरिव (उत्तरार्धं) ॥ ११ ॥
 सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।
 अनुक्षरन्ति काकुर्द सुम्यं सुपिरामिव ॥ १२ ॥

॥ १२ ॥ (ऋ० १०।१२।१५,७-८)

अभि-वरुण-सोमा । त्रिष्टुप्, ७ अगती ।

निर्माया उ त्वे असुरा अभूवन्
 त्वं च मा वरुण कामयांसि ।
 ऋतेन राजन्नृतं विविञ्चन्
 मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि ॥ ५ ॥
 कविः कवित्वा द्विवि रूपमासंजत्
 अप्रभृती वरुणो निरपः सृजत् ।
 क्षेमं कृण्वाना जनयो न सिन्धवः
 ता अस्य वर्ण शुच्यो भरिभ्रति ॥ ७ ॥
 ता अस्य ज्येष्ठमिन्द्रियं संचन्ते
 ता ईमा क्षेति स्वधया मर्दन्तीः ।
 ता इ विशो न राजानं वृणाना
 धीभस्तुयो अप घृषादतिघ्न ॥ ८ ॥
 (५९/८)

॥ १३ ॥ (वा० य० ४।३६)

वरुणस्योत्तमर्मेनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्यो
वरुणस्य ऋतुसदन्वसि
वरुणस्य ऋतुसदन्मसि
वरुणस्य ऋतुसदन्मा सीद ॥ ३६ ॥

॥ १४ ॥ (वा० य० ८।२३ [तू. व.] ।)

नमो वरुणायाभिष्टितो वरुणस्य पाशः ॥ २३ ॥

॥ १५ ॥ (वा० य० १०।७)

सधमादो घुञ्जिनीराप एता
अनाधृष्टा अपस्यो वसनाः ।
पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्यं
अपाथं शिशोर्मातृतास्यन्तः ॥ ७ ॥

॥ १६ ॥ (वा० य० १०।७१-७१)

सविता वरुणो दधृज्यमानाय दाशुपे ।
आदत्त नमुचेवसु सुप्राप्ता यलमिन्द्रियम् ॥ ७१ ॥
वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भर्गेन सविता ध्रियम् ।
सुप्राप्ता यशस्ता बलं दर्धाना युद्धमाशत ॥ ७२ ॥
विद्या शरस्यं पितरं वरुणं शतवृष्णयम् ।
तेना ते तन्वेत्ते शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं
षडिष्टं अस्तु यालिति ॥ ३ ॥

॥ १८ ॥ (अथर्व० १।१०।१-३)

१-२ शिष्टम्, ३ ऋग्मन्तो अत्रष्टम्, ४ अत्रष्टम् ।

अयं देवानामहुरो वि राजति
पश हि सत्या वरुणस्य राश्वः ।
ततस्पदि ब्रह्मणा शशादान
उग्रस्यं मन्योरुद्रिमं नयामि ॥ १ ॥
नर्मस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यये
पिभ्यं ह्युग्र निचिकेपिं द्रुग्धम् ।
सहस्रमन्यान् प्र सुवामि साकं
शतं जीयानि शरदस्नघायम् ॥ २ ॥

यदुवन्थानृतं जिह्यां वृजिनं युहु ।
राश्वस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्जामि वरुणाद्बहम् ॥ ३ ॥
मुञ्जामि त्वा वैश्वानरार्द्रर्णवार्महृतस्पातं ।
सजातानुग्नेहा वद ब्रह्म चापं चिकीहि नः ॥ ४ ॥

॥ १९ ॥ (अथर्व० १।१०।३) अत्रष्टम् ।

इतश्च यदमुतश्च यद्वधं वरुण यावय ।
वि महच्छर्मं यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥ ३ ॥

॥ २० ॥ (अथर्व० ४।१५।१०)

पथपदानुग्नर्मा सुरिह ।

अपो निपिञ्चसुरः पिता नः भवसन्तु
गर्गा अपां वरुणाच नीचीरपः सृज ।
वदन्तु पृथिव्याहवो मण्डका शरिणानु ॥ १२ ॥

॥ २१ ॥ (अथर्व० ५।११।१-११)

(प्रश्रोतम्) । शिष्टम्, १ शुरिह, ३ पथि, ६ पथपदा
आतेराश्वरी, ११ व्यवधाना पदपदा अत्यष्टिः ।

कथं महे असुरायाप्रवीरिह
कथं पित्रे हरये त्येपनृगः ।
पृथि वरुण दक्षिणां ददायान्
पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः ॥ १ ॥
न कामेन पुनर्मघो भवामि
सं चक्षे कं पृथिमेतामुपाजे ।
केन तु त्वमघवन् काव्येन
केन जातेनासि जातवैदाः ॥ २ ॥
सत्यमहं गभीरः काव्येन
सत्यं जातेनासि जातवैदाः ।
न मे दासो नायो महित्वा
ग्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥ ३ ॥
न त्वदन्यः क्वचित्तरो न मेघया
धीरतरो वरुण स्वधावन् ।
त्वं ता विश्वा भुषेनानि वेत्य
स चिन्नं त्यजने मायी विमाय ॥ ४ ॥

त्वं ह्यङ्गुलं चरुण स्वधापुन
 विश्वा चेश्य जनिमा सुप्रणीते ।
 किं रजस एना परो अन्वदस्ति
 एना किं परेणावरमसुर
 एकं रजस एना परो अन्वदस्ति
 एना पर एकेन दुर्णशं चिदुर्वाक् ।
 तत् ते विद्वान् चरुण प्र ब्रवीमि
 अधोवचसः पुणयो भवन्तु
 नीचैर्दासा उप सर्पन्तु भूमिम्
 त्वं ह्यङ्गुलं चरुण ब्रवीषि
 पुनर्मघेभ्यवद्यानि भूरि ।
 मो पु पूर्णैरभ्येकृतवतो भुत्
 मा त्वां वोचन्नराधसं जनासः
 मा मां वोचन्नराधसं जनासः
 पुनस्ते पृथिं जरितर्ददामि ।
 स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीभिः
 अन्तर्विश्वांसु मानुषीषु दिक्षु
 आ ते स्तोत्राण्युर्घतानि यन्तु
 अन्तर्विश्वांसु मानुषीषु दिक्षु ।
 वेदि नु मे यन्मे अर्दत्तो
 असि युज्यो मे सप्तपदः सर्वाऽसि
 सुमा नौ वन्धुर्वरुण सुमा जा
 वेदाहं तद्यत्राविषा सुमा जा ।
 वदामि तद्यत्ते अर्दत्तो
 अस्मि युज्यस्ते सप्तपदः सर्वाऽसि
 देवो देवाय गृणते यद्योधा
 यिमो यिमाय स्तुपते सुमेधाः ।
 भर्जीजनो हि चरुण स्वधापुन
 अर्घपाणं पितरं देयवर्धुम् ।
 तस्मा उ राधः कृणुहि सुमहास्तं
 तस्मा नो भानि परमं च वन्धुः

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ २१ ॥ (अथर्व० ५।१४।४)

चतुष्पदाऽतिशक्वरो ।

चरुणोऽयामधिपतिः स मावतु ।

अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां

पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां

चिरयामस्यामाकृत्यां

अस्यामाशिष्यस्यां देवहृत्यां स्यादां ॥ ४ ॥

॥ २२ ॥ (अथर्व० ५।११-९)

बृहद्वि० षष्ठी । त्रिष्टुप्, ५ पराबृहती त्रिष्टुप्, ७ विराट्,
 ९ अथर्वाना षट्पदा अत्यष्टिः ।

ऋधंमन्त्रो योनिं य आवभूव

अमृतोसुवर्धमानः सुजन्मा ।

अदग्धासुध्राजमानोऽह्वेव

त्रितो धृता दाधार त्रीणि ॥ १ ॥

आ यो धर्माणि प्रथमः सुसाद

ततो वपूषि कृणुपे पुरुणि ।

धास्युयोनिं प्रथम आ विवेशा

यो वाचमनुदितां चिकेत ॥ २ ॥

यस्ते शोकाय तन्व्यं रिरेच

क्षुरक्षिरण्यं दुक्षयोऽनु स्वाः ।

अत्रो दधेते अमृतानि नाम

अस्मे वस्त्राणि विश पर्यन्ताम् ॥ ३ ॥

प्र यदेते प्रतरं पुष्यं गुः

सदः सदः आतिष्ठन्तो अजुष्यम् ।

कृषिः शुपस्यं मातरां रिहाणे

जाम्यै धुष्यं पतिमेरयेधाम् ॥ ४ ॥

तद् पु ते महत् पृथुजमममः

कृषिः काव्येना कृणोमि ।

यत् सम्यञ्चापमियन्तायमि क्षां

अत्रा मदी रोधन्मो वायुधेनें ॥ ५ ॥

(१०१०)

सप्त मर्यादाः कवचयस्ततश्चुः

तासामिदेकामभ्यं हुरो गांव ।

आयोद्धं स्क्रम्भ उपमस्य नीडे

पथां विसृगो घुरणेपु तस्यौ

॥ ६ ॥

उतामृतासुर्वतं पमि कृषवन्

असुरात्मा तन्युस्तसुमद्रुः ।

उत वां शक्रो रत्नं दधाति

ऊर्जपां वा यत् सचते हविर्दाः

॥ ७ ॥

उत पुत्रः पितरं श्रममीडे

ज्येष्ठं मर्यादमहयन्स्वस्तये ।

दर्शानु ता वरुण यास्ते विष्टा

आयर्षततः कृणवो वपूयि

॥ ८ ॥

अर्धमर्धेन पर्यसा पृणक्षि

अर्धेन शुष्म धर्षसे अमुर ।

अर्षिं घृघाम शगिमयं सखायं

घरणं पुत्रमर्दित्या श्विष्टम् ।

कविशस्तान्यस्मै वपूयि

अवोचाम रोदसी सत्यवाचा

॥ ९ ॥

॥ ७४ ॥ (अधर्षं ५।१।१-९)

त्रिष्टुप्, ९ मुरिक्वणतिप्रापता त्रिष्टुप् ।

तद्विदांस भुर्वनेषु ज्येष्ठं

यतो जूह उप्रस्त्वेषनम्णः ।

सुयो जज्ञानो नि रिणाति शत्रुन्

अनु यदैनं मर्दन्ति विश्व ऊर्माः

॥ १ ॥

धावुघानः शर्वसा मर्योजाः

शत्रुंशंसार्थं भ्रियसं दधाति ।

अन्येनद्य ध्यनञ्च सस्ति

सं ते नयन्त प्रमृता मर्देषु

॥ २ ॥

त्वे ऋतुमर्षिं पृञ्चन्ति भारे

द्विर्यवेते त्रिर्मयन्त्युमाः ।

७०

स्वादोः स्वादीयः स्वादुर्ना सृजा

समृदः सु मधु मधुतामि यौधोः

॥ ३ ॥

यदि चितु त्वा घना जयन्तं

रणेरणे अनुमर्दन्ति विप्राः ।

ओर्जायः शुष्मिन्स्त्रियमा तनुष्व

मा त्वा दमन् दुरेवासः कशोकाः

॥ ४ ॥

त्वया वयं शाशासहे रणेपु

मृपश्यन्तो युधेन्यानि भारे ।

चोदयामि त आर्युधा वचोभिः

सं ते शिशामि घर्षणा वयोसि

॥ ५ ॥

नि तद्दधिपेऽचरे परे च

यस्मिन्नाविद्यावसा दुरोणे ।

आ स्यापयत मातरं जिगत्तुं

अत इन्वत कर्वराणि भारे

॥ ६ ॥

स्तुप्य वप्येन पुकृत्वर्मानं

समृभ्याणामिनतंममात्तमाप्यानाम् ।

आ दर्शति शर्वसा मर्योजाः

प्र संश्रति प्रतिमानं पृथिव्याः

॥ ७ ॥

इमा ब्रह्म बृहर्दियः कृणवत्

इन्द्राय शूपमश्रियः स्वयोः ।

महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा

तुरीञ्चिद्विभ्वमण्यत् तपस्वान्

॥ ८ ॥

पृवा महान् बृहर्दियो अयवा

अवोचरसां तन्युमिन्द्रमेघ ।

स्वसांये मातरिर्मरी अरिप्रे

द्विन्यन्ति चने शर्वसा धर्षयन्ति च

॥ ९ ॥

॥ १५ ॥ (अधर्षं १।१।१-४)

मृवश्रिः । यमो (वा) । अनुष्टुप्, १ षड्मती अनुष्टुप्,

१ अनुष्टुप् ।

मर्गमस्या रचं आदिप्यार्थं घृष्टार्दिय अर्जम् ।

महार्युध इय पर्यतो ज्योक् पितृप्यान्ताम् ॥ १ ॥

(६०११)

पूषा तै राजन् कन्याऽधूर्नि धूयतां यम ।
 सा मातुर्वध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः ॥ २ ॥
 पूषा तै कुलपा राजन्तामु ते परि ददासि ।
 ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात् ॥ ३ ॥
 अक्षितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गर्यस्य च ।
 अन्तःक्रोशमिव जामयोऽपि नहामि ते भगम् ॥४॥

॥ २६ ॥ (अथर्व० ४।१६।१-९)

ब्रह्मा । वरुणः, सत्यावृतान्वीक्षणम् । त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप्,
 ५ भुरिक्, ७ जगती, ८ त्रिपादमहावृहती, ९ विराजाम
 त्रिपाद्गायत्री ।

वृहन्नैपामधिष्ठाता अन्तिकारिव पश्यति ।
 य स्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वे देवा इदं विदुः ॥ १ ॥

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति
 यो निलायं चरति यः प्रतङ्गम् ।

द्वौ सैनिपद्य यन्मन्यते
 राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः ॥ २ ॥

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राक्षः
 उतासौ चौर्व्यूहती दुरेभन्ता ।

उतो संमुद्रौ वरुणस्य कुक्षी
 उतासिन्नल्प उदके निर्लीनः ॥ ३ ॥

उत यो धार्मतिसर्पीत् परस्तात्
 न स मुच्यते वरुणस्य राक्षः ।

द्विपस्पशः प्र चरन्तीदमस्य
 सदद्याक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥ ४ ॥

सर्वे तद्राजा वरुणो वि चष्टे
 यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात् ।

संख्याता अस्य त्रिमिषो जनानां
 अस्तानिभ्य भ्यमी नि मिनोति तानि ॥ ५ ॥

ये ने पातां वरुण हससंत
 त्रेधा निमन्ति पिपिता रुदन्तः ।

छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं
 यः संत्यवाचति ते रजन्तु ॥ ६ ॥

शतेन पाशैरभि धेहि वरुणं
 मा तै मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः ।

आस्तां जाल्म उदरं शंसयित्वा
 कोशं इवाद्यन्तः परिकृत्यमानः ॥ ७ ॥

यः संप्राम्योक्तु वरुणो यो व्याम्योक्तु
 यः सैवेदयोक्तु वरुणो यो विदेदयोक्तुः ।

यो देवो वरुणो यश्च मातुपः
 तैस्त्वा सर्वैरभि प्यामि पाशैः ॥ ८ ॥

असावामुप्यायणामुप्याः पुत्र ।
 तातु ते सर्वाननुसंदिशामि ॥ ९ ॥

॥ २७ ॥ (अथर्व० ४।४०।३)

शुकः । त्रिष्टुप् ।

ये पृश्नाज्जुह्वेति जातवेदः
 प्रतीचर्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।

वरुणमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां
 प्रत्यर्गैरान् प्रतिसुरेणं हन्मि ॥ ३ ॥

॥ २८ ॥ (अथर्व० १०।५।१०)

सिन्धुदीपः । अथर्वाना पसपदा विपरीतपादलक्ष्मा वृहती ।

वरुणस्य भ्रातृ रथं ।
 अपां शुक्रमापो देवीर्वचो अस्मात्सु धत्त ।

प्रजापतेयो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ १० ॥

वरुण-सहचारी-देवगणः

(१) इन्द्राणीवरुणान्यद्वाप्यः ।

॥ २९ ॥ (अ. १।२९।१२)

देवातिथिः ऋषयः । गायत्री ।

इहेन्द्राणीमुप ह्ये वरुणानीं स्वस्तये ।
 अमार्यां सोमपीतये ॥ १२ ॥
 (१०४९)

(२) वरुणमित्रार्यमणः ।

॥ ३० ॥ (ऋ० १।१।१२-३, ७-९)

काण्डो घोः । गायत्री ।

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

नू चित् स दभ्यते जनः

॥ १ ॥

यं याहुर्तेव पिप्रति पान्ति मर्त्यै रियः ।

अरिष्टः सर्वे पघते

॥ २ ॥

वि दुर्गा वि द्विपः पुरो भ्रन्ति राजान पयाम् ।

नर्यन्ति दुरिता तिरः

॥ ३ ॥

कथा राघाम सखायः स्तोमं मिप्रस्यार्यम्णः ।

महि प्सरो वरुणस्य

॥ ७ ॥

मा घो भ्रन्तं मा शपन्तं प्रति घोचे देवयन्तम् ।

सुमनैरिद् व वा विवासे

॥ ८ ॥

चतुरश्रिद् ददमानाद् विभीयादा निघातोः ।

न दुर्काय स्पृहयेत्

॥ ९ ॥



मनः

॥ १ ॥ (वा० य० ३।५३-५५)

मनो न्वाह्वामहे नाराशंसेन स्तोमेन ।

पितृणां च मग्मभिः

॥ ५३ ॥

आ न एतु मनः पुनः क्रत्वै दक्षाय जीवसे ।

ज्योक् च स्वयं द्यौ

॥ ५४ ॥

पुनर्नेः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः ।

जीवं द्यातरसचेमहि

॥ ५५ ॥

॥ २ ॥ (वा० य० ३।४।१-६)

यजाम्रतो दुरमुदैति दैव्यं

तदु सुतस्य तथैवेति ।

दुरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

॥ १ ॥

येन कर्माण्यपसां मनीषिणां

यश्चे हृष्यन्ति विदधेपु धीराः ।

यदपुर्वे यक्षमन्तः प्रजानां

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

॥ २ ॥

यत् प्रजानमुत चेतो धृतिश्च

यज्ज्योतिरन्तरमूर्ते प्रजासु ।

यस्मात्प्र ऋते किञ्चन कर्म क्रियते

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

॥ ३ ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्

परिशृहीतममूर्तेन सर्वम् ।

येन यद्यस्तायते सुतदौता

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

॥ ४ ॥

यस्मिन्मूचः साम यर्जुंश्चि

यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभार्विवााराः ।

यस्सिद्धिचर सर्वमोर्ते प्रजानां

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

॥ ५ ॥

सुपारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्
नेनीयतेऽभीशुभिर्वीजिन इव ।

दृष्ट् प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिवसैकत्वमस्तु

॥ ३ ॥ (अथर्व० २।३०।१)

प्रजापतिः । पद्यापंक्तिः ।

यथेदं भूम्या अधि तृणं घातौ मथायति ।

एवा मथनामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो
यथा मन्नापंगा अस्तः

॥ ६ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० ७।११।४)

शौनकः । अनुष्टुप् ।

यहो मनः परागतं यद्वज्रमिह वेह वा ।

यद् आ वर्तयामसि मयि घो रमतां मनः ॥ ४ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० ७।३६।१)

अथर्वा । अक्षि, मनः । अनुष्टुप् ।

अश्व्यौ नौ मधुसंकाशे अनौकं नौ समंजनम् ।

॥ १ ॥ अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इशौ सदासति ॥ १ ॥

मन आवर्तनम्

॥ १ ॥ (श्रु० १०।५८।१-१९)

अन्तः श्रुतमन्तुर्विप्रमन्तुर्गोपायनः । अनुष्टुप् ।

यत् ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १ ॥

यत् ते दिवं यत् पृथिवीं मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ २ ॥

यत् ते भूमिं चतुर्भुष्टिं मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ३ ॥

यत् ते चतस्रः प्रदिशो मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ४ ॥

यत् ते सप्तद्वर्णं मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ५ ॥

यत् ते मतीषीः प्रयतो मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ६ ॥

यत् ते अपो यदोपधीः मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ७ ॥

यत् ते सूर्यं यदुपसं मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ८ ॥

यत् ते पर्वतान् बृहतो मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ९ ॥

यत् ते विश्वमिदं जगन्मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १० ॥

यत् ते पराः परावतो मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ११ ॥

यत् ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम् ।

तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १२ ॥



कृषि-मंत्री

पर्जन्यः

॥ १ ॥ (ऋ० ५।४१।१३-१४)

भौमोऽग्निः । त्रिशुप् ।

प्र सू महे सुशरणाय मेघां
गिरं भरे नव्यसौ जायमानाम् ।

य आह्वना दुहितुर्वक्षणांसु
रूपा मिनानो अरुणोद्विदं नः

॥ १२ ॥

प्र सुपुतिः स्तनयन्तं रुवन्तं
हृलस्पतिं जरितनूनमश्याः ।

यो अंधिमौ उदनिमां इर्यति
प्र विद्युता रोदसी उक्षर्माणः

॥ १४ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० ५।८२।१-१०)

भौमोऽग्निः । त्रिशुप् ; २-४ अगती ; ९ अनुशुप् ।

अच्छां वद त्वसं गीमिरामिः
स्तुहि पर्जन्यं नमसा विधास ।

कानेकदद् वृषमो जीरदान्
रेते दधात्योर्धायु गर्भम्

॥ १ ॥

यि पृक्षान् हंस्युत हन्ति रक्षसा
यिभ्यं यिमाय भुवनं मृदायधात् ।

उतानागा ईपते वृष्ण्यावतो

यत् पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्टतः

॥ २ ॥

रथीव कश्यादवो अभिक्षिपन्
आविर्दुतान् कणुते वर्ष्यां अहं ।

दुरात् सिंहस्य स्तनया उदीरते
यत् पर्जन्यः कणुते वर्ष्यं नमः

॥ ३ ॥

प्र घाता वान्ति पतयन्ति विद्युतः
उदोपधीर्जिह्वेते पिन्वते स्यः ।

इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते
यत् पर्जन्यः पृथिवीं रेतसारति

॥ ४ ॥

यस्य व्रते पृथिवी ननमीति

यस्य व्रते शकवृज्जमुरीति ।

यस्य व्रत ओपधीर्विश्वरूपाः

स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ

॥ ५ ॥

द्वियो नो वृष्टिं मरुतो रसीष्व्

प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।

अपार्दितेन स्तनपित्नुनेहि

अपो निषिचप्रसुरः पित्ता नः

॥ ६ ॥

(६०८४)

अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धाः
 उक्त्वता परि क्षीया रथेन
 हति सु कर्ष विपितं न्यञ्जं
 समा भयन्तुद्रतो निपादाः
 महान्तं कोशामुर्वचा नि पिञ्च
 स्यन्दन्तां कुल्या विपिताः पुरस्तात् ।
 घृतेन चाघापृथिवी व्युन्धि
 सुप्रपाणं भयत्वज्याभ्यः
 यत् पर्जन्य कनिष्कदत्
 स्तनयन् हंसिं दुष्कृतः ।
 प्रतीदं विश्वं मोदते
 यत् किं च पृथिव्यामधि
 अर्षर्षीर्वर्षमुदु पू गृभाय
 अर्धन्वान्यत्येतपा उ ।
 अजीजन ओर्षधीर्भोजनाय
 कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीपां

॥ ३ ॥ (श्लो ७।१०।१-६)

मैत्रावरुणिवंसिष्ठ, (इष्टिकामः) कुमारः आमेयो वा ।
 त्रिभुव् ।

तिस्रो घात्रः प्र घद ज्योतिरप्रा
 या पतद् दुहे मधुद्रोघमूर्धः ।
 स वत्सं कृण्वन् गर्भमोर्षधीनां
 सुघो जातो वृषभो रौरवीति
 यो वर्धेन ओर्षधीनां यो अपां
 यो विश्वस्य जगतो देव ईश ।
 स त्रिघातुं शरणं शर्मं यंसत्
 त्रिवर्तुं ज्योतिः स्वमिष्ट्यस्मे
 स्तुरीरं त्वद् भवति सूतं उ त्वद्
 यथायशं तन्वं चक्र पृषः ।
 पितुः पयः प्रतिगृभ्णाति माता
 तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः

यस्मिन्निर्भानि भुर्षनानि तृषुः
 तिस्रो घात्रेन्द्रिया सुप्रतपः ।
 त्रयः कोशास उपतेर्षनाम्नो
 मर्ष्यः श्रोतम्यमितो विरुद्राम् ॥ ७ ॥
 इदं यत्नः पर्जन्याय स्यराजं
 दूदो अस्तयन्तरं तज्जुजोपत् ।
 मयोमयो पृष्टयः सन्त्यस्मे
 सुपिप्पला ओर्षधीर्देवगोपाः ॥ ८ ॥
 स रेतोधा घृषमः शार्धतीनां
 तस्मिन्नात्मा जर्गतस्तस्युपध्व ।
 तन्मं श्रुतं पातु शतशारदाय
 युयं पात स्यस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

॥ ४ ॥ (श्लो ७।१०।१-३)

मैत्रावरुणिवंसिष्ठ, (इष्टिकामः) कुमारः आमेयो वा । गायत्रीः
 २ पादनिचृत् ।

॥ १० ॥ पर्जन्याय प्रगायत दिवस्पुत्राय मीळहुषे ।

स नो यर्वसमिच्छतु ॥ १ ॥

यो गर्भमोर्षधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् ।

पर्जन्यः पुरुषीणांम् ॥ २ ॥

तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तमम् ।

इळीं नः संयतं करत् ॥ ३ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व १।१।१)

अथर्वो । अनुष्टुप् ।

विद्या शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।

विश्वो ध्वंस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्षसम् ॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व १।१।२)

अथर्वो । पद्यापाक्तिः ।

विद्या शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृण्यम् ।

तेनां ते तन्येकुं शं करं पृथिव्यां तं निवेचनं

यदिष्टे अस्तु बालिति

॥ १ ॥

(६०९९)

॥ ७ ॥ (अथर्व० ३।११।११)

ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योर्दस्यामामृता वयम् ।
व्यहृद् सर्वेण पापमना वि यक्ष्मैण समायुषा ॥११॥

सहचारी देवगणः

(१) मण्डूकाः (पर्जन्यः)

॥ ८ ॥ (अ० ७।१०३।१-१०)

मैत्रावहणिरधिष्ठः । मिष्टुप् ; १ अनुष्टुप् ।

संवत्सर शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूकां अवादिषु ॥१॥

दिव्या अपो अभि यदैनमायुन्
दति न शुष्कं सरसी शयानम् ।

गवामह न मायुर्वत्सिनीनां
मण्डूकानां वगुरत्रा समेति

यदीमिनां उशतो अभ्यवर्षीत्
तृष्यार्धतः प्रावृष्यागतायाम् ।

अम्बलीकृत्या पितरं न पुत्रो
अन्यो अन्यमुप चर्दन्तमेति

अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोः
अपां प्रसृगं यदमन्दिपाताम् ।

मण्डूको यदमिवृष्टः कर्निष्कन्
पृक्षिः संपृक्ते हरितेन वाचम्

यदपामन्यो अन्यस्य वाचं
शाकस्यैव चर्दति शिर्क्षमाणः ।

सर्वे तदैपां समर्धेव पर्व
यत् सुवाचो चर्दयनाध्यन्तु

गोमायुरेको अजमायुरेकः
पृक्षिरेको हरित एक एषाम् ।

समानं नाम विध्नतो विरूपाः
पुरत्रा वाचं पिपिनुर्वर्दन्तः

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे
सरो न पुष्पमभितो चर्दन्तः ।

संवत्सरस्य तदहः पारिष्टु
यमण्डूकाः प्रावृषीणं यभूर्ध

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत
ब्रह्म कृण्वन्तः पखित्सरीणम् ।

अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदानाः
आविर्भवन्ति गुह्या न केचित्

देवहितं जुगुपुर्द्वादशस्य
श्रुतुं नरो न प्र भिनन्त्येते ।

संवत्सरे प्रावृष्यागतायां
तता घर्मा अदनुवते विसर्गम्

गोमायुरदाजमायुरदात्
पृक्षिरदाश्चितो नो चसूनि ।

गवां मण्डूका चर्दन्तः शतानि
सहस्रसावे प्र तिरन्तु आयुः

(२) वातसूर्यपर्जन्याः

॥ ९ ॥ (अ० ७।१०३।१-१०)

शं नो वातः पयतांथं शं नस्तपेतु सूर्यैः ।
शं नः कर्निप्रदहेयः पर्जन्यो अभि वर्षेतु ॥१०॥

(३) पर्वतवातपर्जन्याद्यः

॥ १० ॥ (अथर्व० ३।११।१०)

बसिष्ठः । अनुष्टुप् ।

ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उच्चानशीर्षरीः ।
यातः पर्जन्य आदमिस्ते क्रव्यादमशीशामन् ॥१०॥

(४) मरुपर्जन्यौ

॥ ११ ॥ (अथर्व० ४।१५।४)

अपवा । विराट् पुरस्ताद्बृहती ।

गणास्त्वोपं गायन्तु मारुताः

पर्जन्य घोषिणः पृथक् ।

मर्गां वर्षम्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिमीमनुं

॥ ४ ॥ (६१११)

(५) विश्वेदेवाः मरुतः अग्नीषोमौ वरुणः घातापर्जन्यौ

॥ ११ ॥ (अथर्व० ६।९३।३)

शन्तातिः । त्रिष्टुप् ।

प्रार्यध्वं नो अघाविंपाभ्यो वधात्
विश्वेदेवा मरुतो विश्ववेदसः ।

अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्ष
घातापर्जन्ययोः सुमत्तौ स्याम

॥ ३ ॥

(६) पृथिवी पर्जन्यः

॥ १३ ॥ (अथर्व० ७।१८।१-२)

अथर्वा । चतुष्पाद् भुरिगुणिक् ; २ त्रिष्टुप् ।

प्र नमस्य पृथिवि मिन्हीदुदं दिव्यं नभः ।

उद्गो दिव्यस्य नो धातरीशानो विप्या दृतिम् ॥१॥

न ध्रंस्ततापु न हिमो जघान्

प्र नमतां पृथिवी जीरदानुः ।

आपध्विदस्मै घृतमितक्षरन्ति

यत्र सोमः सदमित्त्रं भद्रम्

॥ २ ॥

(७) घातपर्जन्यान्तरिक्षदिशः

॥ १४ ॥ (अथर्व० ११।६।६)

राश्रुतिः । अनुष्टुप् ।

आतं श्रमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः ।

आशाश्च सर्वो श्रमस्ते नो मुञ्चन्वहंसः

॥ ६ ॥

(८) सविष्ट-उपः-पर्जन्याः

॥ १५ ॥ (अथर्व० १९।१०।१०)

वधिष्ठा । त्रिष्टुप् ।

सं नो श्रेयः सविता प्रार्यमाणः

सं नो भयन्नुपसो विभ्रातीः ।

सं नो पर्जन्यो भयतु प्रजाभ्यः

सं नः शेरव्य पातरेवन्तु शंसुः

॥ १० ॥

कृषिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।३४।१३)

कवय ऐष्यन्, अशो मौजवान् वा । त्रिष्टुप् ।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृपस्य

वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।

तत्र गावः कितयः तत्र जाया

तन्मे विचष्टे सवितायमयः

॥ १३ ॥

शुक्लः; शुक्लसीरौ ।

॥ १ ॥ (ऋ० ५।५७।४-५, ८)

वामदेवो गौतमः । ४ अनुष्टुप्, ५ पुर तणिक्, ८ त्रिष्टुप् ।

शुनं घाहाः शुनं नरः शुनं कृपतु लाङ्गलम् ।

शुनं वरुणा रथ्यन्तां शुनमष्टामुदिक्रय ॥ ४ ॥

शुनासीराविमां धाव्यं जुषेथां यद्विचि चक्रथुः पर्यः ।

तेनेमासुपं सिञ्चतम् ॥ ५ ॥

शुनं नः फाला वि कृपन्तु भूमिं

शुनं कीनाशां अभि यन्तु धादैः ।

शुनं पर्जन्यो मधुना पर्योभिः

शुनासीरा शुनमस्सासु धत्तम्

॥ ८ ॥

॥ २ ॥ (वा० य० ११।६९)

शुनं सु फाला वि कृपन्तु भूमिं

शुनं कीनाशां अभि यन्तु धादैः ।

शुनासीरा हविषा तोशमाना

सुपिप्पला ओषधीः कर्तनास्मै

॥ ९ ॥

स्तिष्ठा ।

॥ १ ॥ (ऋ० ४।५७।६-७)

वामदेवो गौतमः । अनुष्टुप् ।

अथाचीं सुमनो भय स्तीते यन्दीमहे त्वा ।

यथा नः सुमगाऽस्तिति यथा नः सुफलाऽस्तिति ६

(६१४)

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाऽनु यच्छतु ।
सा नः पर्यस्वती दुहा मुचरा मुचरां समाम् ॥७॥

॥ १ ॥ (व० य० ११।६७,६८,७०-७१)

सीरा युजन्ति क्वयौ युगा वि तन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ६७ ॥

युनक्तु सीरा वि युगा तन्वन्
कृते योनौ वपतेह धीजम् ।

गिरा च श्रुष्टिः समरा असन्ने
नेदीय इत्सुण्यः पक्रमेयात् ॥ ६८ ॥

घृतेन सीता मर्धना समज्यतां
विभ्वैर्द्वैरनुमता मुहद्भिः ।

ऊर्जस्वती पर्यसा पिन्वमाना

असान्सीति पर्यसाऽभ्या ववृत्स्व ॥ ७० ॥

लाङ्गलं परीरवत्सुरोवँ सोमपित्सर ।

तदुद्रपति गामर्वि प्रफुर्थ्य च परीरौ

प्रस्यावद्रथवाहणम् ॥ ७१ ॥

कामं कामदुघे घुश्च मित्राय वरुणाय च ।

इन्द्रायाभिव्या पूषे प्रजाम्य औपधीभ्यः ॥ ७२ ॥

(६१३०)





नद्यः

॥ १ ॥ (ऋ० ३।३+११-५, ९, ११-१३)
गाथिनो विश्वामित्र । त्रिष्टुप् । १३ अनुष्टुप् ।

प्र पर्वतानामुशती उपस्थ्यात्
अश्वे इच्च विपिते हासमाने ।
गावेषु शुभ्रे मातरां रिहाणे
विपाट् छतुद्री पर्यसा जवेते
इन्द्रैपिते प्रस्रवं भिक्षमाणे
अच्छां समुद्रं रथ्येव याधः ।
समापणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने
अन्या घाम्न्यामप्येति शुभ्रे
अच्छा सिन्धुं मातृतामभयासं
विपाशमुर्वी सुभगांमग्नम् ।
घत्समिधे मातरां संरिहाणे
संमानं योनिमर्तुं संचरन्ती
धृता घयं पर्यसा पिन्वमानाः
अनु योनिं देवर्तुं चरन्तीः ।
न घर्तवे प्रस्रयः सर्गैकः
क्षिपुधिप्रो नृपो जोहवीति
रमेधं मे घर्तसे तोम्याय
श्रुताघरीरप मुहूर्तमेधैः ।
प्र सिन्धुमच्छां घृती मनीषा
अपस्परुदे बुशिक्षस्य स्रुतः

ओ पु स्वसारः कारवे शृणोत
ययौ घो वुरावनेसा रथेन ।
नि पू नमध्वं भवता सुपारा
अंधो अक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥ १ ॥
यदङ्ग त्वां भरताः संतरेयुः
गुव्यन् ग्रामं ह्यपित इन्द्रजुतः ।
अर्षोदह प्रस्रवः सर्गैकतः
आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥ १ ॥
अतारिधुर्भरता गुव्यवः सं
अमैकत विप्रैः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वन्वमिपयन्ती सुराधा ॥ १ ॥
आ घक्षणाः पूणध्वं यात शीमम् ॥ १ ॥
उक् धं ऊर्मिः शम्वां हन्वापो योक्त्राणि मुंचत ।
माकुष्कृतौ ध्येनसाऽच्यौ शनमारताम् ॥ १ ॥
॥ २ ॥ (ऋ० ५।४१।१)
मीमोऽभिः । त्रिष्टुप् ।
आ धेनयः पर्यसा तूर्ण्यथाः
अमर्धन्तीरप नो यन्तु मघ्यां ।
महो राये वृहतीः सप्तविप्रो
मपोभुयो अरिता जोहवीति ॥ १ ॥
(११००)

॥ ३ ॥ (ऋ० ७।५०।७)

मैश्रावणविर्षसिधः । अतिजगती शकरी वा ।

याः प्रवर्तो निवर्त उद्वर्त
उद्वर्तारनुदकाश्च याः ।
ता असभ्यं पर्यसा पिन्वमानाः
शिया देवीरशिपदा भवन्तु
सर्वा नयो अशिमिदा भवन्तु

॥ ४ ॥ (ऋ० १०।७५।१-९)

सिन्धुसिद्ध प्रेयमेधः । जगती ।

प्र सु धं आपो महिमानमुत्तमं
कारुर्वोचाति सद्ने विवस्वतः ।
प्र सप्तसप्त प्रेधा हि चक्रुः
प्र सृत्वीणांमति सिन्धुरोजसा
प्र तैःऽरद्वर्कणो यातवे पथः
सिन्धो यद्वाजो अन्यद्रवस्त्वम् ।
भूम्या अधि प्रवर्ता यासि सानुना
यदेषामप्रं जगतामिरज्यासि
दिवि स्यनो यतते भूम्योपरि
अनन्तं शुष्मभिर्दियति मानुना ।
अध्रादिय प्र स्तनयन्ति वृष्टयुः
सिन्धुर्पदेति वृष्टमो न रोहवत्
अभि त्वां सिन्धोः शिन्धुमिध्र म्नातरे
याश्चा अर्षन्ति पर्यसेय धेनवः ।
राजैश्च युष्वा नयसि त्वमित् सिञ्च
यदासामप्रं प्रयतामिनक्षसि

॥ ४ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति
शुतुद्रि स्तोमं सचत्ता पदुण्या ।
असिफन्या मरुद्वृधे वितस्तया
वाजोकीये शृणुह्या सुपोर्मया ॥ ५ ॥
तृष्टामया प्रथमं यातवे सञ्चः
सुसत्तर्वा रसरां श्वेत्या त्या)
त्वं सिन्धो कुर्मया गोमती कुर्मु
मेहृत्वा सरथं यामिरीयसे ॥ ६ ॥
श्रुजोत्येनो रुशती महित्वा
परि जयांसि भरते रजांसि ।
अदश्चा सिन्धुरपसामपस्तमा
अश्वा न चित्रा वपुषीय दर्शता ॥ ७ ॥
स्वश्वा सिन्धुः सुरया सुवासा
हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती ।
ऊर्णोवती युयतिः सीलमावती
उताधि वस्ते सुभगा मधुवर्धम् ॥ ८ ॥
सुखं रथं युयुजे सिन्धुराश्विनं
तेन वाजं सनिपदासिन्नाजौ ।
मदान् हांस्य महिमा पनस्यते
अदग्धस्य स्वयंशसो विरुग्निनः ॥ ९ ॥
(१) शुनक्षत्रमभिपर्यतसमुद्रनद्यः ।
४५ ॥ (अथर्व० ११।६।१०)
घन्तातिः । अनुद्वृत् ।
दिवं धूमो नक्षत्राणि भूमिं यशाणि पर्यताम् ।
समुद्रा नपो येशन्तास्ते नो मुञ्चत्यर्हसः ॥ १० ॥
(६१।११)



सरस्वती

॥ १ ॥ (श्र० १।३।१०-१२)

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

पायका नः सरस्वती वाजैर्भिवोजिनीवती ।

यद्यं वंष्ट्र धियावसुः ॥ १० ॥

चोदयित्री सूनृतांनां चेतन्ती सुमतीनाम् ।

यद्यं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥

महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना ।

धियो विभ्या विराजति ॥ १२ ॥

॥ १ ॥ (श्र० १।६४।४९)

दीपतमा औषध्यः । शिष्टम् ।

यस्ते स्तनः दाशयो यो मय्येषुः

येन विभ्या पुष्यसि वार्याणि ।

यो रत्नधा संसृषिद् यः सुदप्रः

सरस्वति तमिद् धातये कः ॥ ४९ ॥

॥ ३ ॥ (श्र० १।३०८ पुर्यार्यः)

एशमदः आगिरः शोभोत्रः पयाद्) मार्गवः शोभवः ।
शिष्टम् ।

सरस्वति रथमसौ भविद्वि

मग्नयती धूपतां जैषि शर्यन् ॥ ८ ॥

॥ ४ ॥ (श्र० ६।८।१।१६-१८)

एशमदः (आगिरः शोभोत्रः पयाद्) मार्गवः शोभवः ।
१६-१७ ० सुदप्रः । १८ वृहती ।

धरिवतमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।

ध्रुवागता रं व रमवि प्रतान्तिमद्य नसृषि ॥ १६ ॥

त्वे विश्वा सरस्वति श्रितार्युषि देव्याम् ।

शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिद्वि नः ॥ १७ ॥

इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।

या ते मन्मं गृत्समदा ऋतावरि ॥ १८ ॥

प्रिया देवेषु जुहति

॥ १ ॥ (श्र० ५।४३।१२)
मोमोऽत्रिः । शिष्टम् ।

आ नो दिषो षुहृतः पर्यतादा

सरस्वती यजता गन्तु यक्षम् ।

हयं देवी जुहुपाणा घताची

शग्मां नो वार्चमुशती शृणोतु ॥ ११ ॥

॥ ६ ॥ (श्र० ६।४२।७)
ऋषिः आश्विनः । शिष्टम् ।

पाथीरपि कन्या चित्रायुः

सरस्वती धीरपती धियं धात् ।

शामिरच्छिद्रं शरणं सृजोपा

तुराधये सृणते दामं संसत् ॥ ७ ॥

॥ ७ ॥ (श्र० ६।११।१-१४)

वाहस्पत्यो मरद्वाजः । गायत्रीः १-३, १३ जगतीः
१० शिष्टम् ।

इयमं ददाद् रभसमृणय्युते

दियोवातं यध्र्यभ्याय दाशुये ।

या दार्यगतमाधुलादायुतं वणि

ता मे दात्राणि तयिया सरस्वति

इयं शुभेभिर्विसृष्टा इषावृत्त
 सानु गिरीणां तद्विषेभिर्भूमिभिः ।
 पारावतन्नीमवसे सुवृत्तिभिः
 सरस्वतीमा विंवासेम धीतिभिः ॥ २ ॥
 सरस्वति देवनिद्रो निर्वह्य
 प्रजां विश्वस्य वृत्तयस्य मायिनः ।
 उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्द्रो
 विपर्मभ्यो अन्नवो वाजिनीवति ॥ ३ ॥
 प्र जो देवी सरस्वती वार्जेभिर्वाजिनीवती ।
 धीनामविज्यवतु ॥ ४ ॥
 यस्त्वा देवि सरस्वत्युपमृते धने हिते ।
 इन्द्रं न वृत्रतयै ॥ ५ ॥
 त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि ।
 रदा पुषेव नः सनिम् ॥ ६ ॥
 उत स्य नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः ।
 घृग्री वंष्टि सुष्ठुतिम् ॥ ७ ॥
 यस्या अनन्तो अहृतस्त्वेषश्चरिण्यरुणवः ।
 अमश्चरति रोकेवत् ॥ ८ ॥
 सा नो विश्वा अति द्विपः स्वसृष्ट्या श्रुतावरी ।
 अतश्चेह्य सूर्यः ॥ ९ ॥
 उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।
 सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ १० ॥
 आपप्रयी पार्थिवान्युह रजो अन्तरिक्षम् ।
 सरस्वती निदस्पातु ॥ ११ ॥
 त्रिपधस्या सप्तधातुः पंच ज्ञाता वर्धयन्ती ।
 वाजैवाजे हन्या भूत् ॥ १२ ॥
 प्र या मंहिना महिनासु चैकिते
 घुम्नेभिरन्या अपसामपत्तमा ।
 रथं इष गृहती विश्वनेन हृता
 उपस्तुत्या चिकितुया सरस्वती ॥ १३ ॥

सरस्वत्यभि नो नेपि वस्यो
 मापं स्फरीः पर्यसा मा न आ धक् ।
 जुयस्व नः सत्या वेद्यां च
 मा त्वत्क्षेत्राण्यरणाणि गन्म ॥ १४ ॥
 ॥ ८ ॥ (ऋ० ७।१५।१-२, ४-६)
 मैत्रावरुणवंसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।
 प्र क्षोदसा धार्यसा सन्न प्या
 सरस्वती धरुणमार्यसा पूः ।
 प्रवार्यधाना रथैव याति
 विश्वा अपो मंहिना सिन्धुरन्याः ॥ १ ॥
 एकाचेतत् सरस्वती नदीनां
 शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।
 रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूतैः
 घृतं पर्यो दुदुहे नार्हुपाय ॥ २ ॥
 उत स्या नः सरस्वती जुषाणा
 उपं श्रवत् सुमगां यन्ने अस्मिन् ।
 मितर्गुभिर्नमस्यैरियाना
 राया युजा चिदुत्तप सविभ्यः ॥ ४ ॥
 इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः
 प्रति स्तोमं सरस्वति जुपस्व ।
 तव शर्मन् प्रियतमे दधानाः
 उपं स्थेयाम दारुणं न वृक्षम् ॥ ५ ॥
 अयमुं ते सरस्वति वासिष्ठो
 द्वारावृतस्य सुभगे व्याचः ।
 वर्धे शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्
 युयं पात स्वस्तिसिः सदा नः ॥ ६ ॥
 ॥ ८ ॥ (ऋ० ७।१६।१-३)
 मैत्रावरुणवंसिष्ठः । १-२ प्रगाथः (१ गृहती, २ गतो
 गृहती), ३ प्रसार पंक्तिः ।
 घृहृद् गायिणे घचोऽसुर्या नदीनाम् ।
 सरस्वतीभिर्महया सुवृत्तिभिः
 स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥ १ ॥

उभे यत्तै महिना शुभ्रे अग्धसी

अधिक्षियन्ति पुरवः ।

सा नो बोध्यवित्री मरुत्संखा

चोद् राधो मधोनोम्

मद्रमिद् भद्रा कृण्वत् सरस्वती

अर्कवापी चेतति वाजिर्नवती ।

गुणाना जमदग्निवत्

स्तुयाना च वसिष्ठवत्

॥ ९ ॥ (ऋ० १०।१७।७-२)

देवश्रवा यामायनः । त्रिष्टुप् ।

सरस्वतीं देवयन्तीं हवन्ते

सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।

सरस्वतीं सुहृतो अह्वयन्त

सरस्वतीं द्वाशुपे वार्ये दात्

मरस्वति या सरथं ययाथ

स्वधाभिर्देधि पितृभिर्मदन्ति ।

वासुदासिन्वर्द्धिर्पि मादयस्व

अनर्मावा इव आ घेहास्मे

मरस्वतीं यां पितरो हवन्ते

दक्षिणा यज्ञमग्नि नक्षमाणाः ।

मृदुशार्धमिजो अत्र भागं

रायस्योप्यं यजमानेषु धेहि

॥ १० ॥ (वा० य० १।२०)

सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा

॥ ११ ॥ (वा० य० १०।५, ३०)

सरस्वत्यै स्वाहा

सरस्वत्या वाचा देवतया प्रसृतः प्र संपांमि ॥ ३० ॥

॥ १२ ॥ (वा० य० १२।१०)

धविर्न मेधो नाति वीर्याय

प्राणस्य पग्धा अगृहो प्रहायाम् ।

सरस्वत्यस्युपयार्धयानं

नभ्यानि बर्द्धिर्बर्द्धंजान

॥ ९.० ॥

॥ १३ ॥ (वा० य० ११।२०)

सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा

सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा

॥ २० ॥

॥ २ ॥

॥ १४ ॥ (वा० य० १४।४)

ताः सारस्वत्यः प्लीहाकर्णः

शुष्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णः

॥ ४ ॥

॥ १५ ॥ (वा० य० १४।११)

पंचं नद्युः सरस्वतीमपि यन्ति सन्नोतसः ।

सरस्वती तु पंचधा सो देशेऽर्भवत्सरित् ॥ ११ ॥

॥ १६ ॥ (अथर्व० ५।७।४-५)

अयवा । ४ पश्चाद्बृहती; अनुष्टुप् ।

सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तीं हवामहे ।

याचै जुष्टां मधुमतीमवादिपं देवानां देवहृतिषु ४

॥ ७ ॥

यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजां ।

ध्रुवा तमद्य विन्दतु वृत्ता सोमेन बभ्रुणा ॥ ५ ॥

॥ १७ ॥ (अथर्व० ६।४।१२)

मद्रा । अनुष्टुप् ।

॥ ८ ॥

अपानार्य ध्यानार्य प्राणाय भूर्धायसे ।

सरस्वत्या उरुव्यचै विधेम हृदिषां ध्रुयम् ॥ २ ॥

॥ १८ ॥ (अथर्व० ६।८।४।१-२)

अयवाङ्गिरा । अनुष्टुप् । २ विराड् जगती ।

सं यो मनोसि सं प्रता समाकृतीर्नमामसि ।

॥ ९ ॥

अमी ये विद्यता स्यन् तान्युः सं नमयामसि ॥ १ ॥

अहं गृणामि मनसा मनोसि

मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।

॥ ५ ॥

मम यदेषु हृदयोनि यः कृणोमि

मम यातमनुयतमानं परं

॥ २ ॥

॥ १९ ॥ (अथर्व० ७।११।१)

गोमः । शरत्ती । त्रिष्टुप् ।

यस्ते पृथु स्तनयितानुर्यं सुप्यो

दियः वेनुर्धियंमाभूपतीदम् ।

मा नो यधीर्धियुतां देव स्रुयं

गोत यधी रदिमग्निः सूर्यस्य

॥ १ ॥

(११११)

॥ २० ॥ (अथर्वं ७।१७।१-२)

वामदेवः । प्रगती ।

यद्वाशसा वदतो मे विचुशुभे
यद्यार्चमानस्य चरतो जनां अनु ।

यद्वात्मानं तन्वो मे विरिष्टं

सरस्वती तदा पृणद्घृतेन

सप्त क्षरन्ति शिशवे मुहूर्त्तते

पित्रे पुत्रासौ अप्यधीवृत्तमृतानि ।

उमे इदस्योमे अस्य राजत

उमे यतेते उमे अस्य पुष्यतः

॥ २१ ॥ (अथर्वं ७।६।१-३)

शन्तातिः । १ अनुष्टुप् ; २ त्रिष्टुप् ; ३ गायत्री ।

सरस्वति मृतेषु ते द्विव्येषु देवि धामसु ।

जुपस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥ १ ॥

इदं ते हव्यं घृतवत्सरस्वति

इदं पितॄणां हविःस्यं यत् ।

इमानि त उदिता शतमानि

तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ॥ २ ॥

शिवा नः शतमा भव सुमृडाका सरस्वति ।

मा ते युयोम संदशः ॥ ३ ॥

॥ २२ ॥ (अथर्वं १४।२।१५)

सर्वा वावित्री । शुरिक् ।

प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिच्छेद् सरस्वति ।

सिनीवालि प्रजायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ १५ ॥

सहचारी देवगणः

(१) सिनीवाली-राकेन्द्राणीवरुणानीसरस्वत्यः ।

॥ २३ ॥ (ऋ० २।३।१८)

शरषमदः (आगिरथः शौनहोत्रः पथाद्) भागवः शौनकः ।
अनुष्टुप् ।

या गुंगुर्यां सिनीवाली या रुका या सरस्वती ।

इन्द्राणीमह ऊतयं वरुणानी स्युस्तयं ॥ ८ ॥

(२) सिनीवाली-सरस्वत्यश्विनः ।

॥ २४ ॥ (ऋ० १०।१८।१२)

त्वष्टा गर्भकर्ता विष्णुर्वा प्राजापत्यः । अनुष्टुप् ।

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।

गर्भं ते अश्विनौ देवावापत्तां पुष्करज्जना ॥ २ ॥

॥ १ ॥ (३) अर्यमवृहस्पतीन्द्रवाग्विष्णुसरस्वतिसविष्ट-
वाजिनः ।

॥ २५ ॥ (वा० य० ९।२७)

अर्यमणं वृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।

वाचं विष्णुं सरस्वतीधुं

सवितारं च वाजिनधुं, स्वाहा ॥ २७ ॥

(४) सरस्वत्यश्विनेन्द्राग्नयः ।

॥ २६ ॥ (वा० य० ११।३३, ३३, ८०, ८२-८३, ८८, ९३)

यस्ते रसुः सन्भृत ओषधीषु

सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य ।

तेन जिन्य यजमानं मदेन

सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥ ३३ ॥

(५) सरस्वत्यश्विनः ।

यमाश्विना नमुचेपसुरादधि

सरस्वत्यमुनोदिन्द्रियाय ।

इमं ते शुक्रं मधुमन्तमिन्दुधुं

सोमधुं, राजानमिह मश्यामि ॥ ३४ ॥

(६) सवितृसरस्वत्यादयः ।

सोसेन तंश्रं मनसा मनीषिणः

ऊर्णासुप्रेण कृचर्यां वयन्ति ।

अश्विनो यन्धुं सविता सरस्वती

इन्द्रस्य रूपं वरुणो मिपज्यन् ॥ ८० ॥

(७) सरस्वत्यश्विनः ।

तदश्विनां मिपजां यद्वर्तन्ती

सरस्वती वयति पेशो अन्तरम् ।

अस्थिः मज्जानं मार्मरः

कारोत्तरेण दधतो गर्वां त्युचि ॥ ८२ ॥

(६११४)

सरस्वती मनसा पेशलं वसु
नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः ।

रसं परिक्षुता न रोहितं

नग्नहुर्धोरस्तसरं न वेमं

मुखं सदैस्य शिर इत् सतेन

जिह्वा पयिप्रमृश्विनासन्सरस्वती ।

चप्पं न पायुर्मिपगस्य वालो

वस्तिर्न शेषो हरसा तरस्वी

(८) सरस्वतिवरुणेन्द्राश्विनः ।

॥ २७ ॥ (चा० य० १९।९४)

सरस्वती योग्यां गर्भमन्तः

अश्विभ्यां परनी सुकृतं विभर्ति ।

अपां रसेन वरुणो न साम्ना

इन्द्रं श्रियै जनयन्नप्सु राजा

(९) सरस्वत्याश्विभिन्द्राः ।

॥ २८ ॥ (चा० य० २०।३५)

अश्विनकृतस्य ते सरस्वति कृतस्य

इन्द्रेण सुभ्राग्ना कृतस्य ।

उपहृत उपहृतस्य भक्षयामि

(१०) आदित्यभारतिसरस्वतिक्रदाः ।

॥ २९ ॥ (चा० य० २१।८)

आदित्येनो भारती वष्टु यगंधं

सरस्यती सह रुद्रैर्न आयीत् ।

इदोपहृता वसुभिः सुजोपा

यसं नो देवीमृतेषु धत्त

(११) सरस्वतीज्जादितयः ।

॥ ३० ॥ (चा० य० ३८।१०, ४)

इह प्यदादिनु ष्टि सरस्वत्येदि ।

असावेरागावेरासावेदि

(१२) अश्विसरस्वतीन्द्राः ।

अश्विभ्यां पिन्वस्य सरस्वत्यै पिन्वस्व

इन्द्राय पिन्वस्य ।

स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् ॥ ४ ॥

(१३) अर्यमन्बृहस्पतीन्द्रघातविष्णुसरस्वतिसाधिव-
वाजिनः ।

॥ ३१ ॥ (अथर्व० ३।२०।७)

वशिष्ठः । अनुष्टुप् ।

अर्यमण बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।

वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥ ७ ॥

(१४) अश्विसरस्वतिब्रह्मणस्पतयः ।

॥ ३२ ॥ (अथर्व० ४।४।६)

अथर्वी । उरिक् ।

अद्याज्ञे अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति ।

अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुर्दिवा तानया पसः ॥ ६ ॥

(१५) द्यावापृथिवी सरस्वती इन्द्राग्नी ।

॥ ३३ ॥ (अथर्व० ५।२३।१)

कण्वः । अनुष्टुप् ।

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।

ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च किर्मि जम्भयतामिति ॥ १ ॥

(१६) वरुणसरस्वतीन्द्राः ।

॥ ३४ ॥ (अथर्व० ५।२।६)

ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

यदेव राजा वरुणो यदा देवी सरस्वती ।

यविन्द्रो वृत्रहा वेद तत्रभ्रंकरणं पिय ॥ ६ ॥

(१७) द्यावापृथिवीप्राक्सोमसरस्वत्याग्नयः ।

॥ ३५ ॥ (अथर्व० ६।३।२)

पातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टये

पातु प्रायु पातु सोमो नो अंहसः ।

पातु नो देवी सुभगा सरस्वती

पात्यग्निः शिषा ये अस्य पाययः

(१८) धावापृथिवीसरस्वतन्द्राग्नयः ।

॥ ३६ ॥ (अथर्व० ६।१४।३)

अथवागिराः । अगुष्टुप् ।

ओते मे धावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।

ओता मे इन्द्रश्चाग्निश्चर्यास्मेदे सरस्वति ॥ ३ ॥

(१९) सरस्वतिविश्वेदेवाः ।

॥ ३७ ॥ (अथर्व० ११।१।१९)

शं नो देवा विश्वेदेवा भवन्तु

शं सरस्वती सह प्रीमिरस्तु ।

शर्मभियाचः शम् रातियाचः

शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अर्प्याः ॥ २ ॥

सरस्वान्

॥ १ ॥ (ऋ० ७।१५।३)

मैत्रावरुणर्वशिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

स वावृधे नयो योपणासु

धृषा शिशुर्विपमो वृधियासु

स वाजिनं मघर्वन्नयो दधाति

पि स्नातये तन्वं मामुजीत ॥ ३ ॥

॥ १ ॥ (ऋ० ७।१६।४-६)

मैत्रावरुणर्वशिष्ठः । गायत्री ।

जनीयन्तो न्यग्रयः पुथीयन्तः सुदानवः ।

सरस्वन्तं हवामहे ॥ ४ ॥

ये ते सरस्य ऊर्मयो मरुमन्तो घृतदधुतः ।

तेभिर्नोऽपिता भव ॥ ५ ॥

पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः ।

मग्नीमहिं प्रजामिषम् ॥ ६ ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० ७।४०।१-२)

प्रकृष्व । १ मुरेक्, २ त्रिष्टुप् ।

यस्य मृतं पशयो यन्ति सर्वे

यस्य मृतं उपतिष्ठन्तु आपः ।

यस्य मृते पुष्टपतिर्निर्विष्टः

तं सरस्वन्तमयसं हवामहे ॥ १ ॥

आ प्रत्यंचं दारुणे दाभ्यंसं

सरस्वन्तं पुष्टपातं रपिष्ठाम् ।

रायस्वोपं ध्रुवस्तु यसाना

इह हुपेम सर्वनं रयीणाम् ॥ २ ॥

(६११२)



जीवन-विभागः

जीवनमंत्री



वायुः

॥ १ ॥ (ऋ० १।१।१-३)

मयुच्छन्दा वैश्वामित्र । गायत्री ।

वायुया याहि वृशति—मे सोमा अरैकृताः ।

तेषां पाहि ध्रुघो हवम ॥ १ ॥

वायं उफयेभिर्जन्ते त्वामच्छां जरितारः ।

मृतसोमा अहर्विदः ॥ २ ॥

वायो तयं प्रपृञ्चती धेनां जिगाति व्राण्ये ।

उरुची सोमपीतये ॥ ३ ॥

॥ १ ॥ (ऋ० १।१।१)

मेपातियिः काण्यः । गायत्री ।

नीत्राः श्वोमासु धा गृह्या—शीर्षन्तः सुता इमे ।

वायो तान् प्रम्यतान् पिय ॥ १ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १।१।१४-६)

१२९७० वेबोपाधिः । अल्लि, १ अशिः ।

आ स्वा जुषो वारहाणा अभि प्रयो

वायो षट्म्विद पृषपीतये

गोमंस्य पृषपीतये ।

उर्यां मे धनुं वृन्ता मर्नलिष्ठतु जानती ।

निगुर्वता श्वेना याहि व्राण्ये

वायो मत्वर्ग्यं व्राण्ये ॥ १ ॥

मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायुविन्द्वो

असत् क्रानासः सुकृता अभिर्ध्वो

गोभिः क्राना अभिर्ध्वः ।

यदं क्राना हृष्ये दक्षं सचन्त ऊतयः ।

सध्रीचीना नियुतो वायने धिय

उर्यं म्रुवत ई धियः ॥ २ ॥

वायुर्युक्ते रोहिता वायुररुणा

वायू रये अजिरा धुरि षोळ्ढये

वाहिष्ठा धुरि षोळ्ढये ।

प्र योषया पुरैधि जार आ संसृतीर्षिय ।

प्र चक्षप रोदंसी वासयोपसः

अयंसे वासयोपसः ॥ ३ ॥

तुभ्यमुपासः द्रुचयः पद्यपति

मद्रा यन्मा तग्यते दंतं रुदिमर्षु

चित्रा नर्येषु रुदिमर्षु ।

तुभ्यं धेनुः संवर्षुषा विष्ठा वार्त्ति दोहते ।

अर्जनयो मरुतो वृषणाभ्यो

रिय आ वृषणाभ्यः

॥ ४ ॥

(११४०)

तुभ्यं शुक्रासुः शुच्यस्तुरण्यवो
 मर्त्येषु इयणन्त भुवण्युः—पार्मियन्त भुवणि ।
 त्वां त्सारि दसमानो मगमीद्रे तफ्यवीर्ये ।
 त्वं विश्वस्मान्नुवनासु पासि धर्मणा
 असुर्यासु पासि धर्मणा ॥ ५ ॥
 त्वं नो धायवेग्रामपूर्व्यः
 सोमानां प्रथमः पीतिर्महसि सुतानां पीतिर्महसि ।
 उतो विद्वत्सतीनां विशां वंजुपीणाम् ।
 विश्वा इत् तं धेनवो दुह आशिरं
 घृतं बृहत् आशिरम् ॥ ६ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १।१३५।१-३, ९) अत्यष्टिः ।

स्तीर्णं वहिरुपं नो याहि धीतये
 सहस्रेण नियुतां नियुत्वते शतिर्नामिनियुत्वते ।
 तुभ्यं हि पृथ्वीतये देवा देवाय येमिरे ।
 प्र ते सुतासो मर्धुमन्तो अस्थिरन्
 मदायु क्रतव्ये अस्थिरन् ॥ १ ॥
 तुभ्याय सोमः परिपूतो अद्रिभिः
 स्याहां वसानः परि कोशमर्पति
 शुक्रा वसानो अर्पति ।
 तपायं भाग आयुषु सोमो देवेषु ह्यते ।
 यह धायो नियुतो याहास्मयु—जुपाणो याहास्मयुः २
 आ नो नियुद्रिः शतिर्नामिरध्वरं
 सहस्रिणीभिरुपं याहि धीतये
 धायो हव्यानि धीतये ।
 तपायं भाग श्रुत्वियः सरदिमः सूर्यं सत्यां ।
 अध्वर्याभिर्माणा अयंसत्
 धायो शुक्रा अयंसत् ॥ ३ ॥
 धन्यञ्जिचे वनादायो जीराध्विर्गिरौकसः ।
 सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तयो
 हस्तयोर्दुर्नियन्तयः ॥ ९ ॥

॥ ५ ॥ (ऋ० १।४१।१-२)
 शसमसः (आगिरसः शौनशेनः पक्षद्) मार्गः शौनकः ।
 गायत्री ।
 वायो ये ते सहस्रिणो रथासुस्तेमिरा गहि ।
 नियुत्वान्सोमपीतये ॥ १ ॥
 नियुत्वान् वायवा गह्य—यं शुक्रो अयामि ते ।
 गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २ ॥
 ॥ ६ ॥ (ऋ० ४।४३।१)
 वामदेवो गौतमः । गायत्री ।

अग्रं पिया मर्धुनां सुतं वायो दिविष्टिपु ।
 त्वं हि पूर्वपा असि ॥ १ ॥
 ॥ ७ ॥ (ऋ० ४।४७।१) अनुष्टुप् ।

धायो शुक्रो अयामि ते मघो अग्रं दिविष्टिपु ।
 आ याहि सोमपीतये स्याहो देव नियुत्वता ॥ १ ॥
 ॥ ८ ॥ (ऋ० ४।४८।१-५) अनुष्टुप् ।

विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अयः ।
 धायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ १ ॥
 नियुवाणो अशस्ती—नियुत्वा इन्द्रसारथिः ।
 धायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ २ ॥
 अनु कृष्णे वसुधिति यमाते विश्वपेशसा ।
 धायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ३ ॥
 यहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासां नयतिर्नय ।
 धायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ४ ॥
 धायो शतं हरीणां युवस्य पोष्याणाम् ।
 उत धां ते सहस्रिणो रपु आ यातु पाजसा ॥ ५ ॥

॥ ९ ॥ (ऋ० ५।११।५)

रश्मत्याश्रयः । उग्लः ।

धायवा याहि धीतये जुपाणो ह्ययदातये ।
 पिबां सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥ ५ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० ७।९०।१-४)

मैत्रावरुणैर्वासिष्ठः । विश्वेभ्यः ।

प्र वीर्या शुचयो दक्षिरे वां
अध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः ।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा
पिवा सुतस्यान्धसो मदाय
ईशानाय प्रहृतिं यस्त आनद्
शुचि सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।
कृणोपि तं मर्त्येषु प्रशस्तं
जातोजातो जायते वाज्यस्य
राये नु यं जहत् रोदसीमे
राये देवी धिपणा धाति देवम् ।
अधे वायुं नियुतः सञ्चत स्वा
उत द्येतं वसुधितिं निरेके
उच्छन्नपसः सुदिना अत्रि
उरु ज्योतिर्विदुर्दोष्यानाः ।
गव्यं चिदुर्धमशिजो वि वंशुः
तेपामनुं प्रदिवः सधुरारयः

॥ ११ ॥ (ऋ० ७।९।१, ३)

कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः
पुरा देवा अनवचास आसन् ।
ते वायवे मनवे थाधिताय
थवासयधुपसं सूर्येण
पीयोअत्रौ रयिवृषः सुमेधाः
द्येतः सिपकिः नियुतामिध्रीः ।
ते वायवे समनसो वि तंरुधुः
विश्वेभ्यः स्यपत्यानि धनुः

॥ १२ ॥ (ऋ० ७।९।१, ३, ५)

वा वायो भूय धुचिपा उर्य नः
सुदरं ते नियुतो विश्ववार ।

उपो ते अन्धो मद्यमयामि
यस्य देव दधिपे पूर्वपेयम् ॥ १ ॥
प्र याम्निर्यासिं दाश्वानुमच्छा
नियुद्धिर्वायविष्टये वुरोणे ।
नि नो रयि सुभोजसं युवस्य
नि वीरं गव्यमद्वयं च राधः ॥ ३ ॥
आ नो नियुद्धिः शतिनीभिरध्वरं
संहस्त्रिणीभिरुप याहि युद्धम् ।
वायो अस्मिन्सर्वने मादयस्व
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

॥ १३ ॥ (ऋ० ८।१६।२०-२५)

विश्वमना वैयश्वः, ग्यधो वाऽत्रिरघः । तण्णिक, २० अत्रुष्टु ।
२१, २५ गायत्री ।

॥ ३ ॥ युश्वा हि त्वं रथासहा युवस्व पोष्या वसो ।
आत्रो वायो मधु पिवासाकं सवना गदि ॥२०
तवं वायवृत्तस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत ।
अवास्या वृणीमहे ॥ २१ ॥
॥ ४ ॥ त्वष्टुर्जामातरं वयमीशानं राय ईमहे ।
सुतावन्तो वायुं घुञ्जा जनसः ॥ २२ ॥
वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु स्वद्वयम् ।
वहस्य महः पृथुपर्शसा रथे ॥ २३ ॥
त्वां हि सुत्सरस्तमं नृपदनेषु हुमहे ।
प्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना ॥ २४ ॥
॥ १ ॥ स त्वं नो देव मनसा वायो मन्वानो अग्रियः ।
कृधि वाजो अपो धियः ॥ २५ ॥

॥ १४ ॥ (ऋ० ८।१६।२५-२८, ३९)

वशोऽन्धः । २५-२८ प्रगाथाः । वृहती + एतो वृहती ।
३२ पङ्क्तिः ।

॥ ३ ॥

आ नो वायो मदे तने याहि मन्वाप पात्रसे ।
धुयं हि तं चकृमा भूरि वापने
सद्यश्चिन्महि वापने ॥ २५ ॥
(६९७)

यो अश्वेऽमिर्वहते घस्त उच्चाः
 त्रिः सत संततीनाम् ।
 पृमिः सोमैभिः सोमसुत्रिः सोमपा
 दानाय शुक्रपूतपाः ॥ २६ ॥
 यो मं हूं चिदु त्मना मन्दच्छिप्रं शवने ।
 अरुद्वे अक्षे नहुपे सुहृत्वनि
 सुहृत्तराय सुहृतुः ॥ २७ ॥
 उच्चष्ये वपुषि यः स्वरा लुत वायो घृतलाः ।
 अश्वेपितं रजैपितं शुभेपितं
 प्राग्म तदिदं तु तत् ॥ २८ ॥
 शतं दासे बल्लुथे विप्रस्तर्क्षु आ ददे ।
 ते तं वायविमे जना मदन्तीन्द्रगोपा
 मदन्ति देवगोपाः ॥ ३२ ॥
 ॥ १५ ॥ (ऋ० ८।१०।१।३-१०)
 बमदमिर्गार्गवः । प्रगायः - (विपमा बृहती+समा धतो
 बृहती) ।
 आ नो युहं विविस्पृशं
 वायो याहि सुमन्मभिः ।
 अन्तः पयिर्न उपरि श्रीणानो
 अयं शुक्रो अयामि ते ॥ ९ ॥
 वेत्येष्वर्युः पृथिमी रजिष्ठैः
 प्रति हृष्यानि वीतर्ये ।
 अर्धा नियुत्व उभयस्य नः पिय
 शुचिं सोमं गवाशिरम् ॥ १० ॥
 ॥ १६ ॥ (ऋ० १०।१६।८।१-४)
 अनिलो वातायन । त्रिष्टुप् ।
 पातस्य नु महिमानं रथस्य
 रुज्रैति स्तनरथस्य घोषः ।
 शिविस्पृश्यात्यरुणानि कृष्णन्
 उतो पति पृथिव्या रेणुमस्यन्
 सं प्रेरते अनु पातस्य विष्टा
 पेनं गच्छन्ति समनं न योषाः ।

तामिः सयुक् सरथं देव ईयते
 अस्य विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥ २ ॥
 अन्तरिक्षे पृथिमिरीयमानो
 न नि विशते कतमच्छनाहः ।
 अपां सखां प्रथमजा ऋतावा
 कं स्विज्जातः कुत आ बभूव ॥ ३ ॥
 आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो
 यथावशं चरति देव पृथः ।
 घोषा इदस्य शृण्वरे न रूपं
 तस्मै वाताय हविषा विधेम ॥ ४ ॥
 ॥ १७ ॥ (ऋ० १०।१८।६।१-३)
 उलो वातायन । गायत्री ।
 वात आ वातु भेषजं शमु मयोम नो हृदे ।
 प्र ण आयुषि तारिपत् ॥ १ ॥
 उत वात पिताऽसि न उत भ्रातो नः सखा ।
 स नो जीवातये रुधि ॥ २ ॥
 यददो वात ते गृहेऽमुं ऽमृतस्य निधिर्हितः ।
 ततो नो देहि जीवसे ॥ ३ ॥
 ॥ १८ ॥ (वा० य० ५।१ [पूर्वाधः])
 आपतये त्वा परिपतये गृहामि
 तनुनर्षं शास्वराय शस्वन् ब्रोजिष्टाय ॥ ५ ॥
 ॥ १९ ॥ (वा० य० ६।१६)
 वायो ये स्तोकानाम् ॥ १६ ॥
 ॥ २० ॥ (वा० य० ११।३९)
 सं ते वायुमौतरिष्वा दधातु
 उत्तानाया हृदये यद्विकस्तम् ।
 यो देवानां चरसि प्राणयेन्
 कस्मै देव वर्षडस्तु तुभ्यम् ॥ ३९ ॥
 ॥ २१ ॥ (वा० य० ११।८, ११, १४)
 प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि ध्यानं मे पाहि ॥ ८ ॥
 (६१८९)

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे
व्यचस्वतीं प्रथंस्वतीमन्तरिक्षं
यच्छान्तरिक्षं दृष्ट्वान्तरिक्षं मा हिंशसीः ।

विश्वस्मै प्राणार्यापानार्यं
व्यानार्योद्धानार्यं प्रतिष्ठार्यं चरित्राय ।

वायुष्ट्वाभि पातु मृष्ट्या स्वस्त्या छुर्विषा शन्तमेन
तया द्वैवतयाऽङ्किस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १२ ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य
पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ।

विश्वस्मै प्राणार्यापानार्यं व्यानाय
विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।

वायुष्टेऽधिपतिस्तया द्वैवतया
अङ्किस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १४ ॥

॥ १२ ॥ (वा० य० १५।६४)

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे
व्यचस्वतीं प्रथंस्वतीं
दिव्यं यच्छु दिव्यं दृष्टु दिव्यं मा हिंशसीः ।

विश्वस्मै प्राणार्यापानार्यं
व्यानार्योद्धानार्यं प्रतिष्ठार्यं चरित्राय ।

सूर्यस्त्वाऽभि पातु मृष्ट्या स्वस्त्या छुर्विषा शन्तमेन
तया द्वैवतयाऽङ्किस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६४ ॥

॥ १२ ॥ (वा० य० १८।४५)

समुद्रोऽसि नर्मत्वानाद्रवौतुः
शम्भूमयोभूरभि मां घाहि स्यादां
मास्तोऽसि मरुतां गुणः ।

शम्भूमयोभूरभि मां घाहि स्यादां
भवस्यूरसि दुर्वस्यान्लभूमयोभूरभि
मां घाहि स्यादां ॥ ४५ ॥

॥ १४ ॥ (वा० य० १९।४९)

योगधरणी वायु ।

पर्यमानः सोऽद्य नैः पवित्रेण विष्वंणिः ।

वा पोता स पुनातु मा ॥ ४२ ॥

॥ १५ ॥ (वा० य० २०।१५)

यदि दिवा यदि नक्तमेनांशसि चक्रमा ष्यम् ।
वायुर्मा तस्मादेर्नसो विश्वान्मुञ्चत्वंशहसः ॥ १५ ॥

॥ १६ ॥ (वा० य० २७।३१, ३२)

वायुरेमेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यञ्जम् ।
शिवो नियुङ्क्तिः शिवाभिः ॥ ३१ ॥

पर्कया च दशभिश्च स्वभूते
द्वाभ्यामिष्टये विंशशती च ।

तिसृभिश्च बहसे त्रिंशशती च
नियुङ्क्तिर्वायविह ता वि मुञ्च ॥ ३३ ॥

॥ २७ ॥ (वा० य० ३३।५५)

प्र वायुमच्छां वृहती मनीषा
बृहद्रथि विद्ववांरथं रथप्राम् ।

घृतर्षामा नियुतः पत्यमानः
कविः कविर्मियक्षसि प्रयज्यो ॥ ५५ ॥

॥ २८ ॥ (अथर्व० २।१५।२-६)

ब्रह्मा । प्राणः, अणानः, आयुः । त्रिपाद्वायवी ।

यथा द्यौश्च पृथिवी च न विभीतो न रिप्यतः ।
एवा मे प्राण मा विभेः ॥ १ ॥

यथाऽहश्च रात्री च न विभीतो न रिप्यतः ।
एवा मे प्राण मा विभेः ॥ २ ॥

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न विभीतो न रिप्यतः ।
एवा मे प्राण मा विभेः ॥ ३ ॥

यथा ब्रह्मं च क्षयं च न विभीतो न रिप्यतः ।
एवा मे प्राण मा विभेः ॥ ४ ॥

यथा सत्यं चानृतं च न विभीतो न रिप्यतः ।
एवा मे प्राण मा विभेः ॥ ५ ॥

यथा भूतं च भव्यं च न विभीतो न रिप्यतः ।
एवा मे प्राण मा विभेः ॥ ६ ॥

॥ २९ ॥ (अथर्व० २।१६।१-५)

प्राणः । १, २ एकावागुरी त्रिष्टुप्, ३ एकावागुरी

अणिङ्, ४-५ द्विषागुरी वायवी ।

प्राणार्यापानौ मुख्यामौ पातं स्यादां ॥ १ ॥

(१३०५)

घावावृथिवी उर्ध्वत्वा मा पातं स्वाहा ॥ २ ॥
 सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ॥ ३ ॥
 अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ॥ ४ ॥
 विश्वैर्मर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ॥ ५ ॥

॥ ३० ॥ (अथर्व० ११७।१-७)

प्राणः । १-६ एषादासुी त्रिष्टुप्, ७ आसुी उष्णिक्।

ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ॥ १ ॥
 सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ॥ २ ॥
 बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ॥ ३ ॥
 आयुरस्यार्युमे दाः स्वाहा ॥ ४ ॥
 श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ॥ ५ ॥
 चक्षुरसि चक्षुमे दाः स्वाहा ॥ ६ ॥
 परिपारमसि परिपारं मे दाः स्वाहा ॥ ७ ॥

॥ ३१ ॥ (अथर्व० १३।३।११)

प्राणायज्ञासुष्टुप् ।

स वै द्यायोरजायत तस्माद्द्वायुरजायत ॥ ३२ ॥

॥ ३१ ॥ (अथर्व० १।२०।१-५)

अथर्वी । १-४ त्रिचुद्विषमा पायथी, ५ सुसिधियमा ।

घायो यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप ॥ १ ॥
 योऽस्मान् द्वेष्टि यं घृयं द्विष्मः ॥ २ ॥
 घायो यत् ते हस्तेन तं प्रति हस् ॥ ३ ॥
 योऽस्मान् द्वेष्टि यं घृयं द्विष्मः ॥ ४ ॥
 घायो यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्चं ॥ ५ ॥
 योऽस्मान् द्वेष्टि यं घृयं द्विष्मः ॥ ६ ॥
 घायो यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच ॥ ७ ॥
 योऽस्मान् द्वेष्टि यं घृयं द्विष्मः ॥ ८ ॥
 घायो यत् ते जज्ञस्तेन तमतेजसं कृणु ॥ ९ ॥
 योऽस्मान् द्वेष्टि यं घृयं द्विष्मः ॥ १० ॥

॥ ३३ ॥ (अथर्व० ५।१८।८)

बहुषदाति षक्वी ।

द्वायुरन्तारिक्षस्वार्धिपतिः स मायतु ।
 अस्मिन् प्रार्थयस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामभ्यां

प्रतिष्ठायांभस्यां चित्यांभस्यामाकृत्याभ्यां
 आदिष्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा ॥ ८ ॥

॥ ३३ ॥ (अथर्व० ६।८९।१२)

अथर्वी । (वातः) । अतुष्टु ।

शोचर्यामसि ते हार्दि शोचर्यामसि ते मर्नः ।
 वातं धूम ईय सध्व्यङ्क्त् मामेवान्वेतु ते मर्नः ॥२॥

॥ ३५ ॥ (अथर्व० १।३।०।८)

शुकः । त्रिष्टुप् ।

येऽन्तारिक्षाञ्जुहति जातवेदो
 व्यध्वार्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
 द्यायुमत्वा ते पराञ्जो व्ययन्तां
 प्रत्यर्गनान् प्रतिसुरेणं हन्मि ॥ ६ ॥

॥ ३६ ॥ (अथर्व० ११।३।१-१६)

मार्गवो वैदभिः । (प्राणः) । अतुष्टुप् ; १ शुकमती, ८
 पथ्यापशुकिः ; १४ निष्टुप् ; १५ सुसिक् ; २० अतुष्टु-
 न्गर्मा त्रिष्टुप् ; २१ मथ्ये ज्वोतिर्गती ; २२ त्रिष्टुप् ;
 २६ बृहतीगर्मा ।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशं ।
 यो भुतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१॥
 नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्तये ।
 नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण धर्षणे ॥ २ ॥
 यत् प्राण स्तनयित्नुनामिकन्दत्योर्षधीः ।
 प्र वीयन्ते गर्मान् दधतेऽर्धो बृहीर्वि जायते ॥३॥
 यत् प्राण श्रुतावाग्नेऽभिकन्दत्योर्षधीः ।
 सर्वे तदा प्र मोदन्ते यत् किं च भूम्यामधि ॥ ४ ॥
 यदा प्राणो अभ्यवर्षाहोषेणं पृथिव्यां मृहीम् ।
 पशयस्तत् प्र मोदन्ते महेो धै नो भविष्यति ॥ ५ ॥
 अभिवृष्टा ओर्षधयः प्राणेन समवादिरन् ।
 आयुर्वं नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥ ६ ॥
 नमस्ते अस्यायते नमो वस्तु परायते ।
 नमस्ते प्राण तिष्ठन् धार्मीनायोत ते नमः ॥ ७ ॥

नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते ।
 पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः
 सर्वस्मै त इदं नमः ॥ ८ ॥
 या तै प्राण प्रिया तनूयो तै प्राण प्रेयसी ।
 अथो यद्भेजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ९ ॥
 प्राणः प्रजा अतु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
 प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥ १० ॥
 प्राणो मृत्युः प्राणस्तकमा प्राणं देवा उपासते ।
 प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११ ॥
 प्राणो विराट् देष्टी प्राणं सर्व उपासते ।
 प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ १२ ॥
 प्राणापानौ ग्रीहिष्यावन्द्वाण प्राण उच्यते ।
 यवै ह प्राण आहितोऽपानो ग्रीहिरुच्यते ॥ १३ ॥
 अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
 यदा त्वं प्राणं जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥ १४ ॥
 प्राणमाहुर्मातरिभ्यां वातो ह प्राण उच्यते ।
 प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वे प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥
 आथर्वणीरादिरसीदर्वीमनुष्यजा उत ।
 ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राणं जिन्वसि ॥ १६ ॥
 यदा प्राणो अभ्यवर्षीद्वेषं पृथिवीं महीम् ।
 ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च धीरुषः ॥ १७ ॥
 यस्मै प्राणेदं वेद यस्मिन्ध्याति प्रतिष्ठितः ।
 सयै तस्मै शक्तिं हारानमुष्मिह्लोक उत्तमे ॥ १८ ॥
 यथा प्राण यद्विहतस्तुभ्यं सयाः प्रजा इमाः ।
 पृथा तस्मै शक्तिं हारान् यस्यां क्षणपथं सुधयः १९
 अगतर्गभेधरति देयतासु
 धाम्ना भूतः स उ जायते पुनः ।
 स भूतो भव्यं भविष्यत्
 पिता पुत्रं प्र विषेत्ता शचीभिः ॥ २० ॥
 पञ्च पादं नोतिपदति सलिलाक्षेप उच्यते ।
 यद्दृक् स तस्मिन्निदेनवाच न भ्यः श्यान्
 न शक्नोति नादः श्यान् व्युत्थोत् श्वा श्वन ॥ २१ ॥

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि
 सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पृथा ।
 अर्धेन विश्वं भुवनं जजान्
 यदस्यार्धे कृतमः स केतुः ॥ २२ ॥
 यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः ।
 अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥
 यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ।
 अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥ २४ ॥
 ऊर्ध्वः सुतेयु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते ।
 न सुप्तस्य सुतेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥ २५ ॥
 प्राण मा मन्त् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यति ।
 अपां गर्भमिव जीवसे प्राणं वृधामि त्वा मयि ॥ २६ ॥

वायु-सहचारी देवगणः

(१) वायुस्त्वष्टा ।

॥ ३१ ॥ (अथर्वं ३।१०।१०)
 वशिष्ठः । अनुष्टुप् ।

गोसतिं वार्चमुदेयं वचसा माभ्युर्विदि ।
 आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोर्व दधातु मे ॥ १० ॥

(२) वाय्वन्तरिक्षे ।

॥ ३८ ॥ (अथर्वं ४।१९।१-४)

भाजिराः । २, ४ संस्कारपंक्ता, ३ त्रिपदा महावृत्ती ।

पृथिवी धेनुस्तस्यां अभिर्यत्सः ।
 सा मेऽग्निना घृत्सेनेपमूर्जे कामं दुहाम् ।
 आर्युः प्रथमं प्रजां पोर्व रयि स्वाहा ॥ २ ॥
 अन्तरिक्षे वायवे समनमन्तस भागोव ।
 यथात्तरिक्षे वायवे समनमन्तये
 मही स्तनमः सं नमन्तु ॥ ३ ॥
 अन्तरिक्षे धेनुस्तस्यां वायुर्यत्सः ।
 सा मे वायुना घृत्सेनेपमूर्जे कामं दुहाम् ।
 आर्युः प्रथमं प्रजां पोर्व रयि स्वाहा ॥ ४ ॥

असुनीतिः ।

॥ १ ॥ (आ० १०।५१।५-६)

बन्धुः भुतबन्धुर्वैरबन्धुर्गौपायनाः । त्रिष्टुप् ।

असुनीते मनो अस्मासु धारय
जीवातये सु प्र तिरा न् आरुः ।
रारन्धि नः सूर्यस्य सुहृदि
धृतेन त्वं तन्वं वधेयस्व

॥ ५ ॥

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः
पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम् ।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तं
अनमते मूढया नः स्वस्ति

॥ ६ ॥

॥ २ ॥ (घा० घ० ११।६०)

ये अग्निष्वात्ता ये अनेग्निष्वात्ता
मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां
यथावशं तन्वं कल्पयाति

॥ ६० ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० १८।१।३१)

अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

अर्चोमि धां धर्षोपायो घृतस्नु
घावांभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद्देया असुनीतिमायन्
मर्षा नो अत्र वितरां शिशीताम्

॥ ३१ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० १८।१।५)

(आतवेदाः) । मुक्तिः ।

यदा शतं कृण्वो जातयेदो
अधेमत्रेनं परिं दत्तात् पितृभ्यः ।
यदो गच्छात्पसुनीतिमेतां
अथ देवानां घ्नानीर्भवाति

॥ ५ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० १८।१।५८) त्रिष्टुप् ।

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा
य आधिविशुसुर्वं न्तरिक्षम् ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिनां अथ
यथावशं तन्वं कल्पयाति

॥ ५८ ॥

मधुकुक्षिणा ।

॥ १ ॥ (अथर्व० १।१।१-२४)

मधु, अधिनो । त्रिष्टुप्, २ त्रिष्टुभ्रगमां पङ्क्तिः, ३ परानु०-
ष्टुप्, ६ अतिशक्तीगमां महाभृहती, ७ अतिजागतगमां महा-
बृहती, ८ बृहतीगमां संस्तारपङ्क्तिः, ९ पराबृहती प्रस्तारपङ्क्तिः,
१० परोष्णिक्पङ्क्तिः, ११-१३, १५-१६, १८-१९ अनुष्टुप्
१४ पुर ङणिक्, १७ उपरिष्ठाद्विराद् बृहती, २० मुरिर्वि-
ष्टारपङ्क्तिः, २१ द्वावसाना द्विपदात्वंनुष्टुप्, २२ त्रिपदा
माहो पुर ङणिक्, २३ द्विपदा आर्चो पङ्क्तिः, २४ व्यवधाना
षट्पदाष्टिः ।

दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात् समुद्रात्
अग्नेर्घातांमधुकुशा हि जज्ञे ।

॥ ६० ॥

तां चाथित्वामृतं घसानां
हुद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्षाः

॥ १ ॥

महस् पर्यो विश्वरूपमस्याः
समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।
यत् वेति मधुकुशा रत्तण
तत् प्राणस्तदमृतं निर्विष्टम्

॥ २ ॥

पश्यन्त्यस्याध्वरितं पृथिव्यां
पृथङ्नरो बहुधा मीमांसमानाः ।
अग्नेर्घातांमधुकुशा हि जज्ञे मुक्तामुप्रा नृप्तिः ॥३॥

माताऽऽदित्यानां दुहिता घसूनां
प्राणः प्रजानाममृतस्य नामिः ।
द्विरण्यवर्णा मधुकुशा घताचीं
महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु

॥ ४ ॥

नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्वपानते ।
 पुराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः
 सर्वस्मै त इदं नमः ॥ ८ ॥
 या ते प्राण प्रिया तनूयो ते प्राण प्रेयसी ।
 अथो यद्रेपजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ९ ॥
 प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
 प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥ १० ॥
 प्राणो मृत्युः प्राणस्तस्मा प्राणं देवा उपासते ।
 प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११ ॥
 प्राणो विराट् देवीं प्राणं सर्वं उपासते ।
 प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ १२ ॥
 प्राणापानौ ब्रीहियुवाच नृणां प्राण उच्यते ।
 यवे ह प्राण आर्हितोऽपानो ब्रीहिरुच्यते ॥ १३ ॥
 अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
 यदा त्वं प्राणं जिन्वस्यस्य स जायते पुनः ॥ १४ ॥
 प्राणमाहुर्मातरिभ्यो वातो ह प्राण उच्यते ।
 प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥
 आथर्वणोराहिरसीदेवीर्मनुष्यजा उत ।
 ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राणं जिन्वसि ॥ १६ ॥
 यदा प्राणो धर्म्ययर्षाहर्षेण पृथिवीं मदीम् ।
 ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः कार्धं धीरुषः ॥ १७ ॥
 यस्नें प्राणेदं येद यस्मिन्धाति प्रतिष्ठितः ।
 सये तस्मै यति हरानमुष्मिह्लोक उत्तमे ॥ १८ ॥
 यथा प्राण यलिहतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः ।
 प्रया तस्मै यति हरान् यस्यां दूणपत्सु सुभयः १९
 धन्तगंभधरति देयतासु
 धाम्नि भूतः स उ जायते पुनः ।
 स भूतो भव्यं मधिष्यत्
 पिता पुत्रं प्र विवेना दार्शीणिः ॥ २० ॥
 एषः पादं नोतिगदति सलिलासुस उच्यते ।
 यदह स तस्मिन्निदंनवाच न भ्यः ह्यान्
 न शत्री नार्हः ह्याप्र ध्यु च्छेत् यदा जन ॥ २१ ॥

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि
 सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पञ्चा ।
 अर्धेन विश्वं भुवनं जजान
 यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ २२ ॥
 यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेटतः ।
 अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥
 यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेटतः ।
 अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानुं तिष्ठतु ॥ २४ ॥
 ऊर्ध्वः सुतेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते ।
 न सुतमस्य सुतेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥ २५ ॥
 प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्वो भविष्यसि ।
 अपां गर्भमिव जीवसे प्राणं यद्भामि त्वा मयि ॥ २६ ॥

वायु-सहचारी देवगणः

(१) वायुस्वप्ता ।

॥ ३१ ॥ (अथर्व० ३।१०।१०)
वशिष्टः । अनुष्टुप् ।

गोसनिं वाचमुदेयं घर्षसा माभ्युदिदि ।
आ रुंधां सर्वतो वायुस्वप्ता पोषं दधातु ॥

(२) वाय्वन्तरिक्षे ।

॥ ३८ ॥ (अथर्व० ४।१०)

अत्रिणः । २, ४ पंत्वार्षीकः, १

पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्गन्त

सा मेऽग्निना वृत्तेनेपम

वायुः प्रथमं प्रजां पे

अन्तरिक्षे वायवे

यथान्तरिक्षे

मर्यां संन

धन्तति

सा



प्रकाश-विभागः

विद्युत्

॥ १ ॥ (घा० य० १।१४)

इन्द्रस्य वाहुरसि दक्षिणः सहस्रं वृष्टिः ।
शततेजा वायुरसि लिङ्गतेजा द्विपतो वृधः ॥ २४ ॥

॥ १ ॥ (घा० य० ४।१९-२३)

चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि
यज्ञियास्यदितिरस्युभयतः शीर्ष्णा ।
सा नः सुप्रान्त्वा सुप्रतीच्येधि
मित्रस्त्वा पदियन्तीतां
पुषाऽर्जनस्पात्विन्द्रायाप्यक्षाय ॥ १९ ॥

अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु
भ्राता सगभ्योऽनु सखा सयूष्यः ।
सा देवि देवमच्छेद्दीन्द्राय सोमं धं
दृद्रस्त्या वंक्ष्यतु
स्वस्ति सोमंसखा पुनरेदि ॥ २० ॥

यस्यस्यदितिरसि
आदित्यासि दृद्रासि चन्द्रासि ।
शृहस्पतिर्ष्वा सुम्ने रंग्नातु
दृद्रो परुमिरा चके ॥ २१ ॥

अदित्यास्त्वा मुद्धंभ्राजिधमि देव्यजने ण्यिव्या
इडायास्पदमसि घृतवत् स्वाहा ।
अस्मे रमस्वास्मे ते वन्युस्त्वे रायो मे रायो
मा वयं रायस्पोपेण
वियांप्म तोतो रायः ॥ २२ ॥
समंथे देव्या धिया सं दक्षिणयोरुर्वक्षस्ता
मा म् आयुः प्रमोपीमो अहं तर्ष
वीरं विदेय तर्ष देवि सुन्दृशि ॥ २३ ॥

॥ ३ ॥ (घा० य० ५।५)

अनाघृष्टमस्यनाघृष्यं देवानामोजः
अर्नभिशस्यमिशस्तिपा
अर्नभिशस्तेन्यमंजस्ता
सत्यमुपगेपेधं स्विते मां धाः ॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० १.१३।१-४)

मूर्धगिराः । अनुदुर्, ३ चनुष्वाद् विराट् जगती, ४ विष्
परा शृतीगमां षष्ठि ।

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्तयं ।
नमस्ते अस्वदमने येना दृडासो अस्यासि ॥ १ ॥

मधोः कशांमजनयन्त देवाः
 तस्या गर्भो अभवद्विश्वरूपः ।
 तं ज्ञातं तरुणं पिपतिं माता
 स ज्ञातो विश्वा भुवना वि चंटे ॥ ५ ॥
 कस्तं प्र वेदं क उ तं चिकेत
 यो अस्या हृदः कुलशः सोमधानो अक्षितः ।
 ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ॥ ६ ॥
 स तौ प्र वेदं उ तौ चिकेत
 यावस्याः स्तनौ सहस्रधाशुवक्षितौ ।
 ऊर्जे दुहाते अर्नपस्फुरन्तौ ॥ ७ ॥
 द्विद्विक्रिती बृहती यंयोधा
 उच्चैर्घोषाम्भेति या प्रतम् ।
 श्रीन् घर्माननि यावशाना
 मिमाति मायुं पर्यते पर्योभिः ॥ ८ ॥
 यामार्पानामुपसीदन्त्यापः
 शाफ्यरा वृषभा ये स्वराजः ।
 ते धरन्ति ते धरयन्ति
 तद्विदे काममूर्जमार्पः ॥ ९ ॥
 स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते
 वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि ।
 अग्नेयांतांगधुक्शा द्वि येषे मृक्तामुप्रा न्वतिः १०
 यथा सोमः प्रातः सपने अभिनोभयति प्रियः ।
 एषा मे अभिना वचं आत्मनि धियताम् ॥ ११ ॥
 यथा सोमो द्वितीये सर्वन इन्द्राग्न्योमंयति प्रियः ।
 एषा मे इन्द्राग्नी पर्यं आत्मनि धियताम् ॥ १२ ॥
 यथा सोमंस्मृतीये सर्वन अग्भुणा भयति प्रियः ।
 एषा मे अग्भुणा पर्यं आत्मनि धियताम् ॥ १३ ॥
 मर्षं जनिषीष्ट मधुं वशिषीय ।
 परंप्रानस्य भार्गव मं मा रं रंज वर्यंता ॥ १४ ॥

सं मांहे वचंसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
 विद्युर्मे अस्य देवा
 इन्द्रो विधात् सह ऋषिभिः ॥ १५ ॥
 यथा मधुं मधुरुतः संभरन्ति मधावधि ।
 एषा मे अभिना वचं आत्मनि धियताम् ॥ १६ ॥
 यथा मक्षा इदं मधुं न्यञ्जन्ति मधावधि ।
 एषा मे अभिना वचंः
 तेजो चलमोजश्च धियताम् ॥ १७ ॥
 यद्विरिपु पर्वतेषु गोष्वभ्येषु यन्मधुं ।
 सुरायां सिच्यमानायां
 यत् तत्र मधु तन्मयि ॥ १८ ॥
 अभिना सारुषेण मा मधुनाऽङ्कं शुभस्पती ।
 यथा वचंस्वर्ता वाचमावदानि जनां भनुं ॥ १९ ॥
 स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते
 वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां विधि ।
 तां पशव उर्ष जीवन्ति
 सयं तेनो सेपमूर्जे पिपति ॥ २० ॥
 पृथिवी वृण्डोऽन्तरिक्षं गर्भो
 धौः कशा विद्युत् प्रकशो द्विरण्ययो विन्दुः ॥ २१ ॥
 यो ये कशायाः सप्त मधुनि वेद मधुमान भवति ।
 ब्राह्मणश्च राजा च धेनुभ्यानृद्धांश्च
 श्रीद्विश्च पर्यश्च मधुं सप्तमम् ॥ २२ ॥
 मधुमान भवति मधुमदस्याद्दार्प्यं भवति ।
 मधुमतो लोकान् जयति य एवं वेदं ॥ २३ ॥
 यहीधे स्तनयति प्रजापतिरेव
 तत् प्रजाग्न्यः प्रादुर्भवति ।
 तस्मात् प्राचीनोपपीतारिणं
 प्रजापतेऽनु मा पुष्यस्येति ।
 अग्नेने प्रजा भानुं प्रजापतिर्दुस्यते य एवं वेदं ॥ २४ ॥



प्रकाश-विभागः

विद्युत्

॥ १ ॥ (घा० य० १।१४)

इन्द्रस्य बाहूरसि दक्षिणः सहस्रमृष्टिः ।
शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विपतो वृधः ॥ २४ ॥

॥ २ ॥ (घा० य० ४।११-१३)

चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणसि ह्यत्रियासि
यज्ञियास्यदितिरस्यमपतः शीर्ष्णी ।
सा नः सुप्रान्ची सुप्रतीच्येधि
मिप्रस्त्वा पदिवर्ष्नीतां

पुपाऽर्ध्वनस्यात्विन्द्रायाऽप्यक्षाय ॥ १९ ॥

अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु
भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः ।

सा देवि देवमच्छेद्दीन्द्राय सोमं छ
रुद्रस्त्वा वंशयतु

स्वस्ति सोमस्रगा पुनरोदं ॥ २० ॥

पस्व्यस्यदितिरसि
आदित्यसि रुद्रासि घन्द्रासि ।

शुद्रस्पतिष्वा सुम्ने रंगानु
रुद्रो परुमिरा चके

॥ २१ ॥

अदित्यास्त्वा मूर्ध्वभ्राजिधर्मि देवयजने प्रयिव्या
इडायास्पद्रमसि घृतवत् स्वाहा ।

अस्मे रमस्वास्मे ते बन्धुस्त्वे रायो मे रायो

मा वयं, रायस्पोषेण

विर्याम् तोता रायः ॥ २२ ॥

समस्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोदचक्षसा

मा म आयुः प्रमोषीमो अहं तव

वीरं विदेय तव देवि सुन्दृशि ॥ २३ ॥

॥ ३ ॥ (घा० य० ५।५)

अनाष्टमस्यनाघुष्यं देवानामोजः

अनभिशस्यभिशस्तिपा

अनभिशस्तेन्यमंजसा

सत्यमुपगेव छ स्थिते मां धाः ॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० १।१३।१-४)

मूर्धनगाः । अतुद्रु, ३ चतुष्पाद् विष्ट जगती, ४ त्रिषु-
परा वृहतीगमां वंशः ।

नर्मस्ते अस्तु विद्युते नर्मस्ते स्तनयितनर्वे ।

नर्मस्ते अस्त्वदर्मने येनां वृद्धादो मस्यासि ॥ १ ॥

नमस्ते प्रवते नपाद्यतस्तर्पः समूहासि ।
 मूढया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्त्विधि
 प्रवतो नपाभ्रम एवास्तु तुभ्यं
 नमस्ते हेतये तर्पणे च कृष्णः ।
 विद्म ते धाम परमं गुह्यं यत्
 समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः
 पां त्वा देवा असृजन्त विश्वे
 इपुं कृष्णाना अस्नाय धृष्णुम् ।

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

सा नो मूढ विदधे गृणाना
 तस्यै ते नमो अस्तु देवि

॥ ४ ॥

तारके

॥ १ ॥ (अथर्व० ६।१२।३)

शैशिकः । (सुकृतलोक प्राप्तिः) । अतुष्टम् ।

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके ।

प्रेहामूर्तस्य यच्छतां प्रेतुं यत्क मोचनम् ॥ ३ ॥

६१९७)



स्त्री-विभागः

बालिका-- स्त्री-संरक्षणमंत्रिणी



उषा

॥ १ ॥ (क्र. ११०१२०-११)

शुनन्तेषु आशीर्गतिः । गायत्री ।

कस्त उषः कधमिये भुजे मर्तो अमत्ये ।

कं नक्षसे विभावति ॥ २० ॥

ध्र्यं हि ते अमन्महाऽऽन्तादा पंगकात् ।

अभ्ये न चिन्ने अरुपि ॥ २१ ॥

त्वं त्येमिरा गेहि धार्जेभिर्दुहितर्दिवः ।

अस्मे रयि नि धारय ॥ २२ ॥

॥ १ ॥ (अ० ११८८१-१६)

प्ररुच्यः कण्वः । प्रगायः ॐ (विषमा बृहती + धमा
धतोऽहती ।)

सह धामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।

सह पुम्नेन वृहता विभावति ॥ १ ॥

राया देवि दास्वती

अश्वायतीगोमतीर्षिभ्यसुयिन्नो

भूरि चयन्त वसते ।

उदीरय प्रनि मा सुनता उषः

षोद् राघो मृषोनाम् ॥ २ ॥

उषासोषा उच्छाश्च तु देवी जीरा रधानाम् ।

ये अस्या आचरणेषु दधिरे ॥ ३ ॥

संमुद्रे न श्रयस्यवः

उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते

मनो दानाय सूरयः ।

अशह तत् कर्ष्य पषां कर्षवतमो

नामं गृणाति नृणाम् ॥ ४ ॥

आ घा योर्येव सुनयुं या याति प्रमुञ्जती ।

जुरयन्ती वृजनं पृहदीयत्

उत्पातयति पक्षिणः ॥ ५ ॥

वि या सृजति समनं व्युधिनेः

पदं न वेत्योर्दती ।

पयो नर्किष्टे पत्तिवांसं आसते

व्युष्टौ घाजिनीवति ॥ ६ ॥

प्रायुक पटावतः सूर्यस्योदयनादधि ।

ज्ञातं रथेभिः सुमगोषा इयं

वि पात्यमि मातृपान् ॥ ७ ॥

विश्वमस्या नानाम् चक्षसे जगत्
 ज्योतिष्कणोति सूनरी ।
 अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव
 उपा उच्छदप त्रिधः ॥ ८ ॥
 उप वा भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
 आवहन्ती भूर्यसभ्यं सौमगं
 व्युच्छन्ती दिविष्टियु ॥ ९ ॥
 विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं खे
 वि यदुच्छसि सूनरि ।
 सा नो रथेन बृहता विभावरि
 ध्रुधि चिन्नामघे हवम् ॥ १० ॥
 उपो वाजं हि वंस्य यश्चिन्नो मानुषे जनं ।
 तेना बह सुहृता अघुरा उप
 ये स्वां गृणन्ति वद्वयः ॥ ११ ॥
 विश्वान् देवाँ आ बह सोमपीतये
 अन्तरिक्षादुपस्तयम् ।
 सासासु ध्वा गोमदभ्यावदुपस्थ्यं
 उपो वाजं सुवीर्यम् ॥ १२ ॥
 यस्या रशान्तो अर्चयः प्रति भद्रा अरक्षत ।
 सा नो रथि विश्वपारं सुपेदासं
 उपा ब्रह्मातु सुगम्यम् ॥ १३ ॥
 ये चिदि स्यामृषयः पूर्वे उतये
 जुहुरेऽपये मदि ।
 सा नः स्तोमां अग्नि गृणीहि राघना
 उपाः सुकेलं शोचिपां ॥ १४ ॥
 उपो यद्वच भानुना वि ऋत्विष्युषो दिवः ।
 प्र नो यच्छनादयुक्तं पुषु च्छर्दिः
 प्र देवि गोमतीरिषेः ॥ १५ ॥
 ये नो शपा ब्रह्मा विश्वपेदासा
 निमिषवा समिच्छानिवा ।

सं द्युमेन विश्वतुरोपो महि
 सं वाजैर्वाजिनीवति ॥ १६ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १।१९।१-४) अत्रुष्टम् ।

उपो भद्रेभिरा गहि दिविश्चिद् रोचनादधि ।
 बहन्त्वहणस्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥ १ ॥

सुपेदासं सुखं रथं यमध्यस्था उपस्त्वम् ।
 तेना सुश्रवसं जनं प्रावाच दुहितर्दिवः ॥ २ ॥

वर्यश्चित् ते पत्रिणो द्विपञ्चतुष्पदजुनि ।
 उपः प्रारंभ्रतूरुं दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३ ॥

व्युच्छन्ती हि रदिमभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
 तां त्वामुपर्वसुयवो गीभिः कर्षां बहूपत ॥ ४ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १।१९।१-१५)

गोतमो राहणः । १-४ अर्थाः ५-१२ त्रिष्टम् ।

१३-१५ सणिक् ।

उता उ त्या उपसः केतुमकत
 पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
 निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णयः
 प्रति गावोऽरुपीर्यन्ति मातरः ॥ १ ॥

उदपत्तन्नरुणा भानयो धृथा
 स्यायुजो अरुपीगां अयुक्षत ।
 अकन्नपासो ययुनानि पुर्धधा रशान्तं
 भानुमरुपीरदिधयुः ॥ २ ॥

अर्चन्ति नारीरुपसो न विष्टिभिः
 समानेन योजनेना परायतः ।
 इयं यदहन्तीः सुहृते सुदानये
 विश्वेद्द यजमानाय सुन्यते ॥ ३ ॥

अधि पेदासि यपते नृत्विष्य
 अर्षोर्गुने परं उद्रेय वज्रतम् ।
 ज्योतिर्विश्वरमे भुषनाय हृष्यती
 गावो न स्रजं व्युपा भावतेमीः ॥ ४ ॥

प्रत्युच्चो रुद्रादस्या अर्वाशि
 वि तिष्ठते वार्धते कृष्णमश्वम् ।
 स्वहं न पेशो विदयेष्वञ्जन्
 चित्रं द्वियो दुहित्वा भानुमश्वेव
 अतारिष्म तमसस्वारमस्य
 उपा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।
 ध्रिये ह्रस्वो न स्मयते विमाती
 सुप्रतीका सौमनसायाजीगः
 भास्वती नेत्री सनुतानां
 दिवः स्तव दुहिता गीतमेभिः ।
 प्रजावते नवतो अश्वबुध्यान्
 उपो गोर्वा उर्प मासि वाजां
 उपस्तमद्यां यदासं सुवीरं
 दासप्रवर्गे रयिमश्वबुध्याम् ।
 सुदंस्तसा श्रवसा या विमासि
 वाजप्रसूता सुमगे वृहन्तम्
 विश्वानि देवी भुवनामिचक्ष्यां
 प्रतीची चक्रुर्विया वि भाति ।
 विश्वं जीवं चरसे धोघयन्ती
 विश्वस्य पार्चमविदग्मनायोः
 पुनः पुनर्जायमाना पुराणी
 संमानं वर्णमभि शुभ्रमाना ।
 भवभीषं कृत्नुर्विजं आमिनाना
 मर्तस्य देवी जुरयन्त्यायुः
 ध्युर्ण्यती द्वियो अन्तां अश्रेधि
 अप स्वसारं सनुतयुषोति ।
 प्रमिनती भन्नुष्यां युगानि
 योषां जारस्य चक्षसा वि भाति
 पद्मत्र चित्रा सुमगां प्रथाना
 सिन्धुनं क्षोर्द उर्विया स्वभैव ।

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

अमिनती दैव्यानि व्रतानि
 सूर्यस्य चेति रुद्रिमिर्दशाना ॥ १२ ॥
 उपस्तश्चित्रमा मंग्र-सभ्यं वाजिनीयति ।
 येनं तोकं च तनयं च धामदे ॥ १३ ॥
 उपो अघेह गोम-स्यश्वावति विभाधरि ।
 रेवदस्मे व्युच्छ सनुतावति ॥ १४ ॥
 युक्ष्या हि वाजिनीव-स्यभ्यो अघारुणा उषः ।
 अथा नो विश्वा सौमगान्या वद ॥ १५ ॥
 ॥ ५ ॥ (क्र० १।१।३।१-२०)
 इत्स आङ्गिरसः । १ (वाराहस्य) राप्रिष । शिन्धुः ।
 इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाव्
 चित्रः प्रक्रेतो अजनिष्ट विश्वा ।
 यया प्रसूता सवितुः सवार्यं
 एवा राज्यपसे योनिमारैक् ॥ १ ॥
 रुद्राद्रस्ता रुद्राती श्वेत्यागात्
 आरंगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
 समानवन्धू अमृतं अनुची
 घाया वर्षे चरत आमिनाने ॥ २ ॥
 समानो अघ्वा स्वस्मोरनन्तः
 तमन्यान्यां चरतो देवदिष्टे ।
 न मैधेते न तस्यतुः सुमेके
 नकोयास्ता समनसा समनला धिरूपे ॥ ३ ॥
 भास्वती नेत्री सनुतानां
 अचैति चित्रा वि दुर्ते न भावः ।
 प्राप्या जगद्रूपं नो रायो अक्यत्
 उपा अजीगर्भुयनानि विश्वा
 जिह्वस्येक्षु चरितये मयोनी
 आमीगयं इष्टये राय उं त्मम् ।
 वृशं पदयन्नप उर्विया विचक्षं
 उपा अजीगर्भुयनानि विश्वा ॥ ५ ॥

अत्रायं त्वं भवसे त्वं महीया
 इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।
 विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष
 उपा अजीगर्भुर्वनानि विश्वां
 ॥ ६ ॥
 एपा द्विषो दुहिता प्रत्यदर्शि
 व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः ।
 विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व
 उपो अघेह सुभगे व्युच्छ
 ॥ ७ ॥
 परायतीनामन्वेति पाथ
 आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् ।
 व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्ति
 उपा मृत कं चन योधयन्ती
 ॥ ८ ॥
 उपो यदग्निं समिधे च्चकथं
 वि यदावधक्षसा सूर्यस्य ।
 यन्मानुपान् यक्ष्यमाणं अजीगः
 तद् देवेषु चरुषे भद्रमर्णः
 ॥ ९ ॥
 कियत्या यत् समया भवाति
 या व्युपुष्यांश्च नूनं व्युच्छान् ।
 अनु पूर्वाः रूपते वायशाना
 प्रदीप्याना जोषमन्याभिरेति
 ॥ १० ॥
 ईयुष्टे ये पूर्वतरामपदयन्
 व्युच्छन्तीमुपसं मर्त्यासः ।
 अस्माभिरु नु प्रतिचक्ष्यामूत्
 भो ते यन्ति ये अंपरीपु पश्यान्
 ॥ ११ ॥
 यावयद् द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः
 सुंघ्रायीं सुनूतां ईरयन्ती ।
 सुमङ्गलीयिर्धती देवयीति
 इहाद्योप. धेष्टतमा व्युच्छ
 ॥ १२ ॥
 नार्थत् पूतेपा व्युपास देवी
 भर्गो अयदं व्यापो सुगोनी ।

अथो व्युच्छादुत्तरं अनु द्यु
 अजरामृतां चरति स्युघाभिः ॥ १३ ॥
 व्युच्छिभिर्दिव आतास्वद्यौत्
 अर्प कृष्णां निर्णजं देव्यायः ।
 प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैः
 ॥ १४ ॥
 ओषा याति सुयुजा रथेन
 आवर्हन्ती पोष्या वार्याणि
 चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
 इयुषीणामुपमा शश्वतीनां
 विभातीनां प्रथमोपा व्युभवैत् ॥ १५ ॥
 उदीर्ष्व जीवो असुंनं आगात्
 ॥ ८ ॥
 अप प्रागात् तम आ ज्योतिरेति ।
 आरैक् पन्थां यातेव सूर्याय
 अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ १६ ॥
 स्युमना वाच उदियतिं वहिः
 स्तवानो रेभ उपसो विभातीः ।
 अद्या तदुच्छ गृणते मंघोनी
 अस्मे आयुनि दिदीहि प्रजावत् ॥ १७ ॥
 या गोमतीरुपसः सध्वीरा
 ॥ १० ॥
 व्युच्छन्ति वाशुपे मर्त्याय ।
 धायोरिव सुनूतानामुदकं
 ता अश्वदा अश्वत् सोमसुत्या ॥ १८ ॥
 माता देवानामदितेरनीकं
 यद्धस्यं केतुर्बृहती वि माहि ।
 प्रदास्तिरुद् ग्रहणे नो व्युच्छा
 नो जनें जनय विश्वघारे ॥ १९ ॥
 यश्चित्रमर्ष उपसो वहन्ति
 ॥ १२ ॥
 ईजानार्यं शशमानार्यं मद्रम् ।
 तत्रो मिनो परणो मामहस्तां
 अदितिः गिर्युः पृथिवी उत द्यौः ॥ २० ॥
 (१४५५)

॥ ६ ॥ (ऋ० १।२३।१-१३)

कञ्जीवान् देवतमप्य अंशिनः । त्रिदुषः ।

पृथु रथो दक्षिणाया अयोजि
पैत्रं देवासां अमृतांसो अस्युः ।

कृष्णादुदस्यादर्यां विहायाः
चिकित्सन्तीं मार्तुपाय क्षयाय
पूर्वां विश्वस्माद् भुवनादयोषि
जयन्तीं वाजं वृहतीं सनुत्री ।

उच्चा व्यरथद् युवतिः पुनर्भूः
ओषा अगन् प्रथमा पृथहृतौ
यद्य भागं विभजसि नभ्यः
उर्यो देवि मर्त्यश्चा सुजाते ।

देवो नो अत्र सविता दमृता
अनागसो वोचति सूर्याय
गृहं गृहमदना यात्यच्छां
द्विवेदिवे अधि नाम्ना दधाना ।

सिपांसन्तीं चोतुना शश्वदागात्
अप्रमप्रमिद् मंजते वसूनाम्
भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिः
उपः सृते प्रथमा जरस्व ।

पक्षा स दद्या यो अघस्य धाता
जयेम तं दक्षिणाया रथेन
उदीरतां सृष्टता उक् पुनन्धीः
उदुभयः शशुचानासो अस्युः ।

स्पाहां वसेन्ति तमसापंगुच्छा
आविष्कण्यन्त्युपसो विभातीः
अपान्यदेत्यभ्यङ्ग्यदेति
धियुरुपे अहनी सं चरेते ।

परिक्षितोस्तमो अग्न्या गुहाकः
अपौतुपाः शोशुचता रथेन
सदशीरथ सदशीरिदु इवो
दीर्घे संचन्ते वरुणस्य धामे ।

अनवद्यास्त्रिशतं योजनानि
पक्कां क्रतुं परिं यन्ति स्रधः ॥ ८ ॥

जानत्यहः प्रथमस्य नामं
शुक्रा कृष्णार्दजनिष्ठ दिवतीची ।
श्रुतस्य योया न मिनाति धाम ॥ १ ॥

अहंरहर्निष्कृतमाचरन्ती
कन्यैव तन्वां शारादानां
परिं देवि देवमियंक्षमाणम् । ॥ ९ ॥

संसर्यमाना युवतिः पुरस्तात्
आविर्भूतासि कृणुपे विभाती ॥ १० ॥

सुसंक्राशा मातृमृष्टं योया
आविस्तन्वै कृणुपे इदो कम् ।

मद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ
न तत् ते अन्या उपसो नशन्त ॥ ११ ॥

अदवावतीगोमंतीविदव्यारा
यतमाना रदिममिः सूर्यस्य ।

परां च यन्ति पुत्रा च यन्ति
मद्रा नाम वदमाना उपासः ॥ १२ ॥

श्रुतस्य रदिममनुयच्छमाना
मद्रंमद्रं क्रतुमसासुं घेहि ।

उर्यो नो अद्य सुदद्या व्युच्छ
असासु रायो भुवतसु च स्युः ॥ १३ ॥

॥ ७ ॥ (ऋ० १।१२।१-१३)

उपा उच्छन्तीं समिधाने अग्ना
उचन्त्यस्य उर्विया ज्योतिरथेत् ।

देवो नो अत्र सविता न्वर्ये
प्रासांवीद् द्विपत् प्र चतुष्पदिस्यै ॥ १ ॥

अमिनतीं देव्यानि प्रतानि
प्रमिनतीं मनुष्या युगानि ।

ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां
आयतीनां प्रथमोपा र्यघात् ॥ २ ॥

पुपा दिवो दुहिता प्रत्यदशि
ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।

ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु
प्रजानतीषु न दिशो मिनाति

उपो अदाशि शुन्ध्युवो न वक्षो
नोधा इवाविरक्त प्रियाणि ।

अश्वसन्न संसतो धो धर्यन्ती
शश्वत्तमागात् पुनरेत्युपीणाम्

पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य
गवां जनिज्यकृत प्र केतुम् ।

व्युं प्रयते धितरं वरीषु धा
उभा पुणन्ती पित्रोरुपस्था

पुवेदेवा पुरुतमा हृशे कं
नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम् ।

अरेपसा तन्वाद् शशादाना
नामादीपते न महो विमाती

अध्रातेयं पुंस एति प्रतीची
गर्तागमिव सनये धनानाम् ।

जायेय पत्य उशती सुवासा
उपा हृद्येषु नि रिणीते अप्तः

स्वसा स्वद्ये ज्यायस्यै योनिमारुक्
अपत्यस्याः प्रतिचक्ष्येय ।

व्युच्छन्ती रदिममि सूर्यस्य
अन्यदङ्के समनगा इय याः

आसां पूर्वीसामहसु स्वसृणां
अपरा पूर्वीमभ्येति पश्चात् ।

ताः प्रतपन्नप्यसिर्ननमस्मे
रेयदुच्छन्तु सुदिना उपायः

प्र चोपयोपः पुणतो मघोनि
धर्तुयमाना पुणयः सतन्तु ।

रेवदुच्छ मघयद्गयो मघोनि

रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥ १० ॥

अवेयमश्वैद् युवतिः पुरस्ताद्

॥ ३ ॥ युङ्क्ते गवामहृणानामनीकम् ।

वि नूनमुच्छदसंति प्र केतुः

गृह्णंरुहमुप तिष्ठाते अग्निः ॥ ११ ॥

उत् ते वर्यश्चिद् घसतेरपत्तन्

॥ ४ ॥ नरश्च ये पितृभाजो व्युद्यौ ।

अमा हृते वदसि भूरिं वामं

उपो देवि दाशुपे मर्त्याय ॥ १२ ॥

अस्तोद्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मे

॥ ५ ॥ अवीवृधध्वमुशतीरुपासः ।

युष्माकं देवीरवसा सनेम

सहस्रिणं च शक्तिनं च वाजम् ॥ १३ ॥

॥ ८ ॥ (ऋ० ३।६।१-७)

गायिनो विश्वामित्र । श्रिष्टुप् ।

॥ ६ ॥ उपो वाजेन वाजिनि प्रचेताः

स्तोमं जुपस्य गृणतो मघोनि ।

पुराणी देवि युवतिः पुरंधि.

अनुं मृतं चरसि विश्वधारे ॥ १ ॥

उपो वेद्यमर्त्या वि माहि

॥ ७ ॥ चन्द्ररथा सूनृता इरयन्ती ।

आ त्वां घहन्तु सुयमांसो अश्वा

हिरण्यघर्णा पृथुपाजसो ये ॥ २ ॥

उपः प्रतीची भुवनानि विद्या

॥ ८ ॥ ऊर्ष्या तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।

समानमर्थं चरणीयमाना

चममिय नव्यस्या वधृत्स्य ॥ ३ ॥

अयु स्यूमेय चिन्वती मघोनी

॥ ९ ॥ उपा याति स्वसंरस्य पदी ।

स्वर्जनन्ती सुमगा सुदंसा

॥ ४ ॥
(१४८९)

अच्छा यो देवीमुपसं विमाती
 प्र वो भरष्वं नमसा सुवृकिम् ।
 ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेव
 प्र रौचना रुचचे रण्यसंहक
 ऋतावरी दिवो अर्करयोधि
 आ रेवती रोदसी चित्रमस्यात् ।
 आयतीमन्न उपसं विमाती
 वाममैपि द्रविणं भिक्षमाणः
 ऋतस्यं युञ्ज उपसामिपुण्यन्
 वृषा मही रोदसी आ विवेश ।
 मही मित्रस्य वरणस्य माया
 चन्द्रेव मातुं वि दधे पुत्रा

॥ ९ ॥ (ऋ० ३।५।१-११)

वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

इदमु स्यत् पुरुतमं पुरस्तात्
 ज्योतिस्तमसो ययुर्नावदस्यात् ।
 नूनं दिवो दुहितरो विमातीः
 गातुं कृणवधुपसो जनाय
 अस्युक् वित्रा उपसः पुरस्तात्
 मिता इव स्वरयोऽप्यरेषु ।
 प्यं मजस्य तमसो द्वाय
 उच्छन्तीरमश्नुच्ययः पायकाः
 उच्छन्तीरघ चितयन्त भोजान्
 राधोदेयायोपसो मयोनीः ।
 अविभ्रे अन्तः पुण्यः ससन्तु
 अयुध्यमानास्तमसो विमये
 कृवित् स देवीः सुनयो नवो धा
 यामो वमुयादुपसो यो वृच ।
 येना नयन्ये अङ्गिरे दशावे
 सनास्यै रेपती रेयदूप

युयं हि देवीर्ऋतयुग्मिभरध्वैः
 परिप्रयाथ भुवनानि स्यचः ।
 प्रबोधयन्तीरयसः ससन्तं
 द्विपाच्चतुर्प्पाच्चरयाय जीवम्
 कं स्वदासां कतमा पुराणी
 ययां विधानो विदधुर्ऋमुणाम् ।
 शुभं यच्छुभ्रा उपसश्चरन्ति
 न वि शायन्ते सहशीरजुयाः
 ता घा ता मद्रा उपसः पुरासुः
 अमिष्टिष्टुम्ना ऋतजातसत्याः ।
 यास्वीजानः शशमान उन्धैः
 स्तुषच्छंसन् द्रविणं मद्य आप
 ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्
 समानतः समना पययानाः ।
 ऋतस्यं देवीः सदसो वुधाना
 गद्यां न सर्गा उपसो जरन्ते
 ता इन्धेधुव संमना संमानीः
 अर्मातवर्णा उपसश्चरन्ति ।
 गूहन्तीरभ्यमसितं रुदाङ्गिः
 शुकास्तनूमिः शुचयो रुचानाः
 रथिं दिवो दुहितरो विमातीः
 प्रजावन्तं यच्छतास्मात् देवीः ।
 स्योनादा यः प्रतिबुध्यमानाः
 सुवीर्यस्य पतयः स्याम
 तद् वो दिवो दुहितरो विमातीः
 उपं वृच उपसो यश्चक्रेतुः ।
 वयं स्याम यदासो जनैषु
 तद् वीर्यं प्रचां प्रथिवी च देवी

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १० ॥ (ऋ० ३।५।१-७) गायत्री ।

प्रति प्या सुनरी जनीं व्युच्छन्तो परि स्वसुः ।
 द्वियो अदशि दुहिता

॥ १ ॥
 (६५००)

अद्वैतं चित्रारुपी माता गर्वामृतधरि ।
 सखाभूदश्विनोरुपाः ॥ २ ॥
 उत सखास्थश्विनोरुत माता गर्वामसि ।
 उतोपो वस्व ईशिये ॥ ३ ॥
 यावद्यद् द्वैपसं त्या चिकित्त्वित् सुनृतावदि ।
 प्रति स्तोमैरभुत्सहि ॥ ४ ॥
 प्रति भद्रा अक्षतु गवां सर्गा न रदमयः ।
 ओपा अत्रा उरु जयः ॥ ५ ॥
 आप्रुपी विभावदि व्यावृज्योतिपा तमः ।
 उयो अनु स्वधामव ॥ ६ ॥
 आ थां तनोपि रदिमभि रान्तारिक्षमुक प्रियम् ।
 उयः शुक्रेण शोचिपा ॥ ७ ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० ५।७९।१-१०)

सत्यश्रवा आश्रया । पक्कः ।

महे नो अद्य बोधयो पो राये दिवितर्मती ।
 यथा चिद्रो अयोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये
 सुजाते अश्वसुनृते ॥ १ ॥
 या सुनीये शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
 सा व्युच्छ सदीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये
 सुजाते अश्वसुनृते ॥ २ ॥
 सा नो अद्याभरदसु व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
 यो व्यौच्छः सदीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये
 सुजाते अश्वसुनृते ॥ ३ ॥
 अभि ये त्या विभावदि स्तोमैर्गुणन्ति घर्षयः ।
 मर्षमघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः
 सुजाते अश्वसुनृते ॥ ४ ॥
 यच्चिद्रि तं गुणा इमे हृदयन्ति मघत्तये ।
 परि चिद्र घर्षयो दधुर्ददतो राधो अहयं
 सुजाते अश्वसुनृते ॥ ५ ॥
 ऐषु धा धीरयद् यदा उपो मघोनि सुरिषु ।
 ये नो राधां यहा मघयां नो अरात्त
 सुजाते अश्वसुनृते ॥ ६ ॥

तेभ्यो सुक्ष्मं बृहद् यश उपो मघोन्या बह ।
 ये नो राधांस्यर्या गव्या भजन्त सुरयः
 सुजाते अश्वसुनृते ॥ ७ ॥
 उत नो गोमतीरिप आ बहा दुहितर्दिवः ।
 साकं सूर्यस्य रदिमभिः शुक्रैः शोचन्निर्दिभिः
 सुजाते अश्वसुनृते ॥ ८ ॥
 व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।
 नेत् र्वा स्तनें यथा रिषुं तपाति सूरौ अश्विया
 सुजाते अश्वसुनृते ॥ ९ ॥
 एतावद् वेदुपस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि ।
 या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयते
 सुजाते अश्वसुनृते ॥ १० ॥

॥ ११ ॥ (ऋ० ५।८०।१-६) विष्टुः ।

द्युतर्धामानं बृहतीमृतेन
 ऋतावरीमरुणसु विभ्रातीम् ।
 देवीमुपसं स्वरावर्हन्ती
 प्रति विप्रांसो मतिभिर्जरन्ते ॥ १ ॥
 एषा जनं दर्शता बोधयन्ती
 सुगान् पथः कृण्वती यात्यमै ।
 बृहद्रथा बृहती विद्वमिन्व
 उपा ज्योतिर्यच्छत्यमे अहाम् ॥ २ ॥
 एषा गोभिररुणेभिर्बुजाना
 अश्वेणन्ती रयिमप्रायु चके ।
 पथो रदन्ती सुधितायं देवी
 पुंरुपुता विद्वयारा वि भाति ॥ ३ ॥
 एषा धर्षेनी भयति द्विबर्हा
 आविष्कण्णाना तन्यं पुरस्तात् ।
 ऋतस्य पन्थामन्यति साधु
 मंजानतीय न दिशो मिनाति ॥ ५ ॥

एषा शुभ्रा न तन्वो विद्वाना
ऊर्ध्वैव स्नाती दृशये नो अस्यात् ।

अप द्वेषो वार्धमाना तर्मांसि
उपा दिवो दुहित्वा ज्योतिषागात्

॥ ५ ॥

एषा प्रतीचा दुहिता दिवो नन्
योर्ध्वैव भद्रा नि रिणीते अस्तः ।

व्युष्वती द्वागुपे वार्याणि
पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः

॥ ६ ॥

॥ ६२ ॥ (ऋ० ६।६१।१-६)
भरद्वाजो वार्धस्वयः । त्रिष्टुप् ।

उदु ध्रिय उपसो रोचमाना
अस्युरपां नोर्मयो रुशन्तः ।

कृणोति विध्वां सुपथां सुगानि
अभूदु वस्वी दक्षिणा मघोर्नी

॥ १ ॥

भद्रा दृक्ष उर्विया वि भामि
उत् तं शोचिर्मानधो धामपत्न ।

आधिर्वक्षः कृणुपे शुभमाना
उपो देवि रोचमाना महोमिः

॥ २ ॥

वदन्ति सीमरुणासो रुशन्तो
गार्धः सुभगांमुर्विया प्रथानाम् ।

अवैजने शरो अस्तैव शशुन्
वार्धते तमो अजिरो न योळ्ढा

॥ ३ ॥

सुगोत तं सुपथा पर्वतेषु
अघाते अपस्तर्पसि स्वमानो ।

सा न आ वंह पृथुयामन्नप्ये
रुयि दिवो दुहितरिपुयर्थे

॥ ४ ॥

सा वंह योक्षभिरवाता
उपो वरं वहसि जोपमनु ।

त्वं दिवो दुहितयां दृ देयी
पूर्वहती मंदनां वशता भूः

॥ ५ ॥

उत् ते वर्यश्चिद् वसतेरपत्न
नरंश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।

अमा सते वंहसि मूर्तिं धामं
उपो देवि द्वागुपे मर्त्याय

॥ ६ ॥

॥ १४ ॥ (ऋ० ६।६१।१-६)

एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः
क्षितीरुच्छन्ती मानुपीरजागः ।

या मानुना रुशता राम्यासु
अघायि तिरस्तमसश्चिदपत्न

॥ १ ॥

वि तद् वयुररुणयुग्भिरद्वैः
चित्रं मानुपसंश्चन्द्ररंधाः ।

अग्रं यद्यस्यं बृहतो नयन्तीः
वि ता वार्धन्ते तम ऊर्म्यायाः

॥ २ ॥

श्रवो वाजमिपमूर्त्तौ वहन्तीः
नि द्वागुपं उपसो मर्त्याय ।

मघोर्नीवीरवत् पत्यमाना
अवो धात विधुते रत्नमघ

॥ ३ ॥

इदा हि वो विधुते रत्नमस्ति
इदा वीरायं द्वाशयं उपासः ।

इदा विप्राय जर्ते यदुपथा
नि ष्म भारते वहथा पुरा चित्

॥ ४ ॥

इदा हि तं उपो अद्रिसानो
गोभ्रा गवामङ्गिरसो गुणान्ति ।

व्युक्केण विभिदुर्द्रहणा च
सत्या नृणाममवद् द्वेवर्हतिः

॥ ५ ॥

उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवधो
भरद्वाजवद् विधुते मयोनि ।

सुवीरं रुयि वृणुते रिरीदि
उरुणापमधि धेदि धयो नः

॥ ६ ॥

॥ १५ ॥ (श्र० ७।५।१७)

गैत्रावर्णिसंविष्टः । त्रिष्टुप् ।

अद्यापतीगोमंतीर्न उपासौ
धीरवंतीः सर्वमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विद्वत्तः प्रपीता
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ १६ ॥ (श्र० ७।७।११-८)

द्युपुषा आधो दिविजा ऋतेन
आविष्कणयाना महिमानमागात् ।

अपु द्रुहस्तम आघरजुष्टं
अङ्गिस्तमा पृथ्या अजागः

महे नो अघ सुविताय घोषि
उपो महे सौभगाय प्र यन्धि ।

चित्रं रयि यशसं धेह्यस्मे
देवि मर्तेषु मानुषि अघस्युम्

पते त्ये भानवो दर्शतायाः
चित्रा उपसौ अमृतास आगुः ।

जनयन्तो दैव्यानि व्रतानि
आपूणन्तो अन्तरिक्षा व्यंस्थुः

पुषा स्या युजाना पराक्तात्
पञ्च क्षितीः परि सद्यो जिगाति ।

अभिपश्यन्ती वयुना जनानां
दिवो दुहित्वा भुवनस्य पत्नी

वाजिनीवती सूर्यस्य योषा
चित्रामंघा राय ईशे वसूनाम् ।

ऋषिपुता जरयन्ती मघोनि
उपा उच्छति वह्निभिर्युणाना

प्रति घृतानामरुपासो अर्वाः
चित्रा अदध्रुपसं वहन्तः ।

याति शुभ्रा विभ्रविशा रथेन
वर्धाति रतै विधत्ते जनाय

सत्या सत्येभिर्महती महङ्गिः

धेयी धेयोभिर्वज्रता यज्ञैः ।

गृजद् दृज्जानि यद्वदुस्त्रियाणां

प्रति गाय उपसं घायशम् ॥ ७ ॥

नू नो गोमद् धीर्यद् धेहि रत्नं

उपो अर्वाघत् पुटमोजो अस्मे ।

मा नो यतिः पुटयता निदे कः

यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

॥ १७ ॥ (श्र० ७।७।१-७)

उदु ज्योतिरमृतं विभ्यजन्वं

विभ्यानरः सयिता देवो अग्नेत् ।

ऋत्या देवानामजनिष्ट चक्षुः

आघिरकुर्भुवं विभ्रमुषाः ॥ १ ॥

प्र मे पन्था देययाना अदध्रन्

अमर्धन्तो घसुभिरिकृतासः ।

अभ्रदु केतुरपसः पुरस्तात्

प्रतीच्यागादधि ह्यभ्यभ्यः ॥ २ ॥

तानीदहानि बहुलान्यासन्

या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य ।

यतः परि जार इवाचरन्ती

उपो दृक्षे न पुनर्यतीव ॥ ३ ॥

त इद् देवानां सधमाद् आसन्

ऋतावानः क्वयः पृथ्यासः ।

गुळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्

सत्यमन्त्रा अजनयसुपासम् ॥ ४ ॥

समान ऊर्वे अधि संगतासः

सं जानते न यतन्ते मिथस्ते ।

ते देवानां न मिनन्ति व्रतानि

अमर्धन्तो घसुभिर्यादमानाः ॥ ५ ॥

प्रति त्वा स्तोमैरीच्छते वसिष्ठा
उपबुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।

गवां नेत्री चाजपत्नी न उच्छ
उपः सुजाते प्रथमा जरस्व

एषा नेत्री राधसः सुनुतानां
उपा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठः ।

दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ १८ ॥ (ऋ० ७।७३।१-६)

उपो रुरुचे युवतिर्न योपा
विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायं ।

अभूदग्निः समिधे मानुषाणां
अकज्योतिर्वाधमाना तमांसि

विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्याद्
रुशद् वासो विश्रंती शुक्रमभ्वैत् ।

हिरण्यवर्णा सुदशीकसद्ग
गवां माता नेत्र्यद्गामरोधि

देवानां चक्षुः सुमगा वहन्ती
श्वेतं नयन्ती सुदशीकमभ्वम् ।

उपा अदशिं रुदिमभिव्यंका
चित्रामंघ्रा विश्वमनु प्रभृता

अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छ
उवां गव्युतिममये कृषी नः ।

यावय द्वेष आ मंरा घसूनि
चोदय राधो गृणते मंघोनि

अस्मे श्रेष्ठमिर्मानुमिषिं भाहि
उपो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।

इयं च नो दधती विश्वघारे
गोमदभ्यावद् रथवश राधः

यां त्वा दिवो दुहितवर्धयन्ति
उपः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।

सास्मासु धा रयिमप्यं बृहन्तं
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ १९ ॥ (ऋ० ७।७८।१-५)

प्रति केतवः प्रथमा अदथन्
ऊर्ध्वा अस्या अल्लयो वि श्रयन्ते ।

उपो अर्वाचां गृहता रथेन
ज्योतिर्धमता वाममसभ्यं वक्षि

प्रति पीमग्निर्जरेते सामेदुः
प्रति विप्रांसो मतिभिर्गणन्तः ।

उपा याति ज्योतिषा वाधमाना
विदवा तमांसि दुरिताप देवी

एता उ स्याः प्रत्यदथन् पुरस्तात्
ज्योतिर्यच्छन्तीरुवसो विभातीः ।

अजीजनन्त्युयं यद्यमग्निं
अपाचीनं तमो अगादजुष्टम्

अचंति द्विषो दुहिता मघोनी
विद्वे पश्यन्त्युपसं विभातीम् ।

आस्याद् रथं स्वघया युज्यमानं
आ यमश्वासः सुयुजो वर्हन्ति

प्रति त्वाद्य सुमनसो बुघन्तु
अस्माकांसो मघवानो वयं च ।

तिल्विलायध्वमुपसो विभातीः
युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

॥ २० ॥ (ऋ० ७।७९।१-५)

व्युपा आचः पथ्यां जुनातं
पञ्च क्षितीर्मानुपीयोधयन्ती ।

सुसंद्गमिर्दक्षमिर्मानुमधेद्
धि स्यो रोदसी चससावः

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ १ ॥

व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वन्त
 विशो न युक्ता उपसौ यतन्ते ।
 सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति
 ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेवं याह
 ॥ २ ॥
 अभूदुपा इन्द्रतमा मघोनि
 अर्जीजनत् सुविताय श्रवांसि ।
 वि दिवो देवी दुहिता दध्नाति
 अङ्गिरस्तमा सुहृते घसुनि
 ॥ ३ ॥
 तावदुपो राधो अस्मभ्यं रास्य
 यावत् स्नोतुभ्यो अरदो गृणाना ।
 यां त्वां जह्वृषभस्या रवेण
 वि हृळदस्य दुरो अद्रेरौणोः
 ॥ ४ ॥
 देवंदेवं राधेसं चोदयन्ति
 अस्मभ्यं सुनुता इरयन्ती ।
 प्युच्छन्ती नः सुनये धियो धा
 यूयं पात स्यस्तिभिः सदा नः
 ॥ ५ ॥

॥ २१ ॥ (श्र० ७।८।१-३)

प्रति स्तोमैर्भिमृषसु वासेष्ठा
 गीर्भिविप्रासः प्रथमा अंधुधन् ।
 विपतेयन्ती रजसी समन्ते
 आधिपृष्यती भुयंनानि विभ्यां
 एया ह्या नप्यमापुर्ध्वाना
 गूर्धा तमो ज्योतिर्योपा भवोधि ।
 मभं धनि युवनिरहपाणा
 प्रादिविजित्त् यूयं पृथमग्निम्
 ॥ १ ॥
 धर्मावतीगोमर्तानं उपानो
 दीर्यतीः सद्गुच्छन्तु भद्राः ।
 पूमं दुर्दाना विभ्वन्ः प्रपीत
 यूयं पात स्यस्तिभिः सदा नः
 ॥ २ ॥

॥ २२ ॥ (श्र० ७।८।१-६)
 प्रगाथः = (विषया वृद्धी + समा एतेवृद्धी) ।
 प्रत्यु अदश्यायत्यु।—च्छन्ती दुहिता दिवः ।
 अपो माहि व्ययति चक्षसे तमो
 ज्योतिष्कृणोति सुनरी ॥ १ ॥
 उदुक्षियाः सृजते सूर्यः सचां
 उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
 तवेदुपो व्युपि सूर्यस्य च
 सं भुक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥
 प्रति त्वा दुहितर्दिव उपो जीरा अभुत्समहि ।
 या वहंसि पुर स्पाहं धनन्वति
 रत्नं न दाशुपे मयः ॥ ३ ॥
 उच्छन्ती या कृणोति मंहना महि
 प्रत्यै देवि स्वर्दशे ।
 तस्यास्ते रत्नभाजे ईमहे यूयं
 स्यामं मातुर्न सुनयः ॥ ४ ॥
 तच्चिन्नं राध आ भुरो—पो यद् दीर्घधुत्तमम् ।
 यत् ते दिवो दुहितर्मतेभोजनं
 तद् रास्य भुनजामहे ॥ ५ ॥
 अयः सुरिभ्यो अमृतं घसुत्वानं
 धाजो अस्मभ्यं गोमतः ।
 चोदायित्री मघोनः सुनुतायती
 उपा उच्छदपु सिधः ॥ ६ ॥
 ॥ २३ ॥ (श्र० ८।१०।१३)
 अमर्दमभिर्गं । एवा सूर्यप्रभा वा । वृती ।
 इयं या नीच्यकिर्णी रूपा रोहिण्या कृता ।
 विधेय प्रत्यदश्यापत्यु।—गर्ध्वशाखं याहुर्पु ॥ १ ॥
 ॥ २४ ॥ (श्र० १०।१०।१-४)
 देवतं आशिरयः । शिषा विराट् ।
 भा योहि धनस्या सद्
 गार्ग्यः सपयत् वर्तनि यदूर्धभिः ॥ १ ॥

आ याहि चर्या धिया
महिष्ठो जारयन्मन्त्रः सुदानुमिः ॥ २ ॥
पितृभृतो न तन्तुमित्
सुदानंयः प्रति दध्मो यजामसि ॥ ३ ॥
उपा अप स्वसुस्तमः
सं वर्तयति वर्तनि सुज्ञातता ॥ ४ ॥

॥ १५ ॥ (चा० य० ११।१६)

संज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं भूयात् ।
अग्नेभस्सास्यग्नेः पुरीषमसि
चितं स्य परिचितं ऊर्ध्वचितं श्रयध्वम् ॥ ४६ ॥
॥ २६ ॥ (साम० ३०३, ७५१)

वशिष्ठो मेत्रावरुणः । बृहती ।

प्रत्यु अददर्पायत्यू३—च्छन्ती दुहिता दिवः ।

अपो महो वृणुते चक्षुषा तमो

ज्योतिष्कणोति सुनी ॥ २०३ ॥

॥ १७ ॥ (अथर्व० १२।११।१)

वशिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

उपा अप स्वसुस्तमः
सं वर्तयति वर्तनि सुज्ञातता ।

अया वाजं देवहितं सनेमः
मदंम शतहिमाः सुवीर्यः ॥ १ ॥

उपा-सहचारी-देवगणः

(१) आदित्योपसः । (दुःष्वप्नमम्)

॥ १८ ॥ (ऋ० ८।४७।१४-१८)

त्रित आप्तः । महापुरुषः ।

यच्च गोषु दुःष्वप्यं यच्च्चास्मे दुहितर्दिवः ।

त्रिताय तद् विभावया प्याय परा वह
अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १४ ॥

निष्कं वां वा कृणवते अजं वा दुहितर्दिवः ।

त्रिते दुःष्वप्यं सर्वं माप्ये परि दध्मसि
अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १५ ॥

तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुये ।
त्रिताय च द्विताय चो-यो दुःष्वप्यं वह

अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १६ ॥
यया क्लां यया शकं ययं ऋणं संनयामसि ।

पथा दुःष्वप्यं सर्वं माप्ये सं नयामसि
अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १७ ॥

अजंप्माद्यासनाम चा-भुमानागसो वयम् ।
उपो यसाद् दुःष्वप्या-दमैप्माप तदुच्छुतु

अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १८ ॥

(२) उपासानका ।

॥ २९ ॥ (चा० य० २०।३१)

उपासानका बृहती बृहन्तं
पर्यस्वती सुदुधे शरभिन्द्रम् ।

तन्तुं ततं पदासा संवर्यन्ती
देवानां देवं यजतः सुधन्मे ॥ ४१ ॥

॥ ३० ॥ (चा० य० २८।१४, ३७)

देवी उपासानकेन्द्रं यद्ये प्रयत्यहेताम् ।

देवीर्दिशाः प्रायांसिष्टाः सुमीते
सुधिते यसुवनें यसुधेयस्य वीतां यजं ॥ १४ ॥

देवी उपासानका देवमिन्द्रं
वयोघसं देवी देवमवर्धताम् ।

अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं पलमिन्द्रे वयो दधंद्
यसुवनें यसुधेयस्य वीतां यजं ॥ ३७ ॥

(३।१९)

ब्रह्मजाया

॥ १ ॥ (अथर्व० ५।१७।१-१८)

मयोभूः । अनुष्टुप् ; १-१ निष्ठुप् ।

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिलिये
 अकूपारः सलिलो मातरिभ्यां ।
 दीडुहंरास्तप उग्रं मयोभूः
 आपो देवीः प्रथमजा भ्रुतस्य
 सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां
 पुनः प्रार्यच्छदहणीयमानः ।
 अन्यर्तिता वरुणो मित्र आसीत्
 अग्निहोता हस्तगृह्या निनाय
 हस्तेनैव ग्राह्य आधिरेस्या
 ब्रह्मजायेति चेदयोचत् ।
 न दृतायं प्रदेयां तस्य पृथा
 तथा राष्ट्रं गुंपितं क्षत्रियस्य
 यामाहुतारं वैषा विद्वेशीतिं
 दुच्छ्रुतां प्राममपपर्चमानाम् ।
 सा ब्रह्मजाया यि दुनोति राष्ट्रं
 यत्र प्रापादि शूरा उल्लुपीमान्
 ब्रह्मचारी प्यरति वेविपक्षिपः
 स देवानां मपारेयवभङ्गम् ।
 तेन ज्ञायाममर्थयिन्दुन् बृहस्पतिः
 सोमं न नीतां जुष्टं न रंयाः
 देवा वा एतस्यामयदन्त पूर्वे
 सान्भ्रुपयस्नपत्ता ये निपेक्षः ।
 भीमा ज्ञाया ब्राह्मणस्यापनीता
 र्था रंघाति परमे स्योमन्

ये गर्भी अवपद्यन्ते जगद्यद्यापलुप्यते ।
 वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिंनस्ति तान् ॥ १ ॥
 उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अग्राहणाः ।
 ब्रह्मा चेद्वस्तुमग्रहीत् स एव पतिरकृधा ॥ ८ ॥
 ब्राह्मण एव पतिर्न राज्ञ्यो न वैश्यः ।
 तत् सूर्यः प्रब्रुवन्नैति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥ ९ ॥
 पुनैधं देवा अद्दुः पुनर्मनुष्या अद्दुः ।
 राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्वदुः ॥ १० ॥
 पुनर्दायं ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिलियम् ।
 ऊर्जे पृथिव्या भस्वोरेगायमुपासते ॥ ११ ॥
 नास्यं ज्ञाया शतघाही कल्याणी तल्पमा शये ।
 यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥ १२ ॥
 न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेदमनि जायते ।
 यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥ १३ ॥
 नास्यं क्षत्ता निष्कर्मिणः सुनानामित्यप्रतः ।
 यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥ १४ ॥
 नास्यं श्येतः कृष्णवर्णां पुरि युक्तो मदीयते ।
 यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥ १५ ॥
 नास्यं क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकः जायते बिसम् ।
 यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥ १६ ॥
 नास्यं पृथिवि युद्धनिष्ठे योऽस्या दोहमुपासते ।
 यस्मिन् राष्ट्रे निरुप्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥ १७ ॥
 नास्यं धेनुः कल्याणी नानुवायते हते पुरम् ।
 विजानिषन् ब्राह्मणो रात्रिं यसति पापया ॥ १८ ॥

विवाह-प्रकरणम्

॥ १ ॥ (अथर्व० १४।१-६४)

सूर्यां सावित्री । आरामा; १-५ सोमः, ६ स्वविवाहः, २३ सोमार्क, २४ चन्द्रमाः, २५ सूर्यां विवाहमन्त्राशिपः; २५; २७ वधूवासः सस्पशमोचनम् । अनुष्टुप्; १४ विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः; १५ आख्यारपङ्क्तिः; १९-२०, २३-२४, २१-२३, ३७, ३९-४०, ४५, ४७, ४९-५०, ५३, ५६-५९, ६१ त्रिष्टुप् (२३, ३१, ४५ वृहतीगर्मा); २१, ४६, ५४, ६८ जगती (५४, ६४ सुरिक् त्रिष्टुप्); २९, ५५ पुरस्ताद्बृहती; ३४ प्रस्तारपङ्क्तिः; ३८ पुरोबृहती त्रिपदा परोष्णिक्; (४८ पथ्यापङ्क्तिः)
६० पराऽनुष्टुप् ।

सुत्येनोत्तमिता भूमिः सुयैणोत्तमिता घौः ।
ऋतेनादित्यास्तित्प्रन्ति द्विवि सोमो अधि क्षितः ॥ १ ॥
सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अयो नक्षत्राणामेवामुपस्थे सोम आर्हितः ॥ २ ॥
सोमं मन्यते पपिवान् यत् संप्रियन्त्योपधिम् ।
सोमं यं ब्रह्मणो विदुर्न तस्यांश्रान्ति पार्थिवः ॥ ३ ॥
यत् त्वां सोम प्रपिबन्ति तत् आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता सर्मानां मालु आकृतिः ॥ ४ ॥
आच्छद्विधानैर्मुपितो बार्हितैः सोम रक्षितः ।
प्राण्यामिच्छुपवन् तित्प्रसि न तै अश्रान्ति पार्थिवः ५
चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यर्जनम् ।
घौर्भूमिः कोशं आसीद् यदयात् सूर्यां पतिम् ॥ ६ ॥
रैभ्यांसीदनुदेर्यां नाराशंसी न्योर्चनी ।
सूर्यायां भद्रमिद् वासो गार्थयैति परिष्कृता ॥ ७ ॥
स्तोमा आसन् प्रतिधर्यः कुरीरं छन्दं ओपशः ।
सूर्यायां अश्विनां धराभिर्वासीत् पुरोग्वः ॥ ८ ॥

सोमो वधुयुरमवदश्विनास्तामुमा धरा ।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तो मनसा सवितार्ददात् ॥ ९ ॥
मनो अस्या अन आसीद् घौर्वासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावन्तुहावास्तां यदयात् सूर्यां पतिम् ॥ १० ॥
ऋक्लामाभ्यामभिहितौ गार्थौ ते सामनावैताम् ।
श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्याश्चराचरः ॥ ११ ॥
शुचीं ते चक्रे यात्या ध्याना अक्ष आर्हितः ।
अनो मनस्मर्यं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् ॥ १२ ॥
सूर्यायां बहतुः प्रागात् सविता यमवास्तंजत् ।
मवास्तु ह्यन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्युद्यते ॥ १३ ॥
यदाश्विना पृच्छमानावयातं
त्रिचक्रेण बहतुं सूर्यायाः ।
अथैकं चक्रं वामासीत् क्वद्रेप्रायं तस्ययुः ॥ १४ ॥
यदयात् शुमस्पती वर्यं सूर्यामुपं ।
विश्वं देवा अनु तद् वामजानन्
पुत्रः पितरंमवृणीत पुत्रा ॥ १५ ॥
द्वे तै चक्रे सूर्यं ब्रह्मणं ऋतुधा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद् गृहा तदह्वातय इद् विदुः ॥ १६ ॥
अयमर्णं यजामहे सुवन्धुं पतिषेदयम् ।
उर्वारुकमिव बर्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामृतः ॥ १७ ॥
प्रेतो मुञ्चामि नामृतः सुवद्दामममृतंस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढवः सुपुत्रा सुमगांसति ॥ १८ ॥
प्र त्वां मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्
येन त्वायंघ्नात् सविता सुतोषाः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके
स्योनं तं अस्तु सहसंमलाये ॥ १९ ॥
(६६१०)

ब्रह्मजाया

॥ १ ॥ (अथर्व० पा१७१-१८)

मथोभूः । अनुष्टुप् ; १-९ मिष्टुप् ।

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्माकिलिये
 अकूपारः सलिलो मातरिभ्यां ।
 धीदुहुरास्तर्प उग्रं मयोभूः
 आपो देवीः प्रथमजा भ्रुतस्य
 सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां
 पुनः प्रार्यच्छदह्णीयमानः ।
 अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीत्
 अग्निदोता हस्तगृह्णा निनाय
 हस्तैर्नैव ग्राह्य आधिरस्या
 ब्रह्मजायेति चेदयोचत् ।
 न दूतार्यं प्रदेयां तस्य प्या
 तथा राष्ट्रे गुंषितं क्षत्रियस्य
 यामाहृतारक्या विदेशीति
 दुन्दुभुनां प्रार्थम्यपघमानाम् ।
 स्तः ब्रह्मजाया वि कुंभोति राष्ट्रे
 यत्र प्रापादि शुभ उल्बुपीमान्
 ब्रह्मचारी चरति येष्विन्द्रियः
 स देवानां भययेवमर्हम् ।
 तेन जायामर्ष्यपिन्नुद् वृहस्पतिः
 सोमैर्न नीतां जुष्टं न देवाः
 देवा या पतस्यामघमन्त पूषे
 सान्द्रापयस्नर्पया ये निषेदः ।
 भीमा जाया ब्राह्मणस्यार्पनीता
 पूषो देधाति परमे षपोमन्

॥ १ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

ये गर्भो अवपद्यन्ते जगद्यच्चापलुप्यते ।
 धीरा ये तृक्षन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिंनस्ति तान् ॥७॥
 उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अग्राहणाः ।
 ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरकृधा ॥८॥
 ब्राह्मण एव पतिर्न राज्ञ्योऽनु न वैश्यः ।
 तत् सूर्यः प्रब्रुवन्नैति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥९॥
 पुनर्धे देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः ।
 राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥१०॥
 पुनर्दायं ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्नैकिलियपम् ।
 ऊर्जे पृथिव्या भक्तवोर्गणायमुपासते ॥११॥
 नास्य जाया शतघाही कल्प्याणी तल्पमा शिवे ।
 यस्मिन् राष्ट्रे निरुष्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥१२॥
 न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेदमनि जायते ।
 यस्मिन् राष्ट्रे निरुष्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥१३॥
 नास्य क्षत्ता निष्कर्षीवः सुनात्मित्यप्रतः ।
 यस्मिन् राष्ट्रे निरुष्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥१४॥
 नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो मदीयते ।
 यस्मिन् राष्ट्रे निरुष्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥१५॥
 नास्य श्रेत्रं पुष्करिणी नाण्डीकं जायते विसम् ।
 यस्मिन् राष्ट्रे निरुष्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥१६॥
 नास्यै पृथिवि युद्धन्ति येऽस्या दोहमुपासते ।
 यस्मिन् राष्ट्रे निरुष्यते ब्रह्मजायाऽचित्या ॥१७॥
 नास्य धेनुः कल्प्याणी नानुद्धारतहते पुरम् ।
 विजातिर्वन्न ब्राह्मणो रात्रि चरति पापवा ॥१८॥

शं ते हिरण्यं शम्भुं सन्त्वापः
 शं मेधिर्भवतु शं युगस्य तर्षं ।
 शं त आर्षः शनर्षवित्रा भवन्तु
 शम्भु पत्यां तन्वंः सं स्पृशस्व ॥ ४० ॥
 खे रयस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रुणे ।
 अपालामिन्द्रं त्रिष्पुत्वारुणोः सूर्यत्वचम् ॥ ४१ ॥
 आशासना सौमनसं प्रजां सौमन्यं रुयिम् ।
 पत्युरनुव्रता भुन्वा सं नह्यस्वानृताय कम् ॥ ४२ ॥
 यया सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुपुत्रे वृषा ।
 प्वा त्वं सप्तार्यैधि पत्युरस्तं प्रेत्यं ॥ ४३ ॥
 सप्तार्यैधि द्ववदारेषु नम्राह्युत देवृषु ।
 ननान्द्रुः सप्तार्यैधि सप्तार्युत श्वदन्वाः ॥ ४४ ॥
 या अरुन्तन्नवयन् याश्च ततिरे
 या देवीरन्तो अभितोऽददन्त ।
 तास्त्वां जुरसे सं व्ययन्तु
 आयुष्मतीदं परिं घत्स्व वासः ॥ ४५ ॥
 जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं
 दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः ।
 घामं पितृभ्यो य इदं संमीरिरे
 मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ॥ ४६ ॥
 स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि
 तेऽदमानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।
 तमा तिष्ठानुभावां सुवचो
 दीर्घं त आयुः सविता रुणोतु ॥ ४७ ॥
 येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।
 तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यधिष्टा
 मया सह प्रजयां च धनेन च ॥ ४८ ॥
 देवस्तं सविता हस्तं गृह्णातु
 सोमो राजा सुप्रजसं रुणोतु ।
 अग्निः सुमर्गा ज्ञातवैशः
 पत्ये पत्नीं जुरदाधिं रुणोतु ॥ ४९ ॥

गृह्णामि ते सौमगत्वाय हस्तं
 मया पत्यां जुरदाधिर्ग्यासः ।
 भर्गो अयमा सविता पुरधिः
 मह्यं त्वादुर्गाहपत्याय देवाः ॥ ५० ॥
 भर्गस्ते हस्तंमग्रहीत् सविता हस्तंमग्रहीत् ।
 पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव्यं ॥ ५१ ॥
 ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
 मया पत्यां प्रजावति सं जीवं शरदः शतम् ॥ ५२ ॥
 त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं
 बृहस्पतेः प्रशिपां कवीनाम् ।
 तेनेमां नार्यं सविता भर्गश्च
 सूर्यामिव परिं घत्सां प्रजयां ॥ ५३ ॥
 इन्द्राग्नी चाचापृथिवी मातरिभ्यां
 मित्रावरुणा भर्गो अग्निभ्योमा ।
 बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोमं
 इमां नार्यं प्रजयां वर्धयन्तु ॥ ५४ ॥
 बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः
 शीर्षे केशो अकल्पयत् ।
 तेनेमामग्निना नार्यं पत्ये सं शौमयामसि ॥ ५५ ॥
 इदं तद् रूपं यदवस्तु योषां
 जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।
 तामन्वतिष्ये सखिमिनैवग्वैः
 क इमान् विद्वान् वि चंचर्तु पाशान् ॥ ५६ ॥
 अहं वि प्यामि मयि रूपमस्या
 वेददित् पद्यन् मनसः कुलार्थम् ।
 न स्तेर्यमसि मनसोदमुच्ये
 स्वयं श्रध्नानो वरुणस्य पाशान् ॥ ५७ ॥
 प्र त्वां मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्
 येन त्वावभ्रात् सविता सुदोषाः ।
 उदं लोकं सुगमत्र पत्न्यां
 रुणोमि तुभ्यं सहपत्यै यधु ॥ ५८ ॥

भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्य
 अभिना त्वा प्र वदतां रथेन ।
 गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासौ
 वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥ २० ॥
 इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतां
 अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
 एना पत्यां तन्वैः सं स्पृशस्व
 अथ जिर्विदथमा वदासि ॥ २१ ॥
 इहैव स्तं मा त्रि यौष्टं विश्वमायुर्व्यंश्रुतम् ।
 क्रीडन्तौ पुत्रैर्नमृभिर्मोदमानौ स्वस्तुको ॥ २२ ॥
 पूर्वापरं चरतो माययैतौ
 शिशु क्रीडन्तौ पारं यातोऽर्णवम् ।
 विश्वान्यो भुवना विचष्ट
 ऋतूरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥ २३ ॥
 नवोनवो भवसि जायमानो
 अह्नां केतुरूपसामेष्यग्रम् ।
 भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन्
 प्र चन्द्रमास्तिरसे दीर्घमायुः ॥ २४ ॥
 परां देहि शामुह्यं ब्रह्मभ्यो वि भञ्जा वस्तु ।
 कृत्यैषा पद्धती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥ २५ ॥
 नीललोहितं भवति कृत्यासकिर्व्यंज्यते ।
 पधन्ते अस्या ह्यातयः पतिर्वन्धेषु वध्यते ॥ २६ ॥
 अदलीला तनूभैवति रुशंती पापर्यामुया ।
 पतिर्यद् वध्वाः वासंसः स्वमङ्गमभ्युणोते ॥ २७ ॥
 आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
 सूर्यायाः पदय रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥ २८ ॥
 तृष्टमेतत् फट्टकमपाप्रथद् विपद्यैतदस्ये ।
 सूर्या यो ब्रह्मा घेद् स इद् वाधूयमर्हति ॥ २९ ॥

स इत् तत् स्योनं हरति ब्रह्मा वासः समृद्धये ।
 प्रायश्चित्ति यो अध्येति येन जाया न रिप्यति ३०
 पुयं भगं सं भरते समृद्धमृतं वदन्तायुतोर्षेयु ।
 ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचयु ॥ ३१ ॥
 चारुं संमलो वदतु वार्चमेताम् ॥ ३१ ॥
 इष्टेदेसाथ न पुरो गमाथ
 इमं गावः प्रजयां वधेयाथ ।
 शुभं यतीरुधियाः सोमयर्चलो
 विश्वे देवाः क्रद्दिह शो मनांसि ॥ ३२ ॥
 इमं गावः प्रजया सं विशाथ
 अयं देवानां न मिनाति भागम् ।
 अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे
 अस्मै वो धाता संविता सुवाति ॥ ३३ ॥
 अनूक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो
 येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
 सं भगेन समर्थम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा ॥ ३४ ॥
 यच्च वर्चो अक्षेपु सुरायां च यदाहितम् ।
 यद् गोष्विध्वना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३५ ॥
 येन महानुच्या जघनमधिना येन वा सुरां ।
 येनाक्षा अभ्यविच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३६ ॥
 यो अन्निभो दीदयदप्सर्वं न्तः
 यं विप्रांस ईडेते अध्यरेषु ।
 अपां नपान्मधुमतीरपो दा
 यामिरिन्द्रो वावूधे धीर्यावान् ॥ ३७ ॥
 इदमहं रुशन्तं प्राभं तनूद्विमर्षोहामि ।
 यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ॥ ३८ ॥
 आस्यै ब्राह्मणाः क्षपनीहर्गन्तु
 अवीरघ्नीरुदंजन्वापः ।
 अर्थम्णो अग्नि पर्येतु पूषन्
 प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च ॥ ३९ ॥

शं ते हिरण्यं शम् सुन्वापः
 शं मेधिर्भवतु शं युगस्य तर्षं ।
 शं त आर्षः शतपवित्रा भवन्तु
 शम् पत्या तन्वं सं स्पृशस्व ॥ ४० ॥
 ये रथस्य मेऽर्नसः मे युगस्य शतक्रतो ।
 अपालामिन्द्र त्रिपुत्राः सूर्यत्वचम् ॥ ४१ ॥
 आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ।
 पत्युरुव्रता मृत्या सं नद्यस्यानुताय कम् ॥ ४२ ॥
 यया सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुपुत्रे वृषा ।
 प्या त्वं स्रष्टार्येधि पत्युरस्त्वं परेत्यं ॥ ४३ ॥
 स्रष्टार्येधि श्वदारेषु स्रष्टार्युत देवृषु ।
 नानन्दुः स्रष्टार्येधि स्रष्टार्युत श्वदन्त्याः ॥ ४४ ॥
 या अहन्तन्नधेयन् याश्च तन्तिरे
 या देवीरन्तो अभितोऽर्दन्त ।
 यास्त्वा जुरसे सं व्ययन्तु
 आयुष्मतोर्धं परि धत्स्व वासः ॥ ४५ ॥
 जीवं वदन्ति वि नयन्त्यध्वरं
 दीर्घामनु प्रसिंति दीध्युर्नरः ।
 यामं पितृभ्यो य इदं संमीरिते
 मयः पतिभ्यो जनये परिभ्रजे ॥ ४६ ॥
 स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि
 तेऽदमानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।
 तमा तित्थानुमाद्या सुवर्चा
 दीर्घं त आयुः सविता रुणोतु ॥ ४७ ॥
 येनाग्निरस्या मम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।
 तेन गृहामि ते हस्तं मा व्यथिष्या
 मया सह प्रजयां च धनैः च ॥ ४८ ॥
 देवस्ते सविता हस्तं गृहातु
 सोमो राजा सुप्रजसं रुणोतु ।
 अग्निः सुमगां जानयेत्ताः
 पत्ये पत्नीं जुरदंष्टि रुणोतु ॥ ४९ ॥

गृहामि ते सौमगन्वाय हस्तं
 मया पत्यां जुरदंष्टिर्यथासः ।
 भगौ अयमा सविता पुरंधिः
 मह्यं त्वादुर्गाहपत्याय देवाः ॥ ५० ॥
 भगस्ते हस्तमग्रहीतु सविता हस्तमग्रहीतु ।
 पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्त्वयं ॥ ५१ ॥
 ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वाद्वाद् बृहस्पतिः ।
 मया पत्यां प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ॥ ५२ ॥
 त्वया वासो व्यदघाचतुमे कं
 बृहस्पतेः प्रशिष्यां कवीनाम् ।
 तेनेमां नारीं सविता भगश्च
 सूर्यामिद्य परि धत्तां प्रजयां ॥ ५३ ॥
 इन्द्राक्षी थावांपृथिवी मांतरिश्वा
 मित्रावरुणा भगौ अश्विनोमा ।
 बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोमं
 इमां नारीं प्रजयां वधेयन्तु ॥ ५४ ॥
 बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः
 शीर्षे केशो अकल्पयत् ।
 तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शौमयामसि ॥ ५५ ॥
 इदं तद् रूपं यद्वस्त् योषां
 जायां जिष्णसे मनसा चरन्तीम् ।
 तामन्वर्तिष्ये सविमिर्नध्वयेः
 क इमान् तिष्ठान् वि चंचते पाशान् ॥ ५६ ॥
 अहं वि प्यामि मार्ये रूपमस्या
 वेददित् पदयन् मनसः कुलायम् ।
 न स्तेयमाग्नि मनसोर्दमुच्ये
 स्वयं श्रंयानो वरुणस्य पाशान् ॥ ५७ ॥
 प्र त्वां मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्
 येन त्वाग्नात् सविता सुदोषाः ।
 उरुं लोकं सुगमप्र पन्यां
 रुणोमि तुभ्यं सहपत्यं यद्यु ॥ ५८ ॥

उद्यच्छध्वमपु रक्षो हनाथ
 इमां नारीं सुकृते दधात ।
 धाता विपश्चित् पतिमस्यै धिषेद्
 भगो राजां पुर पंतु प्रजानन् ॥ ५९ ॥
 भगस्ततश् चतुरः पादान्
 भगस्ततश् चत्वार्युर्षलानि ।
 त्वष्टां पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्नां
 सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥ ६० ॥
 सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं
 हिरण्यवर्णं सुवृत्तं सुचक्रम् ।
 आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोके
 स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम् ॥ ६१ ॥
 अत्रातृष्टीं वरुणापंशुष्टीं बृहस्पते ।
 इन्द्रापतिष्टीं पुत्रिणीमासम्भ्यं सवितर्वह ॥ ६२ ॥
 मा हिंसिष्टं कुमायैः स्थूणे देवकृते पथि ।
 शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृणो वधूपथम् ॥ ६३ ॥
 ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं
 ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ।
 अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य
 शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥ ६४ ॥
 ॥ २ ॥ (अथर्व १४।१।१-७५)
 आत्मा, १० यक्षमनाशनी, ११ दम्पत्योः परिपन्थिनाशनी, ३६
 देवाः । अत्रष्टुप् ; ५-६, १२, ३१, ३७, ३९-४० जगती
 (३७, ३९ मुरिक् शिष्टुप्) ; ९ त्र्यवसाना षट्पदा विराद्व्यङ्गिः
 १३-१४, १७-१९, ३४, ३६, ३८, ४१-४२, ४६, ६१,
 ७०, ७४-७५ श्रिष्टुप् ; १५, ५१ मुरिक् ; २० पुरस्ताद् बृहती ;
 १३, २४-२५, ३२-३३ पुरोबृहती (३६ त्रिपदा विराणनाम
 गायत्री ;) ३३ विराद्व्यङ्गिः, ३५ पुरोबृहती श्रिष्टुप् ;
 ४३ श्रिष्टुङ्गमयी पंक्तिः ; ४४ प्रस्वारपंक्तिः ; ४७ पथ्याबृहती ;
 ४८ छतः पंक्तिः ; ५० उपरिष्टाद्बृहती निष्टुप् ; ५२ विराद्
 पुर वृष्णिक् ; ५९-६०, ६२ पथ्यापंक्तिः ; ६८ पुर वृष्णिक् ;
 ६९ त्र्यवसाना षट्पदाऽतिशक्तः, ७१ बृहती ।
 तुभ्यमग्ने पर्येषदन्सूर्यां बृहदनुना सह ।
 ए नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥ १ ॥

पुनः पत्नीमग्निरेवादायुषा सह वर्चसा ।
 दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ २ ॥
 सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः ।
 तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ ३ ॥
 सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये ।
 रयिं च पुत्रांश्चादाद्दिग्भिर्मह्यमयो इमाम् ॥ ४ ॥
 आ वामगन्सुमतिर्वाजिनीवसु
 न्यः श्विना हस्तु कामा अरसत ।
 अभूतं शोपा मिथुना शुभस्पती
 प्रिया अर्यम्णो दुष्यो अशोमहि ॥ ५ ॥
 सा मन्दसाना मनसा शिविनं
 रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम् ।
 सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती
 स्थाणुं पथिष्टामपं दुर्मतिं हतम् ॥ ६ ॥
 या ओपधयो या नद्योः यानि क्षेत्राणि या वना ।
 तास्त्वा वधु प्रजावर्ती पत्ये रक्षन्तु रक्षतः ॥ ७ ॥
 एमं पन्थामहशाम सुगं स्वस्तिवाहनम् ।
 यस्मिन् वीरो न रिप्यत्यन्येषां विन्दते वसु ॥ ८ ॥
 इदं सु मे नरः शृणुत
 ययाशिषा दंपती वाममंक्षुतः ।
 ये गन्धर्वा अत्सरसंश्च देवीः
 एषु वानस्पत्येषु येऽपि तस्थुः ।
 स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु
 मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ॥ ९ ॥
 ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनां अतु ।
 पुनस्तान् यक्षिया देवा नयन्तु यत् आगताः ॥ १० ॥
 मा विदन् परिपन्थिनो य आनीदन्ति दंपती ।
 सुगेनं दुर्ममतीतामपं द्रान्त्वरतायः ॥ ११ ॥
 स काश्यामि बहंतुं ब्रह्मणा गृहैः
 अघोरैण चक्षुषा मित्रियेण ।
 पर्याणजं विश्वरूपं यदस्ति
 स्योनं पतिभ्यः सविता तत् कृणोतु ॥ १२ ॥
 (६९८७)

शिवा नारीयमस्तमागन्
 इमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।
 तामर्यमा भगौ अभिनोमा
 प्रजापतिः प्रजायां वर्धयन्तु ॥ १३ ॥
 आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन्
 तस्यां नरो वपत् वीजमस्याम् ।
 सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो
 विभ्रती दुग्धमृगमस्य रेतः ॥ १४ ॥
 प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुस्त्रिवेह संरस्वति ।
 सिनीवाल्लि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ १५ ॥
 उद् वं ऊर्मिः शम्यां हन्त्वापो योनत्राणि मुञ्चत ।
 माहुष्कृतौ ध्ये नसावध्यावशुनमारताम् ॥ १६ ॥
 अर्धोत्चक्षुरपतिष्ठी स्योना
 शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः ।
 वीरसुद्वृकांसा सं त्वया
 पथिपीमाहि सुमनस्यमाना ॥ १७ ॥
 अर्धवृष्यपतिष्ठी द्वैधि
 शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।
 प्रजावती वीरसुद्वृकांसा
 स्योनेममग्नि गाहपत्यं सपर्य ॥ १८ ॥
 उत् तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा
 अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात् ।
 दान्यैपी निश्चृते याजगन्धा
 उच्छेष्टाराने प्र पंत मेह रंसाः ॥ १९ ॥
 यदा गाहपत्यमसपर्यंतं पूर्वमग्नि वधूरियम् ।
 अथा संरस्वत्यै नारि पितृव्यंश्च नमस्कुरु ॥ २० ॥
 शर्म धर्मतदा हेरास्यै नायां उपस्तरै ।
 सिनीवाल्लि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ २१ ॥
 यं बल्यं न्यस्यद्य चर्मं चोपस्त्रणीयन् ।
 तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्वते पतिम् ॥ २२ ॥

उप स्तृणीहि बल्यं जमधि चर्मणि रोहिते ।
 तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं संपर्यतु ॥ २३ ॥
 आ रोह चर्मोपं सीदाग्निं
 एप देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा ।
 इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै
 संज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्तं एपः ॥ २४ ॥
 वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थात्
 नानारूपाः पशवो जायमानाः ।
 सुमङ्गल्युपं सीदेममग्निं
 संपरतीं प्रति भूपेह देवान् ॥ २५ ॥
 सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां
 सुशेवा पत्ये भवदाराय शंभूः ।
 स्योना भवन्त्यै प्र गृहान् विशोमान् ॥ २६ ॥
 स्योना भवं भवशरभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
 स्योनास्यै सर्वस्यै विदो स्योना पुष्टार्ययां भय २७
 सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
 सोमार्ग्यमस्यै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्विपरैतन ॥ २८ ॥
 या दुर्हादो युवतयो याश्चेह जंरतीरपि ।
 वर्चो न्यस्यै सं दत्त्वायास्तं विपरैतन ॥ २९ ॥
 इक्षमप्रस्तरणं वृष्टं विभ्वां रूपाणि विभ्रतम् ।
 आरोहत् स्यां सावित्री वृद्धते सौमगाय कम् ३०
 आ रोह तल्पं सुमनस्यमाना
 इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।
 हन्ताणीवं सुबुधा बुष्यमाना
 ज्योतिरप्रा उपसः प्रति जागरसि ॥ ३१ ॥
 देवा अप्रे न्यपचन्त पत्नीः
 समस्प्रक्षान्त तन्वस्तनूभिः ।
 सूर्येवं नारि विभ्यरूपा महित्वा
 प्रजापतीं पत्या सं भेदे ॥ ३२ ॥

उत् तिष्ठेतो विश्वावसो नर्मसेडामहे त्वा ।

जामिमिच्छ पितृपदं न्य फतां

स ते भागो जनुपा तस्य विद्धि

अप्सरसः सधमाद मदन्ति

हविर्धानमन्त्रा सूर्यं च ।

तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि

नर्मस्ते गन्धर्वतुनां कृणोमि

नमो गन्धर्वस्य नर्मसे

नमो भामाय चक्षुषे च कृणमः ।

विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमो

अभि जाया अप्सरसः परेहि

राया वय सुमनसः स्याम

उदितो गन्धर्वमावीवृताम ।

अगन्तस् देवः परमं सधस्थं

अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः

सं पितरावृत्तिये सृजेधां

माता पिता च रेतसो भवाथः ।

मर्थ इव योषामधिरोहयैनां

प्रजां कृणवाथामिह पुष्यतं रयिम्

तां पूर्वैल्लिवतमामेरयस्व

यस्यां वीजं मनुष्यां वपन्ति ।

या न ऊरू उंशती विश्वयाति

यस्यामुदान्तः प्रहरेम शेषः

आ रौहोरुमुप धत्स्व हस्त

परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः ।

प्रजां कृणवाथामिह मोर्दमानौ

दीर्घं वामार्युः सविता कृणोतु

आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिः

अहोरात्राभ्यां समेनस्त्वयैमा ।

अर्दुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं

शं नो भव द्विपदं शं चतुष्पदे

५ ३३ ॥

॥ ३४ ॥

॥ ३५ ॥

॥ ३६ ॥

॥ ३७ ॥

॥ ३८ ॥

॥ ३९ ॥

॥ ४० ॥

देवैर्दत्तं मनुना सापमेतद्

वाधुयं वासो पृष्वश्च घर्मम् ।

यो ब्रह्मणं चिक्त्रिपे ददाति

स इद्रक्षांसि तर्पानि हन्ति

यं मे दत्तो ब्रह्ममाणं यधुयोः

वाधुयं वासो पृष्वश्च घर्मम् ।

युवं ब्रह्मणेऽनुमन्यमानौ

घृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम्

स्योनाघोनेरधि घुष्यमानौ

हसामदौ महसा मोर्दमानौ ।

सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो

जीवाघुपसो विभातीः

नवं घसानः सुरभिः सुवासां

उदागां जीव उपसो विभातीः ।

आण्डात्पतत्रीवांमुधि विश्वस्मादेनस्रपारि ॥ ४४ ॥

शुम्भेनी चावापुयिवी भन्तिसुम्ने महिषते ।

आपः सप्त सुंघुषुर्वीस्ता नो मुञ्चन्त्यंहसः ॥ ४५ ॥

सुर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।

ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥ ४६ ॥

य ऋते चिदभिध्रिपः पुरा जत्रुभ्य आतृद ।

संधाता संधिं मघवां पुरुवसुः

निष्कर्ता विहंतं पुनः

अपासत्तम उच्यतु नीलं

पिशङ्गमुत लोहितं यत् ।

निर्वहनी या पृषात्क्युसिन्व

तां स्थाणावध्या संजामि

यावतीः कृत्या उपवासेने

यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशोः ।

व्युद्धयो या अर्समृद्धयो या

शसिन्ता स्थाणावाधिं सादयामि

॥ ४१ ॥

॥ ४२ ॥

॥ ४३ ॥

॥ ४४ ॥

॥ ४५ ॥

॥ ४६ ॥

॥ ४७ ॥

॥ ४८ ॥

॥ ४९ ॥

(६७२१)

या मे प्रियतेमा तनूः सा मे विभाय घासंसः ।
 तस्यामे त्वं धनस्पते नीवि
 छुशुष्व मा घयं रिषाम ॥ ५० ॥
 ये अन्ता यावतीः सिञ्चो य ओतवो ये च तन्तवः॥
 वासो यत् पर्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ५१
 उशतीः कन्यला इमाः विंतूलाकात् पतिं यतीः ।
 अथ दीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥ ५२ ॥
 बृहस्पतिनार्यसृष्टां विश्वे देवा अंधारयन् ।
 षचो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५३ ॥
 बृहस्पतिनार्यसृष्टां विश्वे देवा अंधारयन् ।
 तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५४ ॥
 बृहस्पतिनार्यसृष्टां विश्वे देवा अंधारयन् ।
 मगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५५ ॥
 बृहस्पतिनार्यसृष्टां विश्वे देवा अंधारयन् ।
 यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५६ ॥
 बृहस्पतिनार्यसृष्टां विश्वे देवा अंधारयन् ।
 पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५७ ॥
 बृहस्पतिनार्यसृष्टां विश्वे देवा अंधारयन् ।
 रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५८ ॥
 यदीमे केशिनो जना
 गृहे तं समनर्तिषु रोदेन छण्यन्तोऽधम् ।
 अग्निष्ट्या तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्जताम् ५९
 यदीयं बुद्धिता तयं विकेशि
 अर्धवद् गृहे रोदेन छण्यत्यधम् ।
 अग्निष्ट्या तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्जताम् ६०
 यजामयो यद् संयतयो
 गृहे तं समनर्तिषु रोदेन छण्यतीरधम् ।
 अग्निष्ट्या तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्जताम् ६१
 यत् तं प्रजायां पुराणु यद् यां गृहेषु
 निष्ठितमघृष्टैरप्यं हृतम् ।
 अग्निष्ट्या तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्जताम् ६२

इयं नार्युपं प्रूते पूल्यान्यावपन्तिका ।
 दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ ६३ ॥
 इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दर्पती ।
 प्रजयैनो स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यंश्रुताम् ॥ ६४ ॥
 यदासन्धामुपघाने यद् वीषवासने कृतम् ।
 विधादे कृत्यां यां चक्रुरात्रानं तां नि दध्मसि ॥ ६५ ॥
 यद् दुष्कृतं यच्छर्मल विधादे बहती च यत् ।
 तत् संमलस्यं कम्बले मृगमेहं दुर्दितं घयम् ॥ ६६ ॥
 संमले मलं सादयित्वा कम्बले दुर्दितं घयम् ।
 अमूम यक्षियाः शुद्धाः प्र ण आयुषि तारिपत् ६७
 हृष्टिमः कण्टकः शतद्वन् य प्यः ।
 अपास्याः केस्यं मलमपः शीर्षण्यं लिखात् ॥ ६८ ॥
 अह्लादह्लाद् घयमस्या अप यश्मं नि दध्मसि ।
 तन्मा प्रापत् शृयियां मोत देवान्
 दिवं मा प्रापदुर्व्यन्तरिक्षम् ।
 अपो मा प्राणमलेमेतदभे
 यमं मा प्रापत् पितृंश्च सर्वान् ॥ ६९ ॥
 सं त्वां नहामि पर्यसा शृयिव्याः
 सं त्वां नहामि पयसौपधीनाम् ।
 सं त्वां नहामि प्रजया धनेन
 सा संनद्धा सनुदि धाजमेमम् ॥ ७० ॥
 अमोऽहर्मस्मि सा त्वं
 सामाहमस्युक् त्वं धौरुदं शृयिषी त्वम् ।
 ताविह सं मयाप प्रजामा जनयावहे ॥ ७१ ॥
 जनिर्यन्ति नावप्रयः पुत्रियन्ति सुदानवः ।
 अरिष्टासु स चेवहि बृहते वाजंसातये ॥ ७२ ॥
 ये पितरौ पघुदशां इमं बहनुमार्गमन् ।
 ते क्षस्ये घष्ये संपत्यं प्रजायुचमं यच्छन्तु ॥ ७३ ॥
 येदं पूर्वागन् रशनायमाना
 प्रजामस्ये प्रविणं चेह दुत्या ।
 तां बहन्त्यगन्तस्यानु पन्या
 विरादियं सुप्रजा अत्यंरीव

॥ ७४ ॥

(६०३६)

प्र बुध्यस्य सुबुधा बुध्यमाना
 दीर्घायुत्वार्य शतवारदाय ।
 गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासौ
 दीर्घं त आर्युः सविता कृणोत ॥ ७५ ॥

॥ ९ ॥ (वा० य० २१।३३)

गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्कृत्या सह ।
 बृहत्सुष्णिहा कुरुस्सुचीभिः शम्पन्तु त्वा ॥ ३३ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० १९।२१।१)

ब्रह्म । छन्दसि । एकमथाना द्विपदा सान्नी बृहती ।

गायत्र्युष्णिगानुष्टुप्बृहती
 पङ्क्तिस्त्रिष्टुब्जगत्यै ॥ १ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० १९।४१।१)

तप [राष्ट्रं बलमोत्रथ] । त्रिष्टुप् ।

भद्रमिच्छन्त भद्रपर्यः स्वर्षिदः
 तपो दीक्षामुपनिषेदुरध्रे ।
 ततो राष्ट्रं धलमोजश्च ज्ञातं
 तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥ १ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० १।६।८।१)

कर्म (वेदोक्तं) । अनुष्टुप् ।

अव्यसश्च व्यचंसश्च बिलं वि प्यामि मायया ।
 ताभ्यामुदृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥ १ ॥

॥ ७ ॥ (अथर्व० १९।१६।१-४)

अथर्वः । अग्निः । हिरण्यं च [हिरण्यपारणम्] ।

त्रिष्टुप् ; ३ अनुष्टुप् ; ४ पद्यापङ्क्तिः ।

अग्नेः प्रजातं परि यद्विरण्यं
 अमृतं दधे अधि मर्त्येषु ।
 य पन्नद्वेद स इदंनमर्हति
 जराभृत्युर्भयति यो विभर्ति ॥ १ ॥
 यद्विरण्यं सूर्येण सुवर्णे
 प्रजायन्तो मर्त्यः पूर्वं ईषिरे ।
 तस्यां चन्द्रं घर्षसा सं संजति
 आयुध्यान् भवति यो विभर्ति ॥ २ ॥

आर्युषे स्या घर्षसि स्याजसे च पलाप च ।
 यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनां धनुं ॥ ३ ॥

यद्येव राजा घर्षणो वेदं वेधो गृहस्पतिः ।
 इन्द्रो यत्तृहदा वेदं तर्ष

आयुष्यं भुयत् तर्षे घर्षस्यं भुयत् ॥ ४ ॥
 ॥ ८ ॥ (अथर्व० १०।३४।१२, १३-१७)
 शाकभदः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

यः शम्बरं पर्यतंस्त् कर्त्तमिः
 योऽचायकास्नापिपत् सुतस्य ।

अन्तर्गिरी यजमानं गृहं जनं
 यस्मिन्नामूर्च्छत् जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥

ज्ञातो व्युष्यत् पित्रोऽपस्ये
 मुषो न वैद जनितुः परस्य ।

स्तविष्यमाणो नो यो असत्
 मता वेवानां स जनास इन्द्रः ॥ १६ ॥

यः सोमकामो हर्षयश्च सूरिः
 यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा ।

यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं
 य परकवीरः स जनास इन्द्रः ॥ १७ ॥

॥ ९ ॥ (अथर्व० २०।१०७।१३)

बृहद्वि । इन्द्रः । गायत्री ।

चित्रं देवानां केतुरनीकं
 ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्यं उच्यन् ।

दिवाकरोऽति दुष्मैस्तमोसि
 विश्वातारीहुरितानि शुक्रः ॥ १३ ॥

॥ १० ॥ (सा० १०, ६३, ८२, ९०, ६१५-६१६)

२३ ३ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ ३
 अग्ने विवस्वदा भरासभ्यमृतये महे ।
 देवो ह्यसि नो दधे ॥ १० ॥

आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं
 नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम् ।

इहस्पदे नमसा रातहव्यं
 सपर्यता यजते पस्त्यानाम् ॥ १ ॥

यदि धीरो अनु प्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः ।
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 भाजुद्भङ्गव्यमानुपकृ शर्म भक्षत वैश्वम् ॥ २ ॥
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्धिः सद्धामुवः ।
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 पिता यत् कश्यपस्याग्निः
 ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 भङ्गा माता मनुः कविः ॥ १० ॥
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 आजन्त्यग्ने समिधान कीदिवो
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 जिह्वा चरत्यन्तरासनि ।
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 स त्वं नो अग्ने पयसा
 ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 वसुधिद्रव्यि वचो दशोऽदा ॥ १ ॥
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 वसन्त इधु रन्वो ग्रीष्म इधु रन्त्यः ।
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 यपोण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इधु रन्त्यः ॥ २ ॥
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 ॥ ११ ॥ (सा० ९२)
 ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 इत एत उदारुहन् दिवः पृष्ठान्पा रुहन् ।
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 प्र भूर्जेयो यथा पथोद्यामङ्गिरसो ययुः ॥ २ ॥
 ॥ १२ ॥ (सा० १५४, २२४, १८८, ३५३, २६१, ४३७,
 ४४१, ४५०, ६०८)
 ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 सोमः पूषा च चेततुर्विभ्वासां सुक्षितीनाम् ।
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 वैवत्रा रथ्योद्धिता ॥ १० ॥
 २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 कडु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते ।
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 तदिस्रपस्य वर्धनम् । ॥ २ ॥
 ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 यदा कदा च मीढुपे स्तोता जरते मर्त्यः ।
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 मादिद्वन्द्वेत् वरुणं विषा
 ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 गिरा धर्तारं विपतानाम् ॥ ६ ॥
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 मा नो वयो वयःदायं
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 महान्ते गह्वरेष्ठां पूविणेष्ठाम् ।
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 उमं वचो अपावधीः ॥ २ ॥

कश्यपस्य स्वर्विदा यावाहुः सयुजाविति ।
 २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 ययोर्विभ्वमापि व्रतं यद्धं धीरा निचाप्य ॥ २ ॥
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 विभ्वतोवायन् विभ्वतो न
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 आ भर यं त्वा शयिष्ठमीमहे ॥ १ ॥
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 शं पदं मधं रयीपिणो न
 २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 कामममतो हिनोति न सृष्टाद्रयिम् ॥ ५ ॥
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 विभ्वस्य प्र स्तोम पुरो वा सन्यदि वेहे नूनम् ४
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 आ प्रागाद्भद्रा युवातिरङ्गः केतुन्समात्सति ।
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 अभूद्भद्रा विवेदानी विभ्वस्य जगतो रात्रौ ॥ ७ ॥
 ॥ १३ ॥ (सा० ५१४)
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 अहमसि प्रथमजा ऋतस्य
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 पूर्व वैवेभ्यो अमृतस्य नाम ।
 २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 यो मा वृदाति स इद्वेवमायत्
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 अहमभ्रमभ्रमदन्तमधि ॥ ९ ॥
 ॥ १४ ॥ (सा० १६५४-१६५६)
 ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 सरूप वृषत्रा गहीमौ मद्रौ पुयाविति ।
 २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 ताविमा उप सर्पतः ॥ २ ॥
 २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 नीव शीर्षाणि मृद्वं मध्य आपस्य तिष्ठति ।
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 शूक्नेभिर्दशभिर्दिशन् ॥ ३ ॥
 ॥ १५ ॥ (सा० १७६९, १८२५, १७९८-११,
 १८४३-४४)
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 त्वामिच्छस्यते यन्ति गिरो न संयतः ॥ २ ॥
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 अग्निरिन्द्राय पयते दिवि शुक्रा यि राजति ।
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 महिषीय यि जायते ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 नमः सखिभ्यः पूर्वसद्ग्यो नमः साकंनिपेभ्यः ।
 ३ १ २ ३ १ २
 युञ्जे वाचं शतपदीम् ॥ १ ॥
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 युञ्जे वाचं शतपर्दीं गाये सहस्रवर्तनि ।
 ३ १ २ ३ १ २
 गायत्रं त्रैपुभं जगत् ॥ २ ॥
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 गायत्रं त्रैपुभं जगद्विश्वा रूपाणि सम्भृता ।
 ३ १ २ ३ १ २
 देवा ओकांसि चकिरे ॥ ३ ॥
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 अग्निज्योतिर्ज्योतिराग्निरेन्द्रो जातिज्योतिरिन्द्रः ।
 २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २
 सूर्या ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥ १ ॥
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
 अग्नि वाजो विश्वरूपो जनित्रं
 ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
 हिरण्यथं विश्वदत्कं सुपणः ।
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
 सूर्यस्य भानुमनुथा वसानः
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
 परि स्वयं मेधमृज्जा अजान ॥ १ ॥
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
 अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
 तेजः पृथिव्यामाधि यत् सवभूय ।
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
 अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
 कानिफान्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः ॥ २ ॥
 ६ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
 अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
 सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार ।
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
 सहस्रदाः शतदा भूरिदाया
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
 धर्ता दिपो भुवनस्य विश्वपतिः ॥ ३ ॥

प्रति प्राशुर्व्या इतः सम्यञ्चा बर्हिरीशाते ।
 न ता वाजेषु वायतः ॥ १ ॥
 न देवानामपि द्रुतः सुमतिं न जुगुक्षतः ।
 श्रवो बृहद् विवासतः ॥ ७ ॥
 पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यभुतः ।
 उभा हिरण्यपेशसा ॥ ८ ॥
 वीतिहोत्रा कृतव्रसू दशस्यन्तामृताय कम् ।
 समूर्धो रोमशं हतो देवेषु कृणुतो उर्वः ॥ ९ ॥
 ॥ १ ॥ (अथर्व० २.३०।५)
 प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।
 पयमंग्नं पतिकामा जनिकामोऽहमार्गमम् ।
 अश्वः कानिफदद्या भगौनाहं सहार्गमम् ॥ ५ ॥
 ॥ २ ॥ (अथर्व० १४।१।९, ६४)
 सूर्या चावित्री । ९ श्ववसाना पश्यदा विरावत्यष्टः,
 ६४ अनुष्टुप् ।
 इदं सु मे नरः शृणुत
 ययाशिया दम्पती वाममभुतः ।
 ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीः
 पयु वानस्पत्येषु येऽर्धितस्थुः ।
 स्योनास्ते अस्वै घृधै भवन्तु
 मा हिंसियुर्वदतुमुद्यमानम् ॥ १ ॥
 इहेमार्विन्द्र सं नुद चक्रवाकेषु दम्पती ।
 प्रजयन्तौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यभुताम् ॥ ६४ ॥

दृक्पत्तयः शिफः ।

॥ १ ॥ (ब्रा० ८।३।१०-१८)
 मनुर्वेवसतः । गायत्री, १० पादविष्णु, १४ अनुष्टुप्,
 १५-१८ पङ्क्तिः ।
 आ दामं पर्यतानां वृष्णीमर्धे नृदीनीम् ।
 आ विष्णोः सत्त्वामुयः ॥ १० ॥
 पेतुं पूषा पृथिवीर्गः स्वस्ति सर्वधार्तमः ।
 उदरणां स्वस्तये ॥ ११ ॥
 १०११

दृक्पत्तयः ।

॥ १ ॥ (ब्रा० ८।३।१-९)
 मनुर्वेवसतः । गायत्री, ९ अनुष्टुप् ।
 या दग्नीं समनया मुनुत आ स्य धार्यतः ।
 दर्शानो नित्यपादिता ॥ ५ ॥

अरमतिरनर्षणो विभ्रो देवस्य मनसा ।
 आदित्यानार्मनेह इत् ॥ १२ ॥
 यथा नो मित्रो अर्थमा वर्णः सन्ति गोपाः ।
 सुगाः श्रुतस्य पन्थाः ॥ १३ ॥
 अग्निं वः पूष्यं गिरा देवर्मलिं चर्षुनाम् ।
 सपर्यन्तः पुत्रमियं मित्रं न क्षेत्रसाधसम् ॥ १४ ॥
 मधुः देववर्तो रथः शरौ वा पुस्तु कास्तु चित् ।
 देवानां य इन्मनो यजमान
 इयक्षत्यमीदर्यज्वनो भुवत् ॥ १५ ॥
 न यजमान रिप्यसि न सुन्वान न देवयो ।
 देवानां य इन्मनो यजमान
 इयक्षत्यमीदर्यज्वनो भुवत् ॥ १६ ॥
 नकिष्टं कर्मणा नश्रा प्र योपन्न योपति ।
 देवानां य इन्मनो यजमान
 इयक्षत्यमीदर्यज्वनो भुवत् ॥ १७ ॥
 असदन्नं सुवीर्यमुत त्वदाभ्यर्ष्यम् ।
 देवानां य इन्मनो यजमान
 इयक्षत्यमीदर्यज्वनो भुवत् ॥ १८ ॥

कक्षुकासः-संस्पर्शनिन्दा ।

॥ १ ॥ (श्र० १०८५।१९-३०)
 यथा सावित्री । अत्रुष्टु ।
 परां देहि शामुल्यं प्रद्वभ्यो विर्मजा घस्तु ।
 हृत्यैषा पद्वती भुत्व्या जाया विंशते पतिम् ॥ २९ ॥
 अधीरा तनुर्मवति रुशती प्रापर्यामुया ।
 पतिर्यद्रभ्योः वाससा स्वमङ्गमभिधत्सते ॥ ३० ॥

कामः ।

॥ १ ॥ (वा० य० ७।४८)

कौऽदात् कसां अदात् कामोऽशात् कामायादात् ।
 कामो हाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत् तै ॥ ४८ ॥

॥ १ ॥ (वा० य० १८।८)
 कामश्च मे सौमनसश्च मे ॥ ८ ॥
 ॥ ३ ॥ (वा० य० १४।३१)
 कामाय प्रिकः ॥ ३९ ॥
 ॥ ४ ॥ (वा० य० ३०।५)
 कामाय पुँक्षुल्दम् ॥ ५ ॥
 ॥ ५ ॥ (अथर्व० ३।१९।७)
 उदाहृतः । १ यवसाना पदपदा उपरिष्टादेवी बृहती
 ककुम्भतीगर्मा विराट्जगती ।
 क इदं कस्मा अदात् कामः कामायादात् ।
 कामो हाता कामः प्रतिग्रहीता
 कामः समुद्रमा विवेश ।
 कामेन त्वा प्रति गृहामि कामैतत् तै ॥ ७ ॥
 ॥ ६ ॥ (अथर्व० ६।८।१-३)
 अमशमिः । १ (कामाता), २ सुपर्णः, ३ यावापुषिषी,
 सूर्यः । पत्यापंक्तिः ।

यथा बुधं लिर्वुजा समन्तं परिपस्वजे ।
 एवा परि प्वजस्व मां यथा मां कामिन्यस्रो
 यथा मन्नापंगा असः ॥ १ ॥
 यथा सुपर्णः प्रपतन्न पक्षौ निहन्ति भूम्याम् ।
 एवा नि हन्मि ते मनो यथा मां कामिन्यस्रो
 यथा मन्नापंगा असः ॥ २ ॥
 यथेमे यावापुषिषी स्यः पर्येति सूर्यः ।
 एवा पर्येमि ते मनो यथा मां कामिन्यस्रो
 यथा मन्नापंगा असः ॥ ३ ॥
 ॥ ७ ॥ (अथर्व० ६।१।१-३)
 (कामाता), ३ गावः । अत्रुष्टु ।
 याञ्छ मे तन्वं । पादौ घान्छास्यौः । याञ्छ सफ्यौः ।
 अश्यौः घृपण्यन्त्याः केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु ॥ १ ॥
 ममं त्या दोषाणिधिर्यं कृणोतिमं हृदयुधिर्यम् ।
 यथा मम कतावासो मम चित्तमुपार्यासि ॥ २ ॥
 यासां नाभिरारेहणं हृदि संपननं कृतम् ।
 गायो घृतस्यं मातरोऽसूं सं वानयन्तु मे ॥ ३ ॥

॥ ८ ॥ (अथर्वं ९।१।१-२५)

अथर्वा । शिष्टपृ. ५ अतिजगती; ७, १४-१५, १७-१८,
२१-२२ जगती; ८ द्विपदा आर्षा पंक्तिः; ११, २०,
२३ श्रुक्; १२ अनुष्टुप्; १३ द्विपदाऽऽर्षा अनु-
ष्टुप्; १६ चतुष्पदा शकरीगर्भा परा जगती ।

सपत्नहर्नमृपभं घृतेन

कार्मै शिखामि हृविवाऽऽर्षेण ।

नीचैः सपत्नान् मम पादय त्वं

अभिष्टुतो महता धीर्येण

यन्मे मर्नसो न प्रियं न चक्षुषो

यन्मे यर्षस्ति नाभिनन्दति ।

तदुष्वप्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने

कार्मै स्तुत्वोदहं भिदेयम्

दुष्वप्यं काम दुरितं च काम

अप्रजस्तामस्वगतामर्षतिम् ।

उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन्

यो अस्यभ्यमहरणा चिकित्सात्

नुदस्य काम प्र णुदस्व काम

अर्षति यन्तु मम ये सपत्नाः ।

तेषां नुत्तानामधमा तमांसि

अग्ने वास्तूनि निर्देह त्वम्

सा तै काम दुहिता धेनुर्चष्यते

यामाहुर्षाचं कवयो विराजम् ।

तया सपत्नान् पारिं घृङ्गिषु ये मम

पर्येनान् प्राणः पदायो जीवने वृणक्तु

कामस्येन्द्रस्य घर्षणस्य राम्रो

पिष्णोर्षलेन स्वधितुः स्वयेन ।

अग्नेहोत्रेण प्र णुदे सपत्नान्

शर्षाय नार्यमुदकेऽपु धीरः

यर्ष्यक्षो याजी मम कार्मै उग्रः

एणेत् मह्यमसपत्नमेव ।

विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु

सर्वे देवा ह्युमा यन्तु म इमम्

इदमाज्यं घृतवञ्जुपाणाः

कार्मज्येष्ठा इह मादयध्वम् ।

कृण्वन्तो मह्यमसपत्नमेव

इन्द्राग्नी कार्मै सुरथं हि भुत्वा

नीचैः सपत्नान् मम पादयाथः ।

तेषां पशानामधमा तमांसि

अग्ने वास्तून्धनुनिर्देह त्वम्

जहि त्वं कार्मै मम ये सपत्ना

अन्धा तमांस्येव पादयेनान् ।

निरिन्द्रिया अरसाः संन्तु सर्वे

मा ते जीविषुः कतमश्नाहः

अवधीत् कामो मम ये सपत्ना

उरुं लोकममरुमह्यमेधुतुम् ।

मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो

मह्यं पदुर्वीर्धतमा वदन्तु

तेऽध्वराञ्चः प्र ण्वन्तां छिन्ना नौरिव धन्वनात् ।

न सार्यकप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम्

अग्निर्वेष इन्द्रो यवः सोमो यवः ।

यवयावानो देवा यावयन्त्येनम्

असर्ववीरध्वरतु प्रणुत्तो

हेष्ये मित्राणां परिवर्ग्यः स्वानाम् ।

उत पृथिव्यामयं स्थन्ति विद्युतं

उग्रो धो देवः प्र मृणत् सपत्नान्

च्युता चेयं घृङ्गल्यच्युता च

विद्युद्विमर्ति स्तनयिन्धु सपत्नान् ।

उच्यन्तित्यो द्रविणेन तेजसा

नीचैः सपत्नान् नुदतां मे सहस्वान्

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

(१८१)

यत् ते कामं शर्मं त्रिवर्षं
 उद्धृष्टं वर्मं विरततमनसि व्याध्यां कृतम् ।
 तेन सपत्नान् परि वृद्धिं ये मम
 पर्येनान् प्राणः पशवो जीवन् वृणक्तु ॥ १६ ॥
 येन देवा असुरान् प्राणुदन्त
 येनेन्द्रो दस्यूनध्रमं तमो निनाय ।
 तेन त्वं कामं मम ये सपत्नाः
 तान्साहोकात् अ पुंस्व दूरम् ॥ १७ ॥
 यथा देवा असुरान् प्राणुदन्त
 यथेन्द्रो दस्यूनध्रमं तमो वयाधे ।
 तथा त्वं कामं मम ये सपत्नाः
 तान्साहोकात् अ पुंस्व दूरम् ॥ १८ ॥
 कामो जज्ञे प्रथमो
 नैनं देवा आपुः पितरो न मर्याः ।
 ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वदां मदान्
 तस्मै ते काम इत् कृणोमि ॥ १९ ॥
 यावती धारवापृथिवी वरिष्णा
 यावदापः सियुदुर्यावदग्निः ।
 ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वदां मदान्
 तस्मै ते कामं नम इत् कृणोमि ॥ २० ॥
 यावतीर्दिशः प्रदिशो विपंचीः
 यावतीराशा अग्निचक्षणा द्वियः ।
 ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वदां मदान्
 तस्मै ते कामं नम इत् कृणोमि ॥ २१ ॥
 यावतीर्महां जत्वः कुरुरवो
 यावतीर्वेधा वृक्षस्रप्यां वभुवुः ।
 ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वदां मदान्
 तस्मै ते कामं नम इत् कृणोमि ॥ २२ ॥
 ज्यायान् निमिप्लोऽसि तिष्ठतो
 ज्यायान्तसमुद्रादीसि काम मन्यो ।

ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वदां मदान्
 तस्मै ते कामं नम इत् कृणोमि ॥ २३ ॥
 न वै चार्तश्चन काममानोति
 नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः ।
 ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वदां मदान्
 तस्मै ते कामं नम इत् कृणोमि ॥ २४ ॥
 यास्ते शिवास्तन्वाः काम मद्रा
 याभिः सत्यं भवति यदृणीये ।
 तामिष्टमसौ अभिसंविदास्व
 अन्यत्र पापीरप्यं वेशया धियः ॥ २५ ॥
 ॥ १ ॥ (अथर्व० ६।१३०।१-४)
 अथर्वजिह्वा । सः । अथर्व०, १ विराट् पुरस्ताद्बृहती ।
 रयजितां रायजितेयीनामस्मरसांमप्यं स्मरः ।
 देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ १ ॥
 असौ मे स्मरतादिति प्रियो मे स्मरतादिति ।
 देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ २ ॥
 यथा मम स्मरादसौ नामप्याहं कृदा चन ।
 देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ ३ ॥
 उन्मादयत मरुत उद्वन्तरिक्ष मादय ।
 अम उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु ॥ ४ ॥
 ॥ १० ॥ (अथर्व० ६।१३१।१-३) अथर्व० ।
 नि दीर्घतो नि पत्त आर्योऽनु नि तिरामि ते ।
 देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ १ ॥
 अर्नुमतेऽन्विदं मन्यस्वाकृते सतिदं नमः ।
 देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ २ ॥
 यद्धार्यासि प्रियोऽन्नं पञ्चयोऽन्नमाभ्यन्म ।
 ततस्त्वं पुनराप्यसि पुत्राणां नो असः पिता ॥ ३ ॥
 ॥ ११ ॥ (अथर्व० ६।१३१।१-५)
 १ अथर्व०, (प्रियागनुष्टुप्) २, ५, ५ वृहती, ३ मरिच ।
 यं देवाः स्मरमसिञ्चन
 अन्वयः (तः शोर्नुवानं सहाध्या ।
 तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ १ ॥
 (६०५०)

यं विश्वे देवाः स्मरमसिञ्चन्
अप्स्वुन्तः शोशुचानं सुहाध्या ।

॥ २ ॥

यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चन्
अप्स्वुन्तः शोशुचानं सुहाध्या ।

॥ ३ ॥

यमिन्द्राग्नी स्मरमसिञ्चतां
अप्स्वुन्तः शोशुचानं सुहाध्या ।

॥ ४ ॥

यं मित्रावरुणौ स्मरमसिञ्चतां
अप्स्वुन्तः शोशुचानं सुहाध्या ।

॥ ५ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० १९।१२।१-५)

ब्रह्मा । त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पादुभ्णिक्, ५ उपरिष्टाद् बृहती ।

कामस्तदग्रे समवर्तत
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।

स कामं कामेन बृहता सरोनीं
रायस्पोपं यजमानाय धेहि

॥ १ ॥

त्वं कामं सवसाऽसि प्रतिष्ठितो
विमुर्विमावा सख आ संखीयते ।

त्वमुग्रः पूर्वनासु सासहिः
सह भोजो यजमानाय धेहि

॥ २ ॥

वृराश्वक्रमानाय प्रतिपाणायाक्षये ।
आऽसां अदृष्वध्नाशाः कामेनाजनयन्स्वः

॥ ३ ॥

कामेन मा काम आऽगन् हृदयाद्दृदयं परि ।
यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह

॥ ४ ॥

यत् काम कामयमाना इदं कृण्वसि ते ह्यधिः ।
तन्नः सत्यं समृष्यतां

अपैतस्यं ह्यिषो वीहि स्वाहा

॥ ५ ॥

रत्तिः ।

॥ १ ॥ (ब्रा० १।२।७।१-६)

१-२ लोषामुद्रा; ३-४ अगस्त्यो मैत्रावरुणि; ५-६ अगस्त्य
शिष्यो ब्रह्मचारी । त्रिष्टुप्, ५ बृहती ।

पूर्वीरुहं शरदः शश्रमाणा
शोषा वस्तोरुपसो जरयन्तीः ।

मिनाति धिर्यं जरिमा तनूनां
अप्यु नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः

॥ १ ॥

ये चिद्धि पूर्वं श्रुतसाप आसन्
साकं देवेभिरवदन्नुतानि ।

ये चिदवांसुर्नघ्नन्तमापुः
समु नु पत्नीर्वृषमिर्जगम्युः

॥ २ ॥

न मृषां श्रान्तं यदवन्ति देवा
विश्वा इत् स्पृधो अर्भ्यभवाव ।

जयावेदं शतनीथमाजि
यत् सम्यंचा मिथुनाव्यजाघ

॥ ३ ॥

नदस्य मा रुधतः काम आऽगन्
इत आजातो अमुतः कुतः चित् ।

लोषामुद्रा वृषणं नी रिणाति
धीरमधीरा धयति श्वसन्तम्

॥ ४ ॥

इमं नु सोममन्तितो ह्रुत्सु पीतमुपं ब्रुवे ।
यत् सीमार्गश्चकृमा तत् सु मृच्छतु

पुलुकामो हि मर्त्यः

॥ ५ ॥

अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः
प्रजामपत्यं धर्लमिच्छमानः ।

उमौ घर्णावृषिदमः पुषोप
सत्या देषेप्याशिषो जगाम

॥ ६ ॥

(६८१५)

रेतः ।

॥ १ ॥ (वा० य० १२।७६)

रेतो मूत्रं वि जहाति योनिं प्रविशति चन्द्रियम् ।

गर्भो जरायुणावृत्त उर्व्वं जहाति जन्मना ॥

श्रुतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं ७७

शुकमन्थसः इन्द्रस्येन्द्रियमिदं प्रयोऽमृतं मधुं ७६

॥ २ ॥ (वा० य० ३९।१०)

रेतसे स्वाहा ॥ १० ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० ६।१११-१)

प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।

शमीमश्वत्थ आरूढस्तर्प पुंसर्व्वं कृतम् ।

तद्वै पुत्रस्य वेदं तत् स्त्रीष्व्वा भंरामसि ॥ १ ॥

पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु पिच्यते ।

तद्वै पुत्रस्य वेदं तत् प्रजापतिरग्रवीत् ॥ २ ॥

कामिनीमन्त्रोऽभिमुखी-

करणम् ।

॥ १ ॥ (अथर्व० १।३०।३-४)

प्रजापतिः । औषधिः । ३ भुक्ति, ४ अनुष्टुप् ।

यत् सुपर्णा विषक्षयो अनमीवा विषक्षयः ।

तत्र मे गच्छताद्वयं शल्य इच्च कुर्मलं यथा ॥ ३ ॥

यदन्तरं तद्राह्यं यद्वाह्यं तदन्तरम् ।

कन्याऽनां विष्वरूपाणां मनो गृभ्यायौषधे ॥ ४ ॥

केवलः फलिः ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ७।३६।१-५)

वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ३ चतुष्पाद लणिक् ।

इदं खनामि मेपजं मापदयमभिरुदम् ।

परायतो निघर्तनमायतः प्रतिनन्दनम् ॥ १ ॥

येनां निचक्र आसृतीन्द्रं देवेभ्यस्परि ।

तेना नि कुये त्वामहं यथा तेऽस्तानि सुप्रिया ॥ २ ॥

प्रतीची सोममसि प्रतीच्युत सूर्यम् ।

प्रतीची विभ्यान् देवान् तां त्वाऽच्छार्पदामसि ॥ ३ ॥

अहं वंदामि नेत्वं सुभायामह त्वं चर्द ।

ममेदसस्रवं केचलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥ ४ ॥

यदि वाऽसि तिरोज्जनं यदि वा नद्यस्तिरः ।

इयं ह मह्यं त्वामोषधिर्वेद्वेव न्यानयत् ॥ ५ ॥

अतिथिस्तकारः ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ९।६।१-६१)

प्रथमः पर्यायः ॥ १ ॥

(षट्पर्यायाः) १-१७ प्रश्ना । अतिथिः विद्या । १ नार्गो नाम त्रिपदा गायत्री; २ त्रिपदाऽर्थो गायत्री; ३, ७ साम्नी त्रिष्टुप्; ४, ९ आर्च्यनुष्टुप्; ५ आर्चो गायत्री; ६ त्रिपदा साम्नी जपती; ८ याजुषी त्रिष्टुप्; १० साम्नी भुरिष्टुहती; ११, १४-१६ साम्भ्यनुष्टुप्; १२ विराट् गायत्री; १३ साम्नी त्रिष्टुप्; १७ त्रिपदा विराट् भुरिगायत्री ।

यो विद्याव्रह्मं प्रत्यक्षं

परं वि यस्य संभारा श्रुचो यस्यानुक्यम् ॥ १ ॥

सामानि यस्य लोमानि

यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः ॥ २ ॥

यद्वा अतिथिपतिरतिथीन्

प्रतिपदयति देवयजनं प्रेक्षते ॥ ३ ॥

यदभिवदति दीक्षामुपति

यदुदकं याचत्युपः प्र णयति ॥ ४ ॥

या एव यद्वा अर्पः प्रणीयन्ते ता एव ताः ॥ ५ ॥

यत् तर्पणमाहरन्ति य एवासीषोमीयः

पशुर्यच्यते स एव सः ॥ ६ ॥

यदावसुथान् कल्पयन्ति

सदोहविद्यानान्येव तत् कल्पयन्ति ॥ ७ ॥

यदुपस्तुपान्ति यद्विरेव तत्

यदुपरिशयनमाहरन्ति ॥ ८ ॥

स्वर्गमेव तेन लोकमयं रुन्दे

यत् कशिपूपयर्धणमाहरन्ति परिषयं एव ते ॥ ९ ॥

यदाऽजनाभ्यञ्जनमाहरत्याज्यमेव तत् ॥ १० ॥

यत् पुत्र परिषेयात् एवमाहरन्ति

पुत्रोद्धारयैव तौ ॥ ११ ॥

यद्वदानकृतं क्षयन्ति दद्विष्टतंगेय तद् ध्वयन्ति १३
 ये मीहयो यवा निरुप्यन्तेऽशयं एव मे ॥ १४ ॥
 याग्युत्पलमुत्पलानि प्रावाण एव मे ॥ १५ ॥
 दपि पयिष्ठं तुवां भ्रुज्जीपाभिपयणीरापः ॥ १६ ॥
 गुग्गुर्दिनेक्षणमाययनं श्रोणकलुनाः कुम्भयोऽ
 वायुध्याऽनि पाप्राणीयमेव रुंष्णाजिनम् ॥ १७ ॥

द्वितीयः पर्यायः ॥ १ ॥

(१-१३) = १ विराट् पुरस्ताद्बृहती; २; १२ चाम्नी त्रिष्टुप्;
 ३ आहुरी अनुष्टुप्; ४ चाम्नी उणिक्; ५, ११ चाम्नी
 बृहती (११ भुरिक्); ६ आर्यगुष्टुप्; ७ त्रिपदा साराष्टगुष्टुप्;
 ८ आहुरी गायत्री; ९ चाम्नी अनुष्टुप्; १० त्रिपदाऽऽधी
 त्रिष्टुप्; १३ त्रिपदाऽऽधी पञ्चिकः (७ पयपदा विराट् पुरस्ताद्
 बृहती; ८ चाम्नीनुष्टुप् वा) ।

यजमानप्राह्मणं वा एतद्वर्तियपतिः

कुच्यते यदाह्वार्यां णि प्रेक्षत
 ह्वं भूयाश्च इवाश्मिति ॥ १ ॥
 यदाह्व भूय उच्यतेति प्राणमेव
 तेन वर्षायांसं कुरुते ॥ २ ॥
 उप ह्वरति ह्वार्याया सादयति ॥ ३ ॥
 तेपामासंघानामतिथिराम्नन् जुहोति ॥ ४ ॥
 कुचा हस्तेन प्राणे यूपं कुक्कारेणं घपट्कारेणं ॥ ५ ॥
 एते वै प्रियाश्चाप्रियाश्चत्विजः
 स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः ॥ ६ ॥
 स य एवं विद्वान् द्विपन्
 अश्रायाश्च द्विपतोऽश्रमश्रीयाश्च
 मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य ॥ ७ ॥
 सर्वो वा एव जग्धपाप्मा यस्याश्रमश्रान्ति ॥ ८ ॥
 सर्वो वा एवोऽजग्धपाप्मा यस्याश्रं नाश्रान्ति ॥ ९ ॥
 सर्वदा वा एव युक्ताश्रावाद्रपंविश्रो
 वितंताश्चर आहृतयश्चक्रतुर्थं उपह्वरति ॥ १० ॥
 प्राजापत्यो वा एतस्य
 यशो वितंतो य उपह्वरति ॥ ११ ॥

प्रजापतेयां एव विद्वान्
 अनुधिक्रमते य उपह्वरति ॥ १२ ॥
 योऽतिधीनां न आह्वयनीयो यो वेदमति
 स गाह्वरयो यमिन् पर्वणि न र्दक्षिणाभिः ॥ १३ ॥
 ह्वतीयः पर्यायः ॥ १ ॥

(१-९) = १-६, ९ त्रिपदा विरीभिजमपदा गायत्री;
 ७ चाम्नी बृहती; ८ विरीतिभमप्योऽभिक् ।

ह्वं च वा एव पूर्वं च
 गृह्णाणामश्राति यः पूर्वोऽतिथेरश्राति ॥ १ ॥
 पर्यह्य वा एव रयं च
 गृह्णाणामश्राति यः पूर्वोऽतिथेरश्राति ॥ २ ॥
 ऊजां च वा एव श्राति चं
 गृह्णाणामश्राति यः पूर्वोऽतिथेरश्राति ॥ ३ ॥
 मृजां च वा एव पशंश्च
 गृह्णाणामश्राति यः पूर्वोऽतिथेरश्राति ॥ ४ ॥
 कीर्तिं च वा एव यशंश्च
 गृह्णाणामश्राति यः पूर्वोऽतिथेरश्राति ॥ ५ ॥
 धिर्यं च वा एव संविदं च
 गृह्णाणामश्राति यः पूर्वोऽतिथेरश्राति ॥ ६ ॥
 एव वा अतिथिर्यच्छोत्रियः
 तस्मात् पूर्वो नाश्रीयात् ॥ ७ ॥
 अश्रितायत्यतिथायश्रीयाश्चस्य
 सात्तम्वार्यं यश्चस्याविच्छेदाय तद् मृतम् ॥ ८ ॥
 एतद्वा उ स्वादीयो
 यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाश्रीयात् ॥ ९ ॥

चतुर्थः पर्यायः ॥ ४ ॥

१-४ प्राजापत्यानुष्टुप्; २-५ त्रिपदा गायत्री; ९ भुरिक् ।
 १० चतुष्पदा प्रस्तारयंकिः ।

स य एवं विद्वान् क्षीरमुपसिच्योपह्वरति ॥ १ ॥
 यावदग्निद्योमेनेष्ठा सुसंमृद्धेनावकुरुषे
 तावदनेनाव कुरुषे ॥ २ ॥
 स य एवं विद्वान्त्सपिंरुपासिच्योपह्वरति ॥ ३ ॥

यावदतिरात्रेणैष्ट्वा सुसंमृद्धेनावरुन्धे
 तावदेनेनावं रुन्धे ॥ ४ ॥
 स य एवं विद्वान् मधुपसिचर्योपहरति ॥ ५ ॥
 यावत् सत्त्वसद्येनेष्ट्वा सुसंमृद्धेनावरुन्धे
 तावदेनेनावं रुन्धे ॥ ६ ॥
 स य एवं विद्वान् मांसमुपसिचर्योपहरति ॥ ७ ॥
 यावद् द्वादशाहेनेष्ट्वा सुसंमृद्धेनावरुन्धे
 तावदेनेनावं रुन्धे ॥ ८ ॥
 स य एवं विद्वानुदकमुपसिचर्योपहरति ॥ ९ ॥
 प्रजानां प्रजननाय गच्छति
 प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति
 य एवं विद्वानुदकमुपसिचर्योपहरति ॥ १० ॥
 पञ्चमः पर्यायः ॥ ५ ॥
 १ साम्नी ऋषिः; २ पुर ऋषिः; ३, १० साम्नी भुरि-
 वृहती; ४, ६, ९ साम्नी अनुष्टुप्; ५ त्रिपदा निचृदि-
 पमा नाम गयत्री; ७ त्रिपदा विराड्विविमा नाम
 गायत्री; ८ त्रिपदा विराडनुष्टुप् ।
 तस्मां उपा हिङ्करोति सविता प्र स्तौति ॥ १ ॥
 शृदस्पतिरुर्जयोद्गायति त्वष्टा
 पुष्ट्या प्रति हरति विश्वे देवा निधनम् ॥ २ ॥
 निधनं भृत्याः प्रजायाः
 पदानां भवति य एवं वेदं ॥ ३ ॥
 तस्मां उद्यन्स्यो हिङ्करोति
 संगवः प्र स्तौति
 मध्यन्दिन उद्रायत्यपराहः
 प्रति हरत्यस्तयन् निधनम् ।
 निधनं भृत्याः प्रजायाः
 पदानां भवति य एवं वेदं
 तस्मां भ्रष्टो भवन् हिङ्करोति
 स्तनयन् प्र स्तौति ॥ ४ ॥
 विद्योतमानः प्रति हरति ययन्
 उद्रायत्युद्रहन् निधनम् ।
 निधनं भृत्याः प्रजायाः
 पदानां भवति य एवं वेदं ॥ ५ ॥

अतिधीन् प्रति पश्यति हिङ्करोति
 क्षमि वंदति प्र स्तौत्युदकं याचत्युद्गायति ॥ ८ ॥
 उपं हरति प्रति हरत्युर्दिष्टं निधनम् ॥ ९ ॥
 निधनं भृत्याः प्रजायाः
 पदानां भवति य एवं वेदं ॥ १० ॥
 षष्ठः पर्यायः ॥ ६ ॥
 १ आसुरी गायत्री; २ साम्नी अनुष्टुप्; ३-५ त्रिपदाऽऽर्चि
 षष्किः; ४ एकपदा प्राजापत्या; ६-११ आर्चो वृहती; १२
 एकपदाऽऽसुरी जगती; १३ याजुषी शिष्टुप्; १४ एक-
 पदाऽऽसुरी ऋषिः ।
 यत् क्षत्तारं ह्यत्या ध्रावयत्येव तत् ॥ १ ॥
 यत् प्रतिदूणोति प्रत्याध्रावयत्येव तत् ॥ २ ॥
 यत् परिवेष्टारः पार्श्वहस्ताः पूर्वे चापरे च
 प्रपद्यन्ते चमसाऽध्वर्यव पृथ ते ॥ ३ ॥
 तेषां न कश्चिनाहोता
 यद्वा अतिथिपतिरतिथीन् परिधिष्य
 गृहानुषोदैत्यवभृष्यमेव तदुपार्वाति ॥ ५ ॥
 यत् संभागयति दक्षिणाः सभागयति
 यदनुतिष्ठेत् उद्वंस्यत्येव तत् ॥ ६ ॥
 स उपंहतः पृथिव्यां भक्षयति
 उपंहतस्तस्मिन् यत् पृथिव्यां विश्वरूपम् ॥ ७ ॥
 स उपंहतोऽन्तरिक्षे भक्षयति
 उपंहतस्तस्मिन् यदन्तरिक्षे विश्वरूपम् ॥ ८ ॥
 स उपंहतो दिवि भक्षयति
 उपंहतस्तस्मिन् यदिवि विश्वरूपम् ॥ ९ ॥
 स उपंहतो देवेषु भक्षयति
 उपंहतस्तस्मिन् यद्देवेषु विश्वरूपम् ॥ १० ॥
 स उपंहतो लोकेषु भक्षयति
 उपंहतस्तस्मिन् यद्लोकेषु विश्वरूपम् ॥ ११ ॥
 स उपंहत उपंहतः ॥ १२ ॥
 आन्तोतीं लोकमाप्नोत्यमुम् ॥ १३ ॥
 ज्योतिष्मतो लोकान् जयति य एवं वेदं ॥ १४ ॥



बाल-विभागः

बाल--संरक्षणमंत्री

वेनः

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१२३।१-८)

वेनो भार्गवः । त्रिष्टुप् ।

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा
ज्योतिर्जरायु रजसो विमाने ।
इममपां सैगमे सूर्यस्य
दिशुं न विप्रां मृतिभीं रिहन्ति
समुद्राद्दुर्मिमुर्दियति वेनो
नेमोजाः पृष्टं ह्येतस्य दर्शि ।
श्रुतस्य सानावधि विष्टपि धात्
समानं योनिमभ्यनूपत द्याः
समानं पृथीरभि धावशानाः
तिष्ठन् वत्सस्य मातरः सनीळाः ।
श्रुतस्य सानावधि चक्रमाणा
रिहन्ति मध्वो अमृतस्य धापीः
जानन्तो रूपमरुपन्त विप्रां
मृगस्य धोर्यं मदपस्य हि ग्मन् ।
श्रुतेन यन्तो अधि सिन्धुमरुधुः
विद्वन्ध्वो द्यमृतांनि नाम

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

अप्सरा जारमुपसिम्बियाणा
योपां विभति परमे ध्योमन् ।
चरत्प्रियस्य योनिषु प्रियः सन्
सीदत् पक्षे हिरण्यये स वेनः
नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं
दृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं
यमस्य योनौ शकुन् भ्रूणयुम्
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात्
प्रत्यङ् चित्रा विभ्रदस्यायुधानि ।
वसानो अत्कं सुरभि दृशे कं
स्वर्णं नाम जनत प्रियाणि
दृप्तः समुद्रमभि यजिजगाति
पश्यन् शृष्टस्य चक्षसा विधर्मन् ।
भानुः शुकेण शोचिपां चक्रानः
तृतीयं चक्रे रजसि प्रियाणि
॥ १ ॥ (चा० य० १३।११)
तं प्रत्यधाऽयं वेनः

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

(६९५८)

मेखलावर्णनम् ॥

॥ १ ॥ (अथर्व० ६।१३१।१-५)

अथस्थः । मेखला । १ मुरिः २, ५ अनुष्टुप् ; ३ त्रिष्टुप् ;
४ जगती ।

य इमां देवो मेखलामाययध
यः सैननाह य उं नो युयोजे ।
यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः
स पारमिच्छात्स उं नो विमुञ्चात् ॥ १ ॥
आहुतास्यभिर्हुत ऋषीणामस्यायुधम् ।
पूर्वां मृतस्य प्राक्षती
धीरघ्नी मंच मेखले ॥ २ ॥

मृत्योर्हं ब्रह्मचारी यदस्मि
निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमार्यं ।

तमहं ब्रह्मणा तर्पसा धर्मेण
आनयन् मेखलया सिनामि ॥ ३ ॥

अन्धारां दुहिता तपसोऽधि जाता
स्वस ऋषीणां भूतकृतां शुभम् ।

सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधां
अर्यो नो धेहि तर्प इन्द्रियं चं ॥ ४ ॥

यां त्वा पूर्वं मृतकृत ऋषयः परिवेधिरे ।
सा त्वं परि श्वजस्व मां

दीर्घायुत्वार्य मेखले ॥ ५ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

६९६३



गुप्त-संरक्षण-विभाग

गुप्त-संरक्षण-मंत्री

कः [प्रजापतिः]

॥ १ ॥ (ऋ० १।९४।१)

शुनःशेष आश्रीगतिः कृत्रिमो देवरातो वैश्वामित्रो वा । त्रिष्टुप् ।
कस्यै नूनं कतमस्यामृतानां
मनामहे चारु देवस्य नाम ।
को नो गृह्या अदितये पुनर्दात्
पितरं च दृशेयं मातरं च

॥ १ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १०।१८।१४)

संक्रुष्टको यामायनः । अनुष्टुप् ।

प्रतीचीने मामहनीप्याः पर्णमिवा दधुः ।
प्रतीचीं जग्रभा वाचमश्वं रशनया यथा ॥१४॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १०।१२।१-१०)

हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः । त्रिष्टुप् ।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्ने
भुतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं धामुतेमां
कस्यै देवाय हविषा विधेम
य आत्मदा धलदा यस्य विश्वं
उपासते प्रशिष्यं यस्य देवाः ।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः
कस्यै देवाय हविषा विधेम

॥ १ ॥

॥ २ ॥

यः प्राणतो निमिपतो महित्वा

एक इद्राजा जगतो यमूर्ध्व ।

य ईशो अस्य द्विपदश्चतुष्पदः

कस्यै देवाय हविषा विधेम

यस्येमे द्विमवन्तो महित्वा

यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।

यस्येमाः प्रदिशो यस्यं वाह

कस्यै देवाय हविषा विधेम

येन यौरुग्रा पृथिवी च हल्हा

येन स्वः स्तभितं येन नार्कः ।

यो अन्तारिक्षे रजसो विमानः

कस्यै देवाय हविषा विधेम

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने

अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।

यत्राधि सूर उदितो विभाति

कस्यै देवाय हविषा विधेम

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन्

गर्भं दर्शाना जनयन्तीरग्निम् ।

ततो देवानां समवर्ततासुरेकः

कस्यै देवाय हविषा विधेम

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

(११०१)

यश्चिदापौ महिना पर्यपश्यद्
 दक्षं दधाना जनयन्तीर्यक्ष्म ।
 यो देवेभ्यश्चि देव एक आसीत्
 कस्मै देवाय हविषा विधेम
 मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या
 यो वा दिवं सत्यधर्मा ज्ञानं ।
 यश्चापश्चन्द्रा वृहतीर्ज्ञानं
 कस्मै देवाय हविषा विधेम
 प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो
 विश्वा ज्ञातानि परि ता यमूय ।
 यत् कामास्ते जुहुमस्तत्रो अस्तु
 वयं स्याम परतो रयीणाम्
 ॥ ४ ॥ (वा० य० १।६)
 कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति
 कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति ।
 कर्मणे वा वेपाय वाम्
 ॥ ५ ॥ (वा० य० २।१३)
 कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति
 कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति ।
 पोषाय रक्षसां मागोऽसि
 ॥ ६ ॥ (वा० य० ७।१९)
 कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि ।
 यस्य ते नामान्गहि यं त्वा सोमेनातीरुषाम् २९
 ॥ ७ ॥ (वा० य० ८।१०, ३६)
 प्रजापतिर्वृषाऽसि रेतोघा रेतो मविं धेहि
 प्रजापतेस्ते वृषणो रेतोघसो रेतोघामदीय ॥ १० ॥
 यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति
 य आधिपेश भुवर्नानि विश्वा ।
 प्रजापतिः प्रजया सररुणः
 ऋषि ज्योतीरयि सचते स योद्दधी ॥ ३६ ॥

॥ ८ ॥ (वा० य० ९।१९, २१, ०३-२५)
 वा मा वाजस्य प्रसवो जंगम्यात्
 एमे चावापृथिवी विश्वरूपे ।
 ॥ ८ ॥ वा मा गन्तां पितरां मातरां चा
 मा सोमो अमृतस्त्वेन गम्यात् ॥ १९ ॥
 प्रजापतेः प्रजा अभूम ॥ २१ ॥
 वाजस्येम प्रसवः सुपुवेऽग्रे
 ॥ ९ ॥ सोमं राजानमोषधीष्वन्तु ।
 ता अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु
 वयं श्रेष्ठे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा ॥ २३ ॥
 वाजस्येमां प्रसवः शिथिये दिवं
 ॥ १० ॥ इमा च विश्वा भुवर्नानि सुधात् ।
 अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्
 स नो रयिः सर्वधीरं नि यच्छतु स्वाहा ॥ २४ ॥
 वाजस्य तु प्रसव आ यमूय
 ॥ ६ ॥ इमा च विश्वा भुवर्नानि सर्वतः ।
 सर्नेमि राजा परि याति विद्वान्
 प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो अस्मे स्वाहा ॥ २५ ॥
 ॥ ९ ॥ (वा० य० १०।१०)
 अवेष्टा दन्दशुक्राः
 प्राचीमा रोह गायत्री त्वाऽद्यतु ।
 रयन्तरं सारं त्रिवृत्सोमो
 यसन्त ऋतुमग्न इषिणम् ॥ १० ॥
 ॥ १० ॥ (वा० य० ११।६६)
 प्रजापतये मर्नये स्वाहा ॥ ६६ ॥
 ॥ ११ ॥ (वा० य० ११।६१)
 मातेय पुत्रं पृथिवी पुरीष्यं
 अग्निं स्वै योनायभादृवा ।
 तां विश्वेदेवैः श्रुतुभिः संविदानः
 प्रजापतिर्विश्वकर्मा वि मुञ्जतु ॥ ६१ ॥
 (६९८८)

॥ १२ ॥ (घा० य० १३।१७, २४, ५४-५८)	
प्रजापतिष्वा सादयत्स्वपां पृष्टे समुद्रस्येर्मन् । व्यचस्वर्त्तां प्रथस्वर्त्तां प्रथस्व पृथिष्यसि ॥ १७ ॥	
प्रजापतिष्वा सादयतु पृष्टे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम् ॥ २४ ॥	
प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५४ ॥	
प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५५ ॥	
प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५६ ॥	
प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५७ ॥	
प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५८ ॥	
॥ १३ ॥ (घा० य० १८।१८-२२, ४३-४४)	
प्रजापतये स्वाहा ॥ २८ ॥	
प्रजापतेः प्रजा अमम चेद् स्वाहा ॥ २९ ॥	
प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः तस्य ऋक्सामान्यप्सरस पर्ययो नाम । स न इदं ब्रह्म क्षुभ्रं पातु तस्मै स्वाहा घाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४३ ॥	
स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य त उपरि गृहा यस्य वेह । अस्मै ब्रह्मणेऽसौ क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा ॥ ४४ ॥	
॥ १४ ॥ (घा० य० २०।४)	
कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्या कार्य त्या । गुन्धोः सुमङ्गल सत्यराजन् ॥ ४ ॥	

॥ १५ ॥ (घा० य० २३।२, ४, ६४)	
उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्या जुष्टं गृह्णामि । प्रजापतये स्वाहा वेधेभ्यः ॥ २ ॥	
होता यक्षत् प्रजापतिर सोमस्य महिम्नः । जुषतां पियंतु सोमर होतर्यजं ॥ ६४ ॥	
॥ १६ ॥ (घा० य० ३।१९)	
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः अजायमानो बहुधा वि जायते । तस्य योनिं परि पदयन्ति धीराः तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि चिर्वा ॥ १० ॥	
॥ १७ ॥ (घा० य ३।५६)	
प्रजापतौ त्वा वेधतायामुपौदके लोके नि दधाम्यसौ । अप नः शोशुचदधम् ॥ ६ ॥	
॥ १८ ॥ (अथर्व० ३।१०।१३) अथर्वा । अनुष्टुप् ।	
इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहिताऽसि प्रजापतेः । कामान्स्माकं पूरय प्रति गृह्णाहि नो हविः ॥ १३ ॥	
॥ १९ ॥ (अथर्व० ९।१।२४) त्र्यवसाना पट्पदाजष्टिः ।	
यद्भीधे स्तनयति प्रजापतिः पृथ तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति । तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति । अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद २४	
॥ २० ॥ (अथर्व० ७।१९।१) ब्रह्मा । जगती ।	
प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः । संजानानाः संमनसः सयोनयो मरिं पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ॥ १ ॥	

॥ ११ ॥ (अथर्व० १६।१।१)
यमः । प्राजापला आर्च्यन्तुष्टुप् ।

जितमुस्साकमुद्भिन्नमुस्साकं
अभ्यष्टिं विभ्वाः पृतना अरातीः ॥ १ ॥

॥ १२ ॥ (साम० ६०२)
वामदेवो गौतमः । अतुष्टुप् ।

मयि वर्चो अयो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः ।
परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि चामिव दंहतु ॥ १ ॥

प्रजापति-सहचारी-देवगणः

(१) प्रजापतिः हरिश्चन्द्रः चर्म सोमो वा ।

॥ १३ ॥ (ऋ० १।१८।९)
शुलःशेष आर्चगतिः । गायत्री ।

उच्छिष्टं चर्मोर्मर सोमं पयिश्च आ सृज ।
नि घँहि गोरधिं त्वचि ॥ १ ॥

(२) प्रजापत्यादयः ।

॥ १४ ॥ (धा० य० ३९।१)

प्रजापतिः समिध्रयमाणः सुभ्राट् सम्भृतो
वैश्वदेवः संक्षुस्रुतो धर्मः प्रवृक्तः
तेज उद्यत आभिनः पर्यस्यानीयमाने
पाँणो विध्यन्दमानि माहनः ह्यथन ।

मैत्रः शरसि सन्ताप्यमाने चायव्यो ह्रियमाण
आग्नेयो ह्रियमानो वाग्धुतः ॥ ५ ॥

(३) धनस्पतिः, प्रजापतिः ।

॥ १५ ॥ (अथर्व० ३।७४।१-७)

मृगुः । अतुष्टुप्, २ निवृत्पप्यापणलिः ।

पर्यस्वतीरोर्धयः पर्यस्वन्मामकं वर्चः ।
अयो पर्यस्वतीनामा मरेऽहं संदह्मदाः ॥ १ ॥

वेदाहं पर्यस्वन्तं चकार धान्यं यहु ।
संश्रुत्वा नाम यो देवस्तं क्यं हं वामहे

यो यो अयं ज्वनो गृहे ॥ २ ॥
इमा याः पंचं प्रदिशो मानवीः पंचं कृष्टयः ।

वृष्टे शार्प नदीरिवेह स्फूर्तिं सुमार्यदान् ॥ ३ ॥
उदुत्सं शतघोरं सहस्रघोरमार्क्षितम् ।

एवास्माक्रेदं धान्यं सुहस्रघोरमार्क्षितम् ॥ ४ ॥
शतहस्तं सुमार्हरं सहस्रहस्तं संकिर ।

कृतस्य कार्यस्य चेह स्फूर्तिं सुमार्यह ॥ ५ ॥
तिष्ठो मात्रां गन्धर्वाणां चतस्रो गृहपत्न्याः ।

तासां या स्फूर्तिमर्त्तमा ॥ ६ ॥
तया त्वाऽसि मृशामसि

उपोहश्च समुहश्च क्षुचारैः ते प्रजापते ।
तायिहा यदतां स्फूर्तिं ॥ ७ ॥
यद् मुमानमार्क्षितम् ॥ ७ ॥

(७०१८)



वाहन-विभागः

वाहन--मंत्री

अश्वः

॥ १ ॥ (क्र० ११६१११-११)

दीर्घतमा औचध्यः । त्रिष्टुप्, ३-६ अगती ।

मा नो मित्रो चरुणो अर्यमा
आयुरिन्द्रं ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन् ।

यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तैः
प्रवक्ष्यामो विदधे वीर्याणि

यन्निर्णिजा रेकर्णसा प्रावृतस्य
शक्तिं गृहीतां मुखतो नयन्ति ।

सुप्रांडजो मेर्यद्विभ्वरूप

इन्द्रापुष्णोः प्रियमर्व्येति पाथः

एव छागं, पुरो अश्वेन वाजिनां
पुष्णो भागो नीयते विश्वदैव्यः ।

अभिप्रियं यत् पुरोळाशमर्षता
त्यष्टेदेने सौभ्रवसायं जिन्वति

यत्तद्विष्यमृतुशो देवयानं

त्रिमानुपाः पर्यभ्यं नयन्ति ।

अत्रा पुष्णः प्रथमो भाग र्षति

यत्तं देवैर्भ्यः प्रतिधेय्यद्वजः

होताऽध्युरावया अग्निमिन्धो
प्रायमाम उत शंस्ता सुर्विप्रः ।

तेन यश्चेन स्वर्ंरुतेन

स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम्

यूपमस्का उत ये यूपवाहाः

चपालं ये अश्वयुपाय तक्षति ।

ये चार्वैते पचनं संभरन्ति

उतो तेषामभिर्गुतिर्न इन्वतु

उप प्रागात् सुमन्वेऽधायि मन्म

देवानामाशा उर्ष वीतपृष्ठः ।

अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति

देवानां पृष्टे चक्रमा सुवधुम्

यद्वाजिनो दामं सदानमर्षतो

या शीर्वण्या रशना रज्जुरस्य ।

यद्वा घास्य प्रभृतमास्येकु तृणं

सर्षा ता ते अपि देवेष्वस्तु

यदश्वस्य ऋविषो मक्षिकाऽऽश

यद्वा स्वरो स्वधितौ रितामस्ति ।

यत्तस्तयोः शमितुर्यद्वयेपु

सर्षा ता ते अपि देवेष्वस्तु

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

(५०१५)

यदूर्ध्वम्यमुदरस्यापवाति
 य आमस्यं क्रुविषो गन्धो अस्ति ।
 सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तु
 उत मेधं शृतपाकं पचन्तु
 यत् ते गात्राद्भिना पच्यमानात्
 अमि शूलं निहंतस्यावधारवति ।
 मा तद्रूम्यामा श्रियन्मा सुणेषु
 देवेभ्यस्तदुशद्रयो रातमस्तु
 ये वाजिनं परिपश्यन्ति एकं
 य ईमाहुः सुरमिनिहरेति ।
 ये चार्चतो मांसमिक्षामुपासत
 उतो तेषामभिर्गूर्तिर्न इन्वतु
 यशीर्क्षणं मांसपचन्या उखाया
 या पात्राणि युष्ण आसेचनानि ।
 ऊष्मण्याऽपिधानां चरुणां
 अद्भ्याः सूनाः परि मूयन्त्यध्वम्
 निक्रमणं निपदनं विवर्तनं यश्च पञ्चशमवर्तः ।
 यश्च पपौ यश्च घासि जघास
 सयां ता ते अपि देवेष्वस्तु
 मा त्वाऽभिर्ध्वनयीद् धुमगन्धिः
 मोखा ध्राजन्त्यमि विवृत जग्निः ।
 इष्टं धीतमभिर्गूर्तिं वपद्कृतं
 तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यध्वम्
 यदभ्याय घासं उपस्तुणन्ति
 अंधीयासं या हिरण्यान्यस्मै ।
 संदानमर्थेन्तं पद्दयीशं
 प्रिया देवेष्या यामयान्ति
 यत् तै सादे महसा शरुतस्य
 पाण्यो वा कदाया वा तुतोर्द ।
 छुचेय ता हविषो अभ्यरेपु
 सयां ता ते प्रक्रणा सूदयामि

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

॥ १५ ॥

॥ १६ ॥

॥ १७ ॥

चतुर्विंशद् वाजिनो देववन्धोः
 वः श्रीरध्वस्य स्वधितिः समेति ।
 अर्चिष्ठद्रा गात्रा ध्युना कृणोतु
 परंपररनुधुप्या वि शस्त ॥ १८ ॥
 एकस्त्वध्वस्यस्या विशस्ता
 द्वा यन्तारां भवतस्तयं श्रुतुः ।
 या ते गात्राणामृतुया कृणोमि
 ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥ १९ ॥
 मा त्वां तपत् मिय आत्माऽपियन्तं
 मा स्वधितिस्तन्वु मा तिष्ठिपत् ते ।
 मा तं गृध्नुर्विशस्ताऽतिहार्यं
 छिद्रा गात्राण्यसिना मिधूं कः ॥ २० ॥
 न वा उं पतन्त्रियसे न रिप्यसि
 देवां इदैपि पृथिभिः सुगोमिः ।
 हरीं ते युष्जा पृथती अमृतां
 उपास्याद् वाजी धुरि रासमस्य ॥ २१ ॥
 सुगर्ष्यं नो वाजी स्वदृष्यं पुंसः
 पृत्रां उत विभ्यापुषं रयिम् ।
 अनागास्थं नो अर्धितिः कृणोतु
 अत्रं नो अध्वो वनतां हविष्यान् ॥ २२ ॥
 ॥ २३ ॥ (श्र० १।१६३।१-१३) निष्टुम् ।
 यदक्रन्दः प्रथमं जायमान
 उद्यन्तसमुद्राद्दुत वा पुरीपात् ।
 श्येनस्यं पक्षा ईरिणस्यं वाह
 उंस्तुत्यं मर्दि जातं तं अयन् ॥ १ ॥
 यमेनं दत्तं त्रित पंनमायुनक्
 इन्द्रं एणं प्रथमो अर्ध्यतिष्ठत् ।
 गन्धयो अंस्य रत्नानामगृभ्यात्
 सुपदर्थं यसयो निरतष्ट ॥ २ ॥

असि यमो अस्यादित्यो अर्धेन
 असि त्रितो गृहो न मृतनेन ।
 असि सोमै न सुमया विपुक्त
 आहुस्ते त्रीणि द्विवि बन्धनानि
 त्रीणि त आहुद्विवि बन्धनानि
 त्रीण्यप्यु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
 उतेव मे वरुणश्छन्त्यर्धेन
 यत्रा त आहुः परमं जनित्रम्
 इमा ते वाजिन्यवमार्जनानी
 आ शफानां सनितुनिधाना ।
 अत्रा ते भद्रा रंशना अपश्यं
 ऋतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः
 आत्मानं ते मनसाऽऽरादजानां
 अवे दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
 शिरो अपश्यं पथिमिः सुगोभिः
 अरेणुभिर्जैहमान पतत्रि
 अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं
 जिगीषमाणमिप आ पुदे गोः ।
 यदा ते मतो अनु भोगमानट्
 आदिद् प्रसिष्ट ओषधीरजीगः
 अनु त्वा रथो अनु मयो अर्धेन
 अनु गावोऽनु भर्गः कृनीनाम् ।
 अनु वातासुस्तर्ध सुख्यमीयुः
 अनु देवा ममिरे धीर्ये ते
 हिरण्यदृङ्गोऽयो अस्य पादा
 मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।
 देवा इदस्य हयिरघमायन्
 यो अर्धन्तं प्रथमो अथर्तिष्ठत्
 ईर्मान्तासुः सिलिकमप्यमासुः
 सं दूरणासो द्वित्यासो अत्याः ।

हंसा इय श्रेणिशो यतन्ते
 यदाक्षिपुर्दिव्यमग्ममर्भाः ॥ १० ॥
 तय शरीरं पतयिष्यर्धेन
 तय चित्तं पातं इय धर्जीमान् । ॥ ३ ॥
 तय शृङ्गाणि विष्टिता पुरुत्रा
 अरुण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ ११ ॥
 उप प्रागाच्छसंनं घ्राज्यर्वा
 देयद्रीचा मनसा दीर्घ्यानः । ॥ ४ ॥
 अजः पुरो नीयते नाभिरस्य
 अनु पश्चात् कवयो यन्ति रेभाः ॥ १२ ॥
 उप प्रागात् परमं यत् सुधस्यं
 अर्धो अच्छा पितरं मातर च । ॥ ५ ॥
 अथा देवान्जुष्टमो हि गम्या
 अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥ १३ ॥
 ॥ ३ ॥ (ऋ० ७।३८।७-८ ;
 मैत्रावरुणिसंश्लि० । वाजिन. । त्रिष्टुप् ।
 शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु
 देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
 जम्भयन्तोऽहि वृकं रक्षांसि
 सनेभ्यसद्युययन्नमीवाः ॥ ७ ॥
 वाजैवाजेऽवत वाजिनो नो
 धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
 अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं
 तुसा यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ८ ॥
 ॥ ४ ॥ (वा० य० ७।४७)
 यमार्य त्वा मह्यं वरुणो ददातु
 सोऽमृतत्वमशीय हयो दात्र पथि
 घयो मह्यं प्रतिप्रहीत्रे ॥ ४७ ॥
 ॥ ५ ॥ (वा० य० ८।१९)
 यस्ते अभ्यसनिर्मेक्षो यो गोसनि
 तस्यं त इष्टयंजुप स्तुतस्तोमस्य
 नास्तोपथस्योपहृतस्यापहृतो मक्षयामि ॥ १२ ॥
 (७०५३)

॥ ६ ॥ (वा० य० १, ६-९, १२ [उत्तरार्धः]-१५, १९)
 अक्ष्वन्तर्गतमृतमप्लु भैपुजमपामुत
 प्रदास्तिप्वश्वामवत वाजिनः
 देवीरापो यो च ऊमिः प्रतृतिः
 ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाजं सेत् ॥ ६ ॥
 वार्तो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविंशतिः ।
 ते अग्रेऽश्वमयुञ्जस्ते अस्मिन्नयमा दधुः ॥ ७ ॥
 वार्तरश्मिहा भव वाजिन् युज्यमानं
 इन्द्रस्यैव दक्षिणः धियैधि ।
 युञ्जन्तु त्या मरुतो विश्ववर्देसु
 आ ते त्वष्टा प्लसु ज्वं दधातु ॥ ८ ॥
 जयो यस्ते वाजिभिर्हितो गुहा यः
 श्यने परीतो अचरच्च वार्ते ।
 तेन नो वाजिन् यलवान् यलेन
 वाजजिच्च भव समने च पापुपिण्युः ।
 वाजिनो वाजजितो वाजं सरिप्यन्तो
 बृहस्पतेर्मागमवजिघ्रत
 वाजिनो वाजजितोऽध्वनं रुरुधुवन्तो
 योजना मिर्मानाः काष्ठा गच्छत
 एव स्य वाजी क्षिपणिं नुरण्यति
 प्रीवायां वृद्धो अपिकृक्ष आसनि ।
 कर्तुं दधिका अन् सारसनिप्यदत्
 पथामद्कारस्यन्यापनीफणन् स्वाहा
 उत सांस्य द्रपतस्तुरण्यतः
 पूर्णं न वेरन्तुवाति प्रगाधिनेः ।
 श्येनस्यैव ध्रजतो अद्सं पारि
 दधिफाणः सुहोजां तरिप्रतः स्वाहा
 आ मा वाजंभ्य प्रसयो जगम्यात्
 एमे धावांपृथिवी विश्वरूपे ।
 आ मा गन्तां पितरां मानरा च
 आ मा मोमो अमृतस्येनं गम्यात् ।

वाजिनो वाजजितो वाजं ससृवास्तो
 बृहस्पतेर्मागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥ १९ ॥
 ॥ ७ ॥ (वा० य० ११, १०, १५, १८-२०, २४, २६)
 प्रतृत्तं वाजिघ्रा द्रवं वारिष्ठाभनुं संवतम् ।
 द्विवि ते जन्म परममन्तारिक्षे
 तव नामिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥ १२ ॥
 प्रतृषेधेह्यकामशदास्ती
 रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि ।
 उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगन्तुतिः
 अमयानि कृण्वन् पूष्णा सयुजां सुह ॥ १५ ॥
 आगत्यं वाज्यस्वान्धं सर्वा मृधो वि धूनुते ।
 अग्निश्चसुधस्ये महति चक्षुया नि चिकीपते ॥ १८ ॥
 आक्रम्यं वाजिन् पृथिवीमग्निर्मिच्छ रुचा त्वम् ।
 भूम्यां वृत्वार्यं नो ग्रही यतः खनेम तं ययम् ॥ १९ ॥
 द्यौस्तं पृष्टं पृथिवी सुधस्यं
 आत्माऽन्तारिक्षं समुद्रो योनिः ।
 विख्याय चक्षुया त्वमग्निं तिष्ठ पृतन्यतः ॥ २० ॥
 उत्क्राम महते सौमगाय
 अस्मान्नास्यानां द्रविणोदा वाजिन् ।
 ध्रुयं स्याम सुमतौ पृथिव्या
 अग्निं धनेन्त उपस्ये अस्याः ॥ २१ ॥
 उदक्रमाद् द्रविणोदा धाज्यवाकः
 सुलोकं सुहृतं पृथिव्याम् ।
 ततः धनेम सुप्रतीकमग्निं
 स्वो रुहाणा अधि नार्कमुत्तमम् ॥ २२ ॥
 स्थिरो मय वीह्युह आरुमं गुज्यवर्न ।
 पृथुर्मेव सुपदस्वमग्नेः पुरीष्वार्हणः ॥ ४४ ॥
 प्रेतुं वाजी कर्निकुद्रानन्दद्राममः पर्या ।
 मरुद्राग्निं पुरीष्यं मा पाचार्युगः पुरा ।
 वृषाऽग्निं वृषेजं मरुद्रापां गरिष्ठं समद्रियम् ।
 अग्ने मा याति पीतये ॥ ४६ ॥

॥ ८ ॥ (वा० य० २१३-४, १९)

यमिधा अस्ति भुवर्नमसि युन्ताऽसि धूर्ता ।
स त्वमग्नि वैश्वानरश्च सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः ३
स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये
ब्रह्मन्नाश्वं भुन्स्यामि देवेभ्यः
प्रजापतये तेन राघ्यासम् ।
तं वधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राघुहि ॥ ४ ॥
विभूर्मात्रा प्रभुः विघ्नाऽश्वोऽसि हयोऽस्यत्वोऽसि
मयोऽस्यवोऽसि सतिरसि
वाज्यसि वृषाऽसि नृमणा असि ।
ययुर्नामाऽसि शिशुर्नामाऽसि
आदित्यानां पत्वाऽन्विहि ।
देवा आशापाला एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितश्च
रक्षते—ह रन्ति—रिह रमतां
इह धृति—रिह स्वधृतिः स्वाहा ॥ १९ ॥

॥ ९ ॥ (वा० य० २३।५-७-९, १४-१७, २०-२१, ३४-
३७, ३९-४४)

युञ्जन्ति प्रधर्मरुपं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ५ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरि विपक्षसा रथे ।
शोणा धूष्ण नृवाहसा ॥ ६ ॥
यहातो अपो अगनीगन् प्रियामिन्द्रस्य तन्वम् ।
एतश्च स्तोत्रनेन पथा पुनरश्वमार्धर्तयासि नः ॥ ७ ॥
संश्रितो रदिमना रथः संश्रितो रदिमना हयः ।
संश्रितो अस्वप्सुजा द्रवा सोमपुरोगवः ॥ १४ ॥
स्ययं वाजिस्तम्यं कल्पयस्य
स्ययं यजम्य स्ययं जुषस्य ।
महिमा तेऽम्येन न सुधर्ते ॥ १५ ॥
न पा उ एतमिधयसे न रिप्यसि
देवो र हर्षि पथिभिः सुगेभिः ।
यत्रासने सुष्ठो यत्र ते पयुः
मत्र ाया देवः स्यिता दधातु ॥ १६ ॥

अग्निः पशुरासीत् तेनायजन्त स एतल्लोकमजयत्
यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति
तं जैष्यसि पिबैता अपः ।
वायुः पशुरासीत् तेनायजन्त स एतल्लोकमजयत्
यस्मिन् वायुः स ते लोको भविष्यति
तं जैष्यसि पिबैता अपः ।
सूर्यः पशुरासीत् तेनायजन्त स एतल्लोकमजयत्
यस्मिन्सूर्यः स ते लोको भविष्यति
तं जैष्यसि पिबैता अपः ॥ १७ ॥
ता उमौ चतुरः पदः संप्रसारयाव
स्वगं लोके प्रोषुवाथां
वृषां वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥ २० ॥
उत्सकथ्या अवं गुदं धेहि समञ्जि चारया वृषन् ।
य स्त्रीणां जीवभोजनः ॥ २१ ॥
त्रिपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदायाश्च पटपदाः ।
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः
सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३४ ॥
महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभुधरीः ।
मैधीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३५ ॥
नार्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीपर्या ।
देवानां पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३६ ॥
रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः ।
अश्वस्य पाजिनस्त्याचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ३७
कस्त्या छर्पति कस्त्या विशास्ति
कस्ते गात्राणि शम्यति ।
क उ ते शमिता क्विः ॥ ३९ ॥
श्रुतयस्त श्रुतुया पथं शमितारो वि शासतु ।
संयत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ४० ॥
अधेमासाः परुश्चि ते मासा भा च्छर्षन्तु शम्यन्तः ।
अहोरात्राणि मरतो पिडिच्छंश्च द्ययन्तु ते ॥ ४१ ॥
(४०१)

दैव्यां अध्वर्यवस्त्वा च्छर्यन्तु वि च शासतु ।
गात्राणि पर्वशस्ते सिर्माः कृण्वन्तु शर्मन्तीः ॥४२

घौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्चिद्रं पृणातु ते ।
सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणातु साधुया ॥४३॥
शं ते परैभ्यो गात्रैभ्यः शमस्त्वर्चरेभ्यः ।
शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव ॥ ४४ ॥

॥ १० ॥ (घा० य० २१।४४)
तीयान् घोपान् कृण्वते वृषपाणयो
अद्य रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवकामन्तः प्रपदैरुमिषान्
क्षिणन्ति शत्रुं रत्नपव्ययन्तः ॥ ४४ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ६।११।३)
अथर्वो । त्रिष्टुप् ।
तनूयै वाजिन् तन्वे नर्यन्ती
याममस्मभ्य धावतु शर्म तुभ्यम् ।
अहुतो महो धरुणांय देवो
विषीध ज्योतिः स्वमा मिमीयात् ॥ ३ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० ११।१५।१)
गोपयः । अनुष्टुप् ।
अध्रान्तस्य त्या मनसा युनीजिं प्रथमस्य च ।
उत्कूलमुवृद्धो मंयोदुह्य प्रति धायतात् ॥ १ ॥

॥ १३ ॥ (साम० ४।३५)
अण-प्रथमस्य । उर लणिक् ।
आधिर्मर्या आ वाजं वाजिनो
अगं देवस्य सपितुः सयम् ।
स्वर्गा अर्थन्तो जयत ॥ ९ ॥

फथ्या स्वस्तिः ।

॥ १ ॥ (अ १०।६।१।५-१६)
(१-२) गयः प्लात । १५ अगती त्रिष्टुप्वा १६ त्रिष्टुप् ।

स्वस्ति नः पृथ्यासु ध्रन्वसु
स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति ।
स्वस्ति नः पुत्रहृयेषु योनिषु
स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥ १५ ॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपये श्रेष्ठा
रेकणस्वत्यभि या वाममेति ।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु
स्वावेशा भंवतु देवगोपा ॥ १६ ॥

॥ २ ॥ (अथर्व० ६।४८।१-३)
अंगिरा प्रचेताः । १ ऐशेन, २ अमु, ३ इया (स्वस्ति
वाचनम्) । लणिक् ।

इयेनो ऽसि गायत्रच्छन्दा अनु त्वा रमे ।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदधि स्वाहा ॥ १ ॥
ऋभुरसि जगच्छन्दा अनु त्वा रमे ।

स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदधि स्वाहा ॥ २ ॥
वृषां ऽसि त्रिष्टुच्छन्दा अनु त्वा रमे ।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदधि स्वाहा ॥ ३ ॥

॥ ३ ॥ (अथर्व० ७।१८।१)
मेधातिथिः । वेद. (स्वस्ति) । त्रिष्टुप् ।

वेदः स्वस्तिर्दुधुणः स्वस्तिः
परदावैर्विः परदानैः स्वस्तिः ।
हविष्कृतौ यक्षियां यज्ञकामाः
ते देवास्तौ यज्ञमिमं जुषन्ताम् ॥ १ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० ७।५५।१)
मृगः । इन्द्रः [मार्गस्वल्पयनम्] । विराट् परोष्णिक् ।
ये ते पन्थानोऽव्यं द्वियो येभिविद्युमैरयः ।

तेभिः सुम्नया धेदि नो वसो ॥ १ ॥
(७।०७)



मातृभूमि

पृथिवी

॥ १ ॥ (ऋ० १।१९।१५) मेधातिथिः काण्वः । गायत्री । स्योना पृथिवि भवानक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथः	॥ १५ ॥	यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मै देव वपडस्तु तुभ्यम्	॥ ३९ ॥
॥ २ ॥ (ऋ० ५।८४।१-३) भौमोऽग्निः । अत्रुष्टुप् । बद्धिस्था पर्वतानां पिद्रं विभारिं पृथिवि । प्र या भूमिं प्रयत्वति मन्हा जिनोपि महिनि	॥ १ ॥	भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवीं वंछह पृथिवीं मा हिंसीः	॥ १८ ॥
स्तोमांसस्या विचारिणि प्रति घोभन्यक्तुभिः । प्र या याज्ञं न हेपन्तं पेहमस्यस्यर्जुनि ॥ २ ॥ दृढा विद्या वनस्पतीन् इमया दध्प्योर्जसा । यत् नै अभ्रस्यं विद्यतो दिवो वपेन्ति घृष्टयः ॥३॥		॥ ७ ॥ (वा० य० २२।९७) पृथिव्यै स्वाहा	॥ २७ ॥
॥ ३ ॥ (वा० य० ४।१३) इयं नै यथियां तनूरपो मुंच्यामि न प्रजाम् । अरुहोमुचः स्यादोक्तताः पृथिवीमा विदात पृथिव्या समर्भव	॥ १३ ॥	॥ ८ ॥ (वा० य० ३७।५, १९) इत्यप्रं आसीन्मरास्यं तेऽद्य शिरां राष्यासं देययर्जने पृथिव्याः । मन्वायं तया मरास्यं तया शीर्षेण	॥ ५ ॥
॥ ४ ॥ (वा० य० ५।९) तुमार्वनी मेऽसि विचार्यनी मेऽस्यवताग्मा नधिनादवताग्मा व्यथितात्	॥ ९ ॥	अनाभृष्टा पुरस्ताद्गुरोराधिपत्य आयुमे वाः पुत्रपती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे वाः । सुपदा पद्मादेवस्य सवितुराधिपत्ये चर्दामे वाः भार्धृतिरुक्ततो धातुराधिपत्ये रापस्यो मे वाः । विष्पृतिरुपरिष्टात्पृष्टरपतेराधिपत्य भोजो मे वाः दिग्भोभ्यो मा न्नापुर्भ्यन्पाटि मनोरभ्यानि ॥ १२ ॥	॥ १२ ॥
॥ ५ ॥ (वा० य० ११।३९) वं नै वापुर्भोभ्यो दधातु उत्तानाया दृदयं यद्विर्बलम् ।			(०१८)

॥ ९ ॥ वा० य० (०१-३)
पृथिवि मातृमो मां हि संसृजो अहं त्याम् ॥ २३ ॥

॥ १० ॥ (अथर्व० ३।१९।८)
चरालकः । उपरिष्ठाद्बृहती ।

भूमिं पृथा प्रति गृह्णात्यन्तरिक्षमिदं महत् ।

माऽहं प्राणेन माऽऽत्मना

मा प्रजयां प्रतिगृह्य वि राधिधि ॥ ८ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ४।३०।५)
शुकः । त्रिष्टुप् ।

येऽधस्तात्सुहृति जातवेदो

ध्रुवायां दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।

भूमिं मृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां

प्रत्यर्गो नान् प्रतिसुरेणं हन्मि ॥ ५ ॥

॥ १२ ॥ (अथर्व० ७।२७।१)
मेधातिथिः । इडा । त्रिष्टुप् ।

इडेवास्माँ अनुं वस्तां प्रतेन

यस्याः पदे पुनर्ते देवपुनर्तः ।

घृतपर्दी शकर्वरी सोमंपृष्ठा

उपं यज्ञमस्थित वैदधदेवी ॥ १ ॥

॥ १३ ॥ (अथर्व० ११।१।१-६३)

अथर्वा । भूमिः । त्रिष्टुप्, २ सुरिक्, ४-६, १०, ३८ अथर्व-

साना षट्पदा जगती; ७ प्रस्तापेक्षि; ८, ११ अथर्व० षट्-

विराडष्टिः; ९ पराऽनुष्टुप्; १२-१३, १५ षषपदा शकरी

(१२-१३ अथर्व०) । १४ महाबृहती; १६, २१ एकान्त-

साना त्रिष्टुप्, १८ अथर्व० षट्० त्रिष्टुबनुष्टुगमातिशकरी;

१९-२० पुरोबृहती (२० विराट्); २२ अथर्व० षट्० विराड-

तिजगती; २३ षषपदा विराडतिजगती; २४ षष० अनुष्टुगमा

जगती; २५ अथर्व० सप्त० उष्णिगनुष्टुगमां शकरी; २६-२८,

३३, ३५, ३९-४१, ५०, ५३-५४, ५६, ५९, ६३ अनुष्टुप्

(पुरोबृहती); ३० विराट् गायत्री; ३२ पुरस्तात्सोमोति; ३४

अथर्व० षट्० त्रिष्टुबृहतीगमातिजगती; ३६ विपरीतपादलक्ष्मा

पंक्तिः; ३७ अथर्व० षष० शकर्वरी; ४१ अथर्व० षट्० कङ्-

म्मती शकर्वरी; ४२ स्वराऽनुष्टुप्; ४३ विराडारतापंक्तिः;

४४-४५, ४९ जगती; ४६ षट्० अनुष्टुगमां परा शकर्वरी;

४७ षट्० उष्णिगनुष्टुगमां पराऽतिशकर्वरी; ४८ पुरोऽनुष्टुप्;
५१ अथर्व० षट्० अनुष्टुगमां कङ्गम्मती शकर्वरी; ५२ षष०
अनुष्टुगमां पराऽतिजगती; ५७ पुरोऽतिजगता जगती; ५८
पुरस्ताद्बृहती; ६१ पुरोबृहती; ६२ परा विराट् ।

सत्यं बृहदृतमुग्रं वीक्षा तपो
ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।

सा नो मृतस्य भव्यस्य परनी
उवं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ १ ॥

असंयाद्ये र्थभ्यतो मानवानां
यस्या उद्धतः प्रवतः सप्तं बहु ।

नानाधीर्षा ओपधीर्षा विर्मति
पृथिवी नः प्रथतां राप्यतां नः ॥ २ ॥

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो
यस्यामर्षं कृष्टयः संवभुवुः ।

यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्
सा नो भूमिः पूर्वपेयं दधातु ॥ ३ ॥

यस्याश्चतस्रः प्रदिशाः पृथिव्या
यस्यामर्षं कृष्टयः संवभुवुः ।

या विर्मति बहुधा प्राणदेजत्
सा नो भूमिर्गोप्यर्षे दधातु ॥ ४ ॥

यस्यां पूर्वं पूर्वजना विचक्रिरे
यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।

गवामभ्वानां वषसश्च चिष्ठा
भगं वचैः पृथिवी नो दधातु ॥ ५ ॥

विश्वंमरा वंसुचानीं प्रतिष्ठा
दिरण्यवश्ना जगतो निवेशनी ।

वैश्वानरं विश्रंती भूमिरामि
रन्द्रंश्रपमा श्रविणे नो दधातु ॥ ६ ॥

यां रक्षन्त्यवृक्षन्ना विदध्वानीं
देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।

सा नो मर्षु मियं दुहामयो उस्तु वचसा ॥ ७ ॥

या षंवेऽधि सलिलमप्र आसीद्	त वेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं
यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।	मर्त्येभ्य उच्यन्सूर्यो रश्मिभिरातुनोति ॥ १५ ॥
यस्या हृदयं परमे ध्योमिन्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः	ता नः प्रजाः सं दुहतां समप्रा
ना नो भूमिस्त्वियं बलं राष्ट्रे दधातुत्तमे ॥ ८ ॥	वाचो मधुं पृथिवि धेहि मह्यम् ॥ १६ ॥
यस्यामार्यः परिचराः संमानीः	विद्वस्वस्वमातरमोपधीनां ध्रुवां
अहोरात्रे अप्रमादं हरन्ति ।	भूमिं पृथिवीं धर्मेणा धृताम् ।
सा नो भूमिर्भरिधारा पर्यो दुहां	शिवां स्योनामनुं चरेम विभ्वहा ॥ १७ ॥
अर्यो उक्षतु पचंसा	॥ ९ ॥
यामभिवनापरिमितां विष्णुपंस्यां विचक्रमे ।	महत् सधस्थं महती यंभूयिध
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।	महान् वेगं एज्युर्वेपयुष्टे ।
या नो भूमिपि सृजतां माता पुत्रार्य मे पर्यः ॥ १० ॥	महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।
गिर्यंभे पर्यता हिमवन्तो	सा नो भूमे प्र रौच्य दिरण्यस्येव स्रष्टसि
हरण्यं तं पृथिवि स्योनमस्तु ।	मा नो दिक्षत वक्ष्यन् ॥ १८ ॥
पधुं वृष्णां रोहिणीं विश्वरूपं	अग्निर्म्यामोपधीप्यग्निमार्यो विभ्रत्यगिर्यमस्तु ।
ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुताम् ।	अगिर्यन्तः पुरंपेषु गोप्यद्वेष्यत्तार्यः ॥ १९ ॥
अज्ञातोऽहंतो अज्ञातोऽपर्यंष्टां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥	अग्निर्दिव आ संपत्योर्देवस्योर्षंस्तारिक्षम् ।
	अग्निं मतींश्च इच्छते इच्छयवाहं पतमिधम ॥ २० ॥

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः ।
 यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषु हस्तिषु ।
 कन्यायां वचो यद् भूमि
 तेनास्मा अपि सं संजु मा नो दिक्षत कश्चन ॥२५॥

शिला भूमिरदमां पांसुः सा भूमिः संभृता धृता ।
 तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥ २६ ॥

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तित्प्रन्ति विश्वहा ।
 पृथिवीं विश्वघातयसं धृतामच्छावदामसि ॥ २७ ॥

उदीराणा उतासीनास्तित्प्रन्तः प्रकामन्तः ।
 पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् २८

विश्वर्षरीं पृथिवीमा वंदामि
 क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
 ऊर्जं पुष्टं विभ्रतीमन्नभ्रगं
 घृतं त्वाऽमि नि पीदम भूमे ॥ २९ ॥

सुखा न आपस्तन्वेऽक्षरन्तु
 यो नः सेदुरप्रिये तं नि दंभः ।
 पृथिवीं पृथिवीं मोत्पुनामि ॥ ३० ॥

यास्ते प्रार्चीः प्रदिशो या उदीचीः
 यास्ते भूमे अधरायाश्च पश्चात् ।
 स्यानास्ता मह्यं चरते भवन्तु
 मा नि पतं भुवने क्षिप्रियाणः ॥ ३१ ॥

मा नः पश्चान्मा पुरस्तात्
 बुदिष्टा भोत्तरादधरादुत् ।
 स्यास्ति भूमे नो भव मा विदन्
 परिपरिथयो वरीयो यावया वधम् ॥ ३२ ॥

यावत् तेऽमि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
 तावन्मे चक्षुर्मां मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ३३ ॥

यच्छायानः पर्यावते दक्षिणं सव्यममि भूमे पार्श्वम् ।
 उत्तानास्ता प्रतीचीं यत् पुष्टीभिरधिरोमहे ।
 मा हिंसीस्त्रं नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवदि ॥३४॥

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
 मा ते मर्मं विमृगवदि मा ते हृदयमर्पणम् ॥ ३५ ॥

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
 श्रुतवस्ते विहिता ह्ययनीः
 अहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥ ३६ ॥

यापं सर्पं विजमाना विमृग्वरी
 यस्यामालंघ्ययो ये अप्स्वऽन्तः ।
 पत्तं दस्युन् ददती देवपीयून्
 इन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।
 शक्राय दधे वृषभाय वृषणे ॥ ३७ ॥

यस्यां सदेहविर्घाने यूपो यस्यां निमीयते ।
 ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यग्निः साक्षा यजुर्विदः ।
 युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातये ॥३८॥

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदान्नुचुः ।
 सत सुषेणं वेधसो यधेन तपसा सह ॥ ३९ ॥

सा नो भूमिरा दिशतु यन्नं कामर्षामहे ।
 भगो अनुप्रयुङ्क्वामिन्द्रं पतु पुरोगवः ॥ ४० ॥

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलयाः ।
 युष्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वर्दति दुन्दुभिः ।
 सा नो भूमिः प्र पुदतां
 स्वद्वानसपत्नं मा पृथिवीं कृणोतु ॥ ४१ ॥

यस्यामर्चं व्रीहियवौ यस्यां इमाः पञ्च कृष्टयः ।
 भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥ ४२ ॥

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्यां विकुर्वते ।
 प्रजापतिः पृथिवीं विश्वर्गमा
 आशांमाशां रण्यां नः कृणोतु ॥ ४३ ॥

निधिं विभ्रती बहुधा गुहा वसु
 मणिं हिरण्यं पृथिवीं ददातु मे ।
 वर्त्सनि नो वसुदा रालमाना
 देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥ ४४ ॥

या ण्वेऽधि सलिलमग्र आसीद्
 यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।
 यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः
 सा नो भूमिस्त्वियं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥ ८ ॥
 यस्यामार्यः परिचराः संमानीः
 अंहोरात्रे अग्रमादं क्षरन्ति ।
 सा नो भूमिर्मरिधारा पयो दुह्वां
 अयो उक्षतु बर्चसा ॥ ९ ॥
 यामभिनवाचमिमातां विष्णुयस्यां विचक्रमे ।
 इन्द्रो यां चक्र आत्मनैऽनमित्रां शचीपतिः ।
 सा नो भूमिंयि सृजतां माता पुत्रार्य मे पर्यः ॥ १० ॥
 गिर्यस्ते पर्यता हिमयन्तो
 अरण्यं ते पृथिवि स्थोनमस्तु ।
 यधु कृष्णां रोहिणीं विभ्वरूपां
 ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
 अज्ञीतोऽर्हते अज्ञतोऽर्षघ्नां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥
 यन् ते मर्ष्यं पृथिवि यश्च नभ्यं
 याम्न् ऊर्जस्तन्यः संपभुषुः ।
 तारुं नो धेनुमि नः पयस्य
 माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।
 पुत्रंयः पिता स उ नः पिपतुं
 यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां
 यस्यां यद्यं तृण्यते विभ्वर्कमाणः ।
 यस्यां मीयन्ते स्वरेयः पृथिव्यां
 ऊर्षाः दृश्या साहुरयाः पुरस्तात् ।
 सा नो भूमिर्वधेषुष्टमैमाना ॥ १२ ॥
 यो नो देवं पृथिवि या दृतम्याम्
 योऽऽग्रात्सामनैः यो वृषेनै ।
 न नो भूमे कथय पूर्वहावति
 स्वर्गनावादि क्षरन्ति मर्ष्यां,
 त्वदिर्नैव दिग्दुस्व्यं वमुंजद ।

तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं
 मर्ष्येभ्य उद्यन्त्सुर्यो रश्मिभिरातनोति ॥ १५ ॥
 ता नः प्रजाः सं दुहतां समग्रा
 वाचो मधुं पृथिवि धेहि मह्यम् ॥ १६ ॥
 विश्वस्वस्वमातरमोपधीनां ध्रुवां
 भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
 शिवां स्योनामनुं चरेम विश्वहा ॥ १७ ॥
 महत् सुधस्थं महती बभूविध
 महान् वेगं एजधुर्वेषुष्टे ।
 महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यग्रमादम् ।
 सा नो भूमे प्र रौचय हिरण्यस्येव संहशि
 मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ १८ ॥
 अग्निर्मस्यामोपधीत्वग्निमापो विभ्रत्यग्निरत्सु ।
 अग्निरन्तः पुरुषेषु गोप्यस्वैष्यमर्यः ॥ १९ ॥
 अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
 अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतमियम् ॥ २० ॥
 अग्निर्वासाः पृथिव्यः सिततः
 त्विपीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥ २१ ॥
 भूम्यां देवेभ्यो ददति यद्यं हव्यमरैकृतम् ।
 भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयाऽर्पेन मर्ष्याः ।
 सा नो भूमिः प्राणमायुर्वधातु ॥ २२ ॥
 जुरर्दष्टि मा पृथिवी कृणोतु
 यस्ते गन्धः पृथिवि संवभूय
 यं विद्यत्योर्षधयो यमार्यः ।
 यं गन्धुयां भूपरतस्थ भेजिरे
 तेन मा सुरभि कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २३ ॥
 यस्ते गन्धः पुष्करमापियेत्
 यं पृथिव्याः सुयोपां विद्यादे ।
 अर्षत्यां पृथिवि गन्धमग्ने
 तेन मा सुरभि कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २४ ॥

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो वचिः ।
 यो अश्वेषु वीरेषु यो भूगोपत हस्तिषु ।
 कन्यायां वचो यद् भूमे
 तेनास्मा अपि सं रज्जु मा नो ऽश्नत कञ्चन ॥२५॥
 शिला भूमिर्दमां पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ।
 तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥ २६ ॥
 यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तित्थन्ति विश्वहा ।
 पृथिवी विश्वधा यसं धृतामच्छावदामसि ॥ २७ ॥
 उदीराणा उतासीनास्तित्थन्तः प्रकामन्तः ।
 पद्भ्यां दक्षिणसुव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् २८
 विमृश्वरीं पृथिवीमा वदामि
 क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
 ऊर्जं पुष्टं विश्रंतीमन्नभागं
 धृतं त्वाऽमि नि पीदेम भूमे ॥ २९ ॥
 शुद्धा न आपस्तन्वेऽक्षरन्तु
 यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
 पवित्रेण पृथिवी मोत्पुनामि ॥ ३० ॥
 यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीः
 यास्ते भूमे अधराद्याश्च पश्चात् ।
 स्यानास्ता मह्यं चरते भवन्तु
 मा नि पतं सुर्वने शिश्रियाणः ॥ ३१ ॥
 मा नः पश्चान्मा पुरस्तात्
 रुदिष्टा मोत्तरादधरादुत ।
 स्वस्ति भूमे नो भव मा विद्वन्
 परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥ ३२ ॥
 यावत् तेऽमि विपदयामि भूमे सुर्षेण मेदिना ।
 तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरानुत्तरां समां ॥ ३३ ॥
 यच्छायाः पर्यावर्ते दक्षिणं सुव्यममि भूमे पार्श्वम् ।
 उत्तानास्त्वां प्रतीचीं यत् पृथीमिरथिशोमहे ।
 मा हिंसीत्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवदि ॥३४॥

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
 मा ते ममं विमृश्वरि मा ते हृदयमपिपम् ॥ ३५ ॥
 प्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धमन्तः शिंशारो वसन्तः ।
 श्रुतवस्ते विहिता ह्यपनीः
 अहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥ ३६ ॥
 याप सर्पे विजमाना विमृश्वरी
 यस्यामासंज्ञप्रयो ये अप्य्युन्तः ।
 परा दस्युन् ददती देवपीयून्
 इन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।
 शक्राय दध्रे वृपमाय वृणे ॥ ३७ ॥
 यस्यां सदाहविर्धाने यूषो यस्यां निमीयते ।
 ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यग्निः साक्षा यजुर्विदः ।
 युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातये ॥३८॥
 यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदान्चुः ।
 सप्त सत्रेण वेधसो यश्ने तपसा सह ॥ ३९ ॥
 सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे ।
 भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्रं पतु पुरोगवः ॥ ४० ॥
 यस्यां गार्थन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलवाः ।
 युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वर्दति दुन्दुभिः ।
 सा नो भूमिः प्र युंदातां
 सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोत ॥ ४१ ॥
 यस्यामर्चं वीदियवो यस्यां इमाः पञ्च कृष्टयः ।
 भूर्ध्वं पर्जन्यपत्ये नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥ ४२ ॥
 यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्यां विकुर्वते ।
 प्रजापतिः पृथिवी विश्वर्गर्भो
 भाशांमाशां रण्यां नः कृणोत ॥ ४३ ॥
 निधि विश्रंती बहुधा गुहा वसुं
 मणि हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
 वसुंनि नो वसुदा रासमाना
 देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥ ४४ ॥

जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं
नानाधर्मोणं पृथिवी यथाकस्म ।

सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां
ध्रुवेवं धेनुरनपस्फुरन्ती

यस्तं सपो वृश्चिकस्तृष्टदंशमा
हेमन्तजंघो भृमलो गुहा शयं ।

क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति
प्रावृषि तन्नः सर्पेणोप सृपद्यच्छ्रं

तेन नो मृद
ये ते पश्यान्तो यद्वर्षो जनार्पना

रथस्य घर्मानसह्य यातये ।
यैः संचरन्त्युभयै भद्रपापास्तं

पश्यान् जयेमानमिप्रमंतस्करं यच्छ्रं
तेन नो मृद

मल्यं विभ्रती गुरुभृद्
मद्रपापस्यं निधनं तितिधुः ।

पराहेणं पृथिवी संविदना
सूकराय वि जिहीते मृगायं

ये न आरण्याः पशयो मृगा पने द्विताः
मिहा व्याघ्राः पुंरुयाद्व्यरंति ।

उलं पूर्वः पृथिवि दुष्पुनमिति
शुश्रीषां रतो नयं वाघयास्त

ये गंगुषां भयुररतो ये चाराषाः किमीदिनः ।
विनाशामरवा रदांति तानसाद् म्मे वाघय ॥५०

यां द्विपादः पृथिवीः संपतंति
दंयाः सुपुलाः दंशना यवांसि ।

यस्यां घातो मातृरिभेयंते
रजांसि हृषंरुप्यावर्षंथ पुस्तान् ।

घातंथ प्रवारुपुवामनुं वासुधिः
यस्यां हृषमंरुं च संदंते
भटोरुंथ विदंते भासासधिं ।

॥ ४५ ॥

॥ ४६ ॥

॥ ४७ ॥

॥ ४८ ॥

॥ ४९ ॥

॥ ५१ ॥

वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता
सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि ॥५२॥

चौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यवः ।
अग्निः सूर्य आपो मेघां विश्वं देवाश्च सं वदुः ५३

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अमीपाडसि विश्वापाडाशाभाशां विपासुहिः ५४

अदो यद् वैवि प्रथमाना पुरस्ताद्
देवैरुक्ता व्यसपो महित्वम् ।

आ त्वा सुभूतमविशत् तवान्नी
अकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५५ ॥

ये प्रामा यदरुण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये संप्रामाः समितयस्तेषु चार्कं वदेम ते ॥ ५६ ॥

अथं इष रजो दुधुवे वि तान् जनान्
य आऽक्षियन् पृथिवीं यादजायत ।

मन्द्राग्नेत्वंरी भुवंस्य गोपा
यन्स्पतीनां श्मिरोपधीनाम् ॥ ५७ ॥

यद् यदांमि मधुमत् तद् यदामि
यदीधे तद्वनन्ति मा ।

विपर्यमानसि जतिमान्
अघान्यान् हंमि दोषतः ॥ ५८ ॥

शान्तिवा सुदंभिः स्तोत्रं क्रिमिलोप्री पर्यसती ।
भूमिर्धि प्रवीतु मे पृथिवी पर्यसा हृद ॥ ५९ ॥

याम्मथच्छ्रुयिषां विश्वकर्मो
अत्तरंणे रजति प्रविष्टाम् ।

मुञ्जिष्यं पात्रं निर्दंते गुहा यत्
आयिर्गोर्गं अमपमाम्ममद्रयः ॥ ६० ॥

स्वमस्यापपनी जनानां
अदितिः कामदुषां पमयाना ।

यत् मे ऊनं तत् मा पूर्याति
प्रजापतिः प्रथमजा कुतस्यं ॥ ६१ ॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयस्मा
 असम्यं सन्तु पृथिवि प्रसृताः ।
 दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना
 वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥ ६२ ॥
 भूमं मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
 संविदाना दिवा कथे धियां मां धेहि भूत्याम् ॥ ६३ ॥

पृथिवी-सहचारी देवगणः

(१) पृथिव्यन्तरिक्षे ।

॥ १४ ॥ (ऋ० ७।१०४।१३ { उत्तरार्धस्य })
 मेप्रावहन्निर्दिष्टः । जगती ।

पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वर्हसो
 अन्तरिक्षं दिग्यात् पात्वस्मान् ॥ २३ ॥

(२) पृथिवी-द्वयन्तरिक्ष-सोम-पूप-पथ्या-स्वस्तयः ।

॥ १५ ॥ (ऋ० १०।५९।७)
 बन्धुःश्रुतवन्धुर्दिप्रबन्धुर्वापयनाः । त्रिष्टुप् ।

पुनर्नो अस्तु पृथिवी ददातु
 पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम् ।
 पुनर्नः सोमस्तन्वर् ददातु
 पुनः पूषा पथ्यांश्च या स्वस्तिः ॥ ७ ॥

(३) पृथिवीसाधितारौ ।

॥ १६ ॥ (घा० य० ९।५)

घार्जस्य नु प्रसवे मातरं महीं
 अर्द्धितं नाम वर्चसा करामहे ।
 यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश
 तस्यां नो देवः संविता धर्मं साधिपत् ॥ ५ ॥

द्यावापृथिवी

॥ १ ॥ (ऋ० १।१०९।१३-१४)
 मेवातिथिः काण्वः । गायत्री ।

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यन्नं मिमिक्षताभ्यु ।
 पिपृता नो भरीममिः ॥ १३ ॥

तयोरिद् द्युतवद् पयो विप्रा रिहन्ति धीतिर्मिः ।
 गन्धर्वस्यं ध्रुवे पदे ॥ १४ ॥

॥ २ ॥ (ऋ० १।१११।१) आघपादस्य)

द्वय आहिरणः । जगती ।

इल्लि द्यावापृथिवी पूर्वचिन्तये ॥ १ ॥

॥ ३ ॥ (ऋ० १।१५९।१-५)

दीर्घतमा ओषध्यः । जगती ।

प्र द्यावां यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधां
 मही स्तुपे विदधेयु प्रचैतसा ।
 देवेभ्यो देवपुत्रे सुदंससा
 इत्या धिया वार्याणि प्रमुर्यतः ॥ १ ॥

उत मन्ये पितरद्ब्रह्मो मनो
 मातुर्महि स्वतवस्तद्धर्वामिमिः ।

सुरेतसा पितरा भूमं चक्रतुः
 उरु प्रजायां अमृतं वरमिमिः ॥ २ ॥

ते सुनवः स्वर्षसः सुदंससो
 मही जङ्घर्मातरां पूर्वचिन्तये ।

स्यातुश्च सत्यं जगत्श्च धर्मेणि
 पुत्रस्य पाथः पदमद्वयापिनः ॥ ३ ॥

ते मायिनो ममिरे सुप्रचैतसो
 जामो सयोनो मियुना समोकसा ।

नवर्षनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि
 संमुद्रे अन्तः कथयः सुदीतयः ॥ ४ ॥

तद् राधो अथ संधितुर्धरण्यं
 वयं देवस्यं प्रसवे मनामहे ।

अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुनां
 रयि घर्ले वसुमन्तं शतनिवनम् ॥ ५ ॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १।१६०।१-५)

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंसुव
 ऋतावर्षे रजसो धारयत्कवी ।
 सुजग्मनी धियुर्णे अन्तरायते
 देवो देवी धर्मेणा स्युः श्रुधिः ॥ १ ॥

उरुच्यवसा महिनी असञ्चता
 पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।
 सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी
 पिता यत् सीमामि रूपैरवांसयत्
 स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रधान्
 पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।
 धेनुं च पृथ्वी वृषमं सुरेतंसं
 विश्वाहा शक्रं पर्यो अस्य दुक्षत
 अयं देवानामपसामपस्तमो
 यो ज्ञान रोदसी विश्वशमुवा ।
 यि यो ममे रजसी सुक्रतुयया
 भर्तव्यमिः स्कर्मनेमिः समानुचे
 ते नो गृणाने महिनी महि ध्रुवः
 क्षत्रं चापापृथिवी धासथो वृष्टत् ।
 येनामि हृष्टीस्ततनाम विश्वाहा
 पुनाप्यमोजो अस्मे समिग्यतम्

॥ ५ ॥ (श्र० ११८११-१२)

अगरखी मैत्रावरुणः । त्रिष्टुप् ।

कतरा पूर्वा कतराऽर्षराऽयोः
 कथा ज्ञाते कथयः को यि वैद ।
 विश्वं समना विभृतो यद्द नाम
 यि वनेते भदनी चक्रियेव
 भूर्ति हे अर्षरानी चरगं
 पृथ्वीं गर्भमपदी दधाते ।
 त्रिस्यं न सुनुं पित्रोऽपस्थे
 चापा रक्षते पृथिवी नो अग्वात्
 अग्नेहो वात्रमदिनेरुव
 हृवे रवेद्वृषं नमत्वरु ।
 मरु र्दसी जनयते जतिरे
 चापा रक्षते पृथिवी नो अग्वात्

अतप्यमाने अवसाऽवन्ती
 अनु प्याम रोदसी देवपुत्रे ।
 उमे देवानामुभयैभिरदां
 चापा रक्षते पृथिवी नो अग्वात् ॥ ४ ॥
 संगच्छमाने युवती समन्ते
 स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे ।
 अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नामि
 चापा रक्षते पृथिवी नो अग्वात् ॥ ५ ॥
 उर्वी सद्यनी वृहती ऋतेन
 हुये देवानामवसा जनित्री ।
 दधाते ये अमृतं सुप्रतीके
 चापा रक्षते पृथिवी नो अग्वात् ॥ ६ ॥
 उर्धी पृथ्वी वहुले वृरेभन्ते
 उर्प द्वये नमसा यणे अस्मिन् ।
 दधाते ये सुमगे सुप्रतीकी
 चापा रक्षते पृथिवी नो अग्वात् ॥ ७ ॥
 देवान् वा यथाऽरुमा कश्चिदागः
 सपायं वा सवमिज्जास्पाति वा ।
 इयं धीमूया अययानमेयां
 चापा रक्षते पृथिवी नो अग्वात् ॥ ८ ॥
 उमा दांसा नयो मारमविदां
 उमे मामृती अर्षसा सचेताम् ।
 भूर्ति चिद्वयः सुदास्तराय
 इया मर्दन्त इत्येव देयाः ॥ ९ ॥
 अतं दिवे तर्दयोचं पृथिव्या
 अग्निधावार्यं प्रथमं सुमेधाः ।
 पातामवघाद् दुदितानुभीषे
 पिता माता च रक्षतामयोमिः ॥ १० ॥
 इदं चापापृथिवी सत्यमस्तु
 पितृमांतर्पितोर्पद्भवे वाम् ।
 भूतं देवानामपयो अर्षोमिः
 विद्यामेवं वृजनं जीर्वाणुम् ॥ ११ ॥

॥ ६ ॥ (अ० १।३११)

यत्समद (आमिः शौनकेः पश्चाद्)
सार्गः शौनकः । अगती ।

अस्य मे चावापृथिवी ऋतायतो
भूतमवित्री वर्चसः सिपासतः
ययोरार्युः प्रतरं ते इदं पुर
उपस्तुते वसुयुवा महो देधे

॥ १ ॥

॥ ७ ॥ (अ० १।४१।१९-२१)
(हविर्वाग्नि वा) गायत्री ।

प्रेतां यज्ञस्य शंभुवा युवामिदा वृणीमहे ।
अग्निं च हव्यवाहनम् ॥ १९ ॥
द्यावा नः पृथिवी इमं सिधमघ विविस्पृशाम् ।
यज्ञं देधेयुं यच्छताम् ॥ २० ॥
आ वामुपस्यमद्रुहा देवाः सीदन्तु यद्वियाः ।
इहाथ सोमपीतये ॥ २१ ॥

॥ ८ ॥ (अ० ४।३८।१)
वामदेवो गीतमः । त्रिष्टुप् ।

उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा
या पृथ्व्यं सदास्वुनिताशे ।
क्षेत्रासां ददद्युत्तवरासां
घनं दस्युभ्यो अभिमृतिमुग्रम् ॥ १ ॥

॥ ९ ॥ (अ० ४।५६।१-७)
त्रिष्टुप्, ५-७ गायत्री ।

मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे
रुचा मघतां शुचर्यद्विर्कैः ।
यत् सीं यरिष्ठे बृहती विमिन्यन्
ख्यज्ञोक्ष पप्रथानेमिरेवैः ॥ १ ॥
देवी देवेभिर्यजते यज्ञैः
अग्निं तस्यतुरुक्षमाणे ।
श्रुतापरी अद्रुहा देधेयुत्रे
पृथ्व्यं नेत्री शुचर्यद्विर्कैः ॥ २ ॥

स इत् स्वपा भुवनेष्वात्
य इमे द्यावापृथिवी ज्ञानं ।
उवां गर्भारे रजसी सुमेकै
अवंशे धीरः शच्या समैरत् ॥ ३ ॥

नू रौदसी बृहद्विन्नो वरुथैः
पत्नीवद्विरिपयन्ती सजोपाः ।
उरुची विश्वे यजते नि पातं
धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ४ ॥

प्र द्वां महि द्यावी अभ्युपस्तुतिं भरामहे ।
शुची उप प्रशस्तये ॥ ५ ॥
पुनाने तृवां मिथः स्वने दक्षेण राजभः ।
ऊहार्ये सुनाहतम् ॥ ६ ॥

मही मित्रस्य साधयस्तन्ती पिप्रती ऋतम् ।
परिं यन्नं नि पेंदधुः ॥ ७ ॥

॥ १० ॥ (अ० ६।४८।१०)
चंद्रुर्वाहस्यत्यः (तुणवाणिः) ।
वावाम्नी वा वृथिवा । अनुष्टुप्

सुरुद्ध द्यौरजायत सुरुद्धमिरजायत ।
पृथ्व्यां दुग्धं सुरुद्ध पयः
तद्वन्यो नातुं जायते ॥ २२ ॥

॥ ११ ॥ (अ० ६।७०।१-६)
भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अगती ।

घृतवतीं मुर्वनानामिधिया
उवां पृथ्वी मघदुर्धे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य घर्मणा
विष्कमिते अजरे मूरिरेतसा ॥ १ ॥

असंखन्ती भूरिधारे पर्यस्वती
घृतं दुहाते सुरुद्धे शुचिमते ।
राजन्ती अस्य भुवनेस्य रोदसी
अस्मे रेतः सिञ्चन् यग्मनुर्दितम् ॥ २ ॥

यो वामजवे क्रमणाय रोदसी
मतीं वृदारो धिपणे स साधति ।

प्र प्रजामिजायते धर्मणस्परि
युवोः सिक्ता विपुरुपाणि समता

घृतेन चावापृथिवी अभीष्टने
घृतधियां घृतपृचा घृतावृधा ।

उर्ध्वी पृथ्वी हौतवृयै पुरोहिते
ते इद विप्रा ईळते सुभमिष्ट्यै

मधु नो चावापृथिवी मिमिक्षतां
मधुक्षतां मधुदुधे मधुवते ।

दधाने युद्धं द्रविणं च देवता
महि श्रयो वाजमस्मे सुवीर्यम्

ऊर्जे नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां
पिता माता विश्वविदां सुदंसेसा ।

संर्राणे रोदसी विश्वशम्भुवा
सनि वाजै रयिमस्मे समिन्वताम्

॥ १२ ॥ (अ० ७/५३।१-३)

मैत्रावरुणवैशिष्टः । शिष्टम् ।

प्र चावां यज्ञैः पृथिवी नमोभिः
सुधार्थ ईळे बृहती यजत्रे ।

ते चिद्धि पूर्वे क्वयो गुणन्तः
पुरो मही दधिरे देवंपुत्रे

प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिः
गीभिः कृणुष्यं सदर्ने ऋतस्यै ।

आ नो चावापृथिवी देव्येन
जनैः यातं माहं धां वरुधम्

उतो हि यां रत्नधेयानि सन्ति
पुरुणि चावापृथिवी सुदारसं ।

धस्मे धंशं पदसदस्सुधोयु
युयं पात स्यक्तिभिः सर्दा नः

॥ १३ ॥ (अ० १०/५९।८-१०)

बन्धुःश्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गोपायनाः । [१० पूर्वार्धस्य
इद-चावापृथिवी] । ८ पंक्तिः ९ महापंक्तिः,
१० पंक्त्युक्ता ।

॥ ३ ॥ शं रोदसी सुवन्धवे यज्ञी ऋतस्यै मातरां ।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो

मो पु ते किं चनाममत् ॥ ८ ॥
अथ द्वके अथ त्रिकां द्विचक्षरन्ति भेयजा ।

॥ ४ ॥ क्षमा चरिष्णवैककं भरतामप यद्रपो
द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो पु ते किं चनाममत् ९

समिन्द्रेत्य गार्मन्द्वाहं य आसधेहदुशीनराण्या अनाः ।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो

॥ ५ ॥ मो पु ते किं चनाममत् ॥ १० ॥
॥ १४ ॥ (वा० य० २।१०)

उपंहता पृथिवी मातोप मां
पृथिवी माता ह्ययताम् ॥ १० ॥

॥ ६ ॥ ॥ १५ ॥ (वा० य० ५।२८)
घृतेन चावापृथिवी पूर्वधाम् ॥ २८ ॥

॥ १६ ॥ (वा० य० ६।१६, २१, ३५)
घृतेन चावापृथिवी मोर्णुवाधाम् ॥ १६ ॥

॥ १७ ॥ (वा० य० ६।२६, २१, ३५)
चावापृथिवी गच्छ स्वाहां ॥ २१ ॥

॥ १ ॥ मा भेमां संविकथा ऊर्जे धस्व
धिपणे वीङ्गी सती वीडयेथाम्ऊर्जे वधाधाम् ।

॥ २ ॥ पाप्मा हतो न सोमः ॥ ३५ ॥
॥ १७ ॥ (वा० य० ७।२१)

॥ २१ ॥ (वा० य० ११।२८)
चावापृथिवीभ्यां पथते ॥ २१ ॥

॥ २२ ॥ ॥ १८ ॥ (वा० य० ११।२८)
चावापृथिवीभ्यां स्वाहां ॥ २८ ॥

॥ २३ ॥ ॥ १९ ॥ (वा० य० १७।१)
देवी चावापृथिवी मृतस्यै वामघ
शितो राध्यासं देव्यजने पृथिव्याः ।
मथार्यं त्वा मखस्यं त्वा शीर्ष्यं ॥ ११ ॥
(७१४)

॥ १० ॥ (वा० य० ३८६, १४)

घावापृथिवीभ्यां त्वा परिं गृह्णामि ॥ ६ ॥

घावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व ॥ १४ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० १३११-४)

महा । अनुष्टुप् ; २ ककुम्भती अनुष्टुप् ।

इदं जनासो विदथं महद्भ्रतं वदिष्यति ।

न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः १

अन्तरिक्ष आसां स्थाम् भ्रान्तसदामिव ।

आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टद्वेषतो न वा ॥ २ ॥

यद्रोर्वसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम् ।

आर्द्रं तदद्य सर्वदा समुद्रस्यैव स्रोत्याः ॥ ३ ॥

विभ्रमन्याममीवारं तदन्यस्यामधिष्ठितम् ।

त्रिषु च विभवैदसे पृथिव्यै चाकरं नमः ॥ ४ ॥

॥ ११ ॥ (अथर्व० ५११४३)

अथर्व । चतुष्पदाऽतिशक्वरी ।

घावापृथिवी दातुणामधिपत्नी ते मायताम् ।

अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां

पुंषोघायामस्यां प्रतिघायामस्यां

चित्यामस्यामाकृत्यामस्यां

आशिष्यस्यां देवहृत्यां स्वाहा ॥ ३ ॥

॥ १३ ॥ (अथर्व० १२१४१) त्रिष्टुप् ।

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमार्गां

शिवे मे घावापृथिवी अमृताम् ।

असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु

न वै त्वा द्विभ्यो अमयं नो अस्तु ॥ १ ॥

॥ १४ ॥ (सा० ६११)

वामदेवो गीतमः । त्रिष्टुप् ।

मन्ये वां घावापृथिवी सुमोजसौ

ये अप्रयेधाममितमभि योजनम् ।

घावापृथिवी भदतं स्योने ते नो मुखतमहसः ॥ ८ ॥

घावापृथिवी--सहचारी--देवगणः

(१) सुभृग्यश्विनः ।

॥ १५ ॥ (ऋ० १०१२११)

शकृपुनो नामैधः । न्यहकुसारिणी ।

ईजानमिदं द्यौर्गुतार्वसु-रीजानं भूमिंरामि प्रभूपणिं ।

ईजानं देवावश्विनां-वमि सुसैरवर्धताम् ॥ १ ॥

संज्ञानम् ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०१२११-४)

धंवनन आत्रिरधः । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं द्यो मनांसि जानताम् ।

देवा भागं यथा पूर्वं संजानाना उपासते ॥ २ ॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी

समानं मनः सह चित्तमैयाम् ।

समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः

समानेन वो हविषां जुहोमि ॥ ३ ॥

समानी व आकृतिः समाना हृदयानि वः ।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसुहासति ॥ ४ ॥

॥ २ ॥ (वा० य० ११४३)

संज्ञानमसि कामधरणं

मयि ते कामधरणं भूयात् ॥ ४६ ॥

॥ ३ ॥ (वा० य० २६१)

सुत सु ५ सदा अष्टमी मृतसाधनी

सकामाँऽऽ अर्ध्वनस्कुरु

संज्ञानमस्तु मेऽमुना ॥ १ ॥

॥ ४ ॥ (वा० य० ३०१२)

संज्ञानाय सरकारीम् ॥ २ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० ३३०१-७)

अथर्व । चन्द्रमाः धामनस्यम् । अनुष्टुप्, ५ विराट् अगर्ता,

६ प्रस्तारपीकः । ७ त्रिष्टुप् ।

सहृद्वयं सामनस्यमविद्वेयं कृणोमि वः ।

अन्यो अन्यमभि हर्षतं वृत्सं जातमिवाच्या ॥ १ ॥

अनुवतः पितुः पुत्रो भ्रात्रा भवतु संमनाः ।
 जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥ २ ॥
 मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
 सम्यञ्चः सर्वता भूत्वा वाचं वदत मुद्रया ॥ ३ ॥
 येन देवा न विद्यन्ति नो चं विद्विषते मिथः ।
 तत् कृणो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥ ४ ॥
 ज्यायस्वन्तश्चितिनो मा वि यौष्ट
 संराधयन्तः सर्धुराश्चरन्तः ।
 अन्यो अन्यस्मै धल्यु चर्दन्त पतं
 सध्रीचीनान् वः संमनसस्क्रणोमि ॥ ५ ॥
 समानी प्रपा सह वौऽन्नभागः
 समाने योषत्रे सह वौ युनजिम ।
 सम्यञ्चोऽग्निं संपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ ६ ॥
 सध्रीचीनान् वः संमनसस्क्रणोमि
 पकृणुधीन्संघर्षनेन सर्वात् ।
 देवा इवामृतं रक्षमाणाः
 सायं प्रातः सौमनसो वौ अस्तु ॥ ७ ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० ७।५१।१-१)
 (सामनस्यं, अश्विनौ) । १ ककुम्भल्लनुद्रुप. १ जगती ।
 संज्ञानं नः स्वेषिः संज्ञानमरणेषिः ।
 संज्ञानमश्विना युयमिहास्मासु नि यच्छतम् ॥ १ ॥
 सं जानामहे मनसा सं चिकित्वा
 मा युष्महि मनसा वैद्येन ।
 मा घोषा उत्स्यर्वहुले विनिर्द्वैते
 मेधुः पन्तदिन्द्रस्याहृन्यागते ॥ २ ॥

॥ ७ ॥ (अथर्व० ६।९४।१-१)
 अथर्वाग्निराः । सरस्वती (सामनस्यं) । अनुद्रुप
 २ विराट् जगती ।
 सं वो मनांसि सं वृता समाकृतीर्नमामसि ।
 अमी ये धिर्वता स्थन तान्वः सं नमयामसि ॥ १ ॥
 अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि
 मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
 मम वरौषु हृदयानि वः कृणोमि
 मम यातमनुवर्तमानं पतं ॥ २ ॥
 ओतं मे धावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।
 ओतां म इन्द्रश्चाग्निश्चर्यास्मेदं सरस्वति ॥ ३ ॥
 (७।७।)



निर्ऋतिः

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१९।१-३)

बन्धुः धृतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गोपायनाः । त्रिष्टुप् ।

प्र ता॒र्या॒र्युः प्र॒तरं न॒धी॒यः

स्था॒ता॒रि॒य॒ क्र॒तु॒भ॒ता र॒थ॒स्य ।

अ॒द्य॒ च्य॒वा॒न् उ॒त् त॒वी॒त्य॒थै

प॒रा॒तरं॑ सु॒ नि॒र्ऋ॒ति॒र्जि॒ही॒ताम्

सा॒म॒न् त्रु रा॒ये नि॒धि॒म॒न्व॒न्नं

क॒र्ता॒म॒द्ये सु॒ पुं॒द॒घ अ॒वा॒सि ।

ता नो॒ वि॒श्वानि॑ ज॒रिता॑ म॒म॒सु

प॒रा॒तरं॑ सु॒ नि॒र्ऋ॒ति॒र्जि॒ही॒ताम्

अ॒मी॒ प्य॒र्य॒ पौ॒र्त्यै॒र्म॒ये॒म

घो॒र्न॑ म॒र्मि॒ गि॒र॒यो ना॒ज्जा॒न् ।

ता नो॒ वि॒श्वानि॑ ज॒रिता॑ वि॒के॒त

प॒रा॒तरं॑ सु॒ नि॒र्ऋ॒ति॒र्जि॒ही॒ताम्

॥ २ ॥ (षा० य० ११।१९-२५)

अ॒सु॒न्व॒न्त॒म॒र्य॒ज॒मानि॑मि॒च्छ

स्ते॒न॒स्पे॒त्याम॒न्धि॒दि॒ त॒स्कर॑स्य ।

अ॒न्य॒म॒स्म॒र्दि॒च्छ॒ सा तं॑ इ॒त्या

न॒मो॑ दे॒पि॒ नि॒र्ऋ॒ते॒ तु॒म्य॑म॒स्तु

न॒मः॑ सु॒ तं॑ नि॒र्ऋ॒ते॒ ति॒ग्म॑ते॒जा

अ॒प॒स्म॒पुं॒ यि॒ च॒ता॒ ब॒न्ध॑मे॒ताम् ।

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ६२ ॥

य॒मे॒न॒ त्वं॑ य॒म्या॒ सं॒वि॒द्वाना॑

उ॒चु॒मे॒ ना॒के॒ अ॒धि॒रो॒ह॒यै॒नम्

य॒स्या॒स्ते॒ घोर॑ आ॒स॒ञ्जु॒हो॒मि

प॒यां॑ ध॒न्धाना॑म॒व॒स॒र्ज॒नाय॑ ।

यं॒ त्वा॒ ज॒नो॑ म॒मि॒रि॒तिं॑ प्र॒म॒न्द॒ते

नि॒र्ऋ॒तिं॑ त्वा॒ऽहं॑ प॒रि॒वे॒द् वि॒श्व॒तः॑

यं॒ तं॑ दे॒वी॒ नि॒र्ऋ॒ति॒रा॒य॒ग॒घ

पा॒दां॑ प्री॒या॒स्या॒वि॒च॒त्यम् ।

तं॒ ते॒ वि॒प्या॒न्या॒र्यु॒गो॑ न॒ म॒ध्या॒त्

अ॒यै॒तं॑ पि॒तु॒र्म॒सि॑ प्र॒द्यु॒तः॑

॥ ३ ॥ (षा० य० १५।१९)

नि॒र्ऋ॒तिं॑ नि॒र्जै॒त्र्ये॒न॑ शी॒र्षा

(षा. य. ३०।९, १४)

नि॒र्ऋ॒त्यै॑ प॒रि॒धि॒वि॒द्वान॑म्

नि॒र्ऋ॒त्यै॑ को॒दा॒का॒र्यम्

अ॒क्षाः ।

॥ १ ॥ (ऋ. १०।३४.१, ७, ९, ११)

इ॒ष॒ ष॒दे॒वः, अ॒शो॑ मं॒त्रा॒न् वा । त्रि॒ष्टुप्, अ॒ ष॒म॒दी ।

प्रा॒ये॒पा॒ मां॑ वृ॒ह॒तो॒ मा॑द॒प॒गि॒त

प्र॒या॒ते॒जा॒ इ॒रि॒णे॒ य॒धृ॒ता॒नाः ।

सो॒म॑स्ये॒व मी॒ज॒य॒त॒स्यं॑ म॒सो

वि॒नी॒र्द॒को॒ जा॒र्ग॒वि॒र्म॒ष्टा॑म॒च्छ॒त् ।

॥ ६३ ॥

॥ ६४ ॥

॥ ६५ ॥

॥ २ ॥

॥ ९ ॥

॥ १४ ॥

॥ १ ॥

(०१८३)

अक्षास इदं कुशिनो नितोदिनो
 निरुत्वांनस्तर्पनास्तापयिष्णवः ।
 कुमारदैष्णा जयंतः पुनर्हणो
 मन्वा संपृक्ताः कितवस्य वर्हणा
 नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्ति
 अहस्तासो हस्तवन्त सहन्ते ।
 दिव्या अङ्गारा शरिणे न्युत्ताः
 शीता सन्तो हृदयं निर्दहन्ति
 यो वः सेनानीर्मेहतो गणस्य
 राजा व्रातस्य प्रथमो वभूव ।
 तस्मै कृणोमि न धनां रुणध्मि
 दशाह प्राचीस्तद्वत् वदामि

॥ १ ॥ (धा० य० ५।१७)

देवध्रुतौ देवेष्वाम घोषतं
 प्राचीं प्रेतमध्वरं कल्पयन्ती
 ऊर्ध्वं यशं नयतं मा जिह्वरतम् ।
 स्वं गोष्ठमा वदतं देवी दुयै
 आयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टं
 अत्र रमेयां वध्मै न पृथिव्याः

॥ ३ ॥ (धा० य० १०।२८-२९)

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च विशाः कल्पन्तां
 प्रह्लास्यं ब्रह्माऽसि सविताऽसि सत्यप्रसधो
 वरुणोऽसि सत्यौजा इन्द्रोऽसि विशांजा
 रुद्रोऽसि सुशेवः ।
 बहुकारं श्रेयस्करं भूयस्करं
 इन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रष्य
 अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुपाणो अग्निः
 पृथुर्धर्मणस्पतिराज्यस्य सेतु स्वाहा
 स्वाहाऽहता सूर्यस्य रुदिमभैः
 यतश्चरन् सजातानां मय्यमेष्टयाय

॥ ७ ॥

॥ ९ ॥

॥ १२ ॥

॥ १७ ॥

॥ २८ ॥

॥ २९ ॥

अक्ष-कितव-निन्दा ।

॥ १ ॥ (अ० १०।३४।२-६, ८, १०-११, १४)

कवच ऐलय, अक्षो मौजवाच ना । शिष्टम् ।

न मां मिमेय न जिहीळ एषा
 शिवा सखिभ्य उत महामासीत् ।

अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोः

अनुव्रतामपं जायामरोधम्

॥ २ ॥

द्वेष्टिं श्वधरपं जाया कणद्धि

न नाथितो विन्दते महितारम् ।

अश्वस्येव जर्ततो वस्यस्य

नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्

॥ ३ ॥

अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य

यस्यागृध्रद्वेदने वाज्यक्षः ।

पिता माता भ्रातर एनमाहुः

न जानीमो नयता वद्धमेतम्

॥ ४ ॥

यदादीष्टे न दक्षिपाण्येभिः

परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्यः ।

न्युत्ताश्च वध्वो वाचमकतं

पमीदेषां निष्कृतं जारिणां

॥ ५ ॥

सुभामेति कितवः पूच्छमानो

जेष्पामीति तन्वाङ्कु शशुजानः ।

अक्षासो अस्य चि तिरन्ति कामं

प्रतिदीन्वे दधत आ कृतानि

त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रातं एषां

देव इव सविता सत्यधर्मा ।

उग्रस्य चिन्मन्येव ना नमन्ते

राजां चिदेभ्यो नम इत् कृणोति

॥ ८ ॥

जाया संप्यते कितवस्य हीना

माता पुत्रस्य चरतः पय सित् ।

श्रुणाया विभ्यन्नमिच्छमानो

अन्येपामस्तमुप नक्तमेति

॥ १० ॥

(७१९)

स्त्रियं दृष्ट्वायं कित्तुवं तंताप
अन्येषां जायां सुकृतं च योनिम् ।
पूर्वाण्डे अश्वान् युयुजे हि वध्न
सो अग्नेरन्ते वृषलः पंपाद
मित्रं कृणुध्वं खलु मूढतां नो
मा नो धोरणं चरतामि धृणु ।
नि वो तु मन्युर्विशतामरातिः
अन्यो वधुणां प्रसितौ न्वस्तु

॥ ११ ॥

॥ १४ ॥

इति नमः ।

॥ १० (ऋ० १।१६३।१७)

दोषतमा औचध्यः । (आत्मज्ञानम्) । त्रिष्टुप् ।

न वि जानामि यद्विद्येदमसिं
निण्यः सध्वंजो मनसा चरामि ।
यदा माऽगन् प्रथमजा ऋतस्य
आदिद् वाचो अश्रुवे भागमस्याः

॥ ३७ ॥

॥ १॥ (ऋ० १०।७१।१-११)

बृहस्पतिराग्निरथः । त्रिष्टुप्, ९ अगती ।

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं
यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदप्रिप्रमासीत्
प्रेणा तदेषां निहितं गुहाऽऽविः
सक्तुमिव तितउना पुनन्तो
यत्र धीरा मनसा वाचमक्रेत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते
भद्रिपां लक्ष्मीनिहिताऽऽधि वाचि
यज्ञेन वाचः पदधीर्यमायन्
तामन्यविन्दुर्धृषिषु प्रविष्टाम् ।
तामाभृत्या व्यदधुः पुदुया
तां सुत देमा अमि सं नयन्ते
उत त्वः पदयन् न ददर्शो वाचं
उत त्वः दृण्वन् न दृणोत्येनाम् ।

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

उतो त्वस्मै तन्वं वि संक्षे
जायेषु पत्यं उशती सुवासाः ॥ ४ ॥
उत त्वं सख्ये स्थिरपीतामाहुः
नेनं द्विन्वन्त्यपि वाजिनेपु ।
अधेन्वा चरति माययैष
वाचं शुश्रुवां अफुलामपुष्पाम् ॥ ५ ॥
यस्तित्याजं सचिविदं सखायं
न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।
यदां दृणोत्स्यलकं शृणोति
नहि प्रवेदं सुकृतस्य पन्थाम् ॥ ६ ॥
अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो
मनोजवेध्वसमा यमूवुः ।
आदमासं उपकृशासं उ त्वे
हृदा इषु क्वात्वा उ त्वे दृदश्रे ॥ ७ ॥
हृदा तृष्टेषु मनसो जवेपु
यद्ग्राहणाः संयजन्ते सखायः ।
अत्राहं त्वं वि जहुर्वैद्याभिः
ओहं ब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे ॥ ८ ॥
हृमे ये नार्वाङ्ग परश्चरन्ति
न ब्राह्मणास्तो न सुतेकरासः ।
त एते वाचमभिपद्यं प्रापयां
सिरीस्तत्रं तन्वते अग्रजड्वयः ॥ ९ ॥
सर्वे नन्दन्ति यशसाऽऽगंतेन
समासाहेन सख्या सखायः ।
क्वित्पिपस्पृष्टं पितुपण्णेषां
अरं हितो भवति यार्जिनाय ॥ १० ॥
श्रुचां त्वः पीपमास्ते पुपुष्यान्
गायत्रं त्वो गायति शर्करीपु ।
ग्रह्णा त्वो यदति जातत्रिचां
यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः ॥ ११ ॥

(७।११)

अनुमतिः ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ७।२०।१-६)

अपवा । १-२ अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ४ भुक्ति, ५ अगती
६ अतिशक्वरी गर्मा जगती ।

अन्यद्य नोऽनुमतिर्यक्षं देवेषु मन्यताम् ।

अग्निश्च हव्यवाहर्नो भवतां दाशुपे मम ॥ १ ॥

अन्विदनुमते त्वं मंससे शं चं नस्कृधि ।

जुपस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥ २ ॥

अनुमन्यतामनुमन्यमानः

प्रजावन्तं रयिमर्क्षीयमाणम् ।

तस्य घृयं हेडसि माऽपि भूम

सुमृद्धीके अस्य सुमृतौ स्याम ॥ ३ ॥

यत्ते नाम सुहृवं सुप्रणीते

अनुमते अनुमते सुदानु ।

तेना नो यद्यं पिपृहि विश्ववारे

रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥ ४ ॥

एवं यश्चमनुमतिर्जगाम

सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम् ।

भद्रा ह्यऽस्याः प्रमतिर्यम्य

येमं यश्चमनुमते देवगोपा ॥ ५ ॥

अनुमतिः सयमिदं यम्व

यत्तिष्ठति चरति यदु च विश्वमेजति ।

तस्यास्ते देवि सुमती स्याम

अनुमते अनु दि मंससे नः ॥ ६ ॥

उपपत्त्यः ।

॥ १ ॥ (अ० १।२६।९)

विश्वामित्रो गायित्रोः । त्रिष्टुप् ।

ज्ञानधामसुखमर्क्षीयमाणं

विपश्चितं पितरं वक्तव्यानाम् ।

मेति मर्दनं पित्रोरुपस्थे

नं वीदती विपुतं नारयवाचम् ॥ १ ॥

श्रद्धा ।

॥ १ ॥ (अ० १।१।६)

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । (सूर्यस्य इहिता भद्रादेरी-
सावणः) गायत्री ।

पुनरिति ते परिकृतं सोमं सूर्यस्य इहिता ।

वारैर्ण शश्वता तना ॥ ६ ॥

॥ २ ॥ (अ० १।०।१५।१-५)

भद्रा कामायनी । अनुष्टुप् ।

श्रद्धयाऽग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।

श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वक्षसा वैदयामसि ॥ १ ॥

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे विदासतः ।

प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥ २ ॥

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुप्रेयुं चक्रिरे ।

एवं भोजेषु यज्वस्वस्साकमुदितं कृधि ॥ ३ ॥

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते ।

श्रद्धां हृदय्युयाकृत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥ ४ ॥

श्रद्धां प्रातर्हयामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।

श्रद्धां सूर्यस्य निम्नचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥ ५ ॥

अफशः { अफशः }

॥ १ ॥ (अ० १।०।८।१०-१८)

सूरी वावित्री । (तृतीया विवाहमन्त्रः) अनुष्टुप् । १०,
२१, २३, २४, २६ त्रिष्टुप् ; २० अगती ।

सुकिञ्चकं शंभुलि विश्वरूपं

द्विदण्ययणं सुवृत्तं सुचक्राम् ।

आ रौद सूर्यं अमृतस्य लोकं

स्योनं पर्ये घटुतं कृणुष्य ॥ २० ॥

उदीर्घ्यातः पतिपती त्रिष्टुपा

विश्वामिषुं नमता गीर्गिरीलि ।

अग्यामिषुं पितृपदं ध्येयतां

एतं भागो जनुयां तस्य विधि ॥ २१ ॥

(०।१५)

उदीर्घ्वातो विश्वाचसो नमसेष्वामहे त्वा ।
 अन्यामिच्छ प्रफुर्यं सं जायां पत्यां सृज ॥२२॥
 अनुक्षुराः ऋजवः सन्तु पन्या
 येभिः सर्वायो यन्ति नो वरेयम् ।
 समयमा सं भर्गो नो निनीयात्
 सं जास्यत्यं सुयममस्तु देवाः ॥ २३ ॥
 प्र त्वां मुञ्चामि चरणस्य पाशात्
 येन त्वाऽव्यघ्नात् सविता सुरोवः ।
 ऋतस्य योनौ सुकृतस्यं लोकै
 अरिष्टां त्वा सह पत्यां दधामि ॥ २४ ॥
 प्रेतो मुंचामि नामृतः सुयज्ञामुमृतस्करम् ।
 यथेयमिन्द्र मीढुः सुपुत्रा सुभगाऽसति ॥ २५ ॥
 पुष्या त्वेतो नयतु हस्तगृह्य
 अभिनां त्वा प्र चहतां रयेन ।
 गृहान् गच्छ गृहपत्नीं यथासौ
 यशिनीं त्वं विदधमा वंदासि ॥ २६ ॥
 इह प्रियं प्रजयां ते समृष्यतां
 असिन् गृहे गार्दपत्याय जागृहि ।
 पुना पत्यां त्वयं सं सृजस्य
 अधा जियीं विदधमा वंदायः ॥ २७ ॥
 नीललोहितं भयति हृत्यासक्तित्व्यंज्यते ।
 पद्यन्ते भस्या ज्ञातयः पतिर्यथेयं दध्यते ॥ २८ ॥
 ॥ १ ॥ (चा० य० २।१०)
 मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधातु
 ब्रह्मान् रायो मययानः सचन्ताम् ।
 ब्रह्माकंठे सन्त्याशिषः स्रुत्या नः सन्त्याशिष
 उपहृता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता
 इयतामभिरारमीश्रात् स्वाहा ॥ १० ॥
 ॥ ३ ॥ (चा० य० ४।५)
 मा यो देवास ईमहे धामं प्रयत्यप्यरे ।
 मा यो देवास आशिषो यज्ञियासो हयामहे ॥५॥

॥ ४ ॥ (चा० य० ८।५)
 श्रदस्मै नरो वचसे दधातु
 यदाशीर्दा दम्पती वाममंश्रुतः ।
 पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वसु
 अथा विश्वाहारप पंधते गृहे ॥ ६ ॥
 ॥ ५ ॥ (चा० य ११।१०५)
 इपमूर्जमहमित आर्द
 ऋतस्य योनिं मदिपस्य धारांम् ।
 आ मा गोपुं विशत्वा तनूपु
 जहामि सेदिमर्नितामर्माधाम् - ॥ १०५ ॥

होत्राः शिषः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१८३।३)
 प्रजावान् प्राजापत्यः । त्रिपुत्र् ।
 अहं गर्भमदधामोर्षधीपु
 अहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
 अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यां
 अहं जनिभ्यो अपरपुं पुत्रान् ॥ ३ ॥
 ॥ २ ॥ (चा० य० ७।१५)
 तृपन्तु होश मघ्यो याः स्थिष्टा
 याः सु प्रीताः सुहृता यत् स्वाहा ॥ १५ ॥
 ॥ ३ ॥ (चा० य० २५।२८)
 होतोऽध्वर्युरावया अग्निमिन्धो
 प्राच प्राग् उत शरस्ता सुर्विमः ।
 तेन यज्ञेन स्वयंरुतेन
 स्थिष्टेन यज्ञणा आ पृणभ्यम् ॥ २८ ॥
 ॥ ४ ॥ (सा० १३)
 राये अग्ने महे त्वा वानाय समिधीमदि ।
 ईदिव्या दि महे धृषं यावा होत्राय पृथिवी ॥८३॥

॥ ५ ॥ (साम. ९८)

विश्वामित्रो गाथिनः । उष्णिक् ।

१ २२ ३२३ ३ १२ ३२
प्र होत्रे पूर्व्यं यचोऽग्नये भरता वृहत् ।३१ २२३ १२३ २ ३१२
विषां ज्योतीषि विश्रते न वेधसे ॥ ९८ ॥

॥ ६ ॥ (साम० १५१)

३१ २२ ३१ २ ३१ २ ३२
इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे ।१ २ ३१ २
अच्छावभृथमोजसा ॥ १५१ ॥

॥ ५ ॥ (सा० १७२)

वामदेवो गाँतमः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २
ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्द्यैश्वमेरयः ।११ २ ३ १ २
उत धोपन्तु नो भुवः ॥ ८ ॥

अग्निशाफः ।

॥ १ ॥ (झ० ३१५३१२१-२४)

विश्वामित्रो गाथिनः । त्रिष्टुप्, २२ अष्टुप् ।

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य
याच्छ्रेष्ठाभिर्मघयच्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः स्वर्षदीष्ट
यमुं द्विप्सस्तमुं प्राणो जंहातु ॥ २१ ॥

परच्छं चिद् यितंपति शिम्यलं चिद् पि वृधति ।

उला चिद्विन्दु येपन्ती प्रयस्ता केनमस्यति ॥ २२ ॥

न सार्यकस्य चिकिते जनासो
लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः ।
नार्याजिनं याजिनां दासयन्ति
न गंक्रमं पुरो अश्यान्नयन्ति ॥ २३ ॥इम ईन्द्र मत्तस्यं पुत्रा
अपयिषं चिचितुर्न प्रपित्यम् ।
द्विग्यम्यस्वमर्त्तं न निरयं

उपांवाजं परिं णयम्याजौ ॥ २४ ॥

रथिसंवर्धनम् ।

॥ १ ॥ (अथर्व० ३।१०।८-९)

वषिष्ठः । ८ विश्वा भुवनानि, ९ पंचः प्रदिशाः । ८ विराट्
अगती, ९ अष्टुप् ।

वार्जस्य तु प्रसवे सं यंभूमि

इमा च विश्वा भुर्वनान्यन्तः ।

उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन्

रथिं च नः सर्वधीरं नियच्छ ॥ ८ ॥

दुहां मे पंचं प्रदिशो दुहामुर्वीर्यथाबलम् ।

प्रापेयं सर्वा आकृतीर्मेनेसा हृदयेन च ॥ ९ ॥

वाक् ।

॥ १ ॥ (झ० १।१६४।४२, ४५)

दोषता ओचथ्यः । ४२ आद्यर्धस्य वाक्, द्वितीयस्य वाक्,
४५ वाक् । ४२ प्रस्वारपक्षि, ४५ त्रिष्टुप् ।

तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति

तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।

ततः क्षरत्यक्षरं तद्विभ्यमुपं जीवति ॥ ४२ ॥

सत्वारि वाक्पारिमिता पदानि

तानि विदुर्ब्राह्मणाः ये मनीषिणः ।

गुहा ऋणि निहिता नेक्षयन्ति

तुरीयं वाचो मनुष्यां वदन्ति ॥ ४५ ॥

॥ १ ॥ (झ० ३।५३।१५-१६)

विश्वामित्रो गाथिनः । (सवर्षरी) । त्रिष्टुप्, १६ गायत्री ।

ससर्परीरमतिं धार्धमाना

बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता ।

आ सूर्यस्य दुहिता तंतानः

धयो देवेष्यमृतमजुयंम् ॥ १५ ॥

ससर्परीरमरत् नयमेभ्यो

अधि धयः पार्श्वजग्यासु कृष्टिपुं ।

सा पृथ्वा नृप्यमायुर्वर्धना

यां न पलन्तिजमदत्तायो वृदुः ॥ १६ ॥

(०१५)

॥ ३ ॥ (क्र० ८१००११०-११)

नेमो मार्गवः । प्रियु १ ।

यद्वाग्बर्दन्त्यविचेतनानि
राष्ट्रीं देवानां निपसादं मन्त्रा ।
चतस्र ऊर्जं दुदुहे पर्यासि

श्वं स्वित्स्याः परमं जगाम ॥ १० ॥

देवीं वार्चमजनयन्त देवां

तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।

सा नो मन्त्रेपमूर्जे दुहाना

धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैर्तु ॥ ११ ॥

॥ ४ ॥ (अथर्व० ७।१०५।१)

अथवा । (देव्यं वचः) । अनुष्टुप् ।

अपक्रामन् पौरुषेयाहृणानो देव्यं वचः ।

प्रणीतीरभ्यार्थतस्व विश्वैमिः सखिमिः सुह ॥ १ ॥

॥ ५ ॥ (वा० य० १।१५, १६)

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं

देवर्षीतये त्वा गृणहामि बृहद्ग्रावाऽसि वानस्पत्यः

स इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशर्मि शमीष्व

हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥ १५ ॥

कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व इपमूर्जमावदं

त्यर्या ध्यथं संधातं संधातं जेष्म

ध्रुवैर्बृहस्पतिं प्रीतिं त्वा ध्रुवैर्बृह वेसुः ।

परंपृतं रक्षः परंपृता अरांतयो

अपहृतं रक्षो वायुवो विविनक्तु ॥

देवो र्यः सविता द्विरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णातु ॥

अच्छिद्रेण पाणिना ॥ १६ ॥

॥ ६ ॥ (वा० य० ४।१३, १७, १९-२१, २३)

याकपतिर्मा पुनातु ॥ ४ ॥

एवा तं शक्र तनूरेतद्वचः

तया सम्मय भ्राजं गच्छ ।

जूरसि धृता मनसा जुष्टा पिर्णये ॥ १७ ॥

चिदसि मनासि धीरसि

दक्षिणासि क्षत्रियासि यश्रियासि

अदितिरस्युमयतः शीर्ष्णा ।

सा नः सुपर्वाक्षी सुप्रतीच्येधि

मित्रस्त्वां यदि वंघ्नीतां

पुष्याऽध्वनस्यात्विन्द्रायाध्वंक्षाय ॥ १९ ॥

अनु त्वा माता मन्यतामनु पिता

अनु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूध्यः ।

सा देवि देवमच्छेद्दीन्द्राय

सोमंश्च रुद्रस्त्वा वंशंयतु

स्वस्ति सोमंसखा पुनरेहि ॥ २० ॥

वस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि ।

बृहस्पतिर्ष्वा सुम्ने रम्णातु

रुद्रो वसुमित्रा चके ॥ २१ ॥

समस्यै देव्या धिया सं दक्षिणपोर्वक्षसा ।

मा म आयुः प्रमोषीमो ब्रह्मं

तव धीरं विदेय तव देवि सुहृदि ॥ २३ ॥

॥ ७ ॥ (वा० य० ५।३३)

वागस्येन्द्रमसि सत्रोऽसि ॥ ३३ ॥

॥ ६ ॥ (वा० य० ६।११, १४, १५)

रेवति यजमाने प्रियं धा आ विश ।

उरोरुन्तारिक्षात् सज्जुद्वेन वारतेनास्य

हविपुस्तमना यजु समस्य तन्वा मय ॥ ११ ॥

याचं ते शुन्धामि ॥ १४ ॥

याक् त्वाभ्यांयताम् ॥ १५ ॥

॥ ९ ॥ (वा० य० ८।३७)

याग्देवी जुषाणा सोमस्य तप्यतु

सह प्राणेन स्वाहा ॥ ३७ ॥

॥ १० ॥ (वा० य० ९।९९)

प्र नो वच्छत्ययमा प्र पुषा प्र बृहस्पतिः ।

प्र याग्देवी वृदातु नः स्वाहा ॥ २९ ॥

॥ ४ ॥ (वा० य० १८।१९)

वाग्युक्तेन कल्पताम्

॥ १२ ॥ (वा० य० १२।३३)

वाग्युक्तेन कल्पतां स्वाहा

॥ १३ ॥ (वा० य० ३७।१६)

धर्ता दिवो वि भति तपसस्पृथिव्यां

धर्ता देवो देवानामर्मत्यस्तपोजाः ।

वाचमस्मे नि यच्छ देवायुर्वम्

॥ १४ ॥ (अथर्व० ७।४३।१)

प्रस्कम्ब । त्रिष्टुप् ।

शिवास्त एका अशिवास्त एकः

सर्वा विभर्षि सुमनुस्यमानः ।

तिष्ठो वाचो निर्हिता अन्तरस्मिन्

तासामेका वि पंपातानु घोषम्

॥ २९ ॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो

मन्युर्होता वरुणो जातर्वदाः ।

मन्युं विश ईळते मानुषीर्वाः

॥ ३३ ॥

पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः

अभीहि मन्यो त्वसस्तर्षीयान्

तपसा युजा वि जहि शश्रून् ।

अमिन्द्रा वृष्रहा दस्युहा च

॥ १६ ॥

विश्व वसुन्या भंरा त्वं नः

त्वं हि मन्यो अभिमृत्योजाः

स्वयंभर्भामो अभिमातिपाहः ।

विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावान्

असास्वोजः पृतनासु धेहि

॥ ११ ॥

अभागः सन्नप परेतो अस्मि

तव क्रत्वा तवियस्यं प्रचेतः ।

ते त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहील

अहं स्वा तनुर्षलदेयाय मेहि

॥ १५ ॥

अयं ते अस्म्युप मेहर्वाद्

प्रतीचीनः सहुरे विश्वधायः ।

मन्यो वसिन्नभि मामा वचृत्स्व

हनाव दस्यूरुत दौध्यापेः

॥ १२ ॥

अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मे

अर्धा वृत्राणि जघनाव भूरि ।

जुहोमि ते घृणं मघो अर्घं

॥ ७ ॥

उभा उपांशु प्रथमा पिबाव

॥ ७ ॥

॥ २ ॥ (अ० १०।८४।१-७)

अगती १-२ त्रिष्टुप् ।

॥ १ ॥ (अ० १०।८३।१-७)

म युक्तापय । त्रिष्टुप् । १ अगती ।

यस्ते मन्योऽविधच्छ सायक

सह भोजः पुष्यति विश्वमानुषक ।

सह हाम दासमार्यं त्वया युजा

सदस्वतेन सहसा सदस्वता

॥ १ ॥

त्वया मन्यो सुरधमारुजन्तो

हर्षमाणासो धृपिता मर्तव्यः ।

तिग्मेपय आर्युधा संशिर्शाना

अभि प्रयन्तु नरो अक्षिरूपाः

॥ १ ॥

॥ १ ॥ (७।८८)

अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व
 सेनानीनः सहुरे द्रुत पंधि ।
 हृत्वाय शत्रुन् वि भंजस्व वेद
 ओजो मिमानो वि मृधो जुदस्व
 सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे
 रुजन् मूणन् प्रमूणन् प्रेहि शत्रून् ।
 उग्रं ते पाजो नन्वा रुध्रे
 वशी वशी नयस एकज त्वम्
 एको बहुनामसि मन्यवीलितो
 विशं विशं युधये सं शिशाधि ।
 अरुत्तकृक् त्वया युजा वयं
 युमन्तं घोषं विजयाय ह्यमहे
 विजेपकृदिन्द्रं श्वानवप्रयोऽु
 अस्माकं मन्यो अधिपा भवेद्द ।
 प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि
 विद्या तमुस्तं यत आ बभूथ
 आभृत्या सहजा वंज सायक
 सहो विमर्ष्यमिमूत उत्तरम् ।
 कृत्वा नो मन्यो सह मेघंधि
 महाघनस्यं पुरुहूत संसृजि
 संसृष्टं घनमुमयं समाहृतं
 अस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।
 मियं वधाना हृदयेषु शश्रवः
 पराजितासो अप नि लयन्ताम्
 ॥ ३ ॥ [१-१७] (घा० य० १८४)
 मन्युर्ध्वं मे भार्मध्वं मे युक्तेन कल्पन्ताम् ॥ ४ ॥
 ॥ ४ ॥ (घा० य० १९९)
 मन्युरसि मन्युं मयिं धेदि ॥ ५ ॥
 ॥ ५ ॥ (घा० य० ३०१४)
 मन्यवेऽपस्तापम्

॥ ६ ॥ (अथर्व० ६।१२।१-३)
 मृगवज्रिणाः (परस्परं वितैकीकरणकामः) अतुष्टु १-२
 भुरिक् ।
 अथ ज्यामिध्वं घर्वनो मन्युं तनोमि ते दृदः ।
 ॥ २ ॥ यथा संमनसौ भुत्वा सर्वायाधिव्य सर्वावहै ॥१॥
 सर्वायाधिव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते ।
 अधस्ते अदर्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः ॥ २ ॥
 अभि तिष्ठामि ते मन्युं पाण्यां प्रपदेन च ।
 ॥ ३ ॥ यथाऽवशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥ ३ ॥
 शकुन्तः ।
 (कपिजलरूपीन्द्रः)
 ॥ ४ ॥ ॥ १ (ऋ० २।४२।१-३)
 गुह्यमद (आगिरधः शौनहोत्रः पथात्) भागद. शौनक. ।
 त्रिष्टुप् ।
 कर्तिकदज्जनुपं प्रयुवाणः
 इर्यतिं वार्चमरितेव नार्वम् ।
 ॥ ५ ॥ सुमङ्गलश्च शकुने भवासि
 मा त्वा का चिदमिमा विद्मयां विद्व ॥ १ ॥
 मा त्वा श्येन उद्रधीन्मा सुंपणो
 मा त्वा विद्विदुमान् वीरो अस्ता ।
 ॥ ६ ॥ पित्र्यामनुं प्रदिशं कर्तिकदत्
 सुमङ्गलो मद्रवादी वदेद्द ॥ २ ॥
 अयं क्रन्द दक्षिणतो गुहाणां
 सुमंगलो मद्रवादी शकुन्ते ।
 ॥ ७ ॥ मा नः स्तेन ईशत माघदीसो
 घृहदं देम विदये सुवीराः ॥ ३ ॥
 ॥ १ ॥ (ऋ० २।४३।१-३)
 अगती, २ अतिउग्रो अष्टिवा ।
 प्रदक्षिणद्विभुं शृणान्ति कारयो
 ययो घर्दन्त ऋतुथा शकुन्तयः ।
 उमे याचौ घदति सामगा इय
 ॥ १४ ॥ गापयं च प्रेरुं चानु राजति ॥ १ ॥
 (७४०१)

उद्गातेषु शकुने सामं गायसि
 ब्रह्मपुत्र इव सर्वनेषु शंससि ।
 पृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या
 सर्वतो नः शकुने भद्रमा वंद
 विश्वतो नः शकुने पुण्यमावंद
 आयदंस्त्वं शकुने भद्रमा वंद
 तूष्णीमासीनः सुमति चिकिञ्चि नः ।
 यदुत्पतन् वदसि कर्करियेश्वा
 वृहद्देम विदथे सुवीराः

इत्येकः ॥

॥ १ ॥ (ऋ० ४।२६।४-७)

वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

प्र सु ष विभ्यो मरुतो विरंस्तु
 प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा ।
 अचक्रया यत् स्वघर्षा सुपर्णो
 हृद्यं भरन्मनवे देवजुष्टम्
 भरद्यदि विरतो घेर्विजानः
 पथोरुणा मनोजया असाजि ।
 त्र्यं ययौ मर्षुना सोम्येन
 उत श्रवो विधिदे श्येनो अत्र
 अजिपी श्येनो ददमानो अंशु
 परायतः शकुनो मन्द्रं मदम् ।
 सोमं भरद्वाहहाणो देवाधन्
 द्वियो अमुम्मादुत्तराहादाय
 आदार्य श्येनो अमर्त्तु सोमं
 सदत्रै मया अयुतं च साकम् ।
 धत्रा पुरंधिरजहादरातीः
 मदे गोमस्य मृत अमूरः

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ १ ॥ (ऋ० ४।२७।१-५)

(५ इन्द्रो वा) । त्रिष्टुप्, ५ एकवर्ती ।

गभे नु सन्नन्वेषामवेदं
 अहं देवानां जनिमानि विश्वा ।

शतं मा पुर आर्यसीररक्षन्
 अर्धं श्येनो जवसा निरंदीयम्

न घा स मामप जोषं जभार
 अभीमांस त्वक्षसा क्षीर्येण ।

ईमां पुरंधिरजहादरातीः

उत वातो अतरुच्छुशुवानः

अय यच्छ्येनो अस्वनीदध घोः

वि यद्यदि वातं ऊहुः पुरंधिम् ।

सुजघदस्मा अर्धं ह क्षिपज्यां

कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन्

अजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्युं

श्येनो जभार वृहतो अधि ष्णोः ।

अन्तः पंतपतत्र्यस्य पर्ण

अध यामनि प्रसंतस्य तद् घेः

अर्धं श्वेतं कलशं गोभिरकं

आपिप्यान् मघर्षा शुक्रमन्धः ।

अध्वर्युभिः प्रयत मध्वो अत्रं

इन्द्रो मदाय प्रति धत् पिबथ्यै

श्रो मदाय प्रति धत् पिबथ्यै

॥ ३ ॥ (अथर्व० ७।४१।१-९)

प्रस्कण्वः । १ अगती, -२ त्रिष्टुप् ।

अति धन्वान्यत्यपस्तददं

श्येनो नृचक्षा अयसानदर्शाः ।

तरन् विश्वान्यवरा रजांसि

इन्द्रेण सवया शिव आ जंगम्यात्

श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः

सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः ।

स नो नि यच्छ्राद्दसु यत् पराभृतं

असाकमस्तु पितृषु स्वधायत्

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

(०४१७)

सरमा ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१०।१,३,५,७,९)
पणयोऽमुराः । त्रिष्टुप् ।

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड
दूरे ह्यध्वा जग्गुरिः पराचैः ।
काऽस्मेद्वितिः का परितकम्याऽसीत्
कथं रसाया अतरः पर्यासि
कीदृङ्निन्द्रः सरमे का दृशीका
यस्येदं दृतीरसरः पराकात् ।
आ च गच्छान्मिन्नमेना दधाम
अथा गवां गोपतिर्नो मवाति
इमा गावः सरमे या पेच्छः
परि द्विवो अन्तान् सुभगे पतन्ती ।
कस्तं पना अर्वा, सृजादयुध्धी
उतास्माकमार्युधा सन्ति तिम्रा
अयं निधिः सरमे, अद्रियुम्नो
गोमिरध्वैमिर्वसुमिर्नृष्टः ।

॥ १ ॥

॥ ३ ॥

॥ ५ ॥

रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा
रेकुं पदमलकुमा जगन्ध
एवा च त्वं सरम आजगन्ध
प्रयाधिता सहसा दैव्येन ।
स्वसारं त्या कृण्वै मा पुनर्गां
अप ते गवां सुभगे मजाम

— सारणी ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१०।१०-१२)
वेदस्तो यमः । त्रिष्टुप् ।

अति द्रघ सारमेयो भवानौ
चतुरक्षौ शयलौ साधुर्ना पथा ।
अर्धा पितृन्सुविदभौ उपेदि
अमेन ये सधमादं मर्दन्ति

॥ १० ॥

यौ ते भवानौ यम रक्षितारौ
चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्
स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि
उरुणसारवसुवृषा उदुम्वलौ
यमस्य दृती चरतो जनां अनु
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय
पुनर्नातामसुमद्येह मद्रम्

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

वृक्षान्तः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ३।८।११)
विश्वामिश्रो गाथिनः । त्रिष्टुप् ।

यनस्पते नूतवल्शो वि रोहं
सहस्रवल्शा वि वयं रूहेम ।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः
प्रणिनायं महते सौमगाय

॥ ११ ॥

अरण्यानी ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१४।१-६)
देवगुनिरग्मदः । अठुष्टुप् ।

॥ ७ ॥

अरण्यान्यरण्या न्यसौ या प्रेत् नदयासि ।
कथा प्रामं न पृच्छसि
न त्वा भीरिं विन्दती

॥ १ ॥

॥ ९ ॥

वृषारवाय धदते यदुपार्वति चिच्चिकः ।
आघाटिभिरेव घ्रावयं अरण्यानिर्महीयते ॥ २ ॥
उत गाव्यं ह्याद न्युत वेदमेव हृदयते ।
उतो अरण्यानिः स्नायं शकृतीरिय सर्जति ॥ ३ ॥

गामङ्ग्रेषु आ ह्वयति दापुङ्ग्रेषु अपावधीत् ।
वसं प्ररण्यानां स्नायं मङ्ग्रेषु दिरि मन्वते ॥ ४ ॥

न या अरण्यानिर्हन्त्य न्यक्षेप्रासिगच्छति ।
स्यादोः फलस्य जग्वार्यं यथाकामं नि पचते ॥ ५ ॥

आञ्जनगन्धिं सुरभिं बह्वभ्रामर्कपीवलयाम् ।
प्राहं मृगाणां मातरं—मरण्यानिर्मशंसिपम् ॥ ६ ॥

अहिः, अहिर्बुध्न्यः ।

॥ १ ॥ (श्रु० २।३।१६)

गुरुमदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पद्बद्) मार्गवः शौनकः ।
जगती ।

उत वः शंसंमुशिजांमिव इम
अहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत ।
धित ऋमुक्षाः संविता चनो दधे
अपां नपादाशुहेमा धिया शभिं ॥ ६ ॥

॥ १ ॥ (श्रु० ७।३।१६-१७)

मैत्रावहनिर्वसिष्ठः । द्विपदा विराट् ।

अजामुषयैरहिं गृणीये
युष्ने नदीनां रजःसु पीदन्
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिपे धात्
मा यज्ञो अस्य स्निधदतायोः ॥ १७ ॥

॥ ३ ॥ (या० य० ३४।५३)

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोतु
अज एकपात् पृथिवी संमुद्रः ।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः
स्तुता मन्याः कविशुस्ता अवनतु ॥ ५३ ॥

दक्षिणा, दक्षिणादाकारो ष

॥ १ ॥ (श्रु० १०।१०।१-११)

विष्य आङ्गिरसः, दक्षिणा वा प्राजापत्या । त्रिष्टुप्, ४ जगती ।

आयिरंभुनमहि मार्चोनेपां
विश्वं जीयं तमसो निरमोचि ।
महि ज्योतिः प्रिभुभिर्दक्षमागोत्
उदः पण्या दक्षिणाया अददि । ॥ १ ॥
उषा द्विपि दक्षिणापन्तो अस्युः
ये अश्वदाः सृष्ट ते न्येण ।

हिरण्यदा अमृतत्वं भंजने
वासोदाः सोम प्र तिरन्त आयुः ॥ २ ॥

देषी पृतिर्दक्षिणा देवधृज्या
न कवारिभ्यो नहि ते पणन्ति ।
अथा नरः प्रयतदक्षिणासो
अवद्यभिया चहवः पृणन्ति ॥ ३ ॥

शतधारं वायुमर्कं स्वविदं
नचक्षस्तस्ते अभि चक्षते हविः ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति संगमे
ते दक्षिणां दुहते सप्तमातरम् ॥ ४ ॥

दक्षिणावान् प्रथमो द्रुत पति
दक्षिणावान् ग्रामणीरभ्रमेति ।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां
यः प्रथमो दक्षिणामाविषाय ॥ ५ ॥

तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुः
यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम् ।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिष्ठो
यः प्रथमो दक्षिणया रराध ॥ ६ ॥

दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति
दक्षिणा चन्द्रमुत यद्विरण्यम् ।
दक्षिणात्र घनते यो न आत्मा
दक्षिणां धर्मं कणुते विजानन् ॥ ७ ॥

न भोजा मंभ्रुर्न न्यर्थमीयुः
न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः ।
इदं यद्विभ्यं भुवनं स्वध
पतत् सधं दक्षिणेभ्यो ददाति ॥ ८ ॥

भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमभ्रं
भोजा जिग्युषेभ्यं या सुवासाः ।
भोजा जिग्युरन्तः पेयं सुरायाः
भोजा जिग्युषे अर्हताः प्रयन्ति ॥ ९ ॥

भोजायाश्च सं शृजन्त्याशु
 भोजार्यास्ते कन्याः शुभमाना ।
 भोजस्येदं पुष्करणीव वेदम्
 परिष्कृतं देवमानेर्षं चित्रम्
 भोजमश्वः सुपुवाहो वहन्ति
 सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणायाः ।
 भोजं देवासोऽवता भरैषु
 भोजः शत्रून्समनीकेषु जेतां

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

को अद्वा वेदं क इह प्र वोचत्
 कुत आजाता कुत इयं विश्विष्टिः ।
 अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेन
 अथा को वेदं यतं आयभूयं
 इयं विश्विष्टिर्यतं आयभूय
 यदि वा दधे यदि वा न ।
 यो अस्यार्घ्यक्षः परमे व्योमन्
 सो अहं वेदं यदि वा न वेदं

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

भाष्यवृत्तकृ १

॥ १ ॥ (श्र० १०।१२।१-७)
 प्रजापतिः परमेष्ठी । त्रिष्टुप् ।

नासंदासीन्नो सदासीत् तदानीं
 नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
 किमावरीचः कुह कस्य शर्मन्
 अम्मः किमासीद्दहनं गभीरम्
 न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
 न राज्या अहं आसीत् प्रकेतः ।
 आनीदद्यात् स्वधया तदेकं
 तस्माद्भान्यन्न परः किं चनासं
 तमं आसीत् तमसा गुल्हमग्नें
 अग्रकेतं संलिलं सर्वमा इदम् ।
 तुच्छयेनाभ्यर्षिदितं यदासीत्
 तर्पसस्तर्माहिनाजायतेकम्
 कामस्तदग्ने समवर्तताधि
 मर्नसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
 सतो यन्धुमसति निरयिन्दन्
 हृदि प्रतीर्ष्यां कथर्यो मनीषा
 तिरश्चीनो धिततो रुदिमैर्यां
 अधः स्विदासीद्दुपरि स्विदासीत् ।
 रेतोधा आसन् महिमान् आसन्
 स्वधा अयस्तात् प्रयतिः परस्तात्

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ १ ॥ (श्र० १०।१२।१-७)
 यज्ञः प्राजापत्यः । त्रिष्टुप् । १ अगती ।
 यो यज्ञो विश्वतस्तनुमिस्तत्
 एकंशतं देवकर्मभिरायतः ।
 इमे वयन्ति पितरो य आय्युः
 प्र वयापं वयेत्यासते तते
 पुमौ पनं तनुत् उत् कृणति
 पुमान् वि तन्ने अधि नाकै अस्मिन् ।
 इमे मयूखा उपं सेदुरू सदः
 सामानि चक्रुस्तसंराण्योतये
 काऽऽसीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानं
 आज्यं किमासीत् पतिधिः क आसीत् ।
 छन्दः किमासीत् प्रउगं किमुक्यं
 यद्देवा देवमयजन्त विश्वे
 अग्नेर्गायत्र्यमवत् सुपुग्या
 उष्णिहया सधिता सं रभूय ।
 अनुष्टुभा सोमं उपर्यमंहस्यान्
 बृहस्पतेर्वृहती वारचायात्
 धिराग्निप्रापरुणयोरभिध्रीः
 इन्द्रस्य त्रिष्टुषिह भागो अहंः ।
 विश्वान् देवाऽजगत्या रियेदन्
 तेन चाकल्पं श्रुयंयो मनुष्याः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

चाक्लुप्ते तेन ऋषयो मनुष्याः ।
 यथे जाते पितरो नः पुराणे ।
 पश्यन् मन्ये मनसा चक्षसा तान्
 य इमं यज्ञमयजन्त पूर्वे
 सहस्तोमा सहछन्दस आघृतः
 सहग्रामा ऋषयः सप्त देव्याः ।
 पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरां
 अन्वालेभिरे रभ्योऽनु न रश्मीन्
 ॥ ३ ॥ (ऋ० १०।१५४।१-५)
 यमी देव्यस्तौ । अनुष्टुप् ।
 सोम एकैभ्यः पद्यते घृतमेक उपासते ।
 येभ्यो मधुं प्रधावति ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१॥
 तपसा ये अनाधुष्या—स्तपसा ये स्वर्ष्युः
 तपो ये चक्रिरे मह—स्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥२॥

॥ १ ॥

॥ ७ ॥

ये युष्यन्ते प्रधनेषु शूरास्तौ ये तनृत्यजः ।
 ये यो सहस्रदक्षिणा—स्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥३॥
 ये चित् पूर्वे ऋतसापं ऋतायान ऋतापृषः ।
 पितृन् तपस्यतो यम् ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥४॥
 सहस्रणीथाः कथयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
 ऋषीन् तपस्यतो यम् तपोजा अपि गच्छतात् ॥५॥

॥ ४ ॥ (ऋ० १०।१२०।१-३)

अयमर्थेणो माधुच्छन्दसः । अनुष्टुप् ।

ऋतं च सत्यं चार्भीदात् तपसोऽर्ष्यजायत ।
 ततो राज्यजायत ततः समुद्रो अर्णव ॥ १ ॥
 समुद्रादर्णवादर्धि संयत्सरो-अजायत ।
 अहोरात्राणि विदध—द्विभ्यस्य मिततो घृती ॥ २ ॥
 सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापुर्धमकल्पयत् ।
 दिवं च पृथिवीं चा—न्तरिक्षमथोऽस्यः ॥ ३ ॥
 (७४६६) ॥



अथ ऋषयः

अत्रिः

॥ १ ॥ (ऋ० ५।४०।६-९)

अत्रिमौमः । त्रिष्टुप्, अमुष्टुप् ।

स्वर्भानोरध्र यदिन्द्र माया
अधो द्विषो वर्तमाना अवाहन् ।

गुह्यं सूर्यं तमसाऽपत्रतेन
तुरीयेण ब्रह्मणाऽविन्दुर्दृष्टिः

आ मामिमं तव सन्तमध
इरस्या द्रुग्धो म्रियसा नि गारीव ।

त्वं मित्रो असि सत्यरोस्तौ
मेहावतं वरुणश्च राजा

प्राण्यो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन्
कीरिणा देवान् नमसोपदिक्षन् ।

अग्निः सूर्यस्य दिवि चक्षुराघात्
स्वर्भानोरप माया अंधुक्षत्

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाऽविष्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन् नह्युन्ये अशोकनुवन्

किष्कामिन्द्रः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ३।३३।४, ८, १०)

वरी ऋषिश्च । त्रिष्टुप् ।

पना ध्रयं पर्यसा पिन्वमाना
अनु योनिं देवकृतं वरन्तौ ।

न वर्तये प्रसवः सर्गतकः

क्रियुर्विप्रो नद्यो जोहवीति

पतद् वचो जरित्मार्ऽपि मृष्टा
आ यत् ते घोषानुत्तरा युगानि ।

उफयेयुं कारो प्रति नो जुपस्व
मा नो नि कः पुरुपुत्रा नमस्ते

आ ते कारो ऋणवामा वचांसि
ययायं वरादनेसा रयेन ।

नि ते नसे पीप्यानेय योषा
मर्यायेव कन्या शश्वचे ते

कामदेवः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ४।२।१, ७)

१ इन्द्रः, ७ अदितिः ऋषिश्च । त्रिष्टुप् ।

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो
यतो देवा उदजायन्त विश्वे ।

अतश्चिदा जनिपीष्ट प्रवृद्धो
मा मातरममुया पत्तव कः

किन्तु श्विदस्मै निचिदो भनन्त
इन्द्रस्यावद्यं दिधिपन्त आपः ।

भमेतान् पुत्रो महता वधेन
वृत्रं जघन्वा असृजद् वि सिन्धुन्

वसिष्ठः ॥ इन्द्रो वा ॥

॥ १ ॥ (क्र० ७।३।१-९)

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

श्रित्यं चो मा दक्षिणतस्केपदां
धियं जिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।
उत्सिष्टं चोद्ये परि वसिष्ठो नून
न मे दुरादवितथे वसिष्ठाः
दुरादिन्द्रमनयशा सुतेन
तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम् ।
पार्शद्युस्तस्य वाप्यतस्य सोमात्
सुतादिन्द्रोऽवृणीता वसिष्ठान्
पृथेभु कं सिन्धुमेभिस्ततार
इवेभु कं भेदमोभिर्जघान ।
पृथेभु कं दाशराद्ये सुदासं
प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा यो वसिष्ठाः
जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितृणां
अक्षमव्ययं न किला रिपाथ ।
यच्छपर्वरीषु वृहता रवेण
इन्द्रे शुष्ममदघाता वसिष्ठाः
उद् घामिवेत् तृष्णजो नाथितासो
अदीघयुदांशराद्ये वृतासः ।
वसिष्ठस्य स्तुयत इन्द्रो बधोत्
उद्यं वृत्तुं यो अरणोडु लोकम्
दण्डा इवेद् गोमजनास आसन्
परिच्छिन्ना भ्रुता अमुकासः ।
अमेषथ पुरप्ता वसिष्ठ
धादित् वृत्तुनां विशो अग्रधन्त
प्रयः षण्णित्तु भुयनेषु देतः
तिघ्नः प्रजा धार्यो ज्योतिरघ्नाः ।
त्रयो घर्मास उपस सचन्ते
सर्पा इन् तां धनुं पिदुर्षसिष्ठाः

सूर्यस्येव वक्ष्यो ज्योतिरेयां
समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।
वातस्येव प्रजुघो नान्येन
स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतथे घः
त इधिष्यं हृदयस्य प्रकैतैः
सहस्रवक्ष्यामि सं चरन्ति ।
यमेन ततं परिधिं चरन्तो
अप्सरस उप सेदुर्षसिष्ठाः

वसिष्ठः ॥

॥ १ ॥ (क्र० ७।३।१०-१४)

वसिष्ठुप्राः । त्रिष्टुप् ।

विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं
मिश्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।
तत् ते जन्मोत्तैर्क वसिष्ठा
अगस्त्यो यत् त्वां विशा आजभारं
उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठ
उर्वदयां ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः ।
द्रुप्तं स्कन् ब्रह्मणा देव्येन
विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त
स प्रकृत उमयस्य प्रविद्धान्
सहस्रदान उत वा सदानः ।
यमेन ततं परिधिं वधिष्यन्
अप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः
सत्रे हं जाताविपिता नमोभिः
कुम्भे रतः सापिचतुः समानम् ।
ततो ह मान उदियाय मघ्यात्
ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम्
उक्थभृते सामभृते विभक्ति
प्राषाणं विभ्रत् प्र घ्वात्प्रथे ।
उपेनमाष्यं सुमनस्यमाना
आ यो गच्छति प्रवदो वसिष्ठः

॥ १ ॥

॥ २ ॥

॥ ३ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

॥ ८ ॥

॥ ९ ॥

॥ १० ॥

॥ ११ ॥

॥ १२ ॥

॥ १३ ॥

॥ १४ ॥

(७४८९)

कशिष्ठाशः ।

॥ १ ॥ (क्र० ७।१०४।२३) [पूर्वाधेय]

वधिवो मेघावदणः । जगती ।

मा नो रक्षो अभि नड्यातुमार्धतां
अपोच्छतु मिथुना या किमीदिनां ॥ २३ ॥

रोमशः ।

॥ १ ॥ / क्र० १।१२६।६)

(१) स्वमयो भावयस्यः । अतुष्टुप ।

आगाधिता परिगाधिता या कशीकेव जङ्गहे ।
ददाति मह्यं यादुरी यादनां भोज्यां शता ॥ ६ ॥

अंगिरः फिन्नथर्क-

मृगुसोमः ।

॥ १ ॥ (क्र० १०।१४।६)

यमो वैवस्वतः । त्रिष्टुप ।

अङ्गिरसो नः पितरो नर्षणा
अर्यर्वाणो भूर्गवः सोग्यासः ।
तेषां वयं सुमते यधियांनां
अपि मदे सौमनसे स्याम ॥ ६ ॥

भाक्कथः ।

॥ १ ॥ (क्र० १।१२६।१-५, ७)

३ सोवान् ओशिशो देपेतमघः, ७ रोमशा
ब्रह्मवादिनी । १-५ त्रिष्टुप, ७ अतुष्टुप ।

अमन्दान्तस्तोमान् प्र भरे मर्नापा
सिन्धावार्धि क्षियतो भाव्यस्य ।
यो मे सहस्रमभिमीत सुवान्
अतुतो राजा श्रवं इच्छमानः
शतं राहो नार्धमानस्य निष्कान्
शतमश्वान् प्रयतान्स्व आदम्
शतं कशीवो अस्तुरस्य गोर्ना
दिवि श्रवोऽजरमा ततान ॥ २ ॥

उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता
यधूर्मन्तो दश रथासो अस्थुः ।
पथिः सहस्रमनु गव्यमागात्
सनत् कशीवो अभिपित्वे अहाम् ॥ ३ ॥

चत्वारिंशत् दशरथस्य शोणाः
सहस्रस्याग्ने धेष्णिं नयन्ति ।

मदच्युतः कुशुनावतो अत्यान्
कशीवन्त उदमृक्षन्त पञ्जाः ॥ ४ ॥

पूर्वामनु प्रयतिमा ददे वः
श्रीन् युक्तो अष्टावरिष्योसो गाः ।

सुवन्धवो ये विश्यां इव वा
अनस्वन्तः श्रव परेन्त पञ्जाः ॥ ५ ॥

उपोप मे परां मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहर्मस्मि रोमशा गुन्वारिणामिवाविका ॥ ७ ॥

मजाफतिः हरिश्चन्द्रः

चर्म सोमो काः

॥ १ ॥ (क्र० १।१८।२)

शुन रोप आश्रोगतिः । गायत्री ।

उच्छिद्यं चर्मोभेर् सोमं पवित्र आ संज ।
नि धेहि गोरधि त्वचि ॥ ८ ॥

सोमकः साहदेव्यः ।

॥ १ ॥ (क्र० ४।१५।७-८)

वामदेवो गौतमः । गायत्री ।

योधयन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः ।
अच्छा न हूत उदरम् ॥ ७ ॥

उत त्या यजता हरीं कुमारात् साहदेव्यात् ।
प्रयता स्व आ ददे ॥ ८ ॥

सार्जयः षष्ठोऽङ्कः

(दानस्तुतिः) ।

॥ १ ॥ (ऋ० ६।४७।२१-२५)

गणो माहाज । २२ त्रिष्टुप्, २३ अनुष्टुप् २४ गायत्री,
२५ द्विपदा त्रिष्टुप् ।

प्रस्तोक इन्द्र राधसस्त इन्द्र
दश कोशपीदश वाजिनोऽदात् ।
त्रिचोदासादतिथिभ्यस्व राधः
शाम्बरं चतु प्रत्यग्रभीष्म ॥ २२ ॥
दशाश्वान् दश कोशान् दश वज्राधिं मोजना ।
दशां हिरण्यपिण्डान् दिव्योदासादसानिपम् ॥ २३ ॥
दश रथान् प्रतिमतः शतं गाः अथर्वभ्यः ।
अद्वयः पापर्वेऽदात् ॥ २४ ॥
महि राधो विश्वजन्यं वर्धानान् ।
भ्रद्वाजान्तसार्जयो अभ्ययष्ट ॥ २५ ॥

असह्यः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।१।३०-३४)

आर्धगः प्ल योगि । ३४ शश्वतो आगिरसा ऋषिः ।
त्रिष्टुप्, ३०-३२ बृहती ।

स्तुहि स्तुहीद्रेते घां ते महिष्ठासो मघोनाम् ।
निन्द्रिताश्वः प्रपथी परमृज्या
मघस्य मध्यातिथे ॥ ३० ॥
आ यदश्वान् वनन्वतः श्रज्याऽहं रथे हृहम् ।
उत यामस्य वसुंनदिचकेतति
यो अस्ति यादः फुः ॥ ३१ ॥
य ऋजा मह्यं मामहे सह त्वचा हिरण्यया ।
पय विश्वान्यभ्यस्तु सौमगा
आसंगस्यं स्वानद्रथः ॥ ३२ ॥

अथ गार्धोगिरिति दासदन्व्यान्
आसंगो अग्ने दशभिः सहस्रैः ।
अघोक्षणो दश मह्यं रशगतो
नळा इव सरसो निरतिष्ठन् ॥ ३३ ॥
अन्वस्य स्थुरं दृढशो पुरस्तात्
अनुस्य ऊरुरवरम्यमाणः ।
शश्वती नार्यमिचक्ष्याह
सुभद्रमयं भोजनं विभर्षि ॥ ३४ ॥

विमिन्दुः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।१।४१-४९)

मेघ तिथिः काण्वः । गायत्री ।

शिक्षां विमिन्दो अस्मै चतार्ययुता ददत् ।
अष्टा पुरः सहस्रां ॥ ४१ ॥
उत मु त्वे पयोवृधां माकी रणस्य नृत्यां ।
जनिव्वनाथं मामहे ॥ ४२ ॥

पाकस्थामा कौरयाणः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।३।२१-२४)

मेघ्यातिथिः काण्वः । गायत्री, २१ अनुष्टुप्, २४ बृहती ।

यं मे दुरिन्द्रो मृतः पाकस्थामा कौरयाणः
विश्वेषां तमना शोभिष्टं
उपैव द्विवि धार्वमानम् ॥ २१ ॥
रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कश्यपाम् ।
अदाद् रायो वियोधनम् ॥ २२ ॥
यस्मां अन्ये दश प्रति धुरं वर्हन्ति वर्हयः ।
अस्तं घयो न तुम्यम् ॥ २३ ॥
आत्मा पितुस्तनूवासं शोकोदा अभ्यजनम् ।
तुरीयमिद् रोहितस्य पाकस्थामानं
भोजं दातारमत्रयम् । ॥ २४ ॥

कुरुङ्गः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।४।१९-२१)

देवातिथिः काण्वः । प्रगायः (विषमा बृहती-षमा सती बृहती) ।

स्युरं राधेः श्रुतादर्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टेषु ।

राधस्त्वेषस्य सुभगस्य ।

रातिपुं तुर्वशेष्वमन्महि ॥ १९ ॥

धीभिः सातानि व्राण्वस्य

घ्राजिनः प्रियमैधैरभिद्युभिः ।

पाष्टि स्रहन्नु निर्मजामजे ।

निर्युथानि गवामृषिः ॥ २० ॥

पृष्ठाधिग्मे अभिपित्वे अरारणुः ।

गां मजन्त मेदनाऽभ्यं मजन्त मेदनां ॥ २१ ॥

कशुश्वैः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।५।३७ [उचरार्घस्य]-३९)

प्रगातिथिः काण्वः । बृहती, ३९ अनुष्टुप् ।

यथा चिष्टैतः वृद्धाः शतं

उष्टाना ददत् स्रहस्था ददा गोनाम् ॥ ३७ ॥

यो मे हिरण्यमदशो ददा राशो भर्मदत ।

स्रधम्पदा इष्टैरस्य

स्रष्टयंभमन्ना अभितो जनाः ॥ ३८ ॥

मारिरेना पथा गाद् येनेमे यन्नि वेदस्यः ।

स्रग्यो नेत्र स्रष्टिरेदंते म्रिदायंस्तो जनाः ॥ ३९ ॥

तिरिन्दिरः फार्शठ्यः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।६।४६-४८)

राधः काण्वः । गायत्री ।

श्रामदं तिरिन्दिरे स्रह्यं पनाया ददे ।

राधाम् वाशानाम् ॥ ४६ ॥

धीनि श्रामवर्षता स्रह्या ददा गोनाम् ।

बृहन्नाय सारं ॥ ४७ ॥

वदान्त वृष्टो दिवमुष्टं स्रगुपुंशो ददत् ।

अर्वता याऽऽ जनाम् ॥ ४८ ॥

ब्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।११।३६, ३७)

शोभिरः काण्वः । ककुप्, ३७ पंक्तिः ।

अदान्मे पौरुकुत्स्यः पवाशतं ब्रसदस्युवधुनाम् ।

मांदिष्टो अर्यः सत्पतिः ॥ ३६ ॥

उत मे प्रयियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधि तुग्वनि ।

तिसृणां संसतीनां श्यावः

प्रणेता भुवद् वसुर्दियानां पतिः ॥ ३७ ॥

चित्रः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।११।१७-१८)

शोभिरः काण्वः । प्रगायः (विषमा वृद्धप+षमा सती बृहती)

श्रुतौ वा घेदियन्मघं

सरस्वती वा सुभगां दृदिर्वसुं ।

त्वं वा चित्र दानुषं ॥ १७ ॥

चित्र इद् राजा राजका

इदंन्यके युके सरस्वतीमनुं ।

पर्जन्य इय ततनदि वृष्ट्या

स्रह्यमपुता ददत् ॥ १८ ॥

वरुः सौफस्मिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।१४।१८-२०)

विषमनाः वैश्वः । वल्कि, २० अनुष्टुप् ।

यथा वरो सुपाज्जे तानिभ्य आर्यदो वृषिम् ।

व्यंभेभ्यः सुमगे याजिनीपति ॥ १८ ॥

वा नार्यस्य दक्षिणा व्यंभो यत्तु शोभिर्नः ।

वृष्टं च राधेः श्रामवत् स्रह्यवत् ॥ १९ ॥

यत् स्यां पृष्ठादीज्ञानः वृष्ट्या वृहवाहते ।

प्यो अर्पयितो वृलो गोमतीमर्ष तिष्ठति ॥ २० ॥

पृथुश्रवकाः कानीतः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।३६।११-२४)

वसोऽप्य १ पंक्तिः, २२ संस्तारपंक्तिः, २३ गायत्री ।

आ स पंतु य ईवदो अदेयः पुर्तमादृते ।

यथा चिद्वदो अद्वयः

पृथुश्रवस कानीतेऽस्या व्युप्यादृदे ॥ २१ ॥

पृष्टि सहस्राक्ष्यस्यायुतासनं

उप्रांनां विंशतिं शता ।

दश श्यावीनां शता दश

त्र्यंशुगीणां दश गवां सहस्रां ॥ २२ ॥

दश श्यावा ऋधद्रयो वीतवारास आशवः ।

मथा नेमि नि वावृतुः ॥ २३ ॥

दानांसः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुरार्धसः ।

रथं हिरण्यय इदं न्महिष्ठः सुरिरिभूद्

वपिष्ठमरुतु श्रवः ॥ २४ ॥

शुक्लकाः अफक्षः ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।७।१३-१५)

गोपवन आदेयः । अनुष्टुप् ।

अहं हृवान आक्षे धुतवीणि मनुच्युति ।

शर्धोसीव स्तुकाविनां मक्षा शीर्षा चतुर्णाम् ॥ १३ ॥

मां चत्वार आशयः शर्विष्ठस्य द्रवित्नवः ।

सुरधांसो अमि प्रयो वक्षन् वयो न तुन्यम् ॥ १४ ॥

सत्यमित् त्वां महेनदि परुण्यव देदिशम् ।

नेमापो अश्वदातरः शर्विष्ठादस्ति मत्यैः ॥ १५ ॥

ऐन्द्रो कसुकः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।१८।९, ६, ८, १०, ११)

इन्द्र ऋषिः । त्रिष्टुप् ।

स रोदवद्वपमस्तिग्मशृङ्गे

वर्षमैव तस्यौ वरिमिषा पृथिव्याः ।

विश्वेध्वेन वृजनैषु पाप्मि

यो मे कृषी सुतसोमः पूणार्ति - ॥ २ ॥

पृथा हि मां तवसं वर्धयन्ति

विचश्चिन्मे वृहत उत्तरा धः ।

पुरु सहस्रा नि शिशामि साकं

अश्रुं हि मां जनिता जजानं ॥ ६ ॥

देवासं आयन् परशूरविभ्रन्

वनां वृश्मन्तो अभि विडभिरायन् ।

नि सुद्वधं दुर्धतो वक्षणांसु

यथा कृपीटमनु तदहन्ति ॥ ८ ॥

सुपर्ण इत्था नक्षमा सिंपाय

अवकदः परिपदं न सिंहः

निरुद्धश्चिन्महिपस्तुप्यावान्

गोधा तस्मा अयथ कर्पदेतत् ॥ १० ॥

पते शर्माभिः सुशर्मा अभूवन्

ये हिंन्विरे तुन्वुः सोमं उक्थैः ।

नृचद्वद्वुपं नो माहि वाजान्

दिवि श्रवो दधिपे नाम वीरः ॥ १२ ॥

कुरुश्रवणराखासदस्यकः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।३३।४-५)

कवय ऐक्षुपः । गायत्री ।

कुरुश्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम् ।

महिष्ठं वाघतामृषिः ॥ ४ ॥

यस्य मा हरितो रथं तिस्रो वहन्ति साधुया ।

स्तथं सहस्रदक्षिणे ॥ ५ ॥

उपमथका मैत्रातिथिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।३।६-९)

कवय ऐक्षुपः । गायत्री ।

यस्य प्रस्वादसो गिर उपमथवसः पितुः ।

क्षेत्रं न रणवमूचुपं ॥ ६ ॥

अधि पुत्रोपमथवो नपाग्मिवातिथेदिहि ।

पितुर्पे अस्मि वन्दिता ॥ ७ ॥

यदीशीयामृतानामुत वा मर्यानाम् ।
जीवेदिन्मपया मर्म
न वेद्यानामर्ति मृतं शतारमा चन जीयति ।
तथा युजा वि यावृते

ऋक्षाश्चमेधी ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।१८।१४-१९)

श्रियमेध आधिरसः । गावर्षः ।

उपमा पड् द्वाद्वा नरः सोमस्य हर्ष्या ।
तिष्ठन्ति स्वादुरातरयः
ऋजाविन्द्रोत आ ददे हरी ऋक्षस्य सुनर्वि ।
आश्वमेधस्य रोहिता
सुर्या आतिथिगवे स्वमीशैराक्षे ।
आश्वमेधे सुपेशसः
पळदधौ आतिथिगव इन्द्रोते वधूमतः ।
सचां पूतकृतौ सनम् ।
एषु चेतद्दृपण्यत्यन्तऋजेष्वरुपी ।
स्वभीशुः कशावती
न युष्मे वाजयन्ध्रवो नितिसुक्ष्म मन्यैः ।
अवधमधि दीधरत्

उर्वेशि ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।९।१,२,६,८-१०,१२,१४,१७)

पुरूबा ऐळ ऋषिः । त्रिष्टुप् ।

हृये जाये मर्नसा तिष्ठं घोरे
वर्चांसि मिधा कृणवाघट्टे जु ।
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते ।
मयंस्करन् परतरे चनाहन्
इपुर्न श्रिय इपुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः ।
अवीरे क्रतौ वि दधिपुतभोरा
न मायुं चितयन्तुः धुनयः

या सुजुषिः श्रेणिः सुम्न आपिः
॥ ८ ॥ ह्रदेचक्षुर्न प्रथिनी चरण्युः ।

ता अंजयोऽरुणयो न संक्षुः

॥ ९ ॥ श्रिये गावो न धेनवोऽनवन्त ॥ ६ ॥

सचा यदासु जहतीष्वत्कं
अमानुषीषु मानुषो निषेवं ।

अपं स्म मत्तरसन्ती न भुज्युः

ता अत्रसन् रथस्पृशो नाश्वः ॥ ८ ॥

यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्
सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृङ्क्ते ।

ता आतयो न तन्वः शुम्भत स्वा
अश्वसो न क्रीळयो दन्दशानाः

॥ ९ ॥

विद्युन्न या पतन्ती दावेद्योत्
भरन्ती मे अप्या काम्यानि ।

जनिष्ठो ऋषे नर्यः सुजातः

प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः ॥ १० ॥

कदा सुनुः पितरं जात इच्छात्
चक्रन्नाशुं वर्तयद्विजानन् ।

को दंपती समनसा वि यूयोत्
अथ यदग्निः भ्यशुरेषु दीदयत्

॥ १२ ॥

सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्
परपतं परमां पन्तवा उं

अघा शर्यात् निर्भ्रतेरुपस्थे
अर्धेनं वृका रभसासौ अघुः

॥ १४ ॥

अन्तरिक्षमां रजसो यिमांनं
उपे शिक्षाम्पुर्वशां वसिष्ठः ।

उपे स्वा रातिः सुभृतस्य तिम्रात्
नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे

॥ ३ ॥

पुरुुररररर

॥ १ ॥ (ऋ० १०१२-११२, ४-५, ७, ११, १३, १५-१६, १८)
नवश्री ऋषिः । त्रिष्टुप् ।

किमेता वाचा कृणुषा तवाहं
प्राकमिपमुपसामप्रियेव ।
पुरुुरवः पुनरस्तं परेहि
दुरापना वातं ह्वाहमसि
सा वसु दधती भवशुराय वयं
उपो यदि वप्रयन्तिगृहात् ।
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन्
दिवा नक्तं श्रथिता वैतसेन
त्रिः स्म माहः श्रययो वैतसेन
उत स्म मेऽव्यत्यै पूणासि ।
पुरुुरवोऽनु ते केतमायं
राजा मे वीर तन्वदुस्तदासीः
सर्मस्मिज्जायमान आसत् प्रा
उतेमवधेन् नद्यः स्वर्गताः ।
महे यत् त्वां पुरुुरवो रणाय
अवधेयन् दस्युहत्याय देवाः
जह्रिप इत्या गोपीव्याय हि
दधाथु तत् पुरुुरवो म ओजः ।
अशासं त्वा विदुपी सस्मिन्नहन्
न म आशृणोः किमभुवददासि
प्रतिं प्रधाणि चर्तयते अथ्रुं
चक्रन् न क्रन्ददार्घ्यं शिवायै ।
प्र तत् तैं दिनवा यत् तैं अस्मे
प्रेच्छास्तं नहि मूर मापः
पुरुुरवो मा मृथा मा प्र पत्तो
मा त्या वृकांसो अशिवास उ क्षन् ।
न चै स्त्रैणानि सुव्यानि सन्ति
सालावृकाणां हृदयान्येता

॥ २ ॥

॥ ४ ॥

॥ ५ ॥

॥ ७ ॥

॥ ११ ॥

॥ १३ ॥

॥ १५ ॥

यद्विरूपाचरे मत्स्यैववसे रात्रीः शरदश्चतस्रः ।

घृतस्य स्तोत्रं सरुदहं आश्रां
तादेवेदं तातृपाणा चरामि ॥ १६ ॥

इति त्वा देवा इम आहुरैच्छ
यथैमेतन्नवसि मत्स्यैवन्धुः ।
प्रजा तैं देवान् हविषा यजाति
स्वर्गं उ त्वमपि मादयासे ॥ १८ ॥

रुक्मण्यस्य दानस्तुतिः

॥ १ ॥ (ऋ० १ः११५१२-७)

कशीवान् ऋषिभो देधतमघ । त्रिष्टुप्, ४-५ जगती ।

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति
तं चिकित्वा प्रतियुष्ठा नि धसे ।

तेन प्रजां वर्धयमान आयुं
शयस्पोषेण सचते सुधीरः ॥ १ ॥

सुगुरसत् सुहिरण्यः स्वश्वो
यदुदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।

यस्तवायन्तं वसुना प्रातरित्वो
सुधीर्जयेव पादिसुस्तिनाति ॥ २ ॥

आयमघ सुकृतं प्रातरिच्छन्
इष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।

अशोः सुतं पायय मत्स्यस्य
क्षयर्हीरं वर्धय सुनुताभिः ॥ ३ ॥

उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव
ईजान च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।

पृणन्तं च पर्परि च श्रवस्यवो
घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः ॥ ४ ॥

नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितो
यः पूणाति स हं देवेषु गच्छति ।

तस्मा आपो घृतमपाण्त् सिन्धवः
तस्मा इय दक्षिणा पिबन्ते सदा ॥ ५ ॥

यदीशीयामृतानामृतं वा मर्यानाम् ।
जीवेदिन्मद्यवा मर्म ॥ ८ ॥
न देवानामतिं व्रतं शतारमां च न जीयति ।
तथा युजा वि वावृते ॥ ९ ॥

ऋक्षस्यमेधो ।

॥ १ ॥ (ऋ० ८।६।१४-१९)

प्रियमेध आगिरसः । गायत्री ।

उपमा पद् द्वाद्वानरः सोमस्य हर्ष्या ।
तिष्ठन्ति स्वादुरातयः ॥ १४ ॥
ऋजाविन्द्रोत आ ददे हरि ऋक्षस्य सूनर्वि ।
आह्वमेधस्य रोहिता ॥ १५ ॥
सुरधौ आतिथिग्वे स्वमीशराक्षे ।
आह्वमेधे सुपेशसः ॥ १६ ॥
पळस्वौ आतिथिग्व इन्द्रोते वधूमतः ।
सर्चा पूतकृतौ सनम् । ॥ १७ ॥
एषु चेतद्रूपणवत्यन्तर्द्धुञ्जेष्वरुषी ।
स्वमीशुः कशावती ॥ १८ ॥
न युष्मे वाजवन्ध्रवो निनिस्तुश्चन मर्यः ।
अयचमधि दीधरत् ॥ १९ ॥

उर्वशी ।

॥ १ ॥ (ऋ० १०।९।१,२,६,८-१०,११,१४,१७)

पुस्त्रवा ऐळ ऋषिः । त्रिष्टुप् ।

हृये जाये मर्नसा तिष्ठे घोरे
वर्चांसि मिधा कृणवावहै नु ।
न नौ मन्त्रा अतुदितास प्ते ।
मयस्करन् परतरे चनाहन् ॥ १ ॥
एषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोपाः शंतसा न रदिः ।
अयोरे क्रतौ वि दधिचतुधोरा
न मायुं चितयन्तः धुनयः ॥ ३ ॥

या सुजुर्णिः श्रेणिः मुम्न आपिः
हृदेचक्षुर्ने प्रथिनीं चरण्युः ।
ता भंजयोऽरण्यो न संश्रुः
श्रिये गाथो न धेनयोऽनयन्त ॥ ६ ॥

सचा यदासु जहतीप्यन्कं
अमानुपीषु मानुषो निर्वेवं ।
अपं स्म मत्तरसंग्ती न मुज्युः
ता अत्रसन् रथस्पृशो नाभ्याः ॥ ८ ॥

यदासु मतो अमृतासु निस्पृक्
सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृङ्कते ।
ता आतयो न तन्वः शुम्भत स्वा
अभ्यासो न प्रीळयो दन्दशानाः ॥ ९ ॥

विद्युन्न या पतन्ती दधिद्योत्
भरेन्ती मे अप्या काम्यानि ।
जनिषो अपे नर्यः सुजातः
प्रोर्वशी तिरत दीर्घमार्युः ॥ १० ॥

कदा सूनुः पितरं जात इच्छात्
चक्राश्रुं वर्तयद्विजानन् ।
को दंपती समनसा वि यूयोत्
अध यदग्निः श्वशुरेषु दीदयत् ॥ १२ ॥

सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्
पराधतं परमां पन्त्वा उं
अद्या शयीत निष्कृतेरुपस्थे
अधेनं वृका रभसासौ अद्युः ॥ १४ ॥

अन्तरिक्षमां रजसो विमार्तां
उपं शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः ।
उपं त्वा रातिः सुकृतस्य तिग्राव
नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे ॥ १७ ॥

पुरूरवा ।

॥ १ ॥ (अ० १०२.१०, ४-५, ७, ११, १३, १५-१६, १८)
वर्षां ऋषिः । त्रिष्टुप् ।

किमेता वाचा कृणवा तवाहं
प्राक्रमिपमुपसामप्रियेव ।
पुरूरवः पुनरस्तं परेदि
दुरापुना वार्त इवाहमसि
सा वसु दर्धती भवशुराय वय
उपो यदि वप्रघनितगृहात् ।
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्जाकन्
दिया नफत्तं श्रिता वैतसेन
त्रिः स्म माहः श्रययो वैतसेन
उत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि ।
पुरूरवोऽस्तु ते केतमायं
राजा मे वीर तन्वदुस्तदासीः
समस्मिञ्जायमान आसत् प्रा
उतेमवर्धन् नद्यः स्वर्गताः ।
महे यत् त्वां पुरूरवो रणाय
अवर्धयन् दस्युहृत्प्राय देवाः ।
जिह्विप इत्या गोपीधर्षाय हि
दद्याथ तत् पुरूरवो म् ओजः ।
अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्
न म् आशृणोः किमभुवदासि
प्रतिं प्रवाणि वर्तयते अधु
चक्रन् न क्रन्ददार्घ्यं शिवायै ।
प्र तत् ते दिनवा यत् ते अस्मे
परेहस्तं नदि मूर मापः
पुरूरवो मा मृया मा प्र पतो
मा त्वा वृकांसो अशिवास उ क्षन् ।
न वै खैणानि सत्यानि सन्ति
सालावृकाणां हृदयान्येता -

यद्विरूपाचरं मत्यैष्वर्षसं रात्रीः शस्त्रश्चर्तन्नः ।

धृतस्य स्तोत्रं सुरुदहं आश्रां
तादेवेदं तांरुपाणा चरामि ॥ १९ ॥

इति त्वा देवा इम आहुरेह
यद्येतेतद्भवसि मृत्युवन्धुः ।
प्रजा ते देवान् हविषा यजाति
स्वर्गं उ त्वमपि मादयासे ॥ १८ ॥

रुक्मण्यस्य दानस्तुतिः ।

॥ १ ॥ (अ० ११२५।२-७)

इशीवात् औषिजो देधतमघः । त्रिष्टुप्, ४-५ अणो ।

॥ ४ ॥

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति
तं चिकित्वात् प्रतिगृह्णा नि र्घसे ।

॥ ५ ॥

तेन प्रजां वर्धयमान आयुं
शयस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ १ ॥

॥ ७ ॥

सुशूरसत् सुहिरण्यः स्वभ्यो
बहुवस्मै वय इन्द्रो दधाति ।
यस्त्यायन्तं वसुना प्रातरित्वा
मुक्षीजयेव परिसुत्सिनानि ॥ २ ॥

॥ ११ ॥

आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्
इष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।

॥ १३ ॥

अशोः सुतं प्रायय मत्सुरस्य
क्षयदीरं वर्धय सुमताभिः ॥ ३ ॥

॥ १५ ॥

उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव
ईजान च यक्षमाणं च धेनवः ।

॥ १७ ॥

पूणन्तं च पर्परि च श्रवस्यवो
धृतस्य धारु उप यन्ति विभवतः ॥ ४ ॥

॥ १९ ॥

नार्कस्य पृष्ठे आधि तिष्ठति श्रितो
यः पूणाति स हं देवेभ्यु गच्छति ।

॥ २१ ॥

तस्मा आपो धृतमथान्तु सिन्धवः
तसां ह्य दक्षिणा पिन्वते सदां ॥ ५ ॥

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा
 दक्षिणावतां द्विवि सूर्यासः ।
 दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते
 दक्षिणावन्तः प्र तिरन्तु आयुः ॥ १ ॥
 मा पूणन्तो दुरितमेन आरन्
 मा जारिपु सूर्यः सुमतासः ।
 अन्यस्तेषां परिधिरेस्तु कश्चित्
 अपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ॥ ७ ॥

अभ्यमर्त्तिः ।

॥ १ ॥ (क्र० १०१०११-४, ६)

बन्धु धृतव-धुर्विप्रबन्धुगौपावनाः । २ अगस्त्यस्वधा
 ऋषिः । गायत्री, ६ अनुष्टुप् ।

आ जनं त्वेषसँदशं माहीनानामुपस्तुतम् ।
 अगन्म विभ्रतो नमः ॥ १ ॥
 असंमर्त्तिं नितोशनं त्वेषं निययिनं रथम् ।
 भुजेरथस्य सत्पतिम् ॥ २ ॥
 यो जनान् महिषो ह्वातितस्थौ पवीरवान् ।
 उतापवीरवान् युधा ॥ ३ ॥
 यस्यैश्वाकुरुषं व्रते रेवान् मंरायेधते ।
 द्विवीच पंचकृष्टयः ॥ ४ ॥
 अगस्त्यस्य नद्रयः सती युनक्षि रोहिता ।
 पृणीन् न्यकमीरुमि विश्वान् राजन्नराधसः ॥ ६ ॥

साक्षर्णदीनम् ।

॥ १ ॥ (क्र० १०११८-११)

नामानेदिष्टो मानव । अनुष्टुप्, १० गायत्री, ११ त्रिष्टुप् ।

प्र नूनं जायतामये मनुस्तापमेय रोहनु ।
 यः सुहृदं शताश्वं सद्यो दानाय मंहते ॥ ८ ॥
 न तमश्नोति कश्चन द्विव रथं सान्वारमम् ।
 सायण्यस्य दक्षिणा धि सिन्धुरिव पप्रये ॥ ९ ॥

उत दासा परिविवे साहिष्ठी गोपरीणसा ।
 यदुस्तुर्षधं मामदे ॥ १० ॥
 सुहृद्व्रा प्रामणीमां रिपुन्मनुः
 सूर्येणास्य यतमानेतु दक्षिणा ।
 सायण्येदेयाः प्र तिरन्त्यायुः
 यस्मिन्नध्रान्ता असनाम धार्जम् ॥ ११ ॥

शितिपाद् अक्षिः ।

॥ १ ॥ (अथर्वं ३।१९।१-६)

उत्तालङ् । शितिपाद् अक्षिः । अनुष्टुप्, १, १ पद्य
 पञ्क्तिः, ७ त्रयसाना पद्यदा उपरिष्टदेवो बृहती ककुम्भ
 तोगर्मा विराड्ब्रह्मती, ८ उपरिष्टाद्बृहती ।

यद्राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य
 षोडशं यमस्यामी संभासदः ।
 अविस्तस्मात् प्र मुञ्चति दत्तः शितिपात् स्वधा ॥ १ ॥
 सर्वान् कामान् पूर्यत्याभवं प्रभवन् भवं ।
 आकृतिप्रोऽविदत्तः शितिपाद्रोपं दस्यति ॥ २ ॥
 यो ददाति शितिपाद्मर्षिं लोकेन संमितम् ।
 स नाकमभ्यारोहति यत्रं शुल्को
 न क्रियते अवलेन बलीयसे ॥ ३ ॥
 पञ्चापं शितिपाद्मर्षिं लोकेन संमितम् ।
 प्रदातोर्षं जीवति पितृणां लोकेऽक्षितम् ॥ ४ ॥
 पञ्चापं शितिपाद्मर्षिं लोकेन संमितम् ।
 प्रदातोर्षं जीवति सूर्यामसयोरक्षितम् ॥ ५ ॥
 हरेव नोपं दस्यति समुद्रं इव पयो मूढव ।
 देवो संघासिनाविव शितिपाद्रोपं दस्यति ॥ ५ ॥

अथ परिशिष्टानि ।

अथ खिलपृक्तानि ।

(१)

शनैर्दिचदद्य सूर्येणादित्येन सहीयसा ।
 अहं यदास्विनां यशो विचारूपमुपा ददे ॥ १ ॥
 (७६११)

आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वंद -
तुष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्दि नः ।
यदुत्पतन् वदसि कर्करिथंथा
बृहद्देवम विदथे सुवीराः

(५)

आर्गपि त्वं भुवने जातवेदो
जागर्गि यत्र यजते हविष्मान् ।
इदं हविः श्रद्धधानो जुहोमि
तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम्

(६)

सुक्तान्तेऽस्येत्तृणान्यग्ना—विरिणे वोदकेऽपि वा ।
यदस्तुर्नैरधीतं तत् तुणानि भवति ध्रुवम् ॥ १ ॥
वापीकूपतडागानां सुमुद्रं गच्छ स्वाहा
[अग्निं गच्छ स्वाहा]

(७)

स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमारष्टनेमि
महद्रूतं वायुसं देवतानाम् ।
असुप्रमिन्द्रसखं समत्सु
बृहद्यशो नार्यमिवा रुहेम
अहोमुचमाङ्गिरसं गर्भं च
स्वस्त्यात्रियं मनसा च तार्क्ष्यम् ।

(८)

प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्ये
स्यस्ति सैवाधेवभयं नो अस्तु

(९)

यपंतु ते विभावरि द्वियो अश्रस्यं विद्युतः ।
रोहंतु सर्वैयाजा—स्ययं ब्रह्माद्विषो जहि ॥ १ ॥

(१०)

आ ते गर्भो योनिर्मैतु पुमान् यार्ण इयेषुधिम् ।
आ घीरो जायतां पुत्रस्तं दशमास्यः ॥ १ ॥

बुधोमि ते प्राजापत्य—मा गर्भो योनिर्मैतु ते ।
धनुः पूर्णो जायता—मन्त्रोणोऽपिशाचधीतः ॥ २ ॥

पुर्मोस्ते पुत्रो नारिं त पुमान्नुजायताम् ।
यानि भद्राणि धीजा—न्यूपमा जनयन्ति नो ॥ ३ ॥

यानि भद्राणि धीजा—न्यूपमा जनयन्ति नः ।
तैस्त्वै पुत्रान् विन्दस्व सा प्रसूधेनुका भव ॥ ४ ॥
कामः समृद्धयतां मद्य—मुपराजितमेव मे ।
यं कामं कामये देव तं मे वायो सुमर्दय ॥ ५ ॥

(१०)

अग्निरैतु प्रथमो देवतानां
सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् ।
तदयं राजा वरुणोऽस्तुमन्यतां
यथेयं स्त्री पौत्रमयं न रोदात् ॥ १ ॥

इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः
प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः ।
अशुन्योपस्था जीवतामस्तु माता
पौत्रमानन्दमभि प्रबुद्धयतामियम् ॥ २ ॥

मा ते गृहे निशि घोष उत्थात्
अन्यत्र त्वद्गुदत्यः सं विशन्तु ।
मा त्व विकेश्युर आर्बधिष्ठा
जीवपत्नी पतिलोके विराज पश्यन्ती
प्रजां सुमनस्यमाना ॥ ३ ॥

अप्रजस्तां पौत्रमृत्युं पाप्मानमुत वाधम् ।
शीर्ष्णः स्रजमिवोन्मुच्य
द्विपद्भयः प्रतिमुञ्चामि पाशम् ॥ ४ ॥
देवकृतं ब्राह्मणं कल्पमानं
तेन हन्मि योनिपदः पिशाचान् ।

ऋग्यादो मृत्यूनघरान् पातयामि
दीर्घयायुस्तव जीवन्तु पुत्राः ॥ ५ ॥
(११)

अथ अग्निसूक्तम् ।

(प्रायव - आन द - वदव - धाद - चिकिताः धीत्रा ॥
वदता - धराप्रय । छन्द - अगुद्वृ, ४ वृत्ति,
५-६ त्रिपुत्र, १५ आगत वृत्तिः ।)

द्विरण्यवर्णा हरिणीं सुवर्णैरजतैरजाम् ।
पुत्रां द्विरण्यवर्णां लह्मां जातवेदो म आ वंद ॥ १ ॥

तां म आ बंह जातवेदो लक्ष्मीमर्नपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुष्टपानहम् ॥ २ ॥
अश्वपूर्वा रथमव्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम् ।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीमीं देवी जुपताम् ॥ ३ ॥
कां सोऽस्मितां हिरण्यप्राकारामाद्रां
ज्वलन्तीं ततां तपयन्तीम् ।
पुत्रेऽस्थितां पशवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम् ॥ ४ ॥
चन्द्रां प्रमासां यशसा ज्वलन्तीं
श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मिनीमां शरणं प्र पथे
अलक्ष्मीमै नश्यतां त्वां वृणे ॥ ५ ॥
आदित्यवर्षणं तपसोऽधि जातो
घनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ विल्वः
तस्य फलानि तपसा जुदन्तु
या आन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥ ६ ॥
उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च माण्डिना सह ।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥ ७ ॥
क्षुत्पिपासामालां ज्येष्ठां मलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अमृतिमसंमृद्धिं च सर्वो निर्जुद मे वृद्धाव् ॥ ८ ॥
गन्धद्वायां दुराश्रयां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम् ॥ ९ ॥
मर्नसुः काममाकूतिं घाचः सत्यमशीमादि ।
पदानां रूपमधस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥ १० ॥
कर्मभेन प्रजा भूता मयि संभव कर्म ।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥ ११ ॥
आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिह्नितं वस मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥ १२ ॥
आद्रो पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्ययीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ बंह ॥ १३ ॥
आद्रो यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्ययीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ बंह ॥ १४ ॥

तां म आ बंह जातवेदो लक्ष्मीमर्नपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभृतं गावो
दास्योऽश्वान् विन्देयं पुष्टपानहम् ॥ १५ ॥
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
सूक्तं पञ्चदशच्च श्रीकामः सततं जपेत् ॥ १६ ॥
पद्मानने पद्मविपद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि ।
विश्वप्रिये विष्णुमनोऽसुकुले
त्वत्पादपद्मं मयि सं निं धत्स्व ॥ १७ ॥
पद्मानने पद्मजुरु पद्माक्षि पद्मसंभवे ।
तन्मै मजसिं पद्माक्षि येन सौख्यं लुमाप्यहम् ॥ १८ ॥
अश्वदायि गोदायि धनदायि महाधने ।
धनं मे जुपतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे ॥ १९ ॥
पुत्रपौत्रधनं धान्यं हस्त्यश्वान्श्वतरीं रथम् ।
प्रजानां भवसि माता आयुष्मन्तं करोतु मे ॥ २० ॥
धनमग्निधनं वायुधनं सूर्यो धनं वसुः ।
घनमिन्द्रो वृद्धस्पतिर्वरुणो घनमश्विना ॥ २१ ॥
वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा ।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः ॥ २२ ॥
न क्रोधो न च मात्स्यं न लोभो नाशुमा मतिः ।
भवन्ति कृतपुण्यानां मुक्त्या श्रीसंज्ञानाम् ॥ २३ ॥
सरसिजनिलये सरौजहस्ते
घवलतरांशुकगंधमाल्यशोभे ।
मगवति हरियुद्धमै मनोभे
त्रिभुवनभूतिकरिं प्र साद महाम् ॥ २४ ॥
विष्णुपत्नीं शंभां देवीं माघवीं माघवप्रियाम् ।
लक्ष्मीं प्रियसर्पां भूमिं नमान्यं च्युतचहंमाम् ॥ २५ ॥
महालक्ष्म्ये च विभ्रहे विष्णुपत्न्यै च धीमदि ।
तशो लक्ष्मीः प्र चोदयात् ॥ २६ ॥
आनन्दः कर्मः श्रीदक्षिणतीर्त इति विद्युताः ।
श्रुपयः श्रियः पुत्राश्च श्रीदेवीदेवता मताः ॥ २७ ॥
श्रुणुयोगादिदारिद्र्यपापशुद्धपमृत्यवः ।
भयशाकर्मनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ॥ २८ ॥

श्रीवर्चस्वमार्युग्यमारोग्यमाविधात्
शोभमानं महीयते ।

घनं घान्यं पशुं बहुपुत्रलामं

शतसैवत्सरं दीर्घमार्युः

॥ इति श्रीसूक्तम् ॥ x

(१२)

सधुश्च श्रोत्रं च मनश्च वाक् च

प्राणापानौ देह इदं शरीरम् ।

द्वौ प्रत्यञ्चावनलौमौ विसर्गौ

एतं तं मन्ये दशयन्त्रमुत्सम्

नखश्च पृष्ठश्च करौ च ग्राह

जड्ये चोरु उदरं शिरश्च ।

रोमाणि मांसं रुधिरास्थिमज्जं

एतच्छरीरं जलधुंद्दोषमम्

ध्रुवौ ललाटे च तथा च कर्णौ

हृन् कपोलौ ह्युबुक्स्तथा च ।

शोष्ठौ च दन्ताश्च तथैव जिह्वा

मे तच्छरीरं मुपरतनकोशम्

(१३)

सुचान्तेऽस्वेत्तृणान्यग्ना विरिणो योवुकेऽपि वा ।

यद्वस्त्वर्णैरधीतं तत् तृणानि भवति ध्रुयम् ॥ १ ॥

घापीकपतडागानां समुद्रं गच्छ स्याद्वा

[धामि गच्छ स्याद्वा]

(१०)

शंपतीः पारयन्त्येते तं वृच्छन्ति पचो युजा ।

धम्यारं तं यमार्कन्तुं य एयेदमिति प्रयन् ॥ १ ॥

मागार्कन्तुं परिस्रुतं भारतीप्रह्लापधनीः ।

संज्ञानाना मदी माता य एयेदमिति प्रयत् ॥ २ ॥

इन्द्रस्य ईरि पिभुं प्रभुं भानुनेयं सरस्वतीम् ।

येन सूर्यमरौचयु-चनेमे रोदसी उमे ॥ ३ ॥

जुषस्वाग्ने धाङ्गिरः षाण्यं मेरुपातिपिम् ।

मा स्या सोमस्य पशुदत्त स्रतस्य मर्युमलमः ॥ ४ ॥

त्वमग्ने धाङ्गिरः शोचस्व देववीतमः ।

आ शतम् शतंमाभि-भिर्घिभिः

शान्तिः स्वस्तिमकुर्वत ॥ ५ ॥

शं नः कर्निकदद् देवः पुर्जन्यो भभि वर्येतु ।

शं नो घावापृथिवी शं प्रजाभ्यः शं न पथि

द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ६ ॥

(१५)

स्वप्न स्वप्नाधिकरणे सर्वं नि स्वापया जनम् ।

आसुर्यमन्यान्त्स्वापया-व्युक्तं जात्रियामद्दम् ॥ १ ॥

अजगरो नाम सर्पः सर्पिरविषो महान् ।

तस्मिन् हि सर्पः सुधित-स्तेन त्वा स्वापयामसि

सर्पः सर्पो अजगरः सर्पिरविषो महान् ।

तस्य सर्पात् सिन्धव-स्तस्यं गाधर्मशीमहि ॥ ३ ॥

कालिको नाम सर्पो नवनागसहस्रबलः ।

यमुनहृदे हं सो जातोऽयं यो नारायणवाहनः ॥ ४ ॥

यदि कालिकदूतस्य यदि काःकालिकाद्गयात् ।

जन्ममूर्धमितिफ्रान्तो निर्विषो याति कालिकः ॥ ५ ॥

आ याहीन्द्र पृथिभिरीळितेभिः

यहमिमं नो भागधेयं जुषस्व ।

तुसां जहुमांतुल्लसेयव योपा

भागस्ते पैतृष्वसेयी षुपांमिव

यशस्करं बलवन्तं प्रभुत्वं ॥ ६ ॥

तमेय राजाधिपतिर्धभूय ।

संकीर्णनागाभ्यपतिर्नराणां

सुमहत्त्वं सततं दीर्घमार्युः ॥ ७ ॥

ककौटको नाम सर्पो हृष्टीविष उच्यते ।

तस्य सर्पस्य सर्पत्वं तस्मै सर्पं नुमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥

येऽप्ये रोच्यन्ते द्वियो ये वा सूर्यस्य इदिमपुं ।

येषामप्यु सशस्त्रतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ९ ॥

या ह्ययो यातुषानानां ये वा घनस्पतीर्ननु ।

ये वायेदेषु रोते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ १० ॥

(१०१)

नमो अस्तु सूर्यो ये के च पृथिवीमनु ।
 ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सूर्यो नमः ॥ ११ ॥
 उम्रायुधाः प्रमतिनः प्रवीरा
 मायाविर्नो वलितो मिच्छमानाः ।
 ये देवानसुराः परामभवन्
 तास्त्वं वज्रेण मघवन् निवारय ॥ १२ ॥
 (१६)
 यस्य व्रतं पशुयो यन्ति सर्वे
 यस्य वृत्तमुपतिष्ठन्त आपः ।
 यस्य वृत्ते पुष्टिपतिर्निविष्टः
 तं सरस्वन्तमवसे हुवेम ॥ १ ॥
 (१७)
 उपप्लवत मण्डुकि वर्षमा वंद तादुरि ।
 मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व निगृह्य चतुरः पदः ॥ १ ॥
 (१८)
 पायमानीः स्वस्त्यर्पनीः सुदुघा हि धृतश्चुतः ।
 अर्पिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेभ्यमृतं हितम् ॥ १ ॥
 पायमानीर्दिशन्तु न इमं लोकानयो अमुम् ।
 कामान्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहिताः ॥ २ ॥
 येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।
 तेन सहस्रधारेण पायमान्यः पुनन्तु माम् ॥ ३ ॥
 प्राजापत्यं पवित्रं शतोद्यांमं हिरण्यमयम् ।
 तेन ब्रह्मविदो ध्रुवं पुतं ब्रह्म पुनीमहे ॥ ४ ॥
 इन्द्रः पुनीतो सह मा पुनातु
 सोमः स्वस्त्या वरुणः समीच्या ।
 यमो राजा प्रमृणामिः पुनातु मा
 जातवेदा मूर्जर्यन्त्या पुनातु ॥ ५ ॥
 श्रुपयस्तु तपस्तेषुः सर्वे स्वर्गजिगीषयः ।
 तपन्तस्तपसोप्रेण पायमानीर्भृचोऽद्रुवन् ॥ ६ ॥
 यन्ने गर्भे वसतः पापमुद्रं
 यज्जायमानस्यं च किञ्चिद्व्यत् ।
 जातस्यं च यथापि च धर्षतो मे
 तत् पायमानीर्भिरहं पुनामि ॥ ७ ॥

मातापित्रोर्यन्न कृतं वचो मे
 यत् स्याद्वरं जह्मममाद्यभूव ।
 विश्वस्य तत् प्रहपितं वचो मे
 तत् पायमानीर्भिरहं पुनामि ॥ ८ ॥
 गोधनात् तस्करन्वात्
 स्त्रीवधाद्यच्च किलियम् ।
 पापकं च चरणेभ्यः
 तत् पायमानीर्भिरहं पुनामि ॥ ९ ॥
 ब्रह्मवधात् सुरापानात् स्वर्णस्तेयाद्
 वृषलिगमनमैथुनसंगमात् ।
 गुरोर्दाराधिगमनाच्च
 तत् पायमानीर्भिरहं पुनामि ॥ १० ॥
 बालघ्नान्मारुपितृवधाद्भूमितस्करात्
 सर्ववर्णगमनमैथुनसंगमात् ।
 पापेभ्यश्च प्रतिग्रहात् सद्यः
 प्रहरति सर्वदुष्कृतं तत् पायमानीर्भिरहं पुनामि ॥ ११ ॥
 क्रयविक्रयाद्योनिदोषाद्
 भक्षान्द्रोण्यात् प्रतिग्रहात् ।
 असंमोज्जनाद्यापि नृशंसं
 तत् पायमानीर्भिरहं पुनामि ॥ १२ ॥
 दुर्यष्टं दुरधीतं पापं
 यथाज्ञानतो कृतम् ।
 ययाजिताश्चासंयाज्याः
 तत् पायमानीर्भिरहं पुनामि ॥ १३ ॥
 अमन्त्रमन्त्रं यत् किञ्चित् भूयते च हृत्ताराने ।
 संवत्सरकृतं पापं
 तत् पायमानीर्भिरहं पुनामि ॥ १४ ॥
 श्रुतस्य योनेरोऽमृतस्य धाम
 विश्वा देवेभ्यः पुण्यगन्धाः ।
 ता न आपः प्र यदन्तु पापं सुखा
 गच्छामि सुरताम लोकं
 तत् पायमानीर्भिरहं पुनामि ॥ १५ ॥

पावमानीः स्वस्त्ययनी—र्याभिर्गच्छति नान्दनम् ।
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षय—त्यमृतत्वं च गच्छति १६

पावमानीः पितृन्देवान्

ध्यायेद्यश्च सुरस्वर्तमि ।

पितृस्तस्योप वर्तेत क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ १७ ॥

पावमानं परं ब्रह्म शुक्रं ज्योतिः सनातनम् ।

ऋषोस्तस्योप तिष्ठेत् क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ १८ ॥

पावमानं परं ब्रह्म

ये पठन्ति मनीषिणः ।

सप्त जन्म भवेद्भ्रियो धनाढ्यो वेदपारंगः ॥ १९ ॥

दशोत्तराण्यृचाश्चैव पावमानीः शतानि वट् ।

एतज्जुह्वन् जपेन्मन्त्रं घोरमृत्युभयं हरेत् ॥ २० ॥

एतत् पुण्यं पापहरं रोगमृत्युभयापहम् ।

पठतां ऋषवतां चैव ददाति परमां गतिम् ॥ २१ ॥

(१९)

इत्येव यामनु यस्तां घृतेन

यस्माः पदे पुनते देधुयन्तः ।

घृतपदी शम्भरी सौमपृष्ठा

उप यष्टमास्थित धैश्वदेयी

धैश्वदेयी पुनती देव्या गात्

यस्यामि मा षडपस्तन्वो धीतपृष्ठाः ।

तया मर्दतः सधमदैषु

ययं स्याम परयो रयीणाम् ।

(२०)

यत्र तत् परमं पुत्रं विष्णोर्लोकं महीयते ।

सुयैः सृष्टवर्कमग्नि—स्तत्र माममृतं एधि

इन्द्रोयेन्द्रो परिं ह्य

यत्र तत् परमार्यं भूतानामधिपतिम् ।

भाषमायी स्य योगीश्वर तत्र माममृतं कृषी० ॥ २ ॥

यत्र लोकास्तन्ययज्ञः धरया तपसा जिताः ।

नेत्रैश्च यत्र ब्रह्मा स तत्र माममृतं ॥ ३ ॥

यत्र देवा महात्मानः सेन्द्राश्च समरूपाः ।

ब्रह्मा च यत्र विष्णुश्च तत्र माममृतं ॥ ४ ॥

यत्र गंगा च जमुना च यत्र प्राची सुरस्वती ।

यत्र सोमेश्वरो देव स्तत्र माममृतं ॥ ५ ॥

यत्र तद्विष्णुर्महीयते नराणामधिपतिम् ।

यत्र शङ्खचक्रगदाधरस्मरणं मुक्तिश्च तत्र ॥ ६ ॥

(११)

सन्नुपीस्तदपसो दिवा नक्तं च सन्नुपीः ।

वरैण्यक्रतूरहमा देवीरवसे हुये ॥ १ ॥

(१२)

सितासिते सरिते यत्र संग्रथे

तत्रामृतासो दिवमुत्पतन्ति ।

ये वै तन्वु वि संजन्ति धीराः

ते जनांसो अमृतत्वं भजन्ते ॥ १ ॥

(१३)

अविधवा भयं वर्षाणि शतं सांशं तु सुव्रता ।

तेजस्वी च यशस्वी च धर्मपत्नी पतिव्रता ॥ १ ॥

जनयद्दशहपुत्राणि मा च दुःखं लभेत् क्वचित् ।

भर्ता ते सोमपा नित्यं भवेद्धर्मपरायणः ॥ २ ॥

अष्टपुत्रा भयं त्वं च सुभगा च पतिव्रता ।

भर्तुश्चैव पितुर्भ्रातु—र्हृदयानन्दिनी सदा ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य तु यथेन्द्राणीं श्रीधरस्य यथा श्रिया ।

शंकरस्य यथा गौरीं तद्भर्तुरपि भर्तारि ॥ ४ ॥

अथैर्यथाऽस्तुत्या स्याद् वसिष्ठस्याप्यरुधती ।

कौशिकस्य यथा सती तथा त्वमपि भर्तारि ॥ ५ ॥

ध्रुवैधि पोष्या मयि महा त्वादाद् स्पतिः ।

मया पर्या प्रजायती सं जीव शरदः शतम् ॥ ६ ॥

(१४)

घसो या सेना मरुतः परेषां

ध्रुवैति न भोजला स्पर्धमाना ।

तां गृहत् तमसाऽप्यमतेन

यथाऽमीषामग्यो अग्यं न जानात् ॥ १ ॥

अग्धा अमित्रां भवता—शीर्षाणा अह्य इव ।
तेषां वो अग्निर्दग्धाना—मग्निर्मूढहानां
इन्द्रो हन्तु वरवरम् ॥ २ ॥

(१५)

हविर्भिरैके स्वरितः सर्वन्ते
सुन्वन्त एके सर्वनेषु सोमांश्च ।
शचीर्मदन्त उत दक्षिणाभिः
नेज्जिह्वायन्त्यो नरैके पताम ॥ १ ॥

(२६)

अथ रात्रीसूक्तम्

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितरः प्रायु धामभिः ।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठसु
आ त्वेषं वतैते तमः ॥ १ ॥
ये तै रात्रि नृचक्षसो युकासो नवतिर्नव ।
अशीतिः संवष्टा उतो तै सप्त सप्ततीः ॥ २ ॥
रात्रीं प्र पथे जननीं सुवभूतनिवेशनीम् ।
मद्रां भगवतीं कृष्णां विश्वस्य जगतो निशाम् ॥ ३ ॥
संधेदिनीं सैयमिनीं प्रहनसत्रमालिनीम् ।
प्रप्रोऽहं दिवां रात्रीं मूद्रे पारमशीर्महि
[मूद्रे पारमशीमहो नमः] ॥ ४ ॥

स्तोष्यामि प्रयतो देवीं शरण्यां बहृचप्रियाम् ।
सहस्रसंमितां दुर्गां जातवैदसे सुनवाम सोमम् ॥ ५ ॥
शान्त्यर्थं तद् द्विजातीनां ।
ऋषिभिः सोममाश्रिताः ।
ऋग्वेदे त्वं समुत्पन्ना
अरातीयतो नि दंहाति वेदः ॥ ६ ॥
ये त्वां देवि प्र पथन्ति
ग्राहणां हव्यवाहनोम् ।
अविद्या बहुविद्या वा
स नः पर्यदति दुर्गाणि विभ्वा ॥ ७ ॥

८५

ये अग्निवर्णा शुभां सौम्यां
कीर्तयिष्यन्ति ते द्विजाः ।
तांस्तारयति दुर्गाणि
नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ८ ॥
दुर्गेषु विप्रमे घोरे संप्राप्ते रिपुसंकटे ।
अग्निचोरनिपातेषु दुष्टप्रहनिवारिणि ॥ ९ ॥
दुर्गेषु विप्रमेषु त्वं संप्राप्तेषु वनेषु च ।
मोहयित्वा प्र पथन्ते तेषां मे अमयं कुंठ
[तेषां मे अमयं कुर्वो नमः] ॥ १० ॥
केदिनीं सर्वभूतानां पृथ्वीति च नाम च ।
सा मां समा निशा देवीं सर्वतः परि रक्षतु
[सर्वतः परि रक्षत्वो नमः] ॥ ११ ॥
तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं
वैरोचनां कर्मफलेषु जुष्टाम् ।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्र पथे सुतरसि तरसे नमः
सुतरसि तरसे नमः ॥ १२ ॥
दुर्गां दुर्गेषु स्थानेषु शं नो देवीत्पमिष्टये ।
य इमं दुर्गास्तवेषु पुण्यं रात्रौ रात्रीं सुदा पठेत् ॥ १३ ॥

[रात्रिः ङोशुभः होमरो रात्रिर्मा मारद्वात्रो रात्रिस्वो
गायत्री ।]

रात्रीसूक्तं जपेन्नित्यं तत्कालमुपपद्यते ।
न योनिं पुनरायाति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १४ ॥
क्षीरेण स्नापिता दुर्गा चन्द्रनेत्रेण विलेपिता ।
विल्वपत्रकृतापीडा नमो दुर्गे नमो नमः ॥ १५ ॥
सर्वभूतापेदाचेभ्यः सर्वसर्पसुरीक्षेभ्यः ।
दैवेभ्यो मानुषेभ्यश्च उभयेभ्योऽभिरक्ष माम् ॥ १६ ॥
या ऋग्वेदे स्तुता देवी कादयपेन उदाहृता ।
जातवैदप्रभां गीरां जातवैदसे सुनवाम सोमम् ॥ १७ ॥
सुरासुरैर्द्विजैः पिशाचैर्गणैः ।
अरातिमयं उत्पन्ने अरातायतो नि दंहाति वेदः ॥ १८ ॥

(७३६९)

गजद्वारेऽपथे घोरे संग्रामेषु च गौतमी ।
 सर्वे रक्षतुं दुरितं
 स नः पर्वदतिं दुर्गाणि विश्वा ॥ १९ ॥
 महाभये संमुत्पन्ने सरन्ति च जपन्ति च ।
 सर्वे तारयन्ते दुर्गा
 नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ २० ॥
 य इमं दुर्गास्तवं पुण्यं शूण्वन्ति च जपन्ति च ।
 त्रिषु लोकेषु विख्यातं त्रिषु लोकेषु पूजितम् २१
 अपुत्रो लभते पुत्रान् धनहीनो धनं लभेत् ।
 अर्धक्षलंभते चक्षुर्वदो मुच्येत वर्धनात् ॥२२॥
 व्याधितो मुच्यते रोगावुरोगी श्रियमाप्नुयात् ।
 ददाति कामित सर्वे काल्यार्थनि नमोऽस्तु ते २३

(७)

सनक सनन्दन-सनातनादयः । द्विःपञ्चम् अनुश्रुत्, ५,
 ८-९ त्रिष्टय, ५ अतिशक्तिः, ११ जगती ।

आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषमौद्भिदम् ।
 इदं हिरण्यं वर्चस्व-ज्जैत्राया विंशतादिमाम् ॥ १
 उच्चैर्वीजि पृतनापाद् संमालाहं धनंजयम् ।
 सर्वाः समग्रा ऋद्धयो
 हिरण्येऽस्मिन्समाहिताः ॥ २ ॥
 शुनमहं हिरण्यस्य पितृमानेव जगम ।
 तेन मां सूर्यत्वच-मकरं पुरुषं प्रियम् ॥ ३ ॥
 सुम्राजं च विराजं चाभिष्टियां च मे ध्रुवा ।
 लक्ष्मी राष्ट्रस्य या मुने
 तथा मार्मिन्द्र सं रज ॥ ४ ॥
 अग्नेः प्रजातिं परि यद्विरण्यं
 अमृतं यद्ये अधि मर्त्येषु ।
 य पंतद्रेद् स इदं नमर्हति
 जुरामृत्युर्मेधति यो विमर्ति ॥ ५ ॥
 यद्रेद् राजा परणो यद् देयी सरस्यती ।
 रद्रेद् यद्रेद् दा धेद् तन्मे पचेत् आयुषे ॥ ६ ॥

न तद्दर्शासि न पिशाचाश्चरन्ति
 देवानामोर्जः प्रथमजं ह्येतत् ।
 यो विमर्ति दाक्षायणा हिरण्यं
 स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः
 स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ ७ ॥
 यदावध्न दाक्षायणा हिरण्यं
 शतानीकाय सुमनस्यमाना ।
 तन्न आ वध्नामि शतशारदाय
 आयुष्मान् जरदप्रियथाऽसत् ॥ ८ ॥
 घृतादुल्लेखं मधुमत्सुवर्णं
 धनंजयं धरणं धारयिष्णु ।
 ऋणक् सपत्न्यादधरांश्च कृण्वत्
 आरौह मां महते सौमगाय ॥ ९ ॥
 प्रियं मां कुरु देवेषु प्रियं राजसु मा कुरु ।
 प्रियं विश्वेषु गोत्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥१०॥
 अग्निर्येन विराजति सूर्यो येन विराजति ।
 विराज्येन विराजति तेनास्मान् ब्रह्मणस्पते
 विराज समिधं कुरु ॥ ११ ॥

(९८)

(विह्वय आगिरः । इन्द्रः । जगती)

अर्वाञ्चमिन्द्रममूर्तो हवामहे
 यो गोजिद्धनजिदश्वजिघः ।
 इमं नो हव्यं विह्वये जुषस्य
 अस्म कुल्मो हरिवो मेदिर्न त्वा ॥ १ ॥
 (९९)
 यां कृतपर्यन्ति नोऽरयः क्रूरां कृत्वां वधूमिव ।
 तां ब्रह्मणाऽप्य निर्णयः प्रत्येककर्तारमृच्छतु ॥१॥
 शीर्षण्यतो कर्णवती चिपुरुपां भयंकरीम् ।
 यः प्राहिणोदिहाद्य त्वां धि तं त्वं योजयासुभिः २
 येन दिष्टेद् वदसि प्रतिफलमुघायिनि ।
 तमेयेतो निवर्तस्य
 माऽस्मान् मृच्छो अनारगतः ॥ ३ ॥

(७९८५)

अभिषर्त्स्व कर्तारं निरस्तास्मामिरोजसा ।
 आर्युरस्य निरन्तस्व प्रजां च पुण्यादिनि ॥ ४ ॥
 यस्त्वा कृत्ये चकारेह तं त्वं गच्छ पुनर्नवे ।
 अरातीः कृत्ये नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ५ ॥
 क्षिप्रं कृत्ये निवर्तस्व कर्तुरेव गृहान् प्रति ।
 पर्शुश्चैवास्य नाशय वीरांश्चास्य नि वर्हय ॥ ६ ॥
 यस्त्वा कृत्ये प्रजिघाय विद्वं अर्षिदुषो गृहान् ।
 तस्यैवैतः परेत्याशु तनुं कृषि परुषरुः ॥ ७ ॥
 प्रतीचां त्वाऽपसंघतु ब्रह्मं रोचिष्णवमिन्द्रा ।
 अग्निश्च कृत्ये रक्षोहा रिन्द्रा चाजं एकपात् ॥ ८ ॥
 यथा त्वाऽङ्गिरसः पूर्वं भृगुवध्वार्षं सेधिरे ।
 अत्रयश्च वसिष्ठाश्च तथैव त्वाऽपं सेधिम ॥ ९ ॥
 यस्ते परुषि सन्द्यौ रथस्येव विमुखिया ।
 तं गच्छ तत्र तेऽयं नमज्ञातस्ते अयं जनः ॥ १० ॥
 यो नः कश्चिद्रणस्यो वा कश्चिद्वाप्योऽमि हिंसति ।
 तस्य त्वं द्यौरिवेक्षोऽमिः ॥ ११ ॥
 तनूमुच्छस्य हेडिता ॥ ११ ॥
 मयाशुर्वा देवहेडि—मस्यतं पापकृत्वने ।
 हरस्यती त्वं च कृत्ये ॥ १२ ॥
 मोचिच्छस्तस्यं किञ्चन ॥ १२ ॥
 यो नः कश्चिद्रुद्रांराति—मनसा प्रतिभूर्यति ।
 दूरस्यो वाऽग्निं कस्यो वा ॥ १३ ॥
 तस्यं हृद्यमसृक् पिब ॥ १३ ॥
 येनासि कृत्ये प्रहिता ॥ १४ ॥
 वृद्धयेनास्मग्निजघालया ।
 तस्यं ध्यानचचाव्यानश्च ॥ १४ ॥
 हिनस्तु हरसाऽशानिः ॥ १४ ॥
 ये नः शिवास्तुः पन्यानः परायन्ति परापतम् ।
 तैर्वैधि राज्याः कृत्या नो गुमर्पस्यानुकृष्ये ॥ १५ ॥

यदि वैपि द्विपद्यस्मान् यदि वैपि चतुर्पदी ।
 निरस्तेतो ब्रजास्माभिः कर्तुरप्रापदी गृहान् ॥ १६ ॥
 यो नः शपादशपतो यश्च नः शपतः शपात् ।
 वृक्षमिव विद्युदाशु तमामृलादनु शोपय ॥ १७ ॥
 ये द्विष्मो यश्च नो द्वेष्य—घायुर्यश्च नः शपात् ।
 शूने पिष्टमिव क्षामं तं प्रत्यस्य स्वमृत्युवै ॥ १८ ॥
 यश्च सापतनः शपयो यश्च यामी शपाति नः ।
 ब्रह्मां च यत् क्रुद्धः शपात् ॥ १९ ॥
 सर्वं तत् कृष्यघस्पदम् ॥ १९ ॥
 सर्वत्रुश्चाप्यवयुश्च यो अस्मां अमि दासति ।
 तस्य त्वं भिन्ध्यधिप्रार्यं पदा विस्फुर्यं तच्छिरः ॥ २० ॥
 अमि प्रोहं सहस्राक्षं युक्त्वा तु शपयं रथे ।
 शयूनन्विच्छती कृत्ये वृकीवाविमृतो गृहान् ॥ २१ ॥
 पारं णो वृद्धि शपयान् दहन्नमिरिव हृदम् ।
 शयूनेवाविमृतो जहि दिव्या वृक्षमियाशानिः ॥ २२ ॥
 शयूनं मे प्रोथ शपयात् कृत्याश्च सुदुहोऽसुदुह्व ।
 जिज्ञाः श्लक्ष्णाश्च दुदुहः सर्मिदं जातवैदसम् ॥ २३ ॥
 असपतनं पुरस्तातः शिवं दक्षिणतः कृषि ।
 अमयं सततं पश्चात् मद्रमुत्सृतो गृहे ॥ २४ ॥
 परैहि कृत्ये मा तिष्ठ विद्वस्यैव पदं नय ।
 मृतस्य हि मृगारिमो न त्वा नीकर्तुमर्हति ॥ २५ ॥
 अघ्न्यास्यैव घोररूपे विपुकरूपेऽविनाशिनि ।
 जृम्भिता प्रतिगम्भीघ ॥ २६ ॥
 स्वयमादाय चाहुतम् ॥ २६ ॥
 त्वमिन्द्रो यमो वरुण—स्वमापोऽमिरथानिलः ।
 त्वं ब्रह्मा चैव रुद्रश्च त्वष्टा चैव प्रजापतिः ॥ २७ ॥
 आर्यतंघं निर्वतंघ्य—मृतयः परिघत्सराः ।
 यद्वोरयाश्चाध्याश्च त्वं दिनाः प्रदिशश्च मे ॥ २८ ॥
 त्वं यमं वरुणं सोमं त्वमापोऽमिरमपानिलम् ।
 अभाह्वन्य पद्मं चैव—मुत्पादयसि चाहुतम् ॥ २९ ॥

ये मे दमे दारुगर्भे शयानं
 धिया सहितं पुरुषं निर्जह्नुः ।
 कुम्भीपाकं नरकं प्रीथयद्धं
 हता एवं पुरुपासो यमस्य ॥ ३० ॥
 अम्यकाका स्वल्ङ्कृता सयै नो दुरितं दद्व ।
 जानीथाश्चैव कृत्यानां कर्तृन् नृन् पापचेतसः ३१
 यथा हन्ति पुरासीने तथैवेष्वी सुकृत्तरः ।
 तथा त्वया युजा वयं निकृण्म स्यास्तु जह्नुमम् ३२
 उत्तिष्ठैव परेहीतो ऽघाति किमिद्वेच्छसि ।
 प्रीयास्तै रृत्ये पादौ च
 भूमि कृत्यामि विद्रव्य ॥ ३३ ॥
 स्यापसाः सन्ति नोऽस्यो विद्य चैव परूपि ते ।
 तैस्ते निकृण्मस्तान्युमे
 यदि नो जीवयस्वीन् ॥ ३४ ॥
 मास्योच्छिर्षो द्विपदं मोत किञ्चिद्यतुष्पदम् ।
 मा धावीननुजान् पूषान्
 मा यंति प्रतियेदानी ॥ ३५ ॥
 नाश्रयता प्रद्वितासि दृढपेनामि यथायतः ।
 तर्तस्तथा त्या नुदतु
 योऽयमन्तर्मयि धितः ॥ ३६ ॥
 एषं त्वं निरुन्तास्माभि—मंश्रणा देवि सर्वदाः ।
 यथेत्तमाधिता शुभ्या पापधीनेष नो जहि ॥३७॥
 यथा विपुर्दतो वृक्ष धाम्नीलादनु नुत्स्यति ।
 एषं स प्रतिनुष्यतु यो मे पापं धिर्षीरिति ॥ ३८ ॥
 यथा प्रतनुषो शुभ्या तमेव प्रतिपायति ।
 पापं तमेव पापतु यो मे पापं धिर्षीरिति ॥ ३९ ॥
 यो नः स्यो धरन्तो यद्य निरुषो जिघातति ।
 देवास्तं सर्वे धूयंतु मद्य यमं ममात्मनम् ॥ ४० ॥
 उवाच मद्भक्तु रभोमाः हृष्युष राधो भद्रियः ।
 भवं मद्दृष्टिर्षी जहि ॥ ४१ ॥

कुर्वे ते मुखं रौद्रं नृभिर्धानन्नुमावह ।
 ज्वरमृत्युभयं घोरं विश नाशय मे ज्वरम् ॥४२॥
 यो मे करोति प्रह्वारे यो गृहे यो निवेशने ।
 यो मे केशनये कुर्या—दृजनै दन्तधावने ॥ ४३ ॥
 प्रतिसर प्रतिधाव कुमारीव पितुर्गृहान् ।
 मुर्धानमेपां स्फोटय पदमेपां कुले क्रीध ॥ ४४ ॥
 ये नो रयि दुश्चरितासो भग्ने
 जह्नुर्मतीसो अनृतं वदन्तः ।
 तेषां वपुष्यचिपां जातवेदः
 शुष्कं न वृक्षममि स दद्वस्व ॥ ४५ ॥
 कृष्णवर्णे महद्रूपे वृहत्कर्णे महद्भये ।
 देवि देवि महादेवि मम शशून् विनाशय ॥ ४६ ॥
 पट् फट् जहि महाकृत्ये विधूमाग्निमप्रभे ।
 जहि शशून्शिशूलेन फुच्यस्व पिय शोणितम् ॥४७॥
 ये दुष्टशुभ्रजये महाभग्ने
 कदाधियो जुर्मदा अहमनासः ।
 आयच्यैतान् शोचिपां विष्य तर्तुन्
 वैयस्वतस्य सदनं नयस्व ॥ ४८ ॥

(३०)

हिमस्यं त्या जरायुणा शाले परि द्ययामसि ।
 [उत इदो हिं नो धियो ऽग्निर्देवातु भेषजम्] ॥१॥
 शीतहृदो हिं नो धियो ऽग्निर्देवातु भेषजम् ।
 अन्तिकामेग्निमजर्नय दृयादः रागद्वारामय ॥ २ ॥
 अजातपुत्रपुक्षायां हृदयं मम दृयते ।
 विपुलं यनं यद्वाकांशं चरं जातयेतुः वामोय ॥३॥
 मां च रक्ष पुत्रांश्च दारणममाम् तव ।
 विहास्य मोहितमयि हृष्णवर्णे नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥
 धरमाग्निवहंरस्येनां सागररयोर्भूयो यथा ।
 रग्नेः शत्रं देवातु यदेषममि विद्वयतु ॥ ५ ॥
 नाश्रयो निधनं यागु जय त्वं महातेजसा ॥ ६ ॥

कपिलजुष्टौ सर्वमक्षं चाग्निं प्रत्यक्षदैवतम् ॥ ७ ॥

वृषणं च वृशाम्यत्रै मम पुत्रांश्च रक्षतु

[मम पुत्रांश्च रक्षत्वो नमः ।] ॥ ८ ॥

सात्रं वर्षदातं जीव पिय खाद् च मोदं च ॥ ९ ॥

दुःखितांश्च द्विजांश्चैव प्रजां च पशु पालय ॥ १० ॥

यावदादित्यस्तपति यावद्भ्राजति चन्द्रमाः ।

यावद्वायुः प्लवायति तावज्जीव जया जय ॥ ११ ॥

येन केन प्रकारेण को हि नाम नु जीवति ।

परैषामुपकारार्थं यज्जीवति स जीवति ।

पुतां वैश्वानरीं सर्वदेवानामोऽस्तु ते ॥ १२ ॥

न चौरभयं न च सर्पभयं

न च व्याघ्रभयं न च मृत्युभयम् ।

यस्यापमृत्युर्न च मृत्युः सर्वे लभते सर्वे जयते १२

॥ इति रात्री-सूक्तम् ॥

(६६)

अथ मेधा-सूक्तम् १

मेधां महामङ्गिरसो मेधां सुत ऋषयो ददुः ।

मेधामिन्द्रश्चाग्निश्च मेधां घाता दंदातु ते ॥ १ ॥

मेधां ते वरुणो राजा मेधां देवी सरस्वती ।

मेधां ते अश्विनो देवा वा घेतां पुरुकरज्जजा ॥ २ ॥

या मेधा अन्तरस्तु गन्धर्वेषु च यन्मनः ।

देवी या मानुषी मेधा सा मामा विशतादिभाम् ३

यन्मे नोकं तद्रमनां शक्यं यदनुभवे ।

निशामतं नि शामहे मयि व्रतं सह व्रतेषु भूयान्तं

ब्रह्मणा सं गमेमहि ॥ ४ ॥

शरीरं मे विचक्षणं वाङ्मे मधुमद् हुहाम् ।

अर्धद्वमहमसौ सूर्यो ब्रह्मणानो रथः

धृतं मे मा प्र हासीः ॥ ५ ॥

मेधां देवी मनसा रजेमानां

गन्धर्वजुष्टां प्रति नो जुपस्व ।

८६

मह्यं मेधां वद मह्यं धियं वद

मेधावी भूयासमजरांजरिष्णु ॥ ६ ॥

सर्वसुस्पतिमद्भृतं प्रियामिन्द्रस्य काम्यम् ।

सन्नि मेधार्मयासिपम् ॥ ७ ॥

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।

तया मामद्यमेधयां ऽग्ने मेधाविर्न कुरु ॥ ८ ॥

मेधाव्युहं सुमनाः सुप्रतीकः

श्रद्धामनाः सत्यमतिः सुशेवः ।

महायशा धारयिष्णुः प्रयुक्ता

भूयासंमस्मै शरयां प्रयोगे ॥ ९ ॥

नादायित्री पलाशस्या रूपसौ पधिकामसु ।

अथो तस्य यश्माणमपा रोगनाशिनी ॥ १० ॥

ब्रह्मयुक्ष पलाश त्वं श्रद्धां मेधां च देहि मे ।

वृथाधिप नमस्तेऽस्तु अत्र त्वं संनिर्धा भव ॥ ११ ॥

॥ इति मेधा-सूक्तम् ॥

(३०)

अधरेणा प्र दहन्ते विष्णुः

इममिन्द्राग्नी अमृतं जुषेधाम् ।

महां दधाना उप दीर्घमायुः

अस्मे धत्तं पुरुभुजा पुरग्धिः ॥ १ ॥

(३१)

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्

परिं गृहीतममृतेन सर्वम् ।

येन यदस्नायते सप्तहोता

तन्मे मनः शिषसंकल्पमस्तु ॥ २ ॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणां

युधे कृण्वन्ति विदधेयु धीराः ।

यदपर्वं यश्मन्तःप्रजानां

तन्मे मनः शिषसंकल्पमस्तु ॥ ३ ॥

यज्जाग्रतो दूरमुदेति दैव्यं तदु सुतस्य तर्पयति ।

दुर्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं

तन्मे मनः शिषसंकल्पमस्तु

॥ ३ ॥

(३०)

यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु यस्मिन्नृचः साम यजूपि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाहाः । यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु सुपायिश्चरन्निश्चयं ननु ध्यानि नेनीयतेऽभीष्टुभिर्वाजिनं इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरे यविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ये पञ्च पञ्चाशतः शतं च सुहृत्सु च नियतं चार्थुदं च । ते यद्वाचित्तेष्टकाटं शरीरं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं आदित्यवर्णं तमसुः परस्तात् । तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु येन कर्माणि प्रचरन्ति धीरा विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा । यत् स्यां दिशमनु संयन्ति प्राणिनः तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ये मे मनो हृदयं ये च देवा ये अन्तरिक्षं बहुधा कल्पयन्ति । ये श्रोत्रं च चक्षुषी संचरन्ति तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु यस्येदं धीराः पुनन्ति कथयो प्रधानमिदं व्यावृणत इन्दुम् ।	स्थावरं जङ्गमं च धीरांश्चाशं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ११ ॥ येन द्यौर्ग्रा पृथिवी चान्तरिक्षं येन पर्वताः प्रदिशो दिशश्च । येनेदं सर्वं जगद्गतं प्रजानत् तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १२ ॥ अव्यक्तं चाप्रमेयं च व्यक्ताव्यक्तपरं दिवम् । सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं श्रेयं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १३ ॥ कैलासशिखरं रम्ये शंकरस्य गृहालयम् । देवतारतत् प्रमोदन्ते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १४ ॥ आदित्यवर्णं तपसा जलन्तं यत् पश्यसि गुहासु जायमानः । शिवरूपं शिवमुदितं शिवालयं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १५ ॥ येनेदं सर्वं जगतो बभूव यद्देवा अपि महतो जातवेदाः । यदेवाग्न्यं तपसो ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १६ ॥ गोभिर्जुष्टो धनेन ह्यायुषां च बलेन च । प्रजयां पशुभिः पुष्करार्धं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १७ ॥ योऽसौ सर्वेषु वेदेषु पठ्यतेऽनन्द ईश्वरः । अकार्यो निर्दणो ह्यात्मा तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १८ ॥ यो वेदादिषु गायत्री सर्वव्यापी मृदेश्वरः । तदुक्तं च यदा श्रेयं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १९ ॥
---	---

प्रयत्प्रार्ण ओंकारं प्रणवं च महेश्वरम् ।
यः सर्वं यस्य चित् स्रवे
तन्मे मर्नः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २० ॥
यो वै वेद महादेवं प्रणवं पुष्टपोत्तमम् ।
ओंकारं परमात्मानं
तन्मे मर्नः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २१ ॥
ओंकारं चतुर्भुजं लोकनाथं नारायणम् ।
सर्वस्थितं सर्वगतं सर्वव्याप्तं
तन्मे मर्नः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २२ ॥
तत् परात् परतो ब्रह्मा तत् परात् परतो हरिः ।
परात् परतरं ह्यनं
तन्मे मर्नः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २३ ॥
य इदं शिवसंकल्पं सुदार्थीयन्ति ब्राह्मणाः ।
ते परं मोक्षमाप्स्यन्ति
तन्मे मर्नः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २४ ॥
अस्ति नास्ति शयित्वा सर्वमिदं
नास्ति पुनस्तथैव दृष्टं ध्रुवम् ।
अस्ति नास्ति द्रितं मध्यमं पदं
तन्मे मर्नः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २५ ॥
अस्ति नास्ति विपरीतो प्रवादो
अस्ति नास्ति गुह्यं वा इदं सर्वम् ।
अस्ति नास्ति परात् परो यत् परं
तन्मे मर्नः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २६ ॥

(३४)

त्वष्टारुपतां (नेत्रमेधः) । विष्णुः । अशुष्टुप ।

नेत्रमेध परा पत् सुपुत्रः पुनरा पतं ।
अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमा धेहि यः पुमान् ॥ १ ॥
यथेयं पृथिवी मह्यं चाना गर्भमादधे ।
एवं तं गर्भमा धेहि दशमे मासि सूर्तये ॥ २ ॥
विष्णोः धेष्टेन रूपेणास्यां नार्था गधीन्याम् ।
पुमांसं पुत्राना धेहि दशमे मासि सूर्तये ॥ ३ ॥

(३५)

वत्स आमेधः । आग्निः । गायत्री ।

अनीकवन्तमृतयेऽग्निं गोभिर्देवामहे ।
स नः पर्यदति द्विपः ॥ १ ॥
(३६)
संज्ञानमृशनावदत् संज्ञानं वरुणोऽवदत् ।
संज्ञानमिन्द्रश्चाग्निश्च संज्ञानं सविताऽवदत् ॥ १ ॥
संज्ञानं वः स्वेष्यः संज्ञानमरणेष्यः ।
संज्ञानमश्विनां युवमिहास्मासु नि यच्छताम् २
यत् कशौवां संयननं पुत्रो अङ्गिरसां भवेत् ।
तेन नोऽद्य विश्वं देवाः सं प्रियां समजीजनन् ३

सं वो मनांसि जानतां समाकृतिर्मनामसि ।
असौ यो विमना मनः सं समावर्तयामसि ॥ ४ ॥
नैर्हस्यं सैनादरणं परि वर्तेतु यद्वयिः ।
तेनाग्नित्राणां बाहून् दृविषां शोषयामसि ॥ ५ ॥
परिवर्तमान्येषामिन्द्रः पूषा च ससंतुः ।
तेषां धो अग्निर्दग्धानामग्निमूब्धानां
इन्द्रो हस्तु यर्यवरम् ॥ ६ ॥
पेषु नद्यवृषाजिनं हरिणस्य धियं यथा ।
परो अग्निर्वापेय त्वर्वाची गौरुपाजंतु ॥ ७ ॥
प्राग्धराणां पते घसो होतुर्वरण्यक्रतो ।
तुभ्यं गायत्रमच्यते ॥ ८ ॥
गोकामो अन्नकामः प्रजाकाम उत कंदयपः ।
भूतं भविष्यत् प्रस्ताति सह धक्षीकमक्षरं
यदक्षरं मृतकृतं विश्वं देवा उपासते ।
महं श्रियिमस्य गोत्तारं जमदग्निर्कुर्वतम् ॥ १० ॥
जमदग्निराप्यायते छन्दोभिश्चतुर्चरैः ।
राजा सोमस्य भूषेण ब्रह्मणा धीर्यावता ॥ ११ ॥

(७८३६)

शिवा नः प्रदिशो दिशः
 सत्या नः प्रदिशो दिशः ।
 अजो यत् तेजो ददंश्चे
 शूक्रं ज्योतिः परो गुहा ॥ १२ ॥
 यदपिः कश्यपः स्तौति सत्यं ब्रह्म चराचरं
 ध्रुवं ब्रह्म चराचरम् ।
 ज्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य ज्यायुषं
 अगस्त्यस्य ज्यायुषम् ॥ १३ ॥
 यद्देवानां ज्यायुषं तन्मे अस्तु ज्यायुषं
 सर्वमस्तु शतायुषं बलायुषम् ॥ १४ ॥
 तच्छ्रुंयोरौ वृणीमहे
 गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये ।
 दैवीं स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः ।
 ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं
 शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १५ ॥

(३७)

निविदुषनिपदे महवादिभ्यो । अधिनो, ७ इन्द्रावरुणौ ।
 विदुष्, ६ द्विपदा ।

प्रधारयन्तु मधुनो घृतस्य
 यदधिन्द्रयुः सुती उक्षिपायाः ।
 मित्रावरुणौ भुषनस्य कारु
 तापभिनो ह्यपतां समीके ॥ १ ॥
 आयां रथं शतपायानमाशु
 प्रातर्यापाणं सुपदं द्विपययम् ।
 अतिष्ठचरं दुहिता विपस्वतः
 तं मांर्याश्रमयंत वरामहे ॥ २ ॥
 धापामभ्यासो रयिर विपश्चितौ
 याम्भूवजः सुयज्ञो घृतधृतः ।
 येभिर्याधोषं नृथो पर्यं
 मेगिनो दध्रापयतं समस्तु ॥ ३ ॥

यद्वा रेतो अश्विना पोषयित्नु
 यद्वासभो धधिमत्यै सुदान् ।
 यस्माज्जज्ञे देवकामः सुदक्षः
 तदस्यै दत्तं भिपजावभिद्यु ॥ ४ ॥
 यद्वासत्या भेषजं चित्रभानु
 येनाव्युस्तोककामां च घोषाम् ।
 तदस्यै दत्तं त्रिषु पुंसुर्वध्वै
 येनाविन्द्रत्तनयं सा सुहस्त्यम् ॥ ५ ॥
 धपद् वां दक्षावस्मिन् सुतो
 नासत्या होता कृणोतु वेधाः ॥ ६ ॥
 इन्द्रावरुणा सौमनसमदत्तं
 रायस्पोषं यजमानेषु धत्तम् ।
 प्रजां पूर्तिं भूतिमस्माशु धत्तं
 दीर्घायुत्वाय प्र तिरतं न आयुः

(३८)

(अथर्व० १०।४९।१-७)

खिलम् । ४-५ नोषा; ६-७ मेधातिथिः । गायत्री, ४, ५
 प्रगाय= (विषमा बृहती + समा षतो बृहती) ।

यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिपासथः ।
 सं देवा अमदन् घृषा ॥ १ ॥
 शक्रो वाचमधृष्टायोर्देवाचो अधृष्णहि ।
 मंहिष्ठ आ मंहिर्दिवि ॥ २ ॥
 शक्रो वाचमधृष्णहि धामं धर्मगिराजति ।
 धिमदन् मंहिष्टासरन् ॥ ३ ॥
 तं धो वृत्तमृतीपहं धसोर्मन्वानमन्धसः ।
 अभि वृत्तं न स्वस्तेषु धेनयु
 इन्द्रं गीर्भिर्नयामहे ॥ ४ ॥
 सुक्षे सुदानुं तयिषीमिरापृतं
 गिरिं न पुंसुमोजसम् ।
 क्षमन्तं पात्रं शक्तिर्न सद्दधिर्न
 मद्गू गोमन्तमीमहे ॥ ५ ॥

(७९११)

तत्त्वां यामि सुवीर्यं तद्ब्रह्मं पूर्वाचिन्तये ।
 येना यतिभ्यो भृगवो धनं दिते
 येन प्रस्कण्वमाविष्य
 येनां समुद्रमसृजो महीरपः
 तदिन्द्र वृष्णिं ते शयः ।
 सद्यः सो अंस्य महिमा न संनशे
 यं क्षोणीरनुचक्रदे

॥ ६ ॥

॥ ७ ॥

अथ कुन्तापसूक्तानि १

(खिलानि ।)

॥ १ ॥ (अथर्वं १०।१२७।१-१४)

इदं जना उपं ध्रुत नरांशुं स्तविष्यते ।
 पतिं सहस्रां नयति च कौरम्
 आ रुदामेषु दशदे

॥ १ ॥

उष्ठा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश ।
 धर्मा रथस्य नि जिह्वाढते
 त्रिय इपमाणा उपस्पृशः

॥ २ ॥

पुप इपायं मामहे शतं निष्कान् दश अर्जः ।
 श्रीणि शतान्ययंतां सहस्रा दश गोनाम्

॥ ३ ॥

यच्यस्य रेमं यच्यस्व वृक्षे न पके शुकुनः ।
 नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरे न मूरिजोरिव

॥ ४ ॥

प्र रेमासो मनीषा वृषा गायं इयेते ।
 अमोतपुत्रका प्याममोते गा इवांसते

॥ ५ ॥

प्र रेमं धीं मरस्व गोविदे वसुविदम् ।
 देवभेमां धाचं धीणीदीपुर्नावीरस्तारम्

॥ ६ ॥

राशो विभ्वजनीनस्य यो देवोऽमत्यां अति ।
 धैभ्यानरस्य सुष्टुतिमा सुनेतां परिक्षितः

॥ ७ ॥

परिच्छिन्नः क्षेममकरोन् तम् आसंनमाचरन् ।
 कुलापन् हृष्यन् कौरव्यः पतिवर्दति जाययां

॥ ८ ॥

कनरत् त्वा इराणि दधि मर्यां परि श्रुतम् ।
 जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राशः परिक्षितः ॥९॥
 अमीवस्वः प्र जिह्वीते यवः पकः पयो विलम् ।
 जनः स मद्रमेघति राष्ट्रे राशः परिक्षितः ॥ १० ॥
 इन्द्रः कारुमवृष्यदुर्षिष्ठु वि चरुं जनम् ।
 ममेदुप्रस्य चरुधि सर्वं इत् तं पृणादतिः ॥ ११ ॥
 इह गावः प्रजायध्वमिहाभ्या इह पूर्वगाः ।
 इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूया नि र्पिदति ॥ १२ ॥
 नेमा इन्द्र गावो रिपन्
 मो आसां गोपं रीरिपत् ।

मासांमिभ्रयुर्जन् इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥ १३ ॥
 उपं नो न रमसि सक्तेन वचंसा
 वयं मूद्रेण वचंसा वयम् ।

वनादधिष्णो गिरो न रिव्येम कदा चन ॥ १४ ॥
 ॥ २ ॥ (अथर्वं १०।१२७।१-१६)

यः सभेयो विद्वष्यः सुत्वा यज्वायुं पूर्वयः ।
 सूर्यं चाम् रिचादसः
 तद् देवाः प्राणकल्पयन् ॥ १ ॥

यो ज्ञान्या अग्रययस्तद् यत् सखायं दुर्धृपति ।
 ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरथं चामिति ॥ २ ॥

यद् मद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाघुपिः ।
 तद् पित्रो अग्रवीदु तद् गन्धर्वः काम्यं वचः ॥ ३ ॥

यक्षं पणि रघुजिष्ठपो यक्षं देवो अदागुरिः ।
 धीराणां शश्वतामहं तदपामिति शुशुम ॥ ४ ॥

ये चं देवा अयंजन्तायो ये चं पराददिः ।
 सूर्यो दिवंमिच गन्वार्यं मघवां नो वि रंशते ॥ ५ ॥

योनाकाशो अनभ्यको अर्मणिषो अर्दिरण्यवः ।
 अग्रश्रा अक्षयः पुत्रस्तोता कर्त्तव्यं सुमितां ॥ ६ ॥

य आकाशः सुभ्यक्तः सुर्मणिः सुर्दिरण्यवः ।
 सुर्मश्रा अक्षयः पुत्रस्तोता कर्त्तव्यं सुमितां ॥ ७ ॥

॥ ५ ॥ (अथर्व० १०।१३।१-१०)

आर्मिन्नोति मंघते	॥ १ ॥
तस्य अन्तु निमंजनम्	॥ २ ॥
वरुणो याति वस्वामिः	॥ ३ ॥
शतं वा भारती शर्वः	॥ ४ ॥
शतमाभ्वा हिरेण्ययाः । शतं रथ्या हिरेण्ययाः ।	
शतं कृथा हिरेण्ययाः । शतं निष्का हिरेण्ययाः ५	
अहल कुश वर्त्तक	॥ ६ ॥
शफेनं ह्य ओहते	॥ ७ ॥
आयं घनेनंती जनी	॥ ८ ॥
वनिष्ठा नावं गृह्यान्ति	॥ ९ ॥
इदं मह्यं मदुरिति	॥ १० ॥
ते युष्मः स्रद्ध तिष्ठति	॥ ११ ॥
पाकं धलिः	॥ १२ ॥
शकं धलिः	॥ १३ ॥
अर्ध्वत्य अदिरो ध्रुवः	॥ १४ ॥
अरदुपरम	॥ १५ ॥
शयो हुत इव	॥ १६ ॥
ध्यापु पूरुपः	॥ १७ ॥
अदृहमित्यां पूरुपकम्	॥ १८ ॥
अत्यधं च परस्वतः	॥ १९ ॥
दौषं ह्यस्तिनो हृती	॥ २० ॥

॥ ६ ॥ (अथर्व० १०।१३।१-१६)

आदलायुकमेककम्	॥ १ ॥
अलायुकं निघातकम्	॥ २ ॥
कर्करिको निघातकः	॥ ३ ॥
तद् घात उन्मंघायति	॥ ४ ॥
कुलापं रुणघादिति	॥ ५ ॥
उमं घनिपदाततम्	॥ ६ ॥
न घनिपदनाततम्	॥ ७ ॥
क र्पयां कर्करि लिखत्	॥ ८ ॥

क र्पयां दुन्दुभिं हनत्	॥ ९ ॥
यदीयं हनत् कर्षं हनत्	॥ १० ॥
देवीं हनत् कुहंनत्	॥ ११ ॥
पर्यागारं पुनः पुनः	॥ १२ ॥
धीण्युष्टस्य नामानि	॥ १३ ॥
हिरण्यं इत्येकं अत्रवीत्	॥ १४ ॥
द्वौ वां ये शिशवः	॥ १५ ॥
नीलशिखण्डवाहनः	॥ १६ ॥
॥ १७ ॥ (अथर्व० १०।१३।१-६)	
विततौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुपः ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥१॥	
मातुष्टे किरणौ द्वौ निर्वृत्तः पुष्टपानृते ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥२॥	
निर्गृह्य कर्षकौ द्वौ निरायच्छसि मर्षमे ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥३॥	
उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वावं गृहसि ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥४॥	
ऋक्ष्णायां ऋक्षिणकायां ऋक्ष्णमेवाव गृहसि ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥५॥	
अवऋक्ष्णमिवं अंरादन्तलौममति हृदे ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ६ ॥	
॥ ८ ॥ (अथर्व० १०।१३।१-६)	

इहेत्य प्रागपागुर्दग्धराग्	
अरालागुर्दग्धराग्	॥ १ ॥
इहेत्य प्रागपागुर्दग्धराग्	
घृत्साः पुष्टपन्त आसते	॥ २ ॥
इहेत्य प्रागपागुर्दग्धराग्	
स्वालीपाको वि लीयते	॥ ३ ॥
इहेत्य प्रागपागुर्दग्धराग्	
स वै पृषु लीयते	॥ ४ ॥
इहेत्य प्रागपागुर्दग्धराग्	
आर्ये लाहनि टीरायी	॥ ५ ॥

अप्रपाणा च वेशन्ता रेवा अप्रतिदिश्ययः ।
 अयंभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ८
 सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्सुप्रतिदिश्ययः ।
 सुयंभ्या कन्या कल्याणी
 तोता कल्पेषु संमिता ॥ ९ ॥
 परिवृक्ता च महिषी स्वस्या च युधिगमः ।
 अनाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ १० ॥
 वाघाता च महिषी स्वत्या च युधिगमः ।
 श्वाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ११ ॥
 यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथाः ।
 विरूपः सर्वस्मा आसीत् सह यक्षाय कल्पते ॥ १२
 त्वं वृषाश्वं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः ।
 त्वं रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिन्च्छिरः ॥ १३ ॥
 यः पर्येतान् व्यदधाद् यो अपो व्यंगाहथाः ।
 इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते १४
 पृष्ठं धावन्तं ह्योरौघैःश्रवसमंश्रुवन् ।
 स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम् ॥ १५ ॥
 ये त्वां श्वेना अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
 पूर्वा नमस्य देवानां विभ्रदिन्द्र महीयते ॥ १६ ॥
 ॥ ३ ॥ (मघव० २०।१९९१-२०)
 पता अश्वा आ मूवन्ते ॥ १ ॥
 प्रतीपं प्रति सुत्वनम् ॥ २ ॥
 तासामेका हरिक्विका ॥ ३ ॥
 हरिक्विके किमिच्छसि ॥ ४ ॥
 साधुं पुत्रं हिंरण्ययम् ॥ ५ ॥
 फवाहर्तुं परास्यः ॥ ६ ॥
 यन्नामस्तिरः शिशपाः ॥ ७ ॥
 परि प्रयः ॥ ८ ॥
 पृदाकयः ॥ ९ ॥
 शृङ्गं धमन्त आसते ॥ १० ॥
 अयन्मदा ते अयोहः ॥ ११ ॥

स इच्छकं सर्धाघते ॥ १२ ॥
 सर्धाघते गोमीघा गोगतीरिति ॥ १३ ॥
 पुमां कुस्ते निर्मिच्छसि ॥ १४ ॥
 पल्पं यद् वयो इति ॥ १५ ॥
 यद् यो अघा इति ॥ १६ ॥
 अजागार केविका ॥ १७ ॥
 अश्वस्य वारो गोशपद्यके ॥ १८ ॥
 श्येनीपती सा ॥ १९ ॥
 अनामयोपजिहिका ॥ २० ॥
 ॥ ४ ॥ (अयव० २०।१३०।१-२०)
 को अयं बहुलिमा इपूनि ॥ १ ॥
 को असिधाः पर्यः ॥ २ ॥
 को अर्जुन्याः पर्यः ॥ ३ ॥
 कः काण्योः पर्यः ॥ ४ ॥
 पतं पृच्छ कुहं पृच्छ ॥ ५ ॥
 कुहाक पक्वकं पृच्छ ॥ ६ ॥
 यवानो यतिस्वमिः कुभिः ॥ ७ ॥
 अकुप्यन्तः कुपायकुः ॥ ८ ॥
 आर्मणको मणत्सकः ॥ ९ ॥
 देवं त्वप्रतिसूर्य ॥ १० ॥
 परंश्चिपङ्क्तिका ह्विः ॥ ११ ॥
 प्रदुद्दुदो मघाप्रति ॥ १२ ॥
 शृङ्ग उत्पन्न ॥ १३ ॥
 मा त्वाऽभि सर्वा नो विदन् ॥ १४ ॥
 घशायाः पुत्रमा यन्ति ॥ १५ ॥
 इरावेदुभयं दत् ॥ १६ ॥
 अयो ह्यभियुञ्जिति ॥ १७ ॥
 अयो ह्यभिति ॥ १८ ॥
 अयो अरिरो भवन् ॥ १९ ॥
 उयं यकांश्लोकका ॥ २० ॥
 (७९८१)

०५॥ (अथर्व० २०।१३१।१-२०)

आमिनो निति मघते	॥ १ ॥
तस्य अतु निर्भजनम्	॥ २ ॥
वरुणो याति वस्वभिः	॥ ३ ॥
शतं वा भारती शयः	॥ ४ ॥
शतमाश्वा हिरण्ययाः । शतं रथ्या हिरण्ययाः ।	
शतं कृथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ५	
अहल कुश वर्चक	॥ ६ ॥
शफेन इष ओहते	॥ ७ ॥
आयं वनेनती जनी	॥ ८ ॥
वनिष्ठा नावं गृह्यान्ति	॥ ९ ॥
इदं मल्लं मदुरिति	॥ १० ॥
ते वृक्षाः सह तिष्ठति	॥ ११ ॥
पाकं बलिः	॥ १२ ॥
शकं बलिः	॥ १३ ॥
अश्वेत्य खाद्रेरो धुघः	॥ १४ ॥
अरुदुपरम	॥ १५ ॥
शयो हत इध	॥ १६ ॥
व्यापु पूरुधः	॥ १७ ॥
अदृहमित्यां पूरुधम्	॥ १८ ॥
अत्यधुवं परस्वतः	॥ १९ ॥
वौयं हस्तिनो हृती	॥ २० ॥

०६॥ (अथर्व० २०।१३१।१-२६)

आदलायुकमेककम्	॥ १ ॥
अलायुकं निघातकम्	॥ २ ॥
कर्कटिको निघातकः	॥ ३ ॥
तत् घात उन्मघायति	॥ ४ ॥
कुलायं रुणघादिति	॥ ५ ॥
उप्र धनिपदाततम्	॥ ६ ॥
न धनिपदानाततम्	॥ ७ ॥
क पर्यां कर्कटी लिखत्	॥ ८ ॥

क पर्यां दुन्दुभिं हनत्	॥ ९ ॥
यदीयं ईनत् कथं हनत्	॥ १० ॥
देवी ईनत् कुईनत्	॥ ११ ॥
पर्यागारं पुनः पुनः	॥ १२ ॥
श्रीण्युष्टस्य नामानि	॥ १३ ॥
हिरण्यं इत्येके अत्रवीत्	॥ १४ ॥
द्वौ वा ये शिशवः	॥ १५ ॥
नीलशिखण्डवाहनः	॥ १६ ॥

॥ १७ ॥ (अथर्व० २०।१३१।१-६)

धिततौ किरणौ द्वौ तावा यिनष्टि पूरुधः ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥१॥	
मातुष्टे किरणौ द्वौ निर्वृत्तः पूरुधानृते ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥२॥	
निर्गृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मर्चये ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥३॥	
उत्तानायं शयानायै तिष्ठन्ती धावं गृहसि ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥४॥	
श्रवणायां श्रवणिकायां श्रवणमेवावै गृहसि ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥५॥	
अवश्रवणमिधं भ्रंशदन्तलोममर्ति हृदे ।	
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ६ ॥	

॥ ८ ॥ (अथर्व० २०।१३१।१-६)

इहेत्य प्रागपागुर्दगधराग	
अरालागुर्दमस्तथ	॥ १ ॥
इहेत्य प्रागपागुर्दगधराग	
धृत्साः पूरुधन्त आसते	॥ २ ॥
इहेत्य प्रागपागुर्दगधराग	
स्यालीपाको वि लीयते	॥ ३ ॥
इहेत्य प्रागपागुर्दगधराग	
स वै पूषु लीयते	॥ ४ ॥
इहेत्य प्रागपागुर्दगधराग	
आष्टे लाहणि लीयायी	॥ ५ ॥

इहेत्य प्रागपागुर्दग्धराग्

अक्षिल्ली पुच्छिल्लीयते

॥ ६ ॥

॥ ९ ॥ (अथर्वं २०।१३।१-१३.)

भुगित्यभिगतः शलित्यपक्रान्तः फलित्यभिष्ठितः ।

दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोथामो दैव ॥ १ ॥

कोशविले रजनि ग्रन्थेधानमुपानहि पादम् ।

उत्तमां जनिमां जन्व

अनुत्तमां जनीन् वत्मेन्यात्

॥ २ ॥

अलावूनि पृपातकान्यश्वेत्यपलाशम् ।

पिपीलिकावटश्वसो विद्युत्

स्वार्पणशफो गोशफो जरितरोथामो दैव ॥ ३ ॥

धीमे देवा अक्रसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचरं ।

सुसत्यमिदं गवामस्यासि प्रकुदासि

पत्नी यद्वदयते पत्नी

यस्यमाणा जरितरोथामो दैव ।

होता विष्टीमेन जरितरोथामो दैव ॥ ५ ॥

धादित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामुनयन् ।

तां ह जरितः प्रत्यायन्

तामु ह जरितः प्रत्यायन्

॥ ६ ॥

तां ह जरितनः प्रत्यगृभ्णन्

तामु ह जरितनः प्रत्यगृभ्णः ।

बहानेतरसं न वि चेतनानि

यद्बहानेतरसं न पुरोगवामः

॥ ७ ॥

उत श्वेत आनुपत्या उतो पर्धाभिर्यथिष्ठः ।

उनेमाशु मानं विपतिं

॥ ८ ॥

धादित्या रुद्रा पसवस्त्वयन्तुं

त इदं राष्ट्रः प्रति गृष्णीष्टङ्गिरः ।

इदं राष्ट्रो विभु प्रभुं इदं राष्ट्रं वृद्धं पृथुं ॥ ९ ॥

देवा ददात्वारुंरं तद् यो धस्नु सुयैतनम् ।

गुप्सों धस्नु दिषेदिषे प्रत्येयं गृमापत ॥ १० ॥

त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः ।

विप्राय स्तुवते वंसुवर्निं दुरध्रवसे वह ॥ ११ ॥

त्वमिन्द्र कृपोताय चिञ्जपक्षाय चञ्जते ।

श्यामाकं पक्कं पल्लुं च. वारस्मा अकृणोर्वहुः ॥ १२ ॥

अरंगरो वावदाति त्रेधा वद्धो वरत्रया ।

इरामह प्रशंसत्यानिरामपं सेधति ॥ १३ ॥

॥ १० ॥ (अथर्वं २०।१३।१-१६)

यदस्या अंहुमेधाः कृधु स्थूलमुपातसत् ।

मुष्काविर्दस्या पञ्जतो गोशफे शकुलाविं ॥ १ ॥

यदा स्थुलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत् ।

विष्वञ्चा वस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दभौ ॥ २ ॥

यदल्पिकास्वल्पिका कर्कधुकेवपद्यते ।

वासन्तिकमिध तेजन् यन्त्यवाताय विपति ॥ ३ ॥

यद् देवासौ ललामगुं प्राविष्टीमिनमाविपुः ।

सकुला दैदिद्यते नारीं

सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥ ४ ॥

महानग्न्यगृह्मद्भि मोक्रद्वदस्थानासरन् ।

शक्तिकानना स्वचमशकं सकु पद्यम् ॥ ५ ॥

महानग्न्युं लृखलमतिक्रामन्त्यप्रवीत् ।

यथा तयं वनस्पते निरन्नन्ति तथैवति ॥ ६ ॥

महानग्न्युपं मृते भ्रष्टोऽथाप्यभूमुयः ।

यथैव तं वनस्पते पिपति तथैवति ॥ ७ ॥

महानग्न्युपं मृते भ्रष्टोऽथाप्यभूमुयः ।

यथा ययो विदाह्य स्वयं नमयद्वदते ॥ ८ ॥

महानग्न्युपं मृते स्वसावेदितं पसः ।

इर्यं फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूर्पे भजेमदि ॥ ९ ॥

महानग्नी शक्याकं शर्म्यया परि धापति ।

शायं न विद्वा यो मृगः

शीष्णं हरति धार्णिकाम् ॥ १० ॥

महानग्नी मदान्नं धायन्तमनुं धापति ।

इमास्तदस्य गा रक्षा यन् मार्मज्यौदनम् ॥ ११ ॥

सुदेवस्त्वा महानग्नीर्विवाधते महतः साधु खोदनम् ।

कुसं पीवरो नवत् ॥ १२ ॥

यथा दग्धार्मिमाङ्गारं प्रचुजतोऽग्रतं परे ।

महान वै भद्रो यमं मार्मद्भ्योऽनुनम् ॥ १३ ॥

विदेवस्त्वा महानग्नीर्विवाधते

महतः साधु खोदनम् ।

कुमारिका पिङ्गलिका कार्दमस्मां कु धारवति ॥ १४ ॥

महान वै भद्रो विलो भद्र उदुम्बरः ।

महो अभिक याधते महतः साधु खोदनम् ॥ १५ ॥

यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लमेत् ।

तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ट रोदन्तं शुद्धमुद्धरेत् ॥ १६ ॥

॥ इति अथ कुन्तापमूकानि ॥

अथ महानाम्न्याचिकः ।

(६४१-६५०) प्रजापतिः । इन्द्रस्वैकोक्यारवा ।

विदा मघयन् विदा गातुमनुशंसियो दिशः ।

शिक्षा शचीनां पते पूर्वाणां पुरुवसो ॥ १ ॥

आभिष्टमभिष्टमिः स्वऽश्वाशु ।

प्रचेतन प्रचेतयेन्द्रं पुत्राय न इपे ॥ २ ॥

एषा हि शक्रो राये धाजाय वज्रिवः ।

शविष्ठ वज्रिभृजसे महिष्ठ वज्रिभृजसे

आ याहि पिय मत्स्य ॥ ३ ॥

विदा राये सुवीर्ये

भुवो वाजानां पतिवशा अनु ।

महिष्ठ वज्रिभृजसे य शविष्ठः शराणाम् ॥ ४ ॥

यो महिष्ठो मघोनामदुर्गं शौचिः ।

चिकित्वो अभि नो नयेन्द्रो विदे तमु स्तुहि ॥ ५ ॥

ईशो हि शक्रस्तमूतये

हवामहे जैतारमपराजितम् ।

स नः स्वपदति द्विपः क्रतुच्छन्द श्रुते वृहत् ॥ ६ ॥

इन्द्रं धनस्य सातये

हवामहे जैतारमपराजितम् ।

स नः स्वपदति द्विपः ।

स नः स्वपदति द्विपः ॥ ७ ॥

पूर्वस्य यत्ते अद्विषोऽशुर्मदाय ।

सुम्न आ धेहि नो वसो पूर्वैः शविष्ठ शस्यते ।

यशो हि शक्रो नूनं तन्नम्यं सन्यसे ॥ ८ ॥

प्रभो जनस्य वृत्रहन्समर्येषु व्रजावहै ।

शरो यो गोपु गच्छति सखा सुदेवो अग्रयुः ॥ ९ ॥

अथ पञ्चपुरीवपदानि ।

एषाहो ऽऽऽऽ व । एषा हाम्ने । एषाहीन्द्र ।

एषा हि पयन् । एषा हि देयाः ।

ओम् । एषा हि देयाः । ओम् ॥ १० ॥

(८०७०)

॥ इति पञ्च पुरीवपदानि ॥ इति महानाम्न्याचिकः समाप्तः ॥

॥ इति देवतसंहिता समाप्ता ॥

